श्रीरामचरितमानस

विजया टीका

प्रथम भाग

टीकाकार
मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डॉ० श्रीनाथ मिश्र रामायणी
डॉ० सहजानन्द त्रिपाठी

प्रकाशक
इण्डियन डवलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७०००००१

प्रकाशन तिथि
विजयादशमी

संशोधित मूल्य xxxxxxx Rs 6 00

मुद्रक :
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके. ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी, २२१००१

श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी करपात्रीजी की सम्मति

श्रीहरि

वेदवेद्य परब्रह्म के दशरथात्मज रामरूप से प्रकट होने पर वेदो का भी श्रीमहामुनि प्राचेतस वाल्मीकि से रामायण के रूप मे आविर्भाव हुआ। उसी रामायण का गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी से रामचरितमानस के रूप मे प्राकट्य हुआ है। सामान्यतया वेदार्थ ही रामायणार्थ है। उसमे निर्गुण सगुण राम और उनकी मङ्गलमयी लीलाकथा का ही प्राधान्येन वर्णन है। प्रसङ्गानुसार सामाजिक नैतिक धार्मिक अनेक आवश्यक वस्तुओ का भी वर्णन है। भक्ति भुक्ति मुक्ति और अभीष्टसिद्धि सब कुछ मानस सेवन से प्राप्त होता है। अतएव विमुक्त विरत और विषयी सभी लोगो को अभीष्टसिद्धि का साधन रामायण है। आजकल के प्राणियो को हिन्दू सभ्यता संस्कृति की रक्षा तथा चतुर्वर्गप्राप्ति का सुलभ साधन मानस से ही प्राप्त हो सकता है।

मानस की व्याख्याएँ अनेक हैं। उनमे व्याख्याता महानुभाव अनेक रूपो से, प्रभु का गुणगान करते हैं। परन्तु श्री पण्डित विजयानन्दजी त्रिपाठी की यह व्याख्या अपना असाधारण महत्त्व रखती है। कारण पण्डितजी वेदादि शास्त्रो, पुराणो, इतिहासों, धर्मशास्त्रो, तन्त्रो और संस्कृत प्राकृत भाषाओ एव उनके व्याकरणो से परिचित हैं। अतएव इस व्याख्या मे पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय मर्यादाओ के अनुसार विषयप्रदर्शन किया गया है। इतने पर भी विस्तार न कर सिद्धान्त एव सूत्ररूप से ही प्रत्येक चतुष्पदी की व्याख्या की गयी है, जिसका अधिकाधिक विस्तार किया जा सकता है। त्रिपाठी के व्याख्यान मे पाण्डित्य के अतिरिक्त सदाचार धर्माचरण तथा भक्ति ज्ञान निष्ठा का भी प्रभाव स्थान-स्थान पर स्पष्ट झलकता है। लोगों को इससे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिए।

—हरिहरानन्दसरस्वती करपात्रीपाद्य

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कवितार्किकचक्रवर्ती

पण्डित श्रीमहादेव शास्त्री

अध्यक्ष · संस्कृत महाविद्यालय

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी की सम्मति

श्रीशितिकण्ठ शरणम्

अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटै: किन्त्वस्य गम्भीरताम् ।
आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल ॥—मुरारि.

दूसरे मानस के ऊपर ही तैरते रहे। उसके अन्तस्तल का अवगाहनकर निगूढ रत्नो
का बहिर्नयन प्रकृत महानुभाव का ही कौशल है। राजहंस के अतिरिक्त मानस के अनुपम
रहस्य की पारमार्थिक अभिज्ञान-पारगामिता कहाँ प्राप्त की जा सकती है। सम्मानभाजन
श्रीत्रिपाठीजी ने मानस की सुकठिन ग्रन्थियो का अद्भुत भेदन, गुप्त रहस्यो का प्रगूमर
प्रकाश, रसो का लावण्यपूर्ण अभिव्यञ्जन, भक्ति सुरसरिणी का अखण्ड पीयूष प्रवाह जिस
अदूष्य वैदुष्य और श्लाघनीय कौशल से निर्माणकर्मत्व में ला दिया है वह उन्ही महापुरुष का
स्तुत्य कृत्य है। ऐसा प्रत्यय होता है कि इस निर्मल, ललित, सरल, गम्भीर, विशद तथा
सुश्लिष्ट भाष्य निर्माण की प्रवृत्ति सपदि भगवत्प्रेरणावश विजृम्भित हुई है।

श्रीभगवान् के चरणारविन्द मे मेरा विनीत निवेदन है कि

यावन्मूर्ध्नि हिमांशुकन्दलभृति श्रीजाह्नवीधूर्जटे-
र्यावल्लक्ष्मीर्वक्षसि कौस्तुभस्तवकिते यावन्मुरद्वेषिण. ।
यावच्चित्तभुवस्त्रिलोकविजयप्रौढ धनुः कौसुमं
भूयात्तावदियं कृतिः कृतधियां कर्णावतंसोत्पलम् ॥—भोजराज

—महादेव पाण्डेयः

१९—अस्सी, बनारस
दिनाङ्क श्रा. शु. ६. बु.
२०११ वि.

अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य

गोवर्द्धन पीठाधीश्वर

श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज

की

शुभ सम्मति

श्री हरि

मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी काशीवासी श्री रामचरितमानस के मर्मज्ञ इने-गिने विद्वानो मे भी अद्वितीय थे। सबसे बडी विशेषता उनमे यह थी कि वे मानस प्रवचन अथवा तत्सम्बन्धी लेखो मे कभी भी शास्त्रीय मर्यादा का उल्लङ्घन नही होने देते थे। आज कल के मानसव्यास प्राय इसके अपवाद देखे जाते हैं। पर श्री राजहंसजी के प्रवचन के समय ऐसा लगता था कि नाना पुराणनिगमागम सम्मत का साक्षात् अवतार हो रहा है।

सौभाग्य की बात है कि उनके अन्यतम प्रिय पट्टशिष्य श्री श्रीनाथजी व्यास के प्रयास मे उनकी मानस टीका का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। मेरी हार्दिक कामना है कि श्री श्रीनाथजी इस कार्य मे पूर्ण सफल हो जिससे मानस की वास्तविक विशेषताएँ विद्वानो और मानस रस रसिको को आप्यायित करने मे समर्थ हो।

—निरञ्जन

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

का

आशीर्वचन

श्रीरामचरितमानस पर विद्वान् भक्त एवं महात्माओ के द्वारा अनेक टीका टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं। उनके बड़े-बड़े सग्रह भी हुए है। वे सब अपने-अपने सम्प्रदाय एव शैली के अनुसार ठीक हैं। अपने-अपने दृष्टिकोण से सब सुसगत हैं। मैंने अब तक जितनी टीकाएँ देखी है उनमे श्री विजयानन्द त्रिपाठीजी की विजया टीका सर्वोत्तम है। यह मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ। इसका कारण यह है कि यह टीका सर्वथा वैदिक पद्धति के अनुसार सनातन धर्म के अनुरूप लिखी गयी है। जो वेद शास्त्र के अनुकूल होता है वही धर्म होता है। मनमानी पद्धति से धर्म का निर्णय नही हो सकता। गोस्वामीजी ने जिस भक्ति का निरूपण किया है वह वेद-वेदान्त के अनुकूल शास्त्रीय दृष्टिकोण मे सम्पन्न है। त्रिपाठीजी ने इतनी उत्तम टीका लिखकर बहुत बडा लोककल्याण किया है। भगवान् करें इस टीका का जन-जन मे प्रचार-प्रसार हो और जनता गोस्वामीजी के शास्त्रीय भक्ति भावना से सदाचार, अध्यात्म विद्या एव भगवत्प्रसाद को प्राप्त करे।

टीका का पुन प्रकाशन डॉ० श्रीनाथ मिश्र रामायणी के प्रयास से हो रहा है। यह कार्य प्रशसनीय और लोककल्याण में सहायक है।

—अखण्डानन्द सरस्वती

अनुप्रवेश

भगवान् वेदव्यास ने कहा है

वासुदेवकथाप्रश्न पुरुषा स्त्रीन्पुनाति हि ।
वक्तार पृच्छक श्रोतृंस्तत्पादसलिल यथा ॥

—श्रीमद्भागवत

लीला से अवतार धारण किये हुए भगवान् की कथा के विषय म जा प्रश्न कि जाता है वह प्रश्नकर्त्ता, वक्ता तथा श्रोताओ तीना को पवित्र करता है। जैसे भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम के चरणारविन्दो से नि सृत जलधारा श्री गङ्गाजी मन्दाकिनी रूप स्वर्गलोक, भागीरथी रूप मे मर्त्यलोक तथा भोगावती रूप म पाताललोक को पा करती हैं।

श्री भगवान् के अवतार के नानाविध प्रयोजन शास्त्रो मे निर्दिष्ट है। सबस प्र प्रयोजन श्रीमद्भगवद्गीता मे स्वय श्रीमुख से बताया गया है। जब जब सन वैदिक वर्णाश्रम धम की ग्लानि तथा अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब सनातन मार्गस्थ सज्जनो के परित्राणार्थ तथा दुष्टा के विनाशार्थ युग युग म भगवान् स्वय अव्ययात्मा सर्वभूतो के ईश्वर होते हुए भी स्वीया प्रकृति का अधिष्ठानकर आत्ममाय मानो जन्म सा लेते है।

कुछ भावुक भक्तो का कथन है कि जिनके भ्रुकुटी विलास से अनन्तकोटि ब्रह्मा का उत्पादन, पालन, प्रलय होता है उसका अपनी ही सृष्टि के अन्तर्गत स्वय द्वार उत्पादित हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु रावण, कुम्भकर्ण आदि के विनाशार्थ स्वय को अव लेना पडे—यह बात जँचती नही। जा प्रभु सकल्पमात्र से अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमण्डल सर्जन पालन, सहार कर सकते है वे सकल्पमात्र से ही हिरण्यकशिपु आदि का वि तथा प्रह्लाद आदि का परित्राण कर सकते हैं। इसलिए यह प्रयोजन अवतार के बहुत ही छोटा लगता है। यह तो वही बात हो गयी जैसे चीटी को मारने के लिए ब्रह का प्रयोग। इन भक्ता की दृष्टि म भगवान् के अवतार का अधिक उपयुक्त प्रयोजन व जिसे माता कुन्ती ने बताया है

तथा च परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथ पश्येम हि स्त्रिय ॥

पूज्यचरण श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज इस श्लोक की व्याख्या कर कहते हैं कि परमहसो को श्री परमहस बनाने के लिए प्रभु अवतार धारण कर श्री गोस्वामीजी ने भी कहा

राम प्रेम बिनु सोह न ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
जाग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू ॥

सद्-असत्, शाश्वत-नश्वर, तत्त्व-अतत्त्व का पूर्ण विवेक करनेवाले महापुरुष क्षीर-नीर-विवेकी हंस हैं। उसमे असत् अतत्त्व का पूर्ण परित्यागकर केवल मात्र सन्निष्ट तत्त्वनिष्ठ मनीषी परमहस हैं। वे भी अन्त करण मे निर्गुण, निराकार, निर्विकल्प, ब्रह्मानन्द की पुन्जीभूत राशि के रूप मे भगवान् श्री राघवेन्द्र रामचन्द्र, श्री यादवेन्द्र कृष्णचन्द्र आदि की उपासना पारमार्थिक अद्वैत होते हुए भी भक्त्यर्थ द्वैत कल्पनाकर भजन करने से मुक्ति शताधिक भक्ति आने पर, श्री परमहस कहलाते हैं।

ब्रह्मलोकपर्यन्त को तृणवत् समझ चुके हुए ब्रह्मनिष्ठो का चित्ताकर्षण करने के लिए श्री भगवान् को ऐसा कोई रस बनाना ही पडेगा जिसके अवलोकन से श्री भरद्वाज जैसे महर्षि को लगे कि 'ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई।' सार्थक नामवाले विदेहराज को लगे 'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मनु त्यागा।' श्री कागभुशुण्डिजी जैसो का मन हो 'भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा।' स्वय भगवान् अपने दिव्य स्वरूप का प्रतिबिम्ब निहारकर नाच उठते है नाचहि निज प्रतिबिम्ब निहारी।

परन्तु यह भी अत्यन्त उच्चकोटि के महापुरुषो के काम की बात है। भगवान् राम कृष्ण आदि की भक्ति मे रत होनेवाले दुर्लभ हैं। अत आज कलियुग के दम्भ, पाखण्ड प्रधान काल मे ऐसो की आशा कदाचित् मृगमरीचिकावत् ही हो।

परन्तु श्री भगवान् के अवतार का एक और बडे महत्त्व का प्रयोजन शास्त्रो ने बताया है और वह आज भी सबके बड काम का है। परब्रह्मतत्त्व का शास्त्रीय तथा स्वानुभूति रूप विज्ञान विरले ही महापुरुषो के भाग्य मे होता है। परन्तु भगवान् ने अवतार धारणकर जो लोकोत्तर लोकवत् लीलाएँ की हैं उनके कथन, श्रवण, गान, चिन्तन मे आत्मकल्याण का मार्ग सामान्य जन भी प्रशस्त कर सकते है। गीताजी मे श्री भगवान् ने स्वय कहा है .

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नेति मामेति सोऽर्जुन ॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म, कर्म दानो दिव्य हैं। इस बात को जो तत्त्वत जान लेता है वह जन्म, कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। सासारिक लोगो के जन्म कर्म का वर्णन करने से बार बार ससार मे आना पडता है।

श्रीमद्भागवत मे माता कुन्ती ने ही प्रभु के अवतार के अनेक कारणो का उल्लेख करते हुए अन्त मे इसी कारण का निर्देश किया है

भवेऽस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभि ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ १ ८ ३५ ॥

अविद्या आत्मा के परमानन्दस्वरूप के अज्ञान, काम उस अज्ञान से उत्पन्न देहाभिमान तथा तज्जन्य कर्मों से इस ससार मे क्लेश पा रहे जीवो को श्रवण स्मरण करने योग्य कर्म करने की इच्छा से ही आप शरीर धारण करते हैं।

श्रीरामचरितमानस में भी भगवान् के अवतार का प्रयोजन निर्दिष्ट किया है। जाम्बवानजी ने हनुमान्‌जी से कहा है

कपिसेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

इतना ही नहीं, जिनसे अनुपम मानव सृष्टि हुई उन श्री स्वायम्भुव मनु को वरदान देते हुए स्वयं प्रभु ने कहा

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
जो सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मदत्यागी॥

आगे रावणवध तथा विभीषण के राज्याभिषेक के पश्चात् श्री भगवान् ने अपनी ही नहीं अपने साथ वानर भालुओं की शुभ कीर्ति का भी परम प्रीति से गान करनेवाले अपार संसार सिन्धु का पार अनायास पावंग ऐसा बताया है

मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिन्धु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

कहने को आज संसार में नास्तिकों का बोलबाला है। पर विचार करने से विदित होगा कि 'जुग कलिजुग मलमूल' के प्रभाव से नर नारी सब वेद प्रतिकूल अधर्मरत भले ही हों परन्तु नास्तिक कोई नहीं हो सकता। सच्चा नास्तिक तो वही है जो अपने आपसे, स्वयं से, आत्मा से द्वेष करे जो कोई नहीं करता। यदि प्राणी ठीक जान ले कि वही आत्मा ही अनादि अवधपति श्रीराम हैं तो भला उनसे विरोध कौन कर सकता है? गोस्वामीजी ने स्वयं बताया है कि विषय, इन्द्रियाँ, उनके अधिष्ठाता देवगण, जीव ये सब एक से अधिक सचेत हैं और इन सबका परम प्रकाशक जो भी तत्त्व है आत्मा, वही राम अनादि अवधपति है। इसलिए श्रीभरतजी कहते हैं

अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुबीर प्रान प्रिय नाहीं॥

और तभी आदिकवि महर्षि श्री वाल्मीकिजी कहते हैं

लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।

तभी महर्षि विश्वामित्रजी राजर्षि जनकजी से प्रभु का परिचय देते हुए कहते हैं

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी।

तभी माता कौशल्या कहती हैं

पूत परम प्रिय तुम सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥

और माता सुमित्रा कहती हैं

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साँईं। सेइअहि सकल प्रान की नाँईं॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥

अधिक कहाँतक कहा जाय, शास्त्र कहते है :

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा । आदावन्ते च मध्ये च हरि. सर्वत्र गीयते ॥

वेदो मे, रामायण मे, पुराणो मे, महाभारत मे आदि, अन्त, मध्य मे सर्वत्र भगवान् श्री हरि का ही गान हो रहा है । श्री रामचरितमानस भी यही कह रहा है .

एहि महँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥

सो प्राण के भी प्राण, जीवन के भी जीवन का प्रतिपादन जिस ग्रन्थरत्न मे हो उससे विरोध किस समझदार प्राणी को हो सकता है ?

यद्यपि हित अनहित पशु पक्षी भी जानता है और जीव के परम कल्याण का साधन कम से कम इस कलियुग मे तो इस भगवद्गुणानुवाद से अधिक कुछ नही है । तथापि जन्म जन्मान्तरो के पुण्यपुञ्जो के बिना श्री हरिकृपा नही प्राप्त हो सकती और अति हरिकृपा जिस पर हो वही इस मार्ग पर पाँव दे सकता है । साथ ही स्वय भगवान् का यह भी कथन है :

पापवत कर सहज सुभाऊ । भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥

अतएव .

अति खल जे बिषई बक कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा ॥

तथापि अकारण करुणा के वशीभूत होकर महात्माओ ने ऐसे लोगो को भी भगवान् की ओर अभिमुख करने के प्रयास मे अपनी ओर से कोई कसर नही उठा रखी । इस नदी मे अनेक पटु प्रश्न नाव है और विवेकयुक्त उत्तर कुशल केवट है । यदि जिज्ञासा के सद्भाव से कुछ प्रश्न या शकाएँ मन मे आये तो उनका उत्तर अवश्य ही स्वय ग्रन्थ मे ही प्राप्त हो जायेगा । जो हरि विमुख हैं तथा श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त सनातन वर्णाश्रम धर्म मे जिनकी रति नही है, ऐसे विमूढ अवश्य मोह प्राप्त करते हैं । अन्यथा यह रस कभी विरस नही होता । इसका श्रवण जीवन्मुक्त महामुनि भी करते है और वे परमहस से श्री परमहस बनते हैं । भवसागर से पार पाने की इच्छावाले विरक्त जनो के लिए तो यह दृढ नाव ही हे । यहाँ तक कि विषयी जनो को भी यह श्रवण सुखद और मनोभिराम लगता है । क्योकि कथा है ही ऐसी । जिसके श्रवणेन्द्रिय है और शब्दो का अर्थ जो समझ सकता है वह सामान्य नाटक, उपन्यास, काव्यकी दृष्टि से भी इसमे रम जाता है । इससे जो ऊबे, उसने रस विशेष जाना ही नही । मानना पडता है कि श्री रघुपति कथा जिसे नही सुहाती वे जड जीव निजात्मघाती आत्महत्यारे ही हैं ।

हमारे गुरुवर्य पूज्यपाद साहित्यरञ्जन मानसराजहस पण्डितप्रवर श्री विजयानन्द त्रिपाठी जी महाराज ने सस्कृत, हिन्दी, फारसी, अग्रेजी आदि अनेक भाषाओ तथा उनके साहित्यो का सुचारु अध्ययनकर फिर अपना समग्र जीवन इसी ग्रन्थरत्न मे समर्पित कर दिया था । करीब ३५ वर्ष तक निरन्तर अपने ही निवास-स्थान : मदैनी, काशी : पर इसका नियमित प्रवचनकर न जाने कितने ही जिज्ञासु जनो की ज्ञान-पिपासा आपने शान्त की थी । काशी के साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् प० श्री महादेव शास्त्री भी अनेक वर्षो तक गुरुदेव की कथा मे निरन्तर आते थे । काशी के सस्कृत के विद्वानो मे श्रीरामचरित-मानस का प्रचार गुरुदेव के ही ओजस्वी एव विद्वत्तापूर्ण प्रवचन के द्वारा हुआ । मानस

मूल, मानसप्रसङ्ग, मानस पचरत्न, सत पच चौपाई, समुझाई, मानस-व्याकरण आदि कई पुस्तके भी आपकी मानससघ सतना, गीताप्रेस गोरखपुर आदि से प्रकाशित हुई। आपके ही सम्पादकत्व मे प्रकाशित मासिक 'सन्मार्ग' मे भी आपकी कई लेखमालाएँ छपी। सम्वत् १९९३ विक्रम मे लीडर प्रेस प्रयाग से आपके द्वारा सम्पादित मानस के शुद्धतम पाठ का सस्करण भी प्रकाशित हुआ। मानस-पीयूप मे भी आपके भाव यत्र-तत्र सङ्कलित हुए। परन्तु इस सग्रह से भी मर्मज्ञ मानस-प्रेमियो को सन्तोप न हुआ। उनके सतत आग्रह के फलस्वरूप आपने सम्पूर्ण मानस की सक्षिप्त टीका भी लिखी जो शास्त्रमर्मविद् मनीपियो की दृष्टि मे मानस की सर्वाधिक प्रामाणिक टीका समझी गयी। सक्षिप्त परन्तु सकल ग्रन्थि-विमोचिका तथा विशद होने से तथा मूलग्रन्थकार के ही मतानुसार नानापुराणनिगमागम-सम्मत कर्मकाण्ड . वर्णाश्रम धर्म उपासनाकाण्ड भक्तिशास्त्र तथा ज्ञानकाण्ड वेदान्त पर्यवसित आस्तिक पड्दर्शन मत का निचोड होने के कारण इस टीका का विद्वानो के बीच मे वही स्थान माना गया जो स्थान श्रीमद्भागवत की श्रीधरी टीका का है।

इसका प्रथम सस्करण उनके जीवनकाल मे ही छपना प्रारम्भ हो गया था। अयोध्याकाण्ड छप रहा था, उसी समय ३-४ दिनो के साधारण अस्वास्थ्य से ही ता० १६ मार्च १९५५ को प्रात काल ३ बजकर २० मिनट पर, मङ्गलवार को ७५ वर्ष की पार्थिव आयु भोगकर, आपने शिव सायुज्य प्राप्त किया। उसके बाद उनका एक स्वरचित पद्य भी प्राप्त हुआ जिसे उन्होने शरीर शान्त होने के एक सप्ताह पूर्व ही लिखकर रख दिया

बनेगी क्या ऐसी भी बात ?
भोलेनाथ स्वय आवेंगे अन्नपूर्णा साथ ॥
तारक मन्त्र सुनाकर सिर पर फेरेंगे निज हाथ।
विजयानन्द महामगल को दिन अब केवल सात ॥

इससे मालूम पडता है कि वे भगवान् शकर के कितने बडे कृपापात्र थे। उनका शरीर मङ्गलवार को ही शान्त हुआ था।

टीकाकार के शिव-सायुज्य प्राप्ति के साथ ही कुछ समस्याएँ उत्पन्न हुई। परन्तु भूतभावन भगवान् शकर की कृपा से सब बाधाएँ शनै शनै हटती चली गयी। पुस्तक ज्यो-ज्यों विद्वानों, मानस-प्रेमियो तथा साहित्य-रसिको के हाथो मे पहुँचती गयी त्यो-त्यो उसकी माँग बढती गयी। इस टीका की सबसे बडी विशेषता यह रही कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। इस परिभाषा पर खरी उतरी।

सो थोडे ही समय मे प्रथम सस्करण की तीन सहस्र प्रतियाँ समाप्त हो गयी और पिछले अनेक वर्षो मे यह टीका अलभ्य हो गयी थी। इस बीच कागज, छपाई आदि उत्तरोत्तर इतने महँगे होन गये कि द्वितीय सस्करण का अवसर अनेक वर्षो तक नही आ सका। श्रीराघवेन्द्र सरकार की कृपा से गतवर्ष जुलाई मे कलकत्ता के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री के पी. गोयनका के यहाँ कथा कहने का अवसर मिला। कथा से गोयनका-परिवार बहुत ही प्रभावित हुआ। गोयनकाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री आर. पी. गोयनका ने मुझसे आग्रह किया कि आप कोई ग्रन्थ लिखें तो हम उसे छपवा दें। मैंने उनसे कहा कि हमारे गुरुदेव की टीका का

दूसरा सस्करण आप करवा दें। इस बात पर उन्होने पिताजी से परामर्शकर सहर्ष स्वीकार किया। इस कार्य के द्वारा गोयनकाजी ने आस्तिक जगत् का बहुत बडा उपकार किया। गोयनकाजी को आशीर्वाद के सहित हम धन्यवाद देते हैं।

इस कार्य मे गोस्वामी तुलसीदासजी के अखाडे के वर्तमान महन्त प वीरभद्रजी का हमे पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। अत उनके भी हम आभारी हैं। महन्तजी काशी हिन्दूविश्व-विद्यालय मे इजनियरिंग कालेज मे प्राफेसर होते हुए भी अपनी आस्तिक परम्परा का पूर्ण निर्वाह कर रह हैं। यह बडे ही सन्तोष का विषय है। हमारे चिकित्सा क्षेत्र के गुरु काशी के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. गगा सहायजी पाण्डेय का भी आशीर्वाद हमे इस कार्य मे प्राप्त हुआ। अत उनके चरणो मे भी हमारा शत शत नमन है। बम्बई के प्रसिद्ध चिकित्सक स्वर्गीय गुरुदेव के प्रिय शिष्य प वासुदेवजी वि व्यास वैद्य का सहयोग हमे प्रथम सस्करण मे भी प्राप्त हुआ था और इस सस्करण मे तो उनकी बडी प्रेरणा रही। हम उनके भी आभारी हैं। गुरुदेव के पुत्र डॉ सहजानन्दजी त्रिपाठी ने बडे ही उदारतापूर्वक ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति हमे दी। अत हम उनके भी हृदय से आभारी हैं। श्रीराम प्रसादजी पोद्दार अध्यक्ष सचुरी मिल बम्बई ने भी इस कार्य मे हमारा उत्साहवर्द्धन किया। अत हम उन्हे भी आशीर्वाद के साथ-साथ धन्यवाद देते हैं। हमारे प्रधान शिष्य प रामनारायणजी शुक्ल शास्त्री व्यास का इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे बहुत बडा सहयोग रहा। अत उन्हे भी हम आशीर्वाद सहित धन्यवाद देते हैं। हमारे गुरु भाई प देवकीनन्दनजी शास्त्री व्यास एव प श्यामनारायणजी शास्त्री व्यास का भी हमे पूर्ण सहयोग मिला। उनके भी हम आभारी हैं। इस अवसर पर एक मित्र का नामोल्लेख परमावश्यक जान पडता है वह है हमारे गुरुभाई प मनोरञ्जनजी ज्योतिषी आयुर्वेदाचार्य (ए बी एम एस) एम ए जिनका प्रथम सस्करण मे बहुत बडा सहयोग रहा। द्वितीय सस्करण मे भी ज्योतिषीजी ने वैसा ही सहयोग किया। उन्हे भी हम धन्यवाद देते है। हमारे शिष्य प लक्ष्मीकान्त मिश्र ने भी टीका के प्रकाशन मे बहुत परिश्रम किया। अत उन्हे भी धन्यवाद के साथ साथ आशीर्वाद देते है।

अन्त मे आनन्द कानन प्रेस के स्वामी श्री विश्वम्भरनाथजी द्विवेदी का हम आभार स्वीकार करते हैं जिन्होने अपने व्यक्तिगत देखरेख मे इस ग्रन्थ की शुद्ध तथा स्वच्छ छपाई करवाकर इसे इतने अल्प समय मे पाठको को सुलभ किया है। द्विवेदीजी की व्यक्तिगत योग्यता का भी हमे इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे बहुत बडा लाभ मिला है।

—डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी
३/१८, शिवाला
वाराणसी (उ प्र.)

ता १९-१०-८० ई०

समर्पण

प्रिय बाँकेराम !

मैं जानता हूँ कि कितनी प्रसन्नता तुम्हे इस टीका के पूरी होने और प्रकाशित होने मे होती। श्रीगोस्वामी जी के अखाड़े के महन्त होने से तुम शिष्य होने पर भी पूज्य थे और आज तो तुम मुक्त होकर साक्षात् विश्वनाथ हो गये हो !

अतः इस टीका को मै तुम्हे ही समर्पण करता हूँ।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

—विजयानन्द

वेदन उधारयो हिन्दू जगन सँभारयो
धर्म डूबत उबारयो फारयो उदर कली को है।
भाषा कविताई की बडाई तिहुँ लोक छाई
गई कुटिलाई वामपथ परयो फीको है॥
दूरि भए दुरित दया की पैज पूरी भई
प्रगट जवाल भयो जवनन के जो थो है।
दशो अवतारन महँ कीन्हो करतार जौन
तौन करिबे को अवतार तुलसी को है॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

श्रीगुरवे नम

प्रस्तावना

कविकुलचूडामणि भक्ताग्रगण्य महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस से जो उपकार जनता का हो रहा है वह किसी से छिपा नही है। यह ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है कि एक बच्चा भी उस आनन्द स गान करता है और उसे समझने म अच्छे बुद्धिमान् की भी बुद्धि चक्कर खाने लगती है। एक से एक महात्माओ ने, विद्वानो ने उस पर टीकाएँ लिखी हैं। फिर भी अन्य महानुभावो को उस पर नयी टीका लिखने की आवश्यकता मालूम पडी। कविवर केशवदास की यह उक्ति कि बानी जगरानी की उदारता बखानी कहा। कहि कहि हार्‍यौ नहि कहि काहू पै गई। पति बरन्यौ चारमुख पूत बरन्यौ पाँच मुख नाती बरन्यौ षट्मुख तदपि नई नई। मुझे तो श्रीगोस्वामीजी की ही वाणी पर पूर्णत घटती-सी दिखायी पडती है।

मुझे बचपन से श्रीरामचरितमानस से प्रेम है। ढलती अवस्था मे जब अपने जीवन को सफल बनाने का विचार मन म उठा तो सिवा श्रीगोस्वामीजी के शरण ग्रहण करने के दूसरा उपाय दिखायी नही पडा। कोई तीस वर्ष से मैं अपने निवासस्थान पर ही मानस का प्रवचन करता हूँ। रिटायर्ड जज बाबू बैजनाथ प्रसादजी तथा कविकञ्जजी आदि श्राताओं की ओर से बडा आग्रह हुआ कि मैं भी मानस पर टीका लिखूँ। मेरे प्रिय शिष्य महन्त बाँकेराम मिश्र अखाडा गोस्वामी तुलसीदासजी काशी तो इस तरह पीछे पडे कि मुझे लिखना आरम्भ कर देना ही पडा।

अन्तर्यामी की कृपा से टीका पूरी हुई। परन्तु पाठक इसम किसी चमत्कारिक अर्थ, अद्भुत-अद्भुत भाव या विचित्र कथानकों की आशा न कर। इसम विशेषता इतनी ही है कि ग्रन्थ से ग्रन्थ के लगाने की चेष्टा की गयी है। जहाँ आवश्यकता जान पडी वहाँ अन्य ग्रन्था स भी प्रमाण उद्धृत किये गय हैं। जहाँ तक हो सका पूज्यपाद ग्रन्थकार के आशय के अनुसरण का प्रयत्न किया गया है। अर्थ करने मे वाक्यो की सगति पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। इसम भूल मुझसे चाहे जैसी हो गयी हो पर जानबूझकर पक्षपात तथा लोकरञ्जनादि कारणो से मैंने अर्थ का अनर्थ नही होने दिया है। जो जा विचार गुरुजनो और महात्माओ से मुझे प्राप्त हुए हैं या ग्रन्थ के मनन करने मे जो नये-नये विचार मेरे मन में उठे हैं उन सबो को निर्भीकता से यथासाध्य प्रकट कर देना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।

अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर मुझे इस ग्रन्थ के पूरे होने की कोई आशा न थी। इसलिए बीच म मैंने कई छोटी-छोटी पुस्तक लिखकर अपने विचारो और भावो को सर्वसाधारण के सामने रक्खा और कहना नही होगा कि जनता ने उसका स्वागत किया जिससे मेरा उत्साह बढता गया। वस्तुत कृपालु मित्रो और हितचिन्तको के प्रोत्साहन से ही इस कार्य का सम्पादन हो सका। लौकिक दृष्टि से तो यही बात है। परन्तु मेरा हृदय

जानता है कि उस अन्तर्यामी से मुझे किस भाँति प्रेरणा मिलती गयी है और कैसी परिस्थिति सम्पन्न होती गयी है, जिससे इसकी पूर्ति का कठिन कार्य सम्पन्न हुआ और छपना भी आरम्भ हो गया।

जब गोद में खेलता था तभी पिताजी ने 'नमामि भक्तवत्सलम्। कृपालशीलकोमलम्' कण्ठ कराया था। वे नित्य रामचरितमानस का पाठ करते थे। सुनते-सुनते मुझे बहुत कुछ कण्ठ हो गया। प० अयोध्याधर द्विवेदी उपनाम पाठपण्डित पिताजी के यहाँ प्रायः आया-जाया करते थे। उनकी कथा मैं बड़े मनोयोग से सुनता था। बड़े होने पर मानस के अद्वितीय वक्ता प० रामकुमारजी से मुझे सुन्दरकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड के विधिपूर्वक अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्हीं को मैं इस विषय का गुरु मानता हूँ। क्योंकि ग्रन्थ लगाने की पद्धति मुझे उन्हीं से प्राप्त हुई। वैसे तो कई प्रसङ्ग मैंने उनके पट्टशिष्य प० देवीपलटजी से भी सुने। प्रख्यात रामायणी प० श्रीभूषणजी मेरे मित्र ही थे। उनसे भावों का आदान-प्रदान हुआ करता था और अयोध्याकाण्ड में मेरा प्रवेश तो उन्हीं की कृपा से हुआ। फिर भी इस टीका के लिखने में मुझे अनेक ऐसे स्थल मिले जिनकी संगति लगाने में मुझे महीनों रुकना पड़ा। कितनी बातें ऐसी मिलीं जिनका पता लगाने में बहुत कुछ ध्यान करनी पड़ी। कुछ बातें अकस्मात् श्रोताओं से भी मिलीं। अतः मैं इन सभी महापुरुषों का आभारी हूँ। ऐसे अवसर पर इनका सादर स्मरण करना मेरा परम कर्तव्य है।

श्रीगुरुदेव भगवान् शिवराम किङ्कर योगत्रयानन्दजी तथा विद्यागुरु श्री स्वामीजी घनश्यामानन्दजी महाराज मुमुक्षु भवन को क्या धन्यवाद दूँ। मुझमें जो कुछ भलाई है वह इन्हीं चरणों के कृपालेश से है और जो बुराइयाँ हैं वे सब मेरी हैं।

जिस ग्रन्थ रत्न श्रीरामचरितमानस की यह टीका लिखी गयी है वह वस्तुतः मनुष्य जाति के मूलपुरुष स्वायम्भूमनु की बड़े परिश्रम से कमायी हुई सम्पत्ति मीरास है जिसे वे अपनी भावी सन्तान मनुष्य जाति के लिए छोड़ गये हैं। यह प्रकट रहने पर भी सर्वसाधारण के लिए गुप्त ही थी। पर श्री गोस्वामीजी ने उसे सबके लिए सुलभ कर दिया। फिर भी इसे बपौती सम्पत्ति की दृष्टि से देखनेवाले थोड़े ही हैं। अब भी कोई इससे यदि लाभ न उठाये तो उसका अभाग्य ही समझना चाहिए।

जो ब्रह्म अगुण अनन्त और अनादि है जिसका परमार्थवादी चिन्तन करते हैं, जिसका निरूपण वेद नेतिनेति कहकर करता है, जो निजानन्द निरुपाधि और अनूप है जिसके अंश से अनेक शम्भु, विरंचि और विष्णु भगवान् उत्पन्न होते हैं वह प्रभु मन और वाणी से परे है और उसकी प्राप्ति ही मनुष्य जाति का परमध्येय है।

पर वेद कहता है कि ऐसा प्रभु भी सेवक के वश है और भक्त के लिए लीलाशरीर ग्रहण करता है। इसी वचन के बल पर भगवान् मनु ने सस्त्रीक अत्युग्र तपस्या करके उनको प्रत्यक्ष किया और विश्व के कल्याण के लिए उन्हें पुत्ररूप से प्राप्त होने का वर माँग लिया। जिससे उनका दर्शन संसार को सुलभ हो जाय और उनके रूप के ध्यान चरित्र के गान तथा नाम के स्मरण से उनकी सन्तति सदा लाभ उठाती रहे। उनके चरित्रगान से धर्ममार्ग की प्राप्ति हो। उनके नामस्मरण से ज्ञान की प्राप्ति हो। उनके ध्यान से वैराग्य की प्राप्ति हो और उनके पूजन से ऐश्वर्य की प्राप्ति हो।

इस भाँति श्री रामोपासना मनुष्यजाति की बपौती सम्पत्ति है। सो पूज्यपाद गोस्वामीजी ने मानस द्वारा उसे सबकी पहुँच के भीतर ला दिया। उनके समकालीन महात्मा नाभाजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना भक्तमाल में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है

त्रेता काव्य प्रबन्ध कियो सतकोटि रमायन।
एक अक्षर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायन॥
अब भक्तन के हेतु बहुरि लीलावपुधारी।
रामभक्तिरसमत्त रहत निसिदिन ब्रतधारी॥
संसार अपार के तरनहित सुगमरूप नौका लयो।
कलिकुटिल जीव निस्तारहित बालमीक तुलसी भयो॥

भाव यह कि जिस महर्षि वाल्मीकि ने त्रेता मे रामायण रचकर उस काल के लोगो का उद्धार किया उसी ने कलियुग के कुटिलजीवो के निस्तार के लिए तुलसीदास रूप से अवतार धारण किया। वाल्मीकीय रामायण माधुर्यप्रधान ग्रन्थ है। उसमे श्रीरामचन्द्र के ईश्वरावतार होने का अति सूक्ष्मरूप से कहीं-कहीं वर्णन है, पर अब उसके कलियुग के कुटिलजीवो का कल्याण होना कठिन है। उनमे इतनी शक्ति नहीं कि सम्पूर्ण ग्रन्थ को उस दृष्टि से देख सकें। अत उसी भगवान् वाल्मीकि ने तुलसीदास रूप म अवतीर्ण होकर श्रीरामचरितमानस नाम का ऐश्वर्यप्रधान ग्रन्थ प्रणयन करके पदे-पदे श्रीरामचन्द्र के ऐश्वर्य का स्थापन कलि कुटिल जीव के गले उतारने के लिए किया जिसमे मानसपाठ काव्य के आनन्द के अतिरिक्त भजन रूप मे परिणत हो सके।

सम्भव है वाल्मीकि महर्षि के अवतीर्ण होनेवाली बात कुछ लोगो के मन मे न बैठे। फिर भी विचारशील महात्माओ ने इसे प्रमाण माना है और इसके लिए वे समुचित युक्ति देते हैं। अत इसे उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता।

श्री गोस्वामीजी वैदिक मत प्रतिष्ठापनाचार्य थ। उनके रचित मानस की परिधि के भीतर नाना पुराण निगमागम तथा जितने वैदिक सम्प्रदाय द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैतादि हैं सभी आ जाते हैं और सबको उचित स्थान मिलता है। उन्होने सर्वसाधारण के बोधगम्य होने के लिए प्राकृत भाषा को अपनाया, जिसका बहुत बडा अधिकार है। तत्सम रूप से उसमे शुद्ध संस्कृत प्रयोगो का तद्भव रूप से विकृत प्रयोगो का तथा देशोद्भव रूप से अनेक प्रचलित भाषाओ का समावेश है। मानस के मङ्गलाचरण के श्लोको म भी प्राकृत के नियमो की छाप है। इस टीका मे प्राकृतानभिज्ञ महाशयो के लिए जहाँ-तहाँ इन बातो के दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है जिसमे किसी को अपने भ्रम का आरोप श्रीगोस्वामीजी पर करने का अवसर न मिले। वे स्वय कहते हैं कि मेरी ग्राम्यगिरा कृष्णा गौ है। संस्कृत कपिला गौ है। परन्तु कृष्णा गौ का दूध अधिक विशद सफेद होता है। उसका पाक भी लघु होता है और उसे पान करने का सबका अधिकार है। इसी भाँति ग्राम्यगिरा म भी कहा हुआ रामयश अधिक स्पष्ट है। सुख बोध्य है और उसे कथन श्रवण का सबको शास्वत अधिकार है, यथा

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय रामजस गावहिं सुनहिं सुजान॥

उन्होंने सब शास्त्रो का मन्थन करके उनका सार निकालकर ग्राम्यगिरा मे ऐसा समन्वय किया है कि वह शैव वैष्णव शाक्त आदि सभी धर्मप्रेमियो के गले का हार हो रहा है। अत इसकी टीका मे यह प्रयत्न किया गया है कि श्री गोस्वामीजी का अभिप्राय कही से दबने न पावे। मुझे इस बात के लिखते हुए हर्ष होता है कि इस टीका को साक्षात् शङ्करस्वरूप श्री १०८ करपात्रीजी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त है और पण्डिताग्रगण्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कविताकिकचक्रवर्ती श्री महादेव शास्त्रीजी प्रिन्सपल अध्यक्ष सस्कृत महाविद्यालय हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने इसका अनुमोदन किया है। अत कम से कम मैं इतनी आशा अवश्य कर सकता हूँ कि यह टीका मानसप्रेमियो के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और इतने से ही मेरे जीवन का साफल्य है।

एक बात और कहनी है ' आज से सत्तर वर्ष पहिले तक लोग हिन्दी की वर्णमाला को सस्कृत की वर्णमाला से कुछ भिन्न सी मानते थे और लिखने मे उन्हीं अक्षरो का प्रयोग करते थे जो हिन्दी के सुखोच्चार्य शब्द के लिखने के लिए पर्याप्त थे। श्री गोस्वामीजी ने भी उसी परिपाटी को अङ्गीकार किया था। पर अब प्रवाह दूसरा बह उठा है। सस्कृत शब्दो का शुद्ध रूप भाषा मे लिखा तथा बोला जाता है। परन्तु प्राचीन भाषा की रक्षा के लिए मूल मे शब्दों के वे ही रूप रक्खे गये हैं जिनमे ग्रन्थकार ने उनका प्रयोग किया है। केवल षकार को उन स्थलो से हटा दिया गया है जहाँ वह खकार का भी बोधक बन बैठा था। शब्द के रूप मे भी कही-कही विकल्प से काम लिया गया है। उच्चारण सादृश्य से औ अऊ ऐ अइ ये ए मे कोई भेद नही माना गया है। मैंने किसी एक का बहिष्कार न करके यथासाध्य प्राचीन प्रतियो के प्रयोग का ही अनुसरण किया है। समस्त पदो मे बार-बार योजिका हाइफन का प्रयोग करके उन्हे गूँथने की चेष्टा मैंने नही की है। सामासिक सज्ञाओ के समस्यमान पद तो सटाकर रक्खे हैं और शेष समासो के पद स्वतन्त्र ही छोड दिये है। जैसे वे प्राचीन प्रतियो मे मिलते हैं। ऐसे शब्द सटाकर लिखे बिना भी अविभक्तिक पदो के समान अपना अर्थ स्पष्ट ही प्रकट कर देते हैं। अर्थात् मूलपाठ मैंने अपने उस सस्करण के अनुसार रक्खा है जो सवत् १९९३ वि० मे लीडर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है।

इस टीका के छपने का पूरा श्रेय प० श्रीनाथ मिश्रजी को है जिनके उत्साह और परिश्रम स ही यह टीका छप सकी। प० मनोरञ्जन जोशीजी ने भी बहुत परिश्रम किया है। बाबू महेशनारायण सिंह रिटायर्ड ओवरसियर गया निवासी ने इसके सम्पादन मे उत्साह के साथ बडी सहायता की है तथा श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायण पोद्दारजी के उत्साह से यह कार्य अग्रसर हुआ है। अत उपर्युक्त महाशयो को मैं धन्यवाद ही नहीं आशीर्वाद भी देता हूँ। अन्तत मोतीलाल बनारसीदास फर्म को भी धन्यवाद है जिसने बडे उत्साह से इसके मुद्रण के कार्य को अपने समर्थ हाथो मे लिया है।

—विजयानन्द त्रिपाठी

॥ श्री: ॥

रामचरितमानस के भाष्यकार की जीवनी

शाण्डिल्य गोत्र सरयूपारी ब्राह्मण। पूज्यपाद पिताजी का नाम प० रघुवीर त्रिपाठी। सवत् १९३८ विजयादशमी के दिन मुहल्ला मदैनी मद्रवनी काशी मे हुआ। विजयादशमी को जन्म होने से माता पिता ने विजयानन्द नाम रक्खा। जन्मस्थान ही स्थायी पता है।

पिताजी के गोद में ही नमामि भक्तवत्सल, कृपालु शील कोमल। को ही सर्व प्रथम मौखिक शिक्षा मिली। एफ ए तक अग्रेजी पढ़ा। सामान्यज्ञान सस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और बँगला का भी है। श्रीरामचरितमानस का व्यसन बाल्यकाल से ही है। इतने महान् प्राचीनतम तथा युक्तिसम्मत धर्म पर पत्र पत्रिकाओ द्वारा किये हुए आक्षेपों को सहन न कर सकने के कारण लेख लिखना आरम्भ किया। उस समय प्रयागराज से अभ्युदय निकलता था। वह कृपा करके लेख छाप देता था। अन्य समाचारपत्रो की पालिसी के विरुद्ध मेरे लेख पड जाते थे। अत वे नही छापते थे। पिछले दिनो में सूर्य तथा कल्याण मे मेरे लेख छपते थे।

धर्मविरोधी प्रचार से दु खी होकर श्रीस्वामी करपात्रीजी ने मासिक सन्मार्ग निकालने की आज्ञा सेठ मूलचद चोपडा को दी और मुझे सम्पादन का भार दिया गया। कार्तिक शुक्ल १५ स० १९९६ मे उसका प्रथम अङ्क निकला। तब से ६ वर्ष तक मैंने उसका सम्पादन किया। अब परमेश्वर की कृपा से उसने साप्ताहिक तथा दैनिक का रूप धारण किया है। अस्वस्थता के कारण सम्पादन का कार्य बन्द करना पडा।

१ सवत् १९६५ मे मैंने पक्तिपावन परिचय सरयूपारी ब्राह्मणो का सक्षिप्त इतिवृत्त लिखा जो प० चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा गौरीश प्रेस मे छपा।

२ इसके बाद कलिकविज। नाटक लिखा जो हितचिन्तक प्रेस मे छपा। पुस्तक अप्राप्य है इसलिए सम्वत् नही दे सकता।

३ तत्पश्चात् प्रबोधचन्द्रोदय का गद्य पद्यमय अनुवाद महाराज प्रभुनारायण सिंह काशी नरेश की आज्ञा से किया जो हितचिन्तक प्रेस मे छपा।

४ मन्दिर प्रवेशमीमासा लिखा जो सूर्य प्रेस मे छपा।

५ शतपञ्चचौपाई लिखी जो स० १९९३ म गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई।

६ काशीकेदारमाहात्म्य का भाषानुवाद किया जो स० १ ८८ म अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित हुआ।

सौभाग्य से मानसराजहसजी की जीवनी स्वय उनके हाथ की लिखी हुई उनके प्रधान शिष्य मानसरत्न प० श्रीनाथमिश्र वैद्य से हमे प्राप्त हुई जिसे हम अक्षरश छाप रहे हैं।

प्रकाशक प्रथम सस्करण

७ श्रीरामचरितमानस का सम्पादन किया जो स० १९९३ मे अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित हुआ।

८ मानसप्रसग लिखा जो मानससघ सतना द्वारा स० १९९८ म प्रकाशित हुआ।

९ समुझाई नामक पुस्तिका लिखी जो मानससघ सतना द्वारा स० १९९९ मे प्रकाशित हुआ।

१० मानसमूल लिखा जो स० २००० मे मानससघ सतना द्वारा प्रकाशित हुआ।

११ मानसव्याकरण लिखा। वह भी मानससघ द्वारा प्रकाशित हुआ।

१२ श्रीरामचरितमानस की टीका लिख रहा हूँ। जिसे देखकर श्री श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उसका विजयाटीका नामकरण कर दिया।

१३ १४ वीरसिंह नाटक और शतशत्रुञ्जय हनुमत्स्तोत्र अभी तक प्रकाशित नही हुए हैं।

१५ त्रिपुरारहस्य के ज्ञानकाण्ड का हिन्दी अनुवाद।

१६ भक्तिमुक्तावली। १७ अन्य लेख।

इस भाँति थोडी सी सेवा हिन्दी की भी मुझसे बन पडी। मेरी सेवाओ से प्रसन्न होकर श्रीभारतधर्म महामण्डल ने मुझे महोपदेशक, साहित्यभूषण तथा धर्मरत्न की पदवी प्रदान की।

ब्रह्मचारी सच्चिदानन्दजी गीतानन्द ने मानसराजहंस की पदवी दी। अ० भा० धर्मसघ का मैं आज तक प्रधान मन्त्री हूँ। यद्यपि अब मेरी कोई सेवा वार्धक्य के कारण नही हो सकती।

शान्ति

राजा साहिब मिनगा के यहाँ एक कारबारी थे। नाम उनका बाबू रामशरण दास था। दिल्ली के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे। उन्हें राजा साहिब ने श्री गो० तुलसीदासजी की रामलीला के इन्तजाम के लिए भेजा। इसी सिलसिले मे उनसे मेरी मुलाकात हुई। बड ही सज्जन पुरुष थ। धीरे धीरे उनसे प्रेम बढ गया।

एक दिन उन्होने एकान्त मे मुझे समझाया कि तुम अच्छे आदमी हो। परमेश्वर ने तुम्हे बुद्धि दी है। पढे लिखे भी हो। तुमने इतना वैर क्यो कर रक्खा है? तुम्हे क्रोध आता है तो मालूम होता है कि तुम्ह भूतावेश हो गया है। तुम ब्राह्मण क बालक हो। क्षमा तुम्हारा धर्म है। तुम इतना क्रोध क्यो करते हो?

मैंने सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया कि मैंने किसी का कुछ बिगाडा नही। नाहक लोग मुझसे वैर रखते हैं। बाप का कुछ न कर सके इसलिए मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। मैंने प्रण कर लिया है कि दब कर न रहूँगा।

कहने लगे कि वह प्रण तो पूरा हो गया। इतने दिन बीत गये। तुम नही दबे। अब वैर को धो बहाओ। मैंने कहा कि तब मैं क्या करूँ? कहने लगे कि सबसे प्रेम करो। सबके काम मे आवो। सबका भला चाहो, बल से दबाना न चाहो, प्रेम से दबाओ, वैर से वैर शान्त नही होता, आप से आप वैर मिट जायगा।

पिता की भाँति उन्होंने मुझे समझाया और पिता की भाँति ही मेरे ऊपर दृष्टि रखने लगे। मैंने उनके आज्ञानुसार चलना आरम्भ किया। साल के भीतर ही सब लोग मुझसे प्रेम करने लगे।

मैंने मुहल्ले के बच्चो की शिक्षा के लिए बाल-पाठशाला स्थापित की, पुस्तकालय खोला। मैं स्वय अध्यापक का काम करने लगा। प० योगेश्वर झा की सहायता ली। मेरे बालसखा बाबू बलदेवदासजी ने कोषाध्यक्ष का पद स्वीकार किया। मध्यमा तक की पढाई होने लगी। मुहल्ले के बहुत से बच्चो ने शिक्षा पायी, कितने बाल-पाठशाला के विद्यार्थी आज प्रतिष्ठित पदो पर हैं। लगभग अठारह वर्ष तक यह पाठशाला चलती रही।

उसके बाद विद्यापीठ मुहल्ले मे आ गया। तब पाठशाला चलाने की कोई आवश्यकता न प्रतीत हुई। अत बाल-पाठशाला विद्यापीठ मे मिला दी गयी।

उक्त बाबूसाहब के सत्सङ्ग से मुझे बडा लाभ हुआ। मेरी प्रवृत्ति सार्वजनिक कार्यो मे हुई। परलोक के सुधारने की चिन्ता हुई। जो कोई भली बात मेरे मे हैं वह सब उन्ही के प्रसाद से है। अब उनका शरीर नही है। पर उनके गुण गान करने म मेरा मन अघाता नही।

श्रीभारतधर्म महामण्डल

मेरे मित्रों मे कई एक आर्यसमाजी थे। धार्मिक चर्चा हुआ करती थी। उनके सिद्धान्तो पर विचार करने से मालूम हुआ कि वे हिन्दू धर्म को प्राटेस्टेण्टी ढाँचा मे ढालना चाहते हैं और इस भाँति हिन्दू धर्म की विशेषता ही मिटा देना चाहते है। वे मूर्तिपूजा श्राद्धादि के आध्यात्मिक स्तर तक न पहुँचकर, विधर्मियो की भाँति उसका खण्डन करते हैं और उसे अवैदिक बतलाते हैं।

नई रोशनी वालो को ये सब बाते पसन्द थी। उनके बूढे माँ-बाप का उनसे पिण्ड पाने की आशा टूट गयी और वे उनके विचारो से दु खी होकर आँसू बहाते थ। उस समय आर्यसमाज का बडे जोरो से प्रचार चलता था। जहाँ-तहाँ सनातनियो से शास्त्रार्थ भी होता था। उस समय भारतधर्म महामण्डल ही एक ऐसी सस्था थी जिसने आर्यसमाज के प्रचार के रोकने मे बडा काम किया।

अत आर्यसमाजी उसे बदनाम करते थे और उसके सस्थापक श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी को बुरा-भला कहते थे। उनकी बातें सुनते-सुनते मेरे चित्त मे भी उस ओर से अश्रद्धा हो गयी। पर वही एक सस्था ऐसी थी जो आर्यसमाजियो की कटूक्ति से सन्तप्त हृदयो को शीतलता पहुँचाती थी।

दैवयोग से वह सस्था मेरे मकान के निकट गुरुधाम मे आ गयी थी। अश्रद्धा होते हुए भी मैं स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज जिन्हे श्रीजी कहते थे मिला। उनके दर्शन से ही चित्त प्रभावित हुआ। प्रवचन सुनने पर तो श्रद्धा और बढ गयी। मैं नित्य जाने लगा और सत्सङ्ग से लाभ उठाने लगा। श्रीजी महाराज ने भी मुझ पर बड़ी कृपा की। सेवा करने के लिए आज्ञा भी होने लगी और मैं शिरोधार्य करके बडे उत्साह से काम करने लगा। उस समय श्रीजी के शिष्य स्वामी दयानन्दजी की अवस्था थोडी थी। लज्जालु स्वभाव था, बहुत कम बोलते थे। श्रीजी के शिष्य विवेकानन्द और प्रेमानन्द सेवा मे रहते थे।

मेरी सेवाओं से प्रसन्न होकर श्रीजी ने श्रीभारतधर्म महामण्डल की ओर से महोपदेशक की पदवी दी। कुछ दिनों बाद भारतधर्म महामण्डल का कार्यालय चेतगज चला गया। स्वामीजी भी वही चले गये। दूर होने से मेरा आना-जाना बहुत कम हो गया।

इसी बीच मे मैंने 'कलिविजय' नाम का नाटक लिखा। स्वामीजी उसे सुनकर बडे प्रसन्न हुए और मुझे साहित्य भूषण की पदवी प्रदान की। कुछ प्रपञ्च ऐसे आ पडे कि भारतधर्म महामण्डल मे मेरा आना-जाना बहुत कम हो गया। फिर भी स्वामीजी ने मेरा सम्बन्ध महामण्डल से टूटने नही दिया और वह आज भी चला आ रहा है। मेरा आना-जाना कम होने पर भी श्रीजी महाराज की कृपा म कोई कमी न हुई और वे बराबर ध्यान रखते थ कि मैं कैसी परिस्थिति मे हूँ और क्या करता हूँ।

मैंने अ० भा० धर्मसघ की सेवा स्वीकार की और छ वप तक मासिक सन्मार्ग का सम्पादन किया। इससे श्रीजी महाराज बड प्रसन्न हुए उन्हे धार्मिक कार्य को देखकर प्रसन्नता होती थी चाहे वह कार्य किसी सस्था द्वारा किया जाय। और मुझे श्रीभारतधर्म महामण्डल से धर्मरत्न की पदवी मिली।

ब्रह्मचारी श्रीसच्चिदानन्दजी

यद्यपि मैंने पितृ-चरण के गोद मे ही नमामि भक्तवत्सल, कृपालुशीलकोमल इस अत्रिकृत स्तुति को अति अबोधावस्था मे कण्ठ की पर बहुत थोडी सी हिन्दी पढाकर ही पितृ चरणो ने मुझे फारसी और अंग्रेजी पढ़ने मे लगा दिया। वे वृद्ध हो गये थे। रुग्ण रहते थे। समझते थे कि जमीदारी का काम बिना फारसी, अंग्रेजी के न चलेगा। अत जितनी जल्दी मेरा प्रवेश इन भाषाओं मे हो जाय उतना ही अच्छा। अत एफ ए तक मेरी शिक्षा अँग्रेजी, फारसी मे ही हुई।

उनके देहावसान के बाद मुझे ग्लानि हुई कि मैंने परलोक सुधारनेवाली विद्या सस्कृत नही पढी। उस समय ब्रह्मचारी सच्चिदानन्दजी नगवा मे रहते थे। अद्भुत विरक्त पुरुष थ। उनकी अपरिग्रहवृत्ति देखकर मैं चकित रह गया। तीखी तलवार की धार सी पैनी बुद्धि थी। सस्कृत और अंग्रेजी के प्रगाढ विद्वान् थे। महाराष्ट्र होने पर भी बँगला और हिन्दी मातृभाषा की भाँति बोलते थे।

मैंने उनसे प्रार्थना की कि गीता के श्लोको की सङ्गति मुझे नही लगती। कहने लगे कि उसका पाठ किया करो। सङ्गति आप से आप लग जायगी।

महात्माओ के चरणो मे प्रीति मुझे लडकपन से थी और सौभाग्य मेरा ऐसा था कि जिसके पास मैं गया उसने मुझ पर कृपा की। परन्तु उस कृपा से लाभ उठाने मे मैं सदा विफलमनोरथ ही रहा। कुछ दिन आने-जाने के बाद मुझे मालूम हुआ कि गीता के मनन करने वालो मे ये महात्मा बेजोड हैं। लोकमान्य तिलक उनकी धाक मानते थे। मैंने प्रार्थना की कि कुछ मुझे बतलाइये। आज्ञा हुई कि पञ्चदशी पढो। मैं पञ्चदशी लेकर उपस्थित हुआ। उनमे स कवल पहला प्रकरण पढाया और कहा कि बस इतना बहुत है। इसी का मनन करो।

मनन तो मैं कुछ नही कर पाया पर उन महात्मा के प्रवचन का यह प्रभाव पडा कि मालूम हुआ कि आँखे खुल गयी। आज तक मुझे उसी पहिले प्रकरण का विस्तार ही अन्य ग्रन्थों मे दिखायी पडता है।

मेरा प्रेम बचपन से श्री रामचरितमानस मे रहा। कभी-कभी उसकी चर्चा मैं ब्रह्मचारीजी से करता। एकदम अपरिचित ग्रन्थ मे उनकी बुद्धि ऐसा चमत्कार कर देती कि मैं अवाक् रह जाता। कहना अत्युक्ति न होगा कि ग्रन्थ लगाने की कला मैंने उनसे ही सीखी। मानस मे उनके प्रसाद से ऐसी-ऐसी बाते दृष्टिगोचर हुई जो टीकाओं मे नही पायी जाती।

उन्ही के प्रसाद से मुझे दृष्टि मिली, और वे ही मेरी सूझ पर प्रसन्न होकर मुझे मानसराजहंस कहने लगे। जब से उनका निवास ढुण्ढिराज गणेश पर हुआ तब से मेरा आना-जाना कम हो गया। पर उनकी कृपा सदा एक सी रही। एक साल हुआ उस महात्मा का काशीवास हो गया।

वाक्सिद्ध महात्मा

काशी सिद्धो की सराय कहलाती है। यहाँ एक से एक महात्मा आया-जाया करते हैं। अत काशीवासियों की किसी महात्मा पर श्रद्धा बडी कठिनता से होती है। मैंने भी अनेक विरक्त, ज्ञानी और उपासक देखे। परन्तु वाक्सिद्ध महात्मा के दर्शन नही हुए।

अपने जीवन भर मे मैंने केवल दो वाक्सिद्ध महात्मा देखे और दोनो अघोरपन्थ साधु थे। एक मेरे बचपन मे थे। उनका नाम बाबा करात्रदास था। गङ्गा उस पार रहते थे। उनका बाँस का किला बनता था। उसमे मुर्दे की खापडियाँ लटकायी जाती थी। किसी का नाम कलक्टर, किसी का नाम जण्ट, निदान वे सब बडे-बडे अफसरो का प्रातिनिध्य करती थी। बाबाजी चले जा रहे हैं। सिर पर एक पत्थर रक्खे हुए हैं। उसके ऊपर चूल्हे पर खिचडी पक रही है। जहाँ वह पक के तैयार हुई वही बैठकर खा लिया। एक बार मेरे पडोस मे बाबाजी की खिचडी पकने लगी। कोई सुरती लेकर आया। बाबाजी सुरती खाइयेगा। हुकुम हुआ छोड दो खिचडी मे। कोई तेल लेकर आया, कोई गुड लेकर आया। सब उसी खिचडी मे छोडा चला जा रहा है। खिचडी तैयार होने तक उसमे पचासों चीज पडी। बाबाजी सब खा गये। मेरी आँखो देखी बात है।

एक रईस से बाबाजी पाँच सौ रुपया लेने के लिए अड गये। रईस देना नही चाहता था। उसने एक पण्डितजी के हाथ सौ रुपये भेजे। पण्डितजी ने कहा कि आप महात्मा हैं जो देता है ले लीजिए। किसी को कष्ट देकर लेना आपको उचित नहीं।

कहने लगे उसका बड़ा अनिष्ट होने वाला है। मैं चाहता था कि उसे हटा दूँ। पर मालूम होता है कि वह होकर रहेगा। तुम रुपया ले जाओ। मुझे रुपया लेकर क्या करना है, जो मुझमे मोह-भाव करता है। वह तो उसी के कल्याण मे व्यय होता। साल के भीतर उसके एकलौते बेटे की मृत्यु हो गयी। सुनी तो बहुत बातें जाती हैं पर यह तो स्वय मेरी जानी हुई बात है।

दूसरे कुत्ता बाबा थे। वे रामनगर मे किला के पिछवाडे रहते थे। उन्होने एक गूंगे को वाक्शक्ति दी और उसने इन्ट्रेन्स पास किया। राणा जगत्प्रकाश वीरजङ्ग जेनरल मिनिस्टर टेहरीराज मृत्युशय्या पर पडे थे। डॉक्टरो ने जवाब दे दिया था। उनकी माता की करुणा पर द्रवीभूत होकर कुत्ता बाबा ने उनके घर आकर राणा साहिब को चङ्गा कर दिया। परमेश्वर की कृपा से इस बात की सचाई व प्रमाण मे राणा साहिब मौजूद हैं।

मैं कभी-कभी उनके दर्शनो को जाता। बडा मान करते थे। मेरा नाम पण्डित रख छोडा था। एक बार मैं बैठा था। एक बगालिन एक बोतल मद्य ले आयी। उनके एक भक्त ने मेरी आँख बचाकर उसे छिपा देना चाहा। बाबा जी बोले चोरी किस बात की। जो बात है वह तो हुई है। बोतल मँगवाकर अपने सामने रखवा लिया।

मेरे मन म आया कि म इनका कैसे सत्कार करूँ। सो भाँग बनाकर उसम केवडा जल आदि छोडकर ले गया। बडे नाराज हुए। तुम यह लेकर क्यो आये। हाथ जोडा कि बडा अपराध हुआ। तब आप उसे गरम करके पी गय।

बाबाजी रघुवशी क्षत्रिय थ। अघोरपन्थी होने पर भी वर्णमर्यादा का इतना ख्याल करते थे कि ब्राह्मण को चरण छूने नही देते थे।

गङ्गाजी पर बडी प्रीति थी। गङ्गा-गङ्गा किया करते थ। नहाते नही थ। कहते थे कि गङ्गा के नाम से काम है। गङ्गा से काम क्या है। सब लोग जय गङ्गा कहकर उन्हे प्रणाम करते थे।

योग मे अभिरुचि

प० षडानन जी ब्रह्मचारी मेरे मकान मे रहते थे। बड तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ थ। वे दो बार चारो धाम की यात्रा पैदल कर चुके थ। उनके सत्सङ्ग से मुझे योग मे रुचि हुई। उनसे मैंने नेती धोती सीखी। उस समय उसी को बडा योग समझता था। कुछ दिनो तक नेती धोती करता रहा। पर उससे सिवा कफ शुद्धि के और कोई विशष लाभ नही हुआ। पण्डितजी ने मुझे कई आसन सिखाये। षण्मुखी प्राणायाम सिखाया। छायापुरुष का दर्शन कराया। अनाहतनाद सुनाया। इन सभी क्रियाओ म कुछ न कुछ चमत्कार था। परन्तु मेरा सन्तोष इनसे न हुआ।

खेचरी मुद्रा का बडा नाम सुना था। पर उसे सिखाने वाला कोई नही मिलता था। गुरुजी की कृपा से ब्रह्मचारी सदानन्दजी का दर्शन हुआ। इन्हे लोग पहाडी महात्मा कहते थे। ये प्रणवोपासना करते थे। इन्होने मुझे खेचरी मुद्रा सिखायी। समाधि के लिए मेरी उत्कट इच्छा थी। पर इन महात्मा ने कहा कि जब आहार घटाकर नौ तोले दूध पर ला दो, तब समाधि हो सकेगी।

मुझसे यह कभी न हो सका। अत खेचरी से सिवा ध्यान मे सहायक होने के और कोई लाभ न हुआ। कालक्रम से मेरे पास एक मेरठ के जमीदार गृहस्थी से विरक्त होकर सन्यास लेने काशी आये। मुझसे पूछने लगे कि किससे सन्यास लूँ। मैंने कहा जल्दी न कीजिए। यहाँ बहुत से सन्यासी हैं। उनसे मिलिए जिस पर आपकी श्रद्धा हो औ रउनसे

दीक्षा ग्रहण कीजिये। एक सप्ताह मिलने-जुलने के बाद वे मुझसे कहने लगे कि काशी मे तो कोई गुरु बनाने योग्य नही है। मुझे बुरा तो अवश्य लगा। पर मैं चुप हो गया।

कुरुक्षेत्र पर एक स्वामी नवीनानन्दजी उदासी रहते थे। लोग उन्हे लगडा बाबा कहते थे। एक पैर से वे खन्ज थे। उन्हे मैं प्राय कचहरी मे देखता था और मन ही मन कुढ़ता था कि ये ही लोग हिन्दू धर्म को बदनाम करते हैं।

एक दिन अकस्मात् वे मेरे यहाँ पधारे। कहने लगे कि तेरा बाप मेरा बडा ख्याल रखता था और तू कुछ ख्याल नही करता। मैंने बात टालने की नीयत से कहा कि मेरठ से एक व्यक्ति आये हैं। वे कहते हैं कि काशी मे कोई साधु ऐसा नही है जो गुरु बनाया जा सके।

बोले कि बुलाओ उसको। मैंने उन्हे बुला दिया और कहा कि देखिये ये एक महात्मा है। वे कहने लगे कि महात्मा के खोज मे ही मैं सब छोडकर आया हूँ। स्वामीजी ने पूछा कि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनमे से क्या छोडकर आया है? वे कोई उत्तर न दे सके। उन्होने बात ही बात मे उन्हे ऐसा लपेटा कि उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी और मैं भी चकित हो गया।

स्वामीजी इतना कह कर चले गये कि कल मेरे यहाँ आना। वे गये, बडे प्रभावित होकर लौटे। व नित्य जाते और लौटकर स्वामीजी के गुण वर्णन करते। अन्त मे मुझे भी श्रद्धा हुई। उनके साथ जाने लगा। तब उनके माहात्म्य का ज्ञान हुआ। जिसे दुष्ट समझता था उसे महासाधु पाया। रामायण की यह चौपाई याद आयी कि सदा अपन पौ रहहिं दुराय। सब विधि कुसल कुवेष बनाये।

स्वामीजीने हम लोगो पर बडी कृपा की और हम दोनो को प्राणोपासना की विधि बतलायी। काम क्रोध को गुरुदक्षिणा मे माँगा। हम लोगो को नित्य जाकर प्राणोपासना का अनुभव कहना पडता था और शिक्षा लेनी पडती थी। हम दोनो के अनुभव म कभी मेल न खाया। सिवा इसके कि दोनों को साधन मे परम सुख मिलता था।

जैसा-जैसा अनुभव प्राणोपासना मे हुआ वह वर्णनातीत था और यदि वर्णन भी किया जाय तो कोई विश्वास न करेगा। नित्य नवीन आनन्द और प्रायण अद्भुत चमत्कार का अनुभव होता था। इस भाँति छ महीने बीते। बडी-बडी आशा बँधने लगी। एक दिन मुझसे चूक हो गयी। मैं ब्रह्मचर्य न सँभाल सका। सारा करा धरा मिट्टी हो गया। जैसे कोई आसमान से जमीन पर आ पडे। वही क्रिया थी। वही मैं था। पर वह आनन्द और चमत्कार न जाने कहाँ चला गया। बडी ग्लानि हुई। आत्महत्या के लिए जी चाहने लगा। स्वामीजी के सामने जाने में लज्जा लगने लगी। मन मे निश्चय हो गया कि मैं इस क्रिया का पात्र नहीं हूँ और मैंने साधन परित्याग कर दिया। साहस करके मैं फिर भी स्वामीजी के यहाँ गया। पर साधन की चर्चा नही की और न उन महात्मा ने पूछा कि तुम्हारा साधन कैसा चल रहा है।

श्री गुरुचरणो की प्राप्ति

श्रीराजेन्द्र बाबू नाम के एक बगाल के जमीदार थ। उनसे मेरा परिचय हो गया था।

दूसरे कुत्ता बाबा थे। वे रामनगर मे किला के पिछवाडे रहते थे। उन्होंने एक गूँगे को वाक्शक्ति दी और उसने इन्ट्रेन्स पास किया। राणा जगत्प्रकाश वीरजङ्ग जेनरल मिनिस्टर टेहरीराज मृत्युशय्या पर पडे थे। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था। उनकी माता की करुणा पर द्रवीभूत होकर कुत्ता बाबा ने उनके घर आकर राणा साहिब को चङ्गा कर दिया। परमेश्वर की कृपा से इस बात की सचाई व प्रमाण मे राणा साहिब मौजूद हैं।

मैं कभी-कभी उनके दर्शनो को जाता। बडा मान करते थे। मेरा नाम पण्डित रख छोडा था। एक बार मैं बैठा था। एक बगालिन एक बोतल मद्य ले आयी। उनके एक भक्त ने मेरी आँख बचाकर उसे छिपा देना चाहा। बाबा जी बोले चोरी किस बात की। जो बात है वह तो हुई है। बोतल मँगवाकर अपने सामने रखवा लिया।

मेरे मन मे आया कि मैं इनका कैसे सत्कार करूँ। सो भाँग बनाकर उसम केवडा जल आदि छोडकर ले गया। बडे नाराज हुए। तुम यह लेकर क्यो आये। हाथ जोडा कि बडा अपराध हुआ। तब आप उसे गरम करके पी गय।

बाबाजी रघुवशी क्षत्रिय थे। अघोरप थी होने पर भी वर्णमर्यादा का इतना ख्याल करते थे कि ब्राह्मण को चरण छूने नही देते थे।

गङ्गाजी पर बडी प्रीति थी। गङ्गा गङ्गा किया करते थ। नहाते नही थ। कहते थे कि गङ्गा के नाम से काम है। गङ्गा स काम क्या है। सब लोग जय गङ्गा कहकर उन्हे प्रणाम करते थे।

योग मे अभिरुचि

प० षडानन जी ब्रह्मचारी मेरे मकान म रहते थे। बड तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ थे। वे दो बार चारो धाम की यात्रा पैदल कर चुके थे। उनके सत्सङ्ग से मुझे योग म रुचि हुई। उनसे मैंने नेती धोती सीखी। उस समय उसी को बडा योग समझता था। कुछ दिनो तक नेती धोती करता रहा। पर उससे सिवा कफ शुद्धि के और कोई विशेष लाभ नही हुआ। पण्डितजी ने मुझे कई आसन सिखाये। षण्मुखी प्राणायाम सिखाया। छायापुरुष का दर्शन कराया। अनाहतनाद सुनाया। इन सभी क्रियाओ मे कुछ न कुछ चमत्कार था। परन्तु मेरा सन्तोष इनसे न हुआ।

खेचरी मुद्रा का बडा नाम सुना था। पर उसे सिखाने वाला कोई नही मिलता था। गुरुजी की कृपा से ब्रह्मचारी सदानन्दजी का दर्शन हुआ। इन्हे लोग पहाडी महात्मा कहते थे। ये प्रणवोपासना करते थे। इन्होने मुझे खेचरी मुद्रा सिखायी। समाधि के लिए मेरी उत्कट इच्छा थी। पर इन महात्मा ने कहा कि जब आहार घटाकर नौ तोले दूध पर ला दो, तब समाधि हो सकेगी।

मुझसे यह कभी न हो सका। अत खेचरी से सिवा ध्यान मे सहायक होने के और कोई लाभ न हुआ। कालक्रम से मेरे पास एक मेरठ के जमीदार गृहस्थी से विरक्त होकर सन्यास लेने काशी आये। मुझसे पूछने लगे कि किससे सन्यास लूँ। मैंने कहा जल्दी न कीजिए। यहाँ बहुत से सन्यासी हैं। उनसे मिलिए जिस पर आपकी श्रद्धा हो और उनसे

दीक्षा ग्रहण कीजिये । एक सप्ताह मिलते-जुलने के बाद वे मुझसे कहने लगे कि काशी मे तो कोई गुरु बनाने योग्य नही है । मुझे बुरा तो अवश्य लगा । पर मैं चुप हो गया ।

कुरुक्षेत्र पर एक स्वामी नवीनानन्दजी उदासी रहते थे । लोग उन्हे लगडा बाबा कहते थे । एक पैर से वे लञ्ज थे । उन्हे मै प्राय. कचहरी मे देखता था और मन ही मन कुढता था कि ये ही लोग हिन्दू धर्म को बदनाम करते हैं ।

एक दिन अकस्मात् वे मेरे यहाँ पधारे । कहने लगे कि तेरा बाप मेरा बडा ख्याल रखता था और तू कुछ ख्याल नही करता । मैंने बात टालने की नीयत से कहा कि मेरठ से एक व्यक्ति आये हैं । वे कहते हैं कि काशी मे कोई साधु ऐसा नही है जो गुरु बनाया जा सके ।

बोले कि बुलाओ उसको । मैंने उन्हे बुला दिया और कहा कि देखिये ये एक महात्मा हैं । वे कहने लगे कि महात्मा के खोज मे ही मैं सब छोडकर आया हूँ । स्वामीजी ने पूछा कि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनमे से क्या छोडकर आया है ? वे कोई उत्तर न दे सके । उन्होंने बात ही बात मे उन्हे ऐसा लपेटा कि उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी और मैं भी चकित हो गया ।

स्वामीजी इतना कह कर चले गये कि कल मेरे यहाँ आना । वे गये, बडे प्रभावित होकर लौटे । वे नित्य जाते और लौटकर स्वामीजी के गुण वर्णन करते । अन्त मे मुझे भी श्रद्धा हुई । उनके साथ जाने लगा । तब उनके माहात्म्य का ज्ञान हुआ । जिसे दुष्ट समझता था उसे महासाधु पाया । रामायण की यह चौपाई याद आयी कि सदा अपन पौ रहहिं दुराये । सब विधि कुसल कुवेष बनाये ।

स्वामीजीने हम लोगों पर बडी कृपा की और हम दोनों को प्राणोपासना की विधि बतलायी । काम क्रोध को गुरुदक्षिणा मे माँगा । हम लोगो को नित्य जाकर प्राणोपासना का अनुभव कहना पडता था और शिक्षा लेनी पडती थी । हम दोनो के अनुभव मे कभी मेल न खाया । सिवा इसके कि दोनो को साधन मे परम सुख मिलता था ।

जैसा-जैसा अनुभव प्राणोपासना मे हुआ वह वर्णनातीत था और यदि वर्णन भी किया जाय तो कोई विश्वास न करेगा । नित्य नवीन आनन्द और प्रायेण अद्भुत चमत्कार का अनुभव होता था । इस भाँति छ. महीने बीते । बडी-बडी आशा बँधने लगी । एक दिन मुझसे चूक हो गयी । मैं ब्रह्मचर्य न सँभाल सका । सारा करा धरा मिट्टी हो गया । जैसे कोई आसमान से जमीन पर आ पडे । वही क्रिया थी । वही मैं था । पर वह आनन्द और चमत्कार न जाने कहाँ चला गया । बडी ग्लानि हुई । आत्महत्या के लिए जी चाहने लगा । स्वामीजी के सामने जाने में लज्जा लगने लगी । मन में निश्चय हो गया कि मैं इस क्रिया का पात्र नहीं हूँ और मैंने साधन परित्याग कर दिया । साहस करके मैं फिर भी स्वामीजी के यहाँ गया । पर साधन की चर्चा नही की और न उन महात्मा ने पूछा कि तुम्हारा साधन कैसा चल रहा है ।

श्री गुरुचरणो की प्राप्ति

श्रीराजेन्द्र बाबू नाम के एक बंगाल के जमीदार थे । उनसे मेरा परिचय हो गया था ।

एक दिन प्रसङ्गात् मैंने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की प्रशसा उनसे की। कहने लगे कि चलो तुम्हे गोस्वामीजी का दर्शन करावें। मैं भी चल पडा। वे मुझे सोनारपुरा के एक मकान मे ले गये। भीतर जाने पर मैंने अपने को एक महात्मा के सम्मुख पाया। जैसे पुस्तको के वन मे कोई सिंह बैठा हो। बडी गम्भीर मुद्रा, करुणापूर्ण दृष्टि, उज्ज्वल तेजोमयमूर्ति का दर्शन करते ही मेरा सिर आप से आप चरणो मे झुक गया और हृदय ने बोल दिया कि यही तेरे गुरु हैं।

उस पाणिपकज का सिर से स्पर्श मे जो सुख हुआ उससे पितृ चरणो के करकमल के स्पर्श का सुख याद आया। जो कि बीमारी की घोर वेदना के समय सर्वाबाधासु घोरासु मन्त्र का पाठ करते हुए सिर पर उनके हाथ फेरने से मुझे मिलता था।

तब से मैं बराबर श्रीचरणो के दर्शन के लिए जाने लगा। गुरुजी प्रायेण सस्कृत या बँगला में शास्त्रो का व्याख्यान भक्त मण्डली मे करते थे। हिन्दी थोडी जानते थे। मैं भी बँगला और सस्कृत से अपरिचित नही था। फिर भी विषय की गहनता के कारण ठीक समझ नही पाता था।

पाँच-चार महीना बराबर सेवा मे जाते मेरा प्रवेश कुछ उन उपदेशो मे हो चला। सुनने की प्यास बढती गयी। गुरुजी की कृपा को बढते देखकर मैं फूला नही समाता था। मेरी सेवा भी स्वीकार होने लगी। एक दिन मुझे बुलाकर श्रीरामषडक्षर मन्त्रराज की दीक्षा दी और ध्यान की विधि बतलायी। अपनी बनायी हुई पुस्तक आर्यशास्त्रप्रदीप तथा भूत और शक्ति पढने को दिया।

मुझे भी श्रीचरणो के सामने ससार भूल सा जाता था। दर्शन से न तो नेत्र तृप्त होते थे। और न वचनों से श्रवण तृप्त होते थ।

कुछ दिनो के बाद श्रीचरणो ने मकान बदल दिया और राजघाट जाकर रहने लगे। दूर हो जाने से मेरा नित्य का जाना तो रुक गया पर प्रायेण आया-जाया करता था। उनके मध्यम पुत्र फणिभूषण सान्याल से मेरी मित्रता हो गयी। उनके बडे लडके विभूतिभूषण ठाकुरजी की पूजा और बाबा की सेवा मे रहते थे। छोटे लडके इन्दुभूषण उस समय पढते थे। सतीश नाम के एक सेवक थे। उन्हे बाबा की सेवा से तृप्ति ही नही होती थी। बडे रईस और प्रोफेसर सतीश की खुशामद करते थे कि जिसमें उन्हे बाबा का दर्शन मिल सके।

वैसा धर्म पर वज्र विश्वास, वैसा ज्ञान, वैसी उपासना, वैसी चतुरस्र विद्या, वैसी व्याख्यान शक्ति, वैसा चिकित्सा नैपुण्य, वैसी साधना कहीं दिखायी नही पडती और न वैसी उदारता या वैसी दया ही कहीं दृष्टिगोचर होती है जैसा कि मैंने श्रीचरणों मे देखा। वह आनन्द और वह समाज अब देखने को कहाँ मिलनेवाला है। कई वर्ष मेरे बडे सुख से बीते। अपने जीवन का सुखमय समय मैं तभी तक मानता हूँ जब तक गुरुजी काशी मे आसीन थे। मैं तो यही कहूँगा कि मेरे दुर्भाग्य से उनका जाना कलकत्ते हुआ और फिर मैं दर्शन नही पा सका।

श्रीमुमुक्षभवन

मेरे मुहल्ले म एक प्रसिद्ध सत बाबा अमरदासजी रहते थे। एक दिन उन्होने बुलवा भेजा और कहा कि तेरा नाम विजयी है तू विजय कर।

राजा साहिब नागौद की श्रद्धा

श्रीमान् राजा यादवेन्द्र सिंह उचेहरा नागौद के राजा थे। परिहारो मे यह प्रधान गद्दी है। राजा साहिब बड सच्चरित्र और सच्चे सनातनधर्मी थे। नयी सभ्यता उन्हें नही रुचती थी। वे कहा करते थे कि उसने अपने देश के पहिरावा का परित्याग किया। उसने अपने देश से इनकार कर दिया। और जिसने अपन देश से इनकार किया वह अपने बाप से इनकार कर चुका। अगरेज के छू जाने पर गोमय लगाकर स्नान करते थे।

भला ऐसे विचार के नरेश से रेजिडण्ट की क्या पटने लगी। बृटिश गवर्नमेंट न मान लिया कि राजा साहिब का दिमाग सही नही है और उन्ह मासिक मिलने लगा। राज्य से अलग रहने लगे।

काशी मे ठहरे हुए थ। बड आग्रह से मदैनी के ब्राह्मणो को निमन्त्रण दिया। उसमे मैं भी गया था। देखा कि वहाँ पक्की की व्यवस्था थी अत मैंने स्पष्ट कह दिया मैं भोजन नही करूँगा।

बात राजा साहिब तक पहुँची। बोले किसने ऐसी बात कही? लोगो न कहा तिवारीजी ने। कहा कि जाकर उनसे कहो कि वे ब्राह्मण है। मैं क्षत्रिय हूँ। मरे यहाँ क्यों न खावेंगे? मेरे में दोष बतला दें तब भले ही न खावें।

मैंने कहा कि रानी तो रसोई बनावेंगी नही और राजा साहिब तो परोसेंगे नही। इन रसोइया के गुण कर्म स्वभाव का मुझे पता नही इसलिए मैं नहा खा सकता। महाराज क यहाँ से जवाब आया कि रानी रसोई बनावेंगी और मैं परोसूँगा। वही बात हुई, रानी ने रसोई बनाई और स्वय वृद्ध महाराज अपने छोट छोटे बच्चो के साथ परोसने उठे। उन्हे मरे कहने का मलाल नहीं हुआ। उन्हे इस उत्तर से बडी खुशी हुइ। थाल म ब्राह्मणो के पैर स्वय धोये और भोजन परोसा। भोजन के समय उपनिषद के उपाख्यान सुनाते रहे। मैं राजा साहिब की श्रद्धा देखकर अवाक् रह गया।

उनकी रानी साहिबा आज भी जब काशी आती हैं मदैनी के ब्राह्मणो को अपने हाथ स रसोई बनाकर खिलाती है। राजा साहिब को कोई सतान नही थी। एक लडका गोद ले रक्खा था। वे लाल साहिब कहलाते थे। उनका विवाह शिवगढ म ठीक हुआ। राजा साहिब की ओर से निमन्त्रण आया। उसी समय प्रयागराज में किसी बडे नेता के भाषण का समाचार मिला। मित्रमण्डली में यही निर्णय हुआ कि व्याख्यान सुनकर राजा साहिब की बारात करनी चाहिए। हमलोग चल पडे। प्रयागराज पहुँचने पर समाचार गलत सिद्ध हुआ।

बडी निराशा हुई। अब यह निश्चय हुआ कि बारात करने हुए चित्रकूट की यात्रा कर लेनी चाहिये। शङ्करगढ पहुँचे। अभी बारात नही आयी थी। दूकान बद थीं। सौदा बेचने की आशा नही थी। दरबार से चिट्ठी लेकर आने तब सामान मिले। दरबार जाकर

एक दिन प्रसङ्गात् मैंने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की प्रशंसा उनसे की। कहने लगे कि चलो तुम्हे गोस्वामीजी का दर्शन करावें। मैं भी चल पडा। वे मुझे सोनारपुरा के एक मकान मे ले गये। भीतर जाने पर मैंने अपने को एक महात्मा के सम्मुख पाया। जैसे पुस्तको के वन मे कोई सिंह बैठा हो। बडी गम्भीर मुद्रा, करुणापूर्ण दृष्टि, उज्ज्वल तेजोमयमूर्ति का दर्शन करते ही मेरा सिर आप से आप चरणो मे झुक गया और हृदय ने बोल दिया कि यही तेरे गुरु हैं।

उस पाणिपङ्कज का सिर से स्पर्श मे जो सुख हुआ उससे पितृ चरणो के करकमल के स्पर्श का सुख याद आया। जो कि बीमारी की घोर वेदना के समय सर्वाबाधासु घोरासु मन्त्र का पाठ करते हुए सिर पर उनके हाथ फेरने से मुझे मिलता था।

तब से मैं बराबर श्रीचरणो के दर्शन के लिए जाने लगा। गुरुजी प्रायेण संस्कृत या बँगला मे शास्त्रो का व्याख्यान भक्त मण्डली म करते थे। हिन्दी थोडी जानते थे। मैं भी बँगला और संस्कृत से अपरिचित नही था। फिर भी विषय की गहनता के कारण ठीक समझ नही पाता था।

पाँच चार महीना बराबर सेवा मे जाते मेरा प्रवेश कुछ उन उपदेशो मे हो चला। सुनने की प्यास बढती गयी। गुरुजी की कृपा को बढते देखकर मैं फूला नही समाता था। मेरी सेवा भी स्वीकार होने लगी। एक दिन मुझे बुलाकर श्रीरामषडक्षर मन्त्रराज की दीक्षा दी और ध्यान की विधि बतलायी। *अपनी बनायी हुई पुस्तक आर्यशास्त्रप्रदीप तथा भूत और शक्ति* पढने को दिया।

मुझे भी श्रीचरणो के सामने ससार भूल सा जाता था। दर्शन से न तो नेत्र तृप्त होते थे। और न वचनो से श्रवण तृप्त होते थे।

कुछ दिनो के बाद श्रीचरणो ने मकान बदल दिया और राजघाट जाकर रहने लगे। दूर हो जाने से मेरा नित्य का जाना तो रुक गया पर प्रायेण आया-जाया करता था। उनके मध्यम पुत्र फणिभूषण सान्याल से मेरी मित्रता हो गयी। उनके बडे लडके विभूति भूषण ठाकुरजी की पूजा और बाबा की सेवा मे रहते थे। छोटे लडके इन्दुभूषण उस समय पढते थे। सतीश नाम के एक सेवक थे। उन्हे बाबा की सेवा से तृप्ति ही नही होती थी। बडे रईस और प्रोफेसर सतीश की खुशामद करते थे कि जिसमे उन्हे बाबा का दर्शन मिल सके।

वैसा धर्म पर वज्र विश्वास, वैसा ज्ञान, वैसी उपासना, वैसी चतुरस्र विद्या, वैसी व्याख्यान शक्ति, वैसा चिकित्सा नैपुण्य, वैसी साधना कहीं दिखायी नही पडती और न वैसी उदारता या वैसी दया ही कही दृष्टिगोचर होती है जैसा कि मैंने श्रीचरणो मे देखा। वह आनन्द और वह समाज अब देखने को कहाँ मिलनेवाला है। कई वर्ष मेरे बडे सुख से बीते। अपने जीवन का सुखमय समय मैं तभी तक मानता हूँ जब तक गुरुजी काशी म आसीन थे। मैं तो यही कहूँगा कि मेरे दुर्भाग्य से उनका जाना कलकत्ते हुआ और फिर मैं दर्शन नही पा सका।

श्रीमुमुक्षभवन

मेरे मुहल्ले में एक प्रसिद्ध संत बाबा अमरदासजी रहते थे। एक दिन उन्होंने बुलवा भेजा और कहा कि तेरा नाम विजयी है, तू विजय कर।

राजा साहिब नागौद की श्रद्धा

श्रीमान् राजा यादवेन्द्र सिंह उचेहरा नागौद के राजा थे। परिहारों में यह प्रधान गद्दी है। राजा साहिब बड़े सच्चरित्र और सच्चे सनातनधर्मी थे। नयी सभ्यता उन्हें नहीं रुचती थी। वे कहा करते थे कि उसने अपने देश के पहिरावा का परित्याग किया। उसने अपने देश से इनकार कर दिया। और जिसने अपने देश से इनकार किया वह अपने बाप से इनकार कर चुका। अंगरेज के छू जाने पर गोमय लगाकर स्नान करते थे।

भला ऐसे विचार के नरेश से रेजिडण्ट की क्यों पटने लगी। बृटिश गवर्नमेंट ने मान लिया कि राजा साहिब का दिमाग सही नहीं है और उन्हें मासिक मिलने लगा। राज्य से अलग रहने लगे।

काशी में ठहरे हुए थे। बड़े आग्रह से मदैनी के ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया। उसमें मैं भी गया था। देखा कि वहाँ पक्की की व्यवस्था थी अतः मैंने स्पष्ट कह दिया मैं भोजन नहीं करूँगा।

बात राजा साहिब तक पहुँची। बोले किसने ऐसी बात कही? लोगों ने कहा तिवारीजी ने। कहा कि जाकर उनसे कहो कि वे ब्राह्मण हैं। मैं क्षत्रिय हूँ। मेरे यहाँ क्यों न खावेंगे? मेरे में दोष बतला दें तब भले ही न खावें।

मैंने कहा कि रानी तो रसोई बनावेंगी नहीं और राजा साहिब तो परोसेंगे नहीं। इन रसोइयों के गुण कर्म स्वभाव का मुझे पता नहीं इसलिए मैं नहीं खा सकता। महाराज के यहाँ से जवाब आया कि रानी रसोई बनावेंगी और मैं परोसूँगा। वही बात हुई, रानी ने रसोई बनाई और स्वयं बूढ़े महाराज अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ परोसने उठे। उन्हें मेरे कहने का मलाल नहीं हुआ। उन्हें इस उत्तर से बड़ी खुशी हुई। थाल में ब्राह्मणों के पैर स्वयं धोये और भोजन परोसा। भोजन के समय उपनिषद् के उपाख्यान सुनाते रहे। मैं राजा साहिब की श्रद्धा देखकर अवाक् रह गया।

उनकी रानी साहिबा आज भी जब काशी आती हैं मदैनी के ब्राह्मणों को अपने हाथ से रसोई बनाकर खिलाती हैं। राजा साहिब को कोई संतान नहीं थी। एक लड़का गोद ले रखा था। वे लाल साहिब कहलाते थे। उनका विवाह शिवगढ़ में ठीक हुआ। राजा साहिब की ओर से निमंत्रण आया। उसी समय प्रयागराज में किसी बड़े नेता के भाषण का समाचार मिला। मित्रमण्डली में यही निर्णय हुआ कि व्याख्यान सुनकर राजा साहिब की बारात करनी चाहिए। हमलोग चल पड़े। प्रयागराज पहुँचने पर समाचार गलत सिद्ध हुआ।

बड़ी निराशा हुई। अब यह निश्चय हुआ कि बारात करने हुए चित्रकूट की यात्रा कर लेनी चाहिये। शङ्करगढ़ पहुँचे। अभी बारात नहीं आयी थी। दुकानें बंद थीं। सौदा बेचने की आज्ञा नहीं थी। दरबार से चिट्ठी लेकर आने तब सामान मिले। दरबार जाकर

चिट्ठी लेने से उसी की खुशामद करना उचित मालूम पडा। अत मे उसने मुँह माँगे दाम पर सौदा दिया। छिपकर रसोई बनायी। अपराह्न मे बारात आयी।

पहली हाथी पर पुरोहितजी ठाकुरजी के साथ आसीन थे। दूसरी पर राजा साहिब थे। तीसरी पर लालसाहिब दूल्हा थे। राजा साहिब की श्रद्धा देखकर चित्त प्रसन्न हुआ।

जनवासे मे बारात के पहुँचने पर राजा साहिब तक पहुँचने का यत्न करने लगा। जो कारबारी काशी मे मेरे यहाँ आते-जाते थे उन्होने पहिचाना तक नही। खैर जब रसद बँटने लगी तब अवसर मिला। राजा साहिब के पास गया पर उन्होने भी नही पहिचाना। बडा अपमान बोध हुआ। मेरे साथ महन्त सीतारामदास सस्थापक पाठशाला—थे। उन्ह सूझ गयी। मेरा नाम बोल दिया। राजा साहिब उठकर खडे हो गये। पूछने लगे कि आपने सर्वमुण्डन क्यो कराया है? इसी से भ्रम हुआ। मैंने कहा प्रयागराज से होता आ रहा हूँ।

हम लोगो को चित्रकूट के लिए जल्दी थी। बिना विदा हुए ही सवेरे चित्रकूट को प्रयाण किया।

एक बार श्री गो० तुलसीदासजी के लीला मे भरत मिलाप का दिन था। भेलूपुर के थानेदार बडे कट्टर मुसलमान थे। कहला दिया कि तुम लोगो ने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहिब से हुकुम नही लिया है। इसलिए लीला नही हो सकती। लीला का समय बहुत सन्निकट था। उस समय कुछ हो नही सकता था। थानेदार साहिब को राजी करना असाध्य व्यापार था।

जाकर राजा साहिब से सब बात कही। कहने लगे कि हम अपना धार्मिक कार्य करेंगे। सुपरिण्टेण्डेण्ट कौन होते हैं। आप लीला आरम्भ कराइये मैं आया।

लीला आरम्भ हुई। और इधर तहकीकात आरम्भ हुई कि कौन लीला कराता है। राजा साहिब ने कहा मेरी आज्ञा से लीला हो रही है। इसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। पुलिस सलाम करके चली गयी।

ज्ञानवापी का मुकदमा

मुसलमानो ने डिक्लेरेशन सूट गवर्नमेण्ट के ऊपर दाखिल किया कि अदालत घोषणा कर दे कि ज्ञानवापी के अहाते की सब जमीन मुसलमानो की है और उस पर हिन्दू लोग उनकी आज्ञा से पूजा-पाठ करते हैं। जो मसजिद उस अहाते के बीच मे है वह विश्वनाथ मन्दिर को तोडकर नही बनी है। बल्कि बादशाह अकबर के चलाये हुए दीनइलाही मजहब के मन्दिर को तोडकर बनायी गयी है। उस स्थान पर विश्वनाथ का मन्दिर कभी था ही नही। वह कही पर विश्वेश्वरगज मे था। काशीखण्ड नाम की एक पुस्तक हिन्दुओ ने मुसलमानो से लडने के लिए पचास वर्ष से बना ली है।

सरकार की ओर से पैरवी के लिए तहसीलदार मुकर्रर हुए। वे विचारे बहुत जगह घूमे, मुसलमानो से बैर हो जाने के भय से कोई यह कहने को तैयार नहीं होता था कि ज्ञानवापी हिन्दुओ की है।

लाचार होकर बेचारे तहसीलदार धर्मप्राण सेठ गौरीशङ्करजी के यहाँ आये। उस समय मैं भी वहाँ था। कहने लगे कि मैं कितने हिन्दुओ के यहाँ गया। कोई यह कहन को तैयार नही है कि ज्ञानवापी हिन्दुओ की है। सेठजी बड असमञ्जस म पड, मुझसे रहा न

गया। बोल बैठा कि आप किसी हिन्दू के पास गये नहीं, तहसीलदार साहिब घूम पड़े, कहने लगे कि क्या आप बयान देंगे ? मैंने कहा बड़ी खुशी से और दस इष्ट मित्र के साथ।

तब तो तहसीलदार साहिब ने रङ्ग बदला। कहने लगे कि आपके बयान से तो पूरा काम नहीं चलेगा। मुझे बड़े-बड़े आदमियों की आवश्यकता है।

मैंने कहा कि बड़ा-बड़ा आदमी दूँगा। कहने लगे कि नाम बतलाइये, और जेब से पेंसिल और डायरी निकाला। मैंने कहा कि नाम लिखिये। महाराजा बनारस और महामना मालवीयजी।

बोले कि इनके पास चलिये। मैंने कहा कि मैं कहीं न जाऊँगा। आप इन्हें तलब कराइये, न आवें तो वारण्ट से बुलाइये। ये लोग अगर कह देंगे कि ज्ञानवापी मुसलमानों की है तो हम लोग मान जायेंगे।

तहसीलदार साहिब कहने लगे कि ऐसी बात तो किसी ने न कही। मैंने कहा कि इतना ही नहीं मैं प्राचीन पुस्तक काशीखण्ड भी भी दूँगा।

मुकदमा पेश हुआ। मेरा बयान हुआ, मैंने सवा सौ वर्ष पुरानी लिखी हुई काशीखण्ड की टीका पेश की और अपनी की हुई केदारमाहात्म्य की हिन्दी टीका पेश की। जिसमें ज्ञानवापी के अहाते के देवमूर्तियों का उल्लेख था। बयान समाप्त होने पर मौलवीसाहिब वकील जिरह करने उठे। कहने लगे कि काशीखण्ड में तो लिखा है कि आसमान धूएँ से बना है। मैं कहा ऐसा नहीं हो सकता।

उन्होंने काशीखण्ड खोलकर सामने रक्खा। उसमें एक राजा की कथा थी कि उन्होंने ऐसा यज्ञ किया कि उसके धुएँ से आसमान भर गया, और आज तक काला है।

मैंने कहा कि इसका यह अर्थ तो नहीं है कि आसमान धुएँ से बना है। मौलवी साहिब बोले कि आज तक काला है का क्या अभिप्राय है ?

मैंने कहा कि हजरत इब्राहीम ने जब अपने लड़के को हलाल किया तो छुरी को ऊपर फेंका, उससे टिड्डी की कमर कट गयी और वह छुरी जब नीचे गिरी तो मछली की कमर कट गयी और आजतक कटी है। ऐसा ही अभिप्राय आजतक काला है का भी समझ लीजिए। अदालत ने वकील साहिब को रोका कि ऐसा सवाल न किया कीजिये। और बहुत सी बातें पूछने के बाद वकील साहिब ने पूछा कि आप दीनइलाही के बारे में जानते हैं। उस मजहब के मन्दिर जहाँ-तहाँ बने थे की नहीं ?

मैंने जवाब दिया कि मैं जानता हूँ। उसके मन्दिर क्या बनते, उसका तो बिस्मिल्ला ही गलत हो गया। वकील साहिब और अदालत दोनों साकाक्ष हुए। पूछने लगे कैसे ?

मैंने कहा बादशाह अकबर को पैगम्बर बनने का शौक था और पैगम्बर होने के लिए चिह्न विशेष की आवश्यकता होती है। बादशाह दीनइलाही के पैगम्बर बने। बिना नुक्ता की किताब बनी। वह डिठोरी के पेड में उसे चीरकर रक्खी गयी। डिठोरी के पेड का चीरा शीघ्र ही जुट जाता है। जुट जाने पर मालिन का सपना हुआ कि बादशाह पैगम्बर है। उन पर किताब नाजिल हुई है। वह डिठोरी के पेड में है, उसमें नुक्ते नहीं हैं।

सो प्रजाओ की बडी भीड इकट्ठी हुई। पेड़ चीरा गया, किताब निकली। सब लोग आश्चर्य से देखने लगे कि किताब भर मे कोई नुकता नही है। किसी मसखरे ने कहा बिस्मिला ही गलत है। बे के नीचे आरम्भ मे ही नुकता है। सो दीनइलाही हँसी खेल ही मे समाप्त हो गया। उसका कोई रूप बनने ही नही पाया।

वकील साहिब ने फरमाया कि यह तो आपने नयी बात कही। आपको कैसे मालूम हुआ। मैंने कहा कि मैंने मौलवी अताहुसेन साहिब मौलवी नासिरअली साहिब तथा मौलवी बाकरहुसेन साहिब से पढा है। उन लोगो से ये बातें मालूम हुईं।

इस भाँति द दिन तक मेरा बयान होता रहा। अदालत मे यथेष्ट चहल पहल थी। इसके बाद हिन्दू युनिवर्सिटी के प्रोफेसरो तथा महाराज बनारस के यहाँ के अफसरो के बयान हुए। कहना नही होगा कि उस मुकदमे मे मुसलमान लोग हाईकोर्ट तक लडे, पर हारते ही गये।

पुलिस-प्रकोप

मैं अपने पिछवारे के बगीचे मे बैठा था। गली मे से चिल्लाने की आवाज आयी। मैं किवाड खोलकर बाहर निकला। देखा कि मेरे पडोसी दुर्गादत्त वैद्य को चार दरयायी पुलिस बलपूर्वक घर से बाहर खैंच रहे हैं और वे चिल्ला रहे हैं। मैंने पूछा कि इन्होने क्या किया है जो इन्हे इतनी निर्दयता से खैंचे लिये जाते हो? कहने लगे कि इन्होंने रण्डी रख ली है। मैंने कहा रण्डी रखना कब से जुर्म हुआ? उत्तर मिला कि मैं तो इन्हें ले जाता हूँ। देखें क्या कर लेते हो।

उस समय मिस्टर ब्रामली सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। उन्होने दरयायी पुलिस का मुहकमा खोला था। दरयायी पुलिसो को बडा प्यार करते थे। इसलिए उन सबो का मिजाज बहुत बढा-चढा था।

मैंने उन लोगो से और कुछ कहना बेकार समझा। पर एक आदमी को थाने मे इत्तला के लिए भेज दिया। तब से दरयायी पुलिस भी वैद्यजी को पकडे हुए पहुँच गयी। उसने भी रिपोर्ट लिखायी। इन्सपेक्टर इचार्ज ने वैद्यजी को छोड दिया।

मैंने उनसे मिलकर कहा कि क्या इण्डियन पेनलकोड पुलिस के लिए नही है। उन्होने अपनी लाचारी जाहिर की। कहने लगे कि सुपरिण्टेण्डेण्ट इनके सामने किसी की नही सुनता। तब मैंने वैद्यजी को शहर कोतवाल के पास भेजा, पर उन्होने भी टालमटोल बतला दिया।

मुझमे वैद्यजी से सहन शक्ति बहुत कम थी। अत अपने पास से रुपया खर्च करके वैद्यजी द्वारा उन पुलिसो पर दावा दायर करा दिया। तहकीकात के लिए पुलिस को हुकुम हुआ। कोतवाल साहिब तहकीकात के लिए आये। लेकिन क्रोध से भरे हुए। इसपेक्टर इनचार्ज अलग जाम के बाहर थे। सारा पुलिस का मुहकमा खिलाफ हो गया लेकिन दस बारह गवाह पुलिस के खिलाफ गुजर ही गये।

अब क्या था। गवाहो को धमकाने मे पुलिस ने कुछ उठा न रखा। स्वय वैद्यजी का आसन डोल उठा। पैसा मेरा खर्च होता था, फिर भी वैद्यजी की यह दशा हुई कि मुकदमे

मे जो इजहार देते थे मानों मुझ पर एहसान करते थे। मुझे भी जिद्द हो गयी थी, सब कुछ सहता था, पर मुकदमे मे ढिलाई नही पडने देता था। अब तो मेरे ऊपर चारो ओर से दबाव आने लगा। हितैषियों ने भी समझाया कि पुलिस से वैर लेना अच्छा नही, पर मैं न माना। अन्ततोगत्वा उन चारो की सजा हो गयी। एक की छ महीने की, और शेष की शायद चार-चार महीने की।

तब से मैं पुलिस के कोप का भाजन हो गया। पुलिस-विभाग मे कितनी बडी सहानुभूति आपस मे है इस बात का पता मुझे उसी समय लगा। कोतवाल से लेकर साधारण पुलिस तक दरयायी पुलिसो से जलते थे। पर चूँकि वे पुलिस थे अत उनका सजा पा जाना किसी को सह्य न हुआ।

पुलिस मुझसे और मेरे साथियो से बदला लेने के ताक मे था। पुलिस जिसमे बुरा मानती है, उसका चार्ज अपने स्थानापन्न को दे जाती है, और वे उसका ख्याल रखते हैं।

प० जगमोहन शरण अवस्थी नाम के कोई आदमी बाबू गयाप्रसाद के क्षेत्र मे नौकर थे। उनको किसी ने रात को मार डाला। प्रात काल वे मरे पाये गये। खूनी का पता पुलिस न लगा सकी। उसने यही अवसर मुझसे बदला लेने का उपयुक्त समझा, अब उसने मेरे विरुद्ध गवाह खडा करने के प्रयत्न मे लगी। परन्तु इतने बडे अनर्थ को अपने सिर लेने को कोई तैयार नही होता था।

धीरे-धीरे बात मेरे कानो तक पहुँची, मैं भी सावधान हुआ। पता लगने लगा कि आज अमुक पुरुष पर पुलिस जोर डाल रही थी तो कल दूसरे को बहका रही थी। खोज-खोजकर मेरे शत्रुओं से मिली, पर वे भी इतने बडे अनर्थ मे सहायक होने पर राजी नही था।

तब उसने एक विचित्र माया गढी। प० मथुराप्रसाद पाडे उर्फ बबुआ पाण्डे मेरे पिता के प्रेमियो मे से थे। मेरे ऊपर पुत्र सा स्नेह करते थे और मैं भी उन्हे बहुत मानता था। एक दिन उन्होंने मुझे बुलवा भेजा। रात का समय था। मैं उनके पास गया। देखा कि बडी गम्भीर मुद्रा मे बैठे हुए हैं। मुझे देखकर कहने लगे कि अवस्थी के खून के मामले मे पुलिस ने तुम्हारे खिलाफ गवाह पैदा कर लिये। अब कल सवेरे तुम लोगो की चालान होगी। थानेदार मेरा प्रेमी है। तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध जानकर मेरे पास आया था और कहता था कि तुम यदि सरकारी गवाह हो जाओ तो वह तुम्हें छोड सकता है।

मैंने कहा कि सरकारी गवाह होकर मुझे कहना क्या होगा ? कहने लगे कि अपने साथियो पर इजहार देना होगा कि इन लोगो ने खून किया और मैं भी साथ-साथ देखता रहा।

मैंने कहा कि यह सरासर झूठ है। मैं ऐसा नही कह सकता। उनसे कहिये कि इसी समय मुझे ले जाकर फाँसी लटका दें। सुनकर पाडेजी एकदम चुप हो गये। मैंने पूछा कि अब मैं जाऊँ। कहा कि बहुत अच्छा। मैं घर लौट आया।

लौट तो आया पर मुझे यह होश नहीं कि मैं कौन हूँ। कहाँ जा रहा हूँ। विचारधारा एकदम रुक गयी। घर आकर सो रहा। कह नही सकता कि नीद लगी या बेहोशी हुई।

बड़े सवेरे उठा। अपना चित्त स्वस्थ पाया। पांडेजी के मुख से सुनने से सब बातें मेरे गले उतर गयी थी। मन मे आया कि स्नान करके अन्तिम पूजा तो ठाकुरजी का कर लूँ। स्नान करके पूजा किया। चित्त प्रसन्न हो गया। आकर दरवाजे पर बैठ गया और गिरफ्तारी का आसरा देखने लगा।

सात बजा, आठ बजा, नौ बजा, दस बजा, कोई गिरफ्तार करने नही आया। ग्यारह बजा। घर से कड़ा खटखटाने की आवाज आई अर्थात् रसोई तैयार है। मैं सीढ़ी चढ़ने लगा कि एकाएक आँख खुल गयी। बात समझ मे आ गयी कि यह सब पुलिस की माया थी। कोई गवाह कही नही मिला। सब बातें झूठी थी। पांडेजी भी धोखा खा गये। पाडेजी के द्वारा पुलिस ने माया रची थी।

पाडेजी के साथियो से भेंट हुई जो उस समय वहाँ थे। कहने लगे कि उस समय तुम्हारी बात हम लोगो को नही रुची पर तुमने मर्द की सी बात कही।

उसके बाद भी पुलिस का प्रयत्न चलता था पर ढीला पड गया। मैंने वकीलो से राय ली। उन्होंने कहा कि पुलिस के इस प्राइवेट प्रयत्न की कोई दवा नही है। जब तक कोई बात सामने नही आती तब तक हम लोग क्या कह सकते हैं।

इस भाँति बहुत दिनो तक मैं पुलिस का कोपभाजन बना रहा। पर जब उन लोगो ने देख लिया कि वस्तुत मैं उन लोगो का बुरा नहीं चाहता। केवल अन्याय न सहन कर सकने से ही मैंने विरोध किया था तो उन लोगों ने भी मेरा पीछा छोड दिया बल्कि प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे।



सोचि सोचि भावगत भेद को मिलान करि,
मानस के सही अर्थ को न बतलावते।
सो कम पढे लिखे श्रेणीवाले श्रद्धालु जीव,
तुलसी के आशय को नही जान पावते॥
वंचक विपन्नमति दुराग्रही पक्षपाती,
आपस में तर्क करि रार ही बढावते।
पावते न संशय की साँकल छुड़ाइ काटि
जौ पै यह टीका श्री विजयानन्द न बनावते॥

—लक्ष्मीकान्त मिश्र
मानसरत्न डॉ० श्रीनाथ जी मिश्र के शिष्य

विषयानुक्रमणिका

उसमे नाम की श्रेष्ठता। निर्गुण सगुण का साक्षी नाम। नाम मणिदीप। चारो प्रकार के भक्त तथा मुक्तिभक्त को भी नाम ही का आधार। निर्गुण से नाम की श्रेष्ठता। सगुण से नाम की श्रेष्ठता कहते हुए अध्यात्म रामायण कथन। भक्तो का उदाहरण। नाम कल्पतरु, सब काल और सब देश म नाम की कार्यकारिता। कलि मे एकमात्र अवलम्ब। भाव कुभाव अनख और आलस्य से भी नाम के जप से मङ्गल। उस नाम तथा नामी रघुनाथ को प्रणाम करके राम गुण गाथा चिकीर्षा सातवी . दो० २७ १ पृ० ६६।

निज गुण दोष कवि की रघुनाथजी से आर्ति विनय और दीनता। पुन समष्टि वन्दना। रघुवर यश वर्णन चिकीर्षा, आठवी अथ पूर्व घाट प्रारम्भ। दो० २९ पृ० १०७ से

कथा परिचय भरद्वाज याज्ञवल्क्य सवादकथन चिकीर्षा, नवी सज्जनो से सुनने की प्रार्थना। १ गुरुपरम्परा। गुरुमुख से कथित का भाषा म बाँधने की चिकीर्षा, दसवी बुद्धिविवेकानुसार हरिप्रेरणा से चिकीर्षा, ग्यारहवी स्वस देह भ्रमनिवारणार्थ रामकथा चिकीर्षा बारहवी दैन्य, ज्ञान और भक्ति साध्य फलदायिनी राम कथा। राम-कथा माहात्म्य। रामचरित पेटक का निचला ढकना चिन्तामणि और ऊपर का राकेशकर उसीमे नक्षत्रो की भाँति २८ गुण ग्राम अर्थात् स्तुतियाँ जो यथास्थान ग्रन्थ में दी गयी हैं। हेतुसहित भवानीशङ्कर सवाद विधि की विचित्र कथा के निर्माण की चिकीर्षा, तेरहवी [illegible]

अमित विस्तार। गुरुपद धूलि शिरोधार्य करके दोष न देने के लिए पुन समष्टिवन्दना। शङ्कर को प्रणाम करके रामगुण-गाथा चिकीर्षा, चौदहवी हरिपद शीश धर की कथा चिकीर्षा, पन्द्रहवी ग्रन्थारम्भ का देश और काल। ग्रन्थ का नाम। महेश की रचना का भी यही नाम। उसी कथा की चिकीर्षा, सोलहवी सज्जनो से सुनने के लिए प्रार्थना। ३ • • दो० ३४ ७ पृ० ११४ से।

मानसगर प्रसङ्ग मानसस्वरूप, विधि, प्रचार प्रसङ्ग वर्णन चिकीर्षा, सत्रहवी . शम्भु प्रसाद से सुमति का उल्लास। मनोहर निर्माण के लिए कवि चिकीर्षा, अठारहवी साधुघनको राम सुयश वर्षा, उससे मानस का भर जाना श्रवण, चार घाट, सात सोपान, सर का रूपक। अमराई बाग, वन भवन रखवारे अधिकारी, यात्रा म कठिनाई, स्नान दुर्घट, सर निन्दा राम-कृपा से मज्जन। उससे बुद्धिनैर्मल्य। प्रेम प्रमोद प्रवाह का उमङ्ग निदिध्यासन, सरयू का उद्गम, सरयू का रूपक, हिंदी भाषी देश का विस्तार। ग्रन्थ प्रचार। षट् ऋतु-वर्णन। स्नान। भवानीशङ्कर स्मरणपूर्वक कथा चिकीर्षा उन्नीसवी रघुपति पदपङ्करुह हृदय में रखकर और प्रसाद पाकर भरद्वाज याज्ञवल्क्य मिलन तथा सवाद कथन चिकीर्षा बीसवी २ दो० ४३, क पृ० १३९।

भरद्वाज याज्ञवल्क्यसवाद • भरद्वाज का प्रयाग निवास माघ मकर सक्रान्ति म सब का प्रतिवर्ष आगमन, भरद्वाज के आश्रम मे ऋषि मुनियों का सत्सङ्ग। कल्पवास विधि। अथ दक्षिण घाट प्रारम्भ। एक बार याज्ञवल्क्य को रोकने के लिए

१. मोहहरण के लिए प्रार्थना २ राम-विषयक प्रश्न ३. दशरथकुमार राम या दूसरे ४. मोह भ्रमहारी कथा के लिए प्रार्थना। शिष्य की प्रशंसा। कथा की स्तुति। भवानी का भी इसी प्रकार का संशय। उमा-शम्भु-संवाद के समय और हेतु-कथन की प्रतिज्ञा दो० ४६. पृ० १६९।

क उमा चरित : (२८ दोहो मे) किसी त्रेता मे सती के साथ शम्भु का अगस्त्यजी के आश्रम पर जाना। वहाँ सत्सङ्ग। लौटते समय सीता को खोजते हुए विरह-विकल रामचन्द्र का दर्शन। जय सच्चिदानन्द जगपावन कहकर शङ्कर का प्रणाम। सती का संशय। शङ्कर के उपदेश पर भी भ्रम की अनिवृत्ति। अतः परीक्षा के लिए अनुमति। परीक्षार्थ सती का सीतारूप धारण। रामजी की प्रणामपूर्वक वृषकेतु समाचार जिज्ञासा। सती का पश्चात्ताप। शङ्कर कथित प्रभाव का राम द्वारा दिग्दर्शन। सती का शङ्कर से बहाना। सती का त्याग। शङ्करजी की १०८७ वर्ष की समाधि। सती का शोक। देवताओं का विमानारूढ होकर दक्ष यज्ञ मे जाना। शिवजी के समझाने पर भी सती का न रुकना। सती की विदाई। सती का अपमान। यज्ञ मे शिवजी का भाग न देखकर सती का क्रोध। सती का योगाग्नि से देह त्याग। दक्षयज्ञ विध्वंस। सती का हिमगिरगृह जन्म। नारद का आगमन। उमा के तप के लिए हिमगिरि को उपदेश। तप के लिए उमा का प्रस्थान। वेदशिरामुनि के उपदेश से माता पिता का शोकापनयन। उमा का ४४११ वर्ष पाँच रुद्री तप। आकाशवाणी। उमा का हर्ष। दो० ७४ ३ पृ० १७५ स।

ख शम्भु चरित : २८ दोहा मे सती-मरण से शिवजी को दुःख। शङ्कर का नेम-प्रेम। रामजी का प्रादुर्भाव। पार्वती-परिणय के लिए विनय। शिवजी की स्वीकृति। प्रेम-परीक्षा के लिए शङ्कर द्वारा सप्तऋषि का भेजा जाना। सप्तऋषि उमा संवाद। प्रेम देखकर प्रणाम। सप्त ऋषि प्रेरित हिमगिरि का पार्वती को घर लिवा जाना। सप्तऋषि द्वारा स्नेह कथा सुनकर शिवजी का मग्न होना। फिर समाधि मे बैठना। तारकासुर से देवो का पराभव। ब्रह्मदेव के यहाँ पुकार। ब्रह्मदेव की सम्मति। देवताओं का कामदेव से अपना दुखडा रोना। काम की शिवजी पर चढाई। क्रोधपूर्वक धनुष हाथ मे लेने से ही जगत् मे मर्यादाभङ्ग। विवेक राजा की हार। देव-लोक से कैलाश तक पहुँचने मे दो घडी का समय। शिवजी का दर्शन। काम का सशङ्क होना और संसार का स्वास्थ्य लाभ। काम सेना का पराभव। काम दाह। रति को वरदान। देवताओं की स्तुति। ब्याह के लिए विनय। शिवजी की स्वीकृति। विधि की आज्ञा से सप्तऋषि का जाकर हिमगिरि के यहाँ से लग्नपत्री ले आना। शिवजी का शृङ्गार। बरात का प्रस्थान। तीनो प्रकार के इष्टदेवो का सम्मिलित होना। हिमगिरि के यहाँ तैयारी। बरात का आगमन। बालको मे भय। द्वार पूजा। मैना का विलाप। नारद का उपदेश। विषाद का त्याग। जेवनार। विवाह। विदाई। हिमगिरि का पहुँचाकर लौटना। सब की विदाई। शिवजी का कैलाश आना। विविध विधि भोग विलास। षडानन जन्म। तारकासुर संहार। उमा

शम्भु विवाह की फल श्रुति '''दो० १०३ पृ० २३५ से।

सगति वाक्य गिरिजारमण के चरित की अपारता। कथा सुनकर शिष्य की कृत-कृत्यता। गुरु द्वारा शिष्य की प्रशसा। रामभक्त का लक्षण। विश्वनाथ पद प्रेम। योग्य शिष्य की प्राप्ति से गुरु को अकथनीय सुख। राम की कृपा से कवि के हृदय मे सरस्वती का नृत्य। ऐसे गिरापति प्रभु को प्रणाम। अथ पश्चिम घाट प्रारम्भ कैलाश वर्णन। वट विटप के नीचे शिवजी का बैठना। शिवजी का ध्यान। पार्वतीजी . प्रथम प्रकार के भक्त का आना। शिवजी का अति आदर से वाम भाग मे आसन देना। पार्वतीजी को पूर्व जन्म की स्मृति '' दो० १ ६ ३.४ पृ० २९८ से

अथ शिव गीता ३०५ से

उमा के प्रश्न * १. नानाविधि रघुनाथ कथा कहकर अज्ञान . आवरण हरण के लिए प्रार्थना २ मति भ्रम : विक्षेप हरण के लिए प्रार्थना। ३. राम नृपतनय हैं कि ब्रह्म हैं, इस बात को समझाकर कहने के लिए प्रार्थना। ४. जिस विधि से मोह मिटे वैसा ही करने के लिए प्रार्थना ५ अब भी सशय है, अत कृपा करने के लिए प्रार्थना ६ राम गुण गाथा 'कहने के लिए प्रार्थना ७ रघुवर विशद यश वर्णन के लिए प्रार्थना ८. रघुपति कथा दया-पूर्वक कहने के लिए प्रार्थना। १. निर्गुण ब्रह्म के सगुणरूप धारण करने का कारण कहने के लिए प्रश्न २. रामावतार कहने के लिए प्रश्न ३. उदार बालचरित कहने के लिए प्रश्न ४ जानकी विवाह कथा के लिए प्रश्न ५ किस दूषण से राज्य छोडा? ६ वन गये और रावण को कैसे मारा? ७ राज पर बैठकर कौन कौन सी लीला की? ८. प्रजा सहित निजधाम कैसे गये? ९ मुनि ज्ञानी किस तत्त्व मे मग्न रहते हैं? १०. विभागसहित ज्ञान वैराग्य कथन के लिए प्रश्न ११ राम के अनेक रहस्य कथन के लिए प्रश्न और १२ जो कुछ पूछने से रह गया हो उन सबके लिए प्रश्न। शिवजी की प्रसन्नता। मानस मे राम चरित और रामरूप का प्रादुर्भाव। ध्यान मे दो दण्ड मग्न। तत्पश्चात् उत्तर ' दो० १११ ' पृ० ३०८ से।

शम्भु के उत्तर : जगत् के अधिष्ठान बालरूप राम को प्रणाम। गिरिराजकुमारी की प्रशसा। ३१६ से

प्रथम विनय का उत्तर : हरिकथा न सुननेवाले कान, सन्त के दर्शन न करने-वाली आँख, हरि गुरु चरणो मे न झुकने-वाले सिर, हरि भक्ति रहित हृदय, रामगुणगान वर्जित जिह्वा और हरिचरित से न हर्षित होनेवाले हृदय की निन्दा। और पहिली प्रार्थना की स्वीकृति। ३२१ से

दूसरी का उत्तर . रामकथा कामधेनु। रामकथा सशय दूर करनेवाली। राम-कथा कलि विटप कुठारी दूसरी प्रार्थना की स्वीकृति। पृ० ३२१

---

* उमा की पहिली और दूसरी विनय का भरद्वाज की प्रथम प्रार्थना मे अन्तर्भाव। भरद्वाज के दूसरे और तीसरे प्रश्न का उमा के तीसरे विनय मे अन्तर्भाव। उमा के शेष प्रश्नो का भरद्वाज के चौथे प्रश्न मे अन्तर्भाव।

री का उत्तर : राम के नाम गुण चरित जन्म और कर्म अगणित और वेदविहित। यथा राम अनन्त तथा कथा और कीर्ति अनन्त, यथाश्रुति यथामति कथन तथा कथा और कीर्ति अनन्त यथाश्रुति यथामति कथन की प्रतिज्ञा। वेदप्रतिपाद्य मुनिगण ध्येय चरण रामजी मे ब्रह्मबुद्धि न होना शिवजी को अप्रिय। ऐसी बुद्धिवाले की निन्दा। लाभ हानि न देखनेवाले की वेद विरुद्ध वाणी। निर्गुण सगुण विवेक रहितो के कल्पित वचन। माया से मूढ पुरुषो की बात सुनने योग्य नही। विचारपूर्वक सशय त्याग तथा रामभजन का उपदेश। दो० ११५ पृ० ३२२

थी का उत्तर निर्गुण सगुण मे अभेद। निर्गुण का सगुण होना। निर्गुण सगुण मे केवल स्थूल सूक्ष्म अवस्था कृत भेद। रामनाम से अज्ञान का नाश। राम सच्चिदानन्द। वहाँ मोह निशा के लेश का भी अभाव। सहज प्रकाशरूप मे विज्ञान प्रभात का भी अभाव। हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, जीवधर्म अस्मिता का भी अभाव। राम ब्रह्म, व्यापक प्रसिद्ध स्थूल सूक्ष्म के नाथ को नमस्कार। अपने अज्ञान का राम पर आरोप। विषय, करण, सुर और जीव के प्रकाशक। उ ही की सत्यता से माया का सत्य सा भासना। सीप म रजत और मरु मरीचिका म जल की भाँति राम म माया का भासना। राम की कृपा से भ्रम का मिटना। जिसमे सर्वेन्द्रियगुणाभास है और जो सर्वेन्द्रियविवर्जित है वही दाशरथि राम है उसी के नाम के बल से काशी मे मुक्ति। विवश होकर भी उसके नाम ग्रहण से पापो का नाश। आदर स्मरण करने से भव सन्तरण। राम परमात्मा। इसम सन्देह करनेवाली वाणी अति अविहित। सन्देह को मन म स्थान देने ही से ज्ञान विरागादि का नाश। इस उत्तर स गिरिजा के मोह और सशय की निवृत्ति, सुख की प्राप्ति। फिर भी पहिले पूछे हुए प्रश्नो के उत्तर की प्रार्थना। राम ब्रह्म के नरदेह धारण का कारण समझा कर कहने की प्रार्थना शङ्कर का प्रसन्न होकर उमा की प्रशसा करना। दो० १२० पृ० ३२८ स

पाँचवा का उत्तर रामचरित मानस गरुड भुशुण्डि सवाद सुनने के लिए आज्ञा। पृ० ३३९

छठी का उत्तर. रामावतार सुनन के लिए आज्ञा अथ उत्तर घाट प्रारम्भ। पृ० ३३९

सातवा का उत्तर . कथा कहने की प्रतिज्ञा। सुनने की आज्ञा। पृ० ३४०

आठवी का उत्तर : हरि अवतार हेतु का निश्चित रूप स निरूपण न हो सकना। साधु का परित्राण तथा दुष्टो का नाश ही शास्त्रानुमोदित कारण। उसी के यश गान से भव सन्तरण। रामजन्म के अनक हेतु। तीन जन्मो के वणन की प्रतिज्ञा दो० १२१-२ पृ० ३४० से

प्रथम[2] प्रश्न का उत्तर अधिदैव

---

१ रघुपति कथा कहहु करि दाया।

२ प्रथम सो कारन कहहु बिचारी।
निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी।

शम्भु विवाह की फल श्रुति '''दो० १०३ पृ० २३५ से।

सगति वास्य गिरिजारमण के चरित की अपारता। कथा सुनकर शिष्य की कृत-कृत्यता। गुरु द्वारा शिष्य की प्रशसा। राममक्त का लक्षण। विश्वनाथ पद प्रेम। योग्य शिष्य की प्राप्ति से गुरु को अकथनीय सुख। राम की कृपा से कवि के हृदय मे सरस्वती का नृत्य। ऐसे गिरापति प्रभु को प्रणाम। अथ पश्चिम घाट प्रारम्भ कैलाश वर्णन। वट विटप के नीचे शिवजी का बैठना। शिवजी का ध्यान। पार्वतीजी . प्रथम प्रकार के भक्त का आना। शिवजी का अति आदर से वाम भाग मे आसन देना। पावतीजी को पूर्व जन्म की स्मृति '''दो० १.६.३.४ पृ० २९८ से

अथ शिव गीता ' ३०५ से

उमा के प्रश्न : १. नानाविधि रघुनाथ कथा कहकर अज्ञान : आवरण हरण के लिए प्रार्थना २. मति भ्रम : विक्षेप हरण के लिए प्रार्थना। ३. राम नृपतनय हैं कि ब्रह्म हैं, इस बात को समझाकर कहने के लिए प्रार्थना। ४. जिस विधि से मोह मिटे वैसा ही करने के लिए प्रार्थना ५ अब भी सशय है, अत कृपा करने के लिए प्रार्थना ६ राम गुण गाथा 'कहने के लिए प्रार्थना ७ रघुवर विशद यश वर्णन के लिए प्रार्थना ८ रघुपति कथा दया-पूर्वक कहने के लिए प्रार्थना। १. निर्गुण ब्रह्म के 'सगुणरूप धारण करने का कारण कहने के लिए प्रश्न २. रामावतार कहने के लिए प्रश्न ३. उदार बालचरित कहने के लिए प्रश्न ४. जानकी विवाह कथा के लिए प्रश्न ५ किस दूषण से राज्य छोडा ? ६ वन गये और रावण को कैसे मारा ? ७. राज पर बैठकर कौन कौन सी लीला की ? ८. प्रजा सहित निजधाम कैसे गये ? ९. मुनि ज्ञानी किस तत्त्व मे मग्न रहते हैं ? १०. विभागसहित ज्ञान वैराग्य कथन के लिए प्रश्न ११ राम के अनेक रहस्य कथन के लिए प्रश्न और १२ जो कुछ पूछने से रह गया हो उन सबके लिए प्रश्न। शिवजी की प्रसन्नता। मानस मे राम चरित और रामरूप का प्रादुर्भाव। ध्यान मे दो दण्ड मग्न। तत्पश्चात् उत्तर " दो० १११ : पृ० ३०८ से।

शम्भु के उत्तर : जगत् के अधिष्ठान बालरूप राम को प्रणाम। गिरिराजकुमारी की प्रशसा। ३१६ से

प्रथम विनय का उत्तर : हरिकथा न सुननेवाले कान, सन्त के दर्शन न करने-वाली आँख, हरि गुरु चरणो मे न झुकने-वाले सिर, हरि भक्ति रहित हृदय, रामगुणगान वर्जित जिह्वा और हरिचरित से न हर्षित होनेवाले हृदय की निन्दा। और पहिली प्रार्थना की स्वीकृति। ३२१ से

दूसरी का उत्तर : रामकथा कामधेनु। रामकथा सशय दूर करनेवाली। राम-कथा कलि विटप कुठारी दूसरी प्रार्थना की स्वीकृति। पृ॰ ३२१

: उमा की पहिली और दूसरी विनय का भरद्वाज को प्रथम प्रार्थना मे अन्तर्भाव। भरद्वाज के दूसरे और तीसरे प्रश्न का उमा के तीसरे विनय मे अन्तर्भाव। उमा के शेष प्रश्नो का भरद्वाज के चौथे प्रश्न मे अन्तर्भाव।

तीसरे का उत्तर : राम के नाम गुण चरित जन्म और कर्म अगणित और वेदविहित। यथा राम अनन्त तथा कथा और कीर्ति अनन्त, यथाश्रुति यथामति कथन तथा कथा और कीर्ति अनन्त यथाश्रुति यथामति कथन की प्रतिज्ञा। वेदप्रतिपाद्य मुनिगण ध्येय चरण रामजी मे ब्रह्मबुद्धि न होना शिवजी को अप्रिय। ऐसी बुद्धिवाले की निन्दा। लाभ हानि न देखनेवाले की वेद विरुद्ध वाणी। निर्गुण सगुण विवेक रहितों के कल्पित वचन। माया से मूढ़ पुरुषों की बात सुनने योग्य नहीं। विचारपूर्वक संशय त्याग तथा रामभजन का उपदेश। दो० ११५ पृ० ३२२

चौथे का उत्तर : निर्गुण सगुण मे अभेद। निर्गुण का सगुण होना। निर्गुण सगुण मे केवल स्थूल सूक्ष्म अवस्था कृत भेद। रामनाम से अज्ञान का नाश। राम सच्चिदानन्द। वहाँ मोह . निशा के लेश का भी अभाव। सहज प्रकाशरूप मे विज्ञान प्रभात का भी अभाव। हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, जीवधर्म अस्मिता का भी अभाव। राम ब्रह्म, व्यापक, प्रसिद्ध, स्थूल, सूक्ष्म के नाथ को नमस्कार। अपने अज्ञान का राम पर आरोप। विषय, करण, सुर और जीव के प्रकाशक। उन्हीं की सत्यता से माया का सत्य सा भासना। सीप मे रजत और मरु मरीचिका मे जल की भाँति राम मे माया का भासना। राम की कृपा से भ्रम का मिटना। जिसमे सर्वेन्द्रियगुणाभास है और जो सर्वेन्द्रियविवर्जित है वही दाशरथि राम है उसी के नाम के बल से काशी मे मुक्ति। विवश होकर भी उसके नाम ग्रहण से पापो का नाश। सादर स्मरण करने से भव सन्तरण। राम परमात्मा। इसमें सन्देह करनेवाली वाणी अति अविहित। सन्देह को मन मे स्थान देने ही से ज्ञान विरागादि का नाश। इस उत्तर से गिरिजा के मोह और संशय की निवृत्ति, सुख की प्राप्ति। फिर भी पहिले पूछे हुए प्रश्नो के उत्तर की प्रार्थना। राम ब्रह्म के नरदेह धारण का कारण समझा कर कहने की प्रार्थना शङ्कर का प्रसन्न होकर उमा की प्रशंसा करना। दो० १२० : पृ० ३२८ स

पाँचवें का उत्तर : रामचरित मानस गरुड भुशुण्डि संवाद सुनने के लिए आज्ञा। पृ० ३३९

छठे का उत्तर . रामावतार सुनने के लिए आज्ञा . अथ उत्तर घाट प्रारम्भ। पृ० ३३९

सातवें का उत्तर : कथा कहने की प्रतिज्ञा। सुनने की आज्ञा। पृ० ३४०

आठवें का उत्तर : हरि अवतार हेतु का निश्चित रूप से निरूपण न हो सकना। साधु का परित्राण तथा दुष्टो का नाश ही शास्त्रानुमोदित कारण। उसी के यश गान से भव सन्तरण। रामजन्म के अनेक हेतु। तीन जन्मो के वर्णन की प्रतिज्ञा . दो० १२१-२ पृ० ३४० से

प्रथम[2] प्रश्न का उत्तर अधिदैव

---

१. रघुपति कथा कहहु करि दाया।

२ प्रथम सो कारन कहहु बिचारी।
निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी।

रामायण' एक कल्प मे जय और विजय का विप्र शाप से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु होना। वाराह और नृसिंह अवतार से उनका वध। उन्ही का कुम्भकर्ण रावण होना। उनके वध के लिए एक बार विष्णु का रामावतार। उस अवतार मे कश्यप अदिति का दशरथ कौसल्या होना। एक कल्प मे जलन्धर का रावण होना। जलन्धर की स्त्री के शाप से रामावतार। एक कल्प मे नारद के शाप से क्षीरशायी का रामावतार। गिरिजा का नारद मोह सुनकर चकित होना और कारण पूछना। दो० १२४ . क : पृ० ३४३ से।

नारद मोह प्रसङ्ग : नारद की समाधि। इन्द्र के भेजे हुए काम का विघ्नाचरण। हार मानकर मुनि का शरण ग्रहण। मुनि की क्षमा। इन्द्रसभा मे काम द्वारा मुनि की प्रशंसा। शङ्कर के यहाँ जाकर नारद का मार चरित कहना। विष्णु से न कहने के लिए शङ्कर का उपदेश। नारद का विरुद्धाचरण। विष्णुमाया द्वारा मार्ग मे नगर निर्माण और राजकुमारी का स्वयवर। नारद मोह। नारद की स्तुति पर विष्णु का प्रादुर्भाव। परम हित करने की प्रतिज्ञा। नारद की कुरूप प्राप्ति। हरगण की वाक्कृत्ति मजाक उडाना। राजा के वेष मे प्रभु का आगमन। राजकुमारी का वरण। प्रभु का उसे ले जाना। हरगण के कहने से नारद का जल मे मुख देखना। नारद का क्रोध। हरगण को शाप। विष्णु से भेंट, उन्हे भी शाप। मायापनयन। अपराध क्षमापन। रुद्रगण का शापानुग्रह। उन्ही का रावण कुम्भकर्ण होना। दो० १३९ पृ० ३४८ से।

प्रतिकल्प प्रभु का अवतार। चरित्र का मुनियो द्वारा गान। अत. विविध अनुपम प्रसङ्ग। आश्चर्य का अनवकाश। कथा की अपारता। ब्रह्म के रामावतार का कारण। उसी चरित्र से सती रूप मे उमा को मोह। उमा का सकोच से मुसकराना। कथा प्रारम्भ। दो० १४१ तक : पृ० ३७९

स्वायम्भुव मनु का इतिहास : स्वायम्भुव मनु और शतरूपा से नर सृष्टि। उनकी सन्तति। चिरकाल राज्यशासन पर भी विराग नही। अत पुत्र को राज्य देकर दम्पती का नैमिषारण्य आगमन। २३००० वर्ष का तप। विधि हरि हर के प्रलोभन से भी चलायमान न होना। आकाशवाणी। शङ्कर मन मानस मराल : राम के दर्शन का वरदान। भगवान् का प्रादुर्भाव। शिख-नख वर्णन। वरदान। दम्पती के दूसरे वरदान मे भेद। अमरावती निवास के लिए अनुशासन। अभिलाष पूर्ति की प्रतिज्ञा। दो० १५२ : पृ० ३८३ स

भानु प्रताप की कथा : केकय देश के सत्यकेतु राजा के दो पुत्र . १. भानुप्रताप और २. अरिमर्दन। ज्येष्ठ को राज्य देकर सत्यकेतु का वनवास। भानुप्रताप का दिग्विजय। धर्मचर्या मे वेदाज्ञानुसरण। मृगयार्थ विन्ध्याचल वन मे जाना। एक वाराह का बहुत दूर तक पीछा करना। मार्ग भूलकर भटकते हुए एक आश्रम मे पहुँचना। वहाँ राजा के शत्रु का मुनिवेष मे रहना। कपटमुनि के अनुरोध से आश्रम मे ठहरना। उसपर राजा की श्रद्धा। उससे वरदान माँगना। वरदान लाभ। ब्राह्मणो से भय। उपाय मे साल भर के लिए नित्य नये एक लक्ष

---

१. पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।

२ बाल चरित पुनि कहहु उदारा।

प्रबोधन। फिर माया न व्यापने के लिए विनय। चूडाकरण। अजिर विहार। मेलने में प्रेम। उपनयन। गुरु-कुल वास। विद्या प्राप्ति। वीथियो मे विहार। रामजी की लोकप्रियता। आखेट। भाइयो के साथ भोजन। पुर-वासियो को सुखी करने का सयोजन। वेद पुराण श्रवण तथा भाइयो से अनु-कथन। प्रात काल माता पिता गुरु को प्रणाम। आज्ञा लेकर पुरुषार्थ करना। राजा को हर्ष। नानाविध अनूप चरित्र। दो० २०५ पृ० ५२३ से

चौथे[1] प्रश्न का उत्तर ऋषि आगमन प्रसङ्ग . यज्ञ मे निशाचरो द्वारा विघ्न। विश्वामित्रजी का अयोध्याप्रस्थान। चक्रवर्ती द्वारा सत्कार। मुनि का अनुज-सहित रघुनाथ को माँगना। वसिष्ठजी के समझाने पर राजा का देना। ताडका वध। विद्यादान। मख रखवारी। धनुप-यज्ञ देखने के लिए प्रस्थान। अहल्योद्धार। स्तुति। गङ्गाजी की कथा। दो २११-२ पृ ५३७ स।

सीय स्वयम्वर . जनकपुर वर्णन। अमराई मे निवास। जनकजी का आगमन। साथ ले जाकर सुन्दर सदन मे ठहराना। दोनो भाइयो का नगर देखने जाना। रूप वर्णन। अष्ट सखी सम्वाद। धनुप-यज्ञ भूमि निरीक्षण। बालको का प्रेम। लौटना। निशि कृत्य। प्रात कृत्य। फूल लेने जाना। फुलवारी वर्णन। फूल चुनना। गौरी पूजन के लिए सखी सहित सीता का आगमन, स्नान, पूजा, राज-कुँवर के आने का सन्देश। सब की उत्कण्ठा। देखने के लिए जाना। राम सीता का प्रथम साक्षात्कार। सीताजी का गिरिजा मन्दिर मे फिर जाना। स्तुति। मनोरथ-प्रार्थना। गौरी का आशीर्वाद। सबका प्रस्थान। दोनो भाइयो का लौटना। गुरुजी से सम्पूर्ण इतिवृत्त-निवेदन। गुरुजी का आशीर्वाद। भोजनोपरान्त कथा। सन्ध्या-वन्दन। चन्द्र के व्याज से सिय-मुख छवि वर्णन। विश्राम। अरुणोदय के व्याज से लक्ष्मण द्वारा प्रभुप्रताप-वर्णन। नित्यकृत्य। गुरु को प्रणाम। शतानन्द द्वारा जनक का बुलावा। मुनिवृन्दसहित कृपालु का जाना। भीड। राजा की सुव्यवस्था। कुँवरों का रङ्गभूमि-प्रवेश। भावानुसार अनेक रूप से कोशलराज किशोर का दर्शन। शिख-नख-वर्णन। उच्च मञ्च पर आसन। राजाओ की बातचीत। सीताजी का प्रवेश। छवि-वर्णन। नर-नारियो की लालसा। वन्दियो द्वारा राजा जनक के प्रण की घोषणा। राजाओ का धनुप-भङ्ग के लिए उद्योग। राजा जनक के क्रोधयुक्त वचन। लक्ष्मण का क्रोध। विश्वामित्र की आज्ञा से रामजी का उठना। मुनियो से आज्ञा माँगना। पुर-नरनारी। रानी और सीताजी की भावनाएँ। लक्ष्मण द्वारा उत्साह-वर्धन। सबके हृद्‌गत भावो का धनुप मे केन्द्रीभूत होना। राम द्वारा सबके भावो की परख। धनुप-भङ्ग। उत्सव। सबको हर्ष। जयमाल पहिनाना। क्रूर कपूत मूढ राजाओ का क्रोध। साधु राजाओ का उत्तर। सीता का प्रस्थान। लक्ष्मण का क्रोध। पुर-नरनारी की विकलता दो २६७-पृ ५५५ से।

---

१ कहहु जथा जानकी बिबाही।

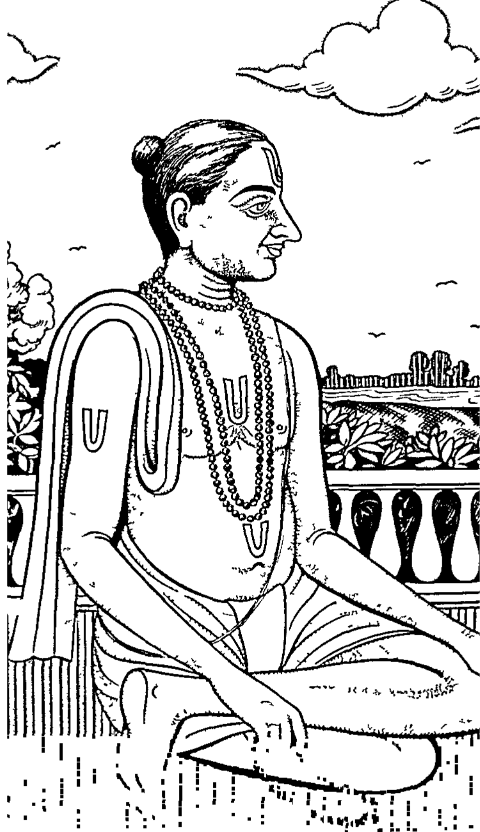
•



मानसराजहंस प॰ श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

श्रीराम चरित मानस

विजया टीका



श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

श्रीरामचरितमानस

बालकाण्ड : प्रथम सोपान

सटीक

मङ्गलाचरण

श्लो. वर्णानामर्थ[1] संघानां रसानां [1]छंदसामपि ।
[1]मंगलानां[1] च कर्तारौ [1]वंदे वाणीविनायकौ ॥१॥

जय गणेश गुरु गौरि हर, गिरा लखन श्रीराम ।
वन्दौं पद धरि धरणि शिर, पूरौ जनमनकाम ॥१॥
करत ग्रन्थ शुभ राखि उर, श्रीमारुति पदद्वंद ।
जाते जग नित होइ मुद, मंगल विजयानन्द ॥२॥
मातु तात श्री मङ्गला, सहित देव रघुवीर ।
वन्दि चरन मागौ हिये, जागौ भगति गँभीर ॥३॥
तुलसीदास के चरन युग, वदौं वारंवार ।
जाते मानस-सरस में, होइ दृष्टि सचार ॥४॥
रामगुलाम आदि लै, पंडित रामकुमार ।
मानस के आचार्यगन, जेते टीकाकार ॥५॥
सब के पद वन्दन करौं, करम वचन अरु काय ।
करुनाकरि जन जानिमोहि, सब मिलि होउ सहाय ॥६॥
अवगाहत रघुपति चरित सरित मिटहि दुसद्वंद ।
मानस की टीका करत यह गुनि विजयानंद ॥७॥

अर्थ : अक्षरों के, अर्थसमूहों के, रसों के और छन्दों के भी : तथा : मङ्गलों के करनेवाली वाणी : सरस्वती : और : उनके आश्रय : विनायक : गणेश : की मैं वन्दना करता हूँ ।

---

१ प्राकृत सूत्र है 'ङ, ञ, ण, ना व्यञ्जने' व्यञ्जन परे रहते 'ङ ञ ण और न' का अनुस्वार हो जाता है । इस नियम से सङ्घ, छन्द, मङ्गलानाञ्च और वन्दे का क्रम से संघ, छंद, मंगलानां च और वंदे रूप हो गया ।

व्याख्या श्रीगोस्वामी जी ने मगण से ग्रन्थारम्भ किया। मगण मे तीन गुरु होते है। यहाँ वर्, णा, नाम् ये तीनो गुरु हैं। इसका फल है श्री का विस्तार। यथा मो भूमि श्रियमातनोति।

ग्रन्थारम्भ 'व'कार से किया तथा ग्रन्थ की समाप्ति भी 'व' मे की है। 'व' जलतत्व है। भाव यह कि यह रामचरित मानस प्रेमाम्बु से पूर्ण है।

बिना चार कृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। १ शास्त्रकृपा २ ईश्वरकृपा ३ गुरुकृपा और ४ आत्मकृपा। श्रीगोस्वामीजी क्रम से चारो श्लोको म चारो कृपाओ को लक्ष्य करके वन्दना करते है। पहिले ही शास्त्रकृपा के लिए वाणी विनायक की वन्दना की है।

पद, पदार्थ, रस और छन्द से काव्य मे काम पडता है। यथा आखर अरथ अलकृत नाना, छद प्रबन्ध अनेक विधाना, भाव भेद रस भेद अपारा। और मङ्गल, काव्य का प्रयोजन है। अत पहिले ही इनके कर्ताओ की वन्दना करते है। सरस्वती वाक् हैं और गणेश जी वाड्मय हैं, यथा 'त्व वाड्मयस्त्व चिन्मय' इति श्रुति। अत दोनो मे स्वभावसाम्य है। दोनो रामोपासक हैं। गणेशजी नाम प्रभाव से प्रथम पूज्य हुए और वाणी सरस्वती रामचरित सर मे स्नान करने के लिए भक्त के स्मरण करने पर ब्रह्मलोक से दौडती हुई आती हैं। अत दोनो रामभक्त हैं। दोनो मङ्गल के कर्ता है। यथा मङ्गल दिशतु नो विनायको मङ्गल दिशतु न सरस्वती। इति श्रुति। अत दोनो की साथ ही वन्दना ग्रन्थ के आरम्भ म की गई। इनकी कृपा स ही शास्त्रकृपा होगी। वर्णों की सख्या मे अनेक मत है, कोई छत्तीस, कोई बयालीस और कोई पचास वर्ण मानते है परन्तु मौलिक भेद नही है। यहाँ वर्णो मे पद का अभिप्राय है। पदार्थ सात है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। रस नौ है शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। भक्तलोग तीन रस और मानते हैं सख्य, वात्सल्य और दास्य। छन्द प्रबन्ध के अनेक विधान है। काव्य से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है, वे ही मङ्गल है, यथा

एक लहैं तपपुजन को फल, ज्यौं तुलसी अरु सूर गोसाई।
एक लहैं सुख सपति केसव, भूषन ज्यौ बलवीर बडाई॥
एकन को जस ही से प्रयोजन, है रसखान रहीम की नाई।
दास कवित्तन की चरचा, बुधिवन्तन को सुख दै सबठाई॥

काव्यनिर्णये

इस प्रथम श्लोक का अनुष्टुप् छन्द है। इसम ८ अक्षरो का एक पाद होता है, चारो पादो म पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा गुरु होता है, दूसरे और चौथे पाद मे सातवाँ अक्षर लघु होता है।

---

१ गणपति सहस्रहोम पद्धति म गणपतिपरक निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं पञ्चाशन्मातृकालयाय स्वाहा। सप्तछन्दोनिधय नम स्वाहा। सरस्वत्याश्रयाय नम स्वाहा। गद्यपद्यसुधार्णवाय नम स्वाहा। अष्टादशलिपिव्यष्टिसमष्टिज्ञानकोविदाय नम स्वाहा। इत्यादि।

[1]श्लो. भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरं[2] ॥२॥

अर्थ : भवानी और शङ्कर : दोनों : की वन्दना करता हूँ, जो श्रद्धा और विश्वास के रूप हैं जिनके विना सिद्ध लोग, अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देखते।

व्याख्या : श्रद्धा और विश्वास में नाममात्र का भेद है, वस्तु एक ही है। इसी भाँति भवानी और शङ्कर में नाम का भेद है, तत्त्व एक ही है। वे वाक् और अर्थ की भाँति मिले हुए हैं। यथा : वागर्थाविव सम्पृक्तौ। सिद्ध लोगों ने दुष्प्राप्य अणिमादिक सिद्धि प्राप्त कर ली, पर वे अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर का दर्शन नहीं कर सके। इसका कारण श्रद्धा और विश्वास का अभाव है, श्रद्धारूपिणी भवानी है और विश्वासरूपी शङ्कर हैं। यथा : या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः। अर्थ : जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से विराजमान हैं, उन्हें बार बार नमस्कार है। श्रद्धा बिना धर्म नहि होई। बिनु महि गंध कि पावै कोई। कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु बिस्वास भगति नहि तेहि बिनु द्रवहि न राम। इस प्रकार से श्रद्धा-विश्वास की अनिवार्य उपयोगिता श्री गोस्वामीजीने दिखलाई है। ईश्वर अन्तर्यामी सबके हृदय में निवास करते हैं, परन्तु जीव उन्हें अपने हृदय में ढूँढने का प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि उसे इस विषय में श्रद्धा-विश्वास नहीं है। जब ढूँढता ही नहीं तब पावेगा कैसे ? सो कृपा करके जब भवानी और शङ्कर, जो कि हृत्कमल : अनाहत चक्र : के अधिष्ठाता हैं, श्रद्धा-विश्वास रूप में आविर्भूत हों तब ईश्वर का दर्शन सम्भव है। ईश्वर तभी दर्शन देंगे जब श्रद्धाविश्वासरूपी भवानीशङ्कर कृपा करें। अतः श्रीगोस्वामीजी उनकी वन्दना करते हैं, जिसमें उनकी कृपा से ईश्वरकृपा का लाभ हो सके। इस दूसरे श्लोक का भी अनुष्टुप् छन्द है।

श्लो. वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणं।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वंद्यते ॥३॥

---

१ यहाँ 'शङ्करौ, वन्दे, पश्यन्ति', का तद्भवरूप 'शंकरौ, वंदे और पश्यंति' क्रम से हुआ। इसका नियम प्रथम श्लोक की व्याख्या में दिया हुआ है। इसी भाँति और स्थलों में समझ लेना चाहिए। प्रत्येक स्थान पर सूत्र देकर साधना असम्भव है। अतः यही निश्चय किया कि जो बात एक स्थल में दिखला दी गई, उसे बार बार दिखाने के लिए हम बाध्य नहीं हैं, पाठकों से आशा की जाती है कि एक बात को एक स्थल में समझ लेने पर दूसरे वैसे स्थलों पर भी उसी तरह लगा लेंगे।

२. इस श्लोक में नई बात यह आई कि कोई व्यञ्जन परे नहीं है, फिर भी ईश्वरम् का ईश्वरं रूप हो गया। यहाँ सूत्र लगा 'मो बिन्दु' : प्रा प. ४-१२ : अन्त्यस्य हलो मकारस्य बिन्दुर्भवति। अन्त के हल् मकार का बिन्दु हो जाता है।

अर्थ मैं ज्ञानमय, नित्य, शङ्कररूपी गुरुदेव की वन्दना करता हूँ, जिनका आश्रित होकर ही टेढा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है।

व्याख्या मङ्गलाचरण करने और श्रद्धा विश्वास का आश्रयण करने पर भी गुरु के आश्रयण की आवश्यकता है। बिना गुरु का आश्रयण किये शिष्य पूजित नहीं होता और ग्रन्थकार को साधु समाज मे भणित के सम्मान की अभिलाषा है। यथा होइ प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनित सनमानू। गुरु शङ्कररूप हैं, यथा गुरुर्देवो महेश्वर। उन्ही के आश्रयण से अतिक्षीण और टेढे द्वितीया के चन्द्र की वन्दना जगत् करता है, अत ग्रन्थकार श्रीशङ्कर कल्याणकर रूपी गुरुदेव की वन्दना करके, आश्रय ग्रहण करते हैं, जिसमे कुटिल और क्षीणसामर्थ्य होने पर भी, जगत् मे सम्मानभाजन हो सकें। मनुष्य का गुरु मनुष्य नही हो सकता, नित्य बोधमय शङ्कर ही सबके गुरु हैं पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात् यो सू। तुम त्रिभुवनगुरु वेद बखाना। फिर जिस शरीर द्वारा शङ्कर भगवान् जीव का कल्याण करते हैं, उस शरीर की, शङ्कर की मूर्ति की भाँति वह जीव, पूजा क्यो न करे? इस तीसरे श्लोक का भी अनुष्टुप् छन्द है। इसमे श्रीगोस्वामीजी ने गुरुकृपा चाही। श्रीगोस्वामीजी को आत्मकृपा प्राप्त है। यथा·

श्लो सीतारामगुणग्राम - पुण्यारण्यविहारिणौ।
वदे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥४॥

अर्थ सीता और राम के गुणगणरूपी पुण्यवन मे विहार करनेवाले और *विशुद्ध विज्ञानवाले कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमानजी की वन्दना* करता हूँ।

व्याख्या सीता और राम के गुणगणो को दुर्गम और दुष्पार होने से अरण्य कहा, दिव्य होने से पुण्यारण्य कहा। अरण्य वन के मर्मज्ञ के बिना वन्य पदार्थों के हेतु, नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव का न पता चल और न यात्रा ही हो सके यथा : पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा। चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरत दिव्य सब देखी। सुनि मनमुदित कहत रिषि राऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ। सो इस पुण्यारण्य के दो बडे जानकार हैं। एक तो माधुर्य-प्रधान कवीश्वर [1]वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिण। शृण्वन् रामकथानाद को न याति परा गतिम्। बदी मुनिपदकज रामायन जेहि निरमयेउ। सखर सकोमल मजु दोषरहित दूषनसहित। और दूसरे ऐश्वर्यप्रधान कपीश्वर [2]रामायणमहामाला-रत्न वन्देऽनिलात्मजम्। महा नाटक निपुन कोटि कविकुलतिलक। अत श्रीसीता-राम-गुणग्रामरूपी पुण्यारण्य की जानकारी के लिए दोनो की वन्दना करते हैं। कपि समाज को हनुमानजी प्राण के समान प्यारे हैं। यथा मिले सकल अति भये सुखारी।

---

१ कविता वन म विचरण करनेवाले मुनिसिंह के रामकथानाद को सुनकर कौन परागति को नही प्राप्त होता।

२ रामायणमहामाला के रत्न हनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ।

तलफत मीन पाव जिमि वारी। इसलिए कपीश्वर कहा। सीताराम गुणग्राम के परिचय से ही सारा कल्याण सधता है। यथा 'जग मगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धर्म धाम के। सद्गुरु ग्यान विराग जोग के। विबुध वैद भव भीम रोग के।

श्लो. उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी।
सर्वश्रेयस्करी सीता नतोऽहं रामवल्लभा ॥५॥

अर्थ : उत्पत्ति, स्थिति, सहार करनेवाली, क्लेशो को हरण करनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणो की करनेवाली, राम की प्यारी सीताजी की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिनके गुणग्राम से परिचय प्राप्ति के लिए कवीश्वर कपीश्वर की वन्दना की, अब उन्ही गुणो श्रीसीताराम की वन्दना करते है। सीताजी आद्या शक्ति है। अतः उत्पत्ति, स्थिति और लय इन्हीका कार्य है। यथा आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया। क्लेश पाँच है 'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा क्लेशा', यो सू । [1]अविद्या, [2]अस्मिता, [3]राग, [4]द्वेष और [5]अभिनिवेश। श्रीसीताजी इन पाँचो क्लेशो की हरण करनेवाली है। लौकिक और पार लौकिक सब कल्याणो की करनेवाली है। रामजी की प्यारी है। इनके वचनसहाय से ही भवसन्तरण सम्भव है। यथा :

कबहुक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु, करन कथा चलाइ।
जानकी जग जननि जन की, किये बचन सहाइ।
तरइ तुलसीदास भव तव, नाथ गुन गन गाइ॥ विनय

सीता नाम का उल्लेख करके हल की रेखा से उत्पन्न, अयोनिजा, वेदप्रतिपादित आह्लादिनी शक्ति कहा। बच्चे स्वभाव से ही पिता की अनुकूलता के लिए माँ को साधन बनाते है। इसलिए ग्रन्थकार सीताजी की वन्दना करते है।

श्लो. यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिं ॥६॥

अर्थ : जिसकी माया के वश में समस्त ससार, ब्रह्मादिक देवता और असुर है, जिसकी सत्ता से रस्सी मे सर्प के भ्रम की भाँति सम्पूर्ण जगत् सच्चा ही प्रतीत होता है और जिसका चरण ही ससार समुद्र का पार चाहनेवालो के लिए एकमात्र नौका है। उस समस्त कारणो से परे राम नामवाले ईश हरि की मै वन्दना करता हूँ।

---

१. अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा मे नित्य, शुचि, सुख और आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है। २. दृक्शक्ति और दर्शनशक्ति की एकात्मता अस्मिता है। ३ सुख का अनुस्मरण करते हुए सुख के साधनो मे तृष्णा राग कहलाती है। ४ दुःख का अनुस्मरण करते हुए दुःख के साधनो के प्रति क्रोध को द्वेष कहते है। ५ मरण के भय को अभिनिवेश कहते है।

व्याख्या इस श्लोक म ग्रन्थकार ने हरि के १ माया का प्रभाव २ सत्ता का प्रभाव ३ चरण का प्रभाव और ४ स्वरूपवर्णन क्रम से चारो चरणो म किया है। पहिले माया का प्रभाव कहते हैं

१ ब्रह्मादि सुर और असुर भी उसके वशवर्ती हैं। यथा हरिमाया बलवत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी। नारद भव विरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमवादी। मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जगकाम नचाव न जेही। जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। इस भांति माया को अघटितघटनापटीयसी कहा। श्रीहरि के बल से वह सब कुछ करती है, उसे निज बल कुछ नही है। अत माया के बल के वर्णन द्वारा श्रीहरि का ही वर्णन है। यथा एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके।

२ उस हरि की सत्ता एसी है कि सम्पूर्ण ससार उसकी सत्ता से सत्तावान है। जिस भांति रस्सी की सत्ता से सर्प की सत्ता की प्रतीति होती है। मन्दान्धकार म पडी हुई रस्सी सर्प मालूम होती है। इसी भाँति श्रीहरि म ससार की प्रतीति हो रही है। श्रीहरि के स्वरूप म विकार नही आया और ससार की रचना हो गई। यथा रजत सीप मह भास जिमि, यथा भानुकरवारि। जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि। एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई।

३ उस हरि का चरण ही ससार-सागर के पार जाना चाहनेवाले के लिए नौकारूप है, अन्य साधन फेन हैं। नौका की भाँति वे भी ससार-सागर के ऊपर दिखाई पडते हैं पर आश्रय योग्य नही है। यथा महा मोह सरिता अपार मह सतत फिरत बह्यो। श्रीरघुवीर चरन नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो।

४ अब उनका स्वरूप कहते हैं कि वे अशेष कारणो से परे हैं, अर्थात् कार्य-कारण की शृखला वहा जाकर समाप्त हो जाती है। अर्थात् वह प्रभु, माया और उसके घेरा के बाहर हैं। यथा फिरत सदा माया कर प्रेरा। कालकम सुभाव गुन घेरा। जिस घेरे के कारण जीव बँधा हुआ फिरता है। यहाँ श्रीग्रन्थकार, श्रीहरि के रामावतार की वन्दना करते हैं। क्योकि व ही श्रीग्रन्थकार के इष्टदेव हैं और उन्ही का चरित वर्णन करना है।

इस छठे श्लोक का शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसम १९ अक्षरो का एक पाद होता है। बारह अक्षर पर एक यति विराम होती है। इसम एक मगण, एक सगण, एक जगण एक सगण दो तगण और अन्त म एक गुरु होता है ऽऽऽ, ।।ऽ, ।ऽ।, ।।ऽ, ऽऽ।, ऽऽ।, ऽ।

श्लो नानापुराणनिगमागमसम्मत यद्रामायणे निगदित क्वचिदन्यतोऽपि।

स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबधमतिमजुलमातनोति ॥७

अर्थ जो नाना पुराण, वेद तथा तन्त्र शास्त्र से सम्मत है वही इस [रामायण] मे कहा गया है और कही अन्यत्र स भी लिया गया है। अपने अन्त करण [के सुख] के लिए तुलसीदास श्रीरघुनाथ की कथा का भाषा म अति सुन्दर निबन्ध [विस्तार] करता है।

व्याख्या प्रायेण यही वात ग्रन्थकार ने 'रामायण' जो की आरती मे कही है। यथा गावत वेद पुराण अष्टदस। छवो शास्त्र सब ग्रथन को रस। मुनिजन धन सतन को सर्वस। सार अस सम्मत सवही की। 'क्वचिदन्यतोऽपि' से सव ग्रन्थ, काव्य, नाटकादि का रस तथा महात्माओ का अनुभव भी अभिप्रेत है। सस्कृत मे मङ्गलाचरणपूर्वक सकल्प करते है, कि मै भापा मे निवन्ध करता हूँ। भापा से अभिप्राय प्राकृत भापा का है। यथा जे प्राकृत कवि परम सयाने। भापा जिन हरि चरित वखाने। लौकिक प्राकृत भापा मे तत्समरूप से सस्कृत का भी ग्रहण है। यथा . तद्भव.[1] तत्समो देशीत्यनेकप्राकृतक्रम। भापा का लक्षण कहते हुए काव्य निर्णयकार लिखते है:

ब्रजभापा भापारुचिर, कहै सुमति सव कोय।
मिलै सस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगटी होय॥
ब्रजमागधी मिलै अमर, नागयमनभापानि।
सहज पारिसीहू मिले षट्विधि कवित वखानि॥
तुलसी गग दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन मे मिली भापा विविध प्रकार॥

सरस्वतीकण्ठाभरण मे कहा गया है 'नाल्पवुद्धेपु सस्कृतम्' अर्थात् सस्कृत अल्प वोधवालो के लिए नही है। रसिको का मत है कि 'सस्कृतात् प्राकृत श्रेष्ठ ततोऽपभ्रशभापणम्' सस्कृत से प्राकृत श्रेष्ठ है और उसमे भी अपभ्रश श्रेष्ठ है। अपभ्रशस्तुयच्छुद्ध तत्तद्देशेपु भापितम्। देशोद्भव वाणी अपभ्रश कहलाती है। उसकी भी वहुतायत इस भापा निवन्ध मे है। इसीलिए लिखते है कि 'अतिमजुलमातनोति' तुलसीदास अति सुन्दर विस्तृत करता है। प्रयोजन कहते है 'स्वान्त सुखाय' सो सिद्ध हुआ यथा . पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ। इन सातो श्लोको मे क्रमश सातो काण्डो की कथाओ के वीज है। प्रथम श्लोक से वर्ण, रस, छन्द और मङ्गल का उल्लेख करके, प्रभु का अक्षर ग्रहण, विश्वविजय, रङ्गभूमि मे अखिल रसामृतमूर्ति का प्रदर्शन, विवाहविधि आदि मङ्गलो का होना सूचित किया। दूसरे श्लोक से श्रद्धा विश्वास का उल्लेख करते हुए, प्रजा के साथ चक्रवर्तीजी का रामजी पर श्रद्धा विश्वास और रामजी का श्रीचक्रवर्तीजी, वशिष्ठजी और भरतलाल आदि पर श्रद्धाविश्वास तथा श्रीभरतजी, लक्ष्मणजी आदि का श्रीरामजी पर श्रद्धाविश्वास सूचित किया। तीसरे श्लोक से शङ्कररूप गुरु का उल्लेख करते

---

१ तद्भव, तत्सम और देशी, इस भाति अनेक प्राकृत क्रम है। तत्सम उसे कहते है जहाँ शुद्ध सस्कृत शब्द या वाक्य का प्रयोग हो। जो शब्द सस्कृत से निकला हो उसे तद्भव कहते है, यथा मीता से सीया। अनेक देश की भापा के शब्दो को देशोद्भव कहते है, यथा : नव लेव . तिरहुत की वोली है, धुवा मृतक शरीर . वुदेलखण्ड की वोली है, म्हाको मेरा . जयपुर की वोली है, काटे तौर दक्षिणी भापा है, राउर . मन्दिर उदयपुर की वोली है, असा ऐसा दक्षिणी भापा है, आउज ताशा अरव देश की भापा है, इत्यादि।

हुए अगस्त्य जी से मन्त्रग्रहण तथा ब्रह्मकुल मे निवास सूचित किया। चौथे श्लोक से कवीश्वर और कपीश्वर का उल्लेख करके कोटिकविकुलतिलक हनुमान जी और सुग्रीव जी से भेंट होना सूचित किया। पाँचवे श्लोक से सीता जी का उल्लेख करते हुए, उनकी सुधि का मिलना सूचित किया। छठे श्लोक से ससार सन्तरण का उल्लेख करते हुए विरोधी समाज रावणादि का ससार सन्तरण सूचित किया। सातवे श्लोक से नानापुराणनिगमागम का उल्लेख करते हुए, धर्म के चारो चरणो से युक्त रामराज्य तथा सिद्धान्त निरूपण सूचित किया।

इस सातवे श्लोक का वसन्ततिलका छन्द है। इसमे १४ अक्षरो का एक पाद होता है और उसमे एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त मे दो गुरु होते है। ऽऽ।, ऽ।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽऽ

सुरवन्दना

सो जेहि सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवरवदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन ॥१॥

अर्थ जिनके स्मरण मात्र से सिद्धि होती है, जिनका मुख श्रेष्ठ हाथी का सा है, वे ही बुद्धि की राशि और शुभगुणो के घर गणनायक अनुग्रह करे।

व्याख्या आगे चलकर वह रूपक मिलेगा, जिसमे रामचरित को सर माना है, छन्द सोरठा और दोहा को उस सरका कमल तथा चौपाइयो का पुरइन कमल की लता माना है। इस ग्रन्थ के लगाने का रहस्य इसी कमल और पुरइन की जानकारी मे भरा पडा है। कौन सा कमल किस पुरइन से निकला है, इस बात के बिना जाने किस छन्द, सोरठा और दोहा का किस चौपाई से सम्बन्ध है, इस बात का पता नही चलता और सम्बन्ध बिना जाने अभ्रान्त अर्थ हो नही सकता। तालाब मे की पुरइन कही तो वही पर फूल दे देती है और कही भीतर दूर जाकर फूल देती है, कही दूसरी-दूसरी पुरइनो से उलझती चली जाती है। अर्थ करनेवालो को इसकी जानकारी की बडी आवश्यकता है। स्थान स्थान पर यथाशक्ति इसे दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

यथा इन चार सोरठे कमलो की पुरइन अयोध्या काण्ड से आई है। इसी बात को दिखलाने के लिए कवि ने इन सोरठाओ मे 'वन्दौ' पद नही दिया, किसी मे वन्द्य का नाम भी नही है। इन त्रुटियो की पूर्ति टीकाकारो को अन्दाज से करनी पडती है। इससे मतभेद भी होता है और अर्थ मे सदाय रह ही जाता है। अवधवासियो की उपासना का नियम है कि पञ्चदेव की उपासना करके उनसे रामभक्ति माँगते हैं। तदनुसार चित्रकूट प्रकरण मे पुरवासी पञ्चदेव का पूजन करते है और विनय करते है। यथा करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी। रमा रमन पद वदि बहोरी। बिनवहिं अजुलि अचल जोरी। श्रीगोस्वामीजी की भी अवधवासियोवाली उपासना है। अत ये भी पञ्चदेव की अञ्जलि जोडकर वन्दना करते हैं। वन्दना यहाँ पर पुरइन मे की जायगी तथा जहाँ वन्द्य का नाम नही है, उसकी

पहिचान भी इसी पुरइन चौपाई से होगी। यह पुरइन अयोध्याकाण्ड से भीतर ही भीतर चली आई है और इसने चार फूल बालकाण्ड के आदि म दिये। उनम से पहिला यह है।

गणनायक बहुत है, इसलिए करिवरवदन विशेषण देकर उनकी प्रधानता दिखलाई। ये ऐसे दयालु है कि बिना करणी-करतूत के केवल स्मरणमात्र से कृपा करते है, इसीलिए 'अनुग्रह' पद दिया। श्रीग्रन्थकार का अपने बुद्धिबल का भरोसा नही है। यथा निज बुधिबल भरोस मोहि नाही। सकल कला सब विद्या हीनू। इसलिए बुद्धिराशि शुभगुणसदन गणनायक के चरणो की वन्दना करके साञ्जलि होकर अनुग्रह के लिए विनय करते है, जिससे रघुपति की अथाह गुणगाथा के वर्णन की सिद्धि प्राप्त हो।

बुद्धिमान् को यदि शुभ गुण न हो तो वह बुद्धि अनर्थकारिणी होती है, अत 'बुद्धि राशि शुभगुन सदन' कहकर 'मुद मगल दाता' कहा, गणनायक कहकर प्रभुता द्योतित की और 'जेहि सुमिरत सिधि होय' कहकर 'वरदायक देव' बतलाया। सोरठा छन्द से ही बालकाण्ड प्रारम्भ करके सोरठा से ही समाप्ति की, क्योकि इसमे मात्राओ का वृद्धिक्रम है।

यह सोरठा छन्द है। इसके प्रत्येक दल मे २४ मात्राएँ होती हैं। पहिले और तीसरे चरणो मे ११ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरणो म १३ मात्राएँ होती है। इसके सम चरणो मे जगण ।ऽ। का निषेध है, और उनके आदि के त्रिकल के पश्चात् दो गुरु नही आते। 'णो न' प्रा प्र १०५। इस सूत्र से गणनायक के ण का न हो गया और गणनायक रूप सिद्ध हुआ।

सो मूक होइ वाचाल, पगु चढै गिरिवरगहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमलदहन ॥२॥

अर्थ जिनकी कृपा से गूगा अच्छी तरह से बोलने लगता है और लगडा दुर्गम पहाड पर चढ जाता है, वे कलियुग के सब पापो के जलानेवाले दयालु कृपा करे।

व्याख्या यहाँ वन्द्य का नाम ही नही है। अत गुणो से तथा पुरइन के बल से वन्द्य का ग्रहण करना है। मूक करोति वाचाल पङ्गु लघयते गिरिम्। यत्कृपा तमह वन्दे परमानदमाधवम्। सो यहाँ आदित्यानामह विष्णु विष्णु नामक आदित्य की वन्दना है। मनुष्य मूक और पङ्गु रूप ही उत्पन्न होता है। दिन-रात करनेवाले, छ ऋतु बनानेवाले, काल के नियामक सूर्य नारायण की कृपा से, समय पाकर मनुष्य वाचाल और गिरिलघन मे समर्थ होता है, परिशेष न्याय से भी आदित्य का ही होना प्राप्त है। विनय मे इनका स्तवन 'दलन दोष दुख दुरितरुजाली' कहकर किया गया है। यह तमारि द्युलोक की अग्नि है, काल और कर्म के प्रवर्तक है, कलिमल के जलानेवाले है। ग्रन्थकार कलिमलग्रसित प्राणियो मे अपनी प्रथम श्रेणी समझते है। यथा जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस वेष मराला। चलत कुपथ वेद मग छाडे। कपट कलेवर कलिमल भाँडे। तिनमह प्रथम रेख जग मोरी। अत. कलिमलदहन आदित्य की वन्दना करके कृपा चाहते हैं।

करुणातरंगिनी कृपातरंगमालिके क० रामा० ।

हमर जान सदाशिव योगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥

जौ मैं शिव सेएउ अस जानी । प्रीति समेत करम मन बानी ॥

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा । करिहैं सत्य कृपा निधि ईसा ॥

इस भाँति गौरीत्रिपुरारि की वन्दना हुई । पञ्चदेव की वन्दना करके गुरुदेव की वन्दना करते हैं

सो बंदौं गुरपद कंज, कृपासिंधु नररूप हर ।

महामोह तमपुंज, जासु बचन रविकरनिकर ॥५॥

अर्थ मैं गुरु जी के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा समुद्र और नर रूप में हर हैं । महा मोहरूपी अन्धकार के समूह के लिए जिनके वचन सूर्य की किरणों के समान हैं ।

व्याख्या इस सोरठा में 'बन्दौं' स्पष्ट कहा, अतः उस पुरइन का यह सोरठा कमल नहीं है । यहाँ पुरइन सन्निकृष्ट है 'बन्दौं गुरपदपदुम परागा' । बहुत लोग यहाँ 'हरि' पाठ मानते हैं, हरि और हर में कोई भेद नहीं है । कहा है 'उभयो प्रकृतिरेका प्रत्ययभेदात्पृथग्वत् भाति । कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम्' दोनों की प्रकृति एक है । प्रत्यय भेद से अलग की भाँति मालूम होते हैं । कोई मूढ़ ही हरिहर में भेद विनाशास्त्र की सम्मति के मानता है । अथवा हरिहर भेदरूपी विनाश के अस्त्र को स्वीकार करता है । यहाँ वृत्तान्त के ध्यान से तथा प्रसङ्गार्थ के विचार से 'हर' पाठ माना गया है । गुरुजी नररूप में साक्षात् कृपासिन्धु हर हैं । यथा वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् । शंकर भगवान् ने स्वयं कहा है 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रविकर बचन मम' यहाँ भी ठीक वही बात कह रहे हैं 'महामोह तमपुंज जासु बचन रविकर निकर' । इस विशेषण से गुरु शब्द का अर्थ भी कह दिया । यथा गुकारस्त्वन्धकारस्तु रुकारस्तु निरोधक । 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' उसका रोकनेवाला है ।

यहाँ गुरु के लिए गुर शब्द आया है । यह अशुद्ध नहीं है । 'अत्मुकुटादिषु' प्राकृत प्रकाश का एक सूत्र है । इससे उकार का अकार हो गया ।

बंदौं गुरु पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥

अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥१॥

अर्थ गुरु चरण कमल की धूलि की वन्दना करता हूँ, जो स्वाद से सुन्दर, गन्ध से सुन्दर और अनुराग से सरस है । अमृतमय जड़ी संजीवनी बूटी का सुन्दर चूर्ण है, संसार के रोगों के परिवार को दूर करनेवाला है ।

व्याख्या पराग पुष्प की धूलि में तीन गुण होते हैं । १ सुरुचि २ सुवास और ३ सरसता । रुचि स्वाद को कहते हैं । यथा मुनि सुरसरि रुचि निदरि सुधाई । और वास गन्ध को कहते हैं । मकरन्द के कारण पराग में स्वाद, गन्ध और रस का प्रवेश होता है । चरण कमल की मकरन्द अनुराग है । यथा पदकमल

सो नीलसरोरुहस्याम तरुन अरुन बारिजनयन।

करौ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ॥३॥

अर्थ जो नील कमल के समान श्याम हैं, जिनके नेत्र खिले हुए लाल कमल के समान है, जो सदा क्षीरसागर मे शयन करते हैं, वे मेरे हृदय मे निवास करे।

व्याख्या यह रमारमण[१] की वन्दना है। इन्हे हृदय मे धाम करने के लिए कर सम्पुटित करके वन्दना और प्रार्थना करते है। ये सदा योगनिद्रा मे रहते है, यदि आजायँ तो सदा हृदय मे बने रहे। ये रमारमण, द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, सहस्रभुज सब कुछ हैं। अत द्विभुज, चतुर्भुज का झगडा छेडना व्यर्थ है। इनका रामरूप से सर्वात्मना अभेद है। यथा पयपयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय राम लखन रहे आई। जयराम रमारमन समन। इत्यादि द्वि चत्वारिषडष्टाऽऽसा दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ता शखादिभिर्युता। सहस्रान्तास्तथा तासा वर्ण-वाहनकल्पना। रामतापनीये। दो, चार, छ, आठ, दश, बारह, सोलह तथा अठारह हाथ शस्त्रादि से युक्त कहे गये हैं। सहस्र भुजाएँ भी मानी गई है। इसी भाँति वर्ण और वाहन की कल्पना है। श्यामस्वरूप स्वभाव से ही सोहावन, मङ्गलमय तथा अतिपावन-पावन है, अरुण वारिज नयन, प्रणत भय मोचन है, यथा

स्याम सरूप सुभाय सोहावन। मगलमय अति पावन पावन[२]॥

भुजप्रलब कजारुनलोचन। स्यामलगात प्रनत भय मोचन॥

इस रूप और रामरूप मे एकदम अभेद है। इसलिए ग्रन्थकार हृदय मे बसाना चाहते हैं। 'शषो स' प्रा प्र २४३ से शकार का सकार आदेश हुआ। श्याम शब्द का रूप स्याम हो गया।

सो कुद इदु सम देह उमारमन करुनाअयन।

जाहि दीनपर नेह करौ कृपा मर्दन मयन ॥४॥

अर्थ कुन्द और चन्द्र के समान शरीरवाले, उमा के पति, करुणा के घर जिनकी दीनजनो पर प्रीति रहती है, सो काम के मर्दन करनेवाले कृपा करो।

व्याख्या यह अर्धनारीश्वर[३] शिवजी की वन्दना है, इसलिए कुद इदु सम देह कहा। कुद की भाँति उज्ज्वल, मृदु और सुगन्धित उमा की देह और इन्दु की भाँति उज्ज्वल और अमृतस्रावी शङ्कर भगवान् की देह है। करुणा के तो मानो घर ही हैं, दीनजन को हाथ जोडे देख नही सकते। यथा औढरदानि द्रवत पुनि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। मदन के मर्दन करनेवाले हैं। इनकी कृपा होने से काम की बाधा न होगी। जगदम्बिका भी करुणाअयन तथा मर्दनमयन है, यथा

---

१ 'एतन्नानावताराणा निधान बीजमव्ययम्। भागवत। यह ही नाना अवतारो के निधान अव्यय बीज हैं।

२ स्याम सरीर सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। यह पाठ भी मिलता है। इसके अनुरूप अर्थ कर लेना चाहिए।

३ अजा अनादि सक्ति अविनासिनि। सदा सभु अरधग निवासिनि।

करुणातरंगिनी कृपातरंगमालिके क० रामा० ।

हमरे जान सदाशिव योगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं शिव सेएउ अस जानी । प्रीति समेत करम मन बानी ॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा । करिहैं सत्य कृपा निधि ईसा ॥

इस भाँति गौरीत्रिपुरारि की वन्दना हुई। पञ्चदेव की वन्दना करके गुरुदेव को वन्दना करते हैं

सो वंदौ गुरपद कंज, कृपासिंधु नररूप हर ।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकरनिकर ॥५॥

अर्थ मैं गुरु जी के चरण कमलो की वन्दना करता हूँ, जो कृपा समुद्र और नर रूप मे हर हैं। महा मोहरूपी अन्धकार के समूह के लिए जिनके वचन सूर्य की किरणो के समान है।

व्याख्या इस सोरठा मे 'वन्दौ' स्पष्ट कहा, अत उस पुरश्चन का यह सोरठा कमल नही है। यहाँ पुरश्चन सन्निविष्ट है 'वन्दौ गुरुपदपदुम परागा'। बहुत लोग यहाँ 'हरि' पाठ मानते है, हरि और हर मे कोई भेद नही है। कहा है 'उभयो प्रकृति एका प्रत्ययभेदात्पृथग्वत् भाति। कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेद विना शास्त्रम्' दोनो की प्रकृति एक है। प्रत्यय भेद से अलग की भाति मालूम होते हैं। कोई मूढ ही हरिहर मे भेद विनाशास्त्र की सम्मति के मानता है। अथवा हरिहर भेदरूपी विनाश के अस्त्र को स्वीकार करता है। यहा तुकान्त के ध्यान से तथा प्रसङ्गार्थ के विचार से 'हर' पाठ माना गया है। गुरुजी नररूप मे साक्षात् कृपासिन्धु हर हैं। यथा वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्। शंकर भगवान् ने स्वय कहा है 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रविकर वचन मम' यहाँ भी ठीक वही बात कह रहे हैं 'महामोह तमपुंज जासु वचन रविकर निकर'। इस विशेषण से गुरु शब्द का अर्थ भी कह दिया। यथा गुकारस्त्वन्धकारस्तु रुकारस्तु निरोधक । 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' उसका रोकनेवाला है।

यहाँ गुरु के लिए गुर शब्द आया है। यह अशुद्ध नही है। 'अन्मुकुटादिषु' प्राकृत प्रकाश का एक सूत्र है। इससे उकार का अकार हो गया।

बंदौ गुर पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥१॥

अर्थ गुरु चरण कमल की धूलि की वन्दना करता हूँ, जो स्वाद से सुन्दर, गन्ध मे सुन्दर और अनुराग से सरस है। अमृतमय जड़ी सञ्जीवनी बूटी का सुन्दर चूर्ण है, ससार के रोगो के परिवार को दूर करनेवाला है।

व्याख्या पराग पुष्प की धूलि मे तीन गुण होते हैं। १ सुरुचि २ सुबास और ३ सरसता। रुचि स्वाद को कहते हैं। यथा सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू। और बास गन्ध को कहते है। मकरन्द के कारण पराग मे स्वाद, गन्ध और रस का प्रवेश होता है। चरण कमल की मकरन्द अनुराग है। यथा पदकमल

परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना। इसी कारण गुरुपदरज मे सुरुचि सुवास और सरसता है।

अमिअ मूरि : अमृतमय वूटी : कहकर 'स्वाद' कहा। अमिअ मूरि चूर्ण से शारीरिक रोग के परिवार का नाश होता है और इस परागरूपी चूर्ण से भवरोग 'मानस रोग' के परिवार का नाश कहते है। यह श्रीरामचरितमानस मानस चिकित्सा का अपूर्व ग्रन्थ है। यथा 'भवभेषज रघुनाथ जस। इसलिए पहिले चूर्ण का ही निरूपण किया। निदान प्रकरण उत्तरकाण्ड मे है। यथा 'मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजै बहु मूला।' से लेकर 'एक व्याधि वस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि। पीडहिं सतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।' तक। समाधि अवस्था ही स्वस्थावस्था है। इस अमिअ मूरिमय चूर्णरूपी गुरुपद पद्मपराग के सेवन से स्वास्थ्य लाभ होता है। मानसरोग की शान्ति के लिए औषधि भी मानसिक ही होनी चाहिए। अतः यह पराग भी मानसिक ही है। इससे सम्पूर्ण भवरोग नष्ट होते है।

यह चौपाई छन्द है, इसी को पुरइन कहा है, छन्द, सोरठा, दोहा इसीके कमल हैं। इस चौपाई छन्द के प्रत्येक चरण मे सोलह मात्राएँ होती हैं और अन्त मे जगण ।ऽ। या तगण ऽऽ। नही आते। जैसे 'वंदी गुरुपद पदुम परागा' मे ऽऽ।।।।।।।।ऽऽ सोलह मात्राएँ आईं। यहाँ चूर्ण के लिए 'चूरनु' शब्द आया है। विप्रकर्ष प्रा० प्र० ३ ५९ इस सूत्र से चूर्ण का चूरन रूप हुआ। 'उच्च स्वमो' इस सूत्र से प्रथमा और द्वितीया के एकवचन मे अन्त्य अकार को 'उ' आदेश होता है। सो चूर्ण का चूरनु हो गया। 'इदृष्यादिपु' प्रा० प्र० १ २८ तथा 'क ग च ज त द प य वा प्रायो लोप.' प्रा० प्र० २ २ इन सूत्रों से अमृत का अमिअ रूप हुआ।

सुकृत संभुतन विमल विभूती। मंजुल मगल मोद प्रसूती ॥
जन मन मजु मुकुर मल हरनी। किये तिलकु गुनगन वस करनी ॥२॥

अर्थ : यह पुण्यरूपी शम्भु के शरीर के लिए निर्मल विभूति है और सुन्दर मङ्गल मोद की जननी है, जन के मन रूपी सुन्दर दर्पण के मल को हरण करनेवाली है और तिलक करने से गुणगण को वश करती हैं।

व्याख्या . सुकृत : पुण्य : को ईप्सित फलदाता होने से शम्भु कहा। यथा : वदि पितर सुर सुकृत सभारे। जो कुछ पुन्य प्रभाव हमारे। तौ सिव धनुप मृनाल की नाईं। तोरहुँ राम गनेस गोसाईं। शम्भु का शृङ्गार विभूति है। यथा : सिवहि सभुगन करहिं सिगारा। जटा मुकुट अहि मौर सवारा। कुंडल कंकन पहिरे व्याला। तन विभूति पट केहरिछाला। इसी भाँति विना गुरुपदधूलि के सुकृत का शृङ्गार नही होता। या यो कहिए कि विना विभूतिलेप के शङ्कर नही तथा विना गुरुचरण रजलेप के सुकृत ही नहीं। विभूति से मङ्गल सुगन्धि निकलती है। यहाँ मोद शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ आनन्द भी है, सुगन्ध भी है। भाव यह है कि गुरुपदरज से जब सुकृत शृगारित होता है, तो सुगन्ध की भाँति चतुर्वर्ग का आनन्द दूर तक फैलता है। इस भाँति 'सुवास' कहकर अब 'सरस' कहेगे।

प्राचीन काल मे जब शीशे का प्रचार नही था तब लोहे का दर्पण बनता था। उसे ऐसा माँज देते थे कि उसमे मुँह दिखलाई पडता था। उसमे मुर्चा न लग जाय इसलिए सरस भस्म से उसे माँजा जाता था। यहाँ भक्त का मन सुन्दर दर्पण है। उसे अनुराग से सरस गुरुपदरज द्वारा निर्मल बनाया जाता है। सो मन मुकुर के निर्मल बनाने के लिए, गुरुचरण का सरस रज ही साधन है। वस्तु के रूप का दर्शन तो केवल नेत्रो से और उजेले मे हो जाता है पर आत्मदर्शन के लिए निर्मल मुकुर की भी आवश्यकता पडती है। यथा मुकुर मलिन अरु नैन विहीना। रामरूप देखहि किमि दीना। अत आत्माराम के दर्शन के लिए श्री ग्रन्थकार मन मुकुर को निर्मल कर रहे है।

इस सरस रज मे और भी गुण है। यह केवल दोषापनयन ही नही गुणाधान भी करता है। तान्त्रिक लोग वशीकरण तिलक बनाते हैं, जिसे लगाने से देखनेवाले मोहित हो जाते है, इसी भाँति इस सरस रज का तिलक लगाने से गुणगण वश मे आजाते है अथवा जिस भाँति राजतिलक होने से सेना तथा प्रजागण वश हो जाते हैं। यथा : जे गुरु चरन रेनु सिर धरही। ते जनु सकल विभव वस करही। भाव यह कि सच्चे गुरुभक्त के लिए अन्य किसी साधन की अपेक्षा नही है। गुरुभक्ति से ही सब कुछ हो जाता है। गुरुभक्ति से अब नेत्र चिकित्सा भी कहते है।

श्रीगुरपद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू ॥३॥

अर्थ श्रीगुरु के चरणनखरूपी मणिगण की ज्योति के स्मरण से हृदय मे दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है। वह सुन्दर प्रकाश ज्योति : बडे भाग्य से जिसके हृदय मे आवे, उसके मोहान्धकार का नाश करनेवाला होता है।

व्याख्या श्रीगुरुपदरज से मन मुकुर निर्मल हुआ, अब दर्शन के लिए नेत्र और प्रकाश की आवश्यकता है। गुरभक्ति से यह आवश्यकता भी पूर्ण हो जायेगी। श्रीगुरु के पदनख ही मणिगण है। उनकी ज्योति अर्थात् ठण्ढी रोशनी . के स्मरण से हृदय मे दिव्य दृष्टि होती है। मणिगण की ज्योति के देखने से नेत्र मे ठण्ढक आती है और दृष्टि को लाभ पहुँचाता है, पर गुरुचरण नखरूपी मणिगण ऐसे है कि इनके स्मरण से दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है और मोहान्धकार का भी नाश हो जाता है। ठण्ढी रोशनी होने से ही सु-प्रकाश कहा, हृदय की दृष्टि होने से दिव्य दृष्टि कहा, उपाय की सरलता दिखाने के लिए 'सुमिरत' कहा। सूर्य, चन्द्र का प्रकाश तो अभागे को भी सुलभ है, पर मणिगण का प्रकाश तो किसी बडे भाग्यवान् को ही प्राप्त

---

१ 'ऋतभरा तत्र प्रज्ञा' यो० सू-१-४८। ऋत सत्य बिभर्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते सतंभरा प्रज्ञा। तस्मिन् सति भवति इत्यर्थं। तस्माच्च प्रज्ञालोकात् सर्वं यथावत्पश्यन्योगी प्रकृष्ट योग प्राप्नोति। ऋत भरा प्रज्ञा मे सत्य ज्ञान होना है विपर्यय से कभी नही ढकता। यह गुरु चरणो मे समाधि होने पर होती है। उस प्रज्ञालोक दिव्य दृष्टि से सब कुछ ठीक ठीक देखना हुआ प्रकृष्ट योगी हो जाता है।

होता है। इसी भाँति गुरु चरणनख का प्रकाश सबके हृदय मे नही आता, किसी भाग्यवान् के हृदय मे आता है। अर्थात् श्रीगुरुपदनख मणिगण का स्मरण अभागा नही कर सकता, किसी भाग्यवान् को ही उनके स्मरण-ध्यान की वुद्धि मन मे आती है। दृष्टि होने पर भी यदि आँख न खुले तो दिखाई न पडे, इसलिए कहते हैं

उघरहिं विमल विलोचन हीके। मिटहिं दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहिं रामचरित मनिमानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥४॥

अर्थ हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और ससाररूपिणी रात्रि के दोप और दु ख मिट जाते हैं। रामचरित्ररूपी मणिमाणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ और जिस खानि के है, दिखलाई पडने लगते हैं।

व्याख्या सभी के हृदय म आँखे होती हैं, पर वे बन्द रहती है, बिना गुरु कृपा खुलती नही। 'श्रीगुर पदनख मनिगन जोती' जिस भाग्यवान् के हृदय मे आती है उसीकी आँखे खुल जाती है। और रात्रि के दोप दु ख भी मिट जाते है। भाव यह कि रात्रि नही जाती, वह तो बिना ज्ञानरवि के उदय हुए नही जा सकती। यथा जासु ज्ञानरवि भवनिसि नासा। पर उससे जो दोप है और उन दोषो के कारण जो दु ख है, वह मिट जाता है। रात्रि मे रज्जु म सर्प का भ्रम होता है, यह रात्रि का दोष है और उस भ्रम से भय उत्पन्न होता है, लोग गिर पडते है, चोट खा जाते है, यह दु ख है, सो गुरुपदनख मणिगण ज्योति के आजाने से दोनो मिट जाते हैं।

तब रामचरित्र मणिमाणिक्य सूझने लगते हैं। मणिमाणिक्य भी पहिले से ही हैं। मणि सर्पादि के शिर म है, माणिक्य पर्वत म है, दिखाई नही पडते। इसी भाँति रामचरित्र आचार्यो के पास है, वेद पुराणा म हैं, आवरण शक्ति से घिरे हुए है, दिव्य दृष्टि की अव्याहत गति होती है, हृदय की आख जब खुले तब दिखाई पडे। रामचरित्र म कुछ चरित्र तो प्रकट हैं, कुछ गुप्त है। यथा 'सोइ लरिकाई मोसन करन लगे पुनि राम' यह प्रकट चरित है और 'तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू' यह गुप्त चरित है। उसे दिव्य दृष्टिवाल को सब दिखाई पडने लगते है। अत ऐसी शङ्का न करनी चाहिए कि जिस मरम को अनुज और मातु पिता ने न जाना उसे तुलसीदास ने कैसे जाना? ग्रन्थकार का स्पष्ट उत्तर है कि गुरु के प्रसाद से जाना।

मणिमाणिक्य की खान होती है। सामान्य मनुष्य को तो काँच और मणि पहिचानना कठिन हो जाता है पर यह मणि या माणिक्य किस खानि का है? यह सर्पमणि है, या सूकरमणि है? यह पन्ना के खानि का हीरा है या दूसरे खानि का? इन सबकी पहिचान तो जौहरी की ही आखें कर सकती है। श्रीगुरुपद नखमणिज्योति से इनकी भी पहिचान हो जाती है। यथा पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी। श्रीरामचरित मानस म भी चार खानि की यथार्थ चार घाट मे कही गई है। श्रीगुरुकृपा से ही उनकी पहिचान होती है, पर इसके लिए नेत्र के सस्कार की भी आवश्यकता पडती है। अत कहते है

दो जथा सुअजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखहि सैल वन, भूतल भूरि निधान ॥१॥

अर्थ जिस प्रकार साधक और सुजान सिद्ध, उत्तम अञ्जन को नेत्रों मे आँज कर पर्वत, वन और भूमि मे बडे बडे खजाना का तमाशा देखते हैं।

व्याख्या गुरुभक्ति से दिव्य दृष्टि मिली, मोहान्धकार दूर हुआ, हृदय की आँखें खुली, भव रजनी के दोष दु ख मिटे, गुप्त प्रकट रामचरित्र मणिमाणिक्य भी सूझने लगे। उनका हाल मालूम होने लगा। परन्तु उन चरित्रो के साक्षात्कार के लिए सस्कार विशेष की आवश्यकता पडती है। तान्त्रिक लोग सिद्धाञ्जन बनाते हैं, जिसके लगाने से व्यवधान दूर हो जाता है। निधानो का साक्षात् दर्शन होता है। सिद्धाञ्जन की आवश्यकता सिद्ध साधक दोनो को रहती है। इसी भाँति गुरु पद रज की भी दोनो को आवश्यकता है, इसके विना रामचरित का साक्षात्कार नही हो सकता। जिस भाँति निधान शैल, वन और भूतल म रहता है उसी भाँति रामचरित भी शैल, वन या भूतल से सम्बद्ध है। शैल, यथा पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। वन, यथा सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। भूतल, यथा अति अपार जे सरित वर जौ नृप सेतु करांहि। चढि पीपीलिकउ परम लघु विनु श्रम पारहि जाहि। मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई। अथवा, धन्य भूमि वन पथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा। शैल का चरित्र शैल का निधान है, वन का चरित्र वन का निधान है और भूतल का चरित्र भूतल का निधान है। भूतल पर बहुत चरित्र किया इसलिए 'भूतल भूरि निधान' कहा। यह शङ्का कोई न करे कि रामचरित्र तो भूतकाल का विषय है, उसका साक्षात्कार इस समय कैसे हो सकता है? योगियो[1] के लिए अतीत और अनागत सभी वर्तमान है। श्रीवाल्मीकि[2] जी ने समाधि मे सब लीलाएँ स्वय देखी।

यह दोहा छन्द है। इसके प्रत्येक दल म २४ मात्राएँ होती हैं। यह सोरठा का उलटा है। प्रथम और तृतीय चरणो मे १३ मात्राएँ होती हैं, उनके आदि मे जगण ।ऽ। न होना चाहिए, नही तो वह सुन्दर नही रह जाता, उसकी चाण्डालिनी सज्ञा हो जाती है। दूसरे और चौथे चरण मे ११ मात्राएँ रहती हैं यह दोहा छन्द का अति सक्षेप वर्णन है।

गुर पद रज मृदु मजुल अजन। नयन अमिअ दृग दोष विभजन ॥
तेहि करि विमल विवेक विलोचन। वरनउ रामचरित भव मोचन ॥१॥

———

१ अतीतानागत स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम्। या० सू० ४ १२। भूत और भविष्य स्वरूप से वर्तमान हैं, धर्मो के अध्व राम्ते के भेद स।

२ तत पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थित। पुरा यत्तत्रनिर्वृत्त पाणावामलक यथा। जो जो पहिले हुआ था वह सब उस धर्मात्मा न समाधि मे स्थित होकर इस तरह देखा, जैसे हाथ म लिया हुआ आँवला।

अर्थ गुरु के चरण की धूलि मृदु और सुन्दर अञ्जन है, आँखो के लिए अमृत और दृष्टि के दोषो को दूर करनेवाली है। उसी से विवेकरूपी नेत्रो को निर्मल करके, मै ससार छुडानेवाले रामचरित का वर्णन करता हूँ।

व्याख्या प्रायेण अञ्जन सुन्दर नही होता और आँखो मे लगता है, पर गुरुपदरजरूपी अञ्जन सुन्दर भी है और आँखो मे लगता नही, आँखो के लिए अमृत है, ठढक पहुँचाता है, दृष्टि को सदा स्थिर रखता है, घटने नही देता। यदि दृष्टि मे दोष हो तो उसे भी दूर करता है। दोषापनयन भी करता है, गुणाधान भी करता है।

जिसे हृदय की आँख कहा गया है, वह विवेक है। इस अञ्जन से विवेक रूपी नयन निर्मल होता है, अत इसे लगाकर रामचरित का वर्णन करता हूँ। क्योकि रामचरित भवमोचन है, ससार से छुडानेवाला है, इसे बहुत सँभालकर वर्णन करना चाहिए, थोडा सा भी अविवेक रह जाने से वर्णन करने मे अर्थ का अनर्थ हो जायगा। यह अधिक अभेद रूपक है।

समष्टि वन्दना

बदौं प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित ससय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुनखानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥२॥

अर्थ पहिले ब्राह्मण के चरणो की वन्दना करता हूँ, जो मोह से उत्पन्न सब सशया के हरण करनेवाले है। सज्जनो का समाज सब गुणो की खान है, मै प्रेम सहित, सुन्दर वाणी से उसको प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या सुर वन्दना के पश्चात् प्रथम महीसुर की वन्दना करते है। गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर। इसलिए गुरु की गणना देवताओ मे है। गुरु के साथ ही ब्राह्मण की भी वन्दना होनी चाहिए। क्योकि 'कवच अभेद विप्रगुरु पूजा' सो कवच मे भेद करना उचित नही। मनुष्य कोटि मे प्रथम महीसुर की वन्दना करते है ऐसे ही भ्रातृवर्ग मे प्रथम भरतलाल की वन्दना करेगे। यथा बदौं प्रथम भरत के चरना। ब्राह्मण, रामभक्ति के प्रथम साधन है, इस भाँति भी प्रथम वन्दना करना प्राप्त है। यथा प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती।

यहाँ यह सशय न करना चाहिए कि 'महीसुर चरण' के साथ कमल का प्रयोग क्यो नही किया? क्योकि अन्यत्र कमल का प्रयोग है। यथा विप्रचरन पकज अति प्रेमा। यहा न करने का कारण यह है कि प्रथम वन्दना से चरण की प्रधानता द्योतित हो चुकी और विशेषण के साथ कमल की सार्थकता भी नही है। विशेषण है 'मोह जनित ससय सब हरना' मोह हटने पर भी छाया रूप से कुछ सशय रह जाता है। यथा अजहूँ कछु ससय मन मोरे। सो समग्रसशय का हरण करना ब्राह्मणो का काम है। श्रुतिभगवती कहती है कि विद्या ब्राह्मणो के पास गई और कहा कि मेरी रक्षा करो मै तुमलोगो की निधि हूँ। अत ब्राह्मण अपनी

१ विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।

विद्या द्वारा नि शेष सशय का हरण करगे। अत्र समष्टि की वन्दना करते हैं। इस लोक मे दो प्रकार की सृष्टि है, एक दैवी और दूसरी आसुरी। दैवी सृष्टि सज्जनो की ह और आसुरी सृष्टि खलो की है। सो पहिल सज्जन समाज की वन्दना करते हैं यही समाज सब गुणा की खान है। यथा सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहि सारद श्रुति तेते। यही से गुणसमूह निकलकर ससार मे फैले हुए हैं, जैसे ससार मे जितनी धातुएँ हैं, वे सब खान से ही आई हुई हैं। यथा मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेही जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानव सतसग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। अत इस समाज को श्री ग्रन्थकार सप्रेम मनसा सुवाणी। वाचा प्रणाम करते हैं कर्मणा।

साधु चरित सुभचरित कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। वदनीय जेहि जग जस पावा ॥३॥

अर्थ सज्जनो का शुभ चरित कपास के चरित के समान है, जिसका फल नीरस, उज्ज्वल और गुणमय होता है, जो दु ख सहकर दूसरे के दोपो को ढकता है और जो वन्दनीय है, जिससे ससार को यश मिला है।

व्याख्या कपास का फल नीरस होता है, उज्ज्वल होता है और उसमे महीन महीन रेशा को छोडकर और कुछ होता नही। मूल पाठ म 'गुण' शब्द श्लिष्ट दिया हुआ है उसका अर्थ रेशा भी होता है। साधुचरित के पक्ष म उसका अर्थ गुण होगा और कपासचरित के पक्ष म उसका अर्थ रेशा अशु लना होगा। साधु-चरित का फल तात्पर्य भी नीरस विपय रस रूखा उज्ज्वल और गुण मय होता है, उसम सिवा गुण के और कुछ होता ही नही। इसी से कपास से उपमित किया।

इसी भाँति छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है। छिद्र का अर्थ छेद भी है और दोष भी है। कपास पक्ष म उसका अर्थ इन्द्रिया का छिद्र होगा और साधु पक्ष मे 'दोप' अर्थ होगा। भावार्थ यह कि कपास से रूई निकाली जाती है उसे ओटा जाता है, धुना जाता है। उसका सूत बनाकर कपडा बुना जाता है, जिससे प्राणियो के छिद्र ढके जाते है। इसी भाँति साधु नाना यातनाएँ सहकर भी दूसरे के दोषो पर परदा डालते है। यही उपमा और उपमेय म समान धर्म हैं। अत वन्दनीय है, इनके कारण मिथ्या ससार ने यश पाया। 'ससार' का अर्थ यह हुआ कि 'सम्यक् रूप से सार है जिसम'। यथा प्रमुदित हृदय सराहत भल्भवसागर। जहँ उपजहि अस मानिक विधिवड नागर। जानकी मङ्गल

मुद मगल मय सत समाजू। जो जग जगम तीरथ राजू ॥
राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ[1] ब्रह्म विचार प्रचारा ॥४॥

---

१ कगचजतदपयवा प्रायो लोप प्रा प्र २ २ और सर्वत्र लवराम् प्रा प्र ३ ३ इन दोना सूत्रो से सरस्वती के 'व और 'त का लोप हुआ और सरस्वती का सरसइ रूप सिद्ध हुआ।

अर्थ सन्तो का समाज आनन्द मङ्गलमय है, जो ससार मे चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है। जहाँ राम भक्ति गङ्गा की धारा है और ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती है।

व्याख्या सज्जन, साधु और सन्त समानार्थक शब्द है। कुछ महात्मा लोग इन शब्दो के अर्थो मे कुछ बारीक सूक्ष्म भेद निकालते हैं, पर यहाँ उनका समानार्थक रूप मे ही व्यवहार हुआ है। मुद मन के हर्ष को कहते हैं और मङ्गल उसी का बाहरी रूप है। सो सन्तसमाज मे सदा मुद मङ्गल बना रहता है। शोक मोह का वहाँ काम नही। राग अवनि थल तीन बडेरे। ते किये साधु समाज धनेरे। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। साधु समाज ही तीर्थ को तीर्थ बनाता है, इसलिए उसे चलता फिरता जगम तीर्थराज कहा।

रामभक्ति को गङ्गा की धारा कहकर भक्ति की प्रधानता कही। मेल तो यमुना और सरस्वती का भी हुआ, पर सब मिलकर गगा ही हो गई। और ब्रह्म विचार की भाँति सरस्वती गुप्त हैं, अत ब्रह्म विचार प्रचार की उपमा सरस्वती से दी।

विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नदिनि बरनी॥
हरिहर[1] कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मगल देनी॥५॥

अर्थ करने योग्य विधि और न करने योग्य निषेध कर्मों की कथा, जो कलिमल की हरण करनेवाली है, उसे यमुना सूर्यपुत्री रूप मे वर्णन किया गया है। हरि विष्णु और हर शिव की कथा वेणी रूप से शोभित है, जो सुनते ही आनन्द मङ्गल की देनेवाली है।

व्याख्या विधि, निषेध में ही समस्त कर्मकाण्ड का पर्यवसान है। इसी से मनुष्य की शास्त्रीया प्रवृत्ति हो जाती है, स्वाभाविकी प्रवृत्ति रुक जाती है। कलिमल हरणी कहने का यही कारण है। सूर्य से ही सब कर्मों का आरम्भ होता है। उनकी पुत्री यमुनाजी है अत उन्हे कर्मकथा से उपमित किया। प्रयागराज मे तीनो पृथक पृथक् भी है फिर मिली भी है, इसी भाति सन्तसमाज म तीनो काण्ड ज्ञान, कर्म और भक्ति पृथक् पृथक् भी शोभित है और मिलकर भी शोभित होत हैं।

तीनो नदिया मिलकर त्रिवणी होती है। हरिहरकथा म कर्म, उपासना, ज्ञान तीनो चलते हैं, अत हरिहर कथा को 'बेणी' कहा। गङ्गा श्वेत और यमुना श्यामा है दोनो की मिलकर सौभाग्यवती स्त्री के काले केश मोतियो की लर से युक्त की सी शोभा हुई। सूत म मोती पिरोए हुए है यह नही दिखलाई पडता, इसी भाति सरस्वती गुप्त है। वणो मुद मङ्गल देना है इसी भाँति हरिहर कथा भी श्रवण मात्र से मुद मङ्गल देती है।

बट बिस्वासु अचल निज धरमा। तीरथ राज समाज सुकरमा॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥६॥

अर्थ अपने धर्म मे अचल विश्वास ही अक्षयवट है और सुकर्म तीर्थराज

---

१ यहाँ अधिक तद्रूप रूपक है।

का समाज है। यह सब दिन सब देशों में सबको सुलभ है, आदर सहित सेवन करने से दुःखो का नाश करनेवाला है।

व्याख्या जिस भाँति प्रयागराज मे अक्षयवट है, उसी भाँति जङ्गम प्रयागराज मे अचल स्वधर्म विश्वास है। जिस भाँति दिव्य अक्षयवट का नाश प्रलय मे नही होता, उसी भाँति प्रलय उपस्थित होने पर भी स्वधर्म से साधु समाज का विश्वास नही उठता। जिस भाँति वट पत्र पर बाल मुकुन्द का निवास है, उसी भाँति स्वधर्म मे भगवान् का निवास है। उस प्रयागराज का बडा समाज है। त्रिवेणी माधव सोम भारद्वाजश्च वासुकीम्। वन्देऽक्षयवट शेष प्रयाग तीर्थनायकम्। माधव, सोमेश्वर, महादेव और शेष प्रधान देव है तथा भारद्वाज, वासुकी आदि गौण देव है। इसी भाँति जङ्गम प्रयाग के समाज मे प्रधान कर्म और गौण कर्म दोनो हैं।

तीर्थराज तो केवल अधिकारियों[1] को सुलभ हैं, फिर सब दिन सुलभ भी नही हैं, जब सयोग हो तब यात्रा होवे, पर जङ्गम तीर्थराज तो सबको सुलभ हैं और सब दिन सुलभ हैं। वह प्रयागराज देश परित्याग नही कर सकते, केवल अपने प्रान्त मे सुलभ हैं। यथा जिमि सिंघल वासिन्ह भयउ विधि बस सुलभ प्रयाग। पर यह तो जङ्गम होने के कारण सब देशो मे आते जाते रहते हैं। जङ्गम तीर्थराज का यदि आदर के साथ सेवन किया जाय तो सद्य क्लेशो का हरण करते हैं।

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ ॥७॥

अर्थ यह तीर्थराज अकथनीय और अलौकिक है, तत्काल फल देता है। इसका प्रभाव प्रकट है।

व्याख्या उस तीर्थराज का माहात्म्य शेषजी ने कहा है, जिसे प्रयाग-माहात्म्य कहते हैं, पर इसका माहात्म्य तो वे भी नही कह सकते। यथा कहि सक न सारद शेष नारद सुनत पदपकज गहे। अस दीनबन्धु कृपालु अपने भगत गुन निजमुख कहे। यह तीर्थराज अलौकिक है, क्योकि इसका प्रभाव प्रकट है, तत्काल फल देता है, वह प्रयागराज तो मरने के बाद फल देता है। यथा काशी विधि बसि तनु तजै हठि तनु तजे प्रयाग।

दो सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारिफल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

अर्थ जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से सुनकर समझते हैं, वे ही अति अनुराग से मानो मज्जन करते हैं और उन्ही को इसी शरीर से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारो फलो की प्राप्ति होती है।

व्याख्या इस जङ्गम तीर्थराज मे प्रसन्न चित्त होकर सुनना और समझना ही आदर पूर्वक मज्जन करना है। इसी से अविवेक का नाश होता है और अविवेक ही आपत्तियो का घर है। अविवेक . परमापदा पद, 'चारि पदारथ भरा भडारु'

---

१ जिनके दाउ कर दोउ चरण मनहु सुसाधा होय। विद्या तप अरु इन्द्रियहू ते तीर्थ फल सोय। प्र० च

भण्डार तो भरा हुआ है, पर जीते जी नही मिलेगा, मिलता है मरने के वाद, सो यहाँ तो चार फल की प्राप्ति शरीर रहते ही हो जाती है।

मज्जन फलु पेखिअ ततकाला। काक होहि पिक बकउ मराला ॥
मुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहि गोई ॥१॥

अर्थ : स्नान करने का फल तत्काल देखने मे आता है कि कौवा तो कोयल, और वगले हस हो जाते है। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे। सत्सङ्गति की महिमा छिपी नही है।

व्याख्या : 'मुद मगलमय संत समाजू' कहा था, सो 'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग' इस दोहे तक मुदमय कहा, अब मङ्गलमय कहते हैं। काक और बक अमङ्गल हैं, सो क्रमश पिक और हस होकर मङ्गलमय हो जाते हैं। काक की वाणी करकस होती है और पिक की वाणी मधुर होती है, रूप दोनो का एक सा होता है। इसी भाँति वक अविवेकी दाम्भिक होता है और हस विवेकी होता है, क्षीर नीर का विवरण करता है, पर रूप दोनो का एक सा होता है। भाव यह कि मज्जन से भीतरी परिवर्तन वडा भारी होता है, वाहर का स्वरूप तो वैसा ही बना रहता है। भुसुण्डिजी काक से पिक हो गये यथा - मधुर वचन वोलेउ तव कागा और वक से हस स्वय ग्रन्थकार हो गये, यथा हस कियो वक ते वलिजाउँ। पहिले कहा था 'देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ' सो उसी की सार्थकता 'पेखिअ तत्काला' कहकर दिखलाते है। भाव यह कि इतना वडा परिवर्तन होता है और समय नही लगता। यहाँ अनुगुणालङ्कार है।

सद्य कायापलट वडे आश्चर्य की वात है, परन्तु सत्सग के लिए आश्चर्य नही है। आश्चर्य तो उसमे होता है, जो जानी हुई वात नही है और सत्सङ्ग की महिमा तो सव जानते है कि यह सद्य फलद होता है। अव इसी का उदाहरण देते है।

वालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥२॥

अर्थ : वाल्मीकि, नारद और अगस्त्यमुनि ने अपना अपना इतिवृत्त, अपने ही मुँह मे कहा। जल मे रहनेवाले, भूमि पर रहनेवाले और आकाश मे विचरनेवाले, जो नाना प्रकार के जड चेतन जीव ससार मे है।

व्याख्या : वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने मुख से अपनी कथा कही। इसलिए अविश्वास को स्थान नही है। वाल्मीकिजी व्याध की जीविका करते थे और ऐसे अपढ थे कि राम-राम जप करने मे असमर्थ थे। महात्मा को उन्हे मरा मरा का उपदेश देना पडा, सो वेद के समान हो गये। नारद जी ब्राह्मण की एक वृद्धा सेविका के पुत्र थे। उन्हे उसी जन्म मे ध्यान मे भगवद्दर्शन हुआ और दूसरे जन्म मे साक्षात् ब्रह्मदेव के पुत्र हुए। अगस्त्य जी घट से उत्पन्न थे, इनका इतना प्रभाव बढा कि रुष्ट होकर समुद्र का पान कर गये। इनसे ही मन्त्र लाभ कर

राम जी ने रावण को मारा। सो इन महात्माओ का इतना प्रभाव सत्सङ्ग के माहात्म्य से ही हुआ। वाल्मीकि का कर्म खोटा था अगस्त्य जी का जन्म खोटा था और नारद जी नितान्त असहाय थे। इनकी इतनी महिमा सत्सङ्ग के प्रताप से हुई। अत तीन उदाहरण दिये गये।

भाव यह कि जलचर, थलचर, नभचर के कथन से जीवमात्र का ग्रहण हुआ। उसमे भी केवल चेतन नही, जडजीव का भी कल्याण सत्सङ्ग से हुआ। ऊपर के उदाहरणो से प्रादेश मात्र दिखलाया गया है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ ॥३॥

अर्थ उनमे से बुद्धि, कीर्ति, गति, ऐश्वर्य और कल्याण को जब कभी, जिस किसी उपाय से, जहाँ कही, जिस किसी ने पाया है, उसे सत्सङ्ग का ही प्रभाव जानो। लोक मे और वेद मे दूसरा उपाय ही नही है।

व्याख्या मति, कीर्ति, गति, भूति और भलाई कहने से श्रेय और प्रेय दोनो ही आगये। श्रेय मोक्ष का साधन है और प्रेय अभ्युदय का साधन है। अर्थात् श्रेय और प्रेय की प्राप्तिका सिवा सत्सङ्ग के दूसरा उपाय ही नही है। 'जब' से काल, 'जेहि जतन' से उपाय, 'जहाँ' से 'दश' और 'जेहि' से अधिकारी कहा। भावार्थ यह कि सभी देश, सभी काल म, सभी के लिए, सभी उपायो से सतसग द्वारा ही सिद्धि की प्राप्ति सम्भव है। लोक मे तो सत्सङ्ग प्रसिद्ध ही है अज्ञातार्यज्ञापक शास्त्र भी कोई दूसरा उपाय नही बतलाता।

जलचर, थलचरादि के साथ यथाक्रम मति, कीरति, गति आदि को लगाकर भी कुछ लोग अर्थ करते है। यथा जलचर को मति की प्राप्ति, यथा प्रभुहि बिलोकहि टरहि न टारे। मन हरखित सब भये सुखारे। थलचर को कीर्तिकी प्राप्ति यथा मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जे गाइहै। इत्यादि।

नभचर को गति की प्राप्ति यथा अबिरल भगति माँगि वर गीध गयउ हरिधाम।

जडजीव को भूति की प्राप्ति यथा परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी।

चेतन को भलाई की प्राप्ति, यथा ते मन भय परमपद जोगू। भरत दरस मेटेउ भवरागू।

बिनु सतसग बिवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसगत मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥४॥

अर्थ बिना सत्सङ्ग के विवेक नही होता और वह बिना हरिकृपा के प्राप्त नही होता। सत्सगति मुद मङ्गल का मूल है, वही फल सिद्धि है और सब साधन फूल है।

व्याख्या : विवेक नेत्र है। यथा तेहि करि विमल विवेक विलोचन। बिना विवेक का प्राणी अन्धा है। सो विवेक बिना सत्सङ्ग के होता ही नहीं। यद्यपि सत्सङ्ग सबको सुलभ सब दिन सब देशो मे है, सन्त सन्निकट ही रहते हैं पहिचान मे नहीं आते। सदा अपन पौ रहहि दुराये। सब विधि कुसक कुवेष बनाये। राम कृपा हो तो सत्सङ्ग हो सकता है। इस भाँति रामकृपा को साधन और सत्सङ्ग को साध्य कहा। अर्थात् सत्सङ्ग का अमोघ फल है। फल सिद्धि कहने के कारण, मूल शब्द का अर्थ लक्षणा से बीज करना होगा। बीज से अङ्कुर, डार, पात, फूल, फल होता है और फल मे फिर बीज होता है। भावार्थ यह कि बीज भी सत्सङ्ग और फल भी सत्सङ्ग, अन्य साधन डार, पात, फूल हैं। यथा सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अग। तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग। ऊपर कह भी आये हैं कि 'मुद मगलमय सत समाजू'। सो इससे उपक्रम करके 'सतसगति मुद मगल मूला' से उपसहार कर रहे हैं।

सठ सुधरहि सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई॥
बिधि[1] बस सुजन कुसगति परही। फनि मनि सम निज गुन अनुसरही॥५॥

अर्थ · शठ भी सत्सङ्गति पाकर सुधर जाते है, पारस के छू जाने से लोहा सुन्दर धातु हो जाता है। यदि दैवयोग से सज्जन कुसङ्गति मे पड जाते है, तो वे साँप की मणि के समान अपने गुणो का ही अनुसरण करते हैं।

व्याख्या साधारण पुरुषो का लाभ कहकर शठ का भी लाभ कहते हैं। शठ कपटी होता है, हठी होता है, किसी की सुनता नही। यथा कपट सार सूची सहस, बाँधि वचन पर वास। करि दुराव चह चातुरी, सो सठ तुलसीदास। सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। शठ लोहा है, पर सन्त पारस हैं, उनके स्पर्श मात्र से लोहा सोना हो जाता है, शठ का कायापलट हो जाता है, वह कुधातु से सुधातु हो जाता है, पर पारस नही हो सकता, क्योकि सन्त पैदा होते है, बनाये नही जाते। यथा पर उपकार वचन मन काया। सत सहज सुभाउ खगराया। भावार्थ यह कि सत्सग के लेश से शठ का व्यवहार ही दूसरा हो जाता है।

सुजन कुसगति चाहते नही, उससे दूर भागते है, पर दैवयोग से कुसङ्ग मे पड जाते है, पर उन पर कुसग का प्रभाव कुछ भी नही पडता। मणि सर्प के सिर मे रहती है, पर उसके अघ अवगुण का ग्रहण नही करती, वह विष हरण करती है और दुःख दरिद्र को दूर करती है। यथा अहि अघ अवगुन नहि मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई।

सत्सग के गुण कथन के बाद शठ के कुसग मे पडने और साधु के कुसग मे पडने की व्यवस्था कही। अब सन्त समाज के सरदार स्वय सन्त की महिमा कहते हैं। सन्त समाज की महिमा तो कुछ कही, पर स्वय सन्त की महिमा कहने मे ग्रन्थकार अपने को सर्वथा असमर्थ पा रहे हैं। यथा

१. यहाँ अवज्ञा अलङ्कार है।

विधि हरिहर कवि कोविद[1] बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहि जात न कैसे । साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥६॥

अर्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कवि, पण्डित की वाणी साधुओ की महिमा कहने मे सकुचाती है, वह मुझसे कैसे नही कही जाती, जैसे साग भाँजी बेचनेवाला मणियो के गुणगण नही कह सकता ।

व्याख्या इतने बडे लोगो की वाणी जब साधु महिमा कहने म सङ्कुचित होती है, तब ग्रन्थकार कहते है कि मेरी क्या गिनती है ? स्वय रामजी कहते है, कि 'सुनु मुनि साधुन के गुन जेते । कहि न सकहि सारद श्रुति तेते । नही कह सकते, इसलिए कहने म सङ्कोच है । जयन्त ब्रह्मधाम, शिवपुर आदि सभी लोका म व्याकुल होकर घूमा, पर किसी ने उसे बैठने को नही कहा, पिता ने भी नही रखा, पर नारद साधु है, उनसे नही देखा गया । यथा धरि निज रूप गयउ पितु पाही । राम विमुख राखा तेहि नाही नारद देखा बिकल जयता । लागि दया कोमल चित सता । पठवा तुरत राम पहि ताही । कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही । रामविमुख पर भी दया करना सन्त का ही काम है ।

साग भाँजीवाला शाक का ही गुण नही कह सकता, वह मणिगण के गुणो को क्या जाने, जिसे जानने म बडे-बडे जौहरी चक्कर म पड जाते है, सो ग्रन्थकार कहते है कि विधि हरिहर कवि कोविद जौहरी है, जब वे सन्त की महिमा नही कह सकते तो मै तो ग्राम्य कवि हूँ, मै कैसे कह सकता हूँ । यथा बरनै तुलसीदास किमि अति मति मद गँवार ।

दो बदौ सत समान चित, हित अनहित नहि कोइ ।
अजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगध कर दोइ ॥३॥

अर्थ मै सन्त की वन्दना करता हूँ, जिसका चित्त समान ह, न कोई उनका मित्र है न शत्रु ह, जैसे अञ्जलि म आये हुए अच्छे फूल दोना हाथो को बराबर सुगन्धित कर दते हैं ।

व्याख्या अब सन्त की स्तुति करके वन्दना करते हैं । चेतन जीव मे उपमा नही मिलती, अत जड की उपमा देते है । ऐसी सम दृष्टि अच्छे फूलो मे ही सम्भव है । वह यह नही विचारता कि दक्षिण हाथ ने ही उसे तोडा है । अत वह अनुग्रह का पात्र नही है और बाये हाथ ने उसे आश्रय प्रदान किया है । अत विशेषरूप से उस पर अनुग्रह करना चाहिए । वह दोनो पर समान रूप मे अनुग्रह करता है । दोनो को सुगन्धित कर देता है । इसी भाँति सन्त अपने अपकारी और उपकारी के ऊपर समान रूप मे अनुग्रह करते है । यह सन्त का विशेष गुण है, इसकी नकल नही की जा सकती । यथा उमा सत कइ इहै बडाई । मद करत जो करै भलाई । ऐसे उपकारी सन्त की ग्रन्थकार वन्दना करते हैं ।

---

१ सार्वज्ञस्य विदो वेत्ता कोविद रचिता बुधं । श. त्रि वेदवेत्ता को कोविद कहते ह ।

केतु कालग्रह है, इसके उदय से देश का देश आपद्ग्रस्त हो उठता है। यथा : दुष्ट उदय जग आरति हेतू। यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू। इसी भाँति खलगण के उदय से ससार पर विपत्ति आती है। जब जब ससार पर विपत्ति आई है, तब तब दुष्ट के उदय से ही आई है। खल के पक्ष मे 'उदय' का अर्थ बढोत्तरी है।

'मोह निसा सब सोवनिहारा' पर सबकी निद्रा और कुम्भकर्ण की निद्रा मे बडा अन्तर है। उनकी निद्रा दीर्घकालीन थी और उन्हे जगाना असाधारण व्यापार था और उनके जागने पर त्रैलोक्य सन्त्रस्त हो उठता था। यथा करइ पान सोवै षटमासा। जागत होइ तिहूपुर त्रासा। कुम्भकर्ण का जागना कोई नही चाहता था। इसलिए कहते है कि दुष्ट कुम्भकर्ण की भाँति यदि सोते रहे तभी अच्छा है।

'अन्मुकुटादिषु' इस सूत्र से केतु का केत रूप हो गया। हित शब्द 'लिए' के अर्थ मे भी आता है, यथा मोहि हित महेउ बहुत सतापू।

पर अकाज लगि तनु परिहरही। जिमि हिमि उपल कृपी दलि गरही॥
बदौ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनहि पर दोषा॥४॥

अर्थ जो दूसरो का अकाज करने के लिए शरीर तक का त्याग कर देते है, जैसे ओले खेती का नाश करके स्वय गल जाते है। मै खलो की वन्दना करता हूँ, जो शेष की भाँति हजार मुख से परदोष का सरोष वर्णन करते है।

व्याख्या दूसरे की हानि सा प्रिय उन्हे कोई पदार्थ नही है। 'देह प्रान सम प्रिय कछु नाही'। सो दूसरे की हानि के लिए वे उसका भी परित्याग कर सकते है। इनकी उपमा योग्य भी कोई चेतन पदार्थ नही है, अत जड से ही उपमा दी है। ओला गल गलकर नष्ट हो जाता है, पर खेती का नाश तो पहिले ही कर डालता है।

पहिली चौपाई 'पर अकाज लगि तनु परिहरही। जिमि हिमि उपल कृपी दलि गरही।' मे खलगण की मति का वर्णन किया। दूसरी 'हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।' से उनकी कीर्ति का वर्णन किया। तीसरी 'जे पर दोष लखहि सहसाँखी। परहित घृत जिनके मन माखी।' से उनकी गति का वर्णन किया। चौथी 'तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।' तथा 'उदयकेतु सम हित सब ही के।' से उनकी भूति का वर्णन किया और पाँचवी 'पर अकाज लगि तनु परिहरही।' मे उनकी भलाई का वर्णन किया। यहाँ तक खलगण का वर्णन है। चक्र का वर्णन पूरा होने पर स्वय खल की वन्दना करते हैं।

प्रलय काल मे शेप सरोष होते है, तब सहस्रो मुखो से ज्वालमाला वमन करते है। यथा प्रलय पावक महा ज्वालमाला वमन। ये प्रलय की ज्वाला की भाँति परदोष वर्णन करते है। खलगण का क्रोध महिषेश सा था, पर स्वय गल का शेष सा प्रलयकारी क्रोध है।

पुनि प्रनवौ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्रसम बिनवौ तेही। संतत सुरा नीक हित जेही॥५॥

अर्थ फिर मैं पृथुराज[1] के समान उनको मानकर प्रणाम करता हूँ जो दस हजार कानो से पर अघ दूसरो की बुराइयाँ सुनते है। फिर इन्द्र के समान उनको मानकर विनय करता हूँ, जिन्हे सदा सुरानीक देवसेना या सुरा मद्य नीक हित है।

व्याख्या खल को दूसरे की बुराई बडी प्रिय है। महाराज पृथु का भगवद्-गुणानुवाद बडा प्रिय था, इसलिए भगवान् से वरदान माँगा कि आप का यश सुनने के लिए मेरे कानो को दश हजार कानो का बल हो जाय। सो उनके कानो की शक्ति दशसहस्रगुणित हो गई। इन खलो को स्वभाव से ही वह सामर्थ्य प्राप्त है, ये दूसरो का पाप दश हजार कानो से सुना करते हैं। भाव यह कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म पाप चर्चा, इन्हे अनायास स्पष्ट दशसहस्रगुणित होकर प्रतिभात होती है। कितनी ही गुप्तचर्चा हो ये सुन ही लेते हैं, और बडे प्रेम से सुनते हैं।

यहा 'सुरानीक हित' शब्द श्लिष्ट है। इन्द्र के पक्ष म इसका अर्थ होगा 'देवताओं की सेना का हित होना' और खलपक्ष म अर्थ होगा मद्य शराब का नीकहित होना'। भावार्थ यह कि जिस भाँति देवसेना से इन्द्र के हृदय म उल्लास होता है, वैसा ही उल्लास खल को सुरा से होता है, जिस भाँति बिना देवसेना के इन्द्र निर्बल रहते हैं, उसी भाति बिना सुरा के खल की तबीयत खराब हो जाती है।

वचन वज्र जेहि सदा पिआरा। सहसनयन परदोष निहारा ॥६॥

अर्थ जिनको वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और हजारो आखो से पराया दोष देखते है।

व्याख्या जैसे इन्द्र को अपने वज्र का भरोसा रहता है, उसी भाँति खल को अपने वाग्वज्र का भरोसा रहता है। इन्द्र को वज्र बडा प्यारा है, सदा धारण किए रहते है उसी भाँति खल के होठो पर वाग्वज्र प्रतिक्षण बना रहता है। न इन्द्र का वज्र कोई सह सके और न खल के वचन सह सके। इन्द्र सहस्र नेत्रो से देवताओ का हित देखते हैं खलगण परदोष को सहस्र नेत्रो स लखते हैं, पर स्वय खल उसको प्रेम से निहारते है। तीनो लोक के बडे इकट्ठे हुए तब खल की खलता तौली गई। १ स्वर्ग के बडे, यथा बहुरि सक्र सम बिनवौ तेही। २ पृथ्वी के बडे, यथा पुनि प्रनवौ पृथुराज समाना और ३ पाताल के बडे, यथा बदौ खल जस सेष सरोसा।

दो उदासीन अरिमीत हित, सुनत जरहि खलरीति।
जानु पानि जुग जोरि जनु, बिनती करइ सप्रीति ॥८॥

अर्थ खल की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु और मित्र के हित का

---

१ राजा पृथु, राजा वेन के पुत्र थे वेन अधर्मी राजा था ऋषियो ने उसे मन्त्र से मारा और उसके दाहिने हाथ को मथा जिससे पृथु की उत्पत्ति हुई। ये बडे भगवद्भक्त थे इन्होने भगवान् से वरदान माँगा था कि आपके चरित सुनने के लिए मेरे कानो म दस हजार कानो की शक्ति आ जाय।

सुनते ही जल उठते हैं। अत दोनो हाथ पाँव जोडकर यह सेवक प्रीति के साथ विनती करता है।

व्याख्या जिस भाँति सन्त समानचित्त होते हैं, उनका न कोई हित है न शत्रु है, वे शत्रु मित्र दोनो का कल्याण चाहते है, उसी भाँति खल भी उदासीन, शत्रु और मित्र सब पर समान दृष्टि रखते हैं। वे किसी का कल्याण सहन नही कर सकते। किसी के कल्याण की बात सुनते ही उनके कलेजे मे आग लग जाती है। वे सन्तो के जोडीदार हैं। दोप के भी अत्यधिक उत्कर्ष से उसमे अलौकिकता आ जाती है। यथा देखि खलन अधिकार सुप्रभु मेरी भूरि भलाई भनिहैं। इसी से उनकी उपमा शेष, महाराज पृथु और देवराज इन्द्र से दी गई है।

यद्यपि जानु का अर्थ घुटना है, परन्तु यहाँ जानु उपलक्षण है, पाँव के अर्थ मे आया है। अत्यन्त विनय प्रार्थना में हाथ पाव दोनो जोडना कहा जाता है, यथा 'बहुत हाथ पाँव जोडा पर सुनवाई न हुई।' इसलिए गोसाँई जी भी दोनो हाथ पैर जोडकर प्रीति के साथ विनती करते हैं। अर्थात् विनती करने मे ये कपट को स्थान नही देते। 'बहुरि वदि खलगन सति भाएँ' से उपक्रम करके 'विनती करौं सप्रीति' से उपसहार कर रहे हैं। 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत', इस सिद्धान्त के अनुसार अपने को सेवक भी मान रहे हैं।

मै अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा ॥
वायस पलिअहि अति अनुरागा। होहि निरामिप कबहु कि कागा ॥१॥

अर्थ मैंने अपनी ओर से तो निहोरा कर दिया। वे अपनी ओर से चूक न करेगे। वायस यदि अति अनुराग से पाले जाँय, तो भी क्या काग निरामिप हो सकता है।

व्याख्या गोस्वामी जी कहते हैं कि निहोरा करना मेरा काम है, क्योकि चराचर विश्व भगवान् का रूप है, खल भी कोई दूसरे नही हैं, अत मैंने अपना कर्त्तव्य कर दिया, वे भी अपना कर्त्तव्य पालन करेगे, खलता करने मे न चूकेंगे। यह मैं जानता हूँ। मैंने विनय प्रार्थना उन्हे अपने स्वभाव से च्युत करने के लिए नही की है। स्वभाव किसी का हटाये नही हटता। वायस कौवे स्वभाव से ही अशुचिभक्षी होते हैं। उन्हे चाहे कितने ही आदर से पाला जाय, पर वे 'काक' ठहरे अपने कुत्सित स्वभाव को नही छोड सकते। वे निरामिपभोजी हो नही सकते उन्हे दूध मे आमिप की भावना होगी और अण्डे उन्हे फल मालूम होगे। क्वाकाक इति कुत्सायाम्। यहाँ काक शब्द उनके कुत्सित स्वभावद्योतन के लिए आया है।

बदौ सत असज्जन चरना। दुख प्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दुख दारुन देई ॥२॥

अर्थ अब मैं सज्जन और दुर्जन दोनों के चरणों की वन्दना करता हूँ। दोनो दुखदाई हैं, पर कुछ अन्तर कहा जाता है, एक बिछुडते ही प्राण ले लेते हैं और एक मिलते ही दारुण दुख देते हैं।

व्याख्या सन्त और खल की पृथक् पृथक् वन्दना की, क्योंकि एक का गुण-कर्म स्वभाव दूसरे से विपरीत है। सन्त के जोड होने से खल की वन्दना की। अब दोनो की साथ वन्दना करते हैं, क्योंकि 'दुखदाई' होने का गुण दोनो मे समान है, सयोग वियोग मात्र का बीच है।

सन्त बिछुडते समय मरणाधिक कष्ट देते है। यथा जौ पै प्रिय विधि कीन्हा। तौ कम मरन न माँगे दीन्हा असन्त मिलते ही दारुण दुःख देते है। उनसे मिलते ही अपयश लगता है और 'सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू'। अत इनसे भी प्राणान्त कष्ट होता है।

उपजहिं एक सग जग माही। जलज जोक जिमि गुन बिलगाही ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥३॥

अर्थ दोनो एक साथ ससार मे पैदा होते हैं, पर कमल और जोक की भाति उनके गुण अलग अलग होते है। साधु अमृत और असाधु मदिरा के समान हैं। दोनो का पैदा करनेवाला ससाररूपी अगाध समुद्र एक ही है।

व्याख्या साधु और असाधु होने मे जन्म कारण नही है, जैसे जल मे कमल भी पैदा होता है, जोक भी पैदा होती है, पर दोनो के गुणा मे बडा अन्तर है। कमल रक्तवर्धक है और जोक रक्तशोषक है। कमल जल मे रहकर भी निर्लेप रहता है, जोक जल मे लिप्त आर्द्र रहती है। कमल स्थिर है, जोक की वक्रगति है। यथा चलै जोक जल वक्रगति जद्यपि सलिल समान। इसी भाति साधु असाधु दोनो ससार मे उत्पन्न होते हैं, पर साधु द्वारा क्षमा-दयादि गुणो की वृद्धि होती है और खलो द्वारा उनका ह्रास होता है। यथा सत सग अपवर्ग कर, कामी भव कर पथ। सत, ससार मे रहकर भी उसमे निर्लेप रहते है और खल उसी मे डूबा रहता है। साधु स्थिरबुद्धि होते हैं तथा खल की कुटिल बुद्धि होती है। पृथ्वी मे उत्पत्ति कहकर माता की एकता कही।

समुद्रमन्थन से सुधा सुरा दोनो की उत्पत्ति हुई। अत समुद्र को जनक पिता कहा। जग और जलधि समुद्र मे, अगाध होना साधारण धर्म है। इसी ससार मे ही साधु, असाधु की उत्पत्ति हुई द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च। पर साधु अमृत के समान लाभकारी है और खल मदिरा के समान अपावन है।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू ॥४॥

अर्थ भले और बुरे अपनी-अपनी करनी से यश और अपयश का ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। अमृत, चन्द्र, गङ्गा और साधु भले हैं। विप, अग्नि, कलिमल की नदी और व्याधा अनभल हैं।

व्याख्या भल और अनभल होने का कारण अपनी करतूति है, जन्म नही है। भले के लिए सुयश ऐश्वर्य है और बुरे के लिए अपयश ऐश्वर्य है। यथा मोइ रावन जग विदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी। साधु का वचन अमृत

मा, दर्शन चन्द्र सा और स्पर्श गङ्गा सा है। यथा मुख देखत पातक हरैं परसत कर्म बिलाहिं। वचन सुनत मन मोह गत पूरब भाग मिलाहिं। और खल ठीक इसके विपरीत है। 'व्याधा' के हिंसक होने से खल का उपलक्षण माना।

गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥५॥

अर्थ इनके गुण और अवगुण को सब कोई जानते हैं, पर जिसे जो भाता है वही उसे अच्छा लगता है।

व्याख्या यह बात नही है कि असत्यवादी न जानता हो कि झूठ बोलना बुरा है, चोर यह न जानता हो कि चोरी करनी बुरी बात है, यह सब खूब जानता है फिर भी उसे प्रकृति-वश झूठ बोलना, चोरी करना ही अच्छा लगता है। अत बुरे या भले होने मे अज्ञान कारण नही है, अपनी रुचि कारण है।

दो भलो भलाइहि पै लहै, लहै निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु ॥५॥

अर्थ भले भलाई से ही शोभा को प्राप्त होते हैं और नीच निचाई से शोभा को प्राप्त हैं, अमृत की अमरता सराही जाती है और विष की मारकता सराही जाती है।

व्याख्या उत्कर्ष की ही शोभा है, अपकर्ष की नही। सन्तो मे गुणोत्कर्ष है और खलो मे दोषोत्कर्ष है। अत सन्तो के गुणागार होने मे शोभा है। यथा गुनागार ससार दुख रहित बिगत सदेह। तजि मम चरन सरोज प्रिय जिनकहुँ देह न गेह। और खलो के दोषागार होने मे शोभा है। यथा दिगपालन मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा। लोलप जाके बदी गाना, तथा वेद पढैं विधि सभु सभीत पुजावन रावन ते नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी नित दूरहि ते सिर नावैं।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। सग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥१॥

अर्थ खलो के पाप और अवगुण की एव सज्जनो के गुणो की गाथाएँ अपार और अथाह समुद्र है, इसी से मैने कुछ गुणो और दोषो का वर्णन किया है, क्योकि बिना पहिचान के सग्रह या त्याग हो नही सकता।

व्याख्या न तो खलो के पाप और अवगुण की गहराई का अन्त है, न साधु के गुणो की गहराई और विस्तार का अन्त है। इसलिए उनकी गाथाओ का भी अन्त नही है। जो कुछ लिखा गया है, वह प्रादेश मात्र है। तीन असुरो, तीन राजाओ, तीन देवताओ का दृष्टान्त दिया गया है यह दिखाने के लिए कि तीनो लोक के पराक्रमी उनके सामने नगण्य हैं। लिखने की आवश्यकता इसलिए पडी कि साधुओ तथा उनके गुणो के सग्रह का एव खलो के तथा उनके पाप और अवगुणो के त्याग

१ यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है।

का विधान है और यह बिना उनके पहिचाने हो नही सकता। इसलिए थोडा-बहुत गुण-दोष कहना पडा। 'खघथधमाह्' प्रा प्र २ २७। इस सूत्र से 'थ का ह' हो गया, अत गाथा का गाहा रूप हो गया।

भलेउ पोच सब विधि उपजाये। गनि गुन दोष वेद बिलगाये ॥
कहहि वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंचु गुन अवगुन साना ॥२॥

अर्थ विधाता ने भले बुरे सभी पैदा किये है, पर वेदो ने उनके गुण दोष गिनकर अलग कर दिये है। वेद, पुराण और इतिहास बतलाते हैं कि ब्रह्मा का प्रपञ्च गुण और अवगुण मे सना हुआ है।

व्याख्या भवसागर के कर्ता ब्रह्मा है। उस सागर मे गुण दोष सब मिलकर एक हो गये हैं। किसी की सामर्थ्य नही कि उन्हे अलग कर सके। वेद का बडा भारी कार्य यह है कि उसने गुण दोष को गिनकर अलग कर दिया। अब उसी को लेकर चाहे जितने मत मतान्तर बने, पर आरम्भ में इनको अलग अलग कर बतला देना वेद का ही काम था। यदि कहिये कि मनुष्य ने अपने पसन्द के अनुसार गुण दोष को अलग किया तो यह नही हो सकता। सबकी पसन्द अलग-अलग है। बुरे को बुराई पसन्द है इसलिए बुराई गुण नही हो सकती। हानि लाभ भी इसका ठीक मापक नही है। प्रायेण पुण्य से ही हानि और पाप से ही लाभ होते देखा जाता है, और न बहुमत ही ठीक मापक हो सकता है, क्योकि बहुमत सदा मूर्खो का ही रहता है। अत वेद के अतिरिक्त गुण दोष का विवेचक कोई हो नही सकता।

वेद से अङ्ग और उपाङ्ग के सहित ऋक्, यजु और साम का ग्रहण है। इतिहास और पुराण पाँचवाँ वेद है। गुण और दोष ऐसे सने हुए हैं, जैसे आटा और पानी। सने हुए आटे से आटा और पानी का शुद्ध स्वरूप पृथक् करना असाध्य व्यापार है। इसी भाँति गुण और दोष का शुद्ध स्वरूप, शास्त्रदृष्टि से दिखाई पडता है। गुण मे सूक्ष्म रूप से अवगुण भी रहता है और अवगुण मे भी सूक्ष्म रूप से गुण अवस्थान करता है। जैसे

दुख सुख पाप पुन्य दिनराती। साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू ॥३॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा ॥४॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुनदोष बिभागा ॥५॥

अर्थ दुख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, साधु और असाधु, सुजाति और कुजाति, दानव और देवता, ऊँच और नीच, अमृत और विष तथा सुजीवन और मृत्यु, माया और ब्रह्म, जीव और जगदीश, लक्ष्मी और दरिद्रा, रङ्क और राजा, काशी और मगध, देवनदी और कर्मनाशा, मारवाड और मालवा,

ब्राह्मण और गोभक्षक, स्वर्ग और नरक तथा प्रीति और वैराग्य : ये सने हुए हैं परन्तु वेद और शास्त्र ने इनके गुणो और दोषो को विलगाया है।

व्याख्या : यहाँ सब कुछ सापेक्ष है, निरपेक्ष कुछ भी नही, दु ख मे सुख सना है और सुख मे दु ख सना है, दोनो मे से एक का शुद्ध रूप दुर्घट है। इसी भाँति सभी द्वन्द्वो मे समझ लेना चाहिए। दु ख सुख कहकर फल कहा, यथा फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे। पाप पुण्य कहकर बीज कहा, यथा पाप पुन्य द्वै बीज है। वे स । 'दिनराती' से काल कहा। दिन रात की व्यवस्था ब्रह्मदेव के दिन रात तक चली जाती है। यथा सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदु । रात्रि युगसहस्रान्ता तेऽहोरात्रविदो जना ॥ एक सहस्र युग का ब्रह्मदेव का दिन होता है और उतनी ही बडी रात होती है। जो इसे जानता है, वह रात्रि और दिन का जानने वाला है। इसी बात को 'निसि अरु दिवस निमेष अपारा' कहकर द्योतित किया। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती, दानव देव और ऊँच नीच से कर्त्ता भोक्ता कहा, यथा बवै सो लवै निदान। वै म । अमिअ मृत्यु तथा माहुर सुजीवन से पथ्य कुपथ्य कहा। यथा विषय कुपथ्य पाइ अकुरे। सजम यह न विषय कर आसा। माया ब्रह्म से मिथ्या और सत्य कहा। यथा समुझि न परै झूठ का साँचा। जीव और जगदीश से अश और अशी कहा। यथा ईश्वर अश जीव अविनासी। लच्छि अलच्छि और रक अवनीस से ऐश्वर्य-अनैश्वर्य कहा। 'काशी मग, सुरसरि कविनासा[2]। मरु मारव' से देश भेद कहा। महिदेव गवासा से देवासुर सर्ग कहा। सरग नरक से भोग की पराकाष्ठा कही, अनुराग विराग से आकर्षण विप्रकर्षण कहा। इन द्वन्द्वो मे से निरपेक्ष कोई नही, देखने म एक दूसरे के विरोधी मालूम पडते है, पर सूक्ष्मरूपेण एक का गुण दूसरे मे वर्तता है।

'अधो मनयाम् प्रा प्र ३ २' से लक्ष्मी के 'म' का लोप होकर लक्षी रूप हुआ। तब सूत्र लगा 'अक्ष्यादिपु च्छ प्रा प्र ६ ३०' इससे क्ष का च्छ हो गया। तब लच्छी रूप सिद्ध हुआ।

दो जड चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हस गुन गहहि पय, परिहरि वारि विकार ॥६॥

अर्थ विधाता ने जड और चेतन तथा गुण और दोषमय ससार को बनाया। हसरूपी सत, दूधरूपी गुण को ग्रहण करते है और जलरूपी दुर्गुण को छोड देते है। सशयान् हिनस्ति इति हस । जो सशयो का नाश करे उसे हस कहते है।

व्याख्या जड चेतन मिलकर बीस जोडे हुए। जोडो मे से एक म गुण का

---

१ तुलसी यह तन खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप पुण्य द्वै बीज है, बवै सो लवै निदान॥

२ राजा त्रिशङ्कु जब स्वर्ग से गिराये जाने पर अधोमुख होकर अन्तरिक्ष मे लटके, तो उनके मुख से जो लार गिरी। उससे कर्मनाशा नदी हुई और जहाँ तक उनके रथ की छाया पडी वह देश मगध कहलाया। वह २४ योजन लम्बा और १६ योजन चौडा है।

बाहुल्य है और दूसरे मे दोष का बाहुल्य है। वेद ने तो गुण दोष का स्वरूप अलग-अलग दिखला दिया, पर गुण को अलग करके ग्रहण कर लेना विवेकी सन्तो का काम है। हंस मिले हुए नीर में से क्षीर को ग्रहण कर लेता है और जलाश को छोड देता है। ब्रह्म भी कहे सुने जाते हैं, इतने अश मे वे भी विधि प्रपञ्च के भीतर है। माया से परे कहकर ही उनका वर्णन होता है, बिना माया का उल्लेख किये ब्रह्म का वर्णन दुरूह व्यापार है। इसलिए प्रपञ्च की गणना मे उन्हे भी गिना दिया, नही तो ब्रह्म सर्वथा निष्प्रपञ्च हैं।

अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई॥१॥

अर्थ जब विधाता इस प्रकार का विवेक देते हैं, तब मन दोषो को छोडकर गुणो मे लग जाता है, काल स्वभाव और कर्मो की प्रबलता से, भले भी प्रकृति स्वभाव के वश होकर भलाई में चूक जाते हैं।

व्याख्या गुण को पृथक् करके ग्रहण करने का विवेक क्रियासाध्य नही है, यह तो विधाता की देन है। ऐसे विवेकी का मन गुण म लग जाता है, दोष की ओर जाता ही नहीं। 'सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय'। अत सन्त होना किसी के वश को बात नही है, पर उनके सङ्ग के लिए प्रयत्न मात्र किया जा सकता है। 'काल कर्म गुण स्वभाव सबके सीस तपन' इसलिए कहते है कि काल, स्वभाव और कर्म की यहाँ प्रबलता है। 'काल सदा दुरतिक्रम भारी।' 'स्वभावो दुरतिक्रम।' 'कठिन कर्मगति जान विधाता।' अत काल, स्वभाव और कर्म का अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है। जीव काल, कर्म, स्वभाव, गुण से घिरा माया मे प्रेरित होकर नाचा करता है। यथा फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। साधु लोग इनमे सदा सावधान रहते हैं, फिर भी कभी चूक हो ही जाती है। प्रकृतिं यान्ति भतानि निग्रह किं करिष्यति। प्राणिमात्र अपनी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं, निग्रह क्या करेगा। जान-बूझकर भले लोग चूक नही करते पर चूक होने पर दोष दु ख होता है, कलङ्क लगता है।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेही। दलि दुख दोष बिमल जसु देही॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसगू। मिटइ न मलिन सुभाव अभगू॥२॥

अर्थ : उसे हरि इस भाँति सुधार लेते हैं, जैसे शरीर को सुधार लिया जाता है और दुख दोष को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही खल भी सुसङ्ग पाकर भलाई कर बैठते हैं, पर उनका मलिन स्वभाव नही जाता, क्योकि वह मिट नही सकता।

व्याख्या जैसे किसी के शरीर मे धूलि लग जाती है तो वह उसे झाड देता है, इसी भाँति भले की चूक को भगवान् सुधार लेते हैं क्योकि साधु उन्ही की मूर्ति हैं और दु ख दोष का नाश करके निर्मल यश देते हैं। यथा मा मैं मन विधि कीन्ह

१ यहाँ अतद्गुणालङ्कार है।

ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई। कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर। दूपन भे भूपन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर। जहाँ 'हरिजन' पाठ है, वहाँ ऐसा अर्थ करना चाहिए कि भगवान् के भक्त जिस भाँति उस चूक को सुधार लेते हैं इसी भाँति खल से भी चूक हो जाती है, सत्सङ्ग मे पडकर भलाई कर बैठते हैं, पर उनका स्वभाव नही मिटता। अत. कभी भलाई या बुराई कर बैठना साधु या खल का परिचायक नही है।

लखि सुवेप जग वंचक जेऊ। वेप प्रताप पूजिअहि तेऊ ॥
उघरहिं अंत न होहि निवाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू ॥३॥

अर्थ : अच्छा वेप बनाये देखकर, वेप के प्रताप से, ससार के ठगनेवालो की भी पूजा होती है, परन्तु अन्त उनका खुल जाता है, वेप का निर्वाह उनका किया नही होता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का हुआ।

व्याख्या : तथैव साधु वेप साधुता का परिचायक नही है, न लिङ्गं धर्मकारणम्, न वेप द्वारा पूजित होना परिचायक है। खल भी साधु वेप धारण कर लेते है और उनकी पूजा भी होने लगती है। वेप तो वे बनाये रहते हैं पर तदनुकूल गुण, कर्म, स्वभाव का सँभार वे नही कर सकते। कालनेमि ऋषि बना, रावण संन्यासी बना, राहु देवता बना, क्रम से उनका सम्मान भी हनुमानजी, जानकीजी तथा देवताओ द्वारा हुआ, पर पीछे से भेद खुल गया।

यहाँ राहु की कथा मानस के बाहर की चिड़िया[1] है। यहाँ पूर्वरूपालङ्कार है।

कियेहु कुवेप साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥
हानि कुसग सुसंगति लाहू। लोकहुँ वेद विदित सब काहू ॥४॥

अर्थ : कुवेप किये रहने पर भी साधु का सम्मान होता है, जैसे ससार मे जाम्बवान् और हनुमान् का सम्मान होता है। कुसङ्ग से हानि और सुसङ्ग से लाभ होता है, यह लोक और वेद मे प्रकट है और सब लोग जानते हैं।

व्याख्या असाधु वेप मे भी साधु का सम्मान होता है। कितने महात्मा अव्यक्तलिङ्ग घूमा करते हैं, जिसमे कोई उनका मान न करे। क्योकि लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाह। पर वे भी छिप नही सकते। वन्दर वेप मे हनुमान् और भालू वेप में जाम्बवान् का कौन सम्मान नही करता ?

निचोड यह है कि कुसग से हानि और सुसग से लाभ होता है। १ मति, २ कीर्ति, ३ गति, ४ भूति और ५. भलाई, सुसङ्ग से मिलती है और कुसङ्ग से १ कुमति, २ अकीर्ति, ३ दुर्गति, ४. अनैश्वर्य और ५ बुराई मिलती है। इस

---

१ समुद्र मन्थन मे अमृत निकला और मोहिनी मूर्ति धारणकर भगवान् ने दैत्यो से अमृत घट ले लिया और देवताओं को अमृत परोसने लगे तो राहु भी देवता का रूप धारण कर देवपंक्ति मे बैठ गया। सूर्य चन्द्र के लखाने पर भगवान् ने राहु का सिर काट दिया, पर वह अमृत पी चुका था। इसलिए सिर और धड दोनो जीते रह गये। ब्रह्मदेव की आज्ञा से वे दोनो ग्रह हो गये और राहुकेतु कहलाये।

विषय में सबका ऐकमत्य है। सुसङ्ग और कुसङ्ग से इन पाँचो की प्राप्ति को उदाहरण देकर दिखलावेंगे।

'आल्विल्लोल्लाल वन्तेन्तामतुप' प्रा० प्र० ४ २५। आलु, इल्ल, उल्ल, वन्त, इन्त इत्येते आदेशा मतुप स्थाने भवन्ति। इससे जाम्बवान् का जामवन्त रूप सिद्ध हुआ।

गगन चढइ रज पवन प्रसगा। कीचहि मिलइ नीच जल सगा॥
साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं रामु देहि गनि गारी॥५॥

अर्थ वायु के सङ्ग से धूल आकाश मे चढ जाती है और वही नीच जल के साथ कीचड मे मिल जाती है। साधु के घर मे तोता मैना राम स्मरण करते है और असाधु के घर मे गिन गिनकर गालियाँ देते हैं।

व्याख्या सत्सङ्ग और कुसङ्ग से ३ सुगति दुर्गति का उदाहरण देते हैं। पवन की उच्चगति है अत पवन को ऊँचा कहा। उसके सङ्ग से धूलि भी आकाश म चढ जाती है। जल की नीची गति है इसलिए उसे नीच कहा। उसी धूलि का जब जल से साथ होता है तो वह कीचड मे मिल जाती है।

शुकसारी से १ सुमति कुमति का उदाहरण देते हैं। साधु के घर दिन रात भगवन्नामोच्चारण होता है, खल के घर गाली बकी जाती है, तो उसका प्रभाव शुक सारिका पर पडता है। नही तो पक्षी को भगवन्नामस्मरण या गालिप्रदान से ही क्या सम्बन्ध। गिनकर गाली देने का भाव यह कि जितनी गाली देने का अभ्यास उस खल को है, उतनी ही गालियो का उच्चारण उसी क्रम से उसके तोता-मैना किया करते हैं।

धूम कुसगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल सघाता। होइ जलद जगजीवन दाता॥६॥

अर्थ कुसङ्ग मे पडकर धूआँ कारिख हो जाता है, पर वही सुन्दर स्याही है, जिससे पुराण लिखा जाता है और वही धूआँ जल, अग्नि और वायु के सयोग से ससार को जीवन देनेवाला बादल होता है।

व्याख्या सत्सङ्ग और कुसङ्ग से ४ ऐश्वर्य और अनैश्वर्य का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि धूम कारिख होकर दुर्दशा को प्राप्त होता है और वही स्याही होकर पुराणो को लिपिबद्ध करके पूजनीय होता है।

कवि मूर्धन्य कालिदास भी लिखते हैं 'धूमज्योति सलिलमरुता सन्निपात क्व मेघ' धूआँ अग्नि, जल और वायु के सयोग से होता है। उससे ससार को जीवन दान मिलता है। यहाँ जीवन शब्द मे श्लेष है। जीवन का अर्थ जल भी है। मेघ से जल मिलता है और तद्द्वारा जीवन रक्षा होती है।

दो ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग॥७॥

समप्रकास[1] तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥७क॥
जड़ चेतन जग[2] जीवजत, सकल राममय जानि ।
बंदौं सबके पद कमल, सदा जोरि जुगपानि ॥७ख॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गंधर्व ।
बंदौं किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व ॥७ग॥

अर्थ ग्रह, औषधि, जल, पवन और वस्त्र ये सब कुयोग और सुयोग पा बुरे और भले हो जाते हैं। इसे लखनेवाले ही लखते हैं। महीने के दो पखवारे उजेला और अँधेरा समान ही होता है। नाम में भेद विधाता ने कर दिया। को चन्द्रमा का घटानेवाला और दूसरे को बढ़ानेवाला समझकर संसार में को २ सुयश और दूसरे को अपयश दिया ७क । जगत् में जितने जड़ चे जीव हैं सबको राममय जानकर, मैं उन सबके चरण कमलों को सदा हाथ जो कर वन्दना करता हूँ ७ख । देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, प्रेत, पितर, गन्धर्व, कि और निशाचर सबकी वन्दना करता हूँ। सब लोग कृपा करो ७ग ।

व्याख्या एक ही वस्तु देश, काल, और प्रकृति के भेद से सुख और दु:ख पैदा करती है, उसमें निश्चयात्मिका प्रतिष्ठा नहीं है। प्रकृति और मात्रा के भेद भी सुख दु:ख होता है। पापग्रह, तीसरे और ग्यारहवें स्थान के योग में, शुभ देते हैं। शुभ ग्रह आठवें और बारहवें स्थान के योग से मन्द फल देते हैं। च शुभग्रह है, पर क्षीण हो या पाप ग्रह से युक्त हो, तो अशुभ फल देता है। इसी भाँ बुध यदि पाप ग्रह से युक्त हो, तो अशुभ फल देता है। चीनी कफकारक है, पर घृ मधु, अद्रक से युक्त हो तो कफनाशक हो जाती है। कर्मनाशा का जल अपावन है, उसी का योग यदि गङ्गाजल से हो जाय तो पावन है। गङ्गा का जल पावन पर वह मद्य के घट में रख देने से अपावन है। पश्चिम की वायु रोगहर है, वही यदि अनूप देश से होकर आवे तो रोगकारक हो जाय। कपड़ा यदि देवता चढ़े तो पवित्र और मृतक से संयोग हो जाय तो अपवित्र। इस भाँति कुयोग सुयो पाने से सुवस्तु कुवस्तु होती है और कुवस्तु सुवस्तु होती है, पर सब कोई यह ब नहीं समझ सकते। अच्छे लखनेवाले ही इस बात को लखते हैं। यह भलाई बुर का उदाहरण है।

अमावास्या और प्रतिपद की रात्रि को रात भर अँधेरा रहता है औ पूर्णमासी तथा कृष्णपक्ष के प्रतिपद को पूर्ण प्रकाश रहता है। इसी भाँति दो

१ उन्मीलितालङ्कार है।

२ राम सत्य पर ब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते। तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यं जगत्। सनत्कुमार संहिता। अर्थ - रामजी सत्य पर ब्रह्म हैं। राम से कुछ भी पृथक् नहीं इसलिए यह जगत् रामरूप है यह सत्य है, सत्य है।

पक्षो मे प्रकाश और अन्धकार बराबर हो रहता है, पर विधाता ने एक का नाम शुक्ल रक्खा और दूसरे का कृष्ण रक्खा। शुक्लपक्ष मे चन्द्रमा बढता है और। कृष्ण में घटता है। तदनुसार ससार मे शुक्लपक्ष को पोषक शक्ति के योग से यश है, कृष्ण को शोषक शक्ति के योग से अपयश है। यह कीर्ति और अपकीर्ति का उदाहरण है।

'भल अनभल निज-निज करतूती। लहत सुजस अप लोक विभूती' का प्रसङ्ग समाप्त करके अब समष्टि की वन्दना करते है। समष्टि पर भगवत् दृष्टि रखते हुए, सेवक-सेव्य भाव बनाये रखना ही अनन्योपासना है। यथा सो अनन्य अस जाकर मति न टरै हनुमत। मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। अत श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि जड चेतन जितने जीव हैं, सबको राममय जानकर, सबके चरण कमलो की वन्दना सदा दोनो हाथ जोडकर करता हू ख। अत इस समय मङ्गलाचरण के लिए देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, रजनीचर आदि सबकी वन्दना करता हूँ कि सबलोग मुझपर कृपा करे ग।

'हानि कुसग सुसगति लाहू' इस पुरइन से यहा आकर दोहारूपी दो कमल निकले ७ और ७ क तथा 'आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी' इस पुरइन ने भी यहाँ दो कमल दिये ७ ख और ७ ग। इस भाँति यहा चार कमलो का एक गुच्छा बन गया।

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव नभ जल थल वासी॥
सीयराम मय सब जग जानी। करो प्रनाम जोरि जुग पानी॥१॥

अर्थ चार खानि, चौरासी लाख योनि के जीव, धरती और आकाश मे रहते है। सारे जगत् को सीताराम मय जानकर, मै दोनो हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या शास्त्रकारो ने जीवो के प्रकारो की गणना की है। पहिले उनके चार बडे-बडे विभाग हैं १ स्वेदज २ उद्भिज्ज ३ अण्डज और ४ जरायुज। इनमे से, एक-एक मे अनेक[1] लाख योनि जीव रहते है, उनमे से कितने जलमे रहते हैं, कितने धरती पर रहते है और कितने आकाश मे विचरते है। 'जलचर थलचर नभचर नाना' कहकर जो बात कही थी, उसीका विस्तार यहाँ कहा।

पहिले 'राममय' कहा था, यथा सकल राममय जानि। सो भगवती सीता को कोई पृथक् न समझ ले अत तुरन्त 'सीयराममय' कहे देते हैं। तीन बार समष्टि-वन्दना से मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम कहा। 'क ग च ज त द पवा प्रायेण लोप' इस सूत्र से तकार का लोप होकर सीता का 'सीआ' रूप हो गया। 'दीर्घह्रस्वौ मिथो

१ स्थावर तृण-वृक्षादि बीस लक्ष, जलके जीव नवलक्ष, पृथ्वी खोदकर रहनेवाले कूर्म आदि ग्यारह लक्ष, नभचर दशलक्ष, चौपाये तीस लक्ष, बन्दर चार लक्ष। इस प्रकार चौरासी लक्ष योनियाँ है। यथा "स्थावर विंशतेर्लक्ष, जलज नवलक्षकम्। कूर्मादि रुद्रलक्षञ्च, दशलक्ष च पक्षिण। त्रिंशल्लक्ष पशूनाञ्च चतुर्लक्षञ्च वानर। ततो मनुष्यता प्राप्य तत कर्माणि साधयेत्। शास्त्रमारे।

वृत्ती' इस सूत्र से 'आ' का 'अ' हो गया और 'सीअ' रूप हुआ। 'अवर्णे य श्रुति' इससे 'अ' का 'य' होकर 'सीय' रूप सिद्ध हुआ।

जानि कृपाकर किंकर मोहू। सबमिलि करहु छाँडि छल छोहू ॥
निज बुधिबल भरोस मोहि नाही। ताते विनय करौं सब पाही ॥२॥

अर्थ मुझे भी कृपा की खानि राम जी का किंकर समझकर सब मिलकर छल छोडकर छोह करो। मुझे अपनी बुद्धि बल का भरोसा नही है, इसलिए सबसे विनय कर रहा हूँ। जहाँ 'कृपा करि' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना पडेगा कि मुझे भी कृपा करके किंकर जानकर सब कोई मिलकर छोह करो। कृपाकर सम्बोधन भी हो जायगा हे कृपाकर।

व्याख्या बडे का छोटे पर प्रेम करने को छोह कहते है। यहाँ श्री गोस्वामीजी सम्पूर्ण जगत् से विनय करते है कि आप लोग साक्षात् भगवद्रूप हैं। मै भी कृपा की खानि भगवान् का सेवक हूँ। ऐसा जानकर, स्वार्थ को मनमे स्थान न देकर, सब कोई मिलकर मुझपर छोह कीजिये अथवा मुझे भी अपना सेवक जानकर निश्छल रूप से सबलोग मिलकर छोह कीजिये। इसीलिए मैने सबको मिलाकर वन्दना की है। इस वन्दना मे खल का भी समावेश है। अत छल छोडकर छोह करने को कहते हैं। अथवा देव, पितर अपना-अपना भाग पाने के लिए राम-परायण नही होने देते। छल के सहित छोह करते हैं, ऐश्वर्यादि देते हैं। अत श्रीग्रन्थकार छल छोडकर छोह करने की प्रार्थना करते हैं। इन्द्रिय सुरन्ह न ग्यान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई। आवत देखहि विषय बयारी। तब हठि देहि कपाट उघारी।

'आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारिनखोरी' यहाँ ग्रन्थकार अपनी आर्ति विनय और दीनता कहते है। जिसे अपने बुद्धि, बल का भरोसा होता है, वह शास्त्रमर्यादा निर्वाह के लिए मङ्गलाचरण कर देता है, मुझे भरोसा नही है, इसलिए सबसे विनय करता हूँ।

'निज बुधिबल भरोस मोहि नाही' यही दीनता है। 'ताते विनय करौ सब पाही' यह आर्ति है। आगे ७ दोहो मे विनय है।

करन चहौं रघुपति गुन गाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा ॥
सूझ न एकउ अग उपाऊ। मन मति रक मनोरथ राऊ ॥३॥

अर्थ मै रघुपति के गुणो की गाथा की रचना करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और चरित अथाह है। मुझे एक भी उपाय का अङ्ग नही सूझ रहा है, मेरे मन-बुद्धि कगाल है और मनोरथ राजा सा है।

व्याख्या चरित सिन्धु मे बिना डूबे गुणो का पता नही चलता। क्योकि गुणरूपी मोती युक्तिरूपी सीपी के पेट म है। यथा युक्ति मजु मनि सीप सोहाई। मुक्ताहल गुनगन चुनइ, राम बसी हिय तासु। सीप समुद्र के तल मे रहती है, मेरी लघु बुद्धि ऊपर ही ऊपर रह जाती है, अथाह चरित के तल तक नही पहुँचती।

रघुपति गुन गाथा की रचना का कोई अङ्ग नही सूझता का भाव यह कि

काव्य रचना के चार अङ्ग हैं १ शास्त्र ज्ञान २ व्यवहार ज्ञान, ३ शुभसंस्कार और ४ सत्कवियो की शिक्षा।

ग्रन्थकार कहते हैं कि इनमे मेरा प्रवेश नही। कगाल का मनोरथ राजा सा है। उम मनोरथ की पूर्ति का उपाय जैसे उस कगाल को नही सूझता, उसी भाँति मैं भी असमञ्जस मे पडा हूँ। मेरे मन, बुद्धि और मनोरथ मे सामञ्जस्य का कोई मार्ग ही नही है।

अथवा मोती निकालने के लिए लोग अनेक उपाय करते हैं, सिक्कड पकड कर समुद्र तल मे प्रवेश करते है। श्वास लेने के लिए नाक मे नली लगाते है। जल जन्तु से वचने के लिए कवच पहनते हैं। वहा उन्हें सीपियाँ मिलती हैं, जिनमे से मोतियाँ निकलती है, परन्तु 'गुणरूपी मोतियो के निकालने के लिए मैं क्या करूँ' यह उपाय मुझे नही सूझता, जिस भाँति राजाओं के करने योग्य मनोरथ के साधन का कोई अङ्ग कगाल को नही सूझता।

मति अति नीचि ऊचि रुचि आछी। चहिय अमिअं जग जुरै न छाँछी ॥
छमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहि बाल वचन मनलाई ॥४॥

अर्थ मेरी बुद्धि अति नीच है और रुचि ऊँची और अच्छी है। चाहिए अमृत और मट्ठा भी नही जुरता। अत सज्जन मेरी ढिठाई को क्षमा करेगे और बालक के वचनों को मन लगाकर सुनगे।

व्याख्या : स्वार्थरत मति को नीच कहते है। ग्रन्थकार कहते है कि मेरी मति अति नीच है और रुचि अत्यन्त ऊँची है। राम गुणगान की अभिरुचि है, जिस गुणगान को समाधिविस्मरण पूर्वक परम अधिकारी सादर सुना करते हैं। मेरी वही गति है जैसे किसी अभागे को ग्राम्य भाग छाँछी दुर्लभ हो और वह देवभोग अमृत चाहे, जो बडे-बडे भाग्यवानो को नही मिलता। 'मति अतिरक मनोरथ राऊ' का स्पष्टीकरण यहाँ किया। रघुपति गुणगाथा को अमृत और प्राकृत जन गुणगान की उपमा छाँछ से दी।

यदि कहिये कि रक को राजा की इच्छा, अति नीच को उच्च वनने की इच्छा ढिठाई है। पौरुष की अपेक्षा न करके इच्छा करना तामस है। इसपर कहते हैं कि सज्जन : माता-पिता तो इस ढिठाई को क्षमा ही करेंगे। असमर्थ बालक की ऊँची रुचि की वाणी को माँ-बाप परम प्रसन्न होकर सुनते हैं।

जौ बालक कह तोतरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहि क्रूर[१] कुटिल कुविचारी। जे पर दूपन भूपन धारी ॥५॥

व्याख्या : श्रीग्रन्थकार कहते है कि वच्चो की भाँति मुझसे कहते न बनेगा,

---

१ 'सर्वत्र लवराम्' इस सूत्र से 'र' का लोप होकर क्रूर का कूर हो गया।

अर्थ · यदि बालक तोतली वाते कहता है तो उसके माँ बाप प्रसन्न मन से सुनते है और जो क्रूर है, खोटे हैं, बुरे विचारवाले हैं और जो दूसरो के दूपणो का ही भूपण धारण करते है वे हँसेगे।

टूटे फूटे शब्दो मे हरियश कहूँगा। वह बच्चो की तोतली वाणी की भाँति, सज्जनो के लिए अत्यन्त मोदकारी होगी। वाक्पटुता से उतना मोद नही होता। बच्चो की तोतली वाणी सबको प्रिय लगती है। उसका उपहास, क्रूर, कुटिल और कुविचारी ही कर सकते हैं। उन्हे अपने मे तो कोई गुण है नही, जो भूषण हो सके तो दूसरे के दूषण को अपना भूषण बनाते है। भाव यह कि दूसरो को बुरा कहकर आप अच्छे बनते है। दूषण का प्रिय होना उनकी क्रूरता है, उसे भूषण समझना कुटिलता है और उसे धारण करना कुविचार है। परन्तु ससार मे क्रूर, कुटिल, कुविचारी की ही सख्या अधिक है। यथा जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल।

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनित सुनत हरखाही। ते बरपुरुष बहुत जग नाही ॥६॥

अर्थ चाहे रसीली हो चाहे अत्यन्त फीकी हो, अपनी कविता किसे अच्छी नही लगती। जो दूसरो की कविता सुनकर प्रसन्न होते हैं ऐसे श्रेष्ठ पुरुष ससार मे बहुत नही हैं।

व्याख्या अपनी रचना सबको अच्छी लगती है तो क्या कूर, कुटिल, कुविचारी अच्छी कविता करते हैं जो तुम्हारी कविता पर हँसेगे। इसपर कहते हैं कि उन्हे अपनी बनाई हुई रसोई की भाँति अपनी बनाई कविता अच्छी लगेगी ही चाहे वह सरस बने चाहे फीकी बने। परन्तु जो दूसरे के परिश्रम के साफल्य के लिए तथा उत्साह वर्धन के लिए उसकी बनाई हुई कविता सुनकर प्रसन्न होते हैं ऐसे पुरुष बहुत थोडे हैं, इसीका उदाहरण देते हैं, यथा

जग बहु नर सरि सर समभाई। जे निज बाढि बढहि जलपाई ॥
सज्जन सकृत सिधु सम कोई। देखि पूरविधु बाढै जोई ॥७॥

अर्थ भाई, ससार मे नदी और तालाब के समान मनुष्य बहुत हैं जो जल पाकर अपनी बढोत्तरी से बढते हैं पर समुद्र के समान कोई विरला ही होता है जो चन्द्रमा को पूर्ण देखकर बढता है।

व्याख्या अपनी बढोत्तरी से बढनेवालो की उपमा नदी और तालाब से दी। नदी और तालाब असख्य हैं और समुद्र को दूसरे की बढोत्तरी से बढने वाले के साथ उपमित किया, जिनकी सख्या चार कही जाती है। आछे लोग ही ससार मे अधिक हैं, उन्हे अपनी ही कामनाओ से छुट्टी नही, वे दूसरो की बढोत्तरी से नही बढ सकते। समुद्र पूर्णकाम है, वह दूसरे की बढोत्तरी से बढ सकता है। भावार्थ यह कि मेरी कविता से पूर्णकाम महात्माओ को प्रसन्नता होगी पर जिन्हे अपनी ही इच्छा की पूर्ति के लिए विकलता है, वे प्रसन्न नही हो सकते।

दो भाग छोट अभिलाष बड, करौ एक विश्वास।
पैहहि सुख सुनि सुजन सब, खल करिहहि उपहास ॥८॥

अर्थ भाग्य छोटा और अभिलाष बडी है, परन्तु एक भरोसा करता हूँ कि इसे सुनकर सब सज्जन सुख पायेंगे और खल उपहास करेंगे हँसी उडावेंगे।

व्याख्या ऋषियो सा भाग्य नही, मन मति रंक है और गुण ग्राहक भी थोडे है, इसलिए कहा कि भाग्य छोटा है और अभिलाषा बडी है कि ऐसी कविता बने जिससे सबका हित हो। यथा : कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। यह असामञ्जस्य है, फिर भी एक विश्वास है, जिसके बल पर कविता करता हूँ। जितना विश्वास सज्जन के सुख पाने पर है, उतना ही विश्वास खल के परिहास करने पर है। भाव यह कि सुख सबको मिल जायगा। सज्जन मुदित मनसे सुनेंगे ही और खल भी उपहास करते हुए मुदित होंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा॥
हँसहिं बक गादर चातकही। हँसहि मलिन खल विमल बतकही॥१॥

अर्थ खलों की हँसी से मेरी भलाई होगी। कौवे मधुरकण्ठ कोयल को कठोर कण्ठ कहा करते हैं। बगुले हंसो को और चमगादड पपीहो को हँसा करते हैं, इसी भाँति मलिन खल निर्मल वार्ता की हँसी उडाते है।

व्याख्या . जिसका खल परिहास करते हैं, वह बात अच्छी होती है। सो खल के परिहास से ससार समझेगा कि तुलसीदास ने अच्छा कहा होगा तब ही खल मजाक उडा रहे है। क्योकि ससार कोयल के कूक पर मुग्ध है, कोयल के कण्ठ को कठोर कहने की सामर्थ्य काक मे ही है इससे क्रूर का हँसना कहा। खल के परिहास से पाप भी कटता है, अत इसमे हित है।

हस और बक एक ही रूप के होते हैं, पर हस विवेकी है और बक अविवेकी दगाबाज है सो बक हस को हँसता है कि यह सरस आमिष को छोडकर मोती चुगता है। कहा गया है कि 'चरन चोंच लोचन रँग्यो चलै मराली चाल। छीर नीर बिबरन समय बक उघरत तनकाल।' इससे कुटिल का हँसना कहा।

भलो कहै बिनु जाने ही बिनु जाने अपवाद। तेगर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख बिषाद। और एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास। एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास। सो गादुर चातक को हँसता है कि यह तो स्वाती का बूँद पीते है और गादुर अपने मुख से जघ इन्द्रिय का कार्य करना अच्छा समझता है। हस का विवेक और चातक का टेक श्लाघ्य है। यथा चातक हस सराहियत टेक बिबेक बिभूति। इन्हे ऐसे टेक विवेकवाले को मलिन खल हँसते हैं। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

कवित रसिक न राम पद नेहू। तिन कह सुखद हास रस एहू॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हसे नहि खोरी॥२॥

अर्थ जो कवित्व के रसिक नही है और जिन्हे श्रीरामजी के चरण से स्नेह नही है उनके लिए यह सुख देनेवाला हास्य रस है। भाषा की कविता है और मेरी बुद्धि भोरी है। अत हँसने योग्य है, हँसने मे कोई दोष नही।

व्याख्या खल न कवित्व के रसिक हो सकते है और न उन्हे रामजी के चरणो म स्नेह ही हो सकता है। खल किसी का बखान नही करते क्योकि उन्हे रस नही

मिलता। वे तो हरिहर यश राकेश के लिए राहु समान है। उन्हे रामपद मे नेह नही है। मेरी रचना उन्हे अटपटी मालूम पडेगी, वे हँस पडेगे। उनके हृदय मे हास्यरस का प्रादुर्भाव होगा। यथा हँसी भरयौ चित हँसि उठे जो रचना सुनि दास। कवि पडित ताको कहै यह पूरन रसहास। का नि उन्हे भी सुख मिलेगा। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

भापा मे अक्षरार्थ के प्रकाश की यथार्थ शक्ति नही और मेरी वुद्धि मे कवित्त रचना की यथार्थ शक्ति नही। अत निश्चय कविता वेढङ्गी होगी। वेढङ्गी वस्तु के देखने सुनने से हँसी आना स्वाभाविक है, हँसने मे दोप नहीं है। अत उनके हँसने पर मुझे दु ख मानने के लिए स्थान नही है। 'खल परिहास होइ हित मोरा' से उपक्रम करके 'हँसे नहि खोरी' से परिहास प्रकरण का उपसहार करते है।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
हरिहर पद रतिमति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की ॥३॥

अर्थ जिन्हे न तो प्रभु के चरणो मे प्रीति है और न अच्छी समझ ही है उन्हे यह कथा सुनने पर फीकी लगेगी। जिन्हे हरिहर के चरण मे प्रीति है और जिनकी वुद्धि कुतर्क करनेवाली नही है। उनके लिए रघुवर की कथा मीठी है।

व्याख्या इस कथा के मीठी लगने का कारण एकमात्र प्रभुपद प्रीति है सो जिसे है नही और न अच्छी समझ ही है अच्छी समझ होती तो समझते वि गुण गण के ज्ञान से व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान हाता है तव वे राम गुणगान मे मन लगाते, वक्ता के गुण दोप पर दृष्टि न देते। ऐसे पुरुप को यह कथा फीकी लगेगी।

हरि और हर मे भेद नही है, इसीलिए दोनो को मिलाकर कहते है। दोनो पदो के और दोनो स्वरूपो के भूपण और आयुधो के भाव एक ही है। गदा और विभूति पृथ्वीतत्त्व, कमल और गङ्गा जलतत्त्व, सुदर्शन और भालनेत्र अग्नितत्त्व, पाञ्चजन्य और सर्प वायुतत्त्व, नन्दक और डमरू आकाशतत्त्व। इनके धारण करने वाले हरिहर है। अत जिसको हरिहर चरण मे भक्ति है, कुतर्क उठाकर इनके चरित्र मे न्यूनाधिक भाव का आरोप जो नही करते, उन्हे रघुवर की कथा मीठी लगेगी क्योकि कथा भक्ति का साधन है। यथा समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग वढाउ। हरिहर पद के अर्थ मे भी भेद नही। 'हरति दु खानि इति हरि' और 'हरति दु खानि इति हर।'

राम भगति भूपित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुवानी ॥
कवि न होउँ नहि वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू ॥४॥

अर्थ सज्जन लोग अपने जी मे श्रीरामजी की भक्ति से भूपित समझकर इस कथाको सुन्दर वाणी से वडाई करते हुए सुनगे। मै न कवि हूँ और न बोलने मे चतुर हूँ। मै सब कलाओ और विद्या से हीन हूँ।

व्याख्या सज्जन ऐसे रामभक्ति के रसिक है कि कविता पर ध्यान न देकर रामभक्ति से भूपित जानकर प्रशसा करते हुए इसे सुनेगे।

शक्ति कवित्त बनाइबे की, जेहि जन्म नछत्र मे दीन्ह विधातैं।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन ते, देखै सुनै बहु लोग की बातैं॥
दास जू जामे एकत्र ए तीन, बनै कविता मन रोचक तातैं।
एक विमान चलै रथ जैसे, धुरधर सूत कि चक्र निपातैं॥

'कवि न होउँ' से शक्ति की हीनता कही, 'नही वचन प्रवीनू' से लोक चातुरी का अभाव कहा 'सकल कला सब विद्या हीनू' से शिक्षा का अभाव कहा। [1]कलाएँ चौसठ हैं। विद्या चौदह हैं। इन सबका ज्ञान होना कवि के लिए अनिवार्य है। सो मैं सबसे अनभिज्ञ हूँ।

आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रबध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोषगुन विविध प्रकारा॥५॥

अर्थ शब्द और अर्थ के अनेक अलङ्कार हैं, छन्द और प्रबन्ध के अनेक विधान हैं, भावो और रसों के अपार भेद हैं तथा कविता के नाना प्रकार के गुण और दोष हैं।

व्याख्या शब्द और अर्थ कविता का शरीर है। अलङ्कार गहने हैं। रस आत्मा है। गुण शोभा है। दोष शरीरविकृति अर्थात् खञ्जत्व, काणत्वादि है। छन्द नृत्य है। शब्दालङ्कार के अनेक भेद हैं। अर्थालङ्कार के भेद उससे भी अधिक हैं। छन्दो के भेद और उसके प्रस्तार का बहुत विस्तार है। यहाँ काव्यादि प्रबन्ध के अनेक विधान हैं कोई पारावार नही है। कवित्वके माधुर्यादि गुण हैं, अश्लील आदि अनेक दोष हैं।

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौ लिखि कागर कोरे॥६॥

---

१ कला तीन सौ से अधिक हैं। उनमें से ६४ के नाम शिवतन्त्र में पाये जाते हैं १ गीतम् २ वाद्यम् ३ नृत्यम् ४ नाट्यम् ५ आलेख्यम् ६ विशेषकच्छेद्यम् ७ तण्डुल-कुसुमबलिविकारा ८ पुष्पशय्या ९ दशनवसनाङ्गरागा १०. मणिभूमिकाकर्म ११ शयन-रचनम् १२ उदकवाद्यम् १३ उदकघात १४ माल्यग्रथनविकल्पा १५ चित्रा योगा १६ शेखरापीडयोजनम् १७ नेपथ्ययोगा १८ कर्णपत्रभङ्गा १९ गन्धयुक्ति २० भूषणयोजना २१ इन्द्रजाला २२ कौचुमारयोगा २३ हस्तलाघवम् २४ चित्रशाकपूपविकारक्रिया २५ पानकरसरागासवयोजनम् २६ सूचीवायकर्माणि २७ सूत्रक्रीडा २८ पहेलिका २९ प्रति-माला ३० दुर्वचकयोगा ३१ पुस्तकवाचनम् ३२ नाटिकाख्यायिकादर्शनम् ३३ काव्यसमस्या-पूरणम् ३४ पट्टिकावेत्रवाणविकल्पा ३५ तर्कुकर्माणि ३६ तक्षणम् ३७ वास्तुविद्या ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणिरागज्ञानम् ४१ आकरज्ञानम् ४२ वृक्षायुर्योगा ४३ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि ४४ शुकसारिकाप्रलापनम् ४५ उत्सादनम् ४६ केशमार्जन-कौशलम् ४७ अक्षरमुष्टिकाकथनम् ४८ म्लेच्छितविकल्पा ४९ देशभाषाज्ञानम् ५० पुष्प-शकटिकानिमित्तज्ञानम् ५१ यन्त्रमातृका ५२ धारणमातृका ५३ सम्पाठ्यम् ५४ मानसी-काव्यक्रिया ५५ क्रियाविकल्पा ५६ छलितक योगा ५७ अभिधानकोषछन्दोज्ञानम् ५८ वस्त्र-गोपनानि ५९ द्यूतविशेष ६० आकर्षक्रीडा ६१ बालक्रीडनकानि ६२ वैनायकीना विद्याना ज्ञानम् ६३ वैजयकीनां विद्याना ज्ञानम् ६४ वैतालिकीना विद्याना ज्ञानम्।

मिलता। वे तो हरिहर यश राकेश के लिए राहु समान हैं। उन्हे रामपद मे नेह नही है। मेरी रचना उन्हे अटपटी मालूम पडेगी, वे हँस पडेगे। उनके हृदय में हास्यरस का प्रादुर्भाव होगा। यथा हँसी भरयो चित हँसि उठे जो रचना सुनि दास। कवि पडित ताको कहे यह पूरन रसहास। वा नि उन्हे भी सुख मिलेगा। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

भाषा में अक्षरार्थ के प्रकाश की यथार्थ शक्ति नही और मेरी बुद्धि में कवित्त रचना की यथार्थ शक्ति नही। अत निश्चय कविता वेढङ्गी होगी। वेढङ्गी वस्तु के देखने सुनने से हँसी आना स्वाभाविक है, हँसने मे दोष नही है। अत उनके हँसने पर मुझे दु ख मानने के लिए स्थान नही है। 'खल परिहास होइ हित मोरा' से उपक्रम करके 'हँसे नहि खोरी' से परिहास प्रकरण का उपसहार करते हैं।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
हरिहर पद रतिमति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की ॥३॥

अर्थ जिन्हे न तो प्रभु के चरणो मे प्रीति है और न अच्छी समझ ही है उन्हे यह कथा सुनने पर फीकी लगेगी। जिन्हे हरिहर के चरण मे प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नही है। उनके लिए रघुवर की कथा मीठी है।

व्याख्या इस कथा के मीठी लगने का कारण एकमात्र प्रभुपद प्रीति है सो जिसे है नही और न अच्छी समझ ही है अच्छी समझ होती तो समझते कि गुण गण के ज्ञान से व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान होता है तव वे राम गुणगान में मन लगाते, वक्ता के गुण दोष पर दृष्टि न देते। ऐसे पुरुष को यह कथा फीकी लगेगी।

हरि और हर मे भेद नही है, इसीलिए दोनो को मिलाकर कहते है। दोनो पदो के और दोनो स्वरूपो के भूषण और आयुधो के भाव एक ही है। गदा और विभूति पृथ्वीतत्त्व, कमल और गङ्गा जलतत्त्व, सुदर्शन और भालनेत्र अग्नितत्त्व, पाञ्चजन्य और सर्प वायुतत्त्व, नन्दक और डमरू आकाशतत्त्व। इनके धारण करने वाले हरिहर हैं। अत जिसको हरिहर चरण मे भक्ति है, कुतर्क उठाकर इनके चरित्र मे न्यूनाधिक भाव का आराप जो नही करते, उन्हे रघुवर की कथा मीठी लगेगी क्योकि कथा भक्ति का साधन है। यथा *समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढाउ*। हरिहर पद के अर्थ मे भी भेद नही। 'हरति दु खानि इति हरि' और 'हरति दु खानि इति हर।'

राम भगति भूपित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुवानी ॥
कवि न होउँ नहि वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू ॥४॥

अर्थ सज्जन लोग अपने जी म श्रीरामजी की भक्ति से भूपित समझकर इस कथाको सुन्दर वाणी से बडाई करते हुए सुनेगे। मैं न कवि हूँ और न बोलने म चतुर हूँ। मैं सब कलाओ और विद्या से हीन हूँ।

व्याख्या सज्जन ऐसे रामभक्ति के रसिक है कि कविता पर ध्यान न देकर रामभक्ति मे भूपित जानकर प्रशसा करते हुए इसे सुनेगे।

शक्ति कवित्त बनाइवे की, जेहि जन्म नछत्र मे दीन्ह विधातें।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन ते, देखै सुनै बहु लोग की बातें॥
दास जू जामे एकत्र ए तीन, बनै कविता मन रोचक तातें।
एक विमान चलै रथ जैसे, धुरधर सूत कि चक्र निपातें॥

'कवि न होउँ' से शक्ति की हीनता कही, 'नहीं वचन प्रवीनू' से लोक चातुरी का अभाव कहा 'सकल कला सब विद्या हीनू' से शिक्षा का अभाव कहा। 'कलाएँ[1] चौंसठ हैं। विद्या चौदह है। इन सबका ज्ञान होना कवि के लिए अनिवार्य है। सो मैं सबसे अनभिज्ञ हूँ।

आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रवध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोपगुन विविध प्रकारा॥५॥

अर्थ शब्द और अर्थ के अनेक अलङ्कार हैं, छन्द और प्रबन्ध के अनेक विधान हैं, भावो और रसो के अपार भेद हैं तथा कविता के नाना प्रकार के गुण और दोष हैं।

व्याख्या शब्द और अर्थ कविता का शरीर है। अलङ्कार गहने हैं। रस आत्मा है। गुण शोभा है। दोष शरीरविकृति अर्थात् खञ्जत्व, काणत्वादि है। छन्द नृत्य है। शब्दालङ्कार के अनेक भेद हैं। अर्थालङ्कार के भेद उससे भी अधिक हैं। छन्दो के भेद और उसके प्रस्तार का बहुत विस्तार है। यहाँ काव्यादि प्रबन्ध के अनेक विधान हैं कोई पारावार नही है। कवित्वके माधुर्यादि गुण हैं, अश्लील आदि अनेक दोष हैं।

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौं लिखि कागर कोरे॥६॥

---

१ कला तीन सौ से अधिक हैं। उनमे से ६४ के नाम शिवतन्त्र मे पाये जाते हैं
१ गीतम् २ वाद्यम् ३ नृत्यम् ४ नाट्यम् ५ आलेख्यम् ६ विशेषकच्छेद्यम् ७ तण्डुल कुसुमवलिविकारा ८ पुष्पशय्या ९ दशनवसनाङ्गरागा १० मणिभूमिकाकर्म ११ शयनरचनम् १२ उदकवाद्यम् १३ उदकघात १४ माल्यग्रथनविकल्पा १५ चित्रा योगा १६ शेखरापीडयोजनम् १७ नेपथ्ययोगा १८ कर्णपत्रभङ्गा १९ गन्धयुक्ति २० भूषणयोजना २१ इन्द्रजाला २२ कौचुमारयोगा २३ हस्तलाघवम् २४ चित्रशाकपूपविकारक्रिया २५ पानकरसरागासवयोजनम् २६ सूचीवायकर्माणि २७ सूत्रक्रीडा २८ प्रहेलिका २९ प्रतिमाला ३० दुर्वचकयोगा ३१ पुस्तकवाचनम् ३२ नाटिकाख्यायिकादर्शनम् ३३ काव्यसमस्यापूरणम् ३४ पट्टिकावेत्रवाणविकल्पा ३५ तर्कुकर्माणि ३६ तक्षणम् ३७ वास्तुविद्या ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणिरागज्ञानम् ४१ आकरज्ञानम् ४२ वृक्षायुर्योगा ४३ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि ४४ शुकसारिकाप्रलापनम् ४५ उत्सादनम् ४६ केशमार्जन कौशलम् ४७ अक्षरमुष्टिकाकथनम् ४८ म्लेच्छितकविकल्पा ४९ देशभाषाज्ञानम् ५० पुष्पशकटिकानिमित्तज्ञानम् ५१ यन्त्रमातृका ५२ धारणमातृका ५३ सम्पाठ्यम् ५४ मानसीकाव्यक्रिया ५५ क्रियाविकल्पा ५६ छलितकयोगा ५७ अभिधानकोषछन्दोज्ञानम् ५८ वस्त्रगोपनानि ५९ द्यूतविशेष ६० आकर्षक्रीडा ६१ बालक्रीडनकानि ६२ वैनायिकीना विद्याना ज्ञानम् ६३ वैजयिकीना विद्याना ज्ञानम् ६४ वैतालिकीना विद्याना ज्ञानम्।

अथ काव्य का एक भी विवेक मुझे नही है। मैं कोरे कागज पर लिखकर कहे देता हूँ।

व्याख्या जिसे काव्य के स्वरूप का दर्शन हुआ है वही कह सकता है कि 'कवित विवेक एक नहि मोरे'। कोरे कागज पर लिखना प्रमाण है, लिखे हुए पर लिखना प्रमाण नही है, सम्भव है कि हाथ बैठाने के लिए लिखा गया हो। कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार ने अपना कार्पण्य दिखलाया हो यथा तापर मैं रघुवीर दोहाई। जानहुँ नहिं कछु भजन उपाई। परन्तु जब वस्तुस्थिति मानने से काम चल सकता है तो कार्पण्य की आड क्या लिया जाय।

अर्थ १ गाना २ बजाना ३ नाच ४ नाट्य ५ लेख चित्र ६ हीरा मोती बेधना ७ चावल पुष्प का रग निकालना ८ पुष्प शय्या विधान ९ दाँत, वस्त्र तथा अङ्ग का रँगना १० मणि से भूमि रचना ११ सज लगाना १२ जल का बजाना १३ जल का ताडन १४ माला गूँथन का विकल्प १५ चित्र योग १६ शिर परकी माला बनाना १७ नेपथ्य योग १८ कर्ण पत्र योग १९ इत्र आदि बनाना २० गहना पहिनाना २१ इन्द्रजाल २२ खाना पटा आदि २३ हाथ की सफाई २४ अनेक प्रकार से भोजन बनाना २५ शर्बत, रस, राग और आसव बनाना २६ सीना, बुनना वगैरह २७ सूत का खेल २८ बुझौवल २९ प्रतिमाला ३० दुर्वच वक्र योग ३१ पुस्तक बाँचना ३२ नाटिकाख्यायिका दर्शन ३३ काव्य की समस्या की पूर्ति ३४ पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना ३५ तर्कु के कर्म ३६ बढ़ई के कर्म ३७ वास्तु विद्या ३८ रूपा रत्न की परीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणि राग का ज्ञान ४१ खान का ज्ञान ४२ वृक्ष के आयु का योग ४३ भेढा, मुर्गा और बटेर के लडाने की विधि ४४ तोता मैना पढाना ४५ निकालने की विधि ४६ बाल के मार्जन करने का कौशल ४७ अक्षरमुष्टिका कथन ४८ म्लेच्छित विद्या ४९ देश भाषा ज्ञान ५० पुष्प शकटिका निर्मित्तिक ज्ञान ५१ यन्त्र मात्रिका ५२ धारण मातृका ५३ सम्पाठ्यम् ५४ मानसी काव्य क्रिया ५५ क्रिया विकल्प ५६ छलितक योग ५७ अभिधान कोष और छद का ज्ञान ५८ वस्त्रों की रक्षा ५९ विशेष प्रकार का जूआ ६० आकर्ष क्रीडा ६१ लडको के खिलौने ६२ वैनायकी के विद्या का ज्ञान ६३ वैजयवी विद्या का ज्ञान ६४ वैतालिकी के विद्या का ज्ञान।

ये सब विद्याएँ भारतवर्ष मे थी, धीरे धीरे लुप्त हो गई। बहुतो के नाम मात्र ऊपर गिना दिये गये है अब परिचय देनेवाला नही है। बहुत सी ऐसी है जो सुनने मे तुच्छ मालूम होती हैं पर वे कभी चामत्कारिक थी जैसे तोता मैना पढाना। अभी थोडे दिन की बात है कि पूज्यपाद प० रक्षपाल दूबे जी का तोता रामरक्षा का पाठ करता था। तोते को कैसे पढाना जिसमे उसे रामरक्षा कण्ठ हो जाय, अब कोई नही जानता। इसी भाँति और विद्याओ के विषय मे समझना चाहिए।

चौदह विद्या ब्रह्मज्ञान रसज्ञान वेदा स्वरधरन्तथा। व्याकृति ज्यौतिषश्चैव धनुर्विद्या तथा मता। जलोत्तरणक न्याय काकाश्वारोहणन्तथा। नटविद्या कृषिर्वैद्य विद्या ह्येता' तुर्दश।

अर्थ ब्रह्मज्ञान रसायन वेद स्वरज्ञान, व्याकरण, ज्यौतिष धनुर्वेद, तैरना, न्याय, काक, घोडे की सवारी, नटविद्या, खेती और वैद्यक ये चौदह विद्याएँ हैं।

दो भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिबेक ॥९॥

अर्थ मेरी कविता सारे गुणो से रहित है, पर एक गुण ऐसा है कि ससार मे विख्यात है, यह विचारकर इसे सुमति जिन्हे निर्मल विवेक है सुनेंगे।

व्याख्या मुझे कविता का विवेक नही है, इसलिए मेरी कविता भी सब गुण रहित है, निर्मल विवेकी वे ही हैं जो दोषो पर दृष्टि न देकर गुण ग्रहण करते हैं और कविता मे जो गुण है वह विश्वविदित है। अत उस गुण के कारण वे अवश्य सुनेंगे। फलत बुध समाज मे मेरी कविता का आदर होगा।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥१॥

अर्थ इसमे रघुपति का उदार नाम है, जो अति पवित्र पुराण और श्रुतियो का सार है। यह कल्याण का घर और अमङ्गल को दूर करनेवाला है और जिसे उमा सहित पुरारि शिवजी जपा करते हैं।

व्याख्या अब उस विश्व विदित गुण को स्पष्ट करते हैं कि उसमे रघुपति का नाम है और वह १ उदार २ अतिपावन ३ पुराण श्रुतिसार ४ मङ्गल भवन और ५ अमङ्गल हारी है और ६ उसकी महिमा ऐसी है कि उसे उमाके सहित पुरारि शिवजी जपते हैं।

१ उदार यथा नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास।
२ अति पावन यथा आभीर जवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहि राम नमामि ते ॥
३ पुराण श्रुतिसार यथा बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो।
अगुन अनूप सगुन निधान सो ॥
४ मगल भवन यथा नाम जपत मगल दिसि दसहूँ।
५ अमगल हारी यथा जिन्हकर नाम लेत जग माही।
सकल अमगल मूल नसाही ॥
६ उमा सहित जेहि जपत पुरारी यथा सहस नाम सम सुनि सिव बानी।
जपति सदा पिय सग भवानी ॥

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥२॥

अर्थ कविता अनोखी हो और सुकवि की की हुई हो परन्तु राम नाम बिना उसकी भी शोभा नही है। स्त्री चन्द्रमुखी हो और सब प्रकार से शृङ्गारित हो तो भी उस श्रेष्ठ नारी की कपडे बिना शोभा नही होती।

व्याख्या 'जग ते अद्भुत सुन्दर मदन शब्द अर्थ कवित्त' अत सुन्दर कविता को सुन्दर स्त्री कहा। यदि कविता सुकवि कृत हो अर्थात् शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार

स युक्त हो और उसम कवितोचित सब गुण हा तब वह सब प्रकार से शृङ्गारित कही जायगी। पर यदि उस कविता म राम नाम न हो तो उसकी शोभा उसी भाँति नही है जिस भाति सब प्रकार से शृङ्गारित नायिका की शोभा कपडा न होने से नही होती।

आज तक साहित्यकारो ने कविता बनिता के शरीर, आत्मा, अलकार, गुण और दोषो की कल्पना तो की पर किसी ने साडी आदि की कल्पना न की। श्री ग्रन्थकार का मत है कि भगवन्नाम की साडी बिना कविता बनिता नग्न है, आदर्शनीया है, उसका देखना पाप है उसकी शोभा भी नही, भयानक मालूम पडती है। यथा न नग्ना स्त्रियमीक्षेत पुरुषो वा कदाचन कूर्म पुराणे।

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अकित जानी ॥
सादर कहहि सुनहि बुध ताही। मधुकर सरिस सत गुन ग्राही ॥३॥

अर्थ सब गुणो से रहित कुकवि की कविता को भी राम नाम के यश से अङ्कित जानकर पण्डित जन उसे आदर पूर्वक कहते सुनते हैं, क्योकि सन्त जन भौरें की तरह गुणग्राही होते हैं।

व्याख्या जो कविता बनिता सब गुण रहित महाकुरूपा है, कुकवि कृत होने से अलङ्कारादि से भी रहित है पर रामनाम यश से अलङ्कृत है, साडी आदि पहिने हुए है, वही बुधजनो द्वारा दर्शनीया है। क्योकि जिस भाँति भौंरा फूल म रस लेता है और किसी बात स उसका प्रयोजन नही उसी भाँति सन्त गुण ग्रहण कर लेते हैं, अन्य प्रपञ्च से प्रयोजन नही रखते। आदर के साथ राम यश युक्त बेढङ्गी कविता को भी कहा सुना करते हैं।

जदपि कवित रस एको नाही। नाम प्रताप प्रगट एहि माही ॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसग बडप्पनु पावा ॥४॥

अर्थ यद्यपि इसम कविता का एक भी आनन्द नही है तथापि रामजी का प्रताप इसमे प्रकट है। यही भरोसा मेरे मन म आया कि किसने सत्सग से बडप्पन बडाई नही पाया ?

व्याख्या मेरी कविता म कविनोचित गुण नही सही पर रामनाम का प्रताप इसम प्रकट है। जमे शम्भु का प्रताप साबर मन्त्र म प्रकट है। यथा अनमिल आखर अर्थ न जापू। प्रगट प्रभाव महेस प्रतापू। वह सस्कृत के मन्त्रो की भाति कीलित नही है। मैं जो कविता करने चला सो 'रामनाम के प्रताप के भरोसे कि रामनाम के सम्पर्क से मेरी कविता म भी महिमा आजावेगी।

धूमौ तजै[१] सहज करुआई। अगर प्रसग सुगध बसाई ॥
भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। राम कथा जगमगल करनी ॥५॥

अर्थ धूआँ भी अगर के साथ स सुगन्धित हो जाता है और अपने स्वाभाविक

---

१ यहाँ तद्गुणालङ्कार है।

कडुएपन को छोड देता है। मेरी कविता यद्यपि भद्दी है परन्तु इसमे अच्छी वस्तु का वर्णन किया गया है। क्योकि : रामकथा जगत् का मङ्गल करनेवाली है।

व्याख्या : प्रश्न उठता है कि सुसङ्ग से बड़ाई भले ही मिल जाय पर कविता का दोप तो बना ही है। जो बात अच्छी है, उसीकी प्रशंसा प्राप्त है। पर जो अश बुरा है वह अच्छा कैसे हो जायगा ? इसपर कहते हैं कि अगर के साथ से धूम मे सुगन्ध आजाती है और धूम का कडआपन मिट जाता है। इसी भाँति रामयशरूपी अगर के माथ होने से सुभापा रूपी सुवास आ जावेगी और भद्दापनरूपी कटुता मिट जावेगी।

वर्णनीय वस्तु के भली होने से ग्राम्य गिरा का दोप अकिञ्चित्कर हो जाता है। भदेस शब्द का अर्थ महात्माओने किया है कि 'भ्रष्ट है अङ्ग जिसका' उसे भदेम कहते हैं अर्थात् अपभ्रंश भापा, परन्तु भदेस शब्द का प्रयोग ऐसे देशों के प्रति होते देखा जाता है, जहाँ के निवासी अत्यन्त ही गँवार हों। अत्यन्त गँवार को 'भदेसिया' कहते हैं।

राम कथा को जगमङ्गलकरणी कहकर उदार कहा। छः गुण नाम के 'उदारादि' ऊपर कह आये हैं, वे ही छ. गुण चरित के भी कहेगे। यथा :

छं. मंगल[1] करनी कलिमल हरनि, तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यौं, सरति पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भल, होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की, सुमिरत सुहावनि पावनी॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते है कि राम की कथा कल्याण करनेवाली और कलियुग के पापो को दूर करनेवाली है। कविता सरिता की टेढी गति, पवित्र जल वाली गङ्गा की गति के समान है। प्रभु के सुयश के साथ यह कविता भली और सुजन मन भावनी होगी। महादेव जी के अङ्ग के साथ मसान की राख भी स्मरण करने में सुहावनी और पवित्र है।

व्याख्या : कविता सरिता की गति टेढी है। पर रामयशरूपी जल से भरी है। गङ्गा की भाँति सब लोग पवित्रता पर ध्यान देते हैं। काशी की गङ्गा की भाँति टेढी गति की अधिक शोभा है। मुझसे कविता करते नही बना, उसकी गति टेढी हो गई, पर रामयश से भरी है, अतः सुजन मन भावनी है। इससे गुण दोप कहा। अब कहते हैं कि रामयश शङ्कर का शरीर है। मेरी कविता मसान की राख है। भयावनी और अपावनी है, सो शिवजी के शरीर के सम्बन्ध से सुहावनी और पावनी हो गई इससे अलङ्कृता कहा, क्योकि विभूति शिवजी का अलङ्कार है। भावार्थ यह कि रामयश के साथ होने से मेरे शब्दो मे चित्ताकर्षकता, अर्थ मे माधुर्य आजायगा। दोप तुच्छ हो जायगे और सुहावनी पावनी होकर कविता अलंकृत भी हो जायगी। 'क्रूर' का ही प्राकृतरूप कूर है। गति के साहचर्य से इसका अर्थ टेढा माना गया।

---

१. यह हरिगितिका छन्द है। इस छन्द मे २८ मात्रा का एक पाद होता है। सोलह पर यति होती है अन्त मे लघु और गुरु होना है। किसी चौकल मे जगण न पडना चाहिए।

'मंगल करणि' से 'मंगल भवन' कहा। कलिमलहरणि से 'अमंगलहारी' कहा। 'कथा रघुनाथ की' कहकर 'पुराण श्रुतिसार' कहा। 'पावनपाथ की' कहकर 'अति-पावन' कहा। 'सुजन मनभावनी' से 'उमा महेश प्रिय' कहा। सो जो कुछ छ गुण नाम में कहे थे वे शब्दान्तर से मेरी कविता सरिता में आगये।

दो. प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम जस संग।
दारु विचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय प्रसंग ॥१०॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान ॥१०क॥

अर्थ गाय काली है, पर दूध तो उसका अत्यन्त उज्ज्वल और अत्यन्त गुणकारी है। उसे सब लोग पीते हैं। इसी भाँति गँवारी बोली में भी सीताराम का यश, सज्जन गाते हैं और सुनते हैं।

व्याख्या जो शब्द, अर्थ, गुण, दोष, अलङ्कारादि कुछ नहीं समझते, उन्हें भी छन्दोबद्ध कविता सुनने में प्रिय लगती है। रामयश के साहचर्य से मेरी कविता सबको अति प्रिय लगेगी 'प्रिय लागिहि अति सबहि'। रामयश मलय-मारुत है, इसके साथ से सभी लकड़ियाँ चन्दन होकर वन्द्य हो जाती हैं। क्या कोई लकड़ी का विचार करता है। मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दना स्यु। इसी भाँति मेरी छन्दोबद्ध कविता भी जगवल्लभ हो जायगी। मेरी कविता के दोषों की ओर कोई दृष्टिपात न करेगा, रामयश के साथ होने से ही सब को अत्यन्त प्रिय हो जायगी।

कृष्णा गौ का दूध कपिला के दूधसे अधिक श्वेत और अधिक गुणद होता है। यथा कृष्णाया गोर्भव दुग्ध वातहारिगुणाधिकम्। इति वैद्यरहस्ये। कपिला के दूध में कुछ पीलापन और पाक में गुरुता होती है और शूद्रों को उसके पीने का अधिकार नहीं है। कृष्णा गौ के दूध में सफेदी अधिक होती है और पाक में भी लघु होता है, उसके पीने के सभी अधिकारी हैं। संस्कृत, कपिला गौ सी श्रेष्ठ है और भाषा कृष्णा गौ सी कनिष्ठ है, सियराम यश उसका दूध है। सुजान कृष्णा गौ के दूध से ही काम लेते हैं जिसमें शूद्र को भी लाभ हो सके और समझने में भी आयास न हो। 'पान करना यहाँ भाव का पान कहा। भाव ही, विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी भाव से पुष्ट होकर रस होता है। अत भाव में रस का भी अन्तर्भाव है।' इस भाँति 'आखर अरथ अलंकृत नाना। छन्द प्रबंध अनेक विधाना। भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा। कवित विवेक एक नहिं मोरे।' इस बड़े दोष का मार्जन किया।

मनि मानिक मुकुता छवि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥१॥

---

१ यहाँ पर्यायालङ्कार है।

अर्थ मणि, मानिक और मोती की जैसी शोभा होनी चाहिए, वैसी साप, पर्वत और हाथी के मस्तक पर नही होती। राजा, मुकुट और नवयौवना स्त्री का शरीर पाकर वे अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या अब कहते हैं कि सस्कृत के महाकवियो की भणिति मेरे भाषा बन्ध मे आकर अधिक शोभित होगी। अहि के सिर में मणि, गिरि मे माणिक और गज के सिर मे मुक्ता होती है। ये सब शुचि अमोल और सुन्दर हैं। पर जैसी इनकी शोभा है, वैसी उत्पत्तिस्थल मे नही होती। सर्प के सिर पर मणि की क्या शोभा है? पर्वत मे माणिक और हाथी के सिर मे मुक्ता की क्या शोभा है? राजा के धारण करने पर मणि की, मुकुट मे जटित होने पर माणिक की और सुन्दरी के शृङ्गार मे मुक्ता की, स्वाभाविक शोभा से भी अधिक शोभा हो जाती है।

तैसेहि सुकवि कवित बुध कहही। उपजहि अनत अनत छवि लहही ॥
भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥२॥

अर्थ इसी तरह सुकवि की कविता के लिए भी पण्डित कहते हैं कि पैदा दूसरे जगह होती है और शोभा दूसरे जगह पाती है। भक्ति के कारण सरस्वती देवी ब्रह्मदेव के घर को छोडकर स्मरण करते ही दौडी हुई आती है।

व्याख्या यहाँ तीन सुकवि हैं १ शम्भु २ याज्ञवल्क्य और ३ भुसुण्डि। ये ही क्रमश १ अहि २ गिरि और ३ गज से उपमित हैं। गरल कण्ठ होने से शम्भु को अहि से उपमित किया। वेद के सब तत्त्वो के धारण करने से याज्ञवल्क्य को गिरि से उपमित किया यथा करगत वेद तत्त्व सब तोरे। पावन पर्वत वेद पुराना। खाने के दाँत और, तथा दिखाने के दाँत और होने से भुसुण्डि जी को गज से उपमित किया। भुसुण्डि जी देखने मे कटुभाषी काग हैं, पर हैं बडे मधुर भाषी। यथा मधुर वचन बोलउ तब कागा। ये तीन सुकवि है। यथा यत्पूर्वं प्रभुणा कृत सुकविना श्री शम्भुना। इनकी कही हुई कथाएँ यथाक्रम मणि, माणिक और मुक्ता है।

जहाँ ये कथाएँ हुईं, वहाँ इनकी जैसी चाहिए वैसी शोभा नही हुई। कैलास पर्वत पर एकान्त मे शम्भु ने गिरिजा से, देववाणी म कथा कही। सब मुनियो के विदा हो जाने पर प्रयागराज म याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज से देववाणी में कथा कही। समाज म केवल भुसुण्डि की कथा हुई, सो भी पक्षीभाषा मे और पक्षियो के मध्य मे। इसलिए कहते हैं कि 'अहि, गिरि, गज सिर सोह न तैसी।' छविप्राप्ति के स्थान भी तीन हैं। १ नृप २ किरीट और ३ युवती। सो ज्ञान नृप है। यथा सचिव विराग विवेक नरेसू। कर्म मुकुट है। यथा मुकुट न सोहिं भूप गुन चारी। यहाँ अपन्हुति अलङ्कार द्वारा भूप के चारो गुण साम, दान भेद और दण्ड को मुकुट कहा। उपासना तरुणी है। यथा भगति सुतिय कल करन विभूषन।

अत उमा शम्भु सवाद की शोभा मानस के ज्ञानघाट पर हुई। भारद्वाज याज्ञवल्क्य सवाद की शोभा मानस के कर्मघाट पर हुई और गरुड भुसुण्डि सवाद की शोभा मानस के उपासनाघाट पर हुई। यथा सुठि सुन्दर सवाद वर, बिरचेउँ बुद्धि

विचारि। ते येहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि। इस भाँति तीन घाट कह कर अब चौथा कहते हैं :

सबके स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्मदेव का वास है, वही ब्रह्मभवन है। परावाणी वही पर मूलाधार में रहती है। वहाँ से जब यह नाभिदेश को प्राप्त होती है, तब इसका नाम पश्यन्ती होता है और जब यह हृदय देश मे अवस्थान करती है, तब इसका नाम मध्यमा पडता है और जब कण्ठ, ताल्वादि स्थान में आकर वर्णरूप से अभिव्यक्त होती है तब इसका नाम वैखरी पडता है। वैखरी वाक् को ही अर्थबोधन का सामर्थ्य है। इसी के द्वारा अपना मनोगत भाव दूसरे को बतलाया जाता है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी यथाक्रम वाणी की सूक्ष्मतर, सूक्ष्म सूक्ष्मतम, और स्थूल अवस्थाएँ हैं। सूक्ष्मतम अवस्था से स्थल अवस्था मे आना ही वाणी का ब्रह्मभवन से यहाँ पधारना है।

यही वाणी भगवती कविकुल की इष्ट देवता है, भक्ति के कारण यह सूक्ष्मतम अवस्था से सूक्ष्मतर मे और उससे फिर सूक्ष्म मे तथा उसे भी पारकर स्थूल अवस्था में बडे वेग से आती है। यह उसकी भक्तवत्सलता है। इसी बात को महाकवि ग्रन्थकार ने 'भगति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवत धाई।' इस एक अर्धाली म कितनी पण्डिताई से कहा है।

रामचरित सर बिनु अन्हवायें। सो श्रम जाइ न कोटि उपायें॥
कवि कोविद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी॥३॥

अर्थ रामचरित्र सर मे बिना नहलाये, वह श्रम करोड उपाय करने पर भी नही जाता, पण्डित कवि ऐसा हृदय में विचार करके कलिमल के हरण करनेवाले हरियश का गान करते हैं।

व्याख्या भाव यह कि इस भाँति पधारने पर सरस्वती के श्रमापनोदन का उपाय तथा पूजन होना चाहिए और वह रामयशगान से ही होता है। रामयशगान मे ही सरस्वती का साफल्य है, अन्य कोई उपाय सरस्वती के श्रमापनोदन का नही है यथा मज्जन कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। रामचरित मे स्नान कराने से सरस्वती का पथ-श्रम जाता रहता है और उनके स्वामी का गुणानुवाद ही उनका पूजन है। यथा सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी। कवियो मे जो पण्डित हैं, वे इस बात को समझते हैं। 'मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु य. पश्यति स पण्डित । जो दूसरे की स्त्री को माता और दूसरे के द्रव्य को मिट्टी का ढेला और समस्त प्राणियो को अपने जैसा समझता है, उसे पण्डित कहते हैं। ऐसा पण्डित कवि भगवान् का गुणानुवाद छोडकर, प्राकृतजनका गुणगान क्यों करने लगा? लोभी कवि ही प्राकृत जन का गुणगान करते हैं, उन्हें पण्डित नही कहा जा सकता। पण्डित कवि हरियश का गान करके सरस्वती का श्रमापनोदन तथा पूजन करता है और उसके द्वारा कलिमल का नाश करके, जगत् का उपकार करता है।

कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहिं सुजाना ॥४॥

अर्थ सासारिक पुरुषो का गुणगान करने से, सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है। हृदय को सिन्धु और बुद्धि को सीप तथा सरस्वती को सुजान लोगो ने स्वाती नक्षत्र के समान बतलाया है।

व्याख्या ससारी जीवों मे ईश्वरत्व बिना माने स्तुति बन नही सकती। अत उनकी स्तुति मिथ्या है। इसलिए सरस्वती पछताती है कि इसके अधीन मैंने अपने को क्यो किया ? सरस्वती का पछताना स्पष्ट दिखाई देता है। स्तुतिकर्ता खिन्न हो जाता है और दीन हो जाता है, पर लोभवश रचना करता जाता है।

समुद्र की सीपी मे मोती होती है। सरस्वती का आगमन स्वाती नक्षत्र का आगमन है। सो सब वर्षावाले नक्षत्रो के पीछे आती है, प्रायेण बरसती भी कम है। इसी भाँति रामसुयश की वर्षा होती है और सुकृती लोग उससे लाभ भी उठाते हैं।

जौ बरषै बर बारि बिचारू। होहिं कबित मुकुतामनि चारू ॥५॥

अर्थ यदि विचाररूपी जल की वर्षा करे, तो कवितारूपी सुन्दर मुक्तामणि उत्पन्न हो।

व्याख्या सरस्वतीरूपी स्वाती नक्षत्र यदि विचाररूपी जल की वर्षा करें और उसे बुद्धिरूपी सीपी ग्रहण कर सके तब कवितारूपी सुन्दर मोती उत्पन्न होती हैं। भाव यह कि सच्चिदानन्द रामके चिदशका विवर्त ही वाणी है, उसीकी कृपा से कवि को प्रतिभा होती है जिसके द्वारा सुन्दर मोती कविता बनती है।

दो०. जुगुति बेधि पुनि पोहिअहि, रामचरित बर ताग ।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥

अर्थ युक्ति से वेधकर उन्हे रामचरितरूपी सुन्दर तागे मे पिरोना चाहिए। सज्जन लोग उसे अपने निर्मल हृदय मे धारण करते हैं, अति अनुराग ही उसकी शोभा है।

व्याख्या उन मोतियो को युक्तिरूपी सूक्ष्म बरमे से बेधे, जिसमे टूट न जाँय, अर्थ वा अनर्थ न हो जाय और उसे क्रम से उतार चढाव के साथ रामचरित के श्रेष्ठ तागे मे पिरोए। यही तागा उन मोतियो के धारण मे समर्थ है। तब वह माला सज्जनो के धारण योग्य होती है और उनमे शोभारूपी अनुराग को बढाती है। भावार्थ यह कि ग्रन्थकार की दीनघाट की कथा सीपीवाली मुक्ता है।

देव, आर्ष और सिद्ध कविताएँ, मणि, माणिक और गजमुक्ताएँ हैं पर मानुष कविता तो सीपी की मोती है। ग्रन्थकार कहते हैं कि उसका भी मैं ठीक पात्र नहीं। उसमे तो मोती उत्पन्न करने की शक्तिवाली तथा समुद्रतल से उठकर स्वाती बिन्दु ग्रहण की सामर्थ्यवाली सीपी जैसी बुद्धि की आवश्यकता है जिसमे कवितावी शक्ति हो और प्रतिभा हो। अत अपना परिचय देते हैं :

जे जनमे कलिकाल कराला। करतब बायस वेष मराला ॥
चलत कुपथ वेद मग छाँडे। कपट कलेवर कलिमल भाँडे ॥१॥

अर्थ इस कराल कलियुग मे जिन्होने जन्म ग्रहण किया है जिनकी करनी कौए के समान और वेष हस के समान है, वेद के मार्ग को छोडे हुए कुमार्ग मे चलते है कपट की मूर्ति और कलियुग के दोषो के पात्र हैं।

व्याख्या इस कराल कलिकाल मे सज्जन बहुत कम जन्म ग्रहण करते हैं, अधम खल ही अति अधिक उत्पन्न होते है। यह काल ही विपरीत है, इसीलिए इसे कराल कहा। यथा यत्र कामगिरो वेदा यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्। यत्र स्वप्रतिभा मान तस्मै श्रीकलये नम। जहाँ आराम की बातें ही श्रुति हैं, जहाँ धर्म अर्थ का साधन होता है, जहाँ अपनी ही बुद्धि प्रमाण है, उस कलि को नमस्कार है। भगवान् ने स्वय कहा है, ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहि। द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहि। मैं उन 'बृन्द बहु' मे से हूँ। 'करतब बायस' अर्थात् 'छली मलीन न कतहुँ प्रतीती और वेष हस का साधु का' बनाए रहता हूँ। यथा करि हस को वेष बडो सब ते तजिदे बक बायस की करनी।

वेद मार्ग नही छोडते हुए जो कुपथ मे पैर डाल देते हैं, उनकी वेद मार्ग पर लौट आने की आशा है। और जिन्होने वेद मार्ग छोड दिया, वे रास्ता ही भूल जाते है, फिर लौट नही सकते। कपट कलेवर का भाव यह कि उनका तिलक, मुद्रा, पूजा-पाठ सब कपट मात्र है। वस्तुत उनमे राग-द्वेषादि कलिमल भरा पडा है।

बचक भगत कहाइ रामके। किंकर कचन कोह काम के ॥
तिनमहँ प्रथम रेख जग मोरी। धीग धरमध्वज धंधरच (धधक) धोरी ॥२॥

अर्थ ठग लोग राम के भक्त कहलाकर भी कञ्चन, क्रोध और काम के दास है उन धीग, धर्मध्वज और पाखण्ड रचनेवालो के धुरिया म पहिली गिनती मेरी है।

व्याख्या हैं तो [1]ठग, पर ऐसा मायाजाल फैलाते हैं कि लोग उन्हे रामभक्त कहने लगें। वे राम के दास नही है, लोभ, क्रोध और काम के दास है। हैं कौवे[2] पर धीगाधीगी से हस बने हुए है। इसलिए उन्हे धीग कहा। वैदिक मार्ग का परित्याग करके कुपन्थ[3] पर पाँव दिये है। कपट से साधु वेष बना रक्खा है, पर कलिमल से

---

१ अपनायो तुलसी सो धीग धम धूसरो यथा ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात। कौडी लागि लोभ बस करहिं विप्र गुरु घात।

२ यथा वारविलासिनी के घर म अधरासव पान किये सुखसे।
चाँदनी रात कटी मदनोत्सव म ललनागन सग बसे ॥
प्रातहि दीक्षित है सरवज्ञ हैं, पावक सेवक हैं मनसे।
तज्ञ हैं, तापस है मुनि है इन धूर्तन ने सब लोग ठसे ॥

३ गगा तीर तरग शीतल शिलापै है जमा आसन।
बैठे हैं कुश दड हस्त वेणु के हैं धरे वासन ॥

पूर्ण हैं। अत धर्मध्वज कहा। वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ के गुलाम हैं, दुनिया को ठगने के लिए अपने को रामभक्त घोषित करते हैं। अतः धँधरच धोरी कहा।

ढगरच : पाखण्डी : शब्द का धँधरच हो गया। 'धधक' पाठ मानने से 'धर्म ध्वज के धन्धा' का धुरी अर्थ करना पडेगा।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे लोगो में भी दोषोत्कर्ष के कारण मेरी प्रथम गणना है। धीग, धर्मध्वज तथा पाखण्डियों को धुरी हूँ।

जौ अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढइ कथा पार नहिं लहऊँ ॥
ताते मै अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने ॥३॥

अर्थ : जो अपने सब अवगुण कहने लगूँ तो कथा बढ जायगी। पार न पा सकूँगा। इसलिए मैंने बहुत कम वर्णन किया। बुद्धिमान् थोडे मे ही समझ लेगे।

व्याख्या : बडा होने का कारण कहते हैं कि मेरे अवगुण असख्य हैं। यथा :

तेऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौ जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहैं।
चलिहैं छूटि पुज पापिन के, असमजस जिअ जनिहैं॥
देखि खलक अधिकार प्रभू सो, मेरी भूरि भलाई भनिहैं।
हँसि करिहैं परतीति भगत को, भगत सिरोमनि मनिहैं॥
ज्यौ त्यौ तुलसीदास कोसलपति, अपनाएहि पर बनिहैं।

विनय प ९५

'धीग धरमध्वज धँधरच धोरी' कहना अत्यल्प वर्णन है। सयाने इतने मे ही समझ लेगे कि कविता मुक्ता उपजाने योग्य शक्ति मुझमे हो नही सकती फिर भी मैं कविता करता हूँ : किसी भाँति तुकबन्दी करता हूँ। जो दूसरे मेरे लिए कहते सो मैं स्वय कह रहा हूँ।

समुझि विविध विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी ॥
एतेहु पर करिहहिं ते असंका। मोहिते अधिक जे जड़ मति रंका ॥४॥

अर्थ : मेरी अनेक प्रकार की विनती को समझकर, कथा सुनकर कोई दोष न देगा। इतने पर भी वे ही आशङ्का करेंगे जो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धिहीन हैं।

व्याख्या : 'करन चहौं रघुपति गुन गाहा' से 'सुनिहहिं बाल बचन मन लाई' तक एक विधि। 'पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास' तक दूसरी विधि। 'सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी' तक तीसरी विधि। 'सो विचारि सुनिहहिं

फेरं चचल अगुली पटु बढी रुद्राक्ष माला महा।
दानो के सग खैंचने घगघती के ढोग वाले सदा॥
ठोढी मस्तक ओठ पीठ उरमे जानू गले गालमे।
जथा कुक्षिन मे किये तिलक हैं श्वेता खलीके घने॥
चाटी मे तथा कमर मे क्याही हिलै कानमे।
दर्भों के अगुए मनो तनु पर हैं दम्भजी ध्यान मे॥ प्र च

सुजन जिनके विमल विवेक' तक चौथी विधि। 'गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान' तक पाँचवी विधि। 'थोरेमहु जानिहै सयाने' तक छठी विधि। इस भांति मैने विविध विधि से विनती की। उसे समझकर यह कोई न कहे कि तुलसीदास की मोतियाँ कविता अच्छी नही है।

अब दोप देने की कौन सी बात है? दोप वहाँ दिया जाता है, जहाँ गुणाभिमान हो। बाल वचन आशङ्का योग्य नही होता, वहाँ तो पदे-पदे त्रुटि रहती है।

कवि न[1] होउँ नहि चतुर कहावो। मति अनुरूप राम गुन गावो॥
कह रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत ससारा॥५॥

अर्थ न मै कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ, वुद्धि के अनुसार रामगुण गाता हूँ। कहा अपार अघुपति के चरित और कहाँ ससार के प्रपच मे सनी हुई मेरी वुद्धि।

व्याख्या 'चतुर कहावो' से भाव यह कि न मेरा ऐसा आचरण है कि कोई चतुर कहे और न कोई मुझे चतुर कहता है। कवि होते तो दोप निकालना उचित था। चतुर कहलाते तो आशङ्का करना उचित था। फिर भी मैं राम गुण गाने चला हूँ जिसे काई यथार्थ रूप म गा ही नही सकता।

'मति अनुरूप' को स्पष्ट करते है। कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोर निरत ससारा। यहाँ दो बार कहँ कहँ कहकर महान् अन्तर दिखला रहे हैं। यथा द्वौ क्वशब्दौ महदन्तर सूचयत। यथा काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ परे भवकूप। स्वय कूप मे पडा हुआ अपार का पार क्या पायेगा?

जेहि मारुत गिरि मेरु उडाही। कहहु तूल केहि लेखे माही॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥६॥

अर्थ जो हवा मेरु पर्वत को उडाती है, कहा उसके सामने रूई की क्या गिनती है। श्रीरामजी की अपार प्रभुता समझकर कथा रचने मे मेरा मन अति कातर हो रहा है।

व्याख्या राम गुण को अपार कहकर अब अवर्णनीय भी कहते है। मेरु सा भारी कुछ नही और तूल सा हलका कुछ नही। मरुत उनचास है। मेरु पर्वत के उडाने मे समर्थ हैं। पुराणो मे कथा आई है किसी समय मारुत मेरु को उडाने के लिए तैयार हो गये थे, सो गरुड द्वारा रक्षा हुई। राम कथा को मरुत से और वडे भारी कवि कहनेवालो की उक्ति को मेरु से उपमित किया। सो उनका भी कहना उखड जाता है जमता नही। मैं तो तूल रूई हूँ, मेरी क्या गिनती है? मुझसे कहते न वनेगा, इसमे सन्देह ही क्या है।

दो सारद सेप महेस विधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरतर गान॥१२॥

---

१. यहाँ आक्षेप द्वितीय है।

अर्थ सरस्वती, शेष, महादेव, ब्रह्मदेव शास्त्र, वद और पुराण। वे सब नेति नेति यह नही यह नही कहकर जिसका गुण सदा गाया करते हैं।

व्याख्या ये सातो सारद शेषादि कुलाचल हैं। बडे भारी हैं। इनके कहने का बडा वजन गौरव है। सो निरन्तर कहते हैं, परन्तु 'नेति-नेति' बोलकर कहते हैं। इदमित्थ रूप से कुछ नही कहते। सो जहाँ नेति कहा, वहाँ पहिले का कहा हुआ उड गया। अत नेति नेति पूर्वक कहने से कोई बात जमने नही पाती।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई ॥
तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा ॥१॥

अर्थ प्रभु की वही प्रभुता सामर्थ्य सब जानते हैं तो भी कोई कहे बिना न रहा। इससे वद ने ऐसा कारण रक्खा कि भजन का प्रभाव अनेक प्रकार से कहा।

व्याख्या सभी बडो की जानी बात है कि रामयश ऐसी हवा है जिसके सामने मेरु मन्दर स गौरवशाली भी नही टिकते, हम भी नही टिक सकेंगे। फिर भी यश वर्णन से कोई विरत नही हुआ। यथाशक्ति सबने वर्णन किया। इसका कारण है और वह यह है कि वे वेद के बल पर कहते हैं। वेद ने भजन का बडा प्रभाव कहा है। भाव यह है कि वे इसलिए गुण वर्णन नही करते कि रामजी के सब गुण कह डालें बल्कि वे गुण वर्णन करके भजन करते हैं।

एक[1] अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानद परधामा ॥
व्यापक विश्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना ॥२॥

अथ जो एक है, कामना से रहित है, जिसका न रूप है, न नाम है, जिसका जन्म नही होता, सच्चिदानन्द परधाम है, व्यापक है, विश्व रूप है, भगवान् है उसी ने शरीर[2] धारण करके नाना प्रकार के चरित्र किये हैं।

व्याख्या १ एक अर्थात् अद्वितीय। द्वितीय के द्वारा ही कथन होता है। २ क्रियारहित को कोई ज्ञान का विषयीभूत नही कर सकता। ३ ४ अरूप अनामा। नाम और रूप, ये ही ईश्वर की उपाधियाँ हैं। यथा नाम रूप दोउ ईस उपाधी। सो उपाधि रहित को कोई कैसे कहे। ५ अज अर्थात् अजन्मा है, प्रागभाव उनका

---

१ द्वितीय विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येय महामते। अमूर्तं ब्रह्मणो रूप यत्सदित्युच्यते बुधैः।
समस्ता शक्तयश्चैता नृपयत्र प्रतिष्ठिता। तद्विश्वरूप वैरूप्य रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥
२ समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर। देवतिर्यङ्मनुष्यादि चेष्टावन्ति स्वलीलया।
जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा। चेष्टा यस्याप्रमेयस्य व्यापिन्या व्याहतात्मिका। वि पु।

अर्थ हे महामते। विष्णु नामक ब्रह्म का दूसरा अमूर्त रूप है जिसका योगिजन ध्यान करते हैं और जिसे बुधजन सत् कहकर पुकारते हैं। राजन्! जिसमे ये सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित है वह विलक्षण विश्वरूप भगवान् का बडा भारी दूसरा रूप है। हे नरेश! भगवान् का वही रूप अपनी लीला से देव, तिर्यक् और मनुष्यादि की चेष्टा से युक्त सर्वशक्ति मय रूप धारण करता है। इन रूपो म अप्रमेय भगवान् की जो व्यापक एव अव्याहत चेष्टा होती है वह ससार के उपकार के लिए होती है कर्म जन्य नहीं होती।

नही है। ६ सच्चिदानन्द बह्वर सबका मूल वहा। ७ पर धाम। यथा सबकर परम प्रकाशक जाई। राम अनादि अवध पति सोई। ८ व्यापक जिसका आर-छार नही। ९ विश्वरूप रूप अर्थात् सर्वरूप और १० भगवान्। यथा प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च कार्याकार्ये भयाभये। बन्ध मोक्षञ्च यो वेत्ति स वाच्यो भगवानिति। जो प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य, भय, अभय, बन्ध और मोक्ष को जाने उसे भगवान् कहते हैं। जो उपर्युक्त दश लक्षणवाला है उसी अशरीर ने शरीर धारण करके नाना प्रकार के चरित किये।

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
जेहि जन पर ममता अतिछोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू॥३॥

अर्थ सो भी केवल भक्तो के लिए। वे बडे कृपालु और प्रणत पर अनुराग करनेवाले है। जिसकी भक्तो पर बडी ममता और छोह है और जिसने करुणा करके फिर कभी क्रोध नही किया।

व्याख्या दह धारण करने का कारण कहते है कि केवल भक्तो के लिए भगवान् देह धारण करते हैं। यथा तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरहुँ देह नही आन निहोरे। देह धारण करने पर, जानने और वर्णन करने योग्य होते है। १ परम कृपाल २ प्रनत अनुरागी कहने का भाव यह है कि श्रीरामजी शरणागतवत्सल हैं। एक प्रणाम मे प्रसन्न होते हैं। भक्त के लिए देह धारण करके सब कुछ करते हैं। यहाँ तक कि अपने यश की भी परवाह नही करते। यथा

सत्य कहौ मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लकापति, तुम्हमन कौन दुराउ।
सबविधि हीन दीन अति जड मति, जाको कतहुँ न ठाँउ॥
आयो सरन भजौ न तजौ तेहि यह जानत रिषि राउ।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ॥
तिनहि लागि धरि दह करौ सब, डरौ न सुजस नसाउ॥ गी ५४५

३ जन पर ऐसी ममता और छोह है कि उसके लिए सब कुछ देय है। यथा जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे। अस बिस्वास तजहुँ जनि भोरे। और ४ सतत करुणा है। एक बार जिस पर कृपा कर दी, फिर उस पर क्रोध होता ही नही। यथा जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली। सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥
बुधवर नहिं हरि जस अस जानी। करहिं पुनीत सकल निज बानी॥४॥

अर्थ गई हुई को पलटानेवाले, दीनबन्धु, सरल, बलवान्, स्वामी रघुराज हैं। यह समझकर पण्डित लोग उनका यश वर्णन करते हैं और अपनी वाणी का पवित्र और सफल करते हैं।

व्याख्या श्रीरामजी गई बहोर है। यह नया नाम ग्रन्थकार ने श्रीराम जो

बा रक्खा है। सब कुछ जाकर लौट सकता है, पर सतीत्व फिर नही लौटता, सो भी अहल्या को लौटा दिया। यथा : गौतम गये गृह गवनो सो लवाय के। ६ दीनबन्धु ७ सरल ८ सबल साहिब अर्थात् प्रभु और १० रघुकुल के राजा हैं एव जिस भाँति दश विशेषण निर्गुण रूप के दे चुके हैं उसी भाँति दश विशेषण सगुण के भी दे रहे हैं। बीसो बिस्वे पूरे हुए।

पण्डित लोग यह जानकर कि 'ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। हरियश वर्णन करते हैं, चाहे वर्णन किया हो सके चाहे न हो सके। आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो पशु को भी सुलभ है। इसकी कथा से वाणी का साफल्य नही। वाणी का साफल्य हरियश वर्णन से है।

तेहिं बल मै रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहिं भाई॥५॥

अर्थ उसी बल से मैं श्रीराम जी के चरण कमलो मे सिर नवाकर, रघुनाथ जी के गुणो की गाथा कहूँगा। हे भाई! मुनियो ने पहिले हरि की कीर्ति का गान किया है। उसी मार्ग पर चलना मुझे सुगम है।

व्याख्या : उसी वेदवचन के बल से जिसने भजन का प्रभाव कहा है और 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन। स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।' इस न्याय से, मैं रघुनाथ के चरणो मे सिर झुकाकर, अपराधक्षमापन पूर्वक रामगुण गाथा कहूँगा।

वाल्मीकि, व्यास आदि मुनियों ने हरि की कीर्ति का गान किया है। उसी मार्ग का अनुसरण करने मे मुझे सुभीता है। उस मार्ग मे जल भी है, थल भी है। जल, यथा चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहिं पार। राम अमित गुन सागर थाह कि पावै कोइ। थल, यथा लोक वेद मत मजुल कूला। अत थल मे मुनियो के चरणपूत मार्ग का अनुसरण करूँगा।

दो. अति अपार जे सरित वर, जौ नृप सेतु कराहि।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहि॥१३॥

अर्थ : अति अपार जो नदियाँ है, यदि उन पर राजा पुल बँधवा देता है तो उसपर चढ़कर बहुत छोटी चीटी भी बिना परिश्रम के पार चली जाती है।

व्याख्या जल मे मुनियो के बँधाये पुलपर चढकर पार होगे। लोक, वेद का सामञ्जस्य ही पुल है। पुल बाँधने से दोनो कूलो मे सामञ्जस्य स्थापन हो जायगा। रामचरित्र मे लोकविधि और वेदविधि दोनो हैं। मुनि लोगो ने रामचरित्र लिखकर इस भाँति सामञ्जस्य स्थापन कर दिया है।

पिपीलिका पानी की रेखा नही डाँक सकती सो पुल पर से होकर अपार नदी बिना श्रम पार करती है। ग्रन्थकार अपने को चीटी मानते हैं, रामचरित्र मे कुछ भी गति नही। मुनियो को राजा कहा, वे चरित गान करके पुल बाँध गये। उसी के

अवलम्ब से मैं भी गान करके बिना श्रम पार पाऊँगा। यहाँ तक सात दोहो मे समष्टि विनय है।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई ॥
व्यास आदि कवि पुगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥१॥

अर्थ इस प्रकार का बल मन को दिखाकर मैं रघुपति की सुहावनी कथा बनाऊँगा। व्यास आदि जो अनेक श्रेष्ठ कवि हो गये हैं जिन्होने आदर से हरिसुयश वर्णन किये हैं।

व्याख्या पहिले कहा था 'करत कथा मन अति कदराई' और मन के कादर होने पर फिर कार्य नही हो सकता। इसलिए मन को ढाँढस बँधाते हैं कि पुल बँधा हुआ है, उसी पर चल जाओ। पुल पर से जानेवाले को जल की गम्भीरता और विस्तार की क्या चिन्ता है ?

अब जिन के मार्ग का अनुसरण करना है, जिनके बँधाये पुलपर चढकर पार जाना है, उनकी वन्दना करते है। व्यासोच्छिष्ट जगत् त्रयम्, यह तीनो लोक व्यास का उच्छिष्ट है, इसलिए पहिले व्यास द्वैपायन को कहा। आदि से मार्कण्डेय, अग्निवेशादि का ग्रहण है, जिन्होने आदर के सहित हरि के सुयश का बखान किया है। भाव यह है कि बौद्धो और जैनो में भी रामायण हैं, पर उन्होंने आदर के साथ बखान नही किया। अत उनकी इसमे गिनती नही है।

चरन कमल बदौ तिन्ह केरे। पुरहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥
कलि के कविन्ह करौ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥२॥

अर्थ मै उन सबके चरण कमलो की वन्दना करता हूँ। सब मेरे मनोरथ को पूरा करो। मैं कलियुग के उन कवियो को प्रणाम करता हूँ जिन्होने रघुपति के गुण समूहो का वर्णन किया है।

व्याख्या इसलिए उनके चरण कमलो की वन्दना करते है क्योकि मनोरथ एकाधिक है। यथा १ हरि यश कहो २ साधु समाज मे भणिति का सम्मान हो ३ परम विश्राम की प्राप्ति हो ४ रामचरण मे रति हो इत्यादि।

ऊपर जिनकी वन्दना की है, वे मुनि लोग हैं। उन्होने त्रेता, द्वापरादि मे रामयश को संस्कृत वाणी मे कहा है। कलियुग मे ऋषि नही है, फिर भी कालिदास, भवभूति, जयदेवादि महाकवियो ने संस्कृत का ही आश्रय लेकर काव्य, नाटक तथा गीतो मे हरियश कहा है, अत वे भी प्रणम्य हैं।

जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ॥
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवो सबहि कपट सब त्यागे ॥३॥

अर्थ जो परम सयाने प्राकृत के कवि है जिन्होने भाषा मे हरि चरित वर्णन किये हैं, जो पहिले हो चुके, जो आँखो के सामने मौजूद है और जो आगे भविष्य में होंगे उन सबको मैं कपट को छोडकर प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या संस्कृत से देववाणी और प्राकृत से लोकभाषा का ग्रहण है। यथा

सम्कृत नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभि । सस्कृत दैवी वाणी है, जिसे महर्षियो ने कहा है। प्रकृति सस्कृतम्। तत्र भव तत आगत वा प्राकृतम्। हेम। प्रकृति सस्कृत है, उससे जो उत्पन्न हो या आया हो उसे प्राकृत कहते हैं। उस प्राकृत के कवियो को परम सयाना कहा है। भाव यह कि सस्कृत के कवि सयाने, प्राकृत के कवि परम सयाने हैं, इनकी भणिति से विशेष लोकोपकार हुआ है। अधिकार का भी टण्टा नही रह गया। क्योकि उन्होने लोकभाषा में हरिचरित कहा है। यहाँ स्पष्ट है कि भाषा से प्राकृत भाषा अभिप्रेत है। प्राकृत मे तत्सम रूप से शुद्ध सस्कृत प्रयोग, तद्भव रूपसे सस्कृत के अपभ्रश रूप तथा देशोद्भव रूपसे देशी भाषा का ग्रहण है।

यहाँ 'आगे' शब्द का तीनो क्रियाओं के माथ सम्बन्ध है जो आगे : पहिले हुए, जो आगे . सामने . अहहिं और जो आगे ' भविष्य मे ' होइहहिं। उन सबको सब कपट छोडकर प्रणाम करता हूँ। सस्कृत के कवियो के साथ कपट की प्राप्ति ही नही थी। *परन्तु भाषा के कवियो के साथ कपट की प्राप्ति है, क्योकि सापत्न्यभाव* की सम्भावना है इसलिए कहते हैं कि सब कपट छोडकर प्रणाम करता हूँ। भूतकाल के प्राकृतकवि सेतुबन्धकार, चन्द वरदाई आदि, उस समय के कवि सूर, हितहरिवश आदि और भविष्य के कवि वृजविलासीदास, काष्ठ जिह्व स्वामी देव आदि सभी को ग्रन्थकार प्रणाम करते हैं।

होहु प्रसन्न देहु वरदानू। साधुसमाज भनिति सनमानू ॥
जो प्रवध बुध नहि आदरही। सो श्रम वादि वाल कवि करही ॥४॥

अर्थ मुझ पर प्रसन्न होकर वरदान दो कि मेरी कविता साधु समाज मे आदर पावे क्योकि जिस प्रवन्ध का पण्डित लोग आदर नही करते, उसके लिए व्यर्थ परिश्रम वाल कवि करते हैं।

व्याख्या कवियो से वरदान माँगते हैं। वरदान और किसी से नही माँगा। क्योकि ये 'रघुवर चरित मानस मजु मराल' हैं। ये रामगुण-मुक्ताफल चुगते हैं। इनसे मुक्ता मिलेगी। उसे रामचरितरूपी तागे में गूँथेगे। तव उसका सन्तसमाज मे आदर होगा।

यदि सन्तसमाज मे या पण्डितसमाज मे आदर न हुआ तो परिश्रम ही व्यर्थ गया। जिसने शास्त्र न पढा हो उसे 'वाल' कहते हैं। मूर्ख कवि कटु शब्द है, इस-लिए वाल कवि कहा।

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सव कह हित होई ॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा। असमजस अस मोहि अँदेसा ॥५॥

अर्थ कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी है जो गङ्गाजी के समान सबका हित करे। रामजी की सुकीर्ति और कविता गँवारी : भद्दी ' यह बडी ही अटपटी वात है, मुझे इसी का अन्देशा है।

व्याख्या : जिससे सबका हित न हो, न तो वह कीर्ति भली, न कविता भली और न भूति भली। इसीलिए श्रीग्रन्थकार ने प्रणव तारक मन्त्र का वर्णन न

करके रामतारक रामनाम का वर्णन किया। संस्कृत म ग्रन्थ न लिखकर भाषा म लिखा।

यही बडा भारी असामञ्जस्य है कि गुणसागर नागर श्रीरामजी की सुकीर्ति और गाई जाय ग्राम्य गिरा मे, इसी बात का मुझे खटका है कि साधु समाज मे मेरे भणित का सम्मान न होगा।

तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥६॥

अर्थ तुम्हारी कृपा से मुझ वह सामञ्जस्य भी सुलभ है। टाट और रेशमी वस्त्र दोनो पर बेल बूटा होता है।

व्याख्या संस्कृत कवियो ने रेशमी वस्त्र पर बेल बूटा काढा है और प्राकृत कवियो ने टाटपर कारीगरी की है। आपका कृपा से मै भी बेल बूटे टाट पर बनाऊँगा। जिस भाति रेशमी वस्त्रा म रेशमी बेल-बूटेवाल वस्त्रो का आदर होता है उसी भाँति टाटो मे मेरे बेल-बूटेवाल टाट का आदर टाट के ग्राहक साधु लोग करेगे। अत आपकी कृपा से साधु समाज से कविता का सम्मान मेरे लिए सुलभ हो जायगा।

दो सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज वयर विसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान ॥१४॥
सो न होइ बिनु विमल मति, मोहिं मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहौं, पुनि पुनि करउँ निहोर ॥१४॥क
कवि कोविद रघुवर चरित, मानस मजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल ॥१४॥ख

अर्थ उसी सरल कविता और निर्मल कीर्ति का सुजान आदर करते है, जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैर छोडकर प्रशसा करने लगे।

यह बात बिना निर्मल बुद्धि हुए नही हो सकती और मुझ बुद्धि का बल बहुत ही थोडा है। मै बारम्बार निहोरा करता हूँ, आप लोग कृपा करो। मै हरियश वर्णन करता हूँ।

पण्डित कवि लाग ही रामचरितमानस के सुन्दर हस है, सो बालक की विनय सुनकर और सुरुचि देखकर मुझपर कृपा करो।

व्याख्या जिस भाँति दाप कीर्ति का मलिन करता है, उसी भाँति क्लिष्टता कविता का मलिन करती है। कविता म जा अलौकिक आनन्द है उसे क्लिष्टता ढक दती है। अत प्रसादगुणयुक्त कविता हानी चाहिए। ऐसी कविता और निर्मल यश म ही यह सामर्थ्य है कि सुनते ही शत्रु सहज वैर भलकर बखान करने लग जाता है। नही ता सहज वैर प्राण रहते नही छूटता। कृत्रिम नाशमभ्येति वैर द्राक् कृत्रिमैर्गुणै। प्राणदान विना वैर सहज याति न क्षयम्। वैर अन्धा है, अपने वैरी

का गुण अपने को सूझता ही नही। यथा बैर अध प्रेमहि न प्रबोधू। इस कमल[1] की पुरइन है साधुसमाज भनिति सनमानू।

निर्मल मति हो तो प्रसाद गुणयुक्त कविता बने। प्रकृति के अनुकूल बेल-बूटे बन जाँय, इसलिए 'मति बल' माँगते हैं। 'हरियश कहउँ' कहकर अपने को सहायता का पात्र कहा। इस कमल की भी उपर्युक्त पुरइन है।

कवि कोविद रामचरितमानस के हंस हैं और उनकी जिह्वा हंसिनी है। यथा जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु। मुक्ता हल गुन-गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु। इसलिए इनकी कृपासे, रामगुणगणरूपी मुक्ताफल चाहते हैं। 'होहु प्रसन्न देहु बरदानू' से उपक्रम करके, 'मोपर होहु कृपाल' से उपसंहार करते हैं। 'सुरुचि लखि' से आर्ति कही। 'बाल विनय सुनि' से विनय कहा। 'मोपर होउ कृपाल' से दीनता कही।

इस कमल की पुरइन है कवि कोविद अस हृदय विचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी।

सो बंदौं मुनि पद कंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोष रहित दूषन सहित ॥ग॥
बंदौं चारिउ वेद, भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहिं न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जसु ॥घ॥
बंदौं बिधिपद रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जहं।
संत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल बिष बारुनी ॥ङ॥

अर्थ मैं उन मुनि के चरणकमलो की वन्दना करता हूँ, जिन्हाने रामायण बनाया, जो खर सहित होने पर भी सुकोमल है और दूषण सहित होने पर भी निर्दोष है।

मैं चारो वेदो की वन्दना करता हूँ जो ससार-समुद्र के लिए जहाज है, जिन्हे रामजी का यश वर्णन करते हुए, सपने म भी खेद नही होता।

मैं ब्रह्मदेव की चरणधूलि को प्रणाम करता हूँ, जिन्हाने यह भवसागर बनाया। जहाँ सन्त, अमृत, चन्द्रमा और धेनु देवसर्ग तथा खल, विष एव मदिरा आसुर-सर्ग उत्पन्न हुई।

व्याख्या इस कमल[2] की पुरइन है व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन सादर हरि चरित बखाना। 'आदि कवि' शब्द पुरइन म आ चुका है। इसलिए यहाँ नही देते। ब्रह्म का रामावतार हुआ उसी समय ब्रह्मयश वेद का भी रामायणावतार हुआ। रामावतार महाराज दशरथ के घर म हुआ और रामायणावतार श्रीवाल्मीकि

---

१ कमल = दोहा। पुरइन = तत्सम्बन्धी चौपाई।

२ कमल = दोहा। पुरइन तत्सम्बन्धी चौपाई।

के हृदय में हुआ। यथा : वेद[1] प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना। अत
ायण शब्द से मुख्यतः वाल्मीकीय रामायण का ग्रहण है। रामायण शब्द का
: रामस्य अयनम् रामायणम्। सो राम जी को वाल्मीकि ने चौदह प्रकार के
ो के हृदय को ही, उनके रहने योग्य स्थान बतलाया। यथा : सुनहु राम अब
हुँ निकेता। जहाँ बसहुँ सिय लखन समेता। इन्ही चौदह प्रकार के भक्तो की कथाएँ
ख़कर ही सब रामायणें निर्मित हैं। रामायण मञ्जु है। श्रीराम जी के रहने लायक
सुकोमल है। इसमे 'खर' नाम के राक्षस का नाम आगया है। बस, इतनी ही
ता : तीक्ष्णता : है। दोष रहित है। दूषण नाम के राक्षस का नाम आगया है,
से दूषण सहित कही गई है, नहीं तो इसमे खरता और दोष कहाँ? नमस्तमै
ा येन रम्या रामायणी कथा। सदूषणापि निर्दोषा सखरापि[2] सुकोमला। यहाँ
ायण चम्पू के इस श्लोक से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। शब्दो के तोड-फोड की स्थान
ो रह जाता।

वेदावतार का उल्लेख करके अब स्वय वेदो की वन्दना करते हैं। इन्हे जहाज
उपमित किया। समुद्र चार हैं। उनके लिए वेदरूपी जहाज भी चार है। जहाज
ावर समुद्र का आरपार किया करते हैं, उन्हे खेद नही होता। जहाज स्वय जल
रहते हैं, परन्तु यात्री को पानी से बचाकर पार कर देते हैं। इस भाँति वेद यद्यपि
ुण्यविषयक हैं पर अपने भक्तो को निस्त्रैगुण्य पद पर पहुँचा देते है। जहाँ एक ही
ा को वेद ने दोहराया है, वहाँ टीकाकार लिखते हैं 'मन्त्राणामालस्याभावात्'
ात् वेदो को आलस्य नही है। यही बात ग्रन्थकार भी कहते हैं : जिनहि न
ेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जस। इस कमल की पुरइन है गनि गुन दोष वेद
लगाये।

भवसागर के कर्ता ब्रह्मदेव की वन्दना करते हैं। दुष्पार और दुरवगाह्य होने
भव : ससार : को सागर कहा। जिस भाँति समुद्र से अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु
न्न हुई और विष वारुणी : सुरा : भी उत्पन्न हुई। उसी भाँति ससार सागर मे
सर्ग भी उत्पन्न हुआ और आसुरसर्ग भी उत्पन्न हुआ। सन्त कहकर देवसर्ग को
क्षित किया और खल कहकर आसुरसर्ग को लक्षित किया। भवसागर के अन्तर्गत
यह सागर : जलनिधि : है। अत सबके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मदेव हैं। ये ही विश्व
सविता : पिता हैं। इसीलिए पितामह कहलाते हैं। ये सर्वथा वन्दनीय हैं।

दो. बिबुध बिप्र बुध ग्रह चरन, बंदि कहौं कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मजु मनोरथ मोरि॥ १४ च॥

अर्थ : देवता, ब्राह्मण, पण्डित तथा ग्रहो के चरणो की वन्दना करके, हाथ
ड़कर कहता हूँ कि प्रसन्न होकर सब लोग मेरे सुन्दर मनोरथ को पूरा करो।

---

१. वेद वाल्मीकि जी से रामायण रूप मे उत्पन्न हुआ।

२ यहाँ परिसख्या अलङ्कार है। यथा परिसख्या एक थल बरजि दूजे थल ठहराय।
स्नेह हानि मन मे नही रही दीप महँ आय॥

व्याख्या चार दिव्य साधन मनोरथ सिद्धि के है। १ देवता २ ब्राह्मण ३ पण्डित और ४ ग्रह। देवता सहाय करते हैं। यथा होउ सहाय महेस भवानी। ब्राह्मण आशीर्वाद देते हैं। यथा औरौ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। पण्डित युक्ति बतलाते हैं। यथा जुगुति विभीषन सकल सुनाई। ग्रह प्रभाव डालते है। यथा जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भये अनुकूल। ये चारो देवता हैं। दिव्य साधन हैं विबुध देवता, ब्राह्मण देवता, पण्डित देवता। यथा विद्वांसो हि देवा। और ग्रह देवता। विप्र वेद के पण्डित, बुध अन्य शास्त्र के पण्डित। मनोरथ शब्द पुँल्लिङ्ग है इसके विशेषण 'मोरि' का मुख्य रूप 'मोर' ही समझना चाहिए। 'जोरि' के जोड मे 'मोरि' कर दिया।

इस कमल की पुरइन है सूझ न एकौ अग उपाऊ। मनमति रक मनोरथ राऊ। मनोरथ राऊ है, इसलिए दिव्य साधनो से काम लेते हैं। यहाँ 'मजु मनोरथ मोरि' से 'मनोरथ राऊ' कहा। इस भाँति यहाँ कमलो का गुच्छा हुआ।

पुनि बदौ सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता॥
मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका॥१॥

अर्थ फिर सरस्वतीजी और गङ्गाजी की वन्दना करता हूँ। दोनो पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक स्नान करने और पान करने से पाप दूर करती है और एक कहने सुनने से अविवेक हर लेती है।

व्याख्या सारद, सुरसरिता की साथ वन्दना गुणसाम्य के कारण करते हैं। सद्य पातकसहन्त्री सुरसरिता का पाप हरण करना पुनीतता है और केवल मज्जन, पान द्वारा पाप हरण करना चरित की मनोहरता है एव जाड्यान्धकारापहा सारदा का अविवेक हरण करना पुनीतता है और केवल कहने सुनने से अविवेक हरण चरित की मनोहरता है। जो पाप हो चुके हैं उसे श्रीगङ्गा हरण करेंगी और आगे भी पाप का रूप विवेक द्वारा सरस्वती भगवती नही होने देगी। 'सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा' कहकर द्रवीभूता सरस्वती का उल्लेख किया था। यहाँ अधिष्ठात्री देवी की वन्दना करते हैं।

गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीन बधु दिन दानी॥
सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के॥२॥

अर्थ दीनबन्धु, सदा देनेवाले, महेश और भवानी गुरु, माता और पिता हैं वे सीतापति के सेवक, स्वामी और सखा हैं और तुलसी के सब प्रकार से सच्चे निश्छल हितकारी है।

व्याख्या वेद की आज्ञा है मातृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। श्री ग्रन्थकार कहते हैं मेरो मातुपितु गुरु शकर भवानियै। गुरु, आचार्य या मन्त्रदाता को कहते हैं। शङ्कर भगवान् त्रिभुवन के गुरु हैं और माता पिता हैं। यथा तुम त्रिभुवन गुर वेद बखाना। जगत मातु पितु सभुभवानी। अत तीनो नाता इनसे जोडना प्राप्त है। दीनबन्धु हैं। यथा सरत न देखि दीन करजोरे। दिनदानी। यथा 'दीनदयाल दिबोइ भावै जाचक सदा सोहाही।

सीतापति के सेवक स्वामी और सखा हैं अर्थात् सर्वार्थकारी हैं। महात्माओं से सुना है कि जब भगवान् ने लिङ्गस्थापन किया और रामेश्वर नाम रक्खा तो मुनियों ने पूछा कि 'रामेश्वर' नाम का अर्थ क्या होगा ? तब रामजी ने कहा 'अर्थ' बड़ा सीधा है, यहां तत्पुरुष समास है रामस्य ईश्वर रामेश्वर।' राम के ईश्वर रामेश्वर हैं। तब लिङ्ग से शब्द हुआ, कि बहुव्रीहि समास है। अर्थात् राम ईश्वरो यस्य। जिसके ईश्वर राम हैं, वह रामेश्वर हैं। ऋषि लोग बड़े विचार में पड़े कि क्या मानें ? तब इस निर्णय पर पहुँचे कि यहां 'कर्मधारय' समास है। रामश्चासौ ईश्वर रामेश्वर। जो राम है वही ईश्वर है। अथवा हनुमान् रूप से सेवक, रामेश्वर रूप से स्वामी और समर-सागर में जहाज होने से सखा। यथा ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे। और तुलसी के तो सब प्रकार से सच्चे हितकारी हैं। उपधि का अर्थ है छल या झूठ। अत निरुपधि का अर्थ सच्चा या असली हुआ। *यथा मातु पिता स्वारथ रत ओऊ।*

कलि बिलोकि जगहित हर गिरिजा। सावर मन्त्र जाल जिन सिरिजा॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू॥३॥

अर्थ जिन शिव पार्वती ने कलियुग को देखकर जगत् के हित के लिए शावर मन्त्र समूहों की रचना की। जिनके अक्षर बेमेल हैं, न कोई अर्थ है, न जप है पर महेश के प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

व्याख्या मन्त्रों की सिद्धि के लिए शास्त्रोक्त अधिकारी और साधन कलियुग में दुर्लभ हैं। अत हितकर मनोरथों की सिद्धि के लिए शवर भील रूप से शावर मन्त्रों की जिन्होंने सृष्टि की। जिस देश में जो भाषा प्रचलित है उसी भाषा में शावर मन्त्र भी हैं। उन मन्त्रों के न शब्दों में मेल[१] है, न अर्थ ही कुछ होता है और न उन मन्त्रों के जप का ही कोई विधान है। 'हनङ् हनैया हनाङ् बचवा चुण्ड भया इस शावर मन्त्र से भिड के काटे हुए को आराम होते देखा गया है। सम्भव है कि मेरे सुनने में कुछ चूक हुई हो, फिर भी वह मन्त्र कुछ ऐसा ही था। प्रत्यक्ष फल होता है। यह महेश का प्रताप है। मन्त्र दाता होने से गुरु[२] हैं।

सोउ महेस मोपर अनुकूला। करिहि कथा मुद मंगल मूला॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम चरित चित चाऊ॥४॥

अर्थ वे महेश भी मुझपर अनुकूल हैं। वे इस कथा को मुदमङ्गल का मूल कर देंगे। मैं शिव-पार्वती का स्मरण करके और प्रसाद पाकर आनन्दित चित्त से राम चरित वर्णन करूँगा।

व्याख्या माता पिता अनुकूल होकर बिगड़ी बात बनाया करते हैं। मुझ

---

१ मेल से यहाँ अन्वय अभिप्रेत है और जप से जपविधि मालासंस्कार पञ्चशुद्धि आदि अभिप्रेत है।

२ गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौ 'दीनबंधु दिन दानी। आदि पदों से जो स्तुति की है उन सबों का एक एक करके साफल्य दिखा देंगे।

'धीग धरम ध्वज धँधरख धोरी' की वर्णित कथा को मुद मङ्गलमूल करगे। शावर मन्त्र को जिस भाँति उन्होने शक्ति दी उसी भाँति मेरी भनिति को भी शक्ति देकर मुद मङ्गलमूल करेंगे। एव 'पितुमातु' कहने का साफल्य दिखाया। शिवपार्वती स्मरण मात्र से कृपा करते हैं। मुझपर कृपा हुई। पहिले मेरा मन कथा करने मे हिचकता था। अव रामचरित वर्णन मे वडा उत्साह है। यह शिवाशिव की कृपा है। इस भाँति 'दीनवन्धु' वहने का साफल्य दिखाया।

भनिति मोरि सिव कृपा विभाती। ससि समाज मिलि मनहु सुराती॥

जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहि सुनिहहि समुझि सचेता॥५॥

अर्थ मेरी कविता शिवजी को कृपा से ऐसी प्रकाशिन होगी जैसे चन्द्रमा के समाज से मिलकर रात्रि सुन्दर होती है। जो लोग इस कथा को प्रेम के साथ कहेगे, सुनेंगे और सावधान होकर समझेंगे।

व्याख्या मेरी कविता तो रात है, उसमे प्रकाश कहाँ? शिव की कृपा शशि-समाज है। सो उसमे जा मिली तो वह सदा के लिए सुराति हो गई। भक्तिमय होकर पूर्णिमा की रात हो गई। इस भाँति 'दिनदानी' वहने का साफल्य दिखाया।

रामजी के सर्वार्थकारी शङ्कर भगवान् हैं। अत इस कथा के कहने सुनने और समझनेवाले

होइहहि राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमगल भागी॥६॥

अर्थ वे रामचरण के अनुरागी होगे कलिमल से रहित होकर सुमगल के भागी होगें।

व्याख्या कहनेवाले को श्रीराम चरणानुराग देंगे। सुननेवाले का कलिमल हरण करेंगे और समझनेवाले को सुमङ्गलभागी करेंगे। अथवा प्रत्येक को तीनो गुणो से युक्त करेंगे। इस भाँति सर्वार्थकारित्व का साफल्य दिखाया।

दो सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर, जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सव, भाषा भनिति प्रभाउ॥१५॥

अर्थ जो मुझपर हरगौरी का स्वप्न मे भी सचमुच प्रसाद हो तो मैंने जो भाषा कविता का प्रभाव वतलाया है, वह सव सत्य हो।

व्याख्या स्पष्ट है कि स्वप्न मे हरगौरी ने प्रसन्न होकर रामयशगान की आज्ञा दी। जो वात स्वप्न की देखी है, उसे ग्रन्थकार 'स्वप्न' शब्द देकर स्पष्ट कह देते हैं। यथा रूप सकहि नहि कहि स्रुति सेखा। सो जानइ सपनेहु जेहि देखा। यहाँ सपने म दर्शन हुआ था। विशेष वात इस अर्धाली के व्याख्यान मे कही जायेगी। 'फुर होइ' कहकर ग्रन्थकार दिखलाते हैं कि यह ग्रन्थ भी महेश के प्रताप से सिद्ध शावर मन्त्रजाल हो गया। अत शावर मन्त्र की परिपाटी ग्रहण करते हैं। शावर मन्त्रो मे प्रायेण 'फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच' रहता है, सो ग्रन्थकार ने भी 'सो फुर होउ जो कहेउँ सव, भाषा भनिति प्रभाउ' कहा। यह भी दिखलाया कि संस्कृत भणिति इस युगमे

काम नही देती, भाषा भणिति या प्रभाव हरगौरी प्रसाद से काम देगा। इससे 'हित निरुपधि सब विधि तुलसी के' का साफल्य दिखलाया।

सन्तो से रामचरण रति माँगी। समष्टि से बुद्धिवल माँगा। कविसमाज से 'साधु समाज भनिति सम्मान' माँगा। अब कहने हैं कि मेरी सब गुण रहित कविता की फलश्रुति शङ्कर के प्रताप से शावर मन्त्र की भाँति सत्य होगी।

अवधसमाज वंदना

वंदौ अवध[1]पुरी अति पावनि। सरजू[2]सरि कलि कलुप नसावनि॥
प्रनवौ पुरनर नारि बहोरी। ममता जिनपर प्रभुहि न थोरी॥१॥

अर्थ मैं अति पवित्र अयोध्यापुरी और कलियुग के पापो की नाश करनेवाली सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर पुरी के नर-नारियो को प्रणाम करता हूँ, जिनपर प्रभु की थोडी ममता नही है।

व्याख्या सातो मोक्षदा पुरी पावनी हैं। यथा अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका। इनमें से प्रथम होने से अयोध्या अति पावनी है। न योध्या अयोध्या और न वध अवध। इस भाँति समानार्थक होने से अयोध्या का नाम अवधपुरी है। यह स्वय प्रभुकी जन्म भूमि है। जब जब श्रीरामावतार हुआ है तब तब अवधपुरी मे हुआ है और जब होगा तब अयोध्या मे ही होगा। अवधपुरी और श्रीरामजी मे वही सम्बन्ध है जो दिन और प्रभाकर मे है। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अवधपुरी के साथ श्रीसरयूजी को प्रणाम करते है। यह अवधपुरी की उत्तर ओर बहती है। इनमे मज्जन करने से बिना प्रयास सामीप्य मुक्ति होती है। कलिकलुप के रहते मुक्ति नही होती, अत कहते हैं कलि कलुप नसावनि। स्वय श्रीरामजी ने भी एक साथ

---

१. अवध की महिमा अपरपार, गावत है श्रुति चार॥टेक॥
विस्मित अचल समाधिन स जो ध्याई बारबार॥
तात नाम अयोध्या गायो यह रिग वेद प्रकार॥१॥
राजधानि पर बल कचन नव आठ चक्र नव द्वार।
ताते नाम अयोध्या पावन अस यजु करत विचार॥२॥
अकार उकार धकार देवत्रय ध्याई जो लखिसार।
ताते नाम अयोध्या ऐसो साम करत निरधार॥३॥
जगमग कोस जहाँ अपराजित ब्रह्म देव आगार।
ताते नाम अयोध्या ऐसो कहत अथर्व उदार॥४॥

यह पुरी वाल्मीकि के मत से ४८ कोस लम्बी बारह कोस चौडी थी। देवकृत रामसुधा।

२ यह मानस सरस निकलकर अयोध्या होते हुए श्रीगंगाजी मे जा मिली है।
यथा कैलासपर्वते राम मनसा निर्मित सर।
तस्मात् सुस्राव सरस सायोध्यामवगूहते॥
सर प्रवृत्ता सरयू पुण्यब्रह्मसरच्युता। वाल्मीकीये

ही वर्णन किया है। यथा जनम भूमि मम पुरी सोहावनि। उत्तर दिसि वह सरयू पावनि।

ससार चाहता है कि मुझे रामजी 'अपना' समझें। यथा राम कहै जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसी दास। अथवा हम सम पुन्य पुज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। इसलिए रामजी पर ममता करते है। यहाँ अवधवासियो पर स्वय श्रीरामचन्द्र अधिक ममता करते हैं। अत ग्रन्थकार इन्हे रामजी का प्रिय समझकर प्रणाम करते हैं। यथा अतिप्रिय मोहि इहाँ के वासी।

सिय निदक अघ ओघ नसाए। लोक विसोक बनाइ बसाए॥
बदौ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जगमाची॥२॥

सीताजी की निन्दा करनेवाले के पापो के समूहो को नाशकर और शोक रहित करके लोक म बसाया। मैं पूर्व दिशा के समान कौसल्या माता की वन्दना करता हूँ। जिसकी कीर्ति की ससार म धूम है।

व्याख्या परनिन्दा सम अघ न गिरीसा। परनिन्दा के समान कोई पाप नही है। मनु भगवान् ने कहा है परिवादात् खरो भवति श्वा वै भवति निन्दक। सच्चा दोष कहनेवाला गधा होता है और झूठा दोष कहनेवाला कुत्ता होता है। जितने बडे की जो निन्दा करेगा उतना ही बडा उसे पाप होगा। अत जगज्जननी सीता की निन्दा करनेवाले को नरक मे भी स्थान नही है। यह अपराध एक अवधवासी से ही हो पडा। श्रीरामजी की इतनी बडी ममता अवधवासियो पर है कि ऐसे अधम प्रजा-जन के भी पापसमूह का नाश किया और लोक मे उसे विशोक करके बसाया। दण्ड भी नही दिया। सम्मान के साथ उसे बसाया कि यह मेरे मिथ्या अपवाद के दूरीकरण मे सहायक हुआ।

प्राची पूर्व दिक् मे ही पूर्णचन्द्र का उदय होता है। जब श्रीरामावतार हुआ या होगा तब कौसल्या से ही होगा। अत कीर्ति प्राचीदिक् की ही है। जितने देवकार्य हैं पूर्वमुख होकर ही उनके करने का विधान है। इससे ससार मे पूर्वदिक् की धूम है। इसी प्रकार ससार मे कौसल्या की कीर्ति की धूम है। यथा कौसल्या सुत सो गुन खानी। नाम राम धनुसायक पानी।

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥
दसरथ राउ सहित सब रानी। सकल सुमगल मूरति मानी॥३॥

अर्थ जहाँ सुन्दर चन्द्रमा के समान रघुपति प्रकट हुए, जो ससार का सुख देनेवाले और खलरूपी कमल के लिए पालारूप हैं। रानिया सहित राजा दशरथ को पुण्य और मङ्गल की मूर्ति समझकर

व्याख्या 'ससिचारू' मे पूर्णचन्द्र का ग्रहण करते हैं। अथवा यह चन्द्र सदोष है। यथा जन्म सिधु पुनि बधु विष, दिन मलीन सकलक। सिय मुख समता पाव किमि, चद बापुरो रक। घटै बढै बिरहिनि दुख दाई। ग्रसै राहु निज सधिहि पाई। कोक सोकप्रद पकज द्रोही। अवगुन बहुत चद्रमा तोही। पर श्रीरामचन्द्र

निर्दोष हैं, इसलिए 'चारु' कहा। रघुपति कहकर श्रीरामावतार कहा जो रघुकुल म हुआ। जो रामावतार भृगुकुल मे हुआ अथवा जो यदुकुल में हुआ उनका यहाँ ग्रहण नही है।

अवतार के दो प्रधान कारण शङ्करजीने कहे हैं असुर मारि थापहि सुरन्ह' दैवी सम्पत्वालो की रक्षा और आसुर सम्पत्वालो का सहार सो 'विस्व सुखद खल कमल तुसारू' कहकर दोनो बातें कही। खल की कमल से उपमा इसलिए दी कि कमल अपने जनक जल से ही विमुख रहता है। ऊपर की ओर मुख किये रहता है। जिम भाँति तुषार से कमलवन का सहार हो जाता है उमी भाँति श्रीरामावतार मे पृथ्वी का निशिचर हीन होना द्योतित किया।

अव माता पिता की वन्दना करते हैं। सुकृतमूर्ति महाराज दशरथ और सुमङ्गलमूर्ति सब रानियाँ यथा सुकृती तुम समान जग माही। भयउ न है कोउ होतेउ नाही। सब रानी से सात सौ रानियो का ग्रहण है। यथा पागलपन दुलहिनन्हि सिखावत मुदित सासु सत साता। अमगल पाप से होता है, पुण्य का मङ्गल से नित्य सम्वन्ध है, अत रानियो को मङ्गलमूर्ति कहा।

करौ प्रनाम करम मन वानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिन्हहि विरचि वड भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥४॥

अर्थ मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। पुत्र का सेवक जानकर कृपा करो जिनको रचकर ब्रह्मदेव भी बडे हुए। राम के माता पिता महिमा की सीमा हैं।

व्याख्या इष्टदेव के माता-पिता हैं, इसलिए वडी सावधानी से प्रणाम करते हैं। सुत का सेवक भी माता-पिता को प्रिय होता है। अत प्रार्थना करते हैं कि सुत का सेवक जानकर कृपा करो।

रामजी तो 'आपु प्रकट भये विधि न वनाए' पर इनके माता पिता तो ब्रह्मदेव की सृष्टि म हैं। इस नाते ब्रह्मदेव बडे हुए क्योकि राम के पिता माता महिमा की अवधि हैं। यथा सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम सम धन्य न कोउ। राम लखन जिनके तनय विस्वविभूषन दोउ। और उनके वनानेवाले ब्रह्मदेव हैं।

दो वदौ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
विछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृन इव परिहरेउ॥१६॥

अर्थ मैं अवध क राजा की वन्दना करता हूँ, जिनको रामजी के चरणो म सच्चा प्रेम था, जिन्होने दीनदयाल के विछुडते ही अपने प्रिय शरीर को तिनके के समान छोड दिया।

व्याख्या सच्चा प्रेम उसी को है जो प्रमपात्र का विरह न सह सके। चक्रवर्ती जी के सामने सवका प्रेम कच्चा दिखाई पडता है क्योकि रामविरह मे ये ही शरीर छोडने मे समर्थ हुए और सव लोग इस सच्चे प्रेम के लिए तरसते ही रह गये। स्वय माँ कह रही हैं असविचारि नही करउँ हठ झूठ सनेह बढाइ। मेरा प्रेम

झूठा है क्योकि मैं तुम्हारे विरह मे मर नही सकती। अत इस झूठे प्रेम को न बढाऊँगी। भरतजी कहते हैं सकर साखि रहेउँ एहि घाएँ। सुमन्त जी कहते है रहिहि न अतहु अधम सरीरू। जस न लहेउ बिछुरत रघुवीरू। इत्यादि।

केवल छ दिन सुमन्तजी के वन पहुँचाने और लौटने मे लगे। वह चक्रवर्तीजी को अपार मालूम पडता है। लौटने की आशा से शरीर धारण किये हुए थे। यथा हा रघुनदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते। अत कहते हैं' प्रिय तन तृन इव परिहरेउ'। जैसे ममतारहित होकर कोई तृण तोड देते हैं, उसी भाँति शरीर छोडा। सत्य प्रेम मे इनका साथी माताओ मे भी कोई नही। इसलिए इनकी अलग वन्दना अकेले की।

प्रनवौ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ सनेहू ॥
जोग भोग महुँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥१॥

अर्थ मैं कुटुम्ब सहित राजा विदेह को प्रणाम करता हूँ। जिनको रामजी के चरणो मे छिपा प्रेम था। जिसे योग और भोग मे छिपा रक्खा था, पर रामजी के देखते ही वह प्रकट हो गया।

व्याख्या 'परिजन' शब्द से महारानी सुनयना आदि समस्त परिवार का ग्रहण हुआ। अवध भुआल के सत्यसनेह की प्रशसा है और विदेहराज के गुप्त प्रेम की प्रशसा है। कोई उन्हे योगी और कोई भोगी जानता था। सामान्य लोग तो भोगी ही जानते थे, परन्तु जानकार लोग जानते थे कि योगी हैं। इन्हे प्रेमी कोई नही जानता था। जिस भाँति डब्बे मे रत्न छिपाकर रक्खा जाता है उसी भाति महाराज जनक ने योग-भोग के डब्बे मे प्रेमरत्न छिपा रक्खा था। यथा रागळ विराग भोग जोगवत मन, जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है 'गीतावली'। सो रामजी के देखते ही प्रकट हो गया। अपने स्वरूप को छिपा न सके। यथा इनहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। श्रीरामजी के प्रेमी धन्य हैं और उनके परिजन भी धन्य है। अत सबकी वन्दना करते हैं।

प्रनवौ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना ॥
राम चरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू ॥२॥

अर्थ मैं पहिले भरतजी के चरणो को प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नही किया जा सकता। जिनका मन भौंरे के समान लुब्ध होकर रामचरणरूपी कमल के पास से नही हटता।

व्याख्या भाइयो की वन्दना मे ग्रन्थकार प्रथम वन्दना भरतलाल की करते हैं, क्योकि तीनो भाइयो मे बडे है। विश्व के भरण पोषण करनेवाले हैं। शुचि सुबन्धु हैं। धर्म की मर्यादा हैं। कुलके दीपक हैं। शठको भी राममम्मुख करनेवाले है। यथा ' बिस्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहिं भरत समाना। सम्मुख सठहु करब तुम जोई।

धर्म सार जग होइहिं सोई। जानेउ सदा भरत कुल दीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा। कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

जिसके नेम प्रेम का वर्णन हो नही सकता। यथा : सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। ऐसा नेम प्रेम है, जैसा भौंरे का कमल के साथ होता है। यथा : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू। बीते अवधि जाउँ जौ जिअत न पावौ वीर।

यह शङ्का उचित नही है कि ग्रन्थकार ने भरत के चरण को कमल क्यो नही कहा ? क्योकि अन्य स्थान मे कहा है झलका झलक्त पायन कैसे। पकज कोप ओसकन जैसे। प्रथम वन्दना करके प्रधानता दे ही दी, तब चरण को कमल कहने की आवश्यकता न रही। यथा वंदौ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित ससय सब हरना।

वंदौ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।
रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयेउ जस जाका ॥३॥

अर्थ : मैं लक्ष्मणजी के चरणकमलो की वन्दना करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तो को सुख देनेवाले है और रघुपति की कीर्तिरूपी विमल पताका मे जिनका यश दण्ड के समान हुआ।

व्याख्या लक्ष्मणजी के चरणकमलो के गुण कहते है। वे चरण पाप, ताप, माया का हरण करते है इसलिए शीतल है। ध्यान करनेवालो के चित्ताकर्षक होने से सुभग है। यथा 'चारु चपक वरन वसन भूषन धरन दिव्यतर भव्य लावण्य सिंधो' और कल्याण मङ्गल भवन होने से 'भक्त सुख दाता' है। यथा उर्मिला रमन कल्यान मगल भवन दास तुलसी दोष दवन हेतू।

रावणवधरूपी विमल कीर्ति की पताका जो श्रीरामचन्द्र की फहरा रही है, उसका आधार लक्ष्मणजी का यश है। मेघनाद वध होने पर लङ्का अजेय नही रह गई। मेघनाद वध लक्ष्मणजी ने किया। देवताओ को प्रत्यक्ष होकर स्तुति करने का साहस हुआ। यथा जय अनत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। पताका दूर से ही दृष्टिगोचर होती है पर दण्ड तो निकट आने पर दिखाई पडता है। इसी भाँति श्रीरामजी की कीर्ति विख्यात है, परन्तु लङ्का के युद्ध के देखने पर लक्ष्मणजी की कीर्ति का पता चलता है।

सेष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन ॥
सदा सो सानुकूल रहु मोपर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥४॥

अर्थ ' जो जग के कारण, हजार सिरवाले शेषजी है। उन्होने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया। वे कृपासिन्धु, गुणो की खानि सुमित्रा के पुत्र सदा मुझपर अनुकूल रहे।

व्याख्या वाल्मीकिजी ने लक्ष्मणजी को साक्षात् शेषावतार बतलाया। यथा जो सहससीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। अत' 'सेष सहससीस' कहकर ग्रन्थकार स्तुति करते है। जाग्रत् अवस्था के विभु होने से जगकारण कहते है। जाग्रत्

के आधार पर ही जगत् की स्थिति है। यथा लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। इनका अवतार भूभार-हरण के लिए हुआ था। यथा जयति संग्राम सागर भयङ्कर तरन रामहित करन वरबाहु सेतू।

रामभक्त के लिए लक्ष्मणजी की सानुकूलता परमावश्यक है। लक्ष्मणजी ने ही ग्रन्थकार की ओर प्रभु का ध्यान आकृष्ट कराया। यथा मारुति मत रुचि भरत की लखि लखन कही है। कलि कालहू नाथ नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है विनय प। कृपासिन्धु और गुणाकर कहकर सेवनीय कहा और सौमित्र कहकर भगवती सुमित्रा के गुणो का इनमे होना जनाया। यथा सिय रघुवर सेवा सुचि ह्वैहो तौ जानिहौ सही सुत मोरे। कीजहु इहै विचार निरन्तर राम समीप सुकृत नही थोरे।

रिपु सूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महावीर विनवौ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥५॥

अथ मैं शत्रुघ्न के चरणकमलो को प्रमाण करता हूँ। वे शूर, सुशील और भरत जी के पीछे चलनेवाले हैं। महावीर हनुमान् जी की विनती करता हूँ। उनके यश का राम जी ने स्वय बखान किया है।

व्याख्या शत्रुघ्नजी ऐसे शूर हैं कि इनके स्मरण से शत्रु का नाश होता। यथा जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा। जयति जय सत्रुकरि-केसरी सत्रुतम तुहिनहर किरनकेतू। 'रिपु' शब्द से लौकिक रिपु तथा षड् रिपु काम-क्रोधादि का भी ग्रहण है। शत्रुघ्न जी सुशील ऐसे हैं कि बडे भाइयो क समाने कभी बोले ही नही और भरत जी के अनुगामी हैं। अर्थात् रामसेवक के सेवक हैं। यथा जयति सर्वांगसुन्दर सुमित्रासुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी विनय। अर्थात् रामजी के दासानुदास हैं। अब भ्रातृकोटि म परिगणित भक्तो की वन्दना करते हैं।

वीर बहुत हुए, पर महावीर शब्द रूढ हनुमान् जी के लिए है। बडे बडे वीरो ने त्रैलोक्य विजय किया पर काम के वशवर्ती कभी न हुए हो ऐसे तो एक हनुमानजी ही हैं। सब कोई रामयश का बखान करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं पर हनुमानजी के यश का तो स्वय रामजी बखान करते हैं। यथा सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी। सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाही। देखेउँ करि बिचार मनमाही। ऐस महावीरजी के विनय करने से कामादि शत्रु भी नष्ट होगे और रामजी की कृपा भी होगी।

सो प्रनवौ पवन कुमार, खल वन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहि राम सर चाप धर॥१७॥

अर्थ मैं पवनकुमार हनुमानजी को प्रणाम करता हूँ जो खलरूपी वन के लिए अग्नि हैं और जिन्हें घना ज्ञान है और जिनके हृदयरूपी घर म धनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं।

व्याख्या प्रनवौ से प्रणाम कहा। पवन से अग्नि की उत्पत्ति कही। यथा

'वायोरग्नि ।' सो पवनकुमार भी अग्निरूप ही है। भेद यह है कि अग्नि जड है। उसे विचार नही है। सभी को अवसर पडने पर जलाता है। पर हनुमान्‌जी तो 'खलवन-पावक' है। अग्नि जड प्रकाश है। हनुमान् जी मे चित्प्रकाश है। इसलिए ज्ञानघन कहा। अग्नि भगवान् की विभूति है। यथा ' वसूना पावकश्चास्मि। और हनुमान्‌जी के हृदय मे स्वय भगवान् बसते है। 'सर चाप धर' कहने का भाव यह कि : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा।

'पवनकुमार' कहकर दिव्य जन्म बताया। 'खलवन पावक' कहकर दिव्य कर्म बताया। 'ज्ञानघन' कहकर दिव्य ज्ञान बताया और 'जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर' कहकर साक्षात् रामायणरूप बतलाया। अथवा 'पवनकुमार कहकर समुद्रोल्लघन ध्वनित किया। 'खलवन पावक' कहकर लकादहन ध्वनित किया। ज्ञानघन कहकर सीता प्रबोध, रावण प्रबोध ध्वनित किया। बसहिं राम सरचाप धर से 'राम प्राप्ति' ध्वनित की। इसी वन्दना मे सक्षेप से हनुमत्तच्चरित कह डाला क्योकि हनुमान्‌जी 'भानुकुलभानु कीरति पताका' हैं।

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा ॥
वंदौ सबके चरन सोहाये। अधम सरीर राम जिन्ह पाये ॥१॥

अर्थ : वानरो के पति रीछ तथा राक्षसो के राजा और अङ्गद आदि जो वानर समाज है उन सबके सुन्दर चरणो की मै वन्दना करता हूँ। जिन्होने अधम शरीर से रामजी को प्राप्त किया।

व्याख्या : कपिपति अर्थात् सुग्रीवजी, रीछ राजा जाम्बवानजी, निशाचरराज विभीषणजी, अङ्गदादि अर्थात् द्विविद मयन्द, नील, नल, गद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, निशठ, शठ आदि वानरसमाज। इन सब महानुभावो के सुन्दर चरणो की वन्दना करते हैं, क्योकि ये रामजी के सखा है। यथा ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे। हनुमान्‌जी की प्रथम वन्दना का कारण यह है कि ये सर्वाधिक बडभागी और रामानुरागी है। यथा ' हनूमान सम नहि बडभागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी। इन सबो मे बडी विशेषता है। नर शरीर से भी रामजी की प्राप्ति दुर्लभ है, सो इन लोगो ने अधम शरीर से रामजी की प्राप्ति की है। यथा : प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा। अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर। कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।

रघुपति चरन उपासक जेते। खगमृग सुर नर असुर समेते ॥
बंदौ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे ॥२॥

अर्थ . पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य और असुर समेत जितने रघुनाथ के चरणो के उपासक हैं, जो बिना कामना के रामजी के दास है। मैं सबके चरण कमलो की वन्दना करता हूँ।

व्याख्या भाव यह कि नर से व्यतिरिक्त शरीरो मे भी उपासक पाये जाते

हैं। सो वन्दना उपासकों की है, शरीरों की नहीं। खग से गरुड, भुसुण्डि, जटायु आदि का ग्रहण है। मृग से बानरों तथा रीछों की सेना के सैनिक आदि, सुर से गणेश सुरेश आदि, नरों से अयोध्या, मिथिला निवासी आदि, असुर माल्यवान आदि। भाव यह कि चाहे जिस योनिके हो, निष्काम भक्त अन्तरङ्ग हैं। यथा सकल कामना हीन जे राम भगति रसलीन। अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसहि धन जैसे।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिग्यान बिसारद॥
पनवौं सबहि धरणि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥३॥

अर्थ शुकाचार्य, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, भक्तमुनि नारद तथा जितने विज्ञान-विशारद मुनि हैं, उन सबको मैं धरती पर मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो! अपना जन जानकर कृपा करो।

व्याख्या भाव यह है कि उपर्युक्त महानुभाव विज्ञान-विशारद अर्थात् ब्रह्मज्ञ होने पर भी भक्त है। यथा अस विचारि पंडित मोहि भजही। पायेहु ज्ञान भगति नहि तजही। ग्रन्थकार कहते हैं कि इनके चरणस्पर्श की भी मेरी योग्यता नहीं है। इससे धरती पर सिर रखकर प्रणाम करते हैं और अपने को इनका सेवक मानते हैं। अथवा बहुतों को युगपत् प्रणाम धरणी पर सिर रख करके ही किया जाता है, एक हो तो उसके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया जाय।

जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावौं। जासु कृपा निरमल मति पावौं॥४॥

अर्थ जनक की बेटी, जगत् की माता और करुणानिधान की अत्यन्त प्यारी श्रीजानकीजी के दोनों चरण कमलों को मनाता हूँ। ध्यान करता हूँ जिनकी कृपा से निर्मल मति की प्राप्ति हो।

व्याख्या जनक सुता और जानकी ये दोनों शब्द एक अर्थ के बोधक मालूम पड़ते हैं, पर यह बात नहीं है। गायत्रीसहस्रनाम में पठित जानकी नाम सदा से ही गायत्री माता का है। अत जानकी कहकर ब्राह्मणों की इष्ट देवता गायत्री देवी कहा। जनक सुता कहकर उनका दिव्य जन्म कहा। जगजननि कहकर उनका सावित्री होना कहा। यथा आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया। 'अतिसय प्रिय करुना निधान की' कहकर उनका जगत्पिता सविता से अनादि सम्बन्ध सूचित किया। यथा प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द तजि जाई। उस महामाया के दोनों चरणों का ध्यान ग्रन्थकार करते हैं। बोलने में तो केवल चरणकमल कहने से काम चल जाता है, पर ध्यान करने में तो बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। अत 'जुग पद कमल मनावौं' कहते है। ये ही बुद्धि की प्रेरणा करनेवाली देवी है। अत निर्मल मतिप्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। अथवा श्रेय और प्रेय दोनों की प्राप्ति के लिए दोनों चरणों का ध्यान करते हैं। उपासना करने से यही देवी बुद्धिरूप में परिणत होकर मृत्युजाल से छुड़ा देती है। जब यह देवी प्रसन्न होती है तब सूर्य की भाँति चितानाश में चिदाकाशता को प्राप्त होती हैं।

सबके हृदय मे निवास करनेवाली इस देवी की कृपा हो, यही सबसे अधिक परम साधन है।

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक। चरन कमल वदौं सव लायक ॥
राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत विपति भजन सुख दायक ॥५॥

अर्थ फिर मैं मन, वाणी और कर्म से सब लायक रघुनायक के चरणकमलो की वन्दना करता हूँ। जो कमलनयन धनुप वाण धारण किये हुए भक्तो की विपत्ति को दूर करनेवाले तथा सुख के देनेवाले है।

व्याख्या रघुनायक पद से रघुकुल मे अवतार कहा। सवलायक पद से सर्वशक्तिमान् कहा तथा चक्रवर्तीजी की अत्यन्त प्रीति कही। यथा भये राम सब विधि सब लायक। राजिव नयन से सुन्दरता तथा कृपालुता कही। धरे धनु सायक पद से काल का भी नियन्ता ब्रह्म कहा। यथा लव निमेष परमानु जुग वर्ष कल्प सर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड। भगत विपति भजन पदसे दुष्कृतो का विनाश कहा और सुखदायक पद से साधुपरित्राण तथा धर्मसस्थापन कहा।

इसी चौपाई मे सातो काण्डो की कथाओ का बीज निहित है। यथा रघुनायक पद से जन्म, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत तक की कथा इङ्गित की। सबलायक पद से मखरखवारी, अहल्योद्धार, पिनाकभङ्ग, सीता-परिणय, पिताजी के यौवराज्य देने तक की कथा द्योतित की। राजिवनयन से बनवास। यथा राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। तथा मुनियो पर कृपा कही। धरे धनु सायक पद से निसिचर हीन करौं महि ऐसी प्रतिज्ञा करना कहा। भगत विपति भजन पद से सूर्पणखा-नासिकाछेदन से रावणवध तक द्योतित किया। सुख दायक पद से राज्य कहा अर्थात् राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भये गये सब सोका। तक की कथा ध्वनित की।

इसी चौपाई मे अवतार के सब कारण भी कहे। यथा असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज स्रुति सेतु। जग विस्तारहि विसद जस राम जन्म कर हेतु। भगत विपति भजन थापहि सुरन्ह सुख दायक राखहि निज स्रुति सेतु रघुनायक। जग विस्तारहि विसद जस सब लायक राम जन्म कर हेतु।

दो गिरा अरथ जल वीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
वदौं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥१८॥

अर्थ वाणी और अर्थ, जल लहर जैसे अलग-अलग कह जाते है पर अलग-अलग नही है, वैसे ही सीताराम पद है उनकी मै वन्दना करता हूँ, जिनको दु खी अत्यन्त प्यारे है।

व्याख्या सीताजी की उपमा गिरा से, रामजी की अर्थ स, फिर सीता जी की उपमा वीचि से और रामजी की जल से है एव एक वार सीता को पहिले कहा दूसरी वार राम को पहिले कहा। अभेदार्थ दृढ करने के लिए। सीता राम है और

राम ही सीता हैं। [1]गिरा अर्थ से मानसिक अभेद कहा और जल वीचि से तात्त्विक अभेद कहा। सीताराम पद कहकर यह दिखलाया कि वह ब्रह्म पद एक है। उसीका राम नाम से पुँल्लिङ्ग मे व्यवहार होता है और सीता नाम से स्त्रीलिङ्ग मे व्यवहार होता है। इसलिए कहने मात्र मे भेद है, भेद कुछ भी नही। अथवा यह दिखलाया कि चरण मे भी भेद नही। जो चिह्न रामजी के दक्षिण पद मे है वे ही चिह्न सीताजी के वाम पद मे है और जो चिह्न सीताजी के दक्षिण पद मे है वे ही चिह्न रामजी के वाम पद मे है। जिन्हहि परम प्रिय खिन्न कहकर रुचि मे भी अभेद दिखलाया।

वदौ नाम राम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
विधि हरिहरमय वेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥१॥

अर्थ मैं रघुवर के नाम की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु अग्नि भानु सूर्य और हिमकर चन्द्र का कारण है और ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवमय वेद के प्राण सा है तथा निर्गुण, निरुपम और गुणनिधान सा है।

व्याख्या जैसे राजा की सवारी सेना सामन्तो के पीछे रहती है। उसी न्याय से कवि ने सबकी वन्दना करके अन्त मे श्रीसीतारामपद की वन्दना की है और उसके भी बाद नौ दोहो मे नाम की वन्दना की है। नाम का इतना आदर इसलिए है कि वह नामी को अत्यन्त प्रिय है। लोक मे भी देखा जाता है कि नामी नाम के पीछे अपना प्राण दे देता है। दूसरी बात यह है कि नाम मे रूप सूक्ष्मरूप से अवस्थान करता है। रघुवर राम का उत्कर्ष यदुवर और भृगुवर राम से अधिक है। क्योकि जिस नित्यानन्द चिदात्मामें योगी लोग रमण करते हैं उसीको तापनीय श्रुति ने रघुवर राम कहा है। यथा रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। चिन्मयेऽस्मिन्[2] महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ। रघो कुलेऽखिल राति राजते यो महोस्थित। स राम इति लोकेऽस्मिन् विद्वद्भि प्रकटीकृत। सो रघुवर के राम नाम मे रघुवर का रूप से सूक्ष्मरूप अवस्थान करता है।

उसी राम नाम को यहाँ कृशानु, भानु और हिमकर का कारण बतलाया है,

---

१ एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ। प्रकाशक प्रकाश्यश्च कार्यकारण-रूपता। वाक्यपदीय। अर्थ परमार्थ दृष्टि से शब्द और अर्थ अभिन्न हैं। आत्मा ही शब्द और आत्मा ही अर्थ है। ब्रह्म प्रकाशक है और ब्रह्म ही प्रकाश्य है। व्यावहारिक दृष्टि से शब्द और अर्थ प्रकाशक प्रकाश्य रूप से कार्यकारणभाव मे उपलब्ध होते हैं। इसीलिए कहा है कि दाम्पत्य नैव लोकेऽस्मिन् विद्यते नैव लभ्यते। अलौकिक हि दाम्पत्य विद्यते रामसीतयो।

अर्थ न ऐसा स्त्री पुरुषभाव न लोक म है और न पाया जाता है, रामसीता का दाम्पत्य अलौकिक है।

२ इस रघुकुल मे चिन्मय, महाविष्णु हरि दशरथ के यहाँ जन्म लेकर भक्तो का सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करते हुए पृथ्वी पर शोभायमान होते हैं। उन्हीका राम कहकर विद्वान् लोग अभिहित करते हैं।

परन्तु छान्दोग्यश्रुति[1] कहती है कि उनके कारण है, तेज, अप् और अग्नि। अग्नि का जो लाल रूप है वह तेज का रूप है। जो शुक्ल रूप है वह जल का है। जो काला रूप है वह पृथ्वी का है। अग्नि से अग्नित्व ही चला गया। तीन रूप ही सत्य हैं। इसी भाँति आदित्य का जो लाल रूप है वह तेज का है। जो शुक्ल है वह जल का है। जो काला है वह पृथ्वी का है। आदित्य से आदित्यत्व गया। तीन रूप ही सत्य ठहरे। चन्द्र का जो लाल रूप है वह तेज का है। जो शुक्ल है वह जल का है। जो काला है वह पृथ्वी का है। गया चन्द्र से चन्द्रत्व। तीन रूप ही सत्य हैं। अत कहना पड़ेगा कि यहाँ कृशानु, भानु, हिमकर से लोक प्रसिद्ध तीनों ज्योतियाँ जिन्हे अग्नि, सूर्य और चन्द्र कहा जाता है, अभिप्रेत नहीं है।

मन्त्रशास्त्र कहता है कि चिन्मय ब्रह्म में जब सिसृक्षा होती है तो उसे पर-विन्दु कहते हैं। यही परविन्दु वैष्णवों का महाविष्णु, शैवों का पर शिव और शाक्तों का अनपायिनी परा वाक् है। यही पर विन्दु काल पाकर १ शोणविन्दु २ सितविन्दु तथा ३ मिश्रविन्दु रूप से प्रकट होता है। इन्हीं का पारिभाषिक नाम क्रम से १ कृशानु २ भानु और ३ हिमकर हैं। जब राम नाम महामन्त्र है तब उसकी व्याख्या में मन्त्रशास्त्र की परिभाषा न मानने का कोई कारण नहीं है।

राम शब्द के विश्लेषण से र, आ और म निकलते हैं और ये ही क्रम से रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु हैं। अत राम से त्रिदेव की उत्पत्ति कही गई। यथा स्कन्दयामले [2]रुद्र उवाच। रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णु सोमो म उच्यते। आवयोर्मध्यगो ब्रह्मा रविराकार उच्यते। अत स्पष्ट है कि यहाँ कृशानु भानु हिमकर से क्रमश रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु का ग्रहण है। इनका कारण रघुवर का राम नाम है। ऐसे महामहिम राम नाम की कवि वन्दना करते हैं।

अब राम नाम की व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार से कहते हैं। राम नाम ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमय है। रामपूर्वतापनीय के द्वितीय उपनिषत् में कहा है कि 'रेफारूढा मूर्तय स्यु शक्तयस्तिस्र एव च' इस पर टीकाकार लिखते हैं 'अकारद्वय मकारश्चेति वर्णास्त्रय समुदिता रेफारूढा बीज स्यु। प्रथमोऽकारो विराडात्मकब्रह्मारूप, द्वितीयोऽकारो हिरण्यगर्भात्मकविष्णुरूप, मकारस्तु अव्याकृतात्मकसदाशिवरूप'। शक्तय इति सृष्ट्यादिशक्तय इत्यर्थ तदा रेफेण स्वभूरित्यादिप्रतिपादित स्वप्रकाश ब्रह्मोपस्थाप्यते। अर्थात् रकार को रेफ कहते हैं, उसके साथ ही तीन मूर्तियाँ और तीन शक्तियाँ हैं। दो अकार और एक मकार र्+अ+अ+म=राम। इसमें पहिला

---

१ यदग्ने रोहितं रूप तेजसस्तद्रूप यच्छुक्ल तदपा यत्कृष्ण तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्व वाचारम्भण विकारोनामधेय त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्। यदादित्यस्य रोहित रूप तेजसस्तद्रूप यच्छुक्ल तदपा यत्कृष्ण तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वाम् वाचारम्भण विकारो नामधेयम्। त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्। यच्चन्द्रस्य रोहित रूप तेजसतद्रूप यच्छुक्ल तदपा यत्कृष्ण तदन्नस्यापागाद् चन्द्राच्चन्द्रत्वम् वाचारम्भण विकारो नामधेय त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्।

२. रुद्र ने कहा कि रेफरूप अग्नि मैं हूँ। विष्णुरूप सोमम कहा जाता है। हम दोनो के बीच म ब्रह्मा सूर्य आकार कहलाते है।

अकार विराडात्मक ब्रह्मदेव रूप है। दूसरा अकार हिरण्यगर्भात्मक विष्णुरूप है। मकार अव्याकृतात्मक शिवरूप है। शक्तियों से यहाँ सृष्टि, स्थिति और संहार शक्ति मे अभिप्राय है और रेफ से स्वप्रकाश ब्रह्म अभिप्रेत है। इस भाँति राम नाम विधि-हरिहरमय है। वेद के प्राण सा है।

वेद का प्राण प्रणव[1] है। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि सब वेदो मे प्रणव : ओंकार : मैं हूँ। प्रणव मे अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा है। अकार विराडात्मक ब्रह्मदेव है। उकार हिरण्यगर्भात्मक विष्णुरूप है। मकार अव्याकृतात्मक शिवरूप है। अर्धमात्रा स्वप्रकाशात्मक ब्रह्मरूप है। अतः ऊपर से मिलान करने पर प्रणव और राम नाम एक ही वस्तु प्रमाणित[2] होती हैं। इसीलिए रामनाम को रामतारक कहते हैं। यथा : राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्। राम ही परब्रह्म है। राम ही परम तप है। राम ही परम तत्त्व हैं। श्रीराम ब्रह्म तारक : प्रणव हैं।

त्रिकालातीत स्वप्रकाश ब्रह्म के रेफरूप से अवस्थित होने से तथा दोनो अकार और मकार के क्रमश ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूप से अवस्थित होने से राम नाम निर्गुण भी है और गुणनिधान भी है। एक बात मे राम नाम प्रणव से भी अधिक है, वह यह कि प्रणव मे केवल अमलात्मा परमहंस का ही अधिकार है किन्तु राम नाम मे सबका[3] अधिकार है। अत राम नाम अनुपम है।

महा मंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥२॥

अर्थ : जिस महामन्त्र को महेश जपते हैं। जो : काशी मे मुक्ति के लिए उपदेश्य है। जिसकी महिमा को गणेशजी जानते हैं। नाम के प्रभाव से उनकी प्रथम पूजा होती है।

व्याख्या : महामंत्र : यह रामनाम महामन्त्र है। मननात् त्रायते भयत इति मन्त्रः। मनन करने पर जो भय से रक्षा करे उसे मन्त्र कहते हैं। यह रामनाम

---

१. वायुपुत्र महाबाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम्। पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि। चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु कथय त्वं महाबल। हनुमान् होवाच। भो योगीन्द्राश्च ऋषयो विष्णुभक्तास्तथैव च। शृणुध्वं मामकीं वाचं भवबन्धविनाशिनीम्। एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्। सनकादिकों ने पूछा कि हे वायु पुत्र महाबाहो! अठारह पुराण, अठारह स्मृति, चारो वेद और शास्त्रो मे ब्रह्मवादियों का कौन सा तत्त्व है, हे महाबल! यह बताओ। तब हनुमान् जी ने कहा कि हे योगीन्द्र ऋषियो विष्णुभक्तो! भवबन्धविनाशिनी मेरी वाणी सुनो। इन सबो मे तत्त्व ब्रह्म तारक श्रीराम नाम है।

२ प्रणवत्वात् सदा ध्येयो यतीनाञ्चविशेषत। राम रहस्ये। प्रणव रूप होने से यतियों द्वारा विशेष रूप से ध्यान करने योग्य है।

३. मनुष्येनेषु सर्वेषामधिकारोऽस्तिदेहिनाम्। राम मन्त्र मे सभी देहधारियों का अधिकार है।

मनन करने से, हेतु सहित ससार से उपासक की रक्षा करता है इसलिए महामन्त्र है। अथवा जिस किसी भाँति जपे जाने से जापक का मङ्गलविधान करता है। इसलिए महामन्त्र है। यथा भावकुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मगल दिसि दसहूँ।

जेहि जपत महेसू महाईश महादेव जिसका रात दिन जप करते हैं, उसके महामन्त्र होने में सन्देह को स्थान कहाँ है। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती।

कासी मुकुति हेतु उपदेसू इसकी तापनीय मे कथा है। श्री वृपभध्वज ने काशी मे एक महस्र मन्वन्तर तक जप, होम, अर्चनादि करते हुए राम मन्त्र का जप किया। तव प्रसन्न होकर भगवान् राम ने शङ्करजी से कहा कि हे परमेश्वर! जो तुम्हारा अभीष्ट हो, सो माँगो मैं दूँगा। तब ईश्वर ने सच्चिदानन्द आत्मा श्रीराम से कहा कि मणिकर्णिका मे, मेरे क्षेत्र में या गङ्गा के तट पर जो शरीरधारी मरे उसकी मुक्ति हो यही वरदान माँगता हूँ दूसरा नही। तब श्रीरामजी बोले हे देवेश! तुम्हारे इस क्षेत्र मे जहाँ कही जो कोई मरेगा चाहे वह कृमि हो, कीट हो तुरन्त मुक्त हो जायगा। तुम्हारे अविमुक्त क्षेत्र मे सबकी मुक्ति के लिए मैं पाषाणादि प्रतिमाओ म मन्निहित रहूँगा। हे शिवजी! जो इस क्षेत्र में इस मन्त्र से मेरी पूजा भक्ति के साथ करेगा उसके ब्रह्महत्यादि पापो को मैं छुड़ाऊँगा, तुम सोच न करो। तुमसे या ब्रह्मदेव से जो षडक्षर मन्त्र प्राप्त करेंगे वे जीते ही मन्त्रसिद्ध होगे। जिस मरणशील प्राणी के दक्षिण कर्ण में तुम मेरे मन्त्र का उपदेश करोगे हे शिवजी! वह मुक्त हो जायगा। यथा

श्रीरामस्य मनु काश्या जजाप वृषभध्वज।
मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभि ॥१॥
तत प्रसन्नो भगवान् श्रीराम प्राह शङ्करम्।
वृणीष्व यदभीष्ट तद्दास्यामि परमेश्वर ॥२॥

इति। स होवाच

मणिकर्ण्या मम क्षेत्रे गङ्गाया वा तटे पुन।
म्रियते देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम् ॥३॥

अथ स होवाच श्रीराम।

क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश यत्र कुत्रादि वा मृता।
कृमिकीटादयोप्याशु मुक्तास्सन्तु न चान्यथा ॥४॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषा मुक्तिसिद्धये।
अह सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥५॥
क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मा शिव।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥६॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्र स मुक्तो भविता शिव ॥ रा उ

मो काशी मे मरणशील को प्रतिक्षण मन्त्र देते हुए विश्वनाथ दिन रात घूमा करते हैं, इस भाँति उनका जप अब भी निरन्तर चलता जाता है।

महिमा जासु जान गनराऊ गणेशजी मातृमान् हैं, पितृमान् हैं, अपने माता-पिता को दिन रात नाम जप करते देखते हैं। उसी की बदौलत काशी मे मुक्ति का सदावर्त शिवजी ने खोल रक्खा है। यह भी जानते हैं और स्वय उनका अनुभूत विषय है कि ऐसे नामजापक मातापिता की प्रदक्षिणा करके वे लोक मे प्रथम पूज्य हुए। उनके प्रथम पूज्य होने के मूल मे भी राम नाम की महिमा है। अत राम नाम की महिमा के यथार्थ जानकार गणराउ गणेशजी है। उनके नाम स्मरण से सिद्धि होती है। यथा - जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवरबदन। करहु अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन।

जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा पिय संग भवानी॥३॥

अर्थ आदिकवि वाल्मीकि नाम का प्रताप जानते हैं। वे उलटा जप करके शुद्ध हो गये। सहस्र नामके बराबर राम नाम है। ऐसी शिवजी की वाणी सुनकर भवानी सदा पतिके सङ्ग जप किया करती हैं।

व्याख्या जान आदिकवि • पहले पहल ससार मे छन्दोमयी वाक् की प्रवृत्ति इन्ही[1] को हुई। इसी से आदिकवि कहलाते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि नाम का प्रताप इन्हे मालूम है। महामन्त्र जेहि जपत महेसू कहकर रामनाम का गुण कहा। महिमा जासु जान गनराऊ कहकर महिमा ज्ञान का प्रभाव कहा। अब प्रताप ज्ञान की महिमा कहते हैं। कवियो ने यशको उज्ज्वल और प्रताप को उष्ण माना है। यथा जाके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे। सो नाम मे ऐसी दाहिका शक्ति है कि पापो को रुई की भाँति भस्म कर देती है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। इसके जानकार आदिकवि हैं क्योकि उनका अनुभूत विषय है।

वे राम नाम का उलटा जप करके व्याध से महर्षि हो गये। पूर्व के किये हुए सब पाप नष्ट होगये और ऐसे शुद्ध हो गये कि माया का लेश भी शेष नही रह गया। यथा उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भए ब्रह्मसमाना। ससार राम राम जप करता है, उन्होने मरा मरा जप किया। मरा मरा का धाराप्रवाह जप चलने से राम राम हो जाता है। फिर भी मरा मरा जपने का कोई कारण होना चाहिए।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं तुलसी रा के कहत ही निमरत सकल विकार। पुनि आवन पावत नही देत मकार किवार। इस दोहे मे राम नाम जप की विधि है। 'रा' कहते हुए श्वास को बाहर निकाले और 'म' कहते हुए भीतर खीच ले। इस भाँति प्रति श्वास नि श्वास मे रामनाम का जप करे। मनुष्य का स्वभाव है

---

१ श्लोक एवास्त्वय बद्धो नात्र कार्या विचारणा। मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेय सरस्वती। वा रा । ब्रह्मदेव ने वाल्मीकि से कहा। यह तुम्हारा बनाया हुआ श्लोक यशरूप हो, यहाँ सन्देह न करो। हे ब्रह्मन् मेरे सकल्प से ही यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है।

कि कार्यारम्भ के लिए सावधान होते ही श्वास को भीतर खींचता है। अतः स्वभाव से ही मनुष्य को मकार के प्रथम उच्चारण मे सुभीता पड़ता है। इनकी मूढ़ता विचार करके इन्हे उलटा जप का उपदेश दिया। यह प्रत्यक्ष फलदायिनी योग की वडी भारी क्रिया है।

तात्पर्य यह है कि इस नाम का इतना बड़ा प्रताप है कि मन्त्र के उलट जाने पर भी फल में कोई व्यतिक्रम नही हुआ।

शिवजी ने पार्वतीजी से रामनाम को सहस्रनाम[१] के तुल्य वतलाया। क्योकि शिवपार्वतीसवाद के पहिले ही नारदजी भगवान् से वर माँग चुके हैं कि : राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खगगन वधिका। राकारजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन विमल, वसहु भगत उर व्योम। भक्तिरूपी पूर्णिमा की रात्रि मे रामनाम चन्द्रमा हो और शेप नाम तारागण होकर भक्त से हृदयकाश मे वसे। सो अन्धकार का नाश एक चन्द्र से होता है, हजार तारागण से तो नही होता। इसीलिए रामनाम को सहस्रनाम के तुल्य बतलाया। उस शिक्षा को शिरोधार्य करके पति के साथ पार्वतीजी भी दिन रात नाम जपने लगी।

हरपे हेतु हेरि हरही को। किय भूपनु तिय भूपन तीको ॥
नाम[२] प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको ॥४॥

अर्थ : शिवजी हृदय का प्रेम देखकर हर्षित हुए और स्त्रियो मे भूपण जो स्त्री : पार्वतीजी : थी उन्हे अपना भूपण बना लिया। शिवजी भली भाँति नाम के प्रभाव को जानते है। उन्हे कालकूट ने अमृत का फल दिया। हेतु=प्रेम। यथा : चले सग हिमवत पहुचावन अति हेतु।

व्याख्या : पार्वतीजी का राम नाम पर हार्दिक प्रेम देखकर शङ्कर भगवान् प्रसन्न हो गये। रामजी पर प्रेम न देखकर असन्तुष्ट भी हुए थे। नाम पर सच्चा प्रेम देखकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हे सदा के लिए अपना भूपण बनाकर अर्धनारीश्वर रूप हो गये और विछोह की शङ्का को ही निर्मूल कर दिया। भावार्थ यह कि रामनाम के प्रेमी के ऊपर शङ्कर भगवान् का विशेप अनुग्रह होता है।

अब भली भाँति प्रभाव ज्ञान की महिमा कहते है कि इसके जानकार शिवजी हैं। दिन रात राम राम जपा करते है। जप करते करते करुणा के आवेश मे कालकूट का ही पान कर डाला। श्री गोस्वामी जी कहते हैं : जरत सकल सुर वृंद, विपम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मन मंद, को कृपालु संकर सरिस।

समुद्रमन्थन के समय जो अच्छी वस्तुएँ निकली उन्हे देवताओं और असुरो ने बाँटा। जब कालकूट निकला तब सब जलने लगे। उसके क्षार से ही जले जाते थे

---

१ राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्य रामनाम वरानने ॥

अर्थ : हे मनोरमे! हे वरानने! राम राम राम जप करता हुआ मैं राम मे रमण करता हूँ। राम नाम उनके तथा सहस्र नाम के तुल्य है।

२. यहाँ व्याघातालङ्कार है।

उसे कौन ग्रहण करता ? तब शङ्करजी ने करुणा करके उसे ग्रहण कर लिया। पर कालकूट उनके ऊपर कोई प्रतिक्रिया न कर सका बल्कि उससे उनका शरीर अजर अमर हो गया। यथा : पीयो कालकूट भयो अजर अमर तनु · विनय। अमृत पान करके देवताओं का अमरत्व सापेक्ष ही रह गया और नाम के प्रताप से विष पीने पर भी शङ्कर भगवान् का अमरत्व निरपेक्ष है। ये महाकल्पान्त करनेवाले हैं। इनका अन्तक कौन हो सकता है ? यथा :

तांडवित नृत्यपर डमरु डिमडिम प्रवर, असुभ इव भाति कल्यानरासी।
महाकल्पांत ब्रह्माण्ड मण्डलदवन, भवन कैलास आसीन कासी॥ विनय.

यहाँ तक नाम का प्रभाव वर्णन किया। अब नाम के दोनों अक्षरों का वर्णन करेंगे।

दो. वरषा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरन जुग, सावन भादव मास॥१९॥

अर्थ : रघुपति की भक्ति वर्षा ऋतु है और तुलसी : कहते है कि : सुदास धान हैं और राम नाम के दोनों अक्षर श्रावण और भाद्रपद महीने है।

व्याख्या : यद्यपि ऋतु छः होती हैं, पर स्थूल रूप से तीन ही ऋतु मानी जाती हैं। जाड़ा, गरमी और बरसात। बरसात के चार महीने, असाढ़, सावन, भादो और कुआर को चौमासा कहते हैं। यही चौमासा संसार का उपजीव्य है। पृथ्वी, जो शस्यश्यामला, सजला, सुफला है वह चौमासा की ही कृपा से है। इसी भाँति साधनों में जो सरसता है वह भक्ति की कृपा से है।

इस चौमासे का भी सार श्रावण और भाद्रपद मास है। इसी भाँति भक्ति का भी सार 'रा' और 'म' ये ही दो अक्षर है। जिस भाँति श्रावण और भाद्रपद की वर्षा मे ही धान उपजता है क्योकि धान के पौदो को बड़ी प्यास होती है। इन्हे बराबर पानी चाहिए और पानी पाकर ये रात दिन बढ़ते हैं। इसी भाँति सुदास को भजन की प्यास होती है। जब राम नाम की रटन चले तो उसका सब भाँति से कल्याण हो।

सुदास उसे कहते है जिसे केवल रामजी की ही आशा है। जिसे मनुष्य की भी आशा हो वह सुदास नही हो सकता। यथा : मोरदास कहाइ नर आसा। करै तो कहहुँ कहाँ विस्वासा।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जियँ जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥१॥

अर्थ : दोनों अक्षर मधुर और मनोहर है। अक्षरों के तो नेत्र है, भक्त के मन को देखनेवाले है। स्मरण करने मे सुलभ हैं और सबको सुख देते है। लोक में लाभप्रद है और परलोक का निर्वाह करते हैं।

व्याख्या : राम नाम के दोनों अक्षर मधुर हैं। कहने सुनने मे अच्छे लगते

है। इनका उच्चारण वाल्मीकि रूपी कोकिल[१], कविता शाखा पर से किया करते हैं और देखने में अति सुन्दर है। यथा राम नाम अवित अति सुन्दर। ये दोनों अक्षर रेफ और मकार अनुस्वार अक्षरों की आँखें हैं। आँखें देखती हैं और ये दोनों अक्षर भक्तों के जी मन को देखा करते हैं कि भक्त का जी क्या चाहता है?

रूप भी इनका नेत्र-सा है। रेफ भौंह की तरह टेढा है और मकार अनुस्वार पुतली की भाँति गोल है। महात्माओं ने वर्णसमाम्नाय के आठों वर्गों को सरस्वती का अष्टाङ्ग माना है। चरणों के क्रम से रकार और मकार दोनों नेत्र स्थान पर पड़ता है। बीच म वायु बीज मकार नासिका है। इस भाँति भी इसे वर्ण विलोचन कहा जा सकता है।

ऐसा होने पर भी राम नाम का स्मरण सुलभ है। रूप के स्मरण की भाँति दु साध्य नहीं है। भगवान् की सुन्दर मनोहर मूर्ति के ध्यान के लिए जैसा सरस मन होना चाहिए वैसा मन होना दुर्लभ है और निर्गुण रूप तक मन की पहुँच नहीं है। यथा सगुन ध्यान मन सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि।

सबको सुखद है, क्योंकि इसम सबका अधिकार है। जिस वस्तु म जिसका अधिकार नहीं होता, वह वस्तु उसे सुखद नहीं होती। अत कल्याण चाहनेवाले, वह वस्तु उसे नहीं देते। यथा कुपथ भोग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। इस भाँति भगवान् के नामों में प्रणव सबसे उत्तम है, पर उसम सन्यासियो का अधिकार है ब्राह्मणों का भी अधिकार नहीं। अकेले उसकी उपासना से लाभ की अपेक्षा हानि की ही सम्भावना अधिक है। अत केवल प्रणव की उपासना गृहस्थो के लिए वर्जित है। परन्तु रामतारक प्रणव की उपासना में सबका[२] अधिकार है। अत यह स के लिए सुखद है। इसके अतिरिक्त राम नाम से लोक परलोक दोनो

---

१ मधुर और मधुराक्षर राम नाम के उच्चारण से ही सिद्धि पानेवाले वाल्मीकि को कोकिल कहा। आह्लादकत्व माधुर्य है राम शब्द की व्युत्पत्ति ही यही है कि जिसम योगी लोग रमण करें। यथा रमन्ते योगिनो यस्मिन्। इस भाँति रामनाम मधुर है। 'र अन्त स्थ है। आ अवर्ण है। म अन्तिम वर्ण है। इनका उच्चारण मधुर है। इसलिए मधुराक्षर कहा। यथा कूजन्त राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखा वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् वाल्मीकि टीका। कोकिल की प्रशसा, उसके मधुर मनोहर कूजने से है। इसी भाँति वाल्मीकि की प्रशसा उनके राम राम उच्चारण से है जो कि उच्चारण म मधुर और अर्थ म मनोहर है।

२ मनुष्यत्वेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्।
मुमुक्षूणां विरक्ताना तथा चाश्रमवासिनाम्॥
प्रणवत्वात् सदा ध्येयो यतीनाञ्च विशेषत।
राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न सशय॥ रामरहस्ये

आञ्जनेय महाबल विप्राणा गृहस्थाना प्रणवाधिकार कथ स्यादिति। स होवाचेति। येषामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तथा प्रणवाधिकार स्यान्नान्येषाम्। रामरहस्ये

सुधरता है। 'तत्त्वमसि'[1] आदि महावाक्यो का उपयोग केवल मुक्ति मे है। भुक्ति भोग से उनका कोई सम्बन्ध नही रहता। रामनाम भुक्ति मुक्ति दोनो देता है। लोक थोडे दिन के लिए है, इसलिए 'लोक लाहु' कहा। परलोक तो अनन्त काल के लिए है। इसलिए 'परलोक निवाहू' कहा।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सघाती ॥२॥

अर्थ कहने, सुनने और स्मरण करने म बहुत अच्छे है। तुलसी को तो राम लक्ष्मण के समान प्रिय हैं। वर्णो को पृथक् वर्णन करते हुए प्रीति अलग अलग हो जाती है। परन्तु ये दोनो अक्षर ब्रह्म जीव की भाँति स्वभाव से ही साथी हैं।

व्याख्या कहते सुनते अर्थात् चरचा करते हुए सुठि नीके हैं। स्मरण करते हुए भी सुठि नीके अर्थात् अत्यन्त अच्छे हैं। यथा काल कर्म गुन सुभाउ सबके सीस तपत। राम नाम महिमा की चरचा चले चपत। राम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत। पावन किये राम नाम तुलसी हूँ से अपत। इसलिए कहा कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके।

राम, लक्ष्मण दोनो भाइयो की जोडी ऐसी थी कि अमलात्मा परमहसो का भी मन इनकी ओर खिच जाता था। ज्ञानियो के शिरोमणि जनक जी इन दोनो भाइयो को देखकर मुग्ध हो गये। विश्वामित्रजी से पूछने लगे

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा ॥
सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चद चकोरा ॥
इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहि राम सुनि बानी ॥

इसी भाँति रा और म की जोडी श्रीतुलसीदासजी को प्रिय है।

सुष्ठु शब्द का तद्भव रूप सुठि है। 'उपरि लोप कगडतदपषसाम्' प्रा प्र ३ १। इस सूत्र से षकार का लोप हुआ। 'इत्पुरुषेरो' प्रा प्र १ २३। इस सूत्र से उकार का इकार होकर सुठि शब्द सिद्ध हुआ।

अर्थ राम मन्त्र मे सभी देहधारियो का अधिकार है। मुमुक्षुओ का, विरक्तो का तथा आश्रमवासियो का। प्रणव होने म यह राम नाम विशेषत सन्यासियो द्वारा ध्यान करने योग्य है। राम मन्त्र का अर्थ जाननेवाला जीवन्मुक्त है इसमे सशय नही है।

उन लोगो ने पूछा हे महाबल हनुमानजी! गृहस्थ ब्राह्मणो का प्रणवाधिकार कैसे हो? उन्होने कहा कि श्रीरामजी ने कहा है कि जिनका षडक्षर का अधिकार है उन्हे ही प्रणव का अधिकार है।

१ तत्त्वमस्यादि वाक्यं तु केवल मुक्तिद यत। भुक्तिमुक्तिप्रद चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते ॥

अर्थ तत्त्वमस्यादि महावाक्य केवल मुक्ति दाता हैं। राम मन्त्र भुक्ति और मुक्ति दाता देता है। इसलिए बढकर है।

नाम के प्रत्येक अक्षरो का वर्णन कोई नही करता क्योकि ऐसा करने से वे निरर्थक हो जाते है। पर राम नाम के दोनो अक्षरो का पृथक् वर्णन हो सकता है। क्योकि स्वय श्रुति प्रत्येक अक्षर का अर्थ बतलाती है। 'रा' तत्पदार्थ[१] का बोधक है और 'म' त्वम् पदार्थ है। जो तामसी माया को ग्रहण करके जगत् का उपादान कारण है और शुद्धसत्त्वा माया को ग्रहण करके निमित्त कारण है। उसी उभयरूपी ब्रह्म को[२] तत् कहते है। जब कामकर्मादिदूषित मलिनसत्त्वा माया को उपाधि रूप से ग्रहण करता है तब उसी परब्रह्म को 'त्वम्' पद से अभिहित करते है।

परन्तु स्वय भगवती श्रुति इनके सयोजन का विधान करती है। यथा तयो सयोजनमसीत्यर्थे तत्त्वविदो विदु । रा और म को क्रम से तत् और त्व पदार्थ कहकर उनके सयोजन को 'असि' बतलाया है। अत रा और म के पृथक् वर्णन से वाक्य भेद हो जाता है। वह महावाक्य का अर्थ नही देता। इसलिए कहते है बरनत बरन प्रीति बिलगाती।

कारण देते है कि इन दोनो अक्षरो का ब्रह्म-जीव की भाँति स्वाभाविक साथ है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है। मोह से परे है। जीव भी 'अविनासी चेतन सहज सुखरासी है। दोनो मे भेद[३] माया ने कर रक्खा है। तत्त्वत दोनो एक ही है। अत दोनो सहज साथी हैं। इनका साथ छूट नही सकता। क्योकि 'रा' उच्चारण के बाद स्वभाव से ही 'म' उच्चरित होता है। विवृत प्रयत्न के बाद स्पृष्ट प्रयत्न स्वाभाविक है। अर्थात् 'रा' के उच्चारण मे मुँह खुलता है उसके बाद मुख बन्द करने मे स्वभाव से ही 'म' उच्चारित हो जाता है। इसीलिए 'सहज सँघाती' कहा।

नर नारायन सरिस सुभ्राता। जग पालक बिसेषि जन त्राता॥
भगति सुतिअ कल करन बिभूषन। जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन॥३॥

अर्थ ये दोनो वर्ण नर नारायण के सदृश सुबन्धु है। जगत् के पालक हैं। पर विशेषरूप से भक्तो के रक्षक है। भक्तिरूपी सुतिय के कान के गहने है और जगत् के हित के लिए तो निर्मल सूर्य और चन्द्र हैं।

व्याख्या जिस भाति नर-नारायण सुभ्राता हैं, उसी भाँति 'रा' और 'म' भी सुभ्राता हैं। नारायण का प्रादुर्भाव पहिले हुआ अत वे बडे है। नर का प्रादुर्भाव उनके पीछे हुआ इसलिए वे छोटे है। 'नर' शब्द मे 'नारायण' की अपेक्षा कम अक्षर होने से समास के नियमानुसार नर का नाम पहिले आया नारायण का पीछे। यहाँ

१ आद्यो रा तत्पदार्थ स्यात् मकारस्त्व पदार्थवान्।
तयो सयोजनमसीत्यर्थं ब्रह्मविदो विदु.॥ रा ता

२ जगतो यदुपादान मायामादाय तामसीम्।
निमित्त शुद्धसत्त्वा तामुच्यते ब्रह्म तद् गिरा॥
यदा मलिनसत्त्वा तां कामकर्मादिदूषिताम्।
आदत्ते तत्पर ब्रह्म त्व पदेन तदोच्यते॥ प द

३ मृषा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।

प्रथम उच्चारित होने से 'रा' अग्रज है और पीछे से उच्चारित होने से 'म' अनुज है। परस्पर अत्यन्त प्रेम होने, साथ न छोडने, ध्येय के एक होने से जिस भाँति नर नारायण सुभ्राता हैं उसी भाँति 'रा' और 'म' मे भी वडी प्रीति है। इनका सदा साथ वना रहता है। 'रा' के ठीक उच्चारण मे रेचक[१] करना पडता है। तत्पश्चात् पूरक करने मे 'म' का उच्चारण आप से आप होता है। ध्येय भी दोना का एक है। जिस भाँति दोनो भाई अखिल ससार के कल्याण के लिए तप करते हैं और भक्तो की विशेषरूप से रक्षा करते हैं उसी भाँति ये दोनो अक्षर जप द्वारा प्रादुर्भूत होकर सम्पूर्ण ससार का कल्याण करते हैं और जापक की रक्षा तो विशेषरूप से करते हैं। यथा

नौमि नारायन नर करुनायन ध्यान पारायन ज्ञानगम्य ज्ञानमूल।
अखिल ससार उपकार कारन सदय हृदय तपनिरत प्रनतानुकूल ॥ विनय

तथा हरन अमगल अघ अखिल, करन सकल कल्यान।
राम नाम नित कहत हर, गावत वेद पुरान ॥
यथा भूमि सब बीजमय, नखत निवास अकास।
राम नाम सवधर्ममय, जानत तुलसीदास ॥
राम नाम कलि काम तरु, सकल सुमगल कद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग-पग परमानद ॥ दोहावली

पहिले 'जग पालक विसेपि जन त्राता' कहकर लौकिक लाभ कहा। अव पारलौकिक लाभ कहते हैं ये दोना अक्षर अव्यभिचारिणी भक्ति के कानो के कुण्डल हैं, अर्थात् सौभाग्य के चिह्न हैं। यथा मदोदरी सोच उर वसेऊ। जवते श्रवन पूर महि खसेऊ। इनका गिरना वैधव्य सूचक माना जाता है। सुतिय पतिव्रता स्त्री को कहते हैं। यथा पति देवता सुतीय मँह मातु प्रथम तव रेख। विना नाम के अक्षरो के पता ही नही लगता कि किसकी भक्ति है? इनके विना भक्ति अनाथा रहती है। रेफ और मकार अनुस्वार के ऊपर नीचे रखने से कुण्डल का आकार बन जाता है। इसलिए भी इसे कुण्डल से उपमित करना प्राप्त हैं।

ससार के कल्याण करनेवाला म प्राधान्य विधु और पूपण का है। जिस भाँति चन्द्रनाडी इडा और सूर्यनाडी पिङ्गला से पिण्ड की स्थिति है उसी भाँति चन्द्र और सूर्य के कारण ब्रह्माण्ड की स्थिति है। 'विधुपूपन' जगत् के प्रकाशक होकर हित हैं और 'रा' और 'म' परात्मतत्त्व के प्रकाशक होकर हित है। यथा विश्व सुखद जनु इन्दु तमारी।

स्वाद तोपसम सुगति सुधा के। कमठ सेप सम धर वसुधा के ॥
जनमन मजु कज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से ॥४॥

अथ सुगतिरूपी अमृत के स्वाद और तोप के समान हैं। पृथ्वी को धारण

---

१ प्राणायाम करते समय श्वास को वाहर निकालने को रेचक कहते है। श्वास का भीतर खीचना पूरक कहलाता है।

करने के लिए कच्छप और शेष के समान हैं। भक्तों के मनरूपी सुन्दर कमल के लिए भौंरे के समान हैं। जिह्वारूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम जी के समान हैं।

व्याख्या लौकिक और पारलौकिक लाभ कहकर, अब सुगति मुक्ति के विषय में कहते हैं। 'ज्ञानमार्गं तु नामतः' नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मुक्ति है। मुक्ति को अमृत माना है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वास्तविक अमृत तो मुक्ति ही है। जिस भाँति अमृत में स्वाद और तोष होता है उसी भाँति मुक्तिरूपी अमृत में रा और म है। ऊपर कहा जा चुका है कि रा तत्पद है और म त्वं पद है, दोनों का संयोग असि है। इस भाँति राम पदार्थ महावाक्य है। इसीके ज्ञान से मुक्ति होती है। बिना पाप के नाश के ज्ञान नहीं होता। सो राम नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। पाप ही पृथ्वी का भार है। यथा अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। अतः 'रा' और 'म' पाप का नाश करके पृथ्वी पर भार नहीं होने देते[1]। वे इस पृथ्वी को उसी भाँति ऊपर से धारण किये हुए हैं। जिस भाँति नीचे से शेष और कमठ धारण किये हुए हैं। रेफ और मकार बिन्दु को ऊपर नीचे रख देने से रेफ शेषाकार और बिन्दु कमठाकार हो जाता है।

अब साधन की सुकरता कहते हैं। भक्त के हृदयकमल में, 'रा' और 'म' रस के लोभ से भौंरे की भाँति पहुँचकर गुनगुनाया करते हैं और भक्त की जिह्वा को भी बिना उनके कल नहीं पड़ता। जैसे यशोदाजी को बिना हरि कृष्ण और हलधर बलदेव के कल नहीं। भक्त का देह ही व्रज है। मुख ही नन्दगृह का आँगन है। जिह्वारूपी यशोदा वहाँ रा और म रूपी कृष्ण, बलदेव को सदा खेलाया करती है। इसी में उन्हें आनन्द है।

दो० एकु छत्रु एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं एक छत्र के समान और दूसरा मुकुट मणि के समान है। सब अक्षरों के ऊपर देख लो। ये ही रघुवर नाम के दोनों अक्षर विराज रहे हैं।

व्याख्या अब पहिचान बतलाते हैं कि पुस्तकों में अक्षर पंक्तियों को देखो तो 'रा' रेफ के रूप से और 'म' अनुस्वार के रूप से सब वर्णों के ऊपर दिखलाई पड़ेगा। रेफ का आकार छत्र सा और बिन्दु का आकार मुकुट मणि सा है। सो 'रघुवर' नाम के दोनों अक्षर विराजमान दिखाई पड़ेंगे। अर्थात् अक्षर-समाम्नाय की शोभा भी इन्हीं दोनों वर्णों से है। ये नाद बिन्दु की भाँति सबके ऊपर शोभायमान हैं।

---

१ तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालम् ॥ विनय

इस भाँति दोनो अक्षरो के वर्णन का उपक्रम 'राम नाम वर बरन जुग सावन भादो मास' से करके 'तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ' से उपसहार करते हैं।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥१॥

अर्थ समझने मे नाम और नामी एक से है। दोनो मे परस्पर प्रभु और अनुगामी की भाँति प्रीति है। नाम और रूप ये दोनो परमेश्वर की उपाधियाँ है। अकथनीय हैं और अनादि हैं। ये बाते अच्छी समझ से ही साध्य हैं।

व्याख्या 'सदृश'[1] शब्द का ही तद्भव रूप 'सरिस' है। 'समुझत सरिस' से नाम शब्द और नामी अर्थ मे मानसिक अभेद कहा। नाम और नामी से नाम और रूप का ग्रहण है। नाम प्रभु है और रूप अनुगामी सेवक है। प्रभु की सेवक पर प्रीति और सेवक की प्रभु पर प्रीति है। नाम लेते ही रूप सम्मुख उपस्थित होता है और रूप के उपस्थित होने पर नाम की जिज्ञासा होती है। यही परस्पर प्रीति है। नाम स्वामी की भाँति सदा रूप पर दृष्टि रखता है और रूप सेवक की भाँति नाम के लिए प्राण देने को तैयार रहता है।

नाम और रूप दोनो ईश्वर की उपाधियाँ[2] है। 'उप' समीप को कहते हैं आधान स्थापन को कहते है, अर्थात् जो समीप मे स्थापन करने से अपने मे माना जाय उसे उपाधि कहते हैं। जैसे रक्खे हुए फूलो की छाया पडने से, वे रग दर्पण मे माने जाते है।

इसी भाँति कर्मो की छाया पडने से जीवो म नाम रूप माने गये। पर ईश्वर की बात दूसरी है। ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नही। उसमे केवल भक्तो के भाव की छाया पडती है और भाव सत्ता रूप अविनाशी है। अत ईश्वर के नामरूपादि नित्य हैं। ऐसी समझ आवे तब ईश्वर के नामरूप म ईश्वर का भाव सध सकेगा। इस भाँति नाम और रूप दोनो अनादि है और अकथ है, क्योकि उनकी उपमा नही है। सुकथ वे ही पदार्थ हैं जिनकी उपमा होती है, अनुपम को कोई कैसे कहे? पूर्व परिचित पदार्थ से सादृश्य बतलाकर ही किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। भगवान् तो अनुपम हैं ही, उनकी उपाधियाँ भी अनुपम हैं। यथा इनके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहउँ स्वमति अनुरूपा। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।

---

१ कगचजतदपवा प्रायेण लोप प्रा प्र इस सूत्र से द का लोप होकर सऋश रूप हुआ। तब 'अयुक्तस्यरि' इस सूत्र से ऋ का 'रि' हो गया। 'सदृश' का 'सरिश' रूप हुआ। 'शषो स' इस सूत्र से 'श' का 'स' हुआ। इस भाँति 'सदृश' का 'सरिस' रूप सिद्ध हुआ।

२ उपाधि कार्यानन्वयी व्यावर्तका वर्तमानश्च।

करने के लिए कच्छप और शेष के समान है। भक्तो के मनरूपी सुन्दर कमल के लिए भौरे के समान है। जिह्वारूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम जी के समान है।

व्याख्या : लौकिक और पारलौकिक लाभ कहकर, अब सुगति : मुक्ति : के विषय मे कहते है। 'ज्ञानमार्गं तु नामत' नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मुक्ति है। मुक्ति को अमृत माना है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वास्तविक अमृत तो मुक्ति ही है। जिस भाँति अमृत मे स्वाद और तोष होता है उसी भाँति मुक्तिरूपी अमृत मे रा और म है। ऊपर कहा जा चुका है कि रा तत्पद है और म त्व पद है, दोनो का सयोग असि है। इस भाँति राम पदार्थ महावाक्य है। इसीके ज्ञान से मुक्ति होती है। बिना पाप के नाश के ज्ञान नही होता। सो राम नाम पापरूपी रुई के लिए अग्नि है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। पाप ही पृथ्वी का भार है। यथा अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। अत 'रा' और 'म' पाप का नाश करके पृथ्वी पर भार नही होने देते[1]। वे इस पृथ्वी को उसी भाँति ऊपर से धारण किये हुए हैं। जिस भाँति नीचे से शेष और कमठ धारण किये हुए हैं। रेफ और मकार बिन्दु को ऊपर नीचे रख देने से रेफ शेषाकार और बिन्दु कमठाकार हो जाता है।

अब साधन की सुकरता कहते है। भक्त के हृदयकमल मे, 'रा' और 'म' रस के लोभ से भौंरे की भाँति पहुँचकर गुनगुनाया करते है और भक्त की जिह्वा को भी बिना उनके कल नही पडता। जैसे यशोदाजी को बिना हरि कृष्ण : और हलधर बलदेव के कल नही। भक्त का देह ही व्रज है। मुख ही नन्दगृह का आँगन है। जिह्वारूपी यशोदा वहाँ रा और म रूपी कृष्ण, बलदेव को सदा खेलाया करती है। इसी मे उन्हे आनन्द है।

दो एकु छत्र एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते है : एक छत्र के समान और दूसरा मुकुट मणि के समान है। सब अक्षरो के ऊपर देख लो। ये ही रघुवर नाम के दोनो अक्षर विराज रहे हैं।

व्याख्या अब पहिचान बतलाते है कि पुस्तको मे अक्षर पक्तियो को देखो तो 'रा' रेफ के रूप से और 'म' अनुस्वार के रूप मे सब वर्णों के ऊपर दिखलाई पड़ेगा। रेफ का आकार छत्र सा और बिन्दु का आकार मुकुट मणि सा है। सो 'रघुवर' नाम के दोनो अक्षर विराजमान दिखाई पड़ेगे। अर्थात् अक्षर-समाम्नाय की शोभा भी इन्ही दोनो वर्णो से है। ये नाद बिन्दु की भाँति सबके ऊपर शोभायमान हैं।

---

१ तेन तप्त हुत दत्तमेवाखिल तेन सर्वं कृत कर्मजाल।
येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालम् ॥ विनय

इस भाँति दोनो अक्षरो के वर्णन का उपक्रम 'राम नाम वर बरन जुग सावन भादो मास' से करके 'तुलसी रघुवर नाम के बरन विराजत दोउ' से उपसहार करते है।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥१॥

अर्थ समझने मे नाम और नामी एक से है। दोनो मे परस्पर प्रभु और अनुगामी की भाँति प्रीति है। नाम और रूप ये दोनो परमेश्वर की उपाधियाँ है। अकथनीय हैं और अनादि है। ये बाते अच्छी समझ से ही साध्य है।

व्याख्या 'सदृश'[1] शब्द का ही तद्भव रूप 'सरिस' है। 'समुझत सरिस' से नाम शब्द और नामी अर्थ मे मानसिक अभेद कहा। नाम और नामी से नाम और रूप का ग्रहण है। नाम प्रभु है और रूप अनुगामी सेवक है। प्रभु की सेवक पर प्रीति और सेवक की प्रभु पर प्रीति है। नाम लेते ही रूप सम्मुख उपस्थित होता है और रूप के उपस्थित होने पर नाम की जिज्ञासा होती है। यही परस्पर प्रीति है। नाम स्वामी की भाँति सदा रूप पर दृष्टि रखता हे और रूप सेवक की भाँति नाम के लिए प्राण देने को तैयार रहता है।

नाम और रूप दोनो ईश्वर की उपाधियाँ[2] हैं। 'उप' समीप को कहते हैं, आधान स्थापन को कहते हैं, अर्थात् जो समीप मे स्थापन करने से अपने मे माना जाय उसे उपाधि कहते है। जैसे रक्खे हुए फूलो की छाया पडने से, वे रग दर्पण मे माने जाते है।

इसी भाँति कर्मो की छाया पडने से जीवो म नाम रूप माने गये। पर ईश्वर की बात दूसरी है। ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नही। उसम केवल भक्तो के भाव की छाया पडती है और भाव सत्ता रूप अविनाशी है। अत ईश्वर के नामरूपादि नित्य हैं। ऐसी समझ आवे तब ईश्वर के नामरूप मे ईश्वर का भाव सध सकेगा। इस भाँति नाम और रूप दोनो अनादि है और अकथ हैं, क्योकि उनकी उपमा नही है। सुकथ वे ही पदार्थ हैं जिनकी उपमा होती है, अनुपम को कोई कैसे कहे? पूर्व परिचित पदार्थ से सादृश्य बतलाकर ही किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। भगवान् तो अनुपम है ही, उनकी उपाधियाँ भी अनुपम हैं। यथा इनकें नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।

---

१ कगचजतदपवा प्रायेण लोप प्रा प्र इस सूत्र से द का लोप होकर सऋश रूप हुआ। तब 'अयुतस्यरि' इस सूत्र म ऋ का 'रि' हो गया। 'सदृश' का 'सरिश' रूप हुआ। 'शषो स' इस सूत्र से 'श' का 'स' हुआ। इस भाँति 'सदृश' का 'सरिस' रूप सिद्ध हुआ।

२ उपाधि कार्यानन्वयी व्यावर्तको वर्तमानश्च।

को बड़ छोट कहत अपराधू । सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहि रूप नाम आधीना । रूप ग्यान नहिं नाम विहीना ॥२॥

अर्थ : कौन बड़ा है, कौन छोटा है ? इसके कहने मे अपराध है । गुणो के भेद को सुनकर साधु समझ लेगे । नाम के अधीन रूप देखा जाता है । नाम के बिना रूप का ज्ञान हो नही सकता ।

व्याख्या : नाम और रूप जब दोनो ईश्वर की उपाधियाँ है, तब दोनो की कोटि समान है, किसे बड़ा कहे, किसे छोटा कहे ? किसी को छोटा बडा कहने मे अपराध है, परगुण भेद देखकर साधन करनेवाले के समझने मे रोक कैसे लगेगी ? वे तो जिसमे साधनसौकर्य हो, उसीका ग्रहण करेगे ।

नाम लेते ही रूप आँख के सामने खडा हो जाता है । इसलिए स्पष्ट देखा जाता है कि रूप नाम के अधीन है । रूप देखने पर भी नाम का पता नही चलता । अत यह भी स्पष्ट है कि नाम रूप के अधीन नही है ।

रूप विसेष नाम विनु जाने । करतल गत न परहि पहिचाने ॥
सुमिरिय नाम रूप विनु देखे । आवत हृदयँ सनेह विसेखे ॥३॥

अर्थ . रूप विशेष बिना नाम के जाने, हाथ मे आने पर भी पहिचाना नही जा सकता । रूप के बिना देखे ही यदि नाम का स्मरण किया जाय तो हृदय मे अधिक प्रीति उत्पन्न होती है ।

व्याख्या : नाम की प्रधानता के विषय मे दूसरी बात यह है कि कोई वस्तु यदि हाथ मे भी आजाय तो भी यदि नाम नही मालूम तो पहिचान मे नही आती । किसी फल का यदि नाम न मालूम हो तो हाथ मे लेकर चखने पर भी पहिचाना नही जाता और उसीको जिसने कभी नही चखा हो और नाम जानता हो तो वह दूर से ही देखकर पहिचान लेगा ।

बहुत से लोगो ने अपने पिता, पितामह को नही देखा है । कितनो को अपनी माता के रूप का स्मरण नही है । पर उनके नाम के स्मरण से हृदय मे विशेष स्नेह होता है । देवताओ की आराधना करनेवाले बिना रूप देखे ही नाम स्मरण करते है और प्रेम मे विभोर होकर अपने को भूल जाते है ।

नाम रूप गति अकथ कहानी । समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन विच नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥४॥

अर्थ . नाम और रूप की गति की कथा अकथनीय है । समझने से सुखदायक है । पर वर्णन नही की जा सकती । निर्गुण और सगुण के बीच मे नाम सुन्दर साक्षी है । दोनो का ज्ञान कराने के लिए चतुर दुभापिया है ।

व्याख्या : कहाँ तक नाम काम करता है, कहाँ तक रूप काम करता है, कहाँ तक इनका सम्बन्ध है, कहाँ तक भेद है, ये सब बातें अकथनीय है, पर विचारणीय अवश्य हैं । ऐसा सूक्ष्म विषय है कि उसके प्रकाश के लिए शब्द नही हैं पर विचार मे बडा आनन्द है ।

ब्रह्म के दो स्वरूप हैं : १. निर्गुण और २ सगुण। दोनों के बीच मे साक्षी नाम है। नाम का अर्थ निर्गुण का बोध कराता है। यथा ' रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि स राम.। और उसके अक्षर सगुण ब्रह्म का बोध कराते हैं। यथा : राजते यो मही स्थित:, राक्षसा येन मरणं यान्ति इत्यादि। जिस भाँति द्रविड़ बँगला नही समझते और बंगाली द्रविड़ भापा नही समझते उसी भाँति निर्गुणवादी सगुणवादी की बोली नहीं समझते और न सगुणवादी निर्गुणवादी की बोली समझे। यदि चतुर दुभापिया हो तो दोनों को समझा दे और स्वयं पृथक् रहे। इसी भाँति नाम दोनो : निर्गुणवादी और सगुणवादी को समझा देता है और स्वय पृथक् रहता है। यथा : सगुन ध्यान मन सरस नहिं, निर्गुण मनते दूरि। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि।

दो. राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरहु, जौं चाहसि उजिआर ॥२१॥

अर्थ : तुलसीदास जी कहते है कि यदि तू बाहर और भीतर उजाला चाहता है तो जीभरूपी द्वार की देहली पर राम नामरूपी मणि का दीप रख।

व्याख्या : निर्गुण से भीतर उजेला होता है बाहर नही, क्योकि निर्गुण रूप सूक्ष्म बुद्धि से जाना जाना है और सगुण रूप से बाहर उजेला होता है क्योकि वह नेत्रो से जाना जाता है। यथा : हिय निर्गुन नैननि सगुन रसना राम सुनाम। मनहु पुरट सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम। श्रीगोस्वामी जी कहते है कि यदि भीतर बाहर दोनो ओर उजेला चाहे तो राम नामरूपी मणिदीप देहली द्वार रूप जीभ पर रक्खे। द्वार की देहली पर दीप रखने से अर्थात् जीभ से राम नाम उच्चारण करने से भीतर बाहर दोनो ओर उजेला बना रहता है। बाहर हवा से न बुझे इसलिए मणिदीप कहा तथा नामोच्चारण भक्ति है। बरखा रितु रघुपति भगित तुलसी सालि सुदास। राम नाम वर वरनजुग सावन भादो मास। इसलिए भी मणिदीप कहा। यथा : मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहि ताहि बुझावा।

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहि अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥१॥

अर्थ : वैराग्य से ब्रह्मा के प्रपञ्च के वियोगी योगीजन जीभ से नाम को जपकर जागते हैं। अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते है, जो अकथनीय, निर्दोप और बिना नाम रूप का है। 'ब्रह्म सुख' में कर्मधारय समास है, जो ब्रह्म है वही सुख है।

व्याख्या : परमार्थ की ओर से सब सो रहे है, यही मोहनिशा है और उसी में संसाररूपी स्वप्न देख रहे हैं : यथा : मोहनिसा सब सोवनिहारा। देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा। विपय विलास से विराग होना ही जागना है यथा : जानिय तबहिं जीवजग जागा। जब सब विषय विलास बिरागा। मोहनिशा में जागनेवाले योगी लोग हैं, जिन्हे ब्रह्मा के प्रपञ्च से वैराग्य के कारण दु:ख संयोग से वियोग है यथा : तं

विद्याद्दु खसयोगवियोग योगसञ्ज्ञितम्। ऐसे विराग की रक्षा जीभ से रामनाम जप करने से होती है।

विधिप्रपञ्च दु ख से सना है। ससारी पुरुष दु खससर्गशून्य सुख से अपरिचित है। यथा कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु। परिछिन्न होने से सासारिक सुखो के लिए नाम है। उनका स्वरूप है, उनमे दोष है, वे कथनीय है। परन्तु ब्रह्म सुख अनूप है, जगत् से विलक्षण है, अत अकथ अनामय और अरूप है। इससे ज्ञानी[1] भक्त कहा।

जाना चहहि गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ॥
साधक नाम जपहि लय लाए। होहि सिद्ध अनिमादिक पाए॥२॥

अर्थ जो लोग गूढ गति जानना चाहते है, वे भी नाम को जीभ से जपकर जानते है, साधक लौ लगाकर नाम जप करते है और अनिमा आदि सिद्धियाँ पाकर सिद्ध हो जाते हैं।

व्याख्या जगत् कैसे हुआ? कहाँ से हुआ? इसका आधार क्या है? हम क्या है? ईश्वर क्या है? ससार से छुटकारा कैसे हो? इत्यादि प्रश्न बडे गूढ है। इन्हे जो जानना चाहते है वे ही गूढ गति के जिज्ञासु है। इनके लिए भी साधन जिह्वा से राम नाम का जप है। राम नाम की रटन लगने से आप से आप हृदय मे प्रकाश हो जाता है। यथा जौ लौं नहि निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माही। तौ लो कोटि उपाय करिअ ससय निर्मूल न जाही। स्वभाव से ही सबको ज्ञान रहता है, पर वह अज्ञान से ढँका रहता है। यथा अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव। गी इस अज्ञान का नाश भी नाम जप मे होता है। नाम जप बिना सारे वेदान्तग्रन्थ पढने पर भी ज्ञान न होगा। इससे जिज्ञासु भक्त कहा।

खण्ड सिद्धियाँ बहुत है। उनकी प्राप्ति तो नाम जप से होती ही है, अणिमादिक[2] महासिद्धियो की भी प्राप्ति होती है। अणिमादिक आठ सिद्धियाँ हैं १ अणिमा २ महिमा ३ गरिमा ४ लघिमा ५ प्राप्ति ६ प्राकाम्य ७ ईशित्व और ८ वशित्व। इन्हे चाहनेवाले भक्त साधक कहलाते है। इन्ही को गीता मे अर्थार्थी कहा। इनका साधन भी नाम का जप ही है। कोई सिद्धि भी बिना सयम के नही होती। धारणा, ध्यान, समाधि तीनो का एकत्र होना सयम है। नाम जप मे धारणा, ध्यान और समाधि होनी चाहिए। अर्थात् पूरी एकाग्रता होनी चाहिए तब सिद्धि होती है। इसीलिए 'लौ लाये' कहा।

जपहि नामु जन आरत भारी। मिटहि कुसकट होहि सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा॥३॥

---

१ चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥ गी

२ छोटा हो जाना २ बडा हो जाना ३ भारी हो जाना ४ हलका हो जाना ५ सब पदार्थों की प्राप्ति ६ इच्छा का अनभिघात ७ सामर्थ्य ८ भूत भौतिक वश्यता।

अर्थ अत्यन्त आर्त भक्त नाम का जप करते हैं, बुरे सकट मिट जाते है और वे सुखी होते है। ससार मे चार प्रकार के भक्त हैं। चारो पुण्यात्मा, पापहीन और उदार है।

व्याख्या : जो सङ्कट मिटने के लिए भजन करते हैं, वे आर्तभक्त है। इनका भी साधन नामोच्चारण है। नाम के जप से आर्त का कुसकट दूर होता है। जैसे द्रौपदी को कुसकट पडा था। यथा : नर नारि उघारि सभामहँ होत दियो पट सोच हरयो मनको। इतना ही नही कि सकट दूर होकर रह जाय, उन्हे सुख भी मिलता है।

इस भाँति चार प्रकार के भक्त हुए। चारो रामनाम रूपी सुकृत से कार्यसिद्धि चाहते हैं। इसलिए सुकृती हैं। यथा · राम को सुमिरिवो सब विधिही को राज रे। राम को बिसारिवो निषेध सिरताज रे। लौकिक साधनो मे पाप का अनुवेध रहता ही है। सो ये लोग जपयज्ञ से सिद्धि चाहते हैं। जिसमे किसी प्रकार का पापसम्पर्क न होने पावे। अत: 'अनघ' कहा। और अपनी सिद्धि के लिए किसी से याचना नही करते। न किसी के स्वार्थ मे बाधा पहुँचाते है। इसलिए उदार कहा।

चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि बिसेष पियारा ॥
चहुँजुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ ॥४॥

अर्थ : चारो चतुरो को नाम ही आधार है पर ज्ञानी प्रभु को बहुत प्यारा है। चारो युगो, चारो वेदो मे नाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग मे विशेष करके है। क्योकि अन्य कोई उपाय ही नही है।

व्याख्या : यहाँ चारो को चतुर इसलिए कहा कि इन लोगो ने अन्य साधनो को छोडकर नाम का आधार ग्रहण किया। श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि अन्य साधनो का भरोसा नही है। यथा :

नाहिन आवत आन भरोसो।
एहि कलिकाल सकल साधनतरु है श्रम फरनि फरोसो।
तप तीरथ उपवास दानमख जो जेहि रुचै करोसो।
पाएहि पै जानिवो कर्म फल, भरि भरि वेद परोसो।
आगम विधि जप जाग करत नर, सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहु न योग सिधिसाधन रोगवियोग धरोसो ॥
कामक्रोध मद लोभ मोहमिलि, ज्ञानविराग हरोसो।
विगरत मन सन्यास लेत, जल नावत आम घरोसो ॥
बहुमत मुनि बहु पथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको, मोहि लगत राज डगरोसो ॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति, फिरि-फिरि पचिमरै मरोसो।
राम नाम बोहित भवसागर, चाहै तरन तरोसो ॥ विनय.

इन चारो का नाम ही आधार है। इनमे भी प्रभु को ज्ञानी अधिक प्यारा है। क्योकि ज्ञानी उनकी आत्मा है। यथा : ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

चारो युगो मे नाम का प्रभाव है। यथा चहुँयुग तीन काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव बिसोका। चारो श्रुतियो मे है। यथा इहै कह्यौ सुनु वेद चहूँ। श्रीरघुवीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ। कलि मे विशेष है क्योकि और उपाय नही है। यथा 'एकही साधन सब रिधि सिधि साधि रे। ग्रसे कलिरोग जोग सजम समाधि रे। राम नाम छोडि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर रे।

दो सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद, तिन्हहु किये मन मीन ॥२२॥

अर्थ जो सम्पूर्ण कामना से रहित रामभक्ति रस मे लीन है उन्होने भी नाम रूपी सुन्दर प्रेम के अमृतकुण्ड मे अपने मनको मछली बना रक्खा है।

व्याख्या जिन्हे उपर्युक्त कामनाओ मे से एक भी नही है उन्हे भजन करने मे ही आनन्द आता है। ऐसे पुष्ट भक्तिवाले तो नाम के विस्मरण से व्याकुल हो उठते है। नाम ही प्रेमामृत का कुण्ड है। उसी मे उनका मन मछली की भाँति विश्राम मानता है। इन चार प्रकार के भक्तो का उल्लेख करते हुए भगवद्गीता मे कहा गया है चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। श्रीमधुसूदन स्वामी का यह मत[१] है कि इस श्लोक मे 'ज्ञानी च' पद है। सो 'चकार' से ऐसे ही निष्काम भक्तो का सग्रह है जिनका वर्णन इस दोहे मे किया गया है।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड नामु दुहूँते। किय जेहि जुग निज बस निज बूते॥१॥

अर्थ निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप है। दोनो अकथ, अथाह, अनादि और अनुपम है। मेरी सम्मति मे नाम दोनो से बडा है। जिसने अपने बल से दोनो को अपने वश मे कर रक्खा है।

व्याख्या पहिले राम शब्द की व्युत्पत्ति कही। फिर उसका महामन्त्र होना कहा। उसकी महिमा, प्रभाव और प्रताप कहा। गुण कहा, नामी से अधिक बतलाया। उसको एक मात्र सर्वसम्मत साधन बतलाया। अब निर्गुण सगुण दोनो स्वरूपो से भी बढकर कह रहे है।

निर्गुण स्वरूप, अकथ, अगाध, अनादि और अरूप है। यथा अज अद्वैत अगुन हृदयेसा। अकल अनीह अनादि अरूपा। अनुभव गम्य अखड अनूपा। मन-गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी। सो तैं तोह ताहि नहि भेदा। वारि वीचि इव गावहि वेदा। इसी भाँति सगुण रूप भी अकथ, अगाध, अनादि और अनूप है। यथा दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखड। रोम रोम

१ चकारो यस्य कस्यापि निष्कामप्रेममक्तस्य ज्ञानिन्यन्तर्भावार्थं। जिस किसी निष्काम प्रेम भक्त का ज्ञानी मे अन्तर्भाव के लिए चकार है।

प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड। यहाँ ग्रन्थकार अपनी सम्मति कहते हैं नाम मे इतना सामर्थ्य है कि नामी उसके वश में रहता है। नाम लेकर स्तुति करनेवाले के सम्मुख होता है। निन्दा करनेवाले के विमुख होता है। रात-दिन नामस्मरण करनेवाले के वशीभूत रहता है। नामी के दो स्वरूप हैं निर्गुण और सगुण। और दोनो नाम के सामर्थ्य से उसके वश मे हैं।

प्रौढि सुजन जनि जानहिं जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी॥
एकु दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥२॥

अर्थ सज्जन लोग इसे जन तुलसी की प्रौढि जबरदस्ती न समझें। मैं अपने मनका विश्वास, प्रीति और रुचि कहता हूँ। दोनो प्रकार के ब्रह्म का विवेक अग्नि के समान है। एक अग्नि तो लकडी के भीतर है और दूसरी बाहर दिखाई पडती है।

व्याख्या ग्रन्थकार कहते हैं कि नाम को सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म से बढ़-कर कहने मे मैं हठ से नही काम ले रहा हूँ। श्रुति के बल से मुझे प्रतीति हुई। गुरुओ के उपदेश से प्रीति हुई और प्रारब्ध से रुचि हुई। उसी को मैं कहता हूँ।

जिस भाँति व्यक्त अग्नि से ही हम लोग परिचित हैं और वही हमलोगो के काम आती है उसी भाँति सगुण ब्रह्म से ही जगत् परिचित है और उसी से सब काम चलता है। जिस भाति लकडी मे भी अग्नि अव्यक्त है पर लकडी को नही जलाती वल्कि लकडी की आधारभूत वही अग्नि है। उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त है, निष्क्रिय है और सबका आधार है। जिस भाँति व्यक्त और अव्यक्त अग्नि तत्त्वत एक ही है उसी भाँति निर्गुण और सगुण ब्रह्म भी तत्त्वत एक ही है।

उभय अगम जुग सुगम नामते। कहेउँ नाम बड ब्रह्म राम ते॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँद रासी॥३॥

अर्थ दोनो दुर्गम हैं, पर नाम से दोनो सुगम हैं। ब्रह्म और राम दोनो मे मैं नाम को वडा कहता हूँ। ब्रह्म एक, अविनाशी सत्, चेतन और घन आनन्द की राशि है।

व्याख्या निर्गुण ब्रह्म अति सुलभ होने से अगम है। जिस प्रकार अति सन्निहित वस्तु इन्द्रिय गोचर न होने से अदृश्य होती है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म आत्मस्वरूप होने से ज्ञेय नही है। यथा निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोय। और सगुण ब्रह्म अपार होने से अगम है। अत स्वरूपत दोनो ही अगम हैं पर नामत दोनो सुगम हैं। अत ब्रह्म निर्गुण और राम सगुण दोनो से नाम बडा है।

नाम के बल से निर्गुण ब्रह्म को सगुण बनाकर काम लिया जा सकता है। उसी की प्रक्रिया बतलाते हुए निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते हैं। पहिले उसे व्यापक कहा। पर व्यापक मानने से किसी दूसरे व्याप्यकी भावना उठती है, इसलिए एक कहा। माया का ग्रहण न हो जाय इसलिए अविनाशी ब्रह्म कहा। 'सत चेतन आनद रासी' कहकर स्वरूप लक्षण बतलाया। घन कहकर द्वितीय का निषेध किया।

अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम निरूपन नाम जतनते । सोउ प्रकटत जिमि मोल रतनते ॥४॥

अर्थ ऐसे निर्विकार प्रभु के हृदय मे रहते हुए भी, जगत् के सब जीव दीन और दुखी हैं। नाम निरूपण और नाम-यत्न से वह वैसे ही प्रकट होता है जैसे रत्न से उसका मूल्य प्रकट होता है।

व्याख्या · ऐसे निर्विकार सच्चिदानन्द घन प्रभु के हृदय मे रहने पर अमङ्गल का नाश और परम मङ्गल होना चाहिए। यथा सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगलमूल अमगल दमनू। सो वे घरमे भी नही, हृदय मे मौजूद है ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गीता। फिर भी ससार के जितने जीव हैं, सबके सब दीन और दुखारी हैं, सुखी कोई भी नही। इसका कारण यही है कि वे व्यक्त रूप मे आवें तो काम चले। अग्नि के अव्यक्त रूप मे होने से काम नही चलता। व्यक्त रूप मे अग्नि को लाकर ही ससार अपना काम चलाता है। जिस भाँति अग्नि को व्यक्त रूप मे लाने का विधान है उसी भाँति प्रभु को भी व्यक्त रूप मे लाने का विधान है। कल्याण चाहनेवाले जीव का यह काम है कि उसे व्यक्त रूप मे लाने के लिए यत्नशील हो। यथा सहेउ सुरन बहु काल विषादू। नरहरि प्रकट कीन्ह प्रहलादू।

अब प्रकट करने का उपाय कहते है . नाम निरूपण अर्थात् नाम की अर्थभावना से और नामयत्न अर्थात् नाम के जप से वही स्वान्त स्थ पुरुष प्रकट होता है। यथा अगजगमय सबरहित विरागी। प्रेमते प्रभु प्रकटे जिमि आगी। प्रकट होने के लिए पहिले अग्नि का उदाहरण दिया था पर प्रकट होने म वह उदाहरण ठीक नही बैठता। लकडी की अग्नि अविकृत रहकर स्थूलाग्नि नही प्रकट कर सकती। अत 'मोल रतनते' का उदाहरण दे रहे है। रत्न स्वय अविकृत रहता हुआ मोल मूल्य को प्रकट किया करता है। निर्गुण रत्न है और सगुण उसका मूल्य है। तात्पर्य यह कि रत्न से काम नही चलता। उसके मूल्य से काम चलता है। अत निर्गुण को सगुण रूप मे लाने का प्रयत्न होना चाहिए और वह प्रयत्न नाम निरूपण और नाम-यत्न है। यथा [1] तज्जपस्तदर्थभावनम्। यो सू

दो निरगुन ते इहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड रामते, निज विचार अनुसार ॥२३॥

अर्थ निर्गुण से इस भाँति नाम का अपार प्रभाव बडा है। अब अपने विचार के अनुसार नाम को राम सगुण ब्रह्म से बडा कहता हूँ।

व्याख्या वडे होने का प्रकार कहते हैं। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ ही 'सबस बडा' है। अत निर्गुण ब्रह्म या सगुण ब्रह्म से बडा कुछ हो नही सकता। इसलिए जिस दृष्टि मे बडा कहा उसे स्पष्ट कहते है। नाम के प्रभाव का कोई पारावार नही है, जिसके बल मे निर्गुण ब्रह्म को सगुण होना पडता है। अत निर्गुण मे बडा है। अब

१. उसका जप और उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए।

सगुण से बडा कहेगे। यह कहे देते है कि निज विचार अनुसार मै कहता हूँ। यहाँ ग्रन्थकार अपना अनुभव कह रहे हैं।

राम भगत हित नरतनु धारी। सहि सकट किय साधु सुखारी ॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होहिं मुद मगल वासा ॥१॥

अर्थ रामजी ने भक्तो के लिए मनुष्य शरीर धारणकर और सकट सहकर, साधुओ को सुखी किया, किन्तु प्रेम से नाम का जप करने से भक्त सहज मे ही मुद और मगल के घर हो जाते हैं।

व्याख्या रामजी सगुण ब्रह्म को सौ कोटि काम सा सुन्दर कहना, सौ कोटि दुर्गा सा अरिमर्दन कहना, कोटि शत मरुत सा बलवान् कहना, कोटि शत सूर्य सा तेजस्वी कहना, कोटि शत चन्द्र सा शीतल कहना वैसा ही है, जैसे कोई सूर्य के लिए कहे कि वे कोटि शत जुगनू के बराबर हैं। ऐसे प्रभु का नर शरीर धारण करना उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है और सकट सहना उसके स्वरूप के प्रतिकूल है। सो साधुओ को सुखी करने के लिए श्रीरामजी को सब कुछ करना पडा। यथा जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि रिसि पतनी तरी। नख निर्गता मुनि वदिता त्रैलोक्य पावन सुर सरी। ध्वज कुलिस अकुस कज जुत बन फिरत कटक किन लहे। पद कज द्वद मुकुद राम रमेस नित्य भजामहे।

नाम का सप्रेम जप नामावतार है। जिस भाँति ब्रह्माण्ड मे रामावतार होता है, उसी भाँति पिण्ड मे नामावतार होता है। सगुण ब्रह्म ने नर शरीर धारण पूर्वक सङ्कट सहन करके, साधुओ को सुखी किया, पर पिण्ड के नामावतार द्वारा अनायास ही जापक भक्त मुद मङ्गल का निवास स्थान हो जाता है परन्तु जप प्रेम के साथ होना चाहिए। अर्थात् वह स्वय जङ्गम तीर्थराज हो जाता है, दूसरो का दुःख हटाने लगता है। यथा मुद मगलमय सत समाजू। ज्यो जग जगम तीरथ राजू।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
रिपिहित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि विवाकी ॥२॥

अर्थ रामजी ने एक तापसपत्नी अहल्या का उद्धार किया, पर नाम ने करोडा खलो की कुमति को सुधारा। रामजी ने ऋषि के हित के लिए सुकेतु की बेटी ताटका को उसके बेटे और सेना सहित नि शेष कर दिया।

व्याख्या भक्त को मुद मङ्गल का आवास बनाने के लिए पहिले उसकी मति का ही सुधार करना पडता है। अत ग्रन्थकार यहाँ अपने क्रम के अनुसार चल।

---

१ अहल्या गौतम ऋषि की स्त्री थी। इन्द्र उसके सौन्दर्य पर मोहित होकर गौतमजी के स्नानार्थ जाने पर, उनका रूप धर के आये और अहल्या का धर्म नष्ट किया। गौतमजी ने जब यह वृत्तान्त जाना तो दोनो को शाप दिया। इन्द्र को सहस्र भग हो गये अहल्या पत्थर हो गई। अनुनय विनय करने पर गौतमजी ने शापानुग्रह भी किया। इन्द्र को सहस्र नेत्र हो गये और अहल्या भगवान् रामचन्द्र के चरण रज के स्पर्श से शापविनिर्मुक्त हुई।

श्रीरामावतार के घटना क्रम का अनुसरण नहीं किया। ताटका वध के पहिले ही अहल्योद्धार की कथा कहने लगे।

यहाँ तापसतिय से अहल्या अभिप्रेत है। जिस भाँति ब्रह्माण्ड में अहल्या पत्थर हो गई थी और उसका उद्धार रामचन्द्र ने किया। यथा : गौतम गये घर गौनो सो लिवाय के।'''''''''इसी भाँति मति जड़ीभूत होकर कुमति हो गई है, उसका उद्धार नामावतार द्वारा होगा। इस भाँति नाम ने करोड़ों का उद्धार किया अतः नाम में कार्यकारिता करोड़ो गुना अधिक है।

खल की बुद्धि सत्सङ्ग से भी नहीं सुधरती। यथा : मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू। नाम को ही उसके उद्धार का सामर्थ्य है।

ब्रह्माण्ड मे ताटका थी। यह यक्षिणी सुन्द से ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि के शाप से सुन्द मारा गया तो यह और इसका बेटा मारीच ऋषिजी को खाने दौड़े। अतः अगस्त्यजी ने इन्हें भी शाप दिया और ये राक्षस हो गये। वे ही सुबाहु मारीच थे। उनके पास सेना थी। ये विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ में विघ्नाचरण करते थे। यथा : तहँ जप जोग जग्य मुनि करही। अति मारीच सुबाहुहिं डरही। अत. ऋषि के लिए श्रीरामजी ने उन सबोका संहार कर डाला।

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबिनिसि नासा॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भवभय भंजन नाम प्रतापू॥३॥

अर्थ : दोष और दु.ख के सहित दास की दुराशा का नाम इस भाँति विनाश करता है जैसे सूर्य रात का नाश करते हैं। स्वय रामजी ने शिवजी के धनुष को तोड़ा, पर संसार के भय को नाम का प्रताप भञ्जन करता है।

व्याख्या : पिण्ड मे ताटका स्थानीय दुराशा है। उसके दोष और दु ख ये ही दो पुत्र हैं। वे भक्त के शुभाचरण मे बड़ी बाधा उपस्थित करते हैं। उनका नामावतार द्वारा अनायास ऐसा नाश होता है जैसे सूर्य रात का नाश करते हैं। सूर्य दूर ही रहते हैं और रात का नाश हो जाता है। यथा : उदय भानु बिनुश्रम तम नासा। श्रीरामजी को ताड़का-सुबाहु-वध के लिए वन में जाकर युद्ध करना पड़ा था।

'भव' शब्द का अर्थ ससार भी है और शङ्करजी भी हैं। भवचाप को स्वय रामजी को जनकपूर जाकर तोड़ना पड़ा। इधर भवभय नाम के प्रताप से टूट जाता है। नाम स्वयं कुछ नहीं करता। भवभय शङ्कर के धनुष की भाँति भारी और कठोर है। किसी साधन से नहीं जाता पर नाम के प्रताप से दूर हो जाता है।

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जनमन अमित नाम किये पावन॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन॥४॥

अर्थ : प्रभु राम ने [1]दण्डकवन को सुहावना बनाया। किन्तु नाम ने असख्यात

---

१. दण्डकवन पूर्व काल में राजा दण्ड का समृद्ध राज्य विन्ध्याचल और नीलगिरि के बीच में था। इस अन्यायी राजा ने अपने गुरु शुक्राचार्य की सुन्दरी पुत्री अरजा के साथ बलात्कार किया। उसने पिता से राजा का अन्याय कह सुनाया। उनके शाप से सौ योजन

भक्तो के मनो को पवित्र किया। श्रीराम ने राक्षसो के समूह को मारा और नाम कलियुग के सारे मलों को दूर करनेवाला है।

अर्थ ब्रह्माण्ड मे जैसे दण्डकवन अपवित्र और भयानक हो गया था और उसे श्रीरामजी ने सुहावन बनाया। यथा ' जब ते राम कीह्न तँह वासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा। गिरिवन नदी ताल छविछाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए। सो वन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुवीर बिराजा। उसी भाँति नाम के आगमन से असंख्यात भक्तो के मन पवित्र हो गये। उस दण्डक वन मे खरदूपणादि ससैन्य रहते थे। उनका रामजी ने वध किया। उसी भाँति मन में कलिकलुप दम्भ, पाखण्डादि निवास करते है। नाम उनके मूल को उखाड़ फेंकता है।

दो. सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीह्न रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥२४॥

अर्थ . रामजी ने शवरी, गीध आदि सुसेवको को मुक्ति दी परन्तु नाम ने अगनित खलो का उद्धार किया। गुणगाथा वेद मे विदित है।

व्याख्या . शवरी, गीध, अधम योनि होने पर भी सुसेवक थे। इसलिए रामजी ने उन्हे मुक्ति दी। पर नाम ने तो ऐसे खलो को मुक्ति दी जो मरते दम तक खल ही रहे। साधु कभी हुए ही नही। यथा ' सुरमुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयौ। रामराम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान। करि उपाय रिपु मारेउ छन महँ कृपानिधान। नाम की गुणगाथा वेदो मे कही गई है। अत उसमे शङ्का को स्थान नही है।

राम सुकंठ विभीपन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे ॥१॥

अर्थ रामजी ने सुग्रीव और विभीपण दोनो को अपने शरण मे रक्खा। यह सब कोई जानते है। पर नाम ने अनेक दीनो पर कृपा की है, जिसका विरद, लोक और वेद मे विराज रहा है।

व्याख्या : श्रीरामजी का सुग्रीव और विभीपण इन दो ही को शरण में रखना प्रसिद्ध है। पर नाम ने तो कितने गरीबों पर कृपा की है जिनकी गिनती नही है। भाव यह है कि जो गरीब ऐसे भाग्यवान् थे जिनका जन्म रामावतार के समय हुआ था, उन्ही पर दया करने का अवसर रामजी को मिला। पर नाम को तो सदा काम गरीबो से पडा ही करता है और नाम की कृपा से उनकी गरीबी जाती रहती है और वे सुखी हो जाते है। उनका नाम भी कोई नही जानता। पर 'गरीब नेवाज' विरद लोक और वेद म प्रसिद्ध है। यथा ' विरद गरीब नेवाज राम को। गावत वेद पुरान सभु सुक प्रकट प्रभाव नाम को। गनिका कोल किरात आदि कवि

तक धूलि की वृष्टि हुई और वह राज्य नष्ट हो गया। मुनि के शाप से, सभी ऋषियो ने उस स्थान को पहिले ही छोड़ दिया था और वहाँ नही जाते थे। यह दण्ड राजा इक्ष्वाकु का कनिष्ठ पुत्र था।

इनते अधिक राम को। वाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को। छली मलीन हीन सबही अंग, तुलसी सो छीन छाम को। नाम नरेस प्रताप प्रबल जग, जुगजुग चलत चामको।

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मनमाहीं॥२॥

अर्थ रामजी ने भालू और बन्दरो की सेना इकट्ठा की और पुल बाँधने मे कम परिश्रम नही किया। पर नाम लेते ही संसार समुद्र सूख जाता है, हे सज्जनो! मन मे विचार तो करो।

व्याख्या श्रीराम जी वन मे थे उस समय रावण ने सीता हरण किया। पास सेना नही और शत्रु राजा पर आक्रमण के लिए शास्त्रविधि के अनुसार सेना अवश्य चाहिए। अत बन्दर भालुओ की सेना इकट्ठी की। यह असाधारण श्रम का कार्य था। सेना इकट्ठी होने पर भी समुद्र मे सेतु बाँधना महा दुष्कर कार्य था। जिसे सिवा श्रीरामजी के ससार मे कोई आज तक कर न सका। जिसे सुनकर रावण भी घबरा उठा। उस सेतु बाँधने के लिए श्रीरामजी को तीन दिन तक समुद्र के किनारे धरना देना पडा। यथा विनय न मानत जलधि जड गये तीनि दिन बीति। इसलिए कहते हैं कि 'श्रमकीन्ह् न थोरा।'

भवसिन्धु मे लवणसिन्धु ऐसे न जाने कितने सिन्धु पडे हैं, वह केवल नाम लेने से सूख जाता है। यहाँ ग्रन्थकार सुजन से कहते हैं कि आप विचार करके देखिये, सूख जाता है कि नही। बिना विचार किये यह बात समझ मे न आवेगी कि भव-सागर नाम लेने से कैसे सूख जाता है। पर विचार करने पर यह भावना दृढ हो जाती है कि निश्चय ही भवसागर सूख जाता है।

मिथ्या वस्तु के दूर करने के लिए सत्य वस्तु का नाम लेना ही यथेष्ट है। मिथ्या सर्प किसी अस्त्र शस्त्र से दूर नही किया जा सकता। पर केवल रज्जु के नाम से दूर हो जाता है। मृगजल का समुद्र किसी नौका या जहाज से पार नही किया जा सकता। परन्तु 'सूर्य की किरणो' के कथन से ही वह समुद्र कही रह नही जाता। इसी भाँति मिथ्या भवसागर मे डूबता हुआ पुरुष, सत्य राम के नाम से ही बचाया जा सकता है। यथा निजभ्रम ते रविकर सभव सागर अति भय उपजावै। अव गाहत बोहित नौका चढि कबहूँ पार न पावै। सुभग सेज सोवत सपने वारिधि बूडत भय लागै। कोटिहु नाव न पार पाव सो, जबलगि आपुन जागै।

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगुधारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनिवर बानी॥३॥

अर्थ रामजी ने युद्ध मे कुटुम्ब सहित रावण को मारा और सीता सहित अपने नगर को लौटे। रामजी राजा हुए। अयोध्या उनकी राजधानी हुई। देवता मुनि श्रेष्ठ वाणी से उनके गुण गाते हैं।

व्याख्या श्रीराम जी ने जटायु से कहा था। जी मैं राम तो कुल सहित,

हिहि दसानन जाय, सो सत्य किया। कुल सहित सग्राम मे रावण को मारा। सीता रण हुआ था सो सीता मिली। रामजी उनके साथ अयोध्याजी पधारे। पुरवासी ोग पञ्चदेव की उपासना करके माँगते थे : राजा राम जानकी रानी। आनद अवधि वध रजधानी। सुवस बसहु पुनि सहित समाजा। भरतहि रामु करहिं जुवराजा। नका भी मनोरथ पूर्ण हुआ।

वक सुमिरत नामु सप्रीती। विनुश्रम प्रवल मोह दल जीती॥
फरत सनेह मगनसुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहि सपने॥४॥

अर्थ सेवक प्रेमपूर्वक नाम स्मरण करता हुआ मोह की सेना को बिना परिश्रम जीत लेता है और प्रेम मे मग्न होकर आत्मानन्द मे विचरता है। नाम के प्रसाद से उसे सपने मे भी चिन्ता नही रहती।

व्याख्या विनय पत्रिका मे ग्रन्थकार ने अध्यात्म प्रकरण को वहुत स्पष्ट करके दिखलाया है। यथा

वपुप ब्रह्माण्डसु प्रवृत्ति लका दुर्ग, रचित मन दनुज मय रूप धारी।
विविध कोसौध अतिरुचिर मदिर निकर, सत्वगुण प्रमुख त्रय कटक कारी॥
कुनप अभिमान सागर भयकर घोर, विपुल अवगाह दुस्तर अपार।
नक्र रागादि सकुल मनोरथ सकल सग सकल्प वीची विकार॥
मोह दस मौलि तद् भ्रात अहँकार, पाकारिजित काम विश्राम हारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विवुधातकारी॥
द्वेप दुर्मुख दभ खर अकपन कपट, दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचर निकर, सहित पड्वर्ग सो यातुधानी॥
जीव भवदघ्रिसेवक विभीपन बसत, मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।
नियम यम सकल सुर लोक लोकेस लकेस बस नाथ अत्यत भीता॥
ज्ञान अवधेस गृह गेहनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त सकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत, गमन किय गहन वैदेहि भर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुल, ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू।
प्रवल वैराग्य दारुन प्रभजन तनय, विपय वन भवन मिव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्वंस कृत दासहित विश्व दुखहरन वोधैक रासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमल वासी॥

विनय प ५८

दास को जीतने म श्रम नही पडता, वह नाम द्वारा ज्ञान मार्ग मे अग्रसर होता चला जाता है। नामावतार से मोहादिक सब नाश को प्राप्त हो जाते है और दास को स्वाराज्य की प्राप्ति हो जाती है।

दो ब्रह्म राम ते नामु वड, वरदायक वरदानि।
राम चरित मत कोटि महँ, लिये महेस जिय जानि॥२५॥

अर्थ वरदायक को भी वर देनेवाला नाम, ब्रह्म और राम दोनो से बडा है। सौ करोड रामचरित मे से मन मे जानकर महादेव जी ने इसी को ग्रहण किया।

व्याख्या 'कहउँ नाम बड ब्रह्म रामते' ऐसा उपक्रम करके अब 'ब्रह्म रामते नाम बड' कहकर उपसहार करते है। वरदायक शङ्कर ब्रह्मादि को वर देनेवाला राम नाम है। महापुरुषो ने नाम जपकर के ही सिद्धि प्राप्त की है।

श्रीग्रन्थकार कहते है कि रामचरित पूर्णचन्द्र की किरणे हैं। यथा रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सबकाहु। तमाम समार मे फैली हुई है अत असख्यात है। सौ करोड से असख्यात का ही तात्पर्य है। भक्ति रूपी पूर्णिमा की रात्रि मे चन्द्र 'रामनाम' है। यथा राकारजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम। इस बात को समझकर शङ्कर भगवान् ने रामनाम रूपी चन्द्र को ही ग्रहण कर लिया कि चन्द्रिका चन्द्र को छोडकर कहाँ जायगी। यथा कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।

महात्मा लोग ऐसा भी अर्थ करते है कि[1] ब्रह्मदेव ने पहिले शतकोटि सख्यक श्लोको के रामायण की रचना की। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक निवासी उसपर अपना अपना स्वत्व जमाने लगे। झगडा बढा तो शङ्कर जी के पास गये। उन्होने तीनो के लिए विभाग कर दिया। पहिले तैंतीस, तैंतीस कोटि एक एक को दिया। बचा एक कोटि। उसमे तैंतीस तैंतीस लाख का भाग लगाया। बचा हजार। उसका भी तीन तीन सौ का भाग लगा। तब बचा सौ। उसमे भी तैंतीम तैंतीस का भाग लगा। बचा एक। एक अनुष्टुप मे बत्तीस अक्षर होते है और अनुष्टुप मे ही ग्रन्थ की सख्या की जाती है। सो उसमे से दस दस अक्षर तीनो को दे दिया। अब दो अक्षर बचे, वे थे रा और म और विभाग करना था तीन। अत हो न सका। तब शङ्कर भगवान् ने उन दोनो अक्षरो रा और म को अपने पारिश्रमिक मे ले लिया और ये ही दो अक्षर सम्पूर्ण रामायण के सार हैं।

नाम प्रसाद सभु अविनासी। साजु अमगल मगल रासी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥१॥

अर्थ नाम के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमगल साज रखने पर भी मङ्गल की राशि है। शुकाचार्य, सनकादिक सिद्ध, मुनि और योगी लोग नाम के प्रसाद से ही ब्रह्मानन्द के भोगनेवाले हैं।

व्याख्या राम और नाम की तुलना म ग्रन्थकार ने रामजी की ओर से भक्तो का नाम लेकर उदाहरण दिया। यथा राम एक तापस तियतारी। राम सुकठ विभीपन दोऊ। राखेउ सरन जान सब कोऊ। सवरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ इत्यादि। पर नाम की ओर से किसी व्यक्ति विशेप का नाम लेकर

१ वाल्मीकिना च यत्प्रोक्त रामोपाख्यानमुत्तमम्। ब्रह्मणा चोदित तच्च शतकोटि प्रविस्तरम्। आहूत नारदेनैव वाल्मीकये निवेदितम्। ब्रह्मदेव से प्रेरित होकर वाल्मीकि ने जो रामोपाख्यान कहा उसका शतकोटि विस्तार था। ब्रह्मदेव से प्राप्त करके उस नारद जी ने वाल्मीकि से कहा।

उदाहरण न दिया। केवल बहुवचन का प्रयोग करते गये। यथा भक्त होहि मुद मगल वासा। नाम कोटि खल कुमति सुधारी : इत्यादि। अत नाम से जिनका कल्याण हुआ है, उन महानुभावो मे से प्रधान व्यक्तियो का नाम लेकर उदाहरण : नजीर : देते हैं।

शिवजी नाम के प्रभाव से अविनाशी है। नाम के प्रभाव से अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसकी प्रक्रिया भी ग्रन्थकार ने बतलाई। यथा : हनुमन् वचन नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जन्नित प्रान जाहिं केहि बाट। नाम के प्रसाद से ही मुण्डमाल, कपाल, चिताभस्मधारी होने पर भी शिवजी मङ्गलमय है। यथा : नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होहिं मुदमगल वासा। 'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहि सपने।' पहिले कह आये है। उसीका उदाहरण द रहे है : 'सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।' योगियो के लिए यही निर्णय है कि भगवन्नामानुकीर्तन किया करे। यथा योगिना नृपनिर्णीत हरेर्नामानुकीर्त्तनम् : भागवते।

नारद जानेउ नाम प्रतापू। जगप्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू ॥
नाम जपत प्रभु कीह्न प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू ॥२॥

अर्थ · नारदजी ने नाम का प्रताप जाना। ससार को हरि प्रिय है, हरि को हर प्रिय है और हर को आप : नारदजी · प्रिय हैं। नाम जपने से भगवान् प्रसन्न हुए। सो प्रह्लाद भक्तो के शिरोमणि हो गये।

व्याख्या सम्पूर्ण ससार को हरि प्रिय हैं। यथा ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। हरि को हर प्रिय है। यथा · कोउ नहिं सिवसमान प्रिय मोरे। अस परतीति तजिअ जनि भोरे और हर को नारदजी प्रिय हैं। यथा : अति प्रिय जानि महेस सिखाये। यह प्रियतम होने का पद जो नारदजी को प्राप्त हुआ है, सो नाम के प्रताप की जानकारी से हुआ है।

नाम के जपने से प्रभु प्रसन्न होते है और जापक को भक्त शिरोमणि बना लेते हैं। [1]प्रह्लाद ने सिवा नाम जप के और कौन साधन किया ? प्रह्लाद को जब पिता : हिरण्यकश्यप ने अग्नि मे डाला तब प्रह्लाद ने पिता से कहा कि नाम

---

१ प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकश्यप के पुत्र थे। बचपन से ही भगवद्भक्त थे। इनका पिता विष्णु का बैरी था। प्रह्लाद पढने मे मन न लगाकर भगवन्नाम कीर्तन करते थे। इस पर उनका पिता बडा क्रुद्ध हुआ। बहुत कुछ समझाया। नही मानने पर पर्वत से गिराया, जल मे डुबाया, हाथी से रौंदवाया, अग्नि मे जलाया पर प्रह्लाद का कुछ न हुआ। तब स्वय खड्ग लेकर मारने को प्रस्तुत हुआ। पूछा तेरे राम कहाँ हैं। प्रह्लाद ने कहा 'सर्वत्र'। पूछा कि खम्भे मे भी हैं ? कहा 'हाँ'। हिरण्यकश्यप के गर्जन पर भगवान् उसी खम्भे मे नृसिंह रूप मे प्रकट हुए और उसका वध करके प्रह्लाद की रक्षा की।

जप का प्रभाव देखो। मेरे शरीर के पास आकर अग्नि भी जल की भाँति शीतल हुई जाती है। यथा : रामनाम जपता कुतोभयम् सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना। भक्तो की गणना में प्रह्लाद का प्रथम नाम आता है। यथा : प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मकाद्याः। स्वयं भगवान् ने उन्हे भक्तशिरोमणि माना। यथा : भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः। भवान् मे खलु भक्ताना सर्वेषा प्रतिरूपधृक्: भागवते।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥३॥

अर्थ : ध्रुव[1] ने ग्लानि के साथ नाम को जपा, सो अचल अनुपम स्थान पाया। हनुमान्जी ने पवित्र नाम स्मरण करके रामजी को अपने वश मे कर रक्खा।

व्याख्या . पिता और सपत्नि माता से अनादृत होकर ध्रुव ने ग्लानि के साथ जप किया अर्थात् ध्रुवजी अर्थार्थी भक्त थे और वे बिल्कुल बच्चे थे, सो ऐसा पद पाया जैसा कभी किसी ने पाया नही और जो कभी चलायमान नही होता। यह 'नाम अनेक गरीब नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे' का उदाहरण है।

हनुमान्जी का मन पावन नाम का जप करते करते ऐसा पवित्र हो गया कि रामजी उनके वशमे हो गये। श्रीरामजी को मलिन मन पसन्द नही है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा। ग्रन्थकार विनय पत्रिका मे लिखते हैं कि साहिब कही न राम सो तोसे न वसीले। अर्थात् न तो कही राम सा स्वामी है और न हनुमान्जी सा कोई साधन है। क्योकि रामजी हनुमान् के वश मे है, हनुमान्जी के चाहने से ही रामप्राप्ति सुलभ है। ऐसा दूसरा साधन कोई नही है। यह 'जनमन अमित नाम किये पावन' का उदाहरण है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भयं मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥४॥

---

१. ध्रुव राजा उत्तानपाद का बेटा था। एक बार वह पिता की गोद मे जा बैठा। उसकी विमाता सुरुचि ने यह कहकर कि तू जा भगवान् की आराधना करके मेरे पेट से उत्पन्न हो। तब राजा को गोद मे बैठने का अधिकारी होगा। उसे गोद से उतार दिया। ध्रुव को बडी ग्लानि हुई। उसने जाकर यह कथा अपनी माता सुनीति को सुनाई। सुनीति ने कहा कि सुरुचि ने परुष वचन कहा। पर बात सत्य ही कही। ध्रुव उसी अवस्था में घर से निकले और नारदजी के उपदेश से। मथुरा मे जाकर भगवन्नाम जप किया। उन्हे भगवद्दर्शन हुआ और ध्रुव पद मिला। जिसकी महर्षि सदा प्रदक्षिणा किया करते हैं।

अर्थ : पतित अजामिल[१], गज[२], गणिका[३] भी हरिनाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, नाम के गुणो को : स्वय · राम भी नही गान कर सकते।

व्याख्या : अजामिल, गज, गणिका सभी साधनों से रहित थे। इसीलिए इन्हे अपत : अपत्र : कहा। ये केवल नाम के प्रभाव से मुक्त हुए। यह 'नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन गाथ' का उदाहरण है।

ग्रन्थकार कहते है कि नाममहिमा की सीमा नही है और कथन करने का अर्थ ही सीमित करना है। चाहे कितना ही बडा वक्ता हो, स्वय राम ही क्यो न हो, जब किसी वस्तु का कथन करेंगे तो उसे सीमित करना पडेगा और राम नाम की महिमा असीम है, वह राम : सगुण ब्रह्म से भी वड़ी है और ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म से भी वडी है। इनमे से एक एक के गुण नही गाये जा सकते। तव नाम के गुण कैसे गाये जा सकते है ?

दो. नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँगते, तुलसी तुलसीदासु ॥२६॥

अर्थ : राम का नाम कल्पवृक्ष है। जो कलियुग मे कल्याण का निवास स्थान है। जिसके स्मरण करने से तुलसीदास भाँगसे तुलसी हो गये।

व्याख्या : कलिनाम कामतरु राम को।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोप घोर घन धाम को ॥१॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, वाम विधाता वाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधो नाम को ॥२॥

---

१ यह : अजामिल कन्नौज का रहनेवाला एक ब्राह्मण था। पहिले सद्वृत्त था, पीछे से एक व्यभिचारिणी पर आसक्त होकर उसे घर लाया। उसके लिए उसने अपनी पाणिगृहीता भार्या का परित्याग किया। मद्य मासादि का सेवन करने लगा। चोरी डकैती करने लगा। महापतित हो गया। मरने के समय जब उसे लेने यमदूत आये तब बहुत डरा। अपने छोटे लडके नारायण को पुकारा। मरने के समय नामोच्चारण के माहात्म्य से विष्णुदूत आगये और उसे छुडा लिया। उसकी आयु बढ गई और उसने शेप जीवन भगवद्भक्ति में विताया।

२. क्षीरसागर मे त्रिकूट नाम का एक पर्वत है। उसपर एक बहुत बडा सरोवर है। उसी मे गज अपनी हथिनियो के साथ जलक्रीडा करता था, उसे ग्राह ने पकड लिया। दोनो मे बडा युद्ध हुआ पर अन्त मे गज थक गया। डूबने के समय भगवान् को पुकारा। भगवान् प्रकट हुए और ग्राह को मारकर गज का उद्धार किया। दोनो को मुक्ति दी। गज पूर्व जन्म मे इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था। ग्राह भी गन्धर्व था। शाप से इन योनियो को प्राप्त हुए थे।

३ इस गणिका का नाम जीवन्ती था। परन्तु नामी वैश्य की स्त्री थी। उसके मरने पर इसने वेश्या वृत्ति कर ली। उसने एक तोता पाल रक्खा था। उसे राम नाम पढाती थी। सो नाम के प्रभाव से वह तर गई।

भलो लोक परलोक तासु, जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नामते सोचन कूच मुकाम को॥३॥

कलियुग में कोई दूसरा कल्पतरु नहीं है, कारण बताते हैं कि कलियुग में यही कल्याण का निवास है अथवा कल्याण का यही पता है। जिसे कल्याण की कामना हो, वह नामकल्पतरु की उपासना करे। उदाहरण मे ग्रन्थकार अपने को देते हैं कि मैं भाँग की भाँति अग्राह्य था। सो आज नाम के प्रभाव से 'तुलसी माई' की भाँति मेरी पूजा होती है। भगवान् की प्रीति चाहनेवाले भी मेरी पूजा करके रामजी का अनुग्रह चाहते हैं।

चहुँजुग तीनि काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव बिसोका॥
वेद पुरान सत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू॥१॥

अर्थ चारो युगो मे, तीनो कालो मे और तीनो लोको मे नाम जपकर जीव शोक रहित हुए हैं। वेदपुराण और सन्तों का यही मत है कि सारे पुण्य-कर्मो का फल रामजी मे प्रेम का होना है।

व्याख्या चहुँ युग से एक ही चौकडी चतुर्युग का ग्रहण होगा। इसलिए तीन काल कहा। तिहुँलोक से सब देश कहा। अर्थात् सभी देश और सभी काल म नाम जप सार्वभौम धर्म है। इसके करने से मनुष्य अभय पद को प्राप्त होता है।

'यस्य नाम[१] महद्यश' यह वेदमत है और 'यस्य स्मृत्या[२] च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यून सम्पूर्णता याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।' यह पुराणमत है। 'तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग विराग ज्ञान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सजम दम जप तप मख नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बडाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।' यह शिवमत है। अथवा 'भगवन्त विभु नित्य पूर्ण बोधसुखात्मकम्। [३]यद् गृह्णाति द्रुत चित्त किमन्यदवशिष्यते।' यह सन्त मधुसूदन स्वामी का मत है।

सब साधनो की त्रुटि भगवत्स्मरण तथा नाम कीर्तन से दूर होती है। भगवद्भक्ति ही सब साधनो का फल है। इस बात को दिखलाकर अब यह दिखलाते है कि अन्य युगो मे और भी साधन हैं। यथा

ध्यानु प्रथम जुग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥२॥

अर्थ प्रथम युग मे ध्यान से, दूसरे मे यज्ञ से, द्वापर मे पूजन से भगवान्

---

१ जिसके नाम का बडा यश है।

२ जिसके स्मरण से, नाम लेने से, तप यज्ञादि क्रिया की न्यूनता तुरन्त पूरी हो जाती है, उस अच्युत भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

३ चित्त विगलित होने पर यदि विभु नित्य पूर्ण बोध सुखात्मक भगवान् का ग्रहण करे, तो शेष ही क्या रह जाता है?

प्रसन्न होते हैं, पर कलियुग केवल मल का मूल, मलिन और पाप का समुद्र है और जिसमें मनुष्य का मन मछली हो रहा है।

व्याख्या . प्रथम युग सत्ययुग मे शुद्ध सत्त्वगुण वर्तता है। सबका मन प्रसन्न रहता है। निर्विकार चित्तैकसाध्य ध्यान सम्भव है। अत सत्ययुग के लिए ध्यान से प्रभुका प्रसन्न होना बतलाया। त्रेता मे सत्त्व बहुत रहता है, पर रजोगुण का अनुवेध आ जाता है। ध्यान की योग्यता नही रहती। सपत्नीक होकर यज्ञकर्म कर सकता है और भगवान् यज्ञ से प्रसन्न हो जाते हैं। द्वापर मे सत्त्व बहुत थोडा रह जाता है। रजोगुण का वाहुल्य हो जाता है। कुछ तमोगुण का भी प्रवेश हो जाता है। इसलिए दीर्घकालिक यज्ञ असम्भव हो जाता है। इस युग मे अल्पायास तथा अल्पकालसाध्य पूजन सम्भव है। अत भगवान् पूजन से प्रसन्न होते हैं।

कलियुग मे सत्त्व का नाम नही। तमोगुण का वाहुल्य रहता है। थोडा रजोगुण का अनुवेध रहता है। इसलिए कलियुग को मल का मूल और मलीन कहा। पापसमुद्र मे मनुष्य का मन मछली की भाँति विहार करता है। पाप से वाहर निकाल दिया जाय तो छटपटाकर मर जाय। इसमे लोगो को अन्य धर्म मे अधिकार ही नही है। यथा रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा जपन् मुक्तिमुपैति जन्तु। कलौ युगे कल्मषमानसानामन्यत्रधर्मे खलु नाधिकार। कलि से कलुषित मनवाले को नामस्मरण छोडकर दूसरे धर्म मे अधिकार नही है।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥३॥

अर्थ इस कराल काल मे नाम कल्पवृक्ष है जो स्मरण करने से ससार के जाल का नाश कर देता है। राम का नाम कलियुग मे मनचाहा देनेवाला है। परलोक मे हित है और इस लोक मे माता-पिता है।

व्याख्या राम नाम को कल्पतरु कहकर जिस प्रसङ्ग को आरम्भ किया, 'नाम कामतरु काल कराला' कहकर उसका उपसहार करते हैं। इस भयानक काल मे ध्यान, यज्ञ, पूजा कुछ भी फलदायक नही हो सकता। केवल नाम ही कल्पवृक्ष है। विशेषता यह है कि इसके स्मरण से जगजाल कट जाता है जिसमे फँसकर पापपयोनिधि की मछली मारी जाती है। कल्पवृक्ष के जब निकट जाय, उसे पहिचाने, उसकी छाया मे जाय तब शोकहरण करता है। माँगने पर अभिमत देता है। यथा · जाय निकट पहिचानि तरु, छाँह समति सब सोच। माँगत अभिमत पाव जग, राउ रक भलपोच।

सो कामतरु भी कलि मे अभिमतदाता नही है। अभिमत दाता है रामनाम। कामतरु लोक परलोक दोनो नही सँभालता। नाम सँभालता है। यथा रोटी लूगा नीके राखै, आगेहू कै वेद भाखै विनय।

नहि कलि करम न भगति विवेकू। राम नाम अवलवन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥४॥

अर्थ कलियुग मे न कर्म है, न भक्ति है, न ज्ञान है एक रामनाम का अवलम्ब है। कपट के निधान कलियुगरूपी कालनेमि के लिए राम का नाम सुमति वाला समर्थ हनुमान् है।

व्याख्या · कलियुग मे तीनो काण्डो मे से किसी की कुछ नही चलती। अत इसका भरोसा नही कर सक्ते। केवल रामनाम का भरोसा है।

लका मे वडे वडे मायावी थे। पर कालनेमि के नीचे सब थे। जहाँ किसी का वल नही चलता था वहाँ कालनेमि का कपट काम करता था। यहाँ कलियुग कालनेमि है। इसने ध्यान, यज्ञ, पूजन, कर्म, ज्ञान और उपासनादि सभी साधनो को पराभूत कर दिया। पर इसकी मौत नामरूपी हनुमान् के हाथ से है। सुमति और समर्थ के आगे कपट चलता नही। नामरूपी हनुमान् सुमति भी है और समर्थ भी है। अत केवल नाम पर कलियुग का वल नही चलता। वहाँ कलियुग मारा जाता है। इससे यह दिखलाया कि नाम कलियुग से अपनी रक्षा मे समर्थ है।

दो. राम नाम   नरकेसरी, कनककसिपु कलिकालु।

जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसालु ॥२७॥

अर्थ : राम नाम नृसिंह है। कलियुग हिरण्यकश्यप है। देवताओ को दु ख देने वाले को मारकर प्रह्लाद की भाँति जप करनेवालो की रक्षा करेगा।

व्याख्या यहाँ यह दिखलाते है कि नाम अपनी रक्षा तो कर ही लेता है, अपने जापक की भी रक्षा करता है। इस रूपक मे रामनाम तो नृसिंह है और कलिकाल हिरण्यकश्यप है, जापक जन प्रह्लाद है। परन्तु वे देवता कौन है जिन्हे कलिरूपी हिरण्यकश्यप दु ख देता था ? अत विना इस कमल की पुरइन खोजे काम चल नही सकता। इसकी पुरइन है 'सदगुन सुरगन अव अदिति सी।' यहाँ सद्गुण ही सुरगण है जिन्हें कलिरूपी हिरण्यकश्यप दु ख देता है। पर 'सहेउ सुरन्ह बहु काल विपादू। नरहरि प्रकट कीन्ह प्रहलादू।' कलिकाल सद्गुणो का वैरी है, सद्गुण वाले महात्माओ को महादु ख देता है। यथा

दीनदयाल दुरित दारिद दुख, दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देवदुवार –पुकारत आरत, सवकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभु के बचन वेद बुध सम्मत, मम मूरति महिदेव भई है।
तिनकी मति रिसि राग मोह मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु, कलपत कलुप कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति, हेतु वाद हठि हेरि हई है ॥३॥
आश्रम वरन धरम विरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित   पाखण्ड   पापरत,   अपने अपने रग रई है ॥४॥
शाति सत्य सुभरीति गई घटि, वढी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल विलसत हुलसत खलई है ॥५॥
परमारथ स्वारथ साधन भए, अफल सकल नहि सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर, विवस विकल जामति न वई है ॥६॥

कलि करनी वरनिये कहाँलौ, करत फिरत विनु टहल टई है ।
तापर दात पोसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है ॥७॥
त्यौ त्यौ नीच चढत सिर ऊपर, ज्यौ ज्यौ सील वस ढील दई है ।
मरुख वरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कोहडेकी जई है ॥८॥
विनय प १३९

पर जव रामनाम के जापक को दु ख देता है तो नाम द्वारा ही मारा जाता है ।

भाय कुभाय अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करौ नाइ रघुनाथहि माथा ॥१॥

अर्थ : भाव से, कुभाव से क्रोध से या आलस्य से भी नाम जपने से दशो दिशाओ मे मङ्गल होता है। उसी नाम का स्मरण करके रघुनायक जी को मस्तक नवाकर राम के गुणो की गाथा रचता हूँ।

व्याख्या : भाव से नाम जप : 'सादर सुमिरन जे नर करही। भव वारिधि गोपद इव तरही।' कुभाव से नाम जप : 'विवसहु जासु नाम नर कहही। जनम अनेक रचित अघ दहही।' अनख से नाम जप : 'उमा राम मृदु चित करुना कर। वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहिं परम गति अस जियजानी। को कृपाल अस अहै भवानी।' आलस से नाम जप 'राम राम कहि जे जमुहाही। तिनहि न पाप पुज समुहाही।' ऐसे नाम का स्मरण और नामी को प्रणाम करके, ग्रन्थकार रामगुन गाथा की रचना का सकल्प करते है। 'वन्दौ नाम राम' से उपक्रम करके 'सुमिरि सो नाम राम' से प्रकरण का उपसहार करते हैं। क्योकि .

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थवत्पृथक् स्थितौ ।
प्रकाशक प्रकाश्यश्च कार्यकारणरूपता ॥

अर्थ : परमार्थ दृष्टि से शब्द और अर्थ अभिन्न हैं। आत्मा ही शब्द है और आत्मा ही अर्थ है। ब्रह्म ही प्रकाशक है और ब्रह्म ही प्रकाश्य रूप से, कार्यकारणभाव से उपलब्ध होते हैं। नव दोहो मे नाम वन्दना की। नौ तक ही अङ्क है। इसी भाँति धर्म और लोक परलोक का सुख नाम तक ही है। इस बात को द्योतित किया। 'नाम जपत मगल दिसि दसहूँ' तक नाम प्रकरण समाप्त हुआ। अब 'करौ नाइ रघुनाथहि माथा' यहाँ से रूप वर्णन आरम्भ हुआ।

रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम् ।
एतच्चतुष्टयं नित्य सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ व स

अर्थ : रामजी के नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम ये चारो नित्य सच्चिदानन्द विग्रह है। सो नाम का वर्णन हो चुका। शेप तीनो का वर्णन भी क्रम से होगा।

निज गुण दोप

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहि कृपाँ अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोमो । निजदिसि देखि दयानिधि पोसो ॥२॥

अर्थ जिनकी कृपा, कृपा करने से अघाती नही वे ही सब प्रकार से मेरी बिगडी सुधारगे। राम ऐसे अच्छे मालिक और सेवक मुझसा बुरा सो अपनी ओर देखकर दयानिधान ने पालन किया।

व्याख्या सभी प्रभुओ मे कृपा होती है, सेवक पर कृपा भी करते हैं, पर उनकी एक सीमा होती है, जहाँ पहुँचने पर उनकी कृपा समाप्त हो जाती है। आगे जाना नही चाहती। यथा रावन कुभकरन वर माँगत सिव विरचि वाचा छल्यो। परन्तु कृपानिधि की अपूर्व कृपा तो बिगडी हुई बात को बनाती है। यथा 'बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। बिगरो जन्म अनेक की सुधरै अबही आज। अघाती नही, कृपा करती ही चली जाती है। इसलिए अपूर्व कहा। भाव यह कि 'भनिति मोरि सबगुनरहित' है उसे कृपानिधि सुधार देंगे।

श्रीरामजी बडे शीलनिधान है, इसलिए 'सुस्वामि' कहा। यथा तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान और ग्रन्थकार कहते है कि मैं शठ सेवक हूँ। शठ सेवक किसी प्रकार पोषण योग्य नही है क्योकि वह मालिक को सदा शूल की भाँति कष्टदायक है। यथा सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया। यथा तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा।

लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पडित मूढ मलीन उजागर ॥३॥

अर्थ लोक और वेद म अच्छे स्वामी की यही रीति है कि विनय सुनते ही प्रीति को पहिचान लेते हैं। धनी और निर्धन, गँवार और नगर निवासी, पण्डित और मूढ मलीन और उज्ज्वल उजागर।

व्याख्या ऊपर सुस्वामी कह आये। अब उनकी रीति कहते है कि विनय सुनते ही प्रीति की पहिचान कर लेते हैं। यथा प्रीति पहिचान, यह रीति दरबार की। सुस्वामी का यह लक्षण लोक और वेद मे प्रसिद्ध है अर्थात् सर्वसम्मत है। विनय करनेवाला की पाँच जोडी है। १ अमीर गरीब २ गँवार-चतुर ३ पण्डित-मूढ ४ मलीन और निर्मल

सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस असभव परम कृपाला ॥४॥

अर्थ सुकवि और कुकवि, सब स्त्री पुरुष अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की प्रशसा करते हैं। राजा, साधु सुजान, सुशील, ईश्वर के अश से उत्पन्न और परम कृपालु होता है।

व्याख्या चार जोडी पहिले कह आये तथा ५ सुकवि और कुकवि, इन पाँचो जोडियो मे स्त्री और पुरुष दोनो का ग्रहण है। इधर राजा म भी पाँच गुण होते हैं १ साधु २ सुजान ३ सुशील ४ ईश-अशभव और ५ परम कृपाल। यदि राजा म ये गुण न हो तो समझना चाहिए कि वह ईश-अशभव नही है असुर अश से है।

सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि सिरोमनि कोसलराऊ ॥५॥

अर्थ प्रशमा सुनकर राजा, सुवाणी, भनिति, भक्ति, नति और गति को पहिचानकर सबका सम्मान करता है। यह तो साधारण राजाओं का स्वभाव है। कोसल के राजा तो जानकारों के शिरोमणि हैं।

व्याख्या विनय के गुणों के भी पाच भेद हैं १ सुवाणी २ भनिति ३ भगति ४ नति और ५ गति। राजा अपने पाँचो गुणों को काम मे लाकर पाँचो प्रकार के प्रशसकों के विनयो मे पाँचो गुणो पर क्रमश विचार करता हुआ यथोचित सबका सम्मान करता है। राजा साधु है। अमीर गरीब की अमीरी गरीबी नही देखता उनकी सुवाणी[1] देखता है। राजा सुजान है, गँवार चतुर के गँवारपन और चतुरता पर ध्यान न करके, उनकी भणिति उक्ति परखता है। राजा सुशील है। पण्डित मूढ की पण्डिताई और मूढतापर नही जाता। उनकी भक्ति लखता है। राजा ईश अशभव है। मलीन उजागर के स्थूल मालिन्य के तारतम्य पर विचार नही करता। उनकी नति देखता है। राजा परम कृपाल है। सुकवि कुकवि सबकी कविता सुनता है। पर उनकी गति देखता है कि इसकी पहुँच कहाँ तक है।

---

१ १ मधुर कोमल और मनोहर वाणी को सुवाणी कहते हैं। यथा मृगविलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी। सुवाणी का आदर करता है। यथा ऐसी बानी बोलिय मन का आपा खोय। औरन को शीतल करै, आपौ सीतल होय। चाहे उसे धनी ने कहा हो चाहे कगाल ने। २ ग्राम नर की भणिति ग्राम्य भाषा मे होती है और नागर की भणिति सुसस्कृत होती है, पर राजा सुजान है, वह भाषा की परीक्षा नही करता, वह देखता है कि लोकहितैषिता किस भणिति मे है। यथा कीरति भनिति भूत भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित सोई। ३ पण्डित जो कहना चाहता है, उसे बडी पण्डिताई से सामने रखता है। मूढ के कहने मे बनी बात बिगड जाती है। पर राजा सुशील है दोनो की सुनता है और देखता है कि भक्ति किसमे है। ४ मलिन पुरुष की उपस्थिति अस्पृहणीय होती है। उज्ज्वल पुरुष की उपस्थिति सभी चाहते हैं। पर राजा ईश-अश-भव है, वह उसकी नति नम्रता का आदर करता है। ५ सुकवि की रचना परम मनोहर होती है। कुकवि की रचना आकर्षक नही होती। पर राजा परम कृपालु है, दोनों की सुनता है और देखता है कि किसकी कितनी गति है। जिससे उपमा देत न बन वही सुकवि है। यथा सीयबरनि जो उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई। किसी कवि ने ब्रह्म की उपमा अपनी पुरानी धोती से दे डाली। उसके कुकवि होने म क्या सन्देह है, पर उसकी गति देखिये। वह कहता है 'आदि-मध्यान्तरहित दशाहीन पुरातन। अद्वितीयमह वन्दे मद्धोतसदृश हरिम्। मैं उस हरि की वदना करता हूँ, जो मेरी धोती के से हैं। क्योकि मेरी धोती भी आदि, मध्य, अन्त रहित दशाहीन बिना किनारे की : हरि पक्ष मे जाग्रदादि अवस्थात्रय हीन पुरातन और अद्वितीय है। पर राजा ने उस कवि का आदर किया।

ऐसा स्वभाव सामान्य राजाओ मे भी पाया जाता है। कोसलाधिपति रामजी तो जानि शिरोमणि है। उनकी सारग्राहिता के लिए क्या कहा जाय ?

रीझत राम सनेह निसोते। को जग मद मलिन मति मोते ॥६॥

अर्थ रामजी तो शुद्ध स्नेह से रीझ जाते है, मुझ सा मन्द और मलिन बुद्धि-वाला ससार मे कौन है ?

व्याख्या रामजी जानि शिरोमणि है। वे और कुछ नही देखते वे तो शुद्ध स्नेह पर रीझते है। यहाँ स्नेह शब्द श्लिष्ट है। स्नेह का अर्थ तेल भी है सो तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेम होना चाहिए। मै मन्द और मलिन मतिवालो का सिरताज हूँ। मनुष्य शरीर पाकर भवसन्तरण का उपाय न किया। अवसर चूक गया इसलिए मन्द-मति हूँ। यथा अहह मन्द मन अवसर चूका। और मन मे बोध नही आता। इसलिए मलिनमति हूँ। यथा सदपि मलिन मन बोध न आवा। मुझमे पाँचो का अभाव है।

दो सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८॥ क
हौहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८॥

अर्थ कृपालु रामजी शठ सेवक की प्रीति और रुचि रक्खेंगे, जिन्होने पत्थर को जहाज और बन्दर भालु को बुद्धिमान् मन्त्री बनाया। मै भी कहलाता हूँ और सब लोग कहते है और रामजी उपहास सहते हैं कि सीतानाथजी से स्वामी को तुलसीदास जैसा सेवक मिला है।

व्याख्या ग्रन्थकार की प्रीति 'रघुपति गुणगाथा की रचना' मे है। यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा और रुचि है कि उसका 'साधु समाज मे सम्मान हो।' यथा साधु समाज भनिति सनमानू और ग्रन्थकार अपने को शठ सेवक मानते हैं। शूलरूप शठ सेवक से सभी दूर रहना चाहते हैं, उसकी प्रीति और रुचि कौन रखने लगा ? पर राम कृपालु रक्खेंगे, क्योकि वे ऐसी कृपा करते आये हैं। उन्होने ही पत्थर को जहाज सन्तरण की सामग्री और बन्दर भालु को सुमति सचिव बनाया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी बुद्धि पत्थर सी है। जो स्वय डूबता है और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले को भी डुबाता है। मैं सेवक बनकर रघुनाथ की गुणगाथा करने चला, इससे मेरा उपहास तो होगा ही श्रीरामजी का भी उपहास होगा। मेरी मति कपिभालु सी है। यथा प्रभु तरु तर कपि डार पर। मेरे भणित का सम्मान साधु समाज मे कैसे होगा ? सो रामकृपाल मेरी प्रीति रक्खेंगे। उसे सच्ची भक्ति मे परिणत कर देंगे और रचना को जहाज बना देंगे, जो स्वय तरेगा और अपने आश्रित को भी तारेगा। मेरी रुचि को भी वे ही रक्खेंगे। मेरी रचना का साधुसमाज मे सम्मान होगा। सुमति सचिव की भाँति मेरा मत ग्रहण किया जायगा।

मैने कपट से ऐसा वेष बना रक्खा है। कण्ठी, छापा तिलक लगा रक्खा है कि मुझे लोग रामसेवक कहने लगें। मुझे ऐसा कहलाना प्रिय है, पर सेवक स्वामी के

स्वरूपानुकूल होता है। यथा सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। सो मेरे जैसे के सेवक कहे जाने से स्वामी रामजी का उपहास है। रामजी उपहास सह लते हैं मुझ पर अप्रसन्न नही होते।

अति बडि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सँकोरी॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहि सपने॥१॥

अर्थ यह मेरी बहुत बडी ढिठाई और दोष है इस पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोडा। यह समझकर मैं कल्पित डर से सहम गया था पर रामजी ने इसका स्वप्न म भी ख्याल नही किया।

व्याख्या १ प्रभु की स्वीकृति विना मैं अपने मन से सेवक बन बैठा। यह ढिठाई की परा सीमा है और २ इससे रामजी का उपहास होता है। यह बडा भारी दोष अर्थात् रामापराध है। दानो ही बडे भारी पाप हैं जिनको सुनकर नरक ने नाक सिकोडा कि क्या ऐसे पापी को भी मुझ स्थान देना होगा? श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि मैं तो ऐसा समझकर अपने कल्पित भय से डर गया। यथा अपडर डरचा न सोच समूल पर रामजी ने मेरी प्रीति रक्खी, उन महापापो का भी ख्याल नही किया।

सुनि अवलोकि सुचित चख[1] चाही। भगति भोरि मति स्वामि सराही॥
कहत नसाइ होइ हिअ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की॥२॥

अर्थ सुनकर और सुचित की आँखो से देखकर मेरी भक्ति से भोरीमति की स्वामी ने प्रशसा की। जो कहने म विगड जाय पर हृदय से अच्छी हा तो रामजी जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं।

व्याख्या सुना कि तुलसीदास सेवक बना फिरता है। समझा भी कि इसके सेवक बनने से मेरी हँसी होती है फिर भी प्रभु ने मेरी रुचि रक्खी। कहा कि भक्ति से उसकी बुद्धि भोरी हो गई है। विना स्वीकृति के ही भक्त बना फिरता है। मेरी भक्ति की सराहना करने से मेरी भक्ति भी सच्ची हो गई। अब साधु समाज म भणित का सम्मान भी होगा। 'होइहि अतिनीकी' पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि जो कहते न बने वह भी अत्यन्त अच्छी हो जायगी। क्योकि रामजी तो जन के जी की बात जानकर रीझ जाते हैं। यथा को जिय की रघुवर विन बूझै।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरे जी म है कि रघुपति गुनगान करूँ।' यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा इतने पर ही रामजी रीझेंगे। मुझसे कहते नही बनेगा। इस बात पर ध्यान न देंगे। क्योकि उनका ऐसा स्वभाव है कि जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं। मने शठता की। अयोग्य होकर रामदास बनना चाहा सो सरकार म चूक का लगा न होगा। मेरी सच्ची लगन देखी जायगी।

रहति न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सय वार हियेकी॥
जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली। फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली॥३॥

---

१ चाही = स।

ऐसा स्वभाव सामान्य राजाओ मे भी पाया जाता है। कोसलाधिपति रामजी तो जानि शिरोमणि है। उनकी सारग्राहिता के लिए क्या कहा जाय ?

रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते ॥६॥

अर्थ रामजी तो शुद्ध स्नेह से रीझ जाते है, मुझ सा मन्द और मलिन बुद्धिवाला ससार मे कौन है ?

व्याख्या रामजी जानि शिरोमणि है। वे और कुछ नही देखते वे तो शुद्ध स्नेह पर रीझते हैं। यहाँ स्नेह शब्द श्लिष्ट है। स्नेह का अर्थ तेल भी है सो तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेम होना चाहिए। मै मन्द और मलिन मतिवालो का सिरताज हूँ। मनुष्य शरीर पाकर भवसन्तरण का उपाय न किया। अवसर चूक गया इसलिए मन्दमति हूँ। यथा अहह मन्द मन अवसर चूका। और मन मे बोध नही आता। इसलिए मलिनमति हूँ। यथा तदपि मलिन मन बोध न आवा। मुझमे पाँचो का अभाव है।

दो सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८॥ क
हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८॥

अर्थ कृपालु रामजी शठ सेवक की प्रीति और रुचि रखेंगे, जिन्होने पत्थर को जहाज और बन्दर भालु को बुद्धिमान् मन्त्री बनाया। मै भी कहलाता हूँ और सब लोग कहते है और रामजी उपहास सहते हैं कि सीतानाथजी से स्वामी को तुलसीदास जैसा सेवक मिला है।

व्याख्या ग्रन्थकार की प्रीति 'रघुपति गुणगाथा की रचना' मे है। यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा और रुचि है कि उसका 'साधु समाज मे सम्मान हो।' यथा साधु समाज भनिति सनमानू और ग्रन्थकार अपने को शठ सेवक मानते हैं। शूलरूप शठ सेवक से सभी दूर रहना चाहते हैं, उसकी प्रीति और रुचि कौन रखने लगा ? पर राम कृपालु रक्खेंगे, क्योकि वे ऐसी कृपा करते आये है। उन्होने ही पत्थर को जहाज़ सन्तरण की सामग्री और बन्दर भालु को सुमति सचिव बनाया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी बुद्धि पत्थर सी है। जो स्वय डूबता है और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले को भी डुबाता है। मैं सेवक बनकर रघुनाथ की गुणगाथा करने चला, इससे मेरा उपहास तो होगा ही श्रीरामजी का भी उपहास होगा। मेरी मति कपिभालु सी है। यथा प्रभु तरु तर कपि डार पर। मेरे भणित का सम्मान साधु समाज मे कैसे होगा ? सो रामकृपाल मेरी प्रीति रक्खेगे। उसे सच्ची भक्ति मे परिणत कर देंगे और रचना को जहाज बना देंगे, जो स्वय तरेगा और अपने आश्रित को भी तारेगा। मेरी रुचि को भी वे ही रक्खेंगे। मेरी रचना का साधुसमाज मे सम्मान होगा। सुमति सचिव की भाँति मेरा मत ग्रहण किया जायगा।

मैंने कपट से ऐसा वेष बना रक्खा है। कण्ठी, छापा तिलक लगा रक्खा है कि मुझे लोग रामसेवक कहने लगें। मुझे ऐसा कहलाना प्रिय है, पर सेवक स्वामी के

स्वरूपानुकूल होता है। यथा सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। सो मेरे जैसे के सेवक कहे जाने से स्वामी रामजी का उपहास है। रामजी उपहास सह लते हैं मुझ पर अप्रसन्न नही होते।

अति वडि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सँकोरी ॥
समुझि सहम मोहिं अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने ॥१॥

अर्थ यह मेरी बहुत बडी ढिठाई और दोष है इस पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोडा। यह समझकर मैं कल्पित डर से सहम गया था पर रामजी ने इसका स्वप्न म भी ख्याल नही किया।

व्याख्या १ प्रभु की स्वीकृति विना मै अपने मन से सेवक वन बैठा। यह ढिठाई की परा सीमा है और २ इससे रामजी का उपहास होता है। यह बडा भारी दोष अर्थात् रामापराध है। दोनो ही वडे भारी पाप है जिनको सुनकर नरक ने नाक सिकोडा कि क्या ऐसे पापी को भी मुझे स्थान देना होगा ? श्रीग्रन्थकार कहते है कि मैं तो ऐसा समझकर अपने कल्पित भय से डर गया। यथा अपडर डरयो न सोच समूल पर रामजी ने मेरी प्रीति रक्खी, उन महापापो का भी ख्याल नही किया।

सुनि अवलोकि सुचित चख[१] चाही। भगति भोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हिअ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ सुनकर और सुचित की आँखो से देखकर मेरी भक्ति से भोरीमति की स्वामी ने प्रशसा की। जो कहने म बिगड जाय पर हृदय से अच्छी हो तो रामजी जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं।

व्याख्या सुना कि तुलसीदास सेवक वना फिरता है। समझा भी कि इसके सेवक बनने से मेरी हँसी होती है फिर भी प्रभु ने मेरी रुचि रक्खी। कहा कि भक्ति से उसकी बुद्धि भोरी हो गई है। विना स्वीकृति के ही भक्त वना फिरता है। मेरी भक्ति की सराहना करने से मेरी भक्ति भी सच्ची हो गई। अब साधु समाज म भणित का सम्मान भी होगा। 'होइहि अतिनीकी पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि जो कहते न बने वह भी अत्यन्त अच्छी हो जायगी। क्योकि रामजी तो जन के जी की बात जानकर रीझ जाते हैं। यथा को जिय की रघुवर विन बूझे।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरे जी म है कि 'रघुपति गुनगान करूँ।' यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा इतने पर ही रामजी रीझेगे। मुझसे कहते नही बनेगा। इस बात पर ध्यान न दगे। क्योकि उनका ऐसा स्वभाव है कि जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं। मैंने शठता की। अयोग्य होकर रामदास बनना चाहा सो सरकार म चूक का ख्याल न होगा। मेरी सच्ची लगन देखी जायगी।

रहति न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सय वार हियेकी ॥
जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली। फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥३॥

---

१ चाही = से।

अर्थ श्रीरामजी के चित्त मे चूक किये की स्मृति नही रहती। हृदय की स्मृति सौ वार करते हैं। जिस पाप से वालि को व्याध की भाँति मारा वही कुचालि फिर सुग्रीव से हो पडी।

व्याख्या . जो पाप वालि से हुआ वही सुग्रीव से हुआ। अनुज अग्रज के भेद से पाप मे भेद नही। अनुज वधू कन्या सम है, तो अग्रज वधू माता सम है। 'अनुज वधू भगिनी सुत नारी' मे जो 'अनुज' शब्द का प्रयोग है सो प्रसङ्गानुकूल होने के कारण से है। यथा वन्धु वधू रत यहि कियो वचन निरुत्तर वालि। तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि। जानवूझकर कि ऐसे कुचाल का प्रभु ऐसा दण्ड देते हैं। स्त्रीचरित्र मे फँस गये। वालि की भाँति हृदय दूषित नही था, जिसने कि दण्ड रूप मे सर्वस्व और स्त्री भी हरण की और सुग्रीव के वध के लिए सदा सचेष्ट रहता था।

सोइ करतूति विभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेटत सनमाने। राजसभाँ रघुवीर वखाने॥४॥

अर्थ वही करतूति विभीषण की है। पर इसे रामजी ने स्वप्न मे भी हृदय से नही देखा . मन मे नही लाये। भरतजी से मिलने के समय रामजी ने उनका सम्मान किया और सभा मे उनका वखान किया।

व्याख्या विभीषण भी इसी भाँति मायाजाल मे जा पडे। मन्दोदरी परम सुन्दरी नारि ललामा थी, सो उसकी माया मे आ जाना चूक है। हृदय मे अभिलाषा न थी कि लङ्का और मन्दोदरी प्राप्त करें। रामजी ने इसका ख्याल ही नही किया। क्योकि उनकी कृपा अघाती कृपा नही है।

इतना ही नही, भरत ऐसे भाई से मिलने के समय, सुग्रीव और विभीषण का सम्मान किया। यथा राम सराहे उठि, भरत मिले राम समजानि : और राजसभा मे सप्तद्वीप के राजा प्रजा, श्रीवशिष्ठजी तथा सुमन्त आदि के सम्मुख, उनका वखान किया।

दो. प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिव सील निधान॥२९॥ क
राम निकाई रावरी, है सवही को नीक।
जौ यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥२९॥ ख
एहि विधि निजगुन दोष कहि, सवहि वहुरि सिरनाइ।
वरनउँ रघुवर विसद जसु, सुनि कलि कलुष नसाइ॥२९॥

अर्थ : प्रभु तो वृक्ष के नीचे और वन्दर डारपर, उन्हे अपने समान वना लिया। तुलसीदासजी कहते है कि राम के समान शीलनिधान स्वामी कही नही है। हे रामजी! आपकी भलाई सवको भली है। यदि यह वात सदा सत्य है तो तुलसीदास को भी भली है। इस प्रकार अपना गुण और दोष कहकर और

सबको सिर नवाकर रघुवर का निर्मल यश वर्णन करता हूँ। जिसके सुनने से कलि-मल नष्ट हो जाते है।

व्याख्या : सुग्रीव और विभीषण प्रसिद्ध थे अतः इनका नाम लेकर कहा, नहीं तो अपराध वहुतों से वन पड़ा, किसका किसका नाम लिया जाय। प्रभु पेड़ तले बैठे, बन्दर पूँछ लटकाकर प्रभु के ऊपरवाली डाली पर जाकर बैठे। अमर्याद की सीमा हो गई। रामापराध भी वन पड़ा। पर यह उनकी चूक थी। उन्होंने अपनी समझ में न ढिठाई की न अपराध किया। उन्हें अपने समान बनाया। यथा : मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी, पर प्रीति जे गाइहैं। ससार सिंधु अपार पार, प्रयास बिनु नर पाइहैं।

यहाँ स्वरूप वर्णन[१] प्रकरण समाप्त होता है।

रामजी किसी के विरोधी नहीं हैं। यथा : अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। रामजी को सब प्रिय है। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान। राम ही भले हैं। यथा : जग अनभल भल एक गोसाँई। कहहु होइ भल कासु भलाई। उनकी भलाई सबके लिए भली है। अतः तुलसी के लिए भी भली है। विनय में कहा है :

राम भलाई आपनी भल कियो न काको।
जुग जुग जानकीनाथ को जग जागत साको ॥१॥
ब्रह्मादिक बिनती करी, कहि दुख बसुधा को।
रविकुल कैरव चन्द्रभो, आनन्द सुधा को ॥२॥
कौसिक गरत तुषार ज्यों, लखि तेज तिया को।
प्रभु अनुदिन हित को दियो, फल कोप कृपा को ॥३॥
हरयो पाप आप जाइके, संताप सिला को।
सोच मगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को ॥४॥
रोष रासि भृगुपति धनी, अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करिलियो, उपशम समता को ॥५॥
मुदित मानि आयसु चले, वन मातु पिता को।
धरम धुरंधर धीर धुर, गुनसील जिता को ॥६॥
गुह गरीब गत ज्ञातिहू, जेहि जिउ न भखा को।
पायो पावन प्रेम ते, सनमान सखा को ॥७॥
सद्गति सबरी, गीध को, सादर करता को।
सोच सीव सुग्रीव के, संकट हरता को ॥८॥
राखि बिभीषन को सकै अस काल गहा को।
आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को ॥९॥

---

१. पहिले नव दोहों मे नाम वर्णन किया। फिर दो दोहों में स्वरूप वर्णन किया। इसके बाद क्रम से लीला और धाम वर्णन करेंगे।

वालिस वासी अवध को, बूझिये न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥१०॥
गति न लहै रामनाम सों, विधिसो सिरिजा को।
सुमिरत कहत प्रचारि कै, वल्लभ गिरिजा को ॥११॥
अकनि अजामिल की कथा, सानद न भाको।
नाम लेत कलि कालहू, हरि पुरहिं न गा को ॥१२॥
रामनाम महिमा करै काम भूरुह आको।
साखी वेद पुरान है, 'तुलसी तन ताको' ॥ २ : वि. प. १५२

इस विधि से अपना गुण दोष कहा। यह कवि की आर्ति है। सबको फिर से प्रणाम किया। यह दीनता और विनय है। इस भाँति तीसरी बार जल का हलकापन कहा : समष्टि और कवि समाज से पहिले कह आये है : आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न खोरी। भाव यह है कि हलकापन की सराहना जलके आचमन के बाद की बात है। इस भाँति मानससर मे अवगाहन के पहिले, तीन बार आचमन करने की बात कही।

'काल सदा दुरति क्रम भारी' सो उसका मल भी रघुवर यश के सुनने से नष्ट हो जाता है। अब समष्टि को फिर से प्रणाम करके श्रीग्रन्थकार रघुवर-विशद-यश वर्णन करते है।

कथापरिचय

जागवलिक[1] जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई ॥
कहिहौ सोइ संवाद वखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी ॥१॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥
सोइ सिव कागभुसुडिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा ॥२॥

अर्थ : याज्ञवल्क्य ने जो सुहावनी कथा मुनिवर भरद्वाज जी को सुनाई थी उसी सवाद को मैं बखानकर कहूँगा। सब सज्जन सुखपूर्वक सुनो। १. यह सुहावना चरित शिवजी ने रचा और फिर कृपा करके उमा को सुनाया। उसी को शिवजी ने रामभक्ति का अधिकारी पहिचानकर, कागभुसुण्डि को दिया।

व्याख्या : चारो घाटो के वक्ताओ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि योगी याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज जी को कथा सुनाई। योगी याज्ञवल्क्य से ही यजुर्वेद की कृष्ण और शुक्ल शाखाएँ चली। इनका आख्यान वेदो मे पाया जाता है। इन्ही की स्मृति उत्तर भारत में मान्य है। इन्होने राम वनवास के पहिले ही श्रीरामचरित अपने शिष्य जनकजी को सुना रक्खा था। यथा : यह सब जागवलिक कहि राखा। देवि न मृषा होइ मुनिभाखा। भारद्वाज जी भी वैदिक ऋषि हैं। सप्तर्षियों मे एक हैं। इन्होने वेदप्राण प्रणव को इन्द्र से प्राप्त किया था। वक्ता भी ऐसे महान् और श्रोता भी ऐसे

1. दाढादयो बहुलम् : प्रा. प्र · इस सूत्र से याज्ञवल्क्य का जागवलिक रूप हुआ।

महान्। इन्ही दोनो महात्माओ का सवाद तापनीय श्रुतियों[1] मे है। वही रामकथा

---

१ श्रीरामपूर्वतापिन्या चतुर्थोपनिषदि वेदोक्तरामचरितम्। अत्र रामोऽन्तरूपरते गसावह्निनासम।
सत्वनुष्णगुविश्वग्देग्नीषोमात्मक जगत्। उत्पन्न सीतया भाति चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा॥
प्रकृत्या सहित श्याम पीतवासा जटाधर। द्विभुज कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धर॥
प्रसन्नवदनो जेता धृत्यष्टकविभूषित। प्रकृत्या परमेश्वर्या जगद्योन्याऽङ्कितान्ङ्कभृत्॥
हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कृतया चिता। श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोसलजात्मज॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुन। हेमाभेनाऽनुजेनैव तदा कोणत्रय भवेत्॥
तथैव तस्य मन्त्रस्य दोषोऽणुश्चस्वङेन्तया। एव त्रिकोणरूप स्यात् त देवा ये समाययु॥
स्तुतिं चक्रुश्च जगत पतिं कल्पतरौ स्थितम्। कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च॥
नमो वेदादिरूपाय ॐकाराय नमोनम। रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये॥
जानकी देहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने। भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे॥
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षा देहि श्रिय च ते॥
त्वमैश्वर्यं कुर्वन्ति सम्प्रत्यास्वरिमारणम्। कुर्वितिरतुतस्देवायारतेन सार्धं सुख स्थिता॥
स्तुवन्त्येव हि ऋषयस्तदा रावण क्षासुर। रामपत्नी वनस्था य स्वनिवृत्त्यर्थमाददे॥
स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावण। तद्व्याजेनेक्षितु सीता रामो लक्ष्मण एव च॥
विचेरतुस्तदा भूमौ देवी सदृश्य चासुरम्। हत्वा कबन्ध शबरी गत्वा तस्याज्ञया तथा॥
पूजिता वीरपुत्रेण भक्तेन च कपीश्वरम्। आहूय शसता सर्वमाद्यन्त रामलक्ष्मणौ॥
स तु रामे शङ्कित सन् प्रत्ययार्थं च दुन्दुभे। विग्रह दर्शयामास यो रामस्तमचिक्षिपत्॥
सप्ततालान् विभिद्याशु मोदते राघवस्तदा। तेन हृष्ट कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम्॥
जगामाऽगर्जदनुजो वालिनो वेगतो गृहात्। वाली तदा निर्जगाम त वालिनमयाहवे॥
निहत्य राघवा राज्ये सुग्रीव स्थापयेत् तत। हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाशाविदोऽधुना॥
आदाय मैथिलीमद्य ददताश्वाशु गच्छत। ततस्ततार हनुमानब्धि लङ्का समाययौ॥
सीतादृष्ट्वाऽसुरान् हत्वा पुर दग्ध्वा तथा स्वयम्। स्वयमागत्य रामाय न्यवेदयत तत्त्वत॥
तदाराम क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान्। तैं सार्धमादायास्त्राश्च पुरी लङ्का समाययौ॥
ता दृष्ट्वा तदधीशेन सार्धं युद्धमकारयत्। घटश्रोत्रसहस्राक्षजिद्भ्या युक्त तमाहवे॥
हत्वा बिभीषण तत्र स्थाप्याथ जनकात्मजाम्। आदायाङ्कस्थिता कृत्वा स्वपुर तैर्जगाम ह॥
तत सिंहासनस्थ सन् द्विभुजो रघुनन्दन। धनुर्धर प्रसन्नात्मा सर्वाभरणभूषित॥
मुद्रा ज्ञानमयी याम्ये वामे तेज प्रकाशनम्। धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मय परमेश्वर.॥
उदग्दक्षिणयो स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृत। हनुमन्त च श्रोतारमग्रत स्यात्त्रिकोणगम्॥
भरताधस्तु सुग्रीव शत्रुघ्नाधो विभीषणम्। पश्चिमे लक्ष्मण धृत्वा धृतच्छत्र सचामरम्॥
तदधस्तौ तालवृन्तकरौ त्र्यस्र पुनर्भवेत्। एव षट्कोणमादौ स्वदीर्घाङ्गै रेफसयुत॥
द्वितीय वासुदेवाद्यैराग्नेयादिषु सयुतम्। तृतीय वायुसूनु च सुग्रीव भरत तथा॥
बिभीषण लक्ष्मण च अङ्गद चारिमर्दनम्। जाम्बवन्त च तैर्युक्तस्ततो धृष्टिर्जयन्तक॥
विजयश्च सुराष्ट्रश्च राष्ट्रवर्धन एव च। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रस्तैरभिरावृत॥
तत सहस्रदृग्वह्नि धर्मरक्षोवरुणानिला। इन्द्रीशधात्रनन्ताश्च दशभिस्तैरभिरावृत॥
बहिस्तदायुधै पूज्यो नीलादिभिरलङ्कृत। वशिष्ठवामदेवादिमुनिभि समुपासित॥

अति सक्षेप मे वर्णित है। ग्रन्थकार अपने श्रोता सज्जन वृन्द से कह रहे हैं कि उ
सवाद को मैं बखानकर कहूँगा। आप लोग सुख मानकर सुनो। यथा : राम भग
भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी। रचि महेस निज मानस राखा
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा। आर्त अधिकारी को सुनाया। इसलिए 'कृपाक
कहते हैं। उसी को शिवजी ने कागभुसुण्डि को दिया, सुनाया नहीं। सुनाया लोम

अर्थ इस जडात्मक प्रपञ्च मे अनन्त रूप राम तेज से अग्नि रूप हैं। वही विश्व
शीतरश्मिरूप है। सीता के साथ चाँदनी से युक्त चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हैं। उन्हीं से य
अग्निसोमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रकृति के सहित, श्यामवर्ण, पीतवस्त्र धारण कि
हुए, जटा रखे हुए, द्विभुज कुण्डल पहिने, रत्नो की माला धारण किये, धीर, धनुर्ध
प्रसन्न वदन, जेता, धृति आदि आठ मन्त्रियो से युक्त, परमेश्वरी जगद्योनि प्रकृति स
आभूषणो को धारण किये, दो भुजावली हाथ मे कमल लिये हुए, जिसके वामाङ्ग मे वर्तमा
हैं। इसी भाँति पुष्ट कोसल्यानन्द वर्धन विराजते हैं। उनके दक्षिण ओर हेमवर्ण, धनुष हा
मे लिये छोटे भाई लक्ष्मण विराजमान हैं। इस भाँति त्रिकोण होता हैं। इसी भाँति उनर
मन्त्र है जो लक्ष्मण सम्बन्धी मन्त्र बीज और नाम मे चतुर्थी एक वचन की विभक्ति लगाने
बनता है। इस भाँति त्रिकोण रूप होता है। उस त्रिकोण के अधिष्ठाता भगवान् के पास इन्द्रा
दिक देवता गये। कल्पवृक्ष के नीचे स्थित भगवान् जगत्पति की स्तुति की। अपनी इच्छ
से रूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे राम, हे माया के नाश करनेवाले
आपको नमस्कार है! हे वेदादिरूप! हे ॐ कार! आपको नमस्कार है। हे रमा के धारण
करनेवाले राम! हे सीतारमण! हे आत्ममूर्ति! हे सीता रूप अलङ्कार के धारण करने
वाले! राक्षसो को नाश करनेवाले, शुभ अङ्गवाले, हे मङ्गलरूप, हे रघुवीर, हे दशवक्त्र
के अन्तकरूप, हे रामभद्र, हे महा धनुर्धर, हे रघुवीर, हे नृपोत्तम, हे रावणान्तक
हमलोगो की रक्षा करो और ऐश्वर्य दो। ईश्वरी द्वारा रक्षा और श्री दिलाओ। इस
समय शीघ्र शत्रु का वध करो। देवादिको ने ऐसी स्तुति की और परमेश्वर के साथ ही सुख
से स्थित हुए। वशिष्ठादिक ऋषियो ने इसी भाँति स्तुति की। तब असुर रावण वन मे स्थित
रामपत्नी को अपनी निवृत्ति के लिए हरण कर ले गया। इसी से उसका नाम रावण
हुआ या ससार को रुलाता था इसलिए रावण कहलाया। उसी व्याज से सीता को खोजते
हुए राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर विचरने लगे। कवन्धासुर को देखा और वध किया।
शवरी के पास गये और उसके कहने से जाकर भक्त हनुमान्जी से पूजित हुए। सुग्रीव को
बुलाकर उन्हे सब वृत्तान्त सुनाया। वह रामजी के विषय मे शङ्कित हुआ और उसने
अपने विश्वास के लिए दुन्दुभी की अस्थि दिखलाई। जिसे रामजी ने फेंक दिया और
सात तालो का भेदन करके राघव प्रसन्न हुए। इससे सुग्रीव भी प्रसन्न हुए और रामजी के
साथ किष्किन्धापुरी गय। सुग्रीव ने गर्जन किया तब बाली वेग से घर के बाहर निकला।
उस बाली को राघव ने सग्राम मे मारा और सुग्रीव को राजा बनाया। दिशाओ के
जाननेवाले वानरो को बुलाकर सुग्रीव ने कहा जल्दी जल्दी तुमलोग मैथिली को खोज
लाओ। तब हनुमान् समुद्र पार करके लङ्का गये। सीता को देखकर, राक्षसो को मारकर
लङ्का जलाई। और स्वय आकर रामजी को सब वृत्तान्त सुनाया। तब रामचद्र ने क्रुद्ध

ऋषि ने। यथा : मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा। शङ्कर भगवान् की प्रेरणा से लोमश ऋषि ने सुनाया। इसीलिए शिवजी का 'देना' कहते हैं। यथा : रामचरित सर गुप्त सोहावा। सभु प्रसाद तात मैं पावा। शम्भु ने जो ऐसी कृपा भुसुण्डिजी पर की। उसका कारण कहते हैं कि उसे रामभक्ति का अधिकारी चीह्ना, इससे उसे दिया।

तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता वक्ता सम सीला। सब दरसी जानहिं हरिलीला॥३॥

अर्थ . उससे याज्ञवल्क्य ने पाया और फिर उन्होंने भरद्वाजजी से कहा। वे श्रोता और वक्ता समान स्वभाववाले थे, सर्वदर्शी थे और हरि की लीला को जानते थे।

व्याख्या : यहाँ पर यह स्पष्ट नहीं होता कि याज्ञवल्क्यजी ने शिवजी से सुना या भुसुण्डिजी से सुना। परन्तु 'पावा' शब्द से तो यही झलकता है कि देनेवाले नि सन्देह शिवजी है पर उन्होंने उसी भाँति दिया जिस भाँति भुसुण्डिजी को दिया था। अर्थात् . भुसुण्डिजी के गुरु . महर्षि लोमश द्वारा भुसुण्डिजी को दिया और याज्ञवल्क्यजी को उनके गुरु द्वारा दिया। सुनावा, दिया और पावा इन क्रियाओं पर ध्यान देने से तो यही अर्थ निकलता है। ये तीनो वक्ता और श्रोता समान कक्षा के थे। सर्वदर्शी थे। हरिलीला के साक्षात्कार करनेवाले थे। जगत् के कल्याणार्थ श्रोता, वक्ता बने थे।

जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतलगत आमलक समाना॥
औरो जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना॥४॥

होकर उन वानरो को अपने पास बुलाया और उनके साथ अस्त्रों को लेकर लङ्का गये। उसे देखकर उसके स्वामी के साथ युद्ध किया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ उसे लडाई मे मारा। वहाँ का राजा विभीषण को बनाया। सीताजी को गोद मे लेकर उनके साथ अयोध्या गये। तब द्विभुज रघुनन्दन सिंहासन पर बैठे। द्विभुज रघुनन्दन धनुष धारण किये हुए, सब अलङ्कारो को धारण किये हुए, प्रसन्न वदन दक्षिण हाथ मे ज्ञानमयी मुद्रा धारण किये हुए और बाएँ हाथ से वामजानु मण्डल को दबाए हुए, चिन्मय परमेश्वर व्याख्यान मे निरत हुए। बाएँ और दक्षिण ओर शत्रुघ्न और भरत स्थित हुए। श्रोता रूप से हनुमान् भी सन्मुख स्थित हुए। इस भाँति फिर त्रिकोण हुआ। भरत के नीचे सुग्रीव और शत्रुघ्न के नीचे विभीषण तालवृन्त धारण किये हुए और पीछे लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किये हुए स्थित हुए। इस भाँति दो त्रिकोणो के मिलने से षट्कोण हुआ। इस भाँति स्वकीय बीज, दीर्घ अक्षरो से युक्त हृदयादिको से श्रीरामजी का पूजन होना चाहिए। दूसरा आवरण वासुदेव आदि है। तीसरे आवरण मे हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न, जाम्बवान् है। इसके बाद विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अशोक, धर्मपाल, और सुमन्त्र का आवरण है। इसके बाद इन्द्र, अग्नि, धर्म, निऋति, वायु, चन्द्र, धाता और शेष का आवरण है।

अति सक्षेप मे वर्णित है। ग्रन्थकार अपने श्रोता सज्जन वृन्द से कह रहे है कि उसी सवाद को मैं बखानकर कहूँगा। आप लोग सुख मानकर सुनो। यथा 'राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी। रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। आर्त अधिकारी को सुनाया। इसलिए 'कृपाकरि' कहते हैं। उसी को शिवजी ने कागभुसुण्डि को दिया, सुनाया नही। सुनाया लोमश

अर्थ इस जडात्मक प्रपञ्च मे अनन्त रूप राम तेज से अग्नि रूप हैं। वही विश्वरूप शीतरश्मिरूप है। सीता के साथ चाँदनी से युक्त चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हैं। उन्ही से यह अग्निसोमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रकृति के सहित, श्यामवर्ण, पीतवस्त्र धारण किये हुए, जटा रखये हुए, द्विभुज कुण्डल पहिने, रत्नो की माला धारण किये, धीर, धनुर्धर, प्रसन्न वदन, जेता, धृति आदि आठ मन्त्रियो से युक्त, परमेश्वरी जगद्योनि प्रकृति सब आभूषणो को धारण किये, दो भुजावली हाथ मे कमल लिये हुए, जिसके वामाङ्ग मे वर्तमान हैं। इसी भाँति पुष्ट कौसल्यानन्द वर्धन विराजते हैं। उनके दक्षिण ओर हेमवर्ण, धनुष हाथ मे लिये छोटे भाई लक्ष्मण विराजमान हैं। इस भाँति त्रिकोण होता है। इसी भाँति उनका मन्त्र है जो लक्ष्मण सम्बन्धी मन्त्र बीज और नाम मे चतुर्थी एक वचन की विभक्ति लगाने से बनता है। इस भाँति त्रिकोण रूप होता है। उस त्रिकोण के अधिष्ठाता भगवान् के पास इन्द्रादिक देवता गये। कल्पवृक्ष के नीचे स्थित भगवान् जगत्पति की स्तुति की। अपनी इच्छा से रूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे राम, हे माया के नाश करनेवाले! आपको नमस्कार है! हे वेदादिरूप! हे ॐकार! आपको नमस्कार है। हे रमा के धारण करनेवाले राम! हे सीतारमण! हे आत्ममूर्ति! हे सीता रूप अलङ्कार के धारण करने वाले! राक्षसो को नाश करनेवाले, शुभ अङ्गवाले, हे मङ्गलरूप, हे रघुवीर, हे दशकण्ठ के अन्तकरूप, हे रामभद्र, हे महा धनुर्धर, हे रघुवीर, हे नृपोत्तम, हे रावणान्तक, हमलोगो की रक्षा करो और ऐश्वर्य दो। ईश्वरी द्वारा रक्षा और श्री दिलाओ। इस समय शीघ्र शत्रु का वध करो। देवादिको ने ऐसी स्तुति की और परमेश्वर के साथ ही सुख से स्थित हुए। वशिष्ठादिक ऋषियो ने इसी भाँति स्तुति की। तब असुर रावण वन मे स्थित रामपत्नी को अपनी निवृत्ति के लिए हरण कर ले गया। इसी से उसका नाम रावण हुआ या ससार को रुलाता था इसलिए रावण कहलाया। उसी व्याज से सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर विचरने लगे। कबन्धासुर को देखा और वध किया। शबरी के पास गये और उसके कहने से जाकर भक्त हनुमान्‌जी से पूजित हुए। सुग्रीव को बुलाकर उन्हे सब वृत्तान्त सुनाया। वह रामजी के विषय मे शङ्कित हुआ और उसने अपने विश्वास के लिए दुन्दुभी की अस्थि दिखलाई। जिसे रामजी ने फेंक दिया और सात तालो का भेदन करके राघव प्रसन्न हुए। इससे सुग्रीव भी प्रसन्न हुए और रामजी के साथ किष्किन्धापुरी गये। सुग्रीव ने गर्जन किया तब बाली वेग से घर के बाहर निकला। उस बाली को राघव ने सग्राम मे मारा और सुग्रीव को राजा बनाया। दिशाओ के जाननेवाले वानरो को बुलाकर सुग्रीव ने कहा जल्दी जल्दी तुमलोग मैथिली की खोज लाओ। तब हनुमान् समुद्र पार करके लङ्का गये। सीता को देखकर, राक्षसों को मारकर लङ्का जलाई। और स्वयं आकर रामजी को सब वृत्तान्त सुनाया। तब रामचन्द्र ने क्रुद्ध

ऋषि ने। यथा मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा। शङ्कर भगवान् की प्रेरणा से लोमश ऋषि ने सुनाया। इसीलिए शिवजी का 'देना' कहते हैं। यथा रामचरित सर गुप्त सोहावा। सभु प्रसाद तात मैं पावा। शम्भु ने जो ऐसी कृपा भुसुण्डिजी पर की। उसका कारण कहते हैं कि उसे रामभक्ति का अधिकारी चीह्ना, इससे उसे दिया।

तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिह्न पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते श्रोता वक्ता सम सीला। सव दरसी जानहि हरिलीला ॥३॥

अर्थ . उससे याज्ञवल्क्य ने पाया और फिर उन्होने भरद्वाजजी से कहा। वे श्रोता और वक्ता समान स्वभाववाले थे, सर्वदर्शी थे और हरि की लीला को जानते थे।

व्याख्या . यहाँ पर यह स्पष्ट नही होता कि याज्ञवल्क्यजी ने शिवजी से सुना या भुसुण्डिजी से सुना। परन्तु 'पावा' शब्द से तो यही झलकता है कि देनेवाले नि सन्देह शिवजी है पर उन्होने उसी भाँति दिया जिस भाँति भुसुण्डिजी को दिया था। अर्थात् भुसुण्डिजी के गुरु महर्षि लोमश द्वारा भुसुण्डिजी को दिया और याज्ञवल्क्यजी को उनके गुरु द्वारा दिया। सुनाया, दिया और पावा इन क्रियाओ पर ध्यान देने से तो यही अर्थ निकलता है। ये तीनो वक्ता और श्रोता समान कक्षा के थे। सर्वदर्शी थे। हरिलीला के साक्षात्कार करनेवाले थे। जगत् के कल्याणार्थ श्रोता, वक्ता बने थे।

जानहि तीनि काल निज ग्याना। करतलगत आमलक समाना ॥
औरो जे हरिभगत सुजाना। कहहि सुनहि समुझहि विधि नाना ॥४॥

होकर उन वानरो को अपने पास बुलाया और उनके साथ अस्त्रो को लेकर लङ्का गये। उसे देखकर उसके स्वामी के साथ युद्ध किया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ उसे लडाई मे मारा। वहाँ का राजा बिभीषण को बनाया। सीताजी को गोद मे लेकर उनके साथ अयोध्या गये। तब द्विभुज रघुनन्दन सिंहासन पर बैठे। द्विभुज रघुनन्दन धनुष धारण किये हुए, सब अलङ्कारो को धारण किये हुए, प्रसन्न वदन दक्षिण हाथ मे ज्ञानमयी मुद्रा धारण किये हुए और बाएँ हाथ से वामजानु मण्डल को दबाए हुए, चिन्मय परमेश्वर व्याख्यान मे निरत हुए। बाएँ और दक्षिण ओर शत्रुघ्न और भरत स्थित हुए। श्रोता रूप से हनुमान् भी सम्मुख स्थित हुए। इस भाँति फिर त्रिकोण हुआ। भरत के नीचे सुग्रीव और शत्रुघ्न के नीचे बिभीषण तालवृन्त धारण किये हुए और पीछे लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किये हुए स्थित हुए। इस भाँति दो त्रिकोणो के मिलने से षट्कोण हुआ। इस भाँति स्वकीय बीज, दीर्घ अक्षरो से युक्त हृदयादिको से श्रीरामजी का पूजन होना चाहिए। दूसरा आवरण वासुदेव आदि है। तीसरे आवरण मे हनुमान्, सुग्रीव, भरत, बिभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न, जाम्बवान् है। इसके बाद विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, और सुमन्त्र का आवरण है। इसके बाद इन्द्र, अग्नि, धर्म, निर्ऋति, वायु, चन्द्र, धाता और शेष का आवरण है।

अर्थ : वे अपने ज्ञान से हाथ पर रक्खे हुए आँवले के समान तीनों कालो को जानते थे और भी जो सुजान हरिभक्त हैं, नाना विधान से कहते, सुनते और समझते है।

व्याख्या : जो आँवले का फल हाथ में होता है उसका ज्ञान निरावरण होता है। इसी भाँति उनके लिए भृत और भविष्य भी वर्तमान के तुल्य था। इसलिए 'निज ज्ञाना' कहते हैं, दूसरे को जानने की उन्हे आवश्यकता नही है। वे महात्मा भक्त हैं अतः 'आमलक समाना' कहा। ज्ञानी के लिए दूसरी उपमा देते है। उनके हाथ में विश्व को वेर के फल के समान कहते है। यथा : जिन्हहि विस्व कर बदरि समाना : क्योंकि भक्त को विश्व पथ्य है और ज्ञानी को अपथ्य है : धात्री फलं सदापथ्यं अपथ्य बदरी फलम् ।

इनके बाद कहने सुनने और समझने पर ही निर्भर रहकर कथा की परम्पराएँ चली क्योंकि चरित के साक्षात्कार करने की सामर्थ्य तो पूर्वोक्त तीनो वक्ताओ और श्रोताओ मे ही थी। अतः सुजान हरिभक्त होने पर भी बुद्धिभेद से कथा के विधानो मे भेद पड़ने लगा। इसीलिए 'कहहिं सुनहिं समुझहिं विधि नाना' कहा।

दो. मै पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।
समुझी नहि तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥३०॥ क
श्रोता बकता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ़ ।
किमि समुझौ मै जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ़ ॥३०॥ ख

अर्थ : मैंने अपने गुरु से सूकर-क्षेत्र मे यह कथा सुनी, परन्तु : जैसी कथा होती थी : वैसी अति बालकपन होने के कारण, समझ न पायी, तब बहुत अचेत था। श्रोता, वक्ता दोनो ज्ञाननिधि थे और राम की कथा गूढ है। मैं कलियुग के पापो से ग्रसा हुआ, महा मूढ, जड़ जीव उसे कैसे समझ सकता था ?

व्याख्या : जो कथा ग्रन्थकार ने गुरुमुख से सुनी, वह सम्भवतः सोरो के घाट पर हुई थी, उस स्थल में वाराहावतार होने से उसे 'सूकर खेत' कहा जाता था। अति अचेत कहने का भाव ग्रन्थकार का यह है कि अचेत तो अब भी हूँ, पर *उस समय अति अचेत था। जैसी कही गई वैसी नही समझा।*

गुरुजी साधु समाज मे कथा कहते थे। जिस भाँति वे ज्ञानी थे उसी भाँति श्रोता समाज भी महा ज्ञानी था। अतः उन लोगों के सुनने योग्य कथा हो रही थी। अन्य श्रोता लोग साधु थे। मैं कलिमल ग्रसित था। अन्य श्रोता लोग महा विद्वान् थे। मैं विमूढ था। अतः वे समझ पाते थे, मै नही समझ पाता था।

तदपि कही गुर बारहि बारा । समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषा बद्ध करबि मै सोई । मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥१॥

अर्थ : फिर भी गुरुजी ने बार-बार कही तो अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ समझ मे आई। उसीको मै भाषा मे छन्दोवद्ध करूँगा जिससे मेरे मन मे प्रबोध : तसल्ली हो।

व्याख्या गुरुजी बडे दयालु थे, मेरे समझने के लिए बार-बार कहा। यही समझाने का रास्ता है। बार-बार कहने से गूढ विषय भी मन मे आजाता है। धीरे-धीरे सस्कार पड जाता है। यथा . अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। तब कुछ कुछ बात समझ मे आई।

जब तक अच्छी भाँति समझ मे न आवे तब तक उसे छन्दोबद्ध नहीं किया जा सकता। ग्रन्थकार कहते हैं कि अपने प्रबोध के लिए मैं उसे भाषा मे छन्दोबद्ध करूँगा। बहुत से गूढ विषय ऐसे हैं जिनके विषय मे धारणा हो जाती है कि मैंने समझ लिया पर उसे जब छन्दोबद्ध करने लगे तो कितनी ही शङ्काएँ उत्पन्न हो जाती हैं। उन्हे समाधान करके अपनी भाषा मे छन्दोबद्ध कर पावे तब उसके अभ्रान्त होने मे सन्देह नही रह जाता। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि मैं अपने जी की तसल्ली के लिए भाषाबद्ध करता हूँ।

जस कछु बुधि विवेक बल मोरे। तस कहिहौं हिय हरिके प्रेरे॥
निज सदेह मोह भ्रम हरनी। करौ कथा भव सरिता तरनी॥२॥

अर्थ जैसा कुछ मुझमे बुद्धि और विवेक का बल है मैं हिय मे हरि की प्रेरणा से वैसा ही कहूँगा। मैं अपने सन्देह, मोह और भ्रम को रहनेवाली कथा रचता हूँ। वह ससारनदी के लिए नाव के समान है।

व्याख्या पहले तो समझा ही कम है। यथा ' समुझि परी कछु मति अनुसारा। फिर अपने बुद्धि बल का भरोसा नही। यथा निजबुद्धि बल भरोस मोहि नाही। अत जो चूक हो वह मेरी और जो गुण हो वह गुरुजी का। मैं अपने काबू मे नही हरि की प्रेरणा से कहता हूँ। हरि का अर्थ बन्दर भी होता है। अत कुछ महात्माओ का मन है कि मङ्गल मूर्ति हनुमान्‌जी की प्रेरणा से कहते हैं। ऐसा अर्थ करना चाहिए। यहाँ से लीलावर्णन प्रारम्भ हुआ।

श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि अपने सन्देह, मोह, भ्रम के नाश के लिए मैं कथा की रचना करता हूँ। दूसरे के सन्देह, मोह, भ्रम के नाश करने का सामर्थ्य मुझमे नही है।

सन्देह, उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान का कहते हैं। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम विपरीत ज्ञान को कहते हैं। यह कथा इन सबो को हरण करनेवाली है। यह कथा नौकारूप है। इसमे ऐसा दिव्य सामर्थ्य है कि इसके लिए भवसागर सरिता हो जाता है। रामनाम को राकेश कहकर आगे वर्णन करेंगे। अत पहिले उसकी सोलह कलाओ का वर्णन करते हैं निज सदह मोह भ्रम हरनी। करौ कथा भव सरिता तरनी। रामनाम राकेश की पहिली कला है।

बुध बिश्राम सकल जन रजनि। रामकथा कलि कलुष बिभजनि॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि बिबेक पावक कहु अरनी॥३॥

अर्थ राम कथा विद्वानो को विश्राम देनेवाली है। सब मनुष्यो के मन को प्रसन्न करनेवाली है। कलियुग के पाप को दूर करनेवाली है। राम कथा कलियुगरूपी

साँप के लिए भरणी : मन्त्र है। विवेक रूपी अग्नि : के मन्थन . के लिए अरणो : लकडी है।

व्याख्या विद्वान् लोग अनेक शास्त्रो के अभ्यास से श्रमित रहते हैं। उनको रामकथा विश्राम देती है। सभी भक्तो को सुख देती है। विधि निपेध मय कलिमल हरणी। कर्म-कथा की भाँति कलियुग के मलो का हरण करती है। यह दूसरी कला है।

भरणी, सर्प के विप उतारनेवाले मन्त्र को कहते हैं। किसी के मत से भरणी नामक चूहे जैसा एक जन्तुविशेष है जो सर्प का नाश करता है। किसी के मत से भरणी नक्षत्र का जल विपनाशक है। कोई भरणी का अर्थ मयूरी करते है। परन्तु रामकथा कहने की वस्तु है अत इसकी उपमा मन्त्र से देना ही अधिक उपयुक्त है। इस कलियुग का बल नही चलता। इसके मन्थन से उसी भाँति ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। जिस भाँति यज्ञ मे अरणि मन्थन से अग्नि उत्पन्न होता है। यह तीसरी कला है।

राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई ॥
सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि। भय भजनि भ्रम भेक भुअंगिनि ॥४॥

अर्थ : रामकथा कलि मे कामधेनु है और सज्जनो के लिए तो सुन्दर सजीवन मूरि है। यही पृथ्वी तल पर अमृत की नदी है। भय को दूर करनेवाली और भ्रम-रूपी मेढक के लिए तो सर्पिणी ही है।

व्याख्या : कलियुग मे न कामधेनु है, न कल्पवृक्ष है और न चिन्तामणि है। मनोवाञ्छित देनेवाले तीनो मे एक नही है पर रामकयारूपी कामधेनु है। रामनाम-रूपी कल्पवृक्ष है। यथा : नाम राम को कल्पतरु . और रामचरितरूपी चिन्तामणि है। यथा : रामचरित चिन्तामनिचारू। सुजन लोग काम किरात के प्रहार से मृत-प्राय हो रहे है। यथा : मनुजाद किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरेन हिये। उनके लिए रामकथा सजीवनी बूटी है। इसीसे वे आराम हो सकते हैं। यह चौथी कला है।

वसुधा तल मे सुधा : अमृत नही है, किसी युग मे भी नही रही पर वसुधा तल मे अमृत की नदी रामकथा है। यह सदा यहाँ बहा करती है। रामावतार के पहिले भी रामकथा थी। उसे[१] रामजानकी ने श्रवण किया था। वह उस रामावतार के पहिले रामावतार की कथा थी। इस भाँति रामकथा से वसुधा शून्य कभी नही

---

१. अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मा नय काननम्।
रामायणानि बहुश श्रुतानि बहुभिर्द्विजैः।
सीतां विना वनं रामो गत. किं कुत्रचिद्वद। अध्यात्मरामायणे।

अर्थ : श्रीजानकी जी ने कहा कि मैं और कुछ कहती हूँ, उसे सुनकर मुझे बन ले चलो। बहुत से रामायण ब्राह्मणो द्वारा अनेक बार सुने गये हैं, कहो तो क्या किसी मे बिना सीता के राम बन गये है ?

रहती। यथा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना विधि करही। तव तव कथा मुनीसन्हि गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई। यह रामकथा भय की नाश करनेवाली है। जन्ममरणादि प्रवाह ही यहाँ भय है उस नाश करके अभय पद देती है। भ्रम विपरीत ज्ञान को कहते हैं, वह व्यर्थ मेढक की भाँति टर्र-टर्र करता है। उसके बकवाद म कोई सार नही। उस भ्रमरूपी मेढक को नाश करने के लिए यह सर्पिणी है। उसे निगल जाती है अर्थात् रामकथा का आहार ही भ्रमतम है। यह पाँचवी कला है।

असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु विबुध कुल हित गिरि नंदिनि॥
सत समाज पयोधि रमासी। विस्व भारभर अचल छमासी॥५॥

अर्थ यह रामकथा असुर की सेना की भाँति नरक की नाश करनेवाली तथा साधुरूपी देवकुल के हित के लिए पार्वती है। सन्तसमाजरूपी क्षीरसिन्धु के लिए लक्ष्मी सी है और ससार का भार धारण करने के लिए तो अचल पृथ्वी सी है।

व्याख्या जिस भाँति दुर्गा पार्वती असुरसेन नाश करनेवाली हैं उसी प्रकार रामकथा नरक का नाश करती है। यथा महामोह महिषेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला और जिस भाँति देवताओ के कुल का दुर्गा हित विधान करती हैं उसी भाति रामकथा साधु समाज का हित विधान करती है। भावार्थ यह कि दुर्गा ऐसी प्रवला है कि जो असुर किसी के मारे नही मरत, उन्हे दुर्गा मारती है। इसी भाँति जो दुर्गति किसी के हटाये नही हटती उसे रामकथा हटाती है। साधु समाज का सदा कल्याण करती है। कुछ महात्मा लोग असुरसन का अर्थ गया तीर्थ करते हैं। वहाँ यह अर्थ करना होगा कि जिस भाँति गया तीर्थ से नरक मे पडे प्राणिया का उद्धार होता है उसी भाँति रामकथा स भी होता है। यह छठी कला है।

लक्ष्मी क्षीरसिन्धु मे ही उत्पन्न हुई और क्षीरसिन्धु की शोभा बढाती हुई वही नारायण के साथ विराजमान है। अर्थात् क्षीरसिन्धु मे ऐसी रति है कि उसे छोडती ही नही। वही उनका मैका है और वही निवास स्थान है। इसी भाति रामकथा की भी उत्पत्ति साधु समाज म है और वही साधु समाज की शोभा बढाती हुई सदा विद्यमान रहती है। यह सातवी कला है। जिस भाँति पृथ्वी सबका आधार है उस भाँति रामकथा भी सबकी आधारभूता है। रामकथा के प्रतिपादित गुणा से ही विश्व की स्थिति बनी हुई है। यह आठवी कला है।

जमगन मुह मसि जग जमुनासी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥६॥

अर्थ यमगण के मुख म कालिख लगाने के लिए यह रामकथा यमुना के समान है। जीवन्मुक्ति के लिए मानो काशी है। रामजी को पवित्र तुलसी की भाँति प्रिय है। तुलसीदास के लिए हुलसी के हृदय के समान है।

व्याख्या जहाँ तक यमुना का प्रचार है वह स्थान यमराज के अधिकार के बाहर है। वहाँ यमगण का किया कुछ होता नही। वहाँ वे मुँह नही दिखाते पाता

उनके मुख मे कालिख लगा हुआ है यथा ' जमुना ज्यौ ज्यौं लागि बाढन। ज्यौं ज्यौं जल मलीन त्यो त्यो जमगन मुख मलीन लहै आढन। उसी भाँति जहाँ जहाँ रामकथा का प्रचार है वहाँ वहाँ यमगण मुख नही दिखलाते क्योकि वह स्थल यमराज के अधिकार के बाहर हो जाता है। यह नवी कला है।

जिस भाँति विदेह मुक्ति का कारण काशी है काशी के सेवन से शरीर त्यागने पर मुक्ति होती है ' उसी भाँति रामकथा जीवन्मुक्ति का कारण है। रामकथा का सेवन करनेवाला जीता हुआ ही मुक्त हो जाता है। यह दसवी कला है। जिस भाति तुलसी रामजी की हृदयानन्दकारिणी ' है उसके बिना भगवान् को पारिजात पुष्प और अन्य दिव्य गन्धो से भी तृप्ति नही होती। सब कर्म ही निष्फल हो जाता है उसी भाति[1] रामकथा भी भगवान् की हृदयानन्दकारिणी है। इसके बिना षोडशोपचार पूजन से भी उनकी तृप्ति नही होती। यह ग्यारहवी कला है। तुलसीदास के लिए तो साक्षात् माता के हृदय सी है, सहस्रो अपराधो को क्षमा करते हुए पालन करती हैं। हुलसी श्रीगोस्वामीजी की माता का नाम था। यथा गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

यद्यपि हुलसी का अर्थ 'उल्लसित हुई' है और इससे अर्थ भी ठीक बैठ जाता है पर बहुत से लोगो का यह मत है कि 'हुलसी' तुलसीदासजी की माता का नाम था। ऐसा मानने से अर्थ भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। तुलसीदासजी हुलसी माता के आँखो के तारे थे। वह सदा ही इनका हित चाहती थी। इसी भाँति राम कथा भी माता की भाँति सेवन करनेवालो के हित मे निरत रहती है। उन्हे प्रकाश प्रदान करके उनका कल्याण करती है। यह बारहवी कला है।

सिव प्रिय मेकल सैल सुतासी। सकल सिद्धि सुख सपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अब अदिति सी। रघुवर भगति प्रेम परमिति सी ॥७॥

अर्थ : शिवजी को नर्मदा के समान प्यारी है। सब सिद्धि, सुख और सम्पत्ति की राशि है। सद्गुण रूपी देवताओ के लिए यह माता अदिति के समान है। रघुवर की प्रेमभक्ति की तो मानो सीमा सी है।

व्याख्या ' मेकल शैल से नर्मदाजी निकली है। इसीलिए उसकी सुता कहलाती

---

१. मातस्तुलसि गोविन्दहृदयानन्दकारिणि।
नारायणस्य पूजार्थं चिनोमि त्वा नमोऽस्तुते॥
कुसुमै. पारिजाताद्यैं सुगन्धैरपि केशव।
त्वया विना नैव तृप्ति चिनोमि त्वामत शुभे॥
त्वया विना महाभागे समस्त कर्म निष्फलम्। इत्यादि

तुलसी दल लेने के समय स्तुति की जाती है। हे तुलसी माता तुम गोविन्द की हृदयानन्दकारिणी हो। तुम्हारे बिना गोविन्द का पारिजात के पुष्प और सुगन्धादि से तृप्ति नहीं होती। तुम्हारे बिना सब कर्म निष्फल हो जाता है। इसीलिए मैं तुम्हारे पत्रो को चुनता हूँ। नारायण की पूजा इसी से करूँगा।

हैं। इनका लोप कभी नही होता। यह शङ्करजी को इतनी प्यारी है कि शिव इनमें असख्य रूप से नर्मदेश्वर बने लुढकते फिरते हैं। इसी भाँति रामकथा शङ्कर भगवान् को अत्यन्त प्यारी है। यथा . रचि महेस निज मानस राखा। प सुसमउ सिवा सन भाखा। जैसी नर्मदाजी की शोभा है वैसी ही रामकथा की भी शो है। जितनी सिद्धियाँ हैं अणिमा, महिमा आदिक और जितनी सम्पत्ति और सुख उनकी रामकथा राशि है। इसके सेवन से सम्पूर्ण लौकिक सुख की भी प्राप्ति हो है। अतः सब भाँति प्रीति की आस्पद है। यह तेरहवी कला है। जिस भाँति देवो की उत्पत्ति अदिति देवी से हुई है, उसी भाँति सभी सद्गुणो की उत्पत्ति र कथा से हुई है। कोई गुण ऐसा नही है जिसे रामकथा ने उत्पन्न न किया हो। अ इसके आश्रयण से सद्गुणों की प्राप्ति होती है। यह चौदहवी कला है। सबकर प हरिभगति भवानी। रामकथा भगवान् की प्रेमाभक्ति की परा सीमा सी है। यथ ब्रह्म पयोनिधि मदर, ज्ञान सत सुर आहि। कथा सुधा मथि काढहि भगति मधु जाहि। भक्तिरूपी माधुर्य कथा मे हो है। अत. कृतकृत्यता रामकथा से ही होती यह पन्द्रहवी कला है।

दो. राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह वन सिय रघुवीर विहारु ॥३१॥

अर्थ : रामकथा मन्दाकिनी है। सुन्दर चित्त चित्रकूट है। तुलसीदास कहते हैं सुन्दर स्नेह ही वन है। जिसमें सीताजी और रामजी विहार करते हैं।

व्याख्या : मन्दाकिनी पुण्या नदी है। यथा . सुरसरिधार नाउँ मदाकिनि। सब पातक पोतक डाकिनि। उसीको यहाँ रामकथा से उपमित किया है। उस योग जब चित्रकूट से हो अर्थात् निर्मल चित्त का योग रामकथा से हो तब सा के मन मे स्नेह का वन लग जाता है। वही सीतानाथ का विहारस्थल है। सोलहवी कला है।

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू ॥
जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥१

अर्थ : रामचरित सुन्दर चिन्तामणि है। सन्तो की सुमति रूपी स्त्री का सु श्रृङ्गार है। रामजी के गुणो के समूह जगत् के लिए मङ्गलरूपी है। मुक्ति, धन, और धाम देनेवाला है।

व्याख्या : रामचरित को चिन्तामणि कहते हैं। क्योंकि चिन्तामणि से चि मिटती है। रामचरित सुन्दर चिन्तामणि है। यह मणि श्रृङ्गार के काम मे भी आ है परन्तु सब के भाग्य मे चिन्तामणि नही है कि उससे वह अपनी मतिरूपी स्त्री श्रृङ्गार करे। केवल महा भाग्यवान् सन्त अपनी सुमतिरूपी स्त्री का उससे श्रृङ्ग करते हैं। अर्थात् सन्तों की स्त्री उनकी सुमति है। सदा उसी मे रमण करते हैं। सुमति जब रामचरित धारण करती है तब श्रृङ्गारित होती है। पहिले मुकाम

से स्वय सन्तो का शृङ्गार कर चुके हैं। यथा : पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग।

रामकथा के अन्तर्गत रामचरित है, उसके अन्तर्गत रामगुणग्राम हैं। इसलिए कथा का माहात्म्य कहकर चरित का माहात्म्य कहा। अब गुणग्राम का माहात्म्य कहते हैं। श्रीरामचरितमानस मे स्तुति कही गई है। उन्ही स्तुतियो मे गुणग्राम है। गुणग्राम का कथन ही स्तुति है। स्तुति कोई दूसरा पदार्थ नही है। इस ग्रन्थ मे स्तुतियो की सख्या अट्ठाईस है। यहाँ गुणग्राम के माहात्म्य के विभाग भी अट्ठाईस हैं। अत. स्पष्ट है कि क्रमश ये माहात्म्य, अट्ठाइसो स्तुतियो के है। रामजी के अनन्त गुण हैं। उनमे से कुछ से कवि का परिचय है। किन गुणो के योग के कथन से क्या फल होता है, यही फलश्रुति है।

१ पहिली ब्रह्मदेवकृत स्तुति है। उसका माहात्म्य कहते हैं : 'जग मगल गुन ग्राम राम के। ब्रह्मदेव की स्तुति पर ही श्रीरामअवतार हुआ। इससे ससार का मङ्गल हुआ। इसलिए ब्रह्मदेव की स्तुति को अथवा उसमे वर्णित गुणग्राम को जगमङ्गल कहना सर्वथा उचित है।

२ कोसल्या कृत स्तुति है। उसमे जो गुणग्राम है उसका माहात्म्य है : दानि मुकुति धन धरम धाम[1] के। श्रीकन्त के प्रकट होने से यह गुणग्राम धन धर्म का दानी है। यथा सो ममहित लागी जन अनुरागी प्रकटभये श्रीकन्ता। मुक्ति तथा धाम का देना तो कण्ठरवसे कहा है। यथा ' यह चरित जो गावहि हरिपद पावहि ते न परहिं भव कूपा।

सद् गुरु ग्यान विराग जोग के। विवुध वैद भव भीम रोग के ॥
जैंननि जनक सियराम प्रेम के। बीज सकल व्रत धरम नेम के ॥२॥

अर्थ ज्ञान, विराग और योग के सद्गुरु है और ससाररूपी भयङ्कर रोग के लिए देववैद्य अश्विनीकुमार हैं। ये सीताराम के प्रेम के माता पिता हैं और सारे व्रत, धर्म और नियमो के बीज है।

व्याख्या ३ अहल्याकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है 'सद्गुरु ज्ञान विराग जोग के।' 'धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा' से ज्ञान का, 'मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा' से वैराग्य का, और 'पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना' से योग का सद्गुरु कहा।

४ परशुरामकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है . 'विवुध वैद्य भव भीम रोग के'। भगवत् और भागवत का अपराध ही भव भीम रोग है। उसी का क्षमापन इस स्तुति से हुआ है। इसी से इसे भव भीम रोग के लिए अश्विनीकुमार बतलाया है। अश्विनीकुमार दो भाई हैं। साथ ही रहते है। यहाँ भी दोनो भाई

---

१. चारो फल मे काम ह धाम नही है। परन्तु यह माता कौसल्या का स्तुति है उनके लिए धाम ही काम है।

राम लक्ष्मण की स्तुति है। भवरोग सब रोगो मे भयङ्कर है। इसलिए राम गुणग्राम रूपी देववैद्य की आवश्यकता पडी।

५ सुनयनाकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जननि सियराम प्रेम के 'सनेहसानी मृदुबानी' है। इसलिए सियराम प्रेम की जननी कहा। ६ जनककृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जनक सियराम प्रेम के। बोले वचन प्रेम जनु जाये : इसलिए सियराम प्रेम का जनक कहा। यहाँ जनक शब्द देकर स्पष्ट जनक की स्तुति दरसायी है।

७ भरद्वाजकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : बीज सकल व्रत धरम नेम के। इससे मुनिजी को तप, तीर्थ, त्याग, जप, योग, विराग का फल मिला। फल मे बीज रहता है, इसलिए कहा : बीज सकल व्रत धर्म नेम के।

समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति बिचारि के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥३॥

अर्थ : पाप सन्ताप और शोक के नाश करनेवाले और इस लोक तथा परलोक के प्यारे पालक हैं। विचाररूपी राजा के मन्त्री और सुभट हैं और लोभरूपी अपार समुद्र के लिए कुम्भज : अगस्त्य ऋषि हैं।

व्याख्या : ८ वाल्मीकिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : समन पाप संताप सोक के। अतः जानत तुमहि होइ जाई कहकर पाप, सन्ताप और शोक का नाश कहा। ९ अत्रिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : प्रिय पालक परलोक लोक के। नरादरेण ते पदं। व्रजन्ति नात्र संसयं। त्वदीय भक्ति संयुता। कहकर लोक और परलोक का प्रिय पालक कहा। १० सरभंगकृत स्तुति का माहात्म्य है : सचिव भूपति बिचार के। अध्रुव साधनो को देकर ध्रुवपद लिया। यथा : जोग जग्य जप तप जत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा। इसलिए भूपति विचार का सचिव कहा। ११. सुतीक्ष्णकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सुभट भूपति बिचार के। विचार मे आगे बढते चले जाते हैं। पहिले कहा : तदपि अनुजश्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी। फिर विचार[1] करके आगे बढे बोले : सो कोसल पति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना। फिर विचारकर और आगे बढे कहा : अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम। मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा यह काम। इस भाँति विचार मे सुभट की भाँति आगे बढते ही चले जाते हैं। इसलिए इस गुणग्राम का माहात्म्य ग्रन्थकार ने 'विचार का सुभट' बतलाया। १२ अगस्त्यकृत स्तुति का माहात्म्य है : कुंभज लोभ उदधि अपार के। इसमें जगत् की अनित्यता कही। इसलिए

१. विचार किया कि काननचारी तो थोड़े ही दिन रहेंगे। इसलिए कोसलपतिरूप मे हृदय मे वास माँगा। फिर विचार किया कि कोसलपतिरूप मे भी दससहस्र वर्ष तक ही रहेंगे। अत सदा के लिए अपने हृदयाकाश मे चन्द्र की भाँति विचरण करने के लिए वर माँगा। विचार मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता ही गया।

अपार लोभ उदधि के लिए इस गुणग्राम को कुम्भज : अगस्त्य बतलाया। इस भाँति स्पष्ट दिखला दिया कि यह अगस्त्यकृत स्तुति का फल है।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि[1] सावक जन मन वन के॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के॥४॥

अर्थ : भक्तों के मनरूपी वनमें, काम, क्रोध और कलियुग के पापरूपी हाथियों के लिए सिंह के बच्चे हैं। त्रिपुरारि के अतिथि से पूज्य और प्रियतम हैं। दरिद्ररूपी वन की अग्नि के लिए कामना की वर्षा करनेवाले मेघ हैं।

व्याख्या : १३. जटायुकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन वन के। इस स्तुति में 'कामादि खल दल गंजनं' स्पष्ट ही लिखा है। 'केहरि सावक' कहने का भाव यह कि सिंह के बच्चों को हाथी पर चोट करने का बड़ा चोप होता है। यथा : यथा मत्तगजगन निरखि, सिंह किसोरहि चोप। १४. हनुमत्कृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : अतिथि[2] पूज्य प्रियतम पुरारि के। यहाँ हनुमान्‌रूपी रुद्र को अतिथिरूप में भगवत्प्राप्ति हुई। अतः 'अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के' कहा। १५. रावणसभा में विभीषणकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : कामद घन दारिद दवारि के। क्योंकि इस स्तुति की भावना से प्रसन्न होकर भगवान् ने लङ्का दे दी। इसलिए यह स्तुति 'कामद घन' है। 'ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता' से 'प्रनतारति भंजन रघुनाथा' तक विभीषणोक्त गुणग्राम है।

मंत्र महा मनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालिपाल जलधर से॥५॥

अर्थ : विषयरूपी सर्प के लिए महा मन्त्रमणि हैं। ललाट में लिखे बुरे लेखों के मेटनेवाले हैं। अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के किरणरूप हैं। सेवकरूपी धानों को पालनेवाले मेघ के समान हैं।

व्याख्या : १६. रावणवध के समय जो देवताओं ने स्तुति की उसी के गुणग्राम का माहात्म्य है : मंत्र महा मनि विषय व्याल के। विषय को सर्प कहा। उसे रुद्धवीर्य करने के लिए महा मन्त्र और महा मणि का प्रयोग होता है। मन्त्रजप और महामणि के स्पर्श से सर्प बेकार हो जाता है। कुछ लोगों की सम्मति है कि मन्त्र और मणि शब्द के बीच में महा शब्द के प्रयोग से महौषधि का ग्रहण है अथवा यह गुणग्राम महा मणिमन्त्र है। इसका जप सद्यः लाभकर है। सत्कारादि की आवश्यकता नहीं। अङ्गन्यास, करन्यास आदि का झमेला इसमें नहीं। इस

१. रूपक तद्रूप सम है।

२. अतिथि सभी भाँति पूज्य है। फिर यदि वह प्रियतम हो तो उसकी पूजा में बड़ा आनन्द मिलता है। किष्किन्धा काण्ड में हनुमत्कृत रामजी के जिन गुणगणों का उल्लेख है वे शिवजी को अतिथि की भाँति पूज्य और प्रिय हैं।

स्तुति के पाठमात्र से विषय व्याल के विष का नाश होता है। भक्ति के विसारने से देवता भी भव प्रवाह मे पडे हैं। इस उक्ति के कारण इसे विषयव्याल का महा मणिमन्त्र कहा।

१७ रावणविजय के समय की ब्रह्मदेव की स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है मेटत कठिन कुअक भाल के। कुअङ्क का लिखना और मिटाना इन्ही का काम है। यथा जिनके भाग लिखी लिपि मेरी सुख की नही निसानी। तिन रकन को नाक सवारत हौं आयो नकवानी • विनय। इस उक्ति से, ब्रह्मकृत स्तुति का माहात्म्य होना ध्वनित है। स्तुति मे कहा गया है येहिते विपरीत क्रिया करिये। दुख को सुख मानि सुखी चरिये। जव दु ख को भी सुख मान लिया गया तब कुअङ्क करेगा ही क्या ? वह मिटा मिटाया ही है। इसलिए कहा मेटत कठिन कुअक भाल के।

१८ इन्द्रकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है हरन मोह तम दिनकर करसे। इसमें कहा गया है गत मान प्रद दुख पुज। इस उक्ति से 'हरन मोह तम दिनकर करसे' सिद्ध हुआ।

१९ शङ्करकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है सेवक सालिपाल जलधर से। सम्पूर्ण स्तुति मे सेवक की रक्षा के लिए ही प्रार्थना है। अत 'सेवक सालिपाल जलधर से' कहना प्राप्त है।

अभिमत दानि देव तरु वर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ॥
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। राम भगत जग जीवन धन से ॥६॥

अर्थ वाञ्छित फल देने मे कल्पवृक्ष से हैं। सेवा करने मे हरिहर की भांति सुलभ और सुख देनेवाले हैं। सुकवि के मनरूपी शरद् ऋतु के आकाश मे तारागण के समान हैं। रामभक्तो के तो जीवनधन से हैं।

व्याख्या २० वेदस्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है। अभिमत दानि देव तरुवर से। इसमे प्रणतपाल कृपाल की शक्ति के साथ स्तुति है। इसलिए इसकी कल्पवृक्ष से उपमा दी है। कल्पवृक्ष कहने पर भी 'वर' शब्द के प्रयोग का यह अभिप्राय है कि कल्पवृक्ष मोक्ष नही दे सकता। परन्तु यह ऐसा कल्पवृक्ष है कि भुक्ति, मुक्ति दोनो देता है।

२१ राज्याभिषेक के समय की शङ्कर भगवान् की स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है सेवक सुलभ सुखद हरिहर से। इस स्तुति मे प्रार्थना की गई है महिपाल विलोकय दीन जन। इसलिए इस स्तुति को 'सेवक सुलभ सुखद' कहा। 'हरिहर से' कहकर हरकृत स्तुति का होना द्योतित किया।

२२ पुरजनकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है सुकवि सरद नभ मन उडगन से। शरत् काल के आकाश मे ही तारो का स्पष्ट दर्शन होता है। आकाश के निर्मल होने से जो तारक पुञ्ज अन्य ऋतुओ मे नही दिखाई पडते वे भी दिखाई देने लगते हैं। इस स्तुति मे 'तुलसीदास से प्रभुहि उदारहिं' कहा गया है। इसलिए 'सुकवि सरद नभ मन उडगन से' कहना प्राप्त है।

२३ सनकादिककृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है . रामभगत जन जीवन धन से। इस स्तुति मे 'सेवत सुलभ सकल सुख दायक' कहा है। इसलिए यह रामभक्तो के लिए जीवनधन है।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधुलोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ॥७॥

अर्थ : सम्पूर्ण पुण्यो के फलस्वरूप भोग के समूह के समान है। जगत् के निश्छल हित के लिए साधुओ के समान है। सेवक के मनरूपी मानस सरोवर के लिए हस के समान है। गङ्गाजी की तरंगो के समान पवित्र है।

व्याख्या : २४ नारदकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सकल सुकृत फल भूरि भोग से। सुकृत का फल सुख और दुष्कृत का फल दुख है। तव सब सुकृत का फल भूरि भोग होना ही प्राप्त है। अर्थात् जो सुख भूरि भोग मे है वही सुख इस गुणग्राम के कथन, श्रवण मे है। स्तुति मे 'सुख रूप भूपवर' कहा है। इसलिए माहात्म्य मे कहा। सकल सुकृत फल भूरिभोग।

२५ भुसुण्डिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जगहित निरुपधि[1] साधु लोग से। भाव यह कि सुर, नर, मुनि की यही रीति है कि स्वार्थ के लिए प्रेम करते हैं। हेतु रहित दोनो लोक के हितकारी या तो भगवान् है या भागवत है। इसलिए साधु लोग को निश्छल हित कहा। भुसुण्डिकृत स्तुति मे शत कोटि दुर्गादि देवताओ से रामजी को उपमित किया है। दुर्गादि देवता सोपधि हित है पर रामजी निरुपधि हित हैं। इसीलिए स्तुति का माहात्म्य भी वैसा ही है।

२६ विप्रकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सेवक मन मानस मराल से। मराल सदा मानस सरोवर मे निवास करते हैं। यथा : जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल। सो 'नतोहं सदा सर्वदा सभु तुभ्य' स्तुति मे कहा। अत माहात्म्य मे 'सेवक मन मानस मराल' कहते है।

२७ भुसुण्डिकृत दूसरी स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : पावन गंग तरग माल से। इस स्तुति मे दुस्तर तरने का प्रसङ्ग आया है। यथा : हरि नरा भजति येऽति दुस्तरं तरति ते। इसलिए माहात्म्य मे वतलाया : पावन गग तरंग माल से।

दो. कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुनग्राम जिमि, इन्धन अनल प्रचंड ॥३२॥
रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सव काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विसेपि वड़ लाहु ॥३२॥ क

अर्थ : कुमार्ग, कुतर्क, कलि की कुचाल, कपट, दम्भ और पाखण्ड को जलाने के लिए श्रीरामजी के गुणो के समूह वैसे ही है जैसे इंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि।

[1]. उपधि = छल।

रामजी का चरित पूर्णचन्द्र की किरणो के समान सबको समानरूप से सुख देने वाला है, पर सज्जनरूपी कुमुद और चकोरो के चित्त को विशेष हित देनेवाला है। वडा लाभकारी है। किरण के स्पर्श से कुमुद खिल उठते हैं। इसलिए उनका हित है और चकोर उसका पान करते हैं। अत उन्हे वडा लाभ है।

व्याख्या २८ वेदविरुद्ध मार्ग को कुपथ कहते हैं। मनमानी तर्कना को कुतर्क कहते हैं। गर्हित चाल को कुचाल कहते हैं। ठगपन को कपट, धर्म के दिखावे को दम्भ और वेदो के न मानने को पाखण्ड कहते हैं। इन सबको जलाने के लिए राम गुणग्राम प्रचण्ड अग्नि है। अर्थात् ये सब अनायास भस्म हो जाते हैं। राम के सभी गुणग्राम सभी फल दे सकते हैं, फिर भी पृथक्-पृथक् गुणग्राम माहात्म्योक्त फल को विशेष रूप से देते हैं। यह तुलसीदासकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है। गणिका, अजामिल, गीध आदि का सन्तरण कहने से कुपथ, कुतर्क आदि का नाश कहा।

इस भाँति अट्ठाइसो गुणग्रामो का माहात्म्य कहा। यही उन स्तुतियो की फलश्रुति है। गुणग्राम कहकर फिर चरित्र की महिमा कहने लगे। पहिले कहा था 'रामचरित चिन्तामनि चारू' उसके बाद अट्ठाइसो गुणग्रामो की फलश्रुति कही। अब 'रामचरित राकेस कर' कहकर गुणग्रामा को चरित से सम्पुटित कर रहे हैं।

'रामचरित राकेस कर' कहने से बहुत सी बाता का प्रसङ्ग आ पडा। राकेश कर के लिए रात चाहिए। राकेश का समाज चाहिए। राकेश की सोलहो कलाएँ चाहिए। रामयशरूपी मानससरोवर के वर्णन म दिन का वर्णन स्पष्ट न करके रात के वर्णन का विशेष कारण चाहिए।

मानसरोवर के जिन यात्रिया ने अपनी यात्रा पर पुस्तकें लिखी है, उन सबो ने चाँदनी रात म मानसरोवर की महा शोभा वर्णन की है जबकि उसके स्वच्छ जल म प्रकाशित आकाश, चन्द्र, ग्रहमण्डल, तारामण्डल के साथ प्रतिबिम्बित होता है। श्रीग्रन्थकार ने मानसरोवर यात्रा निसन्देह की है। उस मार्ग की कठिनाइयो का वर्णन आगे करेंगे। यथा ते अति दुर्गम सैल बिसाला। बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयकर नाना। इत्यादि। अब यहाँ चाँदनी के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। इसी भाँति यथास्थान सम्पूर्ण समाज का वर्णन करते चल जायँगे। पाठका के सुभीते के लिए यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

जिम राकेश कर को यहाँ रामचरित कहा गया है वह राका पूर्णमासी की रात रामभक्ति है। राकेश स्वयं रामनाम है। रामजी के अन्य नाम तारागण हैं। ये सब भक्त के हृदयरूपी आकाश मे बसते हैं। यथा राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन बिमल, बसहु भगत उर ब्योम। राकेश पूर्णमासी के चन्द्र तभी होते है, जब सोलह कलाओ से पूर्ण हो।

जिस भाँति चन्द्र की प्रत्येक कला कुमुद और चकोर के लिए विशेष हितकारिणी और लाभदायिनी है उसी भाँति नामचन्द्र की कलाएँ अर्थात् रामचरित के कथानक सज्जनरूपी कुमुद और चकोर के लिए विशेष हितकारिणी और लाभ

दायिनी हैं। अमृता मानदा पूषा पुष्टिस्तुष्टी रतिर्धृति। शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्री प्रीतिरङ्गदा। पूर्णा-पूर्णामृता चैव विज्ञेया शशिन कला। ये ही चन्द्र की सोलह कलाओ के नाम हैं। इनका मिलान नामचन्द्र की सोलहो कलाओ से नीचे दिया जाता है।

चन्द्रकला	नाम चन्द्रकला
१ अमृता	निज सदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी॥
२ मानदा	बुध विश्राम सकल जन रजनि। रामकथा कलिकलुप विभजनि॥
३ पूषा	राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहँ अरनी॥
४ पुष्टि	राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई॥
५ तुष्टि	सोइ वसुधा तल सुधा तरगिनि। भव भेपज भ्रमभेक भुअगिनि॥
६ रति	असुर सेन सम नरक निकदनि। साधु विबुध कुल हित गिरिनदिनि॥
७ धृति	सत समाज पयोधि रमासी।
८ शशिनि	विश्व भारभर अचल छमासी।
९ चन्द्रिका	जमगन मुह मसि जग जमुनासी।
१० कान्ति	जीवन मुक्ति हेतु जिमि कासी।
११ ज्योत्स्ना	रामहि प्रिय पावन तुलसी सी।
१२ श्री	तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।
१३ प्रीति	सिव प्रिय मेकल सैल सुतासी। सकल सिद्धि सुख सपति रासी।
१४ अङ्गदा	सदगुन सुरगन अब अदिति सी।
१५ पूर्णा	रघुपति भगति प्रेम परमिति सी।
१६ पूर्णामृता	राम कथा मदाकिनी, चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुवीर विहारु॥

इस भाँति रामनाम राकेश की सोलहो कलाओ की फलश्रुति श्रीग्रन्थकार ने कही। अब रह गई रामजी के दूसरे नामो की बात जो तारागण से उपमित हैं। जिस भाँति तारागणो से आकाश भरा पडा है उसी भाँति रामजी के नामो से रामचरित मानस भरा पडा है। परमेश्वर के सभी नाम गौण हैं अर्थात् गुणसूचक हैं। उन सब नामो के अर्थ हैं। जिस भाँति आकाश मे ताराओ के गुच्छे हैं जिन्हे नक्षत्र कहते हैं उनकी अभिजित को मिलाकर अट्ठाईस सख्या शास्त्रो मे कही है। उसी भाँति रामचरितमानस मे अट्ठाईस स्तुतियाँ अर्थात् गुणग्राम हैं जिनकी फलश्रुतियाँ ग्रन्थ मे दी गई हैं। इतना ही नही उन नक्षत्रो मे जितने तारे चमकते हैं जैसा उनका आकार है, इत्यादिक बातो का भी आभास उन स्तुतियो मे पाया जाता है। यह उनकी व्याख्या के समय दिखाया जायगा। यहाँ पर इतना ही दिखाया जाता है कि किस स्तुति को कौनसा नक्षत्र माना गया है।

सख्या	स्तुति	नक्षत्र	फलश्रुति
१	ब्रह्मकृत	अश्विनी	जग मगल गुन ग्राम राम के।
२	कौसल्याकृत	भरणी	दानि मुकुति धन धर्म धाम के॥

संख्या	स्तुति	नक्षत्र	फलश्रुति
३.	अहल्याकृत	कृतिका	सदगुरु ज्ञान विराग जोग के।
४.	परशुरामकृत	रोहिणी	विबुध वैद भव भीमरोग के॥
५.	सुनयनाकृत	मृगशिरा	जननि : सियराम प्रेम के :।
६	जनककृत	आर्द्रा	जनक सियराम प्रेम के।
७.	भरद्वाजकृत	पुनर्वसु	बीज सकल व्रत धर्म नेम के॥
८.	वाल्मीकिकृत	पुष्य	समन पाप संताप सोक के।
९	अत्रिकृत	अश्लेषा	प्रियपालक परलोक लोक के॥
१०.	शरभङ्गकृत	मघा	सचिव : भूपति विचार के :।
११.	सुतीक्ष्णकृत	पूर्वा फाल्गुनी	सुभट भूपति बिचार के॥
१२	अगस्त्यकृत	उत्तरा फाल्गुनी	कुंभज लोभ उदधि अपार के।
१३.	जटायुकृत	हस्त	काम कोह कलिमल करिगन के।
			केहरि सावक जनमन वन के॥
१४.	हनुमत्कृत	चित्रा	अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के।
१५.	विभीषणकृत	स्वाती	कामद घन दारिद दवारि के॥
१६.	वेदकृत	विशाखा	मत्र महा मनि विषय व्याल के।
१७.	ब्रह्मदेवकृत	अनुराधा	मेटत कठिन कुअंक भाल के॥
१८.	इन्द्रकृत	ज्येष्ठा	हरन मोह तम दिनकर कर से।
१९.	शङ्करकृत	मूल	सेवक सालिपाल जलधर से॥
२०	देवकृत	पूर्वाषाढ	अभिमत दानि देव तरुवर से।
२१.	शङ्करकृत	उत्तराषाढ	सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥
२२.	पुरवासीकृत	अभिजित	सुकवि सरद नभ मन उडगन से।
२३.	सनकादिकृत	श्रवण	रामभगत जन जीवन धन से॥
२४.	नारदकृत	धनिष्ठा	सकल सुकृत फल भूरि भोग से।
२५	भुसुण्डिकृत	शत तारक	जगहित निरुपधि साधु लोग से॥
२६	विप्रकृत	पूर्वा भाद्रपद	सेवक मन मानस मराल से।
२७.	भुसुण्डिकृत	उत्तराभाद्रपद	पावन गंग तरंग माल से॥
२८.	तुलसीदासकृत	रेवती	कपट कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड।
			दहन राम गुनग्राम जिमि इन्धन अनल प्रचंड॥

निर्गलितार्थ यह है कि जिस भाँति मानसरोवर पूर्णमासी की रात्रि को सोलह कलायुक्त चन्द्र, नक्षत्र, ताराभण्डल से युक्त होकर अपार शोभा को धारण करता है उसी भाँति यह रामचरित सर भी भक्तिरूपी पूर्णमासी की रात्रि में सोलह कलायुक्त रामनाम गुणग्रामों तथा अपार नामों के साथ अपार शोभा को प्राप्त होता है। जिसका अनुभव भक्त का हृदय ही कर सकता है। यहाँ लीला वर्णन समाप्त हुआ।

कीन्ह प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहिं विधि सकर कहा वखानी ॥
सो सब हेतु कहव मै गाई । कथा प्रबध विचित्र बनाई ॥१

अर्थ जिस भाँति भवानी ने प्रश्न किया और जिस विधि मे शङ्करजी ने वख निया वह सब कारण मै विचित्र कथा प्रसङ्ग बनाकर विस्तार से कहूँगा ।

व्याख्या प्रश्न मे भाँति है और उत्तर मे विधि है और प्रश्न करने का कार है । जिस भाँति सुश्रूषा, विनय और आर्तिपूर्वक भवानी ने प्रश्न किया और शङ्कर ने जिस विधि से दो दण्ड तक ध्यान म रामचरित्र का साक्षात्कार करके इष्ट देव के प्रणतिपूर्वक प्रस्ताव क्रम से उत्तर दिया और इस भाँति सवाद होने का जो कार हुआ, इन सब वातो को विस्तार पूर्वक कहने का श्रीग्रन्थकार सकल्प करते है । सा ही साथ यह भी कहते हैं कि कथाप्रबन्ध को विचित्र बनाकर कहूँगा । वस्तुत ग्रन मे प्रबन्ध की विचित्रता है । चार कल्प के रामावतार की कथा एक साथ कही ज रही है । सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इस बात का पता चलता है । प्रधान कथ तो ब्रह्म के रामावतार की है, पर साथ ही साथ क्षीरशायी भगवान् और विष्ण भगवान् के रामावतार की कथाएँ हैं । जहाँ जहाँ भेद पडा है वहाँ कथा मे भी भे दिखला दिया है । ऐसी विचित्रता अन्य ग्रन्थो म नही पाई जाती ।

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरज करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहिं आचरज करहिं अस जानी ॥२॥

अर्थ जिसने यह कथा न सुनी हो वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे । ज अलौकिक कथा ज्ञानी सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नही करते ।

व्याख्या इस ग्रन्थ मे रहस्यादि अलौकिक ऐसी कथाएँ हैं जिनसे सर्व साधारण के परिचित न होने की भी सम्भावना है । अत वे आश्चर्य न कर, क्योंकि ज्ञानी आश्चर्य नही करते । वे जानते हैं कि 'नहि सर्व सर्वं वेत्ति सबलोग सब बात नही जानते । अतर्क्या खलु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत् । जो बातें तर्क की विषय नही उनम तर्क करना उचित नही है अज्ञानी ही, अभिमान से उन सब बातो को मानने से इनकार करते हैं जो उनकी समझ के बाहर हैं ।

नई बात के सुनने से आश्चर्य होना स्वाभाविक है । पर रामकथा के लिए यह नियम नही है । जिस भाँति गूलर के फल के कीडे उस फल के बाहर की बात नही जानते और न उसमे उनका तर्क चलता है । उसी भाँति मनुष्य भी मर्त्यलोक के बाहर की बात नही जानते और तद्विषयक उनका तर्क वास्तविकता से बहुत दूर चला जाता है । यथा उमरि तरु विसाल तव माया । फल ब्रह्माड अनेक निकाया । जीव चराचर जतु समाना । भीतर बसहिं न जानहिं आना ।

रामकथा कै मिति जग नाही । असि प्रतीति तिन्हके मन माही ॥
नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥३॥

अर्थ रामजी की कथा की सीमा जगत् मे नही है । उनके मनम ऐसा विश्वास

रहता है। रामजी के नाना अवतार हुए हैं तथा रामायण सौ करोड है और अपार हैं।

व्याख्या रामजी के चरित्र का अन्त नही। कितने चरित्र ऐसे हुए जिनका पता न दशरथ, कौसल्या को लगा न भाइयो को लगा, दूसरो की कौन चलावे। अत इनके चरित्र अपार हैं। यदि एक ही रामावतार हुआ होता तब तो यह भी प्रश्न उठ सकता था कि एक रामायण की कथा दूसरे से क्यो नही मिलती ? यहाँ ता प्रत्येक कल्प मे रामावतार होता है और उन अवतारो के चरित सर्वथा समान नही होते। अनन्त कोटि कल्प बीत गये। सबमे रामावतार हुआ। सबम कुछ न कुछ भिन्नता थी। सबका वर्णन ऋषिया ने रामायण बनाकर किया। इसलिए असख्य रामायण है।

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न ससय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥४॥

अर्थ रामजी के सुन्दर चरित कल्पभेद से अनेक भाँति मुनीश्वरो ने गान किया है। यह बात हृदय म लाकर सशय न कीजिये। कथा को आदरपूर्वक भक्ति से सुनिय।

व्याख्या किसी कल्प की कथा वाल्मीकि ने कही, किसी को व्यास ने कही, किसी की मार्कण्डय ने कही। अत कथाओ मे भेद पडना स्वाभाविक है। अठारह पुराण व्यासकृत हैं और सबम श्रीरामकथाएँ है और सब भिन्न है। क्योकि सब पुराणो म भिन्न कल्पो[1] की कथाएँ हैं। अत कथाभेद के विषय म सशय करना बडी भारी भूल है। सशय करने से मूल प्रयोजन नष्ट हो जाता है। कथा के प्रति आदर या प्रेम नही रह जाता। अत श्रोता का अकल्याण होता है।

दो राम अनत अनत गुन, अमित कथा विस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहि, जिनके बिमल बिचार ॥३३॥

अर्थ रामजी अनन्त है। उनके गुण अनन्त हैं। उनकी कथा का विस्तार अपार है। जिनके निर्मल विचार हैं वे सुनकर आश्चर्य न मानेगे।

व्याख्या रामजी देशत अनन्त हैं। यथा कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही।

---

१ वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशर । श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरथाब्रवीत् ॥
यत्राह नारदो धर्मान् बृहत् कल्पाश्रयाणि च। इत्यादि।

विष्णु पुराण म वाराह कल्प की, वायुपुराण म श्वेत कल्पकी, नारद पुराण मे बृहत् कल्प की कथाएँ हैं। इत्यादि। ब्रह्मदेव के एक दिन को कल्प कहते है। वह एक सहस्र चतुर्युगिया का होता है। उसके बाद प्रलय हो जाता है। उतने दिना तक प्रलय रहता है। फिर सृष्टि होती है। दूसरा कल्प आरम्भ होता है। एक ब्रह्मदेव का काल ३६००० कल्प का होता हैं। सब कल्पो मे रामावतार होना है। इस भाँति अगणित ब्रह्मदेव हुए और हाग। अत राम कथा की मिति नही है।

कालत अनन्त है। यथा : काल व्याल कर भक्षक जोई। वस्तुत. अनन्त हैं। यथा · दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मड। गुण अनन्त हैं। यथा : जल सीकर महिरज गनि जाही। रघुपति गुन नहि वरनि सिराही। अमित कथा विस्तार है। यथा : श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जे गावही। सत सेप, सारद, निगम कवि तेउ तदपि पार न पावही।

अत विचारशील आश्चर्य न करेंगे। नहि आचरज करहि अस जानी से उपक्रम और सुनि आचरज न मानिहैं जिनके विमल विचार से उपसहार किया।

एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिरधरि गुरपद पंकज धूरी॥
पुनि सवही विनवौ करजोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी॥१॥

अर्थ · इस भाँति सब सन्देहो को दूर करके और गुरुजी के चरण कमल की धूलि को सिर पर रखकर फिर हाथ जोडकर सबकी विनती करता हूँ जिससे कथा की रचना मे कोई दोप न लगे।

व्याख्या : करिय न सशय अस उरआनी से उपक्रम करके एहि विधि सब ससय करि दूरी से उपसंहार करते हैं। सशय दूर करने की विधि ऊपर लिख आये हैं। पदपकजरज का वाह्य उपयोग तीन प्रकार से होता है। १ सिर पर रक्खा जाता है। २ हृदय मे लगाया जाता है और ३. आँख में लगाया जाता है। यथा . रज सिर धरिहिय नयनन्हि लावहिं। रघुपति मिलन सरिस सुख पावहिं। सो ग्रन्थकार ने ग्रन्थारम्भ करते ही गुरुपदरज को नेत्रो मे लगाकर विवेक विलोचन को निर्मल किया। यथा : तेहि करि विमल विवेक विलोचन। वरनौ रामचरित भवमोचन। तव समष्टि की वन्दना करने लगे। वन्दना समाप्त होने पर कथा आरम्भ करने के पहिले गुणगणो को वश मे करने के लिए उस धूलि को सिर पर रक्खा : यथा सिर धरि गुर पद पकज धूरी। अयोध्या काण्ड के आरम्भ मे हृदय मे लगावेंगे।

व्यष्टि जीव और समष्टि ईश्वर है। अत. तीसरी वार समष्टि की वन्दना करते हैं। एक बार कर चुके हैं : समुझि विविध-विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइय खोरी। अब फिर वैसी ही विनय कर रहे है। दूसरी बात यह कि ग्रन्थकार ने बुधिवल के लिए सबसे प्रार्थना की है। यथा · निज बुधिवल भरोस मोहि नाही। ताते विनय करौ सब पाही। अब यदि कथा मे दोप रह जाय तो दोप देखनेवाला ही दोपी है। क्योकि ग्रन्थकार ने तो कृपा के लिए विनय की थी। उन्होने कृपा क्यो नही की?

सादर सिवहि नाइ अब माथा। वरनौ विसद रामगुन गाथा॥
संवत सोरह सै इकतीसा। करौ कथा हरिपद धरि सीसा॥२॥

अर्थ : अब मै शिवजी को आदर सहित सिर नवाकर रामजी के विमल गुणो की गाथा का वर्णन करता हूँ। हरि के चरणो मे सिर रखकर मैं सवत् १६३१ मे कथा की रचना करता हूँ।

व्याख्या : व्यास मे वन्दना करके अब समास मे वन्दना करते हैं। समास मे

चार की वन्दना है। यथा १ गुरु की २ समष्टि की ३ शिव की और ४ हरि की। कथा के प्रारम्भ मे आचार्य को वन्दना आवश्यक है। अत: तीसरी वार शिवजी को प्रणाम किया। यहाँ से पूर्व घाट की कथा प्रारम्भ हुई।

पहिले चरणकमल की वन्दना की थी। अब प्रारम्भ करते समय हरिके चरणो पर सिर रक्खे देते हैं। रचना का काल कहते हैं कि विक्रमीय सम्वत् १६३१ मे रचना प्रारम्भ की। जब उसके उल्लेख का अवसर आया तब लिख दिया। यहाँ से पूर्व दीन: घाट की रचना मे हाथ लगाया। नाम, रूप और लीला का वर्णन पहिले कर आये। अब यहाँ से धामवर्णन आरम्भ करते हैं।

नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहि। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि ॥३॥

अर्थ : चैत्रमास, नौमी, मङ्गलवार को अवधपुरी[1] मे इस चरित्र का प्रकाश किया। जिस दिन रामजी का जन्म वेद कहते है सारे तीर्थ वहाँ चले आते हैं।

व्याख्या : तिथि, वार, मास कहकर देश कहते हैं। भाव यह कि रामजन्म का काल और देश तथा रामचरित मानस के जन्म का काल और देश एक ही है। 'जेहि दिन राम जन्म' कहकर शुक्ल पक्ष भी कह दिया। 'नौमी भौमवार' कहने का भाव यह कि ऐसा होने से सर्वसिद्धिप्रदयोग पड जाता है। यथा : शनिभौमगता रिक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिनी। श्रीरामनवमी के दिन अयोध्या का माहात्म्य और भी अधिक हो जाता है क्योकि उस दिन सभी काशी, प्रयागादि तीर्थ वहाँ आजाते हैं। देशकाल की उत्तमता कहकर, अब वातावरण कहते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहि रघुनायक सेवा ॥
जनम महोत्सव रचहि सुजाना। करहि राम कल कीरति गाना ॥४॥

अर्थ : उस दिन : असुर, नाग, पक्षी, मुनि और देवता आकर रघुनायक की सेवा करते हैं। सुजान लोग रामजी के जन्म का महोत्सव करते हैं और उनकी सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

व्याख्या : रामजी के सभी उपासक वहाँ रामनौमी को जुट जाते हैं। देवता असुर आदि अदृश्य रूप से आकर रामजी की सेवा करते हैं और सुजान : मनुष्य : तो जन्म महोत्सव मनाते हैं और सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

दो. मज्जहिं सज्जन वृन्द बहु, पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरीर ॥३४॥

अर्थ : सज्जनो के झुण्ड के झुण्ड पवित्र सरयू नदी के जल मे स्नान करते है और सुन्दर श्याम शरीर का हृदय मे ध्यान करके रामजी का जप करते है।

व्याख्या : खल कदाचित् ही कोई सज्जनसङ्ग मे पडकर चला जाता हो नहीं

१. तिथिर्धन्या च नवमी यस्या जातो हरि: स्वयम्। नवमी तिथि धन्य है, जिसमे स्वय हरि का अवतार है। ऋतूना कुसुमाकर, ऋतुओ मे वसन्त धन्य है।

तो प्रायेण नही जाते । सज्जन लोग पावन सरयू नीर मे मज्जन करते है । जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा । मम समीप नर पावहि बासा । मनसा वाचा कर्मणा रामोपासना वहाँ होती है । 'मज्जन' से कर्मणा, 'जपहि' से वाचा, 'धरिध्यान उर' से मनसा कहा । जानकीजी की चरचा नही की क्योकि उसदिन 'बालभाव' की उपासना की प्रधानता है ।

दरस परस मज्जन अरु पाना । हरै पाप कह वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति । कहि न सकै सारदा बिमल मति ॥१॥

अर्थ वेदपुराण कहते है कि दर्शन, स्पर्श, मज्जन और पान पाप हरण करता है । यह नदी पवित्र है । इसकी महिमा अत्यन्त असीम है । निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती भी नही कह सकती ।

व्याख्या दूर से दर्शन करते ही पाप भागता है । निकट आने पर स्पर्श, प्रवेश करके मज्जन तत्पश्चात् आचमन । यही विधान है । इनमे से एक-एक पापनाशक हैं । यहाँ वेदपुराण का प्रमाण देते हैं क्योकि वे ही अदृष्टार्थ ज्ञापक हैं ।

नदी पुनीत और भी हैं । यथा नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रिप्रिया निज तपबल आनी । सुरसरि धार नाम मदाकिनि । जो सब पातक पोतक डाकिनि । पर अति अमित महिमा इसी की है । स्वर्ग लोक की वक्ता सारदा नही कह सकती । वाग्देवता ही नही कह सकती । अत सर्वथा अकथनीय महिमा है ।

राम धामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त बिदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तनु नहि ससारा ॥२॥

अर्थ यह सुहावनी पुरी रामजी के धाम को देनेवाली है । सभी लोको मे प्रसिद्ध अति पवित्र है । जगत् मे चार प्रकार के जीव हैं । जिनका पारावार नही पर अवध मे शरीर छोडने से ससार फिर नही होता है ।

व्याख्या . राम वचन । यथा मम धामदा पुरी सुखरासी । सुखराशि होने से 'सोहावनि' कहा । लोक समस्त बिदित अति पावनि । यथा जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेदपुरान बिदित जग जाना । अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ । यह प्रसग जानै कोऊ कोऊ । अवधपुरी प्रति भुवन निनारी । अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।

मोक्षदायिनी सातो पुरियो मे प्रथम है । अत 'अवध तजे तनु नहि ससारा' कहते हैं ।

सबबिधि पुरी[१] मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मगल खानी ॥
बिमल कथा कर कीन्ह अरभा । सुनत नसाहि काम मद दभा ॥३॥

---

१ रामस्य नाम रूपश्च लीलाधाम परात्परम् । एतच्चतुष्टय नित्य सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

अर्थ रामजी का नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम चारो नित्य हैं । सच्चिदानन्द की मूर्ति हैं ।

अर्थ ' सब भाँति से पुरी को मनोहर, सब सिद्धियो की देनेवाली और मङ्गल की खानि जानकर निर्मल कथा का मैंने आरम्भ किया है। जिसके सुनने से काम, मद और दम्भ दूर हो जाते हैं।

व्याख्या पुरी के मनोहर होने की सब विधि कह चुके हैं। मोक्ष की विधि कही कि पुरी मे शरीर छोडने से होता है। सिद्धि की विधि कहते है कि माँगने से मिलती है। मङ्गल की विधि कहते है कि अवध पुरी म उसकी खानि है। भक्ति की विधि कहते हैं कवनेउ जनम अवध बस जोई। रामपरायन सो परि होई। यहाँ तक धाम का वर्णन किया।

श्रीरामजी के नाम, रूप, लीला और धाम चारो सच्चिदानन्द रूप हैं। यहाँ धाम का वर्णन समाप्त करते हैं। शेप तीन का वर्णन पीछे हो चुका है।

अवधपुरी विमल है। यथा लोक समस्त विदित अति पावनि। सरयू विमल है। यथा नदी पुनीत अमित महिमा अति। समय विमल है। यथा जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं। अत ऐसे विमल सयोग म विमल कथा का प्रारम्भ किया। कथा की रचना पहिल ही करके उस दिन 'अथ' और 'इति' नही लिख दिया। कथा ऐसी निमल है कि तदनुसार आचरण तो दूर की बात है उसके श्रवण मात्र से काम, मद और दम्भ का नाश हो जाता है।

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा॥
मन करि विपय अनल वन जरई। होइ सुखी जौ येहि सर परई॥४॥

अर्थ इसका नाम रामचरितमानस है। जिसे कानो स सुनने से विश्राम मिलता है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल म जल रहा है। यदि इस सरोवर म आ पडे तो सुखी हो जाता है।

व्याख्या सुनत नसाहिं काम मद दभा कहकर दोपापनयन कहा। अब गुणाधान कहते है कि कानसे सुनते ही विश्राम मिल जाता है। उदाहरण देते है कि जैसे हाथी दावानल म फँस गया हो, महा विकल होकर इधर उधर दौडने पर भी शरण कही न मिलती हो, प्राणसकट उपस्थित हो उस समय यदि सरोवर मिल जाय तो उसम प्रवेश करके वह सुखी हो जाता है। इसी भाँति यह मन विपय वन के दावानल म जल रहा है। कही शरण नही है। वह यदि इस रामचरितमानस म जा पडे तो सुखी हो जाता है। इसलिए इसका नाम 'रामचरितमानस है।

रामचरितमानस मुनिभावन। विरचेउ सभु सुहावन पावन॥
त्रिविध दोप दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुप नसावन॥५॥

अर्थ मुनियो को प्रिय, पवित्र और सुहावने रामचरितमानस को शिवजी ने रचा। यह तीना प्रकार के दोप दुःख और दरिद्रता को नष्ट करनेवाला है। कलि के कुचाल और सब पापो का नाश करता है।

व्याख्या यह रामचरित सर मुनियो को मनभावन है खल का नही। उसे तो जातइ नीद जुडाई होई और 'जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि

ताहि बुझावा। सर मे दोष नही, यह तो देवखात है। महादेवजी का बनाया है। अत इसके सुहावन पावन होने मे सन्देह को स्थान नही है।

दोष, दु ख और दारिद्र्य को तीन प्रकार का माना। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। दोष होने से ही दु ख होता है। दोष कारण है, दु ख कार्य है। अभावरूप दारिद्र्य सब दु खो से बडा है। धनाभाव आधिभौतिक दारिद्र्य है। पुण्याभाव आधिदैविक दारिद्र्य है। ज्ञानाभाव आध्यात्मिक दारिद्र्य है। यह रामचरितमानस वनाग्नि के समान इनका नाश करनेवाला है। यह 'सुहावन' पद की व्याख्या है।

कलि की कुचालि। यथा भए लोग सब मोहवस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म। और सब पापो का रामचरितमानस नाश करता है। यथा करहिं पाप दुख पावहिं।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवासन भाखा॥
ताते रामचरितमानस वर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥६॥

अर्थ इसे रचकर महादेवजी ने अपने मन मे रक्खा और सुअवसर पाकर भवानी से कहा। इसीसे हर शिवजी ने सोच समझकर और प्रसन्न होकर इसका नाम श्रेष्ठ रामचरितमानस रक्खा।

व्याख्या महादेवजी ने बनाया तो सही पर अपने मनमे ही रहने दिया। किसी से कहा नही। सुसमय पाकर अर्थात् जब उमा कथा सुनने के लिए आर्त हुईं, उन्हे कथा सुनने की उत्कट इच्छा हुई, तब उनसे कहा। सतीस्वरूप मे नही कहा।

जब कथा कहनी पडी तो उसका कुछ नाम भी चाहिए। अत विचारने पर यह बात मन मे आई कि यह कथा मानससर सी सुहावन पावन है। मानससर म और इनम गुणसाम्य भी यथेष्ट है। अत नाम अच्छा मिल जाने से प्रसन्न होकर इसका नाम 'रामचरितमानस' रखा।

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥७॥

अर्थ उसी सुहाई और सुख देनेवाली कथा को मै कहता हूँ। सज्जनो! आदर पूर्वक मन लगाकर इसे सुनो।

व्याख्या हित मनोहारि च दुर्लभ वच। हित भी हो और मनका हरण करनेवाला भी हो, ऐसा वचन दुर्लभ है। सो यह पूरी की पूरी कथा हित और मनोहारी है। इसलिए 'सुखद सुहाई' कहते हैं। श्रीग्रन्थकार के तीन घाट के श्रोता सुजन हैं। क्योकि उनको इसे सुनकर सुख होता है। यथा पइहहिं सुख मुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास। यथार्थ फल प्राप्ति के लिए सावधान करते है कि आदर के साथ मन लगाकर सुनो। यह कथा बहुत बडे महान् लोगो का प्रसाद है। अत आदर के साथ ग्रहण करो और यह बडी हितकारिणी है, इससे मन लगाओ।

१. मानससर प्रसङ्ग

दो. जस मानस जेहि विधि भयेउ, जगप्रचार जेहिं हेतु ।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

अर्थ : यह मानस जैसा है जिस विधि से हुआ और जिस कारण से जगत् मे इसका प्रचार हुआ अब वही सब प्रसङ्ग उमा वृषकेतु को स्मरण करके कहता हूँ ।

व्याख्या : १ मानस का मानचित्र खीचने, उसके बनने की विधि वर्णन करने और ससार में उसके प्रचार का कारण बतलाने का ग्रन्थकार सकल्प करते हैं। सकल्प भगवत्स्मरण पूर्वक होना चाहिए। इसलिए उमा वृषकेतु का स्मरण करते हैं। क्योंकि उमा प्रणवरूपा है। उमा का नाम प्रणव के अक्षरो से ही बना हुआ है : उ+म+अ=उमा। चतुष्पाद धर्म ही वृष है। ऐसा वृष है केतु पताका जिसका, उस सत् रूप ब्रह्म को वृषकेतु कहते हैं। इस भाँति सकल्प के पहिले ॐतत्सत्[1] का 'उमा-वृषकेतु' के रूप मे स्मरण करते हैं, जिसमे सबका अधिकार है। दूसरा कारण उमा-वृषकेतु के स्मरण का यह भी है कि उमा और वृषकेतु ही इस रामचरितमानस के प्रथम श्रोता और वक्ता हैं। उन्ही से इसकी परम्परा चली है।

सभुप्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहुँ सुधारी ॥१॥

अर्थ : शिवजी की कृपा से हृदय में सुमति उल्लसित हुई और तुलसी रामचरितमानस का कवि हुआ। बुद्धि के अनुसार मनोहर बनाता है। सुजन जन सुन्दर चित्त से सुनकर सुधार लें।

व्याख्या : पहिले सुमति का बडा घाटा था, मति ससार मे निरत थी। यथा कहँ मति मोरि निरत ससारा। मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। निज बुधि बल भरोस नहि मोरे। इसलिए अपने को कवि नही मानते थे। यथा . कवि न होउँ नहि चतुर कहावो। कवित विवेक एक नहि मोरे। अब शङ्कर के प्रसाद से सुमति उल्लसित हुई है। अत स्वय अपने को कह रहे हैं : रामचरितमानस कवि तुलसी।

रामजी का नाम मनोहर है। यथा आखर मधुर मनोहर दोऊ ॥
रामजी का रूप मनोहर है। यथा : राजकुँअर तेहि अवसर आए।
मनहु मनोहरता तन छाए ॥
रामजी की लीला मनोहर है। यथा : परम मनोहर चरित अपारा।
करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥

---

१ ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध. स्मृत । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा।
ओम, तत्, सत्, यह तीन प्रकार का ब्रह्म का निर्देश है। पूर्व काल मे इस तीन प्रकार के नाम मे ही ब्राह्मण, वेद और यज्ञ का विधान किया गया है।

रामजी का धाम मनोहर है। यथा सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मगलखानी॥

अत इनकी कथा भी मनोहर होनी चाहिए सो मैं मति अनुसार मनोहर कर रहा हूँ इसे सुजन प्रसन्न मन होकर सुने और मनोहरता मे जहाँ त्रुटि हो वहाँ सुधार लें। यथा सो सुधारि हरि तन जिमि लेही। दलि दुख दोप विमल जस देही।

सुमति[१] भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू॥
बरषहिं राम सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मगल कारी॥२॥

अर्थ सुमति भूमिका है। हृदय गहरा स्थान है। वेद, पुराण समुद्र हैं। साधु बादल हैं। वे रामजी के सुयशरूपी मधुर मनोहर मङ्गलकारी जल की वर्षा करते हैं।

व्याख्या तो सुमति भूमिका की प्राप्ति शम्भुप्रसाद से हो गई। उसी के कारण हृदय मे भी गहराई आगई। अब वर्षा हो तो भरकर तालाब हो जाय। सो चार वेद बडे बडे चारो समुद्र हैं। अठारह पुराण छोटे समुद्र हैं। जल का परमेश्वरी भण्डार समुद्र है। पर वह खारा है, सबके लिए उपयोगी नहीं है। उसके अधिकारी मेघ है। उन्ही मे यह सामर्थ्य है कि उसमे से प्राणियो के उपयोगी अश को ले लेव। खारे जल को मीठा करके बरसे। इसी प्रकार वेद, पुराणो म सब कुछ भरा है। सो साधुआ में ही यह सामर्थ्य है कि उसमे से रामयश तथा भक्ति का पृथक् करके ले लेवें। और ससार मे उसकी वर्षा कर दे। यथा सुजस पुरान निगम आगमवद। जासु सुजस त्रैलोक उजागर रामचरित अमृतवत् मीठा है। यथा श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। नाथ तवानन ससि श्रवत कथा सुधा रघुवीर। श्रवन पुटनि मन पान करि नहि अघात मति धीर। भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम चारो मगलमय हैं।

नाम मगलमय है। यथा भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
राम जपत मगल दिसि दसहूँ॥
रूप मगलमय है। यथा मगल भवन अमगल हारी।
द्रवहु सो दसरथ अजिर विहारी॥
लीला मगलमय है। यथा मगल करनि कलिमल हरनि,
तुलसी कथा रघुनाथ की।
धाम मगलमय है। यथा सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मगलखानी॥

यहाँ सुयश वारि के तीन गुण कहे। १ मधुर २ मनोहर ३ मगलकारी।

लीला सगुन जो कहहि बखानी। सोइ स्वच्छता करै मल हानी॥
प्रेम भगति जो वरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतल ताई॥३॥

---

१ आठ दोहों मे 'मानस प्रसङ्ग' कहा गया है, इस पर 'भाव प्रकाशिका' नाम की वृहत् टीका प्रकाशित हो चुकी है। अत यहाँ सक्षेप से टीका की जाती है।

अर्थ सगुण लीला जो बखान करते हैं वही स्वच्छता मल की हानि करती है। प्रेम और भक्ति जिनका वर्णन नही किया जा सकता, वही मिठास तथा सुन्दर तरावट है।

व्याख्या तीनो गुणो मे से पहिले मनोहरता कहते हैं। जल की स्वच्छता ही मनोहरता है। साधु लोग सगुण लीला को बखानकर कहते हैं, वही स्वच्छता है। रामजी की लीला दो प्रकार की होती है, एक निर्गुण लीला, दूसरी सगुण लीला। निर्गुण लीला यथा लव निमेप महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। सगुण लीला यथा . कपि सेन सग सहारि निसिचर रामसीतहि आनि है। त्रैलोक पावन सुजस सुरमुनि नारदादि बखानि हैं।

उस सगुण लीला से मल की हानि होती है। सबकी उपकारिण नही होने मे निर्गुण लीला बखानकर नहीं कहते। इसीलिए वर्षा के जल मे गहराई नही के बराबर रहती है। बूंद बूंद बरसता है। क्योकि गहराई तो निर्गुण महिमा मे है। यथा ' रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा। मानस सरोवर का जल बाहर का मल दूर करता है। पर यह जल भीतर का मल दूर करता है।

इस जल मे प्रेम मधुरता है और भक्ति शीतलता है। जल के चार गुण कहे गये हैं निर्मलता इक जानिये पुनि शीतलता मान। मधुर सुवासित चारगुन जल के प्रकट बखान। सो वर्षा के जल मे सुगन्ध नही होती, तीन ही गुण होते हैं। यहाँ मधुरता के साथ शीतलता भी कहा। अब मङ्गलकारित्व कहेगे।

सो जल सुकृत सालि हित होई। रामभगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥४॥

अर्थ वह जल सुकृतरूपी धान के लिए हितकारी है। वही रामजी के भक्तो का जीवन है। वह पवित्र और सोहावन जल मेधा - धारण शक्ति - रूपी पृथ्वी पर पड़कर और सिमिटकर कानरूपी मार्ग से : भीतर चला।

व्याख्या वह वर्षा का जल पुण्यरूपी धान को बड़ा लाभ पहुँचाता है। दूसरे जल से धान वैसा सुख नही मानता। अर्थात् रामयश की वर्षा मे ही पुण्य की रात दिन बढोत्तरी होती है। यदि साधु द्वारा रामयश का श्रवण न हुआ तो कितना ही सुकृत हो, वह सूख जाता है। क्योंकि सुकृतरूपी धान के पौधो को रामयश की बड़ी प्यास होती है। यदि प्यास न हुई तो समझना चाहिए कि वह पुण्य शालि नही है कोई दूसरी घास है। वही जल रामभक्तो का जीवन है। यथा राम उपासक जे जग माही। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाही। सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

उसी वर्षा के जल से धान भी होता है और उसी से जलाशय भी भर जाते हैं। जो जल ढालुएँ स्थल पर पडता है वह सिमिटकर नाली द्वारा जलाशय मे पहुँचता है। उसी भाँति यह रामसुयश जल मेधा धारण शक्ति - रूपी ढालुएँ स्थल पर पड़कर श्रवण मार्ग से सिमिटकर भीतर जाता है।

भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥५॥

अर्थ : सुन्दर मानस भर उठा और सुन्दर स्थल पाकर थिराया। सुखद, शीत रुचिवाला सुन्दर और पुराना हुआ : पक गया।

व्याख्या : गुरुजी के उपदेश द्वारा पहिले ही से मानस सजल था। यथा : तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझपरी कछु मति अनुसारा। अब साधुओं की रामयश वर्षा से भर उठा। पहिले मेघामहिगत होने से ढावर हो गया था। यथा : भूमि परत भा ढावर पानी। अब सुथल पाकर थिराया। पहिले नया पानी दुःखद और गरम था। अब सुखद हुआ, शीतरुचि हुआ : आश्विन मे पुराना और कार्तिक मे चिराना हुआ। इसी भाँति सुयश, नागपाश बन्धन, सीता विरह, रावण वधादि चरित्रों से ढावर हो गया था। फिर शिव, भुसुण्डि, याज्ञवल्क्यादि के उत्तरों से निर्मल हुआ। विरहाभास के निश्चय से सुखद, क्रोधाभास के निश्चय से शीतरुचि और बन्धनाभास के निश्चय से चिराना : पक्का हुआ। अथवा मनन, निदिध्यासन से उपर्युक्त गुणयुक्त हुआ।

दो. सुठि सुदर संवाद वर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥३६॥

अर्थ बुद्धि से विचारकर अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ सवादो की रचना की। वे ही इस सुन्दर और पवित्र सरोवर में चार मनोहर घाट है।

व्याख्या : मानस तो पूर्ववक्ताओं का भी बना, पर घाट न बाँधने से दुर्गम रहा। यथा : यत् पूर्वं प्रभुणाकृत सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। अत बुद्धि से विचारकर चार घाट बाँधा। जिसमे स्नान करनेवालो को सुभीता हो। सब प्रकार के अधिकारियो के लिए उपयोगी हो। पहिला पूर्व घाट स्वय ग्रन्थकार का है, जिसके वे वक्ता हैं और उनका मन या सुजन श्रोता है। यह दीनघाट या गोघाट है। यथा दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पियहिं बाजि गज ठाटा। यहाँ लँगडे लूले सभी पानी पी सकते हैं। इसका दीनघाट होना स्पष्ट है। ग्रन्थकार अपने लिए कहते हैं अति बडि मारि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी। इत्यादि।

दूसरा घाट भारद्वाज और याज्ञवल्क्य सवाद दक्षिण ओर बँधा हैं। यह कर्म घाट है : मज्जहिं तहाँ वर्ण चारिउ नर। इसमे शङ्कर भवानी पूजन आदि कर्म कहकर तब कथा कहेगे। तीसरा पश्चिम घाट भवानी शङ्कर सम्वाद है। इसे ज्ञान घाट कहते हैं। यहाँ 'झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने' इत्यादि ज्ञान निरूपण करके तब कथा कही। इसे राजघाट भी कहते है। चौथा उत्तर घाट, पनिघट या उपासना घाट है। तहाँ न पुरुष करहिं असनाना। यहाँ न कर्म कहा, न ज्ञान कहा, न दीनता कही, पहिले ही कथा कहना प्रारम्भ कर दिया। तीन सवाद बालकाण्ड मे दिखलाये और चौथा उत्तर मे दिखलाकर, इसे पनिघट की भाँति अलग होना सूचित किया।

पहिले कहा था . जस मानस जेहि विधि भयउ। सो 'जेहि विधि भयउ' का ही वर्णन पहिले किया। अब 'जस मानस' का वर्णन करेंगे।

घाट	समय	देश	वक्ता	श्रोता	भाषा
पूर्व	रामनौमी	अयोध्या	गोस्वामीजी	सुजन, मन	प्राकृत
दक्षिण	फाल्गुन	प्रयागराज	याज्ञवल्क्य	भरद्वाज	संस्कृत
पश्चिम	अनियत	कैलास	शिवजी	उमा	संस्कृत
उत्तर	अनियत	नीलगिरि	भुसुण्डि	गरुड़	पक्षी भाषा

कहीं वक्ता श्रोता के यहाँ और कहीं श्रोता वक्ता के यहाँ। इसका नियम नहीं है। मणि, माणिक्य मुक्तामय होने से ये घाट मनोहर हैं।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥१॥

अर्थ : सातों प्रबन्ध सात सीढ़ियाँ : फलकों की पंक्तियाँ हैं। जिनको ज्ञानरूपी नेत्र द्वारा देखने से मन प्रसन्न हो जाता है। मैं रामजी की निर्गुण और अगाध महिमा वर्णन करूँगा। वही जल की गहराई है।

व्याख्या : ये सातों प्रबन्ध रामभक्ति की सात सीढ़ियाँ अर्थात् सात मार्ग हैं। यथा : एहि महँ सुभग सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना। भक्ति को छोड़कर मुक्ति कहीं रह नहीं सकती। यथा : जिमि थल जल बिनु रह न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई। तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई। सो ये सातों प्रबन्ध सातों पुरियों की भाँति मोक्ष प्रापक हैं। इन्हें यदि ज्ञान की आँखों से देखें तो मन सन्तुष्ट हो जाता है।

छप्पय : बालकाण्ड है अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य, काशिका किष्किन्धा भन॥
काञ्ची सुन्दर लसत लङ्क उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातो मन भावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो रामचरित्र सर।
विजयानँद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर॥

बालकाण्ड : अवध, अवधवासी, सरयू, रामनवमी आदि का माहात्म्य इसमें वर्णन है, इसलिए बालकाण्ड को अयोध्या कहा। अयोध्याकाण्ड : इसमें रामजी के वनवास का वर्णन है। श्रीकृष्णजी की विरह कथा की समता से इसे मथुरा कहा। आरण्यकाण्ड : माया के बाहुल्य से इसे मायापुरी : हरद्वार कहा। किष्किन्धाकाण्ड : राममन्त्र के जप से काशी में ही शिवजी को रामजी मिले, यहाँ हनुमान् जी को मिले, इसलिए किष्किन्धा को काशी कहा। सुन्दरकाण्ड : काञ्ची दो हैं : शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची। सुन्दरकाण्ड में भी दो भाग है, हनुमच्चरित और रामचरित, इसलिए इसे काञ्ची कहा। लंकाकाण्ड : लंका और उज्जैन दोनों के निरंश देश होने से तथा महाकालेश्वर : रुद्र की प्रधानता से लंका को उज्जैन : अवन्तिका कहा। उत्तरकाण्ड : इस काण्ड में रामजी ने राज्य किया। द्वारका में कृष्णजी ने किया। इसलिए उत्तर को द्वारका माना।

कुछ महात्माओ का यह मत है कि बालकाण्ड मे श्रीसीताजी का रामजी से सयोग हुआ, यही साख्यशास्त्र है। अयोध्याकाण्ड विराग है। आरण्यकाण्ड मीमासा, किष्किन्धाकाण्ड योगशास्त्र, सुन्दरकाण्ड न्यायशास्त्र और उत्तरकाण्ड साम्राज्य शास्त्र हैं। ये बातें ज्ञाननयन से देखी जा सकती हैं, तब मन मान जाता है। बालकाण्ड मे प्रकृति, पुरुष का सयोग वर्णन है, इसलिए इसे किसी भाँति साख्यशास्त्र से सम्बद्ध कह सकते हैं। अयोध्या मे वैराग्य का निरूपण स्पष्ट है। लङ्काकाण्ड को वेदान्त कहना भी अध्यात्मदृष्टि से बन जाता है। उत्तरकाण्ड को भी साम्राज्यशास्त्र कहने मे आपत्ति नही है। परन्तु आरण्य को मीमासा, किष्किन्धा को योग और सुन्दरकाण्ड को न्यायशास्त्र कहने का कोई आधार नही मिलता। अन्त और आदि का मिलना ही दबाव हैं। यथा : १ आए ब्याहि राम घर जबते और जबते राम ब्याहि घर आए। २ भरतचरित करि नेम जे सप्रेम गावहिं सुनहिं तथा पुरनर भरत प्रीति मैं गाई। ३ बैठे अनुज सहित रघुराया तथा आगे चले बहुरि रघुराया। ४ जामवन्त कह सुनु हनुमाना। जामवन्त के वचन सोहाए। ५ निज भवन गवनेउ सिंधु तथा सिंधु वचन सुनि राम। ६ प्रभु हनुमंतहि कहेउ बुझाइ। तथा विप्ररूप धरि पवनसुत आइगये जनु पोत। इन छवो को दबाव कहिये या फर्स कहिये। सब सीढियाँ जल से पूरित हैं। मानसर का दर्शन नेत्र से होता है और रामचरितमानस का दर्शन ज्ञाननेत्र से होता है। रघुपति की गुणातीत महिमा का बाध नही होता। सत् का किसी अवस्था मे बाध नही हो सकता। इस महिमा का थाह नही क्योकि थाह तो गुणो से मिलता है। परन्तु इस महिमा मे गुण नही। इसलिए अथाह है। यथा : अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अतर जामी। थाह तो सगुण महिमा का भी नही है पर, राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। इत्यादि कहकर कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। पर निर्गुण महिमा मे उतना भी अवकाश नही है। साधु मेघ ने जो राम सुयश वारि की वर्षा की थी उसमे गहराई बहुत कम थी। अब वह जल जब मानस मे इकट्ठा हुआ तो बडी गहराई आगई। निर्गुण महिमा का आधिक्य बहुत बढ गया।

रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा वीचि विलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई ॥२॥

अर्थ रामजी और सीताजी का यश ही अमृत के समान जल है। उपमा सुन्दर तरगो का विलास · कार्य वर्ग है। सुन्दर चौपाइयाँ सघन पुरइन कमल का पत्ता है। युक्तियाँ सुन्दर मणिवाली मनोहर सीपियाँ है।

व्याख्या रामजी और सीताजी के यश का मेल है। वही मिठास है जो अमृत तुल्य है। पहिले कह आये हैं कि रामचरित मधुर है। अब 'सीययश' के साथ योग होने से वह माधुर्य अमृत तुल्य हो गया। यथा गावहि छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। रामजी ने सीता का यश कहा। यथा कंकन किंकिनि

नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन मन राम हृदय गुनि। इत्यादि। सीताजी ने राम यश कहा। यथा सोभा सीव सुभग दोउ बीरा। इत्यादि। कहीं 'बीचि' पाठ न होकर 'बीच' पाठ है। वहाँ अर्थ करना पडेगा कि बीच बीच म जो उपमा है वही जल का विलास है। यहाँ उपमा अलङ्कार मान का उपलक्षण है।

उस मानस मे पुरइन सघन है। इसम चारु चौपाइयाँ सघन हैं। वहा पुरइन के कारण जल नही दिखाई पडता, पुरइन हटाई जाय तो जल दिखाई पडे। यथा पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म। यहाँ चौपाई के शब्दो को अलग करे अर्थात् ध्यान दे तब राम सुयशरूपी जल दिखाई पडे। युक्ति मणि सीप है। उसम मुक्ता फल छिपा है। मुक्ता फल रामजी के गुणगण हैं। यथा जस तुम्हार मानस विमल हसिनि जीहा जासु। मुक्ता हल गुनगन चुनइ राम बसहु हिय तासु। युक्ति उपाय को कहते हैं। जो सिद्धि उपाय से होती है, वह पराक्रम से नही होती। श्रीरामचरितमानस मे उपाय युक्ति की उपमा मोतीवाली सीपी से दी गई है। जो उपाय काम म लाये गये हैं, उनसे जो गुणगण प्रकट होते हैं, वे ही मोती कहे गये हैं। यथा रावणवध के लिए युक्ति सरस्वती जी ने की। नाम मथरा मदमती चेरी कै कै केरि। अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि। यह भी सरस्वतीजी ने रामजी का रुख पाकर किया। यथा तब कछु कीन्ह रामरुख जानी। इससे महाराज दशरथ के पूर्वजन्म के वरदान की पूर्ति हुई। यथा मम जीवनमिति तुमहि अधीना। साधुओ के लिए प्रेमामृत प्रकट हुआ। यथा प्रेम अमिअ मदर विरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रकटेउ सुर साधु हित कृपा सिधु रघुवीर। और जगत् का कल्याण हुआ। इस भाँति सभी युक्तिया म गुणगण निहित हैं। ये युक्तियाँ सुन्दर हैं। इसलिए 'सोहाई कहा। इसी भाँति बालि वध, जानकी परित्यागादि युक्तिया म गुणगण छिपे हुए हैं।

छद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरग कमलकुल सोहा॥
अरथ[1] अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरद सुवासा॥३॥

अर्थ छन्द सोरठा और सुन्दर दोहे हैं, वे बहुरग के शोभित कमल के फूल हैं अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव। और सुन्दर भाषा ही क्रम से पराग फूलो की धूलि, मकरन्द पुष्परस और सुगन्ध हैं।

व्याख्या श्वेत, लाल, नील और पीत, चार रङ्ग के कमल होते हैं। सात्त्विक श्वेत, राजस लाल, तामस नील और गुणातीत छन्द, सोरठा, दोहा को पीत कहा है।

सात्त्विक यथा लागे पखारन पाय पकज प्रेम तन पुलकावली।
राजस यथा हरित मनिन के पत्रफल पदुमराग के फूल।
तामस यथा कोपे समर श्रीराम। चले विसिख निसित निकाम।
गुणातीत यथा जयरामरूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।

---

१ यहाँ यथासख्यालङ्कार है।

कुछ महात्माओ का यह मत है कि बालकाण्ड मे श्रीसीताजी का रामजी से सयोग हुआ, यही साख्यशास्त्र है। अयोध्याकाण्ड विराग है। आरण्यकाण्ड मीमासा, किष्किन्धाकाण्ड योगशास्त्र, सुन्दरकाण्ड न्यायशास्त्र और उत्तरकाण्ड साम्राज्य शास्त्र है। ये बातें ज्ञाननयन से देखो जा सकती हैं, तब मन मान जाता है। बालकाण्ड मे प्रकृति, पुरुष का सयोग वर्णन है, इसलिए इसे किसी भाँति साख्यशास्त्र से सम्बद्ध कह सकते हैं। अयोध्या मे वैराग्य का निरूपण स्पष्ट है। लङ्काकाण्ड को वेदान्त कहना भी अध्यात्मदृष्टि से बन जाता है। उत्तरकाण्ड को भी साम्राज्यशास्त्र कहने मे आपत्ति नही है। परन्तु आरण्य को मीमासा, किष्किन्धा को योग और सुन्दरकाण्ड को न्यायशास्त्र कहने का कोई आधार नही मिलता। अन्त और आदि का मिलना ही दबाव हैं। यथा १ आए ब्याहि राम घर जबते और जबते राम ब्याहि घर आए। २ भरतचरित करि नेम जे सप्रेम गावहिं सुनहिं तथा पुरनर भरत प्रीति मैं गाई। ३ बैठे अनुज सहित रघुराया तथा आगे चले बहुरि रघुराया। ४ जामवन्त कह सुनु हनुमाना। जामवन्त के वचन सोहाए। ५ निज भवन गवनेउ सिंधु तथा सिंधु वचन सुनि राम। ६ प्रभु हनुमतहि कहेउ बुझाइ। तथा विप्ररूप धरि पवनसुत आइगये जनु पोत। इन छवो को दबाव कहिये या फर्स कहिये। सब सीढियाँ जल से पूरित हैं। मानसर का दर्शन नेत्र से होता है और रामचरितमानस का दर्शन ज्ञाननेत्र से होता है। रघुपति की गुणातीत महिमा का बाध नही होता। सत् का किसी अवस्था मे बाध नही हो सकता। इस महिमा का थाह नही क्योंकि थाह तो गुणो से मिलता है। परन्तु इस महिमा मे गुण नही। इसलिए अथाह है। यथा अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अतर जामी। थाह तो सगुण महिमा का भी नही है पर, राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। इत्यादि कहकर कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। पर निर्गुण महिमा मे उतना भी अवकाश नही है। साधु मेघ ने जो राम सुयश वारि की वर्षा की थी उसमे गहराई बहुत कम थी। अब वह जल जब मानस मे इकट्ठा हुआ तो बडी गहराई आगई। निर्गुण महिमा का आधिक्य बहुत बढ गया।

रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मजु मनि सीप सोहाई॥२॥

अर्थ रामजी और सीताजी का यश ही अमृत के समान जल है। उपमा सुन्दर तरगो का विलास कार्य वर्ग है। सुन्दर चौपाइयाँ सघन पुरइन कमल का पत्ता है। युक्तियाँ सुन्दर मणिवाली मनोहर सीपियाँ हैं।

व्याख्या रामजी और सीताजी के यश का मेल है। वही मिठास है जो अमृत तुल्य है। पहिले कह आये हैं कि रामचरित मधुर है। अब 'सीययश' के साथ योग होने से वह माधुर्य अमृत तुल्य हो गया। यथा गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। रामजी ने सीता का यश कहा। यथा कंकन किंकिनि

नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन मन राम हृदय गुनि । इत्यादि । सीताजी ने राम यश कहा । यथा : सोभा सीव सुभग दोउ बीरा । इत्यादि । कहीं 'वीचि' पाठ न होकर 'बीच' पाठ है । वहाँ अर्थ करना पडेगा कि बीच बीच में जो उपमा है वही जल का विलास है । यहाँ उपमा अलङ्कार मात्र का उपलक्षण है ।

उस मानस में पुरइन सघन है । इसमें चारु चौपाइयाँ सघन हैं । वहाँ पुरइन के कारण जल नहीं दिखाई पड़ता, पुरइन हटाई जाय तो जल दिखाई पड़े । यथा : पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म । यहाँ चौपाई के शब्दो को अलग करे अर्थात् ध्यान दे तब राम सुयशरूपी जल दिखाई पड़े । युक्ति मणि सीप है । उसमे मुक्ता फल छिपा है । मुक्ता फल रामजी के गुणगण हैं । यथा : जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु । मुक्ता हल गुनगन चुनइ राम बसहु हिय तासु । युक्ति उपाय को कहते हैं । जो सिद्धि उपाय से होती है, वह पराक्रम से नहीं होती । श्रीरामचरितमानस में उपाय : युक्ति की उपमा मोतीवाली सीपी से दी गई है । जो उपाय काम में लाये गये हैं, उनसे जो गुणगण प्रकट होते हैं, वे ही मोती कहे गये हैं । यथा : रावणवध के लिए युक्ति सरस्वती जी ने की । नाम मथरा मदमती चेरी कै कें केरि । अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि । यह भी सरस्वतीजी ने रामजी का रुख पाकर किया । यथा : तब कछु कीन्ह रामरुख जानी । इससे महाराज दशरथ के पूर्वजन्म के वरदान की पूर्ति हुई । यथा : मम जीवनमिति तुमहि अधीना । साधुओं के लिए प्रेमामृत प्रकट हुआ । यथा : प्रेम अमिअ मंदर विरह भरत पयोधि गँभीर । मथि प्रकटेउ सुर साधु हित कृपा सिंधु रघुबीर । और जगत् का कल्याण हुआ । इस भाँति सभी युक्तियों मे गुणगण निहित हैं । ये युक्तियाँ सुन्दर हैं । इसलिए 'सोहाई' कहा । इसी भाँति बालि वध, जानकी परित्यागादि युक्तियों में गुणगण छिपे हुए हैं ।

छंद सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा ॥
अरथ[1] अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥३॥

अर्थ : छन्द सोरठा और सुन्दर दोहे हैं, वे बहुरंग के शोभित कमल के फूल हैं अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव । और सुन्दर भाषा ही : क्रम से : पराग : फूलो की धूलि, मकरन्द : पुष्परस और सुगन्ध हैं ।

व्याख्या : श्वेत, लाल, नील और पीत, चार रङ्ग के कमल होते हैं । सात्त्विक श्वेत, राजस लाल, तामस नील और गुणातीत ' छन्द, सोरठा, दोहा ' को पीत कहा है ।

> सात्त्विक यथा : लागे पखारन पाय पकज प्रेम तन पुलकावली ।
> राजस यथा : हरित मनिन के पत्रफल पदुमराग के फूल ।
> तामस यथा : कोपे समर श्रीराम । चले विसिख निमित निकाम ।
> गुणातीत यथा : जयरामरूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।

१. यहाँ यथासम्यालङ्कार है ।

कमल के कुल का हिसाब दलो की सख्या से है। यथा अष्टदल कमल • नमामि भक्तवत्सल। बीसदल नमामीसमीसान निर्वानरूप। सोलह दल जयराम रमारमन समन। बत्तीस दल परमत पदपावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुज सही। इत्यादि।

जैसे पुरइन मे कमल निकलता है उसी भाँति चौपाई से छन्द, सोरठा, दोहा निकलते है। यथा सो बर मिलिहि जाहि मनराचा। यह पुरइन है। इससे कमल निकला 'मन जाहि राच्यो मिलिहि सो बरु सहज सुदर सावरो।

जैसे कमल मे पराग स्पष्ट है। मकरन्द अन्तर्गत है। केवल भौरे को ही प्राप्त होता है। सुवास दूर तक पहुँचता है। उसी भाँति अर्थ स्पष्ट रहता है। भाव अन्तर्गत रहता है। सुकृतपुज को ही मिलता है। और सुभाषा का प्रसार दूर तक होता है। अर्थ और भाव दूर रहे, केवल पदावली के श्रवण मात्र से मन मोहित होता है। तथा कवितया किंवा विवा वनितया तया। पादनिक्षेपमात्रेण यया न हरते मन।

का कविता का कामिनी दोनो एक समान।
चरन धरत ही मन हरै तो कीजिये बखान॥

आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो अर्थों की उपस्थिति ही अनूपता है।

सुकृत पुज मजुल अलिमाला। ग्यान विराग विचार मराला॥
धुनि अवरेब कवित गुनजाती। मीन मनोहर ते चहुभाँती॥८॥

अर्थ पुण्य के समूह ही सुन्दर भौरो के झुण्ड हैं। ज्ञान, विराग और विचार हस हैं। ध्वनि, अवरेब तथा कविता के गुण और जाति, चार भाँति की मनोहर मछलियाँ हैं।

व्याख्या उस कमल के रस की प्राप्ति तो सुकृतपुञ्ज भौरो को ही होती है। पराग और सुगन्ध के ता अधिकारी अनेक हैं। इसी भाँति भाव का आस्वादन तो सुकृतपुञ्ज ही करते हैं, अर्थ और भाषा के अधिकारी तो बहुत लोग हैं। ज्ञान राजहस, विराग कलहस और विचार हस है। यथा सखी सग लै कुँअरि तब चलि जनु राज मराल। बोलहिं जलकुक्कुट कलहसा। क्षीर नीर विवरन गति हसी। धुनि वर्ण अर्थ ते अधिक कछु उपजावै जो बात। ध्वन्यात्मक सो कहत हैं, जिनकी मति अवदात। यथा पुनि आउब एहि बिरिआ काली। अर्थात् इस समय चलो।

अवरेब अवर+इव=अवरेब। अवर के ऐसा होना अर्थात् उत्तम न होना। जहाँ व्यग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम नही होता उसे गुणीभूत व्यग्य कहते हैं। उसे ही यहाँ अवरेब कहा है। काव्य के दो ही भेद है १ ध्वनि और २ गुणीभूत व्यग्य। अत अवरेब से यहाँ गुणीभूत व्यग्य ही अभिप्रेत है।

कुछ लोग अवरेब की परिभाषा इस भाँति करते है अन्त को अच्छर आदि धरि, मध्य को अन्त लगाय। या क्रम से जो कीजिये, सो अवरेब कहाय। यथा राम कथा कलिपनग भरनी। यह कथन अवरेब से हुआ। जब अन्त का 'भरनी' शब्द आदि म रख दिया भरनी राम कथा कलिपनग तब ऐसा रूप

हो जाने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वे इसी अवरेव को 'वामी' मछली कहते हैं। यह मुख और पूंछ मिलाकर चलती है। परन्तु इतने फटाटोप की क्या आवश्यकता है, यह तो सीधे-सीधे अन्वय है।

कोई इसे कपडे के काट के आधार पर वक्रोक्ति कहते हैं। परन्तु ध्वनि के साहचर्य से इसे गुणीभूत व्यंग्य कहना ही अधिक उपयुक्त मालूम पडता है।

माधुर्य, ओज और प्रसाद ये कविता के तीन गुण हैं। केशव कवि ने कविता की चार जाति भी बतलाई हैं। १ कौशिकी २ भारती ३ आरभटी और ४ सात्त्विकी। कहिये केसोदास जहँ करुना हाँस सिङ्गार। सरस करन सुभ भाव जहँ सो कौसिकी विचार। बरनिय जामहँ वीर रस भय अरु अद्भुत हास। कह केसव सुभ अर्थ जहँ सो भारती प्रकास। केसव जा कहँ वीररस अरु वीभत्सक जान। आरभटी प्रारभ यह पद पद जमक बखान। अद्‌भुत रुद्र सुवीररस समरस करत बखान। सुनतहि समुझत भाव मन सो सात्तकी बखान। इन धुनि, अवरेब, गुण और जाति को चार भाँति की मछली बतलाया है। अन्यत्र भी मछली की चार जाति ही कही हैं। यथा बुधि बल सील सत्य सब मीना। आचार्यों ने उन मछलियो का नाम गिनाया है पहिना, वामी, सिधरी और चेल्हवा। इनमे ध्वनि स्थानीय पहिना है। यह मछली बडी होती है और शीघ्र पकड म नही आती। अवरेब वामी मछली है। मुख पूंछ का आकार एक सा होता है। व्यंग्य मुख्यार्थ से अधिक न होने से मेल खा जाता है इसलिए अवरेब को वामी कहा। गुण सिधरी मछली है। छोटी होती है। गोल बाँधकर चलती है। इसी भाँति गुण म विशेष अक्षर के समूहो से काम लिया जाता है। जाति चेल्हवा मछली है। पृथक् रहती है और चमकती है। इसी भाँति जाति मे रस की चमक है और धर्मविशेष के भिन्न होने से ही जाति सज्ञा है।

धुनि, अवरेब, गुण और जाति को मछली इसलिए कहा कि इनका सञ्चार सर से बाहर नही है और इनमे सर की शोभा है।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी ॥
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तडागा ॥५॥

अर्थ अर्थ, धर्म, कामादिक चारो को और ज्ञान विज्ञान को विचारकर कहेगे तथा नवरस जप, योग और वैराग्य ये सब सुन्दर तडाग के जलचर है।

व्याख्या नौ रस अथ शृङ्गार अरु हास्य करुण अरु वीर। अद्भुत रुद्र विभत्स भय शान्ति कहैं कवि धीर। यहाँ ज्ञान से परोक्षज्ञान, विज्ञान से अपरोक्षज्ञान और वैराग्य से परम वैराग्य कहा। क्योकि इसी रूपक मे ऊपर ज्ञान, विराग और विचार को मराल कह आये हैं। इन जलचरो के फेर मे नही पडना। ये चोट कर बैठते हैं। भक्ति और आनन्द के बाधक हैं।

कामादिक से मोक्ष का भी ग्रहण है। काम के वर्ग म मोक्ष को रखने का यह अभिप्राय है कि काम और मोक्ष साध्य हैं। अर्थ और धर्म साधन हैं। यहाँ भक्तिशास्त्र म मोक्ष से भी सावधान रहना पडता है। यह तो मगर है, निगल ही जायगा,

आत्मसात् कर लेगा। यथा सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ रामभगति निज देहीं। यहाँ अर्थ धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान, नवरस, जप, तप, योग और विराग सभी का वर्णन है। परिचय सभी से रखना होगा, परन्तु इनके वश में आने से सदा सावधान रहना पड़ेगा। क्योंकि रीझत राम सनेह निसोते[1]। यहाँ तो एक मात्र ध्येय राम को रिझाना है। वह भक्ति के अतिरिक्त दूसरे उपाय से सम्भव नहीं है।

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना ॥
सत सभा चहुदिसि अँवराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई ॥६॥

अर्थ : सुकृती का गुणगान, साधु गुणगान और नाम गुणगान ये चित्र विचित्र जलपक्षी हैं। और सन्त सभा ही सरोवर के चारों ओर लगी हुई आम की वाटिका है और श्रद्धा को वसन्तऋतु करके वर्णन किया गया है।

व्याख्या : सुकृती गुणगान। यथा सुकृती तुम समान जगमाहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं। साधु गुणगान। यथा सुजन समाज सकल गुनखानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी। इत्यादि। नाम गुणगान। यथा बंदौं नाम राम रघुबर कौ। हेतु कृसानु भानु हिमकर को। इत्यादि। ये विचित्र जलपक्षी चक्रवाक, बक, जलकुक्कुट आदि हैं। इसी सरोवर में रहते हैं। कभी बाहर भी विचरण करते हैं। पर जल से दूर नहीं जाते।

तीन प्रकार का सम्बन्ध होता है। १ तद्गत २ तल्लीन और ३ तदाश्रय। सो पुरइन का जलाशय से तद्गत सम्बन्ध है। मछलियों का तल्लीन सम्बन्ध है। वृक्षों का तदाश्रय सम्बन्ध है। सन्तसभा मानस के चारों ओर की आम की बारी है। मानस को कभी नहीं छोड़ती। उससे मानस की शोभा है और मानस उसका आश्रय है। श्रद्धारूपी वसन्त में अमराई आम बारी फलती फूलती है। यहाँ सदा वसन्त रहता है। जहाँ मानस तैयार हुआ वहाँ यह साज आपसे आप जुट जाता है। मछली, कछुआ, पुरइन को कोई बुलाने नहीं जाता।

भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया द्रुमलता बिताना ॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रस बर बेद बखाना ॥७॥

अर्थ : भक्ति निरूपण के अनेक विधान, क्षमा दया पेड़ के लतामण्डप हैं। शम, यम और नियम फूल हैं। ज्ञान फल है और हरि का चरण ही श्रेष्ठ रस है। ऐसा वेदने वर्णन किया है।

व्याख्या : १ रामजी द्वारा, वाल्मीकि द्वारा, भुसुण्डि द्वारा अनेक विधान से भक्ति निरूपण है। २ असह्य बातको सामर्थ्य रहते सह लेना क्षमा है। ३ अनुकम्पा को दया कहते हैं। ये लताओं के मण्डप हैं। इन लताओं ने सन्तविटप को परिवेष्ठित कर रक्खा है। ४ भीतर की वृत्तियों को रोकना शम है। ५ अहिंसा, सत्य, अस्तेय

---

१ अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा। भक्तिरसामृतसिन्धु।

ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम हैं। ६ शौच, सन्ताप, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान पाँच नियम हैं। ये फूल हैं, जिनसे लतामण्डप की शोभा है और ज्ञान फल है। यह सोपास्ति ज्ञान है, क्योंकि इसका श्रेष्ठ रस हरिपद है। यथा रसो वै स। 'पदरति रस' ऐसा पाठ मानने से अर्थ करना होगा कि हरिचरणो की प्रीति ही रस है।

औरो कथा अनेक प्रसगा। तेइ सुक पिक वहु वरन विहगा ॥८॥

अर्थ और भी अनेक प्रसङ्ग की कथाएँ हैं। वे ही तोते, कोकिल आदि अनेक रग के पक्षी हैं।

व्याख्या ये मानस रस के पक्षी नही हैं। बाहर से आते हैं। फलफूल खा पीकर चले जाते हैं। यथा सुधि करि अबरीष दुर्वासा। तनय ययातिहिं यौवन दयऊ। इत्यादि। कुछ के वक्ता शुक व्यासपुत्र हैं। कुछ के पिक वाल्मीकि हैं। यथा वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्। कुछ के बहुरग विहग व्यासादि हैं। व्यास आदि कविवर्य बखानी। कागभुसुडि गरुड के ही की।

दो पुलक वाटिका बागवन, सुख सुविहग विहारु।
माली सुमन सनेह जल, सीचत लोचन चारु ॥३७॥

अर्थ रामाङ्क ही वाटिका, बाग और वन है। वहाँ सुखरूपी सुन्दर पक्षी विहार करते हैं। सुन्दर मनरूपी माली स्नेहरूपी जल से सुन्दर नेत्रो द्वारा उसे सीचता है।

व्याख्या भक्ति का पुलक वाटिका फुलवारी है। जल की नित्य आवश्यकता पडती है। ज्ञान का पुलक बाग फलदार वृक्ष का समूह। यथा चला नाइ सिर बैठेउ बागा है। आठवे सातवें दिन जल चाहिए। कर्म का पुलक वन है, जल का मिलना दैवाधीन है। इनसे जा सुख है सो सुविहग हैं। ये यही बसते हैं। यहाँ कुविहग नही बसते। वहाँ देवता की ओर से माली हैं। वे ही सीचते हैं। यहाँ वशीकृत मन माली है। वह स्नेहजल से नेत्ररूपी घट द्वारा सीचा करता है।

जे गावहिं यह चरित सभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुर वर मानस अधिकारी ॥१॥

अर्थ जो लोग इस चरित को सँभालकर गाते हैं, वे ही इस तालाब के चतुर रखवाले हैं। जो नर नारी इसे सदा आदरपूर्वक सुनते हैं, वे ही मानस के अधिकारी श्रेष्ठ देवता हैं।

व्याख्या इस चरित के गान करनेवाल व्यासो पर बडा भार जिम्मेदारी है, क्योंकि वे ही रखवाले हैं। पनघट मे पुरुष न जाने पावे और पुरुषो के घाटपर स्त्री स्नान न करें। कोई गन्दी वस्तु जल म न पडने पावे, यह काम रखवाले का है। इसी भाँती साधन भक्ति से ज्ञानप्राप्ति तथा साधन भक्ति से सिद्धि भक्ति प्राप्त करने के रास्ते भिन्न भिन्न हैं। अत श्रोताओं को बराबर अपने अपने मार्ग से चलने

१ मुद्रालङ्कार है।

के लिए सचेत करना, चरित्रगान करनेवाले व्यासो का काम है। तथा जैसा प्राचीन पाठ है उसमे उलट पलट न होने पावे, अर्थ का अनर्थ न होने पावे, इस बात पर स्वय ध्यान रक्खें, और दूसरो को ऐसा करने से रोकें। इन सब बातो का सँभाल रखना भी उन्ही का काम है। इसीलिए 'चतुर रखवाले' कहा।

'आदर के साथ जो नर नारी नियमपूर्वक नित्य सुनते है, वे उसी भाँति रामचरित के अधिकारी है जिस भाँति देवगण मानससरोवर के अधिकारी हैं। भाव यह कि यहाँ श्रोता का पद वक्ता से बडा है। वक्ता रखवाला है और श्रोता अधिकारी है। श्रोताओ की कुरुचि से वक्ता बिगड जाते हैं और श्रोताओ की सुरुचि से वक्ताओ मे सुधार होते देखा गया है।

अति[1] खल जे बिपई बक कागा। एहि सर निकट न जाहि अभागा॥
सबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥२॥

अर्थ जो अत्यन्त खल और विषयी बक काग है, वे अभागे उस सर के निकट नही जाते। यहाँ घोघे, मेढक और सेवार के समान विषय कथा तथा नाना रस नही हैं।

व्याख्या दाम्भिक होने से बक अति खल है। वे ध्यान नाट्य करते हुए हिंसा करते है। काग विषयी है। यथा वायस पलिअहि अति अनुरागा। कबहुँ निरामिष होहि कि कागा। इनसे विषय छूट नही सकता। वे इस सर तालाब के निकट नही जाते। न जाने म अभाग कारण है। पापवत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।

विषय कथा को घोघा, मेढक कहा और नाना रस को सेवार कहा। सेवार मे सूक्ष्म कीट होते है। बक, काग इनके भक्षक है। विषयियो को विषय कथा श्रवण मे विषय का मानसिक आस्वादन होता है। इसलिए उन्हे विषयकथा प्रिय है। उसके सुनने के लिए वे लालायित रहते हैं। नाना रसनिरूपण मे भी विषय रस का सूक्ष्म आस्वादन होता है, अत वह भी प्रिय है। रामचरित मे यदि नाना रस भी आये हैं, तो वे भी भक्ति से मिश्रित है। अत विषयी जीवो के काम के नही। अत वे रामकथा के निकट नहीं आते। उन्हे जन्म-मरणरूपी ससार मे बहुत भटकना है। इसलिए उन्हे अभागा कहा।

तेहि कारन आवत हिअँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई॥३॥

अर्थ इस कारण से हृदय से हारे हुए, यहाँ कामी काक और बेचारे बगले आते है। इस सर पर आने म बडी कठिनता है। बिना राम की कृपा के आते नही बनता।

व्याख्या: काक और बगले हियहारे आवत, अर्थात् बिना मन के आते है,

---

१. रूपक अभेद न्यून।

क्योंकि वहाँ उनको चारा नही मिलता, अत उन्हे 'बे चारे' कहा। इसी भाँति अति खल और विषयो जन रामचरित के निकट हिय हारे और बे चारे होकर आते हैं, यदि चारा चले तो न आवें।

आने मे भी साधारण कठिनता नही है, बडे-बडे बिघ्न हैं, जिनका आगे वर्णन करेगे। राम कृपा से विघ्न की बाधाएँ हटती हैं, तभी मनुष्य आने मे समर्थ होता है। यथा सकल विघ्न व्यापै नहिं तेही। राम सुकृपा विलोकहिं जेही।

कठिन कुसग कुपथ कराला। तिन्हके वचन बाघ हरि व्याला॥
गृह कारज नाना जजाला। तेइ अतिदुर्गम सैल बिसाला॥८३॥

अर्थ कठिन कुसग ही भयानक बुरा रास्ता है, उनके वचन व्याघ्र, सिंह और सर्प हैं। घर के काम और अनेक प्रकार की उलझनें, ये हो अत्यन्त दुर्गम बडे-बडे पर्वत हैं।

व्याख्या सुत, दार, अगार, सखा, परिवार विलोकु महा कुसमाजहिं रे। कवित्त रा०। इन्ही का सग कुसग है, छूटता नही, इसीसे कठिन कहा। इसी की उपमा कराल पन्थ से दी, प्राण लेकर ही छोडता है। व्याल का अर्थ सर्प और दुष्ट हाथी भी है। कराल पन्थ मे व्याघ्र, हरि और व्याल की बाधा रहती है यहाँ पिता का वचन सिंह, भाई का वचन व्याघ्र और स्त्री-पुत्र के वचन सर्प या दुष्ट हाथी हैं।

गृहकार्य अर्थात् शास्त्रोक्त, घर का काज और जजाल अर्थात् ससारी झमेला बडा भारी दुर्गम पहाड है। पहाड पर पगडडी का रास्ता ऐसा भयानक होता है कि पैर रखते ही सारा शरीर डगमगाने लगता है। किसी भाँति एक पर्वत पार भी करे तो पार करने के पहिले ही दूसरा पहाड उससे भी ऊँचा दिखाई पडने लगता है। इसी भाँति गृहस्थी का कार्य किसी भाँति पूरा भी करे तो उसकी पूर्ति के पहिले ही, उससे कही अधिक आवश्यकीय कार्य का सूत्रपात हो जाता है।

बन बहु बिषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयकर नाना॥५॥

अर्थ मोह, मद, मान बडे विषम बीहड वन है और नाना कुतर्क भयकर नदी है।

व्याख्या पहाड पर जाने का रास्ता चक्करदार होता है। घूमता हुआ पहाड पर जाता है और कही जो नदी पहाड काटकर आयी है, उसका तीर पकडना पडता है। पहाड पर वन ही वन है। यहाँ मोह, मद और मान को वन कहा। इसम पडकर मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है और अनेक प्रकार का भय, विषाद और सन्ताप सहता है। एक एक नदी ऐसी विकट मिलती है कि उसका पार होना असाध्य व्यापार मालूम होता है। कुतर्क को नदी कहा। एक कुतर्क का पार पाना कठिन है। यहाँ तो नाना कुतर्क हैं।

यहाँ ग्रन्थकार सम्भवत निपनिया घाटी की चढाई का उल्लेख कर रहे हैं। जिसे मानस के यात्री को पार करना ही पडता है। ऊपर दृष्टि दीजिये तो भयङ्कर पहाडो की चट्टानें साक्षात् यम की भाँति डराती हैं। और नीचे अन्धकूप की भाँति

हजारो फीट गहरी खाई। यात्री के मुख से राम का नाम निकलना कठिन हो जाता है। सिर घूमने लगता है। दृष्टि, पाव रास्ते पर ही जमे रहते हैं।

दो जे श्रद्धा सबल रहित, नहि सतन्ह कर साथ।
तिन्हकहँ मानस अगम अति, जिनहि न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥

अर्थ जिन्हे श्रद्धारूपी राहखर्च नही है, न सन्तो का साथ है और रघुनाथ प्रिय नहीं है उन्हे मानस अत्यन्त अगम है।

व्याख्या यात्रा के लिए तीन बातें आवश्यकीय हैं। १ पहिले तो अपने पास राह खर्च होना चाहिए। २ रास्ता दिखानेवाला चाहिए। ३ यात्रा का लक्ष्य कोई प्रिय पदार्थ चाहिए। जब यह तीनो बात एकत्रित हो तभी यात्रा सम्भव है। मानस मानसरोवर की यात्रा म कोई सामान रास्ते म नही मिलता। यहाँ तक कि कुछ दूर तक लकडी भी नही मिलती। इसलिए सामान साथ चाहिए। रास्ता किसी का देखा नहीं है। वहाँ की यात्रा साधु लोग ही करते हैं। उन्ही को रास्ता मालूम हैं। उनका साथ मिले तभी यात्रा हो सकती है। पर, इतना सकट और खतरा तो वही उठा सकता है जिसे भगवान् प्रिय हो। उन्ही की प्राप्ति के लिए यात्रा की जाती है।

इस भाँति रामचरितमानस की कथा तक पहुँचना बडा कठिन है। यहाँ श्रद्धा ही संवल है। जिसे श्रद्धा नही वह नही जा सकता। सन्त का साथ हो तो वे राम कथा तक पहुँचा द, नही तो नही पहुँच सकता। जिसे रघुनाथ प्रिय नही है वह कथा मे जाकर व्यर्थ समय का अपव्यय क्यो करेगा।

वस्तुत वडे ही अनुभव की बात ग्रन्थकार ने कही। भगवान् की अति उत्तम कथाएँ जहाँ तहाँ होती हैं, पर कुछ ही लोग वहाँ तक पहुँच पाते है। दूर दूर से लोग आ जाते है और सन्निकट के लोग नहीं पहुँच पाते है।

जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुडाई होई ॥
जडता जाड विषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥१॥

अर्थ यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाय तो वहाँ जाते ही उसे नीदरूप जूडी घेर लेती है। उसके हृदय मे जडतारूपी जाडा ऐसा लगता है कि पहुँचने पर भी अभागा स्नान नही कर पाता।

व्याख्या विना श्रद्धा और सन्तो के साथ के और विना रघुनाथ की प्रीति के कोई ही पहुँचता है सो भी अतिकष्ट से पर, उसे कोई लाभ नही होता। क्योंकि उसे नीदरूपी जूडी जडैया बोखार आ जाती है। जिस भाँति जूडी आजाने से मानस मे स्नान, आचमन नही हो सकता उसी भाँति नीद आजाने से कुछ कह सुन नही सकता। 'उरलागा' कहने का भाव यह है कि जाडा कलेजे मे पैठ जाता है। किसी प्रकार हटता नही। पुरुषार्थ करने पर भी फलसिद्धि नही हुई। इसलिए अभागा कहा। मानस के यात्री श्रीशिवनन्दन सहायजी कैलासदर्शनकार लिखते हैं सर्दी की प्रबलता बढ गई। मुझे बेहोशी आने लगी। विना यात्रा किये कोई 'जडता

जाड विषम उरलागा' नही लिख सकता। इसी भाँति, अभागो को रामकथा मे पहुँचने पर नीद आ जाती है। कितना भी पार्श्ववर्ती लोग सावधान करते हैं, पर वह नीद टूटती ही नही।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना ॥
जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। सरनिंदा करि ताहि बुझावा ॥२॥

अर्थ उससे उस सर मे न तो स्नान किया जाता है और न जल ही पीया जाता है। वह अभिमान के साथ लौट आता है। यदि फिर कोई उससे पूछने आता है तो सरोवर की निन्दा करके उसे समझा-बुझा लेता है।

व्याख्या रामचरित कहना मज्जन है और सुनना पान है। यथा मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका। सो वह न तो रामचरित के विषय मे कोई चरचा कर सकता है और न उसका श्रवण ही कर सकता है, जाना एकदम निष्फल हुआ। वह अभिमान लिये हुए लौट आता है। यदि कथाश्रवण किये होता तो अभिमान खोकर लौटता। यदि मज्जन पान किये होता तो उस सरोवर मे निन्दाबुद्धि न होती। घरपर शोर हो जाता है कि अमुक व्यक्ति मानससर की यात्रा करके लौटा है। तीर्थ करके लौटे हुए लोगो के चरण स्पर्श करने आलिङ्गन करने मे लोग पुण्य मानते हैं। लोग उत्कण्ठा से भी तीर्थ का वर्णन सुनने आते हैं, तो वह मानससर की निन्दा करके उन्हे इस भाँति समझा बुझा देता है कि फिर वे मानससर का नाम न ले। यथा

क मानसर मानसर सोर चहुँओर सुन्यौ, पडित बखानैं मानसर अतिनीको है।
देखो तो पखान सूनसान सो मसान जैसो, मारग अगम बेग विषम नदी को है॥
मनमें उचाट, वाट श्रमते शिथिल गात, तीरथ नहि जुलुम जवाल यह जीको है।
लीजिये न नाम काम कीजिये आपनो जाय, ऊँची है दुकान पकवान तहँ फीको है॥
पग पग मगबीच मीचही दिखाई देत, नाकदम आवै निशिदिन दुख झेलते।
गाजपरै ऐसे देश जहँ सुख लेश नही, जूडी चढै आँखिन तुपार गिरि देखते॥
शूल उठै सिर मे प्रचण्ड हिय हूल उठै, कूलते कराल उठै बान अग वेधते।
मानस तलैया से तलैया भली गावही की, कूदि कै कलैया छोटे छैया जहाँ खेलते॥

सकल विघ्न व्यापहिं नहि तेही। राम सुकृपा बिलोकहि जेही ॥
गोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई ॥३॥

अर्थ ये सम्पूर्ण विघ्न उसे नही व्यापते जिसे रामजी सुन्दर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक उस सरोवर मे स्नान करता है और महा भयकर तीनो प्रकार के तापो से नही जलता।

व्याख्या अब अधिकारी कहते हैं। विघ्न तो होते ही है पर उसे नही व्यापते। आज भी मानससर की कठिनाई का वे ही सामना कर सकते है जिन पर रामजी की कृपा हो। 'पछी पग ध्यान मुख राम राम' की कहावत मानस के मार्ग की कठिनाई की ही द्योतक है। इसी भाँति जिसपर रामजी की कृपा होती है वह

गृह कारज नाना जजाल के रहते हुए भी रामकथा के श्रवण के लिए समय निकाल ही लेता है।

जिस पर रामकृपा होती है वही आदर के साथ मानससरोवर में स्नान करता है। अर्थात् आदरपूर्वक रामकथा का श्रवण करता है और महाघोर जो तीनो ताप हैं १ आधिभौतिक २ आधिदैविक ३ आध्यात्मिक उनसे जलता नही। यथा मनकरि विषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौ एहि सर परई। कैलासदर्शनकार लिखते है कि मैं दूर तक मानससरोवर के जल मे चला गया। जो आनन्द मानस-सरोवर के स्नान से मिला वह लेखनी द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। गोता लगाते ही मार्ग के सम्पूर्ण कष्ट विस्मृत हो गये। थकावट जाती रही।

सो जिस पर रामकृपा नही, उसका मन विषयरूपी दावानल मे जला करेगा फिर भी वह मज्जन नही कर सकेगा। हरिकथा-श्रवण उसके भाग्य मे नही है।

ते नर यह सर तजहि न काऊ। जिन्हके रामचरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसग करौ मन लाई॥४॥

अर्थ वे मनुष्य इस सरोवर को कभी नही छोडते, जिनके हृदय मे रामजी के चरणो मे भल दृढ भाव है। जो इस सरोवर मे स्नान करना चाहे वह जी लगाकर सत्सङ्ग करे।

व्याख्या जितने सहृदय यात्री मानससरोवर के है वे सभी एक स्वर से वहाँ की अपार शोभा और अलौकिक छटा का वर्णन करते है और कहते हैं कि वहाँ से लौटने की इच्छा नही होती। विरक्त महात्मा तो वहा रह ही जाते है। इसी भाति जिन्हें रामजी के चरणो मे दृढ अनुराग है वे रामचरित्र म ही मन को बसा देते हैं। यथा सत सभा चहुँ दिसि अँवराई।

'कहत सुनत हरखहि पुलकाही। ते सुकृती मन मुदित नहाही। रामकथा कहने सुनने मे हरखित और पुलकित होने की योग्यता बिना सत् सङ्ग के नही होती और न बिना सत्सङ्ग के रामचरित तक पहुँच ही हो सकती है। सो सत्सङ्ग भी जी लगाकर करे, बेगार टालने से काम नही चलेगा। सत्सङ्ग मानस सर तथा रामचरित सर दोनो के लिए उपयोगी है और सत्सङ्ग सबको सब देशम सुलभ है।

अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥५॥

अर्थ ऐसे मानस को मानस के नेत्रो से देखकर और उसमे स्नान करके कवि की बुद्धि निर्मल हो गई। हृदयमे आनन्द उत्साह भर गया और प्रेम व प्रमोद का प्रवाह उमड आया।

व्याख्या पहिले कहा था जस मानस जेहि विधि भयउ, जगप्रचार जेहि हेतु। सो पहिले 'जेहि विधि भयउ' का वर्णन किया तब 'जस मानस' का निरूपण किया। अब उपसहार करते हुए कहते हैं अस मानम। इसके बाद 'जग प्रचार जेहि हेतु' का वर्णन करेगे।

जब मानस बन गया तो उसे मानस नेत्र से कवि ने देखा। यही वस्तुत रामचरित सर का मानचित्र था। बुद्धि ने उसमे प्रवेश किया, उसमे डूबाडूब हुई। बुद्धि का मल दूर हुआ। इसी बात को कवि ने कहा कि स्नान करके बुद्धि निर्मल हुई।

पहिले मानस मे जो जल था, वर्षा हुई तो उमग चला। यहाँ भी गुरुजी से सुना था सो मन मे था, सन्तो से सुना तो उमग चला। भीतर भीतर सब मसाला तैयार था, कलम चलने की देर थी। सो आनन्द का उछाह होते ही जो प्रेम प्रमोद का प्रवाह उमगा तो नदी की भाँति कविता बह चली। लिखना कठिन हो गया। नदी मे जल भरा रहता है। कविता नदी मे रामयश भरा था। नदी मे प्रवाह उमगता है। यहाँ प्रेम प्रमोद उमगा। रोके न रुका।

चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमगल मूला। लोक वेद मत मजुल कूला॥६॥

अर्थ कविता सुन्दर नदी सी वह निकली। जिसमे रामजी का विमल यश रूपी जल भरा हुआ है। उसका नाम सरयू है जो सारे मङ्गलो का मूल है। लोकमत और वेदमत उसके दोनो सुन्दर किनारे हैं।

व्याख्या मानस जो उमगा तो सरयू[1] नदी निकली और कवि के मानस के उमग मे कवितारूपी सरयू निकली। दोनो सरयू सुमगल मूल है। यथा जा मज्जनते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि वासा। तथा, जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। लोकमत दक्षिण कूल हे और वेदमत वाम कूल है। दोनो सुन्दर हैं।

नदी पुनीत सुमानस नदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकदिनि॥७॥

अर्थ यह पवित्र नदी मानसर की कन्या है। कलियुग के पापरूपी तृण और वृक्ष के मूल को खोद बहानेवाली है।

व्याख्या सरयू मानस से उत्पन्न है, इसलिए मानस नन्दिनी बेटी कहा। बेटी कुछ अश मे माँ के सदृश होती है और कुछ अश मे नही होती। मानस तो साठ मील के भीतर ही भीतर चारो घाटो से परिवेष्टित है। पर सरयू यद्यपि चारो घाटो के जल से ही भरी है तथापि वह और नदियो से जाकर मिली है। उसका प्रचार कई प्रान्तो मे हो गया है। मानस की गहराई २६४ फीट तक है। पर सरयू

---

१. कैलासपर्वते राम मनसा निर्मित सर। ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेद मानस सर॥
तस्मात् सुस्राव सरस सयोध्यामुपगूहते। सर प्रवृता सरयू पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता॥
वा रा

अर्थ हे रामजी कैलास पर्वत मे ब्रह्मदेव के मन से निर्माण किया हुआ सर है। इसी से उसका नाम मानस सर है। उसी से सरयू निकली है जो अयोध्या से जा मिली है। यह पुण्यनदी है क्योंकि मानससरोवर से निकली है।

की गहराई कदाचित् ही कही तीग फुट हो। अत कविता द्वारा जिस कथा का प्रचार प्रान्तो मे हुआ उसमे मूल की अपेक्षा बहुत कम गहराई होना स्वाभाविक है।

क्षुद्रपाप तृण और महापाप वृक्ष है इन्हे कवितारूप सरयू जल से धो बहाती है। क्योकि सरयू नदी मानसनन्दिनी है। जल से भरी है। कवितारूपी सरयू सुमानस-नन्दिनी है। रामयश से भरी है।

दो. श्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहु कूल।
संत सभा अनुपम अवध, सकल सुमगल मूल ॥३९॥

अर्थ तीनो प्रकार के श्रोताओ का समूह ही दोनो किनारो के पुर, ग्राम और नगर है और सब मङ्गलो की मूलभूता सन्तो की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

व्याख्या : तीन प्रकार के श्रोता होते हैं। १ विमुक्त २ विरत और ३ विषयी। यथा सुनहि विमुक्त, विरत अरु विषयी। लहहिं भगति, गति, सपति नई। विषयी जनो का समाज वडा भारी है। इसे नगर कहा। विरत बहुत कम हैं। यथा : धर्म-सील कोटिन्ह महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई। अत उनके समाज को ग्राम कहा। विमुक्त तो विरला ही कोई होता है। यथा कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यग ज्ञान सकृत कोउ लहई। सो इनका समाज बहुत ही विरल है, इसलिए इसे पुर कहा। जिस भाँति सरयू के दायें बायें पुर, ग्राम, नगर बसे हैं और वे सब पावन हैं। उसी भाँति कविता सरयू के वेदप्रधान तट तथा लोकप्रधान तट पर विमुक्त, विरत और विषयी श्रोताजन का समाज है और वह सब पावन है। सरयू के तट पर अवधपुरी है। पुरी राजधानी को कहते हैं, अवधपुरी रामजी की राजधानी है। यथा आनँद अवधि अवध रजधानी। यह पुर, ग्राम, नगर, सभी से अधिक पावनि और मङ्गलकरणि है। इसलिए इसे अनुपम कहा। इसी भाँति कवितासरयू के श्रोतावर्ग मे साधुसमाज है। यह रामानुरागी समाज तीनो विमुक्त, विरत और विषयी समाज से अधिक पावन और मङ्गलमूल है। धर्म निरत पडित विज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी। सबते सो दुर्लभ सुर राया। राम भगति रत गत मद माया। अत रामानुरागी साधु समाज अनुपम है। इसे पाकर रामकथा की महिमा अत्यन्त बढ जाती है।

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई ॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सोहावन ॥१॥

अर्थ सुकीर्तिरूपी सरयू जाकर रामभक्तिरूपी गङ्गा से मिली। छोटे भाई के सहित रामजी का समरयश महानद सोन उसमे जा मिला।

व्याख्या यहाँ स्वायम्भू मनु और शतरूपा का चरित रामभक्तिरूप है। आदि मे भक्ति यथा जनम गयउ हरि भगति बिनु। मध्य मे भक्ति यथा ग्यान भक्ति जनु धरे सरीरा। अन्त मे भक्ति यथा दपति उरधरि भगति कृपाला। इसलिए इसे भक्तिरूपी गगा कहा। इसी मे उत्तर से आकर सुकीर्तिरूपी सरयू मिली अर्थात् यह कविता सरित् भक्तानुग्रहयश से परिपूर्ण थी। परन्तु लक्ष्मणजी के सहित रामजी

का पावन समरयश दक्षिण से इधर आया। मारीच, सुबाहु आदि से युद्ध सिद्धाश्रम मे हुआ। यह गङ्गाजी से दक्षिण पड़ता है। यह समर मुनि जी के यज्ञ की रक्षा के लिए हुआ। इसलिए पावन कहा।

शोन का अर्थ ही लाल है। लालरङ्ग सभी रंगो मे उग्र है अत. शोन को समरयश कहा। यह महानद दक्षिण से आकर भक्ति गङ्गा में ही लीन हुआ।

जुगविच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुविरति विचारा ॥
त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। रामसरुप सिंधु समुहानी ॥२॥

अर्थ : दोनो के बीच मे भक्तिरूपी गङ्गा की धारा, सुन्दर विराग और विचार के सहित शोभित है। ऐसी त्रिविध ताप को भय देनेवाली त्रिमुहानी, रामस्वरूप सिन्धु के सम्मुख चली।

व्याख्या : उत्तर से भक्तानुग्रह यश से परिपूर्ण सरयू आई और दक्षिण से सानुज समरयश मे पूर्ण शोन महानद आया। दोनो भक्ति गङ्गा से जो विरति विचार के साथ शोभित थी, मिल गये। यहाँ 'होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिन' यह विचार है, और 'बरबस राज सुतहिं नृप दीन्हा। नारि समेत गमन वन कीन्हा।' यह विरति है। इसलिए 'सोभित सहित सुविरति विचारा।' कह रहे हैं। सरयू और सोन के गङ्गा मे मिलने से तिमुहानी का रूप हो गया। यह तिमोहानी ऐसी है कि इसे देखकर तीनो ताप[1] डर जाते है। अब सबको लिये दिये गङ्गा समुद्र की ओर चली।

यहाँ रामस्वरूप ही सिन्धु है। भक्ति गङ्गा उपर्युक्त सरितो को अपने मे मिलाये रामस्वरूप की ओर उन्मुख हुई। अर्थात् कवि की चित्तवृत्ति कल्याणवहा[2] हो गई।

गण्डकी नदी ही अवध की पूर्वी सीमा है। इसके बाद बोली बदल जाती है। इसलिए इस रूपक में उतने ही नदीनद परिगृहीत हैं। इनके निवासी उस भाषा को बोलते और समझते है जिसमे यह रामचरितमानस लिखा गया है। अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरयू और सोन तक हिन्दी भाषी संसार है।

मानसमूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करही ॥
बिचबिच कथा विचित्र विभागा। जनु सर तीर तीर बनु बागा ॥३॥

अर्थ : जिसका मूल मानस है वह सरयू, गङ्गाजी मे जा मिली। यह सुनते ही सुजन के मन को पवित्र कर देती है। बीच बीच में जो कथाओ के विचित्र विभाग हैं वे ही नदी के तीर के वन और बाग हैं।

———

१. आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

२. चित्त नदी दोनो ओर बहती है। जब पाप की ओर बहती है तो उसे पापवहा कहते हैं। जब कल्याण की ओर उसका प्रवाह हो जाता है तो उसे कल्याणवहा कहते हैं।

व्याख्या जिस मानससर से सरयू निकली है वह तो तिब्बत के पास है। परन्तु इस मानस का स्थान तो मन है। वही से कविता सरिता उद्‌भूत होकर भक्ति मे जा मिली और भक्तिमय हो गई। इस बात के सुनने मात्र से सुजन का मन उसी भाँति पवित्र होता है जिस भाँति उस मानससर से निकली हुई सरयू और गङ्गा के सङ्गम पर स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है।

सरयू नदी के मानससर से निकलने के बाद और गङ्गा मे मिलने से पहिले तटो पर अनेक बाग और वन मिलते हैं। बाग सुखदायक होता है। यथा 'बाग तडाग विलोकि प्रभु हरखे बन्धु समेत। और वन दु खदायक होता है। यथा डरपहि धीर गहन सुधि आये।

इसी भाँति इस कवितारूपी सरयू के किनारे किनारे भी विचित्र कथा विभाग है। जो बाग और वन स्थानीय हैं। सती मोह, नारद मोह, भानु प्रताप की कथाएँ वन हैं। इनमे सती, नारद और भानुप्रताप सभी रास्ता भूल गये और कष्ट उठाया। पार्वती जन्मकथा, तपस्याकथा बाग है। इनमे ही सुख हुआ।

उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती ॥
रघुबर जनम अनद बधाई। भँवर तरग मनोहरताई ॥४॥

अर्थ शिव-पार्वती के विवाह के बराती ही अनेक प्रकार के असख्य जलजीव हैं। रामचन्द्र के जन्म की आनन्द बधाई ही इस नदी के भँवर और तरगो की मनोहरता है।

व्याख्या जलचर बदल गये। मानस मे नरवस जपतप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तडागा थे। सरयूजी मे उतनी गहराई नही है। इसलिए दूसरे प्रकार के जलचर वर्णन किये। यहाँ महादेवजी के बराती जलचर हैं। भाव यह कि महादेवजी की बरात इष्टदेवो की बारात है। 'यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षासि राजसा। प्रेतान् भूतगणाश्चैव यजन्ते तामसा जना। सात्त्विक लोगो के इष्ट देवता हैं। वे देवताओ को पूजते है। राजस लोगो के इष्ट यक्षराक्षस हैं। वे इनकी पूजा करते है। तामस लोगो के इष्ट भूत, प्रेत हैं। वे इनकी उपासना करते हैं। इन्हे जलचर इसलिए कहा कि महादेव के बराती देव, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच सभी थे। पर वे रामयश मे विचरण करनेवाले थे। जलचर के वश मे पडा हुआ पुरुष बडी विपत्ति म पडता है। अत इनके वश मे पडने से रामभक्ति नही मिल सकेगी। जन्म मरणरूप ससार के चक्र म ही पडे रह जायँगे। महादेवजी की बारात मे देवता यथा हिय हरखे सुरसेन निहारी। हरिहि देखि अति भये सुखारी। राक्षस भूत प्रेत आदि यथा सग भूत प्रेत पिशाच जोगिनि बिकटमुख रजनीचरा सभी थे। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। भूतो को पूजनेवाले भूतो को प्राप्त होते है और भगवान् के पूजनेवाले भगवान् को प्राप्त होते हैं।

रामजी के जन्म म जो आनन्द हुआ वह तो कवितासरिता का भँवर है और जो बधाई हुई वह तरग है। तरग ऊपर ले जाता है और भँवर नीचे डुबाता है।

तरग, यथा वृद वृद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किये उठि धाई॥
कनक कलस मगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा॥
करि आरती नेछावरि करही। बारबार सिसु चरनन्हि परही॥
भँवर यथा सुमन वृष्टि आकास ते होई। ब्रह्मानद मगन सब लोई॥
कागभुसुडि सग हम दोऊ। मनुज रूप जानहि नहि कोऊ॥
परमानद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥

दो बालचरित चहुँ बधु के, बनज बिपुल बहु रग।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहग॥४०॥

अर्थ चारो भाइयो के जो बालचरित हैं वे ही रग रग के अनेक कमल हैं। राजा और रानी तथा कुटुम्बियो के पुण्य ही भ्रमर तथा जलपक्षी हैं।

व्याख्या पहिले कह आये हैं कि कवियो ने सत्त्वगुण का श्वेत, रजोगुण का लाल, तमोगुण का नीला तथा गुणातीत का पीला रग माना है। बाललीला मे सभी प्रकार के चरित होते हैं, इसलिए 'बनज बिपुल बहु रग' कहा।

राजसिक चरित कबहूँ ससि मागत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
सात्त्विक कबहूँ करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
तामसिक कबहूँ रिसियाइ रहैं हठि के, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
गुणातीत अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मनमदिर मे बिहरैं॥

नृप और रानी के सुकृत को मधुकर कहा। मधुकर कमल का रस लेता है। उसे जूठा कर देता है। इसी भाँति राजा रानी बच्चो को चूमते चाटते है। कुटुम्बियो को जलपक्षी कहा। वे भी कमल के साथ कलोल करते हैं। परन्तु मधुकर की भाँति मकरन्द के अधिकारी नही है।

सीय स्वयवर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका॥१॥

अर्थ सीताजी के स्वयवर की जो सुन्दर कथा है, वही इस सुहावनी नदी मे लाई हुई छवि है। अनेक प्रकार के उत्तम प्रश्न ही इस नदी म नाव हैं और उनके विवेकमय उत्तर ही चतुर केवट हैं।

व्याख्या सीयस्वयवर कथा म राम-जानकी की छवि का वर्णन है। रामकथा सरिता मे जो छवि वर्णन है वह प्रायेण इसी युगलमूर्ति का है। इसीलिए सरित सोहावनि सो छबि छाई कहा।

रामछवि यथा सखि इन कोटि काम छबि जीती। यह छबि सखी पटतरिअ जाही। देखि राम छबि कोउ एक कहही। बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। थके नयन रघुपति छबि देखे। मुख छबि कहि न जात मोहि पाही। निरखि निरखि रघुबीर छबि। नखसिख मजु महा छबि छाए।

सीताछवि यथा छबि गृह दीप सिखा जनु बरई। सियमुख छबि बिधु ब्याज

वखानी। जगत जननि अतुलित छवि भारी। जौ छवि सुधा पयोनिधि होई। छवि गन मध्य महाछवि जैसी।

युगलमूर्ति छवि : भरिलोचन छवि लेहु निहारी। रामरूप अरु सिय छवि देखें। गावहि छवि अवलोकि सहेली। छवि सिंगार मनहु इकठौरी, आदि।

पण्डित की भाँति प्रश्न करने से सक्षेप मे उत्तर मिलता है और मूढ की भाँति प्रश्न करने से उत्तरदाता को एक एक बात अलग करके समझानी पडती है। अत मूढ न होते हुए भी मूढ की भाँति प्रश्न करना। जिससे उत्तर लोकोपकारी हो। प्रश्न की पटुता है यथा चाहहु सुनै रामगुन गूढा। कीन्हिहु प्रश्न मनहुँ अति मूढा। प्रश्नकर्त्ता के मर्म को समझकर यथार्थ उत्तर देना। यथा : प्रथमहि कहि मै सिवचरित बूझा मर्म तुम्हार। सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विकार। मै जाना तुम्हार गुनसीला। कहौं सुनहु अव रघुपति लीला उत्तर की पटुता है।

प्रश्न को नाव और केवट को उत्तर कहा। नाव का और केवट का साथ छूटने न पावे तभी पार मिलता है। सदा यह ध्यान रहे कि किस प्रश्न का उत्तर हो रहा है तभी बात समझ मे आ सकती है नही तो पार न मिलेगा।

सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुवद्ध राम वरवानी॥२॥

अर्थ कथा सुन लेने पर श्रोताओं मे जो परस्पर अनुकथन होता है वही मानो उस नदी का पथिक समाज शोभित है। परशुरामजी का क्रोध घोर धारा है और रामजी की श्रेष्ठ वाणी सुदृढ पक्का घाट है।

व्याख्या अनुकथन करनेवाले ही यात्री हैं। उन्हे पार जाना है जो कथा सुनकर पुनर्विचार नही करते उन्हे पार जाना नही है। नदी की सैर करने आये हैं।

सरयू की धारा ऐसी घोर है कि कोसो काटती चली जाती है। भृगुनाथ की रिसानी भी वैसी ही घोर है। कहते हैं उलटौ महि जँह लहि तव राजू। रामजी की सुवाणी सुन्दर वँधा हुआ पक्का घाट है। नव गोले गलाये गये है नौ बार उत्तर दिया गया है। रिसानी की घोर धारा घूम गई। यथा उघरे पटल परसुधर मति के।

सानुज राम विवाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सवकाहू॥
कहत सुनत हरषहि पुलकाही। ते सुकृती मन मुदित नहाही॥३॥

अर्थ भाइयो सहित रामजी के विवाहके उछाह ही इस नदी की शुभ उमग है, जो सबको सुख देनेवाली है। कहते सुनते जो लोग पुलकित और हर्षित होते हैं वे ही पुण्यात्मा पसन्न मन से स्नान करनेवाले हैं।

व्याख्या जब नदी उमगती है, तो दूर के रहनेवालो के भी समीप पहुँच जाती है। इसी भाँति अनुजो के सहित रामजी के विवाह मे जो उछाह हुआ। वह दूर दूर तक पहुँच गया। यथा सकल भुवन भरि रहा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू। बहुत उछाह भवन अतिथोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा।

क. भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सो, लोक लगि बोलिए पुनीत रीति मारखी।
जगदम्बा जानकी जगत पितु राम भद्र, जानि जिय जोवो जोन लागै मुख कारखी॥
देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान वेद, बूझे हैं सुजान साधु नर नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज ना विराजमान, राम से न वर दुलही न सिय सारखी॥
बानी विधि गौरी हर शेषहू गनेस कही, सही भरी लोमस भुसुण्डि बहु वारिखो।
चारि दस भुवन निहारि नर नारि सब, नारद सो परदा न नारद सो पारिखो॥
तिन कही जगमें जगमगत जोरी एक, दूजो को कहैया को सुनैया चख चारिखो।
रमा रमारमन सुजान हनुमान कही, सीय-सी न तीय न पुरुष राम सारिखो॥

इससे सुखद सब काहू कहा।

कथा को कहते सुनते जो ऐसे आनन्द मे आजाते हैं कि उन्हे रोमाञ्च हो उठता है, वे पुण्यात्मा लोग हैं। वे ही इस नदी में स्नान करनेवाले हैं। पापी को इसका स्नान दुर्लभ है। पापवत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।

रामतिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल विपति घनेरी॥४॥

अर्थ : रामजी तिलक के लिए जो मंगल साज हुआ वही पर्व के दिन की भीड़भाड़ है। कैकेयी की कुमति काई है। जिसके फलरूप मे घोर विपत्ति पडी।

व्याख्या : रामतिलक पर्वयोग है। अयोध्या मे पर्वयोग रामनवमी ही है। यथा : जेहि दिन राम जन्म श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं। सो उस दिन समाज जुटा। यथा : एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज विराजा। रामजी की छब्बीसवी वर्ष गांठ थी। दूसरे दिन पुष्य मे तिलक होनेवाला था। यथा : सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा। रचहु मंजु मनि चौके चारू। कहहु बनावन वेगि बजारू। कैकेयी की कुबुद्धि काई हो गई। स्वयं चक्रवर्ती जी फिसल पड़े। रामजी को वनवास दे दिया। राजा की मृत्यु हुई। साज अमङ्गल मे परिणत हो गया। यथा : भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउरसोर। विपुल विहगवन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर।

दो. समन अमित उतपात सब, भरत चरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बक काग॥४१॥

अर्थ : असीम उत्पात की शान्ति के लिए, भरत का चरित्र ही जप यज्ञ है। कलियुग के पापो और दुष्टो के दोषों के जो वर्णन है, वे ही जलमल : काई के लिए बगले और कौवे हैं।

व्याख्या : अवसि चलिअ बन राम पहँ, भरत मत्र भल कीन्ह। सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलबन दीन्ह। सब लोगों ने भरत जी को राज्य स्वीकार करने के लिए कहा। परन्तु भरत जी ने स्वीकार नही किया। रामजी को वन से लौटा लाने के लिए वन जाना निश्चित किया। रामजीके विरह से व्याकुल प्रजा के लिए भरत जी का मन्त्र मानों डूबते हुए को सहारा हो गया। यथा : मन्त्र सबीज सुनत

जनु जागे। रामजी के समझाने बुझाने पर लौटे भी तो रामजी से राज्य की स्वीकृति कराके उनके प्रतीक रूप से पादुका लेकर लौटे। चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के। इस भाँति भरतचरित से वे सब उत्पात उसी भाँति शान्त हुए जिस भाँति जपयज्ञ से सब आपत्तियाँ टल जाती हैं। भगवान् ने स्वय कहा है यज्ञाना जपयज्ञोस्मि। यज्ञो मे जपयज्ञ मैं हूँ। वक काग जलमल काई को खा जाते हैं। कुमति ही काई है। कलि के अघ और खल के अवगुण कहने से लोगो की कुमति दूर होती है। अत कलिअघ, खल अवगुण कथन भी यहाँ उपयोगी है।

रामजी का प्रधान चरित्र अयोध्याकाण्ड तक ही है। निशाचररारि और रामराजसुख आदि का वर्णन चरित-सरित का ऋतुवर्णन मात्र है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥१॥

अर्थ यह कीर्तिरूपिणी नदी छ ऋतुओ मे सुन्दर है। समय समय पर सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। पार्वती और शिवजी का व्याह हिम ऋतु है और प्रभु का जन्मोत्सव सुख देनेवाला शिशिर ऋतु है।

व्याख्या नदियो की शोभा म ऋतुभेद से अन्तर पडता है परन्तु यह कीर्ति-सरित छ ऋतु म सुहावन है। दूसरी नदियाँ वर्षा काल मे अपावन हो जाती है और यह सभी काल म अत्यन्त पवित्र है। जिस ऋतु मे जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा रहती है। ग्रन्थकार ने जिस प्रसङ्ग को जिस ऋतु से उपमित किया है उस ऋतु का धर्म भी कथा वर्णन मे दरशाया है। ऋतुओ म पहले हिम ऋतु को ही माना क्योकि वेदो म वर्ष का अन्त शरद मे माना है। इसलिए शरद वर्ष का नामान्तर माना गया है और भगवान् ने मार्गशीर्ष मास को अपनी विभूति बतलाया है। हिम ऋतु मे दो मास होते है। १ अगहन मार्गशीर्ष और पूस पौष। इसी भाँति इस प्रसङ्ग म दो चरित है। १ उमा चरित और २ शम्भु चरित। इसमे हिम जाडा की प्रखरता रहती है। पार्वतीजी ने हिम की उपमा काम से, शिवजी की उपमा अग्नि से दी है। यथा . तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तहि निकट जाइ नहिं काऊ। गए समीप सो अवसि नसाई। अस मन्मथ महेस की नाई। सो इस प्रसङ्ग मे कामका प्रकोप दिखलाकर ससार को उसके वश मे दिखलाया पर शिवजी का सामना पडने पर वह सशक हो गया। यथा सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू। भयेउ यथा थिति सब ससारू। पूस के अन्त मे अग्नि भी मन्दे पडे। यथा करहिं विविध विध भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। इत्यादि। अत हिमशैल सुता शिव व्याह को हिमऋतु कहा।

प्रभु जन्म उछाह को ग्रन्थकार ने शिशिर ऋतु रूप वर्णन किया है। शिशिर ऋतु मे दो मास हैं, १ माघ और २ फाल्गुन। सो प्रभु जन्म हुआ माघ और उछाह फागुन हुआ।

वसन्त पञ्चमी से ही फगुआ का महोत्सव प्रारम्भ हो जाता है। उसे श्रीपञ्चमी

कहते हैं। सरस्वती का जन्मदिन माना जाता है। उसे प्रभुजन्म दिन से उपमित किया। यथा हरषित जहँ तहँ धाई दासी। आनद मगन सकल पुरवासी। इत्यादि। प्रभु जन्मोत्सव में तो ग्रन्थकार ने पूरा फगुआ मना दिया है। गीले सूखे रङ्ग का भी वर्णन है। यथा अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी। मृग मद चदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा। सन्ध्या को अभिसारिका बनाकर प्रभु के पास भेजा। बूढ़े शङ्कर को भी स्वाँग बदले हुए दिखलाया। विविध ताप होली जलै खेलिअ असफाग। इस पद को सार्थक कर दिया।

बरनब राम बिवाह समाजू। सो मुद मगलमय [1]रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू। पथकथा खर आतप पवनू॥२॥

अर्थ रामजी के विवाह के समाज का वर्णन आनन्दमङ्गलमय ऋतुराज है। रामजी का वनगमन असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा कड़ी धूप और लू है।

व्याख्या ऋतुराज वसन्त के दो महीने होते हैं। १ मधु चैत्र और २ माधव वैशाख। सो राजादशरथ और जनक को ही ग्रन्थकार ने मधु और माधव माना है। यथा मधुमाधव दशरथजनक मिलव राज ऋतुराज। बारात और अगवानी के समाज को ही वसन्त की सेना माना है डेरा कीन्ह्यो मनहु तब कटक हटकि मनजात।

ग्रन्थकार ने वसन्त ऋतु के त्यौहारो को भी झलका दिया है। यथा देवी पूजा, परशुराम जयन्ती, गङ्गा सप्तमी आदि।

श्रीराम वनगमन को ग्रन्थकार ने ग्रीष्म रूप से उपमित किया है। ग्रीष्म के दो मास होते हैं १ ज्येष्ठ २ आषाढ। जिस भाँति गरमी ससार को असह्य हो जाती है। उसी भाँति रामगमन प्रजा को असह्य हो गया। यथा बागन विटप वेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही। सहि न सके रघुवर विरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इत्यादि। जो सरकार को इस अवस्था मे देखता है वही दुखी हो जाता है मानो उसे लू लग गई। आषाढ मे पहिला पानी भी बरस जाता है, जिसे दँवगरा कहते हैं। सो पहिला सग्राम खरदूषण युद्ध भी हुआ। गुरुपूर्णिमा द्योतित करते हुए शङ्कर स्थापन भी करते है।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥३॥

अर्थ राक्षसो के साथ घोर लड़ाई वर्षा ऋतु है। जो देवताओं के समूह रूपी धान के लिए सुन्दर कल्याण करनेवाली है। रामजी के राज्य म सुख, विनय और बड़ाई है। वही सुख देनेवाली सुन्दर निर्मल शरद ऋतु है।

व्याख्या निशाचररारि को ग्रन्थकार ने घोर वर्षा कहा है। वर्षा के दो महीने होते हैं। १ श्रावण और २ भाद्रपद। सो बाईस दोहो म चारो फाटक की लड़ाई

१ अयुक्तस्य रि इस सूत्र से ऋ का रि हुआ।

जनु जागे। रामजी के समझाने बुझाने पर लौटे भी तो रामजी से राज्य की स्वीकृति कराके उनके प्रतीक रूप से पादुका लेकर लौटे। चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के। इस भाँति भरतचरित से वे सब उत्पात उसी भाँति शान्त हुए जिस भाँति जपयज्ञ से सब आपत्तियाँ टल जाती हैं। भगवान् ने स्वय कहा है यज्ञाना जपयज्ञोस्मि। यज्ञो मे जपयज्ञ मैं हूँ। बक काग जलमल काई को खा जाते हैं। कुमति ही काई है। कलि के अघ और खल के अवगुण कहने से लोगो की कुमति दूर होती है। अत कलिअघ, खल अवगुण कथन भी यहाँ उपयोगी है।

रामजी का प्रधान चरित्र अयोध्याकाण्ड तक ही है। निशाचररारि और रामराजसुख आदि का वर्णन चरित-सरित का ऋतुवर्णन मात्र है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥१॥

अर्थ यह कीर्तिरूपिणी नदी छ ऋतुओ मे सुन्दर है। समय समय पर सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। पार्वती और शिवजी का व्याह हिम ऋतु है और प्रभु का जन्मोत्सव सुख देनेवाला शिशिर ऋतु है।

व्याख्या नदियों की शोभा मे ऋतुभेद से अन्तर पडता है परन्तु यह कीर्ति-सरित छ ऋतु मे सुहावन है। दूसरी नदियाँ वर्षा काल मे अपावन हो जाती हैं और यह सभी काल मे अत्यन्त पवित्र है। जिस ऋतु मे जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा रहती है। ग्रन्थकार ने जिस प्रसङ्ग को जिस ऋतु से उपमित किया है उस ऋतु का धर्म भी कथा वर्णन मे दरशाया है। ऋतुओं मे पहले हिम ऋतु को ही माना क्योंकि वेदो मे वर्ष का अन्त शरद मे माना है। इसलिए शरद वर्ष का नामान्तर माना गया है और भगवान् ने मार्गशीर्ष मास को अपनी विभूति बतलाया है। हिम ऋतु मे दो मास होते हैं। १ अगहन मार्गशीर्ष और पूस पौष। इसी भाँति इस प्रसङ्ग मे दो चरित हैं। १ उमा चरित और २ शम्भु चरित। इसमे हिम जाडा की प्रखरता रहती है। पार्वतीजी ने हिम की उपमा काम से, शिवजी की उपमा अग्नि स दी है। यथा . तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गए समीप सो अवसि नसाई। अस मन्मथ महेस की नाई। सो इस प्रसङ्ग मे कामका प्रकोप दिखलाकर ससार को उसके वश मे दिखलाया पर शिवजी का सामना पडने पर वह सशक हो गया। यथा सिवहिं बिलोकि ससकेउ मारू। भयेउ यथा थिति सब ससारू। पूस के अन्त मे अग्नि भी मन्द पडे। यथा करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहि कैलासा। इत्यादि। अत हिमशैल सुता शिव व्याह को हिमऋतु कहा।

प्रभु जन्म उछाह को ग्रन्थकार ने शिशिर ऋतु रूप वर्णन किया है। शिशिर ऋतु मे दो मास हैं, १ माघ और २ फाल्गुन। सो प्रभु जन्म हुआ माघ और उछाह फागुन हुआ।

वसन्त पञ्चमी से ही फगुआ का महोत्सव प्रारम्भ हो जाता है। उसे श्रीपञ्चमी

पहले हैं। सरस्वती का जन्मदिन माना जाता है। उसे प्रभुजन्म दिन से उपमित किया। यथा : हरषित जहँ तहँ धाई दासी। आनंद मगन सकल पुरवासी। इत्यादि। प्रभु जन्मोत्सव में तो ग्रन्थकार ने पूरा फगुआ मना दिया है। गीले सूखे रङ्ग का भी वर्णन है। यथा : अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी। मृग मद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा। सन्ध्या को अभिसारिका बनाकर प्रभु के पास भेजा। बूढ़े शङ्कर को भी स्वाँग बदले हुए दिखलाया। विविध ताप होली जले खेलिअ असफाग। इस पद को सार्थक कर दिया।

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय [1]रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम बन गमनू। पंथकथा खर आतप पवनू॥२॥

अर्थ : रामजी के विवाह के समाज का वर्णन आनन्दमङ्गलमय ऋतुराज है। रामजी का वनगमन असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा कड़ी धूप और लू है।

व्याख्या : ऋतुराज वसन्त के दो महीने होते हैं। १ मधु चैत्र और २ माधव वैशाख। सो राजादशरथ और जनक को ही ग्रन्थकार ने मधु और माधव माना है। यथा : मधुमाधव दशरथजनक मिलव राज ऋतुराज। बारात और अगवानी के समाज को ही वसन्त की सेना माना है : डेरा कीन्ह्यो मनहु तव कटक हटकि मनजात।

ग्रन्थकार ने वसन्त ऋतु के त्योहारों को भी झलका दिया है। यथा : देवी पूजा, परशुराम जयन्ती, गङ्गा सप्तमी आदि।

श्रीराम वनगमन को ग्रन्थकार ने ग्रीष्म रूप से उपमित किया है। ग्रीष्म के दो मास होते हैं : १. ज्येष्ठ २ आषाढ। जिस भाँति गरमी संसार को असह्य हो जाती है। उसी भाँति रामगमन प्रजा को असह्य हो गया। यथा : बागन बिटप बेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही। सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इत्यादि। जो सरकार को इस अवस्था में देखता है वही दुःखी हो जाता है मानो उसे लू लग गई। आषाढ़ में पहिला पानी भी बरस जाता है, जिसे दँवगरा कहते हैं। सो पहिला संग्राम खरदूषण युद्ध भी हुआ। गुरुपूर्णिमा द्योतित करते हुए शङ्कर स्थापन भी करते हैं।

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥
राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥३॥

अर्थ : राक्षसों के साथ घोर लड़ाई वर्षा ऋतु है। जो देवताओं के समूह रूपी धान के लिए सुन्दर कल्याण करनेवाली है। रामजी के राज्य में सुख, विनय और बड़ाई है। वही सुख देनेवाली सुन्दर निर्मल शरद ऋतु है।

व्याख्या : निशाचररारि को ग्रन्थकार ने घोर वर्षा कहा है। वर्षा के दो महीने होते हैं। १ श्रावण और २ भाद्रपद। सो बाईस दोहों में चारों फाटक की लड़ाई

---

१. अयुत्तस्य रि. इस सूत्र से ऋ का रि हुआ।

कुम्भकर्णवध और मेघनादवध दिखलाया गया। इस भाँति श्रावण की वर्षा समाप्त हुई। बाईस दोहो मे रावण वध दिखलाया गया। यह भाद्रपद की वर्षा थी। इसमे वर्षा के नक्षत्र भी दिखलाये गये है। इन दृष्टियो को लेकर प्रसङ्गो के लगाने मे बडा आनन्द आयेगा। मैंने प्रादेश मात्र दिखलाया है।

ग्रन्थकार ने रामराज्य को शरद माना है। शरद मे दो मास होते है। १ आश्विन और कार्तिक। इस भाँति रामराज्य प्रकरण के भी दो विभाग हैं। एक राज्याभिषेक और दूसरा रामराज्य का सुख। इसमे भी व्याज से पितृपक्ष, देवपक्ष, दीपावली आदि का वर्णन किया गया है।

सती सिरोमनि सियगुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एक रस बरनि न जाई॥४॥

अर्थ सतियो की शिरोमणि सीताजी के गुणो की गाथा ही उस निर्मल अनुपम जल का गुण है। भरतजी का स्वभाव ही सुन्दर शीतलता है। जो सदा एक रस रहती है। जिसका वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या सीताजी सती शिरामणि हैं। इनके स्मरण से स्त्रियाँ पतिव्रत आचरण करती है। यथा सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं। इनके गुणो से दोनो कुल पवित्र हुए। इनकी उज्ज्वल कीर्ति से अनन्त ब्रह्माण्ड व्याप्त है। यथा पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह विधि अड करोरी। इनके गुणो की गाथा ही इस निर्मल अनुपम जल के गुण है। इस जल के रामयश रूप होने से निर्मल तथा निरुपम कहा।

भरत का स्वभाव सदा एक रस है और सर्वथा अवर्णनीय है। यथा भरतहि होइ न राजमद विधि हरिहर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ। सुनहु लखन भल भरत सरीखा। विधि प्रपच महँ सुना न दीखा। सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगध सुधाससि सारू। इत्यादि। वही इस जल की शीतलता कही। जो सदा एकरस रहती है और जल को ऐसा सुस्वादु बनाए रहती है कि उसका वर्णन नही हो सकता।

दो अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहु बधु की, जल माधुरी सुवास॥४२॥

अर्थ : देखना, बोलना, मिलना, प्रीति और परस्पर हँसी तथा चारो भाइयो का उत्तम भाईपन, जल की मिठास और सुगन्ध है।

व्याख्या जल अमृत सा मीठा है। चारो भाइयो के देखने, बोलने, मिलने, प्यार करने और हँसने मे अमृत सी मिठास है। इसलिए जल की मिठास से उपमा दी।

अवलोकन बोलनि, यथा महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कह्यौ न बैन।
दरसन तृपित न आज लगि प्रेम पियासे नैन॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती।
नाना भाँति सिखावहिं नीती॥

मिलनि प्रीति, यथा मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।
कविकुल अगम करम मनवानी ॥

इस जल मे स्वभाववश सुगन्ध है। इस भाँति भाइयो के हास मे बडा ही माधुर्य है। यथा हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिण मनोहर हासा।

जल मे सुगन्ध स्वभाव से नही होता पर इसमे स्वाभाविक सुगन्ध है। जिससे दिगन्त व्याप्त है और वह सुगन्ध चारो भाइयो का भाईपन है। जिसे ससार जानता है। यथा इनके प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाय मन भाव सुहावनि। इस भाँति जल के तीन गुण निर्मलता, शीतलता और माधुर्य कहे। वस्तुत जल म सोलह[१] गुण कहे गये है। शेष तेरह आगे कहे जावेंगे।

आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमलहारी ॥१॥

अर्थ मेरी आर्ति विनय और दीनतारूपी सुन्दर हलकापन सुन्दर जल म कम नही है। बडा ही अद्भुत जल है, सुनते ही गुण करता है। और आशारूपी प्यास तथा मनोमल को दूर करता है।

व्याख्या टिप्पणी मे दिये हुए चौदहवे, बारहवें और सोलहवे गुणो को क्रम से ऊपर कह आये। प्रसङ्ग से सुगन्ध भी कहा जो रामयश सलिल के लिए स्वभाविक है। परन्तु लौकिक जल के लिए आगन्तुक है। अत वैद्यक शास्त्र ने उसे जल के गुणो की गणना मे स्वीकार नही किया है। अब तेरहवाँ गुण लघुता कहते हैं। रामयशरूपी सुवारि मे लघुता कैसे कहे और जल म गुरता भारीपन बडा भारी दोप तथा लघुता बडा भारी गुण है। इसलिए ग्रन्थकार कहते है कि रामयश-रूपी जल म जो बडी लघुता है वह मेरे कारण है। लघुता का दोप उस यश मे नही है। मेरी आर्ति, विनय और दीनता जो इस कविता सरिता मे दिखलाई गई हैं बडी भारी लघुता है। अब नवाँ गुण 'गुप्त रसत्व[२]' कहते है कि इस जल का रसत्व भी गुप्त है। यह पीने से नही श्रवण मात्र से गुण करता है। अद्भुत जल है।

१ पानीय श्रमनाशन क्लमहर मूर्च्छापिपासाहरम्।
तन्द्राछर्दिविबन्धहृद्बलकर निद्राहर तर्पणम् ॥
हृद्य गुप्तरस ह्यजीर्णशमक नित्य हित शीतलम्।
लघ्वच्छ रसकारण निगदित पीयूषवज्जीवनम् ॥

अर्थ. जल १ श्रमनाशक है २ ग्लानिहर है ३ मूर्च्छा और प्यास हरण करता है ४ तन्द्रा, वमन, कब्जायत हरण करता है ५ बल देता है ६ निद्रा हरण करता है ७ तृप्ति देता है ८ हृदय को हित है ९ रस उसका गुप्त है १० अजीर्ण दूर करता है ११ नित्य हित है १२ शीतल है १३ लघु है १४ स्वच्छ है १५ रस का कारण है और १६ जीवन के लिए अमृत सा है।

२ जल स्वाभाव स मधुर होता है पर मालूम नही होता। हरीतकी आदि भक्षण से माधुर्य का अनुभव होता है।

अब तीसरा गुण कहते हैं। लौकिक जल प्यास और मूर्च्छा दूर करता है। और यह अलौकिक जल आशारूपी प्यास और मनोमलरूपी मूर्च्छा को दूर करता है। प्यास तो बुझ जाती है। पर आशारूपी प्यास नहीं बुझती हते भीष्मे हते द्रोणे हते कर्णे महाबले। आशा बलवती राजन् शल्यो जेत्स्यति पाण्डवान्। सञ्जय कहते हैं कि हे राजा धृतराष्ट्र! आशा बडी बलवान् है। भीष्म मारे गये। द्रोण मारे गये। महाबल कर्ण मारे गये तुम्हारे पुत्रो ने अब पाण्डवो को जीतने की आशा से शल्य को सेनापति बनाया है। सो यह अलौकिक जल उसे भी दूर करता है। मूर्च्छा तो दूर हो जाती है पर मनोमल नहीं दूर होता। वह भी इस जल से दूर हो जाता है।

राम सुपेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलिकलुष गलानी ॥
भौ श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥२॥

अर्थ यह जल रामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है और कलियुग के पापो की ग्लानि को हरण करता है। ससार की थकावट को सोख लेता है। तोष को भी तुष्ट करता है। पाप, दुःख और दरिद्रतारूप दोषो को नष्ट करता है।

व्याख्या जल रस का कारण है। रस बनने से ही रक्त आदि बनकर अनित्य शरीर का पोषण होता है, पर यह अलौकिक जल तो रामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है जो नित्य सुख का कारण है। इस भाँति जल के पन्द्रहवे गुण 'रसकारणत्व' का निरूपण करके दूसरे गुण 'क्लमहरत्व' का निरूपण करते हैं।

जल ग्लानि को दूर करता है। ऐसी ग्लानिया कितनी बार हुईं और दूर हुईं परन्तु कलिकलुषग्लानि तो कभी नहीं गई। अलौकिक जल उसे भी हरण करता है। अब पहिला गुण कहते हैं जल श्रम का नाश करता है। शरीर से काम लने से थकावट आती है। वह जल से दूर होती है। यथा मज्जन कीन्ह पथश्रम गयऊ। परन्तु भवश्रम के नाश का तो कोई लौकिक उपाय नहीं है। वह तो इस अलौकिक जल से ही जाता है। यथा देखेउँ करि सब कर्म गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहि की नाईं। अब सातवाँ गुण 'तर्पण' कहते हैं जल से तोष होता है। यथा स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। परन्तु वह तोष जल के भरोसे कितनी देर ठहरेगा। उस तोष का भी तोषण करनेवाला यह अलौकिक जल है। यथा अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे। अब दसवाँ गुण कहते हैं। जल अजीर्ण दोष को दूर करता है, पर दुःख-दरिद्र-दोषरूपी अजीर्ण का हटना तो कठिन है। वह भी इस अलौकिक जल से दूर होता है।

काम क्रोध मद मोह नसावन। विमल विवेक विराग बढावन ॥
सादर मज्जन पान किए ते। मिटहिं पाप परिताप हिए ते ॥३॥

अर्थ काम, क्रोध, मद और मोह को नष्ट करनेवाला है और निर्मल विवेक और वैराग्य को बढानेवाला है। आदर सहित स्नान करने और पान करने से हृदय के सारे पाप और दुःख मिट जाते हैं।

व्याख्या अब चौथा गुण कहते हैं। जल तन्द्रा, छर्दि वमन विबन्ध कोष्ठ-

बद्धता का हरण करता है। तन्द्रा अज्ञानावस्था मे ला देती है। छर्दि वमन से बडा कष्ट होता है। अङ्ग अङ्ग मे पीडा होती है। वायु की गति ऊर्ध्व हो जाती है। कोष्ठबद्धता अनेकानेक रोगो का कारण है। ये सब यत्किञ्चित् जल से दूर होते है। इनके लिए प्रभावशाली औषधियाँ दूसरी हैं, पर काम की भाँति अज्ञान लानेवाला, क्रोध की भाँति अनर्थ करनेवाला और मदमोह की भाँति सम्पूर्ण मानसिक व्याधियो का मूल तो दूसरा कुछ नही है। उनका भी निश्चित नाश इस अलौकिक जल से होता है।

अब पाचवाँ गुण कहते है। जल बल बढाता है। भौतिक शरीर मे शक्ति आती है। परन्तु *बलकारिणी प्रभावशालिनी औषधियाँ दूसरी ही हैं। विवेक और* विराग बल ही वास्तविक बल है। यथा जब उर बल विराग अधिकाई। मोहि सो कहहु कृपाल ज्ञान प्रभाव कि योग बल। उसे तो यह अलौकिक जल बढाता है।

अब आठवाँ गुण कहते हैं। जल हृदय के लिए हित है। कुछ शान्ति ला देता है। परन्तु पाप और परिताप को हृदय से हटाकर उसका सच्चा हित तो यह अलौकिक जल है। इस भाँति इस अलौकिक जल मे जल के सोलहो गुण दिव्यातिदिव्य रूप मे वर्तमान हैं।

जिन्ह येहि वारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
तृषित निरखि रविकर भव वारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥४॥

अर्थ जिन्होने इस जल से अपना मानस नही धोया, उन कायरो को कलिकाल ने ठग लिया है। जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणो की चमक मे मृग जल मे जलबुद्धि से उसके पास जाना चाहता है और दु ख के सिवा उसे कुछ नही मिलता। इसी भाँति मनुष्य भी दु खी होते फिरेगे।

व्याख्या अब तो विषम वन, दुर्लंघ्य पर्वत और भयानक नदियो को पार करके मानसरोवर नही जाना है। खुले मैदान मानसरोवर का जल सरयू मे बह रहा है। अब तो ग्रन्थकार या किसी पण्डित के यहाँ भी नही जाना है। अपनी भाषा मे रामयश बह रहा है। अब भी जिसने इस जल से अपने मन को न धोया अर्थात् इससे लाभ नही उठाया वह कायर है। उसे इतना भी साहस नही कि खुले मैदान बहते हुए परम पुनीत लाभदायक अलौकिक जल से मन को पवित्र करे। उसे नि सन्देह कलियुग ने ठग लिया। उसका जन्म व्यर्थ गया। मरकर न जाने किस योनि मे जायगा। सिवा कलियुग के ठगने के अन्य कोई कारण उसके लाभ न उठाने का नही मालूम होता।

जिसने इस अलौकिक सुख से लाभ न उठाया वह सुख के लिए मृगतृष्णा के पीछे दौडेगा। विषय मे सुख चाहेगा और विषय मे सुख है नही। सुखाभास मात्र दिखाई पडता है। उसी के पीछे दौडेगा और अब मिला तब मिला इसी आशा मे दौडते दौडते मर जायगा। मृग इसी भाँति मरीचिका के पीछे जलबुद्धि से दौडते दौडते मर जाता है।

दो मति अनुहारि सुवारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी सकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥४३॥
अब रघुपति पद पकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहौ जुगल मुनिवर्ज कर, मिलन सुभग सवाद ॥४३॥ क

अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार सुन्दर जल के गुणो को गिनकर मन मे स्नान कराकर और महादेव पार्वती को स्मरण करके कवि · श्रीगोस्वामीजी सुहावनी कथा कहता है।

प्रसाद रूप म पाकर श्रीरामजी के चरण कमलो को हृदय मे धरकर दोनो मुनिवरो का मिलन और सुन्दर सवाद वर्णन करता हूँ।

व्याख्या अब सरयू जी का स्नान कहते है। यथा मज्जहि सज्जनवृद वहु पावन सरयू नीर। राम सुयश जल के गुणो का गिनना ही स्नान है। यहाँ भवानी शङ्कर का फिर स्मरण करते हैं। तीन वार प्रणाम करके ही वात समाप्त नही होती। कथा करते समय भी शङ्कर विस्मरण न हो क्योकि उन्हीके प्रसाद से ग्रन्थकार कवि हुए। यथा सभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी। वे सुकवि हैं कथा कर चुके है। यथा यत्पूर्वं प्रभुणा कृत सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। ग्रन्थकार उन्ही के प्रसाद से कविता कर रहे हैं। कह कवि कथा सोहाइ। उपक्रम उपसहार का मिलान

उपक्रम	उपसहार
करइ मनोहर मति अनुहारी	मति अनुहारी सुवारिवर गुन गन गनि मन अन्हवाइ कहकवि कथा सोहाइ
वरखहि रामसुयस वरवारी	सुवारि गुन
भइ कवि वुद्धि विमल अवगाही	गनि मन अन्हवाइ
कहौ कथा सोइ सुखद	कह कवि कथा सोहाइ

कवित्व तो प्रसाद मे पहिल ही मिल चुका था। इस वार प्रसाद मे भगवान् के चरण कमल मिले। शङ्कर भगवान् के मानस मे चरण थे। यथा जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजही। भुसुण्डि के मानस म भी है। यथा जो भुसुण्डि मन मानस हसा। याज्ञवल्क्य के मानस मे भी चरणकमल हैं। यथा मुनिमन मानस हस निरतर। पर ग्रन्थकार के मानस मे नही थे, अत इन्हाने मानस के रूपक मे छन्द, सोरठा, दोहा को कमल का स्थान दिया। यह त्रुटि समझकर शङ्कर भवानी ने रघुपति पद पङ्करह को प्रसाद रूप मे दिये। ग्रन्थकार ने तुरन्त हृदय मे रख लिया। जो प्रसाद सिर पर रक्खा जाता है उसका विसर्जन किया जाता है। इसका विसर्जन ग्रन्थकार को इष्ट नही है। इससे हृदय मे धारण किया।

इसके बाद दो वस्तु का वर्णन आरम्भ करते हैं। १ याज्ञवल्क्य भरद्वाज मिलन और २ उनका सवाद। पहिले मिलन कहेंगे।

भरद्वाज याज्ञवल्क्य सवाद

भरद्वाज मुनि वसहि प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना ॥१॥

अर्थ भरद्वाज मुनि प्रयागराज मे वसते थे। उन्हे रामजी के चरणो मे वडा अनुराग था। वे तपस्वी शम, दम, दया के निधान थे और परमार्थ मार्ग मे वडे निपुण थे।

व्याख्या [1]प्रयागराज मे रहना कहकर भरद्वाज ऋषि की तीर्थ सेवा कही। वाल्मीकि जी के शिष्य हैं अत रामपद अति अनुराग कहा। अथवा रामपद अति अनुराग पद से भरद्वाज जी को तीर्थराज का भी पावन करनेवाला महातीर्थ कहा। यथा

सो सुकृती सुचिमत सुसत, सुजान सुसील सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ ताही मनावत आवत, पावन होत है तात नछुवै ॥
गुनगेह सनेह को भाजन सो, सवही सो उठाइ कहौं भुजद्वै।
सति भाय सदा छल छाडि सवै, तुलसी जो रहै रघुवीर को ह्वै ॥ क

जिन्होने तपस्या करके इन्द्र से तीन सौ वर्ष की आयु वेदाध्ययन के लिए पाई और अन्त मे वेदो के सारभूत ॐकार को प्राप्त किया, इसलिए तापस कहा। शम से अन्त करण का नियमन तथा दम से वाह्येन्द्रियो का दमन और दया से परम धर्म म निष्ठा कही और 'परमारथ पथ परम सुजाना' कहकर ज्ञान निष्ठा कही। इस भाँति कर्म, ज्ञान और उपासना तीनो काण्डो का नैपुण्य कहा।

माघ मकर गत रवि जव होई। तीरथ पतिहि आव सव[2] कोई ॥
देव दनुज किनर नर श्रेनी। सादर मज्जहि सकल त्रिवेनी ॥५॥

अर्थ माघ के महीने मे जव सूर्य मकर राशि मे आते है, तव सव कोई तीर्थराज प्रयाग मे आते हैं। देव दैत्य किन्नर और मनुष्यो के समूह सभी आदर पूर्वक त्रिवेणी[3] मे स्नान करते हैं।

व्याख्या प्रयागराज प्राजापत्य तीर्थ है और ब्रह्मनक्षत्र अभिजित् पर मकर मे ही सूर्य आते हैं अत मकर मे प्रयागराज का अत्यधिक माहात्म्य है। सौर और चान्द्र दो प्रकार का मास प्रचलित है। सक्रान्ति से सौर और पूर्णिमा से चान्द्र मास

---

१ 'क्षेत्र प्रजापते पुण्य सर्वेषामपि दुर्लभम्। लभ्यते पुण्यसम्भारै नान्यथार्थस्य राशिभि ।'
सवसे दुर्लभ यह ब्रह्मदेव का तीर्थ प्रयागराज है, इनकी प्राप्ति पुण्य राशि से होती है। धन की राशियो से नही होती।

२ भुवो लोकाच्च भूर्लोकान्नागलोकात् तथा लिखात् स्नातु माघे समायान्ति प्रयाग अरुणोदये काशी खण्डे ऊपर के सव लोका से तथा पाताल तक से प्राणी प्रयाग म अरुणोदय स्नान के लिए चले आते हैं।

३ इय वर्णोहि नि श्रेणी ब्रह्मणो वर्त्म यास्यत । यह वणा ब्रह्म के मार्ग की सीढी है।

का हिसाब चलता है। मकर की सक्रान्ति और माघ मास मे कुछ दिनो का ही हेर फेर पडता है। अत माघ और मकर एक ही समझा जाता है। कल्पवास करनेवाले, कोई सक्रान्ति भर और कोई माघ की पूर्णिमा तक, एक मास प्रयागराज मे रहते है। यथा पूर्णिमाया समारभ्य पूर्णिमाया समापयेत्। मकरे वा समारभ्य कुम्भे वाऽथ समापयेत्। ग्रन्थकार का कथन है कि केवल मनुष्य ही एक मास नित्य त्रिवेणी मे स्नान नही करते, बल्कि देवता और असुर भी आदर के साथ स्नान करते है। लौकिक दृष्टि से न देखे जाने पर भी शास्त्रदृष्टि से यह बात देखी गई है। जो भीड प्रयागराज मे दिखाई पडती है वह वास्तविक भीड की चौथाई मात्र है क्योकि देव-दनुज-किन्नरो की भीड तो मनुष्यो के लिए अदृश्य है।

पूजहि माधव[१] पद जल जाता। परसि अषयवटु हरषहि गाता॥
भरद्वाज आश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन॥३॥

अर्थ माधव के चरणकमलो की पूजा करते है, और अक्षयवट का स्पर्श कर के पुलकित होते है। भरद्वाज का आश्रम अतिपावन, बडा ही रमणीय और मुनिवर मनभावन था।

व्याख्या अब कल्पवास की विधि कहते है कि त्रिवेणी के स्नान के बाद वेणीमाधव का पूजन करते थे और अक्षयवट के स्पर्श से उनका शरीर पुलकित हो उठता था क्योकि अक्षयवट का स्पर्श दुर्लभ है। उसका प्रलय मे भी नाश नही होता और इसी के पत्ते पर बालमुकुन्द विराजमान होते है।

अतिपावन और मनभावन होने से ही भरद्वाज जी ने आश्रम बनाया था। रामकथा के चारो स्थान अतिपावन और मनभावन हैं। अथवा जगम प्रयाग स्वरूप भरद्वाज मुनि के निवास से अतिपावन हुआ। अत वही आश्रम अन्य मुनिवरो को भी मनभावन था। इसीलिए मुनिलोग वही एकत्रित होते थे। यथा

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहि जे मज्जन तीरथ राजा।
मज्जहि प्रात समेत उछाहा। कहहि परस्पर हरिगुन गाहा॥४॥

अर्थ प्रयाग मे जो स्नान करने जाते थे उन ऋषि मुनियो का जमाव वही होता था। प्रात काल सब उत्साह के साथ स्नान करते थे और एक दूसरे से भगवान् के गुणो की गाथा कहते थे।

व्याख्या रामजी के चरणो मे अति अनुराग होने के कारण भरद्वाज मुनि के प्रति सब ऋषि-मुनियों का बडा आदर था और उनका आश्रम भी अत्यन्त पावन और मनभावन था। अत वही सबका जमाव होता था। जो स्नान करने जाते थे वे वही ठहरते थे। कल्पवास की सक्षेप विधि यही है कि माघ के विकट जाडे मे भी

---

१ यत्र लक्ष्मीपति साक्षात् वैकुण्ठादेत्य मानवान्। श्रीमाधवस्वरूपेणानयद्विष्णो पर पदम्॥

यहाँ रमापति साक्षात् वैकुण्ठ से आकर मनुष्यो को माधव स्वरूप मे विष्णुपद प्राप्त कराते हैं।

अर्धोदय स्नान उत्साह के साथ करना और शेष समय भजन मे व्यतीत करना। भगवान् के गुणो का कथन श्रवण भगवान् की वाङ्मयी पूजा है। उसी मे लगे रहते थे।

दो. ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहि तत्वविभाग।
कहहि भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान विराग ॥४४॥

अर्थ : ब्रह्मनिरूपण करते थे। धर्म की विधि और तत्त्व का विभाग वर्णन करते थे तथा ज्ञान और वैराग्य से सयुक्त ईश्वरभक्ति का कथन करते थे।

व्याख्या : ब्रह्मनिरूपण और तत्त्वविभाग के वर्णन से ज्ञानकाण्ड अथवा ब्रह्मविचार कहा। धर्मविधि के निरूपण से विधिनिषेधमय कर्मकथा कही और ज्ञानविराग युक्त भगवान् की भक्ति निरूपण से रामभक्ति कहा एव स्थावर तीर्थराज मे जगम तीर्थराज की उपस्थिति कही। यथा : मुदमगलमय सतसमाजू। जो जग जगम तीरथराजू। राम भगति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा। विधि-निषेधमय कलिमलहरनी। कर्मकथा रविनंदिनि बरनी। आदि। तत्त्वविभाग का वर्णन पुरुष-प्रकृति के भेदज्ञान मे बड़ा उपकारक होता है।

एहि प्रकार भरि माघ नहाही। पुनि सब निज निज आश्रम जाही ॥
प्रति संवत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहि मुनिवृन्दा ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वे माघ भर स्नान करते और फिर सब अपने अपने आश्रमो को जाते थे। हर साल अत्यन्त आनन्द होता था। मुनि लोग मकरस्नान करके चले जाते थे।

व्याख्या : इस चौपाई से यह दिखलाया कि सौरमास और चान्द्रमास दोनो मे प्रयाग का माहात्म्य है फिर भी यह झलकता है कि यद्यपि सब लोगो मे चान्द्रमास प्रचलित है, सब लोग उपर्युक्त विधि से माघ भर स्नान करके अपने आश्रम को लौटते थे, पर मुनिवृन्द मकर भर स्नान करके तब जाते थे। कभी कभी मकर माघ की पूर्णिमा डाककर आगे तक चला जाता है, तब सब लोग तो पूर्णिमा स्नान कर चले जाते हैं परन्तु मुनिवृन्द मकर का स्नान पूरा करके तब जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागवलिक मुनि परम विवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥२॥

अर्थ : एक बार मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने अपने आश्रमो को चले गये। परन्तु परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाज जी ने चरण पकड़-कर रोक रक्खा।

व्याख्या : समय निश्चित नही इसलिए एक बार कहा। माघ भी बीत गया और मकर भी बीत गया। भाव यह कि भरद्वाज-याज्ञवल्क्य सवाद फाल्गुन मास कुम्भ के सूर्य मे हुआ। मुनि सभी विवेकी थे। पर याज्ञवल्क्य परम विवेकी थे। शुक्ल यजुर्वेद का प्रादुर्भाव इन्ही से हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषत् इन्हीका कहा

का हिसाब चलता है। मकर की सक्रान्ति और माघ मास मे कुछ दिनो का ही हेर फेर पडता है। अत माघ और मकर एक ही समझा जाता है। कल्पवास करनेवाल, कोई सक्रान्ति भर और कोई माघ की पूर्णिमा तक, एक मास प्रयागराज मे रहते हैं। यथा पूर्णिमाया समारभ्य पूर्णिमाया समापयेत्। मकरे वा समारभ्य कुम्भे वाऽथ समापयेत्। ग्रन्थकार का कथन है कि केवल मनुष्य ही एक मास नित्य त्रिवेणी मे स्नान नही करते, बल्कि देवता और असुर भी आदर के साथ स्नान करते है। लौकिक दृष्टि से न देखे जाने पर भी शास्त्रदृष्टि से यह बात देखी गई है। जो भीड प्रयागराज मे दिखाई पडती है वह वास्तविक भीड की चौथाई मात्र है क्योंकि देव-दनुज-किन्नरो की भीड तो मनुष्यो के लिए अदृश्य है।

पूजहिं माधव[१] पद जल जाता। परसि अपयवट हरखहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥३॥

अर्थ माधव के चरणकमलो की पूजा करते है, और अक्षयवट का स्पर्श कर के पुलकित होते है। भरद्वाज का आश्रम अतिपावन, बडा ही रमणीय और मुनिवर मनभावन था।

व्याख्या अब कल्पवास की विधि कहते है कि त्रिवेणी के स्नान के बाद वेणीमाधव का पूजन करते थे और अक्षयवट के स्पर्श से उनका शरीर पुलकित हो उठता था क्योकि अक्षयवट का स्पर्श दुर्लभ है। उसका प्रलय म भी नाश नही हाता और इसी के पत्ते पर बालमुकुन्द विराजमान होते है।

अतिपावन और मनभावन होने से ही भरद्वाज जी ने आश्रम बनाया था। रामकथा के चारो स्थान अतिपावन और मनभावन हैं। अथवा जगम प्रयाग स्वरूप भरद्वाज मुनि के निवास से अतिपावन हुआ। अत वही आश्रम अन्य मुनिवरा को भी मनभावन था। इसीलिए मुनिलोग वही एकत्रित होते थे। यथा

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा ॥४॥

अर्थ प्रयाग म जो स्नान करने जाते थे उन ऋषि मुनियो का जमाव वही होता था। प्रात काल सब उत्साह के साथ स्नान करते थे और एक दूसरे से भगवान् के गुणो की गाथा कहते थे।

व्याख्या रामजी के चरणो मे अति अनुराग होने के कारण भरद्वाज मुनि के प्रति सब ऋषि-मुनियो का बडा आदर था और उनका आश्रम भी अत्यन्त पावन और मनभावन था। अत वही सबका जमाव होता था। जो स्नान करने जाते थे वे वही ठहरते थे। कल्पवास की सक्षेप विधि यही है कि माघ के विकट जाडे म भी

---

१ यत्र लक्ष्मीपति साक्षात् वैकुण्ठादेत्य मानवान्। श्रीमाधवस्वरूपेणानयद्विष्णो पर पदम् ॥

यहाँ रमापति साक्षात् वैकुण्ठ से आकर मनुष्यो को माधव स्वरूप मे विष्णुपद प्राप्त कराते हैं।

अर्धोदय स्नान उत्साह के साथ करना और शेष समय भजन मे व्यतीत करना। भगवान् के गुणो का कथन श्रवण भगवान् की वाङ्मयी पूजा है। उसी मे लगे रहते थे।

दो. ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहि तत्वविभाग।
कहहि भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान विराग ॥४८॥

अर्थ : ब्रह्मनिरूपण करते थे। धर्म की विधि और तत्त्व का विभाग वर्णन करते थे तथा ज्ञान और वैराग्य से सयुक्त ईश्वरभक्ति का कथन करते थे।

व्याख्या : ब्रह्मनिरूपण और तत्त्वविभाग के वर्णन से ज्ञानकाण्ड अथवा ब्रह्म-विचार कहा। धर्मविधि के निरूपण से विधिनिषेधमय कर्मकथा कही और ज्ञान-विराग युक्त भगवान् की भक्ति निरूपण से रामभक्ति कहा एव स्थावर तीर्थराज मे जगम तीर्थराज की उपस्थिति कही। यथा : मुदमगलमय संतसमाजू। जो जग जगम तीरथराजू। राम भगति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा। विधि-निषेधमय कलिमलहरनी। कर्मकथा रविनंदिनि बरनी। आदि। तत्त्वविभाग का वर्णन पुरुष-प्रकृति के भेदज्ञान मे बड़ा उपकारक होता है।

एहि प्रकार भरि माघ नहाही। पुनि सब निज निज आश्रम जाही ॥
प्रति संबत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वे माघ भर स्नान करते और फिर सब अपने अपने आश्रमो को जाते थे। हर साल अत्यन्त आनन्द होता था। मुनि लोग मकरस्नान करके चले जाते थे।

व्याख्या : इस चौपाई से यह दिखलाया कि सौरमास और चान्द्रमास दोनो मे प्रयाग का माहात्म्य है फिर भी यह झलकता है कि यद्यपि सब लोगो मे चान्द्रमास प्रचलित है, सब लोग उपर्युक्त विधि से माघ भर स्नान करके अपने आश्रम को लौटते थे, पर मुनिवृन्द मकर भर स्नान करके तब जाते थे। कभी कभी मकर माघ की पूर्णिमा डाककर आगे तक चला जाता है, तब सब लोग तो पूर्णिमा स्नान कर चले जाते हैं परन्तु मुनिवृन्द मकर का स्नान पूरा करके तब जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागवलिक मुनि परम विवेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥२॥

अर्थ : एक बार मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने अपने आश्रमो को चले गये। परन्तु परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाज जी ने चरण पकड-कर रोक रक्खा।

व्याख्या : समय निश्चित नही इसलिए एक बार कहा। माघ भी बीत गया और मकर भी बीत गया। भाव यह कि भरद्वाज-याज्ञवल्क्य सवाद फाल्गुन मास कुम्भ के सूर्य मे हुआ। मुनि सभी विवेकी थे। पर याज्ञवल्क्य परम विवेकी थे। शुक्ल यजुर्वेद का प्रादुर्भाव इन्ही से हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषत् इन्हीका कहा

हुआ है। इन्हीकी स्मृति को आज भी उत्तर भारत अवनत मस्तक होकर मानता है। ये भी जाने को तैयार हुए, पर चरण पकडकर भरद्वाज जी ने रोक रक्खा।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी॥३॥

अर्थ आदर सहित उनके चरण कमल धोये, अति पुनीत आसन पर उन्हे बिठाया। पूजा करके मुनि के सुयश की प्रशसा की और अति पुनीत मृदुवाणी बोले।

व्याख्या यह चरण प्रक्षालन पूजा का अङ्ग है। इसलिए सादर प्रक्षालन कहते है। आसनो मे अति पुनीत आसन व्यासासन है जिस पर वेद शास्त्र के व्याख्याता बिठाये जाते हैं। अति पुनील होने से इसका पद सिंहासन से ऊँचा है। राजा भी व्यासासन से नीचे बैठते हैं। ऐसे व्यासासन पर बिठाया, गन्धमाल्यादि से पूजा की, स्तुति की। सकल लोक हितकारिणी कथा पूछी। इसलिए उस वाणी को अति पुनीत कहा। श्रवण सुखद होने से मृदु कहा।

नाथ एक ससउ[1] बड मोरे। करगत वेद तत्त्व सब तोरे॥
कहत सो मोहि लागति भय लाजा। जौं न कहौ बड होई अकाजा॥४॥

अर्थ हे नाथ! मेरे हृदय मे एक बडा सन्देह है और वेदो का सब तत्त्व आपके हाथो मे है। उसे कहते हुए मुझे डर और लज्जा मालूम होती है और बिना कहे भी बडी हानि है।

व्याख्या उभयकोटि अवलम्बी ज्ञान को सशय कहते हैं। ईश्वर सम्बन्धी होने से उस सशय को बडा कह रहे हैं क्योकि वह लौकिक उपायो से जा नही सकता। उसका उच्छेद वेदादि शास्त्रो से ही सम्भव है। वेदादि शास्त्र ही अज्ञातार्थ ज्ञापक हैं। सो उनका जो कुछ तत्त्व है वह आपके करगत है अर्थात् करामलकवत् आपको सम्यक् प्रकार से ज्ञात है।

उसे कहते हुए लज्जा और भय दोनो मालूम होते है। लज्जा इस बात की कि स्वय वाल्मीकिजी का शिष्य होकर भी मुझे रामविषयक शङ्का है और भय इस *बात का कि वेद-असम्मत वाणी सुनकर आप अप्रसन्न न हो जायँ। यथा कहहिं* सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। पाखडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साँच। और यदि मैं नही पूछता तो बडी हानि है, रामविषयक सन्देह हृदय मे बना ही रहेगा।

दो सत कहहि अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुर सन किये दुराव॥४५॥

---

१ उच्चस्वमो। इस सूत्र से 'सु' विभक्ति को 'उ' हुआ। इस भाँति 'सशय' का सशयु रूप हुआ। 'कगचजतदपयवा प्रायेण लोप' इस सूत्र से 'य' का लोप होकर 'सशउ' रूप हुआ। तब 'शषो स' सूत्र से 'श' का 'स' होकर 'ससउ' रूप सिद्ध हुआ।

अर्थ : हे प्रभो ! सन्तजन ऐसी नीति कहते है और श्रुति, पुराण और मुनि भी यह गान करते है कि गुरु से छिपाव रखने से हृदय मे निर्मल विवेक नही होता।

व्याख्या : जिस प्रकार का सन्तो मे व्यवहार चलता है वही सन्तो की नीति है। यह नीति स्वयं परम आदरणीय है किं पुनः श्रुति पुराण और मुनिगण से भी अनुमोदित होने पर। अत· अवश्य आचरणीय है। वह नीति यह है कि . गुरु से छिपाव करने से निर्मल विवेक नही होता। महामोह तमपुञ्ज के नाश के लिए जिसके वचन सूर्य की किरणे हैं उन्हीसे छिपाव करने से मोहान्धकार का नाश कैसे होगा! उनसे छिपाव करना तो मानो अन्धकार को हृदय मे स्थान देना है। मुनि-समाज एक महीने तक यहाँ था और नित्य ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग, भगवान् की भक्ति का निरूपण होता था परन्तु भय और लज्जा के कारण उन लोगो से अपना सशय प्रकट नही किंया। आप गुरु है, आपसे छिपाव नही कर सकता।

अस विचारि प्रगटौ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। सत पुरान उपनिषद गावा ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचारकर मैं अपना मोह प्रकट करता हूँ। हे नाथ ! आप जन पर छोह करके हरण कीजिये। राम नाम का अपार प्रभाव है। सन्त, पुराण और उपनिषद् ने गान किया है।

व्याख्या · याज्ञवल्क्यजी को गुरु मानकर उनसे कहते हैं कि भय और सङ्कोच-वाली बात ऋषिमुनि समाज मे नही प्रकट की। आपसे प्रकट करता हूँ। शिष्य और पुत्र समान रूप से ही वात्सल्य भाजन हैं। अतः छोह करके मेरा मोह, अज्ञान हरण कीजिये। मै आपका जन अर्थात् भक्त हूँ। तीनो लोकों की सम्पत्ति भी ज्ञान प्रदान के तुल्य नही है। अत. गुरु का वात्सल्य . चाहे ही शिष्य के मोह हरण का कारण होता है। अब मशय प्रकट करते हैं ·

राम नाम के प्रभाव की इयत्ता नही है : इस बात को सन्त, पुराण और उपनिषद् वेद के शिरोभाग ने कहा है। सन्त ! यथा : सो प्रभु सब मे रमि रह्यौ सर्व रूप सब ओर। ताते नाम सँभारि गहु सब नामन को मौर। पुराण। यथा : नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति· पापनिर्दहणे हरे·। तावत्कर्तुं न शक्नोति पातक पातकी जनः[१]। उपनिषत्। यथा : [२]यथा हि वटबीजस्थ प्राकृतो हि महान् द्रुम । तथा हि रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

सतत जपत संभु अविनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहही। कासी मरत परम पद लहही ॥२॥

---

१. नाम मे पाप जलाने की जितनी शक्ति है, उतने पाप पापी कर ही नही सकता।

२. जिस भाँति वट के बीज मे इतना बड़ा वटवृक्ष सूक्ष्म भाव से अवस्थान करता है उसी भाँति राम बीज मे चराचर विश्व अवस्थान करता है।

अर्थ अविनाशी, ज्ञानगुणराशि भगवान् शिव सदा जपा करते हैं। ससार के जीवों की चार खानि हैं। सो सब काशी म मरकर परम पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या स्वय षडैश्वर्यसम्पन्न, ज्ञानगुणसम्पन्न, अविनाशी, मङ्गलमय शिवजी जो कि सदा पूर्णकाम हैं नित्य जप किया करते हैं। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। यह नाममहिमा की परासीमा का उदाहरण है। सब प्रकार से आप्तकाम किसी क्रिया मे प्रवृत्त नही होते। फिर भी शिवजी रात दिन जपा करते हैं। ऐसा प्रभाव इस नाम का है।

स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज और पिण्डिज ये ही जीवो की चार खानि हैं, इनमे से जो काशी मे शरीर त्यागता है उसे परम पद की प्राप्ति होती है। यथा जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत सत श्रुति सकल पुरान। सोइ गति मरन काल अपने पुर देत सदासिव सबहि समान।

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछौं तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही ॥३॥

अर्थ हे मुनिराज! सो यह भी रामजी की महिमा से होता है। शिवजी दया करके उपदेश देते हैं। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? हे कृपासागर मुझे समझाकर कहिये।

व्याख्या सो काशी की यह महामहिमा राम नाम के प्रताप से है। यहाँ *प्राणोत्क्रमण के समय करुणा करके भगवान् शङ्कर तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं।* उस उपदेश के प्रभाव से उसे ज्ञान हो जाता है। ज्ञान होने से मुक्ति हो जाती है। अत्र हि जन्तो प्राणेपूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारक ब्रह्म व्याचष्टे। येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षी भवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत। अविमुक्त न विमुञ्चेदिति।

जिसके नाम का ऐसा माहात्म्य है, वे राम कौन हैं? यह बात मैं दूसरे से नही पूछ सकता था। इसलिए आपसे पूछता हूँ। केवल इङ्गित कर देने से काम न चलगा। मुझ समझाकर कहिये। जिसके नाम की ऐसी महिमा है उस नामी को भी महामहिम होना चाहिए।

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित ससारा ॥
नारि विरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोपु रन रावनु मारा ॥४॥

अर्थ एक राम अवधनरेश के पुत्र हैं। उनका चरित सारे जगत् म विख्यात है। उन्होने स्त्री के विरह म अपार दुख पाया। जब क्रोध हुआ तो रावण को युद्ध मे मार डाला।

व्याख्या यदि कहिये कि तुम वाल्मीकिजी के शिष्य होकर राम को नही जानते? उन्हीके चरित निरूपण के लिए वाल्मीकीय रामायण बनी। सम्पूर्ण ससार उनके चरित को जानता है। इस पर कहते हैं कि उन राम को तो मैं भी जानता हूँ। समार जानता है। उनका चरित तो ऐसा नही है जिससे नाम का ऐसा माहात्म्य कहा जा सके। स्त्री का विरह बहुतो को होता है पर कोई तो उनकी

भाँति लता और तरु से पूछता नही फिरता। वे ऐसे कामासक्त थे कि उनके स्त्री विरह दुःख का पारावार नही था। क्रोधी भी ऐसे थे कि रावण ऐसे वेदज्ञ को मार डाला। यथा रहा न कुल कोउ रोवनिहारा। ब्राह्मणकुल के सहार पर ध्यान न दिया। ऐसे कामी क्रोधी के नाम का ऐसा माहात्म्य कैसे हुआ ? दूसरा कोई ऐसे नामवाला सुना नही जाता। यही भारी सशय है।

दो प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्वग्य तुम्ह, कहहु विवेक विचारि ॥४६॥

अर्थ हे प्रभो ! वही राम हैं कि कोई दूसरे हैं जिनको त्रिपुरारि जपते हैं। आप सत्यधाम और सर्वज्ञ हैं। विचारकर कहिये।

व्याख्या त्रिपुरारि पद से महा सामर्थ्यवान् तथा महाज्ञानी कहा। दानवो के तीनो पुरो का एक बाण से दाह करनेवाले अथवा तीनो पुर स्थूल सूक्ष्म और कारण का नाश करके मुक्ति देनेवाले शिवजी क्या इन्ही सीताविरही रावणहन्ता राम के नाम का जप करते हैं या वे राम कोई और हैं। आप सत्य के आश्रय हैं। आपका कहा हुआ मिथ्या हो नही सकता। यथा देवि न मुधा होइ मुनि भाषा। आपने जनक की सभा मे शाकल्य ऋषि से कहा कि मूर्धा ते व्यपतिष्यतीति। त ह न मेने शाकल्य तस्य ह मूर्धा निपपात। तेरा सिर गिरेगा, फिर शाकल्य ने न माना तो उसका सिर गिर गया। अत मुझे विश्वास है आपके कहने से मेरा सशय जायगा। कोई सत्यवाक् भी हो और सर्वज्ञ न हो तब भी उसके कहने मे भ्रम की शङ्का रहती है। आप तो सर्वज्ञ हैं। यथा करगत वेदतत्व सब तोरे। अत भ्रम को भी स्थान नही है। आप परम विवेकी हैं। विचारकर कहिये कि क्या ऐसे विषयासक्त पुरुष के नाम का ऐसा माहात्म्य सम्भव है ?

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ विस्तारी ॥
जागवलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई ॥१॥

अर्थ जैसे मेरा भारी भ्रम मिट जाय हे नाथ ! आप वैसी ही कथा विस्तार के साथ कहिये। याज्ञवल्क्य जी मुसकराकर बोले तुम्हे रघुपति की प्रभुता मालूम है।

व्याख्या विपरीत ज्ञान को भ्रम कहते हैं। भरद्वाजजी का कहना है कि मुझे भारी भ्रम हो गया है। एक महीने तक रात दिन मेरे यहाँ ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग का वर्णन और ज्ञानविराग युक्त भक्ति का निरूपण बडे बडे महात्माओ द्वारा होता रहा पर मेरा भ्रम नही गया। इससे जाना कि मेरा भ्रम भारी है। यह विस्तारपूर्वक कथाश्रवण से जायगा। सो जिस कथा से जाय उसे विस्तार मे कहिये। भाव यह कि वाल्मीकीय रामायण माधुर्यप्रधान ग्रन्थ है। उसके पढने से मूढजनो को भारी सशय उठ खडा होता है। आप राम कथा को विस्तार मे कहिये जिसमे ऐश्वर्य को भी यथेष्ट स्थान मिले। तब यह सशय दूर हो। इसी प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण रामायण है।

जो रोगी रोग का निदान भी जानता हो तथा उसकी अचूक औषध भी जानता हो उसे वैद्य की क्या आवश्यकता है ? और उसे रोगी भी कैसे कहे ? भरद्वाजजी ने अपने कथन को स्वय मोहमूलक और भ्रान्त बतलाया। और उसके मिटने का उपाय विस्तारयुक्त रामकथा भी बतला दी। इस पर याज्ञवल्क्य जी हँस पडे। कहा तुम रामजी की प्रभुता जानते हो। तुम्हारा प्रश्न विनोद मात्र है। तुमने कहा नाथ एक सशय बड मोरे। सो तुम्हे सशय नही है।

राम भगत तुम मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मै जानी ॥
चाहहु सुनै रामगुन गूढा। कीन्हिहु प्रश्न मनहु अति मूढा ॥२॥

अर्थ तुम मनसा वाचा कर्मणा रामभक्त हो। मैंने तुम्हारी चतुराई जान ली। तुम रामजी के छिपे हुए गुणा को सुनना चाहते हो। इसलिए तुमने अत्यन्त मूढ की भाँति प्रश्न किया है।

व्याख्या 'सत्यधाम और 'सर्वज्ञ' विशेषणो से स्तुति की। उसका साफल्य दिखाते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि याज्ञवल्क्यजी सब जान गये। प्रोत्साहन के लिए कह भी दिया कि तुम मन, कर्म और वाणी से रामभक्त हो। यह पूछना तुम्हारी चतुराई है। अवजानन्ति मा मूढा मानुषी तनुमाश्रितम्। पर भावमजानन्तो मम लोक-महेश्वरम्। भ गी। मुझ मानुष शरीर धारण करनेवाले की मूढ लोग अवज्ञा करते है क्योकि वे मेरे माहेश्वर पर भाव को नही जानते। ऐसा भगवान् ने कहा है। सो भरद्वाजजी ने अत्यन्त अवज्ञा करके पूछा है। इसलिए कहते हैं मनहु अति मूढा। प्रकट गुण वाल्मीकिजी से सुन चुके हो। बिना मूढ की भाँति प्रश्न किय उत्तर म गूढ गुण सुनने मे नही आता।

तात सुनहु सादर समुझाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई ॥
महा मोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥३॥

अर्थ हे तात! तुम आदरपूर्वक जी लगाकर सुनो। मै रामजी की सुहावनी कथा कहता हूँ। महामोह विशाल महिषासुर है। और राम की कथा भयङ्कर कालिका है।

व्याख्या कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी का उत्तर दे रहे है। कथा सुनने के समय दूसरी बात मन म न सोचना ही आदर के साथ सुनना है। कोई बात मन म आने से छूट न जाय। इसलिए मन लाई कहा। महिषासुर ने देवताओ को बडा कष्ट दिया। किसी के मारे नही मरता था। पर उसकी मौत काली क हाथ थी। महिषासुर बडा विशाल था। उसके सीग हिलाने से बादल फट पडते थे। पूँछ की फटकार से समुद्र उछलता था। खुर के प्रहार स पृथ्वी विदीर्ण होती थी। पर वह महामोह के सामने कुछ नही था। महामोह से तो त्रैलोक्य व्याप्त है। अत उसके वध के लिए कराल कालिका की आवश्यकता है। महामोह की मौत रामकथा के हाथ है। यहाँ से दक्षिणघाट से भी कथा प्रारम्भ हुई।

राम कथा ससि किरन समाना। सत चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ ससय कीन्ह भवानी। महादेव तव कहा वखानी ॥४॥

अर्थ : रामजी की कथा चन्द्रमा की किरणो के समान है। इसे सन्तरूपी चकोर पान करते हैं। ऐसा ही सन्देह भवानी ने भी किया था। तब महादेव जी ने बखानकर कहा था।

व्याख्या रामकथा दुष्ट के लिए कराल है। पर सज्जन के लिए सौम्य हैं। जैसे चन्द्रमा की किरण होती है। चन्द्रमा की किरण को तो चकोर पान करते हैं। रामकथा का पान सज्जनरूपी चकोर करते हैं। जिस चन्द्रमा की रामकथा किरण है वह चन्द्र रामनाम है। यो तो यह चाँदनी सब को सुखद है पर चकोर के लिए विशेष लाभ है। यथा रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित हित विशेष बड लाहु।

याज्ञवल्क्य जी अति सक्षेप में कथा माहात्म्य कहकर कहते हैं कि यही सशय तो नही पर ऐसा ही सशय उमा ने महादेव जी से किया था। यथा जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि विरह मति भोरि। देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि। इत्यादि। यह भारतवर्ष की प्राचीन प्रणाली है कि प्रश्नकर्ता के उत्तर में किसी दूसरे बडे के सम्वाद को दिखलाते हुए उत्तर देते हैं। सो याज्ञवल्क्य जी उमा-महेश्वर सम्वाद कहेंगे। साथ ही भरद्वाज जी को उत्साहित करते हैं कि इस शङ्का को सामने लाते हुए तुम लज्जा और भय को चित्त मे स्थान न दो। स्वय साक्षात् भवानी ने ऐसी ही शङ्का की थी तब महादेव जी ने बखानकर कहा था।

दो कहौ सो मति अनुहारि अब, उमा सभु सवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि विषाद ॥४६॥

अर्थ मैं अब अपनी बुद्धि के अनुसार उमा-शम्भु का सवाद जिस समय और जिस कारण से हुआ कहता हूँ। हे मुनि जी! सुनने से विषाद मिट जायगा।

व्याख्या उमा-शम्भु का संवाद है इसलिए कहते हैं कि यथा बुद्धि कहूँगा। शिष्य के प्रोत्साहन के लिए प्ररोचन के वाक्य कहने चाहिए। अत 'तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई। रामभगत तुम मन क्रम बानी। आदि वाक्य कहे। अब भरोसा देते हैं कि सुनु मुनि मिटिहि विषाद। विस्तार से कथा पूछी है। इसलिए कथा का समय और हेतु दोनो का वर्णन पहिले करेंगे। भरद्वाज जी ने तीन बार 'कहहु' कह-कर प्रश्न किया। यथा १ कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। २ सत्य धाम सर्वज्ञ तुम कहहु विवेक विचारि। तथा ३ कहहु सो कथा नाथ विस्तारी। उत्तर में याज्ञवल्क्य जी भी तीन बार सुनहु कह रहे हैं। यथा १ तात सुनउ सादर मन लाई। २ कहौं सो मति अनुहारि अब उमा सभु सवाद। भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि विषाद और ३ कहहुँ सुनहु अब रघुपति लीला।

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥१॥

अर्थ एक बार त्रेता युग मे शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। उनके साथ जगजननी सतीजी भी थी। ऋषि ने उन्हे सारे जगत् का ईश्वर जानकर पूजा।

व्याख्या पहिले कह आये है भयउ समय जेहि हेतु जेहि। सो पहिले समय कहते है कि त्रेता युग की बात है। देवताओ का आना जाना अगस्त्यजी के यहाँ लगा ही रहता था। देवताओ के बैठने के लिए अगस्त्यजी के आश्रम मे स्थान बने हुए थे। यथा स तत्र ब्रह्मण स्थानमग्ने स्थान तथैव च। विष्णो स्थान महेन्द्रस्य स्थान चैव विवस्वत । सोमस्थान भवस्थान स्थान कौवेरमेव च। धातुर्विधातु स्थानञ्च वायो स्थान तथैव च। स्थानञ्च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मन । स्थान तथैव गायत्र्या वसूना स्थानमेव च। स्थानञ्च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च। कार्तिकेयस्य च स्थान धर्मस्थान च पश्यति। शिवजी भी जाया करते थे सो एक बार त्रेता युग मे गये। भगवती सती भी साथ मे थी। भवानी कहकर उनका शिवजी से सम्बन्ध कहा और 'जग जननि' कहकर अनादि शक्ति कहा। अखिलेश्वर जानकर पूजा करने का भाव यह कि अन्य देवताओ के जाने पर जैसी पूजा होती थी उससे अधिक पूजा मुनिजी ने की। क्योकि शिवजी विश्वनाथ है। ब्रह्मादि देवो के भी ईश्वर ठहरे। इसीलिए देवाधिदेव महादेव कहलाते है।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥२॥

अर्थ मुनिवर ने रामकथा वर्णन की और महेश्वर ने परम सुख मानकर सुनी। फिर ऋषि ने सुहाई हरि भक्ति पूछी और शिवजी ने अधिकारी पाकर कही।

व्याख्या पूजनोपरान्त रामकथा सुनाना शिवजी को प्रिय है। इसलिए मर्मज्ञ मुनिजी ने रामकथा का बखान किया। सम्भवत मुनिजी के आश्रम मे भगवान् पधारे थे। उसी वृत्तान्त का वर्णन किया। पूजनोपरान्त प्रिय समाचार सुनाया। महेश्वर ने बडे प्रेम से सुना। सती की रुचि नही थी। अत आदर से नही सुना। यथा *तत्र कर अस बिमोह मोहि नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माही।* मोह के बीज का वपन यही हुआ।

फिर ऋषिजी ने सुहाई हरिभक्ति अर्थात् फलरूपा सिद्धा हरिभक्ति पूछी। यथा *सब कर फल हरि भगति सुहाई।* साधनरूपा भक्ति के तो सभी अधिकारी है। यथा पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ। परन्तु सिद्धा भक्ति के जिसे अविरल, निर्भर आदि अनेक नाम से पुकारते है अधिकारी विरले है। यथा नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुगव निर्भरा मे कामादिदोषरहितं कुरु मानस च। सो कामादि दोषो से रहित स्पृहान्तर रहित पुरुष ही सुहाई भक्ति के अधिकारी है। मुनिजी उस भक्ति के अधिकारी थे। इसलिए शिवजी ने उनसे कहा।

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥३॥

अर्थ रघुपति के गुणो की गाथा कहते और सुनते गिरिनाथ कुछ दिनो तक वही रहे। मुनिजी से विदा माँगकर त्रिपुरारि दक्ष की कन्या के साथ घर चले।

व्याख्या यद्यपि कैलासनाथ हैं, फिर भी सत्सङ्ग के तथा हरिकथा के ऐसे रसिक हैं कि कुछ दिन वहाँ दण्डकारण्य मे ठहर गये। रघुपति के गुण ग्राम के कहनेवाले को अनिर्वाच्य विश्राम होता है और सुननेवाले को तृप्ति नही होती। यथा एहि विधि कहत राम गुनग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा। रामचरित जे सुनत अघाही। रस विसेष जाना तिन्ह नाही। जिनका नयन पथ मे आगमन क्षण भर के लिए दुर्लभ है वे कुछ दिन वहाँ रह गये।

अतिथि की भाँति आये थे। अत अतिथि की भाँति ही विदा माँगी। देवता की भाँति प्रादुर्भाव-तिरोभाव नही हुआ। विदा माँगने मे कारण दक्षकुमारी मालूम होती हैं। नही तो गिरिनाथ तो ऐसे रामकथा के रसिक है कि भुसुण्डि के यहाँ मराल बनकर पूरी कथा सुनी थी। दक्षकुमारी को घर जाने की जल्दी थी। दक्षकुमारी शब्द का प्रयोग दक्ष के स्वभाव की छाया सूचित करता है।

तेहि अवसर भजन महि भारा। हरि रघुवश लीन्ह अवतारा॥
पिता वचन तजि राज उदासी। दडक वन विचरत अविनासी॥१४॥

अर्थ इन्ही दिनो पृथ्वी का भार उतारने के लिए हरि ने रघुकुल मे अवतार लिया था। पिता के वचन से राजपाट छोडकर उदासीन होकर दण्डक वन मे विचरते थे।

व्याख्या तेहि अवसर का अन्वय 'विचरत' के साथ है। हरि का अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए होता है। यथा जब जब नाथ सुरन्ह दुख पावा। नाना तनु धरि तुमहि नसावा। मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम वपुधरी। रघुवश मे अवतार कहकर रामावतार सूचित किया। यहाँ कथा का प्रतीक मात्र कहते हैं। रघुवस लीन्ह अवतारा बालकाण्ड का प्रतीक है। पिता वचन तजि राज उदासी अयोध्याकाण्ड का प्रतीक है। दण्डक वन विचरत अरण्यकाण्ड का प्रतीक है। पिता वचन तजि राज उदासी से धर्म सस्थापन कहा। दंडक वन विचरहि अविनासी से दुष्कृतो का विनाश कहा। अविनाशी हैं इसीलिए दण्डक वन मे विचरते हैं। नही तो शापित दण्डक वन राक्षसो से भरा था। उसमे प्रवेश उनके नाश के लिए ही किया।

दो हृदय विचारत जात हर, केहि विधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ॥४८॥
सकर उर अति छोभु, सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची॥४८॥ क

अर्थ महादेवजी अपने मन मे विचारते जाते थे कि किस भाँति दर्शन हो प्रभु गुप्त रूप से अवतीर्ण हुए है। जाने से सब कोई जान जायँगे।

महादेवजी के मन मे बडा क्षोभ था सती इस भेद को जानती न थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि मन मे तो डर है और आँखे दर्शन की लालची हैं।

व्याख्या महादेवजी विचार कर रहे हैं कि मै जा नही सकता। मेरे जाने से बात खुल जायगी। सब लोग जान जायँगे कि यह अवतार है। सरकार गुप्त रूप से प्रकट हुए हैं। यह जनाना नही चाहते कि मैं अवतार हूँ। इसीलिए रावणवध तक ऐश्वर्य गुप्त रखखेंगे। तब दर्शन की कौन विधि है ? मै उनके पास जा नही सकता और बिना गये दर्शन कैसे हो ?

जाने से स्वामी की इच्छा की प्रतिकूलता का डर था और न जाने से दर्शन कैसे होगा ? सो दर्शन का लालच बढा हुआ था। मन की विभिन्न गति हो रही थी। इसीलिए 'क्षोभ' कहते है। सतीजी ने यदि मन लगाकर कथा सुनी होती तो कुछ मर्म समझती। उन्होने मन दिया ही नही। अत इस मर्म से अनभिज्ञ थी।

रावन मरनु मनुज कर जाँचा। प्रभु विधि वचनु कीन्ह चह साँचा ॥
जौ नहि जाउँ रहै पछतावा। करत विचारु न बनत बनावा ॥१॥

अर्थ रावण ने अपनी मौत मनुष्य के हाथ माँगी है। प्रभु ब्रह्मदेव की बात सच्ची करना चाहते है। यदि नही जाता हूँ तो जी मे पछतावा रहेगा। विचार करते थे पर कोई बात ठीक बैठती नही थी।

व्याख्या मनुष्यशक्ति की इयत्ता को रावण जानता था। ऐसा मनुष्य उत्पन्न करना जो रावण को मार सके ब्रह्मदेव की शक्ति के बाहर की बात थी। उसने अपनी समझ म मनुष्य के हाथ अपना वध माँगकर ब्रह्मदेव के वचन को मिथ्या करना चाहा था। यथा नर के कर आपन वध बाँची। हँसेउ जानि विधिगिरा असाँची। पर प्रभु अपने भक्त ब्रह्मदेव की वाणी सच्ची करना चाहते थे। इसीलिए नरावतार धारण किया। इस समय ध्वज, कुलिश, अङ्कुश और कञ्जादि चिह्नो स युक्त चरणो से वन के काँटो म घूम रहे है। यथा ध्वज कुलिस अकुस कजजुत वन फिरत कटक किन लहे। ऐसी भक्तानुग्रहकारिणी अवस्था यदि भक्तवत्सल प्रभु की अवस्था की झाँकी का दर्शन न किया तो पछतावा रह जायगा। इसी बात को मन मे बैठाते थे पर कोई युक्ति ठीक नही बैठती थी।

एहि विधि भए सोच बस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि सगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरगा ॥२॥

अर्थ इस प्रकार महादेवजी सोचवश हुए। उसी समय नीच रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ मे लिया। वह तुरत कपट का मृग हो गया।

व्याख्या तेही समय का अन्वय यथार्थ मे 'खोजत विपिन फिरत' के साथ है। पर बीच के बिना कहे अर्थ न लगता। इसीलिए यहाँ पर 'तेही समय लिख दिया। इस भाँति महादेवजी सोच के वश हुए। अब 'राम सदा सेवक रुचि राखी'

इस बात को दिखाते हुए कहते है, दशशोश ने सीताहरण विचारा। दशशीश कहने से उसकी निर्भयता दिखलायी। यथा है काके द्वै सीस ईसके जो हठि जन की सीम चरै। दशशीश भी नीच है, मारीच भी नीच है। दशशीश की नीचता। यथा तब सो गयउ जहाँ मारीचा। नाई माथ स्वारथ रत नीचा। मारीच की नीचता। यथा लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा। मारीच कपट मृग बना। रावण ने सीता हरण किया।

करि छल मूढ हरी वैदेही। प्रभु प्रभाउ तस विदित न तेही ॥
मृग[1] वधि वधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जलु छाए ॥३॥

अर्थ उस मूढ ने छल करके वैदेही का हरण किया। प्रभु का प्रभाव जैसा था वैसा उसने न जाना। हिरन को मारकर भाई सहित हरि लौटे। आश्रम को देखकर[2] आँखो मे आँसू आगये।

व्याख्या वैदेही बदल गई। माया की सीता हरण करके चला इसलिए रावण का मूढ कहा। अथवा निशिचर की कालरात्रि को इतने परिश्रम से हरण करके ले जाकर लङ्का म स्थापित करने चला इसलिए मूढ कहते हैं। उसको प्रभु का प्रभाव यथार्थ रूप से नही मालूम था। उसका चित्त सन्देह म था। यथा सुररजन भजन महि भारा। जौ भगवत लीन्ह अवतारा। तउ मैं जाइ वयर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। जौ नर रूप भूपसुत कोऊ। हरिहौ नारि जीति रन दोऊ। जब बल से जीतने का साहस नही हुआ तब मायापति को माया से जीतना चाहा।

मृगवध करके आ रहे है इसलिए 'हरि' कहना ही उपयुक्त है। आश्रम देखि जानकी हीना। भए विकल जस प्राकृत दीना। व्रजन्ति मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविपु ये न मायिन। मायावी के साथ जो माया नही करता वह मूढ पराभव को प्राप्त होता है। अत प्राकृत दीन की भाँति विकल होना यह रामजी की माया है। माया की जानकी को ही वह असली जानकी समझता है। वह सीता हरण करने म स्वय ठगा गया। इस बात का उसे भान नही था।

विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग वियोग न जाके। देखा प्रगट विरह दुखु ताके ॥४॥

अर्थ रघुराई मनुष्य की भाँति व्याकुल हैं। दोनों भाई वन मे सीता को

---

१ समासोक्ति।

२ आश्रम निरखि भूल द्रुमन फले न फूल, अलि खग मृग माना कबहूँ न हे। मुनि न मुनि वधूटी उजरी परन कुटी पचबटी पहिचानि ठाढई रहे। उठा न सलिल लिए प्रेम मुदित हिये, प्रिया न पुलकि प्रिय वचन कहे। पल्लवसालन हेरी प्रानवल्लभा न टेरी विरह विथकि लखिलखन गहे। गी

ढूँढते हुए फिरने लगे। जिन्हे कभी सयोग वियोग नही होता उन्हे प्रत्यक्ष विरह के दुख मे देखा।

व्याख्या · अद्वितीय को योग वियोग कहाँ ? योग वियोग तो जीव को होता है। इसी को भ्रम का फद कहा गया है। यथा जोग वियोग भोग भल मदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फदा। रामजी को प्रत्यक्ष विरह के दुख मे देखना माया है। माया अघटित घटना पटीयसी है। जो बात तीन काल मे नही है · उसे प्रत्यक्ष करके दिखला दिया। जस काछिय तस चाहिय नाचा। सो ठीक मनुष्य का अनुकरण करके नर की भाँति रामजी विकल दिखाई पड रहे है और तमाम जगल दोनो भाई ढूँढ रहे है।

दो अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।

जे मतिमद विमोह बस, हृदय धरहि कछु आन ॥८९॥

अर्थ रघुपति का चरित्र बडा ही विचित्र है। इसे परम सुजान ही जानते है। जो मतिमन्द है वे विमोह वस मन मे कुछ और बात समझते है।

व्याख्या · ब्रह्म का कौसलपुर भूप होना ही विचित्र बात है। यथा कहहुँ विचित्र कथा विस्तारी। जेहि कारन अज अगुन अनूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा। और उनका विरह-विकल होना तो अति विचित्र है। परम सुजान से अति उच्च अधिकारी कहा। परम सुजान शम्भु है। उन्हे देखकर अति हर्ष हुआ। आगे कहेगे उपजा हिअ अति हर्ष विसेखा। जो मतिमन्द है वे उन्हे सीधे मनुष्य समझेगे। यथा उमा राम गुन गूढ, पडित मुनि पावहिं विरति। पावहिं मोह विमूढ, जे हरि विमुख न धर्म रति। यथा अनेक वेप धरि नृत्य करै नट कोई। सोइ सोइ भाव दिखावै, आपुन होइ न सोइ। अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहन जन सुखकारी।

सभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हिअ अति हरपु विसेखा ॥

भरि लोचन छविसिधु निहारी। कुसमउ जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥१॥

अर्थ शिवजी ने उस समय रामजी को देखा तो उनके मन मे अति विशेप हर्ष हुआ। छवि के समुद्र को शिवजी ने आँख भर देखा पर अवसर ठीक न समझकर जान पहचान नही की।

व्याख्या विचार करते थे दर्शन के लिए पर बात बैठती नही थी। एकाएक दर्शन हो गया। देखा कि विरह-विकल सीता को खोज रहे है। प्रेमास्पद को दुखी देखकर दुखी होना चाहिए सो न हुआ। परम सुजान है। जानते है कि 'राम सहज-आनन्द-निधान' है। बात बन गई। दर्शन हो गया। इसलिए हर्ष और अद्भुत भाव प्रदर्शन देखकर अति विशेप हर्ष हुआ। सो शम्भु राम को देख रहे है। रामजी नही देखते है। अत दर्शन का सुअवसर है।

जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नाहि अघाय। सो अघायकर देखने का अवसर मिला। अन्य समय मे वसन विभूपण से अङ्ग ढके रहते थे। पूरा सौन्दर्य देखने को नही मिलता था। इस समय वस्त्राभूषण से अनावृत शोभा देखने को

मिली। यथा कागर कीर विभूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई। प्रभु शोभा के सिन्धु हैं। नित्य शोभा की नई लहरें उठा करती हैं। सदा अपूर्व शोभा है। दर्शन तो कर लिया पर सामना न किया। ऐश्वर्य छिपाने का अभिनय हो रहा है। इस समय कुसमय है। सामना करना ठीक नहीं। जब रावण वध से ऐश्वर्य प्रकट हो जायगा उस समय सुअवसर होगा। यथा देखि सुअवसर प्रभु पहँ आये सभु सुजान।

जय सच्चिदानंद जगपावन। अस कहि चले मनोजनसावन ॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता ॥२॥

अर्थ . जगत् के पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्द की जय हो। ऐसा कहकर कामदेव के मारनेवाले कृपानिधान शिवजी चले। बार बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती के साथ चले जाते थे।

व्याख्या सच्चिदानन्द से ब्रह्म कहा। जगपावन से अवतार कहा। यथा चरित पवित्र किये ससारा। 'जय' शब्द से अपनी प्रणति सूचित की। मनोजनसावन शिवजी हैं। यथा . तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सभु रहे सविकारा। हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी। इनका प्रणाम विरही के लिए नहीं हो सकता। यही सती के सशय का बीज है। 'चले' कहने से पता चलता है कि दर्शन के समय ठहर गये थे।

कृपानिकेत हैं। दक्षकुमारी का मन नहीं लगा। इसलिए भवन चले थे। यहाँ भी थोडा ही ठहरे। पर स्वामी के स्मरण से बार बार सात्त्विक भाव हो रहा है। त्रैलोक्यसुन्दरी सती साथ रहती हुई भी विस्मृत हो रही हैं।

सतीं[1] सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा सदेहु विसेखी ॥
संकर जगतवद्य जगदीसा । सुर नर मुनि सब नावत सीसा ॥३॥

अर्थ · सती ने महादेवजी की वह दशा देखी। उनके मन मे विशेष सन्देह हुआ कि सारा जगत् तो शिवजी की वन्दना करता है। वे सारे जगत् के स्वामी हैं। इनको देवता, मनुष्य, मुनि सब सिर नवाते हैं।

व्याख्या : सती ने ऐसी दशा शम्भु की देखी नहीं थी। प्रकट रूप से शिवजी से सन्देह का प्रकाश न किया पर हृदय में सन्देह विशेष उपजा। शिवजी के आनन्द-विशेष से सती जी को सन्देहविशेष हुआ। जगत् के वन्द्य ने किसकी वन्दना की? जगदीश ने किसको ईश माना? जिसको सुर नर मुनि सिर नवाते हैं उसने किसे सिर नवाया? ऐसे को तो शङ्कर से भी बडा होना चाहिए।

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा ॥
भए मगन छवि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहित न रोकी ॥४॥

---

१. जिस भाँति आज कल भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के पीछे 'ने' लगाते हैं वैसे ही पहिले अनुस्वार लगाते थे।

अर्थ उन्होने राजपुत्र को सच्चिदानन्द परधाम कहकर प्रणाम किया। की छवि देखकर ऐसे मग्न हुए कि अब तक हृदय मे प्रीति रोकने से नही रुक ा है।

व्याख्या सती हैं, जिसकी छवि देखकर शिवजी मग्न है। उसकी छवि को सी गिनती मे नही ला रही हैं न उसकी महत्ता को गिन रही हैं। सशय को और ट करते हुए कहती है कि केवल शीश ही नही नवाया सच्चिदानन्द परधाम कहा। जगपावन और परधाम एक ही बात है। जो परधाम है वही जग को न कर सकता है। इसी भाँति मनुष्य की ब्रह्मलक्षण से स्तुति की।

अपरोक्ष मे वन्दना और स्तुति की और उनके परोक्ष मे ध्यान कर रहे । प्रेम का प्रवाह उमड पडा है। उसके रोकने से बार बार सात्त्विक भाव हो ा है।

दो ब्रह्म जो व्यापक विरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत वेद ॥५०॥

अर्थ जो ब्रह्म सबमे व्याप्त मायारहित अजन्मा कलाहीन इच्छा और रहित है और जिसे वेद नही जानते वह देह धारण करके क्या मनुष्य हो ता है ?

व्याख्या ब्रह्म व्यापक मायारहित अज अकल अनीह अभेद और अज्ञेय है। यदि शरीरधारी हो तो परिच्छिन्न मायावश जन्ममरणशील कलायुक्त सचेष्ट भेद-न्न और ज्ञेय हो जायगा। अर्थात् ब्रह्म ही न रह जायगा। जीवकोटि मे आ पडेगा। द तुष्यतु दुर्जनन्यायेन मान भी ले कि वह शरीर धारण करता है तो उत्तम शरीर रण न करके मरणशील मनुष्य का देह क्यो धारण करेगा ? भूलना नही चाहिए सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी शङ्का के उत्तर मे कहा गया है।

स्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्वग्य यथा त्रिपुरारी॥
जें सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥१॥

अर्थ विष्णु ने यदि देवताओ के लिए मनुष्य शरीर धारण किया है तो वे भी वजी के समान सर्वज्ञ हैं। वे ज्ञानधाम, श्रीपति, असुरारि क्या अज्ञानियो की भाँति खोजेंगे ?

व्याख्या विष्णु बराबर के हैं शिवजी को प्रिय भी है। वे मत्स्यकूर्मादि तार भी धारण करते है। उनके प्रति प्रणामादिक बन सकता है। परन्तु वे भी उसी भाँति सर्वज्ञ है जैसे त्रिपुरारि सर्वज्ञ है। वे ज्ञानधाम हैं। अज्ञ कैसे हो गे ? वे श्रीपति हैं। मानुषी को क्यो खोजेंगे। वे असुरारि है। उनके निकट असुर हरण करने कैसे आवेगा ? अत यह राजपुत्र विष्णु भी नही हैं।

भुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्वग्य जान सबु कोई॥
संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥२॥

अर्थ फिर शङ्कर भगवान् की वाणी भी झूठी नही हो सकती। सब कोई जानते है कि शिवजी सर्वज्ञ है। ऐसा अपार सशय मन मे हुआ। किसी भाँति ज्ञान का प्रसार नही होता था।

व्याख्या उभय कोटि अवलम्वी ज्ञान को सशय कहते हैं। एक कोटि ऊपर कह चुके कि विचार करने से न तो ब्रह्म ठहरते हैं, न विष्णु ठहरते हैं। परन्तु दूसरी कोटि यह है कि जगत् विख्यात सर्वज्ञ की वाणी झूठी कैसे हो सकती है। यथा वचन अन्यथा होइ न मोरा। इस व्यवस्था मे मन कही ठहरता नही। अत सशय का पार नही मिल रहा है। पहिले 'सदेह विशेप' कहा था अब 'अपार सशय' कह रहे हैं। अर्थात् सशय वृद्धिक्रम पर है।

जद्यपि प्रगट न कहेउँ भवानी। हर अतरजामी सब जानी ॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। ससय अस न धरिय उर काऊ ॥३॥

अर्थ यद्यपि भवानी ने प्रगट नही कहा। पर अन्तर्यामी हर ने सब जान लिया। कहा कि सती! सुनो तुम्हारा स्वभाव स्त्री का है। ऐसा सन्देह मन में कभी नही लाना चाहिए। जहाँ 'तन काऊ' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि ऐसा तनिक भी सशय मन म नही धारण करना चाहिए।

व्याख्या मन मे तो सोचती ही थी, प्रकट न कहा। डर था कि अप्रसन्न हो जायेगे कि मुझ पर इसे विश्वास नही है। जिसे मैं प्रणम्य समझता हूँ उसपर जीव होने का सशय करती है। पर हर अन्तर्यामी है, सब जान गये। समझा कि पूछने पर कहने से सामान्य बात हो जायगी। विना पूछे कहेगे तो विश्वास होगा कि जो मन की बात जान लेता है उसका कहना अन्यथा नही हो सकता और सशय जाता रहेगा।

'नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात्' यह नियम ऐसे अवसर के लिए नही। ऐसे सशय का इनके हृदय मे क्षण भर के लिए होना भी इन्हे अपने पद से गिरा सकता है। उस महाप्रभु के पररूप के देखने म देवता भी असमर्थ है। जब वह कृपासिन्धु लोकमङ्गल के लिए शरीर धारण करते हैं तभी उनके पूजन का मार्ग निरर्गल होता है। तो उनके अवतीर्ण होने पर सशय करना तो उस कृपाधारा से अपने को वञ्चित करना है जो लोकमङ्गल के लिए पृथ्वी पर बह रही है। 'यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकस । अपश्यन्त पर रूप नमस्तस्मै महात्मने। वि० पु०। अत विना पूछे भी कहते हैं। 'नारिस्वभाव' से भाव यह कि तुममे जडता हो। यथा राजकुमारि विनय हम करही। तिय सुभाव कछु पूछत डरही। विचार होता तो सशय उत्पन्न होते ही तुमको उसके निरसन का यत्न करना चाहिए था। सो मन मे छिपाये वैठी हो। सशय छोडने से छूटता है, उसके बनाये रखने का प्रयत्न न होना चाहिए।

जासु कथा कुभज रिपि गाई। भगति जासु मै मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा ॥४॥

अर्थ जिनकी कथा का गान कुम्भज ऋषि ने किया और जिनकी भक्ति

मैने मुनिजी को सुनाई वही रघुवीर मेरे इष्टदेव है जिनकी सेवा धीर मुनि सदा किया करते हैं।

व्याख्या सकर जगत वद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावति सीसा। का उत्तर देते है कि अभी-अभी उनकी कथा साक्षात् अगस्त्य जी ने गान की है और जिनकी भक्ति मैने मुनिजी को सुनाई। यथा रामकथा मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। रिषि पूछी हरि भगति सोहाई। कही सभु अधिकारी पाई। अत उनके माहात्म्य से तुम परिचित हो। उनका दर्शन भी आज हो गया। उन्हे स्त्रीविरही न मानो। वे ही मेरे इष्टदेव है। राजपुत्र नही है। धीर मुनि उनकी सेवा करते है।

छ. मुनि धीर जोगी सिद्ध सतत विमल मन जेहि ध्यावही।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावही॥
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतत्र नित रघुकुलमनी॥

अर्थ मुनि, धीर, योगी और सिद्ध निरन्तर शुद्ध चित्त से जिनका ध्यान करते है। वेद पुराण और शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति का गान करते है। उन्ही ब्रह्म व्यापक भुवनसमूह के पति, माया के स्वामी रामजी ने अपने भक्तो के लिए अवतार लिया है। क्योकि रघुकुलमणि नित्य स्वतन्त्र है।

व्याख्या भये मगन छवि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी। के उत्तर मे शिवजी कहते है चारो मार्गवाल इन्हीका ध्यान करते है। १ मुनि से ज्ञानमार्गी कहा। २ धीर से उपासनामार्गी कहा। यथा अस विचारि पडित मोहि भजही। ३ योगी से योगमार्गी कहा। ४ सिद्ध से कर्ममार्गी कहा। 'ब्रह्म जो व्यापक' के उत्तर मे कहते है सोइ राम व्यापक ब्रह्म और बिरज अज अकल अनीह अभेद के उत्तर मे कहते है भुवन निकाय पति मायाधनी तथा जाहि न जानत वेद के उत्तर मे कहते है कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावही। यथा वेदे रामायणे चैव हरि सर्वत्र गीयते। अब 'सो कि देह धरि होइ नर' के उत्तर म कहते है 'अवतरेउ अपने भगतहित निज तत्र नित रघुकुल मनी।

यह अट्ठाइस दल का कमल है। हरिगीतिका छन्द है। इस छन्द का वर्णन पहिले हो चुका है।

सो लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ सिव बार बहु।
बोले बिहँसि महेसु, हरि माया बलु जानि जिय॥५१॥

अर्थ यद्यपि शिवजी ने अनेक बार कहा तो भी सती जी के हृदय मे उपदेश न लगा। महेश मन मे हरिमाया का बल जानकर हँसकर बोल।

व्याख्या शिवजी के वचन भ्रमतम के लिए सूर्य की किरणें है। सो हृदय मे काम नही कर रहा है। बार बार प्रकाश डाल रहे है। भ्रमतम नही मिट रहा है।

समझ लिया कि इनके हृदय मे हरिमाया काम कर रही है। तभी हमारे उपदेश का वल नही चल रहा है। हरिमाया के बल को पहचान लिया इसलिए हँसे। सशय[1] किसी तरह हटना ही चाहिए। अत बोले :

जौ तुम्हरे मन अति सदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तव लगि वैठ अहौ वट छाही। जव लगि तुम ऐहहु मोहि पाही ॥१॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन मे अति सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यो नही लेती ? जव तक तुम मेरे पास आओ तव तक मैं इसी वरगद की छाया मे वैठा हूँ।

व्याख्या मेरे कहने पर भी यदि तुम्हारा सन्देह न जाता हो अति सन्देह हो तव तो दूसरा उपाय नही है। जाकर परीक्षा ले लो कि मेरे कहे हुए लक्षण रामजी मे घटते हैं या नही। अति सन्देह विना परीक्षा के जाता नही। सन्देह मिटाना ही चाहिए। परीक्षा लेने मे मैं सहायक नही होऊँगा। तुम जाओ परीक्षा लो। मै वट की छाया मे वैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। परीक्षा लेकर यही चली आना। जल्दी न करना। विचारकर काम करना। तुम्हारे लौटने तक यही ठहरा रहूँगा।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु विवेक विचारी ॥
चली सती सिव आयसु पाई। करहिं विचारु करौ का भाई ॥२॥

अर्थ · जिस प्रकार तुम्हारा यह भारी मोह भ्रम दूर हो वही यत्न विवेक से विचारकर करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सती चली और मन मे सोचने लगी कि 'भाई ! क्या करूँ।'

व्याख्या · तुम्हे मोहान्धकार मे भारी भ्रम हो गया है। उसे मिटाने के लिए परीक्षा करना। परन्तु मोहाविष्ट होने से परीक्षा लेने मे अविवेक न हो जाय। वडे की परीक्षा लेनी है। सो परीक्षा की ओर मत जाना। अपने भारी मोह भ्रम को मिटाने का यत्न करना।

परीक्षा लेने की तो इच्छा थी ही। पर सती हैं विना स्वामी की आज्ञा कैसे लें। सो आज्ञा पाते ही चल पडी। अव विचार करने लगी कि क्या करूँ। 'भाई' सम्बोधन मन के लिए है। यथा : तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करौ का भाई।

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छ सुता कहु नहि कल्याना ॥
मोरेहु कहे न संसय जाही। विधि विपरीत भलाई नाही ॥३॥

अर्थ : यहां शिवजी ने मन मे यह अनुमान किया कि दक्ष की वेटी का कल्याण

---

१. जिन भक्तो पर अनुग्रह करके भगवान् ने नर शरीर धारण किया वे ही यदि उनकी अवज्ञा करें तो इससे बढकर कृतघ्नता और क्या होगी। फिर भी शिवजी को परीक्षा के लिए सती को भेजना मजूर है। पर उनके हृदय मे एक क्षण के लिए ऐसा सशय रहने देना मजूर नहीं है।

नही है। मेरे समझाने से भी सन्देह नही दूर होता। तो विधि विपरीत हैं। भलाई नही है।

व्याख्या . कथा मे यह देखना आवश्यक होता है कि[1] ग्रन्थकार कहाँ हैं? बात स्पष्ट है कि ग्रन्थकार सती के साथ नही गये। महादेव जी के साथ रह गये। इसलिए कहते हैं कि यहाँ शङ्करजी ने मन मे अनुमान किया कि जिसका मेरे उपदेश पर भी सशय नही जाता उसका कल्याण नही होता। दक्षसुता का भी मेरे कहने पर सशय नही जाता। अत दक्षसुता का कल्याण नही। मेरे उपदेश से सशय जाने की विधि है। जिस भाँति सूर्य की किरणो से अन्धकार के हटने की विधि है। मेरे कहने पर सशय का न जाना और सूर्य के किरण पडने पर भी अन्धकार का न हटना एक बात है। इसलिए यह बात विधि विपरीत है। अत निश्चय भलाई होनेवाली नही है। अथवा ब्रह्मा बाएँ हो गये हैं। तभी हमारे कहने पर भी सशय नही जाता। नही तो हमारे सकल्प से सशय चला जाता है। यथा चित्र वटतरोर्मूले वृद्धा शिष्या गुरुर्युवा। गुरोर्मौनिन व्याख्यान शिष्या सक्षीणसशया। वट के पेड के नीचे विचित्र बात है कि शिष्य तो बूढे-बूढे हैं और गुरु जी युवा हैं। गुरुजी मौन होकर व्याख्यान दे रहे हैं और शिष्यो के सब सशय दूर हो जाते हैं। अत 'भलाई नाही।'

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढावैं साखा॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा। गई सती जह प्रभु सुखधामा॥४॥

अर्थ जो कुछ रामजी ने रच रक्खा है वही होगा। तर्क करके शाखा कौन बढावे। ऐसा कहकर हरिनाम जप करने लगे। और सती वहाँ गई जहाँ सुख के धाम प्रभु थे।

व्याख्या पहिले सूक्ष्म जगत् मे जो मानचित्र रामजी बना देते हैं वैसा ही इस जगत् मे स्थल रूप से होता है। उसे अन्यथा कोई नही कर सकता। अत पुरुषार्थ परमार्थ सुधारने में करना चाहिए। यथा मयैवैते निहता पूर्वमेव निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन्। भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि इन कौरवो को मैं पहिले ही मार चुका हूँ। हे अर्जुन तू निमित्तमात्र हो जा। तर्क करने से, उसमे शाखा पर शाखा निकलती ही जाती है। इसलिए कहा है कि तर्कोऽप्रतिष्ठ। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नही। अत सती जाकर क्या क्या करेगी और उसका क्या क्या फल होगा यह सोचना व्यर्थ है। सोच से कोई उपकार नही होता। ऐसा कहकर 'हरि नाम' का जप करने लगे। क्योकि यही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। यथा उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। चली सती सिव आयसु पाई से प्रसङ्ग छोडा था। अब फिर वही से उठाते है, गई सती जहँ प्रभु सुख धामा। प्रभु और सुखधाम कहकर सती का

---

१ ग्रन्थकार सदा भगवान् के साथ रहते हैं और यदि भक्त और भगवान् दोनो की कथा आ पडे तो अपने समाज के साथ अर्थात् भक्त के साथ रहते है। अत सम्पूर्ण ग्रन्थ मे 'इहाँ' और 'उहाँ' का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

भ्रम दिखलाया। जिसे उन्होंने स्त्रीविरह मे दु खी समझ रक्खा है वह सुखधाम है। यथा . मो सुखधाम राम अस नामा। जिसे 'नृपसुत' समझ रक्खा है वह प्रभु हैं।

दो पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीताकर रूप ॥
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप ॥५२॥

अर्थ : बार बार मन मे विचार करके और सीता का रूप धारण करके उस मार्ग मे आगे होकर चली। जिस मार्ग से मनुष्यो के राजा आ रहे थे।

व्याख्या जहाँ से चली वही से विचार प्रारम्भ हुआ। यथा करौ का भाई। रास्ते भर विचार करती रही। स्वामी का आदेश है अत बार बार विचार करके बात ठीक कर ली कि सच्ची परीक्षा तो तभी होगी जब मैं सीता का रूप धरूँ। यदि मनुष्य होगे तो मेरी माया का पार न पा सकेंगे। अत सीता का रूप धारण करके जिधर से रामजी आते रहे उधर ही चली। मानो सीता वन मे भूलती भटकती चली आ रही हैं। अभी रामजी आश्रम से बहुत दूर नही हैं। खोजना प्रारम्भ हुआ है। अत सीता के धोखे मे आ जावेंगे। देखते ही खिल उठेंगे। तब मैं अन्तर्धान हो जाऊँगी। इस भाँति परीक्षा भी हो जायगी और उनकी कोई हानि भी न होगी।

लछिमन दीख उमा कृत वेषा। चकित भये भ्रम हृदयँ विसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मति धीरा ॥१॥

अर्थ : उमा के बनावटी रूप को लक्ष्मणजी ने देखा। चकित हो उठे। हृदय मे विशेष भ्रम हुआ। अति गम्भीर थे। कुछ कह नही सकते थे। वे मतिधीर प्रभु का प्रभाव जानते थे।

व्याख्या · उमा कहने का भाव यह कि यह तो शिवजी की शक्ति हैं। ओर्मा उमा। उ जो शिव उनकी लक्ष्मी हैं। लक्ष्मणजी चकित हैं कि यह तो शिवजी की शक्ति हैं। इन्होंने जानकी जी का वेष क्यो बनाया है ? विशेष भ्रम हो रहा है कि मेरे समझने मे कुछ चूक तो नही हो रही है। या कोइ ऐसी माया हो रही है जो मैं समझ नही रहा हूँ।

श्रीराम जी के प्रभाव को मतिधीर लक्ष्मणजी जानते हैं कि इनसे कोई बात छिप नही सकती। ये स्वय जैसा उचित समझेगे करेंगे। मेरे कुछ भी कहने का मतलब यह होगा कि मुझे सरकार की सर्वज्ञता मे सन्देह है। अत कुछ नही कह सकते। गम्भीर भाव मे स्थित हैं।

सती कपटु जानेउ सुर स्वामी। सबदरसी सबअंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटै अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥२॥

अर्थ सती के कपट को सुरस्वामी जान गये। क्योकि सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदय के प्रेरक हैं। जिनके स्मरण से अज्ञान मिट जाता है वही सर्वज्ञ भगवान् रामजी हैं।

व्याख्या . सती साक्षात् माया है। यथा : तुम्ह माया भगवान् सिव सकल

जगत् पितु मातु। इनके कपट को ब्रह्मादि नहीं जान सकते। परन्तु देवताओं के स्वामी रामजी जान गये कि सीता के वेप में सती हैं। वे सर्वदर्शी हैं। सब देख रहे हैं कि महादेव जी बरगद तले बैठे हैं और वहीं से ये आई हैं। वे अन्तर्यामी हैं। भली भाँति जानते हैं कि शङ्करजी का उपदेश इनके गले नहीं उतरा। इसलिए परीक्षा लेने के लिए सीता बनकर आई हैं।

ज्ञानमार्गं तु नामत । जिनके नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है। अज्ञान का हटना और ज्ञान का होना एक बात है। वही सर्वज्ञ भगवान् रामजी नामी हैं। उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति। उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियों की गति और अगति, विद्या और अविद्या को जानता हो उसे भगवान् कहते हैं। सो सर्वज्ञ भगवान् रामजी को क्या अज्ञात रह सकता है?

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ॥
निजमायाबलु हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी॥३॥

अर्थ सती ने वहाँ भी छिपाव करना चाहा। स्त्री के स्वभाव का प्रभाव देखो। अपनी माया के बल की प्रशंसा मनमें करके रामजी हँसकर कोमल वाणी बोले।

व्याख्या भगवान् सर्वज्ञ से छिपाव चाहना चपलता है। यह स्त्रीस्वभाव है जो बात छिप नहीं सकती उसे भी छिपाती रहती हैं। कवि कहते हैं कि यह स्वभाव का प्रभाव है। स्वभावो दुरतिक्रम ।

कथा के अनादर के समय से ही माया की प्रेरणा हुई। उसी के सामने शिवजी के उपदेश का बल न चला। बात यहाँ तक बढी कि अब ये भी सीता बनकर आई हैं। अत अघटितघटनापटीयसी की हृदय से प्रशंसा की। और मृदु वाणी हँसकर बोले। सती के सीता बनने पर हँसे हैं।

जोरि[1] पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥४॥

अर्थ प्रभु ने हाथ जोडकर प्रणाम किया और पिता के सहित अपना नाम लिया। फिर कहा कि वृषकेतु कहाँ हैं? आप अकेली वन में क्यों फिर रही हैं?

व्याख्या प्रभु ने सविधि प्रणाम किया मानो बहुत दिनों का परिचय है। फिर भी सन्देह न रहे इसलिए पिता के समेत अपना नाम लिया। दाशरथी रामोऽहं त्वामभिवादये[2]। यथा पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा। पिता के समेत अपना नाम लेकर बडे को प्रणाम करना शास्त्रसम्मत है। जहाँ 'पिता समेत लीन्ह हरि नामू' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि सती को पिता समेत नाम लेकर प्रणाम किया। यथा सति! दाक्षायनि[3]! त्वामभि-

---

१ विहितालङ्कार है।
२ मैं दशरथ का बेटा राम हूँ तुम्हें प्रणाम करता हूँ।
३ हे दक्ष की पुत्री सती मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

वादये। इस भाँति धर्मपत्नी को प्रणाम नही किया। भाव यह कि आप देवी हैं, सीता नही हैं, मैं पहिचानता हूँ। दूसरा यह कि मैं नृपसुत हूँ। अत आप सर्वथा प्रणम्य हैं।

देवियों मे भी सती हैं। वृषकेतु को छोडकर आयी हैं। इसलिए पूछते हैं · कहाँ वृषकेतू। परीक्षा लेने के लिए अकेली आयी हैं। इसलिए कहते हैं विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू। अकेले स्त्री को वन मे घूमना निन्द्य है। अत इसका कारण पूछा। जिस सेवा के लिए आज्ञा हो मैं प्रस्तुत हूँ। कम से कम विष्णु तो अवश्य है। यह प्रमाण तो सती को मिल गया।

दो राम वचन मृदु गूढ सुनि, उपजा अति सकोचु।
सती सभीत महेस पहि, चली हृदय बड सोचु ॥५३॥

अर्थ रामजी के कोमल और गूढ वचन सुनकर अति सङ्कोच उत्पन्न हुआ और सती डरती हुई महेश के पास चली और हृदय में बडा सोच उत्पन्न हुआ।

व्याख्या रामजी के वचन मृदु थे परन्तु गूढ थे। उनमे छिपा हुआ अर्थ था। हाथ जोडकर पितृनामोच्चारण पूर्वक प्रणाम। वृषकेतु के विषय मे प्रश्न। जगल मे घूमने के विषय मे प्रश्न, अत्यन्त स्वाभाविक थे। फिर भी सती के लिए उसमे बडे बडे अर्थ भरे थे। ऐसे वचन को सुनकर सती को अति सङ्कोच हुआ। उत्तर न दे सकी। अपने रूप मे हो गयी। मुँह फेर लिया और शङ्कर भगवान् के पास चली। हृदय मे बडा सोच हुआ उसे कहती हैं।

मै सकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतर अब देहौ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥१॥

अर्थ मैंने शङ्कर जी का कहा न माना और अपने अज्ञान को रामजी पर रक्खा। अब जाकर मैं क्या उत्तर दूँगी? हृदय मे बडा दारुण दाह जलन उत्पन्न हुआ।

व्याख्या मुझसे दो-दो चूकें हुईं और दोनो असाधारण। पहिले तो यह कि मैंने शङ्कर की आज्ञा नही मानी। यदि मानी होती तो इस दुर्गति मे न फँसती। दूसरी यह कि अज्ञान मुझे था और मैंने रामजी को अज्ञानी माना। मेरी आँख बादल से ढकी थी और मैं समझती थी कि सूर्य बादल से ढक गय।

अब तो यही उत्तर देना शेष रहा कि मेरे सीता के रूप धारण करने पर भी उन्होने पहिचान लिया। बडी भारी चूक से बडा भारी दाह हृदय मे हुआ।

जाना राम सती दुखु पावा। निज प्रभाउ कुछ प्रगटि जनावा॥
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥२॥

अर्थ रामजी ने जान लिया कि सती दुःखी हो गयी। अत अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके दिखलाया। सती ने मार्ग म जाते यह कौतुक तमाशा देखा कि रामजी सीता और लक्ष्मण के सहित आगे हैं।

व्याख्या दु खी को और दु खी कैसे करें और शिवजी के वचन को सत्य करके दिखलाना भी कर्त्तव्य है। अत पहाड जैसे प्रभाव में से राई भर दिखल दिया। पहिले बातचीत मे ही जना दिया था। अब प्रकट रूप मे दिखावेंगे। यह अल्प माया दिखलाते है। वहाँ कौतुक शब्द का प्रयोग होता है। यथा ' माया नाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयौ। दिखलाया कि सीता का वियोग नही हुआ है। साथ मे है परन्तु तापस वेप है।

फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुदर वेषा ॥
जहँ[1] चितवहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहि सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥३॥

अर्थ पीछे की ओर फिरकर देखा तो भाई और सीता जी के साथ प्रभु को सुन्दर वेष मे पाया। जिधर देखती हैं उधर ही रामजी विराजमान है और प्रवीण सिद्ध और मुनीश उनकी सेवा कर रहे है।

व्याख्या पीछे देखा तो उधर भी रामजी हैं। सोचा कि मैने तो उनको ओर से मुँह फेर लिया था। इधर कहाँ से आगये। इधर भी सीता-लक्ष्मण साथ हैं परन्तु तीनो मूर्ति नृप वेष मे है। जिसमे यह न समझे कि जिधर मुँह फेरती हूँ उधर ही आ खडे होते हैं। माया का वेग बढा। अब जहा देखती हैं वही प्रभु विराजमान हैं। सिद्ध मुनि सेवा कर रहे हैं। सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा। की सत्यता दिखला रहे है। भाव यह कि निर्गुण रूप से तो वे व्यापक है ही सगुण रूप से भी व्यापक हैं।

देखे सिव विधि विस्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक ते एका ॥
बदत चरन करन प्रभु सेवा। बिबिध वेष देखे सब देवा ॥४॥

अर्थ अनेक शिव ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक बढकर असीम प्रभाव वाले थे प्रभु के चरणो की वन्दना सेवा करते थे। देवताओ को अनेक वेषो मे देखा।

व्याख्या माया का वेग और बढा। अब देखती है कि सिद्ध मुनियो के स्थान पर त्रिदेव सेवा कर रहे है। भाव यह कि ये विष्णु नही है। उपजहि जासु अस ते नाना। सभु विरचि विष्णु भगवाना। ऐसे देव है। मुनि धीर योगी सिद्ध सतत विमल मन जेहि ध्यावही। कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावही। सो राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी। अवतरेउ अपने भगत हित निज तन्त्र नित रघुकुल मनी। इस शिवजी के कहे हुए वाक्य की सत्यता दिखला रहे है। भुसुण्डि ने लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु, दिसि त्राता। देखा था। यहाँ लोक न दिखाकर सक्षेप मे अनेक त्रिदेव दिखाया। 'मासाना मासोत्तमे मासे' को भाति मत्र का प्रभाव विचित्र था इसलिए 'एक से एका' कहा।

दो सती विधात्री इदिरा, देखी अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप ॥५४॥

---

१ यहाँ विशेष द्वितीय है।

अर्थ असख्य अनुपम सती ब्रह्माणी और लक्ष्मी देवी। जिस जिस वेष मे ब्रह्मादि देवता थे उसी उसी के अनुरूप वेष मे वे भी थी।

व्याख्या यहाँ वेष से अभिप्राय रूप भूषण और वाहन से है। यथा यस्य देवस्य यद्रूप यथाभूषणवाहनम्। तस्य देवस्य तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ। दु स श। जिस देवता का जैसा रूप था जैसा भूषण और वाहन था उस देवता की वैसी ही शक्ति असुरो से युद्ध करने आई।

भुसुण्डिजी ने कोटिन्ह ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्र और उडुगन देखे थे। सती ने भी वैसा ही देखा। सब शिव मूर्तियो के साथ उन्ही के रूप वेष और वाहनवाली सती थी। ब्रह्मदेव के साथ वैसी ही ब्रह्माणी थी। विष्णु मूर्तियो के साथ लक्ष्मी थी। असख्य होने से अमित कहा। सभी देवता विविध वेष मे थे। इसीलिए उनकी शक्तियाँ भी विविध वेष मे थीं। एक की उपमा दूसरे से नही दी जा सकती थी। माया का वेग और बढा।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते॥
जीव चराचर जे ससारा। देखे सकल अनेक प्रकारा॥१॥

अर्थ जहाँ तहाँ जितने रघुपति देखे, शक्तियो के सहित उतने ही सारे देवताओ को भी देखा। ससार मे जितने चराचर जीव हैं उन सबको अनेक प्रकार का देखा।

व्याख्या पहिले कह चुके है कि जहँ देखहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना। सो वहाँ केवल सिद्ध मुनीश ही नही रहे, शक्तियो के साथ सारे देवता भी वहाँ वहाँ थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा विष्णु और शिव दूसरे ही दूसरे होते हैं और उन ब्रह्माण्डो के जीव भी भिन्न भिन्न आकार प्रकार के होते हैं। सो पृथक् पृथक् ब्रह्माण्ड के त्रिदेवा के साथ साथ उन उन ब्रह्माण्डो के सारे जीव भी दिखलाई पडे।

पूजहिं प्रभुहि देव बहु वेखा। रामरूप दूसर नहिं देखा॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे॥२॥

अर्थ अनेक वेष धारण किये हुए देवता लोग रामजी की पूजा कर रहे हैं परन्तु रामजी का दूसरा वेष नही देखा। सीता सहित रामजी भी बहुत देखे पर उनके अनेक वेष नही थे।

व्याख्या वे सारे ब्रह्मादि देवता जहाँ तहाँ रामजी की पूजा कर रहे है। उन उन ब्रह्माण्ड के देवताओ के रूप मे तो भेद है। यथा सब प्रपच तहँ आनहिं आना। पर राममूर्तियो के रूप मे भेद नही है क्योकि रामजी माया से परे हैं। सब राममूर्तियो के साथ सीता जी भी हैं। कही सीतारहित राम हैं ही नही। यहाँ सीताजी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के प्रधान प्रधान दृश्य ही देख रही हैं। सो भी उस वर्णन के अनुसार जो शिवजी ने पहिले किया था। यथा सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा।

सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भई सभीता॥
हृदयकप तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूंदि बैंठी मगमाहीं॥३॥

अर्थ उन्हीं रामजी, उन्हीं लक्ष्मणजी और उन्हीं सीताजी को देखकर सती जी बहुत डर गईं। हृदय कॉपने लगा और तन की सारी सुधबुध जाती रही। आँख मीचकर रास्ते मे ही बैठ गई।

व्याख्या सती जी का ध्यान पहिले रामजी पर गया। सो जगद्व्यापी वैषम्य मे एक ही साम्य दृष्टिगोचर हुआ। रामजी सर्वत्र एक ही देख पडे। तब सीताजी पर दृष्टि डाली तो वे भी सर्वत्र एक सी ही देख पडी अर्थात् मूल प्रकृति मे भी कही भेद नही दिखाई पडा। तब लक्ष्मण जी पर ध्यान गया तो वे भी सर्वत्र एक से ही दिखाई पडे। जाग्रत् के विभु मे भी कही अन्तर नही प्रतिभात हुआ। अपनी माया उन्हे दिखाने चली थी। उसने बिलकुल काम नही किया। अब जिसे माया दिखाने चली थी उसकी ही माया का उन्हे स्वय पार नही मिल रहा है। शिवजी की बातें आँख के सामने आ गईं। यह मै क्या देख रही हूँ? क्या हो रहा है? अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य की बढती हुई विषमता को देखकर अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ। गूढ वचन सुनकर ही डर गई थी। अब उनकी माया आँखो देखकर तो अत्यन्त डर गईं। चेत नही कि मै कहा हूँ। रास्ते मे ही बैठ गई। अब माया के देखने मे भी असमर्थ है। इसलिए आँखें मीच ली।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥
पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा। चली तहाँ जहँ रहे गिरीसा॥४॥

अर्थ फिर जब आँख खोलकर देखा तो दक्षकुमारी को कुछ भी दिखाई न पडा। बार बार रामजी के चरणो मे सिर नवाकर जहाँ शङ्कर जी थे वहाँ चली।

व्याख्या परीक्षा हो गई। जितना शङ्कर जी ने सशयापनोदन के लिए कहा था उतनी बाते स्पष्ट दिखला दी गईं। अत्यन्त भयभीत सती जी को देखकर करुणाकर भगवान् ने अपनी माया हटा ली। तो वहाँ कुछ भी नही। यथा जब हरि-माया दूरि निवारी। नहि तहँ राम न राजकुमारी।

'भगवान् स्वतन्त्र है, निश्चय उन्होने ही अवतार धारण किया है।' यह विश्वास हृदय मे हो गया। मुझसे बडा अपराध बन पडा जो मैने उनकी परीक्षा ली। उन्हे नृपतनय माना। अत अपराध क्षमापन के लिए बार बार प्रणाम करती है। अब वहाँ ठहरने का काम न रह गया। और माया हटने से विकलता भी दूर हुई। इसलिए उस वट विटप के पास चली। जहाँ बैठे हुए शिवजी उनकी बाट जोह रहे थे।

दो गई समीप महेस तब, हसि पूछी कुसलात।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात॥५५॥

अर्थ जब पास पहुँची तब शिवजी ने हँसकर कुशल पूछी कि तुमने किस तरह परीक्षा ली। सब बातें सत्य सत्य कहो।

व्याख्या वहाँ रामजी ने हँसकर प्रणाम किया। यथा बोले बिहँसि राम मृदुबानी। यहाँ शङ्करजी हँसकर कुशल पूछ रहे हैं। कैसा ही बडा कोई क्यो न हो चूक हो जाने से हँसी का पात्र हो जाता है। अकल्याण की आशंका से पहिले कुशल ही पूछी। यथा दच्छसुता कर नहिं कल्याना। उसके बाद परीक्षा की विधि पूछी। परीक्षा की विधि से चूक होने का पहिले से ही भय था। यथा जैसे मिटइ मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन बिबेक बिचारी। उत्तर देते न देखकर कहते हैं। कहो सत्य सब बात, चूक छिपाने का प्रयत्न न करो।

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भयबस सिव सन कीन्ह दुराऊ ॥
कछु[1] न परीछा लीन्हि गुसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं ॥१॥

अर्थ सती ने रामजी के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा हे स्वामिन्! मैंने कुछ परीक्षा नही ली। आप की ही भाँति प्रणाम कर दिया।

व्याख्या सती ने रामजी के अचिन्त्य प्रभाव को जब समझा शिवजी के उपदेश पर जब ध्यान दिया कि 'जैसे मिटै मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन बिबेक बिचारी। और अपने अविवेक को देखा 'तब भय के वश मे हो गईं। अपने वश म न रह गईं। यथा मैं बन दीख राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहिं सुनाई। इसीलिए सर्वज्ञ शिवजी से छिपाव किया। कह दिया कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं। इस पर पूछेंगे। अन्ततोगत्वा तुमने उनके सामने जाकर किया क्या? इसलिए साथ ही यह भी कह दिया कि कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं बात सत्य ही कही, पर कुछ बीच की बात छिपा ली।

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई ॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सबु जाना ॥२॥

अर्थ जो आपने कहा वह झूठ नही हो सकता, मेरे मन मे इस बात का अत्यन्त विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान धरके देखा तो सती ने जो जो चरित किये थे सो सब जान गये।

व्याख्या इतना कहने पर भी शङ्का समाप्त नही होती। फिर शङ्का उठेगी कि तुम तो यहाँ से परीक्षा लेने गई थी। पर परीक्षा ली क्यो नही। इसलिए यह भी कह डाला कि आपकी बात झूठी नही हो सकती। इस बात पर मेरा पूरा विश्वास है। उस विश्वास के सामने तुच्छ संशय ठहर न सका। पर शङ्करजी को इस बात पर विश्वास नही हुआ। विश्वासो नैव कर्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। स्त्रियों का और राजकुल का विश्वास नही करना चाहिए। भरत

१ छन्दापह्नुति है।

जी कैकेयी से कहते हैं भूप प्रतीति तोर किमि कीन्ही। मरन काल विधि मति हरि लीन्ही। सो शिवजी ने विश्वास नही किया। जो संशय मेरे इतने समझाने पर न मिटा वह एकाएक कैसे मिट गया। इसलिए ध्यान किया। शङ्करजी को सब बातो के जानने के लिए केवल वृत्ति के अन्तर्मुखीन करने की आवश्यकता थी। ऋतभरा प्रज्ञा द्वारा सती के किये हुए सब चरित को जान लिया। सती ने यहाँ भी माया की। तुम जो कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई। यह बात उन्होंने बिलकुल ठीक कही। इस समय उनके मन मे पूरी प्रतीति है कि शिवजी का कहा मिथ्या नही हो सकता। स्वय आँख से देख चुकी हैं। पहले भी ऐसी ही प्रतीति थी। यथा सभु गिरा पुनि मृषा न होई। सिव सरवज्ञ जान सबु कोई। पर यहाँ ऐसे अवसर पर कहा गया कि वह कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं का पोषक हो गया। सती ने छिपाना चाहा। इसलिए शिवजी को ध्यान करना पडा नही तो बिना ध्यान किये ही सती के मन की बात जान ली थी। यथा हर अन्तर्यामी सब जाना।

बहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ॥
हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय बिचारत संभु सुजाना ॥३॥

अर्थ फिर उन्होने रामजी की माया को प्रणाम किया। जिसने प्रेरणा करके सती से झूठ बोलवा दिया। सुजान महादेव जी मन मे विचार करते हैं कि हरिइच्छा रूपिणी भवितव्यता बलवती है।

व्याख्या शिवजी भलीभाँति जानते हैं कि सती झूठ बोलनेवाली नही चाहे जो हो। पर यह जानते हैं कि इस समय सती मे हरिमाया काम कर रही है। यथा लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु। बोल बिहँसि महेस हरिमाया बल जानि जिय। उस समय भी हरिमाया को सिर नवाया था। अब फिर उसे सिर नवा रहे हैं। सती के प्रसङ्ग मे हरिमाया को यत्न करना पडा था। नही तो सती किसी के वश म आनेवाली नहीं। श्रीरामजी सती को सीताजी के रूप म देखकर स्वय अपनी माया के बल की प्रशसा करने लगे। यथा निज माया बल हृदय बखानी। बोल बिहँसि राम मृदु बानी। अब सती जी को झूठ बोलते जानकर शिवजी उसे नमस्कार कर रहे हैं। क्योकि उस माहामाया के आगे किसी का वश नही चलता। यथा सिव बिरंचि कहँ मोहइ को है बपुरा आन। अस जिअ जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान्। ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवन पति कर जान। ताहि मोह माया नर, पामर करहिं गुमान।

फिर भी सुजान शिवजी ने सती को दोष नही दिया। देखा कि यहाँ हरि इच्छा रूपिणी भवितव्यता काम कर रही है। इसके आगे हमारे उपदेश ने भी काम नही किया। मोह मिटाने के यत्न ने भी नही काम किया। सामान्य भावी होती ता कभी मिट गई होती। यथा भाविहु मेटि सकै त्रिपुरारी। पर यह हरिइच्छा रूपी भावी मिटनेवाली नही है। यह कुछ करके रहेगी।

सती कीन्ह सीता कर वेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥८॥

अर्थ : सती ने जो सीता का वेष किया। इस बात से शिवजी के हृदय में विशेष विषाद हुआ। यदि मैं सती से प्रीति करता हूँ तो भक्ति-मार्ग गिरता है और बड़ी अनीति होती है।

व्याख्या : विषाद तो पहिले ही हुआ था। जब उनके उपदेश देने पर भी सती का संशय नहीं गया और उन्हें परीक्षा लेने की आज्ञा देनी पड़ी। यथा : दच्छसुता कर नहि कल्याना। मोरेउ कहे न संशय जाही। विधि विपरीत भलाई नाही। अब यह जानने पर कि सती ने सीता का वेष धारण किया विशेष विषाद हुआ। स्वामिनी का वेष धारण करनेवाली स्त्री पर पत्नीभाव नहीं रक्खा जा सकता। पत्नीभाव का त्याग ही वास्तविक त्याग है और स्वजन के लिए त्याग ही वध है। अतः विशेष विषाद हुआ।

भक्ति के आचार्य होकर मर्यादा पालन न करने से भक्तिपथ ही मिट जायगा। ईश्वर हैं मर्यादापथ किसी प्रकार नष्ट न होने देंगे। यथा : जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा। यहाँ प्रीति शब्द से दाम्पत्यभाव अभिप्रेत है। नीतिविरोध रामजी को अच्छा नहीं लगता। यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोही। पाषाण भी जब एक बार पूज्य के आकार से आकारित हो जाता है तो उस पर से पाषाण बुद्धि हटा ली जाती है। यह नीति है। अतः दाम्पत्यभाव न रखना ही प्राप्त हुआ।

दो. परम पुनीत[1] न जाइ तजि, किये प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदयँ अधिक संतापु॥५६॥

अर्थ : बहुत ही पवित्र है इसलिए छोड़ा नहीं जा सकता और प्रेम करने में बड़ा पाप है। प्रकट रूप से महादेव जी कुछ नहीं कहते हैं। पर उनके हृदय में बड़ा दुःख है।

व्याख्या : पापिनी स्त्री त्यागी जाती है। नहीं तो किसी अवस्था में स्त्री नहीं त्यागी जाती। भगवती श्रुति कहती है 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' भगवान् वशिष्ठदेव कहते हैं : आत्मा हि दारा सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्। वा. रा.। अर्थात् पत्नी

---

१ परीक्षा लेने में छल से काम लिया ही जाता है। वह छल दोषावह नहीं है। यथा : प्रथम गये जहँ रही भवानी। बोले मधुर वचन छलसानी। क्योंकि उसमें भाव दुष्ट नहीं रहता। यहाँ परीक्षा लेने में थोड़ा सा अविवेक हो गया। रामजी का अपमान हो गया। वह भी हरिमाया के वश होने के कारण। यथा : बहुरि राम मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा। अतः शिवजी सती का 'अघ' नहीं मानते। याज्ञवल्क्य ने भी नहीं माना। इसलिए परम पुनीत कहते हैं। शिवजी विचारते हैं कि सती को पाप नहीं है। पर इनसे प्रेम करने में मुझे पाप है।

अपनी आधी देह है। श्रुति । सभी गृहस्थो की स्त्री अपनी देह होती है। फिर सती ऐसी पवित्र स्त्री का त्याग कैसे किया जाय। प्रेम का त्याग ही त्याग है और प्रेम करने से सनातन सेतुभङ्ग का भक्तिपथ के मिटाने का पाप होता है। सती को कष्टकर होने से शिवजी प्रक्ट कुछ नही कहते हैं। परन्तु हृदय मे इष्ट वियोग जनित सन्ताप अधिक हो रहा है। अथवा त्यागने से सती को महान् दु ख होगा। इस बात का सन्ताप है।

तव सकर प्रभुपद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदय अस आवा॥
एहि तन सतिहि भेट मोहि नाही। सिव सकल्पु कीन्ह मन माही॥१॥

अर्थ तब शिवजी ने रामजी के चरणो मे सिर नवाया। और रामजी को स्मरण करते ही यह बात मन म आई कि इस शरीर से सती की मेरी भेंट नही होगी। ऐसा सक्ल्प शिवजी ने मन मे किया।

व्याख्या पहिले माया को सिर नवाया था। यथा बहुरि राम मायहिं सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहावा। अब अधिक सन्ताप होने से उस मायी को सिर नवाते हैं। यथा राम प्रनाम महा महिमाखनि। सकल सुमगल मनिजनी। शिवजी का यह शिद्धान्त है कि तर्क कोटि वढने नही देते। उसे रोककर नाम स्मरण म लग जाते हैं। यथा होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढावैं साखा। अस कहि जपन लगे हरिनामा। इसी भाँति यहाँ भी तर्क करना बन्द करके प्रभु को प्रणाम किया और नाम जपने लगे। विचार करने मे निश्चय पर नही पहुँच सके थे। सा नामस्मरण करत हो आप स आप निश्चयकारक बात मन मे उठी।

जो शरीर एक बार परमाराध्य दवता के रूप मे परिणत हो चुका उसे अङ्कारूढ तो नही करूँगा। ऐमा सकल्प मन म किया। 'शिव सकल्प' यहाँ श्लिष्टपद है। अथ होगा शिव ने सकल्प मन म किया। अथवा कल्याणकारी सकल्प मन म किया। यथा तन्मे मन शिवसकल्पमस्तु। सकल्प को कल्याणकारी इसीलिए कहा कि सदा की सङ्गिनी सती का सर्वथा त्याग भी नही हुआ और नीति तथा भक्तिपक्ष की रक्षा हो गई।

अस विचारि सकरु मतिधीरा। चले भव सुमिरत रघुवीरा॥
चलत गगन भैं गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढाई॥२॥

अर्थ ऐसा विचारकर मतिधीर शिवजी रघुवीर को स्मरण करते हुए घर चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई महेश की जय हो, आपने भक्ति की अच्छी दृढता की।

व्याख्या ऐसा विचार करके अर्थात् ऐमा मानसिक सकल्प करके घर चले। पहिल ही मुनि से बिदा माँगकर घर चले थे। पर भवानी के कारण बीच मे बरगद तले रुकना पडा। भवानी परीक्षा करके लौट आयी। उनकी बातें सुनी। ध्यान करके सब बात जान गये। विशप विपाद हुआ। सती के त्याग का सकल्प करके

तव फिर घर चले। इतना बडा स्वार्थ त्याग किया। इसलिए मतिधीर कहते हैं। पहिले कहा था चले भवन सग दच्छकुमारी। इस समय दक्षकुमारी का साथ नही कहते हैं। क्योंकि इस समय वे परित्यक्ता हैं। 'सुमिरत रघुवीरा' कहने का यह भाव है कि सतीविषयक विचार अब मन मे नही है। इष्टदेव का स्मरण करते चले।

किसी भारी कार्य की उपस्थिति में अधिकारी देवता लोग आकाशवाणी द्वारा अपनी सम्मति व्यक्त करते है। यथा भई बहोरि बरगिरा अकासा। विप्रहु साप विचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा। जग भय मगन गगन भइ वानी। लखन वाहुवल विपुल वखानी। मनभवानी होने से वाणी को सुहाई कहा। इस समय भक्ति पथ के मिटने का सयोग उपस्थित हो गया था। महामङ्गलमय मार्ग[1] का लोप हुआ चाहता था। महेश ने अपने सुख-दुःख का विचार न करके उस मार्ग को और भी दृढ वना दिया। इसलिए देवताओ ने जय जय कार किया।

अस पन तुम्ह विनु करै को आना। राम भगत समरथ भगवाना॥
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहि समेत सकोचा॥३॥

अर्थ तुम्हारे विना ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप रामजी के भक्त समर्थ और भगवान् हैं। आकाशवाणी सुनकर सती के मन मे सोच हुआ। शिवजी से सकोच के साथ पूछा।

व्याख्या रामव्रतधारियो म शिवजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। दूसरे किसी मे ऐसा सामर्थ्य नही कि निष्पाप सती ऐसी स्त्री का परित्याग कर सके। यथा सिव सम को रघुपति व्रतधारी। विनु अघ तजी सती अस नारी। शिवजी भगवान् हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य को भग कहते हैं। जिसमे ये छहो गुण हो वह भगवान् है। विना प्रवल वैराग्य और अप्रतिम ज्ञान के सर्वगुणसम्पन्ना निष्पापा प्रियतमा का त्याग अशक्य है। इसलिए 'रामभगत समरथ भगवाना' कहा।

सती से इसी समय बडी भारी चूक हुई है और इसी समय शङ्कर जी के प्रण करने का सवाद मिल रहा है। अत सन्देह के लिए यथेष्ट स्थान है कि कोई प्रतिज्ञा सती के विरुद्ध हुई है। स्त्री को अधिकार है कि पति के किसी कार्य करने का कारण पूछे? क्योंकि विवाह के समय प्रतिज्ञा हो जाती है कि अर्थ, धर्म और काम मे मैं इसका अतिक्रमण नही करूँगा। अत पूछने मे कोई सकोच की बात न थी परन्तु सापराध होने से सकोच हो रहा है।

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला॥
जदपि सती पूछा वहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती॥४॥

अर्थ हे कृपालु! कहिये आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप

---

१ प्रतीकोपासना भक्तिपथ का प्राण है। मूर्तिपूजा ईश्वरोपासना की स्वाभाविकी वैज्ञानिक पद्धति है। सभ्यता प्रतीकोपासना के सिद्धान्त पर ही खडी है।

'प्रीति प्रतीत बढी तुलसी तबते सब पाहन पूजन लागे।' कवि

सत्यधाम और दीनदयाल हैं। यद्यपि सती ने बहुत भाँति पूछा पर त्रिपुरान्तक ने नहीं कहा।

व्याख्या आकाशवाणी सुनकर सती जी उत्सुकता के अत्यन्त बढ जाने से दीन हो रही हैं। इसलिए दीनदयालु विशेषण दे रही हैं कि मै दीन हूँ। आप दीनदयाल हैं। मैं कृपा की भिखारिणी हूँ। आप कृपालु हैं। कृपा करके कहिये। आप सत्यधाम हैं मै ऐसी नही हूँ। आप प्रभु हैं मै अवला हूँ। मुझे सशय मे न रखिये। अपनी शपथ दिलाई। अपने प्रेम की शपथ दिलाई। सभी उपाय सामर्थ्य भर किये पर शिवजी त्रिपुरान्तक हैं। अपने लक्ष्य पर बडे दृढ हैं। एक सहस्र वर्ष तक त्रिपुर पर लक्ष्य बाँधे ही रह गये। उन्होने नही ही कहा। यहाँ बात को खोलना और लक्ष्य से विचलित होना एक बात थी। बात को खोलना अनुनय विनय को अवसर प्रदान करना था। इसलिए नही कहा।

दो सती हृदय अनुमान किय, सबु जानेउ सरबग्य।
कीन्ह कपटु मै सभु सन, नारि सहज जड अग्य ॥५७॥ क
सो जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपटु खटाई परत पुनि ॥५७॥

अर्थ सती ने अपने मन म अनुमान किया कि सर्वज्ञ ने सब जान लिया। मैंने शम्भु से कपट किया। स्त्री स्वभाव से ही जड और मूर्ख होती हैं।

प्रीति की अच्छी रीति देखिये कि पानी दूध के समान बिकता है। कपट खटाई के पडते ही दोनो अलग हो जाते हैं और रस नही रह जाता।

व्याख्या शिवजी के कुछ उत्तर न देने से सती को मालूम हो गया कि सम्बन्ध नीरस हो गया। मेरे कपट को सर्वज्ञ शिवजी ने जान लिया। यह सती द्वारा अपने मन का अनुमान है।

कपट करौं अतरजामिहु तें अघ व्यापकहिं दुरावौ यह जडता और अज्ञता है। शिवजी धीर हैं मै जड हूँ। यथा सुख हरखहिं जड दु ख बिलखाही। दोउ समधीर धरहिं मन माही। मैंने भय से विकल होकर कपट किया। सर्वज्ञ से बात छिपानी चाही। यह अज्ञता है।

उदाहरण से स्पष्ट करती है। जल और दूध के मिलने से जल दूध के भाव बिकता है। यह दूध की भलाई है। आग पर चढने से पहिले पानी जलता है। दूध को नही जलने देता। यह पानी की भलाई है। पानी के जलने के समय दूध उफन कर आग म कूदता है। यह दूध की भलाई है। यह प्रीति की रीति है। कपट खटाई पडते ही दूध पानी अलग हो जाता है। न दूध मे रस रह जाय न पानी म और दूध के सार भाग घी स्नेह का तो कही पता नही चलता कि क्या हुआ ?

हृदय सोचु समुझत निज करनी। चिंता अमित जाइ नहिं बरनी ॥
कृपासिधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥१॥

अर्थ अपनी करणी को समझकर हृदय मे सोच है और ऐसी चिन्ता है जिसका वर्णन नही हो सकता। शिवजी कृपासिन्धु हैं, बडे गम्भीर हैं। मेरे अपराध को प्रकट रूप से नही कहा।

व्याख्या सोच ही सोच चला। सती सभीत महेस पहँ चली हृदय बड सोच। सुनि नभगिरा सती उर सोचा। हृदय सोच समुझत निज करनी। परिणाम क्या होगा इसकी चिन्ता का वर्णन नही हो सकता। मानस से सरयू के मैदान मे अवतीर्ण होते ही पहिले वन मे मिला। वन मे घनेरा भय, विषाद और परिताप होता है। भय भयवस सिवसन कीन्ह दुराऊ। विषाद सिव उर भयउ विषाद बिसेखा। परिताप पाछिल दुख अस हृदय न व्यापा। जस यह भयउ महा परितापा।

शिवजी कृपासिन्धु हैं। दुख की बात नही कहेगे। परम अगाध हैं छिछले से बिना कहे नही रहा जाता गम्भीर हैं। प्रकट करने का स्वभाव नही है। मेरे अपराध को प्रकट रूप से नही कहा पर उत्तर न देकर जना दिया।

सकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवाँ इव उर अधिकाई ॥२॥

अर्थ भवानी ने शङ्कर का रुख देखकर जान लिया कि प्रभु ने मुझे त्याग दिया। अत मन म बहुत व्याकुल हुई। अपना अपराध समझकर कुछ कहते नही बनता। आँवे की भाँति हृदय अधिक जलने लगा।

व्याख्या सती हैं पति के रुख देखने का अभ्यास है। ठीक मनोगति समझ लेती है। शिवजी प्रभु है। उन्हे त्यागने का अधिकार है। उन्होने मेरा त्याग किया। यह समझकर मन आकुल हो उठा। यथा तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूपन भारू। जम जातना सरिस ससारू। प्राननाथ तुम बिनु जगमाही। मो कहुँ सुखद कतहुँ कोउ नाही। परन्तु कहते कुछ बनता नही। अपने से ऐसा पाप[१] ही हो पडा है कि जिसका जो दण्ड दिया जाय थोडा है। किस मुँह से क्षमा प्रार्थना करे। चिन्ता ज्वाल सरीरवन दावा लगि लगि जाय। प्रकट धुआँ नहिं देखिये उर अतर धुधुवाय। उर अतर धुधुवाय जरे जिमि काँच की भट्ठी। जरि गये लोहू माँस रह गयी हाड की ठट्ठी।

सतिहिं ससोच जानि वृषकेतू। कही कथा सुन्दर सुख हेतू ॥
बरनत पथ विविध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥३॥

अर्थ सती को शोकयुक्त जानकर वृषकेतु ने सुख के लिए सुन्दर कथाएँ कही। रास्ते म अनेक प्रकार के इतिहास कहते हुए विश्वनाथ कैलास पहुँच गये।

व्याख्या वृषकेतु हैं। धर्म ही उनकी ध्वजा है। शरणागतपालन धर्म का

---

१ भगवती सती अपना ही पाप मानती हैं १. रघुपति अपमान और २ पति के वचन पर असत्य का भ्रम।

स्मरण करते हुए परित्यक्ता सती के सुख के लिए मनोरञ्जन के लिए शोक हटाने के लिए सुन्दर सुन्दर कथाएँ सुनायी। प्रेम विशेष का त्याग है। सहानुभूति का त्याग नही है। अत रास्ता काटने के लिए अनेक इतिहास वर्णन करते-करते कैलास पहुँच गये। यही उनका भवन है। यथा पथ कहत निज भगति अनूपा। पुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा। भाव यह है कि मैने बोलना नही बन्द किया है। केवल प्रतिज्ञा नही बतलावेंगे।

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरूपु सँभारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥४॥

अर्थ वहा फिर अपने प्रण को समझ करके शिवजी वट के वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। शङ्कर ने अपने सहज स्वरूप को सँभाला तो अखण्ड और अपार समाधि लग गई।

व्याख्या एहि तन सतिहि भेट अब नाही का अत्यन्त सरल उपाय समाधि लगा लेना है। यथा सिव समाधि बैठे सब त्यागी। कैलास पर एक दिव्य वट वृक्ष है। वह सदा नवीन रहता है। यथा तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला। त्रिविध समीर सुसीतल छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया। उसी के नीचे पद्मासन लगाकर बैठे। योग के चौरासी आसनो मे पद्मासन और सिद्धासन अत्यन्त श्रेष्ठ है। रमणीय स्थान और आसन कहकर अब चित्तवृत्तिनिरोध पूर्वक द्रष्टृस्वरूपावस्थान कहते हैं। दूसरे की जो समाधि लगती है उसकी अवधि होती है। शङ्कर भगवान् की समाधि की अवधि नही। इसीलिए अखण्ड अपारा कहा। प्रकृति पुरुष के परस्पर अभ्यास के विच्छेद से ही सहज स्वरूप मे समाधि होती है। यथा त विद्याद्दु खसयोगवियोग योगसज्ञितम्। यहाँ प्रकृति सती से पुरुष शिव के प्रेम का विच्छेद ही समाधि का कारण हुआ।

दो सती बसहिं कैलास तब, अधिक सोचु मन माहिं।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहिं ॥५८॥

अर्थ सती कैलास मे रहने लगी। मन मे अधिक सोच था। भेद किसी को कुछ मालूम नही एक दिन युग के समान बीतता था।

व्याख्या शिवजी जब समाधि मे नही थे तो कैलास शिवउमानिवास कहा जाता था। अब वे समाधि मे है। सती जी अकेले कैलास मे रह रही हैं। कोई बाल-बच्चे भी नही हैं। शिवजी के समाधि मे बैठने से सती के मन मे त्याग की भावना पुष्ट हुई। अत अधिक सोच मन माहिं कहते हैं। यह घटना रास्ते मे हुई। अत गणो को कोई पता नही है। दु ख के दिन बडी कठिनता से कटते हैं। इसलिए कहते है युग सम दिवस सिराहिं। अखण्ड अपार समाधि है न जाने कब खुलेगी। बिना खुले दु ख पार जाने का कोई रास्ता नही। कहने से भी दु ख घटता है पर कहे किससे ? उसका जानकार कोई नही। कैलास मे बमबर भी सती महादु खी है।

नित नव सोचु सती उर भारा । कब जैहौं दु:ख सागर पारा ॥
मै जो कीन्ह रघुपति अपमाना । पुनि पति वचन मृषा करि जाना ॥१॥

अर्थ : सती के हृदय मे नित्य नया और भारी सोच है कि कब दु:खसागर के पार जाऊँगी । मैने जो रघुपति का अपमान किया और पति के वचन को झूठ समझा ।

व्याख्या : सती भगवती दु:ख के समुद्र मे पड गई । उसका वार-पार नही सूझ रहा है और नित्य नये सोच की भारी तरगे उठ रही हैं । न शरीर छूटता है न पार मिलता है । न कोई ठिकाना है कि कब पार मिलेगा । विना समाधि खुले दु:ख का पार मिल नही सकता । असौ चिन्ताज्वरस्तीव्र प्रत्यह नवता व्रजेत् । काशी-खण्डे । यह तीव्र चिन्ता ज्वर नित्य नया होता जाता है ।

उनसे भगवान् और भागवत, ईश्वर और उनके प्रतिनिधि पतिदेव दोनो का अपराध वन पडा । १ परमेश्वर भगवान् का अपमान किया और २ पतिदेव के वाक्य को झूठा माना ।

सो फलु मोहि विधाता दीन्हा । जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
अव विधि अस बूझिअ नहि तोही । संकर विमुख जिआवसि मोही ॥२॥

अर्थ : वह फल मुझे विधाता ने दिया और जो उचित था सो किया । पर हे विधाता अव तुझे यह उचित नही है कि शङ्कर से विमुख होकर मुझे जीवित रक्खे ।

व्याख्या : सती कहती हैं कि कर्म शुभाशुभ का फल विधाता देते हैं । यथा कर्म सुभासुभ देइ विधाता । सो ब्रह्मदेव ने मुझे फल दिया । उन्हे यही उचित जान पडा कि इन अपराधो का दण्ड पति-परित्याग है सो मैं फल पा चुकी । यहाँ तक तो विधि ठीक है । अव शङ्कर विमुख करके मुझे जिलाना विधि को उचित नही है । अर्थात् : हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ । जीवन मरण ब्रह्मदेव के हाथ मे है । अपने हाथ मे नही होता हैं । मरण स्वीकार है परन्तु शङ्करविमुख होकर जीना स्वीकार नही । अव कौन अपराध शेष है जिसके वदले ब्रह्मदेव मुझे शङ्कर से विमुख करके जिला रहे हैं ।

कहि न जाय कछु हृदयँ गलानी । मन महुँ रामहि सुमिरि सयानी ॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा । आरति हरन वेद जसु गावा ॥३॥

अर्थ : हृदय की ग्लानि कुछ कही नही जाती । सयानी ने मन मे रामजी का स्मरण किया और कहा : हे प्रभो ! यदि आप दीनदयाल कहलाते हैं और यदि आर्तिहरण कहकर वेद ने यशगान किया है ।

व्याख्या . हृदय मे जैसी ग्लानि हुई उसका एक अश भी कथन मे नही आ सकता । आगे जो करेंगी उसी से अनुमान हो सकता है । सती जी सयानी हैं उपाय सोचा कि जिसका अपराध वन पडा हो उसी की शरण ग्रहण करनी चाहिए । अतः मन से रामजी का स्मरण किया और प्रार्थना की ।

रामजी का लोक मे दीनदयाल विरद प्रसिद्ध है और वेद भी आर्त्तिहरण कहकर यशगान करता है और मैं दीन हूँ और आर्त हूँ। भाव यह कि लोक वेद के बल पर खडी हो गयी जिस भाँति मनु-शतरूपा खडे हो गये थे। यथा जौ अस वचन सत्य श्रुति भाखा। तौ हमार पूजिहि अभिलाखा।

तौ मै विनय करउँ कर जोरी। छूटौ वेगि देह यह मोरी॥
जौ मोरे सिव चरन सनेहू। मन क्रम वचन सत्य व्रतु एहू॥४॥

अर्थ तो मैं हाथ जोडकर विनय करती हूँ कि यह मेरा शरीर जल्दी छूट जाय। यदि मेरा स्नेह शिवजी के चरण कमलो में हो और मन वचन कर्म से यह व्रत सच्चा हो।

व्याख्या यदि विरद आपका सत्य है और मेरी दीनता तथा आर्ति सच्ची है तो शरीर न छूटने का कोई कारण नही है। आर्ति और दीनता के छूटने के दो ही उपाय हैं। या तो शिवजी अपनी प्रतिज्ञा छोडें या सतीजी का देह छूटे। तीसरा उपाय तो है नही। सतीजी कहती हैं कि शिवजी की प्रतिज्ञा न छूटे। मेरी देह छूट जाय। दीनता और आर्ति का कारण शिवचरणस्नेह है। अत कहती हैं कि यदि मेरा शिवजी के चरणो मे सच्चा स्नेह हो तो आप अपने विरद को सत्य करिये।

दो तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु, करउ सो वेगि उपाइ।
होइ मरन जेहिं बिनहि श्रम, दुसह विपत्ति विहाइ॥५९॥

अर्थ तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनो, ऐसा उपाय करो कि मेरा मरण बिना श्रम के ही सम्पन्न हो और न सहने योग्य विपत्ति छूटे।

व्याख्या आप सर्वदर्शी हैं। मेरे हृदय को देख सकते है। प्रभु है। मनोरथ पूर्ण कर सकते है। ऐसा उपाय जल्द कीजिये जिसमे शीघ्रातिशीघ्र मरण हो। आत्म घात का दोष न हो। इसलिए उपाय से मरण चाहती है। मरण के समय दु सह दु ख होता है। यथा जन्मत मरत दुसह दु ख होई। इसलिए बिना श्रम मरण चाहती है। दु सह विपत्ति से शङ्कर के विमुख होने के कष्ट से घुल घुलकर मृत्यु तो हो ही जायगी। अत अनायासेन मरणम् के लिए प्रार्थना है।

एहि विधि दुखित प्रजेस कुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीते सवत[1] सहस सतासी। तजी समाधि सभु अविनासी॥१॥

अर्थ इस भाँति प्रजापति की पुत्री नही कहने योग्य भारी कठिन दु ख से दु खी थी। एक हजार सत्तासी १०८७ सवत बीतने पर अविनाशी शम्भु ने समाधि परित्याग किया।

व्याख्या यद्यपि प्रजापति की बेटी हैं, फिर भी पति के वचन को मृषा मानने और रामजी के अपमान से पति-परित्यक्ता होकर दु खी है। सती है। अत पति परित्याग का भारी दारुण दु ख हो रहा है। जो कि किसी प्रकार से व्यक्त नही किया जा

१ सवत स मानुषी मान का वर्ष ही परिगृहीत है। यथा सवत सारद मैं एकतीसा।

सकता है। पति ही स्त्री के लिए गति है। पिता की महिमा काम नहीं आती। अथवा ऐसा अपराध करने से प्रजेशकुमारी पर ऐसी आपत्ति आई, अन्यों की क्या गणना।

एक सहस्र सत्तासी वर्ष वियोग दुःख सहते सहते आर्त होकर रामजी से प्रार्थना की। अन्तर्यामी रामजी की प्रेरणा से उसी समय समाधि खुल गई। १०८७ वर्ष देव-मान से लगभग तीन वर्ष के होते हैं।

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे ॥
जाइ संभु पद बंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥२॥

अर्थ : शिवजी रामनाम सुमिरने लगे। सतीने जाना कि विश्वनाथ जाग गये। जा करके शिवजी के चरणों को प्रणाम किया। शङ्कर ने बैठने के लिए सम्मुख आसन दिया।

व्याख्या : जबतक समाधि थी नामोच्चारण बन्द था। क्योंकि बिना चित्त की वृत्तियों के निरोध के समाधि होती नहीं। व्युत्थान होते ही नामस्मरण प्रारम्भ हुआ। यथा : तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। सती दिन रात शङ्करजी में ही मनोयोग दिये रहती थीं। अतएव विश्वनाथ के जागने का पता पहिले उन्हीं को लगा।

उन्होंने जाकर चरण बन्दन किया। शिवजी ने वामभाग में आसन न देकर सन्मुख आसन बैठने के लिए दिया। भक्त की भाँति सत्कार किया, प्रिया की भाँति नहीं।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भये तेहि काला ॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक ॥३॥

अर्थ : हरि की रसीली कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्षजी प्रजेश हुए। ब्रह्मदेव ने विचारकर देखा कि सब भाँति योग्य है तो दक्ष को प्रजापतियों का नायक बना दिया।

व्याख्या : भगवती के साथ परित्याग वाली बात न छिड़ने पाये अतः कथा छेड़ देते हैं। अथवा : शिवजी का स्वभाव है कि समय को व्यर्थ नहीं जाने देते। यथा : कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहि ग्याना। कतहुँ रामगुन करहिं बखाना। भगवान् की रसीली कथा कहते हैं जिनमें सती का मन लगे। उन्हीं दिनों में सती जी के पिता दक्ष का बड़ा अभ्युदय हुआ। ब्रह्मदेव ने विचारकर देखा कि दक्ष सब कार्यों में दक्ष हैं तो उन्हें प्रजापतियों का नायक बना दिया।

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदय तब आवा ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥४॥

अर्थ : दक्ष ने जब बड़ा अधिकार पाया तब उनके मन में बड़ा भारी घमण्ड हो गया। संसार में ऐसा कोई जन्मा ही नहीं जिसे प्रभुता पाकर मद न हुआ हो।

व्याख्या : प्रजापति का पद इन्द्र बृहस्पति आदि से बड़ा है। सो दक्ष प्रजा

पतियो के नायक बना दिये गये। ब्रह्मदेव के बाद फिर यही पद है। इससे ऊँचा दूसरा कोई पद नही। पद पाने के साथ ही बडा भारी घमण्ड भी हुआ। अति अभिमान का भाव यह कि शिवजी को अपमानित करने की वासना उनके मन मे उठने लगी।

यहाँ पर यह शङ्का न करनी चाहिए कि स्वय. प्रजापति को अभिमान कैसे हुआ। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस भाँति यह नियम है कि जो उत्पन्न होगा वह मरेगा। इसी भाँति यह भी नियम है कि प्रभुता पाने पर मद होता है। यथा श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।

दो दच्छ लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥६०॥

अर्थ दक्ष ने सब मुनियो को बुला भेजा और बडा यज्ञ करने लगे और जो देवता यज्ञ मे भाग पाते थे उन सबको आदर सहित निमन्त्रित किया।

व्याख्या यह यज्ञ सात्त्विक भाव से नही किया गया। इसके करने का कारण दम्भ, दर्प और अभिमान था। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिता। मै यज्ञ करूँगा दान करूँगा आनन्द मनाऊँगा। इस अभिमान से आसुरी प्रकृतिवाले मोहित होते हैं। इतना बडा यज्ञ था कि सब मुनि बुलवा लिये गये। सादर निमन्त्रण नही गया, निम्न कोटि के समझे गये। देवताओ मे भी जो यज्ञ मे भाग पानेवाले थे वे ही आदर सहित निमन्त्रित किये गये। उनके भी आदर सहित निमन्त्रित करने मे कारण था। वह यह कि कही ऐसा न हो कि शिवजी के निमन्त्रित न होने से ये लोग निमन्त्रण अस्वीकार कर दें। फिर यज्ञ ही कैसे होगा ? यही साङ्ग सायुध सशक्ति निमन्त्रित करना ही सादर निमन्त्रण है।

किन्नर[1] नाग सिद्ध गधर्वा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्वा ॥
बिष्णु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई ॥१॥

अर्थ किन्नर, नाग, सिद्ध गन्धर्व आदि सब देवता अपनी अपनी बहुओ के साथ चले। विष्णु विरञ्चि महेश को छोडकर शेष सब देवता अपना अपना विमान सजाकर चले।

व्याख्या यज्ञो म देवताओ का आवाहन होता है। तब देवता अदृश्य रूप से आते है। यहाँ तो भाई बिरादरी की भाँति नेवते मे जा रहे है। किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व यह सब देवजाति क भेद है। दक्ष को सन्तुष्ट रखना सबको इष्ट है। अत सस्त्रीक चल। शिवजी का यज्ञभाग बन्द करने के लिए ही यज्ञ हो रहा है। यह जानकर भी चल क्योकि सब उनके अधीन थे। उनके अति अभिमान से चिढने भी

१ किन्नरा नरविग्रहा अश्वमुखा देवयोनय। नागा वासुकिप्रभृतयो नराकारा। सिद्धा विश्वावसुप्रभृतय हाहा-हूहूचित्ररथादय। मनुष्य सा शरीर घोडे सा मुख किन्नरो का होता है। वासुकी आदि सर्पो का भी मनुष्य का शरीर है। विश्वावसु आदि सिद्ध हैं। हाहा हूहू चित्ररथ आदि गन्धर्व हैं।

थे फिर भी महोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए बडे सज धज से चले। दक्ष की दुरभिसन्धि समझकर त्रिदेव नही गये।

सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना ॥
सुर सुदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥२॥

अर्थ सती ने देखा कि आकाश मे अनेक प्रकार के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। देवताओ की स्त्रियाँ ऐसे मधुर गीत गा रही हैं जिनको सुनकर मुनियो का ध्यान छूट जाय।

व्याख्या यद्यपि विमान बहुत ऊँचे से जा रहे हैं पर कैलासपर्वत इतना ऊँचा है कि वहाँ से विमानो पर गाये हुए गीत भी सुनाई पडते थे। वे गीत देवियो के गाये हुए इतने मधुर थे कि उनके सुनने से मुनियो के ध्यान भी छूट जाँय। दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेपु विगतस्पृह। वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते। जिसका दु ख मे मन उद्विग्न न हो और जिसे सुख की इच्छा न हो जिसका राग, भय और क्रोध दूर हो गया हो ऐसे स्थितप्रज्ञको मुनि कहते हैं। ऐसे मुनि का भी ध्यान उस गान को सुनकर छूटता था। ऐसी चत्मकृत शक्ति देवियो के गान मे थी। सतीजी का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ तो देखती हैं कि अनेक विधि के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। शङ्कर भगवान् का ध्यान आकृष्ट न हुआ। अत उनका देखना नही कहते।

पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरपानी ॥
जौ महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौ मिसु एही ॥३॥

अर्थ पूछा तो शिवजी ने बखानकर कहा। पिता का यज्ञ सुनकर कुछ हर्ष हुआ। यदि महेश मुझ आज्ञा दें तो इसी बहाने से मैं कुछ दिन जाकर रहूँ।

व्याख्या शिवजी सर्वज्ञ हैं। सब जानते है। यह समझकर कारण पूछा। स्त्रियाँ चाहे कितनी ही दु खी हो पर पिता के घर महोत्सव सुनकर कुछ हर्ष होता ही है। कम से कम एक हजार सत्तासी वर्ष तक न पिता ने पूछा और न ये स्वय मैके गईं। किस मिस बहाने से जायँ? सो अब मिस मिल गया। पर यदि महेश आज्ञा दें तो वहाँ जाकर जी बहलावें, पर आज्ञा मिलनी कठिन है कहेंगे कि वहाँ से कोई पूछता भी है?

पति परित्याग हृदय दुखु भारी। कहै न निज अपराध बिचारी ॥
बोली सती मनोहर बानी। भय सकोच प्रेमरस सानी ॥४॥

अर्थ पति के परित्याग का मन मे बडा भारी दु ख था। पर अपना अपराध समझकर कुछ नही कहती थी। सती भय, सङ्कोच और प्रेम से सनी हुई मनोहर वाणी बोली।

व्याख्या समाधि खुल गई। शङ्कर भगवान् के साथ हैं। अत 'अकथनीय दारुण' न कहकर केवल 'दुखु भारी' कहते हैं। अपराध मैंने किया दु ख कौन सहेगा? इसलिए शिवजी से कुछ कहती नही हैं। पर अब बोली। ऐसी मधुर वाणी बोली जो

भय सङ्कोच, प्रेमरस से सनी हुई थी। क्षमा मिलने के पहिले जाने की आज्ञा माँगने मे भय। कोई बुलाने नही आया इस बात का संकोच। कुछ ही दिन के लिए आज्ञा चाहती हैं यह प्रेम।

दो. पिता भवन उत्सव परम, जौ प्रभु आयसु होइ।
तौ मै जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥६१॥

अर्थ : पिता के घर वड़ा उत्सव है। हे प्रभो ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपानिधान ! मै आदर सहित उसे देखने जाऊँ।

व्याख्या : आज भी हिन्दू के घर यज्ञ से वड़ा कोई उत्सव नही माना जाता यज्ञ मे अनाहूत · बिना बुलाए जाने का विधान है। किं पुनः जब पिता के घर मे हो। वहाँ जाना तो सभी तरह से प्राप्त है। यज्ञ दर्शन के लिए जाना सर्वथा उचित है। सो आदर के साथ अर्थात् तैयारी से जाना चाहती हैं। जाने का औचित्य वर्णन करके आज्ञा माँग रही हैं। हरिकथा फिर अधूरी ही रह गई। यथेष्ट आदर सती द्वारा न हो सका।

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहि नेवत पठावा॥
दच्छ सकल निज सुता बोलाई। हमरे वयर तुम्हौ विसराई ॥१॥

अर्थ . तुमने अच्छा कहा। मुझे भी पसन्द है। पर यह अनुचित है कि नेवता : नवेद नही भेजा। दक्ष ने अपनी सब पुत्रियाँ बुलाईं। पर मेरे वैर से तुम्हे भी भुला दिया।

व्याख्या : अर्थ स्वीकार है। पिता के यहाँ महोत्सव पडने पर जाना अवश्य चाहिए। पर तुम्हारे पिता का व्यवहार अनुचित हो रहा है। क्योंकि नेवता नही भेजा। जब 'नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग' तब मुझे नेवता क्यो नही आया ? मे तो जा नही सकता। उनको कम से कम मखभाग पानेवाले देवता के नाते भेजना था। तुम्हे भी बुलावा नही आया। दक्ष ने अपनी सब बेटियो को बुलाया है। मैं तो उनसे बैर नही मानता पर वे मुझसे मानते है। उस बैर के कारण मुझे भुलाया। और मेरे कारण तुम्हे भी भुलाया। मुझे न बुलाते तुम्ही को बुला लेते। मेरी स्त्री होने से तुम्हारा वहाँ जाना उन्हे पसन्द नही है।

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि ते अजहु करहि अपमाना॥
जौं विनु वोले जाहु भवानी। रहै न सीलु सनेहु न कानी ॥२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव की सभा में हमसे अप्रसन्न हुए थे। इसीसे वे अब तक अपमान करते है। हे भवानी ! यदि विना बुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और प्रतिष्ठा न रहेगी।

व्याख्या शिवजी कहते हैं : वहुत दिन हुए, ब्रह्मदेव की सभा मे मैं बैठा था। दक्षजी आये। सब देवता उनकी प्रतिष्ठा के लिए खडे हो गये। मै नही उठा। इसी पर अप्रसन्न होकर भरी सभा मे मेरा घोर अपमान किया। यज्ञ मे भाग न मिलने

का शाप दिया। मैं चुपकर रह गया। पर नन्दिकेश्वर से नहीं सहा गया। उसने उनके यज्ञ के विध्वंस होने का शाप दिया। वहाँ सभा थी। उनका पद इतना ऊँचा नहीं है कि मैं उठ खड़ा होता। फिर भी उन्हें जितना अपमान करते बना उतना किया। मैंने सह लिया। बात वहीं समाप्त हो गई। पर वे हृदय से वैर मान गये हैं। मेरे इतने सहने पर और इतना दिन बीतने पर भी यज्ञ में मुझे न बुलाकर मेरा अपमान कर रहे हैं। बल्कि मेरे अपमान के लिए ही यह यज्ञ किया जा रहा है। यदि तुम भवानी होकर बिना बुलाये चली गईं तो तुम्हारा शील, स्नेह और प्रतिष्ठा जो कुछ बना हुआ है वह नष्ट हो जायगा।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइअ बिनु बोलेहु न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यान न होई॥३॥

अर्थ यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बोलाये भी जाना चाहिए। फिर भी जहाँ कोई विरोध मानता हो वहाँ जाने से भलाई नहीं होती।

व्याख्या चार स्थानों में नेवते की आवश्यकता नहीं। मित्र, प्रभु, पिता और गुरु के घर। पर यहाँ केवल नेवता देने की बात नहीं है। दक्ष हमारे कारण तुमसे भी विरोध मानते हैं। मित्र, स्वामी, पिता और गुरु भी यदि विरोधी हो जायँ तो उनके यहाँ कल्याण चाहनेवाले को न जाना चाहिए। यही गृहस्थी का नियम है। पत्नी पति की आज्ञा माँगकर ही कोई काम करे। पति को यदि निषेध करना हो तो उसे समझावे। बलपूर्वक निषेध न करे।

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहिं बोलाए। नहिं भलि बात हमारे भाए॥४॥

अर्थ शिवजी ने अनेक भाँति से समझाया। पर होनहार के वश हृदय में ज्ञान न हुआ। प्रभु ने कहा कि यदि बिना बुलाये जाओगी तो हमारी समझ में बात ठीक न होगी।

व्याख्या शिवजी का समझाना। यथा :

करि भरोस वात्सल्य को, करौ तहाँ जनि गौन।
दक्षघृणा करिहैं अधिक समुझि रहौ तुम मौन॥
तुम्हरे जैबे ते अधिक, बढ़ि जैहै अभिमान।
ह्वै निशङ्क तब करहिंगें, पग-पग पर अपमान॥
बिन बोले आगमन सुनि, जन करिहैं उपहास।
बैर और अधिकाइ है, नहीं प्रीति की आस॥
बहिष्कार मेरो चहत, सुरसमाज ते दक्ष।
औरन के अनुसरन हित, आप भये प्रत्यक्ष॥
करि नहिं सकि हैं हानि कछु, किये कोटि अपकार।
संभव तव हिय हारि फिरि, चाहैं प्रीति उदार॥

हार हमारी समुझिहै, देखि तुम्है निज जीत।
अभिमानी के हृदय नहि, उपजत प्रीति पुनीत॥
अन्तहु सहि सकि हौ सती, नहि मेरो अपमान।
अति अनर्थ सम्भावना, ते जनि करहु पयान॥

इतना समझाने पर बात समझ मे आ जानी चाहिए थी, पर सतीजी भवितव्यता के वश मे थी फिर शिवजी का समझाना व्यर्थ गया। बात मन मे न बैठी। युक्ति पर युक्ति देती ही गई। तब शिवजी ने निचोड कह दिया कि तुम्हारी समझ मे भले ही जाना उचित हो पर मेरी समझ मे भलाई नही होगी।

दो कहि देखा हर जतन बहु, रहै न दच्छकुमारि।
दिए मुख्यगन संग तब, बिदा कीन्हि त्रिपुरारि॥६३॥

अर्थ जब शिवजी ने बहुत यत्न से कहकर देखा कि दक्ष की बेटी नही रुकती तब मुख्य गणो को सङ्ग मे देकर त्रिपुरारि ने विदा किया।

व्याख्या समझाने की जहाँ तक सीमा है वहाँ तक समझाया। यहाँ तक कहा कि अब तुम्हे फिर मेरा दर्शन न होगा। तुम्हे पूर्व जाना है। आज शनिवार है। नवमी तिथि है। सभी योग बुरे हैं। न जाओ। देख लिया कि बात गले नही उतरती। समझाने से अधिक अपने अधिकार को काम मे नही लाते। ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। ये सब ताडन के अधिकारी इस नीति को मन्थरा, सूर्पणखा, लङ्किनी और ताडका को छोडकर श्रीरामकथा मे कही वर्तते नही देखा जाता। दक्ष कुमारी कहने से तात्पर्य यह कि पिता का बडा पक्ष मन मे है। क्रोध से भरी कहने लगी कि यदि आपके चरणो मे प्रेम है तो दूसरे जन्म मे आपको पा जाऊँगी। यह कहकर अकेली चल पडी। फिर भी अरक्षित नही भेजते। मुख्य गणो को साथ मे कर दिया। प्रतिष्ठा के साथ विदा किया। त्रिपुरारि विदा कर रहे है, लौटेंगी नही।

पिता भवन जब गई भवानी। दच्छ त्रास काहु न सनमानी॥
सादर भलेहि मिली एक माता। भगिनी मिली बहुत मुसुकाता॥१॥

अर्थ जब भवानी पिता के घर पहुँची तो दक्ष के डर से किसी ने उनका सम्मान नही किया। केवल एक माता आदर के साथ मिली। बहने[1] भी मिली पर मुसुकराती हुई।

---

१ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमेह्यजात्मज। तस्या ससर्ज दुहितृ षोडशामललोचना॥
त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभु। पितृभ्य एका युक्तेभ्यो भवायैका भवच्छिदे॥
भवस्य पत्नी तु सती भव देवमनुव्रता। आत्मन सदृश पुत्र न लेभे गुणशीलत.॥
श्रीमद्भागवत

स्वायम्भू मनुने अपनी तीसरी पुत्री प्रसूति ब्रह्मा के पुत्र दक्ष को दी। दक्ष से प्रसूती को सोलह लडकियाँ हुई। उनमे से तेरह धर्म को, एक अग्नि को, एक पितरो को और एक शिवजी को दी। शिवजी की पत्नी का नाम 'सती' था। उन्ह कोई सन्तान नही हुई।

व्याख्या : वहाँ जाने पर दाक्षायणी : दक्ष की बेटी की दृष्टि से नही भवानी भव की स्त्री भवानी : की दृष्टि से देखी गई। भवानी के सम्मान की इच्छा सब को है। पर कोई करता नही। सब जानते है कि इनका आना दक्ष को इष्ट नही। इनका सम्मान करके दक्ष के कोप का भाजन कौन बने ? अत शिवजी ने जो कहा था कि रहै न सील सनेह न कानी। सो कानि · प्रतिष्ठा : तो गई। माँ किसी अवस्था मे भी वात्सल्य नही छोड सकती। अतः सादर मिली। बहन भी सब मिली। पर बहुत मुसुकुराती हुई। भाव यह कि आगई बिना बुलाए। जिस गौरव से मेरे पिता का अपमान किया था वह कहाँ रहा। नेगजोग लेने के लिए भेज दिया। गहना नही। कपड़ा नही। बडा भारी नाम महादेव। नाम बडेरा दर्शन थोरा। इस भाँति प्रतिष्ठा नही हुई।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥२॥

अर्थ · दक्ष ने कुछ कुशल भी नही पूछी। सती को देखकर सारा शरीर जल उठा। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ शिवजी का भाग कही दिखाई न पडा।

व्याख्या : दक्ष ने भद्रता का भी पालन नही किया। कुशल भी नही पूछी। शील भी गया। सती को देखने से वात्सल्य का उदय तो दूर की बात है। यह भावना उठी कि इसी के पति ने मेरा अपमान किया था सो सारा शरीर जल उठा। स्नेह भी गया।

सती को भरोसा था कि मुझे देखते ही पिता सारी बातें भूल जायेंगे और जो कुछ बिगडी बात है सब बन जायगी। तुरन्त शिवजी को नेवता भेजा जायगा और सब व्यवहार प्रेममय हो जायगा। जब देखा कि पिता के स्नेह का लेश नही है तो यज्ञ देखने गईं कि कहीं ऐसा न हो कि शिवजी को यज्ञ मे भाग न दिया हो सो सचमुच वहाँ शम्भु का भाग था ही नही।

तब चित्त चढेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा। जस यह भयउ महापरितापा ॥३॥

अर्थ : तब शिवजी ने जो कहा था वह बात याद आई। स्वामी का अपमान समझकर हृदय जल उठा। पहिला दु ख हृदय मे वैसा नही व्यापा था जैसा कि यह महापरिताप हुआ।

व्याख्या · शिवजी के समझाने के समय कोई बात मन मे नही बैठी। समझती थी कि मनोमालिन्य मिटाने का यही एक उपाय है कि मैं बिना बुलाये चली जाऊँ। अब यहाँ की व्यवस्था देखकर मोह का पर्दा हटा। शिवजी की बात प्रत्यक्ष ठीक दिखाई पडी। वस्तुत यह यज्ञ ही शिवजी के अपमान के लिए रचा गया है। पति परित्याग का भारी दु ख था। परन्तु पति के अपमान का जो दु ख हुआ वह उससे बही बढ गया।

जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब ते कठिन जाति अपमाना॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु बिधि जननी कीन्ह प्रबोधा॥४॥

अर्थ यद्यपि जगत् मे अनेक प्रकार के कठिन दुख है पर स्वजाति से अपमानित होना सबसे कठिन है। यही सोचकर सती को अत्यन्त क्रोध हुआ। माता ने उन्हे बहुत तरह से समझाया बुझाया।

व्याख्या महादेवजी को यज्ञ मे भाग न देना इससे बढकर उनका क्या अपमान होगा? इसका मतलब तो सीधे सीधे यही है कि देवजाति से महादेवजी का बहिष्कार हो गया। यह समझकर सती को अति क्रोध हुआ। अपने को सँभाल न सकी। क्रोध के लक्षण व्यक्त हो चले। किसकी सामर्थ्य जो इस बीच मे पडे। पर माँ सती को दुखी देखकर सग सग दौडी आई थी सो आगे आईं। समझाने लगी।

सवैया पितुते अपमान बडो सनमान कह्यौ जिन वेद को भेद विचारयौ।
तेहि को झझकारन मे अधिकार जो अक मे लै बहुभाँति दुलारयौ।
तुम नाहक ग्लानि सती उर आनि दुखी अति होत न जात सभारयौ।
करिहै मनुहारि गये दिन चारि सोई जिन रोषते दोष निहारयौ।

दो सिव अपमानु न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हठकि तब, बोली वचन सक्रोध॥६३॥

अर्थ शिवजी का अपमान सहा नही गया और न मन समझाए समझता है। तब सारी सभा को हठ से रोककर क्रोध से वचन बोली।

व्याख्या सती के क्रोध करने पर दक्ष तथा अन्य ठकुरसोहाती बोलनेवाले शिवजी की निन्दा करने लगे। उन्हे रोककर बोली। अथवा यज्ञ म सभासद होते हैं। उन्ही के निरीक्षणाविक्षण मे यज्ञ होता है। शिवजी के भाग न दिये जाने मे वे भी अपराधी थे। उन्हे अपने काम से रोककर क्रोध से बोली। सिव अपमान न जाइ सहि। मनसा क्रोध। सकल सभहि हठि हटकि। कर्मणा क्रोध। और बोली वचन वाचा क्रोध दिखलाया।

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन संकर निंदा॥
सो फलु तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू॥१॥

अर्थ हे सभासदो और सब मुनीश्वरो! सुनो जिन लोगो ने यहाँ शिवजी की निन्दा कही या सुनी है उन सबको उसका तुरन्त फल मिलेगा। और पिता जी भी भली भाँति पछतायेंगे।

व्याख्या: उस यज्ञ मे सब मुनि तथा यज्ञभाग पानेवाले सब देवता इकट्ठे थे। इसलिए सबको सम्बोधन करती हैं। सभा म प्रवेश नही करना चाहिए और यदि जाय तो यथार्थ कहे। चुप रह जानेवाला या अन्याय कहनेवाला समान पापी होता है। यथा सभाया न प्रवेष्टव्य वक्तव्य वासमञ्जसम्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि

नरो भवति किल्विषी। अतः जिसने शङ्कर की निन्दा की वह पापी है और जिसने सुनकर प्रतिवाद न किया चुप रह गया वह भी समान पापी है।

अत्युग्र पुण्य पाप का फल यही मिल जाता है। चाहे तीन दिन भीतर मिले, तीन महीने भीतर मिले या तीन वर्ष के भीतर मिले। यथा : अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते। त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्दिनैः। अथवा मेरी आज्ञा से तुरन्त फल मिलेगा। इन सबके कारण पिताजी हैं। इनको भारी दुर्गति होगी और इनका कोई पुरुषार्थ न चलेगा तब पछतायेंगे।

संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरिजादा ॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई ॥२॥

अर्थ : सन्त, शम्भु और विष्णु भगवान् की निन्दा जहाँ सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि वश चले तो उसकी जीभ काट ले और नहीं तो कान बन्द करके वहाँ से भाग चले।

व्याख्या : क्योंकि यहाँ अन्याय की पराकाष्ठा हो गई। साक्षात् शङ्कर की निन्दा की जा रही है। और मर्यादा यह है कि सन्त, शम्भु और विष्णु के निन्दक का जिह्वाछेदन करना चाहिए। और यदि अपना वश न चले तो कान बन्द करके वहाँ से भाग जाना चाहिए। जिसमें और निन्दा के शब्द कान में न पड़े। इसमे दोनो का हित होता है। 'होहिं उलूक संत निंदारत। मोहनिसाप्रिय ज्ञान भानुगत। हरगुरु निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई। निन्दक को दण्ड हो जाने से वह शुद्ध हो जाता है और दण्ड देनेवाला निन्दाश्रवण के पास से बच जाता है। यदि दण्ड देने मे असमर्थ हो तो कान मूँदकर भाग जाने से इस महान् पातक से अपनी रक्षा कर ले। पर यहाँ इन लोगो मे से न किसी ने निन्दक को दण्ड दिया और न कोई सभा छोडकर बाहर गया। अत. यह सभा पापियो की हो गई।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी ॥
पिता मदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥३॥

अर्थ : जो जगत् की आत्मा है, जो महेश्वर है, त्रिपुरान्तक है, जगत् का पिता है और जगत् का हित करनेवाला है उसकी निन्दा मन्दमति पिता कर रहा है और इसी दक्ष के वीर्य से यह देह उत्पन्न हुआ है।

व्याख्या : जो अपनी ही आत्मा, अपने ही स्वामी, अपने ही रक्षक, अपने ही पिता और अपने ही हितकारी की निन्दा करे वह मन्दमति है और जो जगदात्मा, जगत् स्वामी जगद्रक्षक जगत् पिता और जगत् के हितकारी की निन्दा करे उसे क्या कहा जाय। ऐसे अत्याचारी के शुक्र से मेरा स्थूल शरीर बना है। यह रखने योग्य नही है।

तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा ॥४॥

अर्थ इसलिए चन्द्रमौलि वृषकेतु को हृदय मे रखकर मैं देह का परित्याग करूँगी। ऐसा कहकर योगाग्नि से शरीर को भस्म कर दिया और सारी यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया।

व्याख्या अपने आश्रित चन्द्र को शिर पर धारण करनेवाले धर्म के एक मात्र शरण को हृदय मे धारण करके तुरन्त देह को त्यागूँगी। मेरे लिए यही एक मात्र उपाय शिव विरोधी से सम्पर्क त्याग का है। ऐसा कहकर दक्ष की यज्ञशाला मे उत्तर मुख बैठ गई। चुप हो गईं। आँखे बन्द कर ली। प्राणापान को समान करके उदान के सहित नाभि चक्र से उठाया। फिर धीरे से हृदय मे स्थापित किया। फिर वहाँ से उठाकर कण्ठ मे फिर भ्रूमध्य मे स्थापित किया। फिर अपने शरीर मे वायु और अग्नि की धारणा की। इस भाँति शिव जी के चरणो का ध्यान करती हुई सती ने समाधिज अग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। सम्पूर्ण यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया। दक्ष का भय भी लोगो को हाहाकार करने से रोक न सका।

दो सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

अर्थ सती का मरना सुनकर रुद्रगण यज्ञ विध्वंस करने लगे। यज्ञ का विध्वंस देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की।

व्याख्या हाहाकार सुना। स्पष्ट शब्दो मे लोगो के मुख से दक्ष की निन्दा सुनी कि इसके अत्याचार से सती ने शरीर त्याग दिया। तब शिवजी के पार्षद हथियार उठाये हुए दक्ष को मारने तथा यज्ञ विध्वंस के लिए उद्यत हुए। उनके वेग को देखकर यज्ञविध्वंसको के नाशक यजुमन्त्रो से भृगुजी ने दक्षिणाग्नि मे आहुति दी। उससे ऋभु नाम के हजारो देवता उत्पन्न हुए। उन्होने रुद्रगणो को मार भगाया।

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोपु पठाए॥
जग्य बिधंस जाइ तिन कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥१॥

अर्थ सब समाचार शिवजी को मिला। तब उन्होने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होने जाकर यज्ञविध्वंस किया और सारे देवताओ को विधिवत् फल दिया।

व्याख्या नारदजी ने सब समाचार अर्थात् शिवजी की निन्दा होने पर सती का शरीर त्याग और भृगुजी के उत्पन्न किये हुए देवगणो से रुद्रगणो के पराभव का समाचार शिवजी को सुनाया। तब उन्होने अत्यन्त क्रोध किया। उनकी जटा से वीरभद्र उत्पन्न हुए। उन्हें अपने गणो का अग्रणी बनाकर भेजा।

वीरभद्र जी ने जाकर यज्ञविध्वंस किया। इनके ऊपर यज्ञानिष्टनाशकारी मन्त्रो का बल न चला। वीरभद्रजी अत्यन्त क्रुद्ध थे फिर भी फल देने म अविधि न होने पाई। जो दाँत निकालकर हँसे थे उनका दाँत तोडा गया। जिन्होने आँख से इशारा किया था उनकी आँख फोडी गई। जिन्होने दाढी हिलाकर अनुमोदन किया था उनकी दाढी नोची गई। भाव यह कि भगवान् वीरभद्र के सामने देवताओ का पराक्रम कुछ न ठहरा। यहाँ 'सुरन्ह' शब्द उपलक्षण है। ऋषि भी इन्ही के अन्तर्गत हैं।

भै जग विदित दच्छ गति सोई । जसि कछु सभु विमुख कै होई ॥
यह इतिहास सकल जग जानी । ताते मै सक्षेप बखानी ॥२॥

अर्थ दक्ष की जगत् प्रसिद्ध वही गति हुई जैसी कि शिव विमुख की होती है। यह इतिहास तमाम ससार जानता है। इसलिए मैंने सक्षेप मे वर्णन किया।

व्याख्या आज भी लोग शङ्कर की पूजा के बाद बकरे का-सा शब्द गाल बजाकर उच्चारण करते हैं जिसमे शङ्कर प्रसन्न हो। कारण यह कि देवताओ का विधिवत् दण्ड देने के बाद दक्ष का शिर काटकर दक्षिणाग्नि मे ही होमा गया। जिसमे आहुति देकर भृगु ऋषि ने यज्ञविघ्न नाशक ऋभु देवों को उत्पन्न किया था। तत्पश्चात् ब्रह्मादिक की स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी ने बकरे का शिर दक्ष के शरीर मे जोड दिया। दक्ष ने जीकर बकरे-सा ही शब्द किया। इस पर भगवान् प्रसन्न हो गये। यही जानकर ससार बकरे का सा शब्द करता है। यह दक्ष की जगत् विदित गति है। उस समय सन्त्रस्त देवताओ ने जो स्तुति की है वही रुद्री कहलाती है। महाभारत द्रोणपर्व मे पौराणिक शतरुद्री है।

अत यह इतिहास ससार जानता है। इस कारण से ग्रन्थकार ने सक्षेप मे कहा। फिर भी दक्ष की दुर्दशा अपने मुख से स्पष्ट नही कही जस कछु सभु विमुख कर होई। कहकर समाप्त कर दिया। यह ग्रन्थकार की सज्जनता है।

सती मरत हरि सन वर माँगा । जनम जनम सिव पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई । जनमी पारवती तनु पाई ॥३॥

अर्थ मरते समय सती ने हरि से वर माँगा कि जन्म-जन्म मे शिवजी के चरणो मे प्रेम हो। इस कारण हिमवान् के घर जाकर पार्वती शरीर धारणकर जन्म लिया।

व्याख्या योगाग्नि प्रकट करने के समय हरि वरद होकर प्रकट हुए। पहिले जो प्रार्थना[1] की थी उसे पूरा करके अब क्या चाहती हो ऐसा बोले। भगवती ने जन्म-जन्म मे शिवचरणानुराग माँगा। यह सती का सतीत्व है।

शिवजी का ध्यान करते हुए योगाग्नि से शरीर छोडनेवाले का पुनर्जन्म नही होता। यथा तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे। परन्तु हरि से पुनर्जन्म के लिए वर माँगा था। इसलिए हिमगिरि गृह मे जनमी। हिम ऋतु का आरम्भ सूचित करते हैं। यथा हिम हिमसैलसुता सिव व्याहू। गृह कहकर सूचित किया कि हिमगिरि से कोई भौतिक पहाड न समझ ल। यहाँ पर्वत के अधिष्ठातृ देवता से तात्पर्य है। त्रेता के आदि म चैत्रसुदी नवमी अर्धरात्रि को भगवती का जन्म हुआ।

---

१ तौ सब दरसी सुनहु प्रभु करहु सो वेगि उपाय।
होय मरन जेहि बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाय ॥

जब ते उमा सैल गृह जाई। सकल सिद्धि सपत तहँ छाई॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआस्रमु कीन्हे। उचित वास हिम भूधर दीन्हे॥४॥

अर्थ जब से उमा ने हिमवान् के घर जाकर जन्म लिया तब से वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पत्ति छा गई। मुनियो ने जहाँ तहाँ अच्छे अच्छे आश्रम बना लिये। हिमवान् ने उन्हे यथोचित स्थान दिये।

व्याख्या यद्यपि तप से विरत करने के लिए माँ का उमा उच्चारण करना उमा नाम पडने का हेतु बतलाया जाता है पर भगवती का सदा से उमा नाम है। उमा मे भी वे ही अक्षर हैं जो प्रणव म है। इसलिए उमा को देवी प्रणव कहा गया है।

जगदम्बा के अवतार ग्रहण करते ही हिमालय पर सिद्धि और सम्पत्ति छा गई। सिद्धि सम्पत्ति का छा जाना अवतार का सूचक है। यथा जा दिन ते हरि गर्भहिं आये। सकल लोक सुख सपति छाये। सिद्धि प्राप्ति के लिए मुनियो का आगमन प्रारम्भ हुआ। हिमगिरि की ओर से भी यथायोग्य सत्कार होने लगा।

दो. सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटी सुन्दर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति॥६५॥

अर्थ पर्वत पर भाँति भाँति के नवीन वृक्ष सदा फल फूल सहित हुए और मणियो की अनेक प्रकार की खाने प्रकट हुईं।

व्याख्या प्रकृति मे परिवर्तन कहते है। अथवा मुनिगण आगये। उनके सत्कार के लिए सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना भाँति प्रकटे। ऐसा कहकर सिद्धि का आना द्योतित किया। अब मनि आकर बहु भाँति का प्रकटना कहकर सम्पत्ति का छा जाना कहते हैं।

जिस भाँति सती की कथा वन है उसी भाँति गिरिजा की कथा बाग है। सब सुख ही सुख हुआ।

सरिता सब पुनीत जलु बहही। खग मृग मधुप सुखी सब रहही॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा॥१॥

अर्थ सारी नदियाँ पवित्र जल बहाने लगी। पक्षी, पशु, भौंरे सब सुखी रहने लगे। जीवो ने स्वाभाविक वैर छोड दिया। पर्वत पर सब प्रेम करने लगे।

व्याख्या नदी मे निर्मल जल का प्रवाह महानुभाव की उपस्थिति का सूचक है। यथा वह सरयू अति निर्मल नीरा। खग मृग एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। यथा सहवासी काचो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खगमृग मीन। मधुप मधु छीने जाने के भय से दुर्गम स्थानो मे छत्ते लगाते हैं। वहाँ भी बन्दरो की बाधा रहती है। यहाँ सुखी रहने लगे।

कुछ जीवो म सहज वैर है। यथा काक उलूक मे, अश्व महिप म, मूषक बिलाव म, गज सिंह म। जगजननी क आगमन से उन जीवो का सहज वैर उस

पर्वत पर नही रह गया। यथा : अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग । अहिंसा की प्रतिष्ठा होने से उनके सन्निकट वैर छूट जाता है। वहाँ तो प्रेम करते थे। पर्वत के नीचे आने पर फिर वही हालत हो जाती थी। यथा खगहा करि हर बाघ वराहा। देखि महिष वृष साज सराहा। वैर विहाइ चरैं इक सगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरगा।

सोह सैल गिरिजा गृह आएं। जिमि जन राम भगति के पाएं ॥
नितनूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू ॥२॥

अर्थ : घर मे गिरिजा के आने से पर्वत की ऐसी शोभा हुई जैसी रामभक्ति पाकर मनुष्य की होती है। जिसका यश ब्रह्मा आदिक गान करते हैं उसके घर नित्य नये मङ्गल[1] हैं।

व्याख्या . रामभक्ति की प्राप्ति से जन की शोभा हो जाती है। महाप्रभावा भगवती भक्ति के प्रभाव से उसके निकट काम क्रोध लोभ मोहादि नही आते। उसका अविद्यान्धकार मिट जाता है। उसके लिए विष अमृत और शत्रु मित्र हो जाता है। वही वास्तव मे सुखी होता है। उसे मानस रोग नही होते। सपने मे भी उसे दुःख का लेश नहीं होता। यथा : राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अन्तर। खल कामादि निकट नहि जाही। बसइ भगति जाके उरमाही। गरल सुधा सम अरिहित होई। तेहि मनि विनु सुख पाव न कोई। इत्यादि। जिस भाँति हृदय मे भक्ति की प्राप्ति से पूर्ण रूपेण सुखी होकर प्राणी शोभा को प्राप्त होते हैं उसी भाँति पर्वतराज भी भगवती गिरिजा के पादार्पण से सब प्रकार की सुख समृद्धि से युक्त होकर शोभा को प्राप्त हुए।

गिरिजा के आने से गिरिराज की ऐसा महिमा बढी कि ब्रह्मादिक देव पर्वत-राज का यशोगान करने लगे। उनके भाग्य की सराहना करने लगे। और उनके घर नित्य नया मगल होने लगा। नये मङ्गल के लिए सर्वमङ्गला, मङ्गलागौरी का लोग पूजन करते हैं। सो जहाँ वे स्वय अवतीर्ण हैं वहाँ नित्य नया मङ्गल क्यो न हो।

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
सैलराज बड आदर कीन्हा। पद पखारि वर आसनु दीन्हा ॥३॥

अर्थ : नारद ने सब समाचार पाया तो कौतुक के लिए हिमवान् के घर आये। पर्वतराज ने बडा आदर किया और पाँव धोकर श्रेष्ठ आसन दिया।

व्याख्या : ब्रह्मदेव के मुख से बारबार यशोगान सुना। इसलिए कहते है कि नारद समाचार सब पाये। कौतुकी मुनि हैं। यथा मुनि कौतुकी नगर तेहि गएऊ।

---

१ मङ्गलमभिप्रेतार्थसिद्धि । मङ्गललक्षणम् ।
प्रशस्ताचरण नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनम्। एतद्धि मङ्गल प्रोक्त ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभि ।
चाहे हुए अर्थ की सिद्धि को मङ्गल कहते हैं। नित्य अच्छे काम करना बुरा न करना, इसी को तत्त्वदर्शी ऋषियों ने मङ्गल बतलाया है।

ब्रह्मलोक से मृत्युलोक मे कौतुक के लिए चले आये क्योकि कौतुकियो को आलस्य नही होता। यथा तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही। पर इनके कौतुक का सदा कल्याण लक्ष्य रहता है।

पर्वतराज साधुसेवी है। मुनियो का आदर अपने यहाँ उचित स्थान देकर किया करते हैं। नारद जी तो देव ऋषि है। इसलिए इनका बडा आदर किया। इनके पैर धोये और उत्तम आसन पर विठाया।

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिचावा ॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना ॥४॥

अर्थ हिमवान् ने स्त्री के सहित मुनि के चरणो मे शिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर म छिडकवाया। अपने भाग्य की बडी सराहना की ओर बेटी को बुलाकर मुनिजी के चरणो मे डाल दिया।

व्याख्या सस्त्रीक होकर शिर नवाना तथा चरणोदक से सम्पूर्ण घर को सिञ्चित करना गुरु के समान आदर करना है। यथा गहे चरन सिय सहित वहोरी। बडे के आगमन पर ही अपने सौभाग्य के वर्णन की विधि है। क्योकि उसका पर्यवसान बडे की स्तुति मे होता है। बेटी के कल्याण के लिए उसे लेकर मुनिजी के चरणो मे डाल दिया। अथवा उसके भविष्य के विषय मे प्रश्न करना है इसलिए चरणो मे डाल दिया।

दो त्रिकालग्य सर्बग्य तुम्ह, गति सर्बत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोष गुन, मुनिवर हृदय विचारि ॥६६॥

अर्थ हिमवान् ने कहा आप त्रिकालज्ञ हैं। आप की सर्वत्र गति है। हे मुनिवर! हृदय से विचारकर बेटी के दोष और गुण कहिये।

व्याख्या योगी लोग प्रज्ञालोक के प्रभाव से वस्तु विशेष का भूत भविष्य जान लेते हैं। इस भाँति त्रिकालज्ञ होते हुए भी सर्वज्ञ नही होते। नारद जी त्रिकालज्ञ भी है, सर्वज्ञ भी है और इनकी सर्वत्र गति है। अव्याहत गति है, सभी विषयो मे सभी लोको मे गति है। कही रोक नही है। यथा नारद को परदा न नारद सो पारखी। इससे गिरजा के योग्य वर की ओर इङ्गित है। यथा कुअरि सयानि विलोकि मातु पितु सोचहिं। गिरिजा जोगु मिलिहि वर अनुदिन लोचहिं। पा म। केवल गुण और केवल दोष की जगत् म स्थिति भी नही है। इसलिए दोष गुण दोनो पूछते हैं। दोष लक्षित नही होता है। अत जिज्ञासा मे प्रधानता दोष को है। इसलिए दोष को ही पहिले कहा।

कह मुनि विहँसि गूढ मृदु वानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी ॥
सुदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अंबिका भवानी ॥१॥

अर्थ मुनिजी हँमकर गूढ और मृदुवानी वोले। तुम्हारी बेटी सब गुणो की

खानि है। स्वभाव से ही सुन्दर सुशील और सयानी है। इसके नाम उमा, अम्बिका और भवानी हैं।

व्याख्या माता-पिता के वात्सल्य पर हँस[1] पड़े और मृदुवानी बोले १ कि तुम्हारी बेटी सब गुणो की खानि है। यही गूढ़ वाणी है। तीनो गुण सत्त्व, रज और तम की खानि तो साक्षात् मूल प्रकृति हैं २ सहज सुन्दर अर्थात् शृंगारादि की अपेक्षा नही है। स्त्री यदि सुशील न हुई तो सुन्दरता अकिञ्चित्कर है। इसलिए ३ सुशील कहते हैं। इतना होने पर भी यदि मतिमन्द हो तो सब गुण फीके पड़ जाते हैं। इसलिए ४ सयानी कहते हैं और फिर वाक्य की गूढ़ता यह है कि नाम बतलाने लगते हैं। इतनी बड़ी कन्या का नाम माता-पिता से पूछना चाहिए न कि माता-पिता को उसका नाम बतलाना चाहिए। सो ५ वेदोक्त नाम, उमा प्रणव अम्बिका और भवानी बतलाकर उनका अनादि शक्ति होना द्योतित करते हैं।

सब लच्छन सम्पन्न कुमारी। होइहि सतत प्रियहिं पियारी ॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। इहि तें जसु पैहहि पितुमाता ॥२॥

अर्थ लड़की सब लक्षणो से युक्त है। यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। इसका सोहाग सदा अचल रहेगा। इसके माता-पिता यश पावेंगे।

व्याख्या सदा अचल अहिवात कहकर वर और कन्या दोनो को अमर कहा। सब लक्षण सम्पन्न कहकर भी छ लक्षण गिनाते हैं। पाँच गुण पहिले गिना आए हैं। एव अब ग्यारह विशेषण देकर इनका रुद्राणी होना सूचित करते हैं। १ सदा पति की प्रियतमा होना। यथा बरदायिनी त्रिपुरारि पियारी। २ अहिवात का सदा अचल होना। ३ इनसे पिता माता को यश मिलना। पुत्र मेनाक से वैसा यश नही। यथा ब्रह्मादि सुरनर नाग अति अनुराग भाग बखानही पा म।

होइहि पूज्य सकल जग माही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही ॥
एहि कर नामु सुमिरि ससारा। त्रिय चढिहहिं पतिब्रत असिधारा ॥३॥

अर्थ यह सारे जगत् म पूज्य होगी। इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। ससार मे इसका नाम स्मरण करके स्त्रियाँ पतिव्रत रूपी तलवार की धार पर चढ जायँगी।

व्याख्या ४ बिना इनकी पूजा के कोई सुखी नही हो सकेगा। शैव वैष्णव आदि सभी इनकी पूजा करेंगे। यथा देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे। ५ इनकी सेवा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो मे से कोई दुर्लभ नही। चारो सुलभ हैं। यथा सेवत तोहि सुलभ फल चारी। ६ इनके नाम स्मरण से पतिव्रत रूपी खड्गधार पर चढने की सामर्थ्य होती है। अत यह अनादि

---

१ जिसकी देह से उत्पन्न होकर भगवती कौशिकी ने अभी शुम्भ निशुम्भ का वध किया है, उसे य सीधे-सीधे बेटी मान रहे हैं।

देवी हैं। पतिव्रताओ मे प्रथम रेखा इन्ही की है। यथा पति देवता सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना ॥४॥

दो. जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमगल भेख।
अस स्वामी इह कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥४॥

अर्थ हे गिरिराज! तुम्हारी बेटी सुलच्छनी है। अब दो चार दोप हैं उन्हे भी सुनो। अगुन, अमान, मातृ-पितृ हीन, उदासीन, क्षीणसशय, योगी, जटिल, कामरहित मनवाला, नगा, अशुभ वेपवाला। ऐसा स्वामी इसको मिलगा। ऐसी रेखा इसके हाथ मे पड गई है।

व्याख्या शैलराज ने दोपगुण पूछा था। पर नारदजी गुण दोप कहते हैं। जो वही दोप पहिल कह देते तो गुण सुनाने का अवसर ही न मिलता। सकल गुनखानी से उपक्रम सब लच्छन सम्पन्न कुमारी से अभ्यास और सुलच्छिनी से उपसहार करते है। गुण बहुत है। दोप दो ही चार है और वे भी पतिविपयक है। पति विपयक अवगुण भी पत्नी म समझे जाते है। इसलिए उमा का अवगुण कहते हैं। यही मुनिजी का कौतुक है। उमा को तप के लिए भेजना चाहते हैं जिसम उनका परम कल्याण हो। दोप न दिखावे तो माता पिता तप के लिए आज्ञा दगे नही। अत पतिविपयक ऐसे विशेपण देगे जो महादेव मे जाकर गुण हो जाते हैं। सामान्य जीव के लिए तो महा अवगुण हैं। उन्ही विशेपणो को जो सख्या म दस हैं दोप कहकर गिनाते हैं। यह गूढ वाणी है। १ अगुन गुण से परे या निर्गुणी। २ अमान अपरिच्छिन्न या उपेक्षित। ३ मातृपितृहीन स्वयभू या अनाथ। ४ उदासीन रागद्वेप रहित या उदासी। ५ क्षीणसशय ज्ञानी या नरपशु। ६ योगी योगेश्वर या भिक्षुक। ७ जटिल लौकिक-सस्कार से परे या विरक्त। ८ नगन मायावरण रहित या निर्लज्ज। ९ अकाममन कामजयी या नपुसक। १० अमगल वेप शिवधाम या अघोरी परी हस्त असरेख। अन्यथा हो ही नही सकता।

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दपतिहि उमा हरखानी ॥
नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब विलगाना ॥१॥

अर्थ मुनि की बात सुनकर और उसे हृदय से सत्य जानकर दोनो प्राणियो को दु ख हुआ और उमा हर्पित हुई। नारद ने भी इस मर्म को न जाना क्योकि सबकी दशा एक सी थी। केवल समझने मे भेद था।

व्याख्या मुनि मे विश्वास है कि मुनि की वाणी मिथ्या हो ही नही सकती। ऐसी गुणवती मेरी कन्या और उसे ऐसा निर्गुणी वर मिलेगा। इस बात का हिमवान् और मेना को दु ख हुआ। शङ्कर भगवान् म ये सब लक्षण घटते हैं। अत वर रूप म उनकी प्राप्ति की आशा से उमा हर्पित हुई।

मेना-हिमवन्त शोक से विह्वल, उमा प्रेम मे विह्वल अत बाह्य दशा सबकी एक सी हुई। नारद सो परदा न नारद सो पारखी। सो ऐसे पारखी भी यह न परख सके कि किसे शोकाश्रु है और किसे आनन्दाश्रु है। शोक और हर्ष दोनो के अनुभाव अश्रु और पुलक हैं। अनुभाव एक से होने से भेद का पता न चला।

सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना ॥
होइ न मृषा देवरिषि भाखा। उमा सो वचनु हृदय धरि राखा ॥२॥

अर्थ सारी सखियाँ, उमा हिमवान् और मेना के शरीर पुलकित हो गये। आँखो मे आँसू भर आये। देवर्षि का कहा झूठ न होगा। यह बात उमा ने हृदय म रख ली।

व्याख्या पिछली चौपाई मे जो दो बातें कही थी १ दसा एक और २ समुझव बिलगाना। उनमे से दसा एक को स्पष्ट कर रहे हैं कि सभी सखियो के तथा गिरिजा, गिरि और मेना के शरीरो मे पुलक हो उठा था और आँखो मे आँसू छलछला उठे थे। अब 'समुझव बिलगाना' को स्पष्ट कर रहे है। उमा तो यह समझ रही है कि नारदजी समस्त देवताओ मे ऋषि हैं। इनका कहा अन्यथा कैसे होगा। इसलिए उस वचन को गाँठ बाँध लिया।

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा सदेहू ॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछग[1] बैठि पुनि जाई ॥३॥

अर्थ शिवजी के चरण कमलो मे स्नेह उत्पन्न हुआ। पर मन मे सन्देह हुआ कि मिलना कठिन है। कुअवसर जानकर प्रीति को छिपा लिया और जाकर सखी की गोद मे बैठ गईं।

व्याख्या नारद के वचन से शिवपद मे प्रेम उपजा। इसीलिए नारद जी को गुरु माना। यथा गुरु के वचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुख सिधि तेही। नारद वचन न मैं परिहारऊँ। इत्यादि। स्नेह तो बीज भाव से था ही। उसके उद्बोधन के कारण शिवजी का गूढ भाव से वर्णन हुआ। स्नेह बढने से मिलने की इच्छा हुई। पर वह कठिन बात थी। क्योकि त्याग कर चुके थे। नारदजी आशा दिलाते हैं कि अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि। पर अभी निश्चय कुछ नही। इससे सन्देह हुआ।

पिता-माता की अनुज्ञा नही हुई है। अत प्रीति के प्रकट करने का उपयुक्त अवसर न था। नारद वचन से उद्बोधित प्रीति को छिपाया। सखी के उछङ्ग गोद से लेकर नारदजी के पैरो मे डाला था। जबतक हाथ देखकर फल कहते थे तबतक वही बैठी थी। जब कह चुके तो फिर सखी की गोद मे चली गईं।

झूठि न होइ देवरिषि बानी। सोचहि दपति सखी सयानी ॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ उपाऊ ॥४॥

---

१ 'थत्सप्सा छ' इस सूत्र मे 'त्स' का छ होकर 'उत्सङ्ग' का 'उछग' रूप सिद्ध हुआ।

अर्थ : देव ऋषि की वाणी झूठी न होगी। यह बात दोनो प्राणी 'मेना हिमवान् और चतुर सखियाँ सोचने लगी। हृदय मे धैर्य धारण कर हिमवान् ने कहा ' हे नाथ ! कहिये, क्या उपाय किया जाय ?

व्याख्या : दम्पति और सखी सयानी भी यही समझती है कि देवऋषि का कथन अन्यथा नही हो सकता। पर उन्हे शोक है क्योकि उनके समझने मे उक्त विशेषणविशिष्ट वर के मिलने से उमा का जीवन ही नष्ट हो जायगा। शोक से धैर्य छूट गया है। कुछ कहते नही बनता। धैर्य धारणकर हिमवान् बोले अब आप ही उपाय भी बतलावें जिससे यह कुयोग मिट जाय। हिमवान् के धैर्य की बडी प्रशसा है। धैर्येण हिमावानिव।

दो कह मुनीस हिमवत सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनिहार ॥६८॥

अर्थ मुनीश ने कहा . हे हिमवान्! सुनो जो ब्रह्मदेव ने ललाट मे लिख दिया है। उसे देव दनुज, नर, नाग, मुनि कोई मिटाने वाला नही है।

व्याख्या भाव यह कि ललाट का लेख और हाथ की रेखा एक ही बात है। ललाट का लेख छिपा रहता है पढा नही जाता। अत हस्तरेखा से ललाट के लेख का पता चलता है। त्वचा के हटने पर ललाट का लिखा पढा जा सकता है। यथा ' जरत विलोकेउँ जबहि कपाला। विधि के लिखे अक निज भाला। नर के कर आपन वध बाँची। हसेउँ जानि विधि गिरा असाँची। देव, दनुज, नर, नाग, मुनि तो विधि की सृष्टि मे है उनका सामर्थ्य नही कि स्रष्टा के लेख को मिटा सके। प्रारब्ध कर्म का उल्लेख ललाट पटल मे कर दिया जाता है जिस भाँति कैदियो के गले की तख्ती मे उनके अपराधादि का उल्लेख रहता है।

तदपि एक मै कहेउँ उपाई। होइ करइ जौ दैउ सहाई॥
जस वरु मै बरनेउं तुम्ह पाही। मिलहि उमहि तस ससय नाही ॥१॥

अर्थ फिर भी मै एक उपाय कहता हूँ। यदि प्रारब्ध साथ दे तो हो सकता है। जैसा वर मैने तुमसे वर्णन किया है वैसा ही उमा को मिलेगा इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या यहाँ पर प्रारब्ध और पुरुषार्थ के बलाबल का बडा ही सुन्दर विचार किया गया है। जैसा प्रारब्ध है वैसा होकर रहेगा। इसमे सन्देह को स्थान नही है। फिर भी पुरुषार्थ को एक बारगी कोई स्थान न हो यह बात नही है। प्रारब्ध को हस्त रेखा ज्योतिष आदि शास्त्रो से निश्चय करके ऐसा उपाय पुरुषार्थ करें जो प्रारब्ध के अनुकूल हो। प्रारब्ध उसका साथ दे सके। प्रारब्ध के प्रतिकूल पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। पुरुषार्थ ऐसा होना चाहिए कि प्रारब्ध की घटना ज्यों की त्यो घटने दे पर सुख दु ख के तारतम्य मे भेद पड जाय। अत एक उपाय नारदजी बतलाते हैं पर उसका सिद्ध होना प्रारब्ध के साथ देने पर निर्भर करता है। अत नारदजी कहते है कि वर तो उमा को वैसा ही मिलेगा। यह प्रारब्ध है मिट नही सकता और वैसा वर मिलने से उमा के दु ख का पारावार नही। अब पुरुषार्थ यह

करना है कि ऐसा वर खोजा जाय जिसमे ये सब बातें हो फिर भी उमा को दु ख न होकर परम सुखकारी हो।

जे जे बर के दोष बखाने। सब सिव पहिं मैं अनुमाने ॥
जौ बिबाहु संकर सन होई। दोषौ गुन सम कह सबु कोई ॥२॥

अर्थ मैंने वर के जो जो दोष कहे हैं मैं अनुमान करता हूँ कि वे सब शिवजी मे हैं। यदि शिवजी से विवाह हो तो उमा मे जो दोष कहे जाते हैं उन्हे सब कोई गुण के समान कहेंगे।

व्याख्या सामान्य जीव वर के लिए जो दश दोष मैंने बतलाये हैं उन दशो का शिवजी मे होना मैं अनुमान करता हूँ। शिवजी मे दोष कहाँ ? वे भी गुण ही हैं लौकिक दृष्टि से दोष से दिखाई पड़ते हैं। इसलिए वे दोष शिवजी मे हैं ऐसा न कह कर सिवपँह मैं अनुमाने कह रहे हैं। शिवजी अगुण, अमान, मातु पितु हीन, संसयछीन, योगी, जटिल, अकाममन, दिगम्बर और अमंगल वेष हैं। उनसे यदि उमा का विवाह हो तो वर के दोष गुण हो जायेंगे। इन दशो विशेषणो के भाव ही पलट जायँगे और संसार उन्हे गुण कहेगा।

जौ अहि सेज सयन हरि करही। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरही ॥
भानु कृसानु सर्व रस खाही। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाही ॥३॥

अर्थ यदि विष्णु सर्प की शैया पर शयन करते हैं तो भी पण्डित लोग उनमें दोष नही लगाते। सूर्य और अग्नि सभी रस का भक्षण करते हैं। उन्हे कोई बुरा नही कहता।

व्याख्या दोष के गुण हो जाने के चार उदाहरण देते हैं। सँपेरा पेटारी म साँप रखता है। उसे सब बुरा कहते हैं। नारायण सर्प पर ही सोते हैं। नारायण के सोने से वह भी गुण हो गया। लोग स्तुति करते हैं शान्ताकार भुजगशयनम्। यह तो परोक्ष का उदाहरण है। अब अपरोक्ष की बात सुनिये। सूर्य और अग्नि कौन-सा रस नही खाते सो उन्हे मन्द कहने की बात दूर गई स्तुति होती है भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नम । ते नम उक्ति विधेम। इत्यादि।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई ॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥४॥

अर्थ पवित्र और अपवित्र सब प्रकार का जल बहता है पर कोई गगा को अपवित्र नही कहता। समर्थ को दोष नही होता १ गोसाईं हरि २ सूर्य ३ अग्नि और ४ गङ्गाजी की भाँति।

व्याख्या गङ्गाजी मे यमुना और सरस्वती का जल भी बहता है और कर्मनासा का भी जल बहता है पर अपुनीत कहना तो दूर रहा। वही अशुभ जल गङ्गा म मिलकर पुनीत हो जाता है। यथा कर्मनास जल सुरसरि परई। तेहि को कहौ सीस नहिं धरई।

जहाँ दोप विकार उत्पन्न कर सकता है वही उसकी निन्दा है। जहाँ दोप अपनी क्रिया नही कर सकता वहाँ वह निन्दित भी नही है। समर्थ मे दोप विकार उत्पन्न कर नही सकता। अतः वहाँ उसकी दोप मे गणना भी नही होती।

गोसाईं अर्थात् विष्णु समर्थ है। सर्पशैया से उनका क्या विगडा ? सर्वभक्षक होने पर भी सूर्य और अग्नि के भास्वरतेज मे क्या विकार हुआ ? कर्मनाशा का जल पडने से गङ्गा मे क्या अपवित्रता आई।

दो. जौं अस हिसिखा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहिं भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान ॥६९॥

अर्थ · जो जड मनुष्य ज्ञान के अभिमान से इनकी वरावरी · दाँज करते हैं वे कल्प भर के लिए नरक मे पडते हैं : क्या जीव ईश्वर के समान है ?

व्याख्या मायावस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी। परवस जीव स्वबस भगवता। जीव अनेक एक श्रीकता। ईश्वर के वश मे माया है और माया के वश मे जीव है। ईश्वर वेजोड है और अभिमानी जीव अनेक हैं। अत जीव को विवेक ज्ञान के अभिमान से ईश्वर की वरावरी · दाँज नही करनी चाहिए। जो ऐसा करता है वह जड़ है। अपना सामर्थ्य नही देखता। सम्पूर्ण विद्या स्नात होकर एक तृण की रचना नही कर सकता। उसकी जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले ईश्वर से कौन समता है ? ईश्वर की समता की इच्छा होती है तो यह उसके वडे भारी अकल्याण का कारण है। जगत् मे जो दुर्दशा उसकी होती है सो तो होगी ही। मरने पर उसे पूरे कल्प भर नरक भोगना पडेगा। जो ज्ञानाभिमानी मूढ ईश्वर की वरावरी करके हलाहल विपपान करेगा वह अवश्य मरेगा। और आत्मघाती होकर घोरतर नरक मे जायगा। अत ईश्वर के लिए वह दोप नही है। जीव के लिए वह महादोप है।

सुरसरि जल कृत वारुनि जाना। कबहुँ न सत करहिं तेहि पाना ॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसे। ईस अनी सहि अंतरु तैसे ॥१॥

अर्थ मदिरा को गङ्गा जल से वनाई हुई जानकर भी सन्त जन कभी पान नही करते। फिर वही गङ्गा म मिलकर जैसे पवित्र हो जाती है। वैसा ही भेद ईश्वर और अनीश्वर मे है।

व्याख्या गङ्गा को मद्य मे परिणत करने का सामर्थ्य किसी को नही है। इसी भाँति ईश्वर दोषी हो नही सकता। थोडा सा गङ्गा जल लेकर यदि मद्य वनाया जाय तो वह मद्य है गङ्गा जल नही है। कोई हठी भले ही कहे कि गङ्गा जल सदा गङ्गा जल ही रहेगा पर कोई सन्त उसे ग्रहण नही करेगा। इसी भाँति जीव ईश्वर अश होने पर भी ईश्वर से पृथक् होने पर अनीश्वर हो जाता है। मायावश होकर दोपयुक्त हो जाता है। कोई विवेकाभिमानी भले ही कहे कि वह ईश्वर से व्यतिरिक्त और कुछ नही है। दोप से उसका ससर्ग हो नही सकता पर कोई सन्त इसे मानने को तैयार नही हो सकता। वही मद्य यदि गङ्गा मे छोड दिया जाय तो वह गङ्गा

को दूषित नही कर सकेगा। गङ्गा में मिलकर स्वयं गङ्गा हो जायगा। वही जीव यदि मुक्त हो जाय या ईश्वर के शरण में चला जाय तो ईश्वर में लय होकर तारण तरण हो जाता है। भाव यह कि अंश में अल्पता के कारण दोष का प्रभाव पड जाता है। अंशी में महत्ता के कारण दोष का कोई प्रभाव नही पडता।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहु सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥२॥

अर्थ : शिवजी स्वभाव से ही समर्थ और भगवान् हैं। इसलिए इस विवाह में सब भाँति से कल्याण है। महादेवजी की आराधना बडी कठिन तो है पर कष्ट उठाने पर प्रसन्न भी शीघ्र ही होते हैं।

व्याख्या : औरों मे ऐश्वर्य और सामर्थ्य उपार्जित है। शिवजी में स्वभाव से ही है। अत: उनमें उपर्युक्त दोष भी गुण हैं। अकल्याण का भय न करो। इस विवाह मे सभी विधियो से कल्याण ही कल्याण है। विवाह के लिए वर की स्वीकृति आवश्यक है और महेश दुराराध्य हैं पर क्लेश करने पर अवढर दानी भी हैं। शीघ्र प्रसन्न भी होते हैं। इसलिए उपाय वतलाते हैं।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥१॥

अर्थ : यदि तुम्हारी बेटी तप करे तो शिवजी होनहार को भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार मे अनेक वर हैं पर इसे शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नही है।

व्याख्या : प्रारब्ध और नियति भी महेश विमुख को होती है। नियति ईश्वर की शक्ति है। उसका रूप सवल्प है। ईश्वर सत्य संकल्प है पर नियति का स्वभाव है कि ईश्वरपरायण के सम्मुख कुण्ठिता हो जाती है। वह महेश अपनी नियति को भी हटाकर भक्त से साधन का सम्पादन कराके उसे फल से युक्त करता है। यही उसका बड़ा भारी स्वातन्त्र्य है।

अति सुकुमारि न तन जप जोगू। अत्यन्त सुकुमारी होने पर भी यदि तुम्हारी बेटी तप करे तो कार्य सिद्धि हो सकती है। त्रिपुरारि का सामर्थ्य कहते हैं कि वे भावी : विधि के अङ्क को जिसे देव-दनुज मुनि कोई मिटा नही सकता : भी मिटा सकते हैं। यथा : जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नही निसानी। तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी : यह इसलिए कहा कि जिसमें यह शङ्का न उठे कि जब त्रिपुरारि मे दोष भी गुण ही जाते हैं तब दोषयुक्त वर से विवाह होनेवाली भावी कैसे टलेगी ?

उपर्युक्त दोषवाले वर भी बहुत हैं पर इसके लिए शङ्कर ही हैं। क्योंकि इसमें ऐसे-ऐसे चमत्कृत गुण हैं कि दूसरा वर इसे मिल नही सकता।

बरदायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥४॥

अर्थ : शिवजी वरदायक हैं। प्रणत की आर्ति को हरण करनेवाले कृपा के समुद्र है। सेवक के मन को प्रसन्न करनेवाले है। बिना शिव की आराधना किये करोड़ों योग और जप के साधन से वाञ्छित फल नही मिलता।

व्याख्या : कारण कह रहे है। वरदायक, प्रणतार्तिभञ्जन, सेवक मनोरञ्जन तो शिव ही हैं और इस कन्या को रेखा पडी है : होइहि पूज्य सकल जगमाही : तो यदि इसका विवाह शिवजी से नही होता तो यह फल घटेगा कैसे ?

कन्या को रेखा पडी है कि ' एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही। और बिना शिव की आराधना वाञ्छित की प्राप्ति नही होती तो यह सामञ्जस्य तभी बैठेगा जब इसका विवाह शिव से हो।

दो. अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ॥७०॥

अर्थ : ऐसा कहकर और हरि का स्मरण करके नारदजी ने पार्वतीजी को आशीर्वाद दिया कि हे गिरीश ! संशय छोडो। अब यह कल्याण होगा अर्थात् यह विवाह होगा अब सन्देह छोड दो।

व्याख्या : अपने इष्ट का स्मरण किया। यथा : मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ : दूसरा भाव हरि के स्मरण का यह कि आप पूर्व जन्म मे इसे वर दे चुके हैं : जन्म-जन्म शिवपद अनुराग के लिए मो इसे शिवजी की दासी बनाइये। अब से भाव यह कि कल्याण के लिए प्रयत्न आरम्भ हो जायगा। और सिद्धि भी होगी क्योकि प्रारब्ध अनुकूल है। शिवपद अनुराग का पूर्वजन्मार्जित वर है।

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥
पतिहिं एकान्त पाइ कह मैना। नाथ न मै समझे मुनि बैना ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर मुनि तो ब्रह्मलोक चले गये। अब जो कुछ आगे हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त मे पाकर मेना ने कहा : नाथ ! मैने मुनि की बातें नही समझी।

व्याख्या : कौतुक करके मुनिजी तो जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। नारद समाचार सब पाये से उपक्रम करके 'कहि अस ब्रह्म भवन मुनि गयऊ से नारद प्रसङ्ग का उपसहार करते है। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि इस कौतुक से क्या क्या हुआ इसे सुनो।

एकान्त मे पति को पाकर जहाँ नि सङ्कोच होकर कहा-सुना जा सके मेना ने कहा। ब्याह करना तो अपने हाथ ठहरा। जोगी, जटिल, अकाममन, नग्न अमङ्गलवेष से यदि हम कन्या का ब्याह न करेंगे तो आपसे आप कैसे हो जायगा ? इसलिए कहती हैं कि मुनि की बात मेरी समझ मे नही आती।

जौं घरु बरु कुलु होइ अनूपा। करिअ बिबाहु सुता अनुरूपा ॥
नत कन्या बरु रहउ कुआँरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी ॥२॥

अर्थ यदि घर, वर कुल अनुपम हो तो कन्या के अनुरूप विवाह करना चाहिए। नही तो चाहे कन्या बिना व्याही रह जाय यह स्वीकार है हे कान्त! उमा मुझे प्राण समान प्यारी है।

व्याख्या 'घर' से ऐश्वर्य, वर से गुण सम्पत्ति और कुल से मातृमान् पितृमान् होना अभिप्रेत है। यही तीनो बात कन्यापक्ष की ओर से देखी जाती हैं। सो मेरी कन्या के लिए ऐसा घर, वर कुल ठीक करना चाहिए जिसका जोड कही न हो। क्योकि मेरी कन्या अनूप है। उसके अनुरूप व्याह होना चाहिए। धर्म शास्त्र की आज्ञा है कि चाहे बेटी कुँआरी रह जाय पर निर्गुणी वर को नही व्याहना चाहिए। निर्गुणी वर से उसे पदे पदे कष्ट होगा। आप सुख देनेवाले हो। इसे समझ लो कि उमा मुझे प्राणो से प्यारी है। उसे दु खी मैं नही देख सकती। कन्या मुझे भार नही है। परमेश्वर ने सौ पुत्र दिये हैं। यही एक कन्या है इसलिए प्राणप्यारी है। जैसे सौ वैसे एक सौ एक मैं समझूँगी कि यह भी पुत्र ही है।

जौ न मिलिहि वरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड सहज कहिहि सब लोगू॥
सोइ बिचार पति करेहु बिवाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥३॥

अर्थ यदि पार्वती के योग्य वर न मिलेगा तो लोग कहेगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड हैं। हे नाथ! विचार करके वही विवाह कीजिये। जिससे फिर पीछे कलेजे मे जलन न हो।

व्याख्या अपयश भी बडा भारी होगा सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। लोग कहेगे कि अन्ततोगत्वा पत्थर ही ठहरे। ऐसी कन्या को जोगी जटिल अमङ्गलवप से व्याह दिया। नारद जी के वचन पर विचार करके अभी से ही 'जोगी जटिल अकाममन' वर ढूँढने चले, इससे यावज्जीवन कलेजा जलेगा। पछतावा होगा कि मैंने क्या किया?

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माही। नारद बचनु अन्यथा नाही॥४॥

अर्थ ऐसा कहकर चरणो मे सिर रखकर गिर पडी। तब पर्वतराज ने प्रेम से कहा चाहे चन्द्रमा मे अग्नि प्रकट हो। पर नारद का कथन अन्यथा हो नही सकता।

व्याख्या मेना जानती थी कि पति का नारद के वचन पर कितना विश्वास है। ये शीघ्र नारदजी का वचन न छोडेंगे और 'जोगी जटिल अकाममन' वालो म कौन अच्छा है इस प्रयत्न म लगेंगे। वर खोजने का जो प्रशस्त मार्ग घर, वर कुल की उत्तमता का अन्वेषण है वह बिल्कुल ही छूट जायगा। इसलिए चरणो पर गिरकर पति की कार्य पद्धति का बदलना चाहती हैं। हिमवान् ने कहा कि नारद की बात टल नही सकती। चाहे चाँद से आग निकल पडे। यह असम्भव भी सम्भव हो पर नारदजी क वचन का अन्यथा होना असम्भव है। सोइ बिचारि पति करेहु बिवाहू का उत्तर है। सुनकर मैना सोच म पड गई। तब कहते हैं

दो प्रिया सोचु परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान ।
पारवतिहि निरमयउ जेहि, सोइ करिहि कल्यान ॥७१॥

अर्थ प्रिये ! तुम सब चिन्ता छोड दो। श्रीभगवान् का स्मरण करो जिन्होने पार्वती को रचा है वे ही कल्याण करेंगे।

व्याख्या चिन्ता कार्यविनाशिनी। सोच करने से सिद्धि नही होती चाहे कोई लाख बार सोचे। कल्याण का मार्ग श्रीभगवान् के स्मरण से खुलता है। जिसने पार्वती को रचा है वास्तविक माता पिता वही है। वही कल्याण करेगा। जीव की गति सदा ईश्वर के अधीन है। पर्वतराज को नारदजी पर अटल विश्वास है। उन्होने कह दिया है होइहि यह कल्याण अब, ससय तजहु गिरीस। अत गिरीश ने सशय छोड दिया है। गुरु के उपदेश पर अटल हैं।

अब जौ तुमहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपाय न मिटहि कलेसू॥१॥

अर्थ अब जो तुम्हे अपनी बेटी पर स्नेह हो तो उसे जाकर उपदेश दो कि ऐसा तप करे जिससे महेश्वर मिलें। दूसरे उपाय से कष्ट दूर न होगा।

व्याख्या तुमने कहा है कि उमा मम प्रान पियारी। तो जो प्रिय हो उसका सच्चा हित देखना चाहिए। हित के साधन मे कष्ट होता ही है। उस कष्ट को उठाने के लिए अपने प्रिय को उपदेश देना ही सच्चा हित चाहना है। अत यदि सच्चा प्रेम हो तो सोच छोडो। तबीयत कडी करके सिखावन दो कि महेश्वर की प्राप्ति के लिए तप करे। पति के लिए तप करने को तुम कह सकती हो। मैं नही कह सकता। जो तुमने कहा कि करिय विवाह सुता अनरूपा। सो हो नही सकता। नारदजी ने जो उपाय बतला दिया वही यथार्थ उपाय है। दूसरे उपाय से कष्ट मिटेगा नही।

नारद बचन सगर्भ सहेतू। सुदर सब गुननिधि बृषकेतू॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असका। सबहि भाँति सकरु अकलका॥२॥

अर्थ नारदजी का वचन साभिप्राय है। युक्तियुक्त है। वृषकेतु सुन्दर और गुणो के निधान है। ऐसा विचार करके तुम आशङ्का न करो। शिवजी सभी भाँति से निष्कलङ्क हैं।

व्याख्या नारदजी ने जो कहा कि एहि कहँ सिव तजि दूसर नाही इसका अभिप्राय है। दोषयुक्त वर मिलने से यह सम्पूर्ण जगत् म पूज्य कैसे होगी ? इसकी सेवा से वाञ्छित फल कैसे मिलेगा ? पर यह भी ब्रह्मा का लेख है। यह भी टल नही सकता। शिवजी ही एक ऐसे हैं जिनम उपर्युक्त दोष हैं वे उनकी महिमा को और भी बढाते हैं। अत इसका विवाह शिवजी से ही होगा। उमा को तप के लिए उनका उपदेश करना भी युक्तियुक्त है। यद्यपि यह विवाह बिना यत्न के भी होकर

रहेगा। पर बीच की विघ्नबाधाओं को दूर करने के लिए तप करना अत्यन्त उत्तम होगा।

कन्या वरयते रूप माता वित्त पिता श्रुतम्। बान्धवा कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जना। कन्या रूप का वरण करती है इसलिए कहते हैं कि वृषकेतु सुन्दर हैं। पिता श्रुत का वरण करता है इसलिए कहते हैं गुणनिधि वृषकेतू। माता वित्त का वरण करती है इसलिए कहते हैं कि शङ्कर हैं। दूसरो का कल्याण किया करते हैं, उन्हे वित्त का क्या घाटा है। यथा सिव की दई सम्पदा देखत श्रीसारदा सिहानी। बान्धव कुल की इच्छा करते हैं। इसलिए कहते हैं सबहि भाँति सकर अकलका। इस भाँति घर वर कुल का अनूपत्व कहा।

सुनि पति वचन हरखि मन माही। गई तुरत उठि गिरिजा पाही॥
उमहि विलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी॥३॥

अर्थ पति का वचन सुनकर मन मे हर्ष हुआ। तुरन्त उठकर गिरिजा के पास गई। उमा को देखकर आँखो मे आँसू भरे हुए प्रेम सहित गोद म बिठा लिया।

व्याख्या पतिव्रता हैं। पति के वचन पर बडा विश्वास है। उनके कहत ही आशङ्का जाती रही हर्षित हो उठी। वहाँ से बडी मुस्तैदी से चली पर उमा को देखते ही वात्सल्य उमड आया। गोद मे बिठा लिया। कठोर भूमि पर उनका बैठना सह्य नही। यथा पलग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा।

बारहि बार लेति उर लाई। गदगद कठ न कछु कहि जाई॥
जगत मातु सर्वज्ञ भवानी। मातु सुखद बोली मृदु बानी॥४॥

अर्थ बार बार हृदय से लगा लेती हैं। गला भर आने से कुछ कहते नही बनता। भवानी तो जगत् की माता है। सर्वज्ञ है। माता को सुख देनेवाली कोमल वाणी बोली।

व्याख्या विरह का ध्यान करके बार बार हृदय से लगाती है। मन अलग करने को नही चाहता। तप के लिए कहना चाहती है पर गला भर आता है। कैसे कहे? भवानी जगत् की माता हैं। उनका वात्सल्य मेना पर भी है। सर्वज्ञ है। मेना का हृदय जानती हैं और स्वय भवानी हैं। यथा जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौ सभु न त रहौं कुमारी। सोचा कि माँ को कहने मे कष्ट हो रहा है। इस समय जो मैं अपना सपना सुना दूँ तो माता को विश्वास भी बढ जाय और जो उसे कहना है सो मै स्वय करने के लिए सन्नद्ध हो जाऊँ।

दो सुनहि मातु मै दीख अस, सपन सुनावौ तोहि।
सुदर गौर सुविप्रबर, अस उपदेसेउ मोहि॥७२॥

अर्थ माँ मै तुमसे कहती हूँ। सुनो! मैने ऐसा स्वप्न देखा है कि एक सुन्दर गौर वर्ण के श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया है।

व्याख्या स्वप्नाध्यायी के अनुसार सुन्दर और सुविप्रवर का कहा हुआ सत्य होता है। इसे स्वप्न को किसी से नही कहा। तुमसे कहती हूँ क्योकि उत्तम पुरुष स ही स्वप्न सुनाने का विधान है। इससे यह मालूम होता है कि प्रात काल उठकर मना पार्वतीजी के पास गई थी। हिमालय से बातचीत रात को हुई थी। यथा पतिहि एकात पाय कह मेना।

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोप नसावा॥१॥

अर्थ हे पार्वती! नारदजी ने जो कहा है उसे सत्य समझकर जाकर तप करो। तेरे माता पिता को भी यही पसन्द है। तप सुख देनेवाला और दुख का मिटानेवाला है।

व्याख्या जाइ से वन जाना कहा। घर म तप नही होता। शैलकुमारी से तप की योग्यता कही। नारद कहा सो सत्य विचारी से हिमवान् की उक्ति नारद वचन सगर्भ सहेतू की पुष्टि हुई। मातु पितहि पुनि यह मत भावा इस उक्ति से सुदरगौर सुविप्रवर की सर्वज्ञता द्योतित हुई। अवगुण का परिहार तप से होगा। तप सुखप्रद है। दु ख-दोपो का नाश करता है। अत तप के लिए भेजने म आगा पीछा न होना चाहिए।

तप बल रचै प्रपचु बिधाता। तप बल बिस्नु सकल जग त्राता॥
तप बल सभु करहि सघारा। तपबल सेपु धरै महि भारा॥२॥

अर्थ तप के बल से ब्रह्मा ससार को रचते है। तपोबल से विष्णु समस्त ससार के रक्षक है। तप के बल स शम्भु सहार करते ह। और तप के बल से शेपजी पृथ्वी का भार वहन करते है।

व्याख्या विश्व की सृष्टि, स्थिति और सहार भौतिक बल से नही हो सकता। यह सब तपोबल से ही होता है। ब्रह्मपद विष्णुपद और रुद्रपद की प्राप्ति भी तपोबल से होती है। पृथ्वी का भारवहन भौतिक बल स असाध्य है। तपोबल से ही पृथ्वी शप द्वारा धृत है।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जिय जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥३॥

अर्थ हे भवानी! सारी सृष्टि तप के ही सहारे है ऐसा जी से जानकर तप करो। यह बात सुनकर माता को बडा आश्चर्य हुआ। हिमवान् को बुलाकर सपना सुनाया।

व्याख्या जब सब सृष्टि ही तप के आधार पर है तब भवानी पद की प्राप्ति भी बिना तप कैसे सम्भव है इसलिए तप करो। करहि जाइ तप सैलकुमारी से उपक्रम करके करहि जाइ तप अस जिय जानी से उपसहार दिखलाया।

जो बात हिमवान् स एकान्त म हुई उसकी सूचना स्वप्न दिखानेवाल देव ने

दी। यथा · मातु पितहिं पुनि यह मत भावा। इसलिए विस्मित हुईं। बाहर से स्वप्न सुनने के लिए हिमवान् बुलाये गये।

मातु पितहिं बहु विधि समुझाई। चली उमा तप हित हरखाई ॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए विकल मुख आव न बाता ॥४॥

अर्थ माता पिता को बहुत भाँति से समझाकर उमा तप के लिए सानन्द चली। प्रिय परिवारवाले माता पिता सब विकल हो गए। मुख से बात न निकली।

व्याख्या माता पिता को समझाना। यथा

मेरे हित नहिं नेकहू, सोच करै तू माय।
मोहिं योग नीको लगै भोग न भूलि सोहाय ॥
सिसुपन ते तापसन मे मेरी प्रीति विशेखि।
जे तप मे बाधा करैं, तिन्है सको नहिं देखि ॥
षड्रिपुयुत प्रासाद ते, वन मे बडो अनन्द।
जहाँ जाइ नर भजत हैं, ब्रह्म सच्चिदानन्द ॥
भयो, होइहै, होत है, तपते हो कल्यान।
तब तप साधन मे कहा मनको करत मलान ॥
शैल छाडि कहुँ जात नहिं सखी हमारे सग।
अति उछाह तप हेतु मोहिं, व्यर्थ करौ जनि भग ॥
तुम्हरे दु ख कीन्हे सबल, तपबल जाइ नसाय।
सो साधन सब सिद्धिप्रद जो पितु मातु सोहाय ॥
जानि बूझि कल्यान मग, तबहू विषम विषाद।
तात कबहुँ नहिं कीजिये यह प्रियप्रेम प्रमाद ॥

उमा ने इस भाँति समझाया। फिर भी वात्सल्य के कारण कुटुम्बीजन तथा माता पिता अत्यन्त विकल हुए। चलने मे हर्ष कार्यसिद्धि द्योतक है।

दो वेदसिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समुझाइ।
पारवती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ ॥७३॥

अर्थ वेदशिरा मुनि ने तब आकर सबको समझाकर कहा। पार्वतीजी की महिमा सुनकर सन्तुष्ट होकर रह गये।

व्याख्या पार्वतीजी को पुत्री भाव से देखते रहे और उसी अज्ञान से दु खी हो रहे थे। परहितैकव्रत मुनि ने उनका यथार्थ माहात्म्य समझाकर सबका अज्ञान दूर किया। मुनिजी ने कहा

क तनया तुम्हारी तुहिनाचल सँवारै विश्व,
धारै औ सँहारै, याकी महिमा कही ना जाय।
पूजि पद कज मजु याके सुर बृंद जग,
करत अनन्द विधि हरि सुरपद पाय ॥

लीला तनु धारिनि सँघारिनि असुर सघ,
सतसुख कारिनी बिहारिनी सुछन्द माय।
करुना अपार गुनगन को न पारावार,
भारभूमि हरनि धरनि प्रकटी है आय॥
तनया तिहारी नही जननी जगत की सो,
कौन काज अगम सुगम नहिं ताको जौन।
योगी मुनि बृन्दन को दुर्लभ दरस जासु,
सकति अनादि सोई प्रकटी तिहारे भौन॥
जाते त्रयलोक की भलाई भूरि होनहार,
अब जगदव विजय आनन्द करैगी तीन।
व्यर्थ ही विषाद तब ताके हित मोहवस,
मन मे विचारो नेक तोसो बड भागी कौन॥

तब सबको ढाढस बँधा। घर रह गये। नही तो साथ चलने को तैयार थे। वेदशिराजी भृगुवशी थे। भृगु के विधाता, विधाता के प्राण और प्राण के पुत्र वेदशिरा थे।

उरधरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागी तप करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥१॥

अर्थ . प्राण पति के चरणो को हृदय मे धारण करके उमा वन मे जाकर तप करने लगी। अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नही था। फिर भी पति के चरणो का स्मरण करके सब भोगो का त्याग किया।

व्याख्या . उपजेउ सिव पद कमल सनेहू पहिले कह आये हैं। अब वन मे जाकर उन्ही चरणो को हृदय मे धारणकर तप करने लगी। प्राणपति कहकर दुष्कर तप की सुकरता दिखलाई। प्राणपति के लिए दुष्कर कुछ भी नही है। इसी से एकाग्रता भी सूचित की। नारदजी ने कहा था कि आसुतोष पुनि किये कलेसू। अत सब भोगो का त्याग किया। प्राणपति के स्मरण मे जो सुख है उसके सामने जितने भोग हैं सब तुच्छ हैं। अत अति सुकुमारी होने पर भी तप के लिए सन्नद्ध हो गई। यथा जननि जनक उपदेस महेसहि सेवहि। अति उदार अनुराग भगति मन भेवहि। पा म।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरो देह तपहि मनु लागा॥
सवत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गँवाए॥२॥

अर्थ चरणो मे नित्य नया प्रेम उत्पन्न होने लगा। देह की सारी सुधि बिसर गई और तप म ही मन लग गया। एक हजार वर्ष तक उन्होने मूल फल खाये और सौ वर्ष साग पात खाकर बिताये।

व्याख्या · प्राणपति के चरणो को हृदय मे धारण करने से उसमे नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा। अब तप म ही मन ने सुख माना। देहाध्यास जाता रहा।

पहिले अन्न खाती थी फिर अन्न छोड दिया। एक सहस्र वर्ष तक फलमूलाहार किया। क्रम से तप की तीव्रता बढती गई। फल मूल भी छोडा। शाक खाने लगी। सौ वर्ष तक शाकाहार चला।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेलपाती[1] महि परै सुखाई। तीनि सहस संवत सोइ खाई॥३॥

अर्थ कुछ दिनो तक जल और वायु भक्षण करके रही। फिर कुछ दिनो तक कठिन उपवास किया। बेल की पत्ती जो सूखकर पृथ्वी पर गिर जाती हैं उसे तीन हजार वर्ष तक खाया।

व्याख्या यद्यपि बारि और वायुभक्षण का समय नही दिया फिर भी पूर्वक्रम से बोध होता है कि दस वर्ष तक बारि और वायु का आहार किया। कोई कोई बारि बतासा का अर्थ जल का बबूला करते है। यथा जैसे बारि को बतासा तैसे तन को तमासा है। इसी भाँति एक वर्ष तक कठिन उपवास किया। कठिन उपवास म बारि बतासा का भी ग्रहण नही है। ग्यारह सौ वर्ष की एक रुद्री हुई। फिर ग्यारह वर्ष की दूसरी रुद्री हुई।

इतने पर भी कार्य सिद्धि नही हुई। अत फिर से नया तप आरम्भ हुआ। तीन हजार वर्ष तक सूखी बेल की पत्तियाँ खाईं।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥४॥

अर्थ फिर सूखे पत्ते भी छोड दिये। तब उमा का नाम अपर्णा हुआ। तप से उमा का शरीर क्षीण देखकर आकाश म गम्भीर ब्रह्म वाणी हुई।

व्याख्या सूखी पत्तियो का खाना भी छोड दिया। समय नही देते। अत पूर्वोक्त रीति से मालूम पडता है कि तीन सौ वर्ष तक सूखी पत्ती भी नही खायी। तब उमा का नाम 'अपर्णा' हुआ। पर्ण कहते हैं पत्ती को। जो पत्ती भी छोड दे उसे अपर्णा कहते हैं। नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे। नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे। अत यह दूसरा तप ३३०० वर्ष का हुआ। अर्थात् ग्यारह ग्यारह सौ वर्ष की तीन रुद्रियाँ हुईं। कुल पाँच हुईं। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। प्राणावशेष रह गया। तब ब्रह्मवाणी हुई। रुद्राणी पद देना है अत इसके देनेवाले ब्रह्म ही है ब्रह्मा नही। यथा विधिहिं विधिता, हरिहिं हरिता, हरहिं हरता जो दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई।

दो भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥७४॥

अर्थ हे गिरिराज की पुत्री। तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब सब दु सह क्लेशो को छोड दे। अब तुझे त्रिपुरारि मिलेंगे।

---

१ पो व ' इस सूत्र से बलपाती का रूप 'बेलपाती हो गया।

व्याख्या ब्रह्मवाणी ने पहिले मनोरथ की प्रशसा की कि तेरा मनोरथ कल्पवृक्ष है। अब उसमे फल लग गया। क्षीण शरीर होने से उसमे फूल लगा था। अब इस वाणी द्वारा फल लगा। परिहरु दुसह कलेस सब कहने से घोर तप करना रोकते हैं। त्रिपुरारि हैं · निश्चय से नही हटते। उन्होने त्याग किया है · ग्रहण कैसे करेंगे? यथा मिलन कठिन मन भा सदेहू। इसपर कहते हैं अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। यही मनोरथ का सफल होना है। ब्रह्मवाणी इतनी ही सूत्र रूप मे हुई।

अस तपु काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी॥
अब उर धरहु ब्रह्म वर बानी। सत्य सदा सतत सुचि जानी॥१॥

अर्थ हे भवानी! अनेक धीर, मुनि और ज्ञानी हुए पर ऐसा तप किसी ने नही किया। अब तुम ब्रह्म की श्रेष्ठ वाणी को सदा सत्य और निरन्तर पवित्र समझकर अपने हृदय मे रखो।

व्याख्या ब्रह्मवाणी पर ब्रह्माजी की टीका हो रही है। कष्ट सहन, मनन और ज्ञान तीनो प्रकार का तप तुमने किया। ऐसा तप धीर, मुनि और ज्ञानी किसी ने नही किया। धैर्य। यथा देखि उमहिं तपखीन सरीरा। मनन। यथा नित नव चरन उपज अनुरागा। ज्ञान। यथा मातु पितहिं बहु विधि समुझाई। यह उमा की स्तुति है। ब्रह्मदेव ने कहा तप के लिए हठ न करो। सन्देह छोडो। ब्रह्मवाणी हो गई अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। सो सदा सत्य है वियोग भी नही होगा। तप छोडने को कहते हैं। इसमे अशुचि की आशङ्का न करो। ब्रह्मवाणी सन्तत शुचि है।

आवैं पिता बोलावन जबहीं। हठ परिहरि घर जाएहु तबहीं॥
मिलहि तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा॥२॥

अर्थ जब तुम्हारे पिता बुलाने आये तब हठ छोडकर घर चली जाना। जब तुमको सप्तर्षि मिलें तब वाणी का प्रमाण जानना कि ब्रह्मगिरा कार्य मे परिणत हो रही है।

व्याख्या पहिले पिता तुम्हे बुलाने आये थे पर तुमने हठपूर्वक जाने से इनकार किया। अब ऐसा न करना। पिता के बुलाने पर घर चली जाना। तुमसे मिलने सप्तऋषि आवेंगे तब समझ लेना कि अब कार्य सिद्धि होना ही चाहती है। पिता के आने तक तप की अवधि है। अभी तो दु सह क्लेश मात्र त्याग के लिए आदेश है।

वागीशा वाणी या सरस्वती को कहते हैं। यथा वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि। वाणी का प्रमाण कार्य मे परिणत होना है। यथा जौ फुर होय तो नाथ निज कीजे वचन प्रमान। अर्थात् सप्तर्षियो के आने पर वाणी कार्य मे परिणत होगी। कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथगौतम। जमदग्निर्भरद्वाज एते सप्तर्षयस्तथा। वा प्र।

सुनत गिरा विधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुदर मै गावा । सुनहु सभु कर चरित सुहावा ॥३॥

अर्थ : आकाश से कही हुई ब्रह्माजी की वाणी सुनते ही उमा के रोम खडे हो गये । वे बहुत प्रसन्न हुई । याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज मुनि से कहते हैं कि मैंने उमा का सुन्दर चरित्र वर्णन किया । अब शम्भु का सुहावना चरित सुनो ।

व्याख्या ब्रह्मदेव की टीका का उपसहार करते हैं । आकाश में प्रत्यक्ष होकर ब्रह्मदेव बोल रहे थे । ब्रह्मदेव की वाणी से हर्ष हुआ । ब्रह्मवाणी मे बात स्पष्ट नही हुई थी । अब हमे क्या करना चाहिए ? त्रिपुरारि कब मिलेंगे ? इत्यादि बात ब्रह्माजी की वाणी से स्पष्ट हुई । अतएव हर्ष हुआ । इति उमाचरितम् । अथ शम्भुचरितम् । सती शरीर से जडता, दक्ष की महाजडता, रुद्र के कोप से त्रैलोक्य को कम्प, हिमालय मे सती का जन्म । ये सब जाडे के लक्षण हैं । क्योकि जडता को ही जाडा माना गया है । यथा जडता जाड विषम उर लागा । अत. यह हिम[1] ऋतु का प्रथम मास अगहन है । रोमाञ्च से समास हो रहा है । यथा पुलक गात गिरिजा हरखानी । शम्भु चरित्र पौषमास है । सो आरम्भ हो रहा है । दोनो मिलकर हिमऋतु हुआ । यथा हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू । अट्ठाइस दोहा उमा[2] चरित और अट्ठाइस दोहा शम्भुचरित है ।

: ख : शम्भुचरित

जब ते सती जाइ तनु त्यागा । तब ते सिव मन भयउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तह सुनहि राम गुन ग्रामा ॥४॥

अर्थ : जब से सती ने जाकर शरीर छोडा तब से शिवजी के मन मे विराग हो गया । सदा रामनाम का जप करते हैं । जहाँ तहाँ रामजी का गुण ग्राम सुनते है ।

व्याख्या सदा विरागरूप होने पर भी गृहस्थ को लोक सग्रह के लिए स्त्री रक्षा कर्त्तव्यरूप से प्राप्त रहती ही है । घर पर रहना ही पडता है । यदि बाहर जाय तो स्त्री को साथ रखना पडता है । रागाभास को स्वीकार करना पडता है । अब वह भी नही रह गया । अत कहते हैं तब ते सिव मन भयउ बिरागा । पहिले सती से बातचीत करनी ही पडती थी । उतनी देर तक जप बन्द हो ही जाता था । अब सदा जप होता है । यथा जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुनग्रामा । तथा तब कछु काल मराल तन धरि तहँ कीन्ह निवास । सादर सुनि रघुपति चरित पुनि आयो कैलास ।

---

१ यथा हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू । श्रीगोस्वामी जी ने उमा महेश्वर के विवाह की उपमा हिमऋतु से दी है ।

२ श्रीरामचरितमानस मे भगवान् के चरित के साथ साथ पाँच महाभागवत चरित हैं । १ उमा चरित २. शम्भु चरित ३ भरत चरित ४ हनुमान चरित और ५ भुशुण्डि चरित ।

दो. चिदानंद सुखधाम सिव, विगत मोह मद काम।
विचरहिं महि धरि हृदयँ हरि, सकल लोक अभिराम ॥७५॥

अर्थ : चिदानन्द, सुख के धाम, मोह मद और काम से रहित, सारे लोक को आनन्द देनेवाले शिवजी हरि को हृदय में धरकर पृथ्वी पर विचरने लगे।

व्याख्या : चिदानन्द से स्वरूप कहा। अखिल लोक विश्राम दायक कहकर सर्वाश्रय कहा। विगत मोह मद कहकर ईश्वर कहा। ऐसे प्रभु महादेव जी पृथ्वी पर विचरण करते है। यथा : सुंदर गिरि वन सरित तडागा। कौतुक देखत फिरौं विरागा। ससार से विराग है पर हरि से राग है। उन्ही को हृदय मे धारण करके पृथ्वी पर विचर रहे है। सकल लोक अभिराम : पद हरि का विशेषण भी हो सकता है।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत विरह दुख दुखित सुजाना ॥१॥

अर्थ : कही मुनियो को ज्ञान का उपदेश देते और कही रामजी के गुणो का वर्णन करते थे। यद्यपि अकाम है फिर भी सुजान है। भगवान् है, भक्त के विरह के दुःख से दुःखी हुए है।

व्याख्या : शिवजी ज्ञान और भक्ति दोनो के आचार्य है। निर्गुण और सगुण दोनो मत के उपदेष्टा हैं। जहाँ जैसा पात्र देखते है वहाँ वैसा उपदेश करते हैं। विचरहिं महि से शारीरक तप कहा। धरि हृदय हरि से मानस तप कहा। अब वाङ्मय तप कहते है कि योग्य पात्रो को यथोचित उपदेश घूम घूमकर दे रहे हैं। फिर भी दु खी हैं स्त्री के विरह से नही क्योकि अकाम है। कामी स्त्री के विरह से दु खी होता है। भगवान् हैं अतः भक्त के विरह से दुःखी हैं। भगवान् का बड़ा प्यार भक्त पर होता है। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू। तदपि करहिं सम विषम विहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सुजान हैं, जन के जी की जाननेवाले हैं। अत· दु खी हैं।

एहि विधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती ॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अविचल हृदयँ भगति कै रेखा ॥२॥

अर्थ : इस प्रकार बहुत समय बीत गया। रामजी के चरणो मे नित्य नई प्रीति होने लगी। जब शिवजी के नेम और प्रेम को देखा कि भक्ति की रेखा सस्कार हृदय मे अविचल है।

व्याख्या · इस विधि से कई मन्वन्तर बीत गये। प्रीति तो वही है, जिसमे पुरानापन आने न पावे। रामजी ने शङ्कर का नेम देखा। यथा : जपहिं सदा रघुनायक नामा। इत्यादि। प्रेम देखा। यथा विचरहि महि धरि हृदय हरि। हृदय मे ऐसी भक्ति की रेखा · छाप देखी जो भक्त विरह दु ख दु खी होने पर भी

चलायमान नही होते बल्कि नित्य नई होती जाती है। इधर बहुत काल से शिवजी का व्रत चल रहा है। उधर ४४११ वर्ष से उमा का तप चल रहा है।

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला ॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा ॥३॥

अर्थ : तब कृतज्ञ कृपालु, रूपशील के भण्डार और महातेजस्वी रामजी प्रकट हुए। बहुत प्रकार से शिवजी की बड़ाई की कि तुम्हारे बिना ऐसा व्रत कौन निवाह सकता है।

व्याख्या : अविचल भक्ति देखकर प्रकटे : इसलिए कृतज्ञ कहा। भक्त विरह दु:ख दु:खी देखकर प्रकटे : इसलिए कृपाल कहा। जैसा रूप हृदय में धारण करके विचर रहे थे वही रूप अक्षिगोचर हुआ। शङ्कर भगवान् रूपशीलनिधि महातेजस्वी रूप को हृदय में धारण करते हैं। अतः यहाँ वैसा ही वर्णन है।

इधर : नेम प्रेम संकर कर देखा : तब प्रकट हुए। उधर : देखि उमहि तप खीन सरीरा : तब : ब्रह्म गिरा भइ गगन गभीरा। इधर व्रत की प्रशंसा हो रही है कि : तुम बिनु अस व्रत को निर्वाहा : उधर उमा के तप की प्रशंसा हो रही है : अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी। देवताओं ने शिवजी के प्रण की प्रशंसा की। रामजी उस प्रतिज्ञा के निर्वाह की प्रशसा करते हैं।

बहुविधि राम सिवहि समुझावा। पारवती कर जन्मु सुनावा ॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी ॥४॥

अर्थ : रामजी ने बहुत प्रकार मे शिवजी को समझाया और पार्वती का जन्म सुनाया। कृपानिधि ने पार्वती की अति पवित्र करनी का विस्तार के सहित वर्णन किया।

व्याख्या : रामजी ने समझाया दूसरा जगद्गुरु को कौन समझाये। यथा :

क. जगत कुटुम्ब के कुटुम्बी आप ही हैं एक,
आपके सहारे सारे जीव वसुधा के हैं।
माय बिनु हाय को सुनैया कौन या जग मे,
ताके बिनु तातहू के पौरुप विथा के हैं ॥
पाय माय विश्व हरखाय मो उपाय कीजे,
तापित हृदय आज सकल प्रजा के हैं।
आप मन मोरें, तौ निहोरें केहि जाय,
माय बाप के भरोसे शिशु जीवत जहाँ के हैं ॥१॥

इत्यादि। तब हिमालय के घर पार्वती का जन्म कहा। कृपानिधि हैं : संक्षेप से कहने में सन्तोष नही। अत विस्तार के सहित गिरिजा की अति पुनीत करनी का वर्णन किया। सती परम पुनीत थी पर गिरिजा अति पुनीत हैं। इस भाँति दिव्य जन्म और दिव्य कर्म कहा।

दो अब विनती मम सुनहु सिव, जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिवाहहु सैलजहि, यह मोहि माँगे देहु ॥७६॥

अर्थ हे शिव ! अब मेरी विनती सुनो। यदि तुम्हारा मुझ पर स्नेह हो तो मुझे यही माँगन दो कि जाकर पार्वती के साथ व्याह कर लो।

व्याख्या भगवान् आविर्भूत होकर वर देते है पर यहाँ स्वय माँग रहे हैं। कहते हैं कि सबकी विनती तुम सुनते हो। मेरी न सुनने का कोई कारण नही। अथवा मैं विनती सुनता हूँ करता नही। सो आज तुमसे करता हूँ इसलिए सुनो। यदि मुझ पर स्नेह हो तो स्वीकार करो। न हो तो मत स्वीकार करो। मै मागता हूँ। मुझे दो। भाव यह है कि भगवान् उमा से वाक्यवद्ध हो चुके है कि अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। अत माँगते है जाइ विवाहहु सैलजहिं।

कह सिव जदपि उचित अस नाही। नाथ बचन पुनि मेटि न जाही॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा ॥१॥

अर्थ शिवजी ने कहा यद्यपि ऐसा उचित नही है तो भी नाथ की बात टाली नही जा सकती। आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मानूँ हे नाथ ! यही मेरा परम धर्म है।

व्याख्या यद्यपि स्वय रामजी ने समझाया फिर भी शिवजी कहते है कि यह उचित नही है। यदि आपकी ओर से सम्मति ही दी गई होती तो मैं अस्वीकार करता। क्याकि वचन अन्यथा होइ न मोरा। परन्तु यहाँ सम्मति के साथ साथ आज्ञा भी दी जा रही है। उसे हटाने का मुझ सामर्थ्य नही। अपने प्रण पर स्थिर रहना धर्म है पर स्वामी की आज्ञा मानना परम धर्म है। धर्म के लिए परम धर्म नही मिटाया जा सकता। इसलिए मै शिरोधार्य करता हूँ। दूसरे का वचन मेटा जा सकता है पर प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। अत आपकी आज्ञा प्रमाण है।

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी। अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥२॥

अर्थ माता पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना किसी विचार के शुभ जानकर करना चाहिए। आप ता सब तरह से मेरे परम हितकारी हैं। हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है।

व्याख्या गुरु पितु मातु स्वामिहित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी। उचित कि अनुचित किये विचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू। गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलहु कुमग पग परहिं न खालें। इनम से एक एक का वाणी प्रत्याख्यान योग्य नही है। आप ता माता पिता, गुरु, प्रभु हित सब कुछ है। आप यह माँहि मागे देहु क्या कहते हैं। आपकी आज्ञा मेरे सिर माथो पर है।

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना। भगति बिबेक धर्म जुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥३॥

अर्थ शिवजी की भक्ति, विवेक और धर्म युक्त वचनरचना सुनकर प्रभु सतुष्ट हुए। प्रभु ने कहा हे हर। तुम्हारा प्रण रह गया। अब मैंने जो कहा है उसे हृदय म रखना।

व्याख्या शकरजी के वचन की रचना भक्ति, विवेक और धर्मयुक्त थी। इससे प्रभु सन्तुष्ट हुए। प्रभु की सन्तुष्टि के लिए तीन उपाय हैं भक्ति, विवेक और धम। शङ्करजी के वाक्य मे तीनो का सँभार था।

धर्म, यथा सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परमधर्म यह नाथ हमारा॥
विवेक, यथा मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
भक्ति, यथा तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी॥

शिवजी ने जो कहा था कि उचित अस नाही। उसका उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं तुम्हार पन रहेऊ। तुम्हारा यही प्रण था कि एहि तन सतिहि भेंट अब नाही। सो वह तन भस्म हो गया। अब तो पार्वती तन है। अब उर राखेउ जो हम कहेऊ। भाव यह है कि विवाह के लिए तुम्हे कुछ उद्यम नही करना होगा। कारण कार्य आप ही उपस्थित होगा। तुम्हारा एतावन्मात्र कर्त्तव्य है कि मेरे कहने का ध्यान रखना। अवसर आने पर उसे कार्य म परिणत करना।

अतरधान भए अस भाखी। सकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहि सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥४॥

अर्थ ऐसा कहकर रामजी अन्तर्धान हो गये। शिवजी ने वही मूर्ति हृदय म रख ली। उसी समय सप्तर्षि शिवजी के पास आये। प्रभु ने उनसे अति सुन्दर वचन कहे।

व्याख्या रामजी के प्रकरण का प्रकटे से उपक्रम और अन्तर्धान भए से उपसहार किया। शिवजी ने वही रूपशीलनिधि तेज बिसाला मूर्ति को हृदय म रख लिया। क्षण भर का वियोग असह्य ह। या तो इन आँखो के सामने रहे या मानसिक दृष्टि के सामने रहें। तभी सप्तर्षियो ने आकर प्रणाम किया। शिवजी ने ऐसा वचन कहा जो सबका मनभाया हो। इसलिए उस वचन को 'अति सुहाए' कहा।

दो पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परीछा लेहु।
गिरिहिं प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु सदेहु॥७७॥

अर्थ तुम पार्वती के पास जाकर प्रेम की परीक्षा लो। हिमाचल को प्रेरणा करके उनके घर भिजवाओ और उनके सन्देह को दूर कर देना।

व्याख्या प्रभु लोग जन की प्रीति की परीक्षा करते है। यथा सोइ प्रभु जनकर प्रीति परिच्छा। इससे प्रभु का अज्ञान नही समझा। उसका उद्देश्य नीति रक्षा है। यथा यद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता। यदि कोई प्रेम के लिए तपस्या करता हो तो उसके प्रम की परीक्षा लनी नीति है। परीक्षोत्तीर्ण होने का यश उसे मिलगा। परीक्षक का मान हुआ कि वे अमुक की परीक्षा लने के योग्य समझ गये। यहाँ कितना बडा मान सप्तर्षि को मिला कि वे पार्वतीजी

व प्रेम व परीक्षक नियत हुए। सती शरीर से स्वामी की परीक्षा लेना उचित समझा था अत स्वीकार के पहिले शिवजी ने इनकी भी परीक्षा लेना उचित समझा। परीक्षा म उत्तीर्ण होना निश्चत ही है। अत कहते हैं गिरिहिं पेरि पठयेउ भवन। जिसम ब्रह्मदेव की वाणी का सामञ्जस्य बैठ जाय और पार्वती को अपने इष्ट से त्रिपुरारि से मिलने की दृढ आशा हो जाय। हिमालय और मेना के सन्देह को दूर करना इस कथन का यह भाव है कि वे भी जान लें कि शिवजी को विवाह स्वीकार है। शिवजी के ये वचन सबके लिए अति मनभावने थे इसलिए अतिसुहाए कहा।

रिषिन्ह गौरि देखि तहँ कैसी। मूरतिमंत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी॥१॥

अर्थ ऋषियो ने वहाँ पार्वती को कैसा देखा। मानो स्वय तपस्या मूर्ति धारण किये हुए हो। मुनि बोले हे शैलकुमारी! किसलिए भारी तप कर रही हो?

व्याख्या सप्त ऋषि है। अपने मन्वन्तर के अधिकारी है। बडे भारी तपस्वी है। उन्हे गौरी स्वय तपस्या की अधिष्ठात्री देवी सी प्रतीत हुईं। तप के तेज का विस्तार हो रहा है। इसलिए गौरी नाम दिया। दु सह क्लेश छोड दिया है क्योकि ब्रह्मवाणी की ऐसी आज्ञा हो चुकी है, फिर भी तप चल रहा है।

परीक्षा लने म ही सती से चूक हुई थी। अत ग्रन्थकार इनके परीक्षा लेने की विधि बतलाते है। सप्तर्षियो ने अपना स्वरूप नही पलटा। केवल मन्वन्तर के सप्त-ऋषि होने के नाते पूछते हैं कि किस कारण भारी तप करती हो? जिसम उत्तर पाने पर शङ्कर भगवान् मे वरोचित गुणा का अभाव दिखलावें और विष्णु मे सभी वराचित गुणो की स्थिति निरूपण करें। इतने से ही परीक्षा हो जावेगी कि शुद्ध प्रेम है कि उसमे कुछ स्वार्थ भी है।

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥
कहत वचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जडताई॥२॥

अर्थ तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो? तुम हमसे अपना सच्चा भेद क्यो नही कहती? गौरी बोली बात कहते मन बहुत सकुचाता है। हमारी मूर्खता सुनकर हँसोगे।

व्याख्या तीन बात क्रम से पूछी। १ भारी तप का कारण क्या? २ आराध्यदेव कौन है? ३ ईप्सित क्या है? चुप देखकर कहते हैं कि मन्वन्तर के हम सप्तर्षि हैं। तपस्वियो की देखभाल हमारे सुपुर्द है। हम वर भी दे सकते है। अत हमसे मर्म कहना चाहिए।

ऋषियो का अभिप्राय समझते हुए गौरी बोली। हम सन सत्य मरम किन कहहू पहिले इस तीसरे प्रश्न का उत्तर देती है कि मनु अति सकुचाई अपने विवाह की बात कहने मे सङ्कोच और उस पर हँसने के भय से अति सङ्कोच। जडताई अर्थात् स्नेह जाड्य है। यथा मो सनेह जडता बस कहहू। मैं स्नेह स जड हूँ। मुझम समझने की सामर्थ्य नही है।

मनुहठ परा न सुनै सिखावा। चहत वारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पखन हम चहहिं उडाना ॥३॥

अर्थ मन हठ कर बैठा है। सिखावन सुनता ही नही। पानी के ऊपर दीवार खडी करना चाहता है। नारदजी ने जो कहा है उसे हमने सत्य जाना है। मैं बिना पख के उडना चाहती हूँ।

व्याख्या मन मेरा हठी है। मेरी ही सीख नही सुनता, दूसरे की क्या सुनेगा। भाव यह कि यदि आप लोग मेरे सङ्कल्प मे कुछ सुधार चाहते हो, कुछ शिक्षा देना चाहते हो तो न देने की कृपा करें। तृतीय प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। दीवार को दृढ आधार की आवश्यकता होती है। जल एक ईंटे का भार नही सह सकता। उस पर दीवार नही उठ सकती। यह मै स्वयं जानती हूँ। इस भाँति गृहिणी दीवार है। उसे पक्के गृहस्थ की आवश्यकता होती है। उदासीन को मित्रता बोझ है। उसे वह नही सह सकता। स्त्री को गले बाँधे फिरना उससे कथञ्चित् सम्भव नही। यह सब जानती हुई भी मै असम्भव को सम्भव किया चाहती हूँ। यह प्रथम प्रश्न करहु कवन कारन तप भारी। का उत्तर है।

अब दूसरे प्रश्न केहि अवराधहु का उत्तर देती है। आराधना मे गुरु के वचन पर विश्वास चाहिए। अत कहती है नारद कहा सत्य सोइ जाना। आराधन के साधन विरति और विवेक हैं। जैसे उडने के साधन दोनो पख होते हैं। यथा श्रुति सम्मत हरि भगति पथ सजुत विरति विवेक। मुझमे दोनो नही न विरति है, न विवेक है। आराधना करना चाहती हूँ। अथवा कार्यसिद्धि के दो साधन हैं। १ दैव २ पुरुषार्थ। सो दैव प्रतिकूल है। यथा जस वर मै वरन्यौ तुम पाही। मिलिहि उमहि तस ससय नाही। और पुरुषार्थ मुझमे है नही। यही मेरा बिना पख के उडना चाहना है।

देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिअ सदासिवहि भरतारा ॥४॥

अर्थ हे मुनियो! हमारा अविवेक देखो मैं सदाशिवजी को पति चाहती हूँ।

व्याख्या तीसरे प्रश्न का तुम चहहु का उत्तर देती है। चाहिअ सदासिवहि भरतारा। अब अपनी चाह मे भी बडा भारी अविवेक दिखलाती है कि लोग इष्टदेव से सुगति चाहते हैं। मैं उन्ही को भर्तार रूप से चाहती हूँ। ऋषियो के तीनो प्रश्नो का उत्तर पूरा हुआ।

दो सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरि सभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह ॥७८॥

अर्थ बात सुनते ही ऋषि लोग हँस पडे और कहा तुम्हारा देह ही पहाड से पैदा है। भला नारद का उपदेश सुनकर किसका घर बसा है?

व्याख्या पहिले ही कहा था हँसिहहु सुनि हमार जडताई। सो ठीक उतरा। देवीजी हँसने से ही डरती थी सो वे महात्मा विहँसे और बोले। 'मन हठ परा न सुनै

मिखावा । चहुत वारि पर भीत उठावा । का उत्तर देते है ' गिरि सभव तव देह । और नारद कहा सत्य सोइ जाना का उत्तर देते हुए कहते हैं कि जिसने नारद के उपदेश को सत्य करके जाना उसका घर उजडा । भाव यह कि आराधना वे उपदेष्टा मे दोप दिखाकर आराधना मे विरुद्ध फलोत्पादकता दिखाते है। विवाह तो घर बसाने के लिए होता है । नारद के उपदेश से सदा बसा हुआ घर उजडा है। किसी घर के बसने का तो उदाहरण ही नही है ।

दच्छ सुतन्ह उपदेसिन्हि जाई । तिनि फिरि भवनु न देखा आई ॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला । कनककसिपु कर पुनि अस हाला ॥१॥

अर्थ दक्ष के पुत्रो को जाकर उपदेश दिया । उन्होने लौटकर फिर घर नही देखा । चित्रकेतु का घर उन्ही ने नष्ट किया और हिरण्यकश्यप का फिर ऐसा हाल हुआ ।

व्याख्या दक्ष के बेटे उपदेश लेने नही गये थे । नारद ने स्वय जाकर उपदेश दिया । तुमने भी बुलाया न होगा । वे आप ही उपदेश देने पहुँच गये होगे । दक्ष ने हर्यश्व नाम के पाँच सौ पुत्र उत्पन्न किये और उन्हे सृष्टि करने की आज्ञा दी। नारदजी ने उन्हे जाकर उपदेश किया कि पहिले तुम लोग जाकर भूमि के परिणाम का पता लगा लो तब सृष्टि करना । वे भूमि के परिमाण का पता लगाने चल पडे । सो आज तक न लौटे । फिर दक्षजी ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न करके उन्हे भी सृष्टि करने की आज्ञा दी । नारदजी ने उन्हे भी वही उपदेश दिया और वे भी आज तक नही लौटे ।

चित्रकेतु राजा को पुत्र न था । अगिरा मुनि की कृपा से छोटी रानी को एक पुत्र हुआ । अन्य रानियो ने ईर्ष्यावश उसे विप देकर मार डाला । राजा व्याकुल हुआ । अगिरा मुनि के समझाने पर भी व्याकुलता न गई । मुनिजी ने नारदजी का स्मरण किया । नारदजी ने भी आकर बहुत समझाया पर कोई फल न हुआ । तब नारदजी ने उस मृत पुत्र से कहा उठ, तेरे पिता व्याकुल है । वह उठा और कहने लगा कि कौन किसकी माता और कौन पिता ? यह सब भगवान् की माया का विलास है । अब मेरा वृत्तान्त सुनो । मैं पाञ्चाल देश का राजा हूँ । राज्य छोडकर भजन करने गया । एक दिन भिक्षा माँग लाया । उसका पाक बनवाया । एक कण्डे मे १६०० चीटियाँ थी । वे जल मरी । मुझे पीछे पता लगा । वे ही राजा की १६०० रानियाँ हुईं । मुझे जिसने कण्डा दिया था वह छोटी रानी हुई । उस भिक्षा का शालग्राम को भोग लगाया था । इसीसे एक जन्म मे सब बैर सध गया । ऐसा कहकर बालक मर गया । राजा रानी ने राजपाट छोडा और विरक्त हो गये । इस भाँति नारदजी के उपदेश से चित्रकेतु का घर गया ।

हिरण्यकश्यप का हाल जगत् विख्यात है । इसलिए अस हाला कहते है । उसके पुत्र के लिए नृसिहजी ने उसका पेट फाड डाला । बात यह हुई कि हिरण्यकश्यप तप करने गये । उसकी रानी को गर्भ था । नारदजी ने उसे राम तत्त्व का उपदेश दिया ।

इससे रानी का तथा गर्भ का रामाकार मन हो गया। उसी रानी से जो लडका जनमा, प्रह्लाद नाम हुआ। उसीके कारण हिरण्यकश्यप मारा गया।[1] यहाँ फिर शुक तथा बहु वरन विहंग बोल उठे।

नारद सिष जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहिं तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥२॥

अर्थ : जो स्त्री पुरुष नारद का सिखावन सुनते हैं वे घरबार छोड अवश्य भिखारी हो जाते है। उनका मन कपटी है। शरीर पर सज्जन के चिह्न हैं। अपने समान सभी को बनाना चाहते है।

व्याख्या : नर ही नही नारी भी जो नारद का उपदेश सुने तो उसकी भी गृहस्थी छूटे। हिरण्यकश्यपु की स्त्री ने नारद का उपदेश सुना था जिससे वैरागी लडका पैदा हुआ और अपनी माँ के वैधव्य का कारण हुआ। नारद के उपदेश से घर उजडता है। तुम घर बसाना चाहती हो। अत उनके उपदेश का परित्याग करो।

ऐसे उपदेश का कारण यह है कि उसका मन कपटी है। बाहर से साधु वेष बनाए रहता है। उसे धन, धाम, जाया कुछ नही है। चाहता है कि सारा ससार ऐसा ही हो जाय। कैसी सुन्दर व्याजस्तुति है। नारद अपने सा ही सारे ससार को सुखी बनाना चाहते हैं पर ससार स्वय सुखी होना चाहता नही।

तेहि के बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली ॥३॥

अर्थ : उनके वचन का विश्वास करके तुम ऐसा पति चाहती हो। जो १ सहज उदासी २ गुणहीन ३ निर्लज्ज ४ कुवेष ५ कपाल धारण करनेवाला ६ कुलहीन ७ गृहहीन ८ नङ्गा और ९ साँप धारण करनेवाला है।

व्याख्या : नारद के वचन का कोई विश्वास नहीं करता। यदि करते होते तो सब विरक्त हो गये होते। तुम उसी के धोखे मे आकर सहज उदासीन पति चाहती हो। वर के लिए उदासीन होना बडा भारी दुर्गुण है। उदासीन का अर्थ है रागद्वेष रहित। वह स्त्री से प्रेम कैसे करेगा? यहाँ जो नौ विशेषण शिवजी के लिए दिये हैं इन सबके दो दो अर्थ है। पहिला शिवजी की स्तुति मे लगेगा। दूसरा अर्थ प्रसङ्गानुकूल निन्दा मे है।

१ उदासीन : समदर्शी या उपेक्षक २ निर्गुण : गुणातीत या सद्गुण रहित ३ निलज : आत्मदर्शी या बेहया ४ कुवेष : वैराग्य से या दरिद्रता से ५ कपाली : ब्रह्मदेव का शिरश्छेत्ता महापराक्रमी या अघोरी। ६ अकुल : स्वयम्भू या निगोडा ७. अगेह : सर्वाश्रय या निराश्रय ८ दिगम्बर : चिदाकाश रूप या नङ्गा ९. व्याली : विश्वम्भर या सँपेरा।

---

१ औरौ कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन विहंगा।

अब वश स्वभाव कहती है। सोना भी पहाड से ही उत्पन्न होता है।
जला डालिये अपना स्वभाव नही छोडता। कनकहि बान चढै जिमिदाहे।
प्रियतम पद प्रीति निबाहे। जितना तपाइयेगा उतनी ही चमक सोने की ब
वह अपना रग कभी नही छोडेगा। उसी भाँति प्रियतम पद प्रीति निर्वाह मे
सोना सा स्वभाव होना स्वाभाविक है। मै अपना हठ कैसे छोडूँ ?

नारद वचन न मै परिहरऊ। बसौ भवन उजरौ नहि डरऊ।
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही।

अर्थ मै नारदजी के वचन को नही छाडूँगी, चाहे घर बसे या उजडे
डर नही है। गुरु के वचन का जिसे विश्वास नही उसे सुख की सिद्धि सपने
सुगम नही होती।

व्याख्या नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहि तजि भवन भिख
नारद कर उपदेश सुनि कहहु बसउ किसु गेह का उत्तर देती है कि नारद के
के सामने घर का उजडना क्या है ? तेहि के वचन मानि बिस्वासा का उत्तर देती
गुर के वचन प्रतीत न जेही। नारद को गुरु मानती है। उन्ही के उपदेशानुसा
आरम्भ किया है। उन्ही से शिवपञ्चाक्षर की दीक्षा ली है। गुरु के वचन की प्र
सुख सिद्धि का असाधारण कारण है।

दो महादेव अवगुन भवन, बिस्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ॥८०॥

अर्थ महादेव अवगुणो के घर है। विष्णु सारे गुणो के धाम हैं। पर जि
मन जिससे रमता है उसको उसी से काम है।

व्याख्या परम श्रद्धास्पद के गुण दोप विवेचन पर शास्त्रार्थ इष्ट नही है
न विष्णु के विरुद्ध एक शब्द मुख से निकालना इष्ट है। अत वाद विवाद का
बन्द करने के लिए तुष्यतु दुर्जनन्यायेन मान लेती है कि उनका कहना ठीक
महादेव अवगुण के और विष्णु गुणो के धाम है पर मीठ कहा कवि कहै। ज
जो भावइ। पा म। जिसे जो पसन्द हो वही उसके लिए मीठा है। मुझे विष्
काम नही है।

जौ तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनति सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मै जन्मु सभु हित हारा। को दूपन करै विचारा ॥

अर्थ हे मुनीश्वरो ! जो तुम पहल मिलते तो मैं तुम्हारा उपदेश सिर
धरकर सुनती। अब तो मैंने अपना जन्म शम्भु के लिए हार दिया। अब गुण
का विचार कौन करे ?

व्याख्या सम्मति देने या मानने का समय निकल गया। विचार का स
मन से वरण करने के पहिल था। अब तो शम्भु के लिए जन्म हार चुकी। आ
प्रति मेरा अनादर नही है पर अब मैं गुरु कर चुकी। गुरु के बचन के सामने

सब वचन अमान्य है। यदि पहले आप आये होते तो मैं आप को ही गुरु बनाए होती आपकी ही आज्ञा मानती दूसरे की न मानती।

इष्टदेव का भी वरण हो चुका। अब गुण दोष विचार अनुचित है। बात बहुत आगे बढ गई।

जौ तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाय बिनु किए बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बरकन्या अनेक जग माहीं ॥२॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन मे बहुत हठ हो वर खोजे वरईक्षण बिना रहा न जाता हो तो कौतुकी लोगो को आलस्य तो होता ही नही और ससार मे वर कन्या की कमी भी नही है।

व्याख्या बात समाप्त हो गई। ऋषियो को चला जाना चाहता था पर वे ठहरे हुए हैं। कुछ कहना चाहते है। ऐसी परिस्थिति देखकर भगवती कहती है मुझे तो आप लोगो की आवश्यकता नही है पर यदि आप लोगो का ही विशेष हठ हो वरदिखौआ किये बिना जी न मानता हो भाव यह कि इस विषय मे विशेष बात सुनना नही चाहती तो आप लोग कौतुकी जान पडते है बिना प्रार्थना किये वर भी विचार लिया। हठात् आकर वरण किये हुए वर की निन्दा करने लगे! यहा आप के कौतुक की सामग्री नही है। जहाँ कौतुक चल सके वहाँ जाइये।

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरौं सभु न त रहौं कुमारी ॥
तजो न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू ॥३॥

अर्थ करोडो जन्म तक हमारी यही रगड है कि या शम्भु को वरूँगी या कुँआरी रहूँगी। शिवजी स्वय सौ बार कहे तो भी नारदजी के उपदेश को न छोडूँगी।

व्याख्या अस वर तुम्हहिं मिलाउब आनी का उत्तर देती है। इस जन्म की क्या कथा करोडो जन्म के लिए यही हठ है। शिवजी को वरूँ या क्वारी रहूँ। भाव यह कि उपदेश के लिए यहाँ कोई स्थान नही है। भली भूलिउ ठग के बौराएँ का उत्तर देती है कि भले तुम ठग समझो पर मेरा विश्वास अटल है। स्वय महेश जो महा कल्याण के अधिकारी हैं सौवार आकर कहे तो भी मै नारदजी का उपदेश नही छोड सकती। आप लोग तो केवल एक मन्वन्तर के अधिकारी ठहरे।

मै पा परौ कहै जगदबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलबा ॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदबिके भवानी ॥४॥

अर्थ जगदम्बा ने कहा मैं आपके पाँव पडती हूँ आप जाँय बहुत देर हुई। प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले जगदम्ब! तेरी जय हो। भवानी तेरी जय हो।

व्याख्या महेश के विरुद्ध एक बात भी सुनना नही चाहती। उन्हे न जाते देखकर बोली। देर हुई घर जाइये। भाव यह कि आपको घर उजडने बसने की बडी चिन्ता रहती है सो आपका घर स्वय सूना पडा है। उसे शीघ्र अशून्य कीजिये।

प्रेम की परीक्षा हो चुकी। दो बार प्रश्नोत्तर हुआ। अत दो बार जय जयकार किया। शिवजी ने कहा था दूर करेउ सदेहु। अत जगदम्बिके भवानी कहते हैं। इसके पहिले शैलकुमारी कहकर सम्बोधन किया था।

दो तुम माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु ॥
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु ॥८१॥

अर्थ तुम माया हो, शिवजी भगवान् हैं। समस्त जगत् के माता पिता हो। चरण मे सिर नवाकर मुनि बार बार पुलकित होते चले।

व्याख्या माया होने से तुम जगन्माता, भगवान् होने से शिवजी जगत्पिता है। दानो का सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। अर्थात् विवाह हुआ हवाया है। निश्चित है। आने के समय प्रणाम नही किया क्योकि वरद बनकर आये थे। परीक्षा हो चुकने पर प्रणाम किया शिवजी की योग्या समझकर। जगदम्बा का निर्मल अचल प्रेम देखकर बार बार रोमाञ्च हो रहा है।

जाइ मुनिन्ह हिमवतु पठाए। करि बिनती गिरिजहिं गृह ल्याये ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई ॥१॥

अर्थ मुनियो ने जाकर हिमवान् को भेजा। विनती करके पार्वती को घर ले आये। फिर सप्तर्षियो ने शिवजी के पास जाकर उमा की सब कथा सुनाई।

व्याख्या शिवजी की आज्ञा थी कि गिरिहि प्रेरि पठएउ भवन। इसलिए सप्तर्षियो ने जाकर हिमवान् को प्रेरणा की कि अपनी बेटी को घर ले आओ। उसका तप पूरा हुआ। महादेवजी ने विवाह स्वीकार कर लिया। तदनुसार हिमवान् गये और विनय करके घर ल आये। हिमवान् शिव पार्वती की महिमा के जानकार थे। अत बेटी होने पर भी उनसे विनय की, घर चलने की आज्ञा नही दी। अथवा अति प्रेम हाने स विनय किया कि किसी तरह से यह घर तो चल। पार्वती जी ब्रह्मवाणी के अनुसार यथा, आवै पिता बुलावन जबही। हठ परिहरि गृह जायेहु तबही घर चली गईं। फिर सप्तर्षियो ने जाकर शिवजी से उमा का तप तेज तथा अपना और उनका सवाद सब सुनाया।

भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥
मनु थिरु करि तब संभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥२॥

अर्थ प्रीति सुनकर शिवजी मगन हो गय। सातो मुनि हर्षित होकर घर गये। तब सुजान शिवजी मन को स्थिर करके रघुनायक का ध्यान करने लगे।

व्याख्या शिवजी बडे स्नेही है। स्नेह सुनकर बडे मग्न हो गये। इस बात का आनन्द हुआ कि अब उमा को विश्वास हो गया होगा कि मै स्वीकार करूँगा। उनकी विरह व्यथा कम हुई होगी अथवा प्राण पड जाने से आनन्दित हुए। भगवती इ है बिना उनक शिव शव है। अत पुन शिवत्व प्राप्ति के निश्चय से आनन्दित हैं।

शिवजी की यह दशा देखकर सप्तर्षि भी प्रसन्न हो गये। इस आनन्द का हेतु अपने को जानकर कृत्यकृत्य हुए। तब घर गये। भगवती की आज्ञा भी पालन करनी थी। तुम गृह गवनउ भयेउ विलंवा।

स्नेह मे डूबे हुए चितको शिव जी ने शान्त किया और रघुनायक का ध्यान करने लगे। आनन्द की घटना उपस्थित होने पर महात्मा लोग भगवान् का ध्यान करते हैं। अथवा भक्त विरह दु ख से दु खी थे। इसलिए ध्यान नही करते थे। पृथ्वी मे इधर उधर उपदेश करते फिरते थे। अब वह दु ख मिट गया। अत ध्यान करने लगे।

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप वल तेज विसाला॥
तेहि सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते॥३॥

अर्थ : उन्ही दिनो तारकासुर हुआ। जिसकी भुजाओ का प्रताप वल और तेज वहुत वड़ा था। उसने सब लोक और लोकपालो को जीत लिया और देवता सुखसम्पत्ति से रहित हो गये।

व्याख्या : कालिकापुराण मे कहा है कि विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वान् तत्पदेपु च। स्वय नियोजयामास देवयोनिपु चाप्यसौ। सब देवताओ को युद्ध मे भगाकर अपने दैत्यों को उनके पदो पर देवयोनियों मे भी उसने तारकासुर ने नियुक्त किया। अर्थात् देवताओ पर भी उसके नियुक्त किये हुए दैत्य शासन करते थे। शङ्कर भगवान् उस समय ध्यान मे वैठे थे। वल शब्द के पहिले प्रताप शब्द के प्रयोग का भाव यह कि उसकी भुजाओ के प्रताप के वल से उसके अनुचर लोकपालो को वाँधकर पशुओं की भाँति खीच लाये। इस भाँति प्रताप कहा।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि विविध लराई॥
तव विरचि सन जाइ पुकारे। देखे विधि सब देव दुखारे॥४॥

अर्थ : वह अजर अमर था। जीता नही जाता था। अनेक प्रकार की लडाई करके देवता लोग हार गये। तब ब्रह्मदेव के यहाँ पुकार मचाई। ब्रह्मदेव ने देखा कि देवता दु खी हैं।

व्याख्या : अब वल कहते हैं कि वह अजेय था और साथ ही न उसे बुढापा आता था न मौत आती थी। तेज कहते है कि देवता अनेक प्रकार से लड़कर उस तेजस्वी से हार गये। लोकपालो के स्वामी ब्रह्मदेव है। निरुपाय होकर उनके शरण गये। ब्रह्मदेव ने उनकी पुकार सुनी और प्रत्यक्ष देखा कि देवता लोग श्रीहीन होकर दु खी हैं।

दो. सब सन कहा बुझाय विधि, दनुज निधन तब होइ।
संभु शुक्र सभूत सुत, एहि जीते रन सोइ॥८२॥

अर्थ सबको समझाकर[१] विधि ने कहा कि दैत्य का मरना तो तब होगा जब शिवजी के शुक्र से पुत्र उत्पन्न हो। वही इसे रण मे जीत सकेगा।

व्याख्या दु ख दूर वे भी नही कर सके। पर उपाय बतलाया जिससे दु ख दूर हो सके। उपाय यह था कि शिवजी के वीर्य से यदि पुत्र उत्पन्न हो तो वह इसे जीत सकेगा। तारकासुर ने छ दिन के उत्पन्न हुए बालक मे अपनी मृत्यु माँगी थी। शिवजी के सिवा दूसरे के वीर्य मे इतना सामर्थ्य नही कि उससे उत्पन्न बालक छठी के भीतर तारकासुर का वध कर सके। शरीर सम्भूत पुत्र से काम न चलेगा। शुक्र सम्भूत होना चाहिए। नही तो शरीर सम्भूत तो वीरभद्रादिक थे ही।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥१॥

अर्थ मेरी बात सुनकर उपाय करो। काम बन जायगा। ईश्वर सहायता करेगा। सती ने जिसने दक्ष के यज्ञ मे शरीर छोडा है हिमाचल के घर मे जाकर जन्म लिया है।

व्याख्या बात पीछे बतलायेगे। अभी प्रोत्साहन देते है कि मेरे कथनानुसार उद्योग करने से कार्य सिद्धि होगी। आशीर्वाद भी देते है कि ईश्वर सहायता करेगा। क्योकि मनुष्य का कर्म मे अधिकार है। फल मे नही। फल ईश्वर के हाथ है। यथा सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी। सो ईश्वर सहाय करेगा। तुम्हारा उद्यम सफल होगा।

दक्षमख भूलने की वस्तु नही है। उसी मे सती ने शरीर त्याग किया था। वही जाकर हिमाचल के घर जनमी है। तमूर्ध्वरेतस शम्भु सैव प्रच्युतरेतसम्। कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यबलापरा। का पु। उन ऊर्ध्वरेता शम्भु के वीर्य को स्थान से प्रचलित करने मे वही समर्थ है और किसी स्त्री मे ऐसा सामर्थ्य नही है।

तेइ तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात येक सुनहु हमारी॥२॥

अर्थ उसने शिवजी को पतिरूप से प्राप्त करने के लिए तप किया है। पर

---

१ षट दिन के सिसु हाथ वध तारक को वर दीन्ह
तेहि बल ते अति प्रबल ह्वै सकल सुरन्ह वस कीन्ह॥१॥
वीर्यवन्त अस को जगत जाको अस सुत होय
जनमत ही जाके सदृश जग मे होय न कोय॥२॥
ऐसे तो प्रभु सम्भु ही समरथ परैं लखाय
सती तासु वनिता तजी देह दक्ष मख जाय॥३॥
सबसन कहा बुझाइ विधि दनुज निधन तब होय
सम्भु शुक्र सम्भूत सुत एहि जीते रन सोय॥४॥

शिवजी सब त्यागकर समाधि मे बैठे है। यद्यपि असमञ्जस तो बड़ा भारी है। फिर भी हमारी एक बात सुनो।

व्याख्या : पिछले जन्म मे भी शम्भु को पति पाया। इस जन्म मे भी उन्ही के लिए तप किया। तप कीन्ह कहकर तप की सिद्धि भी बतलाई। विवाह होगा। अत: शुक्र सम्भूत सुत का योग है। पर कठिनाई यह है कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनो अवस्था त्यागकर अथवा पहिले सती को त्यागा अब सब त्यागकर शिवजी इस समग्र तुरीय में स्थिर हैं। स्वरूप का विमर्श ही समाधि है। न जाने कब समाधि खुलेगी और विवाह समाधि खुलने पर ही सम्भव है। शिवजी की समाधि भङ्ग करना साधारण व्यापार नही है और इधर तुम लोगो को वेदना भी असह्य है। अत: भारी असमञ्जस है फिर भी उपाय कहते हैं।

पठवहु काम जाइ सिव पाही। करै छोभु संकर मनमाही॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई॥३॥

अर्थ : काम को भेजो शिवजी के पास जाय। शङ्करजी के मन मे क्षोभ, हलचल पैदा करे। तब हम जाकर शिवजी को प्रणाम करके बलपूर्वक उनका व्याह करावेंगे।

व्याख्या : तप में तथा समाधि में निष्कारण विघ्न करना कामदेव का काम है; परन्तु वह शिवजी के सन्निकट नही जाता। उसे शिवजी के पास तुम लोग भेजो। वहाँ जाकर वह अपना सामर्थ्य दिखलावे। शङ्करजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे। क्योंकि समाधि निर्विकारचित्तैकसाध्य है। जहाँ मन क्षुब्ध हुआ तहाँ समाधि छूटी। समाधि से जागने पर विवाह करवाना कुछ कठिन नही है। मै तुम लोगो के साथ चलकर सिर नवाकर बलपूर्वक विवाह करवाऊँगा। सप्तर्षि को भेजकर हिमाचल से कहला चुके हैं न क्यो करेंगे? विनय के बल से करवायेंगे।

इहि बिधि भलेहि देवहित होई। मत अति नीक कहै सबु कोई॥
प्रस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषम बान झखकेतू॥४॥

अर्थ : इस विधि से भले ही देवताओं का कल्याण होगा। सब कोई कहने लगे कि यह राय बहुत अच्छी है। देवताओ ने बड़े प्रेम से प्रकर्ष करके स्तुति की तो पञ्चबाण[1] मीनकेतु प्रकट हुए।

व्याख्या : काम की उत्पत्ति ही मनःक्षोभ के लिए है। अत: उसके समाधिभङ्ग करने पर कारण की खोज न होगी। समाधिभङ्ग के अन्य उपाय भी हैं। पर उनके करने से समाधिभङ्ग होने पर शिवजी कारण की खोज करेंगे। देवताओ पर बिना

---

१. बसी करन मोहन कहत, आकर्षण कवि लोग।
उच्चाटन मारन समुझि पंच बान ये योग॥
पुन करना केतकि केवरा कदम आम के बौर।
ए पाँचो शर काम के केशवदास न और॥

विपत्ति आये न रहेगो। अत भली प्रकार से हित न होगा। सबने इस उपाय का एक मत से अनुमोदन किया। देवता लोग आर्त थे। इसलिए प्रकर्ष रूप से कामदेव की स्तुति की। नही तो कामदेव बुलवा लिये जाते थे। यथा : कामहि बोलि कीह्न सनमाना। प्रस्तुति से प्रसन्न होकर कामदेव प्रकट हुए। कामदेव, मनोज है। अत' उनका निवास मन मे रहता है वहाँ प्रकट होते हैं। इसलिए स्तुति के लिए कही जाना न पडा। 'विषमवान झखकेतु' कहने का भाव यह है कि युद्ध के लिए तैयार होकर आये। यह स्तुति देवलोक मे हुई। क्योकि काम से वार्तालाप मे ब्रह्मदेव सम्मिलित नही है।

दो. सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
संभु विरोध न कुसल मोहिं, विहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥

अर्थ देवताओ ने अपनी सब विपत्ति कह सुनाई। सुनकर मन मे विचार किया। और हँसकर कहा कि शम्भु के विरोध से मेरा कुशल नही है।

व्याख्या कामदेव को देवताओ के पराभव पर भी विपत्ति नही आती। क्योकि काम का मान तो असुरो मे और भी अधिक है। अत देवताओ ने अपनी विपत्ति कही। मोहदल के प्रथम वीर हैं अत मृत्यु पर हँसते हैं। शूराणा मरण तृणम्। अथवा देवताओ के विनय पर हँसे कि तुम्हारा कुशल तो है। मेरा नही है। मन मे विचार करने पर यही वात निश्चय हुई कि शम्भु की समाधि भङ्ग करने पर उनके क्रोध से मेरी रक्षा हो नही सकती।

तदपि करब मै काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा॥
परहित लागि तजै जो देही। सतत सत प्रससहि तेही ॥१॥

अर्थ फिर भी मै तुम्हारा काम करूँगा। क्योकि वेदो मे परोपकार को ही परम धर्म बतलाया है। परउपकार के लिए जो देह छोडता है सन्त सदा उसकी प्रशसा करते हैं।

व्याख्या भले ही मेरा कुशल न हो पर सम्पूर्ण ससार का तो कुशल होगा। धर्म मे वेद ही प्रमाण है। सो वेद परोपकार को परम धर्म बतलाते हैं। आत्म रक्षा धर्म है और परोपकार परम धर्म है। अत तुम्हारा काम मै करूँगा। आज तक मेरी गिनती षड्‌रिपु मे रही। सन्त मेरी निन्दा करते रहे। अब परोपकार के लिए जब मै देह छोड़ूँगा तो सन्त समाज मे मेरी प्रशसा सदा होगी। देह है तो एक दिन छूटे ही गा। तब ऐसे सुअवसर को मै हाथ से क्यों जाने दूँ। कीर्तिर्यस्य स जीवति जिसकी कीर्ति है वही जीता है।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुक कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय विचारा। सिव विरोध ध्रुव मरन हमारा ॥२॥

अर्थ ऐसा कहकर और सबको सिर नवाकर पुष्प का धनुष हाथ मे ले,

सेना सहित चला। चलते समय कामदेव ने यह विचार कर लिया कि शिव के विरोध मे मेरी मृत्यु निश्चित है।

व्याख्या पञ्च परमेश्वर को प्रणाम किया। यथा अस कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा उन्मादन नामका धनुष हाथ मे लिया। यथा तत कामोपि कोदण्डमादाय कुसुमोद्भवम्। उन्मादनेतिविख्यात कान्ताभ्रूतुल्यवल्लितम्। का पु। फूलो का बना हुआ धनुष जिसका नाम उन्मादन प्रसिद्ध है और जो स्त्री के भौहो के तुल्य चलनेवाला था ले लिया। और अपनी सेना भी साथ ले ली।

चलते समय विचार किया कि सबके विरोध से तो बचे, शिव विरोध से न बचेंगे। उनका तेज मेरे विपरीत है। अत मै उनके निकट नही गया। यथा तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गये समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई। तिस पर मुझे ब्रह्मशाप भी है। यथा प्राप्तकालश्च सस्मार शाप ब्रह्मकृत पुरा। शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्व भविष्यसि न संशय। का पु। अवसर आने पर जो शाप पहिले ब्रह्मा ने दिया था। उसे उसने स्मरण किया कि तू शम्भु की नेत्राग्नि से नि सशय जल जायगा। अत मेरे मरने म कोई सन्देह नही है।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल ससारा॥
कोपेउ जबहि वारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥३॥

अर्थ तब उसने अपना प्रभाव फैलाया। सारे ससार को अपने वश म कर लिया। जिस समय मकरध्वज ने कोप किया तो एक क्षण मे वेद के सारे सेतु[1] मिट गये। सेतु=पुल।

व्याख्या कामदेव ने निश्चय किया कि पूरा बल लगाना चाहिए। मरना तो है ही। ससार को अपनी प्रभुता दिखा दें। अथवा विश्वनाथ पर प्रहार करने के पहिले विश्व को वश्य करना चाहिए। राजा पर वार करने से पहिले उसके राज्य पर आक्रमण करना चाहिए। सो पहिले उसने विश्व को वश मे किया।

काम का ऐसा प्रबल प्रभाव है कि उसके कोप मात्र से वेद की मर्यादाएँ टूट गईं। चढाई मे जिन पुलो से सहायता मिलती है वे पहले तोडे जाते हैं। अत पहिला काम यह किया कि श्रुतिसेतु को तोड डाला।

ब्रह्मचर्ज व्रत सजम नाना। धीरज धर्म ग्यान बिग्याना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सब भागा॥४॥

---

१ धर्म सामान्य वेद के सेतु हैं। भगवान् रामचन्द्र ने कहा है कि यह धर्मरूपी सेतु सबके लिए है। यथा भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्र।
सामान्योऽय धर्मसेतुर्नराणा काले काले पालनीयो भवद्भि।
इन सेतुओ की सख्या तैंतीस है, जो सबके लिए सामान्य हैं। यथा सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा आदि। श्रीमद्भा ७ ११।

विपत्ति आये न रहेगी। अत भली प्रकार से हित न होगा। सबने इस उपाय का एक मत से अनुमोदन किया। देवता लोग आर्त थे। इसलिए प्रकर्ष रूप से कामदेव की स्तुति की। नही तो कामदेव बुलवा लिये जाते थे। यथा कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। प्रस्तुति से प्रसन्न होकर कामदेव प्रकट हुए। कामदेव, मनोज है। अत: उनका निवास मन मे रहता है वहाँ प्रकट होते हैं। इसलिए स्तुति के लिए कही जाना न पडा। 'विषमबान झषकेतु' कहने का भाव यह है कि युद्ध के लिए तैयार होकर आये। यह स्तुति देवलोक मे हुई। क्योकि काम से वार्तालाप मे ब्रह्मदेव सम्मिलित नही है।

दो सुरन्ह कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार।
सभु बिरोध न कुसल मोहि, बिहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥

अर्थ देवताओ ने अपनी सब विपत्ति कह सुनाई। सुनकर मन मे विचार किया। और हँसकर कहा कि शम्भु के विरोध से मेरा कुशल नही है।

व्याख्या कामदेव को देवताओ के पराभव पर भी विपत्ति नही आती। क्योकि काम का मान तो असुरो मे और भी अधिक है। अत देवताओ ने अपनी विपत्ति कही। मोहदल के प्रथम वीर हैं अत मृत्यु पर हँसते हैं। शूराणा मरण तृणम्। अथवा देवताओ के विनय पर हँसे कि तुम्हारा कुशल तो है। मेरा नही है। मन मे विचार करने पर यही बात निश्चय हुई कि शम्भु की समाधि भङ्ग करने पर उनके क्रोध से मेरी रक्षा हो नही सकती।

तदपि करब मै काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा ॥
परहित लागि तजै जो देही। सतत सत प्रससहि तेही ॥१॥

अर्थ फिर भी मै तुम्हारा काम करूँगा। क्योकि वेदो मे परोपकार को ही परम धर्म बतलाया है। परउपकार के लिए जो देह छोडता है सन्त सदा उसकी प्रशसा करते है।

व्याख्या भले ही मेरा कुशल न हो पर सम्पूर्ण ससार का तो कुशल होगा। धर्म मे वेद ही प्रमाण है। सो वेद परोपकार को परम धर्म बतलाते हैं। आत्म रक्षा धर्म है और परोपकार परम धर्म है। अत तुम्हारा काम मै करूँगा। आज तक मेरी गिनती षड्रिपु मे रही। सन्त मेरी निन्दा करते रहे। अब परोपकार के लिए जब मै देह छोड़ूँगा तो सन्त समाज मे मेरी प्रशसा सदा होगी। देह है तो एक दिन छूटे ही गा। तब ऐसे सुअवसर को मै हाथ से क्यो जाने दूँ। कीर्तिर्यस्य स जीवति जिसकी कीर्ति है वही जीता है।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुक कर सहित सहाई ॥
चलत मार अस हृदय बिचारा। सिव बिरोध ध्रुव मरन हमारा ॥२॥

अर्थ ऐसा कहकर और सबको सिर नवाकर पुष्प का धनुष हाथ मे ले,

सेना सहित चला। चलते समय कामदेव ने यह विचार कर लिया कि शिव के विरोध मे मेरी मृत्यु निश्चित है।

व्याख्या : पञ्च परमेश्वर को प्रणाम किया। यथा : अस कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा : उन्मादन नामका धनुप हाथ मे लिया। यथा : ततः कामोपि कोदण्ड-मादाय कुसुमोद्भवम्। उन्मादनेतिविख्यातं कान्ताभ्रूतुल्यवल्लितम्। का. पु। फूलों का बना हुआ धनुप जिसका नाम उन्मादन प्रसिद्ध है और जो स्त्री के भौंहो के तुल्य चलनेवाला था ले लिया। और अपनी सेना भी साथ ले ली।

चलते समय विचार किया कि सबके विरोध से तो बचे, शिव विरोध से न बचेंगे। उनका तेज मेरे विपरीत है। अत. मैं उनके निकट नही गया। यथा : तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गये समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई। तिस पर मुझे ब्रह्मशाप भी है। यथा : प्राप्तकालश्च सस्मार शापं ब्रह्मकृत पुरा। शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्वं भविष्यसि न संशयः। का पु। अवसर आने पर जो शाप पहिले ब्रह्मा ने दिया था। उसे उसने स्मरण किया कि तू शम्भु की नेत्राग्नि से नि सशय जल जायगा। अतः मेरे मरने मे कोई सन्देह नही है।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा ॥
कोपेउ जबहिं बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू ॥३॥

अर्थ : तब उसने अपना प्रभाव फैलाया। सारे संसार को अपने वश मे कर लिया। जिस समय मकरध्वज ने कोप किया तो एक क्षण मे वेद के सारे सेतु[1] मिट गये। सेतु = पुल।

व्याख्या : कामदेव ने निश्चय किया कि पूरा बल लगाना चाहिए। मरना तो है ही। ससार को अपनी प्रभुता दिखा दें। अथवा विश्वनाथ पर प्रहार करने के पहिले विश्व को वश्य करना चाहिए। राजा पर वार करने से पहिले उसके राज्य पर आक्रमण करना चाहिए। सो पहिले उसने विश्व को वश में किया।

काम का ऐसा प्रबल प्रभाव है कि उसके कोप मात्र से वेद की मर्यादाएँ टूट गईं। चढाई मे जिन पुलो से सहायता मिलती है वे पहले तोडे जाते हैं। अत' पहिला काम यह किया कि श्रुतिसेतु को तोड डाला।

ब्रह्मचर्य व्रत संजम नाना। धीरज धर्म ग्यान बिग्याना ॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सब भागा ॥४॥

---

१. धर्म सामान्य . वेद के सेतु हैं। भगवान् रामचन्द्र ने कहा है कि यह धर्मरूपी सेतु सबके लिए है। यथा . भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्र।
सामान्योऽय धर्मसेतुर्नराणा काले काले पालनीयो भवद्भिः।
इन सेतुओ की सख्या तैंतीस है, जो सबके लिए सामान्य हैं। यथा सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा आदि। श्रीमद्भा. ७.११।

अर्थ ब्रह्मचर्य, व्रत, नाना प्रकार के सयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, जोग और विरागादि विवेक की सारी सेना भाग खडी हुई।

व्याख्या ससार को वश्य करने मे काम की बाधक विवेक की सेना है। सो लड भी न सकी। डरकर भाग गई। सेना के प्रधान अधिकारियो के नाम गिनाते हैं। १ ब्रह्मचर्य अर्थात् अष्टविध मैथुन त्याग २ व्रत अर्थात् उपवासादि ३ सयम अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि तीनो का एकत्र होना। धारणा मे भेद होने से सयम मे भेद होता है। ४ धैर्य अर्थात् विषय के सन्निधान मे भी इन्द्रिय निग्रह ५ धर्म अर्थात् वेद की आज्ञा ६ ज्ञान अर्थात् समदर्शन ७ विज्ञान अर्थात् ब्रह्मलीनता ८ सदाचार अर्थात् जातिधर्म, कुलधर्म ९ जप अर्थात् मन्त्र का अभ्यास १० योग अर्थात् चित्तवृत्ति निरोध और ११ वैराग्य अर्थात् देखे हुए और सुने हुए पदार्थों मे तृष्णा न होना। इन ग्यारहो का नाम गिनाया। पर पूरी सेना भाग गई।

छ *भागेउ विवेक सहाइ सहित, सो सुभट सजुगमहि मुरे।*
सद्ग्रन्थ पर्वत कदरन्हि महुँ, जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को, रखवार जग खरभर परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ, जेहि कहुँ कोपिकर धनु सरु गहा॥

अर्थ विवेक सेना सहित भाग गये। सुभट लोगो ने लडाई के मैदान मे पीठ दिखाई और सद्ग्रन्थरूपी पर्वत कन्दरो मे जा-जाकर छिपे। हे कर्तार! क्या होनेवाला है? कौन रक्षा करेगा? जगत् मे खलबली मच गई। ऐसा दो सिरवाला कौन है? जिसके लिए कामदेव ने क्रोधपूर्वक हाथ मे धनुष बाण उठाया है।

व्याख्या सेना भी भाग गई। राजा विवेक भी भाग गये। प्रबल शत्रु से भागकर सैनिक पर्वत के कन्दरो मे छिपते है। यथा रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। सो राजा विवेक और उनकी सेना भागकर सद्ग्रन्थरूपी पर्वत के कन्दरो मे जा छिपी। अर्थात् विवेक ब्रह्मचर्यादि केवल पोथी मे रह गये। व्यवहारभूमि मे उनका पता नही रह गया। विश्वनाथ समाधि मे है। रक्षा कौन करे? ससार भर म खलबली मची।

एक सिर तो काम काट ही लेंगे। अत जिसे दो सिर हो वह काम को क्रोधित करे। यथा केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा। ध्वनि यह कि आज पाँच सिरवाले से काम पड गया है।

धर्म सकल सरसीरुह बृदा। होइ हिम तिनहि दहै सुखमदा। धर्मकमल के लिए स्त्री हिम है और वही काम का परम बल है। यथा तेहि के एक परम बल नारी। इस समय जगत् स्त्रीमय दिखाई पड रहा है। हिम की भारी वर्षा हुई। ससार हिममय हो गया। अत धर्म सरसीरुह की दुर्दशा कहते है। भागेउ विवेक सहाय सहित। हिमसैलसुता सिव व्याह प्रकरण हिमऋतु हो गया।

सभय विवेक कटकु सब भागा। इस पुरइन से भागेउ विवेक सहाय सहित। इत्यादि। अट्ठाईस दल का कमल निकला। यह भी हरिगीतिका छन्द है।

दो. जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम ।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम ॥८४॥

अर्थ : संसार मे जितने चर अचर जीव थे[1] और जिनकी स्त्री पुरुष संज्ञा थी वे सब अपनी अपनी मर्यादा छोडकर काम के वश हो गये ।

व्याख्या : प्रभाव विस्तार का साफल्य दिखाते है। पुंशक्ति और स्त्रीशक्ति से ही जगत् की उत्पत्ति स्थिति है। सभी पदार्थो मे ये दोनो शक्तियाँ हैं। अत स्थूल या सूक्ष्मरूप से काम सब मे वर्तता है पर उस वर्तने की मर्यादा बँधी हुई है। उसका भङ्ग नही होता। यहाँ वेदमर्यादा तो भङ्ग हुई ही थी प्रकृति की मर्यादा भी भङ्ग हुई। जो न नारि हैं न पुरुष है। केवल उनके नाम के साथ स्त्रीलिङ्ग और पुँलिङ्ग के प्रत्यय लगे हुए हैं वे कामवश नही होते। आज वह मर्यादा भी टूट गई। वे भी कामवश हुए। उनमे भी मानो जीवन आगया क्योकि काम जीवनी शक्ति है।

सबके हृदय मदन अभिलाखा । लता निहारि नवहि तरु साखा ॥
नदी उमुगि अंबुधि कहुँ धाई । सगम करहि तलाव तलाई ॥१॥

अर्थ : सबके हृदय मे काम की चाह हुई। लता को देखकर वृक्षो की डालियाँ झुकने लगी। नदियाँ उमडकर समुद्र की ओर दौडी और ताल तलैया आपस मे मिलने लगी।

व्याख्या : जे सजीव जग के विषय मे कहते हैं कि सबके हृदय मे काम की चाह उत्पन्न हुई। अचर : नारि पुरुष अस नाम के विषय मे कहते हैं कि लता मे कुच केशादि कोई लक्षण नारी के नही हैं और न वृक्ष में कोई लक्षण पुरुष के हैं। केवल लता शब्द स्त्रीलिङ्ग है और तरु : वृक्ष शब्द पुँलिङ्ग है। इसी भाँति नदी तलाई आदि मे स्त्रीलिङ्ग का व्यवहार है और समुद्र, ताल आदि मे पुँलिङ्ग का व्यवहार है। सो इस व्यवहार के नाते ये मर्यादा त्यागकर एक दूसरे से मिलना चाहते हैं।

वृक्षो का देखना शास्त्र से सिद्ध है। यथा : तस्मात्पश्यन्ति पादपाः। नियम यह है कि लता शाखा की ओर बढती है। यथा : बढत बौंड लिमि लही सुसाखा। यहाँ मर्यादा त्यागकर शाख लता को ओर झुकने लगा। यहाँ अचर नर नामधारी का कामवश होना दिखाया।

मर्यादा यही है कि वर्षा मे उमगकर नदी समुद्र की ओर दौडती है। यहाँ बिना वर्षा ही समुद्र की ओर दौडी। यहाँ नारी नामधारी अचर का कामवश होना दिखाया। तालाव और तलाई का जल उमगकर एक दूसरे मे जाना दिखलाकर नारी नामधारी अचर और नर नामधारी अचर का परस्पर कामवश होना दिखाया। अचर से अभिप्राय निर्जीव पदार्थ से है। सो प्रकृति मे काम की उमङ्ग आगयी।

---

१. यहाँ से चार हरिगीतिका छन्दो में कामदहन प्रसङ्ग कहा गया है।

जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनि । को कहि सकै सचेतन्ह करनी ॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी । भए काम बस समय बिसारी ॥२॥

अर्थ . जब जड की यह दशा कही गई तब चेतन जीवो की करणी कौन वर्णन कर सकता है। आकाश और थल के रहनेवाले पशु और पक्षी समय भुलाकर कामवश हो गये।

व्याख्या : जड की दशा वर्णन करके दिग्दर्शन करा देते हैं। जड मे काम देखा नही जाता। सो जब उनकी यह दशा है तो चेतन की क्या गति हुई होगी ? मनुष्य कामवश हो प्रकृति के नियम को भङ्ग करता है। पशु पक्षी नियम भङ्ग नही करते। वे समय के नियम से बँधे रहते है। सबके जोडा खाने का पृथक् पृथक् समय हैं। वह नियम टूट गया।

मदन अंध व्याकुल सब लोगा । निसि दिनु नहि अवलोकहि कोका ॥
देव दनुज नर किनर व्याला । प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥३॥

अर्थ . सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा चकई को रात दिन का ज्ञान नही रहा। देव, दनुज, नर, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत और बेताल।

व्याख्या ' देश, काल, पात्र कुछ नही देखते। इसलिए अन्ध कहा। दिवा पश्यति नोलूक' कामान्धो नैव पश्यति। उल्लू तो दिन मे नही देखता कामान्ध देखता ही नही। इन्द्रिय निग्रह मे नितान्त असमर्थ हो गये। इसलिए व्याकुल सब लोगा कहते हैं। चकवा चकई के रात दिन का विचार प्रसिद्ध है। यथा ' सपत चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आस्रमु पीजरा राखे भा भिनुसार। सो उन्हे यह ज्ञान नही रह गया कि यह दिन है या रात। यह दशा वे सम्पूर्ण जगत् की कह रहे है और पृथ्वी मे सर्वत्र केवल दिन नही होता, कही रात्रि रहती है, कही दिन रहता है। जहाँ रात्रि थी वहाँ के चकवा चकई ने रात्रि नही देखी और जहाँ दिन था वहाँ के चकवा चकई दिन क्यो देखने लगे। दिन का निषेध तो केवल मनुष्य के लिए है।

१ देव अर्थात् अदिति के सन्तान स्वर्ग के निवासी २ दनुज अर्थात् दनु या दिति के सन्तान, पाताल निवासी ३ नर अर्थात् मनु के सन्तान, मर्त्यलोक निवासी ४ किन्नर अर्थात् गानवाद्य करनेवाले उपदेव ५. व्याल अर्थात् सुरसा तथा कद्रू के सन्तान सर्प, पाताल निवासी ६ प्रेत, पिशाच, भूत, वेताल अर्थात् वे मृतजीव जिनकी ऊर्ध्वगति नही हुई और अन्तरिक्ष मे रहते है।

इन्हकै दसा न कहेउँ बखानी । सदा काम के चेरे जानी ॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी । तेपि काम बस भए बियोगी ॥४॥

अर्थ मैने इनकी दशा तो . यह जानकर . वर्णन नही की कि ये तो सदा कामदेव के दास हैं। जो सिद्ध, विरागी, महामुनि और योगी थे वे भी काम के वश होकर वियोगी हो गये।

व्याख्या ये नव जाति काम के गुलाम है। पशु पक्षी ऐसे नही है। समय से नियन्त्रित है। अत इन नवो की दशा भी कहते है पर बखान के नही। सिद्ध विरक्त महामुनि और योगी। ये चार इन्द्रियजयी है। स्त्री नही रखते। सो योगी ने अष्टाङ्ग योग छोडा, अष्टाङ्ग मैथुन मे प्रवृत्त हुए। इसलिए वियोगी हो गये। स्त्री ढूँढने लगे उसके लिए विलाप करने लगे।

छ भये कामबस जोगीस तापस पामरन की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामय।
दुइ दड भरि ब्रह्मड भीतर कामकृत कौतुक अय॥

अर्थ जब योगी और तपस्वी भी काम के वश हो गये तब अधमो की कौन कहे? जो सब चराचर को ब्रह्ममय देखते थे वे सब स्त्रीमय देख रहे हैं। स्त्रियाँ पुरुषमय ससार को देखने लगीं और पुरुष स्त्रीमय देखने लगे। कामदेव ने दो घडी के लिए ससार मे यह तमाशा कर दिया।

व्याख्या पामर तो कामवश है ही। योगेश्वरो और तपस्वियो की तो सारी सिद्धि ही ब्रह्मचर्य पर खडी है। वे भी कामवश हो गये। ब्रह्ममय देखनेवाले ज्ञानियो को समदर्शन का अभ्यास है। उन्हे जब नारी का ध्यान आया तो ब्रह्म की भाँति चराचर मे नारी ही देखने लगे। यह नही कि पुरुष ही नारीमय देखे। नारी भी ससार को पुरुषमय देखने लगी। दो दण्ड ४८ मिनट का होता था। सो ४८ मिनट तक ब्रह्माण्ड म यह तमाशा रहा। काम के लिए विश्वविजय खेल है।

सो धरी न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जेहि राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महु॥८५॥

अर्थ सबके मन कामदेव ने हर लिये। किसी के भी हृदय मे धैर्य नही रहने दिया। जिनकी रघुवीर ने रक्षा की वे ही उस समय बच सके।

व्याख्या सब पर काम का बल चल गया परन्तु जिनकी रघुवीर ने रक्षा की उन पर बल न चला। यथा सीमकि चाँपि सकै कोउ तासू। बड रखवार रमा पति जासू वे बच गये। यथा जिन्हहिं मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। गहसिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अस विचारि पंडित मोहि भजही। पायेउ ज्ञान भगति नहिं तजही।

तेपि कामरस भए वियोगी। इस पुरइन का भए कामवस जोगीस तापस इत्यादि अट्ठाइस दलवाला कमल हरिगीतिका छन्द म है। लक्षण वा वर्णन पहिले हो चुका है।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु सभु पहँ गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू। भयउ जथाथिति सब ससारू॥१॥

अर्थ दो घडी तक यह खेला हुआ। जब तक कामदेव शिवजी के पास गया। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया और सारा ससार जैसा का तैसा हो गया।

व्याख्या · देवलोक से शिवजी के पास आने मे कामदेव को ४८ मिनट लगे। घडी और दण्ड का मान एक ही है। इतनी देर तक पुरुप स्त्रीमय और स्त्री पुरुपमय ससार को देखती रही। शिवजी को देखकर काम डर गये। डर से सङ्कोच होता है सो फैला हुआ प्रभाव सिकुड गया। ससार यथास्थिति को प्राप्त हुआ। यहाँ शिवजी का प्रभाव दिखाते है कि जिस कामदेव के धनुप हाथ मे उठाने से ससार मे उथल पुथल मच गई वह मोह की सेना का सर्व प्रथम वीर शिवजी के दर्शन मात्र से भयभीत हो गया। उनसे युद्ध क्या करेगा ?

भए तुरत जग जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गये मतवारे॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरप दुर्गम भगवाना॥२॥

अर्थ तुरन्त जग के सब जीव ऐसे सुखी हो गये जैसे मतवाला मद उतरने पर सुखी होता है। रुद्र को देखकर कामदेव डर गया। क्योकि भगवान् दुराधर्प और दुर्गम है।

व्याख्या सब लोग काम से अन्धे होकर व्याकुल हो रहे थे सो सुखी हो गये। शराब के नशे की भाँति काम सबके सिर पर सवार हो गया था। उसके उतर जाने से लोग होश मे आगये। रौद्ररूप के अधिष्ठाता के सामने काम की गति नही। सो सामना पडते ही डर गया। क्योकि दुराधर्प है। काम का नल उन पर चल नही सकता और न वह उनमे प्रवेश कर सकता था। भगवान् म ज्ञान वैराग्य की स्थिति सर्वदा बनी रहती है।

फिरत लाज कछु कहि नहि जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसमित नव तरु राज विराजा॥३॥

अर्थ लौट चलने मे लज्जा है। कुछ कहा नही जाता। मन मे मरना निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरन्त सुन्दर वसन्त ऋतु को प्रकट किया। नये आम के वृक्षो मे बौर लग गये। बडी शोभा हुई।

व्याख्या मरकर भी कार्य साधने की प्रतिज्ञा करके चले है और देखते ही डर गये। मन मे हुआ कि भाग जाँय पर लब्धप्रतिष्ठ वीर है। भागने म बडी लज्जा है। पुरुषार्थ चलता नही। क्या कहे, क्या न कहे। निश्चय किया कि कार्य न कर सकेगे तो क्या हुआ मर तो जावेगे। यशरूपी शरीर की रक्षा होगी। विरद बाँधि वर वीरु कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट पराई। यह दशा तो नही होगी। अत उपाय रचा। जहा करि नहि जाई पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि किये कुछ होता नही और लौट जाने से लज्जा है।

ब्रह्मदेव ने काम के मित्र रूप मे ऋतुराज की सृष्टि की। अत वसन्त का समय न होने पर भी कामदेव की प्रेरणा से वह प्रकट हो गया। तरुराज से यहाँ

आम के वृक्ष या पारिजात का तात्पर्य है। आगे चलकर कहेंगे भी देखि रसाल विटपवर साखा। आम फूलते ही वायुमण्डल सुवासित हो जाता है।

वन उपवन वापिका तडागा। परम सुभग दस दिसा विभागा ॥

जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा ॥४॥

अर्थ परम सुन्दर वन, उपवन, बावली, सरोवर और दिशाओं के विभाग प्रकट हुए। जहाँ तहाँ मानो प्रेम उमगा पडता है जिसे देखकर मरे हुए मन मे भी काम जाग जाय।

व्याख्या सुन्दर वन उपवन विहार के योग्य, वापिका तडाग जल क्रीडा के योग्य प्रकट हुए। दशदिसा विभाग को परम सुभग कहकर यावत् दृष्टिगोचर वस्तु की मनोहरता कही।

उद्दीपन का वर्णन हो रहा है। उद्दीपन ऐसा तीव्र है कि तनु भाव को प्राप्त हुआ भी काम जाग उठे मानो प्रसुप्त मात्र था। सब ओर से मानो प्रेम उमग पडता है। यहाँ मुएहुँमन कली है। इसका विकास आगे के छन्द मे होगा।

छ जागै मनोभव मुएहुँ मन वन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगध सुमद मारुत मदन अनल सखा सही ॥
विकसे सरन्हि वहु कज गुजत पुज मजुल मधुकरा।
कलहस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहि अपछरा ॥

अर्थ मरे हुए मन म भी काम जाग आवे। ऐसी वन की शोभा कही नही जा सकती। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र, शीतल मन्द सुगन्ध युक्त पवन चलने लगा। सरोवर मे अनेक भाँति के कमल खिल गये। जिनपर सुन्दर भौरा के झुण्ड गुजार करने लगे। कलहस कोकिल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गाकर नाचने लगी।

व्याख्या मन का बीज वासना है। निर्वासन मन मरा हुआ है। क्योकि उसका बीज नष्ट हो चुका है। पर सुन्दरता मे वह प्राणदा शक्ति है कि मरा हुआ मन भी थोडी देर के लिए जाग उठा। अग्नि का सखा वायु प्रख्यात है। पर वह सच्चा मित्र नही है। दीप को वह बुझा देता है। यथा सबइ सहायक सबल के कोउ न अबल सहाय। वात बढावत अगिन को दीपहि देत बुझाय। परन्तु शीतल मन्द सुगन्धित वायु कामाग्नि का सच्चा सखा है। कैसी ही दुर्बल कामाग्नि हो, पर मलयमारुत उसे बढा ही देगा। कभी बुझावेगा नही। इसीलिए कहते हैं मदन अनल सखा सही। तालावा म कमलो का खिलना, भौरो का गूँजना, कलहस, कोकिल और शुक का बोलना। यह सब उद्दीपन है। अब आलम्बन कहते है। करि गान नाचहि अपछरा।

दो सकल कला करि कोटि विधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥

अर्थ अपनी सना के साथ करोडो तरह से सब कला करके हार गया। पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव कुपित हुआ।

व्याख्या काम का सेनापति शृङ्गार है और हावभावादि सैनिक हैं। यथा सेनाधिपो मे शृङ्गारो हावाभावाश्च सैनिका। भाव चार है १ स्थायी २ सञ्चारी ३ अनुभाव और ४ विभाव। स्थायी के नव, सञ्चारी के तैंतीस, विभाव के दो और अनुभाव के अन्तर्गत हाव के ग्यारह भेद हैं। कलाएँ चौसठ है। यथा 'बिव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतु षष्टि कलास्तथा। का पु। सो सब कलाएँ और सब हाव भाव अप्सराओ के नृत्य मे दिखाए गये। काम के सैनिक मारगण जिनका काम धर्माचरण मे विघ्न करना है। वे भी समाधि मे विघ्न करके हार गये। पर समाधि चलायी न चली। क्रोध तो पहिले ही किया था। सो रुद्र के देखने मे भय का सञ्चार हुआ। क्रोध अभिभूत हो गया। मरण ठानकर उपाय किया सो भी खाली गया। 'अत काम पुन कुपित हुआ।

देखि रसाल विटप बर साखा। तेहि पर चढेउ मदन मन माखा॥
सुमन चाप निज सर सधाने। अति रिषि ताकि स्रवन लगि ताने॥१॥

अर्थ. एक आम के वृक्ष को सुन्दर डाली देखकर कामदेव क्रोध करके उस पर चढ गया। उसने फूलो के धनुष पर अपने बाण चढाये और क्रोध से ताककर उन्हे कान तक तान लिया।

व्याख्या ऊँचे पर से निशाना भी खूब बैठता है और मारनेवाला भी सुरक्षित रहता है। इसलिए आम की शाखा पर चढ गया। वह शाखा भी बौर से सुशोभित थी। काम के मन मे बडा आमर्ष हुआ। दूसरे का अहङ्कार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा को आमर्ष कहते हैं।

सधाने कहकर पाँचो बाणो का चलाना द्योतित किया। यथा हर्षण रोचनाख्यञ्च मोहन शोषण तथा। मारणश्चेति सञ्ज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि। का पु। हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण और मारण। ये पाँचो बाण, उन्मादन नाम धनुष पर चढाकर कान तक ताना जिसमे गहरी चोट हो।

छाँडे बिषम बान उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी॥२॥

अर्थ पाँच बाण मारे। वे शिवजी के हृदय मे लगे। तब समाधि भङ्ग हुई और शिवजी जाग पडे। शिवजी के मन म विशेष क्षोभ हुआ। तो आख खोलकर सब ओर देखा।

व्याख्या विषम बाण कहने से स्पष्ट पाँचो बाणो का प्रहार कहा। विषम का अर्थ भयङ्कर भी होता है सो भी ठीक है। काम के पाँचो बाण बडे भयङ्कर हैं। यथा त्वदायुधाना यद्वीर्य तद्वीर्यं न भविष्यति। वैष्णवानाञ्च रौद्राणा ब्रह्मास्त्राणाञ्च तादृशम्। इनका वीर्य वैष्णवास्त्र, रौद्रास्त्र और ब्रह्मास्त्र भी अधिक है। ये पाँचो

शिवजी के हृदय मे लगे। समाधि छूट गई। ब्रह्मदेव का वरदान काम को था कि विष्णु, शिव और मै भी तुम्हारे अस्त्र के वशवर्ती रहूँगा। यथा · अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशवर्त्तिन । का पु । अत शिवजी की समाधि भी खुली और विशेष क्षोभ भी हुआ। समाधि के समय आँखें बन्द थी। अत खोलकर सब ओर देखा कि किधर से बाण आया।

सौरभ पल्लव मदन विलोका। भयउ कोपु कपेउ त्रयलोका ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरिछारा ॥३॥

अर्थ आम के पत्तो मे छिपे हुए . काम को देखा। जो क्रोध हुआ तो तीनो लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला। देखते ही काम जलकर भस्म हो गया।

व्याख्या काम शिकारियो की भाँति पेड पर चढा हुआ पत्तो मे छिपा था। पर शिवजी ने देख लिया। चोट करनेवाले का पता चल गया। काम धर्मविरुद्ध मे प्रख्यात विघ्नकारी है। समाधि इसी ने भङ्ग की। अत उस पर क्रोध हुआ। रुद्र के कोप से ही प्रलय होता है। अत उस प्रलयकारी कोप से तीनो लोक काँप उठे। तीसरा नेत्र शिवजी कृपा के कारण बन्द रखते है। यथा देखत ते जरि जाहिं न लोक खोलत नैन कृपा उरधारे। मुद्राराक्षस। सो क्रोध होने से तीसरी आँख खुल गई। काम जल कर भस्म हो गया। शिव विरोध से काम की मृत्यु हुई।

हाहाकार भयउ जगभारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी ॥
समुझि कामसुख सोचहिं भोगी। भए अकटक साधक जोगी ॥४॥

अर्थ सारे जगत् मे बडा हाहाकार मच गया। देव डर गए और दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग कामसुख का स्मरण करके सोच करने लगे और साधक योगियो का कण्टक जाता रहा।

व्याख्या सनातनी सृष्टि के लोप के भय से हाहाकार मच गया। क्योकि ब्रह्मदेव ने काम को आज्ञा दी थी कि तुम इस सुन्दर रूप के पाँच बाणो से, पुरुष और स्त्रियो को मोहित करते हुए सनातनी सृष्टि करो। यथा अनेन चारुरूपेण पुष्पबाणैश्च पञ्चभि । मोहयन् पुरुषान् स्त्रीश्च कुरु सृष्टि सनातनीम्। का पु। सो काम मारा गया। अब सृष्टि कैसे चलेगी ? काम के मारे जाने से देवताओ का भी काम बिगडा। शंभुशुक्र सम्भूत सुत का योग ही नही रह गया। अब तारकासुर से कैसे रक्षा होगी ? अत देवता डरे और इसी कारण से असुर सुखी हुए कि अब तारकासुर का राज्य अचल हो गया। भोगियो को परिचित सुखो मे से सर्वश्रेष्ठ सुख के नाश से सोच हुआ और योगियो को बडे भारी योगविघ्नकारी के नाश से निर्भयता की प्राप्ति हुई।

छ जोगी अकटक भए पति गति सुनति रति मुरछित भई ।
रोदति वदति बहु भाँति करुना करति सकर पहिं गई ॥
अति प्रेम करि विनती विविध विधि जोरि कर सनमुख रही ।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही ॥

अर्थ योगी अकटक हुए। पति की गति सुनते ही रति मूर्च्छित हो गई। वह रोती कलपती अनेक प्रकार करुणा करती शङ्कर के पास गई। बडे ही प्रेम से अनेक प्रकार से विनती करके हाथ जोड सामने खडी हो गई। शीघ्र प्रसन्न होने वाले प्रभु कृपाल शिवजी स्त्री को देखकर अमोघ वचन बोल।

व्याख्या कामदेव ने विभाव प्रस्तुत कर दिया था। पर वहाँ अनुभाव ही नही हुआ। स्थायी भाव पुष्ट कैसे हो ? अत रति का आगमन न हो सका था। उसने पति की गति सुनी। पहिले तो मूर्च्छित हो गई। पर सज्ञा प्राप्त करने पर रोती विलपती शिवजी के पास गई। रति उनके सामर्थ्य को जानती है। वे मार भी सकते हैं जिला भी सकते हैं। रति की असहायावस्था देखकर वे अमोघ वचन बोले। शिवजी प्रवल पर कोप करते हैं। अबल पर कृपा करते हैं।

दो अब ते रति तव नाथ कर, होइहि नामु अनगु ।
बिनु बपु ब्यापिहि सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसगु ॥८७॥

अर्थ हे रति ! अब से तेरे पति का नाम अनग होगा। यह बिना शरीर के ही सबको व्यापेगा। अब तू अपने मिलने का प्रसङ्ग सुन।

व्याख्या वैधव्य दोप से मुक्त किया। यद्यपि शरीर नही रहेगा। पर क्रिया-कारिता रहेगी। तेरा पति काम जैसा पहिले सबको व्यापता था, वैसे ही व्यापेगा। क्रिया से कर्ता अनुमित होता है। बिना शरीर का होकर रहेगा। अत अनङ्ग नाम होगा अर्थात् स्थूल शरीर का अभाव होगा। परन्तु अशरीरी से मिलन नही होता सो भी होगा। वह प्रसङ्ग अब सुनो।

जब जदुबस कृस्न अवतारा। होइहि हरन महा महि भारा ॥
कृस्न तनय होइहि पति तोरा। वचन अन्यथा होइ न मोरा ॥१॥

अर्थ जब यदुवश मे कृष्णावतार पृथ्वी के बडे भारी भार के हरण के लिए होगा तब तुम्हारा पति कृष्णजी का बेटा होगा। मेरा वचन अन्यथा नही हो सकता।

व्याख्या कृपि शब्द का अर्थ है भूलोक और 'ण' का अर्थ है निर्वृत्ति अर्थात् आनन्द या मोक्ष। इन दोनो भावो के योग स सनातन विष्णु ही सात्वत कृष्ण हैं। यथा कृपिर्भूवाचक शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचक। विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णा भवति सात्वत। विष्णु का ही अपर नाम कृष्ण है। उनके दश अवतार प्रसिद्ध हैं। सो जब उनका यदुवश म पृथ्वी का भार हरण के लिए अवतार होगा तब तेरा

पति कृष्णजी का पुत्र होकर प्रद्युम्न नाम से जन्म ग्रहण करेगा। 'जब' कहने का भाव यह कि वह अवतार द्वापर के अन्त में होगा और इस समय त्रेता का आदि है। अत तुम्हें दो युग का वियोग सहना पड़ेगा। उसके बाद प्रद्युम्न रूप से तुम्हें पति की प्राप्ति होगी। अब इस वाक्य में कोई घटती बढ़ती नहीं हो सकती। तुम्हें पति की प्राप्ति अवश्य होगी। पर दो युगों के बाद। जो मैंने कह दिया वही होकर रहेगा। क्योंकि मेरा वचन अन्यथा होता नहीं। अमोघ है इसीलिए कवि ने भी कहा अबला निरखि बोले सही।

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहौं बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैंकुठ सिधाए॥२॥

अर्थ शिवजी की बात सुनकर रति चली गई। अब दूसरी कथा वर्णन करता हूँ। जब समाचार देवताओं को मिला तब ब्रह्मा आदि देव वैंकुण्ठ गये।

व्याख्या . रति ने समझ लिया कि अब अधिक कहना सुनना व्यर्थ है। जो कृपा होनी थी सो हो गई। सद्य पति की प्राप्ति न होने से रति को हर्ष नहीं है और मिलने की ध्रुव आशा है। इसलिए विषाद भी नहीं। रोती गाती आई थी। शान्त होकर चली गई। रति की कथा समाप्त हुई। सुरन्ह कहीं निज विपति सब से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से फिर प्रसङ्ग उठाते हैं कि यह सब समाचार अर्थात् कामदाह और रति के वरदान का समाचार पाया। तो सब देव मिलकर ब्रह्मदेव के पास गये। वे सबको लिये दिये विष्णु के पास गये। बरियाई व्याह कराना है। विष्णु पर शिवजी की प्रीति है। विष्णु वल्लभ कहलाते हैं। इनको ले चलने से शिवजी पर अधिक दबाव पड़ेगा। इसलिए सब लोग वैकुण्ठ गये।

सब सुर बिस्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपा निकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्हि प्रसंसा। भए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥३॥

अर्थ विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवगण वहाँ गये जहाँ कृपा के घर शिवजी थे। उन लोगों ने अलग-अलग स्तुति की तो चन्द्रभूषण प्रसन्न हो गये।

व्याख्या . वहाँ से सब लोगों ने विष्णु को साथ लिया और अब ब्रह्मदेव और विष्णु को साथ लेकर जहाँ शिवजी थे वहाँ गये। कृपानिकेत : विशेषण देकर कार्य-सिद्धि दिखलायी कृपानिकेत हैं। अवश्य देवताओं पर कृपा करेंगे। उन देवताओं ने आदरातिशय से अलग अलग स्तुति की। बड़ी भारी स्तुति करके भगवान् चन्द्रावतंस शिवजी को प्रसन्न कर लिया। चन्द्रावतंस हैं। अवश्य देवताओं का तापहरण करेंगे।

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवौं स्वामी॥४॥

अर्थ कृपासागर शिवजी कहने लगे हे अमरगण। कहो किसलिए आये। ब्रह्मदेव ने कहा हे प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं फिर भी हे स्वामिन्! मैं भक्तिवश विनती करता हूँ।

व्याख्या वृषो हि भगवान् धर्म । भगवान् धर्म ही वृष है। वह है केतु ध्वजा जिसके ऐसे शिवजी को वृषकेतु कहते है, अर्थात् जिधर धर्म रहता है उधर ही शिवजी रहते है और कृपासिन्धु भी है। नित्य नई नई तरङ्गें कृपा की उठा करती है। देवताओ की स्तुति सुनकर बोले। अमर सम्बोधन से अभयदान दे रहे है। जिस भाँति रघुनाथजी ने विभीषण को आते ही लङ्केश कहकर सम्बोधन किया था फिर आने का कारण पूछने है।

ब्रह्मदेव के कहने से ही सब कुछ हो रहा है। अत वे ही प्रमुख वक्ता है, वाल कि आप प्रभु है, सब कुछ करने म समर्थ हैं और सबके अन्तर के प्रेरक भी है। आप ही क प्रेरणा से आया भी हूँ। फिर भी विनय करना भक्त का कर्तव्य है।

दो सकल सुरन्ह के हृदय अस, सकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहै, नाथ तुम्हार विवाहु ॥८८॥

अर्थ हे कल्याण करनेवाल, हे नाथ! सब देवताओ के मन मे इस बात का वडा उत्साह है। सब चाहते है कि तुम्हारा विवाह अपनी आँखो से देखें।

व्याख्या मैंने तो पहिला व्याह जो सती के साथ हुआ था सो देखा है। उस मन्वन्तर के देवता अब रहे नही। ये इस मन्वन्तर के देवता हैं। इन्होने नही देखा है। केवल तुम्हारे व्याह की कथा सुनते आये है। अत ये लाग आपका व्याह अपनी आँखो से देखना चाहते हैं। यह विनय की रीति है कि अन्य कारणो के रहते हुए भी अपनी प्रीति को ही आगे रक्खा।

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥
काम जारि रति कहु बर दीन्हा। कृपासिधु यह अति भल कीन्हा ॥१॥

अर्थ हे कामदेव का मद भङ्ग करनेवाल! आप ऐसा कुछ कीजिये जिसम हम लोग उस उत्सव को आख भरकर देखें। हे कृपासिन्धु! आपने कामदेव को भस्मकर रति को जो वर दिया सो बहुत अच्छा किया।

व्याख्या आप काम का मद भङ्ग करनेवाल है। आपको विवाह से कोई प्रयोजन नही है पर भक्तो की रुचि रखने के लिए विवाह की ओर अपनी प्रवृत्ति कीजिये और इसम शीघ्रता हो, जिसम दवता लोग आख भरकर देख ल और अपने जन्म को सफल कर। नही तो कौन जाने तारकासुर द्वारा किस समय कौन गति इनकी हो। फिर ये उस उत्सव का न देख सकेगे।

अपराधी को दण्ड देना भली बात है। यथा जगजय मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ। काम ने जैसा किया वैसा पाया पर रति का जो वरदान आपने दिया यह और भी अच्छा हुआ। सनातनी सृष्टि का लोप भी न हुआ और काम भस्म भी हो गया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारवती तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अगीकारा ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! यह प्रभुओ का सहज स्वभाव है कि पहिले दण्ड देते हैं और पीछे से कृपा करते है। पारवती ने अपार तप किया है। अब उसे अङ्गीकार कीजिये।

व्याख्या : यह कार्य आपके सदृश हुआ। वडे लोग पहिले दण्ड देते हैं पीछे से कृपा करते हैं। यह उनका सहज स्वभाव होता है। वेदमार्ग की रक्षा के लिए दण्ड देते हैं। यथा : जौ नहि दड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा। पर जिसे दण्ड मिला उसे दु ख हुआ यह समझकर पीछे से कृपा करते है। वस्तुतस्तु उनका कोप किसी पर नही होता। कोप भी उनकी कृपा ही है। काम को भस्म किया यह सागत करने का उदाहरण है। उसकी स्त्री रति को वर दिया यह पुनि कीन्ह पसाऊ का उदाहरण है। इसी भाँति सती की साधारण ताडना नही हुई। अब उन्होंने पार्वती होकर अपार तप किया है। यथा : अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी। अब उन पर कृपा होनी चाहिए। उन्हे अङ्गीकार करना चाहिए। रुद्राणीपद के योग्य तपस्या हो चुकी।

सुनि विधि विनय समुझि प्रभु वानी। ऐसइ होउ कहा सुखमानी ॥
तव देवन्ह दुंदुभी वजाई। वरषि सुमन जयजय सुरसाई ॥३॥

अर्थ : ब्रह्मा की विनती सुनकर और प्रभु की वाणी समझकर शिवजी ने सुख मानकर कहा : एवमस्तु। तब देवताओ ने नगाडे वजाए। फूलो की वर्षा को और कहने लगे : हे देवताओ के स्वामी ! तुम्हारी जय हो जय हो।

व्याख्या . ब्रह्मा विश्व के कर्ता हैं। उनके विनय का मूल्य है। तिस पर प्रभु ने जाते समय जो कहा था कि हर ! तुम्हार पन रहेऊ। अब उर राखहु जो हम कहेऊ। उसे समझा कि इसी अवसर के लिए ऐसा आदेश हुआ था। वह परिस्थिति सामने आगई। अत शिवजी ने स्वीकार कर लिया। एवमस्तु कहने की देर थी कि देवताओ ने जीत का नगाड़ा वजा दिया। कामदाह से डर गये थे। असुर लोग सुखी हो गये थे सो पासा पलट गया। जीत के मार्ग का भारी असमञ्जस दूर हुआ। अथवा व्याह की स्वीकृति का उत्सव मनाया जा रहा है, इसलिए पुष्प वर्षा हो रही है।

अवसर जानि सप्तरिषि आए। तुरतहि विधि गिरि भवन पठाए ॥
प्रथम गए जहं रही भवानी। वोले मधुर वचन छलसानी ॥४॥

अर्थ : अवसर जानकर सप्तर्षि आये। ब्रह्मदेव ने उन्हे तुरन्त हिमवन्त के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गए जहाँ भवानी थी और छल से भरे हुए मीठे वचन वोले।

व्याख्या : सप्तर्षि भी अवसर देखते रहे। जगदम्बा ने कहा है : रहि न जाइ विनु किए वरेखो। सो हम लोग ही वरेखी करेंगे। वडी अभिलाषा है कि इस महा-मङ्गल में हम भी किसी प्रकार से निमित्त वनें। अब अवसर आया है कि ब्राह्मण लग्नपत्री लिखाने के लिए भेजा जाय तो सप्तर्षि पहुँच गये। ब्रह्मदेव को स्वयं जल्दी

पडो थी परन्तु हिमवान् के यहाँ भेजा। क्या कहकर भेजा ? यह बात यहाँ नही लिखते। कार्य देखकर आपही पता लग जायगा।

भगवती के मुख से प्रेममय उत्तर सुनने के लिए उत्साह से भरे हुए पहले भवानी के पास पहुँचे। छल से सना हुआ मीठा वचन बोले। भावोपहत न होने से यहाँ छलयुक्त वचन भी प्रशस्त है। जगदम्बा के मुख से प्रीति और विश्वासयुक्त वचन सुनना चाहते हैं। अतएव अतिमूढ की भाँति बात बोलते हैं।

दो. कहा हमार न सुनेउ तब, नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पनु, जारेउ काम महेस ॥८९॥

अर्थ नारद के उपदेश से तब तुमने हमारा कहना नही सुना। अब तुम्हारा प्रण झूठा हो गया। क्योकि महेश ने काम को जला दिया।

व्याख्या उस समय हमारी बात सुनने से विवाह सार्थक होता। नारद के उपदेश से तुमने सहज उदासी पति चाहा। उस उदासी ने काम को ही भस्म कर दिया। विवाह ही निष्प्रयोजन हो गया। ब्राह्म विवाह मे भी कन्यादान अथवा प्रतिग्रह में काम की ही प्रधानता है। मन्त्र पढा जाता है। को दात् कस्मा अदात्, कामोदात् कामायादात् कामो दाता काम प्रतिगृहीता कामैतत्ते। किसने दिया किसको दिया, काम को दिया। हे काम! यह सब तेरे लिए है। जब काम ही नही तब विवाह क्या ? पुत्रप्रयोजना भार्या। पुत्र के लिए ही स्त्री है। अत जो तुमने प्रण किया था कि बरौ सभु न त रहौ कुमारी। वह प्रण झूठ पड गया। क्योकि अब तो विवाह होना ही बन्द हो जाने का लक्षण है।

सुनि बोली मुसुकाइ भवानी। उचित कहेउ मुनिबर बिग्यानी ॥
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि संभु रहे सविकारा ॥१॥

अर्थ यह सुनकर भवानी मुसकरा कर बोली हे विज्ञानी मुनिश्वरो! तुमने ठीक कहा। तुम्हारी समझ मे शिवजी ने अब काम को जलाया है। अब तक शिवजी सविकार रहे।

व्याख्या मुसकराहट मुनियो की अज्ञान भरी उक्ति पर अथवा इस बात पर कि पहिली परीक्षा से सन्तुष्ट न हुए अब फिर परीक्षा लेने आये। 'उचित कहेउ' का भाव यह कि मननशील और ब्रह्मलीन महात्माओ के ऐसे विचार! व्यङ्गोक्ति से कहती है कि तुम लोग अनुचित बोल रहे हो। तुम लोग विज्ञानी मुनि होकर भी आज तक शिवजी को कामवश समझते थे ? शिवजी का स्वरूपज्ञान तुम लोगो को हुआ ही नही। मुनि विज्ञानी कैसे हुए ?

हमरे जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौ मै सिव सेयेउँ असजानी। प्रीति समेत करम मन बानी ॥२॥

अर्थ हमारा समझ मे तो सदा शिव सदा योगी है। जन्म रहित, निन्दा

रहित, काम रहित और भोग रहित है। जो मैंने यह समझकर मन वचन और कम से शिव जी की सेवा प्रीति से की हो।

व्याख्या : 'हमरे जान' का भाव यह है कि तुम्हे मेरे स्वरूप का भी ज्ञान नही है। विवाह की इच्छा मे यहाँ काम का प्रश्न हो नही है। लौकिक प्रीति मे काम का प्रश्न उठता है। मैंने तो शिवजी को सदा योगी, अकाम और अभोगी समझकर उनके लिए तप किया है। काम के जलने से विवाह मे क्या बाधा हुई ? मेरे लिए तो काम सदा ही दग्ध है। रागद्वेषयुक्त पुरुष का ही जन्म होता है। उसी की निन्दा होती है। वह सकाम होता है। भोगलिप्त होता है। शिवजी द्वन्द्व से परे हैं। अज, अनवद्य, अकाम और अभोगी हैं। यही जानकर मैंने उनकी सेवा प्रीति के साथ मनसा वाचा कर्मणा की है।

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहि सत्य कृपानिधि ईसा ॥
तुम्ह जो कहेउ हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा ॥३॥

अर्थ : तो हे मुनीश्वरो ! सुनो, कृपासागर शिवजी मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे और तुमने जो यह कहा कि शिवजी ने काम को भस्म कर दिया। सो यह तुम्हारा बडा भारी अविवेक है।

व्याख्या : तुमने क्या समझा कि मैंने शिवजी को सकाम और भोगी समझ कर सेवा की थी ? मैं जिन गुणों पर लुब्ध थी वे ये हैं कि शिवजी, अजन्मा, निर्दोष, अकाम और अभोगी हैं। अब अपने प्रण को प्रमाण देती हैं कि यदि वह बात सत्य है तो मेरे प्रण को कृपानिधान शङ्कर पूरा करेंगे। तुम्हारे झूठ कह देने से झूठ न हो जायगा। यदि नारद के मुख से निकला हुआ पडक्षर मन्त्र मनन करनेवाले का त्राण करनेवाला हो और यदि भक्तिपूर्वक मैंने जप किया हो तो हर कृपा करे। यथा : यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽय स्यात्पडक्षरः। यदि भवत्या मया जप्त हरस्तेन प्रसीदतु।

मैंने कामवासना से शङ्कर की उपासना की है : ऐसी धारणा तुम लोगो का वडा अविवेक है। पर शङ्कर मे अभिमान का आरोप करना कि उन्होने काम को जलाया : यह तुम्हारा और वडा अविवेक है। दीपक पतङ्गो को जलाने नही जाता : वे स्वयं दीपक मे जा जाकर जलते हैं।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाय नहि काऊ ॥
गए समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई ॥४॥

अर्थ : अग्नि का सहज स्वभाव ही गरम है। पाला उसके निकट कभी नही जाता। और यदि पास जाय तो अवश्य नष्ट होगा। यही गति काम और महादेव जी की है।

व्याख्या : अग्नि का स्वभाव ही पाला के एकदम विपरीत है अर्थात् उष्ण है। पाला सबके निकट जाता है। आग के निकट नही जाता। जहाँ आग जलती

रहती है उसके दो चार हाथ दूर तक पाला नही गिरता। इसी भाँति शिवजी का स्वभाव ही निर्वासन कामनाशन है। काम सबके निकट जाता है शिवजी के समीप नही फटकता। निकट जायगा तो जलेगा ही इसमे शिवजी का क्या अपराध है ?

दो हिय हरषे मुनिवचन सुनि, देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानी नाइ सिर, गये हिमाचल पास ॥९०॥

अर्थ बात सुनकर और प्रीति विश्वास देखकर मुनि लोग हर्षित हुए। भवानी को सिर नवाकर हिमाचल के पास गये।

व्याख्या मुनिजी भवानी के मुख से प्रीति और विश्वास के उद्गार सुनने के लिए ही आये थे। प्रीति देखी कि शिवजी ने काम को जलाया यह दोषारोपण नही सह सकी। तुरन्त बोली यह अति बड अविवेक तुम्हारा। विश्वास देखा कि गुरु रूप से नारद पर और इष्टदेव रूप म शिवजी पर कैसा अटल विश्वास है। कहती है तौ हमार प्रण सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा। प्रथम गये जहँ रही भवानी। से उपक्रम और चले भवानी नाइ सिर। से उपसहार किया। तुरतहि विधि गिरि भवन पठाए का साफल्य है। गये हिमाचल पास।

सबु प्रसगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुख पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवत बहुत सुखु माना॥१॥

अर्थ हिमाचल को सारी बात कह सुनाई। काम के भस्म होने की बात सुनकर बडे दु खी हुए। फिर रति के वरदान की बात कही। उसे सुनकर हिमवान् ने बहुत सुख माना।

व्याख्या इस व्याह मे ये ही अगुआ हैं। इन्होने ही आकर शिवजी की स्वीकृति कही और गिरिजा को घर लाने के लिए कहा था। अब फिर इतने दिन के बाद आये है। अत उसके बाद की वरपक्ष की सब घटनाएँ सुनाई। काम के जलने का समाचार सुनकर हिमाचल बडे दु खी हुए। इतने दिन की बडी तपस्या लडकी की व्यर्थ गई। फिर रति का वरदान सुनकर बडे प्रसन्न हुए कि कन्या की तपस्या सफल हुई। माता पिता की अब भी वही लौकिकी दृष्टि है।

हृदय विचारि सभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। वेगि वेदविधि लगन धराई॥२॥

अर्थ शिवजी की प्रभुता को मन मे सोचकर हिमाचल ने मुनियो को आदर सहित बुलवाया और शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घडी सोधवायी। जल्दी वेद की विधि से लग्न निश्चय कराया।

व्याख्या पहिले यही भाव मन मे आया कि वर वस्तुत उदासीन है। पर जब उनकी प्रभुताई का विचार किया कि काम को मार भी सकते है, जिला भी सकते हैं तो सब शङ्का जाती रही। ऐसे समर्थ से जिसकी प्रभुता काम पर भी चले अवश्य व्याह करना चाहिए। अत सादर ज्योतिर्विद् मुनि बुलाये गये। वैशाख

सुदी पञ्चमी गुरुवार, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, मेष लग्न, भरणी के आदि मे सूर्य यही लग्न मुनियो ने स्थिर किया। यथा माधवे मासि पञ्चम्या सिते पक्षे गुरोर्दिने। चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्या भरण्यादौ स्थिते रवौ। का पु। चौथे दिन व्याह का निश्चय हुआ। दूर का लग्न ठीक नही।

पत्री सप्तरिषिन्ह सो दीन्ही। गहिपद विनय हिमाचल कीन्ही ॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्हीं पाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती ॥३॥

अर्थ लग्नपत्रिका ऋषियो को दी और हिमाचल ने पाँव पकडकर विनती की। वह पत्री उन्हाने जाकर ब्रह्मदेव को दी। पढते समय हृदय मे प्रेम समाता नही।

व्याख्या ' वह लग्नपत्री सप्तर्षि को दी गई। उन्ही के हाथ भेजना है। सप्तर्षि को आज्ञा कैसे दे। इसलिए चरण पकडकर विनय की। विधि ने ही हिमालय के घर भेजा था। उन्हे छोडकर समधी कौन बने? सो लग्नपत्री लाकर ब्रह्मदेव को सप्तर्षियो ने दी। शङ्कर के चरणो मे अतिप्रेम है। अत लग्नपत्री बाँचने मे प्रेम का उद्गार हो आया।

लगन बाँचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई ॥
सुमन बृष्टि नभ बाजन बाजे। मगल कलस दसहु दिसि साजे ॥४॥

अर्थ लग्न पढकर ब्रह्मा जी ने सबको सुनाया। सब मुनि और देवगण हर्षित हुए। आकाश से फूलो की वर्षा हुई। बाजे बजने लगे और दशो दिशाओ मे मङ्गल कलश सजाये गये।

व्याख्या सकल सुरन्ह के हृदय अस सकर परम उछाहु। निज नयनन्ह देखा चहहि नाथ तुम्हार बिबाहु। सब देवताओ के हृदय मे शिवजी का विवाह देखने का बडा उत्साह था। इसलिए सबको लग्नपत्री बाँचकर सुनाई। लग्न निश्चित सुनकर देवसमाज मे बडा हर्ष हुआ। शिवजी की विवाह के लिए स्वीकृति देते ही देवताओ ने दुन्दुभी बजायी थी। पुष्पवृष्टि की थी। यथा तब देवन्ह दुदुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुरसाई। अब लग्नपत्री सुनकर फिर पुष्पवृष्टि हो रही है, बाजे बज रहे है। व्याह को चार ही दिन हैं। इसलिए दशो दिशाओ मे दिक्पालो ने मङ्गलकलश स्थापित किए। दशो दिशाओ मे परम उत्साह है।

दो लगे सँवारन सकल सुर, बाहन बिबिध बिमान।
होहिं सगुन मगल सुभद, करहि अपछरा गान ॥९१॥

अर्थ सब देवता अपने भाँति भाँति के वाहन और विमान साजने लगे और शुभ देनेवाले सगुन मगल होने लगे, अप्सराएँ गाने लगी।

व्याख्या . ब्रह्मदेव ने सब देवताओ के पास रुद्रगणो द्वारा नेवता भेजा। देवताओ ने अपना अपना वाहन और विमान साजा। अपना साज समाज ठीक किया। ठाट बाट से बारात करनी है, हृदय मे उत्साह है। अप्सराएँ मङ्गल गान गाने लगी। जो बरात के लिए बाहर निकलता है, उसे भले भले सगुन होते हैं।

यथा विधि पठाए जहँ तहँ सब सिवगन धावन। सुनि हरखहिं सुर कहहिं निसान वजावन। रचहिं विमान वनाइ सगुन पावहिं भले। निजनिज साज समाज साजि सुरगन चले।

सिवहि[1] सभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौर सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे व्याला। तन विभूति पट केहरि छाला॥१॥

अर्थ शिवजी का शृङ्गार उनके गण कर रहे है। जटा के मुकुट मे सांपो का मौर सँवारा गया। साँप के ही कुण्डल और कंकन पहने। शरीर पर विभूति और कपडे के स्थान पर व्याघ्राम्बर था।

व्याख्या वारातियो का साज वाज कहकर दुलहे का शृङ्गार कहते हैं। शम्भुगण शिवजी का शृङ्गार करने लगे। दूसरे को उनके शृङ्गार की विधि का पता नही और न गणो को सासारिक शृङ्गार की विधि का पता है। सो जटा मुकुटाकार लपेटी गई और सब शृङ्गारो के पहिले ही रङ्ग विरङ्गी साँपो का मौर पहना दिया गया। माला का भी काम साँपो से ही लिया गया। सँपेले कान मे कुण्डल और हाथ मे कगन की जगह पहनाये गये क्योकि गणो ने कान मे कुण्डल हाथ मे कगन पहिने तथा मौर बाँधे दुलहो को देखा था। अङ्गराग की जगह विभूति लगाई गई। और जामा जोडा की जगह व्याघ्राम्बर से काम लिया गया। व्याह करने जा रहे है अत नग्न रहना ठीक नही। यह शृङ्गार का कौतुक हो रहा है।

ससि ललाट सुदर सिर गंगा। नयन तीन उपवीत भुजगा॥
गरल कठ उर नर सिर माला। असिव वेप सिवधाम कृपाला॥२॥

अर्थ मस्तक पर चन्द्रमा। सिर मे सुन्दर गङ्गाजी। तीन नेत्र और साँपो का जनेऊ। कण्ठ मे विप और गले मे नरमुण्डों की माला। वेप तो अमङ्गल है पर कृपाल कल्याण के धाम है।

व्याख्या दो वस्तुएँ अनूठी भी थी। एक ललाट पर चन्द्रमा और दूसरी शिरा पर गङ्गाजी। सो ये भी चण्डपुरुपार्थ के द्योतक हैं। दुलहे के शृङ्गार योग्य नही। इधर तीन आँखें और साँपो के यज्ञोपवीत से करालता वढ गई। गरल कण्ठ मे था ही। जब शृङ्गार की पूर्ति के लिए मुण्डमाल पहना दिया गया तो भयानक अमङ्गल वेप हो गया और वडे क्रूर जँचने लगे। पर अलौकिकता यह कि जिसका वेप ऐसा अमङ्गल, वे स्वय मङ्गलमय है। जिसका शृङ्गार ऐसा कराल है वे स्वय कृपाल हैं। लोक मे ठीक इसके विपरीत है। सौम्य को सौम्य वेप और कराल को कराल वेप प्रिय लगता है। पर, यद्यप्यमङ्गलानीह सेवते शङ्कर सदा। तथापि मङ्गलन्तस्य

---

१. शिवजी तमोगुण के अधिष्ठाता होने पर भी त्रिगुणातीत हैं इसीलिए अशुभ भेष शिवधाम है। भस्म, गङ्गाजी, तृतीय नयन, सर्प और डमरू के व्याज से पाँचो तत्त्वो को धारण किए हुए हैं। चन्द्र और गरल के व्याज से सञ्जीवनी और मारण शक्ति जो सब शक्तियो की सार हैं : धारण किये हुए हैं।

स्मरणादेव जायते। शिव. पु०। यद्यपि शङ्कर अमङ्गलो का ही सेवन करते हैं परन्तु उनके स्मरण से मङ्गल होता है।

कर त्रिसूल[1] अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढि बाजहिं बाजा॥
देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाही। वर लायक दुलहिनि जग नाही॥३॥

अर्थ : हाथ मे त्रिशूल और डमरू शोभायमान हुआ। बैल पर चढकर चले। बाजे बजने लगे। शिवजी को देखकर देवताओ की स्त्रियाँ मुसकराई कि वर के योग्य ससार मे दुलहिन नही है।

व्याख्या भयानकता मे यदि कोई कमी रह गई तो वह त्रिशूल से पूरी कर दी गई और आनन्द का समय है कदाचित् ताण्डव की आवश्यता पड जाय। अत हाथ मे डमरू भी दे दिया गया। यथा ताडवित नृत्य पर डमरू डिमि डिमि प्रवर अशुभ इव भाँति कल्यान रासी। सवारी के लिए बैल खड़ा ही था उसी पर सवार हो गये। दुलहे की सवारी पहिले ही चली। बाजा पीछे बज रहा है। शची सारदा आदिमुसकराई कि वाह रे वर का शृङ्गार। इनके अनुरूप दुलहिन ससार म कहाँ मिलेगी? अनुपयुक्त रूप रचना से आह्लाद युक्त मनोविकार हुआ। 'मुसुकाही' से उत्तम हास कहा।

बिस्नु बिरंचि आदि सुरव्राता। चढि चढि बाहन चले बराता॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा॥४॥

अर्थ विष्णु और ब्रह्मा आदि देवसमूह बाहनो पर चढ चढकर बारात मे चले। समाज सब प्रकार से अनुपम था। फिर भी बारात दुलहे के अनुरूप नही थी।

व्याख्या पहिले दुलहा, उसके पीछे बाजा और उसके भी पीछे विष्णु, ब्रह्मादि बराती चले। अनुरूप दुलहिन तो मिलने की नही, बारात भी अनुरूप नही। देवताओ का समाज अति सुन्दर था। बारात का नियम पालन के लिए देवताओ ने चारो ओर से शिवजी को घेर लिया। यह समाज सात्त्विको के इष्टदेवो का है। यथा यजन्ते सात्त्विका देवान्।

दो बिस्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज॥९२॥

अर्थ तब विष्णु ने सब दिक्पालो को बुलाया और हँसकर कहा कि सब लोग अलग अलग अपने अपने समाज के साथ चलो।

व्याख्या विकृत वेषभूषा और वाक्य ही हास्यरस का आलम्बन है। सो दूल्हे के वेष भूषा पर विष्णु बिहँसे। बिहँसना मध्यम हास है। दस दिक्पालो के

१ त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूलो का प्रतीक है। वृष धर्म का प्रतीक है। भुजङ्ग अनन्त्य का प्रतीक है। नरशिरमाल मनुष्य मात्र का प्रतीक है।

धकार मे ही सब देवता है। विष्णु ने सब दिक्पालो को बुलाकर कहा कि अपना-
ना समाज लेकर अलग-अलग होकर चलो। जिसमे स्पष्ट प्रतीत हो कि यह अमुक
क्पाल का समाज है। अपनी अपनी तैयारी और त्रुटि का अपने को ही जिम्मेदार
ना चाहिए। एक की त्रुटि के सब जिम्मेदार न समझे जायँ। आपलोग अपना-
ना वाहन विमानादि साजकर आये हैं। अत सबकी अलग-अलग शोभा दिखाई
। शिवजी स्वय ईशान कोण के दिक्पाल है। इनकी शोभा अलग रहे।

अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई॥
स्नु बचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने॥१॥

अर्थ यह बारात वर के मेल की नही है। पराए गाँव मे चलकर हँसी
राओगे। विष्णु की बात सुनकर सब देवता मुस्कुराए और अपनी सेना लेकर
ग हो गये।

व्याख्या बारात के अननुरूप वर को देखकर यही हँसी हो रही है। कन्या
के लोग हँसी के लिए वर पक्ष का छिद्रान्वेषण करते हैं। सो हमलोगो के बीच
के चलने से सबकी हँसी होगी। विवाह के समय भी ये इसी रूप से चले तो इनकी
ी कराने की इच्छा है। अत इन्हे अलग चलने दो। परन्तु वर को छोड़कर
रात चल भी नही सकती। अतः सब कोई अपना अपना समाज अलग करके चलो
समे स्पष्ट प्रतीत हो कि कौन समाज किसका है। यथा : बिबुध बोलि हरि कहेउ
कट पुर आएउ। आपन आपन साज सबहिं बिलगाएउ।

यह वचन भी समयानुरूप ही है। जब सब लोग विलग विलग हो जायँगे
शिवजी को अपना समाज बुलाना पडेगा। तब हँसी मे जो कुछ कसर है सो
पूरी कर देने की विष्णु भगवान् की इच्छा है। अत देवता लोग मुस्कराए
र विष्णु की आज्ञानुसार बारात सजी।

नही मन महेसु मुसुकाही। हरि के बिंग बचन नहि जाही॥
ति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥२॥

अर्थ शिवजी मन ही मन मुस्कराते है कि हरि का व्यङ्ग बोलना नही
टता। प्रिय के अति प्यारे वचन सुनकर भृङ्गी को भेजकर सब गणो को
लवा लिया।

व्याख्या देवियाँ मुस्कराई। विष्णु विहँसे। फिर सब देवता मुस्कराए। अब
स्यरस की पूर्ति मे केवल वर के हँसने की देर थी। सो वह भी मन ही मन
करा रहे हैं। हरि के वचन मे व्यङ्ग रहता है। सो यहाँ भी इनके वचन मे
ङ्ग है। इनकी इच्छा है कि हमारे गण भी बारात मे सम्मिलित हो। इस
साह से वञ्चित न रहे और बारात भी मेरे जैसी विचित्र दिखाई पडे। शिवजी
आज्ञा भृङ्गीगण को हुई कि सब गणो को बुलाओ। अर्थात् पहिले केवल मुख्य
साथ रहे। अब सबके लिए आज्ञा हुई।

सिव अनुसासनु सुनि सब आए। प्रभुपद जलज सीस तिन्ह नाए ॥
नाना वाहन नाना वेषा। बिहँसे सिव समाज निज देखा ॥३॥

अर्थ : शिवजी की आज्ञा सुनकर सब आये। और उन्होने प्रभु के चरण कमलो मे सिर झुकाया। उनके नाना प्रकार के वाहन थे और नाना प्रकार का वेष था। शिवजी अपना समाज देखकर हँसे।

व्याख्या : ये दूसरे का अनुशासन सुननेवाले नही। शिवजी का अनुशासन टालनेवाले भी नही। भृङ्गी द्वारा सब बुलाये गये। इसलिए सब आये। प्रभु के चरणो मे प्रणाम करते हैं और किसी को नही। सेना का नियम है कि एक सा वाहन और एक सा वेष प्रयत्नपूर्वक रक्खा जाता है। परन्तु शङ्कर की सेना विलक्षण है। न एक सा वाहन और न एक सा वेष है। यहाँ सेना और समाज समानार्थक शब्द हैं। यथा : बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज तथा : निज निज सेन सहित बिलगाने। व्यङ्ग्य वचन सुनकर शिवजी तो मन ही मन मुसकराए थे। अब अपना समाज देखा तो हँस पडे।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना ॥४॥

अर्थ : कोई बिना मुख का है और किसी को कई मुख है। कोई बिना हाथ पाँव का है और किसी को बहुत से हाथ पाँव है। किसी को बहुत सी आँखें हैं किसी को एक भी नही। कोई बडा मोटा है और कोई अत्यन्त दुबला पतला है।

व्याख्या : अति आश्चर्यमय दृश्य है। कोई तो रुण्डरूप ही है और किसी को मुण्ड ही मुण्ड है। कोई बिना हाथ पैर के वर्तुलाकार है। कोई केकडे की भाँति बहुत हाथ पैरवाला है। इत्यादि। निदान शङ्कर के गण सब एक से एक विचित्र हैं। किसी के रूप और वाहन से दूसरे का मेल नही और वे असख्यात हैं। इन्ही मे राजस के इष्टदेव यक्ष राक्षसो का अन्तर्भाव है। यक्ष राक्षस राजसिक लोगो के पूज्य हैं। यथा यक्षरक्षांसि राजसा।

छ तन[१] खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहि बनै ॥

१ यहाँ से बराबर रुद्रसज्ञक छन्दो मे भगवान् का विवाह वर्णित है। ये सब छन्द हरिगीतिका हैं। इसी भाँति आदित्य सज्ञक छन्दो मे श्रीआदित्यकुलतिलक श्रीरामचन्द्र का विवाह वर्णित है।

सो. नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
देखत अति विपरीत, बोलहिं बचन विचित्र विधि ॥९३॥

अर्थ . कोई बिल्कुल दुबला कोई खूब मोटा कोई पवित्र कोई अपवित्र दशा धारण किये हुए है। भयङ्कर गहना पहने हाथ मे कपाल लिये और सब शरीर मे टटका ताजा खून लपेटे हुए है। किसी का मुँह गधे का सा किसी का कुत्ते का सा किसी का सुअर का सा और किसी का गीदड का सा था। गणो के असख्य वेष को कौन गिने। बहुत प्रकार के प्रेत पिशाच और जोगियो[1] की जमात है। जिसका वर्णन नही किया जा सकता।

सब भूत प्रेत बडे मौजी है। वे नाचते हैं और गीत गाते हैं। देखने मे अत्यन्त बेढङ्गे हैं और उनके बोलने की विधि भी विचित्र है।

व्याख्या तावदन्ये सामायाता भूतप्रेतपिशाचका। वक्रतुण्डास्तथाकेचित् विरूपाश्च तथा परे। विरुद्धवाहना· केचित् दुरालापकरास्तथा। डमरूवादयन्तो वै गल्लनादास्तथापरे। शिवपुराणे। कमठ खपर मढि खाल निसान बजावहिं। नर कपाल भरि सोनित पियहिं पियावहिं। पा म।

प्रेत और भूत तामस लोगो के इष्ट देवता हैं। यथा : प्रेतान् भूतगणाश्चैव यजन्ते तामसा जना। अत. इस बारात मे सात्त्विक राजस तामस तीनो प्रकृति के लोगो के इष्टदेव हैं। निदान यह बारात ही इष्टदेवो की है। इसीलिए कहा कि उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहुभाँती। ये रामयशसरित्·सरयू : के जलचर हैं। रामभक्तो को इनसे बचकर रहना चाहिए। जलचर मनुष्यो को निगल जाते है। इसी भाँति इष्टदेव भी उपासक को अपने मे मिला लेते हैं। प्रेत भूत के उपासक प्रेत भूत हो जाते हैं। यक्ष राक्षस के उपासक यक्षराक्षस हो जाते है और देवताओ के उपासक देवता हो जाते है। और प्रभु कहते हैं कि मेरे उपासक मुझे प्राप्त होते हैं। यथा देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि। अत· रामभक्तो को अन्य की उपासना मे तन्मय न हो जाना चाहिए।

नाचहिं नाना रग तरग बढावहिं। अज उलूक बृकनाद गीत गनगावहिं। पा म

देखत अति विपरीत का भाव यह है कि वस्तुत विपरीत नही है शङ्कर के गण भी मङ्गलमय हैं।

जस[2] दूलहु तसि बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता ॥
इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति विचित्र नहिं जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ जैसा दूल्हा था वैसी बरात बन गई। रास्ते मे जाते जाते अनेक भाँति के कौतुक होते जा रहे है। यहाँ हिमाचल ने ऐसी विचित्र मण्डप की रचना की कि जिसका वर्णन नही हो सकता।

———

१ एक विशेष प्रकार के रुद्र गण जिनकी गणना भूत वेताल के समकक्षो मे है।

२. यहाँ समालङ्कार है।

व्याख्या वर अनुहार बरात बनी हरि हस कहा पा म । अत्र प्रधान बरात गणो की सेना हो गई। मार्ग मे नाच गाना भी हो रहा है अत कौतुक की क्या कमी है। श्रीग्रन्थकार इस समय हिमाचल की ओर है। अत इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना कह रहे है। माँ का साथ अत्यन्त सुखद समझकर ग्रन्थकार उसी समाज मे हैं। वितान वर्णन अशक्य समझकर उसे अति विचित्र कह रहे है। विचित्र वस्तु का वर्णन नही हो सकता। अति विचित्र तो सर्वथा वर्णनातीत है। यथा रचना देखि विचित्र अति मन बिरचि कर भूल जैसा मण्डप जनकपुर मे बना था वैसा ही समझना चाहिए।

सैल सकल जहँ लगि जग माही। लघु बिसाल नहि बरनि सिराही ॥
बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥२॥

अर्थ जगत् मे जितने पहाड थे। क्या बडे क्या छोटे, जिनका वर्णन नही हो सकता बन, समुद, नदियाँ और तालाब, सबको हिमाचल ने न्यौता नवेद भेजा।

व्याख्या शैलराज का बरताव सब शैल, सागर, बन, नदी और तालाबो से है। शैल, सागर, नदी आदि के दो रूप होते हैं। स्थूल रूप तो वही है जैसा हम लोग देखते हैं। पर इसी के अन्तर्गत उनका दूसरा रूप है। जिस भाँति शख घोघा आदि के दो रूप होते हैं। एक तो ऊपरवाली खोपडी जडरूप दूसरा भीतर का जन्तु चेतनरूप। यथा कालिका पुराणे। नद्यश्च पर्वता सर्वे द्विरूपास्तु स्वभावत। तोय नदीना रूपन्तु शरीरमपरन्तथा। स्थावर पर्वतानान्तु रूप काय तथा परम्। शुक्तीनामथ कम्बूना यथैवान्तर्गता तनु। बहिरस्थिस्वरूपन्तु सर्वदैव प्रवर्त्तते। एव जल स्थावरन्तु नदीपर्वतयोस्तदा। अन्तर्वसति कायस्तु सतत नोपपद्यते। नदीना कामरूपित्व पर्वतानान्तथैव च। जगत् स्थित्यै पुरा विष्णु कल्पयामास यत्नत। अत नदी पर्वतादि का कामरूपत्व सिद्ध है। अत उनके यहाँ नेवता जाना और उनके नर नारी रूप से आगमन मे शङ्का को स्थान नही है।

कामरूप सुदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी ॥
गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहि मगल सहित सनेहा ॥३॥

अर्थ अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले सुन्दर शरीर धारण किये हुए समाज के सहित तथा श्रेष्ठ स्त्री के सहित हिमाचल के घर गये। स्नेह के साथ मङ्गल गान भी करते थे।

व्याख्या कामरूप हैं। अत सुन्दर तन धारण किया। विवाह मे जा रहे हैं। और बिरादरी है। इसलिए सस्त्रीक और सबन्धु बान्धव गये। जिनके जिनके पास न्यौता नवेद गया वे सब आये। बडा प्रेम है। इसलिए स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही है।

प्रथमहि गिरि बहु गृह सँवराए। जथा जोगु जहँ तहँ सब छाए ॥
पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरचि निपुनाई ॥४॥

अर्थ : हिमालय ने पहिले ही बहुत से घरों को सजा रखा था। सब यथायोग्य जहाँ तहाँ ठहर गये। उस पुर की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्मदेव की चतुराई भी थोड़ी मालूम हुई।

व्याख्या : शैलराज की सुव्यवस्था का वर्णन करते हैं। इकट्ठा ठहरने से कष्ट होगा। अतः सबको जहाँ तहाँ ठहराया। अनुकरण की वस्तु : नकली असली से अच्छी बनी हुई हैं। नकली कमल असली कमल से सुन्दर बने हैं। इसलिए विरञ्चि की निपुणता थोड़ी मालूम होती है।

छं. लघु लागि बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मंगल बिपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं॥

दो. जगदंबा जहँ अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥९४॥

अर्थ : पुर की सुन्दर सच्ची शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना हलकी लगी। वन, बाग, कूएँ तालाब, नदियाँ सब सुन्दर हैं। उनका वर्णन कौन कर सकता है। घर घर बहुत से शुभ बन्दनवार और अनेक पताका ध्वजा शोभित हैं। सुन्दर और चतुर स्त्री पुरुषों की छवि देखकर मुनियों के मन मोहित होते हैं।

जिस पुर में जगदम्बा ने जन्म लिया क्या उस पुर की शोभा कही जा सकती है? वहाँ नई नई ऋद्धि सिद्धि सम्पदा और सुख बढ़ता ही जाता है।

व्याख्या : जगदम्बा के अवतार से पुर की शोभा सही है। पुर की शोभा सुन्दर जलाशय, मङ्गलमयगृह और लोकद्वय साधन में चतुर निवासियों से होती है। यहाँ यह सब इस भाँति सम्पन्न है कि छवि देखकर मुनियों का मन मोहित हो गया जिनका मन विरञ्चि की निपुणता से विरक्त रहा।

जगदम्बा के अवतार योग्य जो देश है उसका वर्णन अशक्य है। ऋद्धि-सिद्धि सम्पत्ति होने पर भी सुख दुर्लभ होता है। अतः उसकी पृथक् गणना की। सब कुछ होने पर भी जैसा का तैसा बना रहने से साधारण बात हो जाती है। अत. कहते हैं : नित नूतन अधिकाइ।

नगर निकट बरात सु[illegible] पुर खरभर [illegible] ॥
[illegible] बनाव सब [illegible] लेन [illegible] ॥१॥

अर्थ : बरात [illegible] गारे [illegible] गया
और यहाँ [illegible] [illegible] बादर
सहित अग [illegible]

बारात का प्रसङ्ग छूटा था। अब फिर वही से उठाते है। बारात चली आ रही थी। इस बीच ग्रन्थकार हिमाचल के यहाँ का वर्णन करने लगे थे। अब बारात नगर के निकट आ पहुँची। लोग कहते हैं कि नेपाल मे शिवजी का विवाह हुआ है। काष्ठ मण्डप जहाँ बना था उसी का नाम काठमाण्डू है। बारात आने के पहिले ही समाचार मिल जाता है। अत सुनि आई कहते हैं। बारात के लिए अगवानी मे भी बारात ही की सी तैयारी की जाती है। सो नेवता मे आये हुए गिरि, सागर तालाबादि जितने बडे लोग थे और नगर के लोग अगवानी के लिए चले।

हिय हरखे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी ॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले वाहन सब भागे ॥२॥

अर्थ देवसेना देखकर सब लोग प्रसन्न हुए। और विष्णु भगवान् को देखकर बहुत खुशी हुए। जब शिवजी का समाज देखने लगे तब हाथी घोडे भडके और भाग चले।

व्याख्या विष्णु भगवान् के बताये हुए क्रम से बारात सजी थी। आगे आगे देवताओ की सेना चल रही थी। लोकपाल लोग अपनी अपनी सेना के साथ क्रम से चले आ रहे थे। अत पहिले वे ही दिखाई पडे। अगवान को हर्ष हुआ कि ऐसे ऐसे महान् लोग बारात मे आये हैं। बारात मे प्रधान उत्तरोत्तर पीछे रहते हैं। अत लोकपालो के समाज के पीछे विष्णु का समाज था। उन्हे देखकर अत्यन्त सुखी हुए। सबके पीछे अपने समाज सहित स्वय वर की सवारी थी। जो उस समाज को देखकर हाथी, घोडे ऐसे भडके कि सवारो के रोकने पर भी नही रुके। भाग निकले अत सवार का भागना न कहकर वाहन का भागना कहते है।

धरि धीरजु तह रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने ॥
गए भवन पूछहि पितु माता। कहहि बचन भय कपित गाता ॥३॥

अर्थ धैर्य धारण करके सयाने लोग रह गये। लडके तो अपना प्राण लेकर भागे। घर पहुँचे तो माता पिता पूछने लगे। वे भय से काँपते हुए बोले।

व्याख्या पैदल भी भागे। केवल सयाने लोग जिन्हे शिवजी के समाज की व्यवस्था मालूम थी धैर्य धारण करके रह गये। भाव यह कि डर तो वे भी गये परन्तु उन्होने धैर्य से काम लिया। बालक भागने मे सबसे बढकर निकले। अत लै जीव पराने कहते हैं। अर्थात् वस्त्राभूषण के गिर जाने की भी उन्हे सुध बुध न रह गई। यथा चले भागि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत। बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। पा म। फिर जडता की जाडा आई। अत कपित गात कहते हैं। माँ बाप बच्चा की विकलता देखकर पूछते हैं कि इसे क्या हुआ ? बारात देखने गया था। कोई दुर्घटना तो नही हुई ?

कहिअ कहा कहि जाइ न बाता। जम कर धारि किधौ बरिआता ॥
बरु बौराह बसह असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥४॥

अर्थ : क्या कहे ! कोई बात कही नही जाती । यह यमराज की सेना है कि बारात है । पगला वर बैल पर बैठा हुआ है । साँप, खोपड़ी और राख ही उसके गहने हैं ।

व्याख्या : लड़के अपने माँ बाप के पूछने पर कहते हैं : भय के मारे हमारे मुख से बात नही निकल रही है । क्या कहे ? वह बारात नही है । यमराज की सेना है । यद्यपि यम की सेना देखी नही है । फिर भी भयङ्करता से अनुमान करते हैं कि ऐसी ही होगी जिसे देखकर लोग मर जाँय । लड़के वर को पागल बतलाते है । क्योंकि वह बैल पर सवार है । जिसे घोड़ा नही होता वह भी व्याह मे घोडा मँगनी ले लेता है । जिसकी बारात मे लक्ष्मीपति आवें उसे घोड़ा न मिले यह हो नही सकता । समर्थ रहते भी बैल पर चढकर व्याहने आया है । अतः निश्चय ही पागल है । और भी पागल के लक्षण हैं । यदि गहना मँगनी न मिला तो बिना गहने ही आता । साँप, खोपडी और राख कौन सा गहना है ।

छं. तन छार व्याल कपाल भूषन, नगन जटिल भयंकरा ।
सँग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि, बिकटमुख रजनीचरा ॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत, पुन्य बड़ तेहि कर सही ।
देखिहि सो उमा बिवाहु घरघर, बात असि लरिकन्ह कही ॥
दो. समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डरु नाहिं ॥९५॥

अर्थ : वर देह मे राख लपेटे, साँप और खोपडी का गहना पहने, नगा धडगा, जटा बढाए, भयङ्कर रूप है । उसके सग भूत, प्रेत, पिशाच और विकट मुखवाले[1] राक्षस हैं । जो बारात को देखते हुए जीता रहेगा उसका सचमुच बडा पुण्य होगा और वही उमा का विवाह देखेगा । यह बात लड़कों ने घर कह डाली ।

महादेवजी के सब समाज को समझकर माँ बाप मुस्कराए और लडको को अनेक प्रकार से समझाया कि डरो मत, कोई डर की बात नही है ।

व्याख्या : वर ने जोड़ा जामा नही पहन रक्खा है इसलिए नगन बतला रहे हैं । विवाह के समय तो क्षौर करा लेना था । सो भी नही कराया, जटा रखाये हुए हैं । सक्षेपत. वर भी भयङ्कर है । उसका समाज भूत प्रेत पिशाच जोगिनी और विकराल मुँह के राक्षसो का है । बारात देखकर नगरवासी सब मर जायँगे । नही देख सके इसलिए हम लोग भाग आये है । जो विवाह देखेगा उसके सच्चे और बडे पुण्यात्मा होने मे सन्देह नही है । क्योंकि इस यम की सेना के बीच में पड़कर सकुशल रहना थोडे पुण्य से साध्य नही है । यथा कुशल करइ करतार कहहिं हम साँचिय । देखब कोटि बिवाह जिअत जो बाँचिअ । पा म । जननी जनक सयाने हैं ।

---

१ खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन बेप अगनित को गनै ।

शिव समाज का रहस्य जानते हैं। उनके झूठे भय पर मुसकराते हैं। समझाने पर भी बच्चों का भय दूर नहीं होता। अतः विविध भाँति समुझाए। यथा :

एहि विवाह मंगल परम मंगल उमा विवाह।
हगपथ पाए भूतपति होइहि अधिक उछाह॥
भस्म गंग पावक उरग-स्वास डमरु के व्याज।
पंच भूत धर भूत पति अति अभूत सब साज॥
विष पियूषकर मिस धरत सकल शक्ति को सार।
व्याल विभूषन विश्व को विजयानन्द भरतार॥
मुंडमालधर जगत के जीवन को आधार।
बनि वृष सेवत धर्म हू जाके चरन उदार॥
व्यसनी निसिदिन आपने रूपहि रहे सँवार।
विकट रूप धर एकहीं काम जरावनि हार॥
गन सब मङ्गलरूप अति सरल गलित अभिमान।
रहत दुराए अपनपौ ये विज्ञान निधान॥
याते निर्भय होइ तुम विचरौ करो अनंद।
उमा शंभु के ब्याह में नितनव विजया नंद॥

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहिं नारी॥१॥

[illegible] ये। मैन
[illegible]
[illegible] को साथ
[illegible] अनिष्ट नहीं
[illegible] हर के साथ
[illegible]

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
विकट वेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥२॥

अर्थ : सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभायमान था। प्रसन्नता से वे हर को परछने चलीं। जब रुद्र का भयङ्कर वेष देखा तब स्त्रियों के भी हृदय में विशेष भय हुआ।

व्याख्या : सोने के थाल में आरती साजी गई। दुःखों के हरनेवाले को हर कहते हैं ऐसा सुना है। उनका परिछन करने चल रही हैं। बड़ा उत्साह मन में है। बराती ऐसे हैं न जाने वर कैसा होगा। वरुण-कुबेर धर्मराज इन्द्र एक एक को देखकर भ्रम होता है कि यही वर है। पीछे जब मालूम होता है कि ये तो उनके सेवक हैं। तब वर के देखने की उत्कण्ठा और भी बढ़ जाती है। ऐसे अवसर पर

वंश ही मङ्गलगान करती हुई स्त्रियाँ, परिछन करनेवालों के साथ चलती है। सा नियम है।

विकट वेष तो नारदजी से सुना था। यथा नगन अमङ्गल वेष। पर देखना सरी बात है। रुद्र है, रौद्ररस के अधिष्ठाता हैं। उसपर विकट वेष धारण किया है। नके द्वार पर आते ही सब डर गये। पर अबला ठहरी, ये विशेष डर गईं। लड़के तो पहिले से ही डरे थे।

गागि भवन पैठी अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥३॥

अर्थ भागकर डर से घर म घुस गईं। शिवजी जनवासे गये। मैना के हृदय म बडा दु ख हुआ। उन्होने पार्वतीजी को बुलाया।

व्याख्या परिछन के लिए द्वार पर आगई थी। सो भीतर भाग गईं। परिछन नही हुआ। बिना परिछन के ही वर जनवासे गया। इसपर दु ख तो सबको हुआ। ऐसा भयानक वर देखने म नही आया था। सुना भी नही गया था। माँ होने से मैना को बडा भारी दु ख हुआ।

अधिक सनेह गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे वारी॥
जेहि बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहि जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥४॥

अर्थ अधिक स्नेह से गोद म बिठाया और नीलकमल के समान नेत्रो म आँसू भरकर बोली जिस ब्रह्मा ने तुम्ह ऐसा रूप दिया। उस जड ने वर को पागल कैसे बनाया?

व्याख्या लडकी पर इतना दु ख आ पडा। इससे प्रेम अधिक हो गया, आँखो म आँसू भर आया। लडकी को गोद म लेकर प्रेम प्रलाप प्रारम्भ किया। जो प्रश्न ब्रह्मदेव से करना चाहिए वह अपनी कन्या से करने लगी। विधि को उपालम्भ देती है। अथवा इस व्याज से कन्या की अस्वीकृति चाह रही है।

छ कस कीन्ह[१] बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहि सो बरबस बबूरहि लागई॥
तुम्ह सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घर जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥
दो भई बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहु सँभारि॥९६॥

अर्थ जिसने तुम्ह सुन्दरता दी उस ब्रह्मा ने पगला वर कैसे बनाया? जो फल कल्पवृक्ष म लगना चाहिए वह जबरदस्ती से बबूल म लग रहा है। मै

१ विषमालङ्कार।

तुम्हारे साथ पहाड़ पर से कूद पड़ूँगी। आग में जल जाऊँगी। समुद्र में डूब मरूँगी। घर जाय। अपयश हो। पर मै जीते जी विवाह न होने दूँगी।

हिमाचल की स्त्री को दुःखी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। और बेटी के प्रेम का सभाल करते हुए विलाप करके रो-गा रही हैं।

व्याख्या : एक नया अवगुण दिखाई पड़ा जिसकी चरचा भी नारदजी ने नही की थी कि वर पागल है। विधि के लिलार मे लिखने से सब होता है। अत कहती हैं कि नाम उसका विधि है। वह अविधि क्यो करते है? अपनी बेटी को अमृत फल, विष्णु को कल्पवृक्ष और शिवजी को बबूल कहती है। बबूल मे काँटा ही काँटा होता है। इस वर मे भी सर्प, विभूति, मुण्डमाल, व्याघ्राम्बर, जटा सब कण्टक ही कण्टक हैं। कल्पवृक्ष से सबका मनोरथ पूर्ण होता है। बबूल से मनोरथ भङ्ग होता है। यथा : आप नही कछु काम के डार पात फल फूल। औरन को रोकत फिरै रहिमन पेड बबूल।

मैना कहती है कि तुझे साथ लेकर प्राण दूँगी। पर जीते जी ऐसे वर से व्याह न होने दूँगी। भाव यह कि यदि लोग बल पूर्वक व्याह कर देना चाहेंगे तो कन्या भी मरेगी मैं भी मरूँगी। ऐसे के साथ व्याह होने से मरना अच्छा। इस पर यदि कोई कहे कि घर नष्ट हो जायगा। और तुम्हे अपयश होगा। लोक, परलोक दोनो बिगडेगा। तो दोनो का बिगड़ना मजूर, पर व्याह मजूर नही।

कोई-कोई महात्मा ऐसा अर्थ करते है कि बारात 'घर जाउ' लौट जावे। इससे अपयश हो तो होने दो व्याह मजूर नही। कोई ऐसा अर्थ करते है : देवदानव, यक्षराक्षस बराती घर लूट लेंगे। और अपयश होगा कि मैना के हठ से घर लुट गया। सो लूट मजूर है पर व्याह मंजूर नही।

पहिले से ही स्त्रियाँ दुःखी थीं। अब मैना का दुःख देखकर बिकल हो गईं। स्त्रियाँ रोने के साथ कुछ कहती भी जाती हैं। अत 'रोदति वदति' कहते हैं। यथा : रोदति वदति बहु भाँति करुना करत सकर पहँ गई। 'सुता सनेह सँभारि' बेटी के स्नेह को सँभाले हुए हैं। कोई त्रुटि नही होने पावे। यदि ऐसे वर से व्याह हो गया तो माँ के प्रेम : वात्सल्य मे त्रुटि समझी जायगी।

नारद कर मै काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा ॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा ॥१॥

अर्थ : मैने नारद का क्या बिगाडा था? जिसने मेरा बसता हुआ घर उजाड दिया। जिन्होने उमा को ऐसा उपदेश दिया कि उसने पगले वर के लिए तप किया।

व्याख्या : ऊपर जो रोदति वदति कहा है उसी का स्पष्टीकरण करते है। मैना कहती है कि नारद के उपदेश से मेरा सर्वनाश हो रहा है। जो किसी का कोई कुछ बिगाडता है तो उसके बदले मे वह उसके उजाडने की चिन्ता करता है। मैने तो नारद का कुछ बिगाडा नही। मेरा घर बस रहा था। सप्तर्षियो ने विष्णु से व्याह लगाया था। पर इन्ही के उपदेश से मेरी बेटी दृढ रह गई। यथा : नारद

वचन न मैं परिहरऊँ। बसै भवन उजरै नहिं डरऊँ। नारद का कहा हुआ तप जहर हो गया। फल यह हुआ कि पागल वर मिला। नारद वर के दोष से परिचित थे। इन्होंने जानबूझकर ऐसा उलटा उपदेश दिया। भला तप ऐसा वर न मिलने के लिए होना चाहिए था न कि ऐसे वर के मिलने के लिए।

साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया ॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझकि जान प्रसव कै पीरा ॥२॥

अर्थ सचमुच उन्हे न मोह है और न माया है। वे उदासीन ठहरे। उन्हे न धन है, न घर है, न स्त्री है। दूसरे का घर बिगाडनेवाले हैं। न उन्हे लज्जा है न डर है। भला वन्ध्या प्रसव की पीडा क्या जानें।

व्याख्या नारदजी का माहात्म्य सुन रक्खा था काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। मोह का अर्थ अज्ञान भी है। प्रीति भी है। इसी भाँति माया का अर्थ प्रपञ्च भी है। दया भी है। यहाँ दूसरे अर्थ को लक्ष्य करके कहती है कि यह बात तो सच्ची है कि न इन्हे प्रेम है, न दया है। अज्ञान और प्रपञ्च न होने की बात जो जाने सो जाने। मैं तो नही देखती। जिसे धन, धाम और कुटुम्ब होता है उसे सब वेदना भी होती है। इन्हे कुछ नही उदासीन है। कोई शत्रु मित्र नही। हम लोग इतनी पूजा करते थे इतना मान करते थे उसका काई ख्याल नही किया।

सप्तर्षियो ने इन्हे ठीक पहिचाना था। उन महात्माओ ने स्पष्ट कह दिया था कि नारद कर उपदेस सुनि कहहु बसेउ किसु गेह। सत्य केतु कर घर इन घाला। कनक कसिपु कर पुनि अस हाला। ये स्वभाव से ही परघरघालक हैं। हमारा घर भी ये ले बढे। लाज नही है कि ऐसा खोटा उपदेश मैं दे रहा हूँ। ससार मुझे क्या कहेगा। न डर है। हत्या के भरोसे खेत खाते हैं। इन्हे कोई कुटुम्ब नही। ये कुटुम्बी के दु ख को नही समझ पाते। वन्ध्या भले ही और सब पीडा जानती हो पर प्रसव की पीडा कभी उसे हुई ही नही। उसे वह नही जान सकती। निगोडे क्या जानें कि बाल बच्चों का दु ख किस भाँति मर्म को काटता है।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदुबानी ॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरै जो रचै बिधाता ॥३॥

अर्थ माता को विकल देखकर भवानी विवेक से युक्त कोमल वाणी बोली हे माता। जो विधाता ने रच रक्खा है वह नहीं टल सकता। ऐसा सोचकर तुम सोच न करो।

व्याख्या भवानी है भव की स्त्री। इनका शिवजी का नित्य सम्बन्ध है। सबको वर नापसन्द है पर इन्हे पसन्द है। देखा कि माँ विकल है तभी ऐसी वाणी का प्रयोग नारदजी के प्रति कर रही है। तप के लिए जाने के समय माँ को गद्गद कण्ठ देखकर सुखद मृदुवाणी बोली थी। आज विकल देखकर युत विवेक

मदुवानी कह रही हैं। क्योंकि शोक का नाश ज्ञान ही से होता है। यथा सोक निवारेउ सर्वाह नर निज विज्ञान प्रकास। इस समय महेश की प्रशसा अपने मुख से अनुपयुक्त समझकर कहती हैं सो न टरै जो रचै विधाता। अत शोक करना व्यर्थ है। नारदजी ने पहिले ही कह दिया था। यह कोई नई बात नही है। नारदजी गुरु हैं। उन पर दोपारोपण नही सुन सकती। अत कहती हैं।

करम लिखा जौ बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहि कि विधि के अका। मातु व्यर्थ जनि लेहु कलका ॥४॥

अथ जो मेरे प्रारब्ध म बावला ही पति लिखा है तो किसी को दोप क्या लगाया जाय। क्या विधाता के अङ्क तुम्हारे मिटाये मिटगे? ह माता वृथा कलक न लो।

व्याख्या नारदजी ने कहा था अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त अस रेख। तब नारदजी को दोप क्या लगाती हो। उन्होने यहाँ तक कह दिया था कि कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार। अब वह विधि का लिखा जिसे देव दनुज नर नाग मुनि कोई नही मिटा सकता वह तुम्हारे मिटाए कैसे मिटेगा? तुम उसके लिए अपयश लने को प्रस्तुत हो। यह तुम्हारी वृथा चेष्टा है।

छ जनि लेहु मातु कलकु करुना परिहरहु अवसर नही।
दु खु सुखु जो लिखा लिलार हमरे जाब जह पाउब तही ॥
सुनि उमा वचन विनीत कोमल सकल अवला सोचही।
बहु भाति विधिहि लगाइ दूपन नयन वारि विमोचही ॥
दो तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिपि सप्त समत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत ॥९७॥

अर्थ माँ! तुम अपयश मत लो। विवाद को छोडो। मौका नही है। जो दु ख सुख मेरे कर्म म लिखा है उसे मै जहा जाऊँगी वही पाऊँगी। उमा के विनीत और कोमल वचनो को सुनकर सब स्त्रियाँ सोचने लगी। और बहुत भाति से ब्रह्मा को दोप लगाकर आँसू गिराने लगी।

उसी समय इस समाचार को सुनकर हिमाचल, नारद ऋपि और सप्तर्षि के सहित तुरन्त घर गये।

व्याख्या उमा ने माँ को समझाया कि यह अवसर करुणा का नही है। करुणा का अवसर तो तभी था जब कि नारद से पहिल पहल समाचार सुना। अब बारात आने पर करुणा करना अनवसर की करुणा है। इसे छोडो। अपयश लना भी व्यर्थ है। होनहार होकर रहेगा। जब भाग्य म पागल वर लिखा है तो अच्छा चगा आदमी भी ब्याह के बाद पागल हो सकता है। नही तो पागल भी अच्छा

दो. सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा बिषाद ।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥९८॥

अर्थ : सती ने जो सीता का रूप धारण किया। इसी अपराध से शिवजी ने उन्हें त्याग दिया। शिवजी के वियोग से पिता के यज्ञ में जाकर योगाग्नि से भस्म हो गईं। अब तुम्हारे घर में जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है। ऐसा जानकर सन्देह दूर करो। पार्वती सदा शङ्कर की प्यारी हैं।

नारद की बात सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभर में यह संवाद सारे नगर में घर घर फैल गया।

व्याख्या : छन्द के प्रथम दो चरणों में नव दोहों : पचपन से चौंसठ : का अति संक्षेप में वर्णन किया। यहाँ यह प्रसङ्ग देखने योग्य है। वही इसकी व्याख्या है।

भाव यह कि शिवजी तो इसके पति हैं ही। जिसके लिए इन्होंने इतना भारी तप किया। वे तुम्हें पागल समझ पड़ रहे हैं। यह तुम्हारा अज्ञान है। गिरिजा को ही सदा शङ्कर प्यारे नहीं हैं। शिवजी को भी गिरिजा सदा प्यारी हैं।

जिस रहस्य के खोलने में भगवती को सङ्कोच था उसे नारदजी ने खोल दिया। सप्तर्षि और स्वयं गिरिजा नारदजी की सत्योक्ति के साक्षी हैं। अतः सबका विषाद मिट गया। क्योंकि गिरिजा के दुःखी होने के भय से सब दुःखी हो रहे थे। उनको ही यह विवाह जब परम इष्ट है तब किसी को विषण्ण होने का कारण नहीं रह गया। गिरिजा के पहिले समझाने से विकलता घटी थी। अब विषाद मिटा। इस संवाद को नारदगीता भी कह सकते हैं।

तमाम नगर में आतङ्क फैल गया था। अतः इस संवाद के फैलने में देर न लगी।

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे ॥
नारि पुरुष सिसु युवा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥१॥

अर्थ : तब मैना और हिमवान् आनन्दित हुए। बार बार पार्वती के चरणों की वन्दना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगर के सभी लोग प्रसन्न हुए।

व्याख्या : मैना अत्यन्त दुःखी हो गई थी। अतः आनन्दित होने में पहिले उन्हीं का उल्लेख किया। हिमवान् ने यद्यपि धैर्य नहीं छोड़ा था पर वर को देखकर वे भी विषण्ण थे। अब नारदजी का व्याख्यान और सप्तर्षि तथा स्वयं उमा की मौनरूपेण स्वीकृति देखकर समझ गये कि उमा साक्षात् जगदम्बा है। शिवजी जगत् पिता हैं। अतः अपना सौभाग्य मानकर आनन्दित हुए और बार बार पार्वती के चरणों की वन्दना जगदम्बा दृष्टि से की। जगदम्बा की ओर से वन्दना का निषेध भी नहीं हुआ। नगर में कोई ऐसा न रहा जो यह सुनकर अति हर्षित न हुआ हो। इससे हिमवान् की प्रजापालकता कही। हिमवान् को आनन्द और प्रजा को हर्ष यहकर आनन्द और हर्ष का सूक्ष्म भेद दिखलाया। हर्ष की परिपक्वावस्था ही आनन्द है।

लगे होन पुर मगलगाना । सजे सबहि हाटक घट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा ॥२॥

अर्थ नगर मे मङ्गलगान होने लगा और सबने अनेक प्रकार के सुवर्ण घट सजाये । पाक शास्त्रानुसार जैसा व्यवहार है अनेक भाँति की ज्यौनार हुई ।

व्याख्या जब से बारात आई मङ्गलगान बन्द हो गया था । सुवर्ण के घट उठाकर लोगो ने घर के भीतर रख लिये थे । अब मङ्गलगान भी नगर मे होने लगा । सुवर्ण के घट भी द्वार पर सजाये गये ।

बारात के सत्कार के लिए ज्यौनार हुई । देवता लोग बारात म आये हैं । अत पाकशास्त्र के अनुसार भोजन की तैयारी हुई । चर्व्य, चोष्य लेह्य, पेय ये ही चार भाँति के भोजन हैं । यथा चार भाँति भोजन विधिगाई । एक एक विधि बरनि न जाई । छरस रुचिर विंजन बहु जाती । एक एक रस अगनित भाँती ।

सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहि भवन जेहि मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती । बिस्नु बिरंचि देव सब जाती ॥३॥

अर्थ जिस घर म माता भवानी रहती हो वहाँ की ज्यौनार का क्या वर्णन किया जाय । आदर के साथ विष्णु ब्रह्मा आदि सब जाति के देवता तथा सब बाराती बुलाये गये ।

व्याख्या माँ अन्नपूर्णा जहाँ निवास करती हैं वहाँ की जेवनार का वर्णन नही हो सकता । वस्तुतस्तु माँ का दिया हुआ ही भोजन भोजन है । वह अमृत से भी मधुर है । शैलराज के यहाँ न ज्यौनार की कमी है न स्थान का सङ्कोच है । अत सब बराती एक साथ बुला लिये गये । ससार म सर्वत्र और सब वस्तुओ म प्रकृति के अनुसार चार जातियाँ हैं । इसी भाँति देवताओ म भी चार जातियाँ हैं । अत विष्णु विरञ्चि आदि सब जाति के देवता बुलाये गये । सकल बराती से तात्पर्य यह कि भूत, प्रेत, पिशाच, निशिचर आदि भी बुला लिये गये ।

बिबिध पाँति बैठी जेवनारा । लगे परोसन निपुन सुआरा ॥
नारिबृंद सुर जेवत जानी । लगी देन गारी मृदु बानी ॥४॥

अर्थ अनेक पगतें पक्तियाँ बैठी । चतुर सूपकार ज्यौनार परोसने लगे । स्त्रियाँ देवताओ को भोजन करते हुए जानकर कोमल स्वर से गाली गान करने लगी ।

व्याख्या भोजन करनेवालो की जाति के अनुसार अलग अलग पक्तियाँ लगी । ऐसे ऐसे स्थलो म ही परोसनेवालो की निपुणता देखी जाती है । अत निपुण सूपकार रसोइये परोसने लगे । परोस जाने पर भोजन आरम्भ हुआ । तब स्त्रियो का सत्कार आरम्भ हुआ । मृदु स्वर म गाली गाने लगी । यह देश की चाल है । उत्तर भारत म मङ्गल के समय म गालीगान होता है । अति आनन्द म मर्यादा भङ्ग को किसी सीमा तक स्थान दिया जाता है । श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि

अमिअ गारि गारथी गरल गारि कीन्ह करतार । प्रेम वैर की जननि जुग जानहिं वुध न गँवार । जव क्रोध की गाली का वहिष्कार करने मे सभ्य समाज नितान्त असमर्थ है तव प्रेम की गाली की ओर अधिक क्रूर दृष्टि रखने का कोई कारण नही है।

छं गारी मधुर स्वर देहिं सुदरि विग्य वचन सुनावही ।
भोजन करहिं सुर अति बिलव विनोद सुनि सचु पावही ॥
जेवँत जो वढेउ अनद सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो ।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने वास जहँ जाको रह्यो ॥
दो वहुरि मुनिन्ह हिमवत कहुँ, लगन सुनाई आइ ।
समय विलोकि विवाह कर, पठए देव वोलाइ ॥९९॥

अर्थ सुन्दरियाँ मधुर स्वर से गालियाँ देने लगी। देव लोग भोजन मे अत्यन्त देर लगा रहे है। और विनोद मज़ाक सुनकर सुख पा रहे हैं। जेवनार के समय जो आनन्द वढा वह करोडो मुखो से नही कहा जा सकता। सबको हाथ मुँह धुलाकर पान दिया गया। जहाँ जिसका डेरा था वहाँ सव लोग चले गये। फिर मुनियो ने आकर हिमाचल को लगन सुनाई। विवाह का समय जानकर देवताओ को वुलवा भेजा।

व्याख्या व्यङ्ग वचन ही गाली है। प्रेम का व्यङ्ग अत्यन्त प्रिय होता है। अत देवता लोग भोजन मे जान वूझकर देर कर रहे हैं। यज्ञभुक् देवता लोग आज भोजन करने वैठे हैं। स्तुति के स्थान पर गाली हो रही है। उनके लिए गाली नई वस्तु है। सो प्रेम की गाली सुन सुनकर आनन्द वढ रहा है। यथा समय सुहावन गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा। यह दृश्य देखकर लोग फूल नही रामाते थे। अत कहते हैं कि वर्णन नही हो सकता। भोजन के वाद हाथ मुँह धोना, और उसके वाद पान देना यही वारात का मुख्य सत्कार है।

व्याह मेप लग्न मे सूर्योदय के समय होनेवाला था। अत रात को वारात व्याह के पहिल ही जिमाई गई। रामजी का व्याह रात्रि के समय था। अत वारात का अपने घर जिमाना दूसरे दिन हुआ।

प्रात काल के समय सप्तर्षि लोग लग्न सुनाने फिर आये। अर्थात् वर पक्ष से कहलाया गया कि वुलावा जल्दी भेज। नही तो हिमवान् ने ही ऋषियो को वुलाकर लग्न स्थिर कराया था। उन्हे फिर से सुनाने की आवश्यकता क्या थी?

वोलि सकल सुर सादर लीन्हे। सवहि जथोचित आसन दीन्हे ॥
वेदी वेद विधान सँवारी। सुभग सुमगल गावहि नारी ॥१॥

अर्थ सव देवताओ को आदर के सहित वुलवा लिया। और सवको यथायोग्य आसन दिये। वेदी वेद के विधान से वनाई गई। और स्त्रियाँ सुन्दर सुमङ्गल गान करने लगी।

व्याख्या : यज्ञ में वेद मन्त्र से जिन देवताओं का आवाहन होता है वे आज आदमी भेजकर बुलवाए जाते हैं। कन्या पक्ष का इतना मान है क्योंकि दान दाता के अधीन है। अतः कन्यादान : विवाह मे कन्या पक्ष का प्राधान्य है। और सब वस्तुओं में लौकिक कारीगरी दिखलाई गई। पर वेदी वेदविधान से बनाई गई : जिससे अशुद्ध न होने पावे। विवाह के प्रत्येक कर्म के लिए वैदिक मन्त्र हैं। और साथ ही सबके लिए मङ्गल गान हैं। जो समय समय पर स्त्रियाँ गाती हैं।

सिंहासनु अति दिव्य सुहावा। जाइ न वरनि विरंचि बनावा ॥
वैठे सिव विप्रन्ह सिरु नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई ॥२॥

अर्थ : बड़े दिव्य सिंहासन पर जो ऐसा विचित्र बना था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता ब्राह्मणों को प्रणाम करके, और हृदय में अपने प्रभु रघुनाथजी का स्मरण करके शिवजी बैठ गये।

व्याख्या : विष्टर के स्थान पर अति दिव्य सिंहासन दिया गया। जब मण्डप अति विचित्र बना है। यथा : अति विचित्र नहि जाइ बखाना : तब सिंहासन के लिए 'अति दिव्य सुहावा' 'जाइ न बरनि' कहना प्राप्त ही है। शिवजी ने पहिले विप्रों को प्रणाम किया। शिवजी भक्तिपथ के मुख्य आचार्य हैं और भक्तिपथ का प्रथम पाद विन्यास है। प्रथमहिं विप्रचरन अति प्रीती। तत्पश्चात् निज प्रभु रघुनाथजी का स्मरण करते हैं। जिनकी आज्ञा से इस विवाह में प्रवृत्त हुए हैं। अथवा यह विवाह कृत्य है अतः मङ्गल के लिए रघुनाथजी का स्मरण करते हैं। अथवा बार बार रघुनाथजी को सँभारने का स्वभाव है। यथा : मनमाधव को नेकु निहारिहि। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों पुनि पुनि प्रभुहिं सँभारिहि।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगार सखी लेइ आई ॥
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनै छवि अस जग कवि को है ॥३॥

अर्थ : फिर मुनियों ने उमा को बुलाया। शृङ्गार करके सखियाँ लिवा आईं। रूप को देखकर सब देवता मोह गये। संसार में ऐसा कवि कौन है। जो उस छवि का वर्णन कर सके।

व्याख्या : पद्धति के अनुसार समय पर उमा बुलाई गईं। अलङ्कृत कन्या के दान का विधान है। अतः शृङ्गार करके सखी ले आईं। अलौकिक सौन्दर्य है, लौकिक कवि की गति नहीं। वर्णन करने में समर्थ देवता लोग तो मोहित ही हो गये। शोभा के तरङ्ग के सहने की शक्ति किसी में नहीं थी। सासारिक कवि किस आधार पर वर्णन करे। यथा : केहि छाया कवि मति अनुसरई।

जगदम्बिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा ॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु वदन बखानी ॥४॥

अर्थ : जगदम्बिका को भव : शिवजी की स्त्री समझकर देवताओं ने मन

ही मन प्रणाम किया। भवानी सुन्दरता की सीमा हैं। करोडो मुखो से भी बखानी नही जा सकती।

व्याख्या रूप देखने पर मोह हुआ। प्रबोध होने पर प्रणाम किया। कर्मणा वाचा प्रणाम का उपयुक्त अवसर नही है। फिर भी जगदम्बा हैं, भवानी हैं, इसलिए मानसिक प्रणाम कहा। इन्ही तक सुन्दरता की इतिश्री है। अब इससे उत्कृष्ट सुन्दरता नही है अत अवर्णनीया हैं। 'कोटि मुख मे वर्णन' कहने का भाव यह कि दस सहस्र शेष भी नही कह सकते। समानता के पदार्थ रहे तभी वर्णन सम्भव होता है।

छ कोटिहु वदन नहि बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहि कहत श्रुति सेप सारद मद मति तुलसी कहा ॥
छविखानि मातु भवानि गवनी मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहि न सकुचि पतिपद कमल मन मधुकर तहाँ ॥

दो मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ सभु भवानि।
कोउ सुनि ससय करै जनि, सुर अनादि जिअ जानि ॥१००॥

अर्थ जगजननी की महाशोभा का वर्णन करोडो मुखो से भी नही किया जा सकता। वेद, शेष, सरस्वती भी कहने मे सङ्कोच करती हैं। मन्दमति तुलसी की गणना ही क्या है। छवि की खानि भवानी शिव के पास मण्डप मे गई। सङ्कोच के कारण देख नही सकती। पर मनरूपी भौरा तो पतिपदकमल मे ही था।

मुनियो की आज्ञा से शम्भु और भवानी ने गणपति का पूजन किया। उनको अनादि देव समझकर कोई इस बात को सुनकर सशय न करे।

व्याख्या औरो की शोभा है पर जगजननी की महाशोभा है। अन्य शोभाएँ उस महाशोभा की अश कलाएँ हैं। वेद इस लोक के वक्ता, शेष पाताल लोक के वक्ता, शारद स्वर्गलोक की वक्ता है। इन्हे भी वर्णन करने म सङ्कोच है। क्योकि तीनो लोको मे ऐसी शोभा है नही। फिर तुलसी किस गणना मे है। कि तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दर। जहाँ मन्दर डूबे जाते हैं वहाँ परमाणु की क्या गिनती हो सकती है। करके छवि से उपक्रम करके छविखानि से वर्णन का उपसहार करते है। मन मधुकर चरणो मे कब से लगा है प्राप्त होने पर देखने मे सङ्कोच बाधक हो रहा है। भाव यह है कि शिवजी का सौन्दर्य कैसा था जिस पर त्रैलोक्यसुन्दरी उमा मुग्ध थी। अग-अग पर उदितरूपमय पूपन। पा म।

कर्मकाण्ड प्रारम्भ हुआ। शास्त्रमर्यादा पालन के लिए गणपतिपूजन हुआ। यथा प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ। अत मुनियो का अनुशासन शम्भु भवानी को मान्य है। गणपति पूजन किया। ये 'सुर अनादि हैं। गणपति जन्म के पहिले भी गणपति पूजा होती थी। अथवा मन्त्रमयी मूर्ति तो सनातन है। इसलिए गणपति अनादि देव हैं। सशय करने से अकल्याण होगा। इसलिए निषेध करते हैं।

जसि विवाह कै विधि श्रुति गाई। महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी। भवहि समरपी जानि भवानी ॥१॥

अर्थ वेद ने विवाह की जैसी रीति बताई है वह सब महामुनियो ने करवाई। हिमाचल ने अपने हाथ म कुश लेकर कन्या के हाथ को उसे भवानी जानकर शिवजी को अर्पण किया।

व्याख्या विवाह की जैसी वेदोक्त विधि है उसे ठीक ठीक वैसा ही महामुनियो ने सम्पन्न कराया। श्रीरामजी के विवाह मे शाखोच्चार का उल्लख किया। यथा साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं। यहाँ नही करते। क्योकि यहाँ शाखोच्चार हुआ ही नही। यथा ' साखोच्चार समय सब सुर मुनि विहँसहि। शङ्कर ब्रह्मा से उत्पन, ब्रह्मा विष्णु से उत्पन्न, विष्णु शङ्कर से उत्पन्न। जो पुत्र वही प्रपितामह। इसलिए मुनि लोग हँस रहे हैं। अथवा स्वयम्भू हैं इसलिए शाखोच्चार की आवश्यकता ही नहीं है।

कन्यादान मे हिमालय ने अपने को निमित्तमात्र माना। नारदजी से सुन चुके हैं कि गिरिजा सर्वदा सकर प्रिया। अत त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समपये। इस बुद्धि से दान किया। लक्ष्मीरूपा कन्या विष्णुरूपाय वराय ऐसा सकल्प न होकर भवानी भवाय इस रूप से सकल्प हुआ।

पानि ग्रहन जब कीन्ह महेसा। हिय हरखे तब सकल सुरेसा ॥
वेद मत्र मुनिवर उच्चरही। 'जय जय जय सकर सुर करही ॥२॥

अर्थ जब शिवजी ने पाणिग्रहण किया तब सब लोकपाल हृदय से हर्षित हुए। मुनिवर्यो ने वेदघोष किया। देवताओ ने जय जय जय शङ्कर का जयकारा लगाया।

व्याख्या पाणिग्रहण के पहिले तक डर रहा कि बात बिगडने न पावे। परम विरक्त का व्याह है। इन्हे राजी करने मे क्या क्या नही करना पडा। सब कुछ ठीक होने पर मैना ही मचल पडी कि चाहे प्राण जाय व्याह न होने दूँगी। लोकपाल लोगो को आर्तिवश विश्वास नही हो रहा है। अधरे को आँख मिले तब जानें वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। अत पाणिग्रहण होने पर ही विश्वास हुआ और तब हृदय से हर्षित हुए। अब डर नही रह गया।

पाणिग्रहण के समय उत्साह से भरकर मुनियो ने वेदध्वनि और देवताओ ने जयध्वनि की। आदि, मध्य, अन्त, सर्वकाल मे शिवजी की जय है। अत देवता लोग तीन वार जय शब्द का प्रयोग कर रहे है।

वाजहि बाजा विविध विधाना। सुमन वृष्टि नभ भै विधि नाना ॥
हर गिरिजा कर भयउ विवाहू। सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार से बाजे बजने लगे। आकाश से नाना भाँति के फूलो का वर्षा हुई। शिव-पार्वती का व्याह हो गया। सारा ससार उछाह मे भर गया।

व्याख्या बाहर वाद्यध्वनि हो रही है। आकाश से सुमनवृष्टि हो रही है। ह भी नानाविधि से। फूलो की पखुरियो की वृष्टि हुई। पूरे फूलो की वृष्टि हुई। ल्पवृक्ष के फूल बरसाये गये। मालाओ की वर्षा हुई। रग बिरगी फूलो की मालाएँ गरी। इत्यादि। शिव पार्वती के ब्याह का प्रभाव देवलोक पर विशेषरूपेण पड़ा। त बार-बार पुष्पवर्षा हो रही है।

यह उत्साह इतना अधिक हुआ कि हिमालय सकीर्ण स्थल हो गया। उसमे उछाह समा नही सका, उमगकर सारे भुवन मे भर गया। यथा बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा।

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि वस्तु बिभागा ॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ॥४॥

अर्थ दासी, दास, घोडे, रथ, हाथी, गौ, वस्त्र, मणि आदि वस्तुओ का विभाग, अन्न और सोने के बरतन गाडियो मे भरकर दायज दिया जिसका बखान नही हो सकता।

व्याख्या ' चतुरङ्गिणी सेना और वस्तु विभाग दिये। दासी-दास से पदाति कहा। तुरग रथ नाग से शेष तीनो अङ्ग कहे और भी तीन विभाग दिये धेनु विभाग, बसन विभाग और मणि विभाग। अन्न सोने के बर्त्तनो मे भरे हुए सो भी गाडियो मे भर-भर कर दिये। हिमगिरि की सभी करणी अवर्णनीय है। ब्राह्म विवाह म धर्म, अर्थ, काम तीनो की सिद्धि होती है। पुत्रादि की उत्पत्ति से कुलधर्म की रक्षा होती है। अत शिव पार्वती का ब्राह्म विवाह सम्पन्न हुआ।

छ दाइज दियो बहुभाँति पुनि करजोरि हिम भूधर कह्यो।
का देउँ पूरन काम सकर चरन पकज गहि रह्यो ॥
सिव कृपासागर ससुर कर सतोषु सब भाँतिहि कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मैना प्रेम परिपूरन हियो ॥
दो नाथ उमा मम प्रानप्रिय, गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, ह्वै प्रसन्न बर देहु ॥१०१॥

अर्थ बहुत प्रकार के दहेज देकर फिर हाथ जोडकर हिमाचल ने कहा। हे शङ्कर! आप पूर्णकाम है। मैं आपको क्या दे सकता हूँ यह कहकर पाँव पकड़ लिये। कृपासागर शिवजी ने ससुर को सभी प्रकार से सन्तुष्ट किया। फिर प्रेमपूर्ण हृदय से मैना ने चरणकमल पकड़ लिये और बोली हे नाथ! उमा मुझे प्राणो के समान प्यारी है। इसे घर की दासी बनाना। इसके समस्त अपराधो को अब क्षमा करते रहना। यही वर प्रसन्न होकर मुझे दो।

व्याख्या इतना देने पर भी चित्त मे दीनता है कि मैने कुछ दिया नही। पूर्ण काम को कोई क्या दे सकता है। कुछ न देनेवाला श्रद्धालु जिस भाँति चरण पकड़

लेता है कि मै किसी लायक नही उसी भाँति चरण पकड़ लिये कि हम क्या दे सकते हैं ? हमारे यहाँ तो आपकी पूजा के लिए विल्वपत्र भी नही है। हिमालयपर विल्व वृक्ष नही होता। शिवजी का स्वभाव है : सकत न देखि दीन कर जोरे : क्योंकि कृपासागर हैं। इस समय हिमवान् और मैना का भाव श्वसुर और सास का सा देखकर ठीक दामाद की भाँति वरताव करते हैं। इसीलिए : ससुर कर सन्तोप सव भाँतिहिं कियो कहा। फिर मैना ने प्रेम परिपूर्ण हृदय से चरण पकड़ा। भाव यह कि मैना को भी पूर्ण श्रद्धा विश्वास और प्रेम श्रीचरणो मे हो गया है।

गृहकिंकरी। कहने का भाव यह कि उमा सब गृहपरिचर्या करेगी। आपकी आज्ञा मानेगी। यथा : निजकर गृह परिचर्या करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई। नारदजी के मुख से सुन चुकी है कि : सिय वेप सती जो कीन्ह तेहि अपराध सकर परिहरी। इसलिए वर माँगती हैं :

छमेहु सकल अपराध अव . पहिले की भाँति परित्याग न करना।

वहु विधि संभु सास समुझाई। गवनी भवन चरन सिरुनाई ॥
जननी उमा बोलि तव लीन्ही। लै उछंग सुन्दर सिख दीन्ही ॥१॥

अर्थ शिवजी ने बहुत भाँति से सास को समझाया। तव चरणो मे प्रणाम करके घर गईं। फिर माँ ने उमा को बुलाया और गोद मे विठाकर सुन्दर शिक्षा दी।

व्याख्या . वहुत प्रकार से शिवजी ने सास को समझाया। ससुर का सन्तोप किया था क्योंकि उन्हे चिन्ता थी कि मैने कुछ दिया नही। परन्तु सास को चिन्ता है कि एक वार त्याग कर चुके है। अपराध हो ही जाता है, कही फिर न त्यागे। अत. बहुत प्रकार से समझाना पड़ा। यथा :

दो. : मैं रिसात नहिं जो करै कोउ मेरो अपराध।
पै प्रिय विजयानद भगति पथमें परै न वाध ॥
दुखित हृदय निरुपाय ह्वै कियो सती को त्याग।
पै मो मन ते घटेउ नहिं कवहुँ नेक अनुराग ॥
सती अनादर ते कियों दक्ष महामख नाश।
तासु विरह दु खदु खित ह्वै तज्यौ वास कैलास ॥
अव मोहिं हित करि कठिन तप लियो उमा मोहिं मोल।
तापै आयसु स्वामिकी जाको मोल न तोल ॥
प्रभु अनुशासन ते भयौ यह सम्वन्ध उदार।
होइहि नित कल्यान अव अभिमत फल दातार ॥

इस भाँति समझाकर सास को भी सन्तुष्ट किया। वे भी प्रणाम करके गईं।

अब विदाई की तैयारी है। अधिक स्नेह के कारण उमा को लेकर गोद मे बिठाया। तप के लिए विदा करते समय भी इसी भाँति गोद मे भी बिठाया था। यथा : उमहि विलोकि नयन भरे वारी। सहित सनेह गोद बैठारी। बहुमान पुर सर शिक्षा देती हैं जिसमे विस्मरण न हो और ससुराल जाकर वैसा ही वरताव

माँ वाप का नाम न धरा जाय। यह चाल बराबर आज तव चली आती है।

सदा सकर पद पूजा। नारि धरम पति देव न दूजा ॥
कहत भरे लोचन वारी। वहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥२॥

अर्थ सदा शिवजी के चरणो की पूजा करना। नारियो का यही धर्म है। लिए पति के सिवा दूसरा दवता नही है। वाते कहते कहते आँखो मे आँसू र कन्या को फिर छाती से लगा लिया।

व्याख्या एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। उसी धर्म की शिक्षा देती है। पति के दक्षिण अङ्गुष्ठ म सव तीर्थो का निवास है। ही एक मात्र देवता है। उन्ही की पूजा से लोक परलोक दोनो वनता है। धम, नियम, व्रत, उपवास का स्त्री को अधिकार नही। पति की आज्ञा से कल्याण के लिए स्त्री नियम, व्रत, उपवास भी कर सकती है। सीताजी की ई के समय उन्ह शिक्षा दी गई थी कि सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति लखि आयसु अनुसरेऊ। पर यहाँ एसी शिक्षा नही दी जा रही है क्योकि यहाँ सास, ससुर और गुरु तीनो का अभाव है।

उमा प्राणो से प्यारी है। अत वार वार हृदय म लगा रही है। आखो म भरा हुआ है। पहिले गोद म लिया। अव हृदय से लगाती है।

विधि सृजी नारि जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही ॥
अति प्रेम विकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमँ विचारी ॥३॥

अर्थ कहने लगी ब्रह्मा ने ससार म स्त्रिया को क्यो वनाया? पराधीन स्वप्न म भी सुख नही है। माता प्रेम म अत्यन्त विकल हो गई पर कुसमय नकर धैर्य धारण किया।

व्याख्या विधि प्रपञ्च, गुण और दोष मिलाकर वना है। इसम सुख भी है र दुख भी है पर स्त्रिया को ता स्वप्न म भी सुख नही है। मैना कहती है वि ा ने स्त्री का वनाया क्यो? सपने मे भी सुख न होने का कारण यह है कि हे सदा पराधीन रहना पडता है। पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। ास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। कुमारावस्था म पिता रक्षा करता। युवावस्था म भर्त्ता रक्षा करता है। वेटे वृद्धावस्था म रक्षा करते है। स्त्री मे तन्त्रता की याग्यता नही है। उनके शरीर का सगठन ऐसा है कि उन्ह सदा ता की आवश्यकता रहती है। स्वतन्त्र रहने से वे विगड जाती है। यथा जिमि तन्त्र हूँ विगरहिं नारी। उमा का विदा कर रही है। अत स्त्रीजाति की रवशता पर आक्षप करती है। माँ है वेटी के विरह स अति विकल हो उठी। ङ्गल के समय अति विकलता समयानुकूल नही है। इसलिए धैर्य धारण किया।

नि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रमु कछु जाइ न वरना ॥
व नारिन मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥४॥

अर्थ बार बार भेंटने और उनके चरणो मे पडने लगी। परम प्रेम का कुछ वर्णन नही किया जा सकता। भवानी सब स्त्रियो से मिल भेंटकर फिर जाकर माँ की छाती से लिपट गईं।

व्याख्या पुत्रीभाव से तो भेटती है और जगदम्बा भाव से चरणो मे गिरती है। अथवा परम प्रेम मे कोई सुध बुध नही है। गल भी लगती है। पैर भी गिरती है। मिलि भेटि शब्द का साथ ही प्रयाग होता हे। अर्थ केवल आलिङ्गन करना है। अन्तिम विदा माता से लनी है। अत तीसरी बार जाकर माँ से फिर लिपट गईं।

छ जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दई।
फिरि फिरि बिलोकत मातु तन तब सखीले सिव पह गई॥
जाचक सकल सतोषि सकरु उमा सहित भवने चले।
सब अमर हरखे सुमन बरपि निसाननभ बाजे भल॥
दो चले सग हिमवनु तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाति परितोषु करि, बिदा कीन्ह वृषकेतु॥१०२॥

अर्थ फिर माता से मिलकर चली तब सबने उचित आशीर्वाद दिया। फिर फिरकर माता को देखती थी। तब सखियाँ उन्ह शिवजी के पास ल गईं। महादेवजी सब मँगनो को सन्तुष्ट करके उमा के साथ घर चल। सब देवगण प्रसन्न होकर फूलो की वर्षा करने लगे और आकाश म खूब डके बजे।

तब हिमाचल अत्यन्त प्रीति से पहुँचाने चल। शिवजी ने उन्हे बहुत भाँति से समझा बुझाकर विदा किया।

व्याख्या सौभाग्यवती भव पुत्रवती भव। यही समयोचित आशीर्वाद है। सा सब लागा ने दिया। माता पर वडा प्रेम है अत घूम घूमकर देखती हैं। माँ बाप और मैके का इतना प्रम हाता है कि पतिपदकमल म मन मधुकर के रहने पर भी उनका विरह दु खदायक हो रहा है। बिछोह की व्यथा का बढना ठीक नही। अत सखी शिवजी के पाम लिवा ल गईं।

शिवजी उमा सहित भवने चल। दायज की कोई वस्तु साथ नही है। सब याचको को द दी गई। बिदाई क समय फिर डका बजा। तीसरी बार फिर पुष्पवृष्टि हुई। देवताओ का मनारथ पूर्ण हुआ। अत बडा उत्साह हुआ है।

सीमान्त तक पहुँचाने की विधि है। अत हिमाचल शिवजी का पहुँचाने चल। शैलराज को अत्यन्त प्रेम है। अत शिवजी ने बहुत परितोष दिया तब फिरे प्रेम के कारण फिरते ही न थे।

तुरत भवन आए गिरि राई। सकल सैल सर लिये बोलाई॥
आदर दान बिनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह भगवाना॥१॥

अर्थ तब हिमाचल तुरन्त घर आये। सब पर्वतो और नगेसरा को बुलाया। आदर, दान, विनय और बहुत मम्मानपूर्वक हिमवान् ने सबको विदा किया।

व्याख्या . लड़की की विदाई के बाद पहिला काम नेवतहरियों · मेहमानों को विदा करना है। सो सब वन, सागर, नदी और तालाब को जो नेवते मे आये थे हिमवान् ने बुलाया और सबकी आदर, दान, विनय और सम्मान से विदाई की। कोई ऐसे भी होते हैं जो दान या विनय के पात्र नही हैं। पर आदर और सम्मान के सभी पात्र हैं। सम्मान दान सब दानो से बडा है। यथा तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल दे कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान। अथवा आने पर आदर, विदाई के समय दान और विनय फिर सम्मान से ग्रामसीमान्त तक पहुँचाना।

जबहि संभु कैलासहि आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु संभुभवानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी॥२॥

अर्थ . जब शिवजी कैलास आये तब सब देवगण अपने अपने लोक को चले गये। शम्भु भवानी जगत् के माता पिता है। इसलिए उनके शृङ्गार का वर्णन मै नही करता।

व्याख्या · देवगण महादेव के आज्ञाकारी हैं। आज्ञा माँग माँगकर अपने अपने लोको को गये। अत इधर · आदरदान विनय बहु माना नही करते। विवाह् के बाद शृङ्गाररस प्राप्त ही है। शम्भुशुक्रसम्भूत सुत की इस समय जगत् को बडी आवश्यकता थी। अत शृङ्गार रस का विधान बडे विस्तार से हुआ। जिसे देखकर भगवान् नन्दिकेश्वर ने कामशास्त्र की रचना की। परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि उसके वर्णन का मुझे अधिकार नही है। क्योकि शम्भु भवानी जगत् के माता पिता है।

करहिं विविध विधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ॥३॥

अर्थ विविध विधि से भोग-विलास करते हुए, अपने गणो के साथ कैलास मे रहने लगे। हरगिरिजा का विहार नित्य नया हुआ और इस भाँति बहुत समय चला गया।

व्याख्या प्रवृत्ति सदा शास्त्रीया होनी चाहिए। कामशास्त्र के अनुसार काम मे प्रवृत्ति होने से यथार्थ सुख की उपलब्धि होती है और काम से चित्त भी समय पाकर उपरत हो जाता है। भोग-विलास की विधि जिसने कामशास्त्र नही देखा उसे क्या मालूम ? पशु की भाँति सन्तति उत्पन्न कर लेना दूसरी बात है। भोग-विलास की विस्तृत विधि है कामशास्त्र मे उसका उल्लेख है। गृहस्थ हो गये इसलिए कहते है बसे कैलासा।

नितनवविहार पर महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' काव्य लिख डाला परन्तु ग्रन्थकार ने इसे अनुचित समझकर दिग्दर्शन मात्र करा दिया। 'नित नयऊ' से भाव यह कि सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। इस प्रकार क्षण की भाँति बत्तीस वर्ष बीत गये।

तव जनमेउ षट बदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥४॥

अर्थ : तब छः मुँहवाले पुत्र का जन्म हुआ। जिसने लड़ाई में तारकासुर को मारा। यह बात वेद शास्त्र और पुराण में प्रसिद्ध है। सारा संसार षडानन के जन्म का वृतान्त जानता है।

व्याख्या : तव शम्भुशुक्रसम्भूत सुत का जन्म हुआ। रजोमिश्रण से देवासुरों का संहारकर्ता पुत्र उपजा। जन्म के बाद ही तारकासुर का वध कहा अर्थात् छठीं के पहिले ही मारा। अति प्रसिद्ध होने से जन्म को विस्तार से न कहा। पण्डित, मूर्ख सभी यह कथा जानते हैं। पाँच मुखवालें पिता और एक मुखवाली माता से छः मुँहवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

छं. जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रताप पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहि कहा॥
यह उमा संभु विवाहु जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज विवाह मंगल सर्वदा सुखु पावहीं॥

दो. चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि, अति मतिमंद गवाँरु॥१०३॥

अर्थ : षडानन : स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महापुरुषार्थ को सारा जगत् जानता है। इसलिए मैंने वृषकेतु के पुत्र का चरित्र संक्षेप में कहा है। इस उमाशम्भु विवाह को जो नर-नारी कहेंगे या गायेंगे वे कल्याण के कामों और विवाहोत्सवों में सदा सुख पायेंगे।

गिरिजारमण शिवजी का चरित समुद्र है। उसका पार वेद नहीं पा सकते। अति मतिमन्द और गँवार तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकता है?

व्याख्या : केवल शम्भुशुक्रसम्भूत होना : जन्म। तारकासुरवध : कर्म। जन्म ग्रहण करते ही सुरसेनापति पद पर अभिषेक : प्रताप और उनकी शक्ति का किसी देवता से न उठना : महापुरुषार्थ है। वृषकेतु सुत कहकर पिता का सा महापराक्रम द्योतित किया। जिस बात को संसार जानता है उसे विस्तार से कहने में आनन्द नहीं होता। इसलिए संक्षेप में कहा। इस उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग में ग्यारह रुद्र संज्ञक छन्द इकट्ठे आये हैं। चार चौपाई समाप्त होते ही एक छन्द एक दोहा। यह क्रम पूरे प्रसङ्ग में है। फलश्रुति कहते हैं कि जो कल्याणकार्य विवाह मङ्गल में यह उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग गायेंगे या सुनेंगे वे सुख पायेंगे और जो सर्वदा सुनेंगे गायेंगे वे सर्वदा सुख पायेंगे। यह भवानीशङ्कर की वाङ्मयी पूजा का फल है। अतः वाङ्मयी पूजा भवानी शङ्कर की करके तब रामकथा आरम्भ होगी।

सीतारमण के चरित्र की भाँति गिरिजारमण का भी चरित्र अपार है। तुलसीदास जी कहते हैं जिसकी बुद्धि मन्द और असंस्कृत है उसके लिए तो विशेष-

व्याख्या लडकी की विदाई के बाद पहिला काम नेवतहरियो * मेहमानो को विदा करना है। सो सब बन, सागर, नदी और तालाब को जो नेवते मे आये थे हिमवान् ने बुलाया और सबकी आदर, दान, विनय और सम्मान से विदाई की। कोई ऐसे भी होते हैं जो दान या विनय के पात्र नही हैं। पर आदर और सम्मान के सभी पात्र हैं। सम्मान दान सब दानो से बडा है। यथा तुलसी बहुत पुकारि के सुनहु सकल दै कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान। अथवा आने पर आदर, विदाई के समय दान और विनय फिर सम्मान से ग्रामसीमान्त तक पहुँचाना।

जबहि सभु कैलासहि आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए॥
जगत मातु पितु सभुभवानी। तेहि सिंगारु न कहा बखानी॥२॥

अर्थ जब शिवजी कैलास आये तब सब देवगण अपने अपने लोक को चले गये। शम्भु भवानी जगत् के माता पिता हैं। इसलिए उनके शृङ्गार का वर्णन मैं नही करता।

व्याख्या देवगण महादेव के आज्ञाकारी हैं। आज्ञा माँग माँगकर अपने अपने लोको को गये। अत इधर आदरदान विनय बहु माना नही करते। विवाह के बाद शृङ्गाररस प्राप्त ही है। शम्भुशुक्रसम्भूत सुत की इस समय जगत् को बडी आवश्यकता थी। अत शृङ्गार रस का विधान बडे विस्तार से हुआ। जिसे देखकर भगवान् नन्दिकेश्वर ने कामशास्त्र की रचना की। परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि उसके वर्णन का मुझे अधिकार नही है। क्योकि शम्भु भवानी जगत् के माता पिता हैं।

करहिं विविध विधि भोग विलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरिजा विहार नित नयऊ। एहि विधि विपुल काल चलि गयऊ॥३॥

अर्थ विविध विधि से भोग विलास करते हुए, अपने गणो के साथ कैलास म रहने लगे। हरगिरिजा का विहार नित्य नया हुआ और इस भाँति बहुत समय चला गया।

व्याख्या प्रवृत्ति सदा शास्त्रीया होनी चाहिए। कामशास्त्र के अनुसार काम मे प्रवृत्ति होने स यथार्थ सुख की उपलब्धि होती है और काम से चित्त भी समय पाकर उपरत हो जाता है। भोग विलास की विधि जिसने कामशास्त्र नही देखा उसे क्या मालूम? पशु की भाँति सन्तति उत्पन्न कर लना दूसरी बात है। भोग-विलास की विस्तृत विधि है कामशास्त्र म उसका उल्लेख है। गृहस्थ हो गये इसलिए बहुत हैं बसे कैलासा।

नितनवविहार पर महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' काव्य लिख डाला परन्तु ग्रन्थकार ने इसे अनुचित समझकर दिग्दर्शन मात्र करा दिया। 'नित नयऊ' से भाव यह कि सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। इस प्रकार क्षण की भाँति बत्तीस वर्ष बीत गये।

तव जनमेउ षट बदन कुमारा । तारकु असुर समर जेहि मारा ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना । षन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥४॥

अर्थ तब छ मुँहवाले पुत्र का जन्म हुआ। जिसने लडाई मे तारकासुर को मारा। यह बात वेद शास्त्र और पुराण मे प्रसिद्ध है। सारा ससार षडानन के जन्म का वृतान्त जानता है।

व्याख्या तब शम्भुशुक्रसम्भूत सुत का जन्म हुआ। रजोमिथुन से देवासुरो का सहारकर्ता पुत्र उपजा। जन्म के बाद ही तारकासुर का वध कहा अर्थात् छठी के पहिले ही मारा। अति प्रसिद्ध होने से जन्म को विस्तार से न कहा। पण्डित, मूर्ख सभी यह कथा जानते है। पाँच मुखवाले पिता और एक मुखवाली माता से छ मुँहवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

छ जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रताप पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मै वृषकेतु सुत कर चरित सछेपहि कहा ॥
यह उमा सभु विवाहु जे नर नारि कहहिं जे गावही ।
कल्यान काज विवाह मगल सर्बदा सुखु पावही ॥

दो चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहि पारु ।
बरनै तुलसीदासु किमि, अति मतिमद गवाँरु ॥१०३॥

अर्थ षडानन स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महापुरुषार्थ को सारा जगत् जानता है। इसलिए मैंने वृषकेतु के पुत्र का चरित्र सक्षेप मे कहा है। इस उमाशम्भु विवाह को जो नर-नारी कहेगे या गायेंगे वे कल्याण के कामो और विवाहोत्सवो म सदा सुख पायेंगे।

गिरिजारमण शिवजी का चरित समुद्र है। उसका पार वेद नही पा सकते। अति मतिमन्द और गँवार तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकता है?

व्याख्या केवल शम्भुशुक्रसम्भूत होना जन्म। तारकासुरवध कर्म। जन्म ग्रहण करते ही सुरसेनापति पद पर अभिषेक प्रताप और उनकी शक्ति का किसी देवता से न उठना महापुरुषार्थ है। वृषकेतु सुत कहकर पिता का सा महापराक्रम द्योतित किया। जिस बात को ससार जानता है उसे विस्तार से कहने मे आनन्द नही होता। इसलिए सक्षेप मे कहा। इस उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग म ग्यारह रुद्र सज्ञक छन्द इकट्ठे आये हैं। चार चौपाई समाप्त होते ही एक छन्द एक दोहा। यह क्रम पूरे प्रसङ्ग म है। फलश्रुति कहते है कि जो कल्याणकार्य विवाह मङ्गल म यह उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग गायेंगे या सुनेंगे वे सुख पावेंगे और जो सर्वदा सुनेंगे गायेंगे वे सर्वदा सुख पायेंगे। यह भवानीशङ्कर की वाङ्मयी पूजा का फल है। अत वाङ्मयी पूजा भवानी शङ्कर की [illegible] होगी।

सीतारमण के चरित्र की भाँति गिरिजारमण का भी चरित्र अपार है। तुलसीदास जी कहते हैं जिसकी बुद्धि मन्द और गँवार है उसके लिए तो विशेष-

रूपेण अपार है। अत वर्णन करते न बना, इसमे सन्देह नहीं। जीवों के लिए वेद ही सब कुछ है। जब उसी को पार नही मिलता तो तुलसीदास की गिनती ही क्या है?

संगति वाक्य

सभु चरित मुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावली ठाढ़ी ॥१॥

अर्थ शम्भु के रसयुक्त और सुहावने चरित्र को सुनकर भरद्वाज जी ने बहुत सुख पाया। कथा पर लालसा बढ़ी। आँखो मे जल भर आया। रोमावली खड़ी हो गई।

व्याख्या शम्भुचरित को सरस कहा क्योंकि वह रसयुक्त है। रस नौ होते है। सो सभी शम्भुचरित मे हैं। १ शृङ्गार, यथा करि शृंगार सखी लै आई। सिवहिं सभुगन करहिं सिंगारा। करहिं विविध विधि भोग बिलासा। २ हास्य, यथा देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाही। बरलायक दुलहिन जग नाही। बिहँसे सिव समाज निज देखा। इत्यादि। ३ करुण, यथा रोदति बदति बहु भाँति करुना करत सकर पहँ गई। ४ वीर, यथा दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपकरि धनु सर गहा। ५ अद्भुत, यथा इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति विचित्र नहिं जाइ बखाना। इत्यादि। ६ रुद्र, यथा विकट वेष जब रुद्रहिं देखा। ७ भयानक, यथा अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा। भागि भवन पैठी अति त्रासा। ८ वीभत्स, यथा सब सथ मानित तन भरे। ९ निर्वेद, यथा सकर सहज सरुप सभारा। लागि समाधि अखड अपारा। 'सुहावा' से उपक्रम। यथा सुनहु सभुकर चरित सुहावा। और 'सुहावा' से ही उपसहार। यथा सभुचरित सुनि सरस सुहावा। उमाचरित स सुख पावा और शम्भुचरित से अति सुख पावा।

कथा पर लालसा तो पहिले से ही थी। अब शम्भुचरित के श्रवण से बहुत बढी। नयननीर रोमावलि ठाढी से सात्त्विक भावोदय दिखलाया।

प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी ॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा ॥२॥

अर्थ प्रेम विवस होने से मुख से बोली तक न निकली। दशा देखकर ज्ञानी, मुनि बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे हे मुनीश! तुम्हारा जन्म धन्य है। तुमको शिवजी प्राण के समान प्यारे हैं।

व्याख्या बहु लालसा कथा पर बाढी से मानसिक दशा कही। नयननीर रोमावलि ठाढी से शारीरिक दशा कही। अब वचन की दशा कहते हैं कि प्रेम के वश होने से मुख मे वाणी नही निकल रही है। ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य को शिष्य का अत्यन्त प्रेम शङ्कर के चरणो म देखकर बडा हर्ष हुआ कि मुझे रामचरित का परम अधिकारी श्राता मिला।

- भगवान् याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज जी को पहिले मुनि करके सम्बोधन किया था। यथा : सुनु मुनि मिटिहि विषाद। अब प्रेम में विभोर देखकर मुनीश कहते हैं। जिसे गौरीश प्राणसम प्रिय हो, उसी का जन्म धन्य है। क्योंकि -

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाही। रामहि ते सपनेहुँ न [1]सोहाही॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन [2]एहू॥३॥

अर्थ : शिवजी के चरणकमलो मे जिन्हे प्रीति नही है वे रामजी को स्वप्न मे भी अच्छे नही लगते। रामभक्त का लक्षण ही यही है कि शिवजी के चरणो मे छलरहित प्रीति हो।

व्याख्या व्यतिरेक मुख से शङ्कर के प्रेमी का ही रामप्रिय होना कहते हैं। 'सपनेहु' कहने का भाव यह कि किसी अवस्था मे भी रामजी को प्रिय नही है। क्योकि ' प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि, प्रीतिरीति जगजानी। भूषन भूति गरल परिहरि कै हर मूरति उर आनी। मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास जल छानी। पूछ सो प्रेम विरोध सीग सो, एहि विचार हित हानी। कृष्ण गीतावली।

असाधारण धर्म का लक्षण कहते हैं। यहाँ भरद्वाजजी की परीक्षा ली गई कि लक्षित मे लक्षण घटता है या नही। सो लक्षण घटा। विश्वनाथ के प्रेम मे विभोर देखकर जान लिया कि रामभक्त हैं अत कथा सुनने के अधिकारी हैं।

सिव सम को रघुपति ब्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई॥४॥

अर्थ शिवजी के समान रघुपति[3]व्रतधारी कौन है? जिन्होने निष्पाप सती ऐसी स्त्री का त्याग किया। प्रण करके रघुपतिभक्ति दिखलायी। हे भाई! रामजी को शिवजी के समान कौन प्यारा है?

व्याख्या प्रण करना और उसका निर्वाह करना ही व्रत है। यथा अस व्रत

---

१ रामभक्तो के आदर्श शिवजी है। जिस भक्त को शिवजी प्रिय नही ह वह अपने आदर्श स गिर गया। उसे भक्ति नही हो सकती। इसलिए आदर्शभ्रष्ट पुरुष रामजी को प्रिय नही हो सकता।

२ जिसे सच्चा प्रेम विश्वनाथ के चरण मे नही है वह रामभक्त नही है। क्योकि रामभक्त का लक्षण उसमे नही घटता।

३ रघुपति के चरणो म मनसा वाचा कर्मणा प्रेम करना और उसके सामने स्त्री, शरीर, पुत्र, धाम और धरणी को तृण समझना यही रघुपति व्रत है, इसी व्रत को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शिवजी ने प्रण किया कि एहि तन सती भेट अब नाही। जैसे सत्यव्रत सत्य के ऊपर सब कुछ निछावर कर देते हैं। यथा तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्यसध कहँ तृन सम बरनी। इसी भाँति रघुपति व्रतधारी शिवजी ने सती-सी स्त्री का रघुपति भक्ति के लिए परित्याग किया और जगत् को दिखला दिया कि राममक्ति इसे कहते है।

सेवक तुम राम के रहित समस्त विकार। अब रघुपति लीला कहूँगा सुनो। आसुरी सम्पत्तिवालो को सुनाने से उनका अकल्याण होता है। यथा अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहनि जन सुखकारी। अत कथा कहने के पहिले यह समझ लना चाहिए कि इससे सुननेवाल की हानि तो नही होगी तब कथा कहनी चाहिए। सती पर बडी विपत्ति, कथा के अनादर से आई। यथा रामकथा मुनिवज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। सती ने ध्यान नही दिया। कैलास पर भी कथा सुनने के समय विमान देखने लगी।

उत्तम वक्ता मिलने से श्रोता को सुख तो होता ही है। पर योग्य श्रोता मि ने से वक्ता को भी बडा सुख मिलता है। किं पुन रामभक्त के मिलने से। यथा तुमहि न ससय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्ह तुम दाया। अत कहते हैं कहि न जाइ जस सुखु मन मोरे।

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी॥२॥

अर्थ हे मुनीश! रामचरित अत्यन्त असीम है। उसे सौ करोड शेष भी नही कह सकते तो भी जैसा मैंने सुन रक्खा है वैसा वाणी के पति धनुष्पाणि प्रभु को स्मरण करके कहता हूँ।

व्याख्या दीनघाट के वक्ता श्री गोस्वामीजी कह चुके हैं वहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत ससारा। मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई। अब कर्मघाट के वक्ता याज्ञवल्क्यजी भी प्राय वही बात कह रहे हैं। उन्होने कहा था सारद शेष महेस विधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरतर गान। और यहाँ कहते ह कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा। बात एक ही है नेतिनेति करके कहना भी सीधे-सीधे नही कह सकना ही है। भेद यही है कि भगवान् याज्ञवल्क्य यथाश्रुत कहने म समर्थ हैं। यथा ते श्रोता वक्ता समसीला। सवदरसी जानहिं हरि लीला। दीनघाट के वक्ता यथाश्रुत कहने म अपने को असमथ पाते हैं। यथा किमि समझौं मै जीव जड कलिमल ग्रसित विमूढ। तदपि कही गुर बारहिं बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा। भाषाबद्ध करब में सोई। भगवान् याज्ञवल्क्य गिरापति धनुष्पाणि प्रभु को स्मरण करके कथा आरम्भ करते हैं। रामसच्चिदानन्द की तीन शक्तियाँ हैं। सत् शक्ति महालक्ष्मी। चित् शक्ति महासरस्वती और आनन्द शक्ति महाकाली। इस भाति रामजी गिरापति हैं। अखण्डदण्डायमान कालरूपधनुष उनके हाथ म है अर्थात् जो बुद्धि और बल की परम सीमा ह यथा काल जासु कोदड। वे ही कृपा करके वाणी का नृत्य हृदय म करा देंगे। धनुष्पाणि हैं विघ्नसमूह को दूर कर देंगे। अब रामजी का गिरापतित्व कहते हैं। यथा

सारद दारु नारिसम स्वामी। राम सूत्रधर अतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहि जनु जानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥३॥

अर्थ सरस्वती कठपुतली के समान है। स्वामी अन्तर्यामी रामजी सूत्रधार है। जिस पर वे भक्त जानकर कृपा करते हैं उस कवि के हृदयरूपी आँगन मे सरस्वती का नृत्य करा देते हैं।

व्याख्या उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं। सो सबहि मे सरस्वती का भी अन्तर्भाव है। ये भी उस अन्तर्यामी प्रभु के हाथ की कठपुतली है। जिस भाँति सूत्रधार आड मे रहकर पुतली नचाया करता है उसी भाँति रामगुसाईं दिखाई नही पडते और सरस्वती को भक्त कवि के हृदयरूपी आँगन मे नचाया करते है। साधारण पुरुष केवल सरस्वती की क्रिया देखते है। याज्ञवल्क्य ऐसे जानकार जानते है कि सूत्रधार दूसरा ही है। जिसकी यह करामत है।

कवि होना अपने हाथ की बात नही है। यथा शक्ति कवित्त बनाइबे की जेहि जन्म नक्षत्र मे देइ विधाता। देह भर मे हृदय ही नाचघर है। वही सरस्वती का नाच होता है। प्रभु सबके उर के अन्तर बसते हैं। अत वाणी भी वही सरकार के सामने नृत्य करती है। और वे ही सूत्रधार की भाँति उसे नचाते है।

प्रनवौ सोइ कृपालु रघुनाथा। बरनौ बिसद तासु गुन गाथा॥
परम रम्य गिरिवरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू॥८॥

अर्थ उन्ही कृपालु रघुनाथजी को मै प्रणाम करता हूँ। उन्ही के निर्मल गुणो की गाथा वर्णन करता हूँ। गिरिश्रेष्ठ कैलास परमरमणीय है। वहाँ शिव-पार्वती सदा निवास करते हैं।

पहिले प्रभु का स्मरण किया। यथा सुमिरि गिरापति प्रभु धनु पानी। अब उन्ही रघुनाथजी का वन्दन करते हैं। जिससे वे सरस्वती को प्रेरित कर। और मेरे हृदय मे उनका नृत्य हो। तब निर्मल यश कहा जा सकता है। भगवान् याज्ञवल्क्य कर्म • दक्षिण घाट के वक्ता हैं। अत नचानेवाले की वन्दना करते है। अब पश्चिम घाट अर्थात् ज्ञानघाट की कथा प्रारम्भ होती है।

पहिले कथा के स्थान का वर्णन करते है। कैलास पर्वतो मे श्रेष्ठ है और परमरम्य है। वहाँ शिव उमा का सदा निवास रहता है। यथा जहँ बस सभु भवानि सो कासी सेइअत कस न। परन्तु राजा दिवोदास के समय मे शिवजी के काशी छोडने की कथा सुनी जाती है। परन्तु कैलास मे सदा निवास रहता है। अब उसका माहात्म्य कहते है।

दो सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किनर मुनिवृंद।
बसहि तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकद॥१०५॥

अर्थ वहाँ सिद्ध, तपस्वी, योगी, देव, किन्नर, मुनिजन और सब पुण्यात्मा रहते हैं। और सुख के मेघरूप शिवजी की सेवा करते है।

व्याख्या नर की वहाँ पहुँच नही है। नरयोनि पुण्य पाप दोनो के हाने से

होती है, अत वहाँ केवल पुण्यात्मा लोग शिवजी की सेवा के लिए बसते है। सांसारिकों का वहाँ जाना दुर्लभ है। बसने की तो कोई बात ही नही है।

हरिहर विमुख धर्मरत नाही। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाही ॥
तेहि गिरि पर वट विटप विसाला। नित नूतन सुदर सब काला ॥१॥

अर्थ : जो हरि और हर के विमुख है और जिन्हें धर्म मे प्रीति नही है वे मनुष्य स्वप्न मे भी वहाँ नही जा सकते। उस पर्वत पर वट का बडा भारी पेड है। जो नित्य नया और सब काल मे सुन्दर रहता है।

व्याख्या : कैलास का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। और वहाँ सासारिक प्रलोभन की कोई वस्तु भी नही है। अत. धर्म के चाहनेवाले अथवा हरिहर के चरण मे प्रीति रखनेवाले ही प्राण की बाजी लगाकर वहाँ जा सकते हैं। दूसरे के मन मे वहाँ जाने का संकल्प ही नही उठेगा। कैलास जाने का कोई स्वप्न भी नही देखता। यह बात स्पष्ट ही है। आसुरी प्रवृत्ति के लोगो को वहाँ जाने मे अधिक सुविधा है। क्योकि वे मद्यमासादि के प्रयोग से उस भयानक शीत का सामना कर सकते है। पर उनका जाना न जाने के बराबर है। यही ठीक है कि वे नही जाते। क्योकि उन्हे वहाँ सिवा हिम और पाषाण के कुछ दिखाई ही नही पडता। दिव्यप्रदेश के लिए दिव्यदृष्टि की आवश्यकता होती है। बिना सूर्य मे संयम द्वारा दृष्टि प्राप्त किये कैलाश के दिव्याश का, जिसका यहाँ वर्णन है दर्शन नहीं प्राप्त हो सकता।

यह पर्वत इतना ऊँचा है कि बादल भी इसके कटि भाग तक नही पहुँचते। उससे ऊपर उनकी गति नही है। ऐसे उच्च पर्वत के ऊपर एक वटवृक्ष है। वह सब समय मे सुन्दर रहता है और कभी पुराना नही होता। इससे उस वृक्ष का दिव्य होना कहा। क्योकि पाञ्चभौतिक वस्तु सदा षड्र्मि अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति के वशीभूत रहते हैं।

त्रिविध समीर सुसीतलि छाया। सिव बिस्राम बिटप श्रुतिगाया ॥
एक बार तेहि तर प्रभु गएऊ। तरु विलोकि उर अति सुख भएऊ ॥२॥

अर्थ : वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध पवन चला करता है और उसकी छाया सुन्दर शीतल है। वेद उस पेड को शिवजी के विश्राम का विटप बतलाते हैं। एक बार प्रभु उस वृक्ष के नीचे गये। उसे देखकर उनके हृदय मे बहुत सुख हुआ।

व्याख्या : उस हिममण्डित देश मे त्रिविध समीर कहाँ ? शिव विश्राम विटप का यह प्रभाव है कि उसके तले त्रिविध समीर भी बहता है और छाया मे भी उत्कृष्ट शीत या उष्णता नही रहती। महल से बाहर आकर, वटविटप के तले शिवजी गये। वृक्ष की रमणीयता देखिये कि उसे देखकर शिवजी को अत्यन्त सुख हुआ। उसके नीचे बैठने से शिवजी को विश्राम मिलता है। भाव यह कि ज्ञानघाट की कथा कैलास के ऊपर वटवृक्षतले हुई।

अथवा जटामुकुट से तपस्वियों का राजा कहा। सुरसरित सिर से भक्तवत्सल, लोचन नलिन विशाल से सर्वद्रष्टा, नीलकण्ठ से आर्तिहर, लावण्यनिधि से छविधाम और बालविधु भाल से महिमाप्रद कहा।

अथ शिवगीता

श्रीरामचरितमानस भरद्वाज जी के इस प्रश्न पर खड़ा है कि : रामु कवन प्रभु पूछहुँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। ऐसा ही प्रश्न भगवती हिमगिरिनन्दिनी ने शिवजी से किया था और शिवजी ने उसका समाधान किया था। उसी प्रसङ्ग को याज्ञवल्क्यजी ने उक्त प्रश्न के उत्तर में कह डाला। यही रामचरिमानस है। अपने संशय के उन्मूलन के लिए गिरिजा ने आठ प्रश्न किये। तत्पश्चात् बारह प्रश्न श्रीरामावतार के चरित्रवर्णन तथा भक्ति, ज्ञानादि विषयक किये एवं गिरिजा के बीसों प्रश्नो का उत्तर ही श्रीरामचरितमानस है। अन्त में भगवती ने यह भी विनय किया कि जो कुछ मुझसे पूछने मे रह गया हो उसे भी छिपा नही रखिये। अर्थात् जानने योग्य जितनी बातें है वे सब गिरिजा ने पूछी और शिवजी ने उत्तर दिया। परन्तु प्रथम चार प्रश्नो के उत्तर में ही गिरिजा का सब संशय जाता रहा और वे कृतकृत्य हो गईं। अतः मैं उतने ही अंश को शिवगीता कहता हूँ। अबतारवाद में जो कुछ कहना है उतने मे सब कुछ कहा गया।

श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि : नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका। अतः यह जानना परमावश्यक है कि किस प्रश्न का कौन सा उत्तर है। गिरिजा बीस प्रश्न बराबर करती गई और शिवजी ने भी सबका उत्तर क्रम से इकट्ठा ही दिया। उनमे से पहिले आठ के पृथक्करण में बडी कठिनता पडती है। यद्यपि श्रीग्रन्थकार ने प्रश्नों को पृथक् करने के लिए हरहु मोर अज्ञाना, कहहु इत्यादि प्रार्थनासूचक लोट् लकार का आठ बार बराबर प्रयोग किया। तथैव उत्तर में सुनहु, तजु आदि क्रियाओं का भी आठ बार प्रयोग किया है फिर भी हम जैसे अल्पज्ञो को प्रश्न उत्तर के मिलान में बड़ी कठिनता पड़ती है। अतः उनका मिलान नीचे दिया जा रहा है।

प्रश्न		उत्तर
१. जौ मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी। तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना।	१०७ २	१ धन्य धन्य गिरि राजकुमारी गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज विमोहन सीला १११ ५ से ११३ तक
२ जासु भवन सुर तरु तर होई। सहकि दरिद्र जनित दुखु सोई। ससि भूषन अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी।	१०७ ३४	राम कथा सुन्दर करतारी सादर सुनु गिरिराजकुमारी ११३ १२

निज कर डासि नागरिपु छाला । बैठे सहजहि सभु कृपाला ॥
कुद इदु दर गौर सरीरा । भुज प्रलव परिधन मुनि चीरा ॥३॥

अर्थ अपने हाथ से व्याघ्राम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वाभाविक रीति से बैठ गये। शरीर कुंद के फूल, चन्द्रमा और शख सा गौर है। भुजाएँ लम्बी हैं, मुनिवस्त्र धारण किये हुए हैं।

व्याख्या उस समय एकदम एकान्त था। कोई गण भी निकट नही था। स्वय दासास्तपस्विन । अत अपने हाथ से ही व्याघ्राम्बर बिछाया। पहिले की भाँति पद्मासन लगाकर नही बैठे। यथा बैठे वट तर करि कमलासन। वल्कि स्वाभाविक रीति से यथा सुख आसन से बैठे।

कुन्द से सुन्दरता, कोमलता, गन्ध और वर्ण कहा। इन्दु से प्रकाश तथा आह्लादकता कही। दर से दृढता कही। प्रलम्बबाहु से विक्रम कहा। परिधन मुनीचीर से मुनिव्रत कहा।

तरुन[1] अरुन अबुज सम चरना । नख दुति भगत हृदय तम हरना ॥
भुजग भूति भूपन त्रिपुरारी । आननु सरद चद छविहारी ॥४॥

दो जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन विसाल ।
नीलकण्ठ लावन्यनिधि, सोह बालविधु भाल ॥१०६॥

अर्थ चरण लाल कमल के समान था और नखो की ज्योति भक्तो के हृदय का अन्धकार दूर करनेवाली थी। साँप और भस्म के भूपणधारी, त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी का मुख शरत्काल के चन्द्रमा की छवि का हरण करनेवाला था।

शिर पर जटाओ का मुकुट और गङ्गाजी थी। उनके बडे-बडे नेत्र कमल के समान थे। नीलकण्ठ लावण्य के भण्डार शिर पर द्वितीया का चन्द्र धारण किये हुए थे।

व्याख्या तरुन अरुन अबुज से मुनिमन मधुप का आश्रय कहा, अथवा ध्यान मे सुखद कहा। उस कमलदल पर रत्नो की भाँति नखो की शोभा है। ध्याता के हृदयतम की निवृत्ति इन्ही नखमणि की ज्योतियो से होती है।

भुजग भूति भूपन से वैराग्य कहा। त्रिपुरारी से सत्यसन्ध कहा। चन्द छविहारी से सौन्दर्य कहा। उनका चरित ही रसमय नही है मूर्ति भी रसमयी है। लावण्य निधि कहकर श्रृङ्गार, जटामुकुट कहकर हास्य, कृपालु कहकर करुणा, भुज प्रलब कहकर वीर, नखद्युति भक्त हृदयतम हरना कहकर अद्भुत, त्रिपुरारि कहकर रौद्र, भूतिभूपण कहकर वीभत्स, भुजगभूपण कहकर भयानक, निज कर डासि नाग रिपु छाला। बैठे सहजहि सभु कृपाला कहकर शान्तरस द्योतित किया।

---

१ पूर्णोपमा।

अथवा जटामुकुट से तपस्वियों का राजा कहा। सुरसरित सिर से भक्तवत्सल, लोचन नलिन विशाल से सर्वद्रष्टा, नीलकण्ठ से आर्तिहर, लावण्यनिधि से छविधाम और बालविधु भाल से महिमाप्रद कहा।

अथ शिवगीता

श्रीरामचरितमानस भरद्वाज जी के इस प्रश्न पर खड़ा है कि राम कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। ऐसा ही प्रश्न भगवती हिमगिरिनन्दिनी ने शिवजी से किया था और शिवजी ने उसका समाधान किया था। उसी प्रसङ्ग को याज्ञवल्क्यजी ने उक्त प्रश्न के उत्तर मे कह डाला। यही रामचरिमानस है। अपने सशय के उन्मूलन के लिए गिरिजा ने आठ प्रश्न किये। तत्पश्चात् बारह प्रश्न श्रीरामावतार के चरित्रवर्णन तथा भक्ति, ज्ञानादि विषयक किये एव गिरिजा के बीसो प्रश्नो का उत्तर ही श्रीरामचरितमानस है। अन्त मे भगवती ने यह भी विनय किया कि जो कुछ मुझसे पूछने मे रह गया हो उसे भी छिपा नही रखिये। अर्थात् जानने योग्य जितनी बातें हैं वे सब गिरिजा ने पूछी और शिवजी ने उत्तर दिया। परन्तु प्रथम चार प्रश्नो के उत्तर मे ही गिरिजा का सब सशय जाता रहा और वे कृतकृत्य हो गईं। अत मैं उतने ही अश को शिवगीता कहता हूँ। अवतारवाद मे जो कुछ कहना है उतने मे सब कुछ कहा गया।

श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका। अत यह जानना परमावश्यक है कि किस प्रश्न का कौन सा उत्तर है। गिरिजा बीस प्रश्न बराबर करती गईं और शिवजी ने भी सबका उत्तर क्रम से इकट्ठा ही दिया। उनमे से पहिले आठ के पृथक्करण मे बडी कठिनता पडती है। यद्यपि श्रीग्रन्थकार ने प्रश्नो को पृथक् करने के लिए हरहु मोर अज्ञाना, कहहु इत्यादि प्रार्थनासूचक लोट् लकार का आठ बार बराबर प्रयोग किया। तथैव उत्तर मे सुनहु, तजु आदि क्रियाओ का भी आठ बार प्रयोग किया है फिर भी हम जैसे अल्पज्ञो को प्रश्न उत्तर के मिलान मे बडी कठिनता पडती है। अत उनका मिलान नीचे दिया जा रहा है।

प्रश्न	उत्तर
१ जौ मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी। तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना। १०७ २	१ धन्य धन्य गिरि राजकुमारी गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला १११ ५ मे ११३ तक राम कथा सुन्दर करतारी सादर सुनु गिरिराजकुमारी
२ जासु भवन सुर तरु तर होई। सहकि दरिद्र जनित दुखु सोई। ससि भूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी। १०७ ३ ४	११३ १२

प्रश्न	उत्तर
३ प्रभु जे मुनि परमारथ वादी।	रामनाम गुन चरित सुहाए
कहहु वुझाइ नाथ मोहि सोऊ।	अस निज हृदय विचारि तजु सशय
१०७ ५ से १०८ १ तक	११३ ३ से ११५
४ अज्ञजानि रिसि उर जनि धरहू।	भजु रामपद सुे
जेहि विधि मोह मिटै सो करहू।	वोले कृपा निधान
१०८ २	११५ से १२० क तक
५ मै वन दीख राम प्रभुताई।	सुनु सुभकथा भवानि, रामचरितमानस विमल
हरहु कृपा विनवौं कर जोरे।	कहा भुसुडि वखानि सुना विहग नायक गरुड
१०८ ३ से ५ तक	१२० क
६ प्रभु मोहि तव बहुभांति प्रवोधा।	मो सवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहव।
कहहु पुनीत रामगुन गाथा।	सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर सुखद॥
१०८ ६ से ८ तक	१२० ख
७ वदौ पद धरि धरनि सिरु,	हरिगुन नाम अपार,
विनय करौं कर जोरि।	कथा रूप अगनित अमित।
वरनहुँ रघुवर विसद जस,	मैं निज मति अनुसार,
श्रुति सिद्धात निचोरि॥ १०९	कहौं उमा सादर सुनहु॥ १२०
८ जदपि जोपिता नहि अधिकारी।	सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए।
रघुपति कथा कहहु करि दाया॥	विपुल विसद निगमागम गाए॥
१०९ १३	१२० १

यदि पाठक मिलान के अनुसार प्रश्न और उत्तर को मिला मिलाकर पढेंगे तो उनको ग्रन्थ के समझने मे वडा सुभीता होगा। और ग्रन्थकार की पण्डिताई पर चकित होना पडेगा कि जितनी वार कहहु कहकर प्रश्न है ठीक उतनी ही वार सुनहु कहकर उत्तर है। शिवजी ने पाँचो मुख से सुनहु सुनहु नही कहा है। प्रत्येक कहहु के उत्तर मे सुनहु कहा गया है।

ग्रन्थकार मे वीस वार ग्रन्थचिकीर्षा का कारण भी ये ही वीस प्रश्न मालूम पडते हैं।[1]

---

[1] १ मापावद्धमिदञ्चकार २ भापाबद्ध करब मैं सोई ३ करिहौं नाइ रामपद माथा ४ करिहौं रघुपति कथा सुहाई ५ करहु कृपा हरि जस कहउँ ६ बरनउँ रामचरित चित चारु ७ सुमिरि सो नाम रामगुनगाथा करउँ ८ बरनउ रघुबर विमल जसु ९ कहिहौं सोइ सवाद वखानी ० मापाबद्ध करवि मैं मोई ११ तस कहिहौ हिय हरि के प्रेरे १२ कहउँ कथा भवसरिता तरनी १३ कहब मै गाई। कथा प्रसग विचित्र वनाई १४ वरनौं विसद रामगुन गाथा १५ करौं कथा हरिपद धरि सीसा १६ कहौं कथा सोई सुखद सोहाई १७ अब सोइ कहौं प्रसग सब १८ करइ मनोहर मति अनुहारी १९ कह कवि कथा सुहाइ २० कहउँ जुगल मुनिवर्य कर मिलन सुभग सवाद।

बैठे सोह कामरिपु कैसें । धरे सरीरु सात रसु जैसे ॥
पारवती भलि अवसरु जानी । गई संभु पहिं मातु भवानी ॥१॥

अर्थ : काम के शत्रु बैठे हुए कैसे शोभित हैं जैसे शान्तरस शरीर धारण किये हुए हो। माता भवानी पार्वती अच्छा अवसर जानकर शम्भु के पास गईं।

व्याख्या : शिवजी काम के शत्रु हैं। उन्हे कामना नही है। उनका भोग विलास भी कामाभास है। सो भी देवताओ के कल्याण के लिए है। काम के रहते शान्ति नही मिलती। यथा : काम अछत सुख सपनेहुँ नाही। कामका शत्रु ही वस्तुत शान्त हो सकता है। अत: धरे सरीर सतरस कहा। जिस समय गुरु एकान्त मे अव्यग्र भाव से बैठे रहे वही प्रश्न के लिए अच्छा अवसर है। यही देखकर भवानी शम्भु के पास गईं। भवानी पर्वत की बेटी है। पर्वत परोपकारी होते हैं। यथा : सत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन की करनी। अत. ये भी परोपकारी हैं। दूसरी बात यह कि लोक की माँ अपने बच्चो के कल्याण के लिए प्रश्न करेंगी। इसलिए पास गईं।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा । बामभाग आसनु हर दीन्हा ॥
बैठी सिव समीप हरखाई । पूरुब जनम कथा चित आई ॥२॥

अर्थ : शिवजी ने प्रिया जानकर अत्यन्त आदर किया और वाम भाग मे आसन दिया। शिवजी के पास हर्षित होकर बैठ गईं। पूर्वजन्म की कथा याद पडी।

व्याख्या : अभ्युत्थान देकर अत्यन्त आदर किया और अपने वाम भाग मे बिठाया। नही तो परित्यक्त होने से जब सतीरूप मे शिवजी के पास गई थी तब न आदर ही हुआ था और न वाम भाग मे आसन ही मिला था। यथा : जाइ सम्भु पद बन्दन कीन्हा। सनमुख सकर आसन दीन्हा। अत्यन्त आदर से पति प्रसन्नता जानकर हर्षित हुईं। शिवजी के पास बैठ गईं। याद पड़ा कि पूर्वजन्म मे इसी वटवृक्ष के नीचे मुझे सम्मुख आसन मिला था। अभ्युत्थान और वामभाग मे आसन की प्राप्ति ही पूर्व जन्म की कथा के स्मृतिपथारूढ होने के कारण हुए।

पूर्व जन्म मे भी लोकशिक्षा के लिए लीला की थी और इस जन्म मे लोकहित के लिए रघुनाथकथा विषयक प्रश्न करेंगी।

पति हिय हेतु अधिक अनुमानी । बिहँसि उमा बोली प्रिय बानी ॥
कथा जो सकल लोक हितकारी । सोइ पूछन चह सैलकुमारी ॥३॥

अर्थ पति के हृदय मे अधिक प्रेम का अनुमान करके उमा हँसकर प्रियवाणी बोली। जो कथा सकल लोकहित करनेवाली है उसे ही शैलकुमारी पूछना चाहती हैं।

व्याख्या अति आदर से पति के हृद्गत प्रेम के आधिक्य का अनुमान हुआ।

पूर्वजन्म की कथा की स्मृति से हँस पडी। प्रियवाणी बोली। प्रियवाणी वही है जो सुननेवालो को अच्छी लगे।

लोक माता हैं। इसलिए सकल लोक हितकारिणी कथा पूछना चाहती हैं। अपना मोह, सशय और भ्रम प्रकट करना उनकी लीला है। मुख्य प्रयोजन श्री रघुनाथ कथा श्रवण से है।

उमा के प्रश्न

बिस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पकज सेवा॥४॥

अर्थ हे विश्वनाथ! हे मेरे नाथ! हे पुरारे! तीनो भुवनो मे तुम्हारी महिमा विदित है। चर, अचर नाग, नर और देवता सब तुम्हारे चरण कमलो की सेवा करते हैं।

व्याख्या सामान्यत शिवजी सभी के नाथ हैं। पर विशेषत उमा कहती हैं कि मेरे नाथ है। तीना पुर जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति स्थान हैं उनका नाश करके आप तुरीय पद के देनेवाले हैं। अत पुरारि हैं। इस भाँति सम्बोधन करके मनोरथ सिद्धि की प्रबल आशा द्योतित की। अब शुश्रूषा के लिए स्तुति करती हैं। आप तीनो लोका के कल्याणकारक हैं। इसीलिए सर्वत्र आपकी महिमा प्रसिद्ध है। इस बात को स्पष्ट करती है। आप विश्वात्मा हैं। अत स्थावर जङ्गम सब आपकी सेवा करते हैं। आप विश्वनाथ हैं। इसलिए पाताल निवासी नाग, मर्त्यलोक निवासी मनुष्य और स्वर्गलोक निवासी देवता सब आपके चरणो की सेवा करते है। यथा सेइय सिवचरन सरोज रेनु। कल्यान अखिल प्रद कामधेनु।

दो प्रभु समरथ सर्बग्य सिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनतकल्पतरु धाम॥१०७॥

अर्थ हे शिव! आप प्रभु हैं, समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं। सभी कलाओ और गुणो के धाम हैं। योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। आप का नाम प्रणतकल्पतरु है।

व्याख्या प्रभु कहकर प्रभाव द्योतित किया। यथा प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी। समर्थ से सर्वशक्तिमत्ता कही। सर्वज्ञ कहकर ज्ञान की निरतिशयता कही। सकल कला गुणधाम से विद्यापति होना और योग ग्यान वैराग्य निधि से जगद्गुरु होना द्योतित किया। प्रणतकल्पतरु नाम कहकर शिवजी का प्रणत के लिए कल्पवृक्ष कहा।

जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥१॥

अर्थ हे सुखराशि! जो मुझ पर आप प्रसन्न हो और मुझे सचमुच निज दासी समझते हो तो हे प्रभो! रघुनाथजी की नाना विधि की कथा कहकर मेरे अज्ञान का हरण कीजिये।

व्याख्या : राशि से ही अन्न जाकर संसार मे फैलता है। आप सुख की राशि है। आनन्द के एक मात्र स्रोत हैं। अज्ञान ही दुःख का मूल है। इसी से ज्ञान आवृत ढका रहता है। इसके नाश से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः इसके हरण मे सुखराशिरूप आप ही समर्थ हैं। सो यदि आप मुझे सचमुच निज दासी जानते हो मेरी माँ ने आपसे मेरे लिए कहा था : 'गृह किंकरी करेहूँ।' यदि आप मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे अज्ञान को हरण करिये। महात्माओ की प्रसन्नता अमोघ होती है, व्यर्थ नही जाती। अज्ञानहरण का उपाय भी यही कहती हैं कि नानाविधि से श्रीरघुनाथजी की कथा कहकर अज्ञान हरण कीजिये।

जासु भवनु सुर तरु तर होई। सहिकि दरिद्र जनित दुखु सोई ॥
ससिभूपन अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी ॥२॥

अर्थ : जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो क्या वही दरिद्र से उत्पन्न दुख को सहे। हे चन्द्रभूषण ! हे नाथ ! ऐसा हृदय मे विचारकर मेरे भारी मतिभ्रम को हरण कीजिये।

व्याख्या : आप अमितदानी कल्पवृक्ष है। यथा ' प्रनत कल्पतरु नाम। आप जगद्गुरु हैं, ससार का अज्ञान नष्ट करनेवाले हैं। और मैं आपकी छाया मे रहनेवाली हूँ। मुझे मोहदरिद्र कैसे सताता है ? आप विचार करिये। इससे तो कल्पवृक्ष का अपयश होगा। आप शशिभूषण हैं : यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। आश्रित को जगत्वन्द्य बनानेवाले हैं। मेरे मतिभ्रम को दूर कीजिये। गुरु से पूछने पर ही ज्ञान होता है। अतः पहिले अज्ञान के दूर करने की प्रार्थना माया की आवरण शक्ति दूर करने के लिए की थी। और अब दूसरी प्रार्थना माया की विक्षेप-शक्ति भ्रम को दूर करने के लिए हो रही है। पहिले वस्तु का अज्ञान होता है। उसके बाद अन्यथा ज्ञान होता है। ये ही दोनो क्रमशः माया की आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति कहलाते हैं।

प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहि राम कहँ ब्रह्म अनादी ॥
सेप सारदा वेद पुराना। सकल करहि रघुपति गुनगाना ॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! जो परमार्थवादी मुनि हैं वे रामजी को अनादि ब्रह्म बतलाते है। शेष, सारदा, वेद और पुराण सभी रघुपति का गुणगान करते है।

व्याख्या : जितने १ परमार्थवादी अर्थात् ब्रह्मवादी मुनि हैं उन सबका इस विषय मे ऐकमत्य है कि रामजी अनादि ब्रह्म हैं। यथा : रामब्रह्म परमारथ रूपा। सुनहु राम तुम कहँ मुनि कहही। राम चराचर नायक अहही। भावार्थ यह कि अन्य विषयो मे मतभेद रहता है। वह मुनि ही नही जिसका मत भिन्न न हो। नासौ मुनिर्यस्य मत न भिन्नम्। परन्तु राम के विषय मे मतभेद नही है। २. शेष पाताल के वक्ता, ३ शारदा स्वर्गलोक की वक्ता है। ४ वेद और ५ पुराण मर्त्यलोक के वक्ता एव तीनो लोक के वक्ता भी रघुपति के गुणो का गान करते है। इनमे भी ऐक्यमत है।

तुम पुनि राम राम दिन राती । सादर जपहु अनंग अराती ॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई । की अज अगुन अलख गति कोई ॥८॥
दो जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥

अर्थ हे काम के शत्रु ! आप भी दिन रात आदर पूर्वक राम राम जपा करते हैं। आपकी तत्परता इतनी बढी हुई है कि विस्मृत होती ही नही। क्या अयोध्या के राजा के पुत्र ही राम है ? या कोई अज जन्मरहित : निर्गुण और अलक्ष्यगतिके है ?

जो राजा के पुत्र हैं सो ब्रह्म कैसे हैं। जिनकी मति स्त्री के विरह मे भोरी हो गई थी। उनके चरित्र को देख और महिमा को सुनकर मेरी बुद्धि बडे चक्कर भ्रम मे पड गई है।

व्याख्या भवानी कहती हैं कि ६ आप विश्व के नाथ होकर काम के दाहक होकर सब भाँति भीति रहित होकर भी अनवरत रामधुन लगाये रहते हैं। आपको उसी मे विश्राम मिलता है। ऐसे राम वही राजकुमार हैं या कोई दूसरे है। जिन्हे लोग अजन्मा निर्गुण और अलख कहा करते हैं। देखि चरित यथा बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई। मैंने चरित भी देखा कि स्त्री के विरह मे विकल है। प्रभाव भी देखा। उनकी महिमा भी आप से सुनी कि वे ही ब्रह्म हैं। अपने भक्तो के लिए अवतार लिया है। फिर भी इन सब बातो का सामञ्जस्य नही बैठता। इस भाँति १ परमार्थवादी २ शेष ३ शारदा ४ वेद ५ पुराण ६ स्वयं शिवजी के सिद्धान्त पर भगवती उमा ने सन्देह किया।

जौ अनीह व्यापक बिभु कोऊ । कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू । जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥१॥

अर्थ यदि कोई इच्छा रहित व्यापक ब्रह्म हों तो हे नाथ ! मुझे समझाकर कहिये। अनजान समझकर जी मे क्रोध न कीजिये। जिस भाँति मेरा मोह मिटे वही कीजिये।

व्याख्या 'कोई अर्थात् इदम् रूप से अवर्णनीय, अनीह अर्थात् इच्छारहित वा निष्क्रिय, व्यापक अर्थात् सर्वत्र विद्यमान, विभु अर्थात् प्रभु। यहाँ ब्रह्म के तीन विशेषण देकर राम और ब्रह्म मे भेद दिखलाती है। १ राम तो अवधनृपति के तनय है। २ स्त्री की इच्छा वाले हैं और ३ परिच्छिन्न है। वे ब्रह्म कैसे हो सकते है। यदि कहिये कि वे अवतीर्ण हुए हैं तो ब्रह्म मे स्त्रीविरह से वैकल्य नही बन सकता। ये सब बातें मुझे समझाकर कहिये।

राम विषयिणी शङ्का करते हुए भगवती डर रही है कि शिवजी अप्रसन्न न हो जाँय, कि इसने इतना भोगा अब भी शङ्का नही गई, फिर वही बात पूछती है। इस पर कहती है कि मैं अज्ञ हूँ, मुझपर क्रोध न कीजिये। मै बहुत दण्ड पा

-चुकी। मैं वह विधि नही जानती, जिससे मोह मिट जाय। यदि कथा कहने के अतिरिक्त कोई विधि हो तो उसे ही काम मे लाइये।

मै वन दीख राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुम्हहि सुनाई ॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा ॥२॥

अर्थ : मैंने वन मे रामजी की प्रभुताई देखी। मैं अत्यन्त डर से व्याकुल थी, इसलिए आपसे नही सुनाया। फिर भी मेरे मलिन मन मे ज्ञान न हुआ। उसका फल भी मैंने भली भाँति पाया।

व्याख्या : जो प्रभुता श्री रामजी की सती शरीर से देखी थी उसे अब स्पष्ट रूप से शिवजी से कह रही हैं। उस समय अतिभय से नही सुनाया था। इतना देखने पर तो बोध हो जाना ही चाहता था, फिर भी नही हुआ। इसका कारण मन का मालिन्य है। पहिले आवरण और विक्षेप कह चुकी। अब मनोमल कहती है। अर्थात् अपने मे माया की तीनो शक्तियाँ आवरण, विक्षेप और मल दिखलाया। अज्ञान का फल ही दुःख है। सो भली भाँति मैं पा चुकी। फिर भी दण्ड से अज्ञान पूरी तरह नष्ट नही हुआ।

अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। करहु कृपा बिनवौं कर जोरे ॥
प्रभु तव मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! मेरे मन मे अब भी कुछ संशय है। आप कृपा करिये। मैं हाथ जोडकर विनती करती हूँ। हे प्रभो ! उस समय आपने मुझे बहुत तरह से समझाया था। उसे समझकर क्रोध न कीजिये।

व्याख्या : सती शरीर से जो दुःख उठाना पडा उससे कुछ फल न हुआ हो। यह बात नही है। बहुत कुछ अज्ञान और भ्रम दूर हुआ। पर उसका लेश यत्किञ्चित् संशयरूप मे वर्तमान है। आपकी कृपा से वह भी मिटे। तब सीताजी के विरह मे विकल रामजी को देखने पर मुझे आपने बहुत समझाया था। यथा लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव बार बहु। अतः क्रोध करने के लिए यथेष्ट कारण है।

तब कर अस बिमोह अब नाही। राम कथा पर रुचि मन माँही ॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥४॥

अर्थ : अब पहिले जैसा विमोह नही है। रामकथा पर मन मे रुचि है। हे भुजगराजभूषण ! हे सुरनाथ ! रामजी के गुणो की पवित्र गाथा कहिये।

व्याख्या : परन्तु उस समय मुझे विमोह था। रामकथा पर रुचि नही थी। अगस्त्यजी ने रामकथा कही पर मैंने ध्यान नही दिया। यथा रामकथा मुनिबर्य बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। अब भीतर से कथा सुनने की रुचि है। अतः शङ्का कर रही हूँ। आप भुजगराजभूषण हैं। भुजगराज स्वयं रामकथा के वक्ता हैं। यथा सुकसनकादि सेष अरु सारद। बरनि पवनसुत कीरति नीकी। आप

सुरनाथ हैं। आपने अपने आश्रितो की रक्षा के लिए कृपा करके विषपान कर लिया था। यथा जरत सकल सुर बृंद, विषम गरल जेहि पान किय। आप मुझपर कृपा करिये और पवित्र रामगुणगाथा कहिये।

दो वंदौ पद धरि धरनि सिरु, विनय करौं कर जोरि।
बरनहु रघुवर बिसद जसु, श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१०९॥

अर्थ मैं पृथ्वी पर सिर रखकर आपके चरणो को प्रणाम करती हूँ। और हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि आप वेदो के सिद्धान्त को निचोडकर रघुवर का निर्मल यश वर्णन कीजिये।

व्याख्या अति लालसा कथा सुनने की है। अत धरणी पर सिर रखकर वन्दन करती हैं और हाथ जोडकर रघुवर विमलयश सुनने के लिए विनय करती हैं। सो रघुवर विमलयश तो वेद वर्णन करते है। यथा जिनहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुवर विसद जस। और वेद का अन्त नही है। यथा 'अनन्ता वै वेदा' भरद्वाज। अत कहती है कि वेद मे से उसके सिद्धान्त को निचोडकर कहिये। अर्थात् उसका सार भजनोपयोगी अश रघुवरयश कहिये। यथा श्रुति सिद्धांत इहै उरगारी। भजिअ राम सब काम बिसारी।

जदपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन क्रम बचन तुम्हारी॥
गूढौ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं ॥१॥

अर्थ यद्यपि स्त्री अधिकारिणी नही है। पर मैं तो मन, कर्म, वचन से आपकी दासी हूँ। साधु लोग जब आर्त अधिकारी पाते है तो गूढ तत्त्व को नही छिपाते।

व्याख्या स्त्रियो का वेद के सिद्धान्तो मे अधिकार नही है। अर्थित्व तथा सामर्थ्य न होने पर अधिकार नही होता। केवल लौकिक सामर्थ्य भी अधिकार का कारण नही होता। शास्त्रीय अर्थ म शास्त्रीय सामर्थ्य की अपेक्षा होती है। अत शास्त्रीय सामर्थ्य न होने से वेद मे स्त्री का अधिकार नही है। पर भगवती कहती है कि मैं तो वेदस्वरूप आपकी मनसा वाचा कर्मणा दासी हूँ। अर्थात् सदा आपके अर्धाङ्ग मे निवास करनेवाली हूँ। औरो को न हो पर मुझे शास्त्रीय सामर्थ्य कैसे नही है? दूसरी बात यह है कि आर्त होने से भी मैं अधिकारिणी हूँ। नियम यह है कि जिस पर जिसका सत्य स्नेह हो वह उसको मिलना चाहिए। यथा यत् यत्कामयते तत्तल्लभते। अत साधु लोग आर्त अधिकारी से गूढ तत्त्व को भी नही छिपाते है और मैं आर्त हूँ।

अति आरति पूछौं सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपु धारी ॥२॥

अर्थ हे देवताओ के राजा! मैं अत्यन्त आर्त होकर पूछती हूँ। रघुवर की

कथा दया करके कहिये। पहिले उस कारण को विचारकर कहिये जिससे निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया।

व्याख्या मैं आर्त हूँ और आप सुरराय हैं। देवसर्ग के प्रभु हैं। और 'दया मे वसत देव सकल धरम' · वि प। अन दया करके रघुपतिकथा कहिये।

पहिले यह विचारकर कहिये कि निर्गुण ब्रह्म को सगुण शरीर धारण करने का कौन सा कारण आ पड़ा ? पूर्णकाम को प्रयोजन नही हो सकता। सत्यसकल्प को शरीरधारण की आवश्यकता नही हो सकती। इसलिए इसका कारण कहिये।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा ॥
कहहु जथा जानकी बिवाही। राज तजा सो दूपन काही ॥३॥

अर्थ हे प्रभो! फिर आप राम का अवतार कहिये। फिर उदार बालचरित कहिये। फिर जैसे जानकी से व्याह किया सो कहिये। किस दोप से राम का त्याग किया ?

व्याख्या प्रयोजन कहने के बाद, रामजी कैसे अवतीर्ण हुए ? भाव यह कि सभी अवतारो के अवतीर्ण होने की विधि पृथक् पृथक् है। नृसिह भगवान् खम्भे से अवतीर्ण हुए। वाराह ब्रह्मदेव को नासिका से उत्पन्न हुए। सो रामजी कैसे अवतीर्ण हुए और क्या क्या हुआ ?

बालचरित को उदार कहा। क्योकि इस चरित मे दासो को अधिक आनन्द मिलता है। यथा बालचरित हरि बहु विधि कीन्हा। अति अनद दासन्ह कहँ दीन्हा। भुसुण्डीजी पाँच ही वर्ष तक प्रभु के साथ रहते है। सा बालचरित कहिये।

'जानकी बिवाही' से भाव यह कि माता पिता ने कन्या देखकर विवाह नही किया। अपने पुरुषार्थ से श्रीरामचन्द्र ने जानकी व्याही। सो वह कथा कहिये। राज्य के लिए ससार म लोग क्या नही करते। सो राज्य मे क्या दूपण था। जो उसे छोडकर वन मे घूमते फिरे।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा ॥
राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु सकर सुख लीला ॥४॥

अर्थ · हे नाथ! फिर उन्होने वन मे बसकर जो अपार चरित किये तथा जिस भाँति रावण को मारा सो कहिये। हे सुखशील शङ्कर! आप मो सब कहिये जो जो उन्होंने राज्य पर बैठकर बहुत सो लीलाएँ की।

व्याख्या यहाँ वनवास का चरित और रावणवध दोनो एक साथ पूछती हैं। क्योकि दोनो मे एक ही क्रिया 'कहहु' प्रयुक्त है। अत प्रश्न का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हुआ। वनवास के चरित को अपार कहती है। क्योंकि वे स्वय उस चरित का पार न पा सकी। अत पूछती हैं। 'जिमि रावन मारा' का भाव यह कि रावन के मारने की विधि पूछती हैं इसका मारना बडा कठिन था। दुर्गम स्थान मे निवास, मेघनाद कुम्भकर्ण प्रभृति से रक्षित, स्वय तपस्या वरदानादि से अजेय। सिर कटने पर भी न मरना आदि ऐसी अनेक अनेक बातें थी। विधि विपरीत चरित सब करई।

जनकनन्दिनी भी त्रिजटा से इसके मरने की विधि पूछने लगी : कि केहि विधि मरिहि बिस्वदु खदाता। सो उसके मरने की विधि बताइये।

राजगद्दी पर बैठकर जितनी लीलाएँ की। सो सब कहिये। 'सुखशील' कहने का भाव यह कि रामराज्य से ऐसा सुख हुआ कि आजतक भारत उसे भूलता नहीं। जब बहुत सुख मिलता है तब लोग कहते हैं कि रामराज्य है। आप सुखशील है। ऐसे सुख की सब कथा कहिये।

दो. बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवंसमनि, किमि गवने निज धाम ॥११०॥

अर्थ हे कृपायतन। रामजी ने जो आश्चर्य का काम किया रघुवंशमणि प्रजा सहित अपने धाम को गये। सो कैसे ? यह भी कहिये।

व्याख्या प्रजा प्रेम की परकाष्ठा हो गई। सम्पूर्ण प्रजा को कैसे अपने साथ निज धाम ले गये ? 'कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्।' कर्म की विचित्रता से ही सृष्टि मे वैचित्र्य है। सबका कर्म एक साथ ही कैसे समाप्त हुआ ? जो सबके सब मुक्त हो गये। जहाँ जाकर नही लौटते वही प्रभु का धाम है। यथा यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परम मम।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनिज्ञानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥१॥

अर्थ हे प्रभो। फिर आप उस तत्त्व का वर्णन कीजिये जिस विज्ञान मे ज्ञानी मुनि लोग मग्न रहते है। फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य सभी को विभागों के साथ कहिये।

व्याख्या उस तत्त्व के विषय मे भवानी प्रश्न करती हैं जिसका नाम नही है और जिसके अनुभव मे ज्ञानी मुनि मग्न रहते हैं। सगुण विषयक प्रश्न करके अब शुद्ध निर्गुणरूप पूछती है। सिद्धि विषयक बाते पूछकर अब साधन के विषय मे पूछती है कि भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य को विभाग के सहित वर्णन कीजिये। भाव यह कि चारो साधन पृथक् होने पर भी परस्पर उपकारी हैं। एक की प्रधानता मे दूसरे गौण होकर रहते है। अत विभाग के सहित सुनने के लिए प्रश्न किया।

औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिवेका ॥
जो प्रभु मै पूछा नहि होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥२॥

अर्थ · हे अति निर्मल ज्ञानवाले नाथ। रामजी के और जो रहस्य हैं उन्हे वर्णन कीजिये। हे दयालु। जो बात मैंने न पूछी हो उसे भी गोप्य न रखिये।

व्याख्या जितना भाँति की माया है उन सबमे रहस्य होता है। उस रहस्य के जानने से वह माया समझ मे आजाती हैं। सो सबसे प्रबल राम की माया है। यथा सुनु खग प्रबल राम कै माया। उस माया का रहस्य ही राम का रहस्य

है। उसके जानने से राम माया का पता चलता है। अत उसके जानने की बडी आवश्यकता है जिसके सामने महेश के उपदेश का बल नही चलता। यथा लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु। बोल बिहँसि महेस हरिमाया बल जानि जिय। वह माया भी एक प्रकार की नही है। उमा का स्वय अनुभूत विषय है। एक माया ने उन्हे मोहित किया था। और दूसरी ने अनेक ब्रह्माण्ड ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित पलभर मे रचे। यह दो प्रकार की माया तो उनको स्वय अनुभूत थी। अत रहस्य भी कम से कम दो होने चाहिए। इसलिए रहस्य अनेका कहती है।

भवानी कहती है कि इतनी बाते तो मैं जानना चाहती हूँ। इनके अतिरिक्त जो जो बातें मेरे लिए उपकारी हो और मै उन्हे पूछ न सकी हूँ उन्हे भी आप कहिये। इसीलिए 'नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात्' पर ध्यान न देकर उन्हे गोप्य न रहने दीजिये। यह प्रश्न है।

तुम त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। आन जीव पावँर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥३॥

अर्थ वेद ने बतलाया है कि आप तीनो लोको के गुरु है। दूसरे पामर जीव क्या जानते हैं। उमा के स्वाभाविक सुन्दर और छलरहित प्रश्नो को सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए।

व्याख्या भवानी कहती है कि आप सब उत्तरो के देने म समर्थ हैं क्योकि आप सर्वज्ञ है। वेद आपको त्रिभुवनगुरु कहता है। अन्य लोग तो जीव हैं। अल्पज्ञ हैं। स्वय अज्ञान मे पडे है। दूसरे का अज्ञान क्या हटा सकते है।

इन प्रश्नो म बनावट का नाम नही है। स्वभाव से ही सुन्दर हैं। बात को स्पष्ट करने के लिए है। अत छल बिहीन कहा। क्योकि बनावट ही छल है और छलयुक्त प्रश्न के उत्तर देने का विधान नही है।

हरहिय राम चरित्त सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानद अमित सुख पावा ॥४॥

अर्थ महादेवजी के हृदय मे सब रामचरित्र आगये। प्रेम से रोमाञ्च हुआ। आँखें डबडबा आईं। श्रीरघुनाथ का रूप हृदय म आगया। अत परम आनन्द और असीम सुख पाया।

व्याख्या प्रश्न अच्छे लगे। अत उत्तर रूप मे सम्पूर्ण रामचरित हृदय मे उदय हो उठा। सात्त्विक भाव हुआ। पहिले चरित्र का उदय हुआ। तब रूप का उदय हुआ। अर्थात् पहिले सात्त्विक भाव हुआ था। अब रूप के उदय से परमानन्द हुआ। परमानन्द में सुख की इयत्ता ही नहीं रह जाती। यही स्थायी भाव है।

दो मगन ध्यान रस दड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब, हरखित बरनै लीन्ह ॥१११॥

अर्थ शिवजी दो घडी तब ध्यान के रस मे मग्न रहे। फिर मन को बाहर किया। तब प्रसन्न होकर महेश रघुपतिचरित वर्णन करने लगे।

व्याख्या ध्यानजनित सुख मे दो दण्ड तक मग्न रहे। यथा जाग न ध्यान जनित सुख पावा। मन अन्तर्मुख होकर सुख ले रहा था। बहिर्मुख होना नही चाहता था। पर महेश ने उसे दो दण्ड के बाद बहिर्मुख किया। ढाई दण्ड का एक घण्टा होता है। अत अडतालिस मिनट का दो दण्ड हुआ और तब रामचरित हर्षित होकर वर्णन करने लगे। समाधि के आनन्द से भी रामचरित कथन के आनन्द का अधिक माना। यथा सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।

भावार्थ यह कि कथा कहने के पहिले ध्यानस्थ होकर कथा पर विचार करे। प्रभु का ध्यान करे तभी कथा कहने सुनने का आनन्द है।

शम्भु के उत्तर

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥१॥

अर्थ जिसके बिना जाने झूठ भी सच मालूम होता है। जैसे बिना पहिचाने रस्सी साँप जान पडती है। जिसके नाम से ससार खो जाता है। जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है।

व्याख्या झूठ और सत्य का विभाग बुद्धि के अधीन है। जिस पदार्थ को विषय करनेवाली बुद्धि का नाश नही होता वह पदार्थ सत्य है। और जिसको विषय करनेवाली बुद्धि नष्ट हो जाती है वह झूठ है। झूठविषयक बुद्धि तभी तक बनी रहती है जब तक सत्य का ज्ञान न हो। सत्य का ज्ञान होते ही झूठ विषयक बुद्धि का नाश हो जाता है। जैसे जब तक रज्जु का ज्ञान नही होता तब तक साँपविषयक बुद्धि बनी रहती है। रज्जु का ज्ञान होते ही साँपविषयक बुद्धि का नाश हो जाता है। अत रज्जु सत्य है और उसमे भासित होनेवाला साँप झूठ है।

इसी न्याय से ससार का मिथ्यात्व सिद्ध करते है कि ब्रह्म के ज्ञान से ससार खो जाता है। अर्थात् ससार को विषय करनेवाली बुद्धि नष्ट हो जाती है। जैसे जागने से स्वप्न को विषय करनेवाली बुद्धि का नाश हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। यहाँ हेराई[1] पद ध्यान देने योग्य

---

१ किमस्त किं ध्वस्त किमु विलुलित किंनु गलितम्
विशीर्णं वाजीर्णं ननु सपदि गीर्णं किमथवा।
अमन्दे स्वच्छन्दे निरुपमनिजानन्दजलधौ
मयि स्वान्ते शान्ते जगदिदमशेष न कलये॥

अर्थ क्या अस्त हो गया क्या नष्ट हो गया क्या मसल दिया गया या गल गया या छितरा गया या सड गल गया या किसी ने इसे निगल लिया ? अत्यन्त स्वच्छन्द निरुपम निजानन्द के समुद्र मे मेरे अन्त करण के शान्त होने पर इस पूरे ससार का पता नही चलता।

है। जिसकी जो वस्तु खो जाती है उसके लिए उस वस्तु का अभाव हो जाता है। दूसरे के लिए भले ही उसका अस्तित्व बना रहे। जागनेवाले के लिए स्वप्न झूठा हो जाता है। सोनेवाले तो परिदृश्यमान दृश्य को उस समय सच्चा ही जानते है।

बदौ बाल रूप सोई रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू ॥
मगल भवन अमगल हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥२॥

अर्थ मैं उन्ही बालरूप रामजी की वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मङ्गल के घर अमङ्गल के हरनेवाले वे दशरथ के आँगन मे खेलनेवाले कृपा करें।

व्याख्या बालरूप राम और किशोररूप राम एकही हैं। फिर भी बालरूप के उपासक बालरूप को ही इष्ट मानते हैं। यथा इष्ट देव मम बालक रामू। प्रसङ्ग यहाँ निर्गुण ब्रह्म का है। निर्गुण ब्रह्म में ही जगत् का भ्रम होता है। अत बालक राम की उपासना से निर्गुण ब्रह्म की उपासना कही। निर्गुण सगुण मे कोई वास्तविक भेद नही है। यथा जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहि जैसे। अवस्था भेद मात्र है। सगुण को किशोरावस्था मानिये तो निर्गुण बाल्यावस्था है। जगत् मे रहते हुए भी प्रपञ्च से पृथक् होने से बालरूप मे निर्गुण उपासना ही कही। बालरूप की वन्दना और नामजप से सब सिद्धि सुलभ हो जाती है। कहा भी है विनाप्यर्थं समर्थं हि दातुमर्थंचतुष्टयम्। मङ्गलायतन तन्मे बाल्ये यद्रामभाषितम्। बिना अर्थ के भी जो धर्मार्थ काम मोक्ष देने मे समर्थ है। ऐसा रामजी का बाल्यावस्था का भाषण मेरे लिए मङ्गल का आयतन हो। दशरथ अजिर बिहारी कहने से आँगन मे खेलना द्योतित किया। अभी बाहर जाने लायक नहीं हैं। अभी शक्ति और गुणो का विकास नही हुआ है। अत प्रौढापेक्षाकृत यह अवस्था निर्गुण ही है। यद्यपि भगवद्विग्रह नित्य ही मगल भवन अमगल हारी है। तथापि भक्तो को बाल्यावस्था के चरित मे अधिक आनन्द मिलता है। यथा बाल चरित हरि बहुबिधि कीन्हा। अति आनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधासम गिरा उचारी ॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहि कोउ उपकारी ॥३॥

अर्थ रामजी को प्रणाम करके और हर्षित होकर, त्रिपुरारि ने अमृत सी वाणी कही। हे गिरिराजकुमारी! तुम धन्य हो, तुम्हारे समान कोई उपकारी नही है।

व्याख्या त्रिपुरारि के प्रणाम से बालरूप की महामहिमा सूचित की। अति रुचिकर वाणी होने से सुधासम कहा। यहाँ से तीनो घाटो की कथा चली।

प्रथम बिनय तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधिनाना। की पूर्ति म यहाँ से हाथ लगा। इस विनय मे दो अभिलाषाएँ हैं १ राम कथा सुनने की और २ अज्ञानहरण की। अत दोनो अभिलाषाओ के लिए दो बार धन्य

धन्य कहा। ये दोनो अभिलाषाएँ लोक के परमोपकार के लिए हैं। यह समझकर शिवजी कहते है कि : तुम समान नहि कोउ उपकारी।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुवीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत नित लागी॥४॥

अर्थ तुमने रामजी की कथा का प्रसङ्ग पूछा। जो सब लोक के पवित्र करने के लिए गङ्गा है। तुम तो रघुवीर के चरणो मे अनुराग करनेवाली हो, जगत् के हित के लिए तुमने प्रश्न पूछे है।

व्याख्या ' कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। कहने से रघुपति कथा प्रसङ्ग पूछा। इसके उत्तर मे ससार के लोगो को पवित्र करनेवाली गङ्गा बहेगी। गङ्गा को भगीरथ लाये थे। इसे उमा ला रही हैं। यह पुरारिरूपी पर्वत से निकलकर श्रीरामस्वरूपसिन्धु मे जा मिलेगी। यह तीनो लोको को पवित्र करनेवाली गङ्गा है। [1]यथा पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता। अध्यात्मरामगङ्गेय पुनाति भुवनत्रयम्।

जो हरहु मोर अज्ञाना कहा था। उस पर शकर जी कहते है कि तुम रामचरण-अनुरागिणी हो। तुम्हे अज्ञान कहाँ ? जिसको जिसका ज्ञान नही वह उसका अनुरागी कैसे हो सकता है। अत. तुम्हारा प्रश्न अपने लिए नही जगत् के हित के लिए है। निरूपण का बीज प्रश्न है। तुम्हारा प्रश्न ऐसा है कि इसके निरूपण मे जो बातें कही जायँगी उनके जानने से जगत् का हित होगा।

दो राम कृपा ते पारवति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम, मम विचार कछु नाहिं॥११२॥

अर्थ हे पार्वती ! मेरे विचार से स्वप्न मे भी तुम्हारे हृदय मे रामकृपा से शोक, मोह, सन्देह भ्रम कुछ नही है।

व्याख्या पार्वती जी पर रामजी की कृपा देख चुके है कि रामजी ने स्वय प्रकट होकर माँगा कि ' जाइ विवाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु। उस पार्वती को शोक मोह, सन्देह, भ्रम क्या कभी हो सकता है ? क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटै सकल राम की दाया। अत कहते हैं ' शोक मोह सदेह भ्रम मम विचार कछु नाहिं।

तदपि असका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सबकर हित होई॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना। स्रवन रध्र अहि भवन समाना॥१॥

अर्थ फिर भी तुमने ऐसी आशङ्का की जिसके कहने-सुनने से सबका भला हो। जिन्होंने हरिकथा कान से नही सुनी, उनके कान के छिद्र साँप के बिल के समान हैं।

---

१ पुरारिरूपी पर्वत से निकलकर श्रीरामरूपी समुद्र म मिलनेवाली यह रामगङ्गा अध्यात्म है। यह तीनो लोको को पवित्र करती है।

व्याख्या : तुम्हारी आशङ्का का अभिप्राय यह है कि चरित्र देखकर जब मुझे मोह हो गया तो वही चरित्र सुनकर जीवों को मोह होना कौन बड़ी बात है। अतः शङ्का के व्याज से वे बातें मुझसे कहलाना चाहती हो जिनसे संसार मोह से छूटकर कल्याण प्राप्त करे। जो विकलेन्द्रिय या विकृतमस्तिष्क हैं उन्हें सम्यक् ज्ञान किसी वस्तु का हो नहीं सकता। उनका कथन सर्वथा उपेक्षणीय है। ऐसे लोग छः प्रकार के होते हैं : इनसे शिवजी श्रोता को सावधान किये देते हैं।

प्रथम विनय : जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी। तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। का उत्तर हरिविमुख[1] निन्दा तथा प्रार्थना की स्वीकृति द्वारा शिवजी दे रहे हैं। यथा : कान के छिद्र का स्वरूप बिल-सा ही है। यदि उसमें सचमुच साँप रहने लगे तो उसके बिल होने में सन्देह क्या है। जो रामकथा नही सुनता वह कामकथा सुनेगा। कान है तो सुनना ही पड़ेगा। चाहे रामकथा सुने, चाहे कामकथा सुने। काम सर्प है। यथा : काम भुजंग डसत जब जाही। विषय निम्ब कटु लगत न ताही। साँप बिल नहीं बनाता। जिस बिल में वह घुस जाता है, वही उसकी हो जाती है। इसी भाँति कामकथा भी कानों द्वारा हृदय मे घुस जाती है। अतः उसे सर्पबिल से उपमित किया। श्रवण का फल रामयश का श्रवण है। सो तो हुआ ही नही। अतः काम कथारूपी सर्प के निवास से उसके श्रवणरन्ध्र सर्प के बिल के समान भयङ्कर हो गये। उसके कलेजे पर साँप लोट रहा है। उसके कहने का कौन प्रमाण : यह पहिला हरिविमुख है।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥२॥

अर्थ : जिन्होने अपनी आँखो से सन्तो के दर्शन नही किये, उनकी [illegible] की आँखो की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तुम्बी के समान और तुल्य हैं। [illegible] और गुरु के चरणों में नमित नही होते।

व्याख्या : सन्त का लक्षण है कि उनको भगवान् के चरणों [illegible] न शरीर प्यारा है और न घर प्यारा है। यथा : तजि मम चरन सरोज प्रिय जिन कहँ देह न गेह। सो राम प्रेम से ही सन्त का आदर है। जिसे [illegible] सुनी ही नही वह सन्त के दर्शन के लिए क्यों जायगा ? नेत्रो का फल सन्तदर्शन है। यथा : होइहैं सुफल आज मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन। [illegible] सन्तदर्शन दुर्लभ है। परन्तु भगवान् की चलमूर्ति सन्तजन का दर्शन तो सुलभ है। यदि इसे नहीं देखा तो वे आँखें मोरपंख की भाँति व्यर्थ हैं। केवल [illegible] शोभा न है : सुझाई कुछ नही पड़ता। सन्त के दर्शन से पाप दूर होते हैं। यथा : [illegible]

---

१. न निन्दा निन्द्य निन्दितु प्रवृत्ता किन्तु [illegible]। निन्दा [illegible] के लिए की जाती है। निन्दायोग्य की निन्दा के लिए नहीं। [illegible] कथाश्रवण की स्तुति के लिए की गई।

जिमि पातक टरई। सो उसे हुआ नही। वह पापी है जो चाहेगा थकेगा। ये दूसरे हरि विमुख है।

जिसने हरिकथा नही सुनी वह हरि को क्या जाने और जिसने हरि को न जाना वह गुरु को क्यो माने? अत हरिकथा श्रवण का ही यह फल है कि सम्राट् का सिर भी हरि और गुरु के चरणो पर झुकता है। सिर का फल यह है कि वह हरि और गुरु के चरणो पर झुके और यदि ऐसा न हुआ तो वह सिर कडुई तूंबी के समान आकार मे है और गुण मे भी उसी के तुल्य है। जैसे कडुई तूँबी लोकसाधन या परलोकसाधन म से किसी काम नही आती उसी भाँति उस सिर से भी लोक-परलोक कुछ नही सधता। यथा खारी वेलि की खारी तुमडिया सब तीरथ करि आई। पुण्य तीर्थ को जल भरि लीन्ही तजत नही करुआई। ऐसा अविनीत जो चाहे कह सकता है। यह तीसरा हरिविमुख है।

जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करै राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥३॥

अर्थ जो अपने हृदय मे हरिभक्ति नही ले आये वे प्राणी मुर्दे के समान जीते हैं। जो रामगुणगान नही करती वह जिह्वा मढक की जिह्वा के समान है।

व्याख्या मुर्दे के समान जीने का भाव यह है कि शरीर की बनावट ज्यो की त्यो बनी है। पर अमङ्गलरूप है। निष्प्रयोजन है। हरिकथा श्रवण ही हरिभक्ति का कारण है। कथा श्रवण बिना हरिभक्ति हो नही सकती और हरिभक्ति बिना जीवन ही व्यर्थ है। वह जीवित ही मुर्दा है। पृथ्वी का भार मात्र है। नर शरीर भवसागर के सन्तरण का साधन है। इससे ससारसागर के पार जाने का यत्न होना चाहता था, सो इसने भक्ति को हृदय म स्थान ही नही दिया। माया म ही पडा रह गया। अत नर शरीर निष्फल गया। ऐसा पुरुष सब कुछ कह सकता है। यह चौथा हरिविमुख है।

भगवान् के गुणानुवाद के गान से भवसागर की अगाधता चली जाती है। वह थाह हो जाता है। अत जिह्वा का साफल्य रामगुणगान में है। यदि यह न हुआ तो वह व्यर्थ मेढक की जिह्वा[1] की भाँति टरटर किया करेगी। व्यर्थ का वकवाद करेगी। वाणी मनुष्य के लिए परमेश्वर की एक विशेष देन है। वही व्यर्थ चली गई तो वह मनुष्य नही रह गया। विचारपूर्वक कैसे बोलगा? यह पाँचवाँ हरिविमुख है

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि चरित न जो हरखाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज विमोहनसीला॥४॥

---

१ मढको को जिह्वा नही होती फिर भी वे टरटर किया करते हैं। इसी भाँति जो रामगुणगान नही करते उन्हें वाणी का वस्तुत अभाव है। केवल टरटर करने से जिह्वा का साफल्य नही है।

दो रामकथा सुरधेनु मम, सेवत सब सुखदानि।
सत समाज सुरलोक सब, को न सुनै असजानि ॥११३॥

अर्थ वह छाती वज्र के समान कठोर और निर्दय है जो हरिचरित को सुनकर प्रसन्न नही होती। हे गिरजे! रामजी की लीला सुनो जो देवताओ का कल्याण करनेवाली और राक्षसो को मोहित करनेवाली है।

रामजी की कथा कामधेनु के समान है। सेवा करते ही सब सुखो को देनेवाली है। और सत्पुरुषो के सभी समाज देवताओ के लोक हैं जहाँ कामधेनु रहती है ऐसा जानकर कौन इसे न सुनेगा?

व्याख्या द्रवीभूत न होने से छाती को कुलिसकठोर कहा। निष्करुण होने से निठुर कहा। इसे हरिचरित सुनने मे आनन्द नही आया। यह सद्गुणो से पराङ्मुख है। इसकी बातें सुनने योग्य नही हैं। यथा हिय फाटहु फूटहु नयन जरहु सो तन केहि काम। द्रवै स्रवै पुलकै नही तुलसी सुमिरत राम। यह छठा हरि-विमुख है।

'गिरिजा सुनहु' कहकर शिवजी प्रथम विनय का उत्तर देते है। सुर से दैवी प्रकृति और असुर से आसुरी प्रकृति के लोग अभिप्रेत हैं। यथा उमा रामगुन गूढ, पडित मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति। 'हरहु मोर अज्ञाना कहकर विनय किया था। 'सुनहु राम कै लीला' कहकर उत्तर हो रहा है।

विनय[1] करते हुए गिरिजा ने कहा कि जासु भवन सुरतरु तर होई। सहकि दरिद्र जनित दु ख सोई। इसी के उत्तर मे शिवजी कहते हैं कि दरिद्रजनित दु ख सहने का कोई कारण नही। रामकथा रूपी सब सुखदानी कामधेनु का सेवन करो। रामकथारूपी कामधेनु ग्यान बिराग सकल सुखदेनी है। कामधेनु तो ज्ञान विराग का सुख नही दे सकती और दुर्लभ भी है क्योकि स्वर्ग म रहती है पर रामकथा यही सन्त समाज मे रहती है और सब सुख देती है। अज्ञान से ही लोग दु ख सह रहे है। नहीं तो रामकथारूपी कामधेनु के रहते दु ख की कौन सी बात है?

रामकथा सुदर कर तारी। ससय बिहग उडावनहारी॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥१॥

अर्थ रामजी की कथा सशयरूपी पक्षी को उडानेवाली सुन्दर करतारी है। रामकथा कलिरूपी पेड के लिए कुल्हाडी है। हे गिरिराजसुते! उसे आदर के साथ सुनो।

व्याख्या दूसरे प्रश्न ससिभूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी। के उत्तर मे कहते हैं ससय बिहग उडावनिहारी। चिडिया उडाने का सबसे सुगम उपाय यही है कि बैठे बैठे ताली बजा दे। चिडिया स्वय उड जायँगी।

१ तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना॥

इसी भाँति कथा आरम्भ कर दे। संशय आप ही भाग जायगा। ताली दोनों हाथों के बजाने से बजती है। इसी भाँति रामकथा भी वक्ता श्रोता दोनों के उन्मुख होने से होती है।

वह संशयरूपी पक्षी जो कलिविटप पर बैठा रहता है करतारी सुनकर उड गया। पर पेड बना है तो फिर आकर बैठेगा। अत कहते है कि कथा कुल्हाडी का भी काम देती है। कुछ दिनो तक चलती रहने से वह कलिविटप भी कट जायगा जिस पर संशय ने डेरा जमा रक्खा है। सादर सुनु से दूसरे विनय के उत्तर का उपसंहार किया।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥२॥

अर्थ राम जी के नाम गुण और चरित सब सुन्दर हैं। जन्म कर्म अगणित हैं। जिन्हे वेद ने गान किया है। जिस भाँति भगवान् रामजी अनन्त है उसी तरह उनकी कथा उनकी कीर्ति तथा उनके गुण अनन्त है।

व्याख्या अब तीसरे विनय का अर्थात् 'प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ।' का उत्तर देते हैं। १ परमार्थवादी २ शेष ३ सारदा ४ वेद ५ पुराण के और ६ अपने गुणगान करने का कारण कहते हैं। राम के सोहाए नाम और गुण अगणित है। यदि कोई भी पूरा कह पाता तो दूसरे न कहते। अत सबको कहने का अवसर है। और वे यथासामर्थ्य कहते है। जन्म कर्म अगनित श्रुति गाये से दिव्य जन्म और दिव्य कर्म कहा। यथा जन्म कर्म च मे दिव्यम् और उन जन्मकर्मों की गिनती नही है। यथा *अवतारा ह्यसंख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा*। भागवते।

'अनन्त राम भगवाना' कहकर उनके स्वरूप और ऐश्वर्य सबको अनन्त कहा। दिव्य जन्म कर्म को अगणित पहिले ही कह आये हैं। अत उनकी कीर्ति अनन्त है। फलत गुणगान भी अनन्त है। इसीलिए सब सतत गान किया करते हैं। अन्त नही मिलता।

तदपि जथाश्रुत जसिमति मोरी। कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी॥
उमा प्रस्न[१] तव सहज सुहाई। सुखद संत संमत मोहि भाई॥३॥

अर्थ फिर भी जैसा मैंने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है तुम्हारी अति प्रीति देखकर कहूँगा। हे उमा! तुम्हारा प्रश्न स्वभाव से ही सोहावना है। सुखदायक और सन्तो से अनुमोदित है और मुझे भी अच्छा लगा।

व्याख्या अनन्त वस्तु के कथन मे यही होता है कि वह यथाश्रुत और

---

१ श्री रामचरितमानस म सर्वत्र प्रश्न शब्द को स्त्री लिङ्ग माना है। सम्भव है कि उस समय देश विदेश मे उसका स्त्रीलिङ्ग म प्रयोग होता रहा हो। प्राकृत व्याकरण म ता लिङ्गमतन्त्रम्' यह सूत्र है। अत शब्द के लिङ्ग के प्रयोग मे स्वतन्त्रता है।

यथामति कहा जाता है। अत. मैं भी वैसा ही कहूँगा। मैने तो रचना करके मन मे ही रख छोडा था। तुम्हे अति प्रीति है। इससे कहता हूँ। यथा यह न कहिअ मठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरिलीलहि।

प्रश्न की प्रशसा करते हैं। 'जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि' यह बहुत सुन्दर प्रश्न है और इसमे स्वाभाविकता है। ऐसे मार्मिक प्रश्न के उत्तर में वक्ता को भी सुख होता है। सन्तो की भी यही सम्मति है कि प्रकृत जिज्ञासु की यथार्थ जिज्ञासा का उत्तर देना चाहिए। शुष्क तर्क की प्रतिष्ठा नही है। वलवान् तार्किक निर्वल को दवा लेता है। और जो उससे भी वडा तार्किक है वह उसके तर्क का भी खण्डन कर देता है। अत शास्त्र की मर्यादा के भीतर भीतर तर्क होना चाहिए। तुम्हारा तर्क शास्त्र के भीतर है। शास्त्र के समझने के लिए है। अत 'जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि' यह तर्क मुझे अच्छा लगा।

एक बात नहि मोहि सुहानी। जदपि मोह वस कहेहु भवानी॥
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि [1]श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना ॥४॥

अर्थ हे भवानी! एक बात मुझे अच्छी नही लगी। यद्यपि तुमने मोह के वश होकर कही है। तुमने जो कहा कि वे राम कोई और है। जिन्हे वेद गाते है और जिनका मुनि लोग ध्यान करते हैं।

व्याख्या · आँखें तो बहुतो को हैं। पर सभी रत्न का पहिचान नही सकते। उन्हे शीशे मे और रत्न मे भेद नही मालूम पडता। उस भेद को तो केवल रात्निक : जौहरी की आँखें देखती है। अत रत्न का ग्रहण, दो-एक रात्निको को दिखाकर सत् तर्क द्वारा श्रद्धा करके ही ससार करता है। जो अभागा रात्निको पर कुतर्क के वल से श्रद्धा नही करता वह सदा रत्न से वञ्चित रहता है। इसी भाँति राम ब्रह्म है या नही इसका निर्णय सामान्य पुरुष नही कर सकता। इस वात के जौहरी परमार्थ-वादी मुनि शेष शारदादि हैं। उनके वचन पर सत् तर्क द्वारा श्रद्धा करना ही प्राप्त है।

शिवजी का कहना है कि जव तुम स्वयं कहती हो कि 'प्रभु जे १ मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहँ ब्रह्म अनादी। २ शेष ३ सारदा ४ वेद ५ पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना। ६ तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती।' तव तुमने कुतर्क का आश्रयण करके इनके वचनो मे अश्रद्धा क्यो की? ये लोग जव कहते हैं कि ये वही राम हैं जिनका वेद गान करता है और मुनि ध्यान धरते है तव तुम्हारे मन में 'राम कोउ आना' की भावना क्यो उठी? यही मोह की छाया है कि जिसे विशेषज्ञ महानुभाव एक स्वर से कहे उस

१ वेद के तीन भाग हैं. १ मन्त्र २ ब्राह्मण और ३ उपनिषद्। उपनिषदो मे १०८ प्रधान हैं उनम से कई एक उपनिषद् श्रीरामपरक हैं। रामतापनीय मे पूरी रामकथा सूत्र रूप से दी हुई है। जिसे पहिले उद्धृत कर दिया गया है।

विषय मे भी सशय को बनाये रखना। यही बात मुझे भी अच्छी नही ल
इस प्रकार की धारणा तो हरिविमुखो को होती है। जिनका उल्लेख ऊपर
जा चुका है। अब उन्ही छ हरिविमुखो की भर्त्सना पार्वती जी का भ्रम मिटा
लिए शिवजी क्रम से करते हैं।

दो कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाखडी हरि पद विमुख, जानहिं झूठ न साँच ॥११

अर्थ जिनके ऊपर मोह पिशाच सवार है जो पाखण्डी है जो भगवच्च
से पराङ्मुख हैं जो झूठ-सच को नही जानते ऐसे ही अधम पुरुष ऐसी बातें क
और सुनते हैं।

व्याख्या पहिले प्रकार के हरिमुख के लिए कहते हैं कि ऐसे ही अधम
ऐसी बाते कहते हैं और सुनते है। वे अपने वश मे नही। जैसा मोह पिशाच करा
है वैसा ही करते हैं। वे झूठी झूठी कल्पनाएँ किया करते हैं। हरिकथा तो क
सुनी नही। वे मिथ्या ससार को ही सत्य माने बैठे हैं। ब्रह्म सत्य उनके
कोई वस्तु ही नही है।

अब दूसरे प्रकार के हरिविमुख के विषय मे कहते हैं जिसने आँखो से स
कभी देखे ही नही।

अग्य अकोविद अध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी ॥
लपट कपटी कुटिल विसेखी। सपनेहु सत सभा नहिं देखी ॥१

अर्थ जो अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे, भाग्यहीन हैं और जिनके मनरूपी दर्प
पर विषयरूपी काई मल लगी हुई है। जो लम्पट, कपटी और विशेष रूप
कुटिल है और जिन्होने स्वप्न मे भी सन्त सभा नही देखी है।

व्याख्या वेद असम्मत वाणी बोलनेवाले यदि विज्ञ भी हो तो उन्ह अ
ही समझना चाहिए। जिसे इतना अभिमान है कि अपनी समझ के सामने ईश्वरी
वाणी को नही गिनता। अथवा ऐसा अविश्वासी है कि सनातन वेद पर विश्वा
नहीं करता। अथवा मन से भी अचिन्त्य रचनावाल ससार को देखने प
भी उसके रचयिता की ओर जिसका ध्यान नही जाता। वह विज्ञ होने पर भ
अज्ञ है। पण्डित होने पर भी मूर्ख है। आँख रहते अन्धा है। यह मन दर्पण है इस
में परमात्मा की छाया पडती है। जो दर्पण मलिन है उसम नही पडती है। व
परमात्मा मे विश्वास नही कर सकता। यदि ईश्वर मे विश्वास हो तो यह बात
भी समझ मे आवे कि इस विश्व का रचनेवाला विश्व के कल्याण के लिए विन
कुछ उपदेश दिये उसे उपेक्षित नही छोड सकता। अत उसे वेदशास्त्र क
आवश्यकता मालूम पडेगी। और जिसे ईश्वर पर विश्वास नही, वह वे
क्यो मानेगा?

तव वह अभागी है। भवभञ्जनपदविमुख है। मुनिजन धनसर्वस्व शिवप्राण
उसके भाग्य मे नही हैं। वह सदा जन्म मरणरूपी ससार में पडा हुआ अधम

गति को प्राप्त होता चला जायगा। उसके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई : मल लगी हुई है। उसमे ईश्वर की छाया नही पड़ती। ऐसे विषय के गीध, कपटी और विशेषरूप से कुटिल होते है। उन्हे विषय : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध छोडकर कुछ दिखाई नही पड़ता। यथा ' नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सग लागे। हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे। पर निंदा सुनि श्रवण मलिन भे वचन दोष पर गाये। सब प्रकार मल भारलाग निज नाथ चरन विसराये। कपटी अपनी अन्तरात्मा से कपट करता है। उसे सत्य ज्ञान हो ही नही सकता। यथा ' कपट करौं अन्तर्जामिहु ते, अघ व्यापकहि दुरावो। कुटिल परम सरल वचन मे भी पेंच देखता है। यथा : चलइ जोंक जल वक्रगति, यद्यपि सलिल समान। ऐसे लोगो को वेद पर विश्वास नही हो सकता। वे सन्तसभा का स्वप्न क्यो देखने जाँय? जिस विषय का सस्कार होता है उसी का स्वप्न दिखाई पडता है। उन्हे सन्तसभा का सस्कार ही नहीं होता। इसलिए वे स्वप्न मे भी नही देखते। उन्हे जगत् खलमय दिखाई पडता है। और जबतक यह विश्वास न हो कि परहितैकव्रत, दिव्यदर्शी महापुरुषो का होना सम्भव है तब तक वह आप्तवाक्य पर विश्वास नही कर सकता। सन्तसभा मे प्रवेश करने का सामर्थ्य ही पापो को नही हो सकता। सन्त का दर्शन ही नही तो कल्याण कैसे हो। उसे लाभ-हानि का यथार्थ रूप कैसे दृष्टिगोचर हो।

कहहिं ते वेद असमत बानी। जिन्हके सूझ लाभ नहि हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥२॥

अर्थ ' जिसे अपना लाभ और हानि नही सूझता। वे ही वेदो के विरुद्ध वाणी बोला करते है। एक तो मैला दर्पण दूसरे आँख का अभाव। भला वे विचारे राम का रूप कैसे देख सकते है?

व्याख्या ' हानि कि कछु एहिसम जग भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई। और लाभ कि कछु हरि भगति समाना। अर्थ और काम का लाभ वास्तविक लाभ नही है। सो जिन्हे लाभ और हानि नही सूझती, जो पारस : स्पर्शमणि, को काँच के टुकडे के बदले मे बेचते है, जो मनुष्यशरीर को उस विषयसुख के बदले मे खोते हैं, जो श्वान शूकर योनि मे भी सुलभ है वे ही वेद-असम्मत वाणी बोलते है। वेद तो कहता है कि [1]चिन्मय महाविष्णु हरि रघुकुल मे दशरथ के यहाँ उत्पन्न हुए। देखिये राम तापनीय[2]। रामरहस्योपनिषत् कहता है कि राम ही परब्रह्म हैं। मुक्तिकोपनिषत्[3] म कहा है कि राम ! तुम परमात्मा सच्चिदानन्द-

---

१ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।
रघो कुलेऽखिल राति राजते यो महीस्थित ।

२ राम एव पर ब्रह्म राम एव पर तप । राम एव पर तत्त्व श्रीरामो ब्रह्म तारकम्।

३ रात त्व परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रह । इदानी त्वा रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहु ।

विग्रह हो। हे रघुश्रेष्ठ! तुमको बार बार प्रणाम। सामवेद[1] के उत्तरार्चिक अ १५ ख २ सू १ म ३ मे सक्षेप से रामकथा भी वर्णित है। मन्त्ररामायण प्रसिद्ध ही है। पर वे कहेंगे कि राम कोई दूसरे हैं। अब तीसरे हरिविमुख के विषय में कहते हैं कि जिसने हरि और गुरु का समाश्रय नही किया उसे विवेक हो नही सकता। यथा बिनु गुरु होइ कि ज्ञान। और विवेक ही नेत्र है जगदात्मा प्राणपतिराम हैं। सो आत्माराम के देखने के लिए दो सामग्रियो की आवश्यकता रहती है। १ मनमुकुर और २ विवेकनेत्र की। दोनो मे से एक के भी न होने मे राम सुझाई नही पडते। सो जिसे विवेक नही है और मन भी मलिन है उसे राम की छाया भी दिखाई नही पडती। उस अभागे को ईश्वर पर विश्वास नही हो सकता। न भक्ति हो सकती है। अत वह वेदो की उपेक्षा अवश्य करेगा।

जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहि कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाही। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाही॥३॥

अर्थ जिन्हे न निर्गुण का ज्ञान है और न सगुण का वे मनगढन्त बात बका करते है। जो हरि की माया के वश मे होकर जगत् म चक्कर खाया करते हैं उनके लिए कुछ भी कहना असम्भव नही है।

व्याख्या जिन्हे निर्गुण और सगुण का विवेक है वे समझते है कि निर्गुण और सगुण मे वास्तविक भेद नही है। निर्गुण रूप से कोई लीला नही होती। अत उसका ज्ञान सुगम है, सगुण रूप से लीला होती है। उसमे नाना प्रकार के चरित्र होते है जिसम मुनि के मन मे भी भ्रम हो जाता है। यथा निर्गुण रूप सुगम अति, सगुन जान नहि कोइ। सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ। सगुण होने पर भी उनकी निर्गुणता बनी रहती है। यथा अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोइ। जाइ जोइ भाव दिखावै, आपुह होइ न सोइ। जिन्हे निर्गुण सगुण

---

१ भद्रोभद्रया सह सचमान आगात्, स्वसार जारोऽभ्यति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्।

भद्र कल्याणकरो रामचन्द्र भद्रया सीतया सचमान सहित यदा वनमागात् तदा जार धर्मविरुद्धाचरणेन स्वायुषा जरयिता रावण पश्चाद् रामासान्निध्य स्वसार स्वपित्रादि-ऋषिरक्तोत्पन्नत्वेन भगिनीतुल्या सीताम् अभ्यति हरणार्थमायात् तदनन्तर सु प्रकेतै शोभनध्वजै द्युभि अलौकिकैर्भाद्भि कमनीयैर्वर्णै रथै कुम्भकर्णादिभिश्च सह अग्नि क्रोधाग्निप्रज्वलितहृदयो रावण वितिष्ठन् युद्धाय सनद्ध सन् रामम् अभिस्थात् रामस्य सान्निध्य गतवान्।

अर्थ कल्याणकर श्रीरामचन्द्र जब कल्याणकरी सीता के साथ वन गये तब धर्मविरुद्धाचरण स अपने आप को नष्ट करनेवाले रावण ने रामजी की अनुपस्थिति म स्वपित्रादि ऋषियो क रक्त स उत्पन्न भगिनी क समान सीता के समीप जाकर उन्हे हरण किया। तदनन्तर क्रोधाग्नि स जलता हुआ वह विचित्र वर्णवाले रथो से सज्जित होकर कुम्भक दिको से युक्त रामजी के साथ युद्ध करने गया।

का विवेक नही है वे तथ्य को न जानकर बिना समझें अपने मन की कल्पना को ही सत्य समझकर पागल की तरह बका करते हैं।

अब चौथे प्रकार के हरिविमुख के विषय मे कहते हैं। जिसने हरिभक्ति को हृदय मे स्थान नही दिया।

हरि की माया बडी प्रबल है। जो ज्ञानी के भी चित्त का अपहरण करके बलपूर्वक मोहगर्त मे डाल देती है। यथा सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिहु कर चित्त अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। जो हरिमाया के वश मे पड गये जैसा नाच वह नचाती है, वैसा नाचते है। अब पाँचवे हरिविमुख के विषय मे कहते हैं जो राम गुणगान नही करता।

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥४॥

अर्थ जिन्हे वायु का रोग हो गया हो पागल हो गये हो, या सन्निपात हो गया हो भूत लगा हो या नशे मे हो। ऐसे लोग विचारकर वचन नही बोलते। जिसने महामोह रूपी मदिरा पी रक्खी हो। ऐसो के वचनो पर ध्यान न देना चाहिए।

व्याख्या बिना विचारे बोलनेवाले तीन हैं १ बातुल २ भूतविवश ३ मतवारे। जो विषयासक्त हो रामगुणगान नही करता उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है। वह बातुल, भूतविवश या मतवाले की भाँति विचारहीन बातें बोलता है। अब छठे प्रकार के हरिविमुख के विषय मे कहते है जो हरिचरित सुनकर हर्षित नही होता उसने महामोहरूपी मद्य का पान किया है। मद्य पीनेवाले प्रत्यक्ष देखते हैं कि मद्यप की बुद्धि का लोप हो जाता है। स्वय भी बुद्धिलोप का अनुभव करते है। उन्हे बुद्धिलोप की अवस्था अच्छी लगती है। वे उसी पर आसक्त हैं। इसलिए वे मद्य पीते हैं। इसी भाँति कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हे धर्मविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध तथा ईश्वर के विरुद्ध बोलना अच्छा लगता है। जानते हैं कि यह बात बुरी है पर उन्हे व्यसन हो गया है। उसका त्याग नही कर सकते। जिस भाँति मद्यप मद्य के दोषो को जानता हुआ भी उसको त्याग नही सकता। बल्कि उसकी प्रशसा करता है। मद्यप के कहने का कोई ख्याल नही करता। न कोई उसका कहना मानता है। मोहमयी मदिरा तो बडी प्रबल है, उसे पान करनेवाले की बात तो कभी सुननी नही चाहिए। उसका क्या ठिकाना। वह सब कुछ कह सकता है। तुम तो परीक्षा तक ले चुकी हो। तुम्हे रामकथा पर रुचि है, तुमने ऐसी बात मुँह से निकाली कैसे? कहहिं सुनहिं अस अधम नर। से उपक्रम करके तिन कर कहा करिअ नहिं काना। से उपसहार करते हैं अर्थात् इन छहो की बातें उपेक्षणीय हैं। उनम तुम्हारी गिनती नही होनी चाहिए।

सो अस निज हृदय बिचारि, तजु ससय भजु रामपद।
सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रम तम रबिकर बचन मम॥११५॥

अर्थ : ऐसा अपने मन मे विचारकर सन्देह को छोडो। और रामजी के चरणो को भजो। हे पार्वती ! सुनो मेरे वचन भ्रमरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं।

व्याख्या : अधम नर वातुल, भूतविवश और मतवारे की भाँति श्रुतिसिद्ध विषयो पर शङ्का उठाते है। शास्त्रविरुद्ध बाते बोलते हैं। ससारसागर के पार जाना चाहने वाले को वेद पर विश्वास करना ही होगा। सशय और विपर्यय ये दोनो तत्परत्व के मुख्य प्रतिबन्धक हैं। इनका नाश विपरीत निश्चय से होता है। अत इस विषय की शङ्का छोडो। रामजी को ब्रह्म समझकर भजो। मेरे वचन सुनने पर भ्रम नही रह सकता। मनन निदिध्यासन भी श्रवण के अन्तर्गत हैं। जिसने सुनकर मनन निदिध्यासन नही किया उसने वस्तुत श्रवण ही नही किया। क्योकि उसका सुनना न सुनने के बराबर है। अत कहते है कि मेरे वचन को हृदय मे स्थान देने से भ्रम रह नही सकता। जिस भाँति सूर्य की किरण के प्रवेश से अन्धकार नही रह जाता। यहाँ सुनु कहकर तीसरी विनती के उत्तर की समाप्ति कही गई। कहहु कहकर प्रश्न किया गया। अत सुनहु कहकर उत्तर दिया जा रहा है।

सगुनहिं अगुनहिं नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध वेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥१॥

अर्थ : सगुण और निर्गुण मे कुछ भेद नही है। मुनि, पुराण, वेद और पण्डित गाते है। जो निर्गुण, अरूप, अलख और अजन्मा है वही भक्तो के प्रेमवश सगुण हो जाता है।

व्याख्या : अग्य जानि रिसि जनि उर धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सो करहू। इस चौथे विनय के उत्तर मे कहते हैं कि मोह तो यही है कि जौ नृपतनय त ब्रह्म-किमि। सो सगुन और निर्गुण मे वास्तविक भेद कुछ नही, अवस्थाभेदमात्र है। इस बात को वेद और शास्त्र तथा शास्त्रज्ञ मुनि और पण्डित सभी कहते है। शास्त्र का अनुवाद बाँच लेने से कोई शास्त्र के मर्म को नही जान सकता। उसे तो गुरुपरम्परा से मननशील महात्मा लोग जानते हैं। अत वेद-पुराण के साथ ही मुनि और बुध को भी प्रमाण दे रहे हैं।

अगुण, अरूप, अव्यक्त और अज जिस ब्रह्म को कहते है वह भक्त के प्रेम के वश हो जाता है। जैसा भक्त चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। साधकाना हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना इति। यो यो या या तनु भक्त श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम्। भगवती श्रुति कहती है कि साधको के हित के लिए ब्रह्म की रूपकल्पना है। भगवद्गीता कहती है कि जो भक्त जिस-जिस तनु की श्रद्धा से अर्चना करना चाहता है, उसकी उस श्रद्धा को मै अचल कर देता हूँ। वह निर्गुण से सगुण, अरूप से रूपवान्, अव्यक्त से व्यक्त और अज से जन्मवाला हो जाता है।

जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसगा ॥२॥

अर्थ जो गुण से रहित है वह सगुण कैसे है ? जैसे जल और ओला भिन्न नही हैं । जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान है । उसके लिए मोह का प्रसङ्ग भी कैसे कहा जा सकता है ?

व्याख्या शास्त्र की मर्यादा कहकर अब उसी मर्यादा के भीतर तर्क भी दे देते है । प्रश्न यह है कि निर्गुण और सगुण दोनो परस्पर विरोधी पदार्थ हैं । एक मे ही विरुद्धधर्माश्रयत्व कैसे सम्भव है ? उत्तर देते है कि दो पदार्थ नही हैं । अवस्था-भेद से स्वरूप म भेद मालूम पडता है । वास्तव म भेद कुछ नही । जैसे जल का स्वाभाविक गुण द्रवत्व है । परन्तु शीत के वश होकर द्रवत्व अभिभूत होकर उसम दृढता आ जाती है और वह पत्थर सा दृढ हो जाता है । जो बात उसम नही थी वह आ जाती है । इस भाँति जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि । इस मोहाश को मिटाया ।

नाम और रूप माया के अश हैं । इसलिए उन्हे उपाधि कहा यथा नामरूप दुइ ईस उपाधी । स्वरूप तो उनका सच्चिदानन्द है । पर इस नाम उपाधि म जिसके सम्बन्ध से ऐसा सामर्थ्य आजाता है कि सूर्यकान्त मणि की भाँति पापरूपी रूई की राशि को भस्म करके ज्ञान का कारण होता है । यथा जासु नाम पावक अघ तूला । नाम निरूपन नाम जतन ते । सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते । वह विरह विकल नही हो सकता । उसे विरहविकल समझनेवाले को ही मोह है । वह उसके स्वरूप को नही जान पाया । इस भाँति नारि बिरह मति भोरि । इस मोहाश को मिटाया । अब शिवजी उन छहो आक्षो रातिनका की ओर से उत्तर दगे जिनके सिद्धान्त का उमा ने अनादर किया था । पहिले परमार्थवादी की आर से कहते है ।

राम सच्चिदानद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥३॥

अर्थ रामजी सच्चिदानन्द सूर्य हैं । वहाँ अज्ञान रात्रि के लव का लश भी नही है । भगवान् स्वभाव ही से प्रकाश स्वरूप हैं । वहाँ विज्ञानरूपी प्रात काल भी नही होता ।

व्याख्या अब रामजी का स्वरूप कहते हैं कि वे सच्चिदानन्द रूप हैं । उनमे षडैश्वर्य स्वभाव से सिद्ध है । वे मोहनिशानाशक हैं । अत उन्ह सूर्य कहा । यथा उदय भानु बिनु श्रम तम नासा । जहाँ उक्त सूर्य नही रहते वहाँ मोहनिशा रहती है ।

रामजी तो सहज प्रकाश रूप अर्थात् स्वय प्रकाश हैं । अब जीवधर्म का उनमे अभाव दिखलाते है । यद्यपि विज्ञान मोक्षप्रद है । पर वह जीव को ही होता है । पहिले मोह रहा पीछे से विज्ञान हुआ । जहाँ रात पहिले रह चुकी है वही प्रात

काल भी होता है। अत विज्ञान भी जीवधर्म है। ब्रह्म मे १ विज्ञानरूपी प्रात काल भी सम्भव नही।

हरप विपाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानद परेस पुराना ॥८॥

अर्थ २ हर्ष ३ शाक ४ ज्ञान ५ अज्ञान ६ अस्मिता और ७ गर्व जीवधर्म हैं। ये सात ब्रह्म में नही है। रामजी तो व्यापक ब्रह्म हैं। परमानन्द स्वरूप है, सबके स्वामी और पुराण पुरुप हैं। यह ससार जानता है।

व्याख्या बन्ध से लेकर मोक्ष तक द्वैत जीव कल्पित है। इससे उन्हे जीवधर्म कहा। रामजी जीव नही हैं। वे ब्रह्म हैं। उनमे जीवधर्म कहाँ? अब सात धर्म ब्रह्म के कहते हैं। १ ससार जानता है कि व्यापक हैं। यथा 'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। २ परमानन्द। यथा जो आनद सिंधु सुख रासी। ३ परेश। यथा तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ४ पुराना। यथा उपजहिं जासु अस विधिनाना। सभु विरचि विस्नु भगवाना।

दो पुरुप प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ ॥११६॥

अर्थ जो प्रसिद्ध पुरुप हैं स्पष्ट प्रकाश के निधि हैं। सूक्ष्म स्थूल के स्वामी हैं। वे ही रघुकुल मणि मेरे स्वामी हैं। ऐसा कहकर शिवजी ने उन्हे मस्तक झुकाया।

व्याख्या ५ पुरुप प्रसिद्ध। यथा जगदात्मा प्रानपति रामा। ६ प्रकाश निधि। यथा जिमि घट कोटि एक रवि छाही। ७ प्रकट परावर नाथ राम रजाय मेटि जग माही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाही। उमा दारु जोपित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं। वही राम रघुकुलमनि ब्रह्म हैं। वे ही मेरे स्वामी हैं। अत उन्ही को रात दिन सादर जपता हूँ। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहुँ अनग अराती। ऐसा कहकर सिर नवाया। अब शिवजी की ओर से कहते हैं

निज भ्रम नहि समुझहि अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहि जड प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झापेउ भानु कहहि कुबिचारी ॥१॥

अर्थ अपने भ्रम को अज्ञानी नही समझते। अविवेकी प्राणी प्रभु पर मोह का आरोप करते हैं। जैसे आकाश मे बादलो का पर्दा देखकर बुरे विचारवाले कहते हैं कि सूर्य ढक गया।

व्याख्या अपने भ्रम को न समझनेवाले ही अज्ञानी हैं जो अपने भ्रम को समझता है वह ज्ञानी है। दर्पण के प्रतिबिम्ब का ज्ञान जानकार के लिए प्रमा और अनजान के लिए भ्रमात्मक है। मन्दान्धकार मे रज्जु का सर्प दिखाई पडना अज्ञान है। वह तो सभी को सर्परूप म ही दिखाई पडेगी। परन्तु जानकार का वहाँ

भ्रमप्रयुक्त क्रिया का अभाव है। अविवेकी प्राणी अपने भ्रम को न समझेगे। वे रज्जु को ही दोष देंगे कि वह सर्परूप मे क्यो परिणत हो गई।

जिसे सूर्य के परिमाण का ज्ञान है वह समझ सकता है कि बादल बिचारा सूर्य को क्या ढक सकता है। वह हमारी आँखो को नि सन्देह ढक सकता है। उसी को अविवेकी पुरुष सूर्य का ढका जाना समझते है। इसी भांति अज्ञान अपने को होता है। अविवेकी पुरुष उसका आरोप रामजी पर करते हैं। इससे आवरण-शक्ति कहा।

चितव जो लोचन अगुलि लाए। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ॥
उमा राम विषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥२॥

अर्थ जो अपनी आखो मे उँगली लगाकर देखता है उसके मत से दो चन्द्रमा स्पष्ट है। उमा! रामजी के विषय मे ऐसा ही मोह है। जैसे आकाश म अन्धकार, धूम और धूलि शोभित होती है।

व्याख्या अब विक्षेप कहते हैं। आवरण से आत्मा का अज्ञान होता है। विक्षेप से द्वैत की प्रतीति होती है। अपनी आँख मे उँगली द्वारा विक्षेप हुआ। चन्द्रमा के कोई विक्षेप नही हुआ। अच्छी तरह मालूम है कि एक है। पर चन्द्रमा दो दिखलाई पडने लगते है। जगत् का आभास कर्म दोषो से उत्पन्न है। उसकी निवृत्ति ज्ञानमात्र से नही हो सकती। चूक अपनी है चन्द्रमा की नही। इसी भाँति अपना द्वैत भाव राम मे दिखाई पडता है। जबतक कार्य का लय नही होगा व्यवहार लय नही हो सकता। इसी भाँति स्वय मलावृत होने से रामजी मे मलिनता दिखाई पडने लगती है। हमे जब अन्धकार, धूम और धूलिका अनुभव होता है तब कहते हैं कि आकाश अन्धकार, धूम और धूलि से भर गया। तम से सूक्ष्म, धूम से स्थूल और धूलि से स्थूलतर मल कहा। यहा ब्रह्म की उपमा आकाश से दी गई। क्योंकि आकाश और चिदात्मा विलक्षण नही हैं। दोनो ही सूक्ष्म, निर्मल, अज, अनन्त, निराकार, असङ्ग और सबके भीतर बाहर व्याप्त है। चैतन्य-पूर्ण आत्मा ही आकाश है। उसमे किसी वस्तु का लेप नही हो सकता। जीव समझता है कि जैसी हमे सच्ची विकलता है वैसी ही रामजी को भी सच्ची विकलता है। यह निर्गुण निराकार मे अध्यास का उदाहरण है। वह सबका प्रकाशक है। उसमे अज्ञानान्धकार कहाँ ?

विषय[1] करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥३॥

अर्थ विषय से इन्द्रियाँ, उनसे देवता और उनसे भी बढकर जीवात्मा सचेत है। इन सबका जो परम प्रकाशक है वही अनादि राम अयोध्याधिपति है।

व्याख्या . विषय। यथा . शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। करण पाँच

१. एकावली अलङ्कार है।

कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और चार अन्तःकरण है। यथा १ वाक् २ पाणि ३ पाद ४ पायु ५ उपस्थ ये कर्मेन्द्रियाँ है। ६ श्रोत्र ७ त्वक् ८ चक्षु ९ जिह्वा १० घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ११ मन १२ बुद्धि १३ चित्त और १४ अहंकार ये चार अन्तःकरण हैं। इनके देवता क्रम से १ अग्नि २ इन्द्र ३ उपेन्द्र ४ प्रजापति ५ मृत्यु ६ दिशा ७ वायु ८ सूर्य ९ वरुण १० अश्विनी कुमार ११ चन्द्र १२ ब्रह्मा १३ वासुदेव और १४ रुद्र हैं। इनमे विषय से अधिक सचेत इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियो से अधिक चेतन देवता है। इन्ही के अनुग्रह से इन्द्रियाँ अपने विषय के ग्रहण करने मे समर्थ होती हैं। देवताओ से भी अधिक सचेतन जीव है। जिसके होने से देवता भी अनुग्रह करने मे समर्थ होते हैं।

परन्तु इन सबका परम प्रकाशक अन्तर्यामी है। जैसे राजा, सभासद, नर्तकी और तालधारी सभी को दीप प्रकाशित करता है। इसी भाँति अनादि अन्तर्यामी राम सबको प्रकाशित करता है। वही अयोध्याधिपति राम हैं। अब शारदा की ओर से कहते हैं

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥४॥

अर्थ जगत् प्रकाश्य है और रामजी प्रकाशक है। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणो के धाम हैं। जिनकी सचाई से जड माया मोह की सहायता से सत्य की भाँति भासित होती है।

व्याख्या इस भाँति जगत् और रामजी के प्रकाश्य प्रकाशक का सम्बन्ध है। वे ज्ञान गुणधाम मायाधीश हैं। माया अघटितघटनापटीयसी है। उसके अधीश बनकर सगुण हुए। मिथ्या माया जड है। उसम प्रकाशन शक्ति नही है। परिच्छेद के अवभास को अनात्माभास कहते हैं। वही अविद्या, जडशक्ति, शून्य या प्रकृति कहलाता है। ब्रह्म चेतन है। उसकी सत्यता से जड माया ससार मोह अज्ञान की सहायता से सत्य भी मालूम होती है। भाव यह कि रामजी मे जो विरह विकलतादि तुमने देखा वह माया थी। सत्य नही था। जब रामजी म सारा ससार बिना हुए दिखाई पडता है तो उतना विरह विकलतादि का बिना हुए दिखाई पडना कौन सी बडी बात थी। तुम्हारे अज्ञान की सहायता से वह सब सत्य दिखाई पडा।

दो रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि॥११७॥

अर्थ जैसे सीप म चाँदी और सूर्य की किरणो मे जल भासित होता है। *यद्यपि ये बातें तीनो काल मे झूठी हैं पर उस भ्रम को कोई टाल नही सकता।*

व्याख्या सीप म रजत तीन काल मे असत्य है। सीपी की सत्यता से उसमे सत्यता की प्रतीति होती है। सीपी का इदमंश रजत म प्रतीत होता है और सीपी का नील पृष्ठ त्रिकोणादि रूप तिरोहित रहता है। इसी भाँति परमात्मा म इस

मिथ्या जगत् की प्रतीति होती है। असग आनन्दादि गुण तिरोहित हो जाते हैं और रजत की भाँति जगत् भासित होने लगता है। यह हुआ मन्द अन्धकार का भ्रम। अब प्रकाश का भ्रम कहते हैं। जेठ की दुपहरिया मे जल का भ्रम होता है। वह जल तीन काल मे असत्य है पर दिखलाई पडता है। ज्ञान से भ्रम की निवृत्ति मात्र होती है। ससार दर्शन की निवृत्ति नही होती, वह तो उसी भाँति भासित होता रहता है। भ्रम न सकै कोउ टारि का यही अभिप्राय है कि असत्य प्रतीति के बाद भी उसका दिखाई देना नही बन्द होता। उसी भ्रम को कोई टाल नही सकता। ससारभ्रम क्या टलेगा ?

एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई ॥
जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई ॥१॥

अर्थ इस भाँति जगत् हरि के सहारे रहता है। यद्यपि असत्य है पर दुख दे रहा है। जैसे कोई सपने मे सिर काटता हो तो बिना जागे दुख नही दूर होता।

व्याख्या ऊपर सीप मे रजत और भानुकर मे वारि के रहने की विधि कह आये कि उनकी भ्रान्तिमात्र होती है। इसी भाँति हरि मे जगत् के होने की भ्रान्ति मात्रा है। वस्तुत जगत् कुछ हुआ नही। भ्रान्तिमात्र है, मिथ्या है। फिर भी यह दुख देता रहता है। उदाहरण देते हैं कि जैसे सपने मे कोई सिर काटता हो। सिर तो वस्तुत सुरक्षित है सिर का कटना बिल्कुल झूठ है। सपना देखनेवाला सिर के कटने की पीडा और मरने का दुख ठीक ठीक अनुभव करता है। उसे उस दुख से कोई छुटा नही सकता। बडे बडे वीर शस्त्रधारी कुटुम्बी या मित्र उस दुख से उसे बचा नही सकते। उसको दुख से बचा देने का एकमात्र उपाय उसका जगाना है। जागने से ही उसका भ्रम मिट सकता है। स्वप्न के विकल्प मे केवल मन ही द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप होकर विचित्रता से भासता है। इसी प्रकार शुद्ध सवित् भी विचित्राकार से भासती है।

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ॥
आदि अत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा ॥२॥

अर्थ हे पार्वती। जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है वही कृपाल रघुराई हैं। जिसका आदि और अन्त किसी को नही मिला। वेदो ने अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार गान किया है।

व्याख्या अर्थात् भगवत् कृपा सुजान जीवो को जगाती है कि तू जाग अर्थात् हरिपद मे अनुराग कर यथा जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव जागु त्यागु मूढतानुरागु श्री हरे। यहाँ मूढता का त्याग और हरिपद म अनुराग करना ही जागना है। इसीसे भ्रम मिट जाता है। और फिर ससार के दुख से छूट जाता है। उनके चरणो मे अनुराग भी उनकी कृपा से ही होता है। अत भगवत्कृपा प्राप्ति के लिए ही सारे शास्त्रीय प्रयत्न हैं।

जिसकी कृपा से संसारभ्रम की निवृत्ति होती है और जिसकी सत्ता से ही मिथ्या जगत् सत्तावान् है वही कृपालु रघुराई है। इसके बाद वेद की ओर से कहते हैं : जो अनादि और अनन्त है। मनुष्य की बुद्धि मे सादि और सान्त पदार्थ ही आ सकते हैं। अनादि और अनन्त की मनुष्य भावना नही कर सकता। जिसका आदि और अन्त हो उसी का वर्णन सम्भव है। अनादि और अनन्त का कोई वर्णन भी नही कर सकता। वेद भी उसका वर्णन यावद्बुद्धिबलोदय ही करता है। अब उस श्रुति का अनुवाद श्री गोस्वामी जी करते हैं :

बिनु[1] पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥३॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥४॥

अर्थ : वह बिना पैर के चलता है। बिना कान के सुनता है। बिना हाथ के नाना प्रकार के कर्म करता है। बिना मुँह के वह सारे रसो का भोग करता है। वह महायोगी बिना वाणी के बडा भारी वक्ता है। वह शरीर के बिना छूता है। और बिना आँख के देखता और नाक के बिना सब गन्ध सूँघ लेता है। जिसकी करणी इस भाँति सब प्रकार से अलौकिक है उसकी महिमा वर्णन नही की जा सकती।

व्याख्या : अब निगम देखिये : श्वेताश्वतर उपनिषत् मे कहा है। 'अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्। परमात्मा अपाणिपाद होने पर भी सब कुछ ग्रहण करते हैं। सर्वत्र गमन करते है। भौतिक चक्षु न होने पर भी वे सब देखते हैं। भौतिक कर्ण न होने पर भी वे सब सुनते हैं। अमनस्क होने पर भी वे सर्वज्ञ हैं। उनका कोई द्रष्टा या ज्ञाता नही है। वे सबके कारण है। इसलिए उन्हे प्रथम पूर्ण महापुरुष कहा जाता हैं।

योगी लोग आज भी ऐसे बहुत से कार्य कर दिखलाते है जिन्हे साधारण पुरुष विश्वास नही कर सकते। जिसकी प्रकृति जिस वस्तु के विश्वास करने की नही होती वह उस वस्तु का विश्वास नही कर सकता। आँख मे पट्टी बाँधकर पीठ के द्वारा पुस्तक पढने का कौतुक जिसने देखा है वह बिना हाथ के ग्रहण करने पर, बिना पैर के चलने पर, बिना आँख के देखने पर, बिना कान के सुनने पर अविश्वास

---

१ एक स्थान से पैर उठाकर दूसरे स्थान मे रखना ही चलना है। जहाँ पहिले पैर था वहाँ भी वह है, जहाँ रक्खा जायगा वहाँ भी वह है, अत वह बैठे ही बैठे दौडनेवाले के आगे निकल जाता है। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्। वह श्रोत्र का भी श्रोत्र है, अत बिना कान के सुनता है। उसके पाणि पाद सर्वत्र हैं। सर्वत्र शिर, मुख हैं। सर्वत्र कान है। सबको ढके हुए ठहरा है। यथा सर्वत पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षि शिरोमुखम्। सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वत्र पाणिपाद है, इसीलिए उसे अपाणिपाद कहते हैं।

नही कर सकता। फिर जिन कामो को योगिवर्य कर सकते हैं उन्हे परमेश्वर जो नित्य योगी है जो सर्वदा ऐश्वर्यशाली हैं अवश्य कर सकते हैं। वे विना पैर के चल सकते हैं। विना हाथ के ग्रहण कर सकते हैं। विना कान के सुन सकते हैं। विना आँख के देख सकते हैं। इसमे आश्चर्य की कोई वात नही है। इसी से वडयोगी अर्थात् महायोगी कहा है। लौकिक करणी के वर्णन के लिए शब्द हैं। अलौकिक पदार्थ के वर्णन के लिए शब्द नही मिलते। इसलिए जिस महाप्रभु की करणी सव भाँति से अलौकिक है उसकी महिमा नही वर्णन की जा सकती। यहाँ विभावना प्रथम है।

दो जेहि इमि गावहि वेद वुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसल पति भगवान ॥११८॥

अर्थ जिसको वेद और पण्डित इस भाँति गाते हैं और मुनि जिसका ध्यान करते हैं वही दशरथ के पुत्र, भक्तो के हितकारी कोशलपति भगवान् हैं।

व्याख्या जव शास्त्र और शास्त्रज्ञ दोनो जिनका इस प्रकार से गान करते हैं। मुनि लोग ध्यान मे ऐसा ही अनुभव करते हैं। तव प्रश्न यह उठता है कि ऐसे के शरीर धारण करने की क्या आवश्यक्ता पडी। सव कुछ तो वे विना इन्द्रियो के ही कर सकते है। इसके उत्तर मे कहते हैं कि वे भक्तो के हित करनेवाले हैं। भक्त के हित के लिए दशरथसुत कोशलपति हुए। स्वयम्भू मनु ने वर माँगा चाहहुँ तुमहि समान सुत प्रभुसन कौन दुराव। आपने कहा आप सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होव हम आई। अत्र पुराण की ओर से शिवजी कहते हैं

कासी मरत जतु अवलोकी। जासु नाम वल करौ विसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सव उर अतरजामी॥१॥

अर्थ कासी मे मरते हुए प्राणी को देखकर जिसके नाम के वल से मैं उसे शोकरहित कर देता हूँ वही रघुवर अन्तर्यामी जडचेतन के और मेरे स्वामी सवके हृदय मे हैं।

व्याख्या उसी दशरथसुत कोसलपति की महिमा कहते हैं। काशी मे उन्ही के नाम के प्रताप से शिवजी मोक्ष का सदावर्त्त चलाते हैं। यहाँ आये हुए प्राणियो को मरते हुए देखकर शिवजी उसे रामनाम का उपदेश करते हैं। यथा सिव उपदेस करत करि दाया। और उसी नामोपदेश के प्रभाव से वह शोक से पार होकर मुक्त हो जाता है। शिवजी कहते हैं कि वही मेरा स्वामी है और चराचर का स्वामी है। उसका निवास हृद्देश म है। भाव यह है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म होने से सवके अन्तर मे विराजमान हैं। अव अपनी ओर से कहते हैं

विवसहु जासु नाम नर कहही। जनम अनेक रचित अघ दहही॥
सादर सुमिरन जे नर करही। भव वारिधि गोपद इव तरही॥२॥

अर्थ विवश होकर भी जिसका नाम यदि मनुष्य उच्चारण करते हैं तो

अनेक जन्मो के किये हुए पापो को जला डालते हैं। जो मनुष्य आदर के साथ स्मरण करते है वे संसार सागर को गोपद की भाँति तर जाते है।

व्याख्या · नाम मे ऐसी पापदाहिका शक्ति है कि उसके उच्चारण होते ही पापराशि · अनेक जन्मकृत · रूई की भाँति जल जाती है। यथा : जासु नाम पावक अघ तूला · परन्तु पुण्य बच जाते हैं। जिनके भोगने मे फिर पाप-पुण्य होते हैं। जिससे जन्म-मरण रूपी ससार बना रहता है। परन्तु सादर स्मरण करनेवाले के कर्ममात्र का दाह हो जाता है और ज्ञान उदय होता है। जिससे वे अनायास संसार-सागर से पार चले जाते हैं। कीचड मे गौ के पैर पड़ने से जो गढ्ढा हो जाता है, उसमे कुछ जल रहता है। उसे ही यहाँ गोपद कहा है।

राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अवहित तव बानी ॥
अस ससय आवत उर माही। ग्यान विराग सकल गुन जाही ॥३॥

अर्थ हे भवानी! वही परमात्मा राम हैं। उनमे भ्रम है, यह कहना तुम्हारा अत्यन्त अनुचित है। ऐसा सशय मन में लाने से ज्ञान वैराग्य सब गुण चले जाते हैं।

व्याख्या जिसके नाम का ऐसा प्रभाव है वह नामी परमात्मा हैं। यह सिद्ध हो चुका। तब वहाँ भ्रम का सशय करना अति अनुचित है। वहाँ यदि भ्रम दिखाई पडे तो उसे अपना भ्रम समझना चाहिए। जिसे सूर्य तमोमय दिखाई पड़ें, उसे समझना चाहिए कि यह अपना भ्रम है। कुछ दोष मुझमे ऐसा आगया है जिससे ऐसा दिखाई पड रहा है। इस भाँति 'राम सो अवध नृपति सुत सोई' को छ बार दोहराया।

परमात्मा मे भ्रम का सशय करना, ज्ञान विरागादि गुणो को निराश्रय करना है। जो उस परमात्मा मे भ्रम होने का सशय करेगा जिसने कृपा करके हमारे लिए शरीर धारण किया सो इस दोषारोपण से उसी का अकल्याण होगा। भगवान् ने गीता मे कहा है कि पापी मूढ मेरे शरण नही आते उन अधमो का ज्ञान माया से अपहृत हुआ है। वे आसुरभाव को प्राप्त हुए हैं। न मा दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमा। माययापहृतज्ञाना आसुर भावमास्थिता·।

सुनि सिव के भ्रम भजन वचना। मिटिगै सब कुतरक कै रचना ॥
भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असभावना बीती ॥४॥

अर्थ शिवजी के भ्रमनाशक वचनो को सुनकर सब कुतर्क की रचना मिट गई। रघुपति के चरणो मे प्रीति हुई, विश्वास हुआ और कठिन अविश्वास जाता रहा।

व्याख्या 'सुनि' से चतुर्थ विनय[1] के उत्तर की समाप्ति दिखलाते हैं। और शिवजी के इस कथन का कि 'भ्रमतम रविकर वचन मम' का साफल्य भी दिखलाते हैं। इसीलिए उनके वचन का भ्रमभञ्जन विशेषण देते हैं। वेद विरुद्ध तर्क को

१. अज्ञ जनि रिसि जनि उर धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू ॥

कुतर्क कहा। वही प्रतीति का बाधक होता है। और जो दारुण असम्भावना रही 'जो नृप-तनय त ब्रह्म किमि' वह भी समाप्त हो गई।

दो पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पकरुह पानि।
बोली गिरिजा वचन वर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥११९॥

अर्थ बार बार प्रभु के चरण कमलो को पकडकर गिरिजा मानो प्रेम रस से सानी हुई श्रेष्ठ वाणी बोली।

व्याख्या बार बार चरणस्पर्श से शिष्या की शुश्रूषा दिखलाई। अथवा चरणग्रहण से कर्मणा प्रेम, 'वचन वर' बोलने से वाचा और 'प्रेमरस सानि' से मनसा प्रेम दिखलाया।

ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सब ससउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥१॥

अर्थ चन्द्र की किरणो के समान आपके वचन सुनकर शरद ऋतु की धूप के समान मेरे मोह का भारी ताप मिट गया। हे कृपालु! आपने सारे सन्देह हर लिये। मुझे रामजी का स्वरूप जान पडा।

व्याख्या शिवजी ने स्वय कहा था सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रमतम रविकर वचन मम। परन्तु भगवती ने शीतलता का अनुभव किया। इसलिए कहती हैं कि ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। शशिकर मे मृगतृष्णा का भ्रम भी नही होता। अन्धकार भी मिटता है और शरद् काल की चित्रा[1] की कडी धूप का ताप भी मिटता है। यथा सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई। सो उमा कहती हैं कि चन्द्र के किरण सी आपकी वाणी सुनकर मोहरूपी शरद् काल की कडी धूप का ताप मिट गया। विनती की थी कि जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू। सो अब कह रही हैं कि मिटा मोह। चौथी विनती के उत्तर मे ही सब सशय मिट गया। अत पाँचवें विनय अजहूँ कछु ससउ मन मोरे। के उत्तर की आवश्यकता नही रह गई। चन्द्र के किरण सी वाणी से मोहरूपी शरदातप का मिटना कह आई हैं। अब उससे सशयरूपी अन्धकार का नाश भी कहती हैं। और उसके प्रकाश मे रामजी के स्वरूप की जानकारी का होना भी कहती हैं। शिवजी ने कहा था कि मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहि किमि दीना। सो कहती हैं कि तुम्ह कृपालु सब ससउ हरेऊ। रामसरूप जानि मोहि परेऊ। राम सच्चिदानद दिनेसा। से राम सो परमात्मा भवानी तक रामजी के स्वरूप का निरूपण शिवजी ने किया है। उसी पर कहा राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ।

नाथ कृपा अब गएउ विषादा। सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड नारि अयानी ॥२॥

---

१ जब सूर्य चित्रा नक्षत्र पर जाते हैं उस समय की धूप कडी कही जाती है।

अर्थ हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरा विषाद जाता रहा। आपके चरणों के प्रसाद से मै सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्वभाव से ही जड तथा अनजान स्त्री हूँ। फिर भी आप मुझे अपनी दासी जानकर

व्याख्या पहिले संशय के रहने से विषाद था। यथा ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। शिवजी के वचनो से सशय जाता रहा। उसी के साथ विषाद भी मिट गया। अत कहती हैं नाथ कृपा अब गयउ विषादा। और रामजी के स्वरूप का ज्ञान हुआ। अत कहती है सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा।

सती से शिवजी ने कहा था ' सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। ससय अस न धरिअ उर काऊ। सो सती का शरीर छूटकर पार्वती देह मिलने पर भी वही सशय उठा। इसलिए अपना जडत्व तथा अज्ञान स्वीकार करती हैं। अथवा पार्वती शरीर होने से अपने मे जडत्व और अज्ञान मान रही हैं। यथा सत्य कहहु गिरि भव तनु एहा। हठ न छूट छूटै वरु देहा। फिर भी अपने को शिवजी की दासी मानती हैं। अपना निवास शङ्कर रूप कल्पवृक्ष के नीचे बतलाती है। इस भाँति श्रवण मे अपना अधिकार द्योतित करती है।

प्रथम जो मै पूछा सोइ कहहू। जौ मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिनमय अविनासी। सर्व रहित सब उर पुरवासी ॥३॥

अर्थ हे प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो बात मैने आपसे पहिले पूछी थी उसे कहिये। रामजी ब्रह्म, चिन्मय और अविनाशी है। सबसे रहित और सबके उररूपी पुर मे निवास करते हैं।

व्याख्या अब शेष तीन जिनयो के उत्तर की भी आवश्यकता नही रह गई। अत पहिले प्रश्न की ओर ध्यान दिलाती है। यथा प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निगुन ब्रह्म सगुन वपुधारी। और उसी बात को स्पष्ट करती है। ब्रह्म, चिन्मय, अविनाशी, सबरहित, सब उरपुर वासी। ये पाँचो विशेषण ऐसे हैं जिससे रामजी के नर तन धारण करने की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। और प्रयाजन के बिना कार्य मे प्रवृत्ति होती नही। केवल इसी बात का उत्तर चाहती है।

नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू ॥
उमा वचन सुनि परम विनीता। राम कथा पर प्रीति पुनीता ॥४॥

अर्थ हे नाथ ! हे वृषकेतु ! यह समझाकर कहिये कि उन्होने मनुष्य का शरीर किस कारण से धारण किया ? उमा के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर और राम कथा पर पवित्र प्रेम देखकर

व्याख्या ब्रह्म, चिन्मय, अविनाशी, सर्वरहित और सर्वान्तर्यामी का नर शरीर धारण करना किसी भाँति उपयुक्त नही है। यदि शरीर धारण करना ही था तो देव शरीर धारण करते। नर देह तो भवपार उतरने के लिए है। यथा नरतन

भववारिधि कहँ बेरो। परमेश्वर तो नित्य मुक्त हैं। उन्हें तो भवपार उतरना नही है कि नर शरीर धारण करें। अत समझाकर कहने के लिए प्रार्थना करती हैं।

उमा के वचन परम विनीत हैं। यथा सुखी भइउँ प्रभुचरन प्रसादा। अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड नारि अयानी। तथा रामकथा पर पुनीत प्रेम है। यथा नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतु। वृषकेतु सम्बोधन का भाव यह है कि आप वृषकेतु हैं। वृषो हि भगवान् धर्म। भगवान् धर्म ही वृष है। अत आप धर्म की सूक्ष्म गति जानते हैं। नरतन धारण करने म भी धर्म ही कारण होगा। सो आप बतला सकते है। प्रीति पुनीत स्वार्थ रहित प्रीति का ग्रहण है। यथा प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ विसेखी।

दो हिय हरखे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु विधि उमहि प्रससि पुनि, बोले कृपा निधान ॥१२०॥

अर्थ कामदेव के शत्रु, सुजान, कृपानिधान शिवजी मन म प्रसन्न हुए और उमा की अनेक विधि से प्रशसा करके फिर बोले।

व्याख्या शिवजी कामारि हैं। भक्ति देखकर ही हर्षित होते है। सहज सुजान हैं। अत विनीत वचन से सुखी होते हैं। रामकथा पर प्रीति देखकर उन्होने बहु विधि से प्रशसा की। पहले कृपा करके सशय हरण कर लिया। फिर भी कृपा करके शेष विनयो का उत्तर देते हैं। किसी विनय की उपेक्षा नही होने देते अत कृपानिधान कहा।

सो सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरितमानस विमल।
कहा भुसुडि बखानि, सुना विहग नायक गरुड ॥१२०॥क
सो सवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुदर अनघ ॥१२०॥ख
हरि गुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ॥१२०॥ग

अर्थ हे भवानि! रामचरितमानस की शुभ कथा सुनो जिसे कागभुसुण्डि ने बखानकर कहा था और पक्षिराज गरुडजी ने सुना था।

वह उदार सवाद जिस भाँति हुआ इसे मैं आगे कहूँगा। अभी तुम रामचन्द्रजी के अवतार का परम सुन्दर और पापरहित चरित सुनो।

हरि के गुण और नाम अपार हैं। कथा के रूप भी अगणित और असीम हैं। हे उमा! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। आदर पूर्वक सुनो।

व्याख्या अजहूँ कछु ससउ मन मोरे। इस पाँचवें विषय का उत्तर पाँचवें सुनु शब्द से सूचित करते हैं। भाव यह कि प्रसङ्ग प्राप्त रचे बचाये सशय के

निरमन के लिए गरुड भुसुण्डि सवाद अन्त मे कहेगे। यहाँ से चारो घाट की कथाएँ प्रारम्भ हुई।

कहहु पुनीत रामगुन गाथा। इस छठे विनय का उत्तर देते हैं। कहते हैं कि वह सवाद उदार है। अर्थात् सुन्दर है। यथा उदार अग विभूपणम्। भाव यह कि इस कथा का ऐसा माहात्म्य है कि यदि काक प्रेम से कथा कहने बैठे तो विहङ्ग-नायक साक्षात् प्रभु की विभूति गरुड सुनने के लिए आजावें। इस समय रामकथा कहेगे। भुसुण्डि गरुड सवाद होने की विधि आगे चलकर कहेगे। क्योंकि उक्त सवाद में ही उमा के चार प्रश्न नवे, दशवे, ग्यारहवें और बारहवें का उत्तर है। इस समय उन्हे कहने से उत्तर का क्रम भङ्ग हो जायगा।

बरनहु रघुवर विमल जस। इस सातवे विनय का उत्तर देते है कि हरि के असीम होने से उनके नाम और गुण भी अपार है। कल्प भेद हरि चरित सोहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना विधि करही। अत यथारूप अगणित हैं। और उनमें से एक एक का रूप अमित है। ऐसी अवस्था मे मति अनुसार ही कहा जा सकता है। अब सादर सुनने के लिए आज्ञा देते है। सादर न सुनने से कथन का प्रभाव नही पडता। यथा एहि विधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। और कथा का अनादर होता है।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। विपुल विसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥१॥

अर्थ हे पार्वती सुनो। वेद और शास्त्रो ने भगवान् के सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण होता है वह कारण यह है और ऐसा ही है। इस रूप से नही कहा जा सकता।

व्याख्या रघुपति कथा कहहु करि दाया। इस आठवें विनय का उत्तर देते है। सुहावा न कहकर बहुवचन सुहाए का प्रयोग करते है। अर्थात् एक कल्प की कथा कहेगे। यह दिखलाने के लिए कि लीलाएँ सामान्यत एक रूप की होती हुई भी विस्तार मे प्रत्येक की विशेषता है।

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी। अथवा सर्व रूप सब रहित उदासी। नाथ धरेहु नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू। ये दोनो प्रश्न एक ही है और एक ही मानकर उमा ने पूछा है। यथा प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। उसी प्रथम प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है। इदमित्थम् का अभिप्राय यह है कि निश्चय करके एक कारण का नाम नही लिया जा सकता।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि सत मुनि वेद पुराना। जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना॥२॥

अर्थ हे भवानी! सुनो मेरा मत तो यह है कि रामजी मे बुद्धि मन और

वाणी से तर्क चल नही सकता। फिर भी सन्त, मुनि, वेद और पुराण जैसा कुछ अपनी बुद्धि की गति के अनुसार कहते हैं।

व्याख्या राम मे तर्क की गति नही है। यदि तर्क की गति होती तो उनके अवतार के विषय में इदमित्थम् कुछ कहा जा सकता था। बुद्धि, मन और वाणी द्वारा ही तर्क की प्रक्रिया होती है। सो बुद्धि, मन और वाणी की गति समीप परिच्छिन्न पदार्थों म होती है। अनादि अनन्त पदार्थ बुद्धि मे ग्राही नही सकता। किं पुन राम सर्वाश्चर्यमय देव म। यथा सर्वाश्चर्यमय देवमनन्त विश्वतोमुखम्। वहाँ न चक्षु की पहुँच है न वाणी की पहुँच है न मन की पहुँच है। हमलोग नही जानते कि उसे कैसे बतलावें। वह जाने हुए और न जाने हुए से पृथक् हैं। यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्या-दन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। श्रुति। इसलिए शिवजी कहते हैं कि रामजी बुद्धि मन वाणी से अतर्क्य है। अत उनके अवतार के विषय मे भी तर्क नही चल सकता। यहाँ पर मुनि, वेद, पुराण तथा सन्तो का कथन भी उनकी बुद्धि की गति के अनुसार ही माना जायगा। इदमित्थ कहने की उन्हे भी योग्यता नही है। उमा ने अपने को जदपि सहज जड नारि अयानी कहा था। अत शिवजी उनका प्रोत्साहन करते हुए सयानी कहकर सम्बोधन करते हैं।

तस मै सुमुखि सुनावौ तोही। समुझि परै जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहि अधम असुर अभिमानी ॥३॥

अर्थ हे सुमुखि! जैसा कारण मेरी समझ मे आता है वैसा मैं तुम्हे सुनाता हूँ। *जब जब धर्म की हानि होती है और अधम अभिमानी असुर बढते हैं।*

व्याख्या इदमित्थ तो नही कहा जा सकता। परन्तु वेद, पुराण, मुनि और सन्तो की इस विषय म जो सम्मति है वही मेरी भी सम्मति है। बहुत काल से धर्मानुष्ठान चलता रहता है। फिर काल पाकर धर्मानुष्ठान करनेवाला के अन्त करण म वासनाओ का विकास होने से अधर्म की उत्पत्ति होती है। ऐसे अधर्म से जब धर्म दबने लगता है *और अधर्म की वृद्धि होने लगती है तब अधम अभिमानी* असुर बढते हैं। अधम अभिमानी कहने का भाव यह कि प्रभु के आश्रितो को पीडा देनेवालों यथा मम भुजबल आश्रित तेही जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी का अभ्युदय होता है। सुमुखि सम्बोधन से उमा पर अपनी प्रीति दिखलाई।

करहि अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥४॥

अर्थ *ऐसी अनीति करते हैं जिसका वर्णन नही किया जा सकता। ब्राह्मण,* गाय, और पृथ्वी पीडित होती हैं, तब तब प्रभु विविध शरीर धारण करके कृपानिधि सज्जन की पीडा हरण करते हैं।

व्याख्या यज्ञ यागादि ही मख्य धर्म हैं। यथा *यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि*

धर्माणि प्रथमान्यासन् । उनके मुख्य साधन हैं ब्राह्मण और गाय । ब्राह्मण में मन्त्र प्रतिष्ठित है और गाय में हवि प्रतिष्ठित है । सो अधम अभिमानी असुर इन्हीं को पीड़ा पहुँचाते हैं । और ऐसे अधर्मों का भार पृथ्वी सह नहीं सकती । अत. वह भी पीडित होती है । तब तब जगत् की स्थिति सुरक्षित रखने की इच्छावाले आदि कर्त्ता श्रीरामजी : सभु विरञ्चि विष्णु भगवाना । उपजहिं जासु अस ते नाना । भूलोक के ब्रह्म की अर्थात् ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए : क्योंकि ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म सुरक्षित होगा । कारण यह है कि वर्णाश्रम के भेद उसी के अधीन हैं । ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि गुणों से सदा सम्पन्न भगवान् त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी माया को वश में करके अपनी लीला से उत्पन्न हुए से और लोगों पर अनुग्रह करते हुए से दिखाई पड़ते हैं । यथा : मीन कमठ सूकर नरहरी । वामन परसुराम वपुधरी । जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो । नाना तनु धरि तुम्हहि नसायो ।

दो. असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहि बिसद जस, राम जनम कर हेतु ॥१२१॥

अर्थ असुरों को मारकर देवताओं को स्थापन करते हैं । अपने वेदरूपी पुल की रक्षा करते हैं । निर्मल यश का जगत् में विस्तार करते हैं । यही रामजन्म के कारण हैं ।

व्याख्या रामजी ही नाना अवतारों के निधान अव्यय बीज हैं । ये ही अवतीर्ण होकर असुरों को मारकर सुरों की थापना करते हैं । भाव यह कि असुर लोग देवताओं को बलपूर्वक उनके पद से हटा देते हैं । यथा करजोरे सुर दिसिप बिनीता । भृकुटि बिलोकत सकल सभीता । भगवान् ही उन्हें अपने स्थान पर पुन स्थापन में समर्थ हैं अपने श्रुतिसेतु की रक्षा करते हैं । और इस भाँति निर्मल यश का विस्तार करते हैं । जिसे गा गाकर लोग भवसागर को पार करते हैं । यही रामजन्म का कारण है । गीता में भी भगवान् ने कहा है यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् । परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ।

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं ॥
राम जनम के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तें एका ॥१॥

अर्थ . उसी यश का गान करके भक्त ससार को तर जाते हैं । कृपासिन्धु भक्तों के लिए शरीर धारण करते हैं । रामजन्म के अनेक कारण हैं और वे एक से एक विचित्र हैं ।

व्याख्या उस यश का गान भवसन्तरण का उपाय है । निष्कर्ष यह निकला कि भक्तों के लिए शरीर धारण करते हैं क्योंकि कृपासिन्धु हैं । करुणा की तरङ्गें उठा करती हैं । यथा सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा । नरहरि किये प्रगट प्रहलादा ।

सभी अवतारो का साधारण कारण कहकर अब रामावतार के कारण कहते हैं। रामावतार के कारण एक से नही होते। प्रति अवतार के लिए भिन्न कारण होते हैं। इसीलिए उन्हे एक से एक परम विचित्र कहा।

जनम एक दुइ कहौं बखानो। सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥२॥

अर्थ हे सुमति। भवानि। सावधान होकर सुनो, मै एक दो जन्म का वर्णन करता हूँ। हरि के प्रिय दो[1] द्वारपाल हैं। जिनका नाम जय और विजय परम प्रसिद्ध है।

व्याख्या : भगवती ने अपने को 'जदपि सहज जड नारि अयानी' कहकर अत्यन्त कार्पण्य दिखलाया है। अत सुमति भवानी कहकर उनके दैन्य का मार्जन शिवजी करते हैं। तीन जन्म न कहकर एक दुइ कहने का यह भाव है कि एक बार तो अपने सेवको के हित के लिए शरीर धारण किया और दो बार शाप के कारण जन्म ग्रहण किया था। सर्व रूप सब रहित उदासी। नाथ धरेउ नरतन केहि हेतू। सो समुझाइ कहौ वृषकेतू का उत्तर सावधान सुनु सुमति भवानी कहकर दे रहे हैं। सावधान का भाव चञ्चल मन ही सब दु खो का आदि कारण है। अत श्रवण करने मे मन स्थिर रखना चाहिए। अनादर से सुना हुआ नही सुनने के बराबर है। द्वारपाल बहुत हैं। पर हरि के प्रिय होने से जय और विजय को सभी जानते हैं।

विप्र साप ते दूनौ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कसिपु अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपति मद मोचन ॥३॥

अर्थ ब्राह्मण के शाप से उन दोनो भाइयो ने तमाम असुर का देह पाया। वे ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए। वे इन्द्र के मद को दूर करनेवाल सारे विश्व मे प्रसिद्ध हुए।

व्याख्या सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की उपमा मूर्तिमान् चारा वेदो से दी गई है। यथा रूप धरे जनु चारिउ वेदा। इसलिए उन्हे विप्र कहा गया। उनका शाप विप्रशाप है, उसे कोई अन्यथा नही कर सकता। यथा किये अन्यथा होइ नहि विप्रशाप अतिघोर। सनकादिक को जय और विजय ने वैकुण्ठ म प्रवेश करने से रोका था। इसी पर रुष्ट होकर उन लोगो ने शाप दिया था। वैकुण्ठ के द्वारपाल होने से उनका सात्त्विक शरीर था। सनकादिक के शाप से उनका वैकुण्ठ से पतन हुआ। उन्हे तामस शरीर असुर का मिला।

वे ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामो आदि दैत्य दिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। देवराज इन्द्र वीर रस के अधिष्ठाता हैं। उन्हे युद्ध का अभिमान है। यथा • जे सुर समर धीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना। तो इन दोना ने उनका युद्धाभिमान छुडा दिया। यह कथा लोक मे प्रसिद्ध है

---

१ वैकुण्ठ के पश्चिम द्वार पर इन्ही का पहरा रहता है।

विजई समर वीर विख्याता। धरि वराह वपु एक निपाता॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा॥४॥

अर्थ वे विजय करनेवाले युद्ध मे विख्यात वीर थे। वाराहावतार धारण करके भगवान् ने एक को मारा। नृसिंहावतार धारण करके दूसरे को मारा और भक्त प्रह्लाद का सुयश फैलाया।

व्याख्या ये दोनो दैत्य समर मे विख्यात वीर थे। इनकी हार कभी हुई ही नही, जीतते ही गये। सो भगवान् ने वाराहावतार धारण करके हिरण्याक्ष को मारा।

हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद भगवान् के भक्त थे। अत हिरण्यकश्यप ने क्रुद्ध होकर प्रह्लाद को बडी बडी यन्त्रणाएँ दी। पर प्रह्लाद ने हरिभजन नही छोडा। कवितावली मे कहा है

तानि कृपान कृपा न कहूँ, पितुकाल कराल विलोकि न भागे।
राम कहाँ? सब ठाँउ है खम्भ मे? हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
बैरि विदारि भये विकराल कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढी तुलसी तनते सब पाहन पूजन लागे॥

नरहरि कहने से हिरण्यकश्यप का ब्रह्मसृष्ट प्राणी से अवध्य होना सूचित किया। उसने भक्त प्रह्लाद को रामनाम ग्रहण से रोकना चाहा। प्रह्लाद के लिए खम्भ मे से नृसिंह भगवान् का प्रकट होना ससार जानता है। प्रह्लाद पुण्यश्लोक हो गये। प्रात स्मरणीय हो गये। सभी प्रात काल उठकर 'प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक' इत्यादि पाठ करते है।

दो भए निसाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर बिजई जग जान॥१२२॥

अर्थ वे ही दोनो जाकर बलवान् और महावीर राक्षस हुए, उनका नाम कुम्भकर्ण और रावण हुआ। ससार जानता है कि ये सुरविजयी सुभट थे।

व्याख्या असुर से निशाचर हुए। निशाचर की सङ्करी सृष्टि होती है। ये दोनो दैत्यकन्या[1] मे विश्रवा मुनि से उत्पन्न हुए थे। पहिले जन्म मे भी जगविदित हुए थे और इस जन्म मे भी परम प्रसिद्ध हुए। इसी कल्प की कथा म सेतु बन्ध के बाद मन्दोदरी का समझाना कहा। यथा महाबीर दिति सुत सहारे।

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी॥१॥

अर्थ भगवान् ने मारा पर मुक्त न हुए। ब्राह्मण के वचन का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। एक बार उनके लिए भक्तानुरागी ने शरीर धारण किया।

व्याख्या भगवान् के हाथो वध होने से मुक्ति होती है। पर जय और विजय

१ देखिये अध्यात्म उत्तर काण्ड प्रथम सर्ग। वाल्मी० काण्ड ७ सर्ग ९।

की मुक्ति न हुई। क्योंकि उनकी मुक्ति मे सनकादिक का शाप बाधक था। सनकादिक ने शाप दिया था कि तीन बार युद्ध करके मरेंगे। तब वैकुण्ठ मे गति होगी। पहिली बार हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप होकर क्रम से वाराह और नृसिंह के हाथ मारे गये। दूसरी बार वे ही कुम्भकर्ण और रावण हुए। तब रामजी के हाथ मारे गये। फिर वे ही वक्रदष्ट्र और शिशुपाल हुए। तब क्रम से बलराम और कृष्ण भगवान् के हाथ से मारे गये तब मुक्ति हुई। सो एक बार उनके लिए भगवान् ने भक्तानुरागी शरीर धारण किया। अर्थात् रामावतार हुआ। रामावतार भक्तानुरागी अवतार है। यथा ध्वज कुलिस अकुस कजजुत बन फिरत कटक किन लहे। भगवान् के चरण के चार चिह्नो का वर्णन बार बार रामचरितमानस म आता है। सो इन चार चिह्नो ध्वज कुलिश अकुश और कञ्ज से युक्त जो चरण है उनके वन मे फिरते हुए कण्टकविद्ध होने का योग किसे हुआ ? अर्थात् सिवा रामावतार के और किसी अवतार म ऐसा योग नही हुआ। क्योकि रामावतार भक्तानुरागी अवतार है। ये भक्त पर इतना अनुराग करते हैं कि उनके लिए वन वन म फिरे। चरणो मे काँटे लगे। यह देखकर ज्योतिषी चकित हुए। यथा राजलखन सब अग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे। मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ।

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता ॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए ससारा ॥२॥

अर्थ वहाँ कश्यप और अदिति पिता माता हुए। दशरथ कौसल्या के नाम से प्रसिद्धि हुई। एक कल्प मे इस प्रकार अवतार हुआ। और चरित्र से ससार को पवित्र किया।

व्याख्या जय और विजय जिस कल्प म कुम्भकर्ण और रावण हुए थे उस कल्प मे कश्यप और अदिति दशरथ कौसल्या हुए। भाव यह कि तीन काल म जब रामावतार होगा तब दशरथ और कौसल्या नामधारी ही पिता माता होगे। अत श्रीरामजी के पिता माता का नाम दशरथ *कौसल्या विख्यात है।*

श्रीरामावतार प्रत्येक कल्प मे एक ही बार होता है। यथा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। सो एक ही कल्प म इस विधि से अवतार हुआ और चरित्र से ससार को पवित्र किया। यथा जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलधर सन सब हारे ॥
सभु कीन्ह सग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा ॥३॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहि पुरारी ॥४॥

अर्थ एक कल्प म जलन्धर से सब देवता युद्ध म हार गये। उन्हे दुखी देखकर शिवजी ने अपार युद्ध किया। पर वह महाबली दैत्य मारे नही मरता था।

उस असुरराज की स्त्री वडो पतिव्रता थी। उस वल से शिवजी उसे जीत नही सकते थे।

व्याख्या दूसरे कल्प की कथा कहते हैं। प्रत्येक जन्म के कारण भिन्न हैं। अत कथा अमित है। जलन्धर से सव देवता लडे और हार गये। जलन्धर असुरो का राजा था। विना उसके मारे देवताओ का दु ख दूर नही हो सकता था। उन्हें दु खी देखकर शिवजी स्वय युद्ध के लिए खडे हुए। जलन्धर उन्हे जीत तो न सका पर मारा भी नही गया। न मारे जाने का कारण कहते हैं कि परम सती के पति को शङ्कर भी नही मार सकते। और उसकी स्त्री वृन्दा परम सती थी। इसलिए वह मरता नही था। सग्राम जारी रहा। अतएव उस सग्राम को अपार कहा। जलन्धर भी पार पाने म असमर्थ था। अव वात वृन्दा के सतीत्व पर आ गई। उसका सतीत्व टले तो जलन्धर मरे।

दो छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जव तेहि जानेउ मरम तव, स्राप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

अर्थ छल से उसका व्रत टाला और प्रभु ने देवताओ का काम किया। जव उसने यह मर्म जाना तव क्रोध करके शाप दिया।

व्याख्या उस वृन्दा का व्रत टालना विष्णु के लिए भी साध्य नही था। अत जलन्धर के रूप से उसका व्रत भङ्ग किया। जलन्धर भी उसी उद्योग म शङ्कर का रूप धारण करके उमा के पास गया था। तव तक वृन्दा का व्रत भङ्ग हो गया। समाचार पाकर क्रोध से युद्ध के लिए शिवजी के सम्मुख गया और मारा गया। यश के नाश को न डरे। भक्तो का कार्य किया। जव वृन्दा को अपने सतीत्व भङ्ग और जलन्धरवध का पता चला तो उसने क्रोध करके शाप दिया।

तासु स्राप हरि दीन्ह प्रवाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना॥
तहाँ जलधर रावन भएउ। रन हति राम परम पद दएऊ॥१॥

अर्थ भगवान् वडे कौतुकी और कृपाल हैं। उसके शाप को स्वीकार किया। उस कल्प मे जलन्धर रावण हुआ। जिसे युद्ध म मारकर रामजी ने परमपद दिया।

व्याख्या भगवान् को शुभाशुभ कर्म का लेप नही है। यथा कर्म सुभासुभ तुम्हहि न वाधा। उनके लिए शाप अप्रमाण था। पर स्वय उस प्रामाण्य प्रदान किया। इसके लिए दो कारण कहते हैं १ एक तो भगवान् कौतुकनिधि हैं। शाप मान लने से कौतुक के लिए अवसर मिलगा और जलन्धर भी मुक्त हो जायगा। २ दूसरे कृपाल हैं। वृन्दा छली गई है। उस पर वडी कृपा है। उसका कोप व्यर्थ जाने से उसे और भी दु ख होगा। अत उसके शाप का प्रमाण दिया।

उस कल्प मे जलन्धर रावण हुआ। प्रति कल्प म रामावतार होता है, पर उसके पहिले रावणावतार भी होता है। यह वात दूसरी है कि रावण दूसरे ही दूसरे होते हैं। उस कल्प म कुम्भकर्ण और विभीषण के होने का पता नहीं चलता।

जलन्धर की रावणरूप मे मुक्ति हुई। इसलिए परमपद दयक कहते है। जलन्धर रावन भयऊ: कहने से ही जलन्धर का वध द्योतित किया। रावन भयऊ कहकर यह दिखलाया कि जलन्धर जन्म मे तो दुख देता ही था। रावण जन्म मे तो देवताओ को रुलाने लगा। रावण का अर्थ ही रुलानेवाला है।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन घनेरी ॥२॥

अर्थ : एक जन्म का यह कारण था जिससे रामजी ने नर देह धारण किया। हे मुनि! प्रभु के प्रत्येक अवतार की बहुत सी कथाएँ मुनियो ने वर्णन की हैं।

व्याख्या : एक जन्म का कारण तो वृन्दा का शाप हुआ। उसके व्रत भङ्ग के समय दो बन्दर जलन्धर की कटी शरीर लेकर आये। जिसे जोडकर महात्मा-वेषधारी विष्णु ने जिला दिया। उसे विश्वास हो गया कि यही मेरा पति है। युद्ध मे मारा गया था। सो महात्मा के प्रसाद से जी उठा है। अत उसी जिलाये हुए जलन्धर द्वारा उसका व्रत भङ्ग हुआ। पीछे से उसे मालूम हुआ कि यह सब विष्णु की माया थी। अतः उसने उन्हे मनुष्य हो जाने का और बन्दरो द्वारा सहायता प्राप्त करने का शाप दिया। इसी भाँति प्रति अवतार की विचित्र कथाएँ है। उन्हे मुनियो ने वर्णन किया है। यहाँ भरद्वाज को मुनि कहकर सम्बोधन किया। इससे पता चलता है कि इस कल्प की कथा कर्मघाट पर हुई।

नारद स्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिस्नु भगत पुनि ग्यानी ॥३॥

अर्थ : एक बार नारद मुनि ने शाप दिया। एक कल्प उसी के लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर गिरिजा बडी चकित हुईं। और बोली कि नारद तो विष्णु-भक्त और ज्ञानी हैं।

व्याख्या : जय विजय वाले कल्प मे उनके उद्धार के लिए विष्णु ने अवतार ग्रहण किया था। पर दो अवतारो मे शाप के कारण नर देह ग्रहण किया। इसीलिए सीधे-सीधे तीन कल्प न कहकर जनम एक दुई कहौ बखानी कहा। नारदजी का शाप देना सुनकर भवानी एकदम चकित हो गईं। शाप तो क्रोधी देते है। सो भगवान् को शाप भक्त कैसे देगा? नारद[1] का अर्थ ही अज्ञान हरण करनेवाला है। उन्हे क्रोध कैसे हुआ? वे भक्त है। उन्होने अपने स्वामी को शाप कैसे दिया?

कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी ॥४॥

अर्थ : मुनि ने किस कारण से शाप दिया? रमापति ने उनका क्या अपराध

१. नार अज्ञानम् द्यति खण्डयतीति नारद ।

किया ? हे पुरारि ! यह प्रसग मुझसे कहो। मुनि के मन म मोह हुआ यह भारी आश्चर्य की बात है।

व्याख्या मुनि के शाप का कोई कारण हो नही सकता। रमापति का अपराध पूछती हैं। नारद मे अपराध की कल्पना भी नही करती। इतनी श्रद्धा गुरु पर है। दो कल्पो की कथा सुनी, प्रसङ्ग नही पूछा। नारद को मोह सुनकर चकित है। मोह बिना क्रोध कैसे हुआ ? बिना क्रोध शाप कैसे दिया ? सक्षेप मे कथा समाप्त करते देखकर पूरा प्रसङ्ग सुनने के लिए प्रार्थना करती हैं।

दो बोले बिहँसि महेस तब, ग्यानी मूढ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहि जब, सो तस तेहि छन होइ ॥१२४॥
सो कही रामगुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद ॥१२४॥ क

अर्थ शिवजी ने तब बिहँसकर कहा न कोई ज्ञानी है, न मूढ है। जब रघुपति जिसको जैसा कर देते हैं वह उस समय वैसा ही हो जाता है।

हे भरद्वाज ! मै रामजी की गुणगाथा कहता हूँ। तुम आदर से सुनो। रघुनाथ भवभञ्जन हैं। तुलसीदासजी अपने को कहते है कि तू मान मद छोडकर उनका भजन कर।

व्याख्या उमा की इतनी आस्था ज्ञान और ज्ञानी पर देखकर शिवजी हँसे और कहा कि ज्ञान और मोह दोनो के प्रेरक रघुपति है। इसम जीव का कोई चारा नही। यथा *नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस बेद अस गावत। मर्कट की* ज्ञान चेष्टा या अज्ञान चेष्टा, उसकी की हुई नही है। वह सब नट की करामात है। यथा पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना। गुन गति नट पाठक आधीना।

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज को सावधान करते है कि सादर सुनहु। गोसाई जी अपने मन का सावधान करते हैं कि तू मान मद छोडकर भजन कर। भजन करने मे भी तुम्हारा पुरुषार्थ नही है। उसकी कृपा से ही तुम भजन करते हो। अत भजन का श्रेय तुम्हे कुछ नही। इसलिए मान मद छोडने को कहते है। भरद्वाज जी प्रेम म डूबाडूब हैं। यथा प्रेम बिबस मुख आव न बानी। अत याज्ञवल्क्यजी बारम्बार उन्ह सावधान करते हैं कि कथा सुनने से ही भक्ति उपजती है। अत कथा के प्रति अनवधानता न होने पावे।

२ नारद मोह प्रसङ्ग

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
आश्रमु परम पुनीत सुहावा। देखि देवरिषि मन अति भावा ॥१॥

अर्थ हिमालय म एक बडी पवित्र गुफा थी। उसके पास ही सुन्दर गङ्गाजी बहती थी। उस परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर नारदजी के मन को अत्यन्त अच्छा लगा।

व्याख्या हिमालय मे बहुत सी पवित्र गुफाएँ हैं। उनमे से एक अत्यन्त पवित्र थी। पर्वत मे गुफा, सामने सुन्दर गङ्गा का प्रवाह, उस पार वन। यह दृश्य इतना मनोहर था कि ब्रह्मलोक निवासी नारदजी को बहुत प्रिय लगा। यह आश्रम परम पवित्र और रमणीय है। समाधि योग्य स्थान है।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा ॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी ॥२॥

अर्थ पर्वत नदी और वन के विभाग को देखकर रमापति के चरणो म अनुराग हुआ। हरि को स्मरण करते ही शाप की गति रुक गई और स्वभाव से ही निर्मल मन था। समाधि लग गई।

व्याख्या प्रकृति की शोभा देखकर उसके रचयिता के चरणो मे अनुराग हुआ। शैल का विभाग जहाँ से समाप्त होता है वहाँ से सरिता का विभाग आरम्भ हो जाता है। उसे समाप्त होते न होते वनविभाग आरम्भ हो जाता है और फिर भी सब म सामञ्जस्य रहता है। प्रकृति की शान्त शोभा देखकर मन भी शान्त हो जाता है। वन की श्री देखकर श्रीपति के चरणो मे अनुराग होता है। नारदजी वही ठहर कर हरि का स्मरण करने लगे अर्थात् भगवन्नाम जप और उसके अर्थ की भावना आरम्भ हुई। इसके प्रत्यक् चेतन का अधिगम हुआ और अन्तराय का अभाव हुआ। तत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो सू । शाप की गति रुक गई। नारदजी को दक्ष का शाप था कि वे कही स्थिर न रहे सो स्थिर हो गये। मन स्वभाव से ही निर्मल था। भगवच्चरणो म अनुराग उठा ही था। समाधि लग गई। यथा ईश्वर-प्रणिधानाद्वा। यो सू ।

मुनि गति देखि सुरेस डराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना ॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू ॥३॥

अर्थ मुनि की गति देखकर इन्द्र डरे। कामदेव को बुलाकर सम्मान किया और कहा कि मेरे लिए तुम सेना के सहित जाओ। कामदेव हृदय मे हर्षित होकर चल।

व्याख्या भारी तपस्विया से इन्द्र को भय रहता है। इतनी बडी समाधि लगी कि इन्द्र भयभीत हो उठे। विघ्नाचरण के लिए काम को बुलाया। कार्य लेना है इसलिए सम्मान किया। जहाँ प्राण लना था वहाँ बडी स्तुति की। यथा प्रस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतू। यहाँ उतना बडा काम नही है इसलिए केवल बुलाकर सम्मानित किया। देवराज हैं। कामदव को आज्ञा देते हैं कि मेरी प्रीति के लिए जाओ और अपनी सेना मारगण को साथ ले लो। अकेले काम न चलेगा। कामदेव भी बडे वीर है। पराक्रम करने का अवसर मिलने से प्रसन्न है। सेना सहित चले। अत पताका का वर्णन करते है।

सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर वासा॥
जे कामी लोलुप जग माही। कुटिल काक इव सर्बाह डेराही॥४॥

अर्थ इन्द्र के मन मे यह डर था कि देव ऋषि मेरे पुर मे अपना वास चाहते हैं। जो लोग ससार मे कामी और लोलुप है वे कुटिल कौवे की भाँति सबसे डरा करते हैं।

व्याख्या प्रकट नही करते पर भीतर से बडा डर है कि देवऋषि मेरा आसन छीनना चाहते है। अमरावती मे उनका वसना ही मेरे प्रभुत्व के लोप का कारण होगा। देवताओ वे ऋषि हैं अत उनका वैसा ही सन्मान करना पडेगा। उनकी आज्ञा के वशवर्ती होना पडेगा। जब दूसरे के आज्ञावशवर्ती हुए तब इन्द्र किस बात के रह जायँगे? सुनासीर है। देवताओ के स्वामी हैं। फिर भी उन्हे तपस्वी से भय रहता है। यथा तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत विरचि सिवहि सदेहा।

इन्द्रपद वैषयिक सुख की पराकाष्ठा है। इसलिए कामी लोलुप और कुटिल कहा। काक की उपमा देते है। यथा काक समान पाक रिपु रीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। छली यथा सहित सहाय जाहु मम हेतु। मलीन। यथा चहत देव ऋषि मम पुर वासा। न कतहुँ प्रतीती। यथा मुनि गति देखि सुरेस डेराना।

दो सूख हाड लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड, तिमि सुरपतिहि न लाज॥१२५॥

अर्थ जैसे सिंह को देखकर शठ कुत्ता सूखा हड्डी लेकर भागे और यह समझ कि कही उस सूखे हाड को सिंह छीन न ले। वैसे ही इन्द्र को लज्जा नही है।

व्याख्या नारदजी को मृगराज कहा। वे काम कोह कलिमल करिगन के कुम्भ को विदारण करके ब्रह्मानन्दरसास्वाद करनेवाले है। इन्द्रासन का सुख कितना भी हो तो ब्रह्मानन्द के सामने सूखी हड्डी है। रज और तम के सघर्षण पूवक अभिभूत होने से जब क्षणिक सत्त्व का उदय होता है तब उसी म ब्रह्मानन्द की झलक प्रतिफलित होती है। यही विषयानन्द है। उसकी ओर भला नारदजी आँख उठाकर क्या देखने लगे। इन्द्र को श्वान से उपमित किया। उन्हे ब्रह्मानन्द दुर्लभ है। उनका सिंहासन सूखा हाड है। उसम कुछ नही है। उसके द्वारा इन्द्र अपने ही पुण्य का फल भोगते है और अज्ञान से समझते है कि इन्द्रासन म सुख है। उसे कही नारद छीन न ले। यथा अस्थि पुरान छुधित स्वान अति ज्यो भरि मुख पकरै। निज तालूगत रुधिर पान करि मन सन्तोष धरै।

तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया वसत निरमयऊ॥
कुसुमित विविध विटप बहु रगा। कूजहि[1] कोकिल गुजहि भृगा॥१॥

अर्थ जब उस आश्रम म कामदेव गये तब उन्होने अपनी माया से वसन्त

१ दीपकावृत्ति द्वितीय।

का निर्माण किया। अनेक प्रकार के पेडो मे रग विरग के फूल खिल गये। उनपर कोयल कूजने और भौंरे गूँजने लगे।

व्याख्या चलउ हरखि हिय जलचरकेतू से कामदेव का प्रसङ्ग उठाया था। बीच म इन्द्र की लोलुपता वहने लगे। अब कामदेव के उस आश्रम मे पहुँचने पर फिर वही कथा प्रारम्भ कर दी। वसन्त कामदेव के मित्र हैं। उद्दीपन मे बडे सिद्धहस्त हैं। काम उन्हे समय पडने पर माया से अपने पास बुला लते हैं। भाव यह कि उस समय वसन्त ऋतु नही था। माया से हो गया।

वसन्त ऋतु के आजाने से प्रकृति म कामशक्ति वढ जाती है। पेडो म नये पत्ते आ जाते हैं। अच्छे अच्छ फूल खिलने लगते हैं। कोयल कूकने लगते हैं। फूलो की सरसता के कारण भौंरे गूँजने लगते हैं। ये सब उद्दीपन हैं।

चली सुहावनि त्रिविध बयारी। काम कृसानु बढावनि हारी॥
रभादिक सुर नारि नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना॥२॥

अर्थ काम की आग वढानेवाली त्रिविध शीतल मन्द और सुगन्ध हवा चलने लगी। रम्भा आदिक नवयुवती स्वर्ग की अप्सराएँ जो काम की सब कलाओ मे चतुर थी।

व्याख्या सीतल सुगध सुमद मारुत मदन अनल सखा सही। त्रिविध समीर को कामाग्नि का सच्चा मित्र कहा है। क्योकि वह कामाग्नि को वढाता है। अब आलम्वन कहते हैं कि अप्सराएँ प्रकट हुईं। सामान्य अप्सराएँ नही। ख्यातनामा रम्भादिक जो कामकला म वडी प्रवीण ह और जिन्ह जरा आती ही नही। नित्य नवयौवना बनी रहती हैं।

करहिं गान बहु तान तरगा। बहु विधि क्रीडहि पानि पतगा॥
देखि सहाय मदन हरपाना। कीन्हेसि पुनि प्रपच विधि नाना॥३॥

अथ अनेक प्रकार की ताना के तरङ्ग उठाती हुई गान कर रही है। जलपक्षी अनेक प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे है। सेना को दखकर कामदेव हर्षित हुए। फिर उन्हाने अनेक प्रकार का प्रपञ्च किया।

व्याख्या अब ध्यानभङ्ग के लिए उन लोगो ने सगीत आरम्भ किया। अनेक प्रकार की तानें लने लगी। यथा कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजही। जलपक्षियो का कलोल भी उद्दीपन है। कुछ लोगा ने पानि पतगा का अथ पतङ्ग उडाना हाथ नचाना अथवा गद खेलना भी किया है। फिर काम ने अनेक प्रपञ्च किया। जिन्हे कवि लिखना नही चाहते। वायु के झोके से अप्सराओ के अञ्चल आदि का हट जाना इत्यादि प्रकार क प्रपञ्च काम ने किय।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी॥
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। वड रखवार रमापति जासू॥४॥

अर्थ कामदेव की किसी कला ने मुनि पर काम न किया तब पापी कामदेव अपने ही डर से डरा। क्या कोई उसकी सीमा दबा सकता है जिसके बडे भारी रक्षक रमापति हैं।

व्याख्या जब काम की कल्पना का कोई प्रभाव मुनि पर नही पडा तब शाप के डर से भीत हुआ। बडे हर्षित होकर चले थे कि देवऋषि को आज जीतना है सो कुछ भी किया न हुआ। जिसपर प्रभाव न चले उसी से काम को भय रहता है। जिस पर प्रभाव चल गया वह तो उसका चेरा ही हो जाता है। उससे डर क्या ?

रमापति के पद मे अनुराग था। इसलिए रमापति रक्षा कर रहे थे। ऐसे समय किसका सामर्थ्य है कि उनकी मर्यादा को ठेस पहुँचा सके। अत ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, वैष्णवास्त्र से भी विशेष कराल कामास्त्र निष्फल हुआ।

दो सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मयन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत बयन ॥१२६॥

अर्थ फिर अपने सहाय समेत कामदेव ने बहुत डरकर और मन से हार मानकर अत्यन्त आर्त वचन कहते हुए जाकर मुनिजी का चरण पकड लिया।

व्याख्या काम भी डरे, अप्सराएँ भी डरी, वसन्त भी डरे। नारदजी का बडा अपराध जहाँ तक हो सका किया। अब अधिक नही कर सकते। तब डरे कि अभी तक तो हमारी ओर से चोट होती थी मुनिजी सह रहे थे। अब उनकी पारी है। उनकी चोट हम नही सह सकेंगे। तब त्राहि त्राहि करता हुआ सेना के सहित मुनिजी के चरणो म गिरा। हारि मानि से मनसा भय। गहेसि जाइ मुनिवर चरन से कर्मणा और कहि आरत सुठि बयन से वाचा भय द्योतित किया।

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय बचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई ॥१॥

अर्थ नारदजी के मन मे कुछ भी क्रोध न हुआ। उन्होने प्रिय वचन कहकर काम को सन्तुष्ट किया। चरण में सिर झुकाकर और आज्ञा पाकर कामदेव सेना लेकर चले गये।

व्याख्या जानते हुए भी कि विघ्नाचरण मे काम ने कुछ उठा न रक्खा नारदजी को क्रोध नही हुआ। उमा सत कइ इहै बडाई। मंद करत जो करै भलाई। प्रिय वचन कहकर उसका सन्तोष किया कि ब्रह्माजी ने इसीलिए तुम्हारी सृष्टि की है। सनातन सृष्टि तुम्हारे आधार से चल रही है। तुमने अपना कर्त्तव्य पालन किया। मैं अप्रसन्न नही हूँ। इत्यादि। उसे अपने अपराध की गुरुता विचारकर शीघ्र सन्तोष नही होता था। सन्तुष्ट होने पर प्रणाम किया। और जाने की आज्ञा पाकर सेना के सहित चला गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब बरनी ॥
सुनि सब के मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥२॥

अर्थ : मुनि की सुशीलता और अपनी करणी सब जाकर इन्द्र की सभा में वर्णन की। सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ। मन में मुनि की प्रशंसा करके हरि को प्रणाम किया।

व्याख्या : कामदेव के ऊपर मुनिजी की सज्जनता का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह देवसभा में जाकर मुनि की सुशीलता का वर्णन करने लगा कि मेरे इतने अपराध करने पर भी उन्हें क्रोध न आया। मैंने कुछ उठा न रक्खा। नाना प्रकार का प्रपञ्च किया। पर मुनिजी बड़े क्षमाशील हैं। सब क्षमा कर दिया। मुनि की सुशीलता का वर्णन पहिले और अपनी करणी का वर्णन पीछे किया।

सुनकर सबने आश्चर्य किया। को जग काम नचाव न जेही। अर्थात् ऐसा कोई संसार में है नहीं जिसे काम न नचावे। मुनि पर उसका बल क्यों नहीं चला? अपकारी पर क्रोध होना स्वाभाविक है। क्रोध काम से भी बलवान् है। मुनिजी ने उसे भी जीत लिया। अन्त में हरि को सिर नवाया जो इस प्रकार भक्तों की रक्षा करता है।

तब नारद गवने सिव पाही। जिता काम अहमिति मन माही॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥३॥

अर्थ : तब नारद शिवजी के पास गये। मन में अहंकार हुआ कि मैंने काम को जीत लिया। उन्होंने कामदेव का चरित शिवजी को सुनाया। अत्यन्त प्रिय जानकर शिवजी ने सिखाया।

व्याख्या : शत्रु को मरना स्वीकार होता है। प्रणत होना नहीं। काम सभी का शत्रु है और विशेषतः तपस्वियों का। नारद जी सोचते हैं कि सब कला करके काम मुझसे हार गया। अन्त में मेरे सामने प्रणत हुआ। शिवजी की सदा से कामारि नाम से ख्याति है। उन्होंने काम को भस्म कर दिया। पर प्रणत न कर सके। मेरा प्रभाव शिवजी से अधिक हो गया। यह अहङ्कार तो मन में है। बाहर में प्रिय कामजयका समाचार सुनाने चले।

संसार को हरि प्रिय हैं। हरि को हर प्रिय हैं। और हर को नारद प्रिय हैं। यथा : जगप्रिय हरि हर हरप्रिय आपू। भगवान् के अनन्य भक्त होने से शिवजी को अतिप्रिय हे। सो शिवजी के पास जाकर कामदेव का सब चरित सुनाया। शिवजी ने नारद में अभिमान देखा। अतिप्रिय में यदि दोष देखे तो उसे सिखावन देना उचित है। यथा : कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। जिसमें वह किसी दुःख में न आ पड़े। अतः शिवजी ने नारदजी को सिखाया।

बार बार बिनवौ मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥४॥

अर्थ : हे मुने! मैं तुमसे बारबार विनती करता हूँ कि जिस भाँति यह कथा मुझे सुनाई है उसी भाँति कहीं हरि को न सुनाना। यदि चरचा भी चले तो इस बात को छिपा ले जाना।

व्याख्या · सत्य कथा सुनाने में कोई रोक नही। परन्तु सुनाने का ढङ्ग ठीक नही है। इससे अभिमान टपकता है। नारदजी हरि के पास जावेंगे ही और यह कथा भी सुनावेंगे। यदि इन्होने वहाँ भी इसी ढङ्ग से कहा तो इनकी कुशल नही। भगवान् गर्वप्रहारी है। अत नारदजी को सिखाते हैं कि इस ढङ्ग से यह कथा हरि को कभी न सुनाना। अच्छा तो यह है कि इस कथा को सुनाना ही नही। क्या जाने वहाँ भी तुमसे कहने मे बिगड जाय। यह भी सम्भव है कि वे स्वय इस प्रसङ्ग को छेडें। फिर भी तुम इस बात को छिपा ही ले जाना।

दो संभु दीन्ह उपदेस हित, नहि नारदहिं सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान ॥१२७॥

अर्थ शिवजी ने तो भले के लिए उपदेश दिया। पर नारद को अच्छा न लगा। हे भरद्वाज ! कौतुक सुनो, हरि की इच्छा बलवती है।

व्याख्या जिसके ऊपर आपत्ति आनेवाली होती है उसे हितोपदेश अच्छा नही लगता। शिवजी ने भले के लिए कहा पर नारद ने समझा कि इन्हे मेरी ख्याति अच्छी नही लगती। अकेले आप ही 'कामारि' बने रहना चाहते हैं। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज जी को सावधान करते है कि यह कौतुक सुनने योग्य है। शिवजी का वचन भ्रमतम के मिटाने के लिए सूर्य की किरण के सदृश है। सो उसी से नारदजी को भ्रम हो गया। इसी को हरि इच्छा कहते हैं। इसके सामने किसी का बल नही लगता। इसी भाँति सती को समझाया था पर उनके भी समझ मे बात न आयी तब शिवजी ने विचार किया कि यहाँ हरि इच्छा रूपी बलवती भावी काम कर रही है। सामान्य भावी होती तो मैं मेट देता। यथा हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत संभु सुजाना। सो यहाँ तो शिवजी के हितोपदेश से ही भ्रम हो रहा है। इसलिए योगी याज्ञवल्क्य कहते है कि हरिइच्छा बलवान।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहि कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहि भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए ॥१॥

अर्थ जो राम किया चाहते हैं वही होता है। उसे ऐसा कोई नही है जो अन्यथा कर सके। शिवजी के वचन मुनि के मन मे अच्छे न लगे। तब ब्रह्मलोक चले गये।

व्याख्या जब से नारदजी के मन मे यह बात आई कि मैंने काम को जीता है। यह मेरी विजय है, यह मेरी महिमा है। तब से विजय देनेवाले भक्तवत्सल की कुछ दूसरी इच्छा हो गई। नारदजी अपनी जीत के ख्यापन के फेर मे पड गये। शिवजी ने देखा कि यह किसी आपत्ति में पडा चाहते है, इसलिए हितोपदेश दिया। उसका नारदजी को उलटा अर्थ लगा। योगी याज्ञवल्क्य कहते है कि हरि इच्छा को शिवजी भी अन्यथा नही कर सकते। जिसे बात अच्छी नही लगती वह उठकर वहाँ से चला जाता है। सो नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। यह भी नही पूछा कि आप क्यो मुझ चरचा करने से रोकते हैं ?

एक बार करतल वर बीना । गावत हरिगुन गान प्रबीना ॥
छीर सिंधु गवने मुनिनाथा । जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा ॥३॥

अर्थ : एक बार संगीत कला मे निपुण मुनीश्वर नारदजी हाथ मे श्रेष्ठ वीणा लिये हुए हरिगुण गाते-गाते क्षीरसागर गये । जहाँ वेदमस्तक श्रीनिवास बसते है ।

व्याख्या : पहिले शिवजी के पास गये । वहाँ से ब्रह्मदेव के पास गये । अब विष्णु के पास जाते हैं । गान में ऐसे प्रवीण हैं कि वीणा पर गान करते है । इस समय जगत् मे कोई ऐसा गायक नही है जो वीणा पर गान कर सके । तानपूरा पर ही गानेवाले कम हैं । नारदजी रास्ते-रास्ते हरिगुनगान करते चलते है ।

छन्दास्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति । भागवते । उस सहस्रशीर्षा पुरुष का शिर वेद है इसलिए उन्हे श्रुतिमाथ कहा । उनका नित्य निवास क्षीरसागर मे रहता हैं । नारदजी मुनिनाथ हैं । उनकी अव्याहत गति है । अतएव वहाँ गये नही तो क्षीरसागर महा अगम्य है ।

हरषि मिलेउ उठि रमानिकेता । बैठे आसन रिषिहि समेता ॥
बोले बिहँसि चराचर राया । बहुते दिनन्ह कीन्हि मुनि दाया ॥४॥

अर्थ : रमानिकेत उठकर उनसे हर्षित होकर मिले और ऋषिजी के साथ आसन पर बैठे । चराचर के स्वामी भी विहँसे और कहा कि मुनिजी ! बहुत दिनो पर आपने दया की ।

व्याख्या : हर्षित होकर अभ्युत्थान देना और रमापति का आलिङ्गन करना तथा आधा आसन देना बड़ा भारी सत्कार है । कहा है कि उचित से अधिक सत्कार अनादर के तुल्य है । भाव यह है कि अब आप त्रिदेव के समकक्ष हो गये । काम को जीत लिया । अब ऐसा ही सत्कार होना उचित है ।

स्मितपूर्वाभिभाषी हैं सो आज विहँसकर बोल रहे हैं । समझ रहे हैं कि अपनी महिमा सुनाने आगये । माया उनकी हँसी है । यथा : माया हास बाहु दिग-पाला । भाव यह कि माया द्वारा भी अगवानी हो रही है । शिवजी का कहना सामने आया । वही प्रसङ्ग चलाया । पूछते हैं कि आपने बहुत दिनो पर दर्शन दिया ? कितना स्वाभाविक प्रश्न है । परन्तु इसके गर्भ मे यह बात है कि नारदजी को अपने समाधि की कथा तथा कामविजय के वर्णन के लिए अवसर मिले ।

काम चरित नारद सब भाखे । जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे ॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ॥४॥

अर्थ : यद्यपि शिवजी ने पहिले ही मना कर रक्खा था । फिर भी नारदजी ने सब कह डाला । रघुपति की माया अति प्रचण्ड है । ऐसा कौन जगत् मे पैदा हुआ जिसे उसने न मोहित किया हो ।

व्याख्या : शिवजी का सिखावन नारदजी के मन मे अच्छा नही लगा था । यद्यपि वहाँ उसका स्पष्ट विरोध नही किया । पर अवसर आने पर उसके विरुद्ध कार्य

कर ही डाला। कह चले कि मैं समाधि मे था। सो इन्द्र भयभीत हो गये। उनका भेजा हुआ कामदेव अप्सरादि के साथ आया। बडी बडी माया की। जब एक न चली तो शाप के भय से त्राहि त्राहि करके मेरे शरण आया। मुझपर काम का कोई प्रभाव न हुआ। न क्रोध ही आया। काम आश्चर्य मे आगया। मेरी बडी विनती की। मैंने क्षमा कर दिया।

नारदजी के इस मोह पर उन्हे कोई कम न समझे। ससार मे जो पैदा हुआ वह रामजी की माया से मोहित होता ही है। वह बडी प्रचण्ड है। उसके आगे किसी का बल नही चलता। यथा सुनु खग प्रबल राम कै माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह मन करई।

दो रूख बदन करि बचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहि, मोह मार मद मान ॥१२८॥

अर्थ श्रीभगवान् रूखा चेहरा करके कोमल वचन बोले कि तुम्हारे स्मरण से ही मोह काम और मान का नाश होता है।

व्याख्या नारदजी को जिन गुणो का अभिमान था उन्ही को लेकर प्रशसा करते हैं। जिसकी कृपा से समाधि लगी, जिसकी रक्षा से कामास्त्र निष्फल हुआ, काम पर विजय पाया, उसकी चरचा तक नारदजी नही करते। अत रूखा चेहरा करके बोले आपका दर्जा बहुत ऊँचा है। काम का विजय आपके लिए बडी बात नही है। आपका स्मरण करके लोग मोह, काम और अभिमान को जीत लिया करते हैं। वीतराग मे चित्त की धारणा करने से समाधि सिद्ध होती है।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके। ग्यान बिराग हृदय नहि जाकें ॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ॥१॥

अर्थ हे मुनिजी! सुनिये, जिसके हृदय मे ज्ञान विराग नही होता उनके मन मे मोह होता है। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत मे रत स्थितप्रज्ञ हैं। क्या आपको काम पीडा पहुँचा सकता है?

व्याख्या हमलोग तो गृहस्थ हैं। मुझे रमा है, शिवजी को उमा हैं, ब्रह्मदेव को सारदा हैं। अत हमलोग राग और अज्ञान की सीमा के भीतर हैं। आप परिव्राजक हैं, ब्रह्मचर्य व्रत मे रत हैं। मतिधीर हैं। दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह। वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते। दु ख मे जिनका मन उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, जिसे राग, भय और क्रोध न हो ऐसे स्थितप्रज्ञ को मुनि कहते हैं। आपके हृदय मे ज्ञान वैराग्य है। आपको क्या काम पीडा पहुँचावेगा?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना ॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी ॥२॥

अर्थ नारदजी ने अभिमान के साथ कहा: भगवन्! यह सब आपकी कृपा

है। करुणानिधान ने मन में विचार कर देखा कि इनके हृदय में भारी अभिमानवृक्ष का अङ्कुर तो हो आया।

व्याख्या · अभिमान के साथ कहने के कारण सच्ची बात भी विनयप्रदर्शन मात्र हो गई। यदि अभिमान के साथ न कहते तो उत्तर बिल्कुल ठीक था सब कुछ भगवान् की कृपा से हुआ था। करुणानिधि हैं, अभिमान की बात सुनकर उनके कल्याण का विचार करने लगे कि इनकी छाती पर पीपल जम रहा है। यथा अश्वत्थमेन सुविरूढमूलम्। यह संसार ही बड़े दृढमूल वाला पीपल है। सो अभी अङ्कुर मात्र है।

बेगि सो मै डारिहौ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मै सोई॥३॥

अर्थ : मै उसे तुरन्त उखाड़ डालूँगा। हमारा प्रण सेवक हितकारी है। मुनि की भलाई हो और मेरे लिए एक खेल मिल जाय। ऐसा ही उपाय मैं अवश्य करूँगा।

व्याख्या : उस अभिमान वृक्ष के उखाड़ने में जल्दी की आवश्यकता है। शतपत्र न होने पावे नही तो बडी बडी अड़चनें पैदा होगी। मुझे अपना प्रण सच्चा करना है। सेवक हितकारी मेरा प्रण है, सेवक प्रियवादी प्रण नही है।

उपाय ऐसा हो जिसमे मुनि का कल्याण हो और मेरा कौतुक खेल भी हो। एका क्रिया द्वयर्थकरी हो। मैं ऐसा उपाय अवश्य करूँगा।

तब नारद हरिपद सिरु नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि करी॥४॥

अर्थ : तब नारदजी हरि के चरणो मे सिर नवाकर चले। हृदय मे अभिमान और बढ गया। श्रीपति ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करणी सुनो।

व्याख्या · केवल काम पर अपना विजय सुनाने आये थे। वह कार्य हो गया। अत यथापूर्व हरिपद मे सिर नवाकर चले। पर अभिमान और बढ गया। सोचने लगे हरि ने ठीक कहा। त्रिदेव गृहस्थ हैं। ये काम को क्या जीतेंगे ? अभिमान को और भी बढता देखकर श्रीपति ने अपनी माया को प्रेरणा की। वह अघटित-घटनापटीयसी है। जो काम तीन काल में सम्भव न हो उसे कर दिखानेवाली है। यथा लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। चित् के ब्रह्म के अति दुर्घटस्वातन्त्र्य को माया कहते हैं। लोक मे योगी, मन्त्रशास्त्री और ऐन्द्रजालिक थोडा सा आच्छादित स्वातन्त्र्य पाकर के युक्ति से दुर्घट घटना घटा देते हैं। तब श्रीपति की माया के लिए क्या कहना है। भासनकाल में भी स्वरूप से अतिवर्त्तन उसकी दुर्घटना है।

दो. बिरचेउ मग महु नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवास पुर ते अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥१२९॥

अर्थ : उसने मार्ग मे सौ योजन विस्तृत एक नगर की रचना की जिसमें भाँति भाँति की रचनाएँ वैकुण्ठ से भी अधिक थी।

व्याख्या : जिस रास्ते को पकड़कर नारदजी जा रहे थे उसी रास्ते पर पलक मारते चार सौ कोस का नगर रच दिया। लोको मे सबसे अधिक शोभा वैकुण्ठ की है। सो वहाँ से भी अधिक कारीगरी इस नगर के बनाने मे दिखाई गई। जिसमे नारद का मन आकृष्ट हो और नगर देखने आवे। संसार मे जितनी अद्भुत वस्तुएँ हैं सब नारदजी की देखी हुई हैं। सबसे सुन्दर वैकुण्ठ है। वह भी नारदजी का देखा हुआ है। अतः वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर नगर माया ने क्षण भर मे बनाया।

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी॥
तेहि पुर बसइ सील निधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा॥१॥

अर्थ : उस नगर मे सुन्दर नर नारी बसते थे। मानो काम और रति ने ही बहुत से शरीर धारण कर रक्खे हो। उस नगर मे शीलनिधि नामी राजा रहता था। घोडे हाथी और सेना की गिनती न थी।

व्याख्या : वैकुण्ठ सा सुन्दर नगर था। इतना ही नही वहाँ के निवासी भी वैकुण्ठवासियो की भाँति सुन्दर थे। नर काम से सुन्दर और नारियाँ रति सी सुन्दर थी।

नगर अभी बना है। परन्तु शीलनिधि राजा उसमे कई पीढ़ी से बसते थे। घोडे हाथी सेना सब अनेक देश के भिन्न कालो मे आये है तथा भर्ती हुए है इत्यादि। टेहरी राज्य मे एक शहर है। जिसका नाम श्रीनगर है। उसे लोग शीलनिधि राजा की राजधानी कहते हैं। प्राचीन श्रीनगर को तो गङ्गाजी बहा ले गईं। अब वहाँ सिवा रमापति के मन्दिर के और कुछ नही है। उसी के सन्निकट अब दूसरा श्रीनगर बसा है।

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति नेवासा॥
बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूप निहारी॥२॥

अर्थ : उसके वैभव का विलास सौ इन्द्र के समान था। रूप, तेज, बल और नीति का वह निवास स्थान है। उसकी विश्वमोहिनी नाम्नी कन्या थी। जिसका रूप[१] देखकर लक्ष्मी भी मोहित हो जाँय।

व्याख्या : विलास ऐसा कि उसके सामने इन्द्र का विलास कुछ नही। शीलनिधि राजा वस्तुतः शीलनिधि थे। रूप मोहक होता है। पर बिना तेज के उसकी महत्ता नही। दोनो होने पर भी बिना बल के सुभट समाज मे आदर नही होता। यह सब होने पर भी बिना नीति के राज्य नही टिकता। यथा : राजकि रहै नीति बिनु जाने। राजा मे सब था।

---

१ यह रूप की अलौकिकता है। नही तो लोकरीति यह है कि मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।

शीलनिधि का व्याह हुए बहुत दिन हो गये थे। उन्हे उस व्याह से एक बेटी भी थी जो व्याहने योग्य हो गई थी। नगर ऐसा सुन्दर बना, निवासी ऐसे सुन्दर, विभव ऐसा, राजा ऐसे फिर कुमारी अलौकिक क्यो न हो ? उसे अलौकिक सुन्दरता थी। उसे देखकर लक्ष्मी भी मोहती थी। लक्ष्मी को देखकर तो अभी नारदजी चले आ रहे हैं। यदि उनसे अधिक सुन्दरता न हो तो नारदजी मोहेंगे कैसे ?

सोइ हरि माया सब गुनखानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥
करै स्वयम्बर सो नृप बाला। आए तहँ अगनित महिपाला ॥३॥

अर्थ वही सब गुणो की खानि हरि की माया थी। क्या उसकी शोभा वर्णन की जा सकती थी ? वह राजकन्या स्वयम्बर करती थी। वहाँ असख्य राजा लोग आये थे।

व्याख्या यह सब रचना रचकर वह हरि की माया स्वय राजा की बेटी बनी। उसकी शोभा कौन कह सकता है। इतना ही नही नगर तो अभी बना है। पर उस कन्या का सौन्दर्य तथा स्वयम्बर का समाचार सुनकर देश देश के राजाओ के आये कई दिन हो गये थे। यह हरिमाया की कठिन करणी है। किसी भाँति बुद्धि नही काम करती। देश काल का कोई ही नियम ही नही रह गया। छोटे से सङ्कीर्ण स्थान मे चार सौ कोस का नगर कैसे बना ? सम्पूर्ण राजसमाज प्रजामण्डल सहित कहाँ से आगये ? स्वयम्बर का समाचार सब देश देश मे कब फैला ? सब देशो के राजा कहाँ से चले आये ? अघटितघटनापटीयसी माया की ऐसी करामात है कि सब असम्भव सम्भव हुआ।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरवासिन्ह सब पूछत भयऊ ॥
सुनि सब चरित भूप गृह आए। करि पूजा नृप मुनि बैठाए ॥४॥

अर्थ कौतुकी मुनि उस नगर मे गये। नगर वासियो से सब पूछा। अब चरित सुनकर राजमन्दिर मे गये। राजा ने पूजा करके मुनिजी को बिठाया।

व्याख्या नारद जी के रास्ते मे ही नगर पडा। बडा सुन्दर था। नारदजी ने इसे कभी नही देखा था। देश देश के राजा लोग भी नगर के बाहर उतरे हुए थे। जाने का काम कोई न था। पर यह सब समारोह देखकर कौतुकियो से नही रहा जाता। सो मुनिजी नगर मे चले गये। पता लगाया कि इतना समारोह क्यो है ?

स्वयम्बर की कथा सुनकर कौतुक और बढा। राजा के यहाँ चले गये। राजा ने पहचान लिया कि नारदजी हैं। सो उसने पूजा सत्कार करके मुनिजी को बिठलाया।

दो आनि देखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहिके हृदय विचारि ॥१३०॥

अर्थ राजा ने राजकुमारी को लाकर दिखाया। और कहा हे नाथ। आप मन मे विचार करके इसके गुणदोष कहिये।

व्याख्या : सामुद्रिक शास्त्र द्वारा केवल अवयव संगठन, हस्तरेखा आदि देखकर फल कहा जाता है। स्वयम्बर सन्निकट है। अत कन्या के विषय में चिन्ता है कि कैसे घर पडेगी इत्यादि।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरख नहिं प्रगट बखाने॥१॥

अर्थ रूप देखकर तो मुनिजी वैराग्य भूल गये। बडो देर तक देखते रह गये। उसके लक्षण देखकर तो अपने को भूल गये। हृदय मे हर्ष हुआ। प्रकट कुछ न कहा।

व्याख्या मोह न नारि नारि के रूपा। सो उसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर लक्ष्मी मोहती थी। *नारदजी तो वैराग्य भूल गये। कभी उन्हे वैराग्य था।* यह भी स्मरण न रहा मोहित हो गये आँखें उस अलौकिक शोभा मे बँध गईं। राजा समझते हैं कि सामुद्रिक से लक्षण मिलान कर रहे हैं।

लक्षण देखकर अपने को ही भूल गये ज्ञान भी गया : यह भी स्मरण न रहा कि मै ब्रह्मचर्यरत मुनि हूँ : ऋजुता भी गई : प्रकट बखान नही करते। हृदय मे हर्ष है कि लोग इसके गुणो से अपरिचित हैं, सो अपरिचित बने रहे : तभी ठीक है। यह तो त्रिदेव की योग्या है। इसके गुण जान जायँगे तो त्रिदेव मे से ही किसी को देगे। इसलिए प्रकट नही कहा।

जो एहि बरै अमर सो होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरै सीलनिधि कन्या जाही॥२॥

अर्थ जो इसे व्याहेगा वह अमर होगा। और सग्रामभूमि मे कोई उसे जीत न सकेगा। शीलनिधि की कन्या जिसे वरेगी उसकी सेवा चराचर जगत् करेगा।

व्याख्या इसका सीधा सीधा अर्थ है कि शीलनिधि की कन्या को अमर, *अजेय और चराचर से सेव्य वर मिलेगा।* जैसे उमा के लिए अगुण, अमान, उदासीनादि गुणयुक्त वर मिलना लिखा था। उसका यह अर्थ नही था कि उमा जिसे व्याहेगी वह अगुण, अमान और उदासीन हो जायगा। पर मुनिजी इस समय माया के बस मे हैं। यह अर्थ लगा रहे हैं कि यदि मेरा व्याह इससे हो जाय तो मै अमर, अजेय और चराचर से सेव्य हो जाऊँगा। पर कठिनता यह है कि शीलनिधि की कन्या सुन्दर युवा राजकुमार छोडकर मुझे क्यो वरने लगी। चराचर तो त्रिदेव की सेवा करते हैं अत इससे व्याह करना और त्रिदेव के समान हो जाना एक बात है।

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप मन भाखे॥
सुता सुलच्छन कहि नृपपाहीं। नारद चले सोच मन माहीं॥३॥

अर्थ सब लक्षणों को विचारकर मन मे रख लिया। कुछ बातें बनाकर राजा से कह दी। राजा से कहकर कि कन्या सुलक्षण है नारदजी चले गये। मन में सोचते हैं।

व्याख्या कहने से बात बिगडती है। जब असली बात छिपायी तो कुछ कहने के लिए बात बनानी ही पडी। स्त्रीसग्रह की इच्छा होते ही प्रपञ्च म फँसे। सुलक्षण कन्या के जो गुण हैं वे ही बतला दिये। अलौकिक बातें छिपा रक्खी। जल्दी है इसलिए चल पडे। नारदजी प्रभु की विमल कीर्तिगान करते चलते थे। यथा गावत हरिगुन गान प्रवीना। सो आज वह गान भी बन्द हो गया। क्योंकि मन म सोच है। अब उसे कहते हैं।

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला ॥४॥

अर्थ जाकर ऐसा यत्न विचारकर करें जिस प्रकार कुमारी मुझे वरे। जप तप उस समय हो नही सकता। हे विधाता ! कुमारी किस भाँति हाथ लगेगी।

व्याख्या सोचते हैं कि मैं तो उसे वरने को तैयार हूँ। यत्न यह करना है कि वह कुमारी मुझे वरे। यत्न म तनिक सी चूक हो जाने से मामला हाथ से निकल जायगा। अत विचार करके जिसम निश्चय कार्य सिद्ध हो ऐसा यत्न करना चाहिए।

यज्ञ कामधेनु है। और यज्ञो मे जपयज्ञ उत्तम है। और तप के लिए ससार मे कुछ अगम्य नही है। ये ही दोनो कार्यसिद्धि के महान् साधन हैं। पहिले मालूम होता तो जप तप करते। पर समय इतना कम है कि दोनो उपायो मे से कोई भी सम्भव नही है मुनि हैं, इसलिए जप तप पर ध्यान गया। ये ही तो उपाय उनके जाने हुए थे। अत कहते है कि हे विधि ! हाय रे बाप तब उसके मिलने की कौन विधि है ? पहिला 'विधि' शब्द उनके पिता ब्रह्मदेव का बोधक है। दूसरा उपाय का बोधक है।

दो एहि अवसर चाहिअ परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ॥१३१॥

अर्थ इस अवसर पर परम शोभा और विशाल रूप चाहिए। जिसे देखकर कुमारी मोहित हो जाय तब जयमाल पहिनावेगी।

व्याख्या कन्या वरयते रूपम्। कन्या तो कुछ नही देखती केवल रूप ही देखती है। सो स्वयवर है। वरण करना कन्या के हाथ म है। वह रूपवान् को वरेगी। सो यहाँ बडी चमक दमक और बडे सौन्दर्य की आवश्यकता है जिसे देखकर वह रीझ जाय। इसके जोड की या इससे अधिक शोभा और रूप की आवश्यकता है। वह मुझम कहाँ से आवे ? पर आना ही चाहिए। नही तो वह जयमाल न पहनावेगी।

हरि सन माँगौं सुदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई ॥
मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥१॥

अर्थ हरि से सुन्दरता माँगू। पर जाने मे बहुत देर लग जायगी। मुझे तो हरि के समान दूसरा कोई हित नही है। इस अवसर पर वे ही मेरे सहायक हो।

व्याख्या इस कन्या के जोड की सुन्दरता केवल हरि मे है और रूप देने का सामर्थ्य भी है। जप तप नही हो सकता तो मँगनी माँगकर ही काम चलालें। पर वे ठहरे क्षीरसागर मे। जब से वहाँ जावेगे तब तक यहाँ स्वयम्वर समाप्त हो जायगा। दूसरा कोई हित उनके समान मेरा है नही। जो सकट के समय म काम आवे उसी को हित कहते हैं। यथा तोहि सम हितु न मोर ससारा। वहे जात कह भइसि अधारा। सो इस समय वे ही सहाय हो। अर्थात् मैं तो उन तक पहुँच नही सकता। पर वे तो आ सकते हैं। आकर सहायता करें।

बहुबिधि बिनय कीन्हि तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुडाने। होइहि काजु हिएँ हरपाने॥२॥

अर्थ उस समय बहुत विधि से विनती की। कौतुकी और कृपाल प्रभु प्रकट हुए। प्रभु को देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। और वे मन मे बडे प्रसन्न हुए कि अब काम बन जायगा।

व्याख्या आर्त पुरुप ही जानता है कि किन किन विधियो से विनय किया जाता है। भक्त भी कौतुकी। यथा मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। भगवान् भी कौतुकी। यथा प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला। यहाँ 'कृपाला' कहने का भाव यह कि भगवान् को कौतुक के साथ साथ मुनि का हित भी इष्ट है। यथा मुनि कर हित मम कौतुक होई।

प्रभु की शोभा और रूप कहते है। जो आँख रूप और शोभा के लिए सन्तप्त थी वे इस रूप और शोभा को देख ठण्ढी हो गईं। भगवान् का वचन है कि 'मोर दरस अमाघ जग माही। अत कार्य सिद्धि की आशा दृढ हो गई।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहि पावौ ओही॥३॥

अर्थ अत्यन्त आर्त होकर कथा कह सुनायी। हे प्रभो! कृपा करो और कृपा करके सहाय हो। हे प्रभो! अपना रूप मुझे दो। और किसी भाति मैं उसे नही पा सकता।

व्याख्या जानते है कि दीनदयाल हैं, अत अत्यन्त आर्त होकर सब वृत्तान्त सुनाया। मनम अभिलाषा थी कि एहि अवसर सहाय सो होऊ। अत कहते है कि केवल कृपा से काम न चलेगा। कृपा करके होहु सहाई।

प्रभु का दिव्य रूप है। अत दिया जा सकता है। जिस भाँति एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जा सकता है। यथा गीध देह तजि धरि हरिरूपा। उपाय का निर्णय स्वय कर लिया। कहते हैं आन भाँति नहि पावौ ओही। नाम नही लेते, मानो ब्याह हो गया है।

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा । करहु सो बेगि दास मै तोरा ॥
निज माया बल देखि बिसाला । हिय हँसि बोले दीनदयाला ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! जिस विधि से मेरा हित हो वही जल्दी से कीजिये । मैं आप का दास हूँ । अपनी माया का विशाल बल देखकर दीनदयाल हँसकर बोले ।

व्याख्या : मैंने तो यही विधि निश्चय की है कि बिना आपका रूप पाये मुझे वह मिल नहीं सकती । परन्तु आप नाथ हैं । यदि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित हो सकता हो तो उसे ही शीघ्र कर डालिये । सम्बन्ध की भी याद दिलाते हैं कि मैं आपका दास हूँ ।

प्रभु ने अपनी माया का विशाल बल देखा जिसने स्थितव्रत मुनि को आतुर कर दिया । तब प्रभु हृदय मे हँसे कि इतने मे ही ब्रह्मचर्य व्रत वे भूल गये । अथवा माया की करामात पर हँसे जिसके दर्शन मात्र से इतने बड़े महर्षि अपने स्वरूप को भूल गये हैं । मन मे हँसे । प्रकट हँसने से मुनिजी को कष्ट होता । दीनदयाल हैं । नारदजी को दीन देखकर बड़ी दया हुई ।

दो. जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

अर्थ : हे नारद ! सुनो जिस विधि से तुम्हारा परम हित होगा वही हम करेंगे, दूसरा नहीं । हमारा वचन असत्य नहीं होता ।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि मैं तुम्हारा परम हित करूँगा । क्योंकि तुम मुझे परम हित मानते हो । यथा : मोरे हित हरिसम नहि कोऊ । तुम्हारी प्रार्थना हित के लिए है । अतः मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारा परम हित करूँ । नारद ! सुनहु का भाव यह है कि मेरे शब्दो पर ध्यान दो । मैं क्या कह रहा हूँ । जो परम हित न होगा वह मैं नहीं करूँगा । मेरे वचन मे उलट फेर नहीं होगा । इसलिए कहते हैं कि : बचन न मृषा हमार ।

कुपथ[1] माँग रुज ब्याकुल रोगी । बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि बिधि हित तुम्हार मै ठयऊ । कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥१॥

अर्थ : रोग से व्याकुल होकर रोगी कुपथ्य माँगता है । हे योगी मुनि ! सुनो : वैद्य उसे नहीं देता । इसी विधि से मैंने तुम्हारा हित निश्चय किया है । ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये ।

व्याख्या : बात को और भी स्पष्ट करते है । शरीर के रोग और मानसिक रोग की एक सी गति है । जिस भाँति जितने शूल हैं वे सब वातप्रधान हैं । उसी भाँति विषय मनोरथ सभी कामप्रधान हैं । यथा : विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सब सूल नाम को जाना । सो इस समय शूल उठा है । रोगी एकदम अस्वस्थ है ।

---

१. अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है ।

अर्थ हरि से सुन्दरता माँगू। पर जाने मे बहुत देर लग जायगी। मुझे तो हरि के समान दूसरा कोई हित नही है। इस अवसर पर वे ही मेरे सहायक हो।

व्याख्या इस कन्या के जोड की सुन्दरता केवल हरि मे है और रूप देने का सामर्थ्य भी है। जप तप नही हो सकता तो मँगनी माँगकर ही काम चलाले। पर वे ठहरे क्षीरसागर मे। जब से वहाँ जावेंगे तब तक यहाँ स्वयम्वर समाप्त हो जायगा। दूसरा कोई हित उनके समान मेरा है नही। जो सकट के समय म काम आवे उसी को हित कहते हैं। यथा तोहि सम हितु न मोर ससारा। बहे जात कह भइसि अधारा। सो इस समय वे ही सहाय हो। अर्थात् मैं तो उन तक पहुँच नही सक्ता। पर वे तो आ सकते हैं। आकर सहायता करें।

बहुविधि विनय कीन्ह तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु विलोकि मुनि नयन जुडाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥२॥

अर्थ उस समय बहुत विधि से विनती की। कौतुकी और कृपाल प्रभु प्रकट हुए। प्रभु को देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। और वे मन म बडे प्रसन्न हुए कि अब काम बन जायगा।

व्याख्या आर्त पुरुष ही जानता है कि किन किन विधियो से विनय किया जाता है। भक्त भी कौतुकी। यथा मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। भगवान् भी कौतुकी। यथा प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला। यहाँ 'कृपाला' कहने का भाव यह कि भगवान् को कौतुक के साथ साथ मुनि का हित भी इष्ट है। यथा मुनि कर हित मम कौतुक होई।

प्रभु की शोभा और रूप कहते है। जो आँखें रूप और शोभा के लिए सन्तप्त थी वे इस रूप और शोभा को देख ठण्ढी हो गईं। भगवान् का वचन है कि 'मोर दरस अमोघ जग माही। अत कार्य सिद्धि की आशा दृढ हो गई।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहि पावौ ओही॥३॥

अर्थ अत्यन्त आर्त होकर कथा कह सुनायी। हे प्रभो! कृपा करो और कृपा करके सहाय हो। हे प्रभो! अपना रूप मुझे दो। और किसी भाति मैं उसे नहीं पा सकता।

व्याख्या जानते है कि दीनदयाल है अत अत्यन्त आर्त होकर सब वृत्तान्त सुनाया। मनम अभिलाषा थी कि एहि अवसर सहाय सो होऊ। अत कहते हैं कि केवल कृपा से काम न चलेगा। कृपा करके होहु सहाई।

प्रभु का दिव्य रूप है। अत दिया जा सकता है। जिस भाँति एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जा सकता है। यथा गीध देह तजि धरि हरिरूपा। उपाय का निर्णय स्वय कर लिया। कहते हैं आन भाति नहि पावौ ओही। नाम नही लेते, माना ब्याह हो गया है।

जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा । करहु सो वेगि दास मै तोरा ॥
निज माया वल देखि विसाला । हिय हँसि वोले दीनदयाला ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! जिस विधि से मेरा हित हो वही जल्दी से कीजिये । मैं आप का दास हूँ । अपनी माया का विशाल वल देखकर दीनदयाल हँसकर बोले ।

व्याख्या मैंने तो यही विधि निश्चय की है कि विना आपका रूप पाये मुझे वह मिल नहीं सकती । परन्तु आप नाथ हैं । यदि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित हो सकता हो तो उसे ही शीघ्र कर डालिये । सम्वन्ध की भी याद दिलाते हैं कि मैं आपका दास हूँ ।

प्रभु ने अपनी माया का विशाल वल देखा जिसने स्थितव्रत मुनि को आतुर कर दिया । तव प्रभु हृदय मे हँसे कि इतने मे ही ब्रह्मचर्य व्रत वे भूल गये । अथवा माया की करामात पर हँसे जिसके दर्शन मात्र से इतने वडे महर्षि अपने स्वरूप को भूल गये हैं । मन मे हँसे । प्रकट हँसने से मुनिजी को कष्ट होता । दीनदयाल हैं । नारदजी को दीन देखकर वडी दया हुई ।

दो जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करव न आन कछु, वचन न मृपा हमार ॥१३२॥

अर्थ : हे नारद ! सुनो जिस विधि से तुम्हारा परम हित होगा वही हम करेंगे, दूसरा नही । हमारा वचन असत्य नही होता ।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि मैं तुम्हारा परम हित करूँगा । क्योंकि तुम मुझे परम हित मानते हो । यथा : मोरे हित हरिसम नहि कोऊ । तुम्हारी प्रार्थना हित के लिए है । अत मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारा परम हित करूँ । नारद ! सुनहु का भाव यह है कि मेरे शब्दों पर ध्यान दो । मैं क्या कह रहा हूँ । जो परम हित न होगा वह मै नही करूँगा । मेरे वचन मे उलट फेर नही होगा । इसलिए कहते हैं कि : वचन न मृपा हमार ।

कुपथ[1] माँग रुज व्याकुल रोगी । वैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि विधि हित तुम्हार मै ठयऊ । कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥१॥

अर्थ . रोग से व्याकुल होकर रोगी कुपथ्य माँगता है । हे योगी मुनि ! सुनो : वैद्य उसे नही देता । इसी विधि से मैंने तुम्हारा हित निश्चय किया है । ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये ।

व्याख्या : वात को और भी स्पष्ट करते हैं । शरीर के रोग और मानसिक रोग की एक सी गति है । जिस भाँति जितने शूल हैं वे सब वातप्रधान हैं । उसी भाँति विषय मनोरथ सभी कामप्रधान हैं । यथा : विषय मनोरथ दुर्गम नाना । ते सव सूल नाम को जाना । सो इस समय शूल उठा है । रोगी एकदम अन्धा है ।

१. अप्रस्तुतप्रशसा अलङ्कार है ।

कुपथ्य माँगता है। विषय की आशा करता है। यथा 'सयम यह न विषय कौ आसा। भोगी होने की योगी की इच्छा अस्वस्थता है। चिकित्सक उसको कुपथ्य नही दे सकता। वह उसका परम हित है। उसके आर्तनाद पर यह कभी ध्यान नही देगा।

रोगी विषय को ही हित मानता है। पर चिकित्सक निश्चय किये हुए हैं कि इसे कुपथ्य कभी नही देगे। और इस प्रकार इसका परम हित करेगे। वह कहता है घबराओ मत। मैं तुम्हारा परम हित करता हूँ। इसी भाँति कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। जिसमे अधिक वार्तालाप का अवसर न रहे।

माया बिबस भए मुनि मूढा। समुझी नहि हरि गिरा निगूढा॥
गवने तुरत तहाँ रिषि राई। जहाँ स्वयबर भूमि बनाई॥२॥

अर्थ माया विवश मुनि मूढ हो गये। हरि की स्पष्ट उक्ति को नही समझे। ऋषिराज तुरन्त वहाँ गये जहाँ कि स्वयम्वर भूमि रची हुई थी।

व्याख्या स्पष्ट कहने पर भी जिसकी समझ मे बात न आवे वह मूढ है। बडे मनन करनेवाले आज मायावश मूढ हो गये है। गूढ मर्मो के समझानेवाल नारद आज हरि की स्पष्टोक्ति समझने मे असमर्थ हैं। विरागियो के शिरोमणि बडी त्वरा मे है कि कैसे स्वयम्वर भूमि मे पहुँचूँ, कही ऐसा न हो कि मेरी अनुपस्थिति म ही जयमाल किसी दूसरे के गले मे पड जाय। मुनिजी समझे हुए है कि मुझे हरि का रूप मिल गया।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥३॥

अर्थ सज-धजकर राजा लोग अपने समाज के साथ अपने अपने आसन[1] पर बैठे थे। मुनि के मन म बडा हर्ष था कि मुझमें बडी सुन्दरता है। मुझे छोडकर दूसरे को भूलकर भी न वरेगी।

व्याख्या यहाँ कार्यारम्भ हो गया था। राजा लोग सज-धजकर बैठे थे। शोभा के लिए अथवा रक्षा के लिए समाज भी साथ म था। मुनिजी को दो मे एक भी नही। फिर भी बडा हर्ष मन मे है कि मुझे बनाव और समाज नही है तो क्या? अत्यन्त रूप तो मुझ मे ही है। थोडा बहुत रूप म उत्कर्षापकर्ष हो तो कन्या से चूक हो सकती है। मुझे तो हरि का रूप मिला हुआ है। उसके सामने ये राजा क्या है? वह मुझे छोडकर अन्य को भूलकर भी वर नही सकती।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहि सिरु नावा॥४॥

---

१ रङ्गभूमि मे राजाओ के लिए पहिले से ही आसन निश्चित था। कौन किसके दाहिने बैठेगा। कौन बाएँ बैठेगा। इस विषय की व्यवस्था साधारण व्यापार नहीं है। सो वहाँ सब व्यवस्था ठीक थी। राजा लोग अपने अपने आसन पर बैठ गये थे।

अर्थ : मुनि के हित के लिए कृपानिधान ने ऐसी कुरूपता दी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु वह चरित्र किसी ने न जान पाया। सबने नारद जानकर प्रणाम किया।

व्याख्या कन्या के देखने के लिए जो स्वरूप उन्हें मिला था उसका दर्शन किसी को न हुआ। वह स्वरूप तो उनके हित के लिए मिला था। यदि उसे दूसरे देखते तो उनकी बड़ी अप्रतिष्ठा होती। अत उसे कोई न देख पाया। न किसी ने यह बात लख पाई कि नारदजी अपने को विष्णुरूप देख रहे हैं। हमलोग नारद रूप देख रहे हैं। और कन्या कुरूप देख रही है। सबने उन्हें नारद जानकर प्रणाम किया। नारदजी समझते हैं कि सब मुझे विष्णु समझकर प्रणाम कर रहे हैं।

दो. रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ।
विप्र वेष देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ ॥१३३॥

अर्थ : वहाँ दो रुद्रगण थे। वे सब भेद जानते थे। विप्ररूप से सब कुछ देखते फिरते थे। वे बड़े कौतुकी थे।

व्याख्या नारदजी तो कौतुकी थे ही। पर रुद्रगण परम कौतुकी थे। उनको सब भेद मालूम था। वे भी अपने रूप में नहीं थे। अपने रूप में होते तो 'बिडरि चले वाहन सब भागे' वाली कहावत सार्थक होती। किसी का ध्यान आकर्षित न हो, और न कहीं रोक हो, इसलिए विप्रभेष में थे। वे उनके पीछे कैलाश से ही लगे हुए थे कि देखें इनकी क्या दशा होती है। परम कौतुकी होने से उन्हें आलस्य का नाम नहीं था। उस समाज भर में इस मर्म के जानकार केवल वे दोनों रुद्रगण ही थे।

जेहि समाज बैंठे मुनि जाई। हृदयरूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेसगन दोऊ। विप्रवेष गति लखै न कोऊ ॥१॥

अर्थ जिस समाज में मुनिजी जाकर बैठे मन में रूप का अहंकार अधिक हो रहा था। वहीं दोनों रुद्रगण भी बैठे थे। वे दोनों ब्राह्मण के वेष में थे। उनकी गति कोई लखता न था।

व्याख्या : पहिले जिसे काम के जीतने का अभिमान था आज उसी को अपने रूप के अधिक होने का अभिमान हो रहा है। मुनिजी किसी समाज में जाकर बैठ सकते हैं। नारद जानि सर्बाहिं सिर नावा। नारदजी अपने में विष्णुरूप की धारणा से सर्वत्र अपने को सम्मानार्ह समझते थे। जहाँ नारदजी बैठे वहीं जाकर दोनों रुद्रगण भी बैठे। वे दोनों ब्राह्मण वेष में थे। लोगों ने समझा कि नारदजी के शिष्य हैं। नारदजी ने समझा कि दर्शक हैं। ये कौन हैं ? और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ? इस बात का पता किसी को नहीं।

करहिं कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुदरताई ॥
रीझिहि राज कुँअरि छवि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेखी ॥२॥

अर्थ · नारदजी को सुना सुनाकर वे व्यङ्ग्य बोलते थे। हरि ने इन्हे अच्छी सुन्दरता दी है। यह छवि देखकर राजकुमारी लट्टू हो जायगी। और इन्हे विशेष हरि समझकर वरेगी।

व्याख्या · नारदजी को सुनाकर बोली कस रहे है। समझते है कि इनकी बुद्धि मारी गई है। ये समझ न सकगे। वे अपनी बडाई ही समझेगे। नीकि दीन्हि हरि सुदरताई। इत्यादि की ध्वनि यह है कि : हरि ने इन्हे अच्छा उल्लू बनाया। ये अपने को बडा सुन्दर मान रहे है। राजकुमारी इन्हे देखकर जल उठेगी समझेगी कि कोई विशेष बन्दर है। 'वरिहि' का अर्थ जल उठेगी और 'हरि' का अर्थ बन्दर भी है। इन शब्दो के प्रयोग से इस वचन को कूट कहा।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहि सभुगन अति सचुपाएँ ॥
जदपि सुनहि मुनि अटपट बानी। समुझि न परइ बुद्धिभ्रम सानी ॥३॥

अर्थ मुनिजी को मोह हो गया। उनका मन दूसरो के हाथ मे है और रुद्र-गण को आनन्द हो रहा है। वे हँस रहे हैं। यद्यपि मुनिजी उनकी अटपटी वाणी सुनते हैं। पर बुद्धि भ्रम से सनी हुई है। समझ नही पड रहा है।

व्याख्या मन के पराये हाथ मे पड जाने से फिर उसे कुछ सुधि नही रहती। यथा बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही। उनके बात समझने पर रुद्रगण हँसी उडा रहे है कि ये मुनि हैं। इनकी मननशीलता देखो।

मुनिजी की मननशीलता मे त्रुटि नही है। पर बुद्धि मे भ्रम हो गया है। बुद्धि विषयासक्ति और अभिमान से दूषित हो गई है। अत ध्वनि व्यजना समझ नही रहे हैं। *समझते है कि ये कोई जानकार है। प्रशसा कर रहे है।*

काहु न लखा सो चरित विसेखा। सो स्वरूप नृपकन्या देखा ॥
मरकट वदन भयकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही ॥४॥

अर्थ उस विशेष चरित्र को किसी ने नही लखा। उस स्वरूप को केवल राजकन्या ने देखा। बन्दर सा मुख और भयङ्कर देह। देखते ही उसके हृदय मे क्रोध हुआ।

व्याख्या एक नारद मुनि के आज तीन रूप दिखाई पड रहे है। सब लोग तो इन्हे नारद देख रहे है। पर वे अपने को विष्णुरूप देख रहे हैं। नृपकन्या मर्कटरूप देख रही है। इस बात को किसी ने *न लखा*। राजकन्या देखती है कि *यह बन्दर सा* मुख और भयङ्कर देहवाला कौन है ? इसे मुझे वरण करने की धृष्टता हुई। इस बात से उसके हृदय मे क्रोध हुआ। क्रोध करने का समय नही था। इससे चुप रह गई।

दो सखी सग लै कुँअरि तब, चलि जनु राज मराल।
देखत फिरै महीप सब, कर सरोज जयमाल ॥१३४॥

अर्थ तब सखियो को लेकर राजकुमारी राजहस की भाँति चली। सब राजाओ को देखती फिरती थी। उसके करकमल मे कमल की जयमाला थी।

व्याख्या : स्वयम्वर मे सखियो के साथ कन्या के आने की चाल है। यथा सग सखी सुन्दर सकल सादर चली लवाइ। राजमराल से उपमा देकर उसकी शोभा और सुन्दर गति की प्रशसा की। जयमाल हाथ मे लिये हुए राजाओ को देखती फिरती है, कोई आँख तले आता नही। किसे पहिनावे ? अथवा किसी व्यक्ति विशेष को देख रही है। पर वह दिखाई नही पड रहा है। इसलिए किसी को पहिनाती नही। जयमाल हाथ की ही शोभा बढा रही है।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न विलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाही। देखि दसा हरगन मुसुकाही ॥१॥

अर्थ जिस ओर नारद फूलकर बैठे थे। उस ओर उसने भूलकर भी नही देखा। बार बार मुनिजी उसकते और आकुल होते हैं। यह दशा देखकर हरगण मुसकरा रहे हैं।

व्याख्या रङ्गभूमि मे आते ही मुनिजी के अद्भुत रूप पर जो दृष्टि पडी तो उनकी धृष्टता पर राजकुमारी रुष्ट हो गई है। जानबूझकर उधर नही देखती। देखने मे अपना अनादर समझती है। और मुनिजी फूले बैठे है कि मुझे छोडकर वरती किसे है ? जब उसने उस ओर ही न देखा तब घबडाए। कही इधर देखना ही भूल गई तो अवश्य किसी दूसरे को वर लेगी। अत आगे खिसकने लगे कि किसी भाँति उसकी दृष्टि पड जाय। फिर भी उसने नही ध्यान दिया तो अकुलाने लगे कि अब क्या करें।

धरि नृप तनु तहँ गएउ कृपाला। कुँअरि हरखि मेलेउ जयमाला ॥
दुलहिन लै गे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भएउ निरासा ॥२॥

अर्थ कृपालु हरि वहाँ राजा का शरीर धारण करके गये। राजकुमारी ने प्रसन्न होकर जयमाल पिन्हाई। लक्ष्मीनिवास दुलहिन लेकर चले गये। सारा राज समाज निराश हो गया।

व्याख्या कृपालु हैं, कृपा करके ठीक समय पर पहुँच गये। द्विभुजमूर्त्ति होकर गये। जिसमे किसी को देवबुद्धि न हो और नारद भी पहिचान न पावें। कुँअरि इन्ही को ढूँढती थी। इसलिए प्रसन्न हो उठी और जयमाला पहिना दी। लक्ष्मीनिवास है। दुलहिन लेकर चले भी गये। और किसी का किया कुछ न हुआ। उनके प्रभाव से मन दब गये। इससे राजसमाज निराश हो गया। न जाने वह कौन था जो वर ले गया। राजा तो सब जाने हुए हैं। सबके लिए पहिले से आसन निश्चित है। इसके लिए कोई आसन भी नही था। खडे खडे आया और काम करके चला गया। युद्ध का भी अवसर नही है। अत पूरी निराशा हुई।

मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ॥
तब हरगन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ॥३॥

अर्थ मुनिजी अति विकल थे। मोह ने उनकी बुद्धि नष्ट कर दी थी। मानो

गाँठ से छूटकर मणि वही गिर गई। तब महादेव के गणो ने मुसकराकर कहा कि दर्पण मे जाकर अपना मुख देख लो।

व्याख्या . पूरा राजसमाज विकल हो उठा। पर मुनिजी अत्यन्त विकल हो उठे। क्योकि उन्हे अपनी सफलता पर पूरी आस्था थी। गाँठ से छूटकर मणि के गिर जाने से अकिंचन को जैसी विकलता होती है वैसी विकलता हुई। हरगणो से अब रहा न गया। बोल बैठे 'दर्पण मे अपना मुँह देख लो।' भाव यह कि तुम्हारा मुँह क्या राजकन्या के वरने योग्य है?

अस कहि दोउ भागे भय भारी। वदन दीख मुनि वारि निहारी॥
वेष विलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढा॥४॥

अर्थ · ऐसा कहकर दोनो अत्यन्त डरकर भागे। मुनि ने पानी मे झाँककर मुँह देखा। वेष देखकर अत्यन्त क्रोध बढा। उनको बडा कठोर शाप दिया।

व्याख्या · कह तो दिया। पर पीछे से रुद्रगण अत्यन्त डरे। सोचने लगे कि हमारा सामना पडते ही उन्हे हमलोगो का दिल्लगी उडाना याद पड जायगा। तब शाप देंगे। सामना न पडने पर कदाचित् बच जायँ। जल मे मुख देखना मना है। फिर भी आतुर होकर जल में ही देखा। भगवान् की लीला अत्यन्त अद्भुत है। जल मे उन्हें वह रूप दिखाई पडा जो नृप कन्या ने देखा था। तब तो मुनिजी को बडा क्रोध हुआ। और पहिले उन रुद्रगणो को बडा कठोर शाप दिया।

दो. होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसे मुनि कोउ॥१३५॥

अर्थ तुम दोनो कपटी और पापी राक्षस होओ। मेरी हँसी की, उसका फल ले लो। अब फिर किसी मुनि की हँसी न करना।

व्याख्या ब्राह्मण के पद से इतना घोर पतन हो कि निशाचर हो जाओ। तुम ब्राह्मण होने के योग्य नही हो। तुम निशाचर होने योग्य हो। तुमको मेरी दुर्दशा पर तनिक दया न आई। उलटा हँसते थे। अत कर्म का फल मै दूँगा जिसमे मुनियो पर हँसने की आदत छूट जाय।

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय सतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माही। सपदि चले कमलापति पाही॥१॥

अर्थ फिर जल मे देखा, तो अपना रूप मिल गया था। फिर भी हृदय मे सन्तोष न हुआ, ओठ फडक रहे थे और मन मे क्रोध था। जल्दी जल्दी रमापति के पास चले।

व्याख्या मैंने हरि से उनका रूप माँगा था। सो उन्होने हमारा रूप भी बिगाडकर वन्दर का रूप कर दिया। अब मुझे इस रूप मे जीना होगा। यह समझ क्रोध बहुत बढा। उसी क्रोध मे रुद्रगण को शाप भी दे डाला। मन मे चिन्ता उठी

क्या मेरा सदा के लिए यह रूप हो गया ? क्या मुझे अपना रूप वापस मिलेगा ? अव तो जो वात हमारी विगडनी थी वह हरि विगाड ही चुके। अव तो हमारा रूप वापस दे देना चाहता था। अत फिर जल मे देखा तो मालूम हुआ कि उनका रूप वापस मिल गया। सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित । इस न्याय से मुनिजी को सन्तोष होना चाहता था कि किसी भाँति बन्दर के मुख से तो प्राण बचा पर सन्तोष हुआ नही। राजकुमारो के न मिलने की चोट किसी तरह जाती नही। अत शीघ्रता से कमलापति के पास चल। क्रोध की मात्रा म कमी भी नहीं हुई। अधर का फडकना क्रोध का अनुभाव है।

देहौ साप कि मरिहौ जाई। जगत मोरि उपहास कराई॥
बीचहि पथ मिले दनुजारी। सग रमा सोइ राजकुमारी॥२॥

जाकर शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। जगत् मे मेरी हँसी इन्होने करायी। मार्ग मे ही असुरो के शत्रु मिले और साथ मे लक्ष्मी तथा वही राजकुमारी थी।

व्याख्या कहा सुनी करके शाप दूँगा। यदि शाप न लगा तो प्राण दे दूँगा। सभावित कहूँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।

दनुजारी कहने का भाव यह कि रुद्रगण के निशाचर होने का शाप हो चुका है। अत उनके उद्धार के लिए अवतार ग्रहण करना है। रुद्रगण के मारने मे समर्थ कौन है ? अत मुनिजी की पहिली इच्छा को सार्थक करने के लिए बीच रास्ते मे ही मिल। क्रोध बढाने के लिए रमा और वही राजकुमारी साथ लिये हैं। दोनो को साथ लेने का यह भाव कि नारदजी जान जायँ कि उनका स्वरूप ही नही बिगाडा, बल्कि वेष बदलकर राजकन्या को भी वही ल गये। यह भी नही कि इन्हे स्त्री का घाटा हो, लक्ष्मीजी साथ है ही।

बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं॥
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा॥३॥

अर्थ देवताओ के स्वामी ने मीठे वचन से कहा मुनिजी। व्याकुल पुरुषो की भाँति कहाँ चल ? वचन सुनते ही बडा क्रोध उत्पन्न हुआ। मायावश होने से ज्ञान नहीं रह गया।

व्याख्या मुनि अपनी धुन मे चले जा रहे थे तो आपने स्वय वात छेड दी। सुरसाई हैं जानते हैं कि रुद्रगण निसाचर होकर सुरो को दु ख देंगे। उनकी रक्षा के लिए स्वामी स्वय शाप पाने का उपाय कर रहे हैं। बिकल की नाईं कहने का यह भाव है कि आप मुनि हैं विकल तो हो नही सकते। यथा ब्रह्मचर्यव्रत रत मति धीरा। तुम्हहि कि करै मनो भव पीरा। यह विकलता का आभास होगा। अत बिकल की नाईं कहते हैं। पहिले कोप मन म था। अव उमड पडा। इसके पहिले ज्ञान विराग मन म रहा। यथा सुनि मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान विराग हृदय नहि जाके। अव मायावश हो जाने से ज्ञान नही रह गया। परम हितकारी, परम गुरु, परमेश्वर पर आक्षेप करते हैं।

पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरषा कपट बिसेषी ॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु। सुरन्ह प्रेरि बिषपान कराएहु ॥४॥

अर्थ : तुम दूसरो की सम्पदा नही देख सकते। तुम्हे डाह और कपट अधिक है। सिन्धु मथने के समय महादेव को पागल तुमने बनाया। देवताओ को प्रेरणा करके उन्हे विष तुमने पिलवा दिया।

व्याख्या तुम्हें सुन्दर स्त्री भी है। तुम अमर भी हो। अजेय भी हो। चराचर तुम्हारी सेवा भी करते है। यह सब सम्पदा तुम्हे प्राप्त है। पर ऐसी ही सम्पदा हमे भी प्राप्त हो जाय। यह तुम नही देख सकते। डाह से तुमने मेरे साथ कपट किया। डाह तो अन्य देवताओ मे भी है। पर तुममे अधिक है।

तुम्हे रुद्र से डर रहा कि ये मुझे अपने मन का नही करने देंगे तो उन्हे विष दिलवा दिया। प्राण नहीं गया, पर पागल तो हो गये। यह सब तुम्हारी प्रेरणा से हुआ।

दो० असुर[1] सुरा बिष[2] संकरहिं, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट ब्यवहारु ॥१३६॥

अर्थ : असुरो के लिए शराब, शङ्कर के लिए विष और अपने लिए लक्ष्मी और कौस्तुभ। तुम बडे स्वार्थसाधक और कुटिल हो। तुम्हारा सदा कुटिल व्यवहार चलता है।

व्याख्या दूसरा भय असुरो से था। उन्हे सुरा दे दी। जब दोनो पागल हो गये तब रमा और कौस्तुभ मणि को स्वय ले लिया। स्त्री और धन के पीछे तुम्हे विष दिलवाना, मद्य पिलवाना कोई बडी बात नही है। तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए। स्वभाव से ही कुटिल हो। अत सदा कपट व्यवहार करते हो। मुझसे भी कपट करके स्त्री तथा तदनुगामिनी सम्पदा हरण कर ली।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावै मनहि करहु तुम्ह सोई ॥
भलेहि मंद मंदहि भल करहू। बिसमउ हरख न हिअँ कछु धरहू ॥१॥

अर्थ परम स्वतन्त्र हो। सिर पर कोई है नही। जो जी चाहता है वही करते हो। भले का बुरा और बुरे का भला करते हो। तुम्हारे हृदय मे न विस्मय होता है न हर्ष होता है।

---

१ अथासीत् वारुणी देवी कन्या कमललोचना। असुरा जगृहुस्ता वै हरेरनुमतन ते।
तब कमल लोचना कन्यावारुणी उत्पन्न हुई। उसे हरि की अनुमति से असुरो ने ग्रहण किया। भागवत ॥

२ प्रीते हरौ भगवति प्रीयेह सचराचर.। तस्मादिद गरं भुञ्जे प्रजाना स्वस्तिरस्तु मे।
भगवान् हरि के प्रसन्न होने से मैं चराचर को प्रसन्न करता हूँ। इसलिए मैं यह विष खाता हूँ। मेरी प्रजाओ का कल्याण हो। भागवत।

व्याख्या . परवस जीव स्ववस भगवंता। तुम्हारे सिर पर यदि कोई होता तो तुम इस तरह अन्याय न कर सकते। तुम्हे उचित अनुचित का विचार करना पड़ता। स्वतन्त्र हो। उचित अच्छा लगा तो वही किया। अनुचित अच्छा लगा तो वही कर डाला।

मैं गुण गाता फिरता हूँ तो मुझे बन्दर का रूप दे दिया। और वे राक्षसी वृत्तिवाले जो मेरी दुर्दशा पर आनन्द मनाते थे उन्हे ब्राह्मण का शरीर दे दिया। मन्द करने का तुम्हें विस्मय नही। भला करने का हर्ष नही।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥
कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहू साधा॥२॥

अर्थ : सबको ठग ठगकर ढीठ हो गये हो। अति अशङ्क होने से तुम्हारे मन मे सदा उत्साह रहता है। शुभाशुभ कर्म तुम्हे बाधा नही करता। अबतक तुमको किसी ने ठीक नही किया।

व्याख्या : कोई ठगाई से नही बचा। धर्म करते बलि को ठग लिया। ठग को तो दण्ड का डर रहता है। अत. वह सशङ्क रहता है। तुम सदा अशङ्क हो। क्योंकि तुम्हे दण्ड देनेवाला कोई नही। इसलिए सदा उछाह रहता है।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा॥३॥

अर्थ : अब अच्छे घर बयना दिया है। अपने किये का फल पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है वही शरीर धारण करो। यह मेरा शाप है।

व्याख्या : अच्छे घर बायन देने से उससे भी अच्छा बायन बदले में मिलता है। आज तक तुमने दरिद्रो के घर बायन दिया था। इससे बदले मे बायन नही मिला। इसबार मुझे बायन दिया है। इसके बदले मे बायन मिलेगा। अपने कर्म का फल पाओगे।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होय दुखारी॥४॥

अर्थ : तुमने मेरी आकृति बन्दर की कर दी। तो बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने मेरा बड़ा अपकार किया। तुम भी स्त्री के विरह मे दुःखी होओगे।

व्याख्या : तुम्हारी ऐसी असहायावस्था हो जायगी कि बन्दरो के पास जाकर सहायता चाहोगे। बन्दर तुम्हे सहायता देंगे। तब तुम्हारा संकट से उद्धार होगा। यथा :

एष दत्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यश.।
लोकनाथ पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति॥

सीता यस्य स्नुषाचासीच्छरण्यो धर्मवत्सल ।
तस्य पुत्र शरण्यश्च सुग्रीव शरण गत ॥
यस्य प्रसादे सतत प्रसीदेयुरिमा प्रजा ।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाक्षते ॥
येन सर्वगुणोपेता पृथिव्या सर्वपार्थिवा ।
मानिता सतत राजा सदा दशरथेन वै ॥
तस्याय पूर्वज पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुत ।
सुग्रीव वानरेन्द्र तु राम शरणमागत ॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरण गते ।
कर्तुमर्हति सुग्रीव प्रसाद सह यूथपै ॥

सीतहरण के बाद जब रामजी शवरी के आश्रम से पंपासर होते ऋष्यमूक पहुँचे वहाँ हनुमानजी से भेट हुई। उस समय लक्ष्मणजी हनुमान् जी से कहते हैं इन्होने धन दान देकर अनुत्तम यश प्राप्त किया है। पहिले लोकनाथ रह चुके हैं। सुग्रीव को नाथ बनाना चाहते है। जिसकी पुत्रवधू सीता थी, जो शरण्य और धर्म-वत्सल थे। उस शरण्य के पुत्र सुग्रीव की शरण म आये हैं। जिसके प्रसाद से सदा प्रजा सुखी रहती थी वह रामचन्द्र वानरेन्द्र की कृपा चाहते है। जिस महाराज दशरथ ने सर्वगुणोपेत पृथ्वी के सब राजाओ को मान दिया था उनके ज्येष्ठपुत्र जिनकी ख्याति तीना लोका म है वही राम वानरेन्द्र सुगीव की शरण मे आये है। ऐसे शोकाभिभत और शोकार्त्त राम के शरण आने पर सुग्रीव को चाहिए कि सेनापतियो के साथ उनपर कृपा करें। वा रा कि । इस भाँति शाप का साफल्य दिखाया। तुम्हारे कारण मुझ स्त्रीविरह हुआ। तुम भी स्त्रीविरह म ऐसे ही दु खी होगे।

दो श्राप सीस धरि हरखि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि ॥१३७॥

अर्थ प्रभु ने शाप को सिरपर धारण करके हृदय म हर्षित होकर बहुत विनती की और कृपानिधि ने अपनी माया की प्रबलता खीच ली।

व्याख्या शाप को सिरपर चढ़ाया। कहा कि इस शाप से मैं प्रसन्न हूँ। पर आप अप्रसन्न न रहे। इसलिए बहुत विनती की। दिखला दिया कि वस्तुत विस्मय हर्ष नही है। दण्ड क्रिया नही करता प्रत्युत हर्ष का कारण होता है। माया नही खीची उसकी प्रबलता खीच ली। पूरी माया खीच लने से मोक्ष हो जाता। लीला ही समाप्त हो जाती।

श्रीकृष्णावतार म जैसी स्तुति नारद की भगवान् ने की है। उससे इस विनती का भी कुछ आभास मिल जायगा। अत उस स्तुति का भी यहाँ उल्लख किया जाता है

यह स्तुति स्कन्द पुराण मे इस प्रकार है

अह हि सर्वदा स्तौमि नारद देवदर्शनम् ।
महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेण शृणु तन्नृप ॥१॥
उत्सङ्गाद् ब्रह्मणो जातो यस्याहन्ता न विद्यते ।
अगुप्तश्रुतिचारित्र नारद त नमाम्यहम् ॥२॥
अरति क्रोधचापल्ये भय नैतानि यस्य च ।
अदीर्घसूत्र त धीर नारद प्रणमाम्यहम् ॥३॥
कामाद्वा यदि वा लोभाद् वाच यो नान्यथा वदेत् ।
उपास्य सर्वजन्तूना नारद त नमाम्यहम् ॥४॥
अध्यात्मगतितत्त्वज्ञ ज्ञानशक्ति जितेन्द्रियम् ।
ऋजु यथार्थवक्तार नारद त नमाम्यहम् ॥५॥
तेजसा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च ।
जन्मना तपसा वृद्ध नारद प्रणमाम्यहम् ॥६॥
सुखशील सुसवेष सुभोज भास्वर शुचिम् ।
सुचक्षुप सुवाक्य च नारद प्रणमाम्यहम् ॥७॥
कल्याण कुरुते वाढ पाप यस्मिन्न विद्यते ।
न प्रीयते परार्थेन योऽसौ त नौमि नारदम् ॥८॥
वेदस्मृतिपुराणोक्त धर्म यो नित्यमास्थित ।
प्रियाप्रियविमुक्त त नारद प्रणमाम्यहम् ॥९॥
अशनादिष्वलिप्त च पण्डित नालस द्विजम् ।
वहुश्रुत चित्रकथ नारद प्रणमाम्यहम् ॥१०॥
नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वाऽस्य विभ्रम ।
येनैते नाशिता दोपा नारद त नमाम्यहम् ॥११॥
वीतसम्मोहदोपो यो दृढभक्तिश्च श्रेयसि ।
सुनय सत्रप त च नारद प्रणमाम्यहम् ॥१२॥
असक्त सर्वसङ्गेपु य सक्तात्मेव लक्ष्यते ।
अदीर्घसंशयो वाग्मी नारद प्रणमाम्यहम् ॥१३॥
नासूयत्यागम किञ्चित् तप कृत्येन जीवति ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा तमह नौमि नारदम् ॥१४॥
कृतश्रम कृतप्रज्ञ न च तृप्त समाधित ।
नित्ययत्नाप्रमत्त च नारद त नमाम्यहम् ॥१५॥
न हृष्यत्यर्थलाभेन योऽलाभेन व्यथत्यपि ।
स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तमह नौमि नारदम् ॥१६॥
त सर्वगुणसम्पन्न दक्ष शुचिमकातरम् ।
कालज्ञ च नयज्ञ च शरण यामि नारदम् ॥१७॥

इम स्तव नारदस्य नित्य राजन् जपाम्यहम् ।
तेन मे परमा प्रीति करोति मुनिसत्तम ॥१८॥
अन्योऽपि य शुचिर्भूत्वा नित्यमेता स्तुति जपेत् ।
अचिरात्तस्य देवर्षि प्रसाद कुरुते परम् ॥१९॥
एतान् गुणान्नारदस्य त्वमप्याकर्ण्य पार्थिव ।
जप नित्य स्तव पुण्य प्रीतस्ते भविता मुनि ॥२०॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उग्रसेन से कह रहे हैं। मैं देवराज इन्द्र द्वारा किये गये स्तोत्र से दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजी की सदा स्तुति करता हूँ। वह स्तोत्र श्रवण कीजिये। जो ब्रह्माजी की गोद से प्रकट हुए हैं। जिनके मन में अहङ्कार नहीं है। जिनका शास्त्रज्ञान और चरित्र किसी से छिपा नहीं है। उन देवर्षि नारद को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमे उद्वेग, क्रोध, चपलता और भय का सर्वथा अभाव है। जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री किसी काम मे अधिक विलम्ब करनेवाले नहीं हैं। उन नारदजी को मै प्रणाम करता हूँ। जो कामना वश अथवा लोभ से झूठी बात मुँह से नहीं निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते है। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अध्यात्मगति के तत्त्व को जाननेवाले ज्ञानशक्ति सम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं। जिनमे सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहनेवाले है। उन नारदजी को मै प्रणाम करता हूँ। जो तेज, यश, बुद्धि, नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियो से बढ़े हुए हैं उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका स्वभाव सुखमय, वेष सुन्दर तथा भोजन उत्तम है। जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न तथा सुन्दर वचन बोलनेवाले हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं। जिनमे पाप का लेश भी नहीं है तथा जो परोपकार करने से कभी अघाते नहीं हैं। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सदा वेद, स्मृति और पुराणों मे बताये हुए धर्म का आश्रय लेते हैं तथा प्रिय और अप्रिय से रहित है। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो खानपान आदि भोगो मे कभी लिप्त नहीं होते हैं। जो पण्डित, आलस्य रहित तथा बहुश्रुत ब्राह्मण हैं। जिनके मुख से अद्भुत बाते, विचित्र कथाएँ सुनने को मिलती है। उन नारदजी को मै प्रणाम करता हूँ। जिन्हे अर्थ धन के लोभ, काम अथवा क्रोध के कारण भी पहले कभी भ्रम नहीं हुआ है। जिन्होने इन काम क्रोध लोभ तीनो दोषो का नाश कर दिया है। उन नारद जी को मै प्रणाम करता हूँ। जिनके अन्त करण से सम्मोह रूप दोष दूर हो गया है। जो कल्याणमय भगवान् और भागवत धर्म मे दृढभक्ति रखते है। जिनकी नीति बहुत उत्तम है तथा जो सङ्कोची स्वभाव के हैं। उन नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त सङ्गो से अनासक्त है तथापि सबमे आसक्त हुए से दिखाई देते हैं। मन मे किसी सशय के लिए स्थान नहीं है। जो बड़े अच्छे वक्ता है। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो किसी भी शास्त्र मे दोषदृष्टि नहीं करते। तपस्या का अनुष्ठान ही जिनका जीवन है। जिनका समय कभी भगवच्चिन्तन

विना व्यर्थ नही जाता और जो अपने मन को सदा वश मे रखते हैं उन श्री नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होने तप के लिए श्रम किया है। जिनकी वुद्धि पवित्र एव वश मे है। जो समाधि से कभी तृप्त नही होते। अपने प्रयत्न मे सदा सावधान रहनेवाले उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अर्थलाभ होने से हर्ष नही मानते और लाभ न होने पर मन मे क्लेश का अनुभव नही करते। जिनकी वुद्धि स्थिर तथा आत्मा अनासक्त है। उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्वगुण सम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित कालज्ञ हैं उन देवर्षि नारद को मैं भजता हूँ। नारद जी के इस स्तोत्र का मैं नित्य जप करता हूँ। इससे वे मुनिश्रेष्ठ मुझ पर अधिक प्रेम रखते हैं। दूसरा कोई भी यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुति का पाठ करता है तो देवर्षि नारद वहुत शीघ्र उसपर अपना अतिशय कृपाप्रसाद प्रकट करते हैं। राजन् ! आप भी नारद जी के इन गुणो को सुनकर प्रतिदिन इस स्तोत्र का जप करें। इससे वे मुनि आप पर वहुत प्रसन्न होंगे।

जव हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥
तव मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥१॥

अर्थ जव हरि ने माया दूर हटा दी तव वहाँ न लक्ष्मी रह गई न राजकुमारी रह गई। फिर तो मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर प्रभु का चरण पकड लिया। और कहा कि हे प्रणत के दु ख हरनेवाले ! मेरी रक्षा करो।

व्याख्या . वहाँ रमा और राजकुमारी पहिले भी नही थीं। पर माया के वल से मुनिजी उनको प्रभु के साथ देखते थे। अव मुनिजी के समझ मे आया कि यह सव माया थी। मैंने क्या किया ? भगवान् को दुर्वचन कहा शाप दिया। अत अति डर गये। चरण पकड लिया। 'पाहि पाहि' चिल्लाने लगे।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीन दयाला ॥
मैं दुर्वचन कहे वहु तेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥२॥

अर्थ . हे कृपाल मेरा शाप झूठा पड जाय। दीनदयाल ने कहा यह मेरी इच्छा है। मुनि ने कहा कि मैंने वहुत से दुर्वचन आपको कहे। मेरे पाप कैसे मिटेंगे ?

व्याख्या : मुनिजी चरण पकडकर यही विनती करते हैं कि कृपा करके मेरे शाप को मिथ्या कर दीजिये। दीनदयाल कहते हैं कि वह शाप नही था मेरी इच्छा थी। सत्य सकल्प मिथ्या कैसे होगा ? भला शाप तो आपकी इच्छा थी, पर मैंने दुर्वचन भी तो वहुत से कहे हैं। इस पाप से मेरी रक्षा कैसे हागी ?

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदय तुरत विश्रामा ॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे ॥३॥

अर्थ : जाकर शङ्कर के शत नाम का जप करो। तुरन्त ही हृदय मे शान्ति होगी। शिव के समान मुझे कोई प्रिय नही है। ऐसा विश्वास भूलकर भी नही छोडना।

व्याख्या मुनिजी की शान्ति नष्ट हो गई। माया गई तो दुर्वचन का पश्चात्ताप रह गया। अत विश्राम का उपाय कहते है। अशान्ति शङ्करशतनाम जप से दूर होगी। शङ्कर शतनाम स्तोत्र निम्नलिखित है

अथ श्रीशिवाष्टोत्तरशतनाममहामन्त्रस्य आदिनारायणऋषिरनुष्टुप्छन्द श्रीसदाशिवो देवता श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोग ।

वज्रदंष्ट्र त्रिनयन कालकण्ठमरिन्दमम् ।
सहस्रकरमत्युग्र वन्दे देवमुमापतिम् ॥
ॐ शिवो महेश्वर शम्भु पिनाकी शशिशेखर ।
वामदेवो विरूपाक्ष कपर्दी नीललोहित ॥
शङ्कर शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभ ।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथ श्रीकण्ठो भक्तवत्सल ॥
भव शर्वस्त्रिलोकेश शितिकण्ठ शिवाप्रिय ।
उग्र कपाली कामारिरन्धकासुरसूदन ॥
गङ्गाधरो ललाटाक्ष कालकाल कृपानिधि ।
भीम परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधर ॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तक ।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रह ॥
सामप्रिय स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वर ।
सर्वज्ञ परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचन ॥
हविर्यज्ञमय सोम पञ्चवक्त्र सदाशिव ।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथ प्रजापति ॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघ ।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रिय ॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विक शुद्धविग्रह ।
शाश्वत खण्डपरशुरज पाशविमोचक ॥
कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिप ।
मृत्युञ्जय सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरु ॥
व्योमकेशो महासेनो जनकश्चारुविक्रम ।
रुद्रो भूतपति स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बर ॥
मृड पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्यय प्रभु ।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हर ॥
भगनेत्रभिदव्यक्त सहस्राक्ष सहस्रपात् ।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारक परमेश्वर ॥
इमानि दिव्यनामानि जप्यन्ते सर्वदा मया ।
नामकल्पलतेय मे सर्वाभीष्टप्रदायिनी ॥

नामान्येतानि सुभगे शिवदानि न सशय ।
वेद सर्वस्वभूतानि नामान्येतानि वस्तुत ॥
एतानि यानि नामानि तानि सर्वार्थदान्यत ।
जप्यन्ते सादर नित्य मया नियमपूर्वकम् ॥
वेदेपु शिवनामानि श्रेष्ठान्यघहराणि च ।
सन्त्यनन्तानि सुभगे वेदेपु विविधेप्वपि ॥
तेभ्यो नामानि सगृह्य कुमाराय महेश्वर ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नानुपदिशत्पुरा ॥

इति श्री गौरीनारायणसम्वादे शिवाष्टोत्तरशतनाम सम्पूर्णम् ।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहि न काऊ । जो अपराध भक्त कर करई । राम रोष पावक सो जरई । तुमने शिवजी के हितोपदेश का अनादर किया, उनकी स्पर्धा की, उसका फल यह हुआ है । यदि तुम्हे प्रतीति होती कि शिव के समान मुझे कोई प्यारा नही तो उनके हितोपदेश का अवहेलन न करते । और तुम्हारा मन भक्ति छोडकर स्त्री का दास न बनता ।

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया नियराई ॥४॥

अर्थ जिसपर पुरारि कृपा नही करते वह हे मुनि ! मेरी भक्ति नही पाता । ऐसा मनम धारण करके पृथ्वी पर विचरो । अब तुम्हारे निकट माया नही आवेगी ।

व्याख्या मेरी भक्ति शिवजी की कृपा पर अवलम्बित है । ऐसा मन म रखकर पृथ्वी पर विचारो । डरो न कि कही फिर माया म फँस जायेंगे । शिक्षा यथेष्ट दे दी गई । तब वर दिया कि अब तुम्हारे निकट माया नहीं आयेगी । परन्तु यह न भूलना कि शिवजी से अधिक प्रिय मुझ कोई नही है ।

दो बहु विधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भये अतरध्यान ।
सत्य लोक नारद चले, करत राम गुनगान ॥१३८॥

अर्थ प्रभु बहुत प्रकार से मुनि को समझा बुझाकर तब अन्तर्धान हो गये । नारदजी रामगुण का गान करते सत्यलोक चल ।

व्याख्या प्रभु है, सेवक पर ममता है और प्रीति है इसलिए अनेक विधि से समझाया । यथा

मेरे ही बलते विजय सदा भक्त को होय ।
पै शिवकृपाकटाक्ष बिनु भक्त होय नहिं कोय ॥
पाइ मोर बल जो करै सकर ते अभिमान ।
अवसि तासु छीजै भगति होय महाहित हान ॥
याते तव अभिमान को दीन्ह्यो मूल उखारि ।
निज कौतुक के हेतु ही शाप लीन्ह सिरधारि ॥

हानि ग्लानि जिय जनि करी मानि मोर उपदेस।
प्रीति किये शिवपदकमल नहिं क्लेस को लेस॥

इस भाँति समझाकर अन्तर्धान हो गये। गुणगान बन्द था फिर आरम्भ हो गया। गुणगान करते सत्यलोक को चले। सत्यलोक ब्रह्मलोक के ही अन्तर्गत है। परन्तु सबसे ऊँचा है जहाँ ब्रह्मदेव रहते हैं। पिताजी को सब समाचार सुनाने नारदजी वहाँ चले।

हरगन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेखी॥
अति सभीत नारद पहँ आये। गहि पद आरत बचन सुनाये॥१॥

अर्थ हरगणो ने मुनिजी को रास्ते मे जाते देखा। लख लिया कि वे विगत-मोह हैं और बहुत हर्षित हैं। बहुत डरे हुए नारदजी के पास आये और उनके चरण पकडकर आर्त वचन कहे।

व्याख्या हरगण वहाँ से तो भागे। परन्तु शाप का प्रभाव उनपर पडने लगा। हरगण हैं जान गये कि नारदजी ने शाप दे दिया। अत अनुग्रह कराने का समय देख रहे हैं। नारदजी ने मोहवश क्रुद्ध होकर शाप दिया था। हरगणो ने देखा कि इस समय विगतमोह भी हैं और हर्षित भी हैं। वरदान पाया है कि अब न तुम्हहिं माया नियराई। अत अपराधक्षमापन का यही उपयुक्त समय है।

'अति सभीत' मनसा। 'गहि पद' कर्मणा। 'आरत बचन सुनाये' वाचा। अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा नारदजी के शरण गये।

हरगन हम न बिप्र मुनिराया। बड अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीन दयाला॥२॥

अर्थ हे मुनिराज! हम हरगण हैं, विप्र नहीं हैं। बडा अपराध किया है, फल भी पाया। हे कृपालु अब शापानुग्रह करिये। दीनदयाल नारदजी बोले

व्याख्या शरण आये हैं। अत रुद्रगण छल कपट का त्याग करते हैं। कहे देते है कि हम हरगण है, ब्राह्मण नही हैं। अर्थात् हमने कपट से ब्राह्मण वेष धारण किया था। बडा अपराध किया। आप महात्मा हैं, साधु हैं। आपकी हमलोगो ने हँसी उडाई। उसका फल पाया। रोने की बारी आगई। हरगण पद प्राप्त करके राक्षस हुआ चाहते हैं। पतन के लक्षणो का अनुभव हो रहा है।

हम जानते है कि शाप नही हट सकता। जिसके शाप को भगवान् सिरपर धारण करते हैं उसका शाप हटाने के लिए सोचा भी नही जा सकता। परन्तु शापानुग्रह हो सकता है। अत जो सम्भव हो वही हमारे लिए कीजिये। नारदजी दीनदयाल हैं। उन्हे उनकी दीनता पर दया आगई।

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुजबल बिस्व जितब तुम जहिआ। धरिहहिं बिस्नु मनुज तनु तहिआ॥३॥

तुम दोना जाकर राक्षस होओ। तुमको बडा ऐश्वर्य, तेज और बल हो। तुम

जिस दिन अपनी भुजाओ के बल से ससार को जीत लोगे उसी दिन विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेगे।

व्याख्या शापानुसार राक्षस तुम लोगो को होना होगा। अब अनुग्रह यह है कि राक्षसयोनि से ही तुम्हारे दोनो लोक बनेंगे। इस लोक मे तुम्हे बडा ऐश्वर्य, तेज और बल होगा। तुम लोग अपनी भुजा के बल से ससार को जीतोगे। यथा भुजबल विस्व वस्य करि, राखेसि कोउ न स्वतन्त्र। मडलीक मनि रावन राज्य करै निज मत्र। परलोक भी बनेगा। जिस दिन ससार जीत लोगे उसी दिन विष्णु नर रूप मे अवतीर्ण होगे। इस कल्प मे रावण ने बहुत दिन तक राज्य नही किया।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि ससारा ॥
चले जुगुल मुनिपद सिरु नाई। भये निसाचर कालहि पाई ॥४॥

अर्थ तुम्हारी मृत्यु विष्णु के हाथ से युद्ध मे होगी। मुक्त हो जाओगे। फिर ससार मे आना न होगा। दोनो मुनि के चरणो पर सिर नवाकर चले और काल पाकर राक्षस हुए।

व्याख्या रणाङ्गण मे सन्मुखमरण का बडा माहात्म्य है। यथा द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हत । अर्थ ये दो पुरुष इस लोक मे सूर्यमण्डल भेदनेवाले है एक तो योगी परिव्राजक और दूसरा रण म सन्मुख मरनेवाला। उसमे भी हरि के हाथ से मरण होगा। तुम लोगो की निर्वाण मुक्ति होगी। जय विजय की भाँति तीन जन्म म नही।

दोनो कृतार्थ होकर चले, राक्षस होकर शापानुग्रह के अनुकूल ग्रहस्थिति म उनका जन्म हुआ।

दो एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रजन सज्जन सुखद, हरि भजन भुवि भार ॥१३९॥

अर्थ एक कल्प मे इस कारण प्रभु ने मनुष्य का अवतार धारण किया। हरि देवताओ को प्रसन्न करनेवाले सज्जनो को सुख देनेवाले तथा पृथ्वी का भार हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या तीसरे कल्प की कथा है। जिसम भगवान् क्षीरशायी का रामावतार हुआ। यह नारदजी के शाप के कारण हुआ था। अत मार साप करि अगीकारा। सहत राम नाना दु ख भारा। यह विचार करके नारदजी के अरण्य काण्ड के अन्त मे मिलन की कथा इसी अवतार की है।

अवतार के तीन कारण देते हैं १ सुररञ्जन २ सज्जन सुखद ३ और भजन भुविभार भी हरि है।

एहि विधि जनम करम हरि केरे। सुदर सुखद बिचित्र घनेरे ॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नानाविध करही ॥१॥

अर्थ इस विधि से हरि के जन्म और कर्म सुन्दर सुख देनेवाले और बहुत विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प मे प्रभु अवतार लेते हैं। और अनेक प्रकार की सुन्दर लीलाएँ करते हैं।

व्याख्या शापादि यद्यपि देखने मे अवतार के कारण है। पर वस्तुत उनकी इच्छा ही कारण है। शापादि भी उनकी इच्छा से ही होते है। यथा मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला। तथा निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि। इसीलिए प्रभु के जन्म कर्म दिव्य कहे जाते हैं। वे सुन्दर, सुखद और बडे विचित्र होते है।

प्रतिकल्प भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षस। एव रामसहस्राणि रावणाना सहस्रश। भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते। अ ६१ ३९ ४१। कालिकापुराण मे कहा है कि प्रत्येक कल्प मे राम होते हैं और रावण होता है। इस भाँति हजारो राम और हजारो रावण हो गये और होनेवाले है। उसी भाँति देवी भी प्रवृत्त होती हैं। दूसरे अवतार तो कल्प मे कई बार होते है। पर रामावतार एक कल्प मे एक ही बार होता है और प्रत्येक कल्प के चरित्रो म विधिभेद रहता है। चरित्र का ढाँचा प्राय एक सा होता है।

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबध बनाई ॥
बिबिध प्रसग अनूप बखाने। करहि न सुनि आचरजु सयाने ॥२॥

अर्थ तब तब मुनीश्वरो ने बहुत प्रबन्ध बनाकर कथा का गान किया है। अनेक प्रकार के अनोखे प्रसङ्गो का वर्णन किया है। जिसको सुनकर चतुर लोग आश्चर्य नही करते।

व्याख्या कल्पभेद से चरित्र मे भेद पडता है। प्रत्येक कल्प के चरित्र को मुनीश्वर गान करते है। अत एक रामायण की कथा दूसरे से सर्वत्र मेल नही खाती। प्रसङ्गो मे भेद पडता है। वाल्मीकीय मे एक प्रकार की कथा है, अध्यात्म मे दूसरे प्रकार की है। अद्भुत म तीसरे प्रकार की और आनन्दरामायण मे चौथे प्रकार की। इससे समझदार लोग आश्चर्य नही करते।

हरि अनत हरिकथा अनता। कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब सता ॥
रामचद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाये ॥३॥

अर्थ हरि अनन्त हैं। हरि की कथा अनन्त है। सन्त लोग उसे बहुत प्रकार से कहा सुना करते हैं। श्रीरामचन्द्र के सुन्दर चरित्र करोड कल्पो मे भी गाये नही जा सकते।

व्याख्या उनकी स्थिति सदा सर्वत्र है। इसलिए अनन्त हैं। उनके अवतारो की सख्या नही हैं इसलिए भी अनन्त हैं एव उनकी कथाएँ रामायण भी अनन्त है। अत सब सन्त उसे अनेक प्रकार से कहते सुनते हैं।

एक एक अवतार के चरित्रो का पारावार नही है। यथा श्रीराम रावन

समर चरित अनेक कल्प जे गावही। सत सेष सारद निगम कवितेउ तदपि पार न पावही। अत कहते है कि कोटि कल्प तक गाये नही जा सकते।

यह प्रसंग मै कहा भवानी। हरिमाया मोहहिं मुनि ग्यानी ॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुख हारी ॥४॥

अर्थ हे भवानी! मैंने यह प्रसङ्ग कहा कि ज्ञानी मुनि भी हरि की माया से मोहित होते है। प्रभु कौतुकी हैं। प्रणत का हित करनेवाले हैं। सेवा करने म सुलभ और सब दुखो के हरण करनेवाले है।

व्याख्या शिवजी उमा से कहते हैं कि तुमने सन्देह किया था। यथा गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद विष्णु भक्त पुनि ज्ञानी। कारन कौन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा। कि नारदजी को मोह हुआ। यह बडा आश्चर्य है। इसलिए मैंने यह प्रसङ्ग कहा कि ज्ञानी मूढ न कोय जेहि छन जस रघुवर करहि। ज्ञानी मुनि भी हरिमाया से मोहित होते हैं। प्रसङ्ग मे जो बातें दिखलाई गई हैं उन्ही को सक्षेप से प्रभु के विशेषण मे दिखलाते है १ कौतुकी। यथा मुनि कर हित मम कौतुक होई। २ प्रनत हितकारी। यथा जेहि विधि होइहि परमहित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृपा हमार। ३ सेवत सुलभ। यथा बहु विधि विनय कीन्ह तेहि काला। प्रकटे प्रभु कौतुकी कृपाला। ४ सकल दु खहारी। यथा विगत मोह मन हरख विसेखी।

सो सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रवल।
अस विचारि मन माहिं, भजिअ महामाया पतिहि ॥१४०॥

अर्थ देवता, मनुष्य और मुनि ऐसा कोई नही है जिसे प्रवल माया न मोह ले। ऐसा मन मे विचार करके महामाया के पति को भजना चाहिए।

व्याख्या सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआई विमोह बस करई। उस महामाया पर केवल उसके पति की आज्ञा चल सकती है यथा भृकुटि विलास नचावै जाही। अस प्रभु छाडि भजिय कहु काही। क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की माया।

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहौं विचित्र कथा विस्तारी ॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा ॥१॥

अर्थ हे पार्वती! भगवान् के अवतार का अन्य हेतु सुनो। मैं उनकी विचित्र कथा को विस्तार करके कहता हूँ जिस कारण से अज, अगुण, अरूप ब्रह्म कोसलपुर के भूप हुए।

व्याख्या अब चौथे कल्प की कथा कहते है। तीन कल्पो मे विष्णु का रामावतार कहकर अब ब्रह्म का रामावतार कहते है। इस अवतार को वल्लभ मत मे भी षोडशकल पूर्णकलारूपेण स्वीकार किया है। विष्णु के अवतार का व्याज

प्रायेण कोई न कोई ब्रह्मशाप है, उसकी पूर्ति के लिए हरि का अवतार होता है और ब्रह्म के अवतार मे केवल भक्तानुग्रह कारण है। इसी अवतार की कथा विस्तार से कहने को श्रीगोस्वामी जी का सकल्प है। भावार्थ यह कि तीन कल्पो के अवतारो का कारण सक्षेप से कह आये हैं। ब्रह्म के अवतार की कथा विस्तार से कहने का संकल्प है। शेष तीन कल्पो की कथाएँ भी वैमी ही हुई थी। जहाँ कोई विशेपता आ पडी है उसका भी विस्तृत कथा मे समावेश कर दिया गया है। वह स्पष्ट मालूम पडता है। इस ब्रह्मावतार की विशेपता यह है कि इसमे रघुवीर ने सब चरित्रो को अतिशय रूप मे किया है। यथा एक बार अतिशय सब चरित किये रघुवीर। इसी अवतार मे उमा को मोह हुआ था।

अजन्मा, त्रिगुणातीत, स्थूल सूक्ष्म से परे जो ब्रह्म है सो कोसलाधीश हुआ, विष्णु भी उसी निर्गुण ब्रह्म के सगुण स्वरूप हैं। इनके रामावतार मे तथा साक्षात् राम ब्रह्म के अवतार मे कोई भेद नही है। फिर भी परत्वापरत्व का तारतम्य स्वीकार किया जाता है।

जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा। बधु समेत धरे मुनि वेखा ॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी ॥२॥

अर्थ जिस प्रभु को तुमने भाई के साथ मुनि के वेप मे बन मे फिरते हुए देखा है। जिसका चरित देखकर हे भवानि! तुम सती शरीर मे बावली बन गयी थी।

व्याख्या सती जन्म की याद दिलाते हैं कि उस जन्म मे जो तुमने विरहावस्था मे रामजी को देखा था वह साक्षात् ब्रह्म का अवतार का चरित बड़ा गहन था। इसी अवतार के चरित ने तुम्हें पागल कर दिया था। इससे उस अवतार का अधिक परत्व कहते हैं।

अजहु न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुजहारी ॥
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौ मति अनुसारा ॥३॥

अर्थ आज भी तुम्हारे ऊपर से वह छाया हटती नही है। उसी का चरित्र सुनो। जो भ्रम रूपी रोग को हरण करनेवाला है। उन्होंने अवतार ग्रहण करके जो लीलाएँ की मै अपनी बुद्धि के अनुसार सब कहूँगा।

व्याख्या यद्यपि सती शरीर दक्षशुक्रसम्भव अब नही रह गया। अब तुम्हारा पार्वतीतनु है। फिर भी उस जन्म के पागलपन की छाया भ्रम अब भी बना हुआ है। वह भ्रम उनके चरित्र सुनने से ही जायगा। अत उस अवतार की तो सब लीला मति अनुसार कहेगे। अर्थात् विष्णु के तीन अवतार की सब कथा नही कहेगे। प्रमङ्गात् कही कही कहगे। लीला से पता चल जायगा कि किस कल्प की कथा हो रही है। यथा आरण्यकाण्ड मे नारद मिलन की कथा ब्रह्म के अवतार वाली नही है। स्पष्ट ही वह नारदकल्प की कथा है।

भरद्वाज सुनि सकर बानी । सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥
लगे वहुरि वरनै वृषकेतू । सो अवतार भयेउ जेहि हेतू ॥४॥

अर्थ हे भारद्वाज ! शङ्कर की वाणी सुनकर उमा सङ्कुचित हुईं और मुसुकराईं । फिर वृषकेतु, जिस कारण से वह अवतार हुआ उसे वर्णन करने लगे ।

व्याख्या सती सरीर रहिहु बौरानी सुनने से सङ्कोच, सो सब कहिहौ मति अनुसारा सुनने से प्रेम । और अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी सुनने से मुसकराहट । एक जन्म के कर्मफल भोग पूरा हो जाने पर भी कर्मलेश रह जाता है जो दूसरे जन्म का कारण होता है । यह कर्मघाट की बात है । अत इसे कर्मघाट के वक्ता के मुख से ही कहलाया ।

इतना कहकर कर्मघाट के वक्ता योगी याज्ञवल्क्य फिर उमाशङ्कर सवाद आरम्भ करते हैं कि वृषकेतु ब्रह्म के रामावतार का कारण वर्णन करने लगे ।

दो सो मै तुम सन कहौ सबु, सुनु मुनीस मनलाइ ।
रामकथा कलि मल हरनि, मगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

अर्थ वह सब मै तुमसे कहता हूँ । हे मुनीश ! मन लगाकर सुनो । रामकथा कलि के मल की हरण करनेवाली, मङ्गल करनेवाली और सुन्दर है ।

व्याख्या वह सब कारण मैं तुमसे कहूँगा क्योकि तुम मुनीश हो । अर्थात् दूसरे से नही कहता । इस कथा मे मनको बहुत सावधान रखना । रामकथा म तनिक सी असावधानी करने से पार्वती आज आपत्ति म फँस गई । इसका अनादर नहीं होना चाहिए । क्योकि इससे महाफलोदय होता है । कलिमल का नाश होकर मङ्गल की प्राप्ति होती है और यह कथा सुन्दर भी है ।

स्वायम्भू मनु का इतिहास

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा । जिन्हते भै नर सृष्टि अनूपा ॥
दपति धरम आचरण नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका ॥१॥

अर्थ स्वायम्भू मनु और शतरूपा जिनसे अनूप नर सृष्टि हुई दोनो प्राणियो का आचरण बहुत अच्छा था । आज भी वेद उनके प्रामाण्य का गान करता है ।

व्याख्या ब्रह्मदेव को स्वयम्भू कहते हैं । उनसे उत्पन्न होने के कारण आदि मन्वन्तर के मनु स्वायम्भू कहलाये । ब्रह्मदेव के ही अर्धभाग से स्वायम्भू मनु और दूसरे अर्धभाग से शतरूपा हुईं । अनेक रूप धारण करने से उनका नाम शतरूपा हुआ । इनके पहिले मानसी सृष्टि का प्रचार था । इन्होने पहिले पहल मनुष्य की सृष्टि की । जिसकी उपमा नही है । यथा नर तन सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही । नरक स्वर्ग अपवर्ग निसनी । ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ।

इनका धर्माचरण इतना उत्तम था कि महर्षियो ने इनसे धर्म पूछा । इनके बतलाये हुए धर्म का ही धर्मशास्त्र बना जिसे मनुस्मृति कहते हैं । इनके बाद पाँच

मन्वन्तर मे पाँच मनु हुए। यह सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। परन्तु स्वायम्भू मनु की ही मनुस्मृति आजतक परम प्रमाण मानी जाती है। वेद भी 'यन्मनुरवदत् तद्भेपजम्' जो मनु कहते हैं वही भवरोग के लिए औषध है कहकर मनु के प्रामाण्य का स्थापन करता है। वेद अपौरुषेय है। उसमे व्यक्तिविशेष का नाम नही है। उसमे जो व्यक्तिविशेष के नाम आते भी हैं वे पदो के नाम हैं। प्रत्येक कल्प जो पहिले मनु होते हैं वे स्वायम्भू कहलाते है। और ऐसे ही ज्ञानी महात्मा होते है। उनमे से किस स्वायम्भू की चरचा की जाती है। इसे बतलाते हुए कहते है कि जिनके बेटे उत्तानपाद और प्रियव्रत हैं।

नृप उत्तानपाद सुत जासू। ध्रुव हरि भगत भयेउ सुत जासू॥
लघुसुत नाम प्रियव्रत ताही। वेद पुरान प्रसंसहि जाही॥२॥

अर्थ जिसके बेटे राजा उत्तानपाद थे जिसके पुत्र ध्रुव हरिभक्त हुए। उनके . मनु के छोटे बेटे का नाम प्रियव्रत था। जिसकी प्रशसा वेद पुराण करते है।

व्याख्या स्वायम्भू मनु के सन्तानो की योग्यता कहते हैं। राजा उत्तानपाद उनके पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुए। जिन्होने बचपन मे ही तप से नारायण को प्रसन्न किया। यथा ध्रुव सगलानि जप्यौ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ। मनुजी के दूसरे बेटे प्रियव्रत थे। ये आत्माराम तथा महाभागवत थे। इनकी पुराणो मे बडी प्रशसा है। उत्तानपाद और प्रियव्रत दोनो भगवान् के अश से उत्पन्न थे।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदिदेव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥३॥

अर्थ उनकी बेटी का नाम देवहूति था। जो कर्दम मुनि की प्रिय स्त्री थी। आदिदेव, दीनदयाल कृपाल प्रभु कपिल को जिसने गर्भ मे धारण किया था।

व्याख्या कर्दम प्रजापति ने बहुत बडी तपस्या करके भगवान् से अपने अनुरूप पत्नी माँगी। तब उन्हे देवहूति तपश्चर्या के फलरूप मे प्राप्त हुईं। अत 'प्रियनारी' कहा। इन्ही देवहूति के उदर से कपिलावतार हुआ। भावार्थ यह कि पुण्यशील के वश मे ही अवतार होता है।

सांख्यसास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व विचार निपुन भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला॥४॥

अर्थ जिन्होने सांख्य शास्त्र को प्रकट करके वर्णन किया। भगवान् तत्त्व के विचार मे बडे निपुण थे। उस मनु ने बहुत समय तक राज किया। और प्रभु की आज्ञा का सब प्रकार से पालन किया

व्याख्या भगवान् कपिलदेव ने लुप्त हुए सांख्यशास्त्र का उपदेश अपनी माता देवहूति को दिया। यह सेश्वर सांख्य था। इसका वर्णन भागवत मे है। कपिलदेवजी के शिष्य आसुरि हुए।

वहत्तर चतुर्युगी के लगभग एक मनु और उनके पुत्रो का राज्य रहता है। इसलिए कहते हैं कि स्वायम्भू मनु ने बहुत काल तक राज्य किया। प्रभु की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म। वेद मे जो वाक्य आज्ञारूप से कहे गये हैं। यथा सत्य वद, धर्म चर, मातृदेवो भव। इत्यादि। सत्य बोलो। धर्म करो। माँ को देवता मानो। ये ही धर्म हैं। वेद ईश्वर का वाक्य है। अत उसकी आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है। सो उन आज्ञाओ का मनुजी ने सब भाँति से पालन किया। और आज्ञा पालन से बडी दूसरी सेवा नही है। यथा आज्ञा समान सुसाहिब सेवा। अत उनका राज्य करना भी भगवत्सेवा रूप था। 'सब विधि' कहकर मनुजी का श्रद्धातिरेक दिखलाया।

सो होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

अर्थ घर मे बसते चौथापन आगया। और विषय से विराग होता नही। अत हृदय म बडा दु ख हुआ कि बिना हरिभक्ति के जन्म बीत गया।

व्याख्या वृद्धावस्था आगई। अर्थात् विषय भोग का सामर्थ्य घट चला फिर भी विषय से विराग नही हुआ। स्वय मनुजी ने कहा है न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। कभी भी विषयोपभोग से काम की तृप्ति नही होती। हवि पाकर अग्नि की भाँति वह अधिक बढता है। विषयविराग, बिना विषय मे विरसता का ज्ञान हुए नही होता। कामी पुरुष को अत्यन्त घृणित अङ्ग मे सुन्दरता का बोध होता है। उसमे और विष्ठा के कृमि मे कौन अन्तर है? इस प्रकार का विचार करने से विषय विरसता का ज्ञान होता है। विषय वासना का चिरसस्कार होने से, विरसता का ज्ञान होने पर भी एकाएक विषय नही छूटता। जबतक विषयो से हटकर मन हरिचरणो मे न लगे तबतक भक्ति का उदय नही कहा जा सकता। इतना कर्मकाण्ड करते रहने पर भी बिना भक्ति के मनुजी ने कृतार्थता नही मानी। कहते हैं कि जन्म गएउ हरि भक्ति बिनु। अर्थात् भक्ति से ही जन्म का साफल्य है।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथबर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥१॥

अर्थ राजा ने पुत्र को राज्य आग्रह पूर्वक दिया और स्त्री सहित आप वन को गये। तीर्थों मे श्रेष्ठ नैमिष प्रसिद्ध है। वह अत्यन्त पवित्र और साधको को सिद्धि देनेवाला है।

व्याख्या पुत्र भी ऐसे विषयविमुख कि राज्य लेने को तैयार नही। राजा के आग्रह से उन लोगो ने राज्य स्वीकार किया। महाराज मनु ने गृहस्थाश्रम त्याग करके वानप्रस्थाश्रम मे प्रवेश किया। यथा चौथेपन जाइय नृप कानन।

ब्रह्मदेव से ऋषियो ने तपस्या के लिए पवित्र भूमि पूछी। उन्होंने एक चक्र

दिभि.। अर्थ · त्याग करने योग्य गुण आदि को छोडकर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्‌गुण भगवत् शब्द के वाच्य है।

करहि अहार साक फल कदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानदा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। वारि अहार मूल फल त्यागे॥१॥

अर्थ शाक फल कन्द का आहार करते है और सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते है। फिर हरि के लिए तप करने लगे, फूल-फल छोडकर केवल जल आहार रह गया।

व्याख्या अन्नाहार छोड दिया। वन्य शाक फल कन्द का आहार करने लगे। जिसका मन्त्र जपा जाता है उसी का ध्यान किया जाता है। उसी का स्मरण किया जाता है। उसी के लिए तपस्या होती है। यहा वासुदेव शब्द का अर्थ स्पष्ट हो गया ब्रह्मसच्चिदानन्द को वासुदेव कहते हैं। वही राम हैं। यथा राम सच्चिदानद दिनेसा। यह मनुजी की दिनचर्या है। द्वादशाक्षर मन्त्र जप करते-करते वासुदेव के चरणो मे मन अत्यन्त लग गया। अत जप से विरत होने पर भी उन्ही ब्रह्म सच्चिदानन्द का सुमिरन करते हैं। क्षुधा शान्त करने के लिए वन्य शाक फल कन्द खा लेते है।

यहाँ तक तो जप होता रहा। अब तप भी आरम्भ हुआ। अनशन परम तप है। सो कन्द फल शाक भी छोड दिया। केवल जल का आधार रह गया। असाध्य साधन तो तप से ही होता है।

उर अभिलाप निरतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी॥२॥

अर्थ बराबर मन मे यही अभिलाषा होती थी कि उस प्रभु को आँख से देखें। जो निर्गुण, अखण्ड अनन्त और अनादि हैं। परमार्थवादी जिनकी चिन्ता करते हैं।

व्याख्या प्रेम बढने से भगवद्दर्शन के लिए प्राण समाकुल हो उठे। ध्यान मे दर्शन से सन्तोष न हुआ। आँखो से देखना चाहते हैं। *यथा भरिलोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौ निरगुन उपदेसा।* ब्रह्मा, विष्णु रुद्र प्रभु हैं। श्रीरामजी महाप्रभु हैं। महाप्रभु का स्वरूप कहते हैं।

जो प्रकृतिपार होने से निर्गुण है। निरवयव होने से अखण्ड है। नाशरहित होने से अनन्त है। अज होने से अनादि है। ब्रह्मवादी जिसका चिन्तन करते हैं। एक क्षण भी बिना चिन्तन के व्यतीत नही होने देते।

नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानद निरुपाधि अनूपा॥
सभु विरचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अस ते नाना॥३॥

अर्थ जिसे वेद नेति-नेति कहकर निरूपण करता है। जो निजानन्द,

उपाधिरहित और उपमारहित है। जिसके अश से अनेक ब्रह्मा, शम्भु और विष्णु भगवान् उत्पन्न होते है।

व्याख्या नेति-नेति अर्थात् 'यह भी नही, यह भी नही' कहकर वेद भी निरूपण करता है। भावार्थ यह कि वेद कहता है कि स्थूल भी नही है, सूक्ष्म भी नही है। दोनो अवस्थाओ के निषेध से कोई अभावात्मक न समझ ले। इसलिए निजानन्द अर्थात् स्वरूपानन्द रूप कहा। उसे निजानन्द इसलिए कहते है कि उसमे अहकार नही है। जितना-जितना अभ्यासयोग से अहकार की विस्मृति होती है उतना ही सूक्ष्मदृष्टि से निजानन्द का अनुमान होता है। यथा यावद्यावदहकारो विस्मृतोऽभ्यासयोगत । तावत्तावत् सूक्ष्मदृष्टेर्निजानन्दोऽनुमीयते । जाति, गुण, क्रिया और सज्ञा, यही चार प्रकार की उपाधियाँ है। उसमे ये चारो नही है। इसलिए वह निरुपाधि कहलाता है। उसके सदृश कुछ नही है। इसलिए वह अनूप है। ऐसा महाप्रभु नयन का विषय कैसे होगा ?

त्रिगुण के अधिष्ठाता त्रिदेव भगवान् है। उत्पत्ति-स्थिति-नाश मे समर्थ हैं। ऐसे-ऐसे अनेक त्रिदेव उसके अश प्रतिविम्ब से उत्पन्न होते हैं। ऊपर अखण्ड कह आये है। अत वह निरश है फिर भी अश कहने से 'अश इव अश' ग्रहण करना पडेगा। जिस भाँति प्रतिविम्ब विम्ब का 'अश इव अश' है। यथा लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता। इत्यादि। विधिहि विधिता हरिहिं हरिता, हरहिं हरता जिन्ह दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मगलमई। वि प।

ऐसेउ प्रभु सेवक वस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौ यह वचन सत्य श्रुति भापा। तौ हमार पूजिहि अभिलापा॥४॥

अर्थ ऐसे प्रभु भी सेवक के वश म हैं और भक्त के लिए लीला से शरीर धारण करते हैं। यदि यह वचन वेद ने सत्य कहा हो तो मेरी अभिलापा भी पूरी होगी।

व्याख्या . सभी सेवा के वशीभूत है। पर वे प्रभु लौकिक नियमो के अधीन नही हैं। क्योकि वे जगत् से विलक्षण हैं। अत समझा जा सकता है कि वे सेवा के वशीभूत न होगे। पर ऐसी बात नही है। सेवा के वश्य वे भी हैं। स्वय प्रयोजन न होने पर भी निर्विकार और असङ्ग होते हुए भी भक्तो के लिए लीलाशरीर धारण करते हैं।

मनुजी वेदमय हैं। अत वेद के बल पर तप ठान दिया कि यदि वेद ने सत्य कहा है तो मेरी अभिलापा की पूर्ति न होने का कारण नही है। इस भाँति सत्तर्क का आश्रयण करके सीधे-सीधे साधन मे लग जाना चाहिए। सत्तर्क से उत्पन्न हुई श्रद्धा को पाकर मनुष्य फल का भागी होता है। श्रद्धा से पौरुप मे लगा हुआ पुरुप सर्वथा मारा नही पडता। दृढ पौरुप से अवश्य फल होता है। वदवचन यथा

रूप रूप प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।

इन्द्रो मायाभि पुररूप ईयते युक्ताह्यस्य हरय शतादश।

ऋ म ६ अ ४ सू ४७ म १८

सकल ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर माया से राम कृष्णादि अनेक रूप धारण करता है। परमेश्वर का वह रूप भक्तो के दर्शन के लिए है। रावणादि को दण्ड देने के लिए जैसा-जैसा रूप आवश्यक था वैसा-वैसा धारण किया। क्योकि भगवान् के रूप अनन्त हैं मुख्यत दश हैं। भक्तियुक्त होकर जिसने उसका जैसा ध्यान किया वैसा ही उस भक्तचिन्तामणि ने रूप धारण किया उसके देह की इच्छामात्र से परिकल्पित होने से उसकी देह भी पराचिति चेतन है। वह पराचिति ही अभिन्न होकर भिन्न सी भासती है।

दो एहि विधि बीते बरप पट, सहस वारि अहार।
सवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥१४४॥

अर्थ इस प्रकार जल का आहार करते हुए छ हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष हवा के आधार पर रहे।

व्याख्या पहिला तप छ हजार वर्ष का किया। क्रम से तपस्या बढाते गये। पहिले कुछ दिन शाक फल कन्द खाते रहे। फिर उसे कम करते-करते अपने को केवल जल पर उतार दिया। केवल जल पीकर रहना जब से आरम्भ किया तब से पहिला तप चला। धीरे-धीरे जल कम करने लगे। और अपने को वायु पर उतारने लगे। छ सहस्र वर्ष म एकदम जल छोडने म समर्थ हो गये। अत पहिला तप पूरा हुआ। फिर धीरे-धीरे वायुपान भी कम करने लगे। सो एकदम निराधार हो जाने मे सात सहस्र वर्ष लगे। तब दूसरा तप समाप्त हुआ।

वरप सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढे रहे एक पग दोऊ॥
विधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहुबारा ॥१॥

अर्थ दश हजार वर्षो तक उसे भी छोड दिया। दोनो एक पैर से खडे रहे। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनका अपार तप देखकर उनके पास बहुत बार आए।

व्याख्या फिर निराधार एक पग से खडे हो गये। भाव यह कि इसके पहिले दोनो पग से खडे थे। जैसी तपस्या मनुजी के लिए कही गई है वही शतरूपा के लिए भी समझनी चाहिए। दशसहस्र वर्ष तक निराधार रहना तीसरी तपस्या है। पहिले तपस्या पर ब्रह्मदेव आये। दूसरी मे ब्रह्मा और विष्णु दोनो देव आये। तीसरी मे ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनो आये। अव्यक्त के अभिमान से आविष्ट होकर ईश्वर ही रुद्र, हरि और ब्रह्मदेव के रूप से तीन प्रकार के होकर दृश्यादृश्य के अवभासक हुए।

माँगहु वर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहिं पीरा ॥२॥

अर्थ बहुत भाँति से ललचाया कि वर माँगो। परमधीर हिलाये नही

हिले। शरीर मे केवल हड्डी रह गई। फिर भी उनके मन मे तनिक भी पीडा नही थी।

व्याख्या 'इन्द्र पद लो, ब्रह्मलोक लो, वैकुण्ठ लो, कैलास लो। गुण रहित ब्रह्म इन्द्रिय का विषय नही है। वह तो अनुभवगम्य है। यदि मिश्र ब्रह्म का दर्शन भी हो गया तो क्षण भर के लिए हो जायगा। हम लोग भी तो वही हैं। कुछ भी कामना यदि तुम्हे नही तो मोक्ष माँगो। हम तुम्हे देंगे। ऐसा त्रिदेवो ने कहा परन्तु मनुजी के निश्चय मे परिवर्तन नही हुआ। यथा लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधु सरवारी। रूपविन्दु जल होहिं सुखारी। साधक को यही उचित है कि सर्वथा साध्य की ही मुख्य करके साधना करे।

तेईस सहस्र वर्ष की कठिन तपस्या से रक्तमासादि सब सूख गये। सत्ययुग म अस्थिगत प्राण रहा। सब धातुओ के सूख जाने पर हड्डी-हड्डी रह गई। फिर भी प्राण नही गया। भक्ति के प्रभाव से मन भावना मे लग गया। देह की ओर था ही नही। अत तनिक भी दु ख का अनुभव नही हुआ। यथा मन तहँ जहँ रघुवर वैदेही। विनु मन तन दु ख सुख सुधि केही।

प्रभु सर्बग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृपरानी॥
माँगु माँगु वर भै नभ वानी। परम गभीर कृपामृतसानी॥३॥

अर्थ सर्वज्ञ प्रभु ने जान लिया कि निज दास हैं। और मुझे छोडकर इन्हे दूसरे की गति भी नही है। तब अत्यन्त गम्भीर कृपामृत से सनी हुई आकाशवाणी हुई वर माँगो क्या चाहते हो।

व्याख्या प्रभु ने जान लिया कि स्वार्थ का दास नही है। मेरा निजदास है। यथा जे पामर भये दास आस के ते सबही चेरे। रघुपति कृपा आस जोती जिन ते सेवक हरिकेरे। अनन्यगतिक हैं त्रिदेव की भी अपेक्षा नही रखते। तब परम गम्भीर आकाशवाणी हुई। जिसके आधार का पता नही कि कहाँ से उठ रही है। यह वाणी वागिन्द्रिय से उच्चरित नही है। 'सर्वेन्द्रियगुणाभास सर्वेन्द्रियविवर्जित' की वाणी है। उनकी कृपा ही अमृत है। उसी से सनी है। आकाश से शब्द आ रहा है ' माँगो, माँगो।

मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहि भवन ते आए॥४॥

अर्थ वह मरे हुए को जिलानेवाली वाणी जब कर्णछिद्र से होकर हृदय मे आई तब शरीर ऐसा हृष्ट पुष्ट हो गया मानो घर से चल आ रहे हैं।

व्याख्या अमृत से सनी वाणी है। इसलिए मृतक जिआवनि कहते हैं। इनकी श्रवणेन्द्रियो ने बाहर जाकर उन शब्दो को नही ग्रहण किया। वे शब्द ही कर्णमार्ग से हृदय मे प्रविष्ट हुए। अमृत हृदय मे पहुँचा। सूखे हुए धातु हरे हो गये। ऐसे हरे हुए और वृद्धि का प्राप्त हुए कि शरीर पुन जैसा का तैसा हो गया।

दो. श्रवन सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात ।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात ॥१५४॥

अर्थ कानो से अमृत सी वाणी सुनकर पुलक से शरीर प्रफुल्लित हो उठा। मनु दण्डवत करके बोले। प्रेम हृदय में समा नहीं रहा है।

व्याख्या अभिलाप की पूर्ति से परम हर्ष है। अत रोमाञ्च हो रहा है। कोई मूर्ति सामने न होने पर भी दण्डवत करते हैं। आकाश से वाणी आ रही है। और पृथ्वी पर दण्डवत हो रहा है। मनो री वा इस सूत्र से ङीप् विकल्प से होता है। अत शतरूपा भी मनु हैं। यहाँ पर मनु शतरूपा दोनो का दण्डवत और बोलना कहा गया।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरि हर वंदित पदरेनू ॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक ॥१॥

अर्थ सेवक के कल्पवृक्ष और कामधेनु सुनो। आपका पदरज विधि हरिहर द्वारा वन्दित है। आप सेवा करने मे सुलभ तथा सब सुखो के देनेवाले हैं। प्रणतपाल हैं और चर अचर के स्वामी हैं।

व्याख्या सुरतरु और सुरधेनु से पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनो कहा। यथा त्वं स्त्री त्वं पुमान्। सुरतरु से अभिमतदानी कहा। यथा अभिमत दानि देव तरुवर से और सुरधेनु से सुखखानि कहा। यथा रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख खानि। विधि हरि हर उनके बल से ही अपना अपना कार्य सम्पादन कर सकते हैं। यथा जाके बल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। अत प्रभु के चरणरज की सदा वन्दना करते हैं।

सुरतरु हैं। इसलिए सेवत सुलभ कहा। यथा जाइ निकट पहिचान तरु, छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच। और कामधेनु हैं। इसलिए सकल सुखदायक कहा। प्रणतपाल से करुणा और सचराचरनायक से प्रभुता कही।

जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू ॥
जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं ॥२॥

अर्थ हे अनाथहित ! यदि हम लोगो पर स्नेह हो तो प्रसन्न होकर यह वर दो कि जो स्वरूप शिवजी के मन में बसता है और जिसके कारण मुनि लोग यत्न करते हैं।

व्याख्या सनाथ के तो सभी हित होते हैं। अनाथ के हित केवल आप ही हैं। बड़ा तप किया इस कारण से नेह नहीं। बल्कि हम अनाथ हैं और आप अनाथ नाथ हैं। इसलिए नेह का नाता है। यदि यह बात सत्य है तो यह वर दो। भाव यह कि विकल्प स्वीकार नहीं है।

शिवजी उस रूप को अपने मन के भीतर छिपाये हुए हैं। यथा जो हर

हृदय कमल मह गोए। और मुनि यत्न करते हैं। जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावही। कभी ध्यान मे एक झलक आजाती है।

जो भुसुडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रससा ॥
देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥३॥

अर्थ जो भुसुण्डि के मनरूपी मानसरोवर के हस हैं। जिनकी प्रशसा वेद सगुण निर्गुण रूप कहकर करते है। हम उस रूप को आँख भरकर देखे। हे प्रणत की आर्ति के हरण करनेवाले कृपा करो।

व्याख्या जिस रूप की प्रशसा सगुण अगुण कहकर वेद करते है जिस रूप से भुसुण्डिजी के मनरूपी मानस मे हस की भाँति आप विचरते है। नयनविषय होकर नही विचरते। उस रूप को मैं जबतक इच्छा हो तबतक अपने नयन का विषय करना चाहता हूँ। अत 'कृपा करहु' अर्थात् दर्शन दो। दर्शन के लिए यह तप यथेष्ट नही। अत विनिमय मे नही माँग सकते। कृपा का भरोसा है। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्। जिसके ऊपर वह अनुग्रह करता है उसीको प्राप्त होता है। उसी को परमात्मा अपने स्वरूप का दर्शन देता है काठके।

दपति वचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेम रस पागे ॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना ॥४॥

अर्थ कोमल विनययुक्त प्रेमरस से पगे हुए दोनों प्राणियो के वचन बडे प्रिय लगे। भक्तवत्सल प्रभु, कृपानिधान और विश्वास, भगवान् प्रगट हुए।

व्याख्या . परम प्रिय लगनेवाले वचनों का लक्षण कहते है। मृदु विनीत और प्रेम मे पगे वचन ही परम प्रिय लगते है। बोले मनु करि दडवत, प्रेम न हृदय समात से उपक्रम करके दम्पति वचन परम प्रिय लागे से उपसहार करते हैं। मनुजी के साथ ही साथ शतरूपाजी भी बोलती जाती हैं। दम्पति का हृदय इतना अभिन्न है कि वे ही शब्द दोनो मुखो से एक साथ निकल रहे है।

तीन विशेषण वचन के मृदुल विनीत प्रेमरस पागे और तीन ही विशेषण भगवान् के दिये गये हैं : भगतबछल प्रभु कृपानिधाना। १ भक्तवत्सल हैं प्रेमरस पागे वचन प्रिय लगे। प्रभु हैं। विनीत वचन पर प्रसन्न हुए। कृपानिधान हैं। मृदु वचन पर कृपा की। विश्वबास हैं। कही से आना जाना नही है - वही प्रकट हो गये। यथा : कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही।

दो. नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहि तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम ॥१४६॥

अर्थ : नीलकमल, नीलमणि और नीले बादल के समान श्यामवर्ण है। शरीर की शोभा देखकर सौ करोड कामदेव भी लज्जित होते हैं स्याम सुभग सरीर जनु मन काम पूरनि हारु।

अद्भुत श्यामता है। जिसकी उपमा के लिए कोई वस्तु नहीं है। नील सरोरुह से स्निग्धता कोमलता तथा सुगन्ध कही। नीलमणि से दृढता तथा चमक कही। नीरधर से दर्शक के नेत्रों मे तरावट कही अथवा जल मे सर्वोत्तम नीलिमा नीलकमल की, थल मे नीलमणि की और नभ मे नीरधर की है। सो इन तीनो नीलिमाओ की शोभा सलोने श्यामसुन्दर मे कही गई। श्यामता 'न तत्र[1] चक्षुर्गच्छति' का प्रतीक है। यथा 'श्याम रंग शुचि प्रगट लखावत दृगते पार रहैया। सुन्दरता मे काम की ही ख्याति है। सो प्रभु के सौन्दर्य सूर्य के सामने काम जुगनू भी नहीं है। अत कोटि कोटि सत काम का लज्जित होना कहा। पहिले पूरे स्वरूप की शोभा कहकर शिखनख वर्णन करते हैं। साकार के रूप देखने की उत्कट अभिलाषा है। अत मुख पर ही पहिले दृष्टि पडी। अत कवि भी पहिले मुख का वर्णन करते हैं।

सरद मयक वदन छवि सीवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा ॥
अधर अरुन रद सुदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा ॥१॥

अर्थ छवि की परमावधि मुख शरद् के चन्द्रमा के समान था। गाल और ठुड्डी सुन्दर, कण्ठ शख सा, लाल होठ, दाँत और नाक सुन्दर और हँसी चन्द्रमा की किरणो का तिरस्कार करनेवाली थी।

व्याख्या शरद्मयङ्क को मुख मण्डल से उपमित करने पर भी कवि को सन्तोष न हुआ। तब उसे छवि की परमावधि बतलाया। चारु शब्द का सम्बन्ध कपोल और चिबुक दोनो के साथ है। दोनो सुन्दर हैं। होठो के लाल होने की शोभा है। सो होठ लाल हैं। नासिका सुन्दर है। इन सब अवयवो की सुन्दरता से ही मुख की सुन्दरता है। अत प्रत्येक का विशेष वर्णन नहीं किया। इतना ही कहकर समाप्त किया कि इससे अधिक सुन्दरता है ही नहीं। जब मुख चन्द्रमा हुआ तो चन्द्रिका भी चाहिए। अत कहते हैं कि हँसी चाँदनी का भी मात करनेवाली है। यहाँ हँसी मनुशतरूपा के ऊपर अनुग्रह की सूचक है। यथा हृदय अनुग्रह इदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हाँसा।

नव अबुज अबक छवि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की ॥
भृकुटि मनोज चाप छवि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥२॥

अर्थ नये कमल के समान आँखो की अच्छी शोभा थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। भौहे कामदेव के कमान की शोभा को हरण करनेवाली थी और मस्तक पर चमकीला तिलक था।

व्याख्या आँखे बडी ही सुन्दर थीं इससे नये कमल की उपमा दी। यथा नयन सुखमा निरखि नागरि सफल जीवन लेखु। मनहु बिधु जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु गीतावली। पर कमल मे चितवन नहीं अत उसका अलग वर्णन करते है

---

१ वहाँ नेत्रो की पहुँच नहीं। ऐसा श्रुत कहती है।

कि वह कही नही जा सकती। जी को अच्छी लगती है। ऐसी चमत्कृत शोभा है कि कहीं पर निगाह ठहरती नहीं। इसलिए क्रम से वर्णन नहीं कर सकते।

टेढ़ी भौंह की उपमा काम के धनुष से दी। काम का धनुष इतना सुन्दर है कि उसका नाम उन्मादन है। उन्माद उत्पन्न कर देता है। इस भौंह के सामने उन्मादन कुछ भी नहीं। ललाटपटल पर होने से तिलक भी द्युतिकारी है। यथा भृकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम रेखु। भ्रमर द्वै रवि किरनि ल्याये करन जनु उन्मेखु। गी०। यहाँ तक केवल मुख की शोभा कही। शोभा का निर्णय मुख से ही होता है।

कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिक हार भूषन मनिजाला॥३॥

अर्थ मकराकृति कुण्डल कानों में और सिर पर मुकुट शोभायमान था। घुँघराले बाल मानो भौंरो का समूह, वक्ष स्थल पर श्रीवत्स, वनमाला, मोहनमाला, भूषण और मणिजाल विराजमान था।

व्याख्या अब मकराकृत कुण्डल की शोभा कहते हैं। मनहु सबरारि मारि ललित मकर जुग बिचारि दीन्हे ससि कहँ पुरारि भ्राजत दुहुँ ओरी। मकराकृति कुण्डल से कान छिपा हुआ है और मुकुट से सिर छिपा हुआ है। अत कान और सिर का पृथक् वर्णन नहीं है। घुँघराली लटों की उपमा मधुपसमाज से दी गयी है। उसके बीच में मकराकृति कुण्डल और उसके ऊपर मुकुट की अलौकिक छटा है।

हृदय मे श्रीवत्सलाञ्छन रोम की भँवरी विशेष है। परतक लटकी हुई माला पहिने हैं। पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। मोहनमाला की शोभा अलग ही है और मणिभूषणो का तो जाल फैला हुआ है।

केहरि कंधर चारु जनेऊ। बाहु बिभूषन सुन्दर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा॥४॥

अर्थ सिंह सा कन्धा है। सुन्दर यज्ञोपवीत है और बाहु मे विभूषण हैं। वे भी सुन्दर हैं। हाथी के शुण्ड सी सुन्दर भुजाएँ है। कटि मे तरकस और हाथो मे बाण और धनुष है।

व्याख्या : वीरो मे कन्धे और भुजदण्ड की प्रशसा है। इसलिए कहते है कि सिंह सा कन्धा है। परशुरामजी का 'वृषभकन्ध उर बाहु बिसाला' कहकर वर्णन है। अत उनसे भी विशेषता दिखलाते हुए केहरि कन्धर और करिकर सरिस सुभग भुजदंडा कहते हैं। कटि निषङ्ग कर सर कोदंडा। प्रभु की द्विभुजमूर्ति का वर्णन करते हैं। श्रुति भी अयमात्मा पुरुषविध कहती है। अर्थात् परमात्मा की मूर्ति पुरुष सी है। उस अनाम और अरूप के दिव्य नाम और दिव्य मूर्तियाँ भी हैं। सो यहाँ द्विभुज मूर्ति का प्रकट होना दिखलाते हैं।

दो० तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥१४७॥

अर्थ विजली की निन्दा करनेवाला पीताम्बर पहने उदर मे तीन रेखाएँ शोभित है और मनोहर नाभि मानो यमुनाजी के भँवर की छवि को छीन लेती है।

व्याख्या पीतपट मे अलौकिक चमक कही। यथा पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइतजि सहजही। उदर रेख वर तीन से उदर की क्षीणता कही। नाभि की यमुनाजलभँवर से उपमा देकर उसकी सुन्दरता, श्यामता और गम्भीरता कही। यही द्विभुज मूर्ति शम्भु उरवासी है। इसी के लिए मुनि लोग यत्न करते है। और यही भुशुण्डिमनमानसहस है। इसी की सगुण-निर्गुण कहकर वेदो ने प्रशसा की है। यथा सगुणनिर्गुणस्वरूप ब्रह्म त्रिपादवि। इसी के उदर मे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड है। इसी के भीतर ही सब कुछ है। यह[1] परिच्छिन्न दिखाई पडती हुई भी अपरिच्छिन्न है। सर्वाश्चर्यमय है। यही परमेश्वरी मूर्ति विश्व ब्रह्माण्ड की प्रतीक है। इसीलिए इसे सगुणनिर्गुण रूप अनूप रूप कहा जाता है।

पद राजीव बरनि नहिं जाही। मुनि मन मधुप बसहि जिन्ह माही ॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छविनिधि जगमूला ॥१॥

अर्थ कमल ऐसे चरणो का वर्णन नही किया जा सकता जिसमे मुनियो के मनरूपी भौरे बसते है। उनके बाएँ भाग मे सदा अनुकूल शोभा की निधि और जगत् की मूलभूता आदि शक्ति शोभित है।

---

१ स्वमाया वनमालाख्या नानागुणमयी दधत्।
वासश्छन्दोमय पीत ब्रह्मसूत्र त्रिवृत् स्वरम् ॥
बिभर्ति साख्य योगञ्च देवो मकरकुण्डले।
मौलि पद पारमेष्ठ्य सर्वलोकाभयङ्करम् ॥ श्री मद्भा
कण्ठ तु निर्गुण प्रोक्त माल्यते आद्ययाजया। गा
कूटस्थ सत्स्वरूपञ्च किरीट प्रवदन्ति माम्।
क्षरोत्तम प्रस्फुरन्त कुण्डल युगल स्मृतम् ॥
ध्यायेन्मम प्रियो नित्य स मोक्षमधिगच्छति।
लवनिमेष परमान जुग वर्ष कल्पसरचड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड ॥

अर्थ वनमाला के व्याज से नानागुणमयी माया को धारण करते हैं। पीताम्बर छन्दोमय है और यज्ञोपवीत प्रणवरूप है। मकरकुण्डल के व्याज से साख्ययोग को धारण करते हैं। सिर सब लोको को अभय करनेवाला ब्रह्मपद है। कण्ठ निर्गुण है जो आदि शक्तिरूपा माला से घिरा हुआ है। किरीट सत्स्वरूप कूटस्थ है। क्षर और अक्षर दोनो कुण्डल हैं। धनुष अखण्ड दण्डायमान कालरूप है और बाण परिच्छिन्न कालरूप है। इत्यादि।

व्याख्या चरण की उपमा कमल से देकर भी उसे अवणनीय कहते हैं। क्योकि जैसी लालिमा चरण म है वैसी कमल म नही होती। यथा वसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि गी०। कमल म भौंरे लुब्ध होकर वसते हैं। यथा कमलनि वसे निसि मधुकरा। पर ये पदकमल ऐसे हैं जिनके लिए मुनियो के मन भौंरे हो गये हैं। ससार छोड दिया पर इन्हे छोडना नही चाहते। जिस भाँति कमल के मकरन्द का पान भौंरे करते हैं उसी भाँति इन चरणकमलो का आनन्द मुनिलोग लते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनके वामभाग म आदिशक्ति योगमाया हैं। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद है। मनुशतरूपा ने पुरुष और स्त्रीरूप दोनो रूपो से सम्बोधन किया था। यथा सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू अत भगवान् भी दो रूप से प्रकट हुए। पुरुष से छविसमुद्र हैं और स्त्रीरूप से छविनिधि हैं। स्त्रीरूप से पुरुप के अनुकूल हैं और जगमूल भी है। यथा पति अनुकूल सदा रह सीता। लव निमेप महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया पुरुप से ब्रह्म है तो स्त्रीरूप से मूलप्रकृति हैं।

जासु अस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई॥२॥

अर्थ जिसके अश से गुणो की खानि अगणित लक्ष्मी पावती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती है। जिसके भृकुटिविलास से ससार हो पडता है वही सीता रामजी के बाईं ओर हैं।

व्याख्या प्रभु के अश से त्रिदेव उपजते हैं। यथा जासु अस उपजे विधि नाना। सभु विरचि विस्नु भगवाना। और भगवती के अश से शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। छविनिधि से गुणखानियो की उत्पत्ति बतलायी। राम और सीता म ऐसा अभेद और अनुकूलता है कि युगलमूर्ति के भृकुटिविलास म भी अन्तर नही है। यथा भृकुटिविलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई। और उमा राम की भृकुटि विलासा। होइ विस्व पुनि पावइ नासा। उसी सीताशक्ति द्वारा ही रामावतार होता है और भगवान् नयनविपय होते हैं। यथा प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भ वाम्यात्ममायया इसलिए कहा कि राम वाम दिसि सीता सोई।

छवि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहि सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥३॥

अर्थ छवि के समुद्र हरिरूप को दखकर पलक गिराना बन्द करके एकटक रह गय। मनु और शतरूपा अनुपम रूप को आदर के साथ देख रहे हैं और अघाते नही।

व्याख्या समुद्र म नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। समुद्र को दखते जी नही भरता। सो हरि का रूप छविसमुद्र है। उसका पारावार नहीं है। उसम भी रूप की तरङ्गें उठा करती हैं। देखनेवाला तृप्त नही होता। प्रभु को छविसमुद्र और अम्बा को छविनिधि कहकर तात्त्विक अभेद द्योतित किया। आँख भर दखने

दो. तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥१४७॥

अर्थ बिजली की निन्दा करनेवाला पीताम्बर पहने उदर मे तीन रेखाएँ शोभित है और मनोहर नाभि मानो यमुनाजी के भँवर की छवि को छीन लेती है।

व्याख्या पीतपट मे अलौकिक चमक कही। यथा पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइतजि सहजही। उदर रेख वर तीन से उदर की क्षीणता कही। नाभि की यमुनाजलभँवर से उपमा देकर उसकी सुन्दरता, श्यामता और गम्भीरता कही। यही द्विभुज मूर्ति शम्भु उरवासी है। इसी के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं। और यही भुशुण्डिमनमानसहस है। इसी की सगुण-निर्गुण कहकर वेदो ने प्रशसा की है। यथा सगुणनिर्गुणस्वरूप ब्रह्म त्रिपादवि। इसी के उदर मे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। इसी के भीतर ही सब कुछ है। यह[1] परिच्छिन्न दिखाई पडती हुई भी अपरिच्छिन्न है। सर्वाश्चर्यमय है। यही परमेश्वरी मूर्ति विश्व ब्रह्माण्ड की प्रतीक है। इसीलिए इसे सगुणनिर्गुण रूप अनूप रूप कहा जाता है।

पद राजीव बरनि नहिं जाही। मुनि मन मधुप बसहिं जिन्ह माही॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला ॥१॥

अर्थ कमल ऐसे चरणो का वर्णन नही किया जा सकता जिसमे मुनियो के मनरूपी भौंरे बसते हैं। उनके बाएँ भाग मे सदा अनुकूल शोभा की निधि और जगत् की मूलभूता आदि शक्ति शोभित है।

---

१ स्वमाया वनमालाख्या नानागुणमयी दधत्।
वासश्छन्दोमय पीत ब्रह्मसूत्र त्रिवृत् स्वरम्॥
बिभर्ति साख्य योगश्च देवो मकरकुण्डले।
मौलि पद पारमेष्ठ्य सर्वलोकाभयङ्करम्॥ श्री मद्भा
कण्ठ तु निर्गुण प्रोक्त माल्यते आद्ययाजया। गो
कूटस्थ सत्स्वरूपश्च किरीट प्रवदन्ति माम्।
क्षरोत्तम प्रस्फुरन्त कुण्डल युगल स्मृतम्॥
ध्यायेन्मम प्रियो नित्य स मोक्षमधिगच्छति।
लवनिमेष परमान जुग बर्ष कल्पसरचड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड॥

अर्थ वनमाला के व्याज से नानागुणमयी माया को धारण करते हैं। पीताम्बर छन्दोमय है और यज्ञोपवीत प्रणवरूप है। मकरकुण्डल के व्याज से साख्ययोग को धारण करते हैं। सिर सब लोको को अभय करनेवाला ब्रह्मपद है। कण्ठ निर्गुण है जो आदि शक्तिरूपा माला से घिरा हुआ है। किरीट सत्स्वरूप कूटस्थ है। क्षर और अक्षर दोनो कुण्डल हैं। धनुष अखण्ड दण्डायमान कालरूप है और बाण परिच्छिन्न कालरूप हैं। इत्यादि।

व्याख्या चरण की उपमा कमल से देकर भी उसे अवर्णनीय कहते हैं। क्योकि जैसी लालिमा चरण मे है वैसी कमल मे नही होती। यथा बसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि गी०। कमल मे भौंरे लुब्ध होकर बसते हैं। यथा कमलनि बसे निसि मधुकरा। पर ये पदकमल ऐसे हैं जिनके लिए मुनियो के मन भौंरे हो गये हैं। ससार छोड दिया पर इन्हे छोडना नही चाहते। जिस भाँति कमल के मकरन्द का पान भौंरे करते है उसी भाँति इन चरणकमलो का आनन्द मुनिलोग लेते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनके वामभाग मे आदिशक्ति योगमाया हैं। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद है। मनुशतरूपा ने पुरुष और स्त्रीरूप, दोनो रूपो से सम्बोधन किया था। यथा सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू अत भगवान् भी दो रूप से प्रकट हुए। पुरुष से छविसमुद्र हैं और स्त्रीरूप से छविनिधि हैं। स्त्रीरूप से पुरुष के अनुकूल हैं और जगमूल भी है। यथा पति अनुकूल सदा रह सीता। लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया पुरुष से ब्रह्म है तो स्त्रीरूप से मूलप्रकृति हैं।

जासु अस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ॥२॥

अर्थ जिसके अश से गुणो की खानि अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। जिसके भृकुटिविलास से ससार हो पडता है वही सीता रामजी के बाईं ओर हैं।

व्याख्या प्रभु के अश से त्रिदेव उपजते हैं। यथा जासु अस उपजै बिधि नाना। सभु बिरचि बिस्नु भगवाना। और भगवती के अश से शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। छविनिधि से गुणखानियो की उत्पत्ति बतलायी। राम और सीता म ऐसा अभेद और अनुकूलता है कि युगलमूर्ति के भृकुटिविलास मे भी अन्तर नही है। यथा भृकुटिविलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई। और उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उसी सीताशक्ति द्वारा ही रामावतार होता है और भगवान् नयनविषय होते हैं। यथा प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया इसलिए कहा कि राम बाम दिसि सीता सोई।

छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी ॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥३॥

अर्थ छवि के समुद्र हरिरूप को देखकर पलक गिराना बन्द करके एकटक रह गये। मनु और शतरूपा अनुपम रूप को आदर के साथ देख रहे हैं और अघाते नही।

व्याख्या समुद्र मे नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। समुद्र को देखते जी नही अघाता। सो हरि का रूप छविसमुद्र है। उसका पारावार नही है। उसम भी रूप की तरङ्गें उठा करती हैं। देखनेवाला तृप्त नही होता। प्रभु को छविसमुद्र और अम्बा को छविनिधि कहकर तात्त्विक अभेद द्योतित किया। आँख भर देखने

मे पलक का गिरना बाधक है। अत· उसका गिरना बन्द करके देखते है। फिर भी तृप्ति नही हो रही है।

हर्ष विवस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ॥
सिर परसे प्रभु निज करकंजा। तुरत उठाए करुना पुंजा ॥४॥

अर्थ · हर्ष के विवश हो जाने से शरीर की दशा भूल गई। चरण को हाथो से पकड़कर दण्डवत् किया। प्रभु ने अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया। और तुरन्त उठा लिया।

व्याख्या हर्षातिरेक मे शरीर की सुधि न रही। दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे, चरणो को पकड लिया। छोडते नही कि कही अन्तर्धान न हो जाँय। हृष्ट पुष्ट है, इसलिए दण्ड से उपमा दी। दुर्बल होते तो लकुट · छडी से उपमा दी जाती। यथा : परे लकुट इव चरनन लागी। सीतल सुभग छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया। निसिवासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया। वह अभय वरद हस्त जिसकी छाँह, पाप, ताप और माया को मिटाती है। करुणाकर प्रभु ने मनु शतरूपा के सिरपर रक्खा और उन्हे तुरन्त उठा लिया। वरदान देना चाहते हैं।

दो० बोले कृपा निधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ॥१४८॥

अर्थ · कृपानिधान फिर बोले मुझे बहुत प्रसन्न जानकर और महादानी अनुमानकर जो जी चाहे सो वर माँगो।

व्याख्या : कृपानिधान है। इनकी कृपा अघाती नही। पहिले आकाशवाणी द्वारा बोले थे। अब फिर बोले मुझे अनुमान से जानो कि मैं महादानी हूँ। विधि हरि हर दानी हैं। तब अनुमान से सिद्ध है कि जिसके अंश दानी है तो वह अंशी महादानी क्यो न होगा ? तिसपर कहते हैं कि मुझे अति प्रसन्न जानो। महादानी अति प्रसन्न हो तो क्या न दे डाले। यह सब कहने का कारण यह कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के वरदान देने के लिए प्रस्तुत होने पर भी इन्होंने नही माँगा था। इससे सिद्ध है कि मनु शतरूपा जो चाहते थे उसके मिलने की उनसे आशा न थी। इसीलिए उन्हे प्रोत्साहन देते हुए कहते हैं जो चाहो वर माँगो। तुम्हारी आशा पूर्ण होगी।

सुनि प्रभु वचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली[1] मृदुबानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥१॥

अर्थ प्रभु के वचन सुनकर, दोनो हाथ जोडकर और धैर्य धारण करके

१ बोली क्रिया के कर्त्ता मनु अरु सतरूपा हैं। तृपित न मानहि मनु सतरूपा। क्रिया का सम्बन्ध शतरूपा के साथ है। इसलिए क्रिया का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग मे हुआ।

कोमल वाणी : मनु और शतरूपा : बोली। हे नाथ ! तुम्हारे चरणकमल के दर्शन से मेरी सब कामनाएँ पूरी हो गईं।

व्याख्या : प्रभु की वाणी ही ऐसी हुई कि सेवक के हर्ष और प्रेमोद्गार का पारावार न रह गया। अतः धैर्य धरना पडा। जोरि जुग पानी कर्मणा, धरि धीरज मनसा, बोले मृदुवानी वचसा प्रार्थना की।

प्रकृत भक्त बिना स्वामी का दर्शन पाये सदा अधिकारीवर्ग के दर्शन से ही सन्तुष्ट नही रह सकता। भक्त की सब कामनाएँ भगवान् के दर्शन से ही पूर्ण होती हैं। अतः मनु शतरूपा को दर्शन की वडी अभिलाषा थी। और आकाशवाणी होनेपर यही वरदान भी माँगा था। सो दर्शन मिला। अत कहते हैं कि सब कामनाएँ पूर्ण हुईं।

एक लालसा बडि उर माही। सुगम अगम कहि जाति सो नाही ॥
तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहिं निज कृपनाईं ॥२॥

अर्थ : मन मे एक वडी लालसा है। वह सुगम भी है, अगम भी है। पर कहते नही बनता। हे गोसाइँ ! आपके लिए देने मे वडा सुगम है। पर अपनी कृपणता से मुझे अगम मालूम हो रहा है।

व्याख्या : गृहस्थो की लालसा देखिये। जिसे भगवदश उत्तानपाद और प्रियव्रत ऐसे पुत्र हुए। किसी से न प्राप्त होनेवाले पद को प्राप्त करनेवाले ध्रुव जैसे पौत्र हुए। साक्षात् भगवदवतार कपिलदेव जैसे जिसे नाती हुए। उसे अब प्रभु सा पुत्र प्राप्त करने की लालसा हुई। अत. इस लालसा को वडी बतलाया। रूप देखकर लालसा हुई। परन्तु भय और सङ्कोच से कहते नही बनता। यथा : सभय सकोच जात कहि नाही। अतः कहते हैं :

सर्वशक्तिमान् और महादानी होने से आपको सब कुछ सुगम है। मैं कृपण हूँ। फल की इच्छा रखनेवाला हूँ। मुझे अगम मालूम होता है। मैंने क्या किया है कि जिसके पुरस्कार मे ऐसी आशा करूँ। यथा : मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किये। इतना बडा वरदान किस मुख से माँगूँ। तपस्या के फल में दर्शन हो चुका।

जथा दरिद्र विबुध तरु पाई। बहु संपति माँगत सँकुचाई ॥
तासु प्रभाउ जान नहि सोई। तथा हृदय मम संसय होई ॥३॥

अर्थ : जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष पाकर भी वहुत सम्पत्ति माँगने से सङ्कोच करता है। क्योकि कल्पवृक्ष के प्रभाव को वह नही जानता। उसी प्रकार मेरे हृदय मे संशय हो रहा है।

व्याख्या : दरिद्र ने कभी सम्पत्ति आँख से देखी नही। उसे कौडी दुर्लभ है। वहुत सम्पत्ति माँगने मे सङ्कोच होना उसके लिए स्वाभाविक है। यहाँ अज्ञान दरिद्र है। अहंता ममता से मूढ पुरुष को ब्रह्मसुख अगम है। यथा : कविहि अगम जिमि

ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेमु। वह समझे बैठा है कि ब्रह्मानन्द सुख नहीं मिल सकता। इसलिए वह उसके लिए यत्न भी नही करता। और न देवीदेवता की आराधना उसके लिए करता है। प्रभु कल्पवृक्ष हैं। उन्हें पाकर भी परमानन्द नही माँगता।

यदि दरिद्र को दैवात् कल्पवृक्ष मिल जाय तो उससे अधिक सम्पत्ति माँगने मे सङ्कोच करता है कि कदाचित् कल्पवृक्ष न दे सके। दरिद्र का मन ऐसा छोटा हो जाता है कि वह बडा लालच भी नहीं कर सकता। यथा : लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
सकुच विहाइ मागु नृप मोही। मोरे नहि अदेय कछु तोही ॥४॥

अर्थ . हे अन्तर्यामी ! आप उसे जानते हो। हे स्वामी ! मेरे मनोरथ को पूरा करो। राजा ! तू सङ्कोच छोडकर मुझसे माँग। तेरे लिए मुझे कुछ अदेय नही है।

व्याख्या अत माँगने मे सङ्कोच है। कहते हैं कि आप अन्तर्यामी भी है। सब जानते है, मेरे मनोरथ को पूरा करिये। विना अन्तर्यामी की प्रेरणा के यह वात मेरे मन मे आई कैसे ? इसके वाद भगवान् का कथन है। वर माँगने पर भी ऐसा होता है कि वरदाता कह देते है · कि यह वर अदेय है दूसरा माँगो। पर तेरे ऐसे भक्तो के लिए यह वात नही है। यथा कौन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी। तू दरिद्र नही है राजा है। तू बहुत सम्पत्ति माँग सकता है। मुझसे माँग। सङ्कोच न कर। जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे। अस विस्वास तजहु नहि भोरे। अथवा यदि इच्छा है तो मुझे ही माँग ले।

दो दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहौ सति भाउ।
चाहौ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ ॥१४९॥

अर्थ हे दानियो के शिरोमणि ! हे कृपानिधान ! हे नाथ ! सत्य भाव से कहता हूँ। आप जैसा पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से कौन सा छिपाव है।

व्याख्या मोरे नहि अदेय कछु तोही कहा इसलिए दानी शिरोमणि कहते हैं। सकुच विहाइ माँगु कहा इसलिए कृपानिधि कहते है। यह सन्देह उठ सकता है कि जिसके सन्तान से सृष्टि भरी पडी है वह सुत क्यो माँगता है ? अत कहते है सतिभाउ। मुझे प्रभु को देखकर लालसा हुई कि मुझे ऐसा पुत्र हो और आपसा दूसरा है नहो। अत आपसा पुत्र माँगना आपको ही पुत्ररूप से चाहना एक वात है। इसलिए माँगने मे सङ्कोच था। वास्तविक इच्छा आप सा पुत्र पानें की है। चाहे जैसे सम्भव हो।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि वोले ॥
आपु सरिस खोजौ कहँ जाई। नृप तव तनय होव मैं आई ॥१॥

अर्थ : प्रीति देखकर और अनमोल वचन सुनकर करुणानिधि ने कहा : ऐसा ही हो। मैं अपने समान दूसरा जाकर कहाँ खोजूँ। राजा ! मैं ही आकर तुम्हारा बेटा होऊँगा।

व्याख्या : प्रीति देखी। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृपित न मानहिं मनु सतरूपा : और अनमोल वचन सुना। यथा : चाहौं तुम्हहि समान सुत। जिसकी कोई कीमत ही नही। अतः उस वचन के पीछे स्वयं बिक गये। कह दिया 'एवमस्तु'। कोई भुक्ति चाहता है, कोई मुक्ति चाहता है और कोई भक्ति चाहता है। मनुजी ने कुछ न चाहा। बालरूप से रामजी को गोद खिलाने और लालन-पालन का सुअवसर चाहा। ऐसी बात चाही जिससे जगत् का कल्याण हो। अपने परलोक का भार प्रभु पर छोड़ दिया। पुन्नामनरकात् त्रायतीति पुत्र। नरक से पिता की रक्षा करता है इसलिए पुत्र कहलाता है। जैसी दृढ प्रीति पुत्र मे होती है वैसी दृढ प्रीति चाही। प्रभु से अपना सम्बन्ध सुरक्षित किया और साथ ही साथ अपनी भावी सन्तान मनुष्य जाति के लिए अमूल्य निधि सुलभ कर गये ! इत्यादि। सभी भाँति से मङ्गलमयी कामनाओं से युक्त वचन था। इसलिए उसे अनमोल कहा है।

प्रभु करुणानिधि हैं। जगत्पिता होकर भी पुत्रत्व की स्वीकृति मे न हिचके। एवमस्तु कह ही दिया। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं।

न तो प्रभु के समान कोई है और न कोई उनसे बढकर है और न कोई स्थल ऐसा है जहाँ वे न हो। यथा : जेहि समान अतिसय नहिं कोई। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही। इसलिए कहते हैं कि अपने समान कहाँ जाकर खोजे। जिसके समान चाहते हो, यदि उसी की प्राप्ति हो जाय तो मनोरथ की विशेषरूप से सिद्धि समझनी चाहिए। इसलिए हे राजन् ! मैं ही तुम्हारा पुत्र आकर होऊँगा अर्थात् इस समय जाता हूँ। भविष्य मे आकर मनोरथ पूर्ण करूँगा।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि माँगु बरु जो रुचि तोरे ॥
जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा ॥२॥

अर्थ : शतरूपा को हाथ जोड़े हुए देखकर कहा : हे देवी ! जो वर तू चाहती है सो माँग। शतरूपा ने कहा हे कृपालु ! चतुर राजा ने जो वर माँगा वही मुझे भी अत्यन्त प्रिय लगा।

व्याख्या : राजा ने ऐसा वर माँगा जिससे शतरूपा का भी कल्याण हो। और दूसरे जन्म मे भी शतरूपा से अपना सम्बन्ध बना रहे। भगवान् ने एवमस्तु कह भी दिया। फिर भी देखा शतरूपा हाथ जोडे खडी है। अत प्रभु ने कहा : तू भी माँग जो तेरी रुचि हो। भाव यह कि रुचि मे सबके भेद होता ही है। अत. यदि तेरी इच्छा हो तो तू दूसरा जीचाहा वर माँग ले।

इस पर शतरूपा कहती है कि राजा चतुर है। उन्होने ऐसा वर माँगा जो मुझे भी अतिप्रिय है।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरयामी॥३॥

अर्थ : परन्तु हे प्रभो! बडी ढिठाई हो रही है। यद्यपि हे भक्तवत्सल! आपको अच्छा मालूम होता है। तुम ब्रह्मादि के भी पिता हो, जगत् के स्वामी हो। सबके हृदय में अन्तर्यामी · रूप से स्थित : ब्रह्म हो।

व्याख्या : शतरूपा के लिए राजा के साथ ही साथ न बोलने का कारण था। उसे कहती है कि वह तो मुझे बहुत ही प्रिय है और प्रभु को भी स्वीकार है। एवमस्तु बोल चुके। फिर भी इसमे साधारण ढिठाई नही है क्योकि आप पिता के भी पिता हैं। ब्रह्मा आदि के उत्पन्न करनेवाले हैं। जगन्नाथ हैं। सबके अन्तर्यामी ब्रह्म हैं और आप पुत्र होगे।

अस समुझत मन ससय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई॥
जे निज भगत नाथ तव अहही। जो सुख पावहिं जो गति लहही॥४॥

दो. सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहिनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु॥१५०॥

अर्थ · ऐसा समझने पर मनमे सशय हो रहा है। किन्तु प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण है। हे नाथ! जो आपके निज भक्त हैं वे जो सुख पाते हैं, जिस गति को प्राप्त होते हैं वही सुख, वही गति, वही भक्ति वही अपने चरणो का स्नेह, वही विवेक और वही रहन सहन मुझे कृपा करके दो।

व्याख्या · जगत् के पिता जगत् के स्वामी अन्तर्यामी पुत्र कैसे होगे! यही सशय है। परन्तु मेरा संशय प्रमाण नही आपका वचन प्रमाण है। जव आपने एवमस्तु कहा है तो आप पुत्र होगे। परन्तु पुत्र होने पर वात्सल्य भाव होगा। सेवक-सेव्य भाव जाता रहेगा। पुत्र स्नेह से विवेक जाता रहेगा। भक्तो का सा रहनसहन न रह जायगा। अत ये सब बातें न होने पावें। इसलिए जो सुख पावहिं इत्यादि शतरूपाजी माँगती है।

१ जो सुख पावहिं यथा — सोई सुख लवलेस, जिन बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहि गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति।

२ जो गति लहही यथा — जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी।
तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी॥

३ सोइ भगति यथा : — सबते सो दुर्लभ सुरराया।
राम भगति रत गत मद माया॥

४ सोइ निज चरन सनेहु यथा · — जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सो
राम को होइ सबेरो।

५ सोइ विवेक यथा : — राम मातु दुख सुख सम जानी।
कहि गुन राम प्रवोधी रानी॥

६. सोइ रहनि यथा : कबहुँक हौं येहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपाते सत सुभाव गहौंगो॥
यथा लाभ संतोप सदा काहू सो कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निवहौंगो॥
परुप वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन पर गुन नहि दोप कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिंता दु ख सुख सम वुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु येहि पथ रहि अविचल हरि भगति लहौंगो॥

यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई। अतः कृपा करके देने को कहती हैं।

सुनि मृदु गूढ रुचिर वच रचना। कृपा सिधु वोले मृदु वचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माही। मै सो दीन्ह सव संसय नाही॥१॥

अर्थ : कोमल, गूढ और मनोहर वचन की रचना सुनकर कृपासिन्धु कोमल वचन बोले। तुम्हारे मनमे जो कुछ रुचि है मैंने सब दिया इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या : शतरूपाजी की वचनरचना विनीत होने से मृदु गम्भीरार्थक होने से गूढ और श्रवणसुखद होने से रुचिर थी। गम्भीरार्थक इसलिए कहा कि पुत्र रूप से प्रभु की प्राप्ति से छः बातो मे कमी पडने का भय है। सम्भव है कि १ भक्ति का दिव्य सुख पुत्र सम्बन्धी लौकिक सुख से ढक जाय। २ प्रभु को पुत्ररूप मानने की ढिठाई से परलोक विगडे। ३ पुत्र प्रेम मे पडकर सेवक सेव्यभाव जाता रहे ४ पुत्र के चरण मे स्नेह नही होता। सो कही चरण-स्नेह से हाथ न धोना पडे। ५ जगत् पिता को पुत्र मानने मे विवेक भी जाता रहे और ६ पुत्र के गौरव से अभिमान होने के कारण भक्तो के रहन सहन मे भेद न पडे। इसलिए छः वातें माँगती हैं।

प्रभु कृपासिन्धु हैं। शतरूपा वर माँगती चली जाती है। वस नही कहते, कोमल शब्दो से तोप देते हैं। कहते है कि यदि वोलने मे कोई त्रुटि हो तो भी उसका विचार न करके तुम्हारे मनमे जो रुचि है मै वह सव देता हूँ। तुम सशय न करो।

मातु विवेक अलौकिक तोरे। कवहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे॥
वंदि चरन मनु कहेउ वहोरी। अवर एक विनती प्रभु मोरी॥२॥

अर्थ माँ! तुम्हारा अलौकिक विवेक मेरे अनुग्रह से कभी नही मिटेगा। तव फिर मनु ने चरण वन्दन करके कहा : हे प्रभु मेरी एक और विनती है।

व्याख्या माँ का नाता अभी से मान लिया। माँ कहकर सम्बोधन करते हैं और अलौकिक विवेक के लिए वर देते हैं। उसी से शेप पाँच भी सध जायगा। लौकिक विवेक शास्त्रजन्य ज्ञानविपयक है। पर अलौकिक की वात दूसरी है। ये ही

मनु शतरूपा दशरथ कौसल्या हुए। महाराज दशरथ ने लौकिक विवेक से काम लिया। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहिं धर्म न सत्य समान। राम तज्यौं जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान। परन्तु माता कौसल्या का अलौकिक विवेक सुनिये। यथा :

वारौं सत्यवचन श्रुतिसम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तुम्हारे।
बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहि सँभारे।
हरि तजि धर्म सील भयो चाहत नृपति नारि बस सरबस हारे।
रुचिर काँच मति देखि मूढ ज्यों करतल ते चिन्तामनि डारे।
मुनि लोचन चकोर ससि राघव सिव जीवन धन सोउ न बिचारे।

मनु महाराज ने देखा कि वहाँ वर माँगने मे रोक नही है। सो कही यह वर मुझे मिल न जाय। इसलिए मनु ने फिर से चरणवन्दना अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए की।

सुत बिषैक तव पद रति होऊ। मोहि बड मूढ कहौ किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जलबिनु मीना। मम जीवन मिति तुम्हहि अधीना॥३॥

अर्थ . चाहे मुझे कोई बडा मूढ भले ही कहे पर मुझे आपके चरणो मे प्रेम पुत्रविषयक ही हो। जैसे मणि बिना सर्प की और जल बिना मछली की गति होती है। वैसे ही मेरे जीवन की अवधि आपके दर्शन के अधीन रहे।

व्याख्या इस बात की सम्भावना है कि जब आप स्वय पुत्ररूप से अवतीर्ण होगे और मुझे आपके चरणो में प्रीति पुत्र की ही भाँति होगी तो कोई यह कह सकता है कि यह कितना बडा अविवेकी है कि भगवान् को पहिचान नही सकता। बेटा ही मानता है। सो यह प्रवाद मुझे स्वीकार है। पर मुझे पुत्र की ही भावना रहे। यथा . कीजिअ सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।

मणि बिना सर्प जीता है। परन्तु व्याकुल और बेहाल रहता है। यथा . मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। परन्तु जल बिना मछली तो जी नही सकती। मनुजी दोनो की अवस्थाएँ अपने लिए माँग रहे हैं। अत दशरथ शरीर से विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के समय मणि बिना सर्प की स्थिति का अनुभव करेंगे। यथा सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। तथा राम बिरह करि मरन मवारा। मनुजी को न मोक्ष की कामना है, न यश की कामना है। वात्सल्य भाव से भजन करना चाहते हैं। विवेक से वात्सल्य बिगड जायगा। इसलिए विवेक नही चाहा।

अस बरु माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥४॥

सो तहँ करि भोग बिसाल, तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत॥१५१॥

अर्थ : ऐसा वर माँगकर चरण पकडे रह गये। करुणानिधि ने एवमस्तु कह दिया। और बोले कि अब तुम हमारी आज्ञा मानकर इन्द्र की राजधानी अमरावती मे जाकर बसो। वहाँ विशाल भोग करके हे तात! कुछ दिन बाद तुम अवध के राजा होगे। और तब मैं तुम्हारा बेटा होऊँगा।

व्याख्या : वर माँगने के बाद चरण पकडे हुए रह जाने का भाव यह है कि इस वर को लेकर मानेंगे। सरकार करुणानिधि हैं। यह बात भी मान गये। यद्यपि यह बात उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध थी। जिनके वे पुत्र हो वह पिता उनके विरह मे प्राण दे। यह बात कथमपि उनके स्वरूप के अनुकूल न थी। पर भक्त इसी बात पर हठ कर बैठा है। उसे प्रेम के अत्यन्तोत्कर्ष मे शरीर छोड़ने की अभिलाषा है। अतः उसकी ही बात रक्खी एवमस्तु कह दिया। यथा : तुलसी मगल मरन तरु राम प्रेम पय सीचु।

ईश्वर हैं : कहते हैं कि अब तुम मेरा अनुशासन मानकर अमरावती मे बसो। तुम ब्रह्मलोक वैकुण्ठ कैलास में बसने से इनकार कर चुके हो। अमरावती मे बसना तुम्हारे लिए छोटी बात होगी। पर मेरे अनुशासन से बसो और भोगविमुख न रहकर भोगविलास करो। तुमने बड़ी तपस्या भी की है। कुछ काल वही रहो। अर्थात् पाँच मन्वन्तरो तक वही रहो। इन्द्र और देवता तब तक पाँच बार बदलेंगे। पर तुम वही रहोगे। सातवें वैवस्वत मन्वन्तर मे तुम अवध के राजा होओगे। तब मै तुम्हारा बेटा होऊँगा। सब बातें स्पष्ट किये देते हैं :

इच्छामय नर वेष सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुख दाता॥१॥

अर्थ : सकल्पमय मनुष्य का शरीर धारण किये हुए मैं तुम्हारे घर मे प्रगट होऊँगा। हे तात! मै अपने अशो के साथ देह धारण करके भक्तो को सुख देनेवाला चरित्र करूँगा।

व्याख्या : बेटा होने मे नर होना पडेगा। सो मेरा शरीर पाञ्चभौतिक न होगा। सकल्पमय शरीर को नर की आकृति मे सँवारूँगा और तुम्हारे घर प्रकट हो जाऊँगा। उसे दिव्य जन्म कहा। मैं अशो विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर के साथ भक्तो को सुख देने के लिए देह धारण करूँगा। इससे कर्म का दिव्य होना कहा। न तो कर्मवश जन्म होगा न अहकार के साथ कर्म अनुष्ठित होगा। जिस प्रकार भक्तो को सुख होगा वही चरित प्रभु करने को कह रहे है।

जेहि सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥२॥

अर्थ : जिसे आदर के साथ सुनकर बडभागी लोग ममता मद त्याग करके भवसागर के पार हो जायँगे। आदिशक्ति जिसने ससार को उत्पन्न किया है वह भी अवतार धारण करेगी। मेरी यह माया है।

व्याख्या अवतार के तिरोहित होने पर भी वह चरित जगत् के लिए बडा उपयोगी होगा। उसे जो आदर के साथ सुनगे वे बडे भाग्यवान् है। केवल सुनने से भवसागर पार हो जावेगे[1]। अव मनु का ध्यान आदि शक्ति की ओर आकर्पित करते हैं। अङ्गुल्या निर्देश करके कहते है कि यह मेरी माया आदि शक्ति है। यह भी अवतार धारण करेगी। भाव यह कि मै अज हूँ। अव्ययात्मा हूँ। भूतो का ईश्वर हूँ। फिर भी अपनी प्रकृति का आश्रयण करके अपनी माया से मैं उत्पन्न होऊँगा। यथा अजाऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। विना इनके अवतरण हो नही सकता। सब शक्तियो की मूलभूता आदिशक्ति है। वही मेरी माया है। यही ससार को उत्पन्न करती है। यह भी अवतीर्ण होगी। अर्थात् पुत्र के लिए वर माँगा है तो पतोहू पुत्रवधू भी देख लो।

पुरउब मै अभिलाप तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अतरधान भए भगवाना॥३॥

अर्थ मै तुम्हारा अभिलाष पूरा करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान बारबार ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

व्याख्या विनती की गई थी पुरबहु मोर मनोरथ स्वामी। वरदान मिल रहा है पुरउब मै अभिलाप तुम्हारा। भाव यह है कि एक गुना अभिलाप की चौगुनी पूर्ति की जायगी। प्रभु के समान पुत्र माँगा था। सो स्वय आप और अपने समान तीन और लेकर पुत्र होगे। केवल जन्मोत्सव चाहा था। सो जन्मोत्सव कर्णवेध, उपवीत और विवाह द्वारा अभिलाषा की पूर्ति करेगे। त्रिसत्यम् के अनुसार तीन वार सत्य कहा। अथवा तीन वार सत्य कहकर अपने प्रण का तीन काल मे सत्य होना दिखलाया। अथवा वरदान देने के अतिरिक्त तीन प्रतिज्ञा की है १ इच्छामय नरवेप सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे। २ असन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौ चरित भगत सुखदाता। और ३ आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरहि मोर यह माया। सो मनु शतरूपा के आश्वासन के लिए कहते है कि तीनो प्रण मेरे सत्य होगे।

कृपानिधान हैं। शतरूपा ने सन्देह किया था। यथा अस समुझत मन ससय होई। अत बारबार निश्चय कराते हैं। सब वाते समाप्त हो गयी तो अन्तर्धान हो गये। न वही से आये थे न कही गये। विश्ववास भगवान् है। वही प्रकट हुए और वही लुप्त हो गये।

दपति उर धरि भगत कृपाला। तेहिं आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति वासा॥४॥

---

१ मनुष्य जाति के आदिम पुरुप अपनी भावी सन्तान के लिए यही अक्षय निधि छोड गये। अत श्रीरामावतार मनुष्यमात्र की वपौती सम्पत्ति है।

अर्थ वे दोनो प्राणी भक्त के ऊपर कृपा करनेवाले को हृदय मे धारण करके उस आश्रम म कुछ काल रह। समय पाकर अनायास शरीर त्यागकर जाकर अमरावती मे वास किया।

व्याख्या तप वन्द है। हृदय मे प्रभु की मधुर मूर्ति है। नैमिषारण्य मे ही वानप्रस्थ धर्म मे बसने लगे। प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने पर ही आयु समाप्त होती है। सो दोनो का शरीर साथ ही पूरा हुआ। हरिकृपा से अनायास मृत्यु हो गई। अनायास का मरण अल्पतप का फल नही है। प्रभु का अनुशासन था कि बसहु जाइ सुरपति रजधानी सो जाइ कीन्ह अमरावति वासा। इससे यह भी मालूम हुआ कि सुरपति रजधानी का नाम अमरावती है।

दो यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

अर्थ इस अति पवित्र इतिहास को वृषकेतु ने उमा से कहा था। हे भरद्वाज अब रामजन्म का दूसरा कारण सुनो।

व्याख्या ब्रह्म के साक्षात्कार का विवरण होने से तथा वैराग्य विवेक सयुक्त भक्तिगङ्गा की धारारूप होने से अति पवित्र कहा। इस इतिहास का उपक्रम अभ्यास और उपसहार भक्ति से है। और भक्ति को गङ्गारूप कह आये है। यथा रामभगति जहँ सुरसरि धारा इसलिए यह भक्ति गङ्गारूप है। उपक्रम यथा हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु। अभ्यास यथा पथ जात सोहत मतिधीरा। ग्यानभक्ति जनु धरे सरीरा। उपसहार यथा दपति धरिउ भगति कृपाला। गङ्गा जिस भाँति यमुना और सरस्वती के साथ शोभित है उसी भाँति यह भक्तिगङ्गा विरति और विचार के साथ शोभित हैं। विचार यथा होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुखलाग। विरति यथा बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा। इस इतिहास को समाप्त करके याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं अब रामजन्म का दूसरा कारण सुनो

[1]भानुप्रताप की कथा

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति सभु बखानी॥
बिस्व बिदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेसू॥१॥

---

१ अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दुत्व मे गौडजी ने निम्नलिखित रामायणो का उल्लेख किया है। जिनमे भानु प्रताप की कथा मिलती है। पर मुझे इन रामायणो के दर्शन का सौभाग्य नही हुआ है।

१ अगस्त्य रामायण। इसमे २४००० श्लोक हैं। इसका समय रैवतमन्वन्तर का पाँचवाँ सत्ययुग है।

२ मञ्जुलरामायण। इसको सुतीक्ष्ण कवि ने स्वारोचिषमन्वन्तर के १४ वें त्रेता म बनाया है।

अर्थ : हे मुनि पुरानी पवित्र कथा सुनो जिसे गिरिजा से शम्भु ने कहा था। केकय देश ससार मे प्रसिद्ध है। वहाँ सत्यकेतु नाम का राजा रहता था।

व्याख्या : स्वायम्भू मनु की कथा अति पुनीत थी और यह कथा पुनीत है। वह कथा अति पुरानी है और यह पुरानी है। यद्यपि सभी कथाएँ गिरिजा के प्रति शम्भु की बखानी हुई हैं। पर याज्ञवल्क्य जी इन दोनो कथाओ के लिए गिरिजाशम्भु की कही हुई बतलाते है। इसका यह आशय मालूम होता है कि इन दोनो कथाओ को भुसुण्डिजी ने नही कहा। और भुसुण्डिजी की कही हुई कथा की सूचि मूल रामचरित जो उत्तरकाण्ड मे वर्णित है मे इन कथाओ का उल्लेख भी नही है। यथा पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा। अत भुसुण्डिजी ने प्रधानत उसी कल्प की कथा कही जिसमे नारदजी को मोह हुआ था। भगवान् क्षीरशायी राम हुए थे और रुद्रगण रावण और कुम्भकर्ण हुए थे और शम्भु ने प्रधानत उस कल्प की कथा कही जिससे ब्रह्म कोसलपुर भूप हुए थे। कैकय देश कश्मीर के दक्षिणी प्रान्त मे हैं। जिसे गक्कर कहते हैं।

धरम धुरधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना ॥
तेहि के भये जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा ॥२॥

अर्थ : वह धर्म की धुरी का धारण करनेवाला, नीतिनिधान, तेजस्वी, प्रतापी और बलवान् था। उसे दो वीर पुत्र हुए। जो सब गुणो के आश्रय और बडे रणधीर थे।

व्याख्या : धर्मात्मा राजा सत्यकेतु मे सभी राजोचित गुण थे। उसे दो वीर पुत्र उत्पन्न हुए। भावार्थ यह कि वीर उत्पन्न होते है बनाये नही जाते। 'सकल गुणधाम' महारणधीर कहने से तात्पर्य यह कि वे पिता से भी गुणो मे श्रेष्ठ थे और रणधीर भी अधिक थे। वीर से उनकी वीरगति की प्राप्ति तथा रणधीर कहने से उनका विश्वविजय करना सूचित किया।

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही ॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल सग्रामा ॥३॥

अर्थ राज्य का उत्तराधिकारी जो जेठा बेटा था उसका नाम भानुप्रताप था। दूसरे का नाम अरिमर्दन था। उसकी भुजाओ मे अपरिमित बेतोल बल था। और सग्राम मे अटल था।

व्याख्या भानुप्रताप के राजधनी होने का कारण उसका ज्येष्ठ होना था नही तो गुण मे दोनो भाई समान थे। बल्कि अरिमर्दन अधिक बलवान् और योद्धा था। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई का सिद्धान्त बहुत पुराना है। और राजाओ मे इसका अधिक आदर है। क्योकि राज्य बिना इस सिद्धान्त के माने चल नही सकता। राज्य यदि भाइयो मे विभक्त कर दिया जाय तो खण्ड खण्ड होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

भाँइहि भांइहि परम समीती । सकल दोष छल वरजित प्रीती ॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । हरिहित आपु गवन वन कीन्हा ॥४॥

अर्थ : भाई-भाई मे बडी बनती थी और सब दोष और छल से रहित प्रीति थी। राजा जेठे पुत्र को राज्य देकर भगवान् के लिए वन चले गये।

व्याख्या : दोनों भाइयो मे बडा मेल था। जिससे मैत्री हो उसके दु ख मे दु खी न होना बड़ा भारी दोष है। और उसके सामने मीठी-मीठी बातें बनाना और उसके पीछे उसका बुरा ताकना, मन मे कुटिलता रखना आदि छल है। इन भाइयो की प्रीति मे न दोष था न कोई छल था। राजा नीतिनिधान था और धर्मधुरन्धर था इसलिए भगवान् के भजन के लिए स्वय वन चला गया। यथा सत कहहिं अस नीति दसानन। चौथे वन जाइय नृप कानन। तासु भजन कीजिय तहँ भर्त्ता। जो कर्त्ता पालक सहर्त्ता।

दो. जब प्रताप रवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देस ।
प्रजापाल अति वेद विधि, कतहुँ नही अघलेस ॥१५३॥

अर्थ : जब भानुप्रताप राजा हुआ देश मे दोहाई[1] फिरी। वह वेद की विधि से प्रजा का अत्यन्त पालन करनेवाला था। कही पाप का लेश नही रह गया।

व्याख्या : कहावत है कि जिसका राज्य उसकी दोहाई। सो भानुप्रताप के राजा होने पर उसकी दोहाई कैकय देश मे फिरी। राज्य परिवर्तन मे दोहाई फिरने का नियम है। यथा : नगर फिरी रघुवीर दोहाई। बिना वेदविधि से प्रजापालन किये राज्य मे पापाचार बना ही रहता है। वर्णाश्रम के अनुसार राज्य चलाना राजा का कर्त्तव्य है तभी देश सुखी हो सकता है। अन्य उपाय नही है। यथा : वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भयसोक न रोग।

नृप हित कारक सचिव सयाना । नाम धरम रुचि सुक्र समाना ॥
सचिव समान बंधु बलवीरा । आतु प्रताप पुंज रनधीरा ॥१॥

अर्थ : राजा का हित करनेवाला सयाना मन्त्री था। उसका नाम था धर्म-रुचि। नीति जानने में : शुक्र के समान था। मन्त्री सयाना, भाई बली और वीर, आप स्वयं मानों प्रताप का समूह और समर मे धीर था।

व्याख्या : सभी समाज अनोखा जुट गया था। मन्त्री बुद्धिमान् होना चाहिए। सो शुक्राचार्य के समान मन्त्री चतुर मिल गया था। भाई सहायक होना चाहिए।

---

१. दोहाई का प्राकृत रूप 'दोहाइअं' है। सस्कृत रूप द्विधाकृतम् है। इसका वाच्यार्थ है 'दो टूक किया हुआ'। बात दो टूक तभी होती है जब स्पष्ट और नि सन्देह हो जाती है। अत इसका लक्ष्यार्थ घोषणा है। राज्य परिवर्तन होने पर जिसका राज्य होता है उसकी ओर से राज्य में घोषणा की जाती है : उसी को दोहाई फिरना कहते हैं।

यथा होहिं कुठायँ सुवधु सहाए सो भाई वली और वीर मिला था। राजा को प्रतापी होना चाहिए सो भानुप्रताप तो मानो प्रताप का पुञ्ज ही था। और रण मे तो वडा धीर था।

सेन सग चतुरग अपारा। अमित सुभट सव समर जुझारा ॥
सेन विलोकि राउ हरषाना। अरु वाजे गहगहे निसाना ॥२॥

अर्थ साथ मे अपार चतुरङ्गिणी सेना थी। युद्ध मे जूझनेवाले असख्य योद्धा थे। इस प्रकार अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गहगहे डङ्के वजे।

व्याख्या मन्त्री सहायक और राजा का हाल कहकर अव सेना की व्यवस्था कहते हैं। सेना सख्या मे भी बहुत वडी और सैनिको मे उत्कृष्ट गुण थे अर्थात् वे योद्धा थे। सेना के चार अग होते हैं हाथी, घोडा, रथ और पैदल। सो चारो अगो का कोई पारावार न था।

राजा ने सेना का निरीक्षण किया तो वडा प्रसन्न हुआ कि इस सेना का पार कोई शत्रु नही पा सकता। डङ्का वजने से उत्साहवर्धन हुआ। राजा की सलामी मे डङ्के वजे। डङ्को की तुमुल ध्वनि के लिए गहगह शब्द का प्रयोग होता है। यथा गहगह गगन दुदुभी बाजी।

विजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ वजाई ॥
जहँ तहँ परी अनेक लराई। जीते सकल भूप वरिआई ॥३॥

अर्थ दिग्विजय के लिए छोटी सी सेना वनाकर अच्छा दिन ठीक करके राजा डङ्का देकर चला। जहाँ तहाँ अनेक लडाइयाँ पडी। पर राजा ने सवको वल से जीत लिया।

व्याख्या सारी सेना मे से कुछ नगररक्षा के लिए छोड और कुछ की पृथक् सेना दिग्विजय के लिए सजाई। विजयमुहूर्त देखकर वाजे वजाकर चले। अधीनता स्वीकार न करने पर जहाँ तहाँ लडाइयाँ हुईं। सो सवको वल से जीता। सव राजाओ ने हार स्वीकार की। दिग्विजय पूरी हुई।

सप्त दीप भुज वल वस कीन्हे। लेइ लेइ दड छाँडि नृप दीन्हे ॥
सकल अवनिमडल तेहि काला। एक प्रताप भानु महिपाला ॥४॥

अर्थ अपनी भुजाओ के वल से सातो द्वीपो को वश कर लिया। राजाओ से दण्ड ले लेकर छोड दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल मे उस समय एक मात्र राजा भानुप्रताप थे।

व्याख्या केवल जम्बूद्वीप के विजय से ही दिग्विजय माना जाता है। सो प्लक्ष आदि शेप द्वीपो पर भी विजय पाई। यथा जम्बू और पलक्ष कुस क्रौच कहत पुनि साक। शाल्मलि पुष्कर द्वीप ये भाखैं वेद सुवाक। तुलसी शब्दावली। भुजा

के बल से सबको विजय किया। सेना शोभा के लिए साथ थी। जीतने पर राज्य नही छीना। युद्ध मे बन्दी कर लिया। दण्ड लेकर छोड़[1] दिया।

दो स्ववस विस्व करि बाहु बल, निज पुर कीन्ह प्रवेसु।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवै समय नरेसु ॥१५४॥

अर्थ अपने बाहु के बल से ससार को वश करके अपने पुर मे प्रवेश किया। राजा अर्थ धर्म और कामादि सुख का समय से सभी का सेवन किया करता था।

व्याख्या एक बार बाहर निकला तो सातो द्वीपो को वश करके लौटा। यद्यपि काम से सुखमात्र का ग्रहण होता है। पर यहाँ कामादि पाठ होने से स्त्रीसुख अभिप्रेत है और आदि से इतर सुखो का ग्रहण है। राजा को धर्म, अर्थ और काम तीनो के पूजन की आज्ञा है। सम्पूर्ण जगत् के लिए कर्म का प्राधान्य है। पर राजा और वेश्या के लिए अर्थ का प्राधान्य है। अत अर्थ पहिल कहा। तत्पश्चात् धर्म और अन्त म काम कहा। समयानुकूल ही इनके सेवन की मर्यादा है। राजा तदनुसार ही कार्य करता था।

भूप प्रताप भानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सोहाई॥
सब दु ख वरजित प्रजा सुखारी। धरम सील सुन्दर नर नारी ॥१॥

अर्थ राजा भानुप्रताप का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हो गई। प्रजा सब दु खो से रहित होकर सुखी हो गई। स्त्री और पुरुप सुन्दर और धर्मात्मा थे।

व्याख्या कालस्य कारण राजा कालो वा राजकारणम्। इति ते सशयो माभूत राजा कालस्य कारणम्। भगवान् मनु कहते है कि काल का कारण राजा है या राजा का कारण काल है ? इस विषय म तुम्हे सशय नही होना चाहिए। राजा ही काल का कारण होता है। इसी बात को यहाँ दिखलाते हैं कि राजा भानुप्रताप का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हो गई। अर्थात् पृथ्वी को राजा से बल मिलता है। समय पलट जाता है। सो पृथ्वी कामधेनु होकर जो प्रजा चाहे वही देने लगी। यथा लता विटप माँगे मधु च्यवही। मन भावतो धेनु पय स्रवही। ससि सपन्न सदा रह धरनी। इत्यादि। सोहाई कामधेनु कहने का यह भाव है कि कामधेनु तो विष माँगने से विष देती है पर सोहाई कामधेनु अनर्थ की याचना को नही पूरा करती।

पाप से ही दु ख होता है। जब राज्य मे पाप का लेश नही रह गया तब सब दु खो से रहित सुख की प्राप्ति प्रजा को हुई। नही तो सुख मे कुछ न कुछ दु ख का अनुवेध अवश्य ही रहता। क्योकि विधि प्रपञ्च ही द्वन्द्व से बना हुआ है। यथा राजा तथा प्रजा। राजा प्रजापाल अति वेदविधि था। सो नर नारी भी धर्मशील

---

१ राज्य छीनकर अपने राज्य मे मिला लेना अच्छी नीति नही है। राज्य उतना ही बडा होना चाहिए जिसकी देख रेख स्वय राजा कर सके।

और सुन्दर हो गये। कुरूपता भी पाप का ही परिणाम है। सो प्रजा के रूप मे भी अन्तर पडा।

सचिव धरम रुचि हरिपद प्रीती। नृप हिय हेतु सिखव नित नीती॥
गुरु सुर संत पितर महि देवा। करै सदा नृप सबकै सेवा॥२॥

अर्थ धर्मरुचि मन्त्री की हरि के चरणो मे प्रीति थी। वह राजा के कल्याण के लिए नित्य नीति का उपदेश देता था। गुरु, देवता, सन्त, पितर और ब्राह्मणो की सेवा राजा सदा किया करता था।

व्याख्या राजा का हाल कहकर मन्त्री का हाल कहते है। राजा कर्मयोगी था। मन्त्री भगवद्भक्त था। नीति मे उसकी शुक्र भगवान् की सी गति थी। अत राजा को सदा नीति की शिक्षा दिया करता था। जिससे राजा नीतिमार्ग से विचलित न हो। धर्माविरोधी अर्थ और धर्मार्थाविरोधी काम का सेवन नीति है। जिससे धर्म, अर्थ और काम किसी को पीडा न हो। गुरु, सुर, सन्त, पितर और ब्राह्मण की सेवा से ही सब कुछ मिलता है। इन पाँचो की सेवा राजा स्वय करे। यही नीति है। मन्त्री की शिक्षा से राजा ने क्या क्या किया सो कहते हैं

भूप धर्म्म जे बेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि नाना। सुनै सास्त्र बर बेद पुराना॥३॥

अर्थ वेद ने राजा के लिए जो धर्म बतलाया है, वह सब राजा सुख मानकर करता था। नित्य अनेक प्रकार का दान देता था। सत् शास्त्र और वेद पुराण श्रवण करता था।

व्याख्या स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह। अपने धर्म मे मरना अच्छा है। क्याकि परधर्म भय का देनेवाला है। राजा यदि सन्यास धर्म का पालन करने चले तो वह उसके लिए परधर्म है। उसका फल अत्यन्त बुरा है। भगवद्गीता मे प्रधान्येन यही शिक्षा है। धर्माचरण प्रारम्भ मे विष सा मालूम होता है। पर परिणाम मे अमृततुल्य हैं। सो राजा बडी श्रद्धा भक्ति से स्वधर्माचरण करने मे ही सुख मानता है।

अनेक प्रकार के दान है। सबके लिए विधि है, समय है, फल है। राजा को नित्य दान करना चाहिए। जिस देश जिस काल मे जिस दान का विधान है तदनुसार दान देता था। राजा का कृपण हाना बडा भारी दोष है। शास्त्र, पुराण और वेद के श्रवण का बडा फल है। यही सब प्रकार के कल्याणो का मूल है। इसलिए राजा नित्य इनका श्रवण करता था। यथा वेद पुराण वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं। राजा की श्रद्धा धर्म पर देखकर प्रजा भी धर्मात्मा हो जाती है।

नाना बापी कूप तडागा। सुमन बाटिका सुदर बागा॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए॥४॥

अर्थ उसने बहुत सी बावली, कुएँ, तालाव, फुलवारी, सुन्दर फलवाले बाग बनवाये। ब्राह्मणो के लिए घर देवताओ के लिए सुन्दर मन्दिर तथा सब तीर्थों को विचित्र बनाया।

व्याख्या 'पुण्य के दो विभाग हैं १ इष्ट और २ पूर्त। सो पहिले पूर्त कहते है। सर्वसाधारण के जल के सुभीते के लिए वापी, कूप और तडाग फूल के लिए वाटिका फल के लिए बाग। वेद की रक्षा के लिए विप्रभवन, उपासना के लिए सुरभवन और तरने के लिए तीर्थों को ही बहुत ही सुन्दर बनाया। वापी कूपतडागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमाराम पूर्तमित्यभिधीयते। अर्थ बावली, कुवाँ, ताlाब, देवमन्दिर, अन्न का सदाव्रत, बाग, इन सबो को पूर्त कहा जाता है।

दो जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग ॥१५५॥

अर्थ वेद और पुराणो ने जहाँ तक एक एक बार यज्ञ करने को कहा है। उन्हे सहस्र-सहस्र बार राजा ने अनुराग के साथ किया।

व्याख्या पूर्त कहकर इष्ट कहते है। श्रौत और स्मार्त यज्ञा का विधान है। वे अनेक प्रकार के हैं। उनम से कोई यज्ञ ऐसे हैं जिन्हे एक ही बार करने की आज्ञा है। जैसे राजसूय का कुल भर मे एक ही पुरुप एक ही बार कर सकता है। उसे भी राजा ने अनुराग के साथ सहस्रो बार कर डाला। अन्य यज्ञ कितने किये कौन कह सकता है। एकाग्निकर्म हवन त्रेताया यच्च हूयते। अन्तर्वेद्या च यद्दानमिष्ट तदभिधीयते। अर्थ एकाग्नि कर्म हवन और त्रेताग्नि मे जो हवन किया जाता है तथा अन्तर्वेदी म जो दान किया जाता है उसे इष्ट कहते हैं।

हृदय न कछु फल अनुसधाना। भूप विवेकी परम सुजाना॥
करै जे धरम करम मन बानी। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी॥१॥

अर्थ हृदय मे फल की कोई भावना भी नही थी। राजा बडा विवेकी और जानकार था। ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो धर्म करता था सब वासुदेवार्पण करके ही करता था।

व्याख्या फल की कामना से कर्म करनेवालो को शास्त्रा ने कृपण बतलाया है। यथा कृपणा फलहेतव। गी। राजा भानुप्रताप फल की कोई कामना नही रखता था क्योकि विवेकी था। समझता था कि मेरा कर्म मे ही अधिकार है फल मे नही है। यथा कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेपु कदाचन। गी। परम सुजान था। उस फल को वासुदेवार्पण करता था। वासुदेवार्पण करने से कोटि गुण अधिक फल होता है और न करने से श्रममात्र ही फल होता है। यथा हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा।

चढि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा॥
बिध्याचल गभीर बन गएऊ। मृग पुनीत बहु मारत भएऊ॥२॥

अर्थ एकबार वह राजा एक अच्छे घोडे पर सवार होकर शिकार की सब तैयारी करके विन्ध्याचल के गम्भीर वन मे गया। और उसने बहुत से मेध्य मृगो को मारा।

व्याख्या राजा को मृगया का व्यसन था। शिकार के लिए तेज घोडा चाहिए। इसलिए शीघ्रगामी घोडे पर सवार हुआ। शिकारी कुत्ते, बाजपक्षी आदि जो कुछ वस्तु मृगयोपयोगी थे उन्हे साथ लिया। व्यसन इतना चढा बढा था कि कैकेय देश से शिकार के लिए विन्ध्याचल चला आया। सो भी घोडे पर। उसने वृथा हिंसा न की। केवल मेध्य पशुओ को मारा। मेध्य पवित्र पशु उसे कहते हैं जिसके मासचर्मादि ग्राह्य हो। यथा पावन मृग मारहिं जिय जानी।

फिरत विपिन नृप दीख बराहू। जनु वन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड विधु नहि समात मुख माही। मनहु क्रोध वस उगिलत नाही ॥३॥

अर्थ वन मे घूमते हुए राजा ने एक सुअर देखा। मानो वन मे छिपने पर भी चन्द्रमा को राहु ग्रसे हो। चन्द्रमा बडा होने से उसके मुख में न समाता हो। और वह क्रोध के वश होकर उसे उगलता न हो।

व्याख्या वन मे घूमते घूमते उसे एक सूअर दिखाई पडा। अद्भुत सूअर था। मालूम होता था कि यह राहुग्रह है। इसके डर से चन्द्रमा आकाश छोडकर वन मे छिपे। पर यहाँ भी उसने पहुँच कर ग्रस लिया। परन्तु चन्द्रमा बडे थे और वह एक ही ग्रास करना चाहता था उसके मुख मे समाते नही थे। पर वह भी मारे क्रोध के उगलता नही था।

कोल कराल दसन छवि गाई। तनु विसाल पीवर अधिकाई ॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित विलोकत कान उठाएँ ॥४॥

अर्थ सूअर के कराल दाँतो की छवि कही गई। शरीर भी उसका चरबी की अधिकता से बडा भारी था। घोडे की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर आश्चर्य से देखता था।

व्याख्या सूअर का मुख राहु के वर्ण सा काला था। उसके दोनो दाँत दोनो ओर चन्द्रमा की कला की भाँति उज्वल थे। मालूम होता था कि चन्द्रमा का मध्य भाग तो राहु के मुख मे है। पर चन्द्रमा के बडे होने से उनके दोनो किनारे बाहर निकले हुए है। उसके कराल दाँतो की बडी शोभा हो रही थी। उसका शरीर राहु की भाँति विशाल मालूम होता था। राजा घोडे पर सवार चले आ रहे थे। ऐसी स्थिति मे घोडे की आहट पाकर सूअर कान उठाकर जिस भाँति चकित होकर देखते है उसी भाँति वह भी देखता था।

दो नील महीधर सिखर सम, देखि विसाल वराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाकि न होइ निवाहु ॥१५६॥

अर्थ नीलपर्वत शिखर के समान भारी वाराह सुअर को देखकर राजा ने घोडे को सिटुकक्र चलाया। क्योंकि हाँकने से निर्वाह नही होता था।

व्याख्या सिटुकने का अर्थ धीरे से कोडा लगाना है। ऐसा वाराह राजा ने देखा नही था। इसलिए उसके शिकार का अधिक चोप हुआ। यह जल्दी हाथ न आवेगा। हांकने से जैसा घोडा चल रहा है इस वेग से काम न चलेगा। इसलिए घोडे को धीरे से कोडा लगाया। घोडा बडी जातिवाला था। उसके लिए सिटुकना ही बहुत था।

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ वराह मरुत गति भाजी ॥
तुरत कीन्ह नृप सर सधाना। महि मिलि गएउ विलोकत बाना ॥१॥

अर्थ अधिक वेग से घोडे को आते देखकर वह सूअर वायुवेग से भाग चला। राजा ने तुरन्त बाण सन्धान किया। सूअर बाण देखते ही पृथ्वी मे चिपक गया।

व्याख्या राजा ने देखा कि घोडा इतने वेग से नही चल सकता। भाले से इसका शिकार करना असम्भव है। तीर मे ही इतनी शक्ति है कि इसके वेग का उल्लघन कर सके। अत उन्होंने बाण का सन्धान किया। वाराह ने देखा कि बाण से अधिक वेग मेरा नही हो सकता। इसलिए ऐसा जमीन मे चिपका कि नील महीधरशिखर सा उसका शरीर महीतल के समतल मालूम होने लगा। रव धातुगत्यर्थक है। अत रव शब्द यहाँ गति का बोधक है।

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर बचावा ॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस बस भूप चलेउ सग लागा ॥२॥

अर्थ राजा ने ताक ताक कर तीर चलाया। पर सुअर चालाकी से शरीर बचाता ही गया। इस भाँति प्रकट होते और छिपते शिकार भागा जाता था। राजा भी क्रोध के वश उसका पीछा करता चला।

व्याख्या पहिली चोट खाली गयी। अब राजा खूब निशाना बाँधकर तीर चलाने लगा। पर सूअर भी चालाकी से शरीर बचाता ही गया। सभी वार खाली गये। इतने बडे रणपण्डित के सभी वारो का खाली जाना भी असाधारण बात थी।

वह शिकार कभी दिखाई पडता था। कभी दृष्टि से ओझल हो जाता था। एकदम ओझल हो जाय तो भी राजा निराश होकर लौट जाता। पर वह दिखाई भी पडता जाता था। सभी वारो के खाली जाने पर राजा को नैराश्य के स्थान पर क्रोध हुआ और उसने हठ करके पीछा किया। विचार से काम न लिया।

गएउ दूरि घन गहन बराहू। जहँ नाहिन गज बाजि निबाहू ॥
अति अकेल बन बिपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ॥३॥

अर्थ सूअर दूर जाकर घने जगल मे घुसा जहाँ हाथी घोडे का निर्वाह

नही था। राजा बिल्कुल अकेला था और वन मे बडा कष्ट था। फिर भी उसने शिकार का पीछा न छोडा।

व्याख्या · दो एक आदमी के साथ रहते भी राजा अकेला ही समझा जाता है। यहाँ तो उसके साथ कोई भी नही था। इसलिए अति अकेल कहते हैं। वन मे पानी तक का ठिकाना नही। घने जगल मे सूअर का पीछा करना महा कष्टकर कार्य था डरपहि धीर गहन सुधि आये इसलिए कहते हैं कि बनविपुल कलेसू। फिर भी राजा उसका पीछा करने से विरत न हुआ।

कोल विलोकि भूप बड धीरा। भागि पैठ गिरिगुहा गभीरा ॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महावन परेउ भुलाई ॥४॥

अर्थ सूअर ने देखा कि राजा बडा धीर है। वह भागकर पर्वत की गहिरी गुफा मे घुस गया। उसमे राजा का घुसना असम्भव था। सो अत्यन्त पछताकर लौटा। बडा भारी वन था। उसमे रास्ता भूल गया।

व्याख्या सूअर ने देखा कि राजा बडा धीर है। यह प्राण न छोडेगा तो भागकर पर्वत के गहरे खोह मे घुस गया। राजा ने देखा कि इस गहरी गुफा मे मनुष्य की गति ही नही है। इसलिए पीछा करने से विरत होना पडा। बहुत पछताया कि सम्पूर्ण परिश्रम ही व्यर्थ पड गया। परन्तु लौटते समय उस महावन मे मार्ग भूल गया। शिकारी राजा साधारण वन मे रास्ता भूलनेवाला नही था। परन्तु महावन मे बडी दूर चला गया था इसलिए राह भूला।

दो खेद खिन्न छुद्धित तृपित, राजा वाजि समेत।
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत ॥१५७॥

अर्थ राजा खेद से खिन्न, भूखा, प्यासा घोडे के साथ व्याकुल होकर नदी तालाब ढूँढता था। और पानी बिना अचेत हो रहा था।

व्याख्या खेदखिन्न से मन की गति कही। क्षुधित तृपित से प्राण की गति कही। घोडे के भूखे प्यासे होने से स्वस्थ सवार भी बेकार हो जाता है। कि पुन दोनो भूखे प्यासे हो गये थे। भूख तो सह्य है, परन्तु प्यास से तो प्राण आकुल हो उठता है। व्याकुल होकर खोजने से जानी हुई वस्तु नही मिलती। यहाँ तो महावन मे सरित सर खोजना ठहरा। राजा की दयनीय अवस्था हो रही थी।

फिरत विपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिवेषा ॥
जासु देस नृप लीन्ह छुडाई। समर सेन तजि गयउ पराई ॥१॥

अर्थ वन मे फिरते हुए एक आश्रम देखा। वहाँ एक राजा कपट से मुनिवेष मे रहता था। उसके देश को राजा भानुप्रताप ने छीन लिया था। क्योकि वह समर में सेना को छोडकर भाग गया था।

व्याख्या उस बडे और घने जगल मे एक आश्रम दिखाई पडा। उसमे कपट से मुनि वेष मे एक राजा रहता था। अर्थात् इस अवस्था मे भीतर से वह राजा

ही था। कपट से मुनिवेप बनाए था। वह भानुप्रताप का शत्रु था। क्योंकि इन्होंने उसका राज्य छीन लिया था। और वह प्राणभय से लडाई के मैदान मे फौज छोडकर भाग गया था। कुछ लोगो का मत है कि उसका नाम समरसेन था। वह सेना को छोडकर भाग गया था। सेन शब्द देहलीदीपकन्याय से दोनो ओर लगेगा। इस भाँति अन्वय होगा कि समर सेन तजि गयउ पराई। राजा भानुप्रताप ने किसी का राज्य नही लिया था। लै लै दण्ड छाडि नृप दीन्हे। पर इसके देशत्याग से इसका राज्य छीन लिया। यह इस भय से कि राजा बडा नीतिज्ञ है। मेरा पता लगाये बिना न छोडेगा। इतने घने वन मे मुनि के वेप से छिपा बैठा था।

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी ॥
गयउ न गृह मन बहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥२॥

अर्थ भानुप्रतापका अनुकूल समय जानकर और अपना अत्यन्त प्रतिकूल समय अनुमान करके वह भागा था। घर भी नही गया। और वह अभिमानी राजा भानुप्रताप से मिला भी नही।

व्याख्या एक ही समय किसी के लिए अच्छा और किसी के लिए बुरा होता है। दिग्विजय के समय जब राजा भानुप्रताप अपनी सेना के साथ इसके राज्य मे गया तो यह सेना लेकर उसका सामना करने को आया। पर समराङ्गण मे भानुप्रताप की सेना देखकर साहस छूट गया। जान लिया कि शत्रु के दिन अच्छे हैं। शत्रु के अच्छे दिन आने से ही अपने बुरे दिन का अनुमान होता है। सो सेना को समराङ्गण मे छोडकर भाग गया। इसी से उसका पता न चला। यदि न भागता और भानुप्रताप से जा मिलता तो इससे दण्ड लेकर राजा भानुप्रताप छोड देता। पर यह अभिमानी था। भानुप्रताप से नही मिला और ग्लानि क कारण घर भी नही गया।

रिस उर मारि रक जिमि राजा। बिपिन बसइ तापस के साजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरवि तेहि तब चीन्हा ॥३॥

अर्थ मन मे क्रोध मारकर वह राजा दरिद्र की भाँति तपस्वी का वेप बनाकर वन मे बसता था। राजा भानुप्रताप उसी के पास गया। उसने पहिचान लिया कि यह भानुप्रताप है।

व्याख्या तपस्वी के कोई गुण उसमे नही थे। भीतर राजस क्रोध भरा था। राजा होकर दरिद्र की भाँति रहता है। भानुप्रताप के भय से वन मे तपस्वी का स्वाँग बनाये हुए काल की प्रतिज्ञा कर रहा था। भानुप्रताप उस आश्रम म पहुँचा। उसके पास गया। वह बूढा हो गया था। दृष्टि घट गई थी। जब भानुप्रताप निकट गया तब उसने पहिचान लिया कि यह भानुप्रताप है। दूर से पहिचान पाता तो सम्भवत वहाँ से भी भाग खडा होता। पर अब भागने का समय नही रह गया।

राउ तृपित नहि सो पहिचाना। देखि सुबेप महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥४॥

अर्थ . राजा प्यासा था। उसे पहिचान न सका। सुन्दर वेष देखकर जाना कि यह कोई महामुनि है। घोडे से उतरकर प्रणाम किया। फिर भी परम चतुर राजा ने अपना नाम न बतलाया।

व्याख्या राजाओं के पास शत्रु, मित्र तथा मध्यस्थ सभी राजाओ के चित्र रहते है। अत एक राजा दूसरे को बिना मुलाकात के ही पहिचान लेते हैं। भानुप्रताप यदि भूख प्यास से विकल न होता तो उसे पहिचान लेता। वह व्याकुल था समझा कि उतने घने जगल मे सिवा मुनि के और कौन रह सकता है। ओर वेष भी महामुनि का सा देखा।

घोडे पर से ही प्रणाम करना अविनय है। नियम है कि अपना गोत्र कहकर बडे को प्रणाम करना चाहिए। सो घोडे से उतरकर प्रणाम तो किया पर धर्मरुचि की शिक्षा के प्रताप से नीति मे बडा चतुर था। प्रणाम करते समय अपना नाम न लिया।

दो. भूपति तृषित बिलोकि तेहिं, सरवरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ ॥१५८॥

अर्थ · राजा को प्यासा देखकर उसने उसे तालाब दिखला दिया। राजा ने घोडे सहित उसमे हर्षित होकर मज्जन और पान किया।

व्याख्या भानुप्रताप को देखते ही वह समझ गया कि यह प्यासा है। अत उनके कुछ कहने के पहिले ही उसने तालाब दिखला दिया। पीने का पानी दुर्लभ था। सो तालाब मिल गया। इससे हर्षित होकर राजा ने उसमे मज्जन किया और पानी भी पीया। तथा घोडे को पानी पिलाया और नहलाया। कोई साथ नही है। अत घोडे की सेवा स्वय करनी पडी।

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ ॥
आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥१॥

अर्थ · सब थकावट मिट गई। राजा सुखी हुआ। तपस्वी अपने आश्रम मे उसे ले गया। सूर्यास्त जानकर आसन दिया फिर तपस्वी जी कोमल वाणी बोले।

व्याख्या राजा बिना जल के अचेत था। सो तालाब मिलने से मज्जन किया। पान किया। इसलिए कहते हैं कि थकावट मिटी और राजा सुखी हुआ। यथा मज्जन कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। जबतक राजा स्नानादि करते थे तबतक तपस्वी जी वही थे। निश्चिन्त होने पर अपने आश्रम पर ले गये। यह राजा का सत्कार है। सूर्यास्त होने पर जब अधेरा हो चला तब आसन दिया और कोमल वाणी बोले। तपस्वी जी को भय हुआ कि राजा चैतन्य हुआ है। कही मुझे पहिचान न ले। इसलिए सूर्यास्त के पहिले दूर ही दूर थे। बोले तक नही। राजा आसन पर बैठा नही। अभी घोडे की रास पकडे खडा है।

को तुम्ह कस वन फिरहु अकेले। सुदर जुवा जीव पर हेलें[१] ॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरे ॥२॥

अर्थ तुम कौन हो ? सुन्दर युवा होकर जानपर खेले हुए अकेले वन मे क्यो घूम रहे हो। तुम मे चक्रवर्ती के लक्षण है। तुम्हे देखकर मुझे बडी दया आई।

व्याख्या जब राजा आ ही गया तो उससे बातचीत करनी ही चाहिए। न करना भी ठीक नही। अत पूर्व परिचय छिपाता हुआ नाम पूछता है। इतने बडे राजा का अकेले वन मे घूमने के लिए कोई विशेष कारण होना चाहिए। वानप्रस्थ की अवस्था नही है। इसलिए पूछता है कि अभी तो तुम युवा हो। किस सकट मे फँस गये हो कि अकेले जानपर खेलकर इस वन मे आये। जिसके भय से इतना भयभीत था सो स्वय आ पहुँचा। अत उनके आने का अभिप्राय जानने के लिए तथा उनकी परिस्थिति जानने के लिए प्रश्न करता है।

यदि राजा को सन्देह उठे कि इसने कैसे जाना कि मैं बडा राजा हूँ तो उसके निराकरण के लिए कहता है कि तुममे तो चक्रवर्ती के लक्षण है मैंने सामुद्रिक विद्या से जाना। ऐसे वन मे तो जिसे प्राण देना होता है वही आता है। अत तुम्हारे किसी भारी सकट म फँसने की आशङ्का से मुझे अति दया लगी।

नाम प्रताप भानु अवनीसा। तासु[२] सचिव मै सुनहु मुनीसा ॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बडे भाग देखेउँ पद आई ॥३॥

अर्थ हे मुनीश ! सुनो। भानुप्रताप नाम का जो राजा है उसका मैं मन्त्री हूँ। शिकार के लिए घूमते हुए मैं राह भूल गया। मेरा बडा भाग्य था कि आकर चरणो के दर्शन किये।

व्याख्या राजनीति के अनुसार राजा अपने को छिपाना चाहते हैं। पर लक्षण देखकर तपस्वी चक्रवर्ती कह रहा है। अब भेद कैसे छिपे ? इसलिए राजा ने अपने को भानुप्रताप का मन्त्री बतलाया। क्योकि मन्त्री के भी लक्षण राजा से ही होते हैं। कदाचित् किसी मन्त्री से इनका परिचय हो। इसलिए नाम नही बतलाया। कहने लगा कि कोई विपत्ति कारण नही है। मृगया के लिए आया था। भाग्य यहाँ खीच लाया।

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौ कछु भल होनिहारा ॥
कह मुनि तात भएउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा ॥४॥

अर्थ हमको तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जान पडता है कि होनहार कुछ अच्छा है। मुनि ने कहा कि बेटा ! अँधेरा हो गया। और तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन है।

---

१ खधपयमा ह इस सूत्र से खेलें का हेलें हुआ।
२. यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है।

व्याख्या बडे भाग्यशाली बात को स्पष्ट करता है कि नगरवासियो को ऐसे विरक्त का दर्शन कहाँ से हो ? और साधु का दर्शन अमोघ है। कभी व्यर्थ जाता नही।

कपटमुनि ने समझ लिया कि यह नही पहिचान सका। और मुझसे कुछ लाभ की भी आशा इसे बँध गई है। हो सके तो फन्दे मे लाकर इससे पलटा चुकाना चाहिए। अत ठहरने के लिए आग्रह करता है। कहता है कि तुम अपने नगर से बहुत दूर निकल आये। कैकय देश यहाँ से ७० योजन पर है।

दो निसा घोर गभीर वन, पथ न सुनहु सुजान।
वसहु आज अस जानि तुम्ह, जाएहु होत विहान ॥१५९॥

अर्थ घोर रात्रि है। जगल घना है। रास्ता कोई नही। हे सुजान ! ऐसा जान के आज तुम यही ठहर जाओ। प्रात काल होते ही चले जाना।

व्याख्या कपटमुनि ने देखा कि अभी यह विश्वास नही करता है। यहाँ से जाना चाहता है। अपना प्रयोजन कोई बतला नही सकते। अत इसी के कल्याण का ओट पकडना चाहिए। अत राजा को समझाता है कि घोर वन मे दिन को चलना कठिन है। अँधेरी रात मे कोई कैसे चलेगा। पगडडी पकडकर किसी भाँति चलना हो सकता है। पर यहाँ वह भी नही। कोई आता जाता नही। अत रात को वन पार करना अशक्य है। अत रात यही बिताओ।

दो तुलसी जसि भवितव्यता, तैसइ मिलै सहाइ।
आपुन आवइ ताहि पहि, ताहि तहाँ लैजाइ ॥१५९॥ क

अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं जैसा होनहार होता है वैसा सहाय मिल जाता है। वह स्वय उसके पास आजाता है। और उसे भवितव्यतावाल को वहाँ भवितव्यता के पास पहुँचा देता है।

व्याख्या भानुप्रताप का नाश होना है। यही भवितव्यता है। और वह कपटीमुनि के आश्रम पर राजा के पहुँचने पर ही सिद्ध होगी। और वह कैकय दश से सत्तर योजन पर घोर वन म है। राजा के वहाँ जाने की कोई सम्भावना नही है। राजा सदा की भाँति मृगया शिकार के लिए जाता है। वहाँ कालकेतु असुर राजा का परम वैरी सूअर बनकर भवितव्यता का सहाय होकर आता है। और राजा को ल जाकर कपटी मुनि तक पहुँचा देता है। जहाँ राजा स्वय कपटी मुनि के कपट का शिकार हो जाता है।

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। बाधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥
नृप बहु भाँति प्रससेउ ताही। चरन वदि निज भाग्य सराही ॥१॥

अर्थ आज्ञा सिर पर धारण करके राजा ने कहा स्वामिन् ! बहुत अच्छा। और घोडे को पेड से बाँधकर बैठ गया। राजा ने बहुत भाँति से उसकी प्रशसा की। और उसके चरणो की वन्दना करके अपने भाग्य को सराहा।

व्याख्या . अभी तक राजा जाने को तैयार था। अपरिचित स्थान मे ठहरना नही चाहता था। अत घोडे को कही बाँधा नही था। अब मुनिजी की आज्ञा ठहरने की हुई। तो उसे मानकर घोडे को पेड मे बाँध दिया। और स्वय मुनिजी के दिये हुए आसन पर बैठ गया।

राजा ने देखा कि इस सूनसान जगल मे एकाकी रहनेवाला यह निश्चय ही कोई महात्मा है। केवल लक्षण देखकर मुझे चक्रवर्ती जान लिया। और अपरिचित होने पर भी मुझपर इतनी कृपा करता है। अत उनकी वडी स्तुति की। प्रणाम किया। उनके दर्शन से अपने को भाग्यवान् माना। समझा कि इस रास्ता भूलने से मेरा हित ही हुआ।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करौ ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥२॥

अर्थ फिर सुन्दर और कोमल वाणी बोला कि प्रभो! पिता जानकर मै ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश मुझे बेटा और सेवक जानकर हे नाथ! अपने नाम को वखानकर कहिये।

व्याख्या राजा ऐसी वाणी बोला जो कोमल और सोहाई हो। किसी विरक्त से नाम ग्राम पूछना ढिठाई है। ससार से सम्बन्ध तोडकर जो जगल मे बैठा है उससे व्यवहारस्थापन के लिए नाम ग्राम पूछने का किसी को क्या अधिकार है? और राजा पूछना चाहता है। अत ऐसी कोमल वाणी से पूछता है कि अरुन्तुद न मालूम हो। पहिले सम्बन्ध कायम करता है कि मुनि होने से आप प्रभु हैं। राजा होने से मैं सेवक हूँ। आपने 'बेटा' कहा है। मैं आपको पिता मानता हूँ। यद्यपि आप मुनीश हैं। फिर भी मुझे सुत और सेवक होने से अधिकार है कि नाम पता पूछूँ। क्योकि अपने स्वामी और पिता के परिचय की किसे जिज्ञासा नही होती। ऐसी अवस्था मे ढिठाई क्षम्य है।

तेहि न जान नृप नृपहिं सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा ॥३॥

अर्थ राजा ने उसे नही जाना। पर वह राजा को जान गया। राजा सुहृद था। पर वह कपट मे सयाना था। एक तो बैरी तिस पर क्षत्रिय और उसमे भी राजा। छल वे वल से अपना काम किया चाहता है।

व्याख्या राजा भी सयाना था। परन्तु शुद्धहृदय था। और यह मुनि कपट मे सयाना था। दूसरी बात यह थी कि राजा उसे पहिचान न सका। और उसने राजा को पहिचान लिया था। इस कारण से राजा उसकी माया मे जा फँसा। एक तो बैरी बुरे होते ही हैं। उसमे भी क्षत्रिय बिना बदला लिये नहीं रह सकता। उसमे भी यदि राजा हो तो निश्चय बल से काम लेगा।

समुझि राज सुख दुखित अराती । अवाँ अनल इव सुलगै छाती ॥
सरल वचन नृप के सुनि काना । बयर सँभारि हृदय हरषाना ॥४॥

अर्थ : वह शत्रु राजसुख का स्मरण करके दु खित था। उसकी छाती आवें की आग की भाँति सुलगती थी। राजा के सरल वचन कान से सुनकर वैर को सँभालकर हृदय में हर्षित हुआ।

व्याख्या : राजा के वैरी होने मे विशेषता यह है कि उसे पदे पदे राजसुख याद पडेगा। कलेजे मे आग धधका करेगी। वह बदला लेने मे किसी पुण्य-पाप का विचार न करेगा।

राजा सुहृद था इसलिए सरल वचन बोला। यह कपट में सयाना था। इसलिए वैर को संभालकर हर्षित हुआ। वैर सभालने का भाव यह है कि उसका हर्ष राजा की सरलता के कारण नही है। वल्कि राजा का अपने प्रति विश्वास देखकर है। वैर सभाला बदला लेने के लिए। यह देखकर कि राजा वडा सरल मालूम पडता है, इसके सरल वचनो मे चित्त न पिघले अत' वैर को सभाला कि इसी ने मेरा सर्वस्व हरण करके मुझे वनचारी वना रक्खा है। कान से सुनने का भाव यह है कि उसे हृदय मे स्थान नही दिया।

दो. कपट वोरि वानी मृदुल, वोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अव, निर्धन रहित निकेत ॥१६०॥

अर्थ वह युक्ति से कोमल वाणी कपट से पगी हुई वोला मेरा नाम तो अव भिखारी, निर्धन और गृहहीन है।

व्याख्या वह कपटमुनि भी मृदु वाणी वोला। पर सोहाई नही थी। क्योकि कपट से डूवाडूव थी और ऐसी युक्ति से बोला कि उससे स्पष्ट हृदय का उद्गार भी प्रकट हो। और राजा यह समझे कि मुनिजी अपने प्रभाव को छिपा रहे हैं। वडे गलित अभिमान हैं। अव का भाव यह कि किसी समय राज्य था। कोप था, दुर्ग था। आज मै भिखारी निर्धन और गृहहीन हूँ। पर राजा यह समझें कि अपने त्याग को गरीवी के रूप मे छिपा रहे है।

कह नृप जे विग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
सदा रहहि अपनपौ दुराएँ। सव विधि कुसल कुवेप बनाएँ ॥१॥

अर्थ · राजा ने कहा कि जो विज्ञान के निधान है और आपके सदृश गलित अभिमान है वे अपने को सदा छिपाये रहते हैं। यद्यपि सव प्रकार से कुशल : निपुण है पर कुवेप वनाये रहते हैं।

व्याख्या . विएहु कुवेप साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत[1] हनुमानू।

---

१. आल्विल्लोल्लालवन्तोन्तामतुप । आलु इल्ल, उल्ल, आल, वन्त, इन्त इत्येत आदेशा मतुप स्थाने भवन्ति। मतुप् के स्थान मे वन्त आदेश होता है। इससे जाम्बवन्त ऐसा रूप हुआ। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से वकार का लोप होकर जामवत रूप सिद्ध हुआ।

जामवन्त और हनुमान् विज्ञान के निधान साक्षात् ब्रह्मदेव और शिव हैं। उन्हे अभिमान नही है। भालू वन्दर बने फिरते हैं। इसी भाँति आप भी विज्ञान के निधान और गलित अभिमान हैं। लोकमान्यता के भय से भिखारी, निर्धन और निकेतरहित बने हुए हैं।

तेहि ते कहहि सत श्रुति टेरे। परम अकिंचन प्रिय हरि केरे ॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत विरंचि सिवहि सदेहा ॥२॥

अर्थ इसी से वेद और सन्त पुकारकर कहते हैं कि परम अकिंचन बडे गरीब हरि को प्रिय हैं। तुम्हारे ऐसे निर्धन, भिखारी और गृहहीन से ब्रह्मा और विष्णु को सन्देह होता है।

व्याख्या सन्त और श्रुति प्रमाण हैं। सो पुकारकर कहते हैं जिनसे सब कोई सुनलें कि परम अकिंचन हरि को प्रिय हैं। परम अकिंचन वे ही हैं जिन्हे अपना कुछ नही है। इस जगत् मे सब मानने की बात है। जिसे एक लँगोटी और तूवा है और उसमे उसकी अह और मम बुद्धि है तो वह अकिञ्चन नही है। और जिसे सब कुछ है पर किसी पर अह मम बुद्धि नही है वही अकिञ्चन है। यथा राम गरीब नेवाज हैं ते गही न गरीबी। गरीब होने से गरीबी नही होती। गरीबी ग्रहण की जाती है। गरीबी साधु का एक लक्षण है। विज्ञाननिधान होकर गलितअभिमान होना यही सच्ची गरीबी है। नही तो अति गरीब के पास भी कुछ न कुछ रहता ही है।

राजा कहते हैं कि आप ऐसे अधन, भिखारी और गृहहीन ही ब्रह्म रुद्र पद पाते हैं। अत आप ऐसे महापुरुषो से उन्हे सन्देह रहता है। ज्ञानी देवता हैं। अत उन्ह त्रास नही होता। सन्देह मात्र होता है। इन्द्र भोगी है। अत उन्हे तो त्रास हो जाता है। यथा सुनासीर मन महुँ अति त्रासा। चहत देवरिसि मम पुरवासा।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करिअ अब स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु विषय विस्वास विसेखी ॥३॥

अर्थ आप जो हो सो हो मैं आपके चरणो को नमस्कार करता हूँ। हे स्वामिन्। मुझपर अब कृपा करिये। कपट मुनि राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने ऊपर विश्वास देखकर

व्याख्या भाव यह है कि मुनिजी नाम नही बतलाना चाहते तो हर्ज ही क्या है। मुझे तो इनको प्रणाम करने से मतलब है। अत कहते हैं कि आप चाहे जो हो मैं आपके चरणो मे प्रणाम करता हूँ। राजा समझता है कि ये कोई बडे ऊँचे दर्जे के महात्मा हैं। तभी तो ऐसे घोर वन म रहते हैं। भाग्य से मेरी पहुँच इन तक हो गई है। नही तो इन तक कौन पहुँचता है? मैं भी फिर इन तक पहुँच पाऊँगा इसकी आशा ही क्या है? ये अपना नाम नही बतलाना चाहते तो मैं मिलना क्यो चाहेंगे। अत अवसर न चूकना चाहिए। अलभ्य लाभ तो इनसे ही

होगा। अत राजा कृपा करने की प्रार्थना करते हैं। राजा ने स्वय उनके पूछने पर अपना नाम नही बतलाया था। अत मुनिजी के अपने नाम न बतलाने पर असन्तुष्ट होने का कोई कारण नही था। मुनिजी ने देखा कि यह स्वाभाविक साधुसेवी है। यथा गुर सुर सत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सबकर सेवा। मुझपर विशेष विश्वास कर रहा है। ईश्वरकोटि म मान रहा है। अत

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई॥
सुनु सति भाउ कहौ महि पाला। इहा बसत बीते बहु काला॥४॥

अर्थ सब प्रकार से राजा को अपना बनाकर अधिक स्नेह प्रकट करता हुआ बोला राजन् मै सत्यभाव से कहता हूँ सुनो। यहाँ रहते मुझे बहुत दिन बीत गये।

व्याख्या धूर्तों का पहिला काम यह होता है कि अपने ऊपर विश्वास दृढ करा लेते है। तब अपने कपटजाल के प्रसार म हाथ लगाते हैं। मन्थरा ने पहिले कैकेयी का विश्वास अपने ऊपर दृढ कर लिया। तब अपनी माया फैलायी। यथा सजि प्रतीति बहु विधि गढि छोली। अवध साढ साती तब बोली। इसी भाँति कपटमुनि ने जब सब प्रकार से उसे अपना बना लिया। वह उसको ब्रह्मा रुद्र की कोटि मे समझने लगा। बिना परिचय जाने अत्यन्त विश्वास करने लगा। तब अधिक स्नेह जनाता हुआ बोला। स्नेह तो उसने पहिल ही जनाया था। यथा *चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे।* पर अब अधिक जनाया। अपना परिचय देना प्रारम्भ किया।

बोला कि अब तुमसे न छिपाऊँगा। पुत्र या सेवक से छिपाना ठीक नही। सत्य भाव से कहता हूँ कि यहाँ रहते बहुत काल बीत गया। भाव यह कि तप से मेरा मन विरत होता ही नही। अब भी तप की ही इच्छा है। बहुत दिन एक स्थान मे रहने से ख्याति हो ही जाती है। अत कहता है

दो अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मै न जनावौ काहु॥
लोक मान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु॥१६१॥क
सो तुलसी देखि सुबेखु, भूलहि मूढ न चतुर नर।
सुदर केकिहि पेखु, बचनसुधा सम असन अहि॥१६१॥

अर्थ अबतक मुझ कोई मिला नही और मै किसी को जनाता नही। क्योकि लोकप्रतिष्ठा आग के समान तपस्या के वन को जला डालती है।

तुलसीदास जी कहते हैं कि सुन्दर वेष देखकर मूढ लट्टू होते है। चतुर लोग नही। सुन्दर मोर का देखा अमृत सी वाणी है पर साँप को खा जाता है।

व्याख्या इतने दिन मुझ यहाँ रहते हुए पर पहिल मनुष्य तुम ही हो जो यहाँ तक आये। यह स्थान ही ऐसा मैने चुना है कि यहाँ किसी की गति ही नही है। और मै स्वय लोगो स मिलना नही चाहता। अत मुझको कोई जानता ही नही है। इसी से तप का सञ्चय मुझम है। लोकप्रसिद्धि तपस्वी के लिए विष है।

वह तपस्या के वन को आग की भाँति जला देती है। यदि किसी तपस्वी की प्रसिद्धि हो तो समझना चाहिए कि उसके तपस्या के वन मे आग लगी हुई है। लोकप्रसिद्धि उसी का उजेला है।

मुनि का वेप है। ऐसे घने जगल मे रहता है जहाँ मनुष्य की गन्ध नही। ऐसी वैराग्य युक्त वाणी बोलता है। ऐसे पुरुप के महामुनि न मानने का कोई कारण नही है। फिर भी श्रीग्रन्थकार सावधान करते है। ऐसी अवस्था म भी लट्टू हो जाना मूढ का काम है। ये सब साधु के लक्षण नही हैं। न लिङ्ग धर्मकारणम्। क्योकि खल लोग इन सब बातो की नकल कर लते हैं। मोर को देखो कैसा सम्पूर्ण शरीर मे तिलक छापा लगाये है। कितना मनोहर है। अमृत सी वाणी बोलता है। उसे देखकर कौन समझेगा कि यह साँप खाता होगा। अत वेपवाणी आदि बाहरी चिन्हो का कोई मूल्य नही है। सन्त मे एक लक्षण ऐसा है कि उसकी नकल किसी के किये हो नही सकती। ग्रन्थकार ने स्वय उसे लिख दिया है। यथा उमा सत क इहै बडाई। मद करत जो करै भलाई।

तातें गुपुत रहौ जग माही। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाही ॥
प्रभु जानत सब बिनहि जनाए। कहहु कवन सिधि लोक रिझाए ॥१॥

अर्थ इसी कारण मैं ससार मे छिपा रहता हूँ। मुझे हरि को छोडकर कोई प्रयोजन ही नही है। और प्रभु बिना जनाये ही सब जानते हैं। लोगा के रिझाने मे भला बताओ क्या फलसिद्धि है ?

व्याख्या तपोवृद्धि के लिए गुप्त रहता हूँ। बिना प्रयोजन किसी कार्य को कोई नही करता। मुझे तो केवल हरि से प्रयाजन है। लोगो से कोई प्रयाजन नही। तो फिर मैं उनसे क्यो मिलूँ प्रयोजनमनिर्दिश्य न मन्दाऽपि प्रवर्तते। तप आदिक जो किया जाता है सो सब हरि के लिए और वे बेजनाए ही सब जानते हैं। अत उनको भी जनाने की आवश्यक्ता नही। सब विधि से गुप्त रहना ही ठीक है। इसीसे मैं नाम भी नही बतलाता था। अपना परिचय छिपाता था। परन्तु अब देखता हूँ कि

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीत मोहि पर तोरे ॥
अब जौ तात दुरावौ तोही। दारुन दोप घटै अति मोही ॥२॥

अर्थ तुम शुचि हो, सुमति हो अत मुझे परम प्रिय हो। और मुझपर तुम्हारी प्रीति प्रतीति है। अब यदि तुमसे छिपाव करूँ तो मुझे दारुण कठिन दोप लगेगा।

व्याख्या तुम शुचि हो, निष्कल्मप हो, तुम्हे वदविदित मार्ग मे सात्त्विकी श्रद्धा है। इसलिए तुम सुमति हो। यथा मतिर्नाम वेदविहितमार्गेपु श्रद्धा। शाण्डिल्योपनिपदि। अत मुझे अत्यन्त प्रिय हो। तिस पर तुम्हे मुझपर प्रेम है और विश्वास है। और तुम मुझसे आर्त होकर पूछते हो। नीति यह है कि गूढौ तत्त्व

न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जहँ पावहिं। क्योकि अधिकारी से छिपाने में दारुण दोप है। अत' अब मैं तुमसे नही छिपा सकता।

जिमि जिमि तापसु कथै उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज विस्वासा ॥
देखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बक ध्यानी ॥३॥

अर्थ : जैसे जैसे : वह : तपस्वी उदासीनता कथन करता चला जाता है वैसे ही वैसे राजा को विश्वास उपजता चला जाता है। जब मनसा वाचा कर्मणा उसे : अपने वश मे देख लिया तब वह बकध्यानी तपस्वी बोला।

व्याख्या : सद्गृहस्थ रहते तो हैं प्रवृत्तिमार्ग मे पर निवृत्तिमार्ग की बडी प्रतिष्ठा उनके हृदय मे रहती है। अत वह तपस्वी जितनी उदासीनता अपनी जगत् से दिखलाता है उतना ही राजा का विश्वास जमता चला जाता है। तपस्वी बोलता जाता था और देखता जाता था कि राजा पर कैसा प्रभाव पड रहा है। जब देख लिया कि मनसा वाचा कर्मणा राजा वश मे आगया तब बकध्यानी तपस्वी बोला। बगला नदी के किनारे एक पैर से खडा रहता है। इधर उधर कही नही देखता। उसका ध्यान केवल मछली पर रहता है। इसी भाँति विषय का ध्यान करता हुआ कर्मेन्द्रियो का सयम किये जो स्थित है ऐसे मिथ्याचारी को बकध्यानी कहते है। यथा ' कर्मेन्द्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई ॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी ॥४॥

अर्थ . हे भाई ! मेरा नाम एकतनु है। सुनकर राजा फिर प्रणाम कर बोले मुझे अपना अत्यन्त सेवक जानकर नाम का अर्थ वर्णन करके कहिये।

व्याख्या इतनी बडी भूमिका के बाद तो अपना नाम बताया। और चुप हो गया। नाम एसा बतलाया जिसमें जिज्ञासा के लिए कौतुक बढे। जो बातें कहना चाहता है उसे यदि बिना पूछे कहे तो जमेगी नही। इसलिए प्रश्न का बीज रखकर नाम बतला दिया। एकतनु सुनते ही राजा को जिज्ञासा हुई। फिर कुछ कहना चाहते हैं। इसलिए प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मुझे आप अपना अत्यन्त सेवक जानिये और नाम का अर्थ बखानकर कहिये। भाविनी वृत्ति से अत्यन्त सेवक कहा। राजा अर्थ जानने के लिए आतुर है। समझता है कि अर्थ करने मे ही बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो जायगा। इसलिए कहता है कि मैं अति सेवक हूँ। आप को छोडकर दूसरा स्वामी नही जानता।

दो. आदि सृष्टि उपजी जबहि, तब उतपति भइ मोरि।
नामु एकतनु हेतु तेहिं, देह न धरी बहोरि ॥१६२॥

अर्थ · जब आदि सृष्टि हुई उसी समय मेरी उत्पत्ति हुई। मेरा नाम एकतनु इसलिए पडा कि फिर मैंने देह धारण नही किया।

व्याख्या मेरी उत्पत्ति कल्प के आरम्भ मे हुई। इन्द्र की, देवताओ की, सप्तऋषियो की सृष्टि तो पीछे से मन्वन्तर के आदि मे होती है। तव से कितने अवतार भगवान् के हुए। कितनी वार उन्होने अनेक शरीर धारण किये। पर मेरा वही शरीर चला आता है। मैने दूसरा शरीर नही धारण किया। इसी से मेरा नाम एकतनु है।

जनि आचरजु करहु मन माही। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाही ॥
तप वल तें जगसृजें विधाता। तप वल विस्नु भए परित्राता ॥१॥

अर्थ वेटा! मनमे आश्चर्य न करो। तप से कुछ भी दुर्लभ नही है। तपवल से ब्रह्मदेव ससार की सृष्टि करते है। तप वल से विष्णु पालनेवाले हुए।

व्याख्या · राजा कुछ नही वोला। पर उसके मनमे वडा आश्चर्य हुआ। मानव शरीर इतना स्थायी नही हो सकता। कपट मुनि वरावर राजा के मनोगत भावो को उसके चेहरे से लक्ष्य करता जाता था। तुरन्त वोल उठा। मैं तुम्हारे मन की वात को समझ रहा हूँ। आश्चर्य न करो। तपवल से क्या नही हो सकता? मेरे शरीर को स्थायी[१] तप ने वना रक्खा है। यह सव सृष्टि तप के आधार से है। यथा · तप अधार सव सृष्टि भवानी। प्रारम्भ मे ब्रह्मदेव सृष्टि करने मे असमर्थ थे। आकाशवाणी हुई : तप तप। तव उन्होने वहुत वडा तप किया। तप द्वारा शक्ति-सञ्चय करके यह सृष्टि कर डाली। सृष्टि करने से भी वडा काम उसका पालन करना है। सव जगह से सव कुछ अतन्द्रित होकर सँभाले रहना। मन से भी नही सोचा जा सकता। यथा यदि ह्यहं न वर्त्तेय जातु कर्मण्यतन्द्रित । सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमा प्रजा । यदि एक क्षण भी आलस्य कर तो सृष्टि मे गडवड मच जाय और यह सव प्रजा नष्ट हो जाँय। सो भगवान् तपवल से ही सृष्टि का पालन करते हैं।

तप वल सभु करहिं ससारा। तपते अगम न कछु ससारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा ॥२॥

अर्थ तपवल से शम्भु सहार करते हैं। इस ससार मे तप से कुछ भी अगम नही है। सुनकर राजा को अत्यन्त अनुराग हुआ। तव तो वह पुरानी कथाएँ कहने लगा।

व्याख्या सहार का कार्य भी वडी जिम्मेदारी का है। पालन और सहार दोनो साथ साथ चलता है। विना सहार के पालन और विना पालन के सहार नही होता। सृष्टिक्रम से विपरीत सहारक्रम है। अत अन्त मे क्रमश लय करते हुए सव कुछ ब्रह्म मे लय कर देना सहार है। यह कार्य शम्भु सम्पादन करते हैं। न

---

१. अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघासति। मनु·
अर्थ वेदो का अभ्यास न करने से, आचार का पालन न करने से, आलस्य से और अन्नदोष से मृत्यु ब्राह्मण को मारती है।

तो ब्रह्मा कुलाल की भाँति सब वस्तुओ की रचना करते हैं न विष्णु माँ की भाँति सबका पालन करते है और न शम्भु व्याघ्र की भाँति सहार करते हैं। यह सब कार्य उनके तपोबल से आप से आप होता रहता है। जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका समावेश, उत्पादन, पालन और सहार मे हो जाता है। इसलिए कहते हैं कि तप से इस ससार मे अगम कुछ भी नही है। तप करनेवाला होना चाहिए। इस ससार मे कुछ भी असाध्य नही है। मैं भी उसी तप के बल से शरीर को स्थायी बनाये बैठा हूँ।

राजा को मुनिजी की इन बातो को सुनकर और भी श्रद्धा भक्ति बढी। कपटी मुनि ने देख लिया कि उसकी यह बात भी बैठ गई। तब अपने दीर्घजीवी होने के प्रमाण मे अपनी आँखो देखी की भाँति पुरानी पुरानी घटनाओ का वर्णन करने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका। करै निरूपन बिरति बिबेका ॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी ॥३॥

अर्थ ' कर्म, धर्म के अनेक इतिहास वैराग्य और विवेक का निरूपण करने लगा। उत्पत्ति पालन और प्रलय की कहानियो को बडे बडे आश्चर्य की बातो के साथ वर्णन किया।

व्याख्या पुण्य श्रवण कीर्त्तन की कथा धर्म-इतिहास है। अन्य जीवो की कथा कर्म-इतिहास है। पुराणेतिहास के व्याज से कर्म, धर्म, वैराग्य और ज्ञान का निरूपण ही महात्माओ को इष्ट होता है। ठीक उसी भाँति वह भी निरूपण करने लगा। धार्मिक होना, वैराग्यवान् होना और ज्ञानी होना दूसरी बात है। और इनका निरूपण करना दूसरी बात है। अत निरूपण करना पण्डिताई है। धर्मात्मा विरागी या ज्ञानी होने का लक्षण नही है। देखिये आज कपटी मुनि ने सदा शास्त्र वेद पुराण के श्रवण करनेवाले राजा भानुप्रताप को अपनी धूर्तता के चक्कर मे डाल दिया।

उसने देख लिया कि राजा की श्रद्धा इतनी बढी हुई है कि उसको सब बाते बैठती जायँगी। तब उसने कहानी प्रारम्भ की। झूठी झूठी बाते गढकर सृष्टि स्थिति प्रलय के समय की अत्यन्त आश्चर्यमय घटनाएँ सुनाने लगा।

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आनन नाम कहन तब लयऊ ॥
कह तापस नृप जानौ तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥४॥

अर्थ यह सब सुनकर तो राजा उस तपस्वी के वश मे हो गया। तब वह अपना नाम बतलाने लगा। तपस्वी बोला कि राजा! मै तुम्हे जानता हूँ। किया तो तुमने कपट पर मुझे अच्छा लगा।

व्याख्या कपटी मुनि ने जब देखा कि राजा मनसा वाचा कर्मणा उसके वश हो गया। तब अपना नाम एकतनु बतलाया। राजा उस समय तक उसके वश

मे नही था। अपना नाम छिपाये ही रहा। पर कथा सुनने पर वश मे आया। विचार ही निश्चय करके सब श्रेय का मूल है। और अविचार ही बडी भारी मृत्यु है। राजा ने इस समय विचार को तिलाञ्जलि दे रक्खी है। वह अपनी सिद्धि दिखलाता है कि बिना बतलाये ही मैं सब जानता हूँ। तुमने कपट किया सो भी जानता हूँ। पर वह कपट मुझे बुरा नहीं लगा। क्योकि नीति शास्त्रानुमोदित था। यथा

सो सुनु महीस असि नीति, जँह तँह नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥

अर्थ · राजा। सुन यह नीति है कि राजा अपना नाम जहाँ तहाँ न बतलावें। इसी तुम्हारी नीति निपुणता का विचार करके मुझे तेरे ऊपर बडी प्रीति हुई।

व्याख्या · राजाओ के लिए नीतिशास्त्र की विशेष आज्ञा है। राजाओ को प्रजा के दुःख सुख को अपनी आँखो देखने के लिए वेष बदल कर अकेले रात्रि मे घूमना पडता है। और भी अवसर ऐसे आते हैं जब कि राजा अकेले पड जाते हैं। उनके गुप्त शत्रु बहुत होते है। अतः उन्हें अपरिचित स्थानादि मे नाम छिपाने की आज्ञा है। राजा को नीतिज्ञ होना चाहिए। तुम्हारे नाम छिपाने से मुझे तुम्हारे नीतिनैपुण्य का परिचय मिला। इसीसे तुम पर मेरी अति प्रीति है।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा॥
गुरु प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा॥१॥

अर्थ तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। तुम्हारे बाप का नाम राजा सत्यकेतु है। राजन् गुरु के प्रसाद से सब कुछ जाना जाता है। पर अपनी सर्वज्ञता को बतलाता नहीं। क्योकि इससे अपनी ही हानि है।

व्याख्या जब राजा अपना नाम बतलाने लगा। तभी कपट मुनि ने यह कहकर रोक दिया कि मैं तुमको जानता हूँ। क्योकि राजा के बतलाने से उसको अपनी सिद्धि दिखाने का अवसर न मिलता। अब अपनी सिद्धि दिखलाते हुए बतलाता है कि तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। तुम्हारे बाप का नाम राजा सत्यकेतु है। राजा को आश्चर्य मे देखकर कहता है कि यह ज्ञान गुरुप्रसाद से होता है। भावार्थ यह कि जब तुम्हें गुरु मिलेगा तब तुम भी इसी भाँति जान जाया करोगे। परन्तु ये बातें कही नही जाती। कहने से प्रसिद्धि होती है और उससे तप क्षय होता है।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहौ कथा निज पूँछे तोरे॥२॥

अर्थ वेटा! तुम्हारी स्वाभाविकी सिधाई, प्रीति, विश्वास, नीतिनैपुण्य देखकर मेरे मन मे ममता हो आई। तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कह रहा हूँ।

व्याख्या इतने सद्गुणो का योग वही नही देखा गया। एक ओर सहज सुधाई, प्रीति और प्रतीति और दूसरी ओर नीति निपुणता। सुधाई, प्रीति, प्रतीति से नीति का एक प्रकार से वैर ही है। सो विरोधी गुण तुम्हारे मे सहज वैर छोडकर निवास करते हैं।

सहज सुधाई। यथा सरल वचन नृप के सुनि काना।
प्रीति। यथा सहज प्रीति भूपति कै देखी।
प्रतीति। यथा आपु विपय विश्वास विसेपी।
नीति निपुनाई। यथा नाम प्रताप भानु अवनीसा।
तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा।

इस बात को देखकर मेरे मन मे जो स्वभाव से ही विरागरूप है। ममता उत्पन्न हो पडी। गुणो मे सामर्थ्य ही ऐसा है कि आत्माराम मुनियो के मन को खीच लेता है। फल यह हुआ कि तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा सुनाने लगा। स्वमाहात्म्यगोपन के सिद्धान्त से हटना पडा।

अब प्रसन्न मै ससय नाही। मागु जो भूपभाव मनमाही॥
सुनि सुवचन भूपति हरपाना। गहि पद विनय कीन्ह विधि नाना॥३॥

अर्थ अव मैं प्रसन्न हूँ। इसमे सशय नही है। राजा जो तेरे मन को भाता हो सो माँग लो। सुन्दर वचन सुनके राजा प्रसन्न हुआ। चरण पकडकर अनेक भाँति से विनय किया।

व्याख्या किसी को भी सव विषय की प्राप्ति नही होती। तुम चक्रवर्ती राजा हो। फिर भी तुम्हे कोई अभाव अवश्य होगा। तुमने कहा भी था कि मोपर कृपा करिअ अब स्वामी। सो अव मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। इसमे सशय नही है। भाव यह कि दिल खोलकर माँगो। इस भाति भीतरी इच्छा जानना चाहता है। भीतरी इच्छा ही कमजोरी है। उसी की पूर्ति के लिए आदमी अन्धा हो जाता है। धूर्त लोग सदा उसके जानने की चेष्टा करते है। क्योकि उसे जान लेने पर ठगने म बडा सुभीता होता है।

राजा ने कहा था जानत हौं कछु भल होनिहारा। सो वात हुआ चाहती हैं। अत मुनिजी के वरद होने पर हर्पित हुआ। मनोरथ सिद्धि के लिए आर्त है। चरण पकडकर नाना विधि से विनय करने लगा। क्रमश दोनो हर्पित हुए। राजा का हर्पित होना तो प्रसक्त ही है। यथा मुनि सुवचन भूपति हरपाना। और मुनि जी तो पहिले से ही हर्पित हैं। यथा सरल वचन नृपके सुनि काना। वैर सभारि हृदय हरपाना।

कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें॥
प्रभुहिं तथापि प्रसन्न विलोकी। मागि अगम वर होउ असोकी॥४॥

अर्थ हे कृपासिन्धु मुनि आपके दर्शन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो

पदार्थ मेरे हाथ मे है। फिर भी प्रभु को प्रसन्न देखकर अगम पहुँच के बाहर : वर माँगकर अशोक हुआ चाहता हूँ।

व्याख्या : राजा ने सोचा बिना सेवा शुश्रूषा के बिना जप तप के चन्द मिनटो के समागम मे इतनी बडी कृपा कि मुँह माँगा वर देने को तैयार हो गये। अत मुनिजी कृपासिन्धु हैं। कृपासिन्धु सुनते रहे। पर आँख से नही देखा था। इसलिए कृपासिन्धु के दर्शन से धर्मार्थ काम मोक्ष मानो अपने हाथ मे आगया। अत. बोला :

आप प्रभु है, समर्थ हैं और प्रसन्न है। इसलिए ऐसा वर मागूँगा जहाँ तक किसी की गति आजतक न हुई हो। और शोक रहित हो जाऊँगा।

दो. जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपु हीन महि, राज कलप सत होउ ॥१६४॥

अर्थ : मैं अजर अमर हो जाऊँ शरीर मे कोई दु ख न हो। युद्ध मे कोई न जीते। शत्रुहीन पृथ्वी पर सौ कल्प तक एकछत्र राज्य हो।

व्याख्या : शीर्यते इति शरीरम्। सो शरीर जरामरण रहित हो। यह महा दुर्गम वर है। जो आज तक किसी को न मिला। शरीर का नाम ही रोगायतन है सो दु खरहित हो। प्राणीमात्र से अजेय हो जाऊँ। इस भाँति अलौकिक पराक्रम माँगा। राजकल्पशत से अखण्ड ऐश्वर्य माँगा। मालूम हो गया कि भीतर प्रौढ देहाभिमान है। और राज्य की उत्कट वासना है। चाह ही दुःख वृक्ष का दृढशक्तिक बीज है। चाह शेष रह जाने पर जो सुख है वह भी दु ख रूप है। ज्ञानी राजा चाह के शेष रह जाने से बडी भारी विपत्ति मे पडना चाहता है।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालौ तुअ पद नाइहि सीसा। एक विप्र कुल छाड़ि महीसा ॥१॥

अर्थ : तपस्वी ने कहा : एवमस्तु : ऐसा ही होगा परन्तु . एक कठिन कारण है। उसे भी सुन लो। एक ब्राह्मणकुल को छोडकर काल भी तुम्हारे चरणो मे सिर झुकावेगा।

व्याख्या : तपस्वी ने वर तो दिया। पर साथ ही उसकी सिद्धि मे एक कारण भी बतलाया। जिसे करना सहल नही था। कहने लगा कि मेरे वरदान से इतना होगा कि काल भी तुम्हारा कुछ न बिगाड सकेगा। औरो की गिनती ही क्या है। पर ब्राह्मणो पर वरदान का बल न चलेगा। अजर-अमर रोगरहित शरीर अजेयत्व शत्रु का अभाव सौ कल्प राज्य और कालविजय एक ही बात है। सबका अन्तर्भाव कालविजय मे हो जाता है। सो उसके लिए तुम्हे यत्न नही करना है। मेरे तपबल से काल भी तुम्हें नमस्कार करेगा। परन्तु भय तुमको ब्राह्मण-कुल से है। कपटी मुनि ने देख लिया कि भानुप्रताप का राज्य बिना ब्रह्म शाप के जा नही सकता। अत. ब्राह्मणो से भय बतलाकर उसने ब्रह्मद्रोह का बीज बो दिया।

तप वल विप्र सदा वरिआरा। तिन्हके कोप न कोउ रखवारा ॥
जौ विप्रन वस करहु नरेसा। तौ तुव वस विधि विस्नु महेसा ॥२॥

अर्थ तप के वल से विप्र सदा प्रवल रहते हैं। उनके क्रोध से कोई रक्षा करनेवाला नही है। राजन्! यदि ब्राह्मणो को वश म कर लो तो तुम्हारे वश मे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हो जावेंगे।

व्याख्या मैं जो वर दे रहा हूँ। सो तप-वल से दे रहा हूँ। अत मेरा वर भी तपोधन से ही कट सकता है। तप के बल से ब्राह्मण सदा वलवान् हैं। उनके कोप से मैं रक्षा नही कर सकता। तुमने जो अजेयत्व माँगा है सो तो तभी सम्भव है जव तुम ब्राह्मणो को वश कर लो। तव दूसरे का कौन कहे त्रिदेव तुम्हारे वश हो जायँगे। और सव मेरे वरदान से हो जायगा। तुम्हे अब केवल ब्राह्मणो से भय रह गया है। जैसे हो सके उन्हे वश म लाना तुम्हारा काम है।

चल न ब्रह्मकुल सुनु वरिआई। सत्य कहौ दोउ भुजा उठाई ॥
विप्र श्राप विनु सुनु महिपाला। तोर नास नहि कवनेउ काला ॥३॥

अर्थ मै दोनो भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ कि ब्राह्मणकुल से जबरदस्ती नही चल सकती। राजा! सुनल। ब्राह्मण के शाप के विना तेरा नाश किसी काल मे हो नही सकता।

व्याख्या शस्त्रवल से ससार वश मे हो जाता है। परन्तु ब्राह्मण शस्त्रवल से वश नही हो सकते। विश्वामित्र और वसिष्ठ के विरोध से यह सिद्ध हो गया है कि क्षात्रवल से ब्रह्मवल वहुत अधिक है। अत ब्रह्मकुल पर वल काम नही देता। वात शीघ्र मन म नही आनेवाली है। अत कहता है कि मैं दोनो भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। दोनो भुजा उठाकर कहना घोपणा करना है। यथा भुजा उठाइ साखि मकर दै, वसम खाइ तुलसी भनी। विनय। दोनो भुजा उठाकर कहना, सवको सवधान करने और अपने ऊपर दोप न आने देने के लिए है। इस वात पर इतना बल इसलिए दता है कि कही राजा समझ न ल कि यह मुझ ब्रह्मद्रोह के लिए उत्तेजित करता है। क्योकि ब्रह्म द्रोह से वश का ही नाश हो जाता है। यथा वंश कि रह द्विज अनहित कीन्हे।

हरपेउ राउ वचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अव नासू ॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना। मो कहुँ सर्वकाल कल्याना ॥४॥

अर्थ राजा उसका वचन सुनकर प्रसन हुआ वोला नाथ! अब मेरा नाश न हो। आपकी कृपा से हे कृपानिधान प्रभु! मेरा सदा कल्याण हो।

व्याख्या वहुत से भय के कारण दूर हो गये। अव एक ब्रह्मकुल का कोप ही शेप रह गया। इसलिए राजा प्रसन्न हुआ। लाभात् लोभोपजायते। सौ कल्प से पेट नही भरा। अत अव यह प्रार्थना कर रहा है कि मेरा कभी नाश न हो।

आप कृपानिधान भी हैं, समर्थ भी है और मुझपर आपकी कृपा भी है। तब मेरा सर्वकाल में कल्याण होना चाहिए।

दो एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाव निज, कहहु त हमहि न खोरि ॥१६५॥

अर्थ उस कुटिल कपटमुनि ने एवमस्तु कहकर फिर कहा कि मेरा मिलना और अपना रास्ता भूलना यदि कहोगे तो मुझे दोष न देना।

व्याख्या धर्मरुचि[1] से कपट मुनि डर रहा है कि कही राजा लौटकर उससे न कह दे या पुरोहित को न बता दे। नही तो सब बनी बनाई बात ही बिगड जायगी। और फिर वन मे भी छिपकर न बच पायेगे। इसलिए वह कुटिल मुनि राजा को सावधान किये देता है कि यदि तुमने मेरा मिलना या अपना भूलना किसी से कहा तो तुम्हारी खैर भला नही है। राजा को सावाक्ष देखकर कहता है

ताते मै तोहि बरजौ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा॥
छठे श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी॥१॥

अर्थ इसी से राजन् मै तुम्हे रोकता हूँ कि यह कथा कह देने से तुम्हारी बडी हानि होगी। इस कथा के छठें कान मे पडते ही तुम्हारा नाश होगा। मेरी वाणी सत्य है।

व्याख्या कपट मुनि ने ऊपर कहा है कि मेरा मिलना और अपना भुलाना कहोगे तो फिर मेरा दोष नही। उसी बात को स्पष्ट करता है कि मैने जो इस कथा के कहने से रोका है वह इसलिए कि इससे तुम्हारी बडी हानि होगी। तुमने वरदान मांगा है अपने लाभ के लिए और इस कथा की चरचा करने से जब तुम्हारी हानि होगी तो हमे दोष दोगे कि मुनिजी ने कैसा वरदान दिया कि मेरी ऐसी हानि हो गई। अत सावधान किये देता हूँ। इस विषय की बात मुख से निकालना नही।

तीसरे पुरुष की जानकारी ही बात का छठे कान मे पडना है। यहाँ छठा कान इसलिए कह रहा है कि जिससे राजा समझे कि मुनिजी मन्त्रभेद का दोष कह रहे हैं। मन्त्र बडे महत्व का है अत इस मन्त्रभेद का दोष भी बडा भारी होना प्राप्त है। यथा षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र । किस प्रकार की हानि होगी उस भी बतलाये देता है कि नाश ही हो जायगा। सत्य मम बानी कहने का भाव यह है कि अनुनय विनय मे इसमे परिवर्तन नही हो सकता।

यह प्रकटे अथवा द्विज सापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा॥
आन उपाय निधन तव नाही। जौं हरिहर कोपहिं मनमाही॥२॥

---

१. राजा का मन्त्री।

अर्थ इस वात के प्रकट होने पर अथवा ब्राह्मण के शाप से तुम्हारा नाश होगा। दूसरे उपाय से तुम्हारी मृत्यु नही हो सकती। चाहे शिव विष्णु मन मे कुपित हो जांय।

व्याख्या अब दोनो वातो को समेटकर भली भाँति सावधान करता है। मेरा तुमसे मिलना न प्रकट होने पावे पहिली वात, ब्राह्मण का शाप न होने पावे दूसरी वात। विप्रशाप तो काल पाकर फलेगा। पर इस कथा के तो प्रकट होते ही नाश हो जायगा। मेरे वरदान के प्रभाव से शङ्कर और विष्णु भी तेरा कुछ विगाड न सकेगे। मन ही मन भले ही जला करें।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा॥
राखै गुर जौ कोप विधाता। गुर विरोध नहिं कोउ जग त्राता॥३॥

अर्थ चरण पकडकर राजा ने कहा कि सत्य है नाथ। भला ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है। विधाता के कोप से तो गुरु रक्षा करता है। गुरु के कोप से ससार में कोई रक्षा करनेवाला नही है।

व्याख्या राजा ने कपटी मुनि को गुरु मान लिया। अर्थात् शिक्षा के लिए उसके शरण म गया। यथा शिष्यस्तेऽहं शाधि मा त्वा प्रपन्नम्। गुरुकोप का अर्थ कपटी मुनि का कोप है। सत्य नाथ कहने का यह भाव है कि वाजिब बात है। सभी वर्णों के गुरु ब्राह्मण हैं और आप तो विशेषत हमारे गुरु हैं। गुरु ही प्रधान रक्षक हैं। भगवान् की साक्षात् अनुग्रह शक्ति गुर है। यदि वे ही कुपित हो जायँ तो रक्षा फिर कौन करेगा? ब्रह्मदेव के कोप करने पर तो गुरु रक्षा करते हैं। यथा जन्म हेतु सब कहँ पितु माता। कर्म सुभासुभ देइ विधाता। दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना। सो गोसाइँ जेहि विधि गति छेकी। सकै को टारि टेक जो टेकी।

जौ न चलव हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहि सोच हमारे॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा॥४॥

अर्थ यदि मैं आपके आदेशानुसार वर्ताव न करूँ तो भले ही नाश हो जाय मुझे इसका सोच नही है। एक ही डर से मै बहुत डर रहा हूँ कि ब्राह्मणो का शाप बडा घोर होता है।

व्याख्या राजा कहता है कि आपके कोप का मुझे डर नही है। क्योकि मै आपका आज्ञावशवर्ती हूँ। आपकी आज्ञा का उल्लघन करूँगा ही नही। यदि करूँ तो भले ही नाश हो। इसका सोच मुझे नही है। आप मेरे स्वामी मेरे पिता मेरे गुरु है। आपकी आज्ञा उल्लघन करूँ तो नाश होना ही चाहिए।

डर दूसरी वात का है। ब्राह्मणो का शाप अति घोर होता है। रुष्ट होते ही नाश का शाप देते हैं। और वह अप्रतिक्रिय होता है। यथा इन्द्रकुलिस मम सूल विसाला। कालदण्ड हरिचक्र कराला। जो इन कर मारा नहिं मरई। विप्र रोष पावक सो जरई।

दो. होहिं विप्र बस कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखौं कोउ ॥१६६॥

अर्थ : अब कृपा करके यह बताइये कि किस विधि से ब्राह्मण वश हों। हे दीनदयाल ! तुम्हें छोड़कर संसार में अपना कोई हितू नही दिखाई पड़ता ।

व्याख्या : द्विज द्रोह का बीज उग गया। गुर सुर संत पितर महि देवा। करइ सदा नृप सवकर सेवा। वही राजा जो इससे पूर्व ब्राह्मणों का सेवक था आज स्वामी को अपना वश्य करने की विधि पूछता है। पहिले के हितू लोग तुच्छ दिखाई पडने लगे। केवल बातों के बल से कपटी मुनि बडा भारी हितू बन बैठा। यथा : तोहि सम हित न मोर संसारा। भाव यह कि जब आप कहते हैं कि ब्राह्मणो को वश करना तुम्हारा काम है तो मैं करने को तैयार हूँ। आप गुरु है। उपाय बतावे ।

सुनु नृप विविध जतन जगमाही। कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाही ॥
अहै एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥१॥

अर्थ : राजन् ! सुनो, संसार में अनेक प्रकार के उपाय है। पर वे कष्टसाध्य हैं और फिर भी फल का निश्चय नही। हो या न हो एक उपाय अत्यन्त सुगम है। वहाँ भी एक कठिनाई है।

व्याख्या : विधि यत्न उपाय ये सब समानार्थक शब्द हैं। संसार में यत्नों का घाटा नही है। पर उनके करने मे बडी कठिनता है। फिर भी सफलता निश्चित नही। भाव यह कि मैं जो उपाय बतलानेवाला हूँ वह सुसाध्य भी है और निश्चित फलप्रसू है।

सरल पुरुष का तबतक पतन नही होता जबतक वह कुटिल न हो जाय। अतः पतन चाहनेवाले, हानि लाभ दिखलाकर उसे कुटिलता की ओर अग्रसर करते हैं। अतः इसने पहिले राजा को मन्त्री से भी बात छिपाना सिखाया। अब छल : माया : को स्थान देने के लिए विवश कर रहा है। बडे भारी असाध्य लक्ष्य का लोभ दिखलाकर। और उसमे एकमात्र बाधक के लिए सरल उपाय बतलाकर। उसमें ऐसी कठिनता बतलाता है जो माया से ही साध्य हो।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई ॥
आजु लगे अरु जबतें भएऊं। काहू के गृह ग्राम न गएऊं ॥२॥

अर्थ : वह युक्ति मेरे ही वश की है। और मेरा जाना तुम्हारे नगर से हो नही सकता। जब से मै उत्पन्न हुआ तब से लेकर आज तक मैं किसी के गाँव या घर कभी गया नही।

व्याख्या : वह युक्ति मेरे लिए तो सुगम है। पर दूसरे के बूते की नही है। मैं ही उसे कर सकता हूँ। पर मै तुम्हारे नगर में जा नही सकता। तुरन्त जाने के लिए तैयार होने से वह श्रद्धा राजा के हृदय मे नही होती जो इनकार करने से हुई। क्योकि श्रद्धा सदा दुर्लभ वस्तु मे होती है।

किसी के नगर या गृह मे जाना मेरे नियम के विरुद्ध है। सकाम पुरुष ही नगर या दूसरे के घर मे जाया करते है। मुझे लोकरञ्जन मे कोई सिद्धि दृष्टि नही आती। यथा . कहहु कवन सिधि लोक रिझाये। कपटी मुनि नगर या दूसरे के घर जाने मे कोई ऐसी वाधा नही बतलाते जो दुरुल्लध्य हो। केवल लोकमान्यता और ख्याति से बचने के लिए अपने ही नियत किये हुए कुछ नियमो मे से एक इसे बतला रहे है।

जो न जाउँ तव होइ अकाजू। वना आइ असमजस आजू॥
सुनि महीस वोलेउ मृदुवानी। नाथ निगम अस नीति बखानी॥३॥

अर्थ यदि मै नही जाता हूँ तो तुम्हारा काम विगडता है। आज वडा असमजस आ पडा। यह सुनकर राजा कोमल वाणी बोला कि नाथ! ऐसी नीति श्रुतिसम्मत है।

व्याख्या आज भक्तवत्सलता के कारण प्रयोजन आ पडा। जाता हूँ तो नियम भङ्ग होता है। नही जाता हूँ तो भक्त का काम बिगडता है। मेरा नियम भङ्ग न हो। और भक्त का काम भी वन जाय। इन दोनो वातो का सामञ्जस्य नही वैठता। इतने दिनो मे आज ही मै असामञ्जस्य मे फँसा। भाव यह कि अव राजा के विनय-मात्र की देर है। नियम भङ्ग होते देर न लगेगी। सो राजा विनय भी करने लगे। और श्रुतिसम्मत नीति की दोहाई देने लगे।

लोभ से अन्धा करके ही धूर्त्त ससार को ठगते हैं। आँख खोलकर यदि देखा जाय तो जनता को वही धूर्त्त वश करने मे समर्थ होता है जो अपने दिये हुए प्रलोभन का विश्वास जनता को करा देने मे समर्थ होता है। वडे वडे बुद्धिमान् ऐसे ही प्रलोभन से अन्धे होकर महाधूर्त्त को महात्मा मानकर मारे जाते हैं। स्वार्थ मे अन्धा होकर राजा ने यह समझा कि केवल नीतिमत्ता तथा सरलतादि गुण को देखकर घण्टे भर मे एक महाविरक्त को ऐसी प्रीति कैसे उत्पन्न हो सकती है कि वह महा दुर्लभ वर देकर अपने तप को क्षीण करे। और अपने जन्म भर के नियम को तोड दे।

वडे[१] सनेह लघुन्ह पर करही। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरही॥
जलधि अगाध मौलि वह फेनू। सतत धरनि धरत सिर रेनू॥४॥

अर्थ वडे लोग छोटो पर स्नेह करते है। पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण किये रहता है। अगाध समुद्र के सिर पर फेन बहता है। पृथ्वी सदा सिर पर धूलि धारण करती है।

व्याख्या सिर पर तृण धारण दासत्व स्वीकार के लिए किया जाता है। पूर्व काल मे जब दासप्रथा थी तो लोग अपने को वेचते थे वे सिर पर तृण धारण करते थे। सो पर्वत ऐसा अशुभ वेष स्वीकार करते हैं। पर अपने आश्रित को सिर

१ यहाँ दृष्टान्तालङ्कार है।

चढाये रहते हैं। भाव यह कि पर्वत की गणना परहितैकव्रत सन्तो मे है। यथा : सन्त विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह की करनी। सो अपने आश्रितो के लिए दासता का चिह्न धारण करने मे सङ्कोच नही करना चाहिए।

समुद्र अगाध है। अपार है। बडे बडे पुरुषार्थियो का पुरुषार्थ उसमें नही चलता। पर आश्रित होने के कारण फेन अवस्तु होने पर भी उसके सिर पर विचरण करता है। आप भी तपोनिधि हैं। आप की महिमा अगाध और अपार है। मै आपका आश्रित हूँ। अवस्तु हूँ। मेरे हित को अपनी तपस्या के ऊपर स्थान दीजिये। मेरे कल्याण की ओर देखिये। अपनी महिमा पर दृष्टिपात न कीजिये। समुद्र सदा फेन को नही धारण करता। इसलिए सदा या सन्तत शब्द नही दिया।

पृथ्वी जैसा गुरु कौन होगा और रेणु सा लघु कौन है ? आश्रित होने के कारण से ही पृथ्वी उसे सदा सिर पर धारण करती है। इसी भाँति आप गुरु हैं। आप ही मुझ जैसे लघु की प्रतिष्ठा करने मे समर्थ है। दोनो ओर से केवल बातो का जमा खर्च हो रहा है। कपटी मुनि केवल बातो के भरोसे भानुप्रताप का नाश करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करना चाहता है। और राजा भानुप्रताप भी बातो के भरोसे उससे एक कल्प तक शत्रुहीन पृथ्वी को भोगना चाहता है। कही मुनिजी को यह ख्याल न हो कि इस युक्ति के बल पर मेरे सिर पर चढना चाहता है। इसलिए चरण पकड़ता है।

दो. अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

अर्थ : ऐसा कहकर राजा ने पैर पकड लिया। और कहा स्वामिन् कृपा कीजिए। आप सज्जन हैं, दीनदयाल हैं, मेरे लिए दु ख सहिए।

व्याख्या आशा के दासो को गति दिखलाते हैं। सम्राट् होकर आशा की डोरी मे पशुओ की भाँति बँधा हुआ दीन हो रहा है। यही स्वार्थान्धता उसके नाश का कारण होगी। उसने कपटी मुनि का चरण पकड लिया। सन्त सहहिं दु ख परहित लागी ' यह सन्त का स्वभाव है। अत' आप मेरे लिए दु ख सहिये। आप दीनदयाल है, मै दीन हूँ, मेरे ऊपर दया करिये।

जानि नृपहिं आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रवीना ॥
सत्य कहौं भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ॥१॥

अर्थ : राजा को अपने अधीन जानकर कपटचतुर तपस्वी बोला राजन्! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ। ससार मे मुझे कुछ भी दुर्लभ नही है ?

व्याख्या : कपटमुनि जब राजा मे अत्यन्त श्रद्धा देखता है तब अपनी महिमा सूचक एक बात कहता है। फिर उसके परिपाक के लिए समय देता है। यथा . सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई। सुनु सति भाउ कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला। जब राजा मे फिर श्रद्धा का उद्रेक

उठता है तब उससे अधिक महिमा सूचक बात कहता है। यथा देखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बकध्यानी। नाम हमार एकतनु भाई। अब उसी बात को जमाने के लिए बातें करता जाता है। फिर जब देखता है कि राजा की श्रद्धा बढती ही जाती है। अब तो मेरे अधीन हो गया। जो चाहूँगा कराऊँगा। तब कपट मे प्रवीण तपस्वी बतलाता है कि मुझे ससार मे कुछ भी दुर्लभ नही है। यह बात मै तुमसे कहता हूँ। दूसरे से अपना भेद नही खोलता। सत्य कहौं कहने का भाव यह है कि यह शङ्का छोड दो कि कदाचित् मेरा उपाय भी निष्फल हो। वह निष्फल हो नही सकता। मेरे लिए सब कुछ सुलभ है।

अवसि काज मै करिहौ तोरा। मन तन वचन भगत तै मोरा॥
जोग जुगुति तप मत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिअ दुराऊ॥२॥

अर्थ मै तुम्हारा काम अवश्य करूँगा। क्योकि तुम मेरे मनसा, वाचा, कर्मणा भक्त हो। योग युक्ति, तप और मन्त्र का प्रभाव गुप्त रखने से ही फलता है।

व्याख्या मेरी किसी से भेट नही हुई। इससे मैंने किसी का काम किया नही। परन्तु तुम्हारा काम अवश्य करूँगा। जो मनसा वाचा कर्मणा भक्त होता है उसके वश मे ईश्वर भी रहते हैं। अत मेरा वश होना अनुचित भी नही है। अपने भक्त पर सभी कृपा करते है।

छिपाने पर बडा जोर देता है। जितने कपटी हैं वे बात छिपाने पर बल देते है। क्योकि प्रकट होने पर उनकी माया चल नही सकती। अत कहता है कि काम तो मैं करूँगा। पर बात को छिपाना तुम्हारा काम है। शास्त्र का प्रमाण देता है कि इस प्रकार छिपाना शास्त्रानुमोदित है। छ कानो म पडने से मन्त्रभेद हो जाता है। अपने मुख से पुण्यकर्म के कहने से वह नष्ट हो जाता है। यथा छीजहि निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती। इसलिए योग, युक्ति, तप और मन्त्र के प्रभाव को छिपाने का शास्त्र आदेश देता है।

जो नरेस मै करौ रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तब आयसु अनुसरई॥३॥

अर्थ राजन् यदि मैं रसोई करूँ और तुम परोसो मुझे कोई न जाने तो उस अन्न को जो भोजन करेगा सो तुम्हारी आज्ञा मानेगा।

व्याख्या इसी युक्ति म कपट भरा है। पर अन्धभक्त राजा का उस ओर ध्यान नही है। राजा के भोजन म यदि कोई चूक हो जाय तो रसोईदार और परोसनेवाले की चूक समझी जाती है। उसके लिए राजा का कोई दोषी नही बतलाता। अत कहता है कि तुम परोसो और मुझ रसोईदार को कोई न जाने। अर्थात् ऐसी अवस्था म जो चूक होगी उसका जिम्मेदार राजा को छोडकर और कोई हो नही सकता। सभी समझेंगे कि यदि राजा की सम्मति न थी तो रसोईदार गुप्त क्यो रक्खा गया? इसलिए कहता है कि तुम परोसो मुझे कोई न जाने। तब फल यह होगा कि जो अन्न खाय वही वश हो जाय।

पुनि तिनके गृह जेवै जोऊ। तव वस होइ भूप सुनु सोऊ ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकलप करेहू ॥४॥

अर्थ : फिर उनके घर जो भोजन करेगा राजन्! वह भी तेरे वश हो जायगा। अत जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर के लिए सकल्प छोड दो।

व्याख्या : उस अन्न मे ऐसा वशीकरण रहेगा कि खानेवाले के घर पर जो कभी खावे वह भी तेरे वश हो जायगा। मेरे पता न लगने का जाकर उपाय करो। क्योकि नियमानुसार कार्य होते न देखकर रसोईदार आदि को जानने का लोग यत्न करेंगे कि यह कौन नया रसोईदार आया है जिसके सामने हमारी पूछ नही है। मन्त्री आदि कर्मचारी भी चौकेंगे। सवत् भर का सकल्प पहिले ही करा देता है। जिसमे राजा संकल्पभ्रष्ट भी हो और ब्राह्मण समझें कि यह सवत् भर ब्राह्मण भोजन की प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणमात्र को पतित करना चाहता था।

दो. नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार।
मै तुम्हरे संकलप लगि, दिनहि करवि जेवनार ॥१६८॥

अर्थ : एक लाख नये ब्राह्मणो को परिवारसहित नित्य वरण करना और मै तुम्हारे सकल्प के लिए नित्य जेवनार बनाऊँगा।

व्याख्या : एक लक्ष ब्राह्मणपरिवार एक दिन भोजन करें। दूसरे दिन नये लक्ष ब्राह्मणो का परिवार भोजन करे। इस भाँति सालभर मे पृथ्वीमण्डल के सव ब्राह्मणपरिवार भोजन कर लेंगे। और मैं वरावर साल भर रसोई वनऊँगा। मै रसोई बनाने का कष्ट उठाऊँ, तुम परोसने का कष्ट उठाओ। राजकर्मचारी नये नये ब्राह्मण परिवार को नित्य यहाँ पहुँचाने का प्रवन्ध करे। यहाँ दिन का अर्थ नित्य है। यथा ' प्रनवौ दीनवन्धु दिन दानी। अथवा यह अर्थ है कि इतने लोगो का जेवनार मै दिन मे ही बना डालूँगा। रात न होने पावेगी।

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहहि सकल विप्र वस तोरे ॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सह जेहि वस देवा ॥१॥

अर्थ : राजन्! इस विधि मे अत्यन्त थोडे कष्ट मे सव ब्राह्मण तुम्हारे वश हो जावेंगे। ब्राह्मण होम, यज्ञ और पूजा करेंगे। उस प्रसङ्ग से देवगण सहज मे ही वश हो जावेंगे।

व्याख्या ' इस असाध्य कार्य के लिए एक साल कोई चीज नही हे। आजतक ब्राह्मणो को कोई वश न कर सका। राजाओ का नाम इसीलिए विशाम्पति है। वे वैश्यो के मालिक है ब्राह्मणो के नही। अब तुम ब्राह्मणा के मालिक हुआ चाहते हो। रसोई वनाने का कष्ट तो मुझे है। तुम्हे तो केवल परोसना है।

ब्राह्मणो की दी हुई आहुत्ति, हवि और नैवेद्य देवता स्वीकार करते ही है। सो स्वीकार करते ही वे तुम्हारे वश हो जावेगे। उनके लिए तुम्हे कुछ करना नही पडेगा। क्योकि ब्राह्मण स्वय देवता है। उनके अधीन मन्त्रनिकाय है और

देवताओ के अधीन ससार है। यथा देवाधीन जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता:। ते देवा ब्रह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवता । विना देवलोक को जय किये ही सब देवता तुम्हारे वश मे हो जावेगे। तुमने आजतक सप्तद्वीप को ही वश किया है। देवलोक मे तुम्हारा कुछ भी प्रभुत्व नही है। सो वहाँ भी तुम्हारा प्रभुत्व हो जायगा।

और एक तोहि कहौ लखाऊ। मै एहि वेप न आउब काऊ ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनव मै करि निज माया ॥३॥

अर्थ और मैं तुम्हे एक पहिचान भी बताये देता हूँ कि मैं इस वेप से कभी न आऊँगा। राजा मै तुम्हारे उपरोहित को अपनी माया द्वारा हर लाऊँगा।

व्याख्या पहिचान बताने की आवश्यकता यह पडी है कि युक्ति के सफल करने के लिए मैं इस वेप से नही आऊँगा। अपने स्थान पर असुर को भेजने का मार्ग परिष्कृत करता है।

माया सबकी अलग अलग होती है। सबसे बडी राम की माया है। यथा सुनु खग प्रवल राम की माया। उसके बाद त्रिदेव की माया है। यथा विधि हरिहर माया बडि भारी। फिर देवकी माया यथा कछुक देव माया मति साई। ऋषि की माया यथा विधि विस्मय दायक विभव मुनिवर तप वल कीन्ह। फिर असुर की माया यथा जब कीन्ह तेहि पाखड। भए प्रकट जतु प्रचड। फिर मनुष्य की माया। इहाँ न लागहिं राउरि माया । सो यहाँ आसुरी और मानुषी दोनो माया काम कर रही है। पुरोहित का हरण करना आदि स्पष्ट आसुरी माया है। उसे वह अपनी माया बतलाता है। जिसमे राजा समझे कि यह सब तपोवल से हो रहा है।

तप बल तेहि करि आपु समाना। रखिहौ इहाँ वरप परवाना[1] ॥
मै धरि तासु वेप सुनु राजा। सब विधि तोर सवारव काजा ॥३॥

अर्थ तप के बल से उसे अपने समान बनाकर यहाँ एक वर्ष तक रक्खूँगा। राजन् सुनो। मैं उसका वेप बनाकर, सब भाति से तुम्हारे काम को सँवारूँगा।

व्याख्या उपरोहित से भय है क्योकि उपरोहित ऐसे होते थे जिनका दबाव राजा पर होता था। राज्य की तथा राजा की रक्षा का भार पुरोहित पर होता था। पुरोहित का पद मन्त्री से भी बडा है। इसीलिए अथर्ववेदी[2] पुरोहित बनाने का आदेश है जो मन्त्रादि से भली भाति रक्षा कर सकता हो। वही धर्माध्यक्ष है।

---

१ मोनुनासिको वो वा इस सूत्र से परिमाण का परवान रूप हुआ। 'इ का अ और ण के न होने के नियम पहले दिये जा चुके हैं।

२ शुक्रनीति मे पुरोहित के कार्य और अधिकार का विशद वर्णन है। गीतावली म वसिष्ठजी को अथर्वणी कहा है। यथा आपु वसिष्ठ अथर्वणी महिमा जग जानी।

नियमानुसार वह ब्राह्मणभोजन की देखरेख करेगा। उसे रसोई देखने से तो राजा भी नही रोक सकता तब विना भेद खुले न रहेगा।

उपरोहित वनकर रहने से धर्मविभाग अपने हाथ मे रहेगा। दूसरा कोई निरीक्षक न रह जायगा। एक दिन बात तो फूटेगी तब धरपकड होगी। तब अपने ऊपर विपत्ति न आवे पकडे जाने पर भी राजा अपना पुरोहित समझकर मुझे छोड दे। इसलिए कहता है कि तुम्हारे पुरोहित को मै अपने ऐसा बनाकर यहाँ साल भर रक्खूँगा। राजा के समझाने के लिए यह बात है कि जब मैं सालभर तुम्हारे नगर मे रहूँगा तो इस बीच मे देवता मुनि मेरे दर्शन को आवेगे। वे मुझे यहाँ न पाकर निराश होकर लौटेंगे। इसलिए यहाँ मेरा प्रतिनिधित्व तुम्हारा पुरोहित करेगा।

मैं तुम्हारे पुरोहित के वेप से तुम्हारे नगर मे रहूँगा। जिसमे किसी को विशेषत धर्मरुचि मन्त्री को नवागत पुरुष समझकर सन्देह न हो।

गै निसि वहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेट दिन तीजे॥
मै तप बल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहौ सोवतहि निकेता॥४॥

अर्थ : रात बहुत गई अब सोओ। मेरी भेंट तुमसे राजन्! तीसरे दिन होगी। मैं तप बल से तुम्हें घोडे समेत सोते हुए ही घर पहुँचा दूँगा।

व्याख्या : कालकेतु के आने का समय जानकर कहता है कि बातचीत मे रात अधिक बीत गई। अब सो जाओ। अपना मिलन राजा से तीसरे दिन बतलाता है। समय मिलने से कार्य मे विघ्न होने का भय रहता है। यथा अदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मण। क्षिप्रमेव प्रकर्त्तव्य काल पिवति तद्रसम्। लेना देना या जो काम करना हो उसमे जल्दी करनी चाहिए। नही तो उसके रस आनन्द को काल पी जाता है। इसी नीति के बल पर उसे त्वरा है। दूसरे दिन राजा राजधानी मे पहुँचेगा। एक लक्ष ब्राह्मणो के वरण की व्यवस्था करेगा। तब तक तीसरे दिन मिलने के लिए यह कह ही रहा है। राजा को सन्देह हो सकता है कि क्या कल प्रात काल भेंट न होगी। इसलिए स्वय कहे देता है कि सोए ही सोए तुम अपने घर पहुँच जाओगे। घोडा भी पहुँच जायेगा। पश्य मे तपसो बलम्। देखो मेरे तप का बल।

दो मै आउव सोइ वेप धरि, पहिचानेहु तव मोहि।
जब एकात बुलाइ सब, कथा सुनावौ तोहि॥१६९॥

अर्थ : मैं वही वेप धरकर आऊँगा। तब मुझे पहिचान लेना जब मैं एकान्त मे बुलाकर यह सब कथा तुम्हे सुनाऊँ।

व्याख्या : उपरोहित कब बदल गये। इसका अन्दाज लगना तुम्हे कठिन होगा। धोखे मे कही तुम पुरोहित से भेद न खोल दो। इसलिए सावधान किये देता हूँ कि जब मै पुरोहित का वेप धारण कर लूँगा तो तुम्हे एकान्त मे बुलाकर यह

सब कथा सुनाऊँगा। तब तुम समझना कि मैं आगया। और मेरी सम्मति से काम करना।

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छल ग्यानी॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई॥१॥

अर्थ . राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया। कपटी मुनि जाकर अपने आसन पर बैठा। राजा थका था घोर नींद मे सो गया। वह . कपट मुनि कैसे सोए। उसे तो चिन्ता बढ गई।

व्याख्या राजा सोना नही चाहता था। स्वामी के पहिले सेवक कैसे सोए। पर आज्ञा सोने के लिए हुई। वह भी टाली नही जा सकती। इसलिए सोए। मुनि जी सोते नही रात को समाधि लगाते हैं। इसलिए जाकर आसन पर बैठे। राजा के शीघ्र निद्रा आने का कारण था। मुनि की कृपा से वीतचिन्त हो गये थे। और थके भी खूब थे। कपटी मुनि के निद्रा न आने का भी यथेष्ट कारण था। जिसके बल पर राजा को सोते हुए ही घर पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। वह यदि न आया तो क्या होगा ? महा सर्प अपनी कुटी मे सो रहा है। यदि किसी भाँति सावधान हो गया तो फिर रक्षा का कोई उपाय नही।

परिपक्व कर्म का भोग से क्षय हो जाने पर जब दूसरे कर्मो का परिपाक नही हुआ रहता तो इसी बीच मे मन बुद्धि की गोद म सा जाता है। शरीर मे प्राण का प्रचार बना रहता है। मोहात्मिका अविद्या आवृत कर लेती है तब जीव चिति परिच्छेदक उपाधि के लय से परिपूर्णता की सम्प्राप्ति से आनन्दित होती है। इसी को साना कहते हैं।

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानै सो अति कपट घनेरा॥२॥

अर्थ कालकेतु नाम का राक्षस वहाँ आया। जिसने सूकर बनकर राजा को भुलवाया था। वह तपस्वी राजा का बडा मित्र था। अत्यन्त घनी माया जानता था।

व्याख्या जिसकी प्रतीक्षा मे कपट मुनि बैठे थे वह आ गया। सूकर बनकर राजा को मार्गभ्रष्ट इसी ने किया था। राजा के सामने कोई पुरुषार्थ चलता नहीं था। तो इतना ही किया कि रास्ता भुलवा दिया।

यह कपटी मुनि का बडा मित्र था। समानशीलव्यसनेषु मैत्री समान शील और समान व्यसनवालो मे मैत्री होती है। शत्रु के शत्रु से मैत्री होना स्वाभाविक है। मुनि कपटी और राक्षस मायावी दोनो राजा के शत्रु है अत परम मित्रता होना प्राप्त ही था। यह कालकेतु बडी माया जानता था। इसी के माया के बल पर कपटी मुनि की सब सिद्धाई अवलम्बित थी। उपरोहित को हरण करके उसे अपने आश्रम मे रखना। और पुरोहित का वेष धर के राजा से मिलना। नित्य एक लाख ब्राह्मण-

परिवारी के भोजन योग्य रसोई बनाना। सोते हुए राजा को घर पहुँचाना आदि जितनी बातें कपटी मुनि ने अपने तपबल से करने को कहा था वह सब कालकेतु की माया बल के भरोसे कहा था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई ॥
प्रथमहि भूप समर सब मारे। विप्र सत सुर देखि दुखारे ॥३॥

अर्थ उसके सौ बेटे और दस भाई थे। सबके सब बडे खल थे। युद्ध म अत्यन्त अजेय थे। और देवताओ को दु ख देते थे। सो विप्र सन्त और देवो को दु खी देखकर पहिले ही राजा ने उन सबो को लडाई में मार डाला था।

व्याख्या मित्रता का कारण सुस्पष्ट करते हैं। शत्रु का शत्रु मित्र होता है। राजा भानुप्रताप दोनो का शत्रु था। कपटी मुनि का राज्य ले लिया था। और कालकेतु का निर्वंश कर दिया था। दोनो भानुप्रताप के भय से घोर वन मे छिपे हुए दिन काटते थे। कपटी मुनि तपस्वी बने रहते थे। और कालकेतु सूकरादि अनेक रूप धारण करके किसी भाँति दिन काटता था। भानुप्रताप ने सग्राम मे देवो से भी दुर्जेय कालकेतु के भाई और बेटो को मार डाला था। रिपु रिन रचन राखब काऊ। सो ये दोनो शत्रु बचे हुए थे।

तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मत्र विचारा ॥
जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ ॥४॥

अर्थ उस खल ने पिछला वैर सँभाला। तापस नृप कपटी मुनि से मिलकर मन्त्र विचार किया। जैसे शत्रु का नाश हो वही उपाय रचा। होनहार के वश राजा को कुछ पता नही चला।

व्याख्या अकेले होने से वैर ढीला पड गया था। एक साथी और मिल जाने से वैर को सँभाला। कपटी मुनि और कालकेतु दोनो ने मिलकर मन्त्रणा की। और उपाय रचा कि भानुप्रताप को मृगया का व्यसन है। दूर-दूर तक मृगया के लिए जाता है। कभी न कभी इस वन मे भी आवेगा ही। तब कालकेतु सूकर बनकर उसको वन मे भुलवाए। इस वन मे यही जलाशय है और केवल कपटी मुनि का ही आश्रम है। अत उसे यहाँ छोडकर दूसरी जगह त्राण मिलनेवाला नही है। तब कपटी मुनि अपनी माया फैलाये और उसे ईप्सित वरदान देने के व्याज से उपर्युक्त कार्यवाही के लिए तैयार करे। तब कालकेतु आकाशवाणी करके ब्राह्मणो से शाप दिलावे। तब कपटी मुनि सब राजाओ के यहाँ पत्र भेजकर उन्हे उत्साहित करें कि शापित राजा के जीतने मे सुभीता है। और वे सेना लेकर राजा पर धावा करें। जिसम राजा का सर्वनाश हो और इस भाँति बदला चुका ले।

राजा बडा सावधान था; पर भावीवश उसे कुछ पता न लगा। भाव यह कि उसने कालकेतु और तपस्वी वेषधारी राजा के खोजवाने का यत्न बहुत किया था। परन्तु पता न लग सका। कालक्रम से बात पुरानी हो गई। और अब कोई उस ओर ध्यान नही देता था।

दो रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु।
अजहु देत दुख रवि ससिहि, सिर अविसेपित राहु ॥१७०॥

अर्थ तेजस्वी शत्रु यदि अकेला भी हो तो उसे छोटा नही समझना चाहिए। राहु का शिरमात्र बचा हुआ है। फिर भी आजतक सूर्य और चन्द्रमा को दुख देता है।

व्याख्या तेजवत लघु गनिअ न रानी अकेला राजा सोया पडा है। फिर भी कपटी मुनि और कालकेतु उसके वध का साहस नही करते। राजा के छ अङ्ग है। उनमे से पाँच मन्त्री आदि से हीन राजा यहाँ अकेला है। इसीसे 'सिर अवसेपित राहु से' उपमा दी। सूर्य-चन्द्र स्थानीय कालकेतु और कपटीमुनि के ग्रास करने मे अर्थात् निस्तेज करने मे अकेले समर्थ है।

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरपि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई ॥१॥

अर्थ तपस्वी राजा अपने सखा को देखकर हर्षित होकर उठ के मिला और सुखी हुआ। तब मित्र ने सब कथा सुनायी। राक्षस सुख पाकर बोला।

व्याख्या तपस्वीराजा शब्द का प्रयोग कपटी मुनि के लिए ही किया गया है। जहाँ मुनि बनकर कपट करता है वहाँ कपटी मुनि कहते है। और जहाँ राजा-सा व्यवहार करता है वहाँ तपस्वी राजा लिखते है। यह बैठा हुआ अपने मित्र कालकेतु की बाट जोह रहा था, लेटा तक नही। उसे देखकर आदर से उठा और प्रेम से आलिङ्गन करके सुखी हुआ कि अब काम बन जायगा।

भानुप्रताप का आना और जो जो बाते उससे हुई सो सब कह सुनाया। क्योकि आगे का काम सब उसी को करना है। एक बात कहने मे छूट जाने से बात बिगड जाती है। कालकेतु के आने से कपटी मुनि सुखी हुए। और सब कथा सुनकर कालकेतु सुखी हुआ।

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौ तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिधु औपध बिआधि बिधि खोई ॥२॥

अर्थ सुनो राजा यदि तुम मेरे कहने के अनुसार चल तो अब शत्रु को मै ठीक कर लूँगा। सोच छोडकर अब तुम जाकर सोओ। बिना दवा के ही ब्रह्मा ने रोग नष्ट कर दिया।

व्याख्या कपटी मुनि को बडा सोच था। निद्रा नही आती थी। यथा सो किमि सोच सोच अधिकाई। इसलिए कहता है परिहरि सोच रहहु तुम सोई। यह राजा नही है व्याधि है। हम लोगो को बडा कष्ट दिया। कही हम लोगो का प्रचार ही नही होने देता था। यथा प्रजापाल अति वेदविधि कतहुँ नही अघलेस। जब इससे अधिक वीर्यवान् औपध मिले तब यह मारा जा सके। उसी औपध की खोज मे हमलोग थे। सो विधि ने ऐसी विधि बैठा दी कि यह निश्चय ब्रह्मशाप स

नष्ट हो जायगा। तुमने मेरा कहना किया। अब शत्रु नहीं बच सकता कालकेतु ने ही कपटी मुनि को उस विधि से बात करने की सलाह दी थी। जिस विधि से उसने राजा से बातें की।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मैं आई ॥
तापस नृपहिं बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी ॥३॥

अर्थ कुल के सहित शत्रु की जड को धो बहाकर चौथे दिन मैं आकर मिलूँगा। तपस्वी राजा को बहुत कुछ ढाढस बँधाकर महाकपटी और क्रोधी चला।

व्याख्या कालकेतु अपने मित्र से बिदा होता है। जड के बह जाने पर मकान गिरते देर नहीं लगती। सो चौथे दिन ब्राह्मण शाप के द्वारा इसकी जड धो बहाऊँगा। फिर इसके राज्य की इमारत के गिरते देर न लगेगी। कोई भी निमित्त पाकर नष्ट हो जायगा। विप्र-गुरु-पूजा ही इसकी जड है। उसी को नष्ट कराकर चौथे दिन मैं आकर तुमसे मिलूँगा।

तपस्वी राजा को बडी चिन्ता थी कि क्या जाने काम किसी विघ्न के उपस्थित होने से न बने तो हमारी क्या दशा होगी? इसलिए कालकेतु ने बहुत ढाढस बँधाया कि यह दाव खाली नहीं जा सकता। और यदि खाली भी जाय तो भी तुमपर आँच न आवेगी राजा तुम्हें अपना पुरोहित समझेगा।

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माँझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहि सैन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई ॥४॥

अर्थ भानुप्रताप को घोडे के समेत एक क्षण म घर पहुँचाया। राजा को रानी के पास सुलाकर अश्वशाला म घोडे को साजकर बाँध दिया।

व्याख्या पहिला काम यही किया कि राजा को घर पहुँचाया। जिसम राजा का विश्वास और दृढ हो। सत्तर योजन राजा को घोडे के सहित क्षणभर म पहुँचाया और राजा की नीद नही खुली। यह आसुरी माया है। इतना कर सका परन्तु राजा को मार न सका। भारतवर्ष म एक विद्या थी बला-अतिबला, उसके जानकार को कोई सोते म मार नही सकता था। अथवा उस समय के असुर भी सोते हुए शत्रु को मारना अनुचित समझते थे।

भीतर महल म राजा को ले जाकर जहाँ सोते थे सुला दिया। पहरेदारो को या रानी को पता नही। घोडे को घोडसार में जाकर बाँधा जिससे राजा जब आवे घोडे को कसा कसाया पावे।

दो राजा के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महु, माया करि मति भोरि ॥१७१॥

अर्थ तब राजा के उपरोहित को हरण करके ले गया। उसे पहाड की कन्दरा म माया से उसकी बुद्धि भोरी करके रख दिया।

व्याख्या दूसरा काम यह किया कि पुरोहित को हटाया। उसकी बुद्धि माया

द्वारा भोरी करके उसे पहाड की कन्दरा मे रख दिया। मति भोरी कर दी कि कन्दरा मे ही घूमा करे बाहर न निकल सके। उसे यही न मालूम हो कि मैं कौन हूँ और कहाँ पर हूँ। बुद्धि ठीक रहती तो सम्भव है कि पुरोहित कोई ऐसा उपाय करता जिससे शत्रु की कार्यसिद्धि मे विघ्न उपस्थित हो।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागे नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥१॥

अर्थ : अपना रूप उपरोहित सा बनाकर उसकी अनुपम शय्या पर जाकर लेट गया। प्रात काल का अनुभव करके राजा जगे। सो घर देखकर अत्यन्त आश्चर्य माना।

व्याख्या कपटी मुनि अपने आश्रम मे ही रहे। पुरोहित के स्थान को कालकेतु ने दखल किया। उपरोहित की जैसी शय्या थी वैसी राजा की नही थी। इसलिए अनूप कहा। इससे राजा का नीतिनैपुण्य और धर्मबुद्धि सूचित हुई। राजा के यहाँ पुरोहित का बडा सम्मान था। यह सब कार्य उसी रात मे हुआ। अभी रात बाकी है। इसलिए पुरोहित की शय्या पर जा लेटा।

प्रात काल जागने का राजा को अभ्यास था। पहर भर रात रहते ही प्रातः-काल माना जाता है। यथा पछिले पहर भूप नित जागा। कैसे यहाँ आ गये। सोये आश्रम मे जागे महल मे। इस बात का बडा आश्चर्य हुआ।

मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवहिं जेहि जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढि तेही। पुर नर नारि न जानेउ केही॥२॥

अर्थ : मुनि की महिमा का मन से अनुमान करके धीरे से उठे जिससे रानी न जान पावे। उसी घाडे पर सवार होकर वन गये। पुर के नर नारी कोई जान न सके।

व्याख्या · आश्चर्य होने पर यह अनुमान किया कि यह मुनिजी का तपबल है। उन्होने कहा था कि मैं तप बल तोहि बाजि समेता। पहुँचैहहु सोवतहिं निकेता। सो कर दिखाया। रानी जागेगी तो पूछेगी कि कब आये कैसे आये। छठे कान में कहानी पडना गुरुजी ने रोक दिया है। इसलिए धीरे से उठा जिसमे रानी की नीद न टूटे। गुपचुप घोडसार मे गया। देखा घोडा कसाकसाया तैयार है। उसपर सवार होकर वन मे चला गया। विन्ध्याचल नही गया। क्योकि जाने आने मे कई दिन लगेंगे। पुर नर नारियो ने न जाना। राजाओ के गुप्त मार्ग होते थे। जिससे पुर के बाहर आया जाया करते थे और किसी को पता नही चलता था।

गएँ जाम[१] जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोकि सुमिरि सोइ काजा॥३॥

---

१. यह युक्ति अलङ्कार है।

अर्थ दोपहर बीतने पर राजा आया। घर घर उत्सव हुआ। बधावा बजने लगा। उपरोहित को जब राजा ने देखा तो उस कार्य को स्मरण करके चकित होकर देखने लगा।

व्याख्या दोपहर बीत जाने पर लौटा। जिससे लोग जानें कि दूर से लौट रहे हैं। राजा अकेला लौटा। मृगया का साज समाज साथ नही है। वे तो विन्ध्याचल मे राजा की बाट जोह रहे हैं। खबर दी गई कि महाराज घर लौट गये। पुरोहित मे भी लौट फेर होनेवाला था। अत राजा चकित होकर देख रहा है कि वही हैं या तपस्वी जी उनके वेष मे हैं।

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनिपद रहि मत लीनी ॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समझावा ॥४॥

अर्थ राजा को तीन दिन युग के समान बीते। कपटी मुनि के चरणो म ही मन लगा था। समय जानकर पुरोहित आया और उसने राजा को एकान्त म सब समझाकर कह दिया।

व्याख्या प्रतीक्षा का समय कठिन होता है। तिसपर ऐसी प्रतीक्षा जिसमे बडे भारी लाभ की आशा हो। अत तीन दिन राजा के लिए तीन युग हो गये। समाप्त ही नही होते थे। उत्कण्ठा अत्यन्त बढी हुई है। और कपटी मुनि के लिए हृदय म बडी श्रद्धा है। उन्ही के चरणो मे मन लीन हो रहा है।

तीन दिन बीतने पर रात को पुरोहित जी आये और जब एकान्त बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि। इस वचन की भी पूर्ति हुई। एकान्त मे सब कथा समझा कर कही। यथा

लागि तृपा वन भूलि परय्यौ, तव जाइ सरोवर तोहि दिखायो।
देखि दुखी वरदान दियो, शतकल्पलौं कालते तोहि बचायो॥
सोवत ही तोहि वाजि समेत, तपोबल ते घर मे पहुँचायो।
निर्भय विप्रनतें करिवे कहँ, तोहि महीप इहाँ लगि आयो॥

दो नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम वस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस वर, विप्र कुटुंव समेत ॥१७२॥

अर्थ. राजा गुरु को पहिचान कर हर्षित हुए। भ्रमवश चेत न रहा। तुरन्त एक लाख अच्छे वैदिक ब्राह्मणो को सकुटुम्ब वरण किया।

व्याख्या और एक मैं वहो लखाऊ। सो लखाव पाकर पहिचान लिया कि गुरुजी हैं। यह याद न रहा कि कालकेतु के सौ पुत्र और दस भाइयो को मैंने मारा है। उसका पता किसी तरह नही लग सका। वह महा मायावी है। बदला लेने की फिक्र मे लगा होगा। कही यह सब उसकी माया तो नही है। नही तो एक आदमी इतने आदमियो के लिए रसोई कैसे बनावेगा? सो यह कुछ न हुआ। एक लाख ब्राह्मणो को निमन्त्रण दे दिया गया।

उपरोहित जेवनार वनाई । छ रस चारि विधि जसि श्रुति गाई ॥
मायामय तेहि कीन्ह रसोई । विंजन बहु गनि सकै न कोई ॥१॥

अर्थ छ रस और चार विधि जैसा वेद ने कहा है वैसी जेवनार पुरोहित ने वनायी। उसने मायामय रसोई की। अनेक प्रकार के व्यञ्जन बनाए जो कोई गिन नही सकता।

व्याख्या पुरोहितजी स्वय जेवनार वनाने बैठे हैं। इसलिए वेद की विधि से रसोई वनी। छवो रस मधुर, कटु, तिक्त, अम्ल, लवण और कषाय। तथा चारो विधि चर्व्य, चोष्य, लह्य और पेय के अगणित प्रकार के व्यञ्जन वनाये। देखने मे तो रसोई वेद विधि से वनी थी पर थी वह मायामय। इतनी थोडी देर मे इतने व्यञ्जन वनाने का अभिप्राय यह कि राजा को मुनिजी के तप पर श्रद्धा और भी वढे।

विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महु विप्र मास खल साँधा ॥
भोजन कहुँ सव विप्र वोलाए। पग पखारि सादर बैठाए ॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार के मृगो का मास पकाया। और उस खल ने उसमे ब्राह्मण का मास भी मिला दिया। भोजन के लिए ब्राह्मणो को वोलाया और पाँव धोकर आदर के साथ विठाया।

व्याख्या अब मायामयत्व कहते है। वस्तुत यहाँ कोई रसोई नही थी। केवल वहाँ अनेक जन्तुओ के मास थे। और उनमे ब्राह्मण का भी मास मिला था। सब ब्राह्मणो को एक साथ उठा दिया जिससे सव मिलकर एक साथ शाप दें। राजा के यहाँ ब्राह्मणो का वडा आदर है। राजा बन्धु बान्धवो के सहित स्वय उनके पादप्रक्षालन करने लगा।

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकास बानी तेहि काला ॥
विप्र वृंद उठि उठि गृह जाहू। है वडि हानि अन्न जनि खाहू ॥३॥

अर्थ जब राजा परोसने लगा उस काल आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणो! उठ उठकर घर जाओ, अन्न मत खाओ, बडी हानि है।

व्याख्या पहल निश्चय के अनुसार तुम परुसेहु मोहि जान न कोई। राजा स्वय परोसने[१] लगा। मालूम हुआ कि बडी श्रद्धा है। नही तो राजा के परोसने का नियम नही है। देवताओ के भोजन कराने म हिमगिरि ने स्वय नही परोसा। लगे परोसन निपुन सुआरा। रसोईदार का किसी को पता नही। अब राजा पूरी

---

१ राजा का परोसना यही है कि स्वय महाराज ने भी परोसने मे हाथ लगा दिया। सारा समाज परोस रहा था। भाव यह कि परोसने का काम पूरा होने पर राजा ने स्वय परोसने म हाथ लगाया। उसी समय आकाशवाणी हुई। परिवार के सहित राजा परोसता था। यह बात इतने से ही सिद्ध है कि ब्राह्मणो ने परिवार सहित राजा को शाप दिया।

तरह रसोई का जिम्मेदार हो गया। अब निगमन यही होगा कि राजा को ऐसी ही रसोई इष्ट थी। इसी से न जाने किसको किसको बुलाकर रसोई बनवाई। पुराने रसोईदार भी सम्मिलित नही किये गये।

यह आकाशवाणी कालकेतु की की हुई थी। तेहि काला से कालकेतु ध्वनित है। गृह जाहू का भाव यह कि यहाँ तुम लोगो का पैर रखना भी उचित नही है। सबसे बड़ा धोखा है। खाते ही पतित हो जाओगे। कालकेतु ने यह आकाशवाणी शाप दिलाने के लिए की। यह सच्ची आकाशवाणी नही हो सकती। सच्ची आकाशवाणी होती तो राजा के निर्दोष होने का भी इशारा अवश्य होता। जिस भाँति लक्ष्मणजी के कोप पर आकाशवाणी ने इङ्गित किया था। यथा : अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ। सहसा करि पाछे पछिताही। कर्हिं वेद बुधते बुध नाही। परन्तु यहाँ अत्यन्त आवश्यक बात की ओर कुछ भी इशारा नही है। अतः यह देवकृत आकाशवाणी नही है। असुरकृत है। जिसके कारण राजा मारा गया।

भयउ रसोईं भूसुर मासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू ॥
भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी ॥४॥

अर्थ : रसोई ब्राह्मणो के मास की हुई है। सब ब्राह्मण विश्वास मानकर उठ खडे हुए। राजा विकल हो उठा। बुद्धि मोह से गडबडा गई। होनहारवश मुख से शब्द न निकले।

व्याख्या : जिसे रसोई समझते हो वह ब्राह्मणो का मास है। इस वाणी का बोलनेवाला कोई दिखाई नही पडता है। और शब्द सुनाई पड़ते हैं। अत. यह अवश्य ही आकाशवाणी है। यह कभी मिथ्या नही हो सकती। अतः विश्वास मानकर पत्तल पर से उठ गये।

जिस बात से राजा सदा डरता था वही आँख के सामने आगई। बात ऐसी गठ गई है कि इसकी सफाई नही। आकाशवाणी पर शङ्का को स्थान नही। यह हुआ क्या ? सोचकर राजा विकल हो गया। विकल होने से बुद्धि स्तब्ध हो गई। कुछ कह न सका। यही समय अपनी निरपराधता तथा ठगे जाने की बात को प्रकाश करने का था। होनहार बलवान् है। कालकेतु का अनुमान ही ठीक निकला कि इसके नाश मे ब्रह्मदेव का हाथ है। यथा : बिनु औषधि बिधि खोई।

दो. बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ सहित परिवार ॥१७३॥

अर्थ : सब ब्राह्मण क्रुद्ध होकर बोले। कुछ विचार न किया। शाप दिया : मूढ राजा तू परिवार सहित राक्षस हो।

व्याख्या : आकाशवाणी के बाद राजा के कुछ न बोलने से सब दोष उस पर आ पडा। ब्राह्मणो ने भी कुछ विचार न किया। बात विचारने योग्य थी कि

ऐसा धर्मात्मा राजा, एकाएक ऐसा अनर्थ क्यो करेगा ? फिर इसे ऐसा करने से लाभ क्या ? यह आकाशवाणी सच्ची है कि माया है ?

कहने लगे : ब्राह्मण के मास की रसोई राक्षस के यहाँ होती है। यथा 'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। सो तेरे यहाँ ऐसी रसोई बनी अत' तू राक्षस हो। 'मूढ' कहने से भाव यह कि तेरा कोई लाभ नही और हमारा धर्म चला जाता। सहित परिवार का भाव यह कि परिवार के सहित तू पादप्रक्षालनादि ब्राह्मण भोजन के कृत्य मे लगा था। तूने ही परिवार सहित रसोई इसीलिए बनाई और आप ही परोसने चला। श्रद्धा से नही हम लोगो के सर्वनाश के लिए जानबूझकर तूने सब किया। अत सबके सब राक्षस हो जाओ।

छत्र बंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई ॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा ॥१॥

अर्थ रे क्षत्रियाधम ! तूने ब्राह्मणो को बुलाकर उनको समाज सहित नष्ट करना चाहा था। ईश्वर ने हमारा धर्म रख लिया। तू परिवार के साथ नष्ट होगा।

व्याख्या बिना बुलाये हुए के साथ भी कोई ऐसा व्यवहार नही करता। तूने बुलाकर ऐसा व्यवहार किया। समाजसहित तूने सब ब्राह्मणो को नष्ट करना चाहा। जिसमे सब पतित हो जायँ। कोई प्रायश्चित करनेवाला न रह जाय। आकाशवाणी द्वारा ईश्वर ने हमारा धर्म बचाया। तू परिवारसहित इस कर्म मे सम्मिलित था। और परिवारसहित हम लोगो का नाश चाहा। इसलिए तू भी परिवारसहित नष्ट होगा।

सवत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ॥
नृप सुनि साप विकल अति त्रासा। भइ बहोरिवर गिरा आकासा ॥२॥

अर्थ सम्वत् के भीतर तेरा नाश हो। कुल म कोई जल देनेवाला न रहे। राजा शाप सुनकर अत्यन्त भय से व्याकुल हो गया तो फिर आकाश से श्रेष्ठ वाणी हुई।

व्याख्या सम्वत् भर ब्राह्मणो को नष्ट करने का तेरा सकल्प था। सो सम्वत् के भीतर तेरा नाश हो जाय। तूने चाहा था कि कोई ब्राह्मण बच न जाय। अत तेरे कुल मे कोई न बचे। जलदाता भी कोई न रहे। अर्थात् दस पुस्त के भीतर जितने दायाद हैं सब नष्ट हो जायँ।

राजा पहिले ही विकल था। अब शाप सुनकर अत्यन्त विह्वल हुआ। तब श्रेष्ठ · सच्ची वाणी आकाश से हुई। भाव यह कि पहिली वाणी श्रेष्ठ न थी। क्योकि कालकेतु की बोली हुई थी। अब यह श्रेष्ठ वाणी राजा के यश की रक्षा तथा शापानुग्रह के लिए हुई।

विप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा ॥
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मणो ! तुम लोगों ने विचारकर शाप नही दिया। राजा ने कोई अपराध नही किया। सब ब्राह्मण आकाशवाणी सुनकर चकित हो गये। जहाँ भोजन की खानि थी वहाँ राजा गया।

व्याख्या : राजा की सफाई का उपाय अब सिवा आकाशवाणी के दूसरा था नही सो आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणों की भर्त्सना की कि तुम लोगों ने विचार से काम नहीं लिया। निरपराध को शाप दे डाला। ब्राह्मण के मांस की रसोई होने में राजा का कोई अपराध नही है। विना ठीक तरह जाँच किये तुम लोगों ने कैसे निर्णय किया ?

यह आकाशवाणी कैसी ? राजा का अपराध नही है तो किसका है ? अतः सब ब्राह्मण चकित हुए। यश की रक्षा आकाशवाणी ने की। तव राजा इतने सावधान हुए कि रसोईघर में गये रसोईदार और रसोई की जाँच करने के लिए।

तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा ॥
सब प्रसंग महि सुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई ॥४॥

अर्थ : वहाँ न रसोई थी न रसोईदार ब्राह्मण था। तब राजा लौटा। मनमें अपार सोच हुआ। सब कथा ब्राह्मणों को सुनाकर पृथ्वी में आकुल होकर गिर गया।

व्याख्या : मुख्य अपराधी अपने अपराध के प्रमाण सहित अन्तर्धान हो गया। अब राजा के सोच का कोई पारावार न रह गया। वह सोचता है कि जिसके ऊपर इतनी आस्था थी वह घोर वैरी निकला। और वह कौन था जिसने इतनी वडी माया करके मेरा नाश किया ? मैं अत्यन्त लोभ से मारा गया। अब मेरा और मेरे कुटुम्ब का क्या होगा ? इत्यादि ऐसा सोच उठा कि उसका पारावार नही। अपना निरपराध होना सिद्ध करने के लिए सब बातें खोलकर कहनी पड़ी। कहते कहते व्याकुलता इतनी बढी कि पृथ्वी पर गिर गया।

दो. भूपति भावी मिटै नहि, जदपि न दूषन तोर।
किए अन्यथा होइ नहि, विप्र साप अति घोर ॥१७३॥

अर्थ : ब्राह्मण बोले : राजन् ! होनहार होकर ही रहता है। मिटता नही। यद्यपि तुम्हारा दोष नही। पर करने से अन्यथा नही हो सकता। ब्राह्मण का शाप अत्यन्त घोर होता है।

व्याख्या : ब्राह्मणों ने कहा ऐसी ही भावी थी। शाप निमित्त मात्र हुआ। हम लोग भी अब तुझे निर्दोष मानते हैं। पर इस शाप की प्रतिक्रिया नही है। हम भी इसे अन्यथा नही कर सकते। यहाँ शापानुग्रह की कथा नहीं कहते। रुद्रगणों पर जैसा नारदजी ने अनुग्रह किया था वैसा ही समझ लेना। यथा : वैभव विपुल तेज वल होऊ। समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहौं मुकुत न पुनि संसार।

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुर लोगन्ह पाए ॥
सोचहि दूपन दैवहि देही। विचरत हंस काग किय जेही ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। पुरवासियो को समाचार मिला। लगे सोचने और दैव को दोष देने जिसने कि चलते फिरते हस को काग बना दिया।

व्याख्या : यहाँ 'महिदेव' शब्द से ब्राह्मणो का महत्त्व सूचित किया कि पृथ्वी पर के देवता है। देवताओ की भाँति आवाहन से आये थे। अपवित्रता देखकर चले जा रहे हैं। जो बात उनके मुख से निकल गई वही होगी। अन्यथा नही हो सकता।

ऐसी विचित्र घटना विशेषत राजघराने की छिप नही सकती। नगर मे फैल गई। राजा वडा प्रजा पालक था। वेदविद् था। उसके राज्य मे अधर्म का लेश नही था। अत प्रजा अत्यन्त सुखी थी। इस दुर्घटना को सुनकर लोग सोच करते हैं। दु खी होते हैं। बात किसी के समक्ष मे नही आती है। इसमे न राजा का दोष दिखाई पडता है न ब्राह्मणो का दोष दिखाई पडता है। राजा से इस जन्म मे कोई अनर्थ भी नही हुआ जिसका फल कहा जा सके। अत दैव को दोष देते हैं कि उन्होंने नियम भङ्ग किया। जन्म से ही काग या हस बनाने का विधान है। द्विज द्रोही बहु नरक भोग करि। जग जन्महि वायस सरीर धरि। यहाँ तो राजा जन्म से हस था। और हस की भाँति आचरण करता था परम धर्मात्मा था। इसे ब्राह्मण-द्रोह कहाँ से उत्पन्न हो गया ? जो ब्राह्मणो को वश करने चला।

उपरोहित हि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब आए ॥२॥

अर्थ . असुर ने उपरोहित को पहुँचाकर तपस्वी राजा को समाचार दिया। उस खल ने जहाँ तहाँ चिट्ठियाँ भेजी। सो राजा लोग सेना सजा सजाकर आये।

व्याख्या अब कालकेतु ने पुरोहित को घर पहुँचा दिया। जिसमे पुरोहित की खोज मे कही भानुप्रताप के आदमी कपटीमुनि के आश्रम तक खोजते खोजते न पहुँच जायँ और अब सालभर तक उसे गिरि खोह मे रखने की कोई आवश्यकता नही रह गई। तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञानुसार कुल सहित रिपु मूल वहाकर चौथे दिन कपटीमुनि से जा मिला और कृतकार्य होने का समाचार दिया।

वह कपटीमुनि राजा था ही सब राजा लोग उसे जानते थे। जिन जिन राजाओ से दण्ड ले लेकर भानुप्रताप ने छोड़ दिया था उन सबो को उसने चिट्ठियाँ भेजी कि भानुप्रताप राजा ब्राह्मणो के शाप से दग्ध हो गया है। अव उसके नाश के निमित्त होकर जय और यश के भागी होने के लिए शीघ्रता करो। सो राजा लोगो ने सेना सहित चढाई कर दी।

घेरेन्हि नगरँ निसान वजाई। विविध भाँति नित होइ लराई ॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥३॥

अर्थ · सब राजाओ ने डङ्का बजाकर नगर घेर लिया। अनेक प्रकार से युद्ध होने लगा। सभी सुभट . योद्धा पराक्रम दिखला दिखालकर जूझ गये और भाई सहित राजा भी खेत रहा।

व्याख्या · नगर घिर गया। बाहर की सहायता रुकी। चारो ओर से धावा हुआ। राजा ने सामना किया। नित्य अनेक प्रकार युद्ध होने लगे। भानुप्रताप के सुभटो ने पीठ नही दिखायी। खूब पराक्रम किया। परन्तु शापित होने के कारण मारे गये। राजा को अन्त मे लडना चाहिए। इसी नीति का आश्रयण करके राजा अन्त मे लड़ा और भाई सहित खेत रहा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाचा। विप्र श्राप किमि होइ असाँचा॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निजपुर गवने जय जस पाई॥४॥

अर्थ : सत्यकेतु के कुल मे कोई न बचा। ब्राह्मणो का शाप मिथ्या कैसे हो सकता है? सब राजा शत्रु को जीतकर नगर को बसाकर विजय और यश पाकर घर गये।

व्याख्या : ये राजा लोग जय और यश की आकाक्षा से आये थे। भानुप्रताप से पराजित होने से ये अपनी कीर्ति खो बैठे थे। भानुप्रताप पर विजय पाने से अपनी खोई हुई कीर्ति प्राप्त की। युद्ध मे नगर उजड गया था। उसे बसाकर सब घर चले गये। राज्य कपटी मुनि के हाथ लगा। क्योकि इसी ने सबको चिट्ठी भेज कर बुलवाया था। और उद्योग सब इसी का था।

दो. भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम॥१७५॥

अर्थ भरद्वाज! सुनो। जिसे सब ब्रह्मा बाएँ हो जाते हैं तो उसके लिए धूलि मेरु हो जाती है। पिता यम हो जाते हैं। रस्सी उसके लिए सर्प हो जाती है।

व्याख्या : अशुभ कर्म के उदय होने से ही विधाता बाएँ होते हैं। यथा : कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता। कपटी मुनि धूल के समान था। यथा · नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत। सो पर्वतराज सुमेरु सा हो गया। उसके बुलाने से सब राजा युद्ध करने चले आये। पितृस्थानीय विप्रवृन्द यम हो गये। ऐसा घोर शाप दे दिया। कालकेतु मे कुछ नही रह गया था। उसकी आकृति मात्र राक्षस की थी। सूकर आदि बना वन मे फिरता था। वह रज्जु था सो साँप हो गया।

३. रावणावतार प्रसङ्ग

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥१॥

अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुर लोगन्ह पाए ॥
सोचहि दूषन दैवहि देही। विचरत हस कांग किय जेही ॥१॥

अर्थ ' ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। पुरवासियो को समाचार मिला। लगे सोचने और दैव को दोष देने जिसने कि चलते फिरते हस को काग बना दिया।

व्याख्या : यहाँ 'महिदेव' शब्द से ब्राह्मणो का महत्त्व सूचित किया कि पृथ्वी पर के देवता है। देवताओ की भाँति आवाहन से आये थे। अपवित्रता देखकर चले जा रहे है। जो बात उनके मुख से निकल गई वही होगी। अन्यथा नही हो सकता।

ऐसी विचित्र घटना विशेषत राजघराने की छिप नही सकती। नगर मे फैल गई। राजा बडा प्रजा पालक था। वेदविद् था। उसके राज्य मे अधर्म का लेश नही था। अत प्रजा अत्यन्त सुखी थी। इस दुर्घटना को सुनकर लोग सोच करते हैं। दु खी होते हैं। बात किसी के समझ मे नही आती है। इसमे न राजा का दोष दिखाई पडता है न ब्राह्मणो का दोष दिखाई पडता है। राजा से इस जन्म मे कोई अनर्थ भी नहीं हुआ जिसका फल कहा जा सके। अत दैव को दोष देते है कि उन्होने नियम भङ्ग किया। जन्म से ही काग था हस बनाने का विधान है। द्विज द्रोही वह नरक भोग करि। जग जन्महि वायस सरीर धरि। यहाँ तो राजा जन्म से हस था। और हस की भाँति आचरण करता था परम धर्मात्मा था। इसे ब्राह्मण-द्रोह कहाँ से उत्पन्न हो गया ? जो ब्राह्मणो को वश करने चला।

उपरोहित हि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब आए ॥२॥

अर्थ असुर ने उपरोहित को पहुँचाकर तपस्वी राजा को समाचार दिया। उस खल ने जहाँ तहाँ चिट्ठियाँ भेजी। सो राजा लोग सेना सजा सजाकर आये।

व्याख्या अब कालकेतु ने पुरोहित को घर पहुँचा दिया। जिसमे पुरोहित की खोज मे कही भानुप्रताप के आदमी कपटीमुनि के आश्रम तक खोजते खोजते न पहुँच जायँ और अब सालभर तक उसे गिरि खोह मे रखने की कोई आवश्यक्ता नही रह गई। तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञानुसार कुल सहित रिपु मूल बहाकर चौथे दिन कपटीमुनि से जा मिला और कृतकार्य होने का समाचार दिया।

वह कपटीमुनि राजा था ही सब राजा लोग उसे जानते थे। जिन जिन राजाओ से दण्ड ले लेकर भानुप्रताप ने छोड दिया था उन सबो को उसने चिट्ठियाँ भेजीं कि भानुप्रताप राजा ब्राह्मणो के शाप से दग्ध हो गया है। अब उसके नाश के निमित्त होकर जय और यश के भागी होने के लिए शीघ्रता करो। सो राजा लोगो ने सेना सहित चढाई कर दी।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। विविध भाँति नित होइ लराई ॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥३॥

अर्थ सब राजाओं ने डङ्का बजाकर नगर घेर लिया। अनेक प्रकार से युद्ध होने लगा। सभी सुभट योद्धा पराक्रम दिखला दिखलाकर जूझ गये और भाई सहित राजा भी खेत रहा।

व्याख्या नगर घिर गया। बाहर की सहायता रुकी। चारो ओर से धावा हुआ। राजा ने सामना किया। नित्य अनेक प्रकार युद्ध होने लगे। भानुप्रताप के सुभटो ने पीठ नही दिखायी। खूब पराक्रम किया। परन्तु शापित होने के कारण मारे गये। राजा को अन्त मे लडना चाहिए। इसी नीति का आश्रयण करके राजा अन्त म लडा और भाई सहित खेत रहा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाचा। विप्र श्राप किमि होइ असाँचा ॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निजपुर गवने जय जस पाई ॥४॥

अर्थ सत्यकेतु के कुल मे कोई न बचा। ब्राह्मणो का शाप मिथ्या कैसे हो सकता है? सब राजा शत्रु को जीतकर नगर को बसाकर विजय और यश पाकर घर गये।

व्याख्या ये राजा लोग जय और यश की आकाक्षा से आये थे। भानुप्रताप से पराजित होने से ये अपनी कीर्ति खो बैठे थे। भानुप्रताप पर विजय पाने से अपनी खोई हुई कीर्ति प्राप्त की। युद्ध मे नगर उजड गया था। उसे बसाकर सब घर चले गये। राज्य कपटी मुनि के हाथ लगा। क्योकि इसी ने सबको चिट्ठी भेज कर बुलवाया था। और उद्योग सब इसी का था।

दो भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम ॥१७५॥

अर्थ भरद्वाज! सुनो। जिसे सब ब्रह्मा बाएँ हो जाते हैं तो उसके लिए धूलि मेरु हो जाती है। पिता यम हो जाते हैं। रस्सी उसके लिए सर्प हो जाती है।

व्याख्या अशुभ कर्म के उदय होने से ही विधाता बाएँ होते हैं। यथा कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता। कपटी मुनि धूल के समान था। यथा नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत। सो पर्वतराज सुमेरु सा हो गया। उसके बुलाने से सब राजा युद्ध करने चले आये। पितृस्थानीय विप्रवृन्द यम हो गये। ऐसा घोर शाप दे दिया। कालकेतु मे कुछ नही रह गया था। उसकी आकृति मात्र राक्षस की थी। सूकर आदि बना वन मे फिरता था। वह रज्जु था सो साँप हो गया।

३ रावणावतार प्रसङ्ग

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दस सिर ताहि बीस भुज दडा। रावन नाम बीर बरिबडा ॥१॥

अर्थ मुनि ! सुनो समय पाकर वही राजा समाज के सहित राक्षस हुआ। उसे दस सिर और बीस भुजाएँ थी। उस वीर बलिवन्द्य[1] का नाम रावण था।

व्याख्या सभी कार्यों के लिए काल असाधारण कारण है। जब वैसी ग्रह-स्थिति आई तो वही राजा भानुप्रताप राक्षस होकर पैदा हुआ। और उसका सब समाज राक्षस हुआ। इस जन्म मे उसे दस सिर हुए, वीस हाथ हुए। उसका नाम रावण पडा। यह बलवानो से भी वन्दित वीर हुआ। यह पुलस्त्य का नाती और विश्रवा मुनि का पुत्र था। माँ इसकी दैत्यकुल की थी। और दारुण वेला म इसके पिता को प्राप्त हुई थी। अत उन्होने इसकी माता से कह दिया कि तुझ राक्षस पुत्र उत्पन्न होगे। ऋषि जी के अनुष्ठान मे रहने के कारण रावण की माता के दस ऋतु व्यतीत हो गये। इसलिए विश्रवा जी ने दस पुत्र के स्थान पर एक पुत्र दस सिर और बीस भुजावाला दिया।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भएउ सो कुभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भएउ बिमात्र बधु लघु तासू॥२॥

अर्थ उसका छोटा भाई जिसका नाम अरिमर्दन था वह बलधाम कुम्भकर्ण हुआ। जो उसका धर्मरुचि नामी मन्त्री था वह उसका छोटा सौतेला भाई हुआ।

व्याख्या अरिमर्दन का उस जन्म में भुजबल अतुल था। सो इस जन्म मे भी बलधाम हुआ। इसके कान कुम्भ की भाँति थे। वाल्मीकीय और अध्यात्म मे तीनो भाइयो की एक माता कही गई है। जिसका नाम कैकसी था। परन्तु यहाँ विभीषण को सौतेला भाई कह रहे हैं। अत कथा का यह भाग उन कल्पो की कथाओ से मेल नही खाता जिसका वर्णन वाल्मीकीय या अध्यात्म म है। यह कथा भाग महाभारतोक्त रामकथा से मेल खाता है। जिसमे रावण कुम्भकर्ण का जन्म पुष्पोत्कटा से विभीषण का जन्म मालिनी से और खर तथा सूर्पणखा का जन्म राका नाम राक्षसी से लिखा है जो कि कुवेर द्वारा पिता की सेवा मे नियुक्त थी। पिता इन सबके विश्रवा मुनि थे। जिस कल्प मे ब्रह्म का रामावतार हुआ उस कल्प के रावण की माता का नाम पुष्पोत्कटा और विभीषण की माता का नाम मालिनी था।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिस्नु भगत बिग्यान निधाना॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे॥३॥

अर्थ उसका नाम विभीषण पडा। जिसे ससार जानता है कि विष्णुभक्त

---

१ दोलदडदगनेषु ड। इस सूत्र से दकार का डकार बलिवद्य का बरिवड रूप सिद्ध हुआ। लकार के रेफ होने और यकार के लोप के नियम दिये जा चुके हैं।

और विज्ञान का निधान था। और राजा के जो बहुत से बेटे और सेवक थे वे भी घोर राक्षस हुए।

व्याख्या विभीषण का नाम पुण्यश्लोको मे है। प्रात काल ही सब लोग महाभागवत होने से स्मरण करते हैं। विभीषण जी ज्ञानी भक्त थे। इसलिए विष्णु भक्त विज्ञान निधाना कहा। विभीषण के बाद सुत सेवक का नाम आने से कोई यह न समझे कि वे सब भक्त और ज्ञानी हुए होगे। अत कहते हैं कि वे सब घोर राक्षस हुए। सेवक की भी गणना परिवार मे है। इन तीनो भाइयो से घोरता मे सुत सेवक अधिक थे।

कामरूप खल जिनिस अनेका। कुटिल भयकर विगत विवेका ॥
कृपा रहित हिसक सब पापी। बरनि न जाइ बिस्व परितापी ॥४॥

अर्थ : वे खल मनमाना रूप धारण करनेवाले अनेक प्रकार के कुटिल, भयकर और विवेकरहित थे। वे सब निर्दयी, हिंसक और पापी थे। उन विश्वपरितापियो का वर्णन नही किया जा सकता।

व्याख्या : उन खलो मे मनमाना रूप धारण करने की शक्ति थी। इसलिए विश्व को परिताप देना उन्हे सरल हो गया। कुटिल, विवेकरहित, निर्दय, हिंसक और पापी थे। अत· विश्व के परिताप देने मे वे आनन्दबोध करते थे। कामरूप से माया कही। खल से स्वभाव कहा। जिनिसि से आकृति कही। कुटिल से मन की मलिनता कही। भयकर से रूप कहा। विगत विवेक से कुमति कही। कृपा रहित हिंसक से कर्म कहा। पापी से पृथ्वी का भारभूत होना कहा।

विश्वपरितापी हैं। ऐसा परिताप पहुँचाते हैं कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। आगे चलकर कहेगे सर्वसहा भगवती वसुन्धरा नही सह सकी।

दो. उपजे[1] जदपि पुलस्त्य कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर सापबस, भये सकल अघरूप ॥१७६॥

अर्थ : यद्यपि वे पुलस्त्य के कुल मे उत्पन्न हुए। जो पावन, निर्मल और अनूप था फिर भी ब्राह्मणो के शाप से वे पापरूप ही पैदा हुए।

व्याख्या · पूर्वजन्म का कर्म बहुत ही अच्छा था। इसलिए पुलस्त्य ऋषि के वश मे उत्पन्न हुए। वह कुल दूसरे को पवित्र करनेवाला था। इसलिए पावन कहा। स्वय पवित्र था इसलिए अमल कहा। उसी वश मे विश्रवा मुनि तथा कुबेर जी उत्पन्न हुए इसलिए अनूप कहा अथवा कलङ्क रहित चन्द्र के समान होने से अनूप कहा। यथा : रिपि पुलस्त जस विमल मयका। जाति आयु और भोग तीनो अच्छा था। परन्तु ब्राह्मण का शाप अत्यन्त घोर था। अत सब आसुर प्रकृति के हुए, पापरूप ही थे।

---

१ यहाँ विपम द्वितीय है।

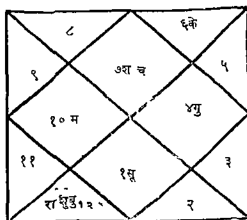
कीन्ह विविध तप तीनिहुँ भाई । परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गएउ निकट तप देखि विधाता । माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता ॥१॥

अर्थ : तीनो भाइयो ने अनेक प्रकार के तप किये । जो कि वडे उग्र : तीव्र : थे । उनका वर्णन नही हो सकता । तप देखकर ब्रह्मदेव निकट गये । कहा कि तात मै प्रसन्न हूँ, वर माँगो ।

व्याख्या : तीनो भाइयो के तप के प्रकार भिन्न थे । कुम्भकर्ण नित्य धर्म मे स्थिर रहकर ग्रीष्मकाल मे पञ्चाग्नि तापता था । और वीरासन से बैठे हुए वर्षा की धारा पावस मे सहता था । और शिशिर ऋतु मे जाकर जल मे डूबा रहता था । इस भाँति दश सहस्र वर्ष तक तपस्या करता रहा । धर्मात्मा विभीषण पाँच सहस्र वर्ष तक एक पैर से खडे रहे । और पाँच सहस्र वर्ष तक ऊपर सिर और बाहु उठाए हुए सूर्य का अनुवर्तन किया । रावण सहस्र वर्ष तक निराहार रहा । और एक सहस्र वर्ष की पूर्ति पर अपना एक सिर काटकर अग्नि मे हवन करता था । इसलिए कहते हैं कीन्ह विविध तप तीनिउ भाई । यह तो उनके शारीरतप का वर्णन हुआ । इसके साथ-साथ मानस और वाङ्मय तप कैसा हुआ । इसका कौन वर्णन कर सकता है ?

जब दश सहस्र वर्ष पूरे हुए । और रावण अपना अवशिष्ट एक सिर भी काटने

रावण की कुण्डली जो दक्षिण भारत के एक महाविद्वान् वी सूर्य नारायणराव के रायल हारोस्कोप नामक पुस्तक से उद्धृत की गई है ।



१ छठे मन्वन्तर चाक्षुप मे समुद्र मन्थन हुआ । देवासुर सग्राम हुआ । उस समय दानवेन्द्र बलि राजा थे । रावण का कोई पता नही चलता । इससे स्पष्ट है कि रावण सातवे वैवस्वत . मन्वन्तर मे हुए । परशुरामावतार इसी मन्वन्तर के उन्नीसवी चतुर्युगी मे हुआ था । उन्होने कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु को मारा । और सहस्रबाहु तथा रावण मे युद्ध हुआ था । यथा : एक बहोरि सहस भुज देखा । धाइ जनु जन्तु विसेपा । अत. कहा जा सकता है कि इस कल्प के रावण का प्रादुर्भाव उन्नीसवी चतुर्युगी मे हुआ । और चौबीसवी चतुर्युगी म वह श्रीरामचन्द्र द्वारा मारा गया । अत. रावण का राज्यकाल पाँच चतुर्युगी तक होना सिद्ध होता है ।

चला तब ब्रह्मदेव निकट गये। बोले 'प्रीतोऽस्मि' · मैं प्रसन्न हूँ और वर माँगने को कहा। प्रपौत्र है इसलिए 'तात' कहते हैं। ब्रह्मलोक मे ब्रह्मदेव हैं। ऐसी भावना से उपासना किया था। इसलिए प्रकट नही हुए निकट गये।

करि बिनती पद गहि दससीसा। बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहि न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे ॥२॥

अर्थ विनती करके और चरण पकड के दशशीश ने कहा हे जगदीश सुनो। हम किसी के मारे न मरे। वानर और मनुष्य छोडकर।

व्याख्या रावण की तपस्या भी बडी थी और ज्येष्ठ भी था। इस समय अवशिष्ट दसवें सिर का काटना चाहता था इससे ब्रह्मदेव पहिले इसी के पास गये। रावण इस समय स्वार्थरत है। अत विनती भी की। चरण पकड लिया और अमरत्व माँगा। ब्रह्मदेव ने कहा अमरत्व नही मिल सकता। दूसरा वर माँगो। तब उसने वानर और मनुष्य को छोडकर देव दानवादिको से अपना अवध्यत्व माँगा। उसने समझ रक्खा था कि मनुष्य और वानर का शरीर ऐसा है कि ये सर्वथा मुझे मारने मे असमर्थ होंगे।

एवमस्तु तुम बड तप कीन्हा। मै ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुंभकरन पहि गएऊ। तेहि बिलोकि मन बिसमय भएऊ ॥३॥

अर्थ एवमस्तु ऐसा ही हो तुमने बडा तप किया यह वर मैं और ब्रह्मा ने मिलकर दिया। फिर प्रभु कुम्भकर्ण के पास गये। उसे देखकर बडा विस्मय हुआ।

व्याख्या एवमस्तु कहने म शङ्कर जी आगे दिखाई पडे। अत यहाँ मैं ब्रह्ममिलि कहा। यह वर तपस्या के सामने कुछ बहुत बडा नही था। इसलिए तुम बड तप कीन्हा। यथा रावन कुम्भकरन वर माँगत सिव बिरचि बाचा छर्यौ दाना दवो ने मिलकर वर दिया। क्योकि उसने दोना की पूजा की थी।

कुम्भकर्ण के पास ब्रह्मदेव गये, शिवजी नही गये। उसे देखकर आश्चर्य किया कि इसके कान कुम्भ जैस और शरीर इतना बडा और भयङ्कर है। यह कैसा अद्भुत जीव है। यह तो बिना वर के ही ससार का सहार कर देगा। देवताओ की प्रार्थना के अनुसार यह तो मोहन योग्य है।

जौ एहि खल नित करब अहारू। होइहि सब उजारि ससारू ॥
सादर प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नीद मास पटकेरी ॥४॥

अर्थ यदि यह खल नित्य भोजन करेगा तो ससार उजड जायगा। सरस्वती की प्रेरणा करके उसकी बुद्धि उलट दी। उसने छ महीने की नीद माँगी।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने सोचा कि खल बिना कारण भयकारी होते है। यहाँ तो बडा भारी कारण उपस्थित है। इसकी क्षुधा शान्ति के लिए अपरिमित आहार की आवश्यकता है। हिंसक है ही। सम्पूर्ण ससार का भक्षण कर जायगा। इसको वर दने से तो सृष्टि का संहार उपस्थित होगा। परन्तु इसने तो तप किया है। इसे वर

तो देना ही पडेगा। बडे असमञ्जस मे पडे। इधर देवताओ ने विनती की थी कि वर के व्याज से इसका मोहन कीजिये तभी ससार चल सकेगा। अत. सरस्वती को प्रेरणा की कि देवताओ के मनोरथ को पूर्ण करो। सरस्वती ने बुद्धि फेर दी। यथा गई गिरा मतिफेरि छ महीना जागने के स्थान मे छ महीने की नीद माँग ली।

दो गए विभीषन पास पुनि, कहेहु पुत्र वर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवत पद, कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥

अर्थ · फिर विभीषण के पास गये। कहा कि बेटा ! वर माँग। उसने भगवान् के चरण कमलो मे निर्मल भक्ति माँगी।

व्याख्या विभीषण पर स्नेह है कि यही पुत्र पद के योग्य है। कहा जो माँगेगा सो दूँगा। विभीषण की भगवान् के चरणो मे प्रीति तो थी ही। उसने फलाभिसन्धि रहित निर्मल भक्ति माँगी। नाम धर्म रुचि हरिपद प्रीता, यह भानुप्रताप का मन्त्री पूर्व जन्म मे था। उस जन्म मे भी इसे भक्ति थी। भगवान् के भक्त का नाश नही होता। यथा ताते नाश न होय भक्तकर। शाप होने पर भी भक्ति नही गई। उत्तरोत्तर बढती ही गई।

तिन्हहि देइ वर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुदरी नारि ललामा॥१॥

अर्थ उन्हे वर देकर ब्रह्मदेव तो चले गये। वे हर्षित होकर अपने घर आये। मय दानव की बेटी जिसका नाम मन्दोदरी था। बडी सुन्दर स्त्रीरत्न थी।

व्याख्या कुम्भकर्ण और विभीषण का मागना केवल कहा था। ब्रह्मदेव का वर देना नही कहा था। सो यहाँ ब्रह्मदेव के जाने के प्रसङ्ग मे कहते है कि उन्हे वर देकर ब्रह्माजी चले गये। वे प्रसन्न होकर घर आये। भाव यह कि तपस्या के लिए गोकर्ण के आश्रम मे चले गये थे। तपस्या पूरी होने पर वहाँ से अपने घर श्लेष्मातक वन मे गये। कुम्भकर्ण की मति फिरी हुई है। वह छ महीने की सुषुप्ति से ही हर्षित है।

मय दानव असुरो के विश्वकर्मा हैं। इन्हे एक बेटी थी। जिसका नाम इन्होने मन्दोदरी रख छोडा था। बडी सुन्दर थी। स्त्रियो मे रत्न थी। इसे देखकर लङ्का मे हनुमानजी को जनकनन्दनी का भ्रम हो गया था। इससे बढकर स्त्रीरत्न होने का और प्रमाण क्या हो सकता है।

सोइ मय दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई॥२॥

अर्थ उसे लाकर मय ने रावण को दिया। उसने जान लिया कि यही राक्षसो का राजा होगा। रावण अच्छी स्त्री पाकर प्रसन्न हुआ। फिर जाकर दोनो भाइयो का व्याह किया।

व्याख्या : मयदानव ने देख लिया कि रावण ही राक्षसो का राजा होनेवाला है। अत उसे लाकर रावण को दिया। उसे परम सुन्दरी देखकर रावण ने हर्षित होकर स्वीकार कर लिया। फिर विरोचन की दौहित्री जिसका नाम वृत्रज्वाला था उससे कुम्भकर्ण का व्याह कराया और शैलूष नाम के गन्धर्वराज की सरमा नाम की धर्मज्ञा वेटी का व्याह विभीषण से कराया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥
सोइ मय दानव वहुरि संवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा ॥३॥

अर्थ : समुद्र के वीच मे एक त्रिकूट पर्वत था। ब्रह्मा का बनाया हुआ वह अत्यन्त ही दुर्गम था। उसको मय दानव ने फिर से सँवारा। सोने और मणियो के अगणित मकान बनाये।

व्याख्या . समुद्र के वीच मे होने से उस पर्वत को ब्रह्मदेव ने ही अत्यन्त दुर्गम वनाया था। यो ही वहाँ तक किसी की पहुँच होनी कठिन थी। तिस पर मय दानव ने उसे असुरो के लिए फिर से सँवारा। किलावन्दी की। सोने और रत्नो के वहुत से मकान वनाये। जिसमे वह स्वर्ग से टक्कर ले सके।

भोगावति जसि अहि कुल वासा। अमरावति जसि सक्र निवासा ॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति वका। जग विख्यात नाम तेहि लका ॥४॥

अर्थ : भोगावती मे जिस भाँति सर्पकुल का वास है और अमरावती जिस भाँति इन्द्र की राजधानी है। उससे भी अधिक मनोहर और बाँकी नगरी थी जिसका नाम लका था।

व्याख्या : भोग प्रधान पुरियो मे पहिला नाम भोगावती का है। जो पाताल मे है। वहाँ सर्प रहते हैं। और इन्द्र की राजधानी अमरावती है। जिसमे इन्द्र रहते हैं। इन्द्रपद भोग की पराकाष्ठा है। इन दोनो पुरियो से अत्यन्त सुन्दर और बाँकी लङ्कापुरी थी।

दो. खाई सिंधु गभीर अति, चारिहिं दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ, वरनि न जाइ वनाव ॥१७८॥क
हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ, जातुधान पति होइ।
सूर प्रतापी अतुल वल, दल समेत वस होइ ॥१७८॥

अर्थ : गहिरा समुद्र खाईं की भाँति उसके चारो ओर घूम आया था। सोने का कोट : किला मणियो से जड़ा हुआ था। उसकी वनावट कही नही जा सकती थी।

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प मे जो राक्षसो का राजा, शूर, प्रतापी और अतुल वल होता है वह दल सहित वही रहता है।

व्याख्या दुर्ग के चारो ओर खाईं खुदवाई जाती है जिसमे शत्रु की पहुँच किले तक न हो। इसके चारो आर गम्भीर समुद्र ही खाईं की भाँति घेरे हुए था। किला सोने का था। मणि जडे हुए थे। इससे दुर्ग की दृढता कही। जो वस्तु दृढ होती हैं उसकी बनावट सुन्दर नही होती और जिसकी बनावट सुन्दर होती है वह दृढ नही होता। लका मे सुन्दरता और दृढता दोनो थी। और ऐसी थी जिसका वर्णन न हो सके।

जिस भाँति प्रत्येक कल्प मे रामावतार होता है उसी भाँति रावणावतार होता है। जिस भाँति रामजी अयोध्या मे रहते हैं उसी भाँति रावण भी लङ्का को ही अपना निवासस्थान बनाते है। जय विजय, रावण कुम्भकर्ण होकर इसी मे रहे। जलन्धर रावण होकर इसी मे रहा। रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण होकर इसी मे रहे। भानुप्रताप, अरिमर्दन और धर्मरुचि भी रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होकर इसी मे आकर बसे। इसलिए कहते है कि जो राक्षसराज शूर प्रतापी और अतुलित बल होते है वे यही सेना सहित बसते हैं। ऐसी हरि की इच्छा है। उसी से प्रेरित होकर प्रत्येक कल्प के राक्षसेश्वर लङ्का को ही अपनी राजधानी बनाते हैं।

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर सहारे ॥
अब तहँ रहहिं सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे ॥१॥

अर्थ पहले वहा बडे योद्धा राक्षस रहते थे। उन सबो को देवताओ ने लडाई मे मार डाला। अब वहाँ इन्द्र की प्रेरणा से कुबेरजी की ओर से एक करोड यक्ष रक्षक की भाँति रहते थे।

व्याख्या रावण तो कल्प के किसी मन्वन्तर मे होते है। शेष मन्वन्तरो मे तो लङ्का दूसरो के ही अधिकार मे रहती है। अत पूर्व युग मे लङ्का निशिचर भटो के अधिकार मे थी। पर देवताओ ने रण मे सबको मार डाला। बचे सो पाताल मे प्रवेश कर गये। इसलिए सहारे कहते है। एक कल्प मे चौदह मन्वन्तर और प्रत्येक मन्वन्तर म ७२ चतुर्युगियाँ होती हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग को चतुर्युगी कहते है। कई चतुर्युगी तक रावण के राज्य करने का पता चलता है।

जिस समय रावण तपस्या करके घर लौटे और व्याह किया उस समय की कथा कहते है। उस समय वहाँ इन्द्र की आज्ञा से यक्ष लोग रहते थे। राक्षसो के मारे जाने पर लङ्का देवराज इन्द्र के अधिकार मे आगई। उन्होने अपनी ओर से कुबेर को दे रक्खी थी। कुबेरजी रावण के वैमात्र बडे भाई यक्षो के राजा है।

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ घेरेसि जाई ॥
देखि बिकट भट बडि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई ॥२॥

अर्थ रावण को कही से यह पता लग गया। सेना साजकर लङ्कागढ को

घेर लिया। बडी भारी सेना और विकट वीरो को देखकर यक्षलोग प्राण लेकर भाग गये।

व्याख्या सब राक्षसो ने मिलकर रावण को राजा माना। अब आश्रम मे रावण का काम नही चल सकता था। वर पा लिया। त्रैलोक्य सुन्दरी स्त्री मिली। राक्षसो का आधिपत्य मिला। अब निवास स्थान चाहिए। उसी की चिन्ता थी। किसी ने कह[१] दिया कि आप के योग्य निवास स्थान लङ्का है। पहिले वह राक्षसो की ही थी। बल पूर्वक उसे देवताओ ने ले लिया। अब वह यक्षपति के अधिकार मे है। राक्षसो की सेना सजाकर रावण ने लङ्का पर चढाई कर दी और दुर्ग किले को घेर लिया। यक्षो ने जो रावण की अपार सेना और उद्भट वीरो को देखा तो उनका साहस टूट गया। सख्या मे एक करोड होने पर भी वे राक्षसी सेना के सामने कुछ भी नही थे। राक्षसी सेना मे योद्धा भी ऐसे विकट थे जिनका सामना यक्षलोग कर नही सकते थे। अत प्राण लेकर भाग गये। धन सम्पत्ति वही छूट गई। बिना रक्तपात के ही ऐसा नगर रावण के हाथ लगा।

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेखा॥
सुदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी॥३॥

अर्थ रावण ने घूमकर सब नगर देखा। चिन्ता मिट गई और विशेष सुख हुआ। स्वभाव से ही सुन्दर और अगम्य अनुमान करके रावण ने उसे राजधानी बनाया।

व्याख्या रावण ने जानकारी तथा व्यवस्था के लिए घूमकर सारे नगर को अपनी आँखो से देखा। बडी चिन्ता थी कहाँ रहे ? सो जाती रही। और विशेष सुख हुआ कि यह नगर तीन लोक मे बेजोड है। निश्चय किया कि यही राजधानी बनाने योग्य स्थान है। सुन्दर इतना है और अगम्य है। खाई के स्थान मे समुद्र है। और पर्वत के ऊपर दुर्ग है। यहाँ शत्रु का बल चल नही सकता। ऐसा अनुमान रावण ने किया।

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा॥४॥

अर्थ जो जिस योग्य था उसे वैसा घर बाँट विभाग मे दिया। सभी राक्षसो को सुखी किया। एक बार कुबेर पर धावा बोल दिया। और पुष्पक विमान जीतकर ले आया।

व्याख्या योग्यता के अनुसार घर दे देकर सबको सन्तुष्ट किया। घर भी हाथ आया। घर की सम्पत्ति भी हाथ लगी। इसलिए सब राक्षस सुखी हो गये।

---

१ सुमाली नामक असुर ने रावण से सब वृत्तान्त कहा। लङ्का पहिले उसके अधिकार मे थी। यह रावण का नाना था। देवताओ के भय से पाताल चला गया था।

रावण ससार के लिए भले ही बुरा हो पर राक्षसो का बडा भारी पालक था। सबको जीविका का विधान किया। अब केवल दिव्ययान की त्रुटि थी। समुद्र के बीच मे लङ्का थी। बाहर जाने आने के लिए यान की बडी आवश्यक्ता थी। जानता ही था कि बडे भाई साहिब के पास पुष्पक है। उन्ही पर चढाई कर दी। उन्हे सग्राम मे जीतकर पुष्पक विमान छीन लाया। वह विमान तप से अर्जित था। उसे बल से हरण कर लिया।

दो. कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हिसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल, चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥

अर्थ · फिर खेलवाड मे ही जाकर कैलास उठा लिया। मानो अपने बाहु के बल को तौलकर बडा सुख पाकर चला।

व्याख्या · कुबेरजी की पुरी अलका है। पुष्पक के लिए रावण ने उसी पर चढाई की थी। कुबेरजी से युद्ध करने मे *कुछ आयास नही पडा। अलकापुरी* के पास ही कैलास पर्वत है। उसे रास्ते चलते कौतुक मे ही उठा लिया। यथा पुनि नभ सर मम करनिकर करकमलन्ह पर बास। सोभित भयउ मराल इव सभु सहित कैलास अपने बल को तौलने के लिए कैलास को बाट : बटखरा बनाया। बडा सुखी हुआ कि मेरे बाहुबल का तौल हो गया कैलास से भारी है। इसी पर साङ्ग सायुध सशक्ति साक्षात् शङ्कर भगवान् गणेश स्वामिकार्तिक नन्दिकेश्वर वीरभद्रादि-गणो के साथ विराजमान है। मैने पर्वत के साथ ही साथ सबको उठा लिया। अब मेरे बराबर कोई नही है।

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बडाई ॥
नित नूतन सब बाढत जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥१॥

अर्थ १ सुख, २ सम्पत्ति, ३ बेटे, ४ सेना, ५ सहायक, १ जय, २ प्रताप, ३ बल, ४ बुद्धि और ५ महिमा। *ये सब नित्य बढते जाते है। जैसे जितना लाभ* होता जाता है उतना ही लोभ भी बढता जाता है।

व्याख्या १ अधर्मेणैधते पूर्वम् २ ततो भद्राणि पश्यति। ३ तत सपत्नान् जयति समूलश्च विनश्यति। १ पहिले अधर्म से वृद्धि होती है। २ तब कल्याण दिखाई पडता है। ३ फिर शत्रुओ को जीतता है। अन्त मे मूल के सहित नष्ट हो जाता है। रावण ने अधर्म पर पैर रक्खा है। पहिले घर मे ही छीन छोर आरम्भ किया। बडे भाई की लङ्का छीनी, पुष्पक विमान छीना। इष्टदेव का वासस्थान उखाडा। देखने मे बढोत्तरी होने लगी। अधर्मेणैधते का उदाहरण है। नित्य नया सुख, नित्य नया अर्थलाभ, नित्य नई कुटुम्बवृद्धि, नित्य नई मित्रप्राप्ति, नित्य नई जीत, नित्य नये प्रताप, नित्य नया सामर्थ्य, नित्य नया आविष्कार, नित्य नई प्रतिष्ठा बढने लगी। बढोत्तरी की उपमा देते हैं। जैसे लाभ के साथ साथ लोभ भी बढता जाता है। लाभ के साथ लोभ के बढने की उपमा देकर दोष का बढना सूचित करते है।

अति बल कुंभकरन अस भ्राता । जेहि कहुँ नहिं प्रति भट जग जाता ॥
करै पान सोवै षट मासा । जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥२॥

अर्थ : अति बली कुम्भकर्ण-सा भाई था। जिसका जोड संसार मे पैदा ही नही हुआ था। वह मद्यपान करके छ महीने सोता था। और उसके जागते ही तीनो लोक सन्त्रस्त हो उठते थे।

व्याख्या : पहिले ५ सहाय का वर्णन करते हैं। सच्चा सहाय भाई है। यथा : होहिं कुठाहर बंधु सहाए। यहाँ 'अस' शब्द भाईपन के उत्कर्ष का बोधक है। भाई के अन्याय को जानकर उसको मना भी करता है। पर उसके न मानने पर भी उसी के लिए प्राण देता है। ऐसा भाई। सो महाबल नही अतिबल, जिसका जोड ससार मे पैदा ही नही हुआ। स्वय ब्रह्मदेव अचम्भे मे आगये। यथा : तेहि बिलोकि उर बिस्मय भयेऊ। उसको स्वाभाविक बल था। रावण भी प्रतिभट खोजता था और उसे नही मिला। पर उसका बल तपस्या से अर्जित था। कुम्भकर्ण मद्यपान करके छ महीने सोता था। अर्थात् छ महीने बेसुध पडा रहता था। जिस दिन जागता था त्रैलोक्य त्रस्त हो जाता था कि आज किस खण्ड का सहार होगा। कोटि घट तो मदिरा चाहिए। चिखना के स्थान मे भैंसा चाहिए। यथा : रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिस अनेक। तब उसके बाद कोटि-कोटि कपि धरि-धरि खाई। ऐसा भयानक सहायक भाई था।

जौ दिन प्रति अहार कर सोई। बिस्व बेगि सब चौपट होई ॥
समर धीर नहिं जाइ बखाना। तेहि सम अमित बीर बलवाना ॥३॥

अर्थ : यदि वह नित्य भोजन करता तो यह ससार शीघ्र ही नष्ट हो जाता। रणधीर इतना बडा था कि बखाना नही जाता और उसके ऐसे-ऐसे असख्यात बलवान् वीर थे।

व्याख्या : ऊपर एक दिन का आहार कहा गया। इसी भाँति यदि वह नित्य खाता तो सम्पूर्ण ससार को खा जाता। ब्रह्मदेव चिन्तित हो गये। कहने लगे : जौ यह खल नित करब अहारू। होइहि बुल उजार ससारू। इसीलिए सरस्वती की प्रेरणा से उसने छ महीने की नीद माँगी। साल मे दो बार भोजन करता था।

बडे बलवान् भी यदि कापुरुष हो तो उनका बल व्यर्थ पड जाता है। पर कुम्भकर्ण अति बल होने के साथ ही साथ बडा शूर था। न उसके बल का वर्णन हो सके न शूरता का वर्णन हो सके। ४ अब सेना का वर्णन करते हैं। उससे ईषत् न्यून बहुत से वीर थे : सम ईषत् न्यून : कुछ कम के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। उनकी सख्या नही हो सकती है।

बारिद नाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥
जेहि न होइ रन सम्मुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई ॥४॥

अर्थ : उसका बडा बेटा मेघनाद था। वीरो मे जिसकी पहिली गिनती थी।

धर्म का तो उन्हे सस्कार भी नही था। अर्थात् जो अकेले ससार जीतने मे असमर्थ थे वे भी परपीडा मे कुशल थे। यहाँ तक 'अधर्मणेधते' कहा। अब ततो भद्राणि पश्यति कहते हैं। रावण राक्षसो के राजा हो गये। लङ्का ऐसा गढ मिल गया। असख्य राक्षसी प्रजा नगरी मे बस गई। अत राजसभा भी लगने लगी। विशेष घटना का उल्लेख करना है। अत उस सभा की चरचा करते हुए कहते हैं कि एक बार राजसभा मे दशमुख बैठे थे। दशमुख कहने का भाव यह था कि दशो दिशाओ को एक साथ देखने का सौभाग्य उन्ही को प्राप्त था। देखा कि सभा अपने परिवार से ही भरी पडी है।

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥२॥

अर्थ बेटो के समूह, स्वजन, अनुचर और पौत्रो के समूह हैं। राक्षस जाति की कौन गणना कर सकता है ? स्वभाव से ही वह अभिमानी था। सेना देखकर वह क्रोध और मद से सनी हुई वाणी बोला।

व्याख्या बेटो का समूह उसी भाँति कुटुम्बी, सेवक और पौत्र भी असख्य है। निशाचर जाति है। इनमें वृद्धि भी बडे बेग से होती है। जब लङ्का मे पहिले पहल आये थे तब राक्षसो की सेना साथ थी। उस समय पुत्रोत्पत्ति भी नही हुई थी। परन्तु आज पुत्र पौत्रो की ही गणना कठिन है। और सब के सब योद्धा हैं। अत उनकी एक बडी भारी सेना हो गई है। उस सेना को जब देखा तो फूले न समाये। अभिमानी तो स्वभाव से ही थे। कुटुम्ब की वृद्धि देखकर और भी अभिमान बढा। तब मद और क्रोध से भरी वाणी बोले। धन यौवन सौन्दर्य ते हर्ष युक्त जो क्षोभ होता है उसे मद कहते है।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सबल रिपु जाहिं पराई॥२॥

अर्थ . सब राक्षसो के समूह सुनते जाओ। देवताओ के समूह हमारे वैरी हैं। वे सामने डटकर नही लडते। शत्रु को बलवान् देखकर भाग जाते हैं।

व्याख्या देख लिया कि अपना परिवार ही लङ्का की रक्षा करने मे समर्थ है। अत सम्पूर्ण सेना को आज्ञा देता है। पहिले शत्रु को अभिहित करता है। मर्त्यलोक मे नर हैं। उनकी गिनती ही क्या है। पाताल के असुर अपने ही वर्ग के हैं। ये देवता मेरे शत्रु हैं। मेरा बुरा चाहते हैं। पीठ पीछे बुराई करते है। लडाई मे सामना नही करते। हमे बलवान् देखकर भाग जाते हैं। यथा जच्छजीव लै गए पराई। अब उन्हे कहाँ खोजें ? जल्दी हाथ नही आते। और शत्रु का शेष रहना बुरा है। इन्हे नि शेष करना चाहिए।

तिन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा॥४॥

अर्थ उनके मर जाने की एक विधि है। समझाकर कहता हूँ। अब इसे सुनो। ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध इन कर्मों मे तुमलोग जाकर बाधा डालो।

व्याख्या मर्त्यलोक और देवलोक मे एक व्यापार चलता है। पूर्व काल मे यज्ञ के सहित प्रजा की सृष्टि करके प्रजापति ने कहा कि इसी यज्ञ से तुमलोग बढोगे। यह तुम्हारे लिए कामधेनु होगा। यज्ञ से तृप्त होकर देवता तुम लोगो को तृप्त करेंगे। इस भाँति एक दूसरे को तृप्त करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होंगे। तब से यह व्यापार ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध के रूप मे चल पड़ा है। इन्ही के द्वारा लोग देवताओ को तृप्त करते हैं। आहुति मे दिये हुए अन्न से अमृत बनता है। वही आहार है। उसी से देवता पुष्ट होते हैं और मर्त्यलोक का कल्याण करते है। इसलिए तुमलोग इस व्यापार मे बाधा डालकर इसे बन्द कर दो।

दो छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहि मिलिहहिं आइ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं, भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

अर्थ भूख से क्षीण और बलहीन होकर देवता आप से आप आकर मिलेंगे। तब उन्हे भलीभाँति अपने वश मे करके चाहे मार डालूँगा चाहे छोड दूँगा।

व्याख्या ये शत्रु यज्ञभाग पाकर ही बलवान् होते है। यज्ञ न होने पायेगा तो इन्हे भोजन न मिलगा। भूख से मरने लगेंगे। दुर्बल हो जायँगे। भाग भी न सकेंगे। आप से आप शरण मे आवेंगे। जब भलीभाँति वश मे आ जायगे तब अपनी मर्जी की बात रहेगी। चाहे उन्हे मारें चाहे छोड दे। मर्त्यलोक म ब्राह्मण-भोजन, यज्ञ, श्राद्ध और होम बन्द कराने मे तुमलोगो को बडी सरलता है। यज्ञ म अन्न को जलाकर ये देश के शत्रु देश का अहित करते है। केवल इतने ही मौखिक आन्दोलन से यज्ञभागादि बन्द हो जायँगे। न मानने पर बलप्रयोग भी मनुष्यो मे अनायास ही किया जा सकता है।

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बलु बयरु बढावा ॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह के लरिबे कर अभिमाना ॥१॥

अर्थ फिर मेघनाद को बुलवाया। उसे शिक्षा दी, सेना दी, शत्रुता दी और बढावा दिया। कहा कि जो देवता समर मे धीर बलवान् है और जिन्हें लडने का अभिमान है।

व्याख्या सेना को आज्ञा देने के बाद जेठे बेटे मेघनाद को बुलवाया। पहिले रसद बन्द किया। अब धावे का प्रबन्ध कर रहा है। कुम्भकर्ण सो रहे हैं। विभीषण साधु ही ठहरे। मेघनाद का भट मह प्रथम लोक है। अत उसे बुलवाया और शिक्षा दी। यथा मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। बाँध लेने से ब्रह्मदेव छुडाने आवेगे। वरदान मिलेगा। बन्धन से छूटने पर आज्ञाकारी होकर रहेगा। इत्यादि। सेना साथ कर दी। बैर दिया कि ये देवता हमारे जाति के वैरी है। इन्हे यदि अवसर

मिले तो हम लोगों के वध में तनिक भी आगापीछा न करेंगे। बढावा दिया कि देवताओ मे है कौन जो तुम्हारा सामना कर सके। इत्यादि।

तत्पश्चात् मन्त्र बतलाया कि सबके पीछे पडने की आवश्यकता नहीं है। प्रधान मल्लनिर्वहण न्याय से जो प्रधान मल्ल को पछाडता है वही सब मल्लो का सरदार हो जाता है। देवताओ मे जो वीररस के अधिष्ठाता हैं उन्ही के जीतने से सब देवता जीते जावेंगे।

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी॥
एहि विधि सबही आग्या दीन्ही। आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही॥२॥

अर्थ उनको रण मे जीतकर बाँध लाओ। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को कन्धे पर लिया सँभाला। इस प्रकार से सबको आज्ञा देकर स्वयं गदा लेकर चला।

व्याख्या मेघनाद सिरे का वीर था। उसने उठकर पिता की आज्ञा को सँभाला। भाव यह कि वीररस के अधिष्ठाता इन्द्र को ही बाँध लाया। लङ्का के कारागार मे देवराज इन्द्र बन्द हुए। पहरे पर विभीषण थे। इन्द्र ने विभीषण से प्रार्थना की। विभीषण ने कहा कि जाने तो मै नही दूँगा। पर उपाय बतलाता हूँ। बन्दी देवी की स्तुति करो। इन्द्र ने वही किया। और ब्रह्मदेव की सिपारिश से विनिर्मुक्त हुए।

यह लङ्कापति की आज्ञा विधि है। सबको काम मे लगा दिया। चारो ओर एक साथ उपद्रव उठ खडा हुआ। आप स्वय रावण नाम वीर बरिबंडा हैं। रणकण्डू मिटाने के लिए गदा लेकर चला। अस्त्रजल से नही भुजबल से सबको वश्य करना चाहता है।

चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्त्रवहि सुर रवनी॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरुगिरि खोहा॥३॥

अर्थ दशानन के चलते समय भूडोल आ जाता था। गर्जन करने पर देवताओ की स्त्रियो के गर्भ गिरते थे। रावण का क्रोध सहित आना सुनकर देवताओ ने मेरुगिरि के कन्दराओ की राह ली।

व्याख्या रावण के पादप्रहार से पृथ्वी हिलने लगती थी। भार के सहने मे असमर्थ थी। यथा सेष कमठ सहि सकैं न भारा। पृथ्वी का यह हाल है। अब आकाश की दशा सुनिये। उसकी गर्जना सुनकर देवाङ्गनाओ के गर्भ गिरते हैं। इतना भयङ्कर गर्जन है और इतना बडा भय देवाङ्गनाओ को है कि रावण के गर्जन से उनका गर्भ गिरता था। देवताओ की यह स्थिति थी कि उसका क्रोधपूर्वक आगमन सुनते ही अपने अपने लोको को छोडकर प्राणभय से मेरु पर्वत के खोहो म जाकर छिपे। क्रुद्ध है। अत अधीनता स्वीकार करने पर भी रक्षा नही है। मेरु सन्निकट है, अति विशाल है। उसमे दुर्गम खोह है। अत देवताओ ने उसी का रास्ता लिया।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥४॥

अर्थ दिग्पालों के सुन्दर सुन्दर लोकों को दशानन ने सूना पाया। बार बार सिंहनाद करके देवताओं को ललकारकर गालियाँ देने लगा।

व्याख्या तब तक रावण वहाँ पहुँच गया। पर देवता लोग हट गये थे। इतने सुन्दर लोक हैं पर सूने पड़े हुए हैं। रावण जानता था कि ये सब भय से कहीं छिपे बैठे हैं। छिपे हुए भी शत्रु का गर्जन न सहकर प्रकट हो जाते हैं। अत सिंहनाद करता है। फिर भी नहीं प्रकट होते तो कदाचित् गाली न सहकर सामने आ जाँय। इसलिए ललकारकर गाली देता है पर यहाँ कोई था ही नहीं। ससार देवताओं का आवाहन करता है। रावण उन्हें भगाता है। ससार उनकी स्तुति करता है। रावण गाली देता है। इसलिए कहा गया है कि राम की भाँति बरतना चाहिए रावण की भाँति नहीं।

रन मदमत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहु न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥५॥

अर्थ रण के मद मे मत्त होकर ससार मे दौड़ता फिरता है। अपना जोड़ खोजता है। पर कहीं उसको सामना करनेवाला मिलता ही नहीं। सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम।

व्याख्या जैसे कोई मद से मत्त हो जाता है वैसे ही रावण रणमद से मत्त हो गया है। उसका रणकण्डू शान्त करनेवाला कोई मिलता नहीं है। उसी के लिए ससार मे फिरता है। काल के ध्वजभूत सूर्य, चन्द्र, जगत् प्राण वायु, पाशधारी वरुण, धनाध्यक्ष कुबेर, सर्वदाहक अग्नि, सबके सहार करनेवाले काल और सयम करनेवाले यम।

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्त्ती नरनारी॥६॥
आयसु करहिं सकल भय भीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता॥७॥

अर्थ किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर, नाग, हठ करके वह सबके पीछे पड़ा। ब्रह्मा की सृष्टि मे जितने जीवधारी हैं क्या स्त्री क्या पुरुष सब दशमुख के वशवर्ती थे। सब डरकर उसकी आज्ञा मानते थे और नित्य विनीत होकर उसके चरणो मे सिर नवाते थे।

व्याख्या तत सपत्नान् जयति का उदाहरण दिखलाते हैं कि सभी देवता उससे हार गये। परन्तु वह विश्वद्रोही था केवल जीत से सन्तुष्ट नहीं हुआ। किन्नर, सिद्ध देवताओं की जाति विशेष और पाताल लोक के नागो के पीछे पड़ा। सभी लोग उससे पीछा छुड़ाना चाहते थे। पर वह हठपूर्वक उनका पीछा नहीं छोड़ता था।

ब्रह्मा की सृष्टि में जितने शरीरधारी थे ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त सो सब रावण के वश में थे। शरीरधारी कहने से भाव यह कि अनङ्ग देवता · कामदेव उसके वश में नही थे। उनके वश में तो वह स्वयं पडा रहता था। रावण की आज्ञा सभी डरकर मानते हैं प्रेम से नही। अत्याचारियो का आज्ञा-पालन सदा भय से ही होता है। देवता सब नित्य लङ्का में प्रणाम करने आते हैं। यथा . करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता।

दो. भुजबल बिस्व वस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥१८२॥ क

दो. देव जच्छ गंधर्व नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति वरी निज बाहु बल, बहु सुंदर वर नारि ॥१८२॥

अर्थ : भुजा के बल से विश्व को वश करके उसने किसी को स्वतन्त्र नही छोडा। मण्डलेश्वरो का शिरोमणि रावण अपने मन्त्र से राज्य करता था। देवता, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागकुमारियो को तथा अनेक सुन्दर स्त्रियो को अपने बाहुबल से जीतकर वरण कर लिया।

व्याख्या : आयुहि चला गदा कर लीन्हे से उपक्रम करके भुजबल बिस्व वस्य करि से उपसंहार करते है। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्त्ती नर नारी। इस पुरइन का यह दोहा कमल है। यद्यपि बालि, सहस्रार्जुन आदि कई एक वीरो के विषय मे सुना गया है कि वे रावण के वश्य नही हुए। फिर भी 'भुजबल बिस्व बस्य करि' कहा गया। क्योंकि सबके वश्य होने पर दो चार का वश न होना कुछ महत्त्व नही रखता। जब पात्र मे के सब चावल पक गये तो पात्र के मुख पर लगे हुए दो चार चावलो के न पकने पर भी पाक का पूरा होना कहा जाता है। उस दो चार चावल का न पकना कोई महत्त्व नही रखता। सहस्रार्जुन, बालि या बलि का रावण के मार्ग मे बाधक होने की कोई कथा नही पाई जाती। सार्वभौम राजा की भी किसी अवसर में पराजय हो जाती है। परन्तु यदि उसके शासन में उस पराजय से त्रुटि न आई हो तो उस पराजय की कोई गणना नही है। दो तीन स्थलो पर रावण का बल से पराजय सुना गया है। पर रावण में एक विशेषता थी। रावण मे केवल शारीर बल ही न था। उसमे तपबल, योगबल, अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल, दुर्गबल, इष्टबल आदि अनेक बल थे। जिनका समुच्चय और कही पाया नही जाता। सहस्रार्जुन का परशुरामजी द्वारा वध हो चुका था। बालि से अग्निसाक्षिक मैत्री हो चुकी थी। अतः यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि रावण ने विश्व को वश्य कर लिया। परन्तु यह शङ्का समाधान उन रावणो के लिए है जो जय विजय जलन्धर या रुद्रगण के अवतार थे। जिस रावण का प्रकरण चल रहा है वह भानुप्रताप का अवतार था। उसके पराभव का कोई उल्लेख नही है। इसलिए सब मण्डलेश्वर उसके अधीन थे।

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी॥४॥

अर्थ : दिग्पालो के सुन्दर सुन्दर लोको को दशानन ने सूना पाया। बार बार सिंहनाद करके देवताओ को ललकारकर गालियाँ देने लगा।

व्याख्या तब तक रावण वहाँ पहुँच गया। पर देवता लोग हट गये थे। इतने सुन्दर लोक है पर सूने पडे हुए है। रावण जानता था कि ये सब भय से वही छिपे बैठे है। छिपे हुए भी शत्रु का गर्जन न सहकर प्रकट हो जाते है। अत सिंहनाद करता है। फिर भी नही प्रकट होते तो कदाचित् गाली न सहकर सामने आ जाँय। इसलिए ललकारकर गाली देता है पर यहाँ कोई था ही नही। ससार देवताओ का आवाहन करता है। रावण उन्हे भगाता है। ससार उनकी स्तुति करता है। रावण गाली देता है। इसलिए कहा गया है कि राम की भाँति वरतना चाहिए रावण की भाँति नही।

रन मदमत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी॥५॥

अर्थ रण के मद मे मत्त होकर ससार मे दौडता फिरता है। अपना जोड़ खोजता है। पर कही उसको सामना करनेवाला मिलता ही नही। सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम।

व्याख्या . जैसे कोई मद से मत्त हो जाता है वैसे ही रावण रणमद से मत्त हो गया है। उसका रणकण्डू शान्त करनेवाला कोई मिलता नही है। उसी के लिए ससार मे फिरता है। काल के ध्वजभूत सूर्य, चन्द्र, जगत् प्राण वायु, पाशधारी वरुण, धनाध्यक्ष कुबेर, सर्वदाहक अग्नि, सबके सहार करनेवाले काल और सयम करनेवाले यम।

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्त्ती नरनारी॥६॥
आयसु करहि सकल भय भीता। नवहि आइ नित चरन बिनीता॥७॥

अर्थ किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर, नाग, हठ करके वह सबके पीछे पडा। ब्रह्मा की सृष्टि मे जितने जीवधारी है क्या स्त्री क्या पुरुष सब दशमुख के वशवर्ती थे। सब डरकर उसकी आज्ञा मानते थे और नित्य विनीत होकर उसके चरणो मे सिर नवाते थे।

व्याख्या तत्त सपत्नान् जयति का उदाहरण दिखलाते है कि सभी देवता उससे हार गये। परन्तु वह विश्वद्रोही था केवल जीत से सन्तुष्ट नही हुआ। किन्नर, सिद्ध देवताओ की जाति विशेष और पाताल लोक के नागो के पीछे पडा। सभी लोग उससे पीछा छुडाना चाहते थे। पर वह हठपूर्वक उनका पीछा नही छोड़ता था।

ब्रह्मा की सृष्टि मे जितने शरीरधारी थे ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त सो सब रावण के वश मे थे। शरीरधारी कहने से भाव यह कि अनङ्ग देवता कामदेव उसके वश मे नही थे। उनके वश मे तो वह स्वय पडा रहता था। रावण की आज्ञा सभी डरकर मानते है प्रेम से नही। अत्याचारियो का आज्ञा-पालन सदा भय से ही होता है। देवता सब नित्य लङ्का मे प्रणाम करने आते हैं। यथा करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता।

दो भुजवल बिस्व वस्य करि, राखेसि कोउ न सुतत्र।
मडलीक मनि रावन, राज करइ निज मत्र ॥१८२॥ क

दो देव जच्छ गधर्व नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति वरी निज वाहु बल, वहु सुदर वर नारि ॥१८२॥

अर्थ भुजा के वल से विश्व को वश करके उसने किसी को स्वतन्त्र नही छोडा। मण्डलेश्वरा का शिरोमणि रावण अपने मन्त्र से राज्य करता था। देवता, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागकुमारियो को तथा अनेक सुन्दर स्त्रियो को अपने वाहुबल मे जीतकर वरण कर लिया।

व्याख्या आपुहि चला गदा कर लीन्हे से उपक्रम करके भुजबल बिस्व वस्य करि से उपसहार करते है। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख वसवर्त्ती नर नारी। इस पुरइन का यह दोहा कमल है। यद्यपि वालि, सहस्रार्जुन आदि कई एक वीरो के विषय मे सुना गया है कि वे रावण के वश्य नही हुए। फिर भी 'भुजबल बिस्व वस्य करि' कहा गया। क्योकि सबके वश्य होने पर दो चार का वश न होना कुछ महत्त्व नही रखता। जब पात्र मे के सब चावल पक गये तो पात्र के मुख पर लगे हुए दो चार चावलो के न पकने पर भी पाक का पूरा होना कहा जाता है। उस दो चार चावल का न पकना कोई महत्त्व नही रखता। सहस्रार्जुन, वालि या वलि का रावण के मार्ग म वाधक होने की कोई कथा नही पाई जाती। सार्वभौम राजा की भी किसी अवसर मे पराजय हो जाती है। परन्तु यदि उसके शासन म उस पराजय से त्रुटि न आई हो तो उस पराजय की कोई गणना नही है। दो तीन स्थलो पर रावण का बल से पराजय सुना गया है। पर रावण म एक विशेषता थी। रावण म केवल शारीर वल ही न था। उसम तपबल, योगबल, अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल, दुर्गबल, इष्टबल आदि अनेक वल थे। जिनका समुच्चय और कही पाया नही जाता। सहस्रार्जुन का परशुरामजी द्वारा वध हो चुका था। वालि से अग्निसाक्षिक मैत्री हो चुकी थी। अत यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि रावण ने विश्व को वश्य कर लिया। परन्तु यह शङ्का समाधान उन रावणो के लिए है जो जय विजय जलन्धर या रुद्रगण के अवतार थे। जिस रावण का प्रकरण चल रहा है वह भानुप्रताप का अवतार था। उसके पराभव का कोई उल्लेख नही है। इसलिए सब मण्डलेश्वर उसके अधीन थे।

राजा को मन्त्री चाहिए इसलिए उसने मन्त्री रख लिये थे। नही तो रावण ने मन्त्रियो की सम्मति की कभी परवाह न की।

रावण की कामुकता कहते है कि स्त्री के वरण मे कोई विचार नही है। केवल उनकी सुन्दरता ब्याह के लिए यथेष्ट गुण समझा गया था। भुजबल से जीत कर वरण करने से राक्षस ब्याह कहा।

जो रावण भानुप्रताप का अवतार था उसका पराजय कही नही हुआ। अत उसके वध के लिए साक्षात् ब्रह्म का रामावतार हुआ। भानुप्रताप ने भी भुजबल से विश्व वश्य किया था। पर उसने दण्ड लेकर छोड दिया था। समय पाकर वे ही भानुप्रताप पर चढ आये और उसका नाश किया। अत रावणावतार मे उसने किसी को न छोडा। सबको अपने वश मे रक्खा। यथा दानव देव दयावने दीन दुखी नित दूरहि ते सिर नावैं।

इद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ॥
प्रथमहि जिन कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्हकर चरित सुनहु जो कीन्हा॥१॥

अर्थ इद्रजीत से उसने जो कहा था उसे उसने मानो पहिले ही कर रक्खा था। अब जिनको पहिले ही आज्ञा दी थी उनके किये हुए इतिवृत्त को सुनो।

व्याख्या इन्द्रजीत नाम देने से ही मेघनाद का इन्द्र को जीतना द्योतित किया। इसके पहिले मेघनाद, वारिदनाद नाम का ही प्रयोग किया था। मेघनाद से रावण ने कहा था जे सुर समर धीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना। तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। सो मेघनाद ने अति शीघ्र कर दिखाया। स्वय इन्द्र को बाध लाया।

रावण ने तीन विधि से कार्यारम्भ किया। देवताओ को रसद न मिलने पावे। इसलिए सेना को मृत्युलोक मे भेजा। इन्द्रादि से युद्ध करने के लिए मेघनाद को भेजा। अन्य देवताओ की सहायता इन्द्र को न मिलने पावे। इसलिए उनके लोको पर स्वय रावण ने आक्रमण किया। सो मृत्युलोक म भेजे हुए निशाचरो की करणी कहते है

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहि करि माया॥२॥

अर्थ देवताओ को दु ख देनेवाले पापी राक्षस देखने मे बडे भयङ्कर रूप थे। असुरो के समूह ने उपद्रव मचा दिया। माया से उन सबो ने अनेक रूप धारण किया।

व्याख्या 'देखत भीम रूप' से रूप भयानक कहा। 'पापीदेव परितापी' से हृदय भयानक कहा। और 'करहिं उपद्रव' से करणी भयानक कही। आसुरी सम्पत्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। देवताओ की मरण-विधि मे यत्नशील हैं। इससे देवपरितापी कहा। आसुरी सेना बडी भारी उतर आई थी। पर उसने एक

ओर से सबके सहार मे हाथ नही लगाया। वे सब सम्पूर्ण देश मे फैल गये। कामरूप तो थे ही। उन सबो ने अनेक रूप धारण किये। कोई पण्डितजी वन गये। कोई महात्माजी वन गये। कोई गोसाईंजी वन गये। सुधारक वने, कोई जनता के अगुआ वन गये। कोई देश हितैषी बने। कोई समाज हितैषी बने। अपने रूप म कोई न रहे। सब साधु रूप मे हो गये और उपद्रव आरम्भ किया।

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहि वेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देम धेनु द्विज पावहि। नगर गाउँ पुर आग लगावहि ॥३॥

अर्थ जिस विधि से धर्म की जड उखड जाय। वे ही वेद विरुद्ध बाते करने लगे। जिस-जिस देश मे गो ब्राह्मण को पाते थे उस नगर गाँव और पुर को फूँक देते थे।

व्याख्या वेद ही धर्म का मूल है। उसके उखाडने की विधि वे जानते थे। पण्डितजी वनकर वे वेद का व्याख्यान करते थे। वतलाते थे कि वेद मनुष्यो का बनाया हुआ है। अब देश काल वैसा नही रह गया। नये वेद की आवश्यकता है। वेद को खीचखाँचकर मरोडकर उसका अर्थ ही दूसरा करते थे। अर्थ करने की पद्धति ही वदल देते थे। कोई महात्माजी वनकर अपने माहात्म्य से लोगो को प्रभावित करके वेदमार्ग से च्युत करते थे। कोई गोसाई बने हुए शिष्यो को अधर्म के रास्ते पर लगाते थे। कोई सुधारक वनकर सम्प्रदाय और परम्परा के मिटा देने मे ही कल्याण का मार्ग दिखलाते थे। कोई अगुवा वनकर जनता को हरा वाग दिखाते हुए उसे विपत्ति के सागर मे डुबाते थे। कोई देशहितैषी वनकर देश के देश को ईश्वर से विमुख करने मे लगे थे। कोई समाजहितैषी वनकर एक जाति का दूसरे से वैर कराते थे। इस भाँति ससार मे धूर्त्तता का राज्य हो गया। साधारणधर्म, वर्णधर्म और आश्रमधर्म, सतीधर्म, श्राद्ध, तर्पण, पूजन, भजन, यज्ञयागादि सभी धर्मो के प्रतिकूल आचरण स्वय करते और लोगो से कराते थे।

जव जनता अधिक कावू मे हो गई तब स्पष्ट अत्याचार करने लगे। यज्ञ मे प्रधान साधन दो है। १ गौ और २ ब्राह्मण। उन दोनो से ससार का अकल्याण पहिले वतलाते थे। अब यह नियम कर दिया कि जिस पुर, ग्राम या नगर मे गौ या ब्राह्मण पाये जाँय उसे एकदम फूँक दो। गौ ब्राह्मण के रहते धर्म कर्म वन्द नही हो सकता। अत इनको आश्रय देना अपराध माना गया। क्यो गौ ब्राह्मण को आश्रय दिया ? इस अपराध से पूरी वस्ती फूँक दी जाती थी। जिसमे यज्ञ-यागादि का कोई नाम लेनेवाला न रहे। और देवताओ को कुछ भोजन कही से मिलने न पावे।

सुभ आचरन कतहुँ नहि होई। देव विप्र गुरु मान न कोई ॥
नहि हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिअ न वेद पुराना ॥४॥

अर्थ कही शुभ आचरण नही हो पाता था। देवता गुरु और ब्राह्मण को

कोई मानता न था। न कहीं हरिभक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान का पता था और वेद पुराण तो कोई सपने मे भी नही सुनता था।

व्याख्या ब्राह्मणो के दर्शन न करने से लोग पतित हो गये। शुभाचरण बन्द हो गया। पूज्य-पूजा व्यतिक्रम हो गया। देवता ब्राह्मण और गुरु की पूजा बन्द हो गई। उनकी पूजा आरम्भ हुई जो भवबन्धन को दृढ करनेवाले है। हरिभक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान असभ्योचित कार्य माना जाने लगा। सभ्य वही माना जाता था जो भक्ति, यज्ञ, तप आदि को अन्धविश्वास माने। अत ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड और कर्मकाण्ड तीनो का लोप हो गया। वेद पुराण तो इन्ही तीनो काण्डो से ओत प्रोत हैं। अत इनकी चरचा ससार से उठ गई।

छ जप[१] जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिअ नहि काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह वेद पुराना॥
दो बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहि।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥१८३॥

अर्थ जप, योग, विराग, तप और यज्ञभाग को यदि रावण कान से सुन पाता था तो स्वय दौड पडता था। इन सबको रहने नही देता था। सबको नष्ट-भ्रष्ट कर डालता था। ससार मे ऐसा भ्रष्टाचार फैला कि धर्म तो कान से सुनाई नही पडता था। जो वेद पुराण कहता था उसे बहुत विधि से भय देता था। और उसका देश निकाला करता था।

जो अनीति राक्षस लोग करते थे उसका वर्णन नही हो सकता। जिनको हिंसा पर अत्यन्त प्रीति है। उनके पापो की सीमा क्या है?

व्याख्या इमली इमली कहने से मुँह मीठा नही होता। मर्चा मर्चा कहने से तीता नही होता। अत जप करना व्यर्थ समय व्यतीत करना समझा गया। गाँजे की दम लगाकर बेहोश होना और समाधि लगाना एक बात समझी गई। तप करके आँतो को सुखाना, व्यर्थ अपने को दुर्बल बनाना माना गया। विराग की गिनती नालायकी म हुई। यज्ञ खाद्यान्नदाह से सम्पन्न होता है। अत अपराध माना गया। महाराज रावण की आज्ञा थी कि ये सब दुष्कर्म हैं। ये मेरे राज्य म न होने पावें। महाराज को इन सब बातों स बडी चिढ थी। जप, योग, विराग और मख दश छाडकर भाग गय। यथा भागेउ बिबेक सहाय सहित सो सुभट सजुग महि मुरे। अथवा मखभागा का अर्थ यज्ञभाग कर दिया जाय। इन्ह रावण नही रहने देता था। अर्थात् इनका प्रचार उसे असह्य था। इन्ह दश से उठा दिया। देश का

---

१ यह चौपैया छन्द है। लक्षण के लिए १८५ वाँ दोहा देखिए।

देश स्वधा से विहीन हो गया। मुख से भी कोई मन्त्रोच्चारण नही करने पाता था। सब यथेच्छाचारी और विषय मे लिप्त हो गये थे। केवल उडती खबर यदि रावण को लग जाय कि कही यज्ञादि होता है तो स्वय दौड पडता था कि कही जाते जाते पूर्णाहुति न हो जाय या जिसको इस काम पर भेजें वह आलस्य न कर जायँ नही तो कुछ न कुछ देवताओ को भोजन मिल ही जायगा। इसलिए ऐसी मुस्तैदी बनी रहती थी कि उसे नष्ट करके ही मानता था। धर्म करना तो किसी से साध्य था ही नही। धर्म की चरचा तक कोई नही कर पाता था। और यदि किसी ने वेद पुराण की चरचा की तो उसको खूब डरा धमकाकर देशनिकाला का दण्ड दिया जाता था। इसलिए खूब डरा धमका देते थे कि जिसमे वह जिस देश मे जाय वहाँ कही वेद पुराण की चरचा न करे।

रावण केवल निशाचरी सेना भेजकर ही सन्तुष्ट नही थे। स्वय ऐसी मुस्तैदी दिखलाते थे जिससे सब सावधानी से काम करे। अत कवि कहते है कि घोर निशाचर जो अनीति करते थे उनका वर्णन नही हो सकता। क्योकि उस अनीति के सोचने मे भी मानव बुद्धि असमर्थ है। मन वाणी और शरीर से सब भूतो मे सर्वदा क्लेश उत्पन्न करना हिंसा है। यथा हिंसा नाम मनोवाक्कायकर्मभिस्सर्वभूतेषु सर्वदा क्लेशजननम्। शा उ। ऐसी हिंसा पर जिसकी प्रीति है। जो दूसरे को दुख देने मे ही आनान्द मानते हैं। उनके पाप का क्या ठिकाना। रावण की आज्ञा से भी अधिक अन्याय की आवश्यकता पडे तो उसे ये लोग बडी प्रीति से सम्पादन करते थे। भाव यह कि यहाँ तक धर्म का पतन होता है। अत धर्मात्मा धर्म का ह्रास देखकर अधीर न हो। धर्म का नाश हो नही सकता। उसके सभालने के लिए भगवान् को आना पडता है।

बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा॥१॥

अर्थ खल, चोर और जुआडियो की अभिवृद्धि हुई। जो पराई स्त्री और पराए धन के चाहनेवाले थे, माता पिता और देवता को नही मानते थे, साधुओ से सेवा कराते थे।

व्याख्या निष्कारण दूसरे का अपकार करनेवाल खल है। उन्ही के भेद का निरूपण करते है। चोरी और जूआ का साथ है। चोर ही पक्के जुआडी होते है। दूसरे के धन से उन्हे जूआ खेलना ठहरा। दूसरे के धन और स्त्री के लोभी घोर गति को प्राप्त होते हैं। यथा जे ताकहिं परधन परदारा। पावौं मैं तिनके गति घोरा। ऐसे लोगो की बढोत्तरी हुइ। चोरी और जुआ भी सभी काल म होता आया है। परन्तु कुराज मे इनका प्रचार अधिक होता है।

वेद की आज्ञा है मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। माताओ को देवता मानो, पिता को देवता मानो, आचार्य को देवता मानो। सो देवताओ को ही वे नही मानते। मातापिता को क्या देवता मानेंगे ? लोग अपने श्रेय के

लिए साधुसेवा करते हैं। यथा सेवत साधु द्वैत भ्रम भागे खल लोग साधुओ से अपनी सेवा कराते हैं। तात्पर्य यह कि रावण के राजा होने से प्रजा भी असुर हो गई।

जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी ॥२॥

अर्थ जिनका ऐसा आचरण हो हे भवानी! उन सब प्राणियो को राक्षस जानो। अत्यन्त धर्म की ग्लानि देखकर परम सभीत हो पृथ्वी विकल हो उठी।

व्याख्या देवासुर विभाग आचरण से लखाई पडता है। खल, चोर, जुआडी, परधन परदार के लोलुप, माता पिता और देवता के न माननेवाल, साधुओ से सेवा करानेवाले आसुरसर्ग के जीव हैं। इनके बढने से ससार की स्थिति डॉवाडोल हो जाती है। यथा प्रभवत्युग्रकर्माणो क्षयाय जगतोऽहिता। उग्रकर्माओ की वढोत्तरी होती है। जगत् के क्षय के लिए ऐसे ही प्राणी निशिचर राक्षस कहलाते हैं। लीला आदि मे राक्षसो को सीघ, दाँत आदि पशु के चिन्ह उनके अपमान के लिए लगा देते हैं। यह आवश्यक नही है कि जो राक्षस हो वे विकट रूप ही हो।

धारण करने से धर्म कहा जाता है। धर्म ही प्रजा को धारण करता है। धारणात् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयति प्रजा। रावण के राज्यकाल मे धर्म की बडी भारी ग्लानि अध पतन हुई। यहाँ धर्म की ग्लानि कहकर ईश्वर के अवतीर्ण होने की परिस्थिति दिखलाते है। यथा यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्। धर्म को निष्प्राण होते देखकर पृथ्वी अत्यन्त डर गई और व्याकुल हो उठी। जब शरीर मे रोग अत्यधिक बढ जाता है तो शरीर के भीतरी यन्त्र काम नही करते। इसी भाँति पृथ्वी को रावणरूपी महारोग हो गया था। यथा कृत दूरि महामहिभूरिरुजा। उसकी अभिवृद्धि स पृथ्वी की व्यवस्था चलानेवाला धर्म अति शिथिल पड गया। अत अपना नाश उपस्थित होने से पृथ्वी मारे डर के व्याकुल हो गई और सोचने लगी।

गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
सकल धर्म देखै विपरीता। कहि न सकै रावन भयभीता ॥३॥

अर्थ मुझे पर्वत नदी और समुद्र का उतना बोझ नही है जितना बोझ मुझे एक परद्रोही का होता है। पृथ्वी सब धर्मों को विपरीत देखती है। पर रावण के भय से डरी हुई कुछ बोल भी नही सकती।

व्याख्या गिरि मे कितने पत्थर हैं। सरिसिन्धु म कितना पानी है कुछ ठिकाना नही। परद्रोही म कितना बोझ होगा? पर यहाँ प्रश्न भौतिक बोझ का नही है। अपने प्रेमास्पद किसी को बोझ नही होते। अपने वर्ग म परम प्रीति होती है। गिरि सरि सिन्धु परोपकारी हैं। अत वे पृथ्वी के वर्ग के हैं। यथा सत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि की करनी। अत उसे उनका बोझ

अखरता नही। परन्तु परद्रोही को पृथ्वी चाहती नही। उसके बोझ को वह सहन नही कर सकती और रावण के राज्य मे उन्ही की अभिवृद्धि थी। अत पृथ्वी के लिए बोझा असह्य हो गया।

सब धर्म को विपरीत देखती है अर्थात् अधर्म का अभ्युत्थान हो गया। सबकी बुद्धि तामसी हो गई। लोग अधर्म को ही धर्म समझने लगे। शास्त्र कहता है कि व्यवस्थितार्यमर्याद कृतवर्णाश्रमस्थिति । त्रय्या हि रक्षितो लोक प्रसीदति न सीदति। वर्णाश्रम की स्थिति मे ससार सुखी होता है। कष्ट नही पाता। परन्तु तामसी बुद्धिवालो को वर्णाश्रम आँख का काँटा हो जाता है। शास्त्र कहता है कि न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति। परन्तु तामसी बुद्धिवालो को स्त्रीस्वातन्त्र्य सब कल्याण का मूल जँचता है। शास्त्र कहता है कि शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरससर्गश्च। शौच का अभ्यास डालने से अपने शरीर से घृणा हो जाती है। वह दूसरे का ससर्ग नही करता। पर तामसी बुद्धिवाले छुआछूत उठा देने को ही धर्म समझते हैं। यथा अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीताश्च बुद्धि सा पार्थ तामसी। पर सामर्थ्य किसकी जो इसके विरुद्ध आवाज उठाए। अत पृथ्वी रावण के भय से सब कुछ देखती थी। बोल नही सकती थी तब

धेनु रूप धरि हृदय विचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज सताप सुनाएसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥४॥

अर्थ हृदय मे विचारकर उसने गाय का रूप धारण किया। और जहाँ सुर मुनि का समूह था वहाँ गई। अपना दु ख रोकर सुनाया। पर किसी का किया कुछ हो न सका।

व्याख्या गाय दीनता का प्रतीक है। अरिहु दन्त तृन दवत ताहि नहि मारि सक्त कोई। शत्रु जब दाँत तले तृण दबा लेता है अर्थात् जब गौ होने का भाव दिखलाता है तब उसे भी कोई मारता नही। अत दीनता का प्रतीक बनकर पृथ्वी वहाँ गई जहाँ देवताओ और मुनियो का समूह था। क्योकि ये ही धर्म के रक्षक हैं। देवता और मुनियो का समूह उस समय मेरु पर्वत पर था। यथा : देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। रोकर दु ख सुनाना इस बात का द्योतक है कि दु ख असह्य है। परन्तु जो स्वय छिपते फिरते हैं वे क्या कर सकते हैं और मुनि लोग तो भक्ष्य ही ठहरे। गौ गोहार के लिए भी देवता और मुनि तैयार नही हुए। देश की यह बडी पुरानी प्रथा है कि गो गोहार और तिरिया गोहार पर सब लोग रक्षा के लिए उठ खडे होते हैं। परन्तु रावण के भय से किसी को साहस न हुआ।

छद सुर मुनि गधर्वा मिलि करि सर्वा गे बिरचि के लोक।
सग गो तनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोक॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जाकरि तै दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई॥

अर्थ · देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्मदेव के लोक गये। उनके साथ भय और शोक से परम विकल गाय का शरीर धारण किये हुए बेचारी पृथ्वी थी। ब्रह्मा ने सब जान लिया। मन मे विचारा कि मेरा भी कोई चारा नही है। और पृथ्वी से कहा कि जिसकी तू दासी है वही अविनाशी मेरा और तेरा भी सहायक है।

व्याख्या जब कोई बात देवताओं के वश के बाहर हो जाती है तब ब्रह्मदेव के शरण मे जाते है। क्योकि उन उन अधिकारो पर उनकी नियुक्ति ब्रह्मदेव द्वारा ही होती है और जब ऐसा समय आता है कि बलवान् शत्रु उनके अधिकार को छीनने लगता है सो वे स्वभावत ब्रह्मदेव के शरण जाते हैं। अत' पृथ्वी का करुण क्रन्दन सुनकर देवता, मुनि और गन्धर्व लोग सब मिलकर ब्रह्म-लोक गये। साथ मे भय और शोक से परम विकल भूमि बेचारी भी गई। विकल होकर तो वह देवताओ के शरण गई। उनकी बेबसी से यह परम विकल हो गई। जहाँ वे लोग पुकार करने चले वहाँ वह भी गई। कुछ कहने की आवश्यकता ही नही पडी। ब्रह्मदेव सब बाते जान गये। पर करते क्या? उन्ही से वर पाकर वह सब कर रहा था। रावण स्वय कहता था कि निज तप साहस विरचि लियो मोल है। पृथ्वी से कहने लगे कि कोई भी विनाशी जीव तुम्हारी सहायता नही कर सकता। क्योकि विनाशी को तो रावण मार ही डालेगा। तेरे पति अविनाशी है। यथा समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व मे। अत वे ही मेरे भी सहायक है।

सो. धरनि धरहि मन धीर, कह बिरचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भजिहि दारुन बिपति ॥१८४॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने कहा पृथ्वी! तू धैर्य धारण कर और प्रभु के चरणो को स्मरण कर वे भक्तो की पीर को जानते है। वे दारुण विपत्ति का नाश करेगे।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने कहा कि तेरा नाम धरणी है। तू धैर्य को न छोड और प्रभु का स्मरण कर। उनसे कुछ कहना सुनना भी नही है। वे अन्तर्यामी भी हैं। जन की पीडा को जानते हैं। केवल उनका स्मरण करना ही पर्याप्त है। वे ही दारुण विपत्ति का नाश करेंगे। भाव यह कि तुम तो उनकी पत्नी हो। तुम क्यो अधीर होती हो। स्त्री को पति ही शरण है। अत तुम उनका स्मरण करो। इसी से तुम्हारा कल्याण है।

बैठे सुर सब करहि बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥१॥

अर्थ बैठे हुए देवता लोग विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावे कि पुकार करे। कोई कहने लगा बैकुण्ठ चलना चाहिए। कोई कहने लगा उनका निवास क्षीरसागर मे है।

व्याख्या देवताओ को भी हरि का दर्शन दुर्लभ है। यथा जे हरहिय

नयननिह् कबहुँ निरखे नाहि अघाय। अत विचार करने लगे कि ब्रह्मदेव तथा शिवजी ने तो रावण को वरदान दिया है। ये लोग उसकी रक्षा के लिए वचनवद्ध हैं। रावण भी इनसे निर्भय है। कहता है कि साहिव महेस सदा सक्त रमेस मोहि निज तप साहस विरचि लियो मोल है। महेश तो मेरे स्वामी हैं। रमेश मुझसे शङ्कित रहते हैं और अपने तप के साहस से मैंने ब्रह्मदेव को तो मोल ल रक्खा है। भावार्थ यह कि रावण ब्रह्मदेव और महेश की ओर से निश्चिन्त है। यद्यपि विष्णु को शङ्कित बतलाता है। पर खतरा उसी से रहता है जो अपनी ओर से शङ्कित रहे। विष्णु वचनवद्ध नही है। उन्ही से पुकार करनी चाहिए। अथवा त्रिदेव से रावण को भय नही है। अत जिसके अश से त्रिदेव की उत्पत्ति है उस प्रभु को पुकारना चाहिए। अब प्रश्न यह रहा कि उन्हे पावे कहाँ ? ता इसमे मतभेद हुआ। किसी ने वैकुण्ठ मे चलने की राय दी और किसी ने क्षीरसमुद्र चलना विचारा।

जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहि रीती ॥
तेहि समाज गिरिजा मै रहेऊँ। अवसर पाइ वचन एक कहेऊँ ॥२॥

अर्थ जिसके हृदय मे जैसी भक्ति और प्रीति रहती है प्रभु उसके लिए सदा वहाँ और उसी रीति से प्रकट होते है। हे गिरिजे ! मै उस समाज मे था। अवसर पाकर मैंने एक बात कही।

व्याख्या मतभेद के कारण को स्पष्ट करते हुए शिवजी कहते हैं कि प्रभु की रीति है कि प्रभु को जहाँ जैसा मानकर भजता है। जहाँ पर उसकी जिस रूप मे प्रीति करता है प्रभु उसको वही और उसी रूप मे प्रकट होते हैं। अत जिसने वैकुण्ठनाथ मानकर भजा है उसके लिए वे वैकुण्ठ मे हैं और जिसने क्षीरसागर मे मान रक्खा है और वही उसकी प्रीति है उसके लिए वे क्षीरसागर मे भी हैं। इसीलिए देवताओ मे मतभेद हुआ।

शिवजी कहते है गिरिजे ! उस समाज मे मैं था। अर्थात् जहाँ सुरमुनिझारी मेरु पर्वत पर थे वहाँ मैं नही था। जहाँ ब्रह्मलोक मे देवता गये और ब्रह्मदेव ने कहा कि मेरा भी कोई चारा नही वहाँ भी मैं नही था। पर जहाँ देवता लोग विचार करने बैठे उस समाज मे मैं था। इससे यह है कि यह देवसभा रुद्रलोक मे हुई। शिवजी बडे सुशील हैं। अपना उत्कर्ष नही कहते। गिरिजा से रामकथा कहने के समय कहते हैं कि जैसा भुसुण्डि ने गरुड को सुनाया है वैसा ही मैं तुम्हे सुनाऊँगा। भुसुण्डि को प्रमाण मानकर उसकी कही हुई कथा सुनाते हैं। यद्यपि तथ्य यह है कि स्वय भुसुण्डि को ही वह कथा शिवजी से मिली थी। उसके मुख्य कवि शिवजी हैं। पर भगवान् शङ्कर ऐसे सुशील हैं कि अपना मूल वक्ता होना छिपाकर भुसुण्डि को बडाई देते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि पृथ्वी देवसमाज के पास गई। पर किसी का किया कुछ न हुआ तो देवता लोग पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मलोक गये। जब ब्रह्मदेव ने भी कह दिया कि मेरो कछु न बसाई तो ब्रह्मदेव को आगे करके रुद्रलोक गये। वही विचार होने लगा कि . कह पाइअ हरि करिअ

पुकारा। शिवजी देवताओ को अपने यहाँ पुकार के लिए आना न कहकर केवल इतना ही कहते हैं कि तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। भावार्थ यह कि यह बात तुम्हारे जन्म के पहिले की है।

देवताओ मे मतभेद होने पर शिवजी को अवसर मिला तो उन्होने एक बात कही। बिना अवसर की बात शोभा नही देती।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही ॥३॥

अर्थ हरि सर्वत्र समान रूप से व्यापक हैं। प्रेम से प्रकट होते है। यह मेरी जानी हुई बात है। देश, काल, दिशा, विदिशाओ मे वह स्थान कौन है जहाँ प्रभु नही हैं।

व्याख्या हरि अखिल विश्व मे व्यापक हैं। सर्वाधार है और सर्वत्र समानरूप से व्यापक है। सामान्य ही अव्यय रूप है। बात नही कि वैकुण्ठ मे कुछ अधिक हो या क्षीरसागर मे कुछ अधिक हो और यहाँ कुछ कम हो। वे तो सर्वत्र समान है परन्तु अव्यक्तरूप से हैं। उनसे काम लेने के लिए उन्हे व्यक्तरूप मे लाना पडता है। वे प्रेम से ही व्यक्तरूप मे आते हैं। जिन्हे वैकुण्ठ मे प्रेम है उसके लिए वे वैकुण्ठ मे प्रकट है। जिसे क्षीरसागर मे प्रेम है उसके लिए वे क्षीरसागर मे प्रकट है। और जिसे प्रेम नही है उसके लिए वे कही भी प्रकट नही है। कोई देश, कोई काल, कोई दिशा और कोई विदिशा, ऐसो नही है जहाँ प्रभु न हो। जब सर्वत्र समानरूप से प्रभु है तब यह प्रश्न ही नही बनता कि कहँ पाइय हरि करिअ पुकारा।

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥४॥

अर्थ वह चराचरमय है। फिर भी सबसे अलग है। निरपेक्ष हैं। प्रेम से प्रभु आग की भाँति प्रकट होते हैं। मेरी बात सबके गले उतर गई। और ब्रह्मदेव तो 'वाह, वाह' कहकर प्रशसा करने लगे।

व्याख्या अगजगमय होने पर भी उससे अलग रहना यह प्रभु का ऐश्वर्य योग है। यथा न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। गी। ये भूत मेरे मे है। और मेरे मे नही भी हैं। यह मेरा ऐश्वरयोग देखो। और बिरागी है। यथा न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय। गी। यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू। परन्तु प्रेम से प्रभु अग्नि[१] की भाँति प्रगट होते हैं। अग्नि यावत् रूपवान् द्रव्य

---

१ अग्नि का प्राकट्य चार प्रकार से होता है १ आवेश २ प्रवेश ३ स्फूर्ति और ४ आविर्भाव। इसी भाँति प्रभु का प्राकट्य भी चार प्रकार से होता है। बर्तन के पानी मे जैसे अग्नि का आवेश होता है वैसे ही आवेशावतार कुछ दिन के लिए होता है। लोहे के गोले मे अग्निप्रवेश की भाँति प्रवेशावतार होता है। बिजली की चमक की भाँति स्फूर्तिअवतार क्षणभर के लिए होता है। और पत्थर मे टाँकी की चोट से साक्षात् अग्नि के प्राकट्य की भाँति प्रभु का आविर्भाव होता है। अत अग्नि की उपमा दी।

में व्याप्त है। बिना तेज के रूप होता ही नहीं। यथा ' ज्यों बिनु तेज न रूप गोसाईं। परन्तु अव्यक्तावस्था में है। उससे दाहन प्रकाशन आदि क्रिया नहीं होती। जब संघर्षण किया जाय तब अग्नि प्रकट होती है। यथा : अति सघर्षण करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई। इसी भाँति सर्वव्यापक होने पर भी प्रभु प्रेम करने से प्रकट होते हैं। यथा : ये भजन्ति तु मा भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। तदपि करइ सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। भाव यह कि यहीं प्रेम करो तो यहीं प्रकट हो।

शिवजी की बात सबके गले उतर गई क्योंकि सामञ्जस्य बैठ गया। किसी के अनुभव का खण्डन नहीं हुआ। बल्कि उपपत्ति हो गई। कहीं न जाकर उसी स्थान मे प्रेम प्रयत्न करना निश्चय हुआ। ब्रह्मदेव तो फड़क उठे 'वाह, वाह' करने लगे।

दो. सुनि बिरंचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मतिधीर ॥१८५॥

अर्थ : सुनकर ब्रह्मदेव के मन मे हर्ष हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। आँखो से आँसू बहने लगे। धीरमति सावधान होकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : शिवजी की वाणी सुनकर ब्रह्मदेव प्रेम मे डूबाडूब हो गये। इसलिए मनसा वाचा कर्मणा प्रेम दिखलाया गया। फिर सावधान होकर बुद्धि स्थिर की और स्तुति करने लगे।। इसलिए 'सावधान मतिधीर' कहा गया।

छं. जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंत।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंत॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥१॥

अर्थ : हे देवताओं के नेता! भक्तो के सुख देनेवाले! प्रणत के पालन करनेवाले! आपकी जय हो जय हो! हे ब्राह्मण और गाय के हित करनेवाले! असुरो के शत्रु! लक्ष्मी के पति! आपकी जय हो! आप देवता और पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं। आपकी करणी अद्भुत है। आपका मर्म कोई नहीं जानता। जो सहज कृपाल और दीनो पर दया करनेवाले हैं सो अनुग्रह करें।

व्याख्या : दुःख में पड़े हुए देवता लोग आपके नेतृत्व के लिए पुकार करने आये हैं क्योंकि आप ही सुरनायक हैं। आप उनका नेतृत्व ग्रहण कीजिये। आपके भक्त दुःख मे पड़े हैं। इन्हे सुख दीजिये। आप भगवान् हैं। षडैश्वर्यसम्पन्न हैं। जो आपको प्रणाम करता है उसका पालन करते हैं। सो देवसमूह आपको प्रणाम करता है उसका पालन कीजिये।

आप गाय और ब्राह्मण के हित करनेवाले हैं। सो इस समय दोनो अशरण हो रहे हैं उनका हित कीजिये। आप असुरों के अरि : शत्रु हैं। अथवा असुर आपके शत्रु हैं। उनकी इस समय बढ़ोत्तरी है। इसलिए उनका नाश करिये। आप समुद्र

की पुत्री लक्ष्मी के सुख का विस्तार करनेवाले हैं। सो इस समय लक्ष्मी सङ्कुचित होकर लङ्का मे ही सीमित हो गई हैं। यथा : चाकि राख्यौ रासि सब जागर जहान भो। अत रावण का वध करके ससार मे लक्ष्मी का प्रसार कीजिये। आप देवता और पृथ्वी का पालन कीजिये। देवता क्षुधाक्षीण बलहीन हो रहे हैं। पृथ्वी पाप के भार से दबी चली जा रही है। सो देवताओं के आहार का मार्ग निरर्गल कीजिये। और पृथ्वी का भार उतारिये। आपकी अद्भुत करणी है। आप ही मनुष्यशरीर धारण करके रावणवध कर सकते है। नही तो मनुष्य शरीर से रावणवध नही हो सकता। आपका मर्म कोई नही जान सकता। जैसी परिस्थिति है तदनुकूल प्रार्थना करते है। ऐसी परिस्थिति होने देने मे आपका क्या तात्पर्य है। इस मर्म को हम लोग नही जानते। आप स्वभाव से ही कृपा करनेवाले अर्थात् निष्कारण कृपा करनेवाले और दीन पर दया करनेवाले हैं। आप अनुग्रह करें। तीन बार जय कहकर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनो प्रकार की विजय कही।

छ.[1] जय जय अविनासी सब घट बासी व्यापक परमानंद।
अबिगत[2] गोतीत चरित पुनीत माया रहित मुकुंद॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंद।
निसि बासर ध्यावहि गुन गन गावहि जयति सच्चिदानंद॥२॥

अर्थ हे नाशरहित घट घट मे निवास करनेवाले व्यापक, परमानन्द, अव्यक्त, इन्द्रियो से परे पवित्र चरित्रवाले मायारहित और मुक्ति देनेवाले आप की जय हो। जिसके लिए विरागी अत्यन्त अनुरागी होते हैं और मुनिवृन्द मोहरहित होते हैं। रात दिन ध्यान करते हैं। गुणगण का गान करते है। ऐसे सच्चिदानन्द की जय हो।

व्याख्या आप अविनाशी हैं। घटघटवासी विष्णु व्यापक है। अपनी दासी पृथ्वी पर कृपा कीजिये। यथा : जाकर तैं दासी सो अविनासी आप परमानन्द हैं। ससार निरानन्द हो रहा है। उसे आनन्दित कीजिये। आप अविगत है अव्यक्त है। अथवा आप से विशेष गति किसी की नही है। क्योकि इन्द्रियो से अतीत हैं परे हैं। यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीम। फिर भी आपके चरित पुनीत हैं। यथा एक कल्प एहि लगि अवतारा। चरित पवित्र किये ससारा। आपका दिव्य जन्म होता है। आपके कर्म भी दिव्य होते हैं। यथा जन्म कर्म च मे दिव्यम् अत अपने पुनीत चरित से

---

१ यह चौपैया छन्द है। इसमे ३० मात्राएँ होती हैं। १०,८ और १२ पर विश्राम होता है। अन्त मे एक सगण और एक गुरु ॥ऽऽ होता है।

२ 'इ स्वप्नादौ' इस सूत्र से यकार को 'इ' हुआ। 'विप्रकर्ष' इस सूत्र से युक्त वर्ण पृथक् हुए। 'अजादौ स्वरादमयुक्ताना क ख थ प फा गघ दध बभा' इससे 'क' को 'ग' होकर अव्यक्त का 'अविगत' रूप सिद्ध हुआ।

ससार को पवित्र कीजिये। आप स्वय माया से रहित हैं। और दूसरो को भी माया-रहित करके मुक्ति देते हैं। भाव यह कि इस समय ससार खलो की अभिवृद्धि से अपवित्र हो रहा है। उसे पवित्र कीजिये। जिसके लिए विरागी अत्यन्त अनुरागी होते हैं। और मुनि लोग विगत मोह होते हैं। यथा करहि जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी। रात दिन ध्यान करते हैं। आपके गुणगणो को गाया करते हैं। ऐसे सच्चिदानन्द भगवान् की जय हो। यहाँ भी उपर्युक्त अभिप्राय से तीन वार जय कहा गया।

छ जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध वनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चित हमारी जानिय भगति न पूजा ॥
जो भव भय भजन मुनि मन रंजन खडन विपति वरूथा।
मन वच क्रम वानी छाडि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥३॥

अर्थ जिसने सृष्टि उत्पन्न की। तीन प्रकार की वनाई। साथ मे दूसरा सहायक न था। वही पापो का शत्रु हमारी खबर ले। हमे भक्ति या पूजा का ज्ञान नही है। जो ससार के भय का नाश करनेवाला है और विपत्ति समूह का खण्डन करनेवाला है उसी के शरण मे मनसा वाचा कर्मणा चतुराई की आदत छोडकर सब देवताओ का समूह आया है।

व्याख्या · भगवान् क्षीरशायी ही सृष्टि के आदि कारण हैं। यद्यपि ब्रह्मदेव स्रष्टा कहे जाते हैं परन्तु उनका जन्म भी भगवान् के नाभिकमल से हुआ है। अत 'जेहि सृष्टि उपाई' कहते हैं। देव तिर्यक् और नररूप से सृष्टि तीन प्रकार की है। इसलिए 'त्रिविध वनाई' कहते हैं। अपने सकल्प से ही सृष्टि करते हैं। यथा स ईक्षत वहुस्या प्रजायेय इसलिए कहा कि सगसहाय न दूजा। यह जगत् कार्य है। इसका कर्त्ता सब कर्त्ताओ से विलक्षण है। क्रिया बुद्धिपूर्वक होती है। जड मे वह नही देखी जाती। कार्य के गुणानुसार कर्त्ता अचिन्त्य शक्तिमान् है। उसकी स्वतन्त्रता पूर्ण है। वह किसी वस्तु की अपेक्षा न करके सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है जिस भाँति स्वप्न मे यह जीव सम्पूर्ण पदार्थों को चैतन्य देह से रचता है।

इस भाँति भगवान् मे अचिन्त्य सामर्थ्य दिखलाया। अब कहते हैं कि इस समय संसार पापो से भर गया है। हमलोग चिन्तनीय दशा को प्राप्त हैं। आप पापो के शत्रु हैं। आप हमारी चिन्ता करें। आपकी ही चिन्ता से हमारा निस्तार है। क्योकि क्षीरशायी भगवान् ही नाना अवतारो के अव्यय वीज हैं हम स्वय पुरुषार्थ मे असमर्थ हैं। न भक्ति ही जानते हैं और न पूजा जानते हैं। ससार का भय बहुत बढ गया है। यथा · धर्म सुनिय नहि काना · और आप भवभयभंजन हैं। मुनि लोगो की पीडा का पारावार नही है। और आप मुनिमन रजन है। ससार मे विपत्ति का समूह टूट पडा है। और आप उसका खण्डन करनेवाले हैं। मन क्रम वचन छाडि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई। यह नियम है। सो

मन क्रम वचन से चतुराई की बानी आदत छोडकर सब देवताओ के समूह यथा आदित्यगण, रुद्रगण तथा वसुगण इत्यादि आपकी शरण आये हैं। आप कृपा करें भाव यह कि भगवान् शरणागत के उद्धार मे समर्थ हैं। दया के समुद्र, कृतज्ञ और सुव्यवस्थित है। श्रेय की प्राप्ति करा देते हैं। श्रेय के पीछे नही पडना चाहिए। निर्हेतुक उपासना ही सच्ची उपासना है। वह आर्त और अर्थार्थी को अपनी नियति से कर्मपाक की अपेक्षा न करके फल देते है। वह अनन्य शरण का योगक्षेम वहन करते है। अपनी नियति को भी हटाकर उससे साधन का सम्पादन करा के शीघ्र ही उसे युक्त करते है। यही उनका बडा भारी स्वातन्त्र्य है कि प्रारब्ध और नियति भी उनसे विमुख की ही होती है।

छ सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहि जाना।
जेहि दीन पिआरे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना ॥
भव वारिधि मदर सब विधि सुदर गुन मदिर सुख पुज।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकज ॥

अर्थ सरस्वती, वेद, शेष और सम्पूर्ण ऋषि समुदाय जिसे कोई न जान सका। जिसे दीन प्यारे हैं ऐसा वेद ने पुकारकर कहा है। वही भगवान् दया करें। हे ससारसमुद्र के मन्दर। सब प्रकार से सुन्दर। मुनि, सिद्ध और सब देवता लोग परम भय से आतुर होकर नाथ के चरणकमल को नमस्कार करते हैं।

व्याख्या शारद से स्वर्गलोक का वक्ता श्रुति तथा अशेष ऋषियो से मर्त्यलोक का वक्ता तथा शेष से पाताल लोक का वक्ता कहा। ये लोग भी जिसे न जान सके। भाव यह है कि प्रभु साक्षात् ब्रह्म हैं। विज्ञाता हैं। वे किसी के भी ज्ञेय नही हो सकते। यथा विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। विज्ञाता को कोई कैसे जाने फिर भी वेद पुकारकर कहता है कि उन्हे दीन प्यारे हैं। यथा अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि निगम निरूपा। निजानद निरुपाधि अनूपा। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। जौ अस वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा वही श्री भगवान् कृपा करें। भक्त के हेतु शरीर धारण करें।

सागर के मन्थन म मन्दर पर्वत ही समर्थ था। उसी द्वारा मन्थन से समुद्र मे से १४ रत्न निकले थे। इसी भाँति भगवान् भवसागर के लिए मन्दर है। समुद्र के पार तो वानर लोग भी गये परन्तु उन्हे उसकी गहराई का पता नही। यथा अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटै किंत्वस्य गम्भीरताम् आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल। उसकी गहराई का पता तो मन्दराचल का है। इसी भाँति साधक प्रयत्न से ससारसागर के पार चले जाते है। पर उसके तल का पता श्री भगवान् को ही है। वे ही उसमे से अमृत का उद्भावन करके दैवी प्रकृतिवालो की पुष्टि कर सकते हैं। उन्हे विजययुक्त कर सकते हैं। मन्दर सब विधि सुन्दर

नही। पर प्रभु तो सब विधि सुन्दर हैं। गुण के मन्दिर और सुख के 'पुज' हैं। अर्थात् निर्गुण होने पर भी सगुण हैं। जो ससार भय से भीत है उसके एकमात्र शरण हैं। इस समय मुनि, सिद्ध, सुर सब परम भयातुर हैं। अपने कल्याण के लिए प्रभुपदकज को नमस्कार करते हैं।

दो जानि सभय सुरभूमि सुनि, वचन समेत सनेह।
गगन गिरा गभीर भइ, हरनि सोक सदेह ॥१८६॥

अर्थ देवता और पृथ्वी को भयभीत जानकर और स्नेहयुक्त वाणी सुनकर सब सन्देहो को हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने प्रार्थना की थी मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर। अत सुरभूमि को सभय जाना। शिवजी ने कहा था प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना। सो वचन समेत सनेह भी सुना। बोलनेवाला अदृश्य है। और शब्द सुनाई पड रहा है। इसलिए 'गगन गिरा गभीर' कहते हैं। अथवा जो वाणी का भी वाणी वाचोह वाक् है। उसकी गिरा आकाश द्वारा ही प्रकट होती है। कितने ऊपर से वाणी आ रही है। इसका थाह न होने से गम्भीर कहा अथवा वचन सक्षिप्त हैं पर अर्थ अति अधिक है। इसलिए गम्भीर कहा। पृथ्वी भय शोक से विकल थी। अत शोक सन्देह की हरण करनेवाली वाणी हुई।

यह प्रभु का प्रथम गुणग्राम जगमङ्गल रूप है। यथा जगमगल गुनग्राम राम के। इसे अश्विनी नक्षत्र माना गया है। अश्विनी नक्षत्र मे तीन तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति मे भी तीन रूपो की चमक है। १ विष्णु २ क्षीरशायी और ३ ब्रह्म। अश्विनी नक्षत्र की आकृति अश्वमुख सी है। ब्रह्मविद्या के प्रधान उपदेष्टा भगवान् हयग्रीव हैं। उसी ब्रह्मविद्या का निरूपण इस स्तुति मे है। इससे अश्वमुख माना। अथवा सामवेद के तुल्य होने से अश्वमुख माना। यह स्तुति ही जगमङ्गल के लिए ब्रह्मदेव ने की थी।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहौं नर वेसा॥
असन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर बस उदारा॥१॥

अर्थ हे मुनि, सिद्ध और अधिकारी देवता लोग, तुम लोग डरो मत। तुम्हारे लिए मैं नर का वेष धारण करूँगा। अशो के सहित मनुष्य का अवतार उदार सूर्यवश म ग्रहण करूँगा।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने स्तुति मे कहा था मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकज। अत आकाशवाणी होती है जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। भानुप्रताप रावण हुआ था। यथा काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा। दस सिर ताहि बीस भुजदडा। रावण नाम वीर बरिवडा। उसी के अत्याचार से पीडित होकर देवता लोग शरण मे आये हैं। क्योकि रावण ने वर माँग लिया है कि हम काहू के मरैं न मारे। वानर मनुज जाति दुइ वारे।

और वानर मनुज मे कोई ऐसा शक्तिशाली हो नही सकता। जो इस वीर वरिवड के वध मे समर्थ हो। अत निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् ही यदि नर शरीर धारण करें तो इसका वध सम्भव है। परन्तु क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर यो सू। कर्म विपाक और आशय से जिसका सम्पर्क नही है ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर है। वह मनुष्य क्यो होने लगा। अत कहते हैं कि यद्यपि कर्म विपाक और आशय से मेरा लगाव नही है फिर भी तुम्हारे लिए मैं नरशरीर धारण करूँगा। ध्वनि यह निकलती है कि मै तुम्हारे लिए नरशरीर धारण करूँगा। परन्तु तुम लोग भी अपने लिए वानर शरीर धारण करो। मैं तुरीय का विभु अपने अशो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति के विभुओ के सहित मनुष्य अवतार धारण करूँगा। अर्थात् जब अशी का अवतार होगा तो साथ मे अश भी आवेगे। राजा के साथ सारा समाज चलता है। यथा निज इच्छा अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक सग सब तब रहहिं मोच्छसुख त्यागि। उदार सूर्यवश मे अवतार ग्रहण करने का अभिप्राय यह कि बारह कलाओ मे ही पूर्णता हो जायगी। क्योकि सूर्य मे बारह कलाएँ हैं। चन्द्रवश मे अवतार ग्रहण करने से सोलह कलाओ मे पूर्णता होती है। क्योकि चन्द्र मे सोलह कलाएँ हैं। एक रुपये मे आठ दुअन्नियाँ और चार चवन्नियाँ होती हैं। इसलिए आठ दुअन्नियाँ चार चवन्नियो से अधिक नही हैं। इसी भाँति बारह कलाओ का रामावतार और सोलह कलाओ का कृष्णावतार दोनो ही पूर्ण है। समान ही नही दोनो एक हैं।

स्पष्ट है कि यह आकाशवाणी उस कल्प की ही है। जिसमे स्वायम्भू मनु और शतरूपा की प्रार्थना से ब्रह्म का रामावतार हुआ था और भानुप्रताप का रावणावतार हुआ था।

तुरीय ब्रह्म के अश, सुषुप्ति के प्रभु ईश्वर, स्वप्न के विभु हिरण्यगर्भ और जाग्रत् के विभु विराट् है। सो इनके साथ अवतीर्ण होने के लिए आश्वासन दिया जा रहा है। ब्रह्मदेव ने मनुष्य के हाथ से रावणवध का वरदान दिया है। अत मैं मनुष्य शरीर धारण करूँगा। अब उस वश को बतला रहे है। जिसमे अवतार ग्रहण करेंगे। सूर्यकुल उदार है। उसमे याचको को विमुख नही फेरा जाता। उसी वश मे अवतीर्ण हूँगा। इससे अवतार का समय वैवस्वत मन्वन्तर सूचित किया।

कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मै पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रगट नर भूपा॥२॥

अर्थ कश्यप और अदिति ने बडा भारी तप किया था। उनको मै पहिले ही वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप से कोसलपुरी मे मनुष्यो के राजा होकर प्रकट हुए है।

व्याख्या जय और विजय के रावण होने के प्रकरण मे कहा है एकबार तिनके हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी। कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता। भाव यह कि जिस कल्प मे जय और विजय रावण

कुम्भकर्ण हुए और उनके वध के लिए जो रामावतार हुआ उसके पिता माता दशरथ और कौसल्या, कश्यप अदिति के अवतार थे। वही बात आकाशवाणी कह रही है कि कश्यप अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। उन्हे मैं पहिले ही पुत्र होने का वर दे चुका हूँ और वे दशरथ कौसल्या होकर कोसलपुरी में अवतीर्ण भी हो चुके है। भाव यह कि स्तुति के पहिले से ही कार्यारम्भ हो चला है।

तिन्हके गृह अवतरिहौ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद वचन सत्य सब करिहौ। परम सक्ति समेत अवतरिहौ ॥३॥

अर्थ : सो हम चार भाई उनके घर मे रघुकुलतिलक होकर अवतार ग्रहण करेगे। नारद का वचन मैं सब सत्य करूँगा और परमशक्ति के सहित अवतार धारण करूँगा।

व्याख्या : उन्ही नर भूप : दशरथ के घर मे हम चार भाई होकर अवतार ग्रहण करेंगे। भाव यह कि देवता का आयुध वाहन आदि उनके स्वरूप से पृथक् नही होता। इस रामावतार में शेष भगवान् लक्ष्मण हुए। पाञ्चजन्य : शंख ने भरत का अवतार धारण किया और सुदर्शनचक्र ने शत्रुघ्न का अवतार धारण किया। इससे स्पष्ट है कि यह आकाशवाणी उस कल्प की है जिसमे जय विजय रावण कुम्भकर्ण हुए थे और बैकुण्ठनाथ का रामावतार हुआ था।

दो कल्पों की आकाशवाणियाँ कहकर अब उस कल्प की आकाशवाणी कहते है जिसमे नारदजी के शाप से भगवान् क्षीरशायी का रामावतार और रुद्रगणो का रावणावतार हुआ था। इस कल्प की आकाशवाणी मे स्पष्ट उल्लेख है कि नारद का वचन सत्य करेंगे। भाव यह कि राजा का शरीर धारण करेगे। स्त्रीविरह मे व्याकुल होगे। बन्दरो से सहायता माँगेगे तथा समर मे रावणकुम्भकर्णरूप रुद्रगणों को मुक्ति देंगे। परम शक्ति के साथ अवतार लेने की चरचा करने का यह कारण है कि स्त्री के विरह मे विकल होने का शाप नारदजी ने दिया[1] है। इसलिए स्त्री बनने के लिए परम शक्ति के अवतीर्ण होने की नितान्त आवश्यकता है। अवतारी एक होने से जलन्धर कल्प की आकाशवाणी का पृथक् निर्देश नही है। उस कल्प की कथा का भी नारदकल्प की कथा में अन्तर्भाव है।

हरिहौं सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्म बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥४॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा ॥५॥

अर्थ : मैं भूमि की सब गरुआई हरण करूँगा। देवता लोग निर्भय हो जाओ। ब्रह्म की की हुई आकाशवाणी कान से सुनकर देवता लोग तुरन्त लौटे। हृदय

१. क्षीरशायी का ही रामावतार दो कल्पो मे हुआ। अत पृथक् पृथक् आकाशवाणी नही लिखी।

शीतल हो गया। तब ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को समझाया वह भी निर्भय हुई। जी मे भरोसा आगया।

व्याख्या पृथ्वी ने कहा था। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। अत कहते हैं हरिहौं सकल भूमि गरुआई। रावण ही नही निशिचरहीन पृथ्वी की जायगी। जनि डरपहु से उपक्रम और निर्भय होहु से उपसहार किया। अब फिर ब्रह्म के रामावतार की कथा उठा लेते है। इसी भाँति ब्रह्म के रामावतार की कथा ग्रन्थकार कहेगे। पर बीच मे अन्य रामावतारो की कथाओ से जो भेद पडता जायगा उसे इसी भाँति दिखलाते चले जायेंगे। यही इस प्रबन्ध की विचित्रता है।

ब्रह्म की की हुई आकाशवाणी को सब देवताओ ने सुना। उनका कलेजा जल रहा था। क्योंकि रावण के अत्याचार से सबलोग बडे दु खी थे। आकाशवाणी सुनने के बाद देवता लोग ब्रह्मदेव के शिक्षानुसार कार्य करने के लिए तुरन्त लौट पडे। ब्रह्मदेव ने जो शिक्षा दी वह आगे कही जायगी।

ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को समझाया। यथा

तेरी सुता ह्वैके आदिशक्ति उपजैगी नेह लावैगो विदेह औ पिलावैगी सुनयना छीर।
धनु मख व्याज साज व्याह का सजेगे राम, आवैंगी अवध वन जानकी परैगी भीर॥
ताके हेतु रावन को सकुल विनास ह्वै है, नास ह्वैहै भार अब धरती धरै तू धीर।
विपति नसैया सुर सतन सहैया विजय आनँद करैया तेरी वेग ही हरैगो पीर॥

पृथ्वी ब्रह्मदेव के उपदेश से हरिपद का स्मरण करती थी। उसने बात नही समझी। जब ब्रह्मदेव ने समझाया कि आकाशवाणी हुई है। उसका तात्पर्य यह है। तब उसके मनमें भरोसा हुआ और निर्भय हो गई।

दो निज लोकहि बिरचि गे, देवन्ह इहै सिखाइ।
बानर तनु धरि धरनि महँ, हरिपद सेवहु जाइ ॥१८७॥

अर्थ ब्रह्मदेव देवताओ को यह सिखलाकर कि तुमलोग बानर का शरीर धारण करके पृथ्वी पर जाकर हरिपद की सेवा करो। अपने लोक मे चले गये।

व्याख्या आकाशवाणी के ऊपर ब्रह्मदेव की टीका हुई जैसे उमा के तप के समय आकाशवाणी की टीका की थी। देवताओ को आदेश दिया कि तुमलोग भी बानर होकर अवतीर्ण होओ और प्रभु के आने की बाट जोहो। ऐसा कहकर ब्रह्माजी रुद्रलोक से ब्रह्मलोक चले गये। कुछ महात्माओ का मत है कि ब्रह्मस्तुति ब्रह्मसभा मे ही हुई थी। निजलोकहि का अर्थ यह है कि ब्रह्मदेव 'अपने' तक को कहकर अन्त पुर मे चले अर्थात् मैं भी अवतीर्ण होऊँगा।

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ विश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलब न कीन्हा॥१॥

अर्थ सब देवता अपने अपने स्थान को गये। पृथ्वी के सहित उनके मन को

विश्राम हुआ । जो कुछ आज्ञा ब्रह्मा ने दी थी : उसके करने मे ' देवगण हर्षित हुए और देर नही की ।

व्याख्या : देवता लोग अपने अपने लोक को गये । पृथ्वी भी अपने लोक को गई । आये थे मनसे विकल पर गये मनमे विश्राम लिए हुए । अभी दु:ख हटा नही पर शीघ्र हटेगा । इस दृढ आशा मे मनमे विश्राम है ।

किस भाँति कौन कौन कहाँ वानर रूप से प्रकट हो । इस आज्ञा के पालन मे देर न हुई । क्योकि आज्ञा पालन मे विषाद नही है । वानर बनने मे हर्ष है । वानर बनकर भी यदि प्रभु की सेवा सुलभ हो तो अहो भाग्य है । यथा जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान । पुरुखा ते सेवक भये हर ते भे हनुमान । प्रभु की रक्षा मे निशाचरो से बदला लेंगे । बडा हर्ष का समय है इसलिए देर न की ।

बनचर देह धरी छिति माही । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाही ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा । हरि मारग चितवहि मतिधीरा ॥२॥

अर्थ . पृथ्वी मे उन लोगो ने बन्दर का शरीर धारण किया । और उन्हे बेपरिमाण बल और प्रताप था । इन सब वीरो का हथियार पर्वत, नख और पेड था । वे मतिधीर हरि का रास्ता देख रहे थे ।

व्याख्या : पृथ्वीलोक मे लोकपालो ने बन्दर का देह धारण किया था । इसलिए कहते हैं कि : अतुलित बल प्रताप तिन पाही । नही तो बन्दर मे इतना बल और प्रताप कहाँ ? अथवा देवशरीर मे जितना बल प्रताप था उतना उन्हे वानर शरीर मे हुआ । यथा : रामकृपा अतुलित बल तिनही । तृन समान त्रैलोकहि गिनहीं ।

वानरी देह होने से अपने अपने आयुधो से काम नही लेते । पर्वत, नख और वृक्ष ही उनके आयुध हो रहे थे । लङ्काविजय की बडी अभिलाषा है पर हरि के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे । प्रभु आ जायँ तो काम चले ।

गिरि कानन जहँ तहँ भरिपूरी । रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥
यह सब रुचिर चरित मै भाषा । अब सो सुनहु जो बीचहि राखा ॥३॥

अर्थ ' पर्वत और जङ्गलो मे अपनी अपनी सुन्दर सेना रचकर जहाँ तहाँ भर रहे थे । यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा । अब उसे सुनो जो बीच मे छोड रक्खा है ।

व्याख्या तैंतीस कोटि देवता हैं । उनके गण कितने हैं जिनकी सख्या नही । सो सबके अवतीर्ण होने से पर्वत वन सब वानरमय हो गया । लोकपालावस्था मे जो सेना जिसकी थी वही यहाँ भी है ।

रावणावतार के चरित को रुचिर कहते हैं । पुनीत नही कह सकते । बहुत बडे दर्जे के जीव शापित होकर रावण होते हैं । उन्ही के कारण साक्षात् प्रभु का मृत्युलोक मे नर शरीर द्वारा आगमन होना है । अत रावण का भी चरित रुचिर है । वह जो स्वाग लेता है ऐसा पूरा निर्वाह करता है कि बिना प्रभु के आने के

उपायान्तर नही रह जाता। पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा उमा के इस प्रश्न का उत्तर तथा काकभुसुण्डि का प्रभु अवतार कथा पुनि गाई प्रसङ्ग का आरम्भ होता है। 'ह्वै हौ अवधभुआल तब मै होव तुम्हार सुत' यहाँ से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अत अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ से उसे फिर आरम्भ करते हैं।

रामावतार प्रसङ्ग [1]दूसरे प्रश्न का उत्तर

अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। वेद विदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
धर्म धुरधर गुन निधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारगपानी ॥४॥

अर्थ अवधपुरी मे रघुकुल के मणिरूप राजा थे। उनका नाम [2]दशरथ वेद म विदित है। वे धर्मधुरन्धर गुणो के निधि तथा ज्ञानी थे। भगवान् शार्ङ्गपाणि विष्णु की भक्ति और मति उनके हृदय मे थी।

व्याख्या अवधपुरी से उत्तम देश कहा। रघुकुल स उत्तम वश कहा। उस कुल मे भी मणि थे। मणि के चार गुण होते है १ सुजाति २ शुचि ३ अमोल और ४ सब भाँति सुन्दर। सो रघुकुल से सुजाति कहा। धमधुरन्धर से शुचि कहा। गुर्णनिधि से अमाल कहा। और ज्ञानी, तथा हृदय भगतिमति सारँग पानी से सब भाँति सुन्दर कहा। वेदविदित से अधिकारी कहा। वेद म व्यक्ति का नाम नही होता। पद का नाम होता है। जो उस पद के योग्य होगा सो दशरथ होगा। तीन कल्पो मे से जिनमे जय विजय या रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण हुए थे अथवा जलन्धर रावण हुआ था जिनमें भगवान् विष्णु का रामावतार हुआ था भगवान् कश्यप ने दशरथ पद को अलङ्कृत किया था। परन्तु जिस कल्प म भानुप्रताप रावण हुए थे और साक्षात् ब्रह्म ने अवतार धारण किया था भगवान् स्वायम्भू मनु दशरथ हुए। इसलिए कहते हैं कि दशरथ नाम वेद विदित है।

दो कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ, हरिपदकमल विनीत ॥१८८॥

अर्थ उनकी प्रिय रानियाँ कौसल्या आदि सबका पवित्र आचरण था। वे पति के अनुकूल थी। उनका हरि के चरणो म दृढ प्रेम था और वे विनीत थी।

व्याख्या कौसल्या पट्टाभिषिक्ता थी। अत उन्हे पहिल कहा। आदि से कैकेयी सुमित्रा का भी ग्रहण किया। प्रिय' से दक्षिण नायक कहा। सब रानिया का पुनीत आचरण कहा। यथा तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी। पति अनुकूल से पतिव्रत धर्म कहा। प्रेम दृढ हरिपद कमल से पति के कल्याण के लिए ईश्वराराधन कहा और विनीत से नम्रस्वभाव कहा।

---

१ पुनि कहहु राम अवतारा।
२ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णो जात दशरथे हरौ। रा ता

एकबार भूपति मनमाही । भइ गलानि मोरे सुत नाही ॥
गुरुगृह गयेउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि विनय विसाला ॥१॥

अर्थ : एकबार राजा के मनमे ग्लानि हुई कि मुझे पुत्र नही है । तुरन्त राजा गुरुजी के घर गये । चरणो में प्रणाम किया और बडी विनय करके

व्याख्या : ख्याल तो बहुत बार हुआ । पर एकबार ग्लानि हुई कि मुझे सब कुछ है पर पुत्र नही है । भूपति कहने का भाव यह कि सम्पूर्ण राज्य का भार जिस पर है उसे बेटा नही कि बोझा उसपर छोड सकें । सबको बेटे है मुझे नही है । बेटे के लिए ही इतने विवाह किये पर किसी को पुत्र नही हुआ । पुत्री की बात नही कहते । क्योकि शान्ता नाम की पुत्री सुनी जाती है । पुत्र न होने से ग्लानि हुई । अपुत्रस्य गृह शून्यम् । अपुत्रस्य गतिर्नास्ति । पुत्रेणैवाय लोको जय्य । नीतिशास्त्र कहता है जिसे पुत्र नही उसका घर सूना रहता है । धर्मशास्त्र कहता है कि जिसे पुत्र नही उसकी गति नही होती । स्वय वेद कहते है कि पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है । अत ग्लानि होने का यथेष्ट कारण था ।

महिपाल है । फिर भी गुरुजी को बुलाया नही । स्वय उनके घर गये । परम विश्वास गुरुचरणो मे है कि उन्ही के पूजने से सब कुछ मिल सकता है । यथा · मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे । सब पाएउ रजपायन पूजे । चरण लागि से पूजन कहा । और विनय विसाल से स्तुति कहते हैं ।

निज दुख सुख सब गुरुहि सुनाएउ । कहि वसिष्ठ बहुविधि समुझाएउ ॥
धरहु धीर होइहहि सुत चारी । त्रिभुवन विदित भगत भय हारी ॥२॥

अर्थ : अपना दु ख सुख गुरुजी को सुनाया । सुनकर वसिष्ठजी ने अनेक विधि से समझाया कि धैर्य धरो । चार बेटे होगे । उनकी ख्याति तीनलोक में होगी । वे भक्तो का भय हरण करनेवाले होगे ।

व्याख्या . राजा हैं सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं । पहिले प्रणाम किया तत्पश्चात् स्तुति की फिर दु.ख सुख सुनाया कि इक्ष्वाकु से लेकर जो सन्ततिसूत्र मुझ तक चला आया उसका विच्छेद हुआ चाहता है । इतने व्याह किये । पर पुत्र किसी से न हुआ । सुख भी सुनाया कि चरणो की कृपा से और किसी बात का घाटा नही है । पुनाम नरक से त्राण करनेवाला कोई नही है । कहि वसिष्ठ बहु विधि समुझावा । कहने से पता चला कि गुरजी का नाम वसिष्ठ था । उन्होंने बहुत विधान से समझाया । यथा .

सवैया : सुनु राजन सृष्टि विरंचि रची, जबही तबही रचि यज्ञ सवारयो ।
बढिहैं एहिसेइ प्रजा सिगरी, बिगरी बनिहैं अरा बेन उचारयो ॥
सुरपूजित ह्वै सुख साज सजें, विजयानद नीति इहै निरधारयो ।
तुम दिच्छिन ह्वै सब इच्छित सिद्ध, करो हमने यह मन्त्र विचारयो ॥१॥

ऋषि शृङ्ग तपोधन है एहिकाल, विशाल प्रभाव सगे तुम्हरे।
सब ईति की भीति मिटी जेहिके, पग देत अनदित भे सिगरे॥
तेहि बोलिके यज्ञ को साजसजो, विजयानद लाभ सही डगरे।
सर्वसिद्धि को एक ही साधन है हरितोषण यज्ञ मते हमरे॥२॥
अतिभीत दशानन के भय ते, सब देव पुकार कियो हरिपाही।
सब ओर निशाचर छाइ रहे, अवतार बिना नहिं दुष्ट नसाही॥
एहि काल भुआल सुऔसर भूरि, करौ तुम यत्न असम्भव नाही।
प्रकटैं सुत ह्वै तुम्हरे विजयानद, दीनदयाल सोई महि माही॥३॥

स्वर्ग और मर्त्यलोक से जो यज्ञरूप व्यापार चलता है उसी से लाभ उठाओ। वसिष्ठजी ग्लानि करने का निषेध करते हैं। क्योंकि महाराज अधीर हो उठे थे। एक के लिए झखते हो चार होंगे। यज्ञ से पुत्र होना कहकर दिव्य जन्म कहा। और त्रिभुवन विदित भगत भयहारी कहकर दिव्य कर्म कहा। इस भाँति स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारे यहाँ अवतार होगा।

शृंगी रिषिहिं वसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे॥३॥

अर्थ वसिष्ठजी ने शृंगी ऋषि को बुलाया और पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। भक्ति के सहित मुनिजी ने आहुति दी। हाथ मे चरु लिये अग्निदेव प्रकट हुए।

व्याख्या शृङ्गीऋषि, शान्ता के भर्ता महाराज के जामाता थे। जवान थे। तपबल बढा हुआ था। आचार्य शृङ्गीऋषि हुए। वसिष्ठजी भी सम्मिलित थे। पर यज्ञ कराया शृङ्गीऋषि से। भक्ति से कर्म का उत्कर्ष कहते है। जो भक्ति के सहित पूर्णाहुति दी तो दिव्य चरु लिये हुए अग्निदेव स्वय प्रकट हो गये। स्थूल चरु हवि दिया गया। बदले मे दिव्य चरु मिल रहा है। आराधना का मूल श्रद्धा और भक्ति है।

जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥४॥

अर्थ राजा से कहा जो कुछ वसिष्ठ ने हृदय मे विचारा था वह सब कार्य तुम्हारा सिद्ध हुआ। राजन्! इस हवि को ले जाकर जिसको जैसा उचित है वैसा भाग बनाकर बाँट दो।

व्याख्या अग्निदेव राजा से कहते है कि वसिष्ठजी का विचार अमोघ है। उनके विचारानुसार सब कार्य सिद्ध हुआ अर्थात् त्रिभुवन विदिति भक्त भयहारी चार पुत्र होगे। राजन्! तुम जाकर उस दिव्य हवि को रानियो मे बाँट दो। जो जितने के योग्य हो उसे उतना भाग बनाकर दो। किसको कितना दिया जायगा इसका वर्णन आगे चलकर करेंगे।

दो. तब अदृश्य भए पावक, सकल सभहिं समुझाइ।
परमानंद मगन नृप, हरख न हृदय समाइ ॥१८९॥

अर्थ : तब सब सभा को समझाकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। राजा परमानन्द में मग्न है। उनके हृदय में हर्ष समाता नहीं।

व्याख्या : अग्निदेव ने केवल राजा को ही नहीं सम्पूर्ण सभा को समझाया कि

दो चरु विभाग विधि चित्त दै सुनौ कहौं मैं टेर।
सावधान धारण करो यामें परै न फेर ॥१॥
हो थी कीरतिसी नृपहिं पटरानी हैं तीन।
इनही में चरु बाँटिवे की विधि सुनहु प्रवीन ॥२॥
आधो चरु पहिले नृपति कौसल्या को देय।
करै भाग द्वै शेष को एक कैकयी लेय ॥३॥
दूजो को द्वै भाग करि नृप प्रेरित दोउ रानि।
देइ सुमित्रा को मुदित सबहिं भाँति सुखमानि ॥४॥
उलटफेर चरु में भये अनरथ होत महान।
परशुराम कौशिक जनम जानत सकल जहान ॥५॥
सावधान ह्वै आप सब करवावहु यह काज।
सकल जगत कल्याण को बीजारोपण आज ॥६॥

ऐसा समझाकर अग्निदेव अदृश्य हो गये। देवता के प्रत्यक्ष होकर हवि देने और मनोरथ सिद्धि का आश्वासन पाने से राजा के हृदय में हर्ष नहीं समा रहा है। यही परमानन्द है। ज्ञानी को ब्रह्मानन्द और भक्त को परमानन्द होता है।

तबहि राय प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहाँ चलि आई ॥
अध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥१॥

अर्थ : तब राजा ने प्रिय रानियों को बुलाया। कौसल्या आदि वहाँ चली आईं। आधा भाग कौसल्या को दिया। और आधे का दो भाग किया।

व्याख्या : पत्नीशाला से यज्ञमण्डप में रानियों को बुलाया। कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा वहाँ आईं। वसिष्ठ और ऋषि शृङ्गि की अनुज्ञा से राजा ने पहिले चरु का आधा भाग कौसल्या को दिया और शेष आधे का दो भाग किया। क्योंकि कौसल्या सबसे बड़ी पट्टाभिषिक्ता महिषी थी। अत: पहिले इन्हीं को दिया गया। फलत: पहिले इन्हीं को पुत्र हुआ। शेष आधे का दो भाग किया।

कैकेई कहँ नृप सो दयऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥२॥

अर्थ : उसे राजा ने कैकेयी को दिया। जो बचा उसका दो भाग किया। और कौसल्या तथा कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया।

व्याख्या यदि हवि को सोलह आने मान लिया जाय तो उसमे आठ आना कौसल्या को दिया। चार आना कैकेयी को दिया। और दो दो आना कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया। प्रसन्न मन से इसलिए कहा जिसमे कोई यह न समझे कि कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने मे राजा की कोई अनादर की दृष्टि सुमित्रा पर थी। वल्कि इसी भाँति विभाग करके इसी क्रम से देने को अग्नि भगवान् समझा गये थे।

पहिले कौसल्या को दिया। जिसमे पहिले पुत्रोत्पत्ति उन्ही को हो। उसके पीछे कैकेयी को दिया जिसमे कौसल्या को पुत्र होने के बाद कैकेयी को पुत्र हो। कौसल्या और सुमित्रा के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने का भाव यह कि इनको पुत्रोत्पत्ति सबके पीछे हो और दो पुत्र हो। एक कौसल्या के पुत्र का अनुगामी हो। और दूसरा कैकेयी के पुत्र का अनुगामी हो। हवि के विभाग का भी भिन्न भिन्न रामायणो मे भिन्न भिन्न प्रकार है। उसकी व्यवस्था कल्पभेद से समझ लेनी चाहिए।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हर्षित सुख भारी॥
जादिन ते हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥३॥

अर्थ इस विधि से सब नारियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय से हर्षित हुईं। और उन्हे बड़ा सुख हुआ। जिस दिन से हरि गर्भ मे आये। सब लोकों मे सुख सम्पत्ति छा गई।

व्याख्या हवि भक्षण से गर्भ हुआ। यह दिव्य जन्म की विधि है। जा विधि साधारणत गर्भ की शुक्रशोणित सयोग से है उस विधि से गर्भ धारण नही हुआ। रानियाँ गर्भ धारण से हर्षित हुईं। वन्ध्या होने का कलङ्क मिटा और भारी सुख हुआ। गर्भ में स्त्रियो को बडी पीडा होती है। पीली पड जाती हैं। परन्तु इस गर्भ से भारी सुख हुआ। शरीर आनन्द से भर उठा।

हवि प्राशनकाल ही गर्भधारण काल था। उसी दिन से सारे लोको म सुख सम्पत्ति छा गई। हरि के गर्भ मे आने का प्रभाव सम्पूर्ण लोको पर पडा।

मंदिर महँ सब राजहि रानी। सोभा सील तेज की खानी॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएउ॥४॥

अर्थ . मंदिर राजमहल मे रानियाँ विराजती हैं। वे शोभा, शील और तेज की खानि हैं। सुख के सहित कुछ काल चला गया। यह अवसर आया जब कि प्रभु प्रकट होते हैं।

व्याख्या पत्नीशाला से घर आईं। अपने अपने महला म सुशोभित हैं। गर्भ के कारण शोभा, शील और तेज वहुत अधिक वढ गया।

पहिले कह आये हैं कि सुख भारी हुआ। अब कहते हैं वह सुख यावत् गर्भकाल बना रहा। इस भाँति कुछ समय बीता। वाल्मीकि का मत है कि बारह महीने पर रामजी का जन्म हुआ। यथा ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। अध्यात्म का मत है कि दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्। इसम पता चलता

है कि कल्पभेद से गर्भवासकाल मे भेद है। गोस्वामीजी को चार कल्प की कथा साथ कहनी है। अत कछु काल कहने से सबका निर्वाह हो जाता है। रामावतार का समय नियत है। जब वैसी परिस्थिति तथा ग्रहस्थिति आवेगी तभी रामावतार की सम्भावना है। सो वैसा काल आगया। उसी को स्पष्ट करते हैं

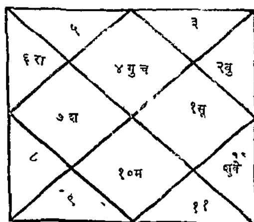
दो० जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, रामजनम सुख मूल ॥१९०॥

अर्थ योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए। चर और अचर सब हर्षित हुए। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

व्याख्या : जब श्रीरामावतार होता है तो वेदसागर नामक योग पडता है। कर्क लग्न होता। कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनैश्चर, मकर के मङ्गल, मीन के केतु और शुक्र, मेष के सूर्य और वृष के बुध होते हैं। वार मङ्गल, नक्षत्र पुनर्वसु। ऐसी अनुकूल परिस्थिति मे हरि अवतीर्ण होते हैं। चर की कौन कहे अचर म भी आनन्द का उद्रेक हो उठता है। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

सकल भये अनुकूल का भाव यह है कि प्रकृति मे महान् परिवर्तन होता है। पाँच ग्रह उच्च के होते है। पुनर्वसु नक्षत्र होने से यह पता लगता है कि नौमी को मीन के दशम अश पर सूर्य रहे सो सूर्य एकाएक मेष के दशम अश पर परम उच्च होने के लिए आगये। इस भाँति सभी अनुकूलता हो गई। ऐसी परम अद्भुत घटना रामावतार मे ही होती है। परब्रह्म परमात्मा के सूर्य कुल मे अवतीर्ण होने से सूर्य की स्थिति स्वभावत परम उच्च हो जाती है[1]।

श्रीरामजन्मकुण्डलीयम्



[1] अध्यात्म रामायाण बतलाता है कि अवतारा बहवो विष्णोर्लीलानुकारिण। तेषा सहस्र सदृशो रामो ज्ञानमय शिव। अत अवतारो की कुण्डलियो मे भेद पडना स्वाभाविक है। श्रीरामावतार क्या है यह रामायणो से ही नही मालूम होता जो कि उनके गुणानुवाद के लिए ही बने हैं बल्कि वह अलौकिकी ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगु ने किया है। पाठको की जानकारी के लिए हिन्दी अनुवाद सहित फलादेश निम्नलिखित है

अथ वेदसागरस्तव

(पूर्णं त्रिशत्क्षपा च) कर्कटे चन्द्रवाक्पती। कन्याया सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दन ॥
पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुत। आकाशे मेषभे सूर्यं झषस्थौ केतुभार्गवौ ॥

व्याख्या : यदि हवि को सोलह आने मान लिया जाय तो उसमे आठ आना कौसल्या को दिया। चार आना कैकेयी को दिया। और दो दो आना कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया। प्रसन्न मन से इसलिए कहा जिसमे कोई यह न समझे कि कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने मे राजा की कोई अनादर की दृष्टि सुमित्रा पर थी। बल्कि इसी भाँति विभाग करके इसी क्रम से देने को अग्नि भगवान् समझा गये थे।

पहिले कौसल्या को दिया। जिसमे पहिले पुत्रोत्पत्ति उन्ही को हो। उसके पीछे कैकेयी को दिया जिसमे कौसल्या को पुत्र होने के बाद कैकेयी को पुत्र हो। कौसल्या और सुमित्रा के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने का भाव यह कि इनको पुत्रोत्पत्ति सबके पीछे हो और दो पुत्र हो। एक कौसल्या के पुत्र का अनुगामी हो। और दूसरा कैकेयी के पुत्र का अनुगामी हो। हवि के विभाग का भी भिन्न भिन्न रामायणो मे भिन्न भिन्न प्रकार है। उसकी व्यवस्था कल्पभेद से समझ लेनी चाहिए।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हर्षित सुख भारी॥
जादिन ते हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए॥३॥

अर्थ इस विधि से सब नारियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय से हर्षित हुईं। और उन्हे बडा सुख हुआ। जिस दिन से हरि गर्भ मे आये। सब लोको मे सुख सम्पत्ति छा गई।

व्याख्या हवि भक्षण से गर्भ हुआ। यह दिव्य जन्म की विधि है। जा विधि साधारणत गर्भ की शुक्रशोणित सयोग से है उस विधि से गर्भ धारण नही हुआ। रानियाँ गर्भ धारण से हर्षित हुईं। वन्ध्या होने का कलङ्क मिटा और भारी सुख हुआ। गर्भ मे स्त्रियो को बडी पीडा होती है। पीली पड जाती है। परन्तु इस गर्भ से भारी सुख हुआ। शरीर आनन्द से भर उठा।

हवि प्राशनकाल ही गर्भधारण काल था। उसी दिन से सारे लोको मे सुख सम्पत्ति छा गई। हरि के गर्भ मे आने का प्रभाव सम्पूर्ण लोको पर पडा।

मदिर महँ सब राजहि रानी। सोभा सील तेज की खानी॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएउ॥४॥

अर्थ : मदिर राजमहल मे रानियाँ विराजती है। वे शोभा, शील और तेज की खानि है। सुख के सहित कुछ काल चला गया। वह अवसर आया जब कि प्रभु प्रकट होते हैं।

व्याख्या पत्नीशाला से घर आईं। अपने अपने महलो म सुशोभित है। गर्भ के कारण शोभा, शील और तेज बहुत अधिक बढ गया।

पहिले कह आये है कि सुख भारी हुआ। अब कहते है वह सुख यावत् गर्भकाल बना रहा। इस भाँति कुछ समय बीता। वाल्मीकि का मत है कि बारह महीने पर रामजी का जन्म हुआ। यथा ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। अध्यात्म का मत है कि दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्। इससे पता चलता

है कि कल्पभेद से गर्भवासकाल मे भेद है। गोस्वामीजी को चार कल्प की कथा साथ कहनी है। अत. कछु काल कहने से सबका निर्वाह हो जाता है। रामावतार का समय नियत है। जब वैसी परिस्थिति तथा ग्रहस्थिति आवेगी तभी रामावतार की सम्भावना है। सो वैसा काल आगया। उसी को स्पष्ट करते हैं

दो. जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, रामजनम सुख मूल ॥१९०॥

अर्थ : योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए। चर और अचर सब हर्षित हुए। क्योंकि रामजन्म सुख का मूल है।

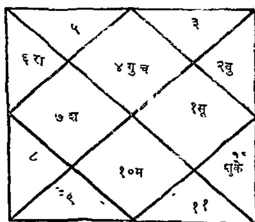
व्याख्या : जब श्रीरामावतार होता है तो वेदसागर नामक योग पड़ता है। कर्क लग्न होता। कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनैश्चर, मकर के मङ्गल, मीन के केतु और शुक्र, मेष के सूर्य और वृष के बुध होते हैं। वार मङ्गल, नक्षत्र पुनर्वसु। ऐसी अनुकूल परिस्थिति मे हरि अवतीर्ण होते है। चर की कौन कहे अचर मे भी आनन्द का उद्रेक हो उठता है। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

सकल भये अनुकूल का भाव यह है कि प्रकृति मे महान् परिवर्तन होता है। पांच ग्रह उच्च के होते हैं। पुनर्वसु नक्षत्र होने से यह पता लगता है कि नौमी को मीन के दशम अश पर सूर्य रहे सो सूर्य एकाएक मेष के दशम अश पर परम उच्च होने के लिए आगये। इस भाँति सभी अनुकूलता हो गई। ऐसी परम अद्भुत घटना रामावतार मे ही होती है। परब्रह्म परमात्मा के सूर्य कुल मे अवतीर्ण होने से सूर्य की स्थिति स्वभावत: परम उच्च हो जाती है[1]।

---

१. अध्यात्म रामायाण बतलाता है कि अवतारा सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिण। तेषा सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमय शिव। अत अवतारो की कुण्डलियो मे भेद पडना स्वाभाविक है। श्रीरामावतार क्या है, यह रामायणो मे ही नही मालूम होता जो कि उनके गुणानुवाद के लिए ही बने हैं, बल्कि वह अलौकिकी ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगु ने किया है। पाठको की जानकारी के लिए हिन्दी अनुवाद सहित फलादेश निम्नलिखित है

श्रीरामजन्मकुण्डलीयम्



अथ वेदसागरस्तवः

(पूर्ण त्रिरात्रशेषा च) कर्कटे चन्द्रवाक्पती। कन्याया सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दन ॥
पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुत। आकाशे मेषभे सूर्य. झषस्थौ केतुभार्गवौ ॥

नवमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥१॥

अर्थ नवमी तिथि थी और पवित्र चैत्र मास। शुक्ल पक्ष था और भगवान् को प्रिय अभिजित मुहूर्त मध्याह्न का समय। अत्यन्त शीत भी नहीं। कडी धूप भी नहीं। ससार में विश्राम योग्य वह पवित्र समय था।

सर्वंब्रह्मानुमानेन योगोऽय वेदसागर। वेदसागरके जात पूर्वजन्मनि भार्गव॥
पूर्णब्रह्म स्वय कर्ता स्वप्रकाशो निरञ्जन। निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीह सच्चिदात्मक॥
गिराज्ञानश्च गोतीत इच्छाकारी स्वरूपधृक्। विना घ्राण सदाघ्राणी विना नेत्रै च वीक्षक.॥
अकर्णेन श्रुत सर्वं गिराहीनश्च भाषितम्। करहीन कृत सर्वं कर्मादिक शुभाशुभम्॥
पदहीना गति सर्वा कुशला सकला क्रिया। स्वरूपे रूपहीनश्च समर्थं सर्वकर्मसु॥
मंविद्यस्त्रिगुण कालस्त्रिलोकी सचराचर। महेन्द्रो देवता सर्वा नागकिन्नरपन्नगा॥
सिद्धविद्याधरो यक्षा गन्धर्वा सकला कवे। राक्षसा दानवा सर्वे मानवा वानराण्डजा॥
सागराश्च खगा वृक्षा पशुकीटादयस्तथा। शैला नद्य कला सर्वा मोहमायादिका क्रिय॥
इच्छा माया त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधा क्रिया। शरण्य सर्वदा शान्त अलक्ष्यो लक्षक सदा॥
जरामरणविहीनश्च महाकालस्य चान्तक। सर्वं सर्वेण हीनोऽपि सचराचरदर्शक॥
पूर्वापरक्रिया ज्ञानी शृणु शुक्र न चान्यथा। प्रेरित सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे॥
धरित्री ब्रह्मणो लोके जगाम दु खपीडिता। शिवो ब्रह्मा सुरा सर्वे प्रार्थयाञ्चक्रुर्मुहु॥
सुदु ख वचन श्रुत्वा देववाणी भवेत् कवे। धैर्यमाध्व सुरा सर्वे प्रार्थना सफला भवेत्॥
श्रुत्वा हृष्टा सुरा सर्वे जगाम क्षितिमण्डले। नरवानररूपञ्च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे॥
यत्र तत्र सुरा सर्वे हरिदर्शनमानसा। अधर्मनिरतान् लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान्॥
तत इच्छाप्रभावेण गोब्राह्मणसुरार्थकम्। मायामानुषरूपेण जगदानन्दहेतवे॥
आजगाम धरापृष्ठे कोशलाख्ये महापुरे। इक्ष्वाकुवशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक्॥
सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च क्षेत्रके। मधुमासे च धवले नवम्या भौमवासरे॥
पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात्समुद्भव। मन्मथाना च कोटीना सुन्दर सागरोपम॥
श्यामाङ्ग मेघवर्णाभ मृगाक्ष कान्तिमत्परम्। भव्याङ्ग भव्यवर्णञ्च सर्वसौन्दर्यसागरम्॥
सर्वाङ्गेषु मनोहरमतिबल शान्तमूर्ति प्रशान्तम्। वन्दे लोकाभिराम मुनिजनसहित सेव्यमान शरण्यम्॥
कोटिवाक्पतिश्रीमान् कोटिभास्करभास्वर। दयाकोटिसागरोऽसौ यश शीलपराक्रमी॥
सर्वसार सदा शान्त. वेदसारो हि भार्गव। दशवर्षसहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ॥
चतुर्दशसमा शुक्र अभ्रमच्च वने वने। राक्षसाना वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च॥
प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषवत्कवे। अयोध्यानगरे शुक्र बहुवत्सरसहस्रकम्॥
नानामुनिगणैर्युक्ता विहरन् धर्मवत्सल। सर्वै साक स्वमायाभिरन्तर्धानमिवात्कवे॥
इच्छया लील्या युक्त स्वीय लोके वसेत्सदा। माया क्रीडा पुनर्भवान् काले काले युगे युगे॥
लोकानाञ्च हितार्थाय काली चैव विशेषत। पठनाच्छ्रवणात्पुण्य कल्याण सतत भवेत्॥

व्याख्या नवमी तिथि से नवरात्रि का अन्तिम दिन कहा ' भगवान् ने स्वय कहा है कि ऋतुओ मे कुसुमाकर : वसन्त मैं हूँ। उनमे भी प्रथम मास का देवपक्ष अति पुनीत है। अभिजित मुहूर्त हरि को प्रिय है। इसी मे जन्म ग्रहण करते है। उजेले की पराकाष्ठा दोपहर का समय। प्रात काल होता तो शीत अधिक होता। जाडा का शीत सह्य है। पर चैत्र का शीत असह्य होता है। और मध्याह्नोत्तर

निर्भय नात्र सन्देह. सत्य सत्य न सशय. ।

श्रीभृगुसहिताया श्रीभृगुशुक्रसवादे षट्त्रिंशतिक्षेपान्तरे वेदसागरफल समाप्तम् ।

वेदसागरस्तव का हिन्दी अनुवाद कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनि, मकर के मङ्गल, वृष के बुध, मेष के सूर्य, मीन के शुक्र और केतु यह वेदसागर योग है। हे भार्गव, वेदसागर मे उत्पन्न होनेवाला, पूर्व जन्म मे पूर्ण ब्रह्म, स्वय कर्ता, स्वप्रकाश, निरञ्जन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिराज्ञानगोऽतीत, इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाला था। बिना घ्राण के सूँघता था। बिना नेत्र के देखता था। बिना कान के सुनता था और बिना वाणी के बोलता था। बिना हाथ के शुभाशुभ कर्म करता था। बिना पैर के चलता था। स्वरूप से रूपहीन होने पर भी सब कार्यों मे समर्थ था। वही वेदत्रयी रूप था। त्रिगुण था, कालरूप भी वही था, चर और अचर तीनो लोक रूप भी वही था। महेन्द्र, देवता, नाग, किन्नर, पन्नग, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्वरूप भी वही था। राक्षस दानव, मनुष्य, वन्दर, अण्डज, सागर, पक्षी, वृक्ष, पशु, कीटादिक, पर्वत, नदी सब उसकी कला है। मोहादिक क्रियाएँ हैं। उनसे इच्छा, माया, तीनो वेदो और क्रियाकलाप का बनाया।

वह सदा शान्त, शरण्य, अलक्ष्य होने पर भी सदा लक्षक है। वह जरा-मरण विहीन है और महाकाल का भी काल है। सबसे हीन होने पर भी सब कुछ है। चराचर का दर्शक है। हे शुक्र जी ! सुनो वह पहिली पिछली क्रियाओ का जानता है। इसमे सन्देह नही। हे कवि ! पूर्व काल मे सब देवताओ से प्रेरित होकर दु खी पृथ्वी ब्रह्मलोक को गई। शिव ब्रह्माजी तथा सब देवताओ ने बार-बार प्रार्थना की। हे कवि ! आर्तवाणी सुनकर देववाणी हुई हे देवताओ ! धैर्य धारण करो, तुम लोगो की प्रार्थना सफल हुई। यह सुनकर देवता लोग प्रसन्न होकर पृथ्वीमण्डल मे गये। ब्रह्माजी की इच्छा से सबने वानर का रूप धारण किया और जहाँ तहाँ हरिदर्शन की लालसा से ठहरे।

ससार मे अधर्म म लगे हुए लोगो को कष्ट मे पीडित देखकर इच्छा के प्रभाव से गो-ब्राह्मण और देवता के लिए माया से मनुष्य रूप धारण करके जगत् के आनन्द के लिए पृथ्वी पर कोशलपुर मे, हे शुक्र ! इक्ष्वाकुवश मे सरयू के दक्षिण भाग म अवतीर्ण हुए। चैत्र सुदी नवमी को मङ्गलवार, पुनर्वसु नक्षत्र मे उत्पन्न हुए। कोटि काम-सी सुन्दरता, मेघ वर्ण, श्यामाङ्ग, मृगाक्ष, परम कान्तिमान्, मध्याङ्ग, मध्यवर्ण, सभी सुन्दरताओ के समुद्र उनके सभी अङ्गो मे मनोहरता थी। अति बलवान् थे। शान्त, अति प्रसन्न, लोक को सुख देनेवाले मुनिजन के सहित सेव्यमान और शरण्य की मैं वन्दना करता हूँ। वे करोडो वाक्पति के समान श्रीमान् हैं। करोडो सूर्य के भी सूर्य हैं। करोडो दया के समुद्रो के समान हैं। बडे यशस्वी शीलवान् और

गरमी बढ जाती है। मध्यह्न का समय पवित्र है। इसमें ससार विश्राम करता है। प्रभु अखिल लोकदायक विश्रामा हैं। अत उनका जन्मकाल भी विश्रामदायक होना चाहिए।

सीतल मद सुरभि वह वाऊ। हर्षित सुर सतन्ह मन चाऊ ॥
वन कुसुमिति गिरिगन मनि¹ आरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृधारा ॥२॥

अर्थ शीतल मद सुगध वायु बह रहा था। देवता हर्षित थे। सन्तो के मनमे आनन्द था। वन फूल उठे। पर्वतो मे मणि खानि प्रकट हुई और सब नदियाँ अमृत की धारा बहने लगी।

व्याख्या प्रकृति मे आनन्द की उमग आगयी। जोग लग्न ग्रहवार तिथि सकल भये अनुकूल तथा गगन विमल से आकाश की अनुकूल परिस्थिति कही। सीतल मद सुरभि वह वाऊ से वायु की अनुकूल परिस्थिति कही। अति सीत न घामा से तेज की अनुकूल परिस्थिति कही। स्रवहि सकल सरितामृत धारा से

पराक्रमी हैं। हे भार्गव ! वे सर्वसार सदा शान्त और वेदसार हैं। दस सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर थे। हे शुक्र ! चौदह वर्षों तक वन-वन म घूमते रहे। राक्षसो के वध और दुष्टो के निग्रह के लिए माया मानुष रूप से जगन्नाथ का प्रादुर्भाव ही हुआ था। अनेक सहस्र वर्षो तक वे धर्म-वत्सल मुनि लोगो के साथ विहार करते थे। हे कवि ! तत्पश्चात् सबके साथ अपनी माया मे अन्तर्धान हो गये। इच्छा से लीलायुक्त होकर अपने लोक मे सदा बसते हैं। लीला माया से फिर काल पाकर युग युग मे लोक के हित के लिए विशेषत कलियुग मे फिर होवेगे।

इसके पढने से सुनने से सदा पुण्य और कल्याण होता है। निर्भयता प्राप्त होती है। यह सत्य है सत्य है इसम सशय नही है।

इति श्री भृगुसहिता मे भृगुशुक्रसवाद के छत्तीसवें क्षपान्तर मे वेदसागरफल समाप्त हुआ।

यह भी नही कह सकते कि सूय देव का रुकना या आगे बढ जाना नितान्त असम्भव है और इसका कोई उदाहरण नही दिया जा सकता। क्योकि विभिन्न पुराणो मे ऐसे अनेक उदाहरण हैं। स्वय वाल्मीकीय रामायण मे अनुसूयाजी के दश रात्रियो की एक रात्रि कर देने का वणन है। अत्रि जी भगवान् रामचन्द्र से कहते हैं

देवकार्यनिमित्तञ्च यथा सन्त्वरमानया। दशरात्र कृता रात्रि सेय मातेव तेऽनघ ॥

हे अनघ रामचन्द्र ! देवताओ के काय के लिए जिस अनसूया ने दस रात्रि की एक रात्रि बना दी वही यह तुम्हारी माता के तुल्य है। सो क्या इस रात्रि की एक रात्रि बिना सूर्य के रुके हो गई और फिर ग्रहमण्डल म यथोचित स्थान पाने के लिए सूय की गति म कोई विशषता न हुई ? और यहाँ तो साक्षात् पूण ब्रह्म परमात्मा का अवतार होनेवाला था।

१ 'आर' प्रत्यय हिन्दी मे वाला के अर्थ म प्रयुक्त होता है। यथा सुख से सुखार दुख से दुखार। इसी भाँति 'मणि से मनिआर अर्थात् मणिवाला होता है। यथा मन हरषित सब भये सुखारी इत्यादि।

जल की अनुकूल परिस्थिति कही। एवं वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा कहकर पृथ्वी की अनुकूल परिस्थिति बतलायी और हरखित सुर संतन मन चाऊ से देव सर्ग का आनन्दोद्रेक कहा। आसुर का नहीं। चर अरु अचर हर्ष युत से सृष्टि मात्र का सत्त्वोद्रेक कहा।

सो अवसर विरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि विमाना ॥
गगन विमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्व बरूथा ॥३॥

अर्थ : उस अवसर को जब ब्रह्मदेव ने जाना तो सब देवता विमान साजकर चले। निर्मल आकाश देवसमूह से भर उठा। गन्धर्व गुण गान करने लगे।

व्याख्या : प्रकृति मे इस प्रकार का अनुकूल परिवर्तन ही प्रभु के अवतीर्ण होने के काल का द्योतक है। इस बात को ब्रह्मदेव ने जाना। अत गर्भस्तुति करने के लिए चले। साथ में सब देवगण अपना अपना विमान सजाकर चले। अयोध्या मे निर्मल आकाश देवगणो से भर गया। गन्धर्वसमूह ने गुणगान प्रारम्भ कर दिया। अर्थात् सब गन्धर्वो ने मिलकर सुरताल के साथ एक स्वर से गुणगान किया।

वर्षहिं सुमन सुअंजलि साजी। गह गहि गगन दुदुंभि बाजी ॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। बहुविधि लावहिं निज निज सेवा ॥४॥

अर्थ : सब देवताओ ने अञ्जलि साजकर फूलो की वर्षा की। आकाश में गहगह नगाडे बजने लगे। नाग मुनि और देवता स्तुति करने लगे और अनेक विधियो से अपनी सेवा भेंट करने लगे।

व्याख्या : अञ्जलि को फूलो से सजाकर सब देवताओ ने पुष्पाञ्जलि चढाई। सो फूलों की वर्षा हो गई। आकाश मे नगाड़े भी खूब बजे। पाताल लोक से आकर नाग लोग मनुष्य लोक से मुनि लोग : क्योकि केवल वे ही लोग जान सके थे कि अवतार हुआ चाहता है : और स्वर्ग से आकर देवताओ ने स्तुति करना आरम्भ कर दिया और भी अनेक विधि आरती जयघोष आदि से पूजन करने लगे।

दो. सुर समूह विनती करि, पहुँचे निज निज धाम ॥
जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम ॥१९१॥

अर्थ : देवताओ के समूह विनती करके अपने अपने धाम मे पहुँचे। जगत् के आश्रय सम्पूर्ण लोक विश्राम रूप प्रभु प्रगट हुए।

व्याख्या : जबतक देवता लोग मार्ग मे रहे तबतक नही प्रकट हुए। जब वे लोग अपने अपने लोको को पहुँच गये अर्थात् उनके भी विश्राम पाने पर प्रकटे। जगनिवास का प्रकटना माया का पर्दा हटने पर ही सम्भव है। लोक विश्रामकाल मे अखिल लोक विश्राम रूप प्रकट हुए। यहाँ पर जन्मे न कहकर प्रकटे अर्थात् आविर्भाव कहा। यथा : आविरासीत् तमोनुदः।

छं[1] भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिराम तनु घनश्यामं निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन विसाला सोभासिंधु खरारी॥१॥

अर्थ कृपाल, दीनदयाल, कौसल्या के हितकारी प्रकट हुए। मुनि के मन का हरण करनेवाला अद्भुत रूप देखकर माँ हर्षित हुई। नयनानन्द श्याम मेघ के समान शरीर चार भुजाओ मे अपना आयुध शख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए आभूषण और वनमाला पहिने विशाल नेत्रवाले खर के शत्रु शोभा के समुद्र थे।

व्याख्या दंपति उर धरि भगति कृपाला। निज आश्रम निवसे कछु काला। वही कृपाल, मनु शतरूपा से किये हुए प्रतिज्ञानुसार प्रकट हुए। ब्रह्मदेव ने स्तुति की थी। जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवान। सो उनकी प्रार्थनानुसार दीनो पर दया करके कौसल्या हितकारी, कौसल्या की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी करने के लिए तथा वात्सल्य सुख प्रदान करने के लिए प्रकट हुए। यथा सो प्रभु प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद। तथा कीरति जासु सकल जग माची।

जब गर्भ मे आये तभी माँ हर्षित हुई थी। यथा भई हृदय हर्षित सुख भारी। अब रूप देखकर हर्षित हुई। रूप देखकर विचार किया कि ऐसा रूप तो देखा नही गया। इसे देखकर तो मुनि का मन मोहित हो जायगा। जिस अद्भुत रूप को देखकर शतरूपा रूप मे तृप्ति नही हुई थी उसीका दर्शन कौसल्या रूप मे हो रहा है। यथा चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा।

रूप की अद्भुतता कहते हैं। घनश्याम शरीर जिसे देखकर आँखें तृप्त हो जायँ। चार भुजाएँ जिनमे शखचक्रादि धारण किये हुए हैं। गहना पहिने है। वनमाला गले मे है। पैर तक लटकी हुई माला को वनमाला कहते है। यथा पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। आयुध भूषण और माला सहित पुत्रोत्पत्ति न देखी गई और न कभी सुनी गई। ऐसे विशाल नेत्र भी कही देखे नही गये। शोभासिन्धु होने पर भी खरारि हैं। यहाँ खर राक्षस मात्र का उपलक्षण है। खरारि से धर्म सरक्षण कहा अथवा खरारि कहने से मायानाथ कहा। यथा सुरमुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अस कौतुक करचौ। देखत परस्पर राम, करि सग्राम रिपुदल लरि मरचौ।

छं कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौ अनत।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनत॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहि श्रुति सत।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकत॥२॥

---

१ यह भी चौपैया छन्द है। लक्षण पहिले कहा जा चुका है।

अर्थ दोनों हाथ जोडकर कहा कि हे अनन्त, तुम्हारी स्तुति किस भाँति करूँ। तुम माया गुण और ज्ञान से परे हो, मानरहित हो ऐसा वेद पुराण ने कहा है। जिसे श्रुति वेद और सन्तो ने करुणा और सुख का सागर और सब गुणो का आगर विचक्षण कहकर गान किया, वही भक्तो पर अनुराग करनेवाले श्रीपति मेरे हित के लिए प्रकट हुए हैं।

व्याख्या नित्य की ध्येय मूर्ति को सामने देखकर माता पहिचान गई। अत प्रणाम और स्तुति करती है, माता कहती है हे अनन्त ! वर्णन तो परिच्छिन्न पदार्थ का होता है, तुम तो अपरिच्छिन्न अनन्त हो तुम्हारी स्तुति कैसे करूँ? क्योकि वेद पुराण ने कहा है कि तुम मायागुण सत्त्व रज तम से परे निस्त्रैगुण्य हो, ज्ञान से परे हो क्योकि ज्ञेय नही हो, मान से रहित हो, क्योकि अप्रमेय स्वय सिद्ध हो, इस भाँति आप निर्गुणरूप हो, पर वेद और सन्त आपको सगुण रूप से भी वर्णन करते हैं। वतलाते हैं कि आप करुणा और सुख के सागर हो। और सब गुणो के आगर हो। सो हे लक्ष्मीपति विष्णो ! भक्तो के अनुरागी ! मेरे हित के लिए प्रकट हुए हो। मुझे पुनवती वनाने के लिए मेरी कीर्ति को दिगन्तव्यापिनी करने के लिए मुझे सब प्रकार से सुखी करने के लिए प्रकट हुए हो। इस प्रकार माता ने भगवान् के अवतीर्ण होने का मुख्य कारण निरूपण किया।

छ ब्रह्माड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो वासी यह उपहासी सुनत धीर गति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित वहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥३॥

अर्थ एक एक रोम मे माया के निर्मित ब्रह्माण्डो के समूह लगे हुए हैं। ऐसा वेद कहते हैं। वह प्रभु मेरे उर मे निवास करे। यह उपहासी की बात सुनने पर पण्डित की वुद्धि स्थिर नही रह सकती। जब ज्ञान उपजा तो प्रभु मुसकराए। वहुत प्रकार का चरित करना चाहते हैं। इसीलिए सुन्दर कथा कहकर माँ को समझाया जिससे वह पुनस्नेह को प्राप्त हो।

व्याख्या यह स्तुति क्षीरशायी भगवान् की है। इन्ही के रोम रोम मे ब्रह्माण्डनिकाय है। वास्तविक भेद ब्रह्म, विष्णु या क्षीरशायी भगवान् मे कुछ भी नही है। उपासको के भेद से भेद प्रतीति होती है। माता सोचती है कि ऐसा प्रभु मेरे उदरगत कैसे हुआ। यह तो अघटितघटना है और उसके लिए उपहास की वात है। देखने की कौन कहे इसके सुनने से वडे-वडे पण्डितो की वुद्धि चञ्चल हो उठेगी। इस भाँति माता को ज्ञान हुआ। शतरूपा जन्म मे इसने माँगा था 'सोइ गति सोइ मति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु। सो विवेक उपजा। इसीलिए माता को ही यह रूप दिखलाया, पिता को नही। क्योकि उनका वरदान था सुत विषयिक तव पदरति

होऊ। मोहि वह मूढ कहै किन कोऊ। प्रभु मुस्करा पडे। इस मुसकराहट मे माया की शक्ति भरी पडी है। यथा माया हास बाहु दिगपाला मुसकराए कि मुझे तो बहुत चरित करना है और जिससे माता का काम लेना है वह मेरे उदरवासी होने मे ही सन्देह कर रही है। अत पुत्रप्रेम की प्राप्ति के लिए माता को समझाया यथा

रावण के वध ते मिटैं, महि को भार अपार।
एहि हित विधि विनयौं लख्यो, मैं मानुष अवतार॥
आराध्यौ साध्यौ तपहि, तुम दसरथ इक सग।
निज सुत करि जाच्यौ हमहि, हिय लालसा अभग॥
पिछल पुण्य प्रभाव ते, तुम देख्यौ यह रूप।
जो मेरो दर्शन करै, सो न परै भव कूप॥
एहि कारन तारन भवहि, भयो प्रगट मैं आय।
सफल करौ मन कामना, मोको गोद खेलाय॥

छ माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूप।
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूप॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूप।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहि भवकूप॥४॥

अर्थ तब माता बोली। उसकी बुद्धि विचलित हो उठी। हे तात! इस रूप को छोड दो अत्यन्त प्रिय शिशुलीला करो। यह सुख परम अनूप है। सुजान ने यह वचन सुनाकर रोना शुरू किया। सुरभूप बालक हो गये। इस चरित का जो गान करता है वह हरिपद पाता है। वह भवकूप म नही पडता है।

व्याख्या प्रभु ने समझाया। तदनुसार माता समझ गई। वह ज्ञानवाली बुद्धि स्थिर न रह गई। इसलिए वह स्वय प्रार्थना करती हैं कि यह चतुर्भुज रूप छोड दो और शिशुलीला करो। क्योंकि वह अत्यन्त आनन्ददायिनी है। भाव यह कि अन्य अवस्थाओ की लीला भी आनन्ददायिनी है पर शिशुलीला की बात ही दूसरी है। भगवान् के दर्शन का सुख माता इस समय अनुभव कर रही है। इस सुख की उपमा नही है। पर शिशुलीला के सुख को परम अनूप बतला रही हैं। और उसके लिए इस रूप को छोडने की प्रार्थना कर रही हैं।

सुजान है। जो स्वय चाह रहे हैं वही प्रार्थना माँ कर रही है। अत उसकी पूर्ति म बडी त्वरा से काम लिया। एवमस्तु भी नही कहा और तुरन्त बालक होकर रोना ही प्रारम्भ किर दिया। रोदन ठाना, चुप होत ही नही। इस चरित्र की फलश्रुति कहते हैं कि जो गान करता है वह हरिपद पाता है। अर्थात् उसे हरिधाम की प्राप्ति होती है। फिर भवकूप म नही पडता अर्थात् मुक्त हो जाता है।

यह दूसरा गुणग्राम कौसल्याकृत स्तुति भरणी नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। तीनो वेदोक्तियाँ ही तीन तारे हैं। यथा १ वेद पुरान भनता २ गावहि श्रुति सता और ३ रोम रोम प्रतिवेद कहै। इसकी फलश्रुति है दानि मुकुति धन धर्म धाम के। सो खरारि कहकर प्रभु द्वारा धर्म स्थापन कहा। श्रीपति कहकर धनदाता कहा। हरिपद से धाम और न परे भव कूपा से मुक्ति कही।

दो विप्र धेनु सुर सत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥१९२॥

अर्थ ब्राह्मण, गाय, देवता और सन्त के लिए अपने सकल्प का शरीर वनकर उसने मनुष्य का अवतार धारण किया। जो माया, गुण, और इन्द्रिया के परे है। अथवा वाणी से परे ।

व्याख्या वह प्रभु मायागुण से परे है। यथा प्रकृति पार प्रभु सव उरवासी वाणी से परे है। यथा मन समेत जेहि जान न वानी। उसने इच्छामात्र स शरीर का निर्माण किया। यथा इच्छामय नरदेह सवारे। होइहौ प्रगट निकेत तुम्हारे। भाव यह कि उसका शरीर धारण जोव की भाँति कर्मपरतन्त्र नही। वह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र है। उसने विप्र धेनु सुर सतहित मनुष्य का शरीर धारण किया। जिसने वेद के उद्धार के लिए मत्स्य शरीर धारण किया। ससार को सँभालने के लिए कूर्म शरीर धारण किया। पृथ्वी को ऊपर लाने के लिए वाराह शरीर धारण किया। दैत्य को मारने के लिए नृसिंह शरीर धारण किया। उमने विप्रधेनु सुरसत के लिए मनुष्य शरीर धारण किया। उस समय इन्ही चार पर घोर विपत्ति थी। विप्रधेनु पर विपत्ति। यथा जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि। नगर ग्रामपुर आगि लगावहि। सुरपर विपत्ति। यथा छुधाछीन वल्हीन सुर, सहजहि मिलिहहि आइ। तव मारिहौ कि छाँडिहहु, भलीभाँति अपनाइ। तथा देइ देवतन्ह गारि प्रचारि सन्त पर विपत्ति। यथा साधुन्ह सन करवावहि सेवा तथा निसिचर निकर सकल मुनि खाए।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय वानी। सभ्रम चलि आई सव रानी।
हरपित जहँ तहँ धाई दासी। आनँद मगन सकल पुरवासी ॥१॥

अर्थ बच्चे के रोने की परमप्रिय वाणी सुनकर उत्कण्ठायुक्त हो सब रानियाँ चली आईं। दासियाँ आनन्दित होकर जहाँ तहाँ दौड चली। सव नगर निवासी आनन्द म मग्न हो गये।

व्याख्या रुदन की वाणी प्रिय तो वच्चे की ही होती है। यह तो राम शिशु के रुदन की वाणी है। इसलिए परमप्रिय वाणी कहा। पहिले कह आये हैं। सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना ह्वै वालक सुरभूपा। अत उस रुदन को सुनकर सव रानियाँ ससभ्रम चली आईं। सव महलो तक वाणी पहुँची और फिर भी परम प्रिय है। परम उत्कण्ठा है अत रानियाँ स्वय चली आ रही हैं। दासी

भेजकर कोई समाचार नही पुछवा रहो है। पहिले से प्रसव काल की वेदना का कोई समाचार नही लगा। एकाएक शिशुरुदन ही सुनाई पडा। मालूम हुआ कि पुत्रोत्पत्ति हुई।

वडे बूढो को समाचार देने के लिए दासियाँ जहाँ तहाँ आनन्दित हो दौड पडी। ये आनन्द के तरग मे पडी हुई वहती चली जा रही हैं। समाचार पाकर पुरवासी आनन्द मे डूवाडूव हो गये। ये लोग भँवर मे पड गये। यथा रघुवर नयन बानद बधाई। भँवर तरग मनोहरताई।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानद समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥२॥

अर्थ दशरथजी पुत्र का जन्म कान से सुनते ही मानो ब्रह्मानन्द म मग्न हो गय। सम्पूर्ण शरीर म रोमाञ्च हो आया। वे उठना चाहते हैं और वुद्धि को स्थिर कर रहे हैं।

व्याख्या दासी ने चक्रवर्तीजी को समाचार दिया। पुरवासी तो समाचार सुनकर आनन्द म मग्न हुए। चक्रवर्तीजी ब्रह्मानन्द मे मानो मग्न हो गये। ये भारी भँवर म पड गये। आनन्दातिरेक से शरीर शिथिल हो गया। वुद्धि चञ्चल हो उठी। अत लिखते हैं चाहत उठत करत मतिधीरा। सो उठते वना नही। अव आगे क्या करना इस निश्चय के लिए वुद्धि को स्थिर कर रहे हैं।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई ॥
परमानद पूरि मन राजा। कहा बुलाइ वजावहु वाजा ॥३॥

अर्थ जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। मेरे घर मे वही प्रभु आया। राजा का मन परमानन्द से पूर्ण हो गया। वुलाकर कहा कि बाजे वजाओ।

व्याख्या गुरुजी ने कहा था कि त्रिभुवन विदित भगत भयहारी बेटा होगा। गुरजी का वाक्य अमोघ है। अत उसी का परामर्श करते है कि जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। यथा मगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। वह प्रभु मेरे घर आये। इससे वढकर महोत्सव का समय और क्या होगा? यह सोचकर राजा का मन परमानन्द से भर उठा। ज्ञानी को ब्रह्मानन्द होता और भक्त को परमानन्द होता है। राजा को क्रम से दोनो हुआ। पहिले ब्रह्मानन्द मे डूवाडूव हो गये। जव अपने को सँभाला मतिधीर किया तो परमानन्द से पूर्ण हो उठे। सेवको को वुलाकर चक्रवर्तीजी को आज्ञा देनी पडी कि वाजे वजाओ। पुत्रोत्सव सुनते ही प्रजामात्र मे वाजा बजना चाहता था। सो आनन्द विभोर है। वाजा वजाने की सुधि ही नही है। इसलिए सावधान होते ही पहिली आज्ञा राजा की बाजा वजाने के लिए हुई।

गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा ॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई ॥४॥

अर्थ : गुरु वसिष्ठ के यहाँ हँकार बुलावा गया। वे ब्राह्मणो के साथ राजद्वार आये। जाकर अद्भुत बालक को देखा। रूप की तो राशि है और गुण उसके वर्णन नही किये जा सकते।

व्याख्या : दूसरी आज्ञा चक्रवर्तीजी की हुई कि गुरुजी को बुलाओ। सो गुरुजी के पास हँकार गया। ऐसे समय मे हँकार भेजा जाता है। राजा के यहाँ किसी आनन्द मे सम्मिलित होने के लिए बुलाहट आती है। तो उसे आज भी हँकार कहते हैं। कर्मकाण्ड कराना है। इसलिए गुरुजी ब्राह्मणो के साथ राजद्वार मे उपस्थित हुए। पहिला काम यह किया कि बालक को देखा। उस सद्य प्रसूत की उपमा नही। रूप की तो राशि है। यद्यपि गुण देखने की अभी कौन चरचा है ? पर सामुद्रिक शास्त्र मे सब लक्षण दिये हुए हैं। जिनसे गुणो का पता केवल शरीर सगठन से चल जाता है। अत शास्त्रदृष्टि से गुरुजी ने देख लिया कि अवर्णनीय गुण है। यथा ·

या सिसु के गुन नाम बडाई।
को कहि सकै सुनौ नरपति श्रीपति समान प्रभुताई॥
जद्यपि बुधिवय रूपसील गुन समय चारु चारो भाई।
तदपि लोकलोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई॥ गी।

दो. नंदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥१९३॥

अर्थ · राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म किया और सुवर्ण, धेनु, वसन और मणियो से ब्राह्मणो का सत्कार किया।

व्याख्या नान्दीमुख श्राद्ध तथा जातकर्म और दान नालच्छेदन के पहिले ही पहले होता है। क्योकि उस समय प्रजातीर्थ उपस्थित होता है। उस समय के दान का बडा माहात्म्य है। नालच्छेदन के बाद वृद्धयशौच लग जाता है। फिर कोई कर्मकाण्ड नही हो सकता।

सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू। सो यह उछाह[1] सिसिर ऋतु के प्रथम

---

१. आजु सुदिन सुभघरी सुहाई।
रूप सील गुन धाम राम नृप भवन प्रकट भए आई॥
सदन वेद धुनि करत मधुर सुनि बहु बिधि बाज बधाई।
पुर बासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज-निज सपदा लुटाई॥
मनि तारन बहु केतु पताकन्हि पुरी रुचिर करि छाई।
मागध सूत द्वार बदीजन जहँ तहँ करत बडाई॥
सहज सिंगार किए बनिता चली मगल बिपुल बनाई।
गावहि देहि असीस मुदित चिरजीवौ तनय सुखदाई॥
बीथिन्ह कुकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई।
नाचहि पुर नर नारि प्रेम भरि देह दसा बिसराई॥ गीतावली

मास माघ सुदि पंचमी' से उपमित है। जिसे श्रीपञ्चमी या वसन्त पञ्चमी कहते हैं। पञ्चमी में पाँच कार्य हुए। १ रानी आई। २ दासी धाईं। ३. दशरथजी को समाचार मिला। ४ वसिष्ठजी की बुलाहट हुई और ४ जातकर्म किया गया।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमन वृष्टि अकास ते होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥१॥

अर्थ ध्वजा, पताका और वन्दरवार से नगर छा सा गया। कैसी सजावट हुई। सो कही नही जा सकती। आकाश से पुष्पवृष्टि हो चली। सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये।

व्याख्या ध्वजा चतुष्कोण और पताका त्रिकोण होती है। यथा : कदलि

---

१. सहेली सुनु साहिलोरे।
भूपति भवन सोहिलो सुनि बाजैं गहगहे निसान।
जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु वितान॥
सींचि सुगध रचे चौके गृह आँगन गली बजार।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मगलचार॥
सुनि सानद उठे दसस्यदन सकल समाज समेत।
लिये बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत॥
जात कर्म करि पूजि पितर सुर दिये महि देवन दान।
तहि अवसर सुत तीन प्रगट भये मगलमुद कल्यान॥
सजि आरती विचित्र थार कर जूथ जूथ वर नारि।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि॥
असहो दुसही मरहु मनहि मन बैरिन बढहु विषाद।
नृप सुत चारि चारु चिरजीवहु सकर गौरि प्रसाद॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन राम की नाचहिं राजदुआर॥
गजरथ वाजि वाहनी वाहन सबनि सवारे साज।
जनु रति पति रितु पति कोसलपुर विहरत सहित समाज॥
घटा घटि पखाउज आउज झाझ वेनु डफ तार।
नूपुर धुनि मजीर मनोहर कर ककन झनकार॥
नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रग।
मनहु मदन रति विविध वेषधरि नटत सुदेश सुढग॥
कुकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहि गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भई मनभावति भीर॥
वारहि मुकुता रतन राजमहिषी पुरसुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान॥ गीतावली

तालवर ध्वजा पताका। तोरण वन्दवार को कहते हैं। इनसे नगर छाया हुआ मालूम पडने लगा। नगर की ऐसी सजावट हुई कि वर्णन नहीं की जा सकती। अब आकाश की सजावट कहते हैं कि वहाँ से फूल झर रहे हैं। ब्रह्मा के आविर्भाव से सम्पूर्ण प्रजा मे ब्रह्मानन्द का अविर्भाव हुआ। क्योकि सबको प्रभु के चरणो मे प्रीति थी। यथा : बह्मानन्द मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति।

वृंद वृंद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किएँ उठि धाईं ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥२॥

अर्थ . स्त्रियाँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर चली। सहज शृङ्गार किये हुए दौड पडी। स्वर्णघट और थार मे मङ्गलद्रव्य भर भरकर गाती हुई राजद्वार मे प्रवेश करती हैं।

व्याख्या . स्त्रियाँ सखी सहेलियो के साथ चली। इसलिए वृन्द वृन्द मिलि कहते है। वेदी सीस तमोल मुख सीस सिलसिलेवार। दृग आँजे राजे खरी साजे सहज सिगार। बस इतना ही शृङ्गार किये बाजा सुनते ही दौड पडी। कनक कलश सिर पर थार हाथ मे। दधि दूर्वारोचन फलफूला। नव तुलसीदल मगल मूला। इत्यादि मगल द्रव्य लिये वेग से चली। राजद्वार मे प्रवेश के पूर्व ही मङ्गलगान[1]

---

१ आजु महामगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भये।
सदन सदन सोहिलो सोहावनो नम अरु नगर निसान घये ॥
सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सुभगान ठये।
नाचहिं नम अप्सरा मुदित मन पुनि पुनि बरखहि सुमन चये ॥
अति सुख वेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गये।
जातकरम करि कनक बसन मनि भूषित सुरभि समूह दये ॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लये।
गावत चली भीर भई बीथिन्ह बदिन वाकुरे बिरद वए ॥
कनक कलस चामर पताक ध्वज जहँ तहँ बदनवार नये।
भरहिं अबीर अरगजा छिरकहिं सकललोक एक रग रये ॥
उमगि चल्यो आनद लोक तिहुँ देत सबनि मदिर रितए।
तुलसीदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए ॥
गावैं बिबुध बिमल बर बानी।
भुवन कोटि कल्यान कद जो जायो पूत कौसिला रानी ॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भये दानी।
यों प्रसन्न कैकई सुमित्रहि होहु महेस भवानी ॥
दिन दूसरे भूप भामिनी दोउ भई सुमगल खानी।
भयो सोहिलो सोहिलो मो जनु सृष्टि सोहिलो सानी ॥ गीतावली

प्रारम्भ कर देती हैं। आज भी यही चाल है कि ऐसे अवसरो पर मङ्गलगान करती हुई स्त्रियाँ देहली का उल्लघन करती हैं।

करि आरति नेछावरि करही। वार वार सिसु चरनन्हि परही ॥
मागध सूत वदि गन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥३॥

अर्थ आरती करके निछावर करती हैं। वार-वार शिशु के चरणो मे पडती है। मागध, सूत, वन्दी और गायकलोग रघुनायक का पवित्र गुणगान करते हैं।

व्याख्या चक्रवर्तीजी के यहाँ रोक नही है। प्रसूतिकागृह तक सब पहुँच जाती है। राजा में देवभाव है अत आरती होती है। निछावरि होती है। वार-वार प्रणाम हो रहा है। सूता पौराणिका प्रोक्ता मागधा वंशशंसिन। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञा प्रस्तावसदृशोक्तय। सूत पौराणिक होते हैं। मागध वशप्रशसक होते हैं। निर्मल बुद्धि वाले वन्दी मौके की बात बोलनेवाले होते है। ये रघुनायक चक्रवर्तीजी के पवित्र गुणो का गान करते है। अथवा मुनियो के उपदेशानुसार भाविनी वृत्ति का आश्रयण करके रघुनायक श्रीरामजी के गुणो का गान करते है। राजा पृथु के सिंहासनासीन होने के समय मुनियो की आज्ञा से वन्दी आदिको ने भाविनी वृत्ति का आश्रय करके ही गुणगान किया था।

सर्वस[1] दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥
मृगमद चदन कुकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बिचा ॥४॥

अर्थ सब ने सर्वस्व दान दे दिया। और जिसने पाया उसने भी रक्खा नही। कस्तूरी चन्दन और केसर की कीच सभी गलियो मे फैल गई।

व्याख्या सबने सर्वस्व दान दिया। जिसने पाया उसने भी नही रक्खा। इस भाँति सम्पत्ति का हेर-फेर अवध मे हो गया। किसी समय सोमवती अमावस्या लगी। सब मुनियो की इच्छा हुई कि गोदान कर। मुनि सौ थे और एक ही के पास गौ थी। जिसके पास गाय थी उसने किसी को दान दिया। उसने भी दान कर दिया। इस भाँति वह गौ दान होती गई। अन्त मे फिर वह उसी मुनि के पास पहुँच गई। जिसकी कि वह पहिले थी और गोदान का फल सबको हो गया। लालच किसी को नही और देने की इच्छा सबको। ऐसी अवस्था मे सम्पत्ति घूमघामकर जहाँ की तहाँ आ जाती है।

कस्तूरी, केसर, चन्दन सब एक दूसरे पर फेंक रहे है। आनन्दातिशय मे सभ्यता का बन्धन ढीला हो जाता है। अत केसर कस्तूरी युक्त चन्दन का कीच गलियों मे हो गई शिशिर ऋतु के दूसरे महीने मे फाल्गुन का उत्सव प्रारम्भ हुआ।

दो गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रकटेउ सुखमाकद।
हरखवत सब जह तहँ, नगर नारिनर बृद ॥१९४॥

---

१ यहाँ अत्युक्ति अलकार है।

अर्थ . घर-घर आनन्द का बधावा बजा। क्योंकि परम शोभा के बादल आज प्रकट हुए हैं। नगर के नर और नारियों के समूह सब जहाँ तहाँ हर्षित थे।

व्याख्या . अब स्त्रियाँ राजद्वार से लौटी हैं तो घर-घर मङ्गलाचार होने लगा। बधावा बजने लगा। शोर हो गया कि सुषमाकन्द प्रकट हुए हैं। वहाँ परम शोभा की वर्षा हो रही है। इससे नगर के सब नर-नारी जहाँ तहाँ हर्षित हैं।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत[१] भैं ओऊ ॥
वोह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकै सारद अहिराजा ॥१॥

अर्थ कैकयराज की बेटी और सुमित्रा ने दोनों से सुन्दर बेटों को जन्म दिया। उस सुख सम्पत्ति समय और समाज को सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते।

व्याख्या ऊपर के दो दोहों मे माघ मास का उत्सव कहा। अब दो दोहों मे फागुन का उत्सव कहते हैं। कुल चार दोहों मे सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू कहा। यहाँ दोऊ शब्द का प्रयोग सुन्दर सुत के साथ अन्वित होकर सुमित्रा को दो पुत्र होना भी द्योतित करता है। वह १ सुख यथा

गावत नाचत मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद अघानी ॥
गान निसान कोलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि विरंचि हर पुर शोभा कुल कौसलपुरी लोभानी ॥
आनन्द अवनि राजरानी सब माँगहुँ कोख जुडानी।
आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी ॥
विभव विलास वाढि दसरथ की देखि न जिनहि सोहानी।
कीरति कुमल भूति जय रिधि सिधि तिन्हपर सबै कोहानी ॥

२ सम्पति। यथा उमगि चल्यो आनन्द लोक तिहुँ देत सबहिं मंदिर रितये। तुलसिदास पुनि भरई देखिअत राम कृपा चितवनि चितए। ३ समय। यथा ' सुमन वृष्टि अकास ते होई। ब्रह्मानद मगन सब लोई। ४ समाज। यथा घर घर बाज बधाव सुभ प्रकटेऊ सुखमा कन्द। शारदा स्वर्ग की वक्ता, अहिराज पाताल के वक्ता नही कह सकते। क्योंकि वहाँ यह सुख हुआ ही नहीं। मर्त्यलोक के वक्ता का नाम नही लिया। क्योंकि वे तो उस सुख का अनुभव कर ही रहे हैं।

अवधपुरी सोहै एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनु राती ॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी ॥२॥

---

१ दिन दूसर भूप भामिनि दोउ भई सुमगल खानी। दशमी को सूर्योदय के पूर्व पुष्य नक्षत्र मीन लग्न मे भरतजी का तथा अश्लेषा मे दोपहर को लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। तीनों भाइयों की सब ग्रहस्थिति वैसी ही है जैसी रामचन्द्र की थी। केवल नक्षत्र और लग्न में भेद है।

अर्थ उस समय अवधपुरी इस भाँति शोभित हुई जैसे प्रभु से मिलने रात आई हो। सूर्य को देखकर मानो मन मे सकुचित हुई फिर भी ऐसा जान पडता है कि सन्ध्या बन गई।

व्याख्या अवधपुरी मे मध्यान्ह को ही सन्ध्या की शोभा हो गई। इसी पर कवि उत्प्रेक्षा करते है कि मानो प्रभु से मिलने रात अभिसारिका होकर आई। अकस्मात् सूर्य दिखाई पड गये। रात को कभी बूढे सूर्य का सामना पडा ही नही था। अत उन्हे देखकर वह सकुचित हो उठी। रग फीका पड गया। सो सन्ध्या हो गई। सन्ध्या भी रात्रि ही है। पर रङ्ग फीका रहता है।

[1]अगर धूप जनु बहु अधियारी। उडइ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इदु उदारा॥३॥

अर्थ अगर धूप के कारण मानो घनी अँधियारी हो उठी और जो अबीर उड रही थी वही मानो ललाई हुई। मन्दिरो घरो की कलशियाँ मानो तारे थे। और राजा के घर का कलश तो सुन्दर चन्द्र था।

व्याख्या सन्ध्या मे अन्धकार रहता है और अस्तमित सूर्य की लालिमा भी रहती है। सो अगर धूप के धूम से मालूम होता था कि अन्धकार छा गया है। लोग आनन्द से अबीर उडा रहे हैं। उसने सूर्य की लालिमा का दृश्य आँख के सामने खडा कर दिया। उस अन्धकार मे घरो की कलशियाँ तारा की भाँति चमक रही थी। और राजा के महल का कलश तो निष्कलङ्क चन्द्र-सा शोभा दे रहा था।

भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥
कौतुक देखि पतग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥४॥

अर्थ अत्यन्त कोमल वाणी से वेदध्वनि घरो म हो रही थी। माना समय के एक म मिल जाने पर चिडियाँ बोलती हो। यह कौतुक देखकर सूर्य भूल गये। एक महीना बीतने का उन्हे पता न लगा।

---

१ कुकुम अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मन भावत भीर॥
बडा वयस विधि भया दाहिनो सुर गुरु आसिरवाद।
दसरथ सुकृत सुधा सागर सब उमगे हैं तजि मरजाद॥
ब्राह्मण वेद वदि विरदावलि जय धुनि मङ्गलगान।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान॥
जा सुख सिधु सकृत सीकरते सिव विरचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौ गाई॥
जो रघुबीर चरन चितक तिन की गति प्रगट दिखाई।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ तुलसीदास तब पाई॥

व्याख्या : कवि सन्ध्या का रूपक बाँध रहे हैं। उस समय चिड़ियाँ बोलने लगती हैं। उसी को वेदध्वनि से उपमित कर रहे हैं। परन्तु वस्तुत उस समय मध्याह्न था। उस उजेले में अगरधूप की अँधियारी जा मिली। मानो रात्रि मध्याह्न मे सन गई। इस भाँति सन्ध्या होने पर पक्षियो के चहचहाहट की भाँति घर मे वेदध्वनि सुनी जा रही है। सूर्य ने रात्रिसुन्दरी का नाम तो बहुत सुना था। परन्तु देखा न था। सन्ध्या के रूप मे उसका साक्षात्कार होना ही कौतुक है। उसे देखकर सूर्य अपनी गति भूल गये। एकटक होकर रात्रिसुन्दरी की मधुर मूर्ति का दर्शन करने लगे। इनका नाम ही पतङ्ग है। अत सौन्दर्य पर आसक्त होना स्वभावसिद्ध है। सभ्यता की होली जैसी कही जा सकती है कवि ने कही। जन्म के समय सूर्य नारायण मीन के दश अश पर थे। सो एकाएक मेष के दश अश पर हो गये। अत्यन्त अलौकिक ग्रहस्थिति हो गई और यह स्थिति एक मास तक बनी रही। सूर्य नारायण ठहरे रह गये। शेष ग्रहगण बराबर चलते रहे। एक मास मे स्वाभाविक स्थिति पर पहुँचे। तब सूर्यनारायण भी चले। अत कहते है .

दो. मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानै कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कौन विधि होइ ॥१९५॥

अर्थ : एक महीने का दिन हुआ। यह मर्म किसी ने नही जाना। रथ के सहित सूर्य ठहर गये। रात हो तो कैसे हो ?

व्याख्या : रथी तो सदा स्थिर ही रहता है। रथ का चलना ही उसका चलना है। इसलिए रथ समेत रवि थाकेउ कहा। मध्याह्न के समय रामजन्म हुआ। उसी समय रथ रुक गया। अतः एक मास तक मध्याह्न ही बना रहा। सूर्य हटते ही नही। इसलिए एक महीने तक दिन बना रहा। रात न हुई। पर इस मर्म को किसी ने न जाना। क्योंकि सब लोग ब्रह्मानन्द मे मग्न थे। यथा ब्रह्मानद मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति। जात न जाने दिवस निसि गये मास पट बीति।

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिन मनि चले करत गुनगाना ॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा ॥१॥

अर्थ : इस मर्म को किसी ने नही जाना। सूर्य गुणगान करते चले। इस महोत्सव को देखकर देवता, मुनि और नाग अपना भाग्य वर्णन करते हुए घर चले।

व्याख्या : ब्रह्मानन्द में विभोर होने से किसी को क्षुधा पिपासादि की बाधा नही हुई। न इतने समय का बीतना ही किसी को अद्भुत हुआ। इससे आनन्दातिशय कहा। दिनमणि चले कहकर दिखलाया कि जो काल की गति इतने देर तक रुकी पड़ी थी वह फिर चल पडी थी जैसे घडी का चलना कुछ देर के लिए रुक जाय और वह फिर चल पडे। ऐसा दृश्य देखने के बाद सूर्यनारायण रामप्रभाव का गान करते चले।

एक कल्प मे एक ही रामावतार होता है। और वह वैवस्वत मन्वन्तर मे होता है। तेरह मन्वन्तर खाली ही रह जाते है। इन्द्रादि देवो की आयु एक मन्वन्तर की ही होती है। अत सुर मुनि नाग रामावतारोत्सव देखने मे अपने भाग्य की सराहना करते हैं। तेरह मन्वन्तर के सुर मुनि नागो के भाग्य मे यह सुख नही था।

औरौ एक कहौ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ मति तोरी ॥
काग भुसुडि सग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहि कोऊ ॥२॥

अर्थ और एक मै अपनी चोरी कहता हूँ गिरिजे! सुनो तुम्हारी मति अति दृढ है। काग भुसुडी मेरे साथ था। हम दोनो मनुष्य रूप धारण किये हुए थे। कोई जानता नही था।

व्याख्या होली मे अबीर उडने और गीतवाद्य के अतिरिक्त चोरी भी होती है। लडके लकडी चुराकर होली म डालते है। वह चोरी बुरी नही समझी जाती। सो यहाँ शङ्कर भगवान् अपनी चोरी कहते हैं। अति दृढ मति तोरी का भाव यह कि तुम्हारी मति बडी दृढ है। मेरी चोरी सुनकर भी विचलित न होगी। सप्तर्षियो ने मेरे बहुत से दोष दिखाये। पर तुम तनिक भी विचलित नही हुई। स्पष्ट कह दिया। महादेव अवगुन भवन विस्नु सकल गुन धाम। जाकर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम। अत तुमसे अपनी चोरी कहता हूँ। गुप्त रूप से प्रभु अवतीर्ण हुए थे। अपने स्वरूप से जाने से बात खुल जाती। इसलिए मैंने और भुसुण्डि ने नर रूप धारण कर रक्खा था।

परमानद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई ॥३॥

अर्थ परमानन्द प्रेम सुख से फूले हुए गलियो मे मग्न मन होकर भूले फिरते थे। यह शुभ चरित वही जानता है जिसपर राम की कृपा होती है।

व्याख्या देवताओ के समाज से खिसक गये। अयोध्या की गलियो मे काग भुसुण्डि मिल गये सो उन्हे साथ लिये परमानन्द मे फूले फूले फिरते थे। राजद्वार मिलता ही नही था। अपना स्वरूप छिपाये है। यही चोरी है।

यह चोरी भी शुभचरित है। इस बात को वे ही जान सकते हैं जिन पर राम की कृपा होगी। नही तो काग को साथ लिये मार्गभ्रष्ट हुए गलिया मे भूलने को कौन अच्छी बात कहेगा ?

तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा ॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना बिधि चीरा ॥४॥

अर्थ उस अवसर पर जो जिस प्रकार आया उसे राजा ने वैसा ही मन-चाहा पदार्थ दिया। हाथी, रथ, घोडा, सोना, गाय, हीरा, और नाना प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।

राजा और कूप का स्वभाव है कि 'बिनु गुन बूँद न देहिं'। निर्गुन को कुछ भी नही देते। पर चक्रवर्ती महादेव की भाँति अवढर दानी हैं। और उस समय की तो विशेषता हो गई कि जो जिसे पसन्द हो उसे राजा दे डालता था। राजा रत्नभुक् होते हैं। जो सबसे अच्छी वस्तु होती है उसी का राजा उपभोग करते हैं। वे अदेय होती हैं। पर यहाँ यह नियम नही रह गया। रानिन्ह दिये वसन मनि भूषन राजा सहन भडार। यह कोई पूछनेवाला नही कि इसे लेकर तुम क्या करोगे?

दो. मन संतोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल नयन चिरजीवहु, तुलसिदास के ईस ॥१९५॥

अर्थ : सबके मन मे सन्तोष है। सब जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देते हैं कि तुलसीदास के प्रभु सभी पुत्र चिरञ्जीवी हो।

व्याख्या : त्रेता के याचको की प्रशसा है कि अपने अभाव की पूर्ति मात्र का ही प्रतिग्रह करते थे। सबका मन सन्तुष्ट हो गया। नही तो ससार भर की सम्पत्ति केवल एक पुरुष की इच्छा पूर्ति के लिए भी यथेष्ट नही है। जिस किसी भाँति प्राणी के मन मे सन्तोष उत्पन्न करना ही ईश्वरपूजन है। सो महाराज चक्रवर्ती द्वारा पूजन हो रहा है। राजा के परोक्ष मे जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे हैं 'नृप तनय चारि चिरजीवहु सकर गौरि प्रसाद'। तुलसीदास के ईश चारो भाई हैं। यथा अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर मे विहरैं।

५. शिशु चरित प्रसङ्ग : तीसरे प्रश्न का उत्तर :

कछुक दिवस[1] बीते एहि भाँति। जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥१॥

---

१. चैत चतुर्दसि चाँदनी अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासही, उमगत आनद आज ॥
जागिय रामछठी सजनी रजनी रुचिर निहारि।
मङ्गल मोद मढ़ी मूरति नृप के बालक चारि ॥
मूरति मनोहर चारि विरचि विरचि परमारथ मई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन जोग विधि सकर दई ॥
तिन्हकी छठी मङ्गलमठी जग सरस जिन्हकी सरसई।
किए नीद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥
सेवक सजग भये समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिवर सिखये लौकिको वैदिक विविध विधान ॥
वैदिक विधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान पूजा मूलिकामनि साधि राखि आनि कै ॥

अर्थ : कुछ दिन इस भाँति बीत गये। दिन और रात्रि का जाना मालूम नही होता था। नामकरण का अवसर जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि को बुला भेजा।

व्याख्या : उमा का तीसरा प्रश्न है : *बाल चरित पुनि कहहु उदारा*। इसके उत्तर मे दो प्रसङ्ग कहे जायँगे : १ शिशु चरित तथा २ बालचरित। यथा : पुनि सिसु चरित कहेसि मन लाई। बालचरित कहि विविधि मन महँ परम उछाह। सो पहिले शिशु चरित कहते हैं। उपर्युक्त उछाह मे ही ग्यारह दिन बीत गये। चारो भाइयो का क्रम से जन्मोत्सव हुआ। वह उत्सव छठी तक चला गया। इसलिए ग्रन्थकार लिखते हैं कि परम उछाह मे दिन बीत गये। कुछ मालूम न पडा। आनन्द मे रात दिन के बीतने का पता नही चलता।

कर्मकाण्ड के लिए गुरुजी के यहाँ बुलावा गया। गुरुजी पुरोहित भी हैं, मन्त्री भी हैं। अत पुरोहित का कार्य करने के लिए बुलावा गया। महाराज स्वय नही गये। यदि वसिष्ठजी के विना आये काम चल जाता तो चक्रवर्ती जी स्वय जाते। मुनिजी ब्रह्मऋषि ज्ञानी है। चक्रवर्ती जी भी नृपऋषि ज्ञानी हैं।

करि पूजा[१] भूपति अस भाखा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
इन्हके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा॥२॥

जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानि कै।
ते जत्र मत्र सिखाइ राखत सबनि सो पहिचान कै॥
ज्यौ आजु कालिहु परहु जागत होइगो नेवते दिए।
ते धन्य पुन्य पयोधि जे तेहि समय सुख जीवन जिए॥
निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालही।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग जनु प्रभु छठी छाया लही॥

१ बरे विप्र चहुँ वेद के रवि कुल गुरु ज्ञानी।
आपु बसिष्ठ अथर्वणी महिमा जग जानी॥
लोक रीति विधि वेद को करि कह्यौ सुबानी।
सिसु समेत वेगि बोलिये कौसल्या रानी॥
चारु चौक बैठत भई भूप भामिनि सोहैं।
गोद मोद पूरति लिये सुकृती जन जोहैं॥
लगे पढन रच्छा रिचा ऋषिराज विराजे।
गगन सुमन झरि जय जय बहु बाजन बाजे॥
बाल विलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो।
सुभ को सुभ, मोद मोद को 'राम' नाम सुनायो॥
भरत लखन रिपुदवनहू धरे नाम विचारी।
फलदायक फल चारि के दसरथ सुत चारी॥

अर्थ पूजा करके राजा ने ऐसा कहा कि हे मुनिजी ! जो नाम आपने सोच रखा हो उसे रख दीजिये। मुनिजी ने कहा इनके नाम अनेक है और अनूप है, राजन् ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

व्याख्या नामकरण की अङ्गभूत पूजा करके तथा मुनिजी की पूजा करके चक्रवर्ती जी नामकरण के लिए प्रार्थना करते हैं। मुनिजी के स्वभाव से महाराज परिचित है कि जो करना है उसे मुनिजी पहिले से विचार किये रहते हैं।

मुनिजी ने कहा कि यहाँ नाम रखने की बात ही नही है। चारो भाइयो के सहस्र नाम है और उन नामो मे से कोई अधिक या कोई न्यून नही है। एक से एक अधिक है। इसलिए अनेक और अनुपम कहा। यथा यद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका। अब उन्ही नामो मे से एक एक चारो के लिए चुनना है। अत अपने पसन्द के अनुसार मैं कहूँगा।

जो आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा ॥३॥

अर्थ जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि है। बिन्दुमात्र से त्रैलोक्य को सुख देनेवाले है। इन्ही सुखधाम का राम ऐसा नाम है। जो सम्पूर्ण लोक को विश्राम देनेवाला है।

व्याख्या आनन्दसिन्धु कहकर परिपूर्णानन्द कहा। आनन्दमात्र का मूल निधान तथा देशत कालत वस्तुत अपरिच्छिन्न कहा। आनन्द कहने से ही सत् और चित् का आपसे आप ही ग्रहण हो जाता है। सुखराशि से व्यावहारिक आनन्द का मूल स्रोत कहा। एप ह्येवानन्दयतीति श्रुते। यथा जो सुख सुधा सिंधुसीकर ते सिव बिरंचि प्रभुताई। अत स्वरूप से सिन्धु। चरित करने मे राशि। यथा नित नव चरित देख पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।

अखिल लोक विश्रामदायक होने से सुखधाम कहा। सुखसिन्धु सुखराशि और सुखधाम कहने से उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण द्योतित किया। यथा आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्द प्रयन्त्यभिसविशन्तीति। अथवा ज्ञानी के लिए आनन्दसिन्धु। कर्मठ के लिए सुखराशि स्वर्गसुखरूप तथा भक्त के लिए सुखधाम कहा। ऐसे प्रभु का नाम राम रक्खा। क्योकि रामपद का अर्थ है जिस अनन्त चिदात्मा नित्यानन्द मे योगी रमण करते हैं वही परब्रह्म राम है। यथा रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदनामौ पर ब्रह्माभिधीयते। रामतापनीये।

बिस्व[1] भरन पोपन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥४॥

---

१ यहाँ विधि अलङ्कार है।

अर्थ जो जगत् का भरण पोषण करता है उसका नाम भरत है। जिसके स्मरण से शत्रु का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन वेद मे प्रकाशित है।

व्याख्या जिस भाँति त्रैलोक्य सुपासी होने से रामनाम रक्खा गया। उसी भाँति जगत् के भरण पोषण करने से भरत नाम रक्खा गया। भरत पद का अर्थ ही है भरण करनेवाला। इसी भाँति शत्रुघ्न पद का अर्थ है शत्रु का नाश करनेवाला। जिस भाँति गणेश जी के स्मरण मात्र से विघ्न का नाश होता है। उसी भाँति जिसके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन रक्खा।

दो लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार ॥१९७॥

अर्थ जो लक्षण के धाम है। रामजी को प्रिय हैं और सम्पूर्ण जगत् के आधार है। गुरु वसिष्ठ ने उनका उदार नाम लक्ष्मण रक्खा।

व्याख्या असाधारण धर्म ही लक्षण है। अत जो विशेष धर्मों का निधान हो उसे लक्ष्मण कहते है। देवस्वामी जी कहते हैं गौर अग सब औ गर्भहिते, सीस चँदोला लक्ष्म गहे। ताते नाम कियो लक्ष्मण अस सिर पर धरती भार वहे। तीन शून्यते सहस्रशीर्षता या मे कछु न प्रमान वहे। रामप्रिय शब्द मे तत्पुरुष और बहुव्रीही दोनो समास है। राम का प्रिय या राम है प्रिय जिसको। सकल जगत् आधार जाग्रत् के विभु होने से है अथवा भगवान् वाल्मीकि की उक्ति जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी के अनुसार शेषावतार होने से सकल जगत् आधार है। इनका उदार नाम लक्ष्मण है। भक्त सुखदाता तथा सकल जगत् आधार होने से उदार कहा।

धरे नाम गुरु हृदय बिचारी। वेद तत्व नृप तव सुत चारी॥
मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहि सुखमाना ॥१॥

अर्थ गुरुजी ने हृदय मे विचार के नाम रक्खा। कहा राजन् तुम्हारे चारो बेटे वेद के तत्त्व हैं जो मुनियो के धन भक्तो के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं। वे बाललीला के आनन्द मे सुख मान रहे है।

व्याख्या वेद का तत्त्व प्रणव है। प्रणव मे चार मात्रा होती है। अ, उ, म् और अर्धमात्रा। अकार जाग्रत् अवस्था के विभु विराट् रूप लक्ष्मण[1] हैं। उकार स्वप्नावस्था के विभु हिरण्यगर्भरूप शत्रुघ्न है। मकार सुषुप्ति के विभु ईश्वर रूप

---

१ अकाराक्षरसम्भूत सौमित्रिर्विश्वभावन । उकाराक्षरसम्भूत शत्रुघ्नस्तैजसात्मक । प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भव । अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रह ॥ 'रामोत्तरतापनीये' अकाराक्षर से उत्पन्न विश्वभावन लक्ष्मणजी हैं उकाराक्षर से उत्पन्न तैजसात्मक शत्रुघ्न जी हैं। मकाराक्षर स उत्पन्न प्राज्ञात्मक भरत जी हैं। ब्रह्मानन्दैकविग्रह राम अर्धमात्रात्मक हैं।

भरत हैं और अर्ध माना तुरीय के विभु ब्रह्म साक्षात् राम हैं। इस भाँति प्रणवरूप होने से चारो भाई वेद के तत्त्व हैं। चक्रवर्ती जी ने कहा था धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा। सो हृदय से विचारकर मुनिजी ने नाम रख दिया। पहिले तुरीय के विभु साक्षात् ब्रह्म का नाम रक्खा। क्योंकि ये ही ज्येष्ठ थे। तत्पश्चात् क्रमानुरूप सुषुप्ति के विभु ईश्वर का नाम भरत रक्खा। अब तीसरे पुत्र का नाम रखना क्रमप्राप्त था। परन्तु गुरुजी ने क्रम भङ्ग करके चौथे पुत्र स्वप्न के विभु का नाम शत्रुघ्न रक्खा। क्योंकि सुषुप्ति से स्वप्न अलग नही किया जा सकता। तत्पश्चात् तीसरे पुत्र जाग्रत् के विभु ही जगत् के आधार है। यथा सुदरी सुदर वरन्ह सह सब एक मडप राजही। जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभु न सहित विराजही। अत कहते हैं धरेउ नाम गुरु हृदय विचारी। तुरीय के विभु राम हैं। यथा तुरीयमेव केवल। ये ही मुनियो के धन हैं, ये ही भक्त के सर्वस्व है, ये ही शिवजी के प्राण हैं। इनकी प्राप्ति महा दुर्लभ है। सो चक्रवर्ती जी के प्रभाव से आज बाल-लीला मे सुख मान रहे है। सबके नयन विषय हो रहे हैं।

बारेहि तें निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी ॥
भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बडाई ॥२॥

अर्थ बचपन से ही अपना हित और स्वामी जानकर लक्ष्मणजी ने रामचरण मे प्रीति लगायी और भरत शत्रुहन दोनो भाइयो की स्वामी और सेवक की भाँति प्रीति की बडाई हुई।

व्याख्या कौसल्याजी ने अपने पायस का अश जो सुमित्राजी को दिया था उसी से लक्ष्मण हुए। अत लक्ष्मणजी की स्वभाव से ही श्रीरामजी के चरणो मे प्रीति हुई और कैकेयीजी ने जो अपने पायस का अश सुमित्राजी को दिया था। उसी से शत्रुघ्न हुए। अत स्वभाव से ही वे भरतजी के अनुगामी हुए। यथा लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वद्वीभूय चरन्ती तौ पायसाशानुसारत। अध्यात्मरामायणे। यहाँ भरत शत्रुहन दूनो भाई पायस के अशानुसार ही कहा गया है। नही तो कैकेयी से भरत का जन्म हुआ और सुमित्रा को दो यमल जोडुए लडके हुए। क्योंकि उन्होने कौसल्या और सुमित्रा दोनो से पायसाश प्राप्त किया था। यथा कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा। सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दु-सदृशाननौ।

दूसरी बात यह भी है कि तुरीय के विभु और जाग्रत् के विभु का सदा साथ है। क्योंकि तुरीय की प्राप्ति जब कभी होगी तो जाग्रत से ही होगी। सुषुप्ति स्वप्न से नही हो सकती। इसी भाँति सुषुप्ति और स्वप्न का साथ है। सुषुप्ति के अन्तर्गत ही स्वप्नावस्था है। अत दोनो के विभुओ का भी साथ स्वाभाविक है। पायस का जो विभाग हुआ था सो इसी बात को लक्ष्य मे रखकर हुआ था।

स्याम गौर सुदर दोउ जोरी। निरखहि छवि जननी तृन तोरी ॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥३॥

अर्थ श्याम और गौर की दोनों जोडी सुन्दर थी। तिनका तोडकर माताएँ छवि देखती थी। चारो शील रूप और गुण के धाम थे। फिर भी रामजी अधिक सुखसागर थे।

व्याख्या अव्यक्त रूप होने से राम और भरत, तुरीय और सुषुप्ति के विभु श्याम है। जाग्रत् और स्वप्न व्यक्त रूप हैं। अत उनके विभु लक्ष्मण और शत्रुघ्न गौर है। राम और लक्ष्मण की जोडी और भरत तथा शत्रुघ्न की जोडी श्याम गौर की जोडियाँ हुईं। इनकी छवि माताएँ तृण तोडकर देखती थी। जिसमे अपनी डीठ वालको को न लगे। चारो भाई शील रूप और गुणो के धाम थे। पर रामजी सबसे अधिक सुखसागर थे। यथा या सिसु के गुन नाम बडाई। जद्यपि बुधि बल रूप, सील, गुन समय चारु चारयो भाई। तदपि लोक लोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई।

हृदय अनुग्रह इदु प्रकासा। सूचत किरन मनहोर हासा॥
कबहु उछग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारै कहि प्रिय ललना॥४॥

अर्थ हृदय मे अनुग्रहरूपी चन्द्रमा का प्रकाश है। उसी की किरन मनोहर हासरूप से सूचित होती है। कभी गोद मे कभी सुन्दर हिंडोले पर बैठकर माँ प्रिय ललन कहकर दुलार करती है।

व्याख्या होठा पर मृदु हँसी के आने से मुख की शोभा और भी अधिक हो गयी। हृदय म अनुग्रह का चन्द्रोदय हुआ। अत वह दृष्टिगोचर नहीं है। पर उसकी किरणें मनोहर हास के रूपम अधर पल्लवो पर खेल रही हैं। कभी माँ गोद मे लेकर खेलाती है और कभी पालने पर झुलाती है। पालने पर झुलाना ही बच्चो के लिए व्यायाम है। प्रिय ललन कहकर दुलारती है। कबहुँ उछग। यथा सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये। बार बार विधु बदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये। कबहुँ पौंढि पयपान करावति कबहूँ राखति लाय हिये। बाल केलि गावति हलरावति पुलकति प्रेम पियूष पिये। विधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अबुद ओट दिये। तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये।

कबहूँ बर पलना। यथा पालने रघुपतिहि झुलावै। लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कलकीरति गावै। केकिकठ द्युति स्यामबरन बपु बालविभूषन विरचि बनाए। अलकैं कुटिल ललित लटकन भ्रू नीलनलिन दोउ नयन सुहाए। सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए। मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सो सचुपाये। उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत। मनहुँ उभय अभोज अरुन सो विधुभय विनय करत अति आरत। तुलसिदास बहु बासविबस अलिगुजत सुछबि न जात बखानी। मनहु सकल स्रुति रिचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बरबानी।

मातु दुलारै कहि प्रिय ललना। यथा ललन लोन लेरुआ बलि मैया। सुख

सोइये नीद वेरिआ भइ चारु चरित चारो भया। कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया। मोदकद कुल कुमुद चद्र मेरे रामचद्र रघुरैया। रघुवर वाल केलि सतन की सुभग सुखद सुरगैया। तुलसी दुहि पीवत मुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया।

दो. व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति वस, कौसल्या के गोद ॥१९८॥

अर्थ जो व्यापक, ब्रह्म, निरञ्जन, निर्गुण, लौकिक क्रीडा से रहित है। वही अजन्मा भक्ति प्रेम के वश होकर कौसल्या की गोद में है।

व्याख्या : यहाँ भक्ति की महामहिमा दिखला रहे हैं। पहिले कह चुके है। अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई। जो गुन रहित सगुन सो वैसे। जलहिम उपल विलग नहि जैसे। उसीकी सार्थकता दिखलाते है कि व्यापक ब्रह्म ही परिच्छिन्न से होकर निरञ्जन सङ्गी से होकर, निर्गुण सगुण से होकर अजन्मा जन्म लिये हुए की भाँति विगतविनोद विनोद करते हुए से आज कौसल्या की गोद मे विराजमान हैं। जो जगत् के रक्षक है वे सर्वात्मा रक्ष्य होकर कौसल्या की गोद में आगये है और कौसल्या उनकी रक्षा मे परमानन्द का अनुभव कर रही है।

काम कोटि छवि स्याम सरीरा। नील कंज वारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि वैठे जनु मोती ॥१॥

अर्थ : नील कमल और गम्भीर वादल के ममान श्याम शरीर की शोभा करोडो काम की सी है। अरुण चरणकमल मे नख की ज्योति ऐसी शोभा दे रही है, जैसे कमल के दलो पर मोती वैठे हो।

व्याख्या : प्रभु की श्यामता अद्भुत है। नील कमल रहने से भी पूरा नहीं पडता तो नील नीरधर कहते हैं। फिर भी सन्तोष नही होता तो नीलमणि कहते हैं। कही वे कि कंठ दुति स्यामल भगा वतलाते हैं। जव किसी भाँति काम नही चलता तो करोडो काम से उपमित करते हैं। ससार मे शोभा की मर्याद काम माना जाता है। वह भी इस श्याम रङ्ग के सामने कुछ जँचता नही।

चरणकमल अरुण वर्ण हैं! श्रीगोस्वामी जी उस लालिमा के लिए कहते हैं: वसी मानहु चरन कमलन्हि अरुनता तजि तरनि। मानो सूर्य को छोडकर लालिमा आकर इन्ही चरणो मे वसी है। जानुपानि विचरण में उन्ही नखमणि चन्द्रिकाओ की ज्योति पृथ्वी से रुककर चरण तल में आ पडती है। उसकी ऐसी शोभा होती है जैसे कमल के दलो पर मोती वैठे हो।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गंभीर जान जिहि देखा ॥२॥

अर्थ वज्र ध्वजा और अकुश की रेखाएँ शोभायमान हैं। नूपुर की धुनि सुनकर मुनियो का मन मोह जाता है। कमर मे करधनी है। उदर मे तीन रेखाएँ हैं। गभीर नाभि की शोभा वही जानता है जिसने देखा हो।

व्याख्या चरण चिन्ह अडतालीस कहे गये हैं। उनमे से चार का ही वर्णन श्रीरामचरितमानस मे आता है। यथा ध्वज कुलिस अकुस कजजुत वन सहत कटक किन लहे। परन्तु यहाँ तीन का ही वर्णन है। भाव यह कि अभी अत्यन्त शिशु है। अत रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। परन्तु उनमे से तीन तो इस समय भी स्पष्ट है। अभी कमल रेखा स्पष्ट नही हुई है। बडे होने पर स्पष्ट होगी। श्रीगोस्वामी जी को अत्यन्त सनिधान से समीक्षा का अवसर नही मिला। परन्तु ये चार रेखाएँ तो ऐसी है कि जहाँ पृथ्वी पर प्रभु के चरण चिह्न पडते हैं वहाँ इनकी छाप पड जाती है। अत श्रीगोस्वामी जी चार का ही वर्णन करते हैं।

भुज बिसाल भूपन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी ॥
उर मनिमाल पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा ॥३॥

अर्थ विशाल भुजाओ म बहुत से गहने थे और हृदय मे बघनहा की बडी शोभा थी। उर पर मणि के पदिकहार की शोभा और विप्र के चरण का चिह्न देखकर मन लुभा जाता था।

व्याख्या यद्यपि अभी खडे नही हो सकते। फिर भी भुजाओ की विशालता लक्षित होती है और वे कङ्कण अङ्गदादि अनेक आभूषणा से सुशोभित हैं और हृदय म बघनहा की शोभा है। अनिष्ट निवारणार्थ बच्चे को बघनहा पिन्हाया जाता है विप्रचरण की छोटी सी छाप ऐसी मनोहारिणी है कि जिसके देखने से ही मन लुब्ध हो जाता है। यह वर्णन विष्णु भगवान् के रामावतार का है। क्योकि विष्णु भगवान् ही ने भृगुमुनि के चरण चिन्ह को हृदय म धारण किया था। पदिकहार का वर्णन करते हुए देवस्वामी जी लिखते हैं पदिकहार रघुवर कठन मे सात मनिन का झलक रहा। मोहनमाला जाहि कहत हैं अधिक छविन सो छलकि रहा। भावी राम चरित जनु सातो काडन से हियहलकि रहा। स्ववरन सूत्रन से ग्रथित लखि देवहु को मन ललकि रहा।

कबु कठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई ॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे ॥४॥

अर्थ शख के ऐसा कण्ठ और ठुड्डी सुन्दर और मुखपर अगणित काम की शोभा छाई हुई थी। दो दो दतुलियाँ और होठ लाल तथा नासिका पर के तिलक का कौन वर्णन कर सकता है।

व्याख्या शख के समान कण्ठ की ही शोभा है। चिबुक ही चूमा जाता है। सो अत्यन्त ही सोहावना है। शरीर मे कोटि काम की छवि है। यथा काम कोटि छबि स्याम शरीरा। अत मुख पर अगणित काम छवि का छाना प्राप्त है।

दुइ दुइ से ऊपर नीचे की दो दो दँतुलियाँ कहा। आज भाल तिलक नही है। बच्चो को नासा तिलक ही दिया जाता है। यथा बाल गोपाल के उपासक आज भी नासा तिलक धारण करते हैं। उस नासा तिलक की बालगोविन्द को पाकर अपार शोभा हो गई। यथा : लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै द्वै दँतुरिया रूरो। मुनिमन हरत मंजु मसिबिंदा। ललित बदन बलि बाल मुकुंदा : गीतावली।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥५॥

अर्थ : सुन्दर कान और गाल तो अत्यन्त ही सुन्दर थे और मीठी तोतरी बोली अत्यन्त ही प्यारी मालूम होती थी। गर्भ के ही चिक्कन और घुँघराले बालो अभी तक मुण्डन संस्कार नही हुआ है : को माँ ने बहुत प्रकार से सँवार रक्खा था।

व्याख्या : नीलमणिमय सीपी की भाँति समान श्रवण शोभायमान थे और दर्पण से कपोल की शोभा तो अत्यन्त ही अधिक थी। बच्चो की तोतली वाणी स्वभाव से ही मधुर और प्यारी होती है। सो राम गोविन्द की तोतली वाणी अत्यन्त मधुर और प्यारी थी। यथा :

सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका श्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रूसुदर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए॥१॥
भाल विसाल ललित लटकन वर, बालदसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए॥२॥
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहत सीस लाल चौतनियाँ।
मन मोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमन हरति हंसति किलकनियाँ॥३॥

पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहि कहि श्रुति सेखा। सो जानइ सपनेहुँ जिन्ह देखा॥६॥

अर्थ : पीली झँगुली शरीर में पहिना दी गई और घुटने तथा हाथ के बल से चलने लगे। वह शोभा मुझे बहुत अच्छी लगी। रूप का वर्णन वेद और शेष नही कर सकते। उसे तो वे ही जान सकते हैं जिन्होने स्वप्न मे भी देख पाया है।

व्याख्या : श्याम शरीर पीली झँगुली मे ऐसा खिला मानो छोटे से बादल ने बाल दामिनी को लपेट लिया। गीतावली में कहते हैं : पियरी झीनी झगुली साँवरे सरीर खुली बालक दामिनी ओढी मानो बारे-बारिधर। जानु पानि बिचरण के विषय में कहते हैं : राजमराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय तडाग। ते नृप अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग। परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम प्रयाग। तुलसी फल ताके चारयौ मनि मरकत पंकज राग।

इस वर्णन को सुनकर कोई यह न समझ ले कि मैंने ठीक ठीक रूप का वर्णन कर दिया। इसलिए कहते हैं कि श्रुति शेष नही वर्णन कर सकते सर्वथा अवर्णनीय है। शारदा को नही कहा क्योंकि कोई भी वर्णन करेगा तो वाणी की ही सहायता

से वर्णन करेगा। अवर्णनीय कहने से ही वाणी का ग्रहण हो गया। फिर भी अज्ञेय नही है। सपने मे भी जिसने देखा है वह इस बात को जानता है कि वह महासौन्दर्य सर्वथा वाणी से परे है। श्रीगोस्वामी जी ने स्वप्न मे इस प्रकार दर्शन किया था, इसलिए ऐसा कहते हैं। यहाँ गोस्वामीजी ने नेत्र का वर्णन नही किया। क्योकि याद नही है। सपने की बात पूरी पूरी याद नही रहती। एकाध बात की भूल पड जाया करती है।

दो. सुख सदोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस, कर सिसु चरित पुनीत ॥१९९॥

अर्थ जो सुख की राशि मोह से परे है और जिस तक बुद्धि वाणी और इन्द्रिय की पहुँच नही है। वही राजा रानी के परम प्रेम के वश होकर पवित्र शिशु लीला कर रहे हैं।

व्याख्या व्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन विगत विनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद। तक प्रभुअवतार प्रसङ्ग कहा। अब इस १९९ वे दोहे मे शिशुचरित कहा। दोनो मे यह दिखाया कि अवतीर्ण होने या शिशुचरित करने से उनके स्वरूप मे कोई अन्तर न पडा। जब बारह दिन के थे तो कौसल्या की गोद मे थे। अब हाथ और घुटने के बल से चलने लगे तब माता और पिता दोनो को आनन्द दे रहे हैं। चक्रवर्तीजी भी गोद मे लेकर बाहर निकलते हैं। सखी-सखी से कहती है सवैया

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगिसी रही जो न ठगे धिकसे॥
तुलसी मन रजन रजित अजन नयन सुखजन जातक से।
सजनी ससि मे समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

सखी महारानी से कहती है

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप घरनि॥१॥
बाल भूषन बसन तन सुदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि गिरि गिरि परनि॥२॥
झुकनि झाँकनि छाँह सो, किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मनहरनि॥३॥
सखि वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासेढरनि।
लेति भरि भरि अक सैंतति पैत जनु दुहु करनि॥४॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि॥५॥

जो आनन्दसिन्धु है वह आज बिन्दु सा प्रतीत होता है। जो मोह से परे है वह अबोध बाललीला कर रहा है। जो बुद्धि, वाणी और इन्द्रिय से अतीत है

वह दशरथ कौसल्या की गोद मे है। सो यह सब प्रेमा भक्ति की करामात है। जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई। का यह बडा मनोहर उदाहरण है।

एहि विधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रकट भवानी॥१॥

अर्थ जगत् के माता पिता राम इस भाँति कोसलपुरवासियो को सुख देते थे जिन्होने रघुनाथ के चरणो मे प्रीति की। हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है।

व्याख्या जगत् के पिता भी राम और माता भी राम। वही उपादान कारण और वही निमित्त कारण भी हैं। जो आज माता पिता की गोद में खेल रहे हैं वे किसी के बेटे नही हैं। सम्पूर्ण जगत् के जनक जननी हैं। आज राजकुमार बन हुए कोसलनिवासी पुरजन को सुख दे रहे हैं। यथा लोचननि को लहत फल छवि निरखि पुर नर नारि। बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि।

शङ्कर भगवान् भवानी को सम्बोधन करके कहते हैं कि ज्ञानी की गति प्रकट नही होती। परन्तु जिनने रघुनाथ के चरणकमलो मे प्रीति की है उनकी यह प्रकट गति है कि भवबन्धन को छोडनेवाला उनकी गोद मे है। जिसकी गोद म अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं वह अपने भक्त की गोद मे है। मयि ते तेषु चाप्यहम्। वे मेरे मे हैं और उनमे मैं हूँ। गी। यहाँ पर गोस्वामीजी भक्ति की महिमा दिखलाते हैं।

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकै भव बन्धन छोरी॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे॥२॥

अर्थ रघुपति विमुख होकर करोड यत्न करके भी कौन भव बन्धन को खोल सकता है? जिस माया ने चराचर जीव को वश कर रक्खा है वह प्रभु से भयग्रस्त होकर त्राहि त्राहि करती है।

व्याख्या बँधा हुआ स्वय अपने को छुडा नही सकता। जो छुडानेवाला है, यथा तुलसिदास यह मोह शृखला छूटिहि तुम्हरे छोरे। विनय। उसी से जो विमुख हो गया उसके छूटने की कौन आशा है। सरकारी कैदी को कौन छुडावे। यथा ' जौ खल भएसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही। वह तो उन्ही के शरण मे जाने से छूटेगा। चाहे जब जाय दूसरा उपाय नही है। भगवद्गीता म स्वय कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया उल्लघन करने योग्य नही है। जो मेरी शरण आते हैं वे ही इसे पार कर सकते हैं। यथा दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया। जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। सो प्रभु भ्रूविलास खग

राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। तथा देखी माया सब विधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाटी। देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही। ऐसी प्रबल माया से आप से आप कोई भी नही छूट सकता। फिर रामविमुख के छूटने का क्या उपाय है? अत: जो मायापति है जिससे माया डरती है उसी की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

भृकुटि बिलास नचावै ताही। अस प्रभु छाडि भजिय कहु काही ॥
मन क्रम बचन छाडि चतुराई। भजत कृपा करिहहि रघुराई ॥३॥

अर्थ जो प्रभु उसे माया को भौंह के इशारे पर नचाता है उसे छोडकर किसका भजन किया जाय। मनसा वाचा कर्मणा चतुराई छोडकर भजन करने से रघुराई कृपा करेंगे।

व्याख्या जब यह निश्चय है कि अपने प्रयत्न से कोई भव बन्धन से मुक्त नही हो सकता तब किसी ऐसे समर्थ का आश्रयण करना होगा जो स्वय मुक्त हो और उससे छुडा सके। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि जिसके भौंह के इशारे पर माया नाचती है उसे छोडकर किसका आश्रय ग्रहण किया जाय? अर्थात् वही एक भजनीय है। उसी की कृपा से सब कुछ सम्भव है।

अब प्रश्न यह उठा कि उसकी कृपा कैसे हो? तो कहते हैं भजन करने से प्रभु कृपा करते हैं। परन्तु उसमे भी एक समय शर्त है और वह यह है कि मनसा वाचा कर्मणा चतुरता को छोडकर भजन करे। भजन म कार्पण्य और दैन्य प्रयोजनीय है। चतुरता मे तो बुद्धि का कौशल दिखाना पडता है। छल से भी काम लेना पडता है। अत चतुरता भजन का बाधक है। यथा सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति। तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति। दो।

एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा ॥
लै उछग कबहुक हलरावै। कबहु पालने घालि झुलावै ॥४॥

अर्थ इस विधि से प्रभु ने शिशु लीला की और सब नगरवासियो को सुख दिया। कभी गोद म लेकर हिलाती डुलाती हैं। कभी पालने मे डालकर झुलाती हैं।

व्याख्या एहि विधि राम जगत पितु माता। कोसल पुरवासिन्ह सुख दाता से प्रसङ्ग छोडा था और अवसर प्राप्त भक्ति की महिमा कहने लगे थे। अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं। एहि विधि सिसु विनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरवासिन्ह सुख दीन्हा। नारियाँ महारानी की गोद भरी देखकर कृत्यकृत्य हैं। नर लोग चक्रवर्ती जी की गोद मे दर्शन पाकर सुखी हैं।

मा दुलार करती हैं। पर स्वास्थ्य पर बहुत ध्यान है। गोद म लिये रहती हैं तो भी हिलाया करती हैं। पालने पर रखती हैं तो उसे झुलाया करती हैं। जिसमे बालोचित व्यायाम होना रहे। रातदिन बच्चे मे लगी रहती हैं।

दो. प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ॥२००॥

अर्थ : कौसल्या रानी प्रेम मे मग्न थी। उन्हें रात दिन के बीतने का पता नही। पुत्र के प्रेम के वश में बाल चरित्र का गान करती थी।

व्याख्या : जो प्रेम में मग्न हो उसे काल की गति का पता नही रहता। कौसल्या माता की यही गति है। कहा था : कीजिय सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा। सो उसी परम अनूप सुख मे भूली हुई हैं। अभी प्रभु शिशुरूप ही हैं। पर माँ बालचरित का गान करती हैं। बच्चे के बडे होने के लिए बड़ी उत्सुक हैं। यथा :

ह्वै हौ लाल कबहिं बडे बलि मैया।
राम लखन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयौ भैया ॥१॥
बाल बिभूषन बसन मनोहर अगनि बिरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ बारने जैहौं ॥२॥
छगनमगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौं।
कल बल बचन तोतरे मंजुल कहि माँ मोहि बुलैहौं ॥३॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ बेली ॥४॥
जा सुख की लालसा लटू सिव सुक सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुख सिंधु कौसिला मगन पै प्रेम पियासी ॥५॥

६. बालचरित प्रसंग

एकबार जननी अन्हवाए। करि सिगार पलनाँ पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना ॥१॥

अर्थ : एकबार बच्चे को माँ ने नहलाया और शृङ्गार करके पालने पर पौढा दिया। अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा के लिए स्वयं स्नान किया।

व्याख्या : माता कौसल्या प्रति मास श्रीरामजी का शृङ्गार करके मालपूआ, लड्डू, गुझिया, गुलगुले आदि बनाकर बायन बाँटती थी। यथा : कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती। बायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम्। अपूपान् मोदकान् कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा। अध्या.। तदनुसार एक बार माँ ने नहलाकर शृङ्गार किया और पालने पर लिटा दिया। क्योंकि उसे और भी कार्य करने थे।

उनके कुल के इष्टदेव श्रीरङ्गजी थे। सो उनकी पूजा के लिए स्नान किया। यह स्नान, प्रातः स्नान के अतिरिक्त पूजनार्थ था। गृहस्थ के लिए मध्याह्न का विधान ही विशेष है।

करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देखि सुत जाई॥२॥

अर्थ पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और स्वय वहाँ गई जहाँ रसोई बनी हुई थी। फिर माँ वहाँ से चली आई देखा कि बच्चा खा रहा है।

व्याख्या यद्यपि नैवेद्य पूजन का प्रधान अङ्ग है। फिर भी यहाँ पर नैवेद्य के विषय मे विशेष रूप से कहना है। इसलिए कहते हैं कि उस पूजा मे नैवेद्य चढाया। उसे वही छोड़कर जो मालपूआ, लड्डू, आदि बायन बन रहा था उसे देखने चली गई। वहाँ से लौटने पर माँ देखती है कि बच्चा नैवेद्य खा रहा है।

गइ जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदय कप मन धीर न होई॥३॥

अर्थ डरी हुई बेटे के पास गई। देखा बच्चा वहाँ सोया हुआ है। फिर लौटकर उसी बच्चे को देखा। हृदय काँपने लगा। धैर्य न रह गया।

व्याख्या माँ डर गई कि मै तो बच्चे को पालने पर लिटा आई हूँ। वह यहाँ कैसे आगया? बच्चा स्वय आ सकता नही। दूसरा कोई यहाँ था नही। क्या कोई आया है? देखने के लिए जहाँ बच्चे का पालने पर लिटाया था वहाँ गई तो आश्चर्य का ठिकाना नही रह गया। बच्चा सोया हुआ है। तो क्या वह मेरा बच्चा नही था? किसी ने भरत को लाकर तो वहाँ नही रख दिया। इसलिए फिर वहाँ गई तो उसी बच्चे को पाया। अपने ही बच्चे को दो स्थानो मे एक साथ देख रही है। एक स्थान म जागता हुआ और दूसरे स्थान म सोया हुआ। कलेजा काँप उठा। मेरे बच्चे को लेकर यह क्या विचित्र घटना हो रही है। कोई समाधान मन म नही आता। पहिले ही भयभीत हो गई थी। अब हृत्कम्प होने लगा। कोई अनिष्ट प्रभाव बच्चे पर पड रहा है। इसलिए धैर्य नही होता।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा॥
देखि राम जननी अकुलानी। प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी॥४॥

अर्थ यहाँ वहाँ दो बालक देखा। यह मेरी बुद्धि का भ्रम है कि कोई विशेष बात है। रामजी ने देखा कि मा विकल हो गई तो मधुर मुस्कान से हँस दिया।

व्याख्या इहाँ ठाकुरबाडी मे और उहाँ पालने पर लडके दो दिखाई पडे। तब अपनी ही मति पर शङ्का करती है कि मुझ मतिभ्रम तो नही हो गया? मति भ्रम कैसे कह। कोई दूसरा पदार्थ तो मुझ दो नही दिखला रहा है। जितनी विशेष बात होती हैं उनम यह तो सबसे विलक्षण है। कही एक लडके से दो नही हो जाते।

प्रभु ऐसे प्रेमवश हैं कि माँ की आकुलता न सह सके। एकदम वात्सल्य म

माँ मग्न थी। इसलिए विवेक को जाग्रत करने के लिए मुसकरा दिये। अपना स्वरूप दिखलावेंगे। यथा मोहि विलोकि राम मुसुकाही। विहसत तुरत गयेउँ मुख माही कि दो रूप पर क्यो आश्चर्य करती हो मैं सर्वरूप हूँ।

दो देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्मड ॥२०१॥

अर्थ माता को अपना अद्भुत अखण्ड रूप दिखलाया। प्रत्येक रोम में करोडो ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं।

व्याख्या इतना विशाल रूप दिखलाया तो सबको वह रूप दिखना चाहिए। परन्तु किसी ने नही देखा। केवल माँ ने देखा। जिसे दिखाना चाहा उसने देखा। उनका ऐसा रूप तो सदा ही रहता है। पर जीव उसे देख नही सकता। दिव्य नेत्र हों तो दिव्य रूप का दर्शन हो। अत माँ को दिव्य चक्षु दिया। जिससे उसने अखण्ड रूप का दर्शन किया। सूतिका गृह म जिस अद्भुत रूप का दर्शन दिया था वह खण्ड रूप था। वहाँ स्तुति करने मे माता ने कहा था ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै। उस माता के माने हुए रूप का दिखलाना भी आवश्यक था। इस बार ठाकुरवाडी मे वही अखण्ड रूप दिखलाया। जिसके रोम रोम मे करोडों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं। जो मन मे भी चिन्तन नही किया जा सकता। उस रूप को प्रत्यक्ष देखा। भाव यह कि उनके रूप मे भेद नही है। वे वैसे ही मुख सदोह मोह पर ज्ञान गिरा गोतीत है। परन्तु दृष्टि के तारतम्य से अनेक रूप से भासित होते हैं।

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥१॥

अर्थ असख्य सूर्य, चन्द्र, शिव, ब्रह्मा देखे। बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी और वन देखे। काल कर्म गुण और स्वभाव को देखा और जिसे कभी किसी ने सुना ही नही उसे देखा।

व्याख्या ऐसा दर्शन न भुसुण्डि को हुआ और न उमा को हुआ था। उमा को दुखी जानकर तो बहुत थोडी माया दिखाई। यथा जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा। भुसुण्डिजी ने भीतर की सैर की। एक एक ब्रह्माण्ड मे सौ-सौ वर्ष रहे। इस भाँति सौ कल्प बीता। माँ भीतर बाहर सब युगपत् देख रही है। रवि, शशि, शिव, चतुरानन, पर्वत, नदी, समुद्र, वन कितने दिखाई पडते हैं। कुछ ठिकाना नही है। कारण यह है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु और दिक्पाल दूसरे ही प्रकार के होते हैं। नर, गन्धर्व, वेताल, किन्नर, निशिचर, पशु और व्यालभूत सब कुछ सभी ब्रह्माण्ड मे होते है। परन्तु दूसरे ब्रह्माण्ड के जीवो से मेल नही खाते। इतना ही नही पृथ्वी, समुद्र, नदी, पर्वत आदि सब प्रपञ्च ही दूसरे प्रकार के होते हैं। माँ को इस समय अनन्त

कोटि ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर का सब दर्शन एक साथ हो रहा है। वह शिशु देखते-देखते अखण्डरूप हो गया।

काल : भूत भविष्य वर्तमान। कर्म : सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण। गुण : सत्त्व, रज और तम। ज्ञान : शास्त्रजन्य और अनुभवजन्य। स्वभाव : प्रकृति। ये सब चक्षु के विषय नहीं हैं। इनका योगज प्रत्यक्ष होता है। योगज प्रत्यक्ष होना ही इनका देखा जाना है। सो माँ कौसल्या को इन सबका प्रत्यक्ष हुआ। वैषम्य सृष्टि और साम्य प्रलय है। जितने ब्रह्माण्ड हैं वे सब एक दूसरे से विलक्षण हैं। एक ब्रह्माण्ड का जीव उसी की व्यवस्था को थोड़ा बहुत जानता है। दूसरे के विषय में वह कुछ नहीं जानता। यथा : ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माड अनेक निकाया। जीव चराचर जतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना। अतः दूसरे ब्रह्माण्डों में ऐसी बातें हैं जिन्हें न हम लोगों ने देखा है न सुना है। उन सब अनन्त विशेषताओं का प्रत्यक्ष माँ कौसल्या को हुआ। अर्जुन को केवल इस ब्रह्माण्ड के विश्वरूप का दर्शन हुआ था। माँ कौसल्या के प्रत्यक्ष से उसकी तुलना ही नहीं।

देखी माया सब बिधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी॥
देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही॥२॥

अर्थ : सब प्रकार से घनी माया को देखा कि वह अत्यन्त भयभीत हाथ जोड़े खड़ी है। जीव को देखा जिसे माया नचाती है और भक्ति को देखा जो उसे छुड़ाती है।

व्याख्या : जो ज्ञानी के भी चेत को हरण करती है और बल से खींचकर मोह के वश करती है। यथा : जो ग्यानिहु कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई। उस माया को देखा कि प्रभु के सामने अत्यन्त डरी हुई हाथ जोड़े खड़ी है। आज्ञापालन के लिए खड़ी है। यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। जीवात्मा के स्वरूप का भी साक्षात्कार हुआ। नाचने नचाने का रहस्य भी देखा। परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता। श्री ग्रन्थकार कहते हैं : नाचत ही निसि दिवस मर्यो। तबही ते न भयो जीव थिर जब तें हरि नाम धर्यो। बहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भर्यो। चर अरु अचर गगन जल थल महँ कौन न स्वाँग कर्यो।

मोक्षदायिनी भगवती भास्वती भक्ति का भी दर्शन पाया। यथा : भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा। भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा॥
बिसमयवंति देखि महतारी। भए बहुरि सिसु रूप खरारी॥३॥

अर्थ : शरीर पुलकित हो गया। मुख से वचन न निकला। आँख मूँदकर

चरणो मे सिर नवाया। माता को आश्चर्यचकित देखकर खरारि ब्वर के शत्रु : फिर शिशु रूप हो गये।

व्याख्या : ऐसे घोर अद्भुत रूप को देखकर भय से रोंगटे खडे हो गये। अब देखने का सामर्थ्य नही है। इससे आँख बन्द कर ली। पहचान लिया कि यह ऐश्वर रूप है। अत. चरनन सिर नावा। जो भी थोडा या बहुत इस रूप को देखता है उसी की यह दशा हो जाती है। भुसुण्डि जी कहते हैं देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा विसराई। धरनि परयौ मुख आव न वाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता। उमा तो आँख बन्द करके रास्ते मे ही वैठ गई। यथा नयन मूँदि वैठी मग माही।

माँ को चतुर्भुज देखने से हर्ष हुआ था। यथा हर्पित महतारो मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारो। परन्तु इस रूप को देखने से विस्मय हुआ। खरारि कहकर मायानाथ होना द्योतित किया। यथा : मायानाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयौ। मायानाथ ने उस रूप को अलक्षित कर दिया और फिर शिशुरूप हो गये। दिखला दिया कि वेदप्रतिपादित अखण्ड रूप यही है, परन्तु भक्त लोगो के लिए सुखद तो नयनाभिराम घनश्याम राममूर्ति ही है।

अस्तुति[1] करि न जाइ भय माना। जगत पिता मै सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुविधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥४॥

अर्थ : स्तुति करते भी नही वनता। वह डर गयी की जगत्पिता को मैने वेटा करके जाना। श्रीहरि ने माता को बहुत प्रकार से समझाया माँ सुन! यह वात कहीपर न कहना।

व्याख्या चतुर्भुज रूप से देखकर स्तुति की थी। यथा : कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करउँ अनता। इस वार स्तुति करते नही वनता। बडी भारी चूक हुई किस मुँह से स्तुति करूँ? जगत् पिता का इतना वडा अपमान मुझसे हो पडा कि मैंने उन्हे वेटा मान लिया। तव श्रीहरि ने कौसल्या जी को बहुत भाँति से समझाया। यथा.

सुत विपयिक रति नृप वरयो तुमने भगति विवेक।
दिखरायो याते तुर्महि यह सरूप तजि टेक॥१॥
सुनै जो नृप यह वात सव सुत विपयिक रति जाय।
याते यह वृत्तान्त सव कतहुँ कहै जनि माय॥२॥
जौ लौं नहिं दशशीश बध तौलौं मर्म दुराय।
रहिवो है एहि हेतु यह कतहुँ कहै जनि माय॥३॥

---

१ यहाँ विभावना अष्टम अलङ्कार है।

तथा छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी, छोटिऐ कछौटी कटि छोटिऐ तरकसी।
लसत झगूली झीनी, दामिनि की छवि छीनी, सुदर वदन सिर पगिया जरकसी॥
वय अनुहरत्त विभूपन विचित्र अग, जोहे जिय आवत सनेह की सरकसी।
मूरति की सूरति कहै न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी॥

मन क्रम वचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर विचर प्रभु सोई॥
भोजन करत वोल जव राजा। नहि आवत तजि वाल ममाजा॥३॥

अर्थ जो मन कर्म और वचन तथा इन्द्रियो से परे हैं। वही प्रभु दशरथ के आँगन म विचरण कर रहे है। भोजन करते समय चक्रवर्तीजी वुलाते हैं। पर वालको का समाज छोडकर नही आते।

व्याख्या भरद्वाज का प्रश्न है 'प्रभु सोई राम कि अवर कोउ'। उमा का प्रश्न हैं 'राम सो अवध नृपति मुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई'। इसलिए जहाँ जहाँ चरित म अतिशयता दिखलाते हैं वहाँ वहाँ यह भी दिखलाते चलते हैं कि अज अगुन अलखगति जो कोई है वही अवध नृपति सुत हुआ है। यहाँ भी मन क्रम वचन अगोचर कहकर उसी अज अगुन अलखगति का ही वर्णन कर रहे है। वही भक्ति प्रेम के वश कौसल्या की गोद मे आया। दम्पति के परम प्रेम के वश म होकर पुनीत शिशुचरित किया। अब बालक होकर महाराज दशरथ के आँगन म विचर रहा है। भुसुण्डि के साथ जो चरित किया वही इसमे प्रमाण है।

भोजन करते समय चक्रवर्तीजी खिलाने के लिए वुलाते हैं। परन्तु बाल समाज छोडकर जाते नही वनता। जिसने पिता के वचन से राज्य त्याग किया वह आज पिता के वुलाने से वाल समाज छोडने को तैयार नही। युवावस्था मे जितना राज्य प्रिय है, उससे कही अधिक वाल्यावस्था म खेल और वाल समाज प्रिय है।

कौसल्या जव बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥४॥
धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति विहँसि गोद बैठाए॥५॥

अर्थ कौसल्या जव वुलाने जाती है तव प्रभु ठुमुक ठुमुक भाग चलते है। वेद जिसे नेति कहते है और शिवजी अन्त नही पाते माँ उसे पकडने के लिए दौडी। धूल से भरे हुए उसी रङ्ग म रँग हुए आये। चक्रवर्तीजी ने हँसकर गोद मे विठा लिया।

व्याख्या चक्रवर्तीजी कौसल्या के घर म भोजन कर रहे हैं। श्रीरामजी वाल समाज मे मिलकर खेलने म मग्न हैं। महाराज को बडी अभिरुचि है कि रामजी भी साथ खाएँ। इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। प्रेमी के साथ भोजन करना ही भोजन है। रामजी सा प्यारा उन्हे कौन है? अत रामजी का खिलाने के लिए

वार वार पुकारते है। वे खेल की धुन मे सुनते ही नही। महाराज की अधिक रुचि देखकर कौसल्या जी स्वय बुलाने गईं तो आप ठुमुक ठुमुक भाग चले। अभी भलीभाँति दौड नही सकते। इसलिए ठुमुक ठुमुक भागना कहते हैं। फिर भी माँ पकडने मे समर्थ नही हो रही है। अत हठ करके दौडी कि पकड कर ले ही चलेंगे। इस पर ग्रन्थकार कहते है कि जिसे वेद वाणी से ग्रहण करने मे असमर्थ हैं और साक्षात् शिवजी मन से ग्रहण करने मे असमर्थ है उसे पकडने के लिए माँ ने हठ किया है। बिना पकडे न छोडूँगी। इसलिए पकड मे आ गये। धूल से धूसर रग हो गया है। शङ्कर रूप बने हैं। पकडाये हुए चले आ रहे हैं। यह दृश्य देखकर महाराज हँस पडे। धूल भी नही झाडा और गोद म बिठाकर मनोरथ पूर्ण किया।

दो भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥२०३॥

अर्थ भोजन करते है पर चित्त चञ्चल है। इधर उधर देख रहे है। अवसर मिलते ही भाग चले। मुँह मे दही भात लगा हुआ है।

व्याख्या महाराज खिलाते हैं और रामजी खा भी रहे हैं। परन्तु मन बालसमाज मे लगा हुआ है। इसको ग्रन्थकार इतउत शब्द से द्योतित करते हैं। इत भोजन करते हैं पर चित्त उत लगा है। अत चित्त चञ्चल है। अवसर की ताक मे हैं कि कब माता पिता का ध्यान दूसरी ओर हो और कब भाग जायँ। सो अवसर पाते ही भाग चले। वडी प्रसन्नता है। इससे किलकारी मारते हुए भागे। मुँह धोने की भी चिन्ता नही। दही और भात मुँह मे लगा है। इससे और भी शोभा वढ गई है।

माँ को चतुर्भुज रूप से तथा विश्वरूप से दर्शन देकर सावधान करते जाते है। क्योकि वह पूर्व जन्म मे विवेक भी माँग चुकी है। परन्तु चक्रवर्तीजी का पुत्रस्नेह ही दृढ करते हैं। क्योकि पूर्वजन्म म उन्होने ऐसा ही वर माँगा था। यथा सुत विपयिक तव पद रति होऊ। मोहि वड मूढ कहै किन कोऊ।

वालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेप सभु श्रुति गाए ॥
जिन्ह कर मन इन सन नहिं राता। ते जन बचित किए बिधाता ॥१॥

अर्थ अत्यन्त सरल और सोहाए वालचरित का गान सरस्वती शेप शम्भु और वेदो ने किया है। जिनका मन इनसे अनुरक्त नही हुआ। विधाता ने उन्हे वञ्चित कर दिया है।

व्याख्या यद्यपि वालचरित के अन्तगत ही शिशु चरित है। फिर भी जहाँ शिशु और वाल का भेद किया जाता है वहाँ यह विधान है कि प्राक् चूडाकरणाद्वाल, प्रागन्नप्राशनाच्छिशु। कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम्। अपरार्के। मुण्डन मे पहिल बालक, अन्नप्राशन के पहिले शिशु, और यज्ञोपवीत के पहिले

कुमार जानना चाहिए। अन्नप्राशन का काल छ महीना और बारह महीना तक है।

यहाँ पर बालचरित को अति सरल और सुहावना कहा। भाव यह कि शिशुचरित सरल है और बाल चरित अति सरल है। शिशुचरित मे तो ऐश्वर्य प्रदर्शन भी हुआ। माता को चतुर्भुज रूप और विश्वरूप का दर्शन दिया। परन्तु बालचरित म केवल माधुर्य दिखलाया। इसलिए अति सरल और सुहावना कहा। सरस्वती शेष शम्भु और श्रुति उसी ऋजु तथा सुन्दर चरित का गान करते हैं। जिनका मन ऐसे चरित में अनुरक्त न हुआ उसे ब्रह्मदेव ने वञ्चित कर दिया। अर्थात् मनुष्य का शरीर तो दिया परन्तु हृदय मनुष्य का नही दिया। मनुष्य की आकृति देकर उसे ठग लिया। वह वस्तुत मनुष्य नही है पशु है।

भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥
गुरु गृह गए पढन रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥२॥

अर्थ जब सब भाई कुमार हुए तो गुरु और माता पिता ने जनेऊ यज्ञोपवीत दिया। रघुराई गुरुकुल मे पढने गये। थोडे ही काल मे सब विद्याएँ प्राप्त कर ली।

व्याख्या जब ग्यारहवाँ वर्ष लगा, कुमारावस्था पूर्ण हो चली वर्षे त्वेकादशे नृप। ग्यारहवें वर्ष मे क्षत्रिय का यज्ञोपवीत करना चाहिए। इस वचन के अनुसार गुरु पिता और माता ने यज्ञोपवीत दिया। भाव यह कि पहिली वेदी मे गुरु माता पिता तीनो का काम पडता है। इसके बाद गुरुकुल मे भेज देने की शास्त्र की आज्ञा है। तदनुसार चक्रवर्ती के बालक भी गुरुकुल मे भेज दिये जाते थे। तदनुसार चारो भाई गुरु के घर पढने गये। दूसरी वेदी वहाँ हुई।

बारह वर्ष एक वेद के पढने मे लगता है। इस भाँति तीनो वेदो के पढने मे छत्तीस वर्ष लगते हैं। उसी के बीच मे उपवेदादि का भी अध्ययन हो जाता था। कुछ अत्यन्त मेधावी छत्तीस वर्ष से पहले ही पारगत हो जाते थे। उन्हे विद्यास्नात कहते थे। जो मध्यम मेधावाले होते थे उन्हे पारगत होने म पूरे छत्तीस वर्ष लगते थे। वे विद्याव्रत स्नात होते थे। और जो उतने दिनो मे भी अध्ययन नही कर पाते थे वे व्रतस्नात होते थे। अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत बारह, चौबीस और छत्तीस वर्ष का होता था। जो एक वेद पढना चाहते थे उनका बारह वर्ष का, दो वेद पढना चाहनेवालो का चौबीस वर्ष का, तीनो वेद पढने वालो का छत्तीस वर्ष का व्रत होता था। उतने दिनो तक उन्हे ब्रह्मचर्यव्रत के सब नियमो का पालन करना पडता था। परन्तु यह आवश्यक नही था कि उतने दिनो तक अवश्य ही ब्रह्मचर्य रखे। जो जितना शीघ्र विद्या समाप्त कर दे उसका उतना ही शीघ्र ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त हो जाता था। ये चारो भाई अल्पकाल मे विद्याएँ समाप्त करके विद्यास्नात हो गये।

अङ्ग और उपनिषदा के साथ सम्पूर्ण वेद रहस्य के साथ धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, न्याय, आन्वीक्षिकी, षट्विधा राजनीति केवल गुरुमुख से श्रवण मात्र से ही चारो

भाइयो ने धारण कर ली। चौसठ दिनो मे चौसठो कलाओ को ग्रहण कर लिया। इसीलिए कहते हैं कि अल्पकाल मे ही सब विद्याएँ प्राप्त कर ली।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी॥
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला॥३॥

अर्थ जिसका सहज श्वास चारो वेद है वह हरि पढे यह बडा भारी कौतुक है। विद्या, विनय, गुण और शील मे निपुण सब राजाओ की लीला के ही खेल खेलते थे।

व्याख्या : इतने अल्पकाल मे विद्याएँ समाप्त कर ली कि अभी उनके खेलने के दिन नही बीते। यह बडे कौतुक की बात थी। पर ग्रन्थकार कहते है कि भारी कौतुक की बात तो यह थी कि जिसका नि श्वसित वेद है उस प्रभु को भी पढना पडा। उनका पढना एक शास्त्रमर्यादा रक्षण मात्र था। अत शास्त्रमर्यादा रक्षण के लिए द्विजमात्र को ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिए। जो ऐसा नही करते वे अपनी हानि के साथ साथ समाज की हानि करते हैं। ससार के लिए बुरा उदाहरण खडा करते है।

विद्या से विनय होता है, विनय होने से पात्रता आती है। वह सब गुण और शील का निधान होता है। यदि विद्या से विनय न हुआ, विवेक नही उपजा तो उसकी विद्या निष्फला हो जाती है। अत विद्या विनय निपुन गुन सीला कहकर विद्या साफल्य कहा। अब नाट्यशास्त्र की निपुणता कहते हैं। शिवि हरिश्चन्द्र आदिक की लीलाओ का नाट्य करते है। अथवा व्रतस्नात होकर घर लौट आये। अभी खेलने की अवस्था है। अत वही खेल खेलते हैं, जिसे राजाओ को खेलना चाहिए। यथा

रामलषन इक ओर भरत रिपुदवनलाल इक ओर भये।
सरजु तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये॥
कदुक केलि कुसल हय चढि चढि, मन कसि कसि, ठोंकि ठाकि खये।
कर कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये॥ इत्यादि
खेल खेलि सुखेलनिहारे।
उतरि उतरि चुचुकारि तुरगन सादर जाइ जोहारे। इत्यादि।

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह[1] बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥४॥

अर्थ हाथ मे बाण और धनुष बहुत ही शोभा देते है। रूप देखते ही चराचर मोहित हो जाते हैं। जिन गलियो मे सब भाई विहार करते है, सभी स्त्री पुरुष ठिठक कर रह जाते हैं।

---

१ यहाँ असङ्गति अलङ्कार है।

व्याख्या : उपवेद की शिक्षा कहते है कि धनुर्वेदेऽत्तिनिष्ठित. सब शास्त्रों के तत्त्व को जानते हैं, पर धनुर्वेद मे तो अत्यन्त परायण हैं। इतना प्रेम है कि विहार मे भी धनुष बाण नही छूटता। भय से धनुपधारण नही है, विद्याप्रेम के कारण है। रूप देखकर अचर भी मोहित होते है। वह उन्मादकर रूप ही ऐसा है। अचरो का देखना शास्त्र तथा विज्ञान से सिद्ध है। यथा : तेन पश्यन्ति पादपा तेन शृण्वन्ति पादपा । इत्यादि महाभारते। इसलिए वृक्ष देखते हैं सुनते हैं इत्यादि।

चराचर का मोहित होना कहकर लोग लुगाई का थकित होना : एकटक रह जाना कहते हैं। यथा :

धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढे चले चारु चालु।
अग अग भूपन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जालु॥
खेलत चौहट हाट वीथी वाटिकन प्रभु सिव सप्रेम मानस मरालु।
सोभादान दै दै सनमानत जाचक जन करत लोक लोचन निहालु॥
गीता १-४२

दो. कोसलपुर वासी नर, नारि वृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत, सब कहुँ रामकृपाल ॥२०४॥

अर्थ कोसलपुर के रहनेवाले स्त्री पुरुष बूढे और बालक सबको कृपाल रामजी प्राणो से भी प्यारे लगते है।

व्याख्या : सुख देने की परिधि बढती ही जाती है। पहले कौसल्या की गोद मे थे। तब दम्पति परम प्रेम बस कर सिसु चरित पुनीत कहा। अब बडे भये परिजन सुखदाई तब कोसलपुर वासियो को सुख देना कहते हैं। *प्रान प्रान के जीवन जीके।* स्वारथ रहित सखा सबही के। इसलिए प्राण से भी प्रिय लगना स्वाभाविक हे। इस भाँति शासन की योग्यता भी दिखलाई।

बंधु सखा संग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥
पावन मृग मारहि जियँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी॥१॥

अर्थ भाइयो और सखाओ को साथ बुला लेते थे और वन मे जाकर नित्य शिकार खेलते थे। मन मे पवित्र जानकर मृगो को मारते थे और प्रतिदिन लाकर राजा को दिखाते थे।

व्याख्या : बचपन से ही सरदारगीरी थी। बन्धु सखा पर प्रेम है। शिकार जाते समय उन्हे बुलाकर साथ ले लेते थे, शिकार खेलने का शास्त्रो मे निषेध है, पर राजाओ के लिए आज्ञा है। इससे उन्हे परिश्रम और शस्त्राभ्यास तथा सहनशक्ति बढाने का अवसर मिलता है। शिकार मे भी वृथा हिंसा निषिद्ध है। अत मेध्य पशु का ही वध करते थे जिनके चर्म शृङ्गादि का धर्मकार्य मे प्रयोजन पडता है। व्याघ्र आदि दुष्ट जन्तुओ का चर्म पवित्र माना गया है। अत मन से निश्चय करके कि यह दुष्ट जन्तु है तब उसका वध करते थे। अध्यात्म रामायण मे स्पष्ट लिखा हुआ है

कि दुष्ट मृगो को मारकर पिता को निवेदन करते थे। यथा ' हत्वा दुष्टमृगान् सर्वान् पित्रे सर्वं न्यवेदयत् । मृग का अर्थ हिरन ही नही है। जिनका शिकार किया जाता है वे सभी जन्तु मृग हैं। महाराज भी बडे शिकारी थे। अत उनकी प्रसन्नता के लिए नित्य शिकार खेलते थे और मारे हुए पशुओ को लाकर चक्रवर्ती जी को दिखाते थे।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा सग भोजन करही। मातु पिता अग्या अनुसरही ॥२॥

अर्थ ' जो मृग रामजी के बाण से मारे जाते थे वे शरीर छोडकर स्वर्ग सिधारते थे। भाई और सखाओ के साथ भोजन करते थे और माँ-बाप की आज्ञा म चलते थे।

व्याख्या पशुयोनि से कोई शुभ कर्म हो नही सकता। अत जायस्व म्रियस्व जन्मो मरो यही चक्र चला करता है। यज्ञ मे वध होने से ही उनका कल्याण होता है। यहाँ स्वय यज्ञपुरुष के हाथ से उनके शररूपी तीर्थ मे प्राण त्यागकर सुरलोक को जाते हैं। पशुयोनि से उनकी मुक्ति हो जाती है। रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहै सही।

इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। सुख मे अनुज और सखाओ का स्मरण करते थे। और आज्ञा-पालन मे स्वय प्रस्तुत रहते थे। अनुज और सखा को नही कहते थे कि जो आज्ञा मुझे हुई है उसे तुम जाकर कर दो। माता को पिता से अधिक मानते थे। इसलिए ग्रन्थकार माता का पहिले और पिता का नाम पीछे लेते हैं।

जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ सजोगा ॥
वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥३॥

अर्थ जिस विधि से नगर के लोग सुखी हो सकें वैसा ही सयाग कृपानिधि जुटा देते थे। वेद पुराण मन लगाकर सुनते थे और भाइयो को समझाकर कहते थे।

व्याख्या बन्धु सखा की प्रसन्नता कही। माता पिता की प्रसन्नता कही। अब पुरलोग की प्रसन्नता कहते हैं। सुख से ही ससार प्रसन्न होता है। अत प्रसन्न करने के लिए लोग सुख का सयोग करते है। पर सयोग जुटा देना ईश्वर का काम है मनुष्य का नही। यथा जौ विधि बस अस बनै सजोगू। अस सजोग ईस जो करई। श्रीरामजी पुरलोग के सुखी होने का सयोग जुटा देते थे। जिसमे कोई भी दु खी न रहे।

चक्रवर्तीजो की सभा मे नित्य वेद पुराणो की कथाएँ होती थी। उन्हे रामजी मन लगाकर सुनते थे। भली भाँति वेद पुराण के जानने पर भी पुन पुन श्रवण म उपेक्षा नही करते थे। दिखलाते थे कि बार बार सुनने से सस्कार और दृढ होता चला जाता है। यथा ' शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि पेखिअ। फिर छोटे भाइयो से उनकी व्याख्या करते थे। चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन

स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति। चार प्रकार से विद्या अभीष्ट फल दान मे समर्थ होती है। आगमकाल से स्वाध्यायकाल से प्रवचनकाल से और व्यवहारकाल से। सो दोनो कह चुके है। यथा ' गुरु गृह गये पढन रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई। वेद पुरान सुनहि मन लाई। अब प्रवचन कहते है आप कर्हिं अनुजहि समुझाई। इसके आगे व्यवहार काल कहेगे।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहि माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषै मन राजा॥४॥

अर्थ रघुनाथ प्रात काल उठकर माता पिता और गुरु को मस्तक नवाते थे। आज्ञा माँगकर पुर का कार्य करते थे। चरित्र देखकर महाराज मन म प्रसन्न होते थे।

व्याख्या शास्त्र मे जो पढा था उसे व्यवहार म चरितार्थ करते थे। वेद की आज्ञा है मातृदेवो भव पितृदेवा भव आचायदेवो भव। माता को देवता मानो। पिता को देवता मानो। आचार्य को देवता मानो। अत पहिल उठकर माता पिता और गुरु को नमस्कार करते थ। अथवा अन्त पुर मे पहिल मा का ही दशन होता था। तत्पश्चात् यथावसर पिता का दर्शन होता था। गुरुजी का निवासस्थान पृथक् था। अत इन्हे प्रणाम करने का अवसर माता पिता के प्रणाम के बाद मिलता था।

पितु आयसु सब धर्म का टीका है। अत आयसु आज्ञा माँग मागकर पुर का कार्य करते थे। पिता के कार्य का भार स्वय अपने ऊपर ल रक्खा था। सो भी अपने मन से नही, पिताजी से आज्ञा माँगकर करते थे। इससे श्रीरामजी का सब लायक होना दिखलाया। पिता की आज्ञा हो तभी कुछ करें यह बात नही। काम बिगडता दखकर या आवश्यकता देखकर उस कार्य के सँवारने के लिए आज्ञा माँगते थे।

दो व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप॥२०५॥

अर्थ जो व्यापक, कलारहित, इच्छारहित, जन्मरहित, गुणरहित, नाम रूपरहित है वह भक्त के लिए अनेक प्रकार के अनूप चरित्र करता है।

व्याख्या शिवजी बार बार उमा के कहे हुए की अज अगुन अलख गति कोई को ही दूसरे दूसरे शब्दा म दोहराकर उनका सगुण चरित करना दिखलाते हैं। सर्वव्यापक होने से उसम कला नही है। वह सकल नही अकल है। द्वितीय के अभाव से इच्छारहित है। अत जन्मरहित है। प्रकृतिपार होने से गुणरहित है। अमाय हाने से नामरूपरहित है। वह भक्तो क लिए अनेक प्रकार के अनूप चरित कर रहा है। अनूप इसलिए कहा कि इसके गान करने से भक्त लोग भवसागर पार हो जायँगे। यथा सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं रामजी का नाम रूप लीला धाम सब अनूप हैं।

७. ऋषि आगमन प्रसङ्ग : चौथे[1] प्रश्न का उत्तर :

यह सब चरित कहा मै गाई । आगिलि कथा सुनहु मनलाई ॥
विस्वामित्र महामुनि ग्यानी । वसहि विपिन सुभ आश्रम जानी ॥१॥

नाम अनूप, यथा : अगुन अनूपम गुननिधान सो ।
रूप अनूप, यथा : चितवत सादर रूप अनूपा ।
तृपित न मानहि मनु सतरूपा ॥
धाम अनूप, यथा : भूपति भवन सुभाय सोहावा ।
सुरपति सदन न पटतर आवा ॥
अब चरित्र अनूप कहते हैं ।
यथा : भगति हित करत चरित्र अनूप ।

सातो विशेषण चरित्र के विरोधी हैं । फिर भी भक्त के लिए चरित्र हो रहा है । भक्तहेतु जन्म, भक्तहेतु शिशुचरित और भक्त के हेतु ही नाना चरित हो रहा है ।

अर्थ · यह सब चरित्र मैंने गाकर कहा । आगे की कथा मन लगाकर सुनो । विश्वामित्रजी महामुनि और ज्ञानी थे । शुभ आश्रम जानकर वन मे वसते थे ।

व्याख्या : यहाँ 'यह सब चरित कहा मैं गाई' कहकर बालचरित का उपसंहार कर रहे हैं । आगिल कथा से उमा के चौथे प्रश्न : कहहु यथा जानकी विआही का उत्तर आरम्भ करते हुए तदन्तर्गत ऋषि आगमन की कथा कहते हैं । यही आगिल कथा है । प्रश्न इतना ही था कि 'बालचरित पुनि कहहुँ उदारा' उसे नव दोहो मे कहा । अब अगली कथा को मन लगाकर अर्थात् प्रेम से सुनने के लिए कह रहे हैं । क्योकि सप्रेम सुनने का फल विशेष कहा है । यथा सिय रघुवीर विवाह, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं । तिनकर सदा उछाह, मंगलायतन राम जस ।

दु:खो से जिसका मन उद्विग्न न हो और सुख की जिसे लालमा न हो, भय, राग और क्रोध जिसे न हो ऐसे स्थिरबुद्धि को मुनि कहते हैं । ऐसे मुनियो मे विश्वामित्रजी श्रेष्ठ थे । अर्थात् महायोगी थे, महाज्ञानी थे, वसहि विपिन से महा तपस्वी कहा । ऐसे महापुरुष भगवान् वामन की जन्मभूमि सिद्धाश्रम को शुभस्थान जानकर वसते थे । नही तो मगध शुभाश्रम योग्य नही समझा जाता ।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करही । अति मारीच सुवाहुहि डरही ॥
देखत जग्य निसाचर धावहि । करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहि ॥२॥

अर्थ : वहाँ मुनि जप, योग, यज्ञ करते थे । परन्तु मारीच सुवाहु से बहुत डरते थे । यज्ञ को देखते ही राक्षस दौड पड़ते थे और उपद्रव मचा देते थे । जिससे मुनि लोगो को दु:ख होता था ।

व्याख्या : मण्डलीकपति रावण की आज्ञा असुरों को थी कि : द्विज भोजन मख होम सराधा । सब कर जाइ करहु तुम बाधा । सो मारीच सुवाहु की नियुक्ति

१ कहहु जथा जानकी विआही ।

इस ओर थी। अत मुनि लोग छिपकर जप, योग, यज्ञ करते थे। मारीच सुबाहु जान न लें। इसलिए डरते थे।

यज्ञधूम देखते ही वे दौड पडते थे कि कही पूरा न हो जाय। नही तो देवताओं को भोजन मिल जायगा। उपद्रव करते थे, यज्ञ की विधि पूरी नही होने देते थे। जिससे अविधि होकर बलि का भाग हो जाय अविधिर्बलिभाग । यज्ञ दिन मे होता है। ये निशाचर ठहरे फिर भी जाग जागकर यज्ञ का पता लगाया करते थे।

गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी ॥
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ॥३॥

अर्थ गाधि के पुत्र के मनमे चिन्ता समाई कि बिना हरि के पापी निशिचर नही मरेगा। तब श्रेष्ठ मुनि ने मनमे विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी के भारहरण के लिए अवतार लिया है।

व्याख्या चहत महामुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दु ख कृसतन ताप तयो। सापे पाप नये निदरत खल, तब यह मत्र ठयो। विप्र साधु सुर धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो। गी । यदि शाप देता हूँ तो पाप लगेगा। विनती करने का निशाचर क्या मानने लगे। अत और कोई उपाय नही। बिना पापभोग के इनका आसुरी भोगायतन शरीर नही छूटेगा। हरि इनके पापो को हरण करके इस योनि से मुक्ति दे सकते है और उनका अवतार भी पृथ्वी का भार हरण करने के लिए हो गया है।

एहू मिस देखौ पद जाई। करि बिनती आनौ दोउ भाई ॥
ग्यान बिराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मै देखब भरि नयना ॥४॥

अर्थ इसी बहाने से चरण का दर्शन करूँ और विनती करके दोनो भाइयो को साथ ले आऊँ। ज्ञान विराग सकल गुणो के जो घर हैं उस प्रभु को मैं आँख भर के देखूँगा।

व्याख्या गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सब कोइ। अत मै दर्शन के लिए नही गया। खलवध के लिए मुनि राजा के शरण जाते ही हैं। अत इस बहाने से दर्शन करूँगा। दर्शन प्रधान और खलवध गौण हो गया। ज्ञान, विराग, समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश और श्री के जो निकेत है जे हर हिय नयनन्हि कबहु निरख नाहि अघाय। उन्हे आँख भरकर देखूँगा।

दो बहु विधि करत मनोरथ, जात लागि नहि बार।
करि मज्जन सरऊ जल, गये भूप दरबार[1] ॥२०६॥

---

१ घटनाक्रम पर विचार करने से यह मालूम होता है कि विश्वामित्रजी अयोध्या मे भाद्रपद शुक्ल सप्तमीके लगभग आये। लगभग उन्नीस दिन तक अयोध्या मे ठहरे रहे। योगवासिष्ठ होता रहा।

अर्थ : बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाते देर न लगी। सरयू में मज्जन करके राजद्वार पर गये।

व्याख्या : मुनिजी मनोरथ करते अयोध्या की ओर जा रहे हैं :

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुख की सींव अवधि आनंद की अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥१॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचन्द्र मुखचन्द्र सुधा छवि नयन चकोरनि प्याइहौं ॥२॥
सादर समाचार नृप बुझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं, रामलषन लै आइहौं ॥३॥

इस भाँति मनोरथ करते करते समय न जान पड़ा अयोध्या पहुँच गये। विभीषणजी मनोरथ करते सौ योजन चले आये। समय मालूम न हुआ। यथा : एहि विधि करत सप्रेम विचारा। आए सपदि सिंधु एहि पारा दरबार शब्द द्वार के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। यथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कज। तथा : एक प्रविसहिं एक निर्गमहि भीर भूप दरबार। पहिले मुनिजी ने सरयूस्नान किया तब राजद्वार पर गये।

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै विप्र समाजा ॥
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥१॥

अर्थ : जब राजाने मुनि का आगमन सुना तो विप्र समाज लेकर मिलने गये। दण्डवत् करके मुनि का सम्मान करके अपने आसन पर ला बिठाया।

व्याख्या : महाराज सबके उपास्य होते हैं। पर मुनि पर इतनी श्रद्धा कि उनका आना सुनकर स्वयं मिलने गये और ब्राह्मण समाज साथ लेकर गये। क्योकि विश्वामित्रजी के हृदय मे ब्राह्मणो का बड़ा गौरव है। स्वयं बड़ा भारी तप करके क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे। पहिले ही दण्डवत् प्रणाम किया। सन्मान के साथ कुशल प्रश्न पूछकर आगमन से अपना सौभाग्य वर्णन करके मुनिजी को आगे करके घर में लाये। अपनी गद्दी पर बिठाया। भाव यह कि राज्य आपका है। मैं सेवक हूँ।

चरन पखारि कीन्ह अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ॥
विविध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा ॥२॥

अर्थ : पाँव धोकर अति पूजा की और कहा कि मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा नही है। अनेक विधान से भोजन कराया। श्रेष्ठ मुनिजी के हृदय में बड़ा हर्ष हुआ।

व्याख्या : विश्वामित्रजी का आना असाधारण व्यापार था। जिसने तप के लिए स्वयं अपना राज्य छोड़ा वह दूसरे राजा के यहाँ क्यों जाय? दूसरे का अर्थी क्यो बने? महाराज दशरथ को इतने दिन राज्य करते हुआ पर कभी

विश्वामित्र जी नही आये। राजा ने अपना बडा भाग्य माना। इतने राजा है किसी के पास न जाकर मेरे यहाँ आये। अत' पाँव धोकर बडी भारी पूजा की। पूजा का प्रधान अङ्ग नैवेद्य है। सो कहते हैं कि : विविध भाँति भोजन करवावा। भोजन मे भाँति होती है। जितने प्रकार के व्यञ्जन बनते हैं, उनकी भाँति संज्ञा है। छप्पन प्रकार प्रसिद्ध हैं। अर्थात् राजोपचार से पूजन किया और राजोचित नैवेद्य भी अर्पण किया। अति पूजन पाने से मुनिजी को अति हर्ष हुआ। आशा हुई कि मनोरथ सिद्धि होगी।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी ॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥३॥

अर्थ ' फिर चारो बेटो को चरणो मे गिराया। रामजी को देखकर मुनिजी को देहाध्यास न रह गया। मुख की शोभा देखकर मग्न हो गये। जैसे चकोर पूर्ण चन्द्र पर लुब्ध हो जाता है।

व्याख्या : जब राजा ने देखा कि मुनिजी अति हर्षित है तब चारो बेटो को लाकर चरणो मे डाला कि इस समय अनायासेन इनके कल्याण की सम्भावना है। मुनिजी चारो को देखकर बडे प्रसन्न हुए। पर रामजी को देखकर तो उनको देहाध्यास ही नही रह गया। अर्थात् रामजी मे दृढरति हो गई। उनके मुख की शोभा देखने मे मगन हो गये। एकटक देखने लगे जैसे चकोर पूर्णचन्द्र को देखता है। चकोर पूर्णचन्द्र को देखते देखते आनन्द से लोटने लगता है। वैसी ही दशा मुनिजी के मन की हुई। देह की सुधि न रह गई। लोट-पोट हो गये।

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावौ बारा ॥४॥

अर्थ : तब मन मे हर्षित होकर राजा ने कहा कि मुनि जी ! आपने ऐसी कृपा तो कभी नही की। आपके आगमन का क्या कारण है। उसे कहिये मैं उसके करने मे देर न लगाऊँगा।

व्याख्या पुत्र पर प्रेम देखकर महाराज मन मे हर्षित हुए। जिसका आना जाना लगा रहता है उसके आने का कारण नही पूछा जाता। विश्वामित्रजी कभी के आनेवाले नही। अत उनसे आगमन का कारण पूछते है। सेवा का अवसर मिलने का उत्साह है। अत. कहते है कि कहने मे देर है। मेरे करने मे देर न लगेगी।

असुर समूह सतावहिं मोही। मै जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मै होब सनाथा ॥५॥

अर्थ मुनिजी ने कहा ' राक्षसो के समूह मुझे सता रहे हैं। राजन् ! मैं अर्थी होकर आया हूँ। छोटे भाई के सहित रघुनाथ को मुझे दो। राक्षसो के वध से मैं सनाथ होऊँगा।

व्याख्या : दो-एक असुर नही हैं। उनका बडा भारी खेडा है। वे मुझे दुःख देते हैं। सतावैं मोही मे उनका पौरुष और उग्रता कही। इस भाँति कार्य की गुरुता दिखलायी। मैं ब्राह्मण हूँ, तुम राजा हो, मैं तुमसे माँगने आया हूँ। यही विनती है। यथा : वरि विनती आनौं दोउ भाई। तुम्हारी सेना से काम न चलेगा। तुम रामजी को छोटे भाई के साथ दे दो। ये उनका वध करेंगे। मैं अनाथ हो रहा हूँ, इनके मिलने से मैं सनाथ हो जाऊँगा। यहाँ छोटे भाई से लक्ष्मण जी अभिप्रेत हैं। क्योंकि अनुज और अनुग रूप से ये ही प्रसिद्ध हैं। यथा छत्रिजाति रघुकुल जनम रामानुग जगजान।

दो. देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौ, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥२०७॥

अर्थ : राजन्! प्रसन्न मन से दो मोह और अज्ञान छोड दो। प्रभो! तुम्हे धर्म और सुयश होगा और इनका तो अत्यन्त कल्याण होगा।

व्याख्या : जहाँ लाभ ही लाभ है वहाँ हानि की शङ्का करना अज्ञान है। तुम यशोधन हो। सो तुम्हे यश और धर्म की प्राप्ति होगी और बच्चो का भी बडा कल्याण होगा। तुम स्नेह के वश व्यर्थ शङ्का मन मे ला रहे हो। अत ममता और अज्ञान छोडकर हर्षित मन से दोनो बेटे मुझे दो। यथा गीतावली मे

राजन् रामलखन जौ दीजै।
जस रावरो लाभ ढोटनहू मुनि सनाथ सब कीजै॥
डरपत हौं साँचे सनेह बस सुत प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय वामदेव अरु कुलगुरु तुम पुनि परम सयाने॥
रिपुरन दलि मखराखि कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं।
तुलसिदास रघुवंस तिलककी कविकुल कीरति गैहैं॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। विप्र बचन नहि कहेहु बिचारी ॥१॥

अर्थ अति अप्रिय वाणी सुनकर राजा का हृदय काँप उठा और चेहरे का तेज जाता रहा। बोले वृद्धावस्था मे चार बेटे हुए। विप्र! आप विचारकर बात नही बोले।

व्याख्या बेटे का माँगना अप्रिय, तिसपर रघुनाथ का माँगना अत्यन्त अप्रिय था। रामजी को राक्षसो से युद्ध करने के लिए देना है। इससे हृदय मे कम्प हुआ और वचनबद्ध हो चुके हैं। इसमे मुख का तेज जाता रहा। कहने लगे, मेरी वृद्धावस्था, इस समय चार बेटे हुए हैं। इसलिए मुझे कितने प्रिय हैं। आप समझ सकते हैं। आप विप्र हैं, वेदपाठी हैं। आपको विचारकर बात बोलनी थी। सो आपने विचारकर नहीं कहा। वही बेटे भी माँगे जाते हैं। जो वृद्ध के एकमात्र आश्रय है। उन्हे देकर वृद्ध जी कैसे सकता है? अनुज समेत देहु रघुनाथा का उत्तर है।

माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान ते प्रिय कछु नाही । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माही ॥२॥

अर्थ . पृथ्वी, गौ, धन और कोप खजाना माँगिये । मैं अपना सर्वस्व उत्साह के साथ दे दूँगा । देह और प्राण से बढकर कोई वस्तु प्यारी नही है । उसे भी हे मुनि ! एक पलक मे दे सकता हूँ ।

व्याख्या ब्राह्मण जो माँगते हैं उसे माँगिये । ब्राह्मण अर्थी होकर आते हैं । अर्थ माँगते है । पृथ्वी, गौ, धन या कोप ये ही चार वस्तु ब्राह्मण माँगते हैं । आप उनमे वडे है सर्वस्व माँग लीजिये । मैं उत्साह के साथ दूँगा । देहु भूप मन हर्षित का उत्तर । मैं कृपण हूँ । मोह और अज्ञान के वश भी नही हूँ । सर्वोपरि प्रिय ससार मे देह और प्राण समझा जाता है । उसे पलभर मे दे सकता हूँ । तजहु मोह अज्ञान का उत्तर । अर्थात् देह प्राण देने म मुझे कोई विचार नही है । मैं स्वय उन राक्षसो से वडे उत्साह के साथ युद्ध करूँगा ।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाई । राम देत नहि बनइ गुसाई ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा ॥३॥

अर्थ मुझे सभी बेटे प्राण के समान प्यारे है । पर राम को देते नही बनता । कहाँ अत्यन्त घोर कठोर राक्षस और कहाँ परम किशोर सुन्दर बेटे ?

व्याख्या मै प्राण देने को प्रस्तुत हूँ । प्राण के समान तीनो बेटे है । उन्हे भी दे सकता हूँ । पर हे गोसाइँ ! राम को देते नही बनता । भला राम का और उन राक्षसो का कौनसा जोड है । निशिचर अत्यन्त घोर कठोर होते हैं । सर्वथा असह्य होते है । अथवा मारीच घोर है । यथा मुनि न होइ यह निसिचर घोरा । और सुवाहु कठोर है । रामजी सुन्दर हैं और अभी सोलह वर्प भी पूरा नही हुआ है । अत मृत्यु के मुख मे अपने हाथ से कैसे डाल दें ?

सुनि नृपगिरा प्रेमरस सानी । हृदय हरप माना मुनि ग्यानी ॥
तव वसिष्ठ बहुविधि समुझावा । नृप सदेह नास कहँ पावा ॥४॥

अर्थ . प्रेमरससानी राजा की वाणी सुनकर मुनिजी को मनमे प्रसन्नता हुई । तव वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से समझाया और राजा का सन्देह दूर हुआ ।

व्याख्या राजा की वाणी प्रेम से सनी हुई थी । इसलिए मुनिजी भीतर से प्रसन्न हुए कि रामचरणो मे ऐसा ही अनुराग होना चाहिए । परन्तु बाहर से अप्रसन्न हुए । वसिष्ठजीने देखा कि बात बिगडती है । इसलिए राजा को बहुत प्रकार से समझाया । यथा

तेरो रघुकुल मे जनम स्वय धर्म को रूप ।
रह्यो छाइ यश लोक तिहुँ ऐसो भयो न भूप ॥१॥
सत्यसन्ध तुम जो कह्यो करो नृपति हरखाय ।
जाते पूरब पुण्य अरु कीरति नाहि नसाय ॥२॥

रामलखन तन जगत् मे ताकि सकै नहि कोय।
समरथ विश्वामित्र सो जाको रक्षक होय ॥३॥
ये मूरति हैं धर्म के ये तप तेज निधान।
शास्त्र शस्त्र सबमे निपुण नहि कोउ इनहि समान ॥४॥
निशिचर वध मे ये स्वय हैं समर्थ रघुराय।
पै तव सुत कल्याण हित कीन्ह कृपा इत आय ॥५॥
और मर्म की बात इक तुमसन कहहुँ बुझाय।
याको प्रकट न कीजिये देव गुह्य रघुराय ॥६॥
नायक हैं चर अचर के राम-लखन हैं शेष।
चक्रसुदर्शन सत्रुहन, शख भरत के भेष ॥७॥
तुम कश्यप, अरु कौसिला अदिति, कियो हरिहेत।
भूरि तपस्या पुत्र करि माँग्यो कृपानिकेत ॥८॥
प्रकट्यो तव गृह आइ सो, शक्ति जनकगृह जाइ।
करत जतन सम्बन्ध हित दोउन के ऋषि राइ ॥९॥

तब राजा का सन्देह जाता रहा और देने को प्रस्तुत हो गये।

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए ॥
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥५॥

दो सौपे भूप रिषिहि सुत, बहु विधि देइ असीस।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पदसीस ॥२०८॥ क

अर्थ अत्यन्त आदर से दोनो बेटो को बुलाया। हृदय से लगाकर बहुत प्रकार की शिक्षा दी। मुनि जी बोले हे मुने! ये दोनो बेटे मेरे प्राण के स्वामी है। आप इनके पिता हैं, और कोई नही है।

राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर ऋषिजी को सौंप दिये। प्रभु माँ के घर गये और उन्हे सिर नवाकर चले।

व्याख्या सन्देह नाश होने पर भी पुत्रबुद्धि बनी हुई है। यह वरदान का प्रभाव है। अत्यन्त प्रेम है। अत्यन्त आदर से दोनो बेटो राम लक्ष्मण को बुलाया। कलेजे से लगा लिया। अति प्रिय के लिए वही स्थान है। शिक्षा दी कि मुनिजी की आज्ञा मानना। इनकी आज्ञा की कदापि अवहेलना न करना तथा शत्रु से सग्राम करने की सावधानी के विषय की अनेक शिक्षाएँ दी। तत्पश्चात् मुनिजी से कहा मेरे प्राण के ये ही दोनो स्वामी है। इन्ही को देखकर मैं जीता हूँ। अब आप इनके पिता हैं। पातीति पिता रक्षा करने से पिता सज्ञा है। आन नहि कोऊ कहने का भाव यह है कि मै नही हूँ आपही इनके सब कुछ हैं।

पिता होने के कारण पुत्रो के कल्याण के लिए बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया। ऋषिजी ने याचना की थी अनुज समेत देहु रघुराया। सो चक्रवर्तीजी ने

सौंप दिया। विदा होने के लिए प्रभु माँ के घर गये। कुछ कहा नही केवल प्रणाम करके चल दिये। यह सोचकर कि असुर से युद्ध करना कहेगे तो नही जाने देगी। पीछे से माँ ने कहा भी :

रिषि नृपसीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुरु सचिव निपुन नेवनि अवरेव न समुझि सुधारी ॥१॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी ॥२॥
अति सनेह कातरि माता कहै, सुनु सखि वचन दुखारी।
बादि बीर जननी जीवन जग छत्रिजाति गतिभारी ॥३॥

सो पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले[१] मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल बिस्व कारन करन ॥२०८॥

अर्थ दोनो वीर पुरुषो मे सिंह थे। हर्षित होकर मुनि के भयहरण के लिए चले। क्योकि कृपा के समुद्र हैं। मतिधीर हैं और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी असाधारण कारण हैं।

व्याख्या पराक्रम तथा निर्भीकता सूचित करने के लिए पुरुषसिंह कहते हैं। रणप्रियता सूचित करने के लिए दोउवीर कहते हैं। असुरो से युद्ध करने का बडा उत्साह है। क्योकि उनके वध से ही मुनि भय से विनिर्मुक्त हो सकेंगे। कृपासिन्धु हैं। जिसका वध करेंगे उसे भी परम पद देंगे। मतिधीर हैं सेना सेवक कोई साथ नही है फिर भी धर्मरथ पर सवार हैं। यथा सखा धर्ममय असरथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके। प्रभु के निज स्वरूप को स्मरण कराने के लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि अखिल विश्व का कारण प्रकृति है। उसके भी ये अधिकरण हैं। आश्रय हैं। परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्। इनका अवतार ही है।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलद तनु स्याम तमाला ॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥१॥

अर्थ लाल नेत्र और विशाल वक्षस्थल लम्बी भुजाएँ, नील, मेघ तथा तमाल तरु की भाँति श्याम शरीर कमर मे पीताम्बर तथा अच्छा तरकस कसे हुए। और दोनो हाथो मे धनुष और बाण लिए हुए।

व्याख्या मुनियो पर सकट है। यह सुनकर क्रोध से नेत्रो मे लालिमा आ

---

१. रामजी आश्विन कृष्ण द्वादशी को मुनिजी के साथ अयोध्या से चले। यद्यपि गोस्वामीजी सिवा दो एक स्थलो के तिथि नही देते पर स्थान स्थान पर ऐसा इङ्गित कर देते हैं। जिसकी उपेक्षा न करने से प्राय सभी घटनाओं का तिथि का पता चल जाता है यथा : बालकाण्ड म शरच्चन्द्र से सीताजी के मुख के मिलान पर ध्यान देने से बालकाण्ड को प्राय. सभी घटनाओ की तिथि का पता चल जाता है।

गई है। यथा : अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप तथा अरुन नयन सर चाप चढ़ाए। वक्षःस्थल और बाहु का विशाल होना वीरों का लक्षण है। नील मेघ तथा तमाल के वृक्ष सी सुन्दर श्यामलता कही साथ ही कोमलता शीतलता और दृढ़ता भी द्योतित की। श्याम शरीर में पीतपट की बड़ी शोभा होती है। कमर में तरकस और हाथ में धनुष बाण से युद्ध के लिए पूरी तैयारी सूचित होती है। इस भाँति सुन्दरता और वीरता का अद्भुत योग दृष्टिगोचर हो रहा है।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई ॥
प्रभु ब्रह्मण्य देव मै जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥२॥

अर्थ : श्याम और गौर दोनों भाई सुन्दर हैं। विश्वामित्र ने बड़ी भारी निधि प्राप्त कर ली। मुनि जी सोचते हैं : मै जान गया। प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं। मेरे निमित्त भगवान् ने पिता को छोड़ा।

व्याख्या : दोनों सुन्दर हैं। देखने से ही भाई भाई मालूम होते हैं। केवल वर्णभेद है। बड़े श्याम है छोटे गौर है। महाराज का सौंपना कह चुके हैं। यथा : सौंपे भूपति रिषिहिं सुत। अब मुनिजी का पाना कहते हैं। महानिधि पाने से जैसा हर्ष लोगों को होता है वैसा विश्वामित्रजी को दोनों भाइयों के पाने से हुआ। क्योंकि ये ही मुनि धन जन सर्वस सिव प्रान हैं। वे सोचने लगे कि पिता को इनके पृथक् करने में इतना कष्ट हुआ। पर इन्हें हर्ष है। यथा : हरखि चले मुनि भय हरन। जो ब्राह्मण के लिए पिता के विरह को कुछ नही गिनता है वह ब्रह्मण्य है। इसमें सन्देह नही। ये देव हैं इन्होने जब पिता को छोड़ना चाहा तब उन्हे देने की मति उत्पन्न हुई। नही तो महाराज दशरथ तो नही कर ही चुके थे। इनमें समस्त ऐश्वर्य है। धर्म है। श्री है। ज्ञान और वैराग्य है। ये भगवान् हैं।

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥३॥

अर्थ : राह में जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखा दिया। सुनकर ताड़का क्रुद्ध हो दौड़ी। एक ही बाण से प्राण हरण कर लिया और दीन जानकर उसे अपना पद दिया।

व्याख्या : मुनि संग दोनों भाई चले। पथकथा लिखते हुए ग्रन्थकार गीतावली में लिखते हैं : पैठत सरनि सिलनि चढ़ि चितवत खग मृग वन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई। इस भाँति किशोरलीला करते चले जाते थे कि ताड़का आ पड़ी। मुनिजी ने दिखला दिया। इङ्गित से नहीं। स्पष्ट कहा कि यह ताड़का है इसे मारो। सो जो बाण पहिले से ही हाथ मे था उसीसे ताड़का का वध हुआ। प्राण हरण तो किया पर उसके बदले में अपना पद दिया। बाण लगते ही नही मरी चोट खाकर दीन हो गई। तब दीनदयाल ने उसे मुक्त कर दिया।

तब रिपि निज नाथहिं जिय चीन्हा । विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हा ॥
जातें लाग न छुधा पिपासा । आतुलित वल तन तेज प्रकासा ॥४॥

अर्थ : तब ऋषि ने अपने स्वामी को हृदय से चीन्हा । विद्यानिधि को विद्या दी । जिससे न भूख लगे न प्यास लगे । बेतौल : वेपरिमाण : वल और तेज का प्रकाश शरीर में हो ।

व्याख्या : सहस्र नागों के बल को धारण करनेवाली शापसस्पृष्टा दारुणा ताड़का का एक वाण से वध तथा दिव्यदृष्टि से उसकी गति देखने से मुनिजी को अभ्रान्त ज्ञान हो गया कि ये ही मेरे स्वामी हैं । मार्ग के चरित्रों के देखने से कुछ भ्रान्ति हो गई थी । सो अब हृदय से पहिचान गये अर्थात् दृढ धारणा हो गई । तब विद्यानिधि को विद्या दी । शिष्यभाव से उपासना के लिए गुरुशिष्यसम्बन्ध के स्थापन के लिए अपनी विद्या को सफल करने के लिए मार्ग चलते हुए श्रमित न हों । क्षुधा पिपासा की वाधा न हो । इसलिए यह जानते हुए कि ये विद्या के समुद्र है । वला और अतिवला विद्या दी । वला अतिवला विद्या के जाननेवाले को क्षुधा पिपासा की वाधा नहीं होती । असीम वल होता है । शरीर में तेज प्रकाश होता है ।

दो. आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम[1] आनि ।
कंदमूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि ॥२०९॥

अर्थ : सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके प्रभु को अपने आश्रम में लाकर भक्त-हितकारी जानकर कन्दमूल फल भोजन दिया ।

व्याख्या : परितुष्ट होकर विश्वामित्रजी ने सम्पूर्ण अस्त्र दिये : दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्र, शैव, शूलवत, ब्रह्मशिरस्, ऐषीक, ब्राह्म, मोदकी, शिखरी, धर्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, वारुणास्त्र, शुष्काशनि, आर्द्राशनि, पैनाक, नारायण, आग्नेय, 'शिखर : वायव्य, हयशिरस क्रौञ्च, शक्तिद्वय, कङ्काल, कापाल, किङ्कणी, वैद्याधर, नन्दन ' गान्धर्व, प्रस्वापन, प्रशमन, अग्निरस्त्र, वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मादन, मानव, मोहन, तामस, सौमन, संवर्त, मौसल, सत्य, मायामय, तेज प्रभ,' शिशिर, त्वाष्ट्र, शीतेषु और मानद : ये सब नाम वाल्मीकीय रामायण में गिनाये हैं । फिर सिद्धाश्रम में ले आये और कन्दमूल फल भोजन दिया । जान लिया कि ये भक्तहित हैं जो कुछ दूँगा सो स्वीकार करेंगे ।

---

१ अयोध्या से चलकर डेढ़योजन पर विश्राम किया । दूसरे दिन सरयूगङ्गासङ्गम कामाश्रम पर निवास किया । चतुर्दशी को ताड़का वध किया अमावास्या को मुनिजी के आश्रम पर पहुँचे ।

प्रात कहा मुनीसन रघुराई । निर्भय जग्य करहु तुम जाई ॥
होम करन[१] लागे मुनि झारी । आपु रहे मख की रखवारी ॥१॥

अर्थ : सबेरे रामजी ने मुनि से कहा आपलोग जाकर निर्भय हो यज्ञ कीजिये। सब मुनिलोग होम करने लगे और स्वय आप यज्ञ की रखवारी करने लगे।

व्याख्या : उस रात्रि को विश्राम करके प्रात काल दूसरे दिन रघुराई ने कहा : आपलोग निर्भय होकर यज्ञ करें। विश्वामित्रजी ने चक्रवर्तीजी से कहा था असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही। अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर वध मैं होव सनाथा। अतः कहते हैं कि अब निशिचर आप लोगो को न सता सकेंगे। मै आप लोगो की रक्षा करूँगा। आपलोग जाकर यज्ञ करें। तदनुसार मुनिलोगो ने हवन करना आरम्भ कर दिया। सब छोटे बडे मुनियो ने स्वाहा की ध्वनि की। स्वय प्रभु पहरा देने लगे। कोई विघ्न न हुआ। ताडका का वध करनेवाले की रक्षा मे यज्ञ हो रहा है। इस भय से कोई राक्षस नही आये।

सुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा ॥२॥

अर्थ : समाचार पाकर क्रोधी राक्षस मुनियो का द्रोही मारीच सेना लेकर दौडा। बिना फर का बाण : तुक्का रामजी ने उसे मारा। सौ योजन समुद्र के पार चला गया।

व्याख्या मारीच . ताडका का बेटा बडा क्रोधी था माँ का मारा जाना सह न सका। सेना इकट्ठी करके धावा किया। इधर यज्ञ हो रहा था। उधर मारीच सेना इकट्ठी कर रहा था। मुनिद्रोही है। सुना कि इस समय मुनि ससहाय है। ताडकाहन्ता स्वय पहरा दे रहे है। अत जब यथेष्ट सेना सङ्कलित कर चुका तब उसने एक क्षण का विलम्ब नही किया। दौड पडा। मध्याह्न के समय पहुँच गया। रामजी गाँसा सहित बाण से मारते तो मर जाता। उससे काम लेना था इसलिए तुक्के से मारा। मारीच सौ योजन समुद्र पार लङ्का मे जाकर गिरा। यह सौ योजन समुद्र का नाप है पृथ्वी मे जितनी दूर गया उसका परिमाण यहाँ नही लिखा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देवमुनि झारी ॥३॥

अर्थ आग्नेयास्त्र से सुबाहु को मारा। छोटे भाई : लक्ष्मण ने आसुरी

---

१ आश्विन सुदि १ प्रथम स्थापना . के दिन मखारम्भ हुआ। छ अहोरात्र दोनो भाइयो ने रखवारी की। छठे दिन मध्यान्ह को निशिचर दल आया। सुबाहु मारा गया मारीच समुद्र पार फका गया। शेष सना सब मारी गई।

सेना का सहार किया। ब्राह्मणो को निर्भय करनेवाले ने असुरो को मारा। सब देवताओ और मुनि स्तुति करने लगे।

व्याख्या असुरो को यज्ञ से परम वैर है। वे प्राण रहते यज्ञ होने न देंगे और ब्राह्मणो को यज्ञ पर बडी भारी प्रीति है। विश्वामित्र महा मुनि ज्ञानी होने पर भी उनकी यज्ञ पर इतनी प्रीति है कि चक्रवर्तीजी के यहाँ जाकर रामजी को यज्ञरक्षा के लिए माँग लाये। ब्राह्मण तभी निर्भय रह सकते है जब उनके यज्ञ मे बाधा न हो। सो असुरो के मारे जाने से सनाथ हो गये। आग्नेयास्त्र से रामजी ने सुबाहु को मारा। तब तक लक्ष्मणजी ने असुर सेना को विध्वस कर दिया। देवता और मुनि लोग स्तुति करने लगे। उनका व्यापार फिर चलता हो गया। देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व। परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ। यज्ञ से मनुष्य देवताओ की भावना करें और देवता मनुष्यो की भावना करें। इस भाँति परस्पर भावना करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त होओ। यह ब्रह्मदेव का बतलाया हुआ मार्ग निरर्गल हुआ। मारीच को लङ्का मे फेंककर प्रभु ने रावण के पास मानो समाचार भेज दिया कि अब यज्ञ नही रुक सकता। रोकनेवाले आवे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र यद्यपि प्रभु जाना॥४॥

अर्थ वहाँ कुछ दिनो तक रामजी रहे। ब्राह्मणो पर दया की। भक्ति के लिए ब्राह्मणो ने बहुत सी पुराणो की कथाएँ रामजी को सुनाई। यद्यपि प्रभु सब जानते ही थे।

व्याख्या ब्राह्मणो को पूर्णरूपेण निर्भय करने के लिए उन पर दया करके प्रभु कई दिन वहाँ ठहर गये कि जो राक्षसो की सेना और आनी हो सो आ ले। पुरुष सिंह दोउ बीर, हरखि चले मुनि भय हरन। सो पूर्णरूपेण भय हरण किया। ब्राह्मण लोग कौन सी सेवा करें ? अत प्रभु को पुराण की कथाएँ सुनाई, अज्ञानहरण के लिए नही, अपनी भक्ति के उद्रेक की शान्ति के लिए। भगवान् सब जानते हुए भी उनकी भक्ति से प्रेरित होकर सादर सुनते रहे। तीन दिनो तक सिद्धाश्रम मे ही विश्राम किया। विजया दशमी को मुनिजी के साथ धनुषयज्ञ देखने चले। उस दिन पहिला विश्राम शोणतट पर हुआ।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरखि चले मुनिबर के साथा॥५॥

अर्थ तब मुनि ने आदर सहित समझाकर[1] कहा कि हे प्रभो! चलकर

---

१ उत्तर इहाँ ते देश मिथिला अनूप भूप विदित विदेह तासु तनया गुणो की खानि।
नृप मुनि कान धाये शलभ समान रण माच्यो घमासान पै पराने हारहिय मानि॥
रारि नित बढत विलोकि नृप की ह्वै पन, तोरै जो पिनाक ताहि जानकी वरैगी जानि।
सुनि सुनि आय हैं महीप दीप दीपन ते रावरे सधारिवे ते भूप की बढैगी कानि॥

एक चरित्र देखना चाहिए। धनुषयज्ञ की वात सुनकर रघुकुल के नाथ हर्षित होकर मुनिवर के साथ चले।

व्याख्या जब राक्षसो के आने की प्रतीक्षा हो चुकी, अयोध्या लौटने का अवसर आया। तब मुनिजो ने रामजी को समझाकर कहा हमलोग राजा जनक का यज्ञ देखने जायेंगे। वहाँ शिव का धनुष रक्खा हुआ है आप भी उसे देखेंगे। राजा जनक आपका सत्कार करेगे। इत्यादि वाते वतलाकर धनुषयज्ञ देखने पर जोर दिया। प्रभु धनुषयज्ञ की वात सुनकर हर्षित हुए कि वहाँ वीरो के पराक्रम की परीक्षा होगी। अत अयोध्या न चलकर मुनिवर के साथ मिथिला चले। पहिले हरखि चले मुनिभय हरन। अब धनुषयज्ञ सुनि हरखि चल मुनिवर के साथा। पहिले प्रभु के साथ मुनिजी थे। अब मुनिजी के साथ प्रभु हैं।

आश्रम एक दीख मग माँही। खग मृग जीव जतु तह नाही ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी ॥६॥

अर्थ मार्ग मे एक आश्रम देखा। जहाँ पशु पक्षी जीव जन्तु कोई भी नही था। एक शिला पडी थी उसे देखकर प्रभु ने पूछा। मुनि ने विशेप रूप से सब कथा कही।

व्याख्या फल फूल हीन वन मे जन्तु नही रहते। परन्तु यह तो आश्रम है। फल फूलवाले वृक्ष लगे हैं। फिर भी जीव जन्तु क्यो नही हैं ? और यह शिला कैसी पडी हुई है ? उस शिला के देखने से ही उसमें कुछ विशेपता प्रतीत हुई। रामजी ने मुनिजी से पूछा कि यह किसका आश्रम है ?

मुनिजी ने कहा कि पहिले यहाँ महर्षि गौतमजी तप करते थे। उन पर प्रसन्न होकर ब्रह्मदेव ने अपनी अहल्या नाम्नी लोकसुन्दरी कन्या उन्हे दी। उसके साथ वे यही रहा करते थे। इन्द्र उस पर मुग्ध थे। उसे पाने के लिए नित्य अवसर देखा करते थे। किसी समय गौतमजी घर से बाहर गये। इन्द्र ने उनका वेप धारण करके अहल्या का सतीत्व नष्ट किया। बाहर निकलते ही उधर से गौतमजी आगये। उन्होंने क्रोध करके पूछा कि मेरा रूप धारण करनेवाला अधम तू कौन है ? सत्य कह। नही तो तुझे अभी भस्म करता हूँ। वह वोला मैं कामकिङ्कर इन्द्र हूँ। मैंने कुकर्म किया है। मुनि ने क्रोध करके शाप दिया कि तुझे सहस्र भग हा जावें। अहल्या को शाप दिया कि हे दुर्वृत्ते! तू मेरे आश्रम की इस शिला मे रह। दिन रात निराहार रहकर परम तप मे स्थित हो। लू वर्षा आदि को सहन करती हुई परमेश्वर राम का ध्यान कर। यह मेरा आश्रम नाना जन्तुओ से विहीन हो जायगा। इस भाँति अनेक सहस्र वर्ष बीतने पर रामजी भाई के साथ इधर आयेंगे। जब वे इस शिला पर पैर रक्खेंगे तब तू निष्पापा होकर रामकी पूजा परिक्रमा स्तुति करके शाप से छूट जायगी। और पहिले की भाँति यथेच्छरूप से मेरी शुश्रूषा करेगी।

दो गौतम नारी श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर ॥२१०॥

अर्थ : गौतम की स्त्री शाप के वश होकर पत्थर का शरीर धारण किये हुए धैर्य धारण करके आपके चरण की धूलि चाहती है। सो हे मतिधीर ! कृपा कीजिये।

व्याख्या : शिला के ही आश्रित अहल्या थी इसलिए उपलदेह कहा। उसकी यथार्थ देह प्राणिमात्र के लिए अलक्षित थी। शाप से विनिर्मुक्त होने के लिए चरणरज चाहती है। सो आप रघुवीर हैं मगन लहहि न जिनके नाहीं, उस कुल में वीर हैं। इस पर कृपा करिये, इस शिला पर पैर रखिये। यह सहस्रो वर्ष से धैर्य धारण किये हुए चरणरज की आशा लगाये परम तप मे स्थित है। मुनिजी की आज्ञा से प्रभु ने उस शिला का स्पर्श चरणो से किया।

छं[1] परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोर रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय बडभागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही॥१॥

अर्थ : पवित्र करनेवाले और शोकनाश करनेवाले चरणो के छूते ही, सच्ची तपस्या की पुञ्ज प्रकट हुई। भक्तो के सुख देनेवाले रघुनायक को देखते हुए सामने हाथ जोडकर खडी हो गई। अत्यन्त प्रेम से अधीर हो गई। रोंगटे खडे हो गये। मुख से शब्द नही निकलता। अत्यन्त ही भाग्यवती है, चरणो मे लग गई। दोनो आँखो से अश्रु की धारा बह निकली।

व्याख्या : अति दारुण विप्रशाप से पवित्र करनेवाला चरण है। इसलिए पावन कहा। ईप्सित फलदाता होने से शोकनसावन कहा। सद्य कल्याणप्रद है। अत उसके स्पर्श करते ही सब कल्मष दग्ध हो गये। शुद्ध तपोमूर्ति दृष्टिगोचर हो गई। सच्चा सुवर्ण उसी को कहते हैं जिसमे किसी अन्य धातु का संमिश्रण न हो। प्रभु के चरणस्पर्श से यावत् कल्मष उसके रहे सो दग्ध हो गये। निखरे हुए सोने की भाँति शुद्ध तपोमय मूर्ति शाप से विनिर्मुक्त होकर प्रकट हो गई।

उपल पत्थर के अवयवो से ढके रहने के कारण पहिले न देख सकी थी। उससे जब छूटी तब भक्तो के सुखदायक रघुनायक को देखा। उसका हृदय साधु है। इससे सन्मुख हुई। दुष्ट हृदय परमेश्वर के सन्मुख नही हो सकता। यथा जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई। और कुछ कहते या करते न बना। अत हाथ जोडे खडी रह गई। परन्तु खडा भी रहा नही जाता। क्योंकि अति प्रेम से अधीर हो उठी। शरीर पुलकित हो उठा। स्तुति करना चाहती है। पर कण्ठ रुँधा हुआ है मनसा वाचा कर्मणा प्रेम कहा। बडा भारी भाग्य उदय हुआ। चरणो मे जा गिरी। हृदय विगलित हो उठा। आँसू की धारा बह चली। चरणो का सम्बन्ध होना ही अहोभाग्य है।

---

१ यह त्रिभङ्गी छन्द है। इसमे ३२ मात्राओ का एक पाद होता है। १०,८,८,६ मात्राओ पर विराम होता है। अन्त मे एक गुरु आता है।

छ धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥
मै नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहि आई ॥

अर्थ : मन मे धैर्य किया । प्रभु को पहिचाना । रघुपति की कृपा से उसे भक्ति मिली । अत्यन्त निर्मल वाणी से स्तुति आरम्भ कर दी कि हे ज्ञानगम्य रघुराई तुम्हारी जय हो । मैं अपावन स्त्री हूँ और प्रभु लोगो को पवित्र करनेवाले हैं । रावण के रिपु हैं और भक्तो के सुख देनेवाले हैं । हे राजीवविलोचन ! हे ससार के भय को दूर करनेवाले ! मैं शरण में आयी हूँ । मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये ।

व्याख्या जब अश्रुधारा कुछ बह गई तब धैर्य ला सकी । देखने से ही प्रेम हुआ । पर यह न जान सकी थी कि ये कौन हैं । पर अब धैर्य आ जाने से स्मृति लौटी । मुनि का वचन स्मरण हो उठा । तब प्रभु को चीन्हा । जानाति इच्छति यतते । जब मनुष्य जानता है, तब इच्छा करता है तत्पश्चात् प्रयत्न करता हैं । जब प्रभु को पहिचाना तो वह प्रेम भक्ति रूप म परिणत हुआ । अथवा गुरुजी ने कहा था कृपा करहु रघुबीर सा रघुनाथ ने कृपा को । उसने भक्ति पायी । भक्ति के पाते ही बात दूसरी हो गई । वाणी निर्मल हो गई । स्तुति करने लगी । कहा हे रघुराई ! आप ज्ञानगम्य हैं । ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् । जैसा हूँ, जितना हूँ सो भक्ति से ही मुझे तत्त्वत जानकर मुझमे प्रवेश कर जाता है । आपकी जय हो । ज्ञानगम्य से ब्रह्म कहा और रघुराई से अवतार कहा ।

अपने पूर्ववृत्त का स्मरण करके कहती है कि मैं नारियो मे अपावन हूँ और प्रभु जग को पावन करनेवाल हैं । मुझे पवित्र कीजिये । आप रावणरिपु जनसुखदायी हैं । परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् आपका अवतार हुआ है । हे राजीवविलोचन ! आप दृष्टिमात्र से भवभय के हरण करनेवाले हैं । पतित के लिए एकमात्र उपाय आपका शरण है । सो मैं शरण आई हूँ । मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यहाँ वीप्सा अत्यन्त आरत होने के कारण से है । अथवा प्रथम पाहि कहकर पातित्य से त्राण पाने के लिए और दूसरा पाहि शरण मे लेने के लिए कहा । यथा मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने । दास तुलसी सरन आयो राखिये आपने ।

छ. मुनि श्राप[1] जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभु सकर जाना ॥
बिनती प्रभु मोरी मै मति भोरी नाथ न मागौं बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥३॥

१ यहाँ अनुज्ञा अलङ्कार है ।

अर्थ : गौतम की स्त्री शाप के वश होकर पत्थर का शरीर धारण किये हुए धैर्य धारण करके आपके चरण की धूलि चाहती है। सो हे मतिधीर! कृपा कीजिये।

व्याख्या शिला के ही आश्रित अहल्या थी इसलिए उपलदेह कहा। उसकी यथार्थ देह प्राणिमात्र के लिए अलक्षित थी। शाप से विनिर्मुक्त होने के लिए चरणरज चाहती है। सो आप रघुवीर है मगन लहहि न जिनके नाही, उस कुल मे वीर हैं। इस पर कृपा करिये, इस शिला पर पैर रखिये। यह सहस्रो वर्ष से धैर्य धारण किये हुए चरणरज की आशा लगाये परम तप मे स्थित है। मुनिजी की आज्ञा से प्रभु ने उस शिला का स्पर्श चरणो से किया।

छ [१] परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोर रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहि आवै वचन कही।
अतिसय बडभागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार वही॥१॥

अर्थ पवित्र करनेवाले और शोकनाश करनेवाले चरणो के छूते ही, सच्ची तपस्या की पुञ्ज प्रकट हुई। भक्तो के सुख देनेवाले रघुनायक को देखते हुए सामने हाथ जोडकर खडी हो गई। अत्यन्त प्रेम से अधीर हो गई। रोगटे खडे हो गये। मुख से शब्द नही निकलता। अत्यन्त ही भाग्यवती है, चरणो मे लग गई। दोनो आँखो से अश्रु की धारा बह निकली।

व्याख्या अति दारुण विप्रशाप से पवित्र करनेवाला चरण है। इसलिए पावन कहा। ईप्सित फलदाता होने से शोकनसावन कहा। सद्य कल्याणप्रद है। अत उसके स्पर्श करते ही सब कल्मष दग्ध हो गये। शुद्ध तपामूर्ति दृष्टिगोचर हो गई। सच्चा सुवर्ण उसी को कहते हैं जिसमे किसी अन्य धातु का सम्मिश्रण न हो। प्रभु के चरणस्पर्श से यावत् कल्मष उसके रहे सो दग्ध हो गये। निखरे हुए सोने की भाँति शुद्ध तपोमय मूर्ति शाप से विनिर्मुक्त होकर प्रकट हो गई।

उपल पत्थर के अवयवो से ढके रहने के कारण पहिले न देख सकी थी। उससे जब छूटी तब भक्तो के सुखदायक रघुनायक को देखा। उसका हृदय साधु है। इससे सन्मुख हुई। दुष्ट हृदय परमेश्वर के सन्मुख नही हो सकता। यथा जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई। और कुछ कहते या करते न बना। अत हाथ जोडे खडी रह गई। परन्तु खडा भी रहा नही जाता। क्योकि अति प्रेम से अधीर हो उठी। शरीर पुलकित हो उठा। स्तुति करना चाहती है। पर कण्ठ रुँधा हुआ है मनसा वाचा कर्मणा प्रेम कहा। बडा भारी भाग्य उदय हुआ। चरणो मे जा गिरी। हृदय विगलित हो उठा। आँसू की धारा बह चली। चरणो का सम्बन्ध होना ही अहोभाग्य है।

---

१ यह त्रिभङ्गी छन्द है। इसमे ३२ मात्राओ का एक पाद होता है। १०,८,८,६ मात्राओ पर विराम होता है। अन्त मे एक गुरु आता है।

छं. धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥
मै नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहि आई ॥

अर्थ : मन मे धैर्य किया । प्रभु को पहिचाना । रघुपति की कृपा से उसे भक्ति मिली । अत्यन्त निर्मल वाणी से स्तुति आरम्भ कर दी कि हे ज्ञानगम्य रघुराई तुम्हारी जय हो । मै अपावन स्त्री हूँ और प्रभु लोगो को पवित्र करनेवाले हैं । रावण के रिपु हैं और भक्तो के सुख देनेवाले हैं । हे राजीवविलोचन ! हे संसार के भय को दूर करनेवाले ! मैं शरण मे आयी हूँ । मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये ।

व्याख्या : जब अश्रुधारा कुछ बह गई तब धैर्य ला सकी । देखने से ही प्रेम हुआ । पर यह न जान सकी थी कि ये कौन हैं । पर अब धैर्य आ जाने से स्मृति लौटी । मुनि का वचन स्मरण हो उठा । तब प्रभु को चीन्हा । जानाति इच्छति यतते । जब मनुष्य जानता है, तब इच्छा करता है तत्पश्चात् प्रयत्न करता है । जब प्रभु को पहिचाना तो वह प्रेम भक्ति रूप मे परिणत हुआ । अथवा गुरुजी ने कहा था : कृपा करहु रघुबीर : सो रघुनाथ ने कृपा की । उसने भक्ति पायी । भक्ति के पाते ही बात दूसरी हो गई । वाणी निर्मल हो गई । स्तुति करने लगी । कहा . हे रघुराई ! आप ज्ञानगम्य हैं । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् । जैसा हूँ, जितना हूँ सो भक्ति से ही मुझे तत्त्वतः जानकर मुझमे प्रवेश कर जाता है । आपकी जय हो । ज्ञानगम्य से ब्रह्म कहा और रघुराई से अवतार कहा ।

अपने पूर्ववृत्त का स्मरण करके कहती है कि मैं नारियों मे अपावन हूँ और प्रभु जग को पावन करनेवाले हैं । मुझे पवित्र कीजिये । आप रावणरिपु जनसुखदायी हैं । परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् : आपका अवतार हुआ है । हे राजीवविलोचन ! आप दृष्टिमात्र से भवभय के हरण करनेवाले हैं । पतित के लिए एकमात्र उपाय आपका शरण है । सो मैं शरण आई हूँ । मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यहाँ वीप्सा अत्यन्त आरत होने के कारण से है । अथवा प्रथम पाहि कहकर पातित्य से त्राण पाने के लिए और दूसरा पाहि शरण मे लेने के लिए कहा । यथा : मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने । दास तुलसी सरन आयो राखिये आपने ।

छं. मुनि श्राप[1] जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभु संकर जाना ॥
विनती प्रभु मोरी मै मति भोरी नाथ न माँगौं बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥३॥

१. यहाँ अनुज्ञा अलङ्कार है ।

अर्थ : मुनिजी ने जो मुझे शाप दिया वह बहुत अच्छा किया। मैं उसें परम अनुग्रह रूप मानती हूँ। आँख भर के भवमोचन हरि का दर्शन किया। शिवजी ने भी इसे ही लाभ माना है। हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मै यही विनती करती हूँ। दूसरा वर नही चाहती : कि आपके चरण कमल के पराग के रस को मेरा मनरूपी भौरा पान किया करे।

व्याख्या : भक्ति के आते ही ज्ञान हुआ। क्योकि श्रीहरि जो है और जैसे हैं उसका तत्त्वज्ञान तो भक्ति के होने से ही होता है। यथा : भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:। अब कहती है कि मुनिजी ने मुझे जो शाप दिया वह भला ही नही, अत्यन्त भला किया। जो भला करता है वह अनुग्रह करता है और जो अत्यन्त भला करता है वह परम अनुग्रह करता है। अत: कहती हैं उस शाप से मेरा बडा भला हुआ अत मैं उसे शाप नही मानती। परम अनुग्रह मानती हूँ। क्योकि हरि भवमोचन को आँख भर के देखा। जन्म का फल पा लिया। यथा : नयनवत रघुपतिहिं बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी। प्रभु को आँख भर देखने को ही शिवजी लाभ मानते हैं। और किसी लाभ को लाभ नही मानते। अत: इसके अत्यन्त उत्कृष्ट होने मे सन्देह नही है।

हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मैं फिर ससार मे भूल जाऊँगी। इसलिए और कोई वर न माँगकर इस वर के लिए विनती करती हूँ कि आप के चरणकमल के पराग के रस का पान मेरा मन सदा भौंरारूप होकर करता रहे।

छं. जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी॥४॥

अर्थ : जिन चरणो से परम पुनीत गङ्गाजी प्रकट हुईं और उन्हे शिवजी ने सिर पर रक्खा और वही चरणकमल जिसका ब्रह्मा पूजन करते हैं हरि ने मेरे सिर पर रक्खा। इस भाँति बार बार हरि के चरण पर गिरकर गौतम जी की स्त्री चली गई। जो अत्यन्त मन को भाया था वही वर पाया और पति के लोक को आनन्द से भरी हुई गई।

व्याख्या . अपने भाग्य की सराहना करती है कि ये चरण शिवजी के सिर पर न पडे। तब चरण से निकली हुई गङ्गाजी को सिर पर धारण करके सन्तोष किया। न ब्रह्मा के सिर पर पडे। वे नित्य उन चरणो की पूजा करके सन्तोष धारण किये हुए हैं। वाह रे मेरा भाग्य ! कि वे चरण मेरे सिर पर पडे यह विचारकर चरणो पर बार बार गिरती है कि ये चरण शिव ब्रह्मादि को भी दुर्लभ हैं। आज मुझे सुलभ हुए हैं। यद्यपि प्रभु ने मुख से नही कहा। गौतम की स्त्री होने से बडी मानते हैं। तथापि जो वर उसे अत्यन्त पसन्द था वह दे दिया और वह आनन्द

भरी पतिलोक को गई। भाव यह कि दोनो भाँति से प्रभु ने रक्षा की। भक्ति वर देकर शरण म रख लिया और उसे परम पवित्र करके पतिलोक भेज दिया। यथा गौतम गये गृह गौनो सो लवायके। आनन्द भरी गई अर्थात् महर्षि गौतम से सत्कार पाकर भक्ति वर पाकर आनन्द भरी हुई गई।

दो अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहि भजु छाडि कपट जजाल ॥२११॥

अर्थ हरि ऐसे दीनबन्धु प्रभु है और बिना कारण के कृपा करनेवाले हैं। तुलसीदास जो अपने मन से कहते हैं कि रे शठ! तू कपट जजाल को छोडकर उसे भज।

व्याख्या ऐसे समर्थ हैं, दीनदयाल हैं कि गये हुए सतीत्व को लौटा दिया। पत्थर से फिर नारी बना दी।

यथा रामपद पदुम पराग परी।
रिपितिय तुरत त्यागि पाहनतनु छविमय देहधरी ॥१॥
प्रबल पाप पतिशाप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासिधु सिंचि बिबुधवेलि ज्यौ फिर सुख फरनि फरी ॥२॥
निगम अगम मूरति महेस मति जुवति वराय वरी।
सोइ मूरति भई जानि नयनपथ, इकटक ते न टरी ॥३॥
वरनति हृदय सरूप सील गुन प्रेम प्रमोद भरी।
तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ॥४॥

तुलसीदासजी अपने मन को समझाते हैं कि तू शठ है हठी है। सो हठ मत कर एस समथ और ऐसे दयालु को भज। जोग वियोग भोग भल मदा। हित अन-हित मध्य भ्रम फदा। इन फदो का एक वडा भारी जाल बना हुआ है जिसम पड जाने से निकलना बहुत कठिन होता है। यह जाल जन्म से लकर मरण तक फैला हुआ है। यथा जनम मरन जहँ लगि जगजालू। इसी को यहाँ जजाल कहा है। इसे छोडकर भजन कर। यह छोडने से ही छूटता है। यथा होइ न विषय विराग भवन वसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु। बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।

यह अहल्याकृत स्तुति कृतिका नक्षत्र है। इसम छ क्रियाएँ हैं १ प्रभु का दर्शन किया। २ शरण आई। ३ शाप को अनुग्रह माना। ४ वरदान माँगा। ५ कृतकृत्य हुई। ६ पतिलोक गई। ये ही छ चमकदार तारे हैं। पाप को छुरे की भाँति काटा। इसलिए छुर का आकार माना। इसका फल है सद्गुरु ज्ञानविराग योग के। ज्ञानगम्य जै रघुराई कहने से ज्ञान का। नाथ न वर मागौ आना से विराग का। पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना से योग। यथा योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मा स मे युक्ततमो मत। का गुरु कहा।

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा ॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई ॥[1]

अर्थ राम और लक्ष्मण मुनिजी के साथ चले। जहाँ जगत् को पवित्र क वाली गङ्गा थी वहाँ गये जिस प्रकार से गङ्गा पृथ्वी पर आई। वह सब कथा गा राज के पुत्र विश्वामित्र ने सुनाई।

व्याख्या : इसबार हरख कर न चले। क्योंकि मनमे पछतावा था कि ब्राह की स्त्री को मुझे चरण से छूना पडा। यथा : दई सुगति सो न हेरि हरष हिय च छुए को पछिताव। गी। पहिले जो चले थे तो हरख कर चले थे। यथा : पुरुष ि दोउ वीर हरखि चले मुनि भय हरण। तथा : धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हर चले मुनिवर के साथा। सिद्धाश्रम से जनकपुर जाने मे गङ्गापार उतरना पडता है

गङ्गास्नान से पहिले गङ्गामाहात्म्यश्रवण की विधि है। सो विश्वामित्रजी गङ्गा जी की कथा सुनाई कि पहिले गङ्गा जी पृथ्वी पर नहीं थी। राजा सगर पुत्र पिता के अश्वमेधघोडे का पता लगाते कपिलजी के आश्रम में पहुँचे। वहाँ घ को देखा। कपिलजी को ही घोडे का हरण करनेवाला समझकर मारने दौडे। कपि जी ने शाप दिया। वे वहीं भस्म हो गये। बात यह हुई थी कि राजा सगर ९ अश्वमेध यज्ञ कर चुके थे। सौ अश्वमेध करने पर इन्द्रपद मिलता है। जब अन्ति अश्वमेध के लिए घोडा छोडा तो इन्द्र ने उस घोडे को हरण करके कपिलदेवजी आश्रम मे छोड दिया था। उन सगर के पुत्रों की जो कि ब्रह्मशाप से भस्म हुए सद्गति विना गङ्गाजी के आये हो नही सकती थी। अत राजा भगीरथ अपने पूर्व पुरुषों की सद्गति के लिए बडी भारी तपस्या करके ब्रह्मलोक से गङ्गाजी को लाए और उनका उद्धार किया। इस भाँति गङ्गा पृथ्वीतल निवासियों के लिए सुलभ हो गईं। विश्वामित्र का यहाँ पर गाधिसूनु कहने का यह भाव है कि यह राजा गाधि के पुत्र हैं। स्वय राजा रह चुके हैं। सब राजाओं का हाल जानते हैं। यह कथा वाल्मीकीय रामायण मे विस्तार से कही गई है।

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। बिबिध दान महिदेवन्हि पाये ॥
हरषि चले मुनिवृन्द सहाया। बेगि बिदेहनगर निअराया ॥२॥

अर्थ तब प्रभु ने ऋषियों के साथ स्नान किया। ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के दान पाये। मुनि वृन्द सहाय हर्षित होकर चले और शीघ्र ही विदेह राजा का नगर निकट आगया।

व्याख्या : माहात्म्य सुनने के बाद प्रभु ने ऋषियों के साथ गङ्गास्नान किया। पुण्यक्षेत्र में आने पर दान करना चाहिए। सो अनेक प्रकार का दान किया। पात्रे

---

१ एकादशी को गङ्गा तट पर पहुँचे। रात्रि जागरण गङ्गावतरण की कथा सुनने में हुआ। तीसरे दिन द्वादशी को विशाल नगरी में प्रविष्ट विश्राम किया।

दानम्। पात्र को दान देना चाहिए। अत पृथ्वी के देवताओ ब्राह्मणो को दान दिया। ब्राह्मणब्रुव जो केवल ब्राह्मण कहलानेवाले है का ग्रहण न हो इसलिए महिदेव कहा। दानसामग्री की उपस्थिति के विषय मे शङ्का न हो इसलिए प्रभु कहा कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थ प्रभु । उन्हे सब सामर्थ्य है। कोई महात्मा यह भी कहते हैं कि मारीच सुबाहु वध के बाद उनकी बहुत सम्पत्ति हाथ लगी। उसी को दान के लिए साथ लाये थे।

ये दोनो भाई मुनिवृन्द की सेना हैं। जिस भाँति राजाओ की जीत सैन्यबल से होती है। उसी भाँति मुनियो की जीत इन्ही दोनो भाइयो द्वारा होती है। अत 'मुनिवृन्द सहाया' कहा। सहाय शब्द सेना के अर्थ म बराबर प्रयुक्त होता है। यथा . लै सहाय धावा मुनि द्राही। निदरे राम जानि असहाई। इत्यादि। मुनिपत्नी को पाद से स्पर्श करने क कारण अपने म पापस्पर्श माना। अत गङ्गास्नान से उसकी शुद्धि मानकर हर्षित है। अत फिर हर्षित होकर चलना लिखते हैं। वहाँ से जनकपुर सन्निकट था। इसलिए शीघ्र ही नगर का निकट आना कहते हैं। मन मे कौतुक है कि विदेह देहाध्यास रहित राजा कैसा राज करता है। उसके राज की व्यवस्था देखने लायक है। इसलिए वहाँ पहुँचने की जल्दी है।

सीय-स्वयवर

पुररम्यता राम जब देखी। हरखे अनुज समेत विसेखी॥
वापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥३॥

अर्थ पुरकी रमणीयता जब रामजी ने देखी तो छाटे भाई के साथ बहुत प्रसन्न हुए। बावली, कुएँ, नदियाँ और तालाबो की बहुतायत थी। जिनका जल अमृत सा था और मणियो की सीढियाँ थी।

व्याख्या जनकपुर बडा रमणीय था। सभी को उसे देखने से हर्ष हुआ। परन्तु सबके देखने और रामलखन के देखने मे अन्तर था। और लोग तो केवल रमणीयता हो देखते हैं। पर वे ता राजकुमार हैं। नगरनिर्माणविज्ञान के पण्डित हैं। रत्न को सभी लाग देखते हैं और उसकी रमणीयता पर मुग्ध भी होते हैं। परन्तु उसके वास्तविक गुण तो जौहरी ही देखते हैं। रामलक्ष्मण नगरव्यवस्थापन कला के जौहरी थे। अत इन्हे विशेष हर्ष हुआ।

पहिली बात यह है कि नगर म जलाशयो की कमी न हो। सो वहाँ चारो प्रकार के जलाशयो की बहुतायत थी। जलाशयो मे अमृत सा स्वादु जल था और राजा की ओर से बडी सुरक्षा थी। सीढियाँ स्फटिकादि मणियो की बनी थी।

गुजत मजु मत्त रस भृगा। कूजत कल बहुबरन विहगा॥
बरन बरन विकसे बनजाता। त्रिविध समीर सदा सुखदाता॥४॥

अर्थ रस से मतवाल सुन्दर भौरे गूँज रहे थे। अनेक प्रकार के सुन्दर पक्षी

कूज रहे थे। रंग रंग के कमल खिले हुए थे और शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रहा था।

व्याख्या : इन जलाशयों के चारो ओर फलफूलवाले वृक्ष थे जो कि स्वयं बडे सरस थे। जहाँ फूलवाले वृक्ष होते हैं वही चिड़ियाँ भी रहती हैं। फलफूल के रस के लोभी भौरे भी वही पहुँचते हैं। रसका आधिक्य दिखलाते हैं कि रस से मत्त होकर भौरे गूँजते हैं और तृप्त होकर चिडियाँ कलरव कर रही हैं। उन जलाशयो में रग रग के श्वेत, श्याम, अरुण और पीतवर्ण के कमल खिले हुए हैं। शरद ऋतु है। अतः वायु मे शीतलता है। कमलो और फूलो के गन्ध के भार से पवन की गति भी मन्थर हैं। अथवा जनकपुर मे सदा त्रिविध समीर चला करती है। वहाँ कड़ी धूप पडती ही नही।

दो. सुमन वाटिका वाग वन, विपुल विहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास ॥२१२॥

अर्थ · फुलवारी, वाग, और वन जहाँ वहुत सी चिडियाँ वसती है, पुर के चारो ओर फूलते फलते और पल्लवित होते शोभित है।

व्याख्या अभी पुर के वाहर का वर्णन हो रहा है। पुर के चारो ओर वन है। जिनमे स्वभाव से पेड जमे है। उसके वाद वाग हैं। जिनमे फलवाले वृक्ष हैं। यथा : चलेउ नाइ सिर पैठेउ वागा। फल खाएसि तरु तोरन लागा। फुलवारी मे फूल लगे हैं। अथवा सरित के तट पर वन है। सर के चारो ओर वाग है और वापी कूप फुलवारी मे है। फुलवारी फूल रही है, वाग फल रहे है। वन पल्लवित हो रहे है। उनमे अवाधरूप से वहुत से पक्षी वसते है। इस फुलवारी, वाग और वन से पुर को वडी शोभा हो रही है।

वापी तडाग अनूप कूप मनोहरायता सोहहीं।
सोपान सुदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहही॥
वहु रग कज अनेक खग कूजहि मधुप गुजारही।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हकारही॥

वनइ न वरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहे लोभाई॥
चारु वजार विचित्र अवारी। मनिमय विधि जनु स्वकर सँवारीं॥१॥

अर्थ : नगर की सुन्दरता कहते नही वनती। जहाँ जायँ वही मन लुभा जाता है। सुन्दर वाजार था। विचित्र कोठे थे। जिनमे मणियो का काम था। मानों ब्रह्मदेव ने उन्हे अपने हाथ से सँवारा है।

व्याख्या नगर इतना मनोहर है कि जिधर मन जाता है वही लुब्ध होकर ठहर जाता है और विना सब ओर गये मन वर्णन कर नहीं सकता। अत. कहते हैं कि वर्णन नही किया जा सकता। पूरा नगर सर्वाङ्ग सुन्दर है। नीचे के मजिल की दूकानो की पक्ति को वाजार कहते हैं और ऊपर के मंजिल के कमरो

को अँबारी कहा है। जिनमें कोठियाँ चलती हैं। सर्वोपरि मंजिल की अटारी सज्जा है। वे अँबारी मणिमय हैं। स्थापत्यकला की पराकाष्ठा उनमें दिखलाई गई है। सन्धि : जोड़ का पता नही चलता मानो स्वयं ब्रह्मदेव की बनाई हुई है।

धनिक बनिकवर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना ॥
चौहट सुंदर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिचाई ॥२॥

अर्थ : धनवान् श्रेष्ठ सौदागर कुबेर के समान सब वस्तुओ को लिये बैठे हैं। चौराहा सुन्दर गलियाँ सोहावनी सदा सुगन्ध से सींची जाती थी।

व्याख्या : बाजार और अँबारी दोनों में धनिक बनिक का बैठना कहते हैं। धनद समाना कहने से प्रभूत धनधान्य का संग्रह कहते हैं। नाना प्रकार की वस्तुएँ लिये बैठे हैं। कोई वस्तु ऐसी नही है जो उस बाजार और उन कोठियो में न मिलती हो।

राज्यव्यवस्था तथा ऐश्वर्य इतना बढा चढ़ा है कि गलियों में पानी नही छिड़का जाता है। सुगन्ध सीची जाती है। जो स्थान सुगन्ध से सीचा जाता हो वहाँ की सफाई के लिए क्या कहना है। कितना ही नगर सुन्दर हो पर यदि वहाँ सफाई न हो तो वह सुन्दरता किसी काम की नही होती। जनकपुर की सुन्दरता अनूठी है और सफाई भी बहुत बढ़ी चढ़ी है।

मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे ॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता ॥३॥

अर्थ : सबके घर मङ्गलमय थे और उन पर इस भाँति चित्रकारी बनी थी मानो कामदेव ने स्वयं चित्रकार बनकर उन चित्रों को चित्रित किया है। पुर के नरनारी सुन्दर और शुद्ध सन्त धर्मशील ज्ञानी और गुणवान् थे।

व्याख्या : वन्दरवार केतु पताका चौक से युक्त होम के धूप से सुगन्धित मङ्गलमय सभी के घर थे। उन घरो मे ऐसी सरस चित्रकारियाँ थी कि वे मनुष्य की की हुई मालूम नही होती थी। उन्हे देखने से मन में यह होता था कि इन्हे कामदेव ने स्वयं बनाया होगा। जब मकान ब्रह्मदेव के बनाये मालूम होते थे तो उसकी चित्रकारियाँ कामदेव की बनाई हुई मालूम होनी ही चाहिए।

नगर चाहे कैसा ही सुन्दर हो, उसकी व्यवस्था चाहे कितनी ही अच्छी हो पर यदि उसके निवासी अच्छे न हुए तो वह लङ्कापुरी हो जाती है। सो यहाँ के निवासी सुन्दर थे और पवित्र सन्त थे। अर्थात् भगवत्स्नेह से उनका हृदय सरस था। यथा : राम सनेह सरस मन जासू। साधुसभा बड आदर तासू। धर्मात्मा थे, ज्ञानी थे और सर्वगुणसम्पन्न थे। भाव यह कि कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का जनकपुर में घर घर प्रचार था। जनकपुर में निर्गुणी कोई नही था।

अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू ॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी ॥४॥

अर्थ जहाँ जनक का निवास था वह तो अत्यन्त अनूप था। वहाँ का विलास देखकर तो देवता स्तब्ध हो जाते थे। कोट देखकर चित्त चकित हो जाता था। मानो इसने सम्पूर्ण भुवन की शोभा को रोक रक्खा है।

व्याख्या लोगो का निवास अनूप महाराज जनक का निवास अति अनूप। जो विलास वहाँ था वह स्वर्ग म भी नही था। न स्वर्ग उतना सुन्दर था और न वहाँ के विलास का सामना स्वर्ग का विलास कर सकता था और निवास की शोभा देखकर तो चित्त चकित हो जाता था। मानो सम्पूर्ण भुवना की शोभा उसने रोक रक्खी है कि उससे कोई बढने न पावे।

दो धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुदर सदन, सोभा किमि कहि जाति ॥२१३॥

अर्थ सुनहल मणि जटिल कपडो से अनेक प्रकार से मढा हुआ उज्ज्वल धाम सीताजी का सुन्दर निवास स्थान था। उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है?

व्याख्या सर्व साधारण इस विलास से अपरिचित है। बहुत बडे ऐश्वर्य शालियो के घर की दीवारें छत इत्यादि कपडो से मढी रहती ह। उसी भाँति सीताजी का उज्ज्वल निवासगृह जरी के काम पर जवाहिरात टँके हुए कपडो से मढा हुआ था। अथवा उसम जवाहिरात से टँके हुए जरी के काम के पर्दे पडे हुए थे। रनिवास मे भी सीताजी के निवासस्थान की शोभा अलौकिक थी। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिस निवासस्थान म सीताजी रहती है उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है। अर्थात् सर्वथा अवर्णनीय है।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी, बिसाल बाजि गज साला। हय गज रथ संकुल सब काला ॥१॥

अर्थ सुन्दर द्वार थे जिनम वज्रकपाट लगे थे। राजाओ की भीड और नट मागध भाटो की भीड जहाँ लगी रहती थी। बडी बडी अश्वशालाएँ और गजशालाएँ बनी रहती थी जो सदा हाथी, घोडे और रथो से भरी रहती थी।

व्याख्या पुरद्वार तथा राजद्वार सब सुन्दर बने थे। साथ ही साथ बडे दृढ थे। उनम वज्र स किवाड लगे थे। उन द्वारो पर सदा राजाओ, नट, मागध और भाटो की भीड लगी रहती थी। *एक प्रविसहिं एक निर्गमहि भीर भूप दरबार।* कोई जा रहा है। कोई आ रहा है। इसी से भीड होती है। इमस जनकजी का वैभव विलास कहते है। यथा पितु वैभव विलास मैं दीठा। नृपमनिमुकुट मिलत पद पीठा। अब पुर के भीतर का वर्णन करते है कि हथिसार और घोडसार बहुत बडे बडे बने थे। व्यवस्था ऐसी थी कि कभी वे हाथी घोडे और रथ स खाली नही रहते थे। यदि हाथी घाडे रथ किसी काम पर भी गय तो भी यथेष्ट सख्या म रथ, गज, बाजि बचे रहते थे। जिसम व शालाएँ भरी मालूम पड सकें।

इतना बडा सग्रह जनकपुर म था कि तुरग लाख रथ सहस पचीसा।

सकल सँवारे नख अरु सीसा। मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिनहि देखि दिसि कुंजर लाजे। सब समाज एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई। इतने गजरथ तुरग तो दायज मे दिये गये।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा॥२॥

अर्थ योद्धा मन्त्री और बहुत से सेनापति थे। इनके मकान भी महाराज के महल से थे। पुर के बाहर तालाब और नदी के सन्निकट जहाँ तहाँ बहुत से राजा लोग उतरे थे।

व्याख्या महाराज के यहाँ मन्त्रियो और वीरो का बडा मान था। उनके घर क्या थे राजमहल थे। यद्यपि रामजी मुनियो के सहित नगर के बाहर ही हैं। वही का वर्णन उपयुक्त है। पर बाहर के वर्णन के साथ भीतर का वर्णन भी किये देते हैं। आगे चलकर घटनाचक्र के वर्णन मे पड जाने पर नगर के भीतरी दृश्य का वर्णन न कर सकेंगे। लङ्का आदि के वर्णन मे भी ग्रन्थकार ने इसी रीति का अवलम्बन किया है।

राजा लोग आये हैं सीयस्वयवर म पर वे नगर के भीतर ठहरने नही पाये हैं। वे लोग पुर के बाहर जलाशय देख देखकर अपने दलबल सहित उतरे हुए हैं।

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहा रहिअ रघुबीर सुजाना॥३॥

अर्थ[1] एक आम की बारी बेजोड थी। सब प्रकार से सुन्दर थी और वहाँ सभी सुभीता था। उसे देखकर कौशिक विश्वामित्र जी ने कहा कि मुझे यह पसन्द है। हे रघुबीर सुजाना! यही रहना चाहिए।

व्याख्या ठहरने के लिए स्थान देखते है। सवत्र राजा लोग टिके है। पर एक आम की बारी बेजोड है। वह खाली ही पडी है। जलाशय के सन्निकट है। ऊँचे स्थान पर है, घनी है, पवित्र है, सभी सुभीता है। राजा के यहाँ न जाकर रघुनाथजी से कहते हैं आप सुजान है, यहाँ ही रहिये। आप रघुबीर हैं। सेना-रहित होने पर भी उन राजाओ से कम शङ्कनीय नही हैं जो बाहर उतरे हुए हैं। अत बाहर उतरना ही ठीक है।

भलेहि नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनिबृंद समेता॥
विश्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥४॥

अर्थ बहुत अच्छा नाथ! कहकर कृपा के धाम रामजी वहाँ मुनिलोगो के साथ उतरे। मिथिला के राजा ने समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्रजी आये हैं।

---

१ त्रयोदशी को जनकपुर पहुँचे। उसी दिन नगर देखने गये।

अति सौन्दर्य की है। या यों कहिये कि मृदु वयस की सीमा किशोरावस्था है। वर्ण और वय कहकर रूप कहते हैं। लोचन को ऐसे सुखद जैसे भूखे को सुन्दर पदार्थ सुखद होता है। यथा पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। विश्वामित्र का और विश्वचितचोर का साथ है। ऐसा चित्त चुराते हैं कि जिसका चित्त चोरी गया उसे स्वय पता नही कि कब चोरी गया। भाव यह कि प्रभु के देखते ही सबकी आँखे उनमे बँध गई और मन उधर ही खिच गया। सबके प्राणो की ऊर्ध्व गति हो गई। अत सबके सब उनके आने से उठकर खडे हो गये। सुन्दरता का कथन करके ग्रन्थकार वर्णन करते है और तेजका उत्कर्ष लोगो के खडे हो जाने से द्योतित करते है। प्रभु प्रश्रय अदब से दूर बैठना चाहते हैं पर विश्वामित्रजी ने प्यार से पास बिठा लिया।

भये सब सुखी देखी दोउ भ्राता। वारि विलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भएउ विदेहु विदेहु विसेखी॥४॥

अर्थ दोनो भाइयो को देखकर सब सुखी हुए। नेत्रो मे जल और शरीर मे पुलक हुआ। मनोहर मधुर मूर्ति देखकर राजा विदेह तो विशेष रूप से विदेह हो गये।

व्याख्या लोचन सुखद का साफल्य दिखाते हैं भए सब सुखी कहकर और विश्व चित चोरा का साफल्य दिखाते है सबकी आँखो मे आँसू और रोगटे खडे होने का वर्णन करके। मृदु किशोर वयस है। सोलह वर्ष भी पूरे नही हुए है। अत मधुर मूर्ति कहते हैं। यथा मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दन। विश्व चितचोर है। अत मनोहर कहते हैं। राजा विदेह देहाध्यास रहित थे। तथापि निर्लेप रहकर लौकिक कार्य बडी सुन्दरता से करते थे। इस मधुर मनोहर मूर्ति के दर्शन से उस योग्य भी नही रह गये। इसलिए विदेह विसेखी कहा।

दो प्रेम मगन मनु जानि नृपु, करि विवेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु, गदगद गिरा गभीर॥२१५॥

अर्थ · राजा ने मन को प्रेम मे मग्न जाना। तो विवेक से धैर्य धारण किया। और मुनि के चरणो मे सिर झुकाकर गद्गद और गम्भीर वाणी बोले।

व्याख्या सदा साक्षी रूप होकर व्यवहार देखने का स्वभाव है। अत बडा सावधान राजा है। चोरी जान गया। अत उसके लिए ग्रन्थकार रामजी को विश्व चित चोर न कहकर मनोहर कहते हैं। सब लोग वारिविलोचन पुलकितगात हैं। प्रेम मे मग्न है। अपनी दशा नही जानत। पर राजा सावधान हो गया। विवेक से धैर्य धारण किया। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन्। यह धारणा की कि इन्द्रियाँ अपने अर्थो म वर्त्त रही है। अभी प्रेम का रङ्ग हटा नही। गला भरा हुआ है। अत गद्गद वाणी बोले फिर भी वाणी गम्भीर थी। बडो के सामने प्रणामपूर्वक बोलना चाहिए। अत मुनि के चरणो मे सिर नवाकर बोले।

कहहु नाथ सुदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥१॥

अर्थ हे नाथ ! बतलाइये । ये दोनो सुन्दर बालक मुनिकुलतिलक हैं कि नृपकुलपालक हैं । जिस ब्रह्म को वेदो ने नेति करके गान किया है क्या वही दो वेष धारण करके आये हैं ।

व्याख्या जनकजी विश्वामित्रजी से पूछते हैं ये दोनो बालक कौन हैं ? साक्षात् अश्विनीकुमार तो नही हैं ? कामदेव और वसन्त तो नही हैं ? या वेष बदल हरिहर तो नही हैं ? मुनिजी को चुप देखकर पूछते हैं कि ये मुनिकुलतिलक हैं कि नृपकुलपालक हैं । मुनि समाज मे हैं । अत ब्राह्मणकुमार का होना ही स्वभावसिद्ध है । परन्तु धनुर्धारी हैं । इससे नृपकुलपालक होने का सन्देह होता है । यदि ब्राह्मण हैं तो ब्रह्मकुल के तिलक हैं । यदि क्षत्रिय हैं तो नृपकुलपालक हैं । अथवा ब्राह्म तथा क्षात्र तज से युक्त देखकर यह सन्देह हुआ कि सम्भव है विश्वामित्रजी के ही पुत्र हो । यथा किधौ आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरेहि पाये । गी ।

फिर भी विश्वामित्रजी चुप हैं । अत पूछते हैं कि जिस ब्रह्म को जाति गुण क्रिया से व्यावर्तन के लिए श्रुति नेति कहकर गान करती है अर्थात् निर्गुण ब्रह्म वही रूप धारण करके तो नही आया है ?

सहज विराग रूप मन मोरा । थकित होत जिमि चद चकोरा ॥
ताते प्रभु पूछौ सति भाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥२॥

अर्थ मेरा मन स्वभाव से ही वैराग्य रूप है । सो चन्द्रमा को देखकर जैसे चकोर स्थगित हो जाता है उसी भाँति इन्हे देखकर स्थगित होता है । इसलिए मैं सच्चे भाव से पूछता हूँ । आप बतलायें छिपाव न करे ।

व्याख्या प्रश्न का कारण कहते हैं । कहिअ तात सो परम बिरागी । तृन सम सिद्धि तीन गुण त्यागी । सो तीनो गुणो का त्याग मेरे मनके लिए स्वाभाविक है । मेरा मन निस्त्रैगुण्य पथ मे विचरण करनेवाला है । वह गुणो मे लुब्ध होने वाला नही । सो चन्द्र चकोर की भाँति स्थगित होता है । अत अवश्य निर्गुण ब्रह्म हैं । मैं सत्य भाव से पूछता हूँ । इस भाँति पूछकर मैं इनकी स्तुति नही कर रहा हूँ । ये तो दुराव किये हैं । नरवेष धारण किये हैं । पर आप दुराव न करिये । गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं । मेरा प्रश्न संशयनिरसन के लिए है ।

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥३॥

अर्थ इन्हे देखते हुए अति अनुरक्त होकर मन ने ब्रह्म सुख को आपसे आप छोड दिया । मुनिजी ने हँसकर कहा कि राजा ! तुमने अच्छा कहा । तुम्हारी बात अप्रमाण नही हो सकती ।

व्याख्या · विदेह राजा के मन मे सदा ब्रह्मानन्द बना रहता था। सो राम लक्ष्मण को देखकर वह आपसे आप ब्रह्मानन्द को त्याग करके रूपदर्शन का आनन्द लेने लगा। मन ही देखनेवाला है। इन्द्रिय नही देखती। सो उसने जब इन दोनो भाइयो को देखा तो ब्रह्मानन्द सीठा मालूम होने लगा। वह आपसे आप ब्रह्मानन्द का परित्याग करके दर्शनानन्द मे मग्न हो गया। यथा · ब्रह्मानन्द हृदय दरस सुख लोयननि अनुभए उभय सरस राम जाने है। तुलसी विदेह की सनेह की दसा सुमिरि मेरे मनमाने राउ निपट सयाने है। गी। यही बात राजा जनक कह रहे हैं। सुनकर मुनिजी हँस पडे कि इनकी चोरी तो पकड गई। जौहरी ने तो पहिचान लिया। पर ये सबको जनाना नही चाहते। अत ऐसे शब्दो मे उत्तर देते हैं जिसमे राजा ही समझें। पर सत्यभाव से उत्तर देते है कि तुम्हारी वाणी जिसके प्रकाश से मुनियो का हृत्कमल खिल उठता है अप्रमाण कैसे हो सकती है ?

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहि रामु सुनि बानी ॥
रघुकुलमनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए ॥४॥

अर्थ ये प्राणिमात्र को प्रिय हैं। वाणी सुनकर रामजी मनही मन मुसकरा रहे हैं। रघुकुल के मणि दशरथजी के पुत्र है। मेरे हित के लिए राजा ने इन्हे भेजा है।

व्याख्या मुनिजी श्रुतिवाक्य से इङ्गित करते है। स उ प्राणस्य प्राण । ब्रह्म प्राण का भी प्राण है। अत जितने प्राणी है ये सबको प्रिय हैं। वचन तुम्हार न होइ अलीका कहकर जो बात कही थी उसीकी पुष्टि कर रहे है। रामजी पहचाने गये। इसलिए मुसकरा रहे है। परन्तु सब कोई न जान ले इसलिए मनमे मुसकरा रहे हैं।

सशयनिरशन के लिए मुनिजी ने दूसरे प्रश्न ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा का उत्तर पहिले दिया। अब पहिले प्रश्न का मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक का उत्तर देते है कि रघुकुल मे मणिरूप जो राजा दशरथ है उनके लडके है। महाराज दशरथ की सग्रामशूरता की बडी ख्याति है। यथा जीति को सक सग्राम दसरथ के रण बाँकुरे। अत नृपकुलपालक है। ऐसा कहने पर जो सन्देह उठना चाहिए उसका निराकरण मुनिजी स्वय करते है। मेरे हित के लिए महाराज ने भेजा है। ऐसे धर्मात्मा हैं। इसीलिए सेना सेवक आदि साथ नही है। राजा ने इन्हे धनुपयज्ञ के लिए नही भेजा है।

दो राम लखनु दोउ बधुबर, रूप सील गुन धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु, जिते असुर सग्राम ॥२१६॥

अर्थ राम लक्ष्मण ये दोनो भाई रूप शील और गुण के धाम है। इन्होने असुरो को सग्राम म जीतकर यज्ञ की रक्षा की है। इसका ससार साक्षी है।

व्याख्या राम को बडा भाई और लक्ष्मण को छोटा नाम लने के क्रम से सूचित किया। बन्धुबर कहकर परस्पर प्रीति कही। ये रूप के ही धाम नही शील और बल

के भी धाम हैं। रूप तो प्रत्यक्ष ही है और मख राखेउ सब साखि जग से शीलधाम और जिते असुर सग्राम से बलधाम होना व्यक्त किया। विश्वामित्रजी राम लक्ष्मण को विवाह के लिए लाये है। अत इस वर्णन से सब प्रकार की योग्यता दिखला रहे है। कन्या रूप का वरण करती है, माता वित्त चाहती है, पिता विद्या देखते हैं, बान्धव लोग अच्छा कुल पसन्द करते है और शेष लोग मिष्टान्न चाहते हैं। यथा कन्या वरयते रूप माता वित्त पिता श्रुतम्। बान्धवा कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जना। कन्या रूप का वरण करती है इसलिए रूपधाम कहा। माता वित्त चाहती है इसलिए मम हित लागि नरेस पठाये कहकर राजा का बेटा कहते है। पिता विद्या चाहता है इसलिए जिते असुर सग्राम कहकर धनुर्वेद की पारदर्शिता कहते हैं। बान्धव लोग कुल चाहते है इसलिए रघुकुल मनि कहा और शेष लोग मिष्टान्न चाहते है इसलिए दसरथ के जाये कहते है। यथा राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकौ निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आँनदहू के आनद दाता॥१॥

अर्थ राजा ने कहा कि हे मुनिजी! आपका चरण देखकर मै अपने पुण्य का प्रभाव नही कह सकता सुन्दर श्याम और गौर दोनो भाई आनन्द के भी आनन्द देने वाले है।

व्याख्या पुन्य पुज बिनु मिलहिं न सता। सत सगति ससृति कर अता। पुण्य ही सब कल्याण का मूल है। अधिक पुण्य होने से ही सन्त की प्राप्ति होती है और सन्त की प्राप्ति होने से भगवत्प्राप्ति होती है। ससार का अन्त हो जाता है। अत रामजी की प्राप्ति से विदेहराज कहते है कि इसका मूल आपके चरणो का दर्शन है। न जाने कितना बडा पुण्य मेरा था जिससे आपके दर्शन हुए। मुनिजी ने कहा था ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। उसी के उत्तर मे महाराज अपने भाग्य की प्रशसा करते हैं। राम लखन दोउ बधुवर का उत्तर देते हुए कहते है कि भाइयो की श्याम और गौर जोडी बडी सुन्दर है। मुनिजी ने कहा था कि ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। जनकजी उसी बात का अनुवाद करके लक्षित कराते हैं कि बात उन्होने समझ ली। जनकजी कहते हैं आनदहू के आनद दाता है। आनन्द को भी आनन्द देनेवाला तो सिवा ब्रह्म के और कुछ हो नही सकता। क्योकि उसी आनन्दसिन्धु के सीकर से ही सब आनन्दित होता है। यथा सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी अथवा लौकिक आनन्द जिस आनन्द की झलक है वह निम्बरूप आनन्द ये दोनो भाई हैं।

इन्हके प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाय मन भाव सुहावनि॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥२॥

अर्थ इनकी आपस की सुहावनी प्रीति ऐसी पवित्र और मनभावनी है कि कही नहीं जा सकती। विदेहराज ने प्रसन्न होकर कहा कि हे नाथ! सुनिये। इनका स्नेह ब्रह्मजीव की भाँति स्वाभाविक है।

व्याख्या विदेहराज बडे लखनेवाले हैं। दोनो भाइयो के आने और बैठने के ढङ्ग से उनकी आन्तरिक प्रीति की पहिचान कर रहे हैं कि इनकी प्रीति परस्पर म पवित्र है। अर्थात् स्वार्थ के लश का स्पर्श नही है और सुहावनी देखनेवाल को अच्छी लगती है। अत मनभावनी है। इसका उत्कर्ष अकथनीय है। ग्रन्थकार गीतावली म कहते हैं उपमा राम लखन के प्रीति की क्यो दीजै खीरै नीरै। महाराज विदेह का उपमा मिल गई। अत विश्वामित्रजी से मुदित होकर कहते है कि इनकी प्रीति ब्रह्म जीव की प्रीति की भाँति है। ब्रह्म जीव का किसी भी अवस्था म परित्याग नही करता और न जीव का अवस्थान बिना ब्रह्म म क्षणभर भी सम्भव है। स्वार्थ का लश नही इसलिए पवित्र भी है और सुहावनी भी है।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रससि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू॥३॥

अर्थ बार बार प्रभु को राजा देखते है। उनके शरीर म पुलक और मनम अधिक उत्साह है। मुनिजी की प्रशसा करके और चरण पर सिर नवा करके राजा उन्हे अपने नगर म लिवा चल।

व्याख्या दर्शन से अघाते नही इसीलिए पुनि पुनि चितव कहा। दर्शन को शङ्कर का प्रसाद मानते है जैसा कि आगे कहेंगे। नयन विषय मो कहँ भयउ सो समस्त सुख मूल। सबइ सुलभ जगजीव कहँ भए ईस अनुकूल। राजा क हृदय म बडा उछाह है इसलिए सात्त्विक भाव हो रहा है। फिर मुनिजी की राजा ने स्तुति की और चरणो म सिर नवाकर नगर म लिवा चल। यथा नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पाँवडे अरघदेत आदर सो आने है। गीतावली।

सुदर सदनु सुखद सब काला। तहा बासु लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब बिधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई॥४॥

अर्थ सुदर घर सब काल म सुख देनेवाला था। वही राजा ने निवासस्थान दिया। पूजा तथा सब विधि से सेवकाई करके राजा विदा माँगकर घर गये।

व्याख्या सब सुपास सब भाति सोहाई अमराई म डरा किया था। इसलिए महाराज ने सुन्दर घर जो सब काल म सुखद हो वहाँ ले जाकर ठहराया। असन बसन बास कै सुपास सब विधि पूजि प्रिय पाहुने सुभाय सनमाने है। गी। इस भाँति पूजा की और पाद सवाहनादि द्वारा सब विधि सेवकाई की। ऋषिजी भी राजा को छोडना नही चाहते थे अत विदा कराई लिखते है।

दो रिषय सग रघुबस मनि, करि भोजन बिश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवसु रहा भरि जाम॥२१७॥

अर्थ ऋषियो के सहित रघुवशमणि ने भोजन किया और उनके साथ ही विश्राम किया। तत्पश्चात् भाई के साथ बैठे। पहर दिन शेष रह गया।

व्याख्या यहाँ ऋषय शब्द ऋषि का बहुवचन है। ओत्व लुक्च विसर्गस्य इस सूत्र से विसर्गका लोप हुआ। ऋषि के सग चले थे। यथा हरखि चले मुनि वृद सहाया। ऋषि के सग स्नान किया। यथा तव प्रभु ऋषिन्ह समेत नहाए। ऋषियो के सग ही उतरे। यथा उतरे तहँ मुनिवृद समेता। अत भोजन विश्राम भी उन्ही के साथ हुआ। मार्ग चलकर आये हैं अत विश्राम करना लिखते हैं। इस भाँति दिन के तीन पहर बीत गये। चौथे पहर मे भाई के साथ अवकाश मिलने पर बैठे।

लखन हृदय लालसा विसेखी। जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाही। प्रगट न कहहिं मनहि मुसुकाही ॥१॥

अर्थ लक्ष्मण के हृदय मे विशेष लालसा थी कि चलकर जनकपुर देख आना चाहिए। प्रभु का भय था मुनिजी का सकोच करते थे। इससे प्रकट कुछ नही करते थे। मन ही मन मुसकरा रहे थे।

व्याख्या श्रीराम और लक्ष्मणजी जनकजी के साथ जव रथपर जा रहे थे पुर की शोभा देखते जाते थे। उसी समय पुररम्यता देखकर भाई सहित हरखे थे। अब पैदल घूमकर देखना चाहते हैं। लालसा तो रामजी को भी है पर लक्ष्मण को विशेष है। ये उत्सुक हैं। प्रभु का भय है। मालिक से अधिक उत्सुकता सेवक को नही होनी चाहिए। सवते सेवक धर्म कठोरा। मुनिजी का सङ्कोच भी है, समझेंगे कि लडका बडा बहिर्मुख है। प्रकट न कहहिं। भाव यह कि मन से तो चाहते ही हैं परन्तु कहने मे सङ्कोच और भय बाधक है। परन्तु बार बार मनोविकास हो रहा है। मनोविकास ही वस्तुत हास है। दन्तविकास हास नहीं है। अत मनहि मुसुकाही लिखा।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी ॥
परम विनीत[1] सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई ॥२॥

अर्थ रामजी ने छोटे भाई की मन की गति जान ली। भक्तवत्सलता हृदय में उल्लसित हुई। परम विनय के साथ सकुचाते हुए मुसकराकर गुरुजी की आज्ञा पाकर बोले।

व्याख्या परम विनीत हैं हठात् कोई बात नही कहते। कहने मे भी सङ्कोच है। यथा कौसल्या वचन सखी के प्रति कौसिक परम कृपालु परमहित समरथ सुखद सुचाली। बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। गीतावली। स्मित पूर्वाभिभाषी हैं। मुसुकराहट का अर्थ ही यही है कि कुछ कहना चाहते हैं। यहाँ भावसन्धि है विनय सङ्कोच और वात्सल्य की। गुरुजी ने जान लिया कि कुछ कहना चाहते हैं, सङ्कोच से नहीं कहते। अत आज्ञा दी क्या कहना चाहते हो कहो।

---

१. यहाँ समुच्चय अलङ्कार है।

नाथ लखनु पुरु देखन चहही । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहही ॥
जौ राउर आयसु मै पाउँ । नगरु देखाइ तुरत लै आउँ ॥३॥

अर्थ नाथ ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते है परन्तु प्रभु के सङ्कोच और डर से प्रकट नही कहते । यदि मैं आपकी आज्ञा पाउँ तो नगर दिखलाकर शीघ्र ही ले आउँ ।

व्याख्या लक्ष्मण के मनमे अधिक लालसा होने से उन्ही का नाम लेते हैं । परन्तु प्रभु का सङ्कोच और डर है । अपने डर का भी आरोप मुनिजी पर ही कर रहे है । अपनी प्रभुता का प्रकाश ऐसे समय अनुचित है । इसलिए कहते नही है । जो मै आयसु पावौं से अपनी भी लालसा कह दी । दूसरे को आज्ञा हो तो वह चाहे देर करे पर मै अनुचित विलम्ब न करूगा । देखाइ लै आवो का भाव यह कि उतनी देर तक की जिम्मेदारी हमारी । यहाँ पर ठीक पिता पुत्र का सा बरताव हो रहा है । क्योकि सौपने के समय महाराज दशरथ ने कहा है तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ । अत रामजी वैसा ही बरताव कर रहे है ।

सुनि मुनीस कह वचन सप्रीती । कस न राम तुम्ह राखहु नीति ॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता । प्रेम विवस सेवक सुखदाता ॥४॥

अर्थ सुनकर मुनिराज ने प्रेमपूर्वक कहा कि रामजी ! तुम क्यो न नीति की रक्षा करो । तुम धर्म के पुल के रक्षक हो । प्रेम के विशेष वश होकर सेवको को सुख देते हो ।

व्याख्या विनय और सङ्कोच देखकर प्रीतियुक्त वाणी मुनिजी बोले कि तुम नीति की रक्षा न करोगे तो कौन करेगा ? धर्मार्थ काम म सामञ्जस्य स्थापन करने वाली प्रणाली ही नीति है । रामजी म बहुत बडा नीति का पक्षपात है । आगे चलकर स्वय प्रजा से कहेंगे । जौ अनीति कछु भाखौ भाई । तौ मोहि बरजेहु भय विसराई । तुम धर्मसेतु के रक्षक हो अर्थात् जगदीश हो । यथा श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी । प्रेम विवस सेवक सुखदाता से अवतार का प्रयोजन कहा । तुम सारिखे सत प्रिय मारे । धरौ देह नहि आन निहोरे । भावार्थ यह कि यह आज्ञा माँगना मुझे मान देना है ।

दो जाइ देखि आवहु नगरु, सुख निधान दोउ भाइ ।
करहु सुफल सब के नयन, सुदर वदन देखाइ ॥२१८॥

अर्थ सुख निधान दोनो भाई जाकर नगर देख आओ और सुन्दर वदन दिखलाकर सबकी आँखो को सुफल करो ।

व्याख्या तुम दोनो भाई सुख के निधान हो । सुख वितरण करना चाहते हो । नगर देखना दिखाना तो व्याजमात्र है । जनकपुरवासियो का पुण्योदय हुआ है । उनकी आँखें सुफल हुआ चाहती है । क्योकि विषयदर्शन तो सब शरीरा की आँखो से

होता है। मनुष्य शरीर पाकर भी यदि विषयदर्शन मात्र करते रहे तो मानुषी आँखो का साफल्य क्या हुआ। इनका साफल्य तो भगवान् या भागवत दर्शन है। इनपर तुम्हारी इतनी कृपा है कि स्वय उनके नेत्रवान् होने का फल देने के लिए जाना चाहते हो अत जाओ।

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे सग लोचन मनु लोभा॥१॥

अर्थ मुनिजी के चरणकमलो की वन्दना करके ससार के नेत्रो को सुख देने वाले दोनो भाई चले। बालक लोग अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गये। उनके नेत्र और मन लुब्ध हो गये।

व्याख्या आज्ञा मिलने पर चलने के पहिले वन्दना की। दोनो भाइयो की शोभा ऐसी थी कि देखनेवाले के नेत्रो को सुख मिलता था। पहिले ही बालक मिले। सर्वत्र ही खेलते हुए पाये जाते है। बालको का स्वभाव है कि तमाशा देखने के लिए साथ हो जाते है। उनका मन लगना चाहिए और फिर तो वे साथ छोडते नही। लोचन मन लोभा कहने का भाव कि ऐसा मन लगा कि आँखे हटाये नही हटती।

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥२॥

अर्थ कमर मे पीताम्बर के साथ तरकस बँधा हुआ था और हाथो मे सुन्दर धनुष और बाण शोभायमान था। शरीर के अनुकूल सुन्दर चन्दन की खौर लगाये साँवले और गोरे की जोडी थी।

व्याख्या : जब शोभा देखकर लडको के लोचन मन लोभाने की बात कही तो शोभा वर्णन प्राप्त हो गया। बालको से घिरे हुए हैं, चरण नही दिखाई पड रहा है। इसलिए चरण का वर्णन नही किया। पीताम्बर का वर्णन करते है। कमर मे तरकस शोभित हो रहा है। हाथ मे धनुष बाण की शोभा है। यहाँ शोभा का भी वर्णन वैसा ही है जैसा कि बालक ग्रहण कर सकते है। रामजी साँवले हैं तो उनके शरीर मे केसरचन्दन की खौर लगी है और लक्ष्मणजी गोरे हैं तो उनके शरीर मे अगर चन्दन की खौर है। प्राचीनकाल मे खौर लगाने की चाल थी। हम लोगो ने भी बचपन मे खौर लगाया है। अब देखते देखते चाल उठ गई। शरीर मे चन्दन लगाकर उसपर एक प्रकार का छापा फेरते थे जिससे शरीर मे चन्दन की महीन महीन रेखाएँ बन जाती थी। चन्दन लगाने का सुख भी मिलता था और शोभा भी बढती थी। केसर मिलाने से चन्दन का रग पीला और अगर मिलाने से उसका रग श्याम हो जाता है। इसलिए श्यामशरीर से केसरयुक्त चन्दन का और गौर शरीर मे अगरयुक्त चन्दन का खौर खिलता है। यहाँ तनु अनुहरत से यही अभिप्राय है।

केहरि कंधर बाहु बिसाला । उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन । बदन[1] मयंक तापत्रय मोचन ॥३॥

अर्थ सिंह का सा कन्धा था । भुजाएँ विशाल थी । वक्ष स्थलपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ता की मालाएँ शोभायमान थी । सुन्दर लालकमल से नेत्र थे । मुख तो चन्द्रमा सा तीनो तापो को मिटानेवाला था ।

व्याख्या वीरो के ऊँचे कन्धे, चौडी छाती और लम्बी भुजाएँ होती है । इसलिए कन्धे की उपमा वृषभ या सिंह के कन्धे से देते है । यहाँ सिंह का सा कन्धा कहते है क्योकि पहिले पुरुषसिंह कह आये है । यथा पुरुष सिंह दोउ बीर । आजानु-बाहु कहते है । भुजाएँ जानु का स्पर्श करती हैं । चौडी छाती पर ही गजमुक्ता की माला की शोभा है । लालकमल जैसी मनोरम आँखो की शोभा है और मुख चाँद सा है । चाँद तो केवल आतप धूप के ताप को हरण करता है पर मुखचन्द तो आध्यात्मिक और आधिभौतिक ताप को भी हरण करता है ।

कानन्हि कनक फूल छवि देही । चितवत चितहि चोरि जनु लेही ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी । तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥४॥

अर्थ कानो मे सोने के फूल शोभा दे रहे है । देखते ही मानो चित्त को चुरा लेते है । चितवन सुन्दर है । सुन्दर भौहे टेढी है । तिलक की रेखाएँ बिजली की भाँति चमक रही है ।

व्याख्या कानो मे पड जाने से सोने के फूलो की शोभा है । सोने के फूलो से कानो की शोभा नही है यहाँ पर यह दिखलाया कि प्रभु के अङ्ग मे पड जाने से आभूषणो को शोभा है । आभूषणो मे इतना सामर्थ्य नही कि प्रभु को शोभा को बढा सके । देखते क्या है, मानो चित्त को चुराते है । आँखें ही सुन्दर नही है चितवन भी सुन्दर है । यथा अनियारे दीरघ नयन, किती न तरनि समान । वे चितवन कुछ और ही, जेहि बस होत सुजान । भृकुटी के टेढी होने को ही शोभा है । सो कमान की भाँति भौहे हैं । तिलक की रेखा तो भाल मे जाकर बिजली की भाँति चमक दे रही है । कोई कोई चाँकी का अर्थ बिजली न करके चकित अर्थ करते है । *भाव यह कि तिलक नही है शोभा की मुहर है । सत्य के प्रमाण मे मुहर* लगाई जाती है । अर्थात् तिलक ने मुहर दे दी कि यही सच्ची शोभा है ।

दो रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुदर बधु दोउ, सोभा सकल सुदेस ॥२१९॥

अर्थ सुन्दर सिरो मे चौगोसिया टोपी, काले और घुँघुराले बाल शोभित है । नख से शिखा तक दोनो भाई सुन्दर है और जिस अङ्ग की जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी थी ।

---

१. यहाँ वाचक लुप्तोपमा है ।

व्याख्या · चार कोनेवाली टोपी को चौगोसिया टोपी कहते हैं। अ
चाल नही है। पहिले लडके वैसी ही टोपी लगाते थे। नगर देखने चल
इसलिए टोपी लगाये हैं। बालो के काले और घुँघुराले होने की शोभा है
चौगोसिया टोपी बडी खिलती है। ग्रन्थकार स्वय नखशिख शब्द का प्रयोग
हैं। नख से लेकर शिख तक शोभा है। क्योंकि शरीर के जिस देश जिस
की जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा है। जैसे नाक शुक तुण्ड सी दाँ
से वक्षस्थल कपाट सा भुजाएँ हाथी के सूँड सी जँघा कदली खभ सी अ
कमल से इत्यादि।

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी

अर्थ नगर देखने के लिए राजकुमार आये हैं। यह समाचार पुरव
पाया। घर और काम छोडकर दौडे। जैसे द्ररिद्र खजाना लूटने के लिए दौडे

व्याख्या · राजा लोग तो वहुत आये हैं। पर शोभा का शोर तो रा
के विषय मे है। आने के पहिले ही समाचार फैल गया। भाव यह कि
भाई के साथ विश्वामित्रजी के पास से चले हैं। इधर सम्पूर्ण नगर मे यह
जनक समाचार फैल गया कि राजकुमार आगये। सब लोग धाम काम
दौडे कि कही चले न जायँ और हमे दर्शन न हो सके। धाम को अरक्षित
मानो उससे अब काम ही नही लेना है। काम भी आधे मे छोडा बिगड ज
इसलिए त्यागी कहा। सोचते है धाम काम मे क्या रक्खा है। सच्चा लाभ
मे है। इसकी उपमा दरिद्र के खजाना लूटने के लिए दौडने से दे रहे हैं।
धाम काम का मूल्य ही क्या है। खजाना लुट रहा है। यह समाचार सुन
भाँति रक धाम काम को विस्मरण करके अर्थ लोभ से दौडते है उसी भ
के दर्शन की लालसा इतनी वलवती है कि उसके सामने पुरवासियो मे ध
की सुधि न रह गई।

निरखि सहज सुदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई
जुवती भवन झरोखन्हि लागी। निरखहि राम रूप अनुरागी

अर्थ सहज सुन्दर दोनो भाइयो को देखकर वे लोग लोचन का फ
सुखी हो रहे हैं। युवतियाँ घर के झरोखो से लगी हुई रामजी के रूप मे
होकर देख रही हैं।

व्याख्या शृङ्गार से रामजी की शोभा मे आधिक्य नही होता बलि
ढक जाती है। इसलिए दोनो भाइयो को सहज सुन्दर कहा। ससार मे
शोभा बढाने के लिए किया जाता है। क्योंकि वहाँ सहज सुन्दरता नही।
सहज सुन्दरता नगरवासियो के लिए निधि थी। इसी शोभा की लूट मे भ
के लिए दौडे थे। ऐसी ही शोभा की लूट से आँख होने का फल मिलता है।

: कि प्रभु की शोभा देखकर कृतकृत्य हो रहे हैं। युवतियाँ परदानशीन हैं। झरोखे से खुले नही देख सकती। पल्ले की आड से देख रही हैं। वे लोचनफल पाकर (त नही हुईं। बल्कि अनुराग मे पगी हुई देख रही हैं। परदा का नियम नया ा है। वाल्मीकी रामायण, महाभारत तथा स्वय वेद मे भी परदा करने का ोख पाया जाता है। विषयान्तर के भय से यहाँ पर अधिक नही लिखा सकता।

हि परसपर वचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती ॥
नर असुर नाग मुनि माही। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाही ॥३॥

अर्थ वे आपस मे प्रीति सहित वचन कहती हैं हे सखि! इन्होने करोडो की छवि जीत ली है। सुर, नर, असुर, नाग और मुनियो मे ऐसी शोभा कही नही जाती।

व्याख्या यहाँ पर अष्टसखी सम्वाद कहेगे। अपरा प्रकृति का मोहित होना ष्टसखी का सम्वाद है। राम ब्रह्म पर आठो प्रकृतियाँ मोहित है। भूमिरापोऽनलो ख मनो बुद्धिरेव च। अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। भूमि, जल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ये आठ अपरा प्रकृतियाँ है। ये ठ प्रकृतियाँ आठ सखी है। सखी सखी से हृदय की बात खोलकर आपस मे है। सप्रीति कहने का भाव यह कि एक ही भाव से भावित हैं। यह सखी मोहित होना कहती है और अलौकिक सुन्दरता कहकर मोहित न होने को व बतला रही है। घर के बाहर नही निकलती इसलिए कहती है कि ऐसी सुर, नर, असुर, नाग और मुनियो मे सुनी नही जाती। सूर्पनखा सम्पूर्ण मे विचरण करती थी अत उसने सुनियत नही कहा। उसने कहा मम पुरुष जग माही। देखेउ खोजि लोक तिहुँ नाही। इससे यह भी प्रमाणित : कि मनुष्य लोग केवल पाँच जातिया म ही शोभा का अनुभव कर सकते र, नर, असुर, नाग और मुनि को छोडकर उनके मुग्ध होने योग्य शोभा ही है।

चारि भुज विधि मुख चारी। विकट भेष मुख पच पुरारी ॥
देउ अस कोउ न आही। यह छवि सखी पटतरिअ जाही ॥४॥

अर्थ विष्णु को चार हाथ है। ब्रह्मदेव को चार मुख हैं। शिवजी को पाँच और वेप भी विकट है। दूसरा देवता कोई ऐसा है नही जिससे इस छवि का दिया जाय।

व्याख्या अस्वाभाविक अङ्गवृद्धि से विष्णु और विधि की शोभा की हानि वजी को अङ्ग वृद्धि भी अधिक है और वेप भी विकट है। काम का जीतना ी कह चुकी हैं। भुसुण्डिजी भी कहते हैं राम काम सत कोटि सुभग तन

रह गये इन्द्रादि, सो कोई पटतर योग्य नही है। जब ये लोग ही कुछ न ठहरे तब नर, नाग, असुर की गिनती ही क्या ? अत केवल देवो का उदाहरण दिया।

दो. वय किसोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहि, कोटि कोटि सत काम ॥२२०॥

अर्थ : अवस्था किशोर परम शोभा के घर श्याम गौर शरीर सुख के धाम है। इनके अङ्ग अङ्ग पर करोड़ो काम निछावर हैं।

व्याख्या : इस किशोरावस्था मे कुरूप भी सुन्दर मालूम पडते है। ये तो परमा शोभा के धाम हैं। इनकी शोभा के लिए क्या कहा जाय। एक एक अङ्ग पर करोड़ो काम निछावर है। अतः इनमे शोभा की परमिति बतला रहो है।

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह अस रूप निहारी॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मै सुना सो सुनहु सयानी ॥१॥

अर्थ : हे सखि ! कहो ऐसा कौन शरीरधारी है जो यह रूप देखकर मोहित न हों। तब कोई सखी मृदु वाणी प्रेम से बोली। जो मैंने सुना है उसे हे सयानी ! सुनो।

व्याख्या : यदि मैं मोहित हो गई तो इस रूप के देखने पर सभी शरीरधारी मोहित हो जावेंगे। अत. आक्षेपार्थक प्रश्न करती है। यह रूप से अङ्गुल्या निर्देश करके रूप की परमोत्कर्षता सूचित करती है। यह सखी अहङ्कार तत्त्व है।

अब दूसरी सखी कहती है। यह प्रेम से मृदुवाणी बोलती है। पहिली सखी भी प्रेम से बोली थी पर उसके बोलने में मृदुता की मात्रा कम थी, अहङ्कार का पुट था। इसके बोलने मे प्रेम और मृदुता दोनो है। यह कहती है कि तुम सयानी हो। जिसके ऊपर इतनी आसक्ति है उसका परिचय भी जानना चाहिए। जो शब्द सुना है वही सुनाना चाहती है। यह आकाश तत्त्व है। सम्भवतः पति से सुना है। इसीलिए सुनानेवाले का नाम नही लेती।

ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥२॥

अर्थ : ये दोनो दशरथ के बेटे है। हस के बच्चो की सुन्दर जोडी है। विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं। जिन्होंने रणाङ्गण मे राक्षसो को मारा है।

व्याख्या : महाराज दशरथ का नाम जगत् मे प्रख्यात है। इसलिए अयोध्याधिपति आदि विशेषण नही दे रही है। राजा दशरथ हस हैं। उनके ये दोनो बेटे हसकुमार हैं। इनकी जोड़ी बडी सुन्दर है। बाल मराल कहकर सौन्दर्य, विवेक और उत्तम गति द्योतित की। अब धर्म-कर्म कहती है। कौशिक मुनि का तपबल जगत् प्रसिद्ध है। राजर्षि से ब्रह्मर्षि पद लाभ किया है। उनमे अस्त्रबल द्योतित करने के

लिए विश्वामित्र न कहकर कौशिक राजा कुश के वश मे उत्पन्न मुनि कहा। उनसे जिस यज्ञ की रक्षा न हो सकी उस यज्ञ की इन्होने रक्षा की है। ऐसे पराक्रमी और धर्मात्मा हैं। यज्ञ के विघ्नकारी बलवान् राक्षस थे। उन्हें इन लोगो ने रणाङ्गण मे मारा। इससे बल और शौर्य कहा।

स्याम गात कल कज विलोचन। जो मारीच सुभुज मद मोचन ॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी ॥३॥

अर्थ स्याम शरीर सुन्दर कमल सी आँखे जिन्होंने मारीच और सुबाहु के मद को तोड डाला है वे आनन्द की खानि कौसल्या के बेटे हैं। नाम इनका राम है। धनुष बाण हाथ मे लिए हुए हैं।

व्याख्या दोनो भाई भीड के बीच मे है। उन्हे लखाने के लिए रूप कहकर हाल कहती हैं। सुन्दर साँवली मूर्ति और कमल सी आँखें जिनकी हैं। उन्होने मारीच और सुबाहु के मद को चूर्ण किया है। भाव यह कि रण अजिर मे निशाचरो का सहार करनेवाले तो दोनो भाई हैं पर उनमे से जो दोनो प्रधान थे वे इन्ही के हाथ से पराभव का प्राप्त हुए है। मारीच मारा नही गया। इसलिए मदमोचन कहती है।

पिता एक कहकर माता मे भेद बतलाती है कि ये तो कौसल्या के बेटे है। इनका नाम राम है। धनुसायक पानी कहकर खलवध मे निरत रहना द्योतित करती है। राम सुखरूप हैं। यथा सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी। कौसल्या सुखखानि हैं। यथा प्रगट्यौ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू।

गौर किसोर बेपु बर काछे। कर सर चाप राम के पाछे ॥
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥४॥

अर्थ गौर शरीर, सुन्दर वेष, कसे कसाये धनुषबाण हाथ मे रामजी के जो पीछे है उनका नाम लक्ष्मण है। ये रामजी के छोटे भाई है। हे सखि! सुन, इनकी माँ सुमित्रा हैं।

व्याख्या वेषबर काछे का भाव यह कि रामजी की रक्षा के लिए कसे कसाये तैयार है। पीछे पीछे चले आ रहे है क्योकि छोटे भाई है। इनका नाम लक्ष्मण है। ये भी दशरथ के पुत्र है। पर इनकी माता सुमित्रा है। जो मैं सुना सो सुनहु से उप क्रम करके सुनु सखि से उपसहार कर रही है। क्योकि परिचय दे चुकी।

दो विप्रकाज करि बधु दोउ, मग मुनिबधू उधारि ॥
आए देखन चापमख, सुनि हरषीं सब नारि ॥२२१॥

अर्थ ब्राह्मण का कार्य करके दोनो भाई रास्ते मे मुनिवधू का उद्धार करते धनुषयज्ञ देखने आये है। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठी।

व्याख्या परिचय देने के बाद जनकपुर आगमन का प्रयोजन कहती है।

पहिले दोनो भाइयो ने यज्ञ की रक्षा करके विश्वामित्रजी का कार्य किया। रास्ते चलते मुनि वधू का उद्धार किया। सतानन्दजी राजपुरोहित हैं। उन्ही के माता पिता अहल्या और गौतम मुनि थे। अत मुनिवधू के शापित होने की कथा जनकपुर वासियो मे विशेष रूप से प्रख्यात थी। इसलिए नाम से परिचय न देकर मुनिवधू उधारि एतावन्मात्र कहने से अहिल्योद्धार सबने जान लिया। इससे परमप्रभुता और पावनता कही। धनुषयज्ञ देखने आये है। भाव यह कि ये भी धनुष की परीक्षा करेंगे। यह सुनकर सब स्त्रियो को हर्ष हुआ। सबके हृदय मे श्रीजानकी जी के इनसे विवाह की सम्भावना जागरूक हुई। अत सब हर्षित हुईं।

देखि राम छवि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई ॥
जो सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करै बिवाहू ॥१॥

अर्थ रामजी की छवि देखकर कोई एक सखी कह उठी कि यह वर जानकी जी के योग्य है। यदि सखि! इन्हे राजा देखले तो अपना प्रण छोडकर हठ पूर्वक इनसे व्याह कर देगे।

व्याख्या तीसरी सखी बोलना ही चाहती है कि प्रभु सामने आ गये। अत कहती है कि जानकी के योग्य वह वर है। राजा लोग तो बहुत आये पर जानकी के योग्य वर कोई नही। स्त्रियाँ वर की योग्यता अयोग्यता की समालोचना किया करती हैं। स्वय रूप देखकर रूप देखने का फल कहती है। यह तेजस्तत्त्व है।

मालूम होता है कि राजा ने इन्हे देखा नही। योग्यता को दृढ करती है। यदि देख लें तो ऐसे योग्य वर के लिए प्रण छोड दें। प्रण और हठ मे भेद दिखलाती है प्रण छोडना अनुचित है और अनुचित के पक्षपात को ही हठ कहते हैं।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने ॥
सखि परतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई ॥२॥

अर्थ किसी ने कहा इन्हे राजा पहिचानते हैं। मुनिजी के साथ इनका आदर पूर्वक सम्मान किया है। परन्तु सखि! राजा प्रण नही छोडता। होनहार के वश मे पडा हुआ हठ करके अविवेक को अपनाये हुए है।

व्याख्या चौथी बोली देखने की बात नही जान पहिचान है। मुनि का तो आदर सम्मान प्राप्त ही था। इनका भी आदर सम्मान किया। नगर मे लाकर टिकाया। यह सखी प्रेमवश प्रणरक्षा को अविवेक बतला रही है। इसका तर्क यह है कि जो कुछ प्रण हुआ है वह जानकी के योग्य वर मिलने के लिए ही हुआ है। जब योग्य वर मिल गया तब प्रण पर अडे रहना अनुचित है। होनहार बलवान् है। ऐसा विवेकी राजा अविवेक से काम ले रहा है। अपने प्रण पर अडा हुआ है। यह उचित अनुचित का विचार अपने पसन्द के अनुसार करती है। तमोबहुल है। विवेक को अविवेक और अविवेक को विवेक समझती है। यह पृथ्वी तत्त्व है।

कोउ कह जौ भल अहइ विधाता । सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । नाहिंन आलि इहाँ संदेहू ॥३॥

अर्थ किसी ने कहा कि यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि सबको उचित फल देनेवाले है तो जानकी को यही वर मिलेगा। हे आली ! इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या पाँचवी सखी बोली राजा भले ही विधिवश अविवेक को भजें पर यदि ब्रह्मा भले है *न्यायकारी है तब तो जानकी को यही वर मिलेगा। यदि* यह वर न मिला तो ब्रह्मा बुरे। ब्रह्मदेव के भले बुरे की परख जानकी के योग्य वर मिलने न मिलने मे कर रही है।

राजा का तो भरोसा नही यह प्रण न छोडेगा। विधि का भरोसा है। वे विधि बैठा देगे तो सबका मनोरथ पूर्ण होगा। इसे शुद्ध प्रेम कहते है। स्वय मोहित हैं पर विवाह उनका जानकीजी से चाहती हैं।

जौ बिधि बस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥
सखि हमरे आरति अति ताते । कबहुक ए आवहिं एहि नाते ॥४॥

अर्थ यदि विधिवश ऐसा सयोग बैठ जाय तो सबलोग कृतकृत्य हो जायँ। हे सखि ! मुझे इसलिए अत्यन्त आर्ति है कि कभी ये इस नाते से आवेगे।

व्याख्या मनोरथ पूर्ति न होने से ब्रह्मदेव को बुरा कहना विवाह हो जाने से सबको कृतकृत्य मानना अति आरत होने का लक्षण है। अत कहती है कि विवाह के नाते से आना होगा तो हम लोगाको भी दर्शन मिल जायगा। यह सखी दर्शन के लिए आर्त है लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधुवर वारी। रूप बिंदुजल होहिं सुखारी। यह सखी जल तत्त्व है।

दो नाहि त हम कहुँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि।
यह सघटु तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि ॥२२२॥

अर्थ नही तो हे सखि ! हमको इनका दर्शन दुर्लभ है। यह सयोग तो तब बन सकता है जब पूर्व जन्म का बडा पुण्य हो।

व्यारया इस बार तो ये धनुषयज्ञ देखने यहाँ आगये हैं। राजा के लडके ठहरे। घर जाकर राज मे फँस जावेगे। यहाँ आने के लिए कोई कारण नही रह जायगा। यही लोग यहाँ आवें तो दर्शन मिल सकता है। हमारा जाना तो हो नही सकता। अत यदि हम लोगो का पूर्वजन्म का अत्यन्त पुण्य होगा तो यह सयोग बन जायगा। ब्याह हो जाने पर आना जाना लगा रहेगा। हम लोगो को दर्शन मिला करेगा।

बोली अपर कहेहु सखि नीका । येहि बिबाह अति हित सबही का ॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा । ये स्यामल मृदु गात किसोरा ॥१॥

अर्थ दूसरी ने कहा कि सखि ! तुमने अच्छा कहा। इस विवाह मे सभी का अत्यन्त हित है। किसी ने कहा कि शङ्कर का धनुष कठोर है और ये साँवले कोमल शरीरवाले अभी बच्चे हैं।

व्याख्या छठी सखी बोली। यह अपने से पहिले बोलनेवाली सखी का समर्थन करती है कि इस विवाह मे सभी का अर्थात् राजा का, रानी का, पुरजन का, हमारा और स्वय रामजी का अतिहित है। सबमे अतिहित का सञ्चार करती है। यह वायु तत्त्व है। अतिहित कहने का भाव यह है कि इसम लाभ ही लाभ है। हानि का लेश भी नही है।

सातवी कहती है कि किसी भाँति सामञ्जस्य ही नही बैठता। कमठ पीठ की भाँति यह धनुष कठोर है और ये रघुनन्दन मधुरमूर्ति हैं। ये कैसे इसे चढा सकेंगे। जनकजी का प्रण अत्यन्त दारुण है। यह सशय करती है। मनस्तत्त्व है।

सबु असमजस अहइ सयानी। येहि सुनि अपर कहइ मृदु बानी ॥
सखि इन्ह कह कोउ कोउ अस कहही। बड प्रभाउ देखत लघु अहही ॥२॥

अर्थ हे सयानी ! सभी प्रकार तो असमञ्जस है। यह सुनकर दूसरी ने कोमल वचन कहे। सखी ! इनको तो कोई कोई ऐसा बतलाते हैं कि इनका प्रभाव बडा है। देखने मे ही छोटे हैं।

व्याख्या अपने कहने का निष्कर्ष कह रही है कि किसी प्रकार से भी बात बैठती नही मालूम होती। इस बात का खण्डन करती हुई आठवी सखी बोली कि मृदुगात और किशोरावस्था होने से इन्हे थोडा न समझना। मैं स्वय नही जानती परन्तु जानकारो का यह कहना है कि ये देखने मे ही छोटे हैं। प्रभाव इनका बडा है। जानकार लोग बिरले ही होते हैं। इसलिए कोउ कोउ कहती है।

परसि जासु पद पकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहि बिनु सिवधनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरे ॥३॥

अर्थ जिनके चरण कमलो के रज के स्पर्श से पत्थर बनी हुई अहल्या जिसने बडाभारी पाप किया था तर गई। यह क्या बिना शिवधनु तोडे रहेगे। ऐसा विश्वास भूलकर भी न छोडना।

व्याख्या अहल्या का इतना बडा पाप था कि सद्य पत्थर हो गई थी। वह जिसके चरणकमल की धूलि पडने से तर गई। यथा रामपद पदुम परागपरी। रिषि तिय तुरत त्यागि पाहन तनु छबिमय देह धरी। प्रबलपाप पतिसाप दुसह दव दारुन जरनि जरी। कृपासुधा सिंचि बिबुध बेलि ज्यों फिरि सुख फरनि फरी। पत्थर के बन्धन से छूट गई। जडता नष्ट हो गई। वह स्वय धनुष की जडता अवश्य नष्ट करेंगे। धनुष की जडता ही गुरुता है। यथा निज जडता लोगन पर डारी। होउ हरुअ रघुपतिहि निहारी। हमलोगो के हित की सिद्धि धनुष टूटने म है। सो विश्वास बिना कोई सिद्धि नही होती। यथा कौनिउ सिद्धि न बिनु

विस्वासा। विश्वासत्याग से सिद्धि नही होती। युक्तियुक्त बात पर क्यो विश्वास नही करती ? इसलिए विश्वास को भूलकर भी नही छोडना।

जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी॥४॥

अर्थ जिस ब्रह्मा ने सीता को रचकर सुन्दर बनाया है। उसी ने विचार कर साँवरे वर को भी रचा है। इसका वचन सुनकर सब प्रसन्न हो गईं। और सुखी होकर कहने लगी कि ऐसा ही हो।

व्याख्या सीताजी के जन्म के पहिले ही ब्रह्मा ने विचार किया कि लोक-सुन्दरी सीता को रचना है। तो उसके लिए वर पहिले ही रचना चाहिए। अत इन्हे विचारकर पहिले से ही रच रक्खा है। तब सीताजी को ऐसी सुन्दरी बनाया है। यह निश्चय करती है। बुद्धि तत्त्व है। ऐसी आशा भरी बात आठवी सखी की सुनकर सब सखियाँ आनन्दित हो उठी। सबको सुख मिला अत आशीर्वाद देती हैं कि ऐसा ही हो।

दो हिय हरषहिं बरषहिं सुमन, सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ, तहँ तहँ परमानंद॥२२३॥

अर्थ सुन्दर मुखवाली और सुन्दर आँखोवाली युवतिया हृदय से हर्षित होती हैं। और फूलो की वर्षा करती हैं। जहाँ जहाँ दोनो भाई जाते हैं वही वही परम आनन्द होता है।

व्याख्या सर्वत्र ही यही दशा है। जहाँ जहाँ दोनो भाई जाते हैं परमानन्द मच जाता है। सुमुखि सुलोचनि फूल बरसाती है। अपरा प्रकृति सर्वत्र ही एक सी है। अत सर्वत्र ही एक सी क्रिया हो रही है। यह सरकार के ऊपर पहिली पुष्पवर्षा है। जो जनकपुर की सुमुखि सुलोचनिवृन्द द्वारा हो रही है। एकबार पहिले जन्म के उपलक्ष म देवताओ द्वारा हुई थी। पर वह अयोध्या म हुई थी। सरकार के ऊपर नही। यह पुष्पवर्षा स्वय प्रभु के ऊपर हो रही है। यह सत्कार पुरवासियो द्वारा हो रहा है।

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी॥१॥

अर्थ दोनो भाई पुर के पूरब की ओर गये। जहाँ धनुषयज्ञ के लिए भूमिका तैयार की गई थी। अत्यन्त विस्तृत सुन्दर गच ढाली गई थी। निर्मल सुन्दर वेदी सँवारी गई थी।

व्याख्या धनुषयज्ञ म भगवान् भूतभावन की पूजा होती है। मेध्य पशुओ की बलि होती है। यथा आरभ्यता धनुर्यागश्चतुर्दश्या यथाविधि। विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे। भा। और शस्त्रकौशल तथा बल की परीक्षा

होती है। धनुषयज्ञ के एक दिन पहिले ही भूमिका देखने गये। प्रभु पश्चिम दिशा से आये हैं। पुर बाहिर सरसरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा। यह हाल पुर के पश्चिम दिशा का है। धनुषयज्ञ की भूमिका देखने की उत्कण्ठा है। वह पुर के पूर्व की ओर है। वही दोनो भाई गये।

गच के ढालने की विद्या पहिले थी। अब नही है। दक्षिण के मन्दिरो मे ढाले हुए पत्थर लगे पाये जाते हैं। ग्रन्थकार ने काँच के गच का उल्लेख अन्यत्र किया है। अत गच का ढाला जाना सिद्ध है। उसपर सुन्दर विशुद्ध वेदिका बनायी गई थी। जिसपर धनुषयज्ञ होनेवाला था।

चहु दिसि कचन मच विसाला। रचे जहाँ बैठहि महिपाला॥
तेहि पाछे समीप चहु पासा। अपर मच मडली विलासा॥२॥

अर्थ चारो ओर सोने के बडे बडे मञ्च कोच बने थे। जिसपर राजा लोग बैठते हैं। उसके पीछे पास ही चारो ओर दूसरे मञ्चो की मण्डली लगी थी। जो मञ्च आदि का विधान धनुषयज्ञ म शास्त्रोक्त है। यथा मञ्चा क्रियन्ता विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिता। भा।

व्याख्या राजा लोग स्वर्णसिहासन पर बैठनेवाले हैं। अत उनके बैठने के लिए सोने के ही मञ्च बनाये गये थे। और वे सब बडे बडे बनाये गये थे। जिनमे राजा लोग समाज सहित बैठ सकें। उस मञ्चमण्डली के पीछे दूसरी मञ्चमण्डली थी। जो सोने की नही थी।

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहि नगर लोग जहँ जाई॥
तिन्हके निकट विसाल सुहाए। धवल धाम बहु बरन बनाए॥३॥

अर्थ कुछ ऊँची और सब भाँति सुन्दर थी जिसपर नगर के लोग जाकर बैठते थे। उसके निकट विशाल और सुन्दर अनेक रग के उज्ज्वल गृह बनाये गये थे।

व्याख्या यह दूसरी मञ्चमण्डली भी सब भाँति सुन्दर है और कुछ ऊँचे पर है। जिसमे आगे राजाओ के बैठने पर भी सामना न रुके। उस मञ्चमण्डली के निकट अर्थात् पीछे की ओर उज्ज्वल धाम बनाये गये थे जहाँ पुरुषों की पहुँच न हो सके। प्रत्येक वर्ण के लिए पृथक् रङ्ग से वे धाम रँगे थे। इसलिए बहुवरन कहते हैं।

जहँ बैठे देखहि सब नारी। जथा जोगु निज कुल अनुहारी॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहि रचना॥४॥

अर्थ जहाँ सब नारियाँ यथायोग्य अपने अपने कुल के अनुरूप स्थानो पर बैठी हुई धनुषयज्ञ देख सकें। पुर के बालक मृदु वचन कह कहकर आदर के साथ रचना दिखला रहे हैं।

व्याख्या यहाँ पर बैठकर देखने की व्यवस्था है खडे होकर नही। यथा · जहाँ बैठे महिपाला। बैठहि नगर लोग जहँ जाई। जहँ बैठे देखहि सब नारी। कुल की प्रतिष्ठानुसार स्त्रियाँ परदे मे या परदे से बाहर बैठकर देख सकें। बालकवृद देखि अति सोभा। लगे सग लोचन मन लोभा। सो वही से सग लगे हुए हैं। यहाँ ले आये। अब रचना दिखला रहे हैं। जब से भूमिका मे हाथ लगा तब से ये बालक लोग रचना देख रहे हैं। अत रचना इनकी भलीभाँति देखी हुई है। अब उसे प्रभु को दिखाते हैं। देखने योग्य स्थानो मे लिवा ले जाते हैं। बात करने मे सुख का अनुभव करते है।

दो सब सिसु एहि मिस प्रेमबस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहि अति हरपु हियँ, देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

अर्थ सब बच्चे इस बहाने से प्रेम के वश होकर शरीर का स्पर्श करके पुलकित होते है और दोनो भाइयो को देखकर मन मे हर्पित होते है।

व्याख्या सब बालक प्रेम के वश है। प्रभु का स्पर्श करना चाहते हैं। दिखाने का बहाना उन्हे मिल गया है। उसी बहाने से प्रभु के मङ्गलमय मनोहर शरीर का स्पर्श करते हैं। स्पर्श से इतना बडा आनन्द होता है कि उन्हे रोमाञ्च हो जाता है। यथा ब्रह्मसस्पर्शमत्यन्त सुखमश्नुते। गी। ब्रह्मसस्पर्श मे अत्यन्त सुख होता है। नेत्रो से दोनो भाइयो को देखने से मनमे हर्ष होता है। अब शब्द के अनुभव के लिए सादर रचना दिखलाते हैं।

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहि दोउ भाई॥१॥

अर्थ रामजी ने सब बालको को प्रेम वश जाना। अत प्रीति के सहित घरो की प्रशसा करने लगे। अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब बुलाते है और स्नेह के सहित दोनो भाई चले जाते है।

व्याख्या शिशुओ के स्पर्श से चिढते नही। समझते है कि ये प्रेम के वश मे हैं। वे मेरी वाणी भी सुनना चाहते है। अत आप जिन जिन घरो को उन लोगो ने दिखाया उनकी प्रशसा करने लगे। इन्द्रियो के तर्पण से बालको को बडा आनन्द हो रहा है। अब वे अपनी अपनी रुचि के अनुसार वस्तु दिखलाने के लिए सहित सनेह बुलाते है और ये सहित सनेह चले जाते हैं। इससे सरकार का स्वभाव कहा कि इतने बडे प्रभु होने पर भी भक्त के स्नेह सहित बुलाने पर स्नेह सहित चले आते है।

राम देखावहि अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव[१] निमेप महुँ भुअन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया॥२॥

---

१ पलक के गिरने के समय को निमेप कहते है। उसका छठा भाग लव है अर्थात् छ लव का एक निमेष होता है।

अर्थ : कोमल मधुर और मनोहर वचन कहकर रामजी छोटे भाई को रचना दिखलाते हैं। जिसकी आज्ञा से माया निमेष : पलक पड़ने का समय के भी अंश मे ब्रह्माण्ड समूहो को रच डालती है।

व्याख्या : सादर होने से मृदु सरस होने से मधुर और सुस्वर होने से मनोहर कहा। बालको की प्रसन्नता के लिए स्वयं देखते हैं और छोटे भाई को दिखाते है। जानते है कि इन रचनाओ की प्रशसा से और हमारे चकित होने से ये बालक प्रसन्न होगे। यहाँ पर अति माधुर्य का वर्णन किया। अत ऐश्वर्य भी साथ ही साथ ग्रन्थकार कहते है। क्योंकि ऐश्वर्य का ध्यान विना रहे भक्ति जार लोगो की आसक्ति की भाँति हो जाती है। यथा . तद्विहीन जाराणामिव। ना सू। विकासवाद का सिद्धान्त अत्यन्त सङ्कीर्ण है। सृष्टि क्रम से नही होती युगपत् होती है। स्वप्न की सृष्टि की भाँति रचना के लिए काल चाहिए। सो पलक मारने के पहिले ही माया अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर डालती है और माया मे यह शक्ति प्रभु के द्वारा आती है। यथा ' सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचित माया।

भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुप मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाही। जानि विलंबु त्रास मन माही॥३॥

अर्थ : भक्ति के लिए वही दीनदयाल चकित होकर धनुप यज्ञशाला देख रहे है। कौतुक देखकर गुरुजी के पास चले। विलम्ब जान करके मनमे त्रास है।

व्याख्या : ऐसे प्रभु का चकित होकर धनुपमखशाला निरीक्षण करना केवल नाट्य है। भक्त और दीनो की प्रसन्नता के लिए यह नाट्य हो रहा है। यथा : अनेक वेप धरि नृत्य करै नट कोय। धनुपयज्ञशाला देखने का कौतुक था सो देख चुके। अब लौटते है। धनुपयज्ञशाला पहिले नही देखी थी। इसलिए उसके देखने के लिए कौतुक था। एक याम दिवस रहा तब डेरे से चले थे और सन्ध्या के पहिले लौट रहे है। फिर भी मनमे गुरुजी का त्रास है। नगर देखाइ तुरत लै आवो कहा था। सो कुछ देर तो अवश्य हो गई।

जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए विदा बालक बरिआईं॥४॥

अर्थ : जिसके त्रास से डर को डर होता है वही भजन प्रभाव दिखा रहा है। मृदु मधुर और सोहाई बातें कहकर बालको को जबरदस्ती विदा किया।

व्याख्या : प्रभु डर के भी डर हैं। यथा : भयानां भय भीपण भीपणानाम्। जिसके द्वारा लोगों को अभयपद प्राप्त होता है उसे डर कहाँ? यह डर भी नाट्य है। भजन का प्रभाव इससे दिखाते हैं कि भगवान् भक्त से भयभीत भी रहते हैं।

बालको ने प्रेमवश हो प्रभु को बहुत दिक किया पर प्रभु प्रसन्न है। अब इनका साथ छोड़ना है। विना छोड़े तीव्र गति नहीं हो सकती और ये सब साथ

छोडना नही चाहते। अत जबरदस्ती उन्हे विदा करना पडा। फिर भी प्रभु ने मृदु मधुर और मनोहर बातें कहकर ही हटाया।

दो सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरुपद पकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

अर्थ दोनो भाई अत्यन्त विनीत है। भय प्रेम और सङ्कोच के साथ गुरु के चरणकमल मे सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे।

व्याख्या विलम्ब से भय गुरु चरणो मे प्रेम स्वाभाविक जो कहा था सो ठीक न कर सकने का सङ्कोच। इन भावो से भावित हो दोनो भाइयो ने गुरुजी के चरण कमलो की वन्दना की। वन्दना करके हाथ जोडे खडे है। जब गुरुजी ने आज्ञा दी तब बैठे। इसे विनय कहते है।

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबही सन्ध्या बदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥१॥

अर्थ रात्रि के प्रवेश होने पर मुनिजी ने आज्ञा दी। सभी लोगो ने सन्ध्या-वन्दन किया। पुरानी कथा और इतिहास कहते हुए सुन्दर रात्रि के दो पहर बीत गये।

व्याख्या मुहूर्तोन दिन नक्त प्रवदन्ति मनीषिण। पण्डितो ने एक मुहूर्त दिन रहते ही रात बतलायी है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक मुहूर्त दिन रहते ही मुनिजी ने सबको सन्ध्यावन्दन की आज्ञा दी। क्योकि वाराह पुराण मे साय सन्ध्यावन्दन का काल बताया है। सूर्यास्त से पहिले और ताराओ के प्रकट होने के पहिले तक। सूर्य के तेज की हानि न हो तब तक और प्रात काल सूर्य के आधे उदय के पहिले तक सन्ध्या होती है। यथा अर्वागस्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेज परिहानिवशाद्भानोरर्धोदय यावत्। प्रभुहि मिलन आई जनु राती। देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी सध्या अनुमानी। ब्रह्म जीव की सन्धि सन्ध्या है। गुरु की सेवा प्रधान है। उसी मे सब लोग लगे है। अत समय आते ही गुरुजी ने आज्ञा दी।

ऋषियो के साथ प्रभु भी एकभुक्त व्रत कर रहे है। सन्ध्यावन्दन के बाद पुण्यकथा होने लगी। अनधिकार चरचा नही की जाती। अर्द्धरात्रि के पहिले नही सोना चाहिए। अत कथा वार्ता मे आधी रात हो गई।

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई ॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत विविध जप जोग विरागी ॥२॥

अर्थ तब मुनीश्वर ने जाकर शयन किया। दोनो भाई प्रेम से गुरुजी का पाँव दबाने लगे जिनके चरणकमल के लिए विरक्त लोग अनेक प्रकार के जप और योग किया करते हैं।

व्याख्या कथा से उठकर गुरुजी ने शयन किया। रास्ता चलकर आये हैं। अत थकावट निवारण के लिए प्रभु गुरुजी के पाँव दबाने लगे। गुरुजी की सेवा बिना आज्ञा पाये भी करनी चाहिए।

प्रभु के चरणकमलो को तो शङ्करजी ने अपने हृदय मे छिपाकर रक्खा है। जे हर हृदय कमल महँ गोए। अत उनकी प्राप्ति के लिए विरक्त पुरुष जप और योग करते है। जो विरक्त नही है उसे प्रभु के चरणो की प्राप्ति की इच्छा ही नही होती। अत उसका अधिकारी विरागी ही है। यथा जेहि लागि विरागी अति अनुरागी। जप और योग ही उसका साधन है। नाम निरूपण नाम जतन ते। सो प्रगटत जनु मोल रतन ते। इसलिए जप करते है। उससे थकते है तब ध्यान करते हैं। ध्यान से थककर फिर जप करते हैं। इस प्रकार साधन करते है।

तेइ दोउ बधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥३॥

अर्थ वे ही दोनो भाई मानो प्रेम से जीते गये। प्रेम स गुरुजी का पाँव दबा रहे हैं। बार बार मुनिजी ने आज्ञा दी तब रघुवर ने जाकर शयन किया।

व्याख्या ये अजित हैं। किसी से जीते नही जाते। पर प्रेम इन्हे माना जीत लेता है। यथा भगति अवसहिं बस करी। गुरुजी के प्रेम के इतने वश्य हो गये हैं कि प्रीति से पाँव दबा रहे हैं।

एकबार के कहने पर सेवा से उपरत नही होना चाहिए। जिसे सेवा म प्रेम है वह उसे शीघ्र छोडना नही चाहता और बडे लोग अधिक सेवा लेना नही चाहते। अत मुनिजी के बार बार आज्ञा देने पर राम जी ने जाकर शयन किया। लक्ष्मण जी ने शयन नही किया। इसलिए रघुवर जाइ सयन तब कीन्ही कहते हैं।

चापत चरन लखनु उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाए॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढे धरि उर पद जलजाता॥४॥

अर्थ : लक्ष्मणजी हृदय मे लगाये हुए भय प्रेम और परम सुख से पैर दाब रहे है। बार बार प्रभु ने कहा कि भैया! सोओ। तब चरणकमल को हृदय म धारण करके लेट गये।

व्याख्या लक्ष्मणजी को अत्यन्त प्रेम है। इसलिए चरण को हृदय म लगाये हुए दाब रहे हैं। दबाने में बेमौके दब न जाय इसलिए भय भी है। दबाने से प्रभु का सुख भी मिलेगा इसलिए प्रेम है। रात बहुत बीती। फिर भी शीघ्रता नही। निद्रा का आनन्द भी इस सेवा के आनन्द के सामने कुछ भी नही है। अत परम सचु पाए लिखा।

सोने म अतिकाल हो रहा है। इसलिए प्रभु की आज्ञा बार बार सोने के लिए हुई। तब जिस चरणकमल को हृदय मे लगाकर दाब रहे थे उसी को हृदय म रखकर पौढ गये। अर्थात् लेटे, सोये नहीं। प्रभु के घर व बाहर निकलने पर

लक्ष्मणजी नही सोते। रक्षा के लिए सदा जागरूक है। यथा कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। तेहि पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषग कर बान सरासन। अत प्रभु की आज्ञा मानकर लेट गये। पर निद्रा के वशीभूत नही हुए।

दो उठे लखनु निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिलेहि जगतपति, जागे रामु सुजान ॥२२६॥

अर्थ रात बीतने पर मुर्गे का शब्द कान से सुनकर लक्ष्मणजी उठे और गुरुजी से पहिले जगत्पति रामसुजान जागे।

व्याख्या मुर्गा के पहली बार बोलते ही लक्ष्मणजी उठ पडे। पहर रात रहते ही मुर्गा बोलता है। तभी से दिन माना जाता है। इसीलिए रात्रि का नाम त्रियामा तीन पहरवाली है। पहर भर रात रहते ही जागने का विधान है। यथा पहिले पहर भूप नित जागा। उसी समय रामजी जागे। लक्ष्मणजी पौढे थे अत उनके लिए उठे लिखा। रामजी सोये थे अत उनके लिए जागे लिखा। शास्त्र का विधान है कि शिष्य गुरु से पीछे सोये और पहिल उठे। तदनुसार प्रभु भी गुरुजी के पीछे सोये और पीछे उठे।

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥१॥

अर्थ सब शौच करके जाकर स्नान किया। नित्य कर्म का निर्वाह करके मुनिजी को प्रणाम किया। समय जानकर और मुनिजी की आज्ञा पाकर दोनो भाई फूल लेने चले।

व्याख्या शौच दो प्रकार का होता है। एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर। बाह्य शौच मिट्टी और जलादि से किया जाता है और आभ्यन्तर शौच ध्यान धारणादि से होता है। सो दोनो प्रकार के शौच के बाद बाहर जाकर अवगाह स्नान किया। गुरु सेवा प्रधान है। अत नित्य कर्म का निर्वाह सक्षेप से किया। नित्यकर्म का परित्याग नही होना चाहिए और गुरुजी की सेवा मे उपस्थित हो गये। गुरुजी को प्रणाम किया। यथा प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातुपिता गुरु नावहि माथा।

समय जानकर कि इस समय यदि फूल लेने जावेगे तो गुरुजी के पूजा समय तक फूल ला सकेंगे। गुरुजी से आज्ञा माँगी। मिलने पर फूल लेने दोना भाई चले। गुरुजी की पूजा मे फूल अधिक लगता है। अत दोनो भाई चल। रामजी को अकेले नही छोडते। अत दोनो भाई चले।

भूप बाग वर देखेउ जाई। जहँ बसत रितु रही लोभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥२॥

अर्थ राजा के श्रेष्ठ बाग को जाकर देखा जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गई थी। मन के हरण करनेवाले अनेक प्रकार के पेड लगे थे। उनपर रग विरगी वेलियाँ चढी थी। जिनका चदोआ बन गया है।

व्याख्या महाराज जनक के अनेक बाग हैं। उनम से सर्वश्रेष्ठ बाग को जाकर देखा। बाग की श्रेष्ठता कहते हैं कि उसे देखकर मनुष्य का लुभा जाना तो कोई बडी बात नही है। वहाँ आकर वसन्त ऋतु लुब्ध होकर ठहर गया। वसन्त ऋतु ससार से चला गया। ग्रीष्म और पावस बीत गया। अब शरद का अधिकार है। पर उस बाग मे आज भी वसन्त है। वसतरितु रही लोभाई कहने से द्योतित होता है कि वसन्तु ऋतु का समय नही है।

नाना प्रकार के विटपो की पक्ति खडी है। उनपर नाना रग की लताएँ चढी हुई है। जिस रग के विटप पर जिस रग की लता खिलती है वैसी ही लताएँ चढी हुई हैं और एक विटप की लता ऊपर ही ऊपर दूसरे विटप की लता स उलझ गई हैं। इस भाँति लताओ के चँदोये बन गये हैं।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सपति सुररूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा॥३॥

अर्थ ये नये पत्ते फलफूल से शोभायमान थे। अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को लज्जित कर रहे थे। चातक, कोकिल, शुक और चकोर पक्षी कूज रहे थे और मोर नाच रहा था।

व्याख्या नव पल्लव फल और फूल साथ नही होते पर यहाँ है। भाव यह कि एक ओर नय कोपल लग रहे है। दूसरी ओर फूल लग रहे हैं। तीसरी ओर फल लग रहे हैं। बारहमासी वृक्ष हैं। वृक्ष की सम्पत्ति है। पल्लव, फूल और फल। सा वे एसे सरस है कि कल्पवृक्ष लज्जित हो जाय। अथवा कल्पवृक्ष रूखे मालूम पडते है। इसलिए कवि ने सुररूख पद रक्खा। यह वेद वाद का बाग है। यामिमा पुष्पिता वाच प्रवदन्त्यविपश्चित। वेदवादरता पार्थ नान्यदस्तीतिवादिन। पराप्रकृति और पुरुष का साक्षात्कार यही हुआ।

वलिवितान स चातक को मेघमण्डल का भ्रम हुआ। अत वह कूजने लगा। नवपल्लव स कोकिल को वसन्त का भ्रम हो रहा है। अत वह भी कूज रही है। नवफल स शुक को ग्रीष्म का भ्रम हुआ। अत वह भी बोलता है और नवसुमन से मालूम होता है कि चाँदनी छिटकी हुई है। अत चकोर भी चहकता है। ये चारो तालधारी की भाति कूज रहे हैं। मोर लतावितान को मेघमण्डल मानकर नृत्य कर रहा है। बाग मे चारा ओर मङ्गल मचा हुआ है। यथा अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मगल चहुँ ओरा।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान विचित्र बनावा॥
विमल सलिलु सरसिज बहुरगा। जलखग कूजत गुजत भृगा॥४॥

अर्थ बाग के बीचोबीच सुन्दर सरोवर था। जिसमे विचित्र मणियो की सीढियाँ बनी थी। उसका जल निर्मल था। अनेक रग के कमल खिले थे। जलपक्षी कूज रहे थे और भौंरे गुञ्जार कर रहे थे।

व्याख्या यदि बाग के मध्य मे सरोवर न हुआ तो बाग की शोभा नही। सो इसके बीचोबीच सरोवर था। सलिल सुधासम मनि सोपाना कहकर जनकपुर के सभी सरोवरो का वर्णन कर चुके है। इस सरोवर की विशेषता यह है कि यहाँ मणिसोपान की कारीगरी विचित्र है। जल निर्मल है। यहाँ अनेक रग के कमल इस एक ही सरोवर मे खिले हुए है। जलपक्षी कूजते है और भौंरे गूँज रहे हैं। भाव यह कि उद्दीपन विभाव की पराकाष्ठा है।

दो बागु तडागु बिलोकि प्रभु, हरखे बधु समेत।
परम रम्य आरामु येहु, जो रामहि सुख देत ॥२२७॥

अर्थ बाग और तालाब देखकर प्रभु भाई के सहित हर्षित हुए। यह बाग परम रम्य है जो रामजी को सुख दे रहा है।

व्याख्या पुररम्यता राम जब देखी। हरखे बधु समेत बिसेखी। रम्य नगर को देखकर ही विशेष हर्षित हुए थे। अब उससे भी अधिक हर्ष है। क्योकि यह परम रम्य है। पर्वतो मे कैलास परम रम्य है। यथा परम रम्य गिरिबर कैलासू। धरणी मे सेतुबध की भूमि। यथा परम रम्य उत्तम यह धरनी। और बागो मे राजा जनक का बाग परम रम्य है। रम्यता से हर्ष और परम रम्यता से सुख होता है।

चहु दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥१॥

अर्थ चारो ओर देखकर मालियो से पूछकर पत्ते और फूल प्रसन्न चित्त होकर लेने लगे। उसी अवसर सीताजी भी वहाँ आईं। गिरिजा पूजन के लिए माँ ने भेजा था।

व्याख्या रामहि सुख देत अत चहुँ दिसि चितय कहते है। तथा फुलवारी किस ओर है? इसे देखने के लिए चारो ओर देखा तथा बडे बाग मे मालियो का पता शीघ्र नही लगता अत चारो ओर देखा। सिह है चारो ओर देखकर ही कार्यारम्भ करते है। सिह ठवनि इत उत चितव धीर वीर बल पुंज तथा अचरो पर भी दया है। अत चारो ओर देखा। बिना पूछे फुलवारी से फूल नही लेना चाहिए। इससे मालियो से पहिले पूछ लिया।

दल पहिले लिया और फूल पीछे। दलो का दोना बनाया। यथा सुमन समेत बाम कर दोना तथा दोना म पहिले बिल्वदल तुलसीदलादि रख लिया। तब पुष्प रक्खा। दल फूल बडे सुन्दर और सरस है। इसलिए लेने मे प्रसन्नता है।

जब रामजी फूल चुनने मे लगे थे उसी अवसर मे सीताजी उस बाग मे आईं। दूसरे ही दिन विवाह था। क्योकि धनुषयज्ञ ही वस्तुत विवाहोत्सव था।

यथा : टूटत ही धनु भयउ विवाहू । विवाह के पहिले सौभाग्य के लिए गिरिजापूजन करना है । इसलिए माँ ने भेजा था । नित्य नहीं आतीं । पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां वहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् । भा० १०. ५२. ४२ ।

व्याह के एकदिन पहिले कुलदेवी की यात्रा होती है । जिसमें वधू बाहर गिरिजा पूजन के लिए जाती हैं ।

संग सखी सव सुभग सयानीं । गावहिं गीत मनोहर वानीं ॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा । वरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥२॥

अर्थ : संग में सब सुन्दर सयानी सखियाँ थी । मनोहर वाणी से गीत गा रही थी । सरोवर के सन्निकट गिरिजाजी का मन्दिर शोभायमान था । जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । देखने में मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या : आज सब सखियाँ संग में थी । सभी सुन्दर और सयानी हैं । विवाहोपलक्ष्य में देवीपूजन के समय जो गीत गाया जाता था वह गा रही थी । वाग में प्रविष्ट होते ही गीत आरम्भ हुआ । अभी तक तो भौरे ही गीत गाते थे अब तो मनोहर वाणी से सखियों का गोल प्रारम्भ हुआ । सरोवर के समीप ही गिरिजा का मन्दिर था । महात्माओं से पता चलता है उसका नाम चिन्तामणि मन्दिर था । जहाँ सरोवर की सीढियों में विचित्र मणियों का काम था । वहाँ के गिरिजाजी के मन्दिर का वर्णनातीत होना ही प्राप्त है ।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरिनिकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग वरु माँगा ॥३॥

अर्थ : सखियो के सहित सरोवर में स्नान करके प्रसन्न मन से गौरी के मन्दिर में गई । अधिक अनुराग से पूजा की और अपने अनुरूप सुन्दर वर माँगा ।

व्याख्या : सखियों के समेत पूजन करना है । अतः सखियों के समेत स्नान भी लिखते हैं । अथवा जिस देवता का पूजन करना है तत्सम्बन्धी तीर्थ-कूप, कुण्ड, सरोवरादि में स्नान का विधान है । गौरी का पूजन करना है इस उत्साह से मन प्रसन्न है । पूजन में अनुराग सब कुछ है । किं पुनः स्त्रियों के पूजन में तो मन्त्रादिक का प्रयोग न होने से अनुराग ही सब कमी को पूरा करता है । वर लेना है इसलिए अधिक अनुराग से पूजन किया । यह पूजन ही सौभाग्य के लिए था । अतः अपने अनुरूप सुन्दर वर के लिए प्रार्थना की । अति अनुराग का प्रत्यक्ष फल होता है । यथा : भगतिसहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे ।

एक सखी सिय संगु विहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेहि दोउ बंधु विलोके जाई । प्रेम विवस सीता पहिं आई ॥४॥

अर्थ : एक सखी सीता का संग छोडकर फुलवाई देखने गई थी । उसने जाकर दोनों भाइयो को देखा और प्रेम के विवश होकर सीताजी के पास आई ।

व्याख्या सीताजी पूजन मे लगी। एक सखी के मनमे यह बात आई कि तब तक फुलवारी देख आऊँ सो वह फुलवारी देखने चली गई। उस स्थान से फुलवारी कुछ हटकर थी। फुलवारी मे ही दोनो भाई फूल चुन रहे थे। बाग इतना बडा था कि सीताजी के आने और मगल गान का कुछ भी पता दोनो भाइयो को न लगा। इस सखी ने वहाँ जाकर दोनो भाइयो को देखा। दोनो भाइयो ने इसे नही देखा फूल चुनने मे लगे थे। रूप देखते ही प्रेम के विवश हो गई। इस छवि को सीताजी को भी दिखलाना चाहिए। इसलिए उस प्रेममग्नावस्था मे ही सीताजी के पास आई। नारदजी का वचन सत्य होना था। इसलिए यह घटना हुई।

दो तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नयन।
कहु कारनु निज हरप कर, पूछहिं सब मृदु वयन ॥२२८॥

अर्थ उसकी दशा सखियो ने देखी कि शरीर मे पुलक है और आँखो मे आँसू है। सब मृदुवचन से पूछने लगी कि अपने हर्ष का कारण बतला।

व्याख्या सीताजी ने उसकी अवस्था नही देखी। वर माँगने मे दत्तचित्त थी। सखियो ने देखा। प्रेमविवश की दशा कहते है। पुलक गात जल नयन। यह सञ्चारी भाव है। यह दशा भयादि मे भी होती हैं। पर सखियाँ सयानी है। लख लिया कि यह सञ्चारी भाव हर्ष का है। अत हर्ष का कारण पूछती हैं। सबके पूछने का प्रयोजन सीताजी का ध्यान आकर्षण करने के लिए है। तथा अति उत्कण्ठा होने से है। प्रेम से प्रेरित हैं। अत मृदुवाणी से पूछती हैं।

देखन वागु कुँअर दोउ आए। वय किसोर सब भाँति सुहाए ॥
स्याम गौर किमि कहउ वखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥१॥

अर्थ बाग देखने दो राजकुमार आये हैं। अभी किशोरावस्था है। सब भाँति सुन्दर है। साँवरे गोरे को कैसे बखान कर कहूँ। वाणी को आँख नही है और आँख को वाणी नही है।

व्याख्या फूल के लिए आना नही कहती। राजकुमार है उन्हे फूल का क्या घाटा है। वे बाग देखने आये है। मनमे आया फूल भी तोडने लगे। अवस्था थोडी है। जवानी आया चाहती है। इसलिए वय किशोर कहती हैं। यथा *आपोडशाच्च कैशोर, यौवन स्यात्तत परम्।* केवल अवस्था ही नही सभी भाँति से मनोहर हैं। एक श्याम है और दूसरे गोरे हैं। मुझसे तो उनका बखान नही हो सकता। आँखो ने उन्हे देखा है। वे ही जानती है। पर उन्हे वाणी नही अत नही कह सकती। क्योकि कहनेवाली वाणी है। उसे आँख नही, उसने देखा नही वह कैसे कहे। भाव यह कि सखी प्रेम से शिथिल है। उसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का सम्बन्ध भी शिथिल हो गया है। उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि आँखो ने देखा है। उनमे यदि प्रकाश करने की शक्ति होती तो सम्भव है कि उस शोभा को व्यक्त कर सकती। वाणी को साक्षात्कार की शक्ति नही। वह कुछ भी उस शोभा को नही कह सकती।

इस भाँति दोनो राजकुमारो की अलौकिक छवि को अवर्णनीय बतलाती है। यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। यथा ' काव्यलिङ्ग जब युक्ति सो अर्थ समर्थ न होय।

सुनि हरषी सब सखी सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी ॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सग आए काली ॥२॥

अथ . यह सुनकर सब सयानी सखी प्रसन्न हो उठी। जाना कि सीताजी के हृदय मे अत्यन्त उत्कण्ठा है। एक ने कहा कि हे आली ! ये वे हो राजकुमार है जिनके विषय मे सुना है कि मुनि के सग कल आये हैं।

व्याख्या : सयानी सखी है। तुरन्त समझ गईं कि कौन हैं। और यह भी लख लिया कि सीताजी के हृदय मे अत्यन्त उत्कण्ठा हो गई है। अत सब हर्षित हुईं। यदि सीताजी के हृदय मे उत्कण्ठा उत्पन्न न होती तो देखने का योग न मिलता। प्रशसा राजकुमारो के रूप की सुन चुकी हैं। पर राजमहल की रहनेवाली हैं अत देख न सकीं। हृदय मे उत्कण्ठा कल से ही देखने की है। अब सीताजी मे अत्यन्त उत्कण्ठा लखकर कार्यसिद्धि की आशा से प्रसन्न हो उठी। सीताजी के हृदय मे अत्यन्त उत्कण्ठा होने का भी कारण है। इधर निज अनुरूप सुभग वर गिरिजाजी से माँग रही है। उधर अलौकिक सौन्दर्य वाले राजकुमार के आगमन का समाचार मिल रहा है। अत यह घटनासयोग निष्कारण नही है।

उस उत्कण्ठा को जानकर एक सखी बोल उठी कि ऐसे सुन्दर तो वे ही सुने जाते है जिनका कल आगमन मुनि के सङ्ग हुआ है। कल से ही नगर मे उनके रूप का शोर है। उनके नगर देखने का समाचार सुनकर सारा नगर उलट पडा। यथा देखन नगर भूपसुत आए। समाचार पुर बासिन्ह पाए। धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी।

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर नर नारी ॥
बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू ॥३॥

अर्थ जिन्होने अपने रूप की मोहनी डालकर सब नर नारियो को अपने वश मे कर लिया है। सब लोग जहाँ तहाँ छवि का वर्णन कर रहे है। देखने योग्य को अवश्य देखना चाहिए।

व्याख्या वह सखी कहती है कि मेरी सखी विचारी का कोई दोष नही। उनके रूप मे ही कुछ ऐसी मोहनी शक्ति है कि सब नरनारी उनके वश मे हो गये हैं। यह विचारी मोहित हो गई तो क्या आश्चर्य है ? सासारिक पुरुषो को विषय से खीचकर अपनी ओर लाने के लिए ही प्रभु ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण करते हैं। सब लोग ऐसे उनके वश हो गये है कि जनकपुर मे उनकी छवि के वर्णन के अतिरिक्त कोई चरचा हो नही है। लोकोत्तर पदार्थ दर्शनीय होता है। अत उनकी लोकोत्तर छवि दर्शनीय है। जिसके दर्शन का माहात्म्य है। जिसे सब देखना चाहते हैं। उसके दर्शन मे दोष की सम्भावना को स्थान नही है। अत कहती हैं अवसि देखिये।

तासु वचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई ॥४॥

अर्थ उसका वचन सीताजी को बहुत अच्छा लगा । दर्शन के लिए आँखें आकुल हो उठी । उसी प्रिय सखी को आगे करके चली । पुरातन प्रीति को कोई नही लख रहा है ।

व्याख्या उस सखी के वचन सभी को अच्छे लगे । परन्तु सीताजी को अत्यन्त भले मालूम हुए । क्योकि सीताजी को अत्यन्त उत्कण्ठा थी । सखी का निर्णयात्मक वचन सुनकर दर्शन के लिए आकुलता बढी । इसलिए तुरन्त चल पडी । उस प्रिय सखी को जो प्रिय समाचार लायी थी आगे कर लिया क्योकि उसी का जाना हुआ है कि वे राजकुमार कहाँ है । इतनी आकुलता का कारण पुरातन प्रीति है ।

दो सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥२२९॥

अर्थ नारदजी के वचन का स्मरण करके पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई । चकित होकर इस भाँति चारो ओर देखने लगी । जैसे डरी हुई मृगी की बच्ची चारो ओर देखे ।

व्याख्या नारदजी ने पहिले ही कह रक्खा था कि जो तुम्हारा पति होगा । उसका प्रथम दर्शन तुम्हे गिरजा बाग मे होगा । फलाभिसन्धिवर्जित प्रीति उपजी इसलिए पुनीत कहते हैं । फुलवारी तक पहुँच गईं । परन्तु कोई दिखाई नही पडा । अत चकित होकर चारो ओर देखती है । चकित होकर चारो ओर देखने मे जो नेत्र चञ्चल हुए उस चितवन की उपमा सभीत शिशुमृगी के चितवन से देते हैं । जो खटका पाकर सभीत दृष्टि से देखती है कि किधर से शब्द सुनाई पडा । इस राम जानकी मिलनप्रसङ्ग म आरम्भ से ही जो प्रक्रिया दोनो ओर से हो रही हैं । उसका कुछ मिलान भी पाठको के विनोदार्थ देना अनुचित न होगा ।

रामजी		सीताजी
सकल सौचकरि जाइ नहाए	१	मज्जनकरि सर
नित्य निबाहि मुनिहि सिरनाए	२	गई मुदित मन गौरिनिकेता
समय जानि	३	तेहि अवसर
गुरु आयसु पाई	४	जननि पठाई
लेन प्रसून चले	५	गिरिजा पूजन आई
सग भाई	६	संग सखी
लगे लेन दलफूल मुदित मन	७	गई मुदित मन गौरि निकेता
चहुँदिसि चितय	८	चकित विलोकति सकलदिसि

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥
मानहुँ मदन दुदुभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥१॥

अर्थ : कङ्कण, करधनी[1] और नूपुर की झनकार सुनकर लक्ष्मणजी से रामजी ने हृदय मे विचार कर कहा। मानो कामदेव ने नगाडा बजाया है। विश्वविजय की इच्छा की है।

व्याख्या : लगे लेन दलफूल मुदितमन से प्रसङ्ग छूटा है। सो ऐसे दत्तचित्त हैं कि सखी आकर उन्हे देखकर लौट गई। परन्तु उन्हे पता नही है। एकाएक किंकिणि, कंकण और नूपुर की झनकार ऐसी कान मे पडी कि अभूतपूर्व भाव का उदय हुआ। यद्यपि कंकण किंकिणि नूपुर ध्वनि के बीच मे अवतार ही हुआ है। पर इस ध्वनि मे विशेषता है। विचार करते हैं कि गति की रमणीयता से भूषणो की ध्वनि ऐसी सुहावनी है : नूपुर मधुर मुखर कवि बरनि। भूषण की ध्वनि मधुर होती है। पर इसका उद्दीपक प्रभाव ऐसा बलवान् है कि दुन्दुभि के घोर शब्द से उपमित करने योग्य है। मानो विश्वविजय की इच्छा करके कामदेव ने दुन्दुभिघोष किया है। नगर देखने के समय काम का पराजय हुआ है। यथा . सखि इन कोटिकाम छवि जीती। उस समय धनुर्धर भी थे। अतः पुष्पधन्वाने फुलवारी मे फूल चुनते देखकर उपयुक्त समय जानकर विश्वविजय के लिए डका दिया क्योकि इनके विजय से ही विश्वविजय है। यथा : मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी। सखा रूप मे लक्ष्मणजी साथ हैं। उन्ही से रामजी अपना मनोभाव व्यक्त कर रहे हैं। लक्ष्मणजी चुप हैं।

अस कहि फिरि[2] चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगचल ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर घूमकर उस ओर देखा तो सीताजी का मुख चन्द्र हुआ और रामजी के नेत्र चकोर हो गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये। मानो निमिने सङ्कोच से पलकें छोड़ दी।

व्याख्या : जिधर से ध्वनि आती थी उधर घूमकर देखा। रामजी को काम से वैर है। यथा : नील तामरस स्याम काम अरि। सो शत्रु से सावधान होने के लिए उधर लक्ष्य किया। पर वहाँ बात ही दूसरी हो गई। सीताजी जो दिखाई पडी तो उनके मुखचन्द्र के लिए रामजी के नेत्र चकोर हो गये। यहाँ चन्द्रचकोर कहकर यह भी दिखलाया कि चकोर चन्द्र को देखते हैं। चन्द्र चकोर को नही देखता। भाव यह कि ये सीताजी को देख रहे हैं। सीताजी इन्हे नही देख रही हैं।

---

१ पूर्व मे अब भी ऐसी करधनी बनती है जिसमे शब्द हो।

२. निदर्शन . द्वितीय।

जिस भाँति सीताजी चकित विलोकति सकलदिसि थी अत उनके नेत्र चञ्चल थे, उसी भाँति इनके भी नेत्र घूमकर देखने मे चञ्चल हो उठे थे। सो सिय मुखशशि के देखने मे ऐसे स्थिर हो गये कि पलक पडती ही नही। निमि महाराज जनक के पूर्वज थे। वे ही पलक के अधिष्ठाती देवता है। अब यहाँ पलक न पडने का कारण कहते हुए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो पलक के अनुग्राहक देवता निमि ने सङ्कोच से पलक का परित्याग ही कर दिया। फिर पलक पडे कैसे ? जानकीजी के पूर्वज होने से उन्हे ऐसे अवसर मे सङ्कोच होना प्राप्त है।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय [1]सराहत वचनु न आवा ॥
जनु विरचि सव निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥३॥

अर्थ सीताजी की शोभा को देखकर सुख मिला, हृदय मे प्रशसा करते हैं। पर मुख से वचन न निकला मानो ब्रह्मदेव ने अपनी सारी पडिताई को ससार मे रचकर प्रकट करके दिखला दिया है।

व्याख्या पहिले कह आये हैं परमरम्य आराम यह जो रामहि सुख देत। बाग ने सुख तो दिया पर इन्हाने लिया नही क्योकि बिना आलम्बन के उद्दीपन सुखदायक नही होता। अब सीताजी के रूप म आलम्बन की प्राप्ति हुई अत कहते हैं देखि सीय शोभा सुख पावा। अब अनुभाव कहते हैं कि मन से प्रशसा करते हैं। लक्ष्मणजी से कहना चाहते हैं, पर कह नहीं सकते। चतुष्पाद विभूति मे से एक पाद ही प्रकट है और तीन पाद अप्रकट है। सो मानो ब्रह्मदेव ने सीताजी को रचकर उनमे चतुष्पाद विभूति को प्रकट करके दिखला दिया। यथा त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुष पादोस्येहा भवत्पुन ।

सुदरता कहुँ सुदर करई। छवि गृह दीप सिखा जनु वरई ॥
सव उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौ विदेहकुमारी ॥४॥

अथ मुन्दरता को भी सुन्दर कर रही है। मानो छवि गृह मे दीप की शिखा जल रही है। सारी उपमाओ को कवियो ने जूठी कर दिया है और यह शोभा अनूठी है। विदहकुमारी की उपमा किससे दूँ।

व्याख्या जितनी सुन्दरताएँ है वे इस सुन्दरता की उपजीवो है। यथा जासु अस उपजहि गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। अर्थात् इस सुन्दरता से ही सब मुन्दरियो ने सुन्दरता पाई है। यह कोई दिव्य तेज है। इसलिए दिव्य-शिखा कहते है। जिसम न तेल है न वत्ती, न धूआँ है और यह सुन्दरता को और भी सुन्दर कर रहा है। जैसे छविगृह की उसी समय सच्ची शोभा होती है जब उसमे दीपशिखा जल। सखिया के मध्य म इनकी शोभा इस प्रकार है जैमे छविगृह

———

१ 'सराहत' शब्द श्लिष्ट है इसका अर्थ यह भी है कि कामशर से ऐसे घायल हो गये हैं कि चाहने पर भी बोल नहीं सकते।

मे दीपशिखा जले। दीपशिखा स्वय प्रकाशमान है और घर को भी प्रकाशित करता है। इसी भाँति सीताजी की दिव्य शोभा से सखीजन भी शोभायमान है। यथा छविगन मध्य महा छवि जैसी।

वर्णन न हो सके तो उपमा द्वारा वर्णन करना चाहिए। इसपर कहते है कि कवियो ने सब उपमाएँ तो प्राकृत नारियो के अङ्गो पर दे डाली है। अत सब उपमाएँ जूठी है और यह शोभा अनूठी है। अत श्रीरामजी कहते है कि विदेहकुमारी की उपमा किससे दूँ।

दो सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

अर्थ मनमे सीताजी की शोभा वर्णन करके और अपनी दशा का विचार करके, पवित्र मनसे समयानुसार वचन लक्ष्मणजी से बोले।

व्याख्या हृदय सराहत वचन न आवा से स्वगत का उपक्रम करके और सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु से उपसहार किया। प्रभु है अपनी दशा का विचार करते है कि ऐसी स्तब्धता हो गई कि मै बोल न सका। विचार से ही स्तब्धता गई। शुचिमन देहलीदीपन्याय से दोनो ओर लगेगा। शुचि मन हैं इसलिए अनुज से कहा। अनुज भी शुचिमन हैं उधर देखते ही नही। रामजी शुचि मन हैं इसलिए इन्हे भी प्रीति पुनीत उपजी। काम से सग्राम उपस्थित है। भाई की सहायता चाहते है अत बोले।

तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकासु फिरहि फुलवाई ॥१॥

अर्थ हे भैया! यह वही जनक की बेटी है जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। इसे सखियाँ गौरीजी के पूजन के लिए लाई हैं। फुलवारी म प्रकाश करती फिरती है।

व्याख्या उधर सखी सखी से कहती हैं। एक कहै नृपसुत सोइ आली। सुने जो मुनि सग आए काली। यहाँ सब सयाने इकट्ठे हैं। अनुमान से ही पहिचान हो गयी। इधर प्रभु कहते हैं। तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जहि कारन होई।' जनकजी को एकाधिक कन्याएँ हैं। पर यह तो वही है जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। ऐसे अनुमान का आधार कहते हैं पूजन गौरि सखी लै आई। कल धनुषयज्ञ है आज गौरी पूजन के लिए सखी ले आई हैं। गौरी का मन्दिर देख चुके हैं इससे अनुमान करते है। ब्याह के पहिले गौरीपूजन सौभाग्य के लिए करने की विधि है। अत यह सिद्ध हुआ कि इसी के लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। यहाँ बाग मे बरन बरन बर बेलि बितान के कारण अन्धेरा हो रहा है। सो वह प्रकाश करती हुई फुलवारी म घूम रही है। सियमुखससि है तो प्रकाश भी चाहिए छबिगृह दीपसिखा जनु बरई। तमाम फुलवारी प्रकाशित हो उठी।

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सब कारनु जानि बिधाता । फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता ॥२॥

अर्थ जिसकी अलौकिक शोभा को देखकर मेरा मन जो स्वभाव से ही पवित्र है क्षुब्ध हो उठा है। वह सब कारण ब्रह्मदेव जानें पर भैया सुनो। मंगलप्रद अंग मेरे फड़क रहे हैं।

व्याख्या मेरा मन स्वभाव से ही पवित्र है क्षोभ जानता ही नहीं। लौकिक शोभा से इसमें क्षोभ हो नहीं सकता। यह अपूर्व बात हुई। इस अलौकिक शोभा से मेरे मन में क्षोभ हुआ। परन्तु अलौकिक शोभा से भी मेरे मन में क्षोभ नहीं होना चाहिए था। कोई विशेष कारण होना चाहिए राम पुनीत विषय रसरूखे। उस कारण को ब्रह्मदेव ही जानें। यथा कठिन कर्म गति जान विधाता। उसी की प्रेरणा से मेरे शुभ देनेवाले अङ्ग फड़क रहे हैं और सगुन प्रतीति भेट प्रियकेरी शुभद अङ्ग फड़कने का फल है कि इष्टवस्तु का लाभ हो। लक्ष्मणजी कुछ नहीं बोल रहे हैं। अतः कहते हैं सुनु भ्राता। क्या जाने यह सुन रहा है कि किसी दूसरी ओर मन लगाया है।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ । मनु कुपथ पगु धरै न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी । जेहि सपनेहु परनारि न हेरी ॥३॥

अर्थ रघुवंशियों का यह अकृत्रिम स्वभाव है कि वे कुपथ पर मन और पैर नहीं रखते और मुझे तो अपने मन पर अत्यन्त विश्वास है कि वह स्वप्न में भी पराई स्त्री को नहीं देखता।

व्याख्या यदि इससे विवाह न होना होता तो मेरे मन में क्षोभ न होता। पर-स्त्री पर मन क्षोभ वश स्वभाव के विरुद्ध है। रघुवंश मात्र का सहज स्वभाव है, सिखाने पढ़ाने से नहीं। वे न कुपथ में मन दें, न पैर रक्खें। वंशस्वभावानुसार भी मेरे मन में क्षोभ नहीं होना चाहिए था। मैंने तो अपने मन की परीक्षा कर ली है। विश्वामित्रजी के आगमन के पूर्व विवाहबन्धन में डालने के लिए बहुत सी कन्याएँ मेरे पास[२] भेजी गईं। पर मेरे मन ने उन्हें देखा भी नहीं। वासना न होने से स्वप्न भी नहीं होता। अतः यह बात भी नहीं कि सूक्ष्म वासना रही हो। जिसका मुझे पता न हो।

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी । नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं । ते नरबर थोरे जग माहीं ॥४॥

---

१ सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।
सन्देहवाली बातों में भले लोगों के अन्तःकरण का झुकाव ही प्रमाण है।

२ योगवासिष्ठ देखिये।

अर्थ रण मे शत्रु जिनकी पीठ नही पाते और पर स्त्री जिनके मन और दृष्टि को नही पाती मगन जिनसे 'नहीं' नही पाते। ऐसे नरश्रेष्ठ ससार म थोडे है।

व्याख्या जिनकी पीठ शत्रु नही पाते। मर जावेंगे पर पीठ न दिखावेंगे वे युद्धवीर हैं। उन्ही की गति परिव्राट् योगयुक्त की सी होती है। वे सूर्यमण्डल का भेद करते हैं। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हत। जिनके मन और दृष्टि को पराई स्त्री नही पाती। पराई स्त्री चाहे तो भी असमर्थ हैं वे धर्मवीर हैं जिनसे मगन निषेधात्मक उत्तर नही पाते। वे माँगने पर अपने को भी दे सकते हैं वे दानवीर हैं। ऐसे वीरतात्रय से युक्त पुरुष नरश्रेष्ठ ससार मे थोडे है। भाव यह कि मैं उन थोडे लोगो मे से हूँ जिन्हाने भय, काम और लोभ पर विजय प्राप्त की है।

दो करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरद छवि, करै मधुप इव पान ॥२३१॥

अर्थ बात तो छोटे भाई से कर रहे थे। पर मन सीताजी के रूप पर लुब्ध था। मुखकमल की छवि मकरन्द है। उस मकरन्द को मन भौंरे की भाँति पान कर रहा था।

व्याख्या बोले सुचिमन अनुजसन से उपक्रम और करत बतकही अनुजसन से उपसहार। इतना विचार करने पर भी क्षोभ न हटा। मनमधुप छविमकरन्द पान कर रहा है और गुनगुनाता जाता है। मुखसरोज के छवि मकरन्द को भौंरे की भाँति मन पान करने लगा। मुखशशि के लिए नयन[1] चकोर हुए और मुखसरोज छवि के लिए मन मधुकर हुआ। भाव यह कि आँख और मन दोनो बँध गये। जिससे गहनो की शोभा हो उसे रूप कहते हैं और अङ्गो के यथोचित सन्निवेश को सुन्दरता कहते हैं। यहाँ उक्त विषया उत्प्रेक्षा है।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप किसोर मन चिंता॥
जहँ बिलोकि मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥१॥

अर्थ सीता चारो ओर चकित होकर देखती हैं। मन म चिन्ता है कि नृपकिशोर कहाँ गये? वह मृग के बच्चे की सी आँखवाली जिस ओर देखती है उस ओर मानो श्वेतकमल की पक्ति बरस पडती है।

व्याख्या दोनो रामजी और सीताजी की ओर घटनाएँ साथ साथ होती हैं। परन्तु कवि तो एक साथ नहीं लिख सकते। अत एक ओर का वृत्तान्त थोडा कहकर फिर दूसरी ओर का वृत्तान्त कहने लगते हैं। चकित बिलोकति सकलदिसि मे प्रसङ्ग छोडा था। अब वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं। सीताजी चकित होकर देख रही हैं। कवि को अवसर मिला कि इस बीच म रामजी की ओर का वृत्तान्त कह।

---

१. जम चकोरी चारु बैठी निज निज हार पद की किरन पीवैं निमिषैं न लावनी।

तब रामजी की ओर का वृत्तान्त आरम्भ किया। जब यहाँ तक कथा पहुँची कि सीताजी के मुखसराज के छविमकरन्द को रामजी का मनभ्रमर पान करने लगा तब कवि को मीताजी ओर के वृत्तान्त कहने का अवसर मिला। अब जहाँ से छोडा था वहीं से कथा प्रारम्भ करते हैं मीता चकित होकर देख रही है। कारण कहते हैं कि नृपकिशोर कहा गय। यही मन म चिन्ता है। इतनी देर म बाग के बाहर जा नहीं सकते तब गये कहाँ ?

जनु सिसुमगी सभीत का अनुवाद करते हैं मृग सावक नयनी। अब उस चितवन की शोभा कहते हैं कि जिधर देखती हैं उधर श्वेतकमलो की वर्षा हो जाती है। पुष्पधन्वा ने पहिले डका दिया था। अब बाणवर्षा कर रहा है। क्योकि काम का परम बल नारी है एहि के एक परम बल नारी। यथा धनु पौष्प मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशा दृशा कोणो बाण सकलभुवन व्याकुलयति। काम का धनुष फूल का है। प्रत्यञ्चा भ्रमरमयी है और चञ्चल नेत्रवालियो का कटाक्ष ही बाण है। जिनसे तमाम ससार को व्याकुल करता है। जानकीमङ्गल म ग्रन्थकार कहते हैं रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ। नील कमल सरश्रेनि मयन जनु डारइ। सो यहाँ श्वेतकमल कहते हैं। क्योकि स्नान करने के समय कज्जल धुल गया है। इन्ही शरो से रामजी आहत है। हृदय सराहत वचन न आवा से यह भाव भी निकलता है।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥२॥

अर्थ तब सखियो ने लता की आट से सुन्दर श्यामल गौर किशोरो को लखाया। रूप देखकर आँखें ललचा उठी और ऐसी प्रसन्न हुई जैसी अपने खजाने को पहिचान लेने से प्रसन्नता होती है।

व्याख्या सखियो ने देख लिया। अति उत्कण्ठा होने से श्री सीताजी ने न देखा। सखियो ने लख लिया कि उन्ही को ढूँढती हैं। अत लता ओट म लखाया। खाली हाथ वीर बाण चलते देखकर ओट पकडते हैं। अत काम के बाण चलते देखकर मानो लता ओट पकड लिया है स्याम गौर किमि कहौ बखानी। बय किसोर सब भाँति सुहाए सुना था सो आखो देखा।

सुनकर दरस हेतु लोचन अकुलाने और देखकर देखि रूप लोचन ललचाने। ललचाने का भाव यह कि और भी मनोयोग से देखने के लिए ललचाये। श्रीरामजी दूसरे लोगो को भी निधि रूप ही दिखाई पडते थे। पर वे उनकी निधि नहीं। अत वे लूटने चले थे। यथा धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी। पर निज निधि को सीताजी ने पहिचाना। इसीलिए कहा था प्रीति पुरातन लखै न कोई। आखे प्रसन्न हो उठी कि यही तो हमारी निधि है।

थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हिहू परिहरीं निमेषे॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी॥३॥

अर्थ रघुपति की छवि देखकर आँखें थक गईं और पलक ने भी निमेष को छोड दिया। अधिक स्नेह से देह भोरी हो गई। मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी देखती हो।

व्याख्या छवि का भार देर तक नेत्र न सँभाल सके। इसलिए थक गये। रघुपति से रामजी का ग्रहण है। वहा मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगचल और यहाँ पलकन्हहू परिहरी निमेषें थका हुआ हिलता डालता नही। अत पलको ने भी हिलना डोलना छोड दिया।

वहाँ हृदय सराहत वचन न आवा। यहा अधिक सनेह देह भई भोरी। वहाँ सिय मुखससि भे नयन चकोरा। यहाँ सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी। इधर विकलता अधिक है। प्रमाण देते हैं। शरद शशि के दर्शन मे चकोरी की देह भोरी हो जाती है। देह की सुधि नही रहती। परन्तु रामजी जब सीताजी को देखते है तब शरद ऋतु वा शशि न कहकर केवल शशि शब्द का प्रयोग करते है। यथा सियमुख ससि भये नयन चकोरा। अत वहाँ देह का भोरा होना भी नही कहते।

लोचन[1] मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी॥४॥

अर्थ आँखो के रास्ते से रामजी का हृदय म लाकर सयानी ने पलक रूपी कपाट बन्द कर लिये। जब सीताजी को सखियो ने प्रेमवश जाना तो कुछ कह नही सकी। मन ही मन सकुचित हुईं।

व्याख्या उधर लाचनमग से छविमकरन्द का पान हो रहा था। इधर लोचनमग से स्वय रामजी को ही हृदय मे लाकर पलककपाट बन्द कर लिया। प्रभु प्रेम के बन्दी हो गये। काम का विश्वविजय पूरा हो गया। यहा विहृत हाव है। सयोग समय लज्जादिक से अभिलाष की असन्तुष्टि का विहृतहाव कहते हैं।

जब भक्त प्रेमवश होता है तभी भगवान् उसके बन्दी होते हैं। अवसि देखिये देखन जोगू दूसरी बात है और प्रेमवश हो जाना दूसरी बात है। सखी हैं उन्ह प्रमविवश देखकर बोलने का अधिकार है। पर आँख मूँदे है, क्या कहे, कहने मे सङ्कोच है।

दो लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ॥२३२॥

अर्थ उसी समय दोना भाई लता भवन से प्रकट हुए। माना दो चन्द्रमा बादला के परदे का अलग करके निकल पडे हा।

व्याख्या यह रामजी का स्वभाव है। पहिले ओट मे रहते है। अतिशय प्रेम दखकर हृदय म प्रकट होते हैं। तत्पश्चात् नयन विषय होते हैं। यथा अतिसय प्रेम

१. यहाँ समासोक्ति है।

देखि रघुवीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा। मुनि मग माझ अचलह्वै वैसा। तब रघुवीर निकट चलि आये। लता भवन की ही उपमा जलद पटल से दी है। दोनो भाइयो की उपमा विमल विधु से दी। इनके प्रकट होने से भी फुलवारी मे प्रकाश हो गया। तीन तीन चन्द्रोदय फुलवारी मे हुए हैं। फुलवारी तेजोमय हो गई।

सोभा सीव सुभग *दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा ॥
मोरपख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच विच कुसुम कली के ॥१॥

अर्थ दोनो सुन्दर वीर शोभा की सीमा है। नीले और पीले कमल के रङ्ग का शरीर है। शिर पर मोर पख भी खूव खिल रहा है। वीच वीच मे फूलो की कलियो के गुच्छे है।

व्याख्या सखी छविवर्णन करने लगी जनकनन्दिनी की सावधानी के लिए। दोनो सुन्दर वीरा के अवयव सन्निवेश के औचित्य की पराकाष्ठा है। इससे अधिक यथोचित अवयव सन्निवेश सम्भव नही है। वीरता और सौन्दर्य का अद्भुत सङ्गम है। श्याम कुँअर के शरीर का वर्ण नीलकमल सा और गौर के शरीर का वर्ण पीले कमल सा है।

आज मोरमुकुट भी है। कुसुमकली के गुच्छे भी वीच वीच मे शोभित है। कृष्ण कन्हैया की झाँकी है। नगर देखने चले थे तब चारु चौतनी सुगम शिरो पर थी। इस समय फूल लने आये हैं अत स्वाभाविक वेष म हैं। चौतनी से भी अधिक शोभा है। यह विच्छित्तिहाव है। किञ्चित् शृङ्गार से मोहित करने को विच्छित्तिहाव कहते हैं। इसी झाकी को कृष्णावतार म दिखलाकर व्रजवनिताओ को मोहित करेगे।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए ॥२॥
विकट भृकुटि कच घूंघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥२॥

अर्थ माथे पर तिलक और पसीने की बूँदे शोभित है। सुन्दर कानो मे भूषण की छवि छाई हुई है। टेढी भौहे हैं और घूँघरवाले वाल हैं। आँखे नये कमल की भाँति गुलावी हैं।

व्याख्या तिलक के साथ श्रमबिन्दु की वडी शोभा हुई। मोती की नाई झलक रहे हैं। यथा श्रमकन सहित स्याम तन जोही। लागिहि तालि वयारिन मोही। कोमलता का अन्त है फूल लेने म श्रम हुआ है। इससे पसीना आ गया है। अथवा सात्त्विक भाव हुआ है। कान ऐसे सुन्दर हैं कि भूषण की उनसे शोभा हो गई है। भृकुटी की टेढी होने और वाल के घुघुँराल होने की ही प्रशसा है। यथा भृकुटि मनोज चाप छवि हारी। कुटिल केस जनु मधुप समाजा। आँख की गुलावी नये कमल की भाँति कहने का भाव यह कि प्रथम कैशोर है। किशोरावस्था

का प्रारम्भ है। इस अवस्था मे नेत्र के कोण मे लालिमा आजाती है। यथा : वर्णस्योज्ज्वलता कापि नेत्रान्ते चारुणच्छवि । रोमावलिप्रकटता कैशोरे प्रथमे सति ।

चारु चिवुक नासिका कपोला । हास विलास लेत मनु मोला ॥
मुखछवि कहि न जाय मोहि पाही । जो विलोकि बहु काम लजाही ॥३॥

अर्थ : ठुड्डी नाक और गाल सुन्दर है। हास विलास हँसने की माधुरी तो मानो मन को मोल ले रहा हो। मुख की छवि तो मुझसे कहते नही बनती जिसे देखकर बहुत से काम लज्जित होते है।

व्याख्या : ठुड्डी सुन्दर नासिका शुकतुण्ड सी । कपोल दर्पण सा जिसमे चलकुण्डल की झलक पड रही हो। दोनो भाइयो मे हास विलास भी हो रहा है। यथा : अवलोकनि बोलनि प्रीति परसपर हास। प्रेमवश अनुग्रह हुआ। हसते हुए लताभवन से निकले। यथा : हृदय अनुग्रह इदु प्रकासा। सूचित किरन मनोहर हासा। इस हँसने ने तो मनकी चोरी नही की बल्कि मनको खरीद लिया। उनकी हँसी मनकी पूरी कीमत है। यह विलास नामक हाव है। सयोग समय कटाक्षादि अनेक क्रियाओ से मोहित करने को विलास हाव कहते हैं।

उर मनिमाल कबुकल ग्रीवाँ । काम कलभ कर भुजबल सीवाँ ॥
सुमन समेत वाम कर दोना । साँवर कुँअर सखी सुठि लोना ॥४॥

अर्थ : छाती पर मणियो की माला है। शख की भाति सुन्दर ग्रीवा है। कामरूपी हाथी के बच्चे की शुण्ड जैसी सुन्दर भुजाएँ बल की सीमा है। फूल के सहित बाएँ हाथो मे दोना है। सखी [1] साँवला कुँवर अत्यन्त ही सलोना है।

व्याख्या . सखी माला पहने हुए रहने का विधान है। इसलिए मणि की माला पहने हुए है। जिसकी शोभा वक्ष स्थल पर जाकर अधिक हो गई है। ग्रीवा की शोभा शख की भाँति होने मे है। भुजाएँ उतार चढाववाली हाथी की शुण्ड सी हैं पर अभी किशोरावस्था है। अत हाथी के बच्चे के शुण्ड सी कहा। शोभा-विजय के कारण कहते हैं कि यदि काम ने हाथी के बच्चे का रूप धारण किया हो तब उसके शुण्ड की जैसी शोभा होगी वैसी ही भुजाओ की शोभा है। ऐसी उतार चढाववाली भुजाओ मे ही बल होता है। जिनमे पेशियाँ पृथक् पृथक् दिखाई पडती हो वे भुजाएँ बलसीमा नही होती।

फूल उतार चुके है। बायें हाथो मे दोना लिये हुए अधिक सोहावने दृष्टि-गोचर होते हैं। गौर कुमार भी सलोना है पर साँवला कुमार अधिक सलोना है। बालक लोगो ने भी शोभा देखी और लगे सग लोचन मन लोभा। उनके मन भी लुब्ध हुए पर सुन्दरता की इस बारीकी तक वे नही पहुँच सके कि दोनो कुँअरो मे एक को भी सुठिलोना कह सकें।

---

१. यहाँ प्रौढोक्ति है।

सखि ! सम्बोधन का भाव यह कि एक सखी दूसरी से कह रही है। पर जनकनन्दिनी का ध्यान भङ्ग नही हुआ।

दो केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा सील निधान ।
देखि भानुकुलभूपनहि, विसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥

अर्थ सिंह की सी कमर पीताम्बर धारण किये परमा शोभा और शील के निधान भानुकुल भूषण को देखकर सखियाँ अपनपौ अपने को ही भूल गईं।

व्याख्या कटि के क्षीण होने की ही शोभा है। श्याम शरीर पर पीताम्बर अधिक खिलता है। अत परमा शोभा है और स्वभाव मे शील के निधान है। यह कहते कहते रुक गई चरणो की शोभा न कह सकी। अपने को ही भूल गई यही दशा सुननेवालियो की भी हुई।

अपान विसरा से जडता सञ्चारीभाव कहा। जब इष्ट या अनिष्ट सुनने देखने से कोई बोध नही होता तो उसे जाड्य सञ्चारी कहते है। यथा जाड्यम-प्रतिपत्ति स्यादिष्टानिष्टश्रुतीक्षणे। अथवा फूल की कियारी म है। कटि के नीचे के भाग का दर्शन नही हुआ। इसलिए वर्णन भी नही किया।

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
वहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू ॥१॥

अर्थ एक सयानी सखी ने धैर्य धारण करके सीताजी का हाथ पकडकर कहा कि गौरीजी का ध्यान फिर कर लेना। राजकुमार को देख क्यो नही लती।

व्याख्या यह सखी सयानी है। इसलिए सबके पहिले धैर्य धारण म समर्थ हुई। सयानी कहने का दूसरा भाव यह कि सीताजी को प्रेमवश तो सबने जाना। ध्यान से हटाने के लिए राजकुमार का शोभा वर्णन भी करने लगी पर ध्यान भङ्ग नही हुआ। क्या कहकर इनको जगावें यह किसी को न सूझा। इसे सूझ गया। इसने समझ लिया कि हाथ पकडकर जगाने से हो जागेंगी और इनके ध्यान को गौरी का ध्यान बतलाकर जगाना चाहिए। राजकुमारो को यह गर्व न हो कि इनकी सखी मेरी सुन्दरता म मग्न हो गई है और इन्हे भी सङ्कोच न हो।

सकुचि सीय तब नैन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे ॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु जनु अति छोभा ॥२॥

अर्थ सङ्कुचित होकर सीताजी ने तब आखें खोली। सामने दोनो रघुकुल के सिंहो को देखा। नख से शिख तक रामजी की शोभा देखकर और पिता के प्रण को समझकर मनमें बडा क्षोभ हुआ।

व्याख्या उपाय काम कर गया। सखी का उपालम्भ और उपहास भी कर्तव्य है। उपालम्भ करती है कि उपास्यदेव की भाँति राजकुमार का ध्यान करती हो। सुनकर सङ्कुचित होकर सीताजी ने नेत्र खोला। स्वच्छन्द क्रिया से

सङ्कोच हुआ। व्रीडा सञ्चारी भाव हुआ। नयन उघारा तो दो रघुसिंहो को देखा मृगपति सरिस असक। पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी। मत्त नाग तम कुभ विदारी। भाव यह कि सीताजी फुलवारी म प्रकाश करती फिरती थी। पर तम मरा नही था। इनके हाथ से मारा पडा था।

सखियो ने शिख नख वर्णन किया। इन्होने पूज्य बुद्धि मे नख शिख देखा। बडी मधुर मूर्त्ति है। इनसे कमठ पृष्ठ कठोर धनुप कैस टूटगा और पिता का प्रण यही है कि जो धनुप चढावेगा उसे जानकी की प्राप्ति हागी। अत मनम अत्यन्त क्षोभ हुआ। यथा कमठपृष्ठकठोरमिद धनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दन। कथमधिज्य मनेन विधीयतामहह तात प्रणस्तव दारुण। ह ना।

परवस सखिन लखी जब सीता। भये गहरु सब कहहि सभीता ॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन विहसी एक आली ॥३॥

अर्थ जब सखियो ने देखा कि सीताजी परवश हैं। तब सब भयभीत होकर कहने लगी कि देर हो रही है। कल इस समय फिर आऊँगी। ऐसा कहकर एक सखी मनही मन हँसी।

व्याख्या प्रेमवश जानने से सङ्कोच हुआ था। परन्तु परवश जानने से भय हुआ। सयानी सखी है। हृदय पढ रही है। इन्हे पिता का प्रण स्मरण करके क्षोभ हो रहा है। यह तो परवश हुई जा रही हैं। अपने अपराध से सभीत हैं। हम लोग इन्हे यहा क्यो लायी। जब एक सखी की दशा हमलोगो ने आँख से देख ली थी तब इन्हे लाना सर्वथा अनुचित हुआ। यह शोभा ही उन्मादकारिणी है। भाव पलटने के लिए माता का स्मरण 'अब देर हो रही है' कहकर दिला रही है।

फिर इसी समय कल आवेंगी कहकर उपहास करती है। व्यञ्जित करती हैं कि इस समय चलो। मनही मन हँसने का कारण यह कि प्रकट हँसने मे सीताजी का अपमान हागा। अपनी उक्ति पर स्वय ही हँस रही है। क्योकि कल इस समय यहाँ आना असम्भव होगा। इस समय तो धनुपयज्ञ होता रहेगा। अत ध्वनि यही है कि इस समय चलो। धैर्य धरो।

गूढ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भए बिलब मातु भय मानी ॥
धरि बडि धीर राम उर आने। फिरी अपनपौ पितुबस जाने ॥४॥

अर्थ गूढार्थक वचन सुनकर सीताजी को सङ्कोच हुआ। माता का डरी कि देर हो गई। बडा धैर्य धारण करके रामजी को हृदय मे रक्खा और अपने को पिता के वश जानकर लौटी।

व्याख्या गूढ गिरा अर्थात् इसी समय धनुपयज्ञ म कल फिर इनका साक्षात्कार हागा। उस समय का देखना भी समुचित हागा। इस समय का इस भाँति देखते रहना समुचित नहीं। अति क्षोभ रहा। अत बडा धैर्य धारण करना पडा। लोचन लुब्ध थे। अत उधर से फिरने म बडे धैर्य की आवश्यकता थी।

मनको समझाया कि मै पिता के वश मे हूँ। फिर भी रामजी को हृदय मे रखकर लौटी।

दो देखन मिस मृग विहँग तरु, फिरइ वहोरि वहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, वाढ़ै प्रीति न थोरि ॥२३४॥

अर्थ मृग, पक्षी और पेडो के देखने के वहाने वार वार लौटकर देखती हैं। रघुवीर की छवि वार वार देखकर प्रीति थोडी नही वढती थी।

व्याख्या रामजी को देखने की इच्छा है। पर मृग कैसा सुन्दर है। चिडियाँ कैसा मधुर वोल रही है। वृक्ष कैसा फूला हुआ है। ऐसा कहकर चतुरता से वात छिपाती है। फिर फिरकर देखने से तृपा शान्त नही होती। उत्तरोत्तर वढती ही जाती है। ऊपर जो मृग पक्षी और तरु के व्याज से लौट लौटकर रामजी को देखना कहा वह अवहित्था सञ्चारी है। यथा : अवहित्थाऽऽकारगुप्तिर्भवेद्भावेन केनचित्।

जानि कठिन सिवचाप विसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जव जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी ॥१॥

अर्थ शिवजी के धनुप को कठिन जानकर चिन्ता करती हुई हृदय मे साँवली मूर्ति को रखकर चली। प्रभु ने जब सुख स्नेह शोभा और गुणो की खानि जानकी को जाते हुए जाना।

व्याख्या शिव चाप मेरुमन्दर का जोड कठिनाई और गुरुता मे था। तभी शिवजी की भुजाओ के तान के सहने मे समर्थ था। शिवजी के मेरुको धनुप वनाने की कथा पुराणो मे सुनी जाती है। यथा रथक्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरिति। धनुप की ऐसी कठोरता को समझकर सीताजी चिन्तित हुई। खिदविसूर.। विसूरयि खिद्यते। खेद करने के अर्थ मे विसूर का प्रयोग होता है। यहाँ चिन्ता सञ्चारी है। चिन्ता सहित आना कहा। यथा कहँ गये नृपकिसोर मन चिंता। अव चिन्ता सहित जाना कहते है। यथा · विसूरत चली। पर साँवली मूर्ति को हृदय मे रख लिया।

जब फिरी अपनपौ पितु वस जानी तव प्रभु ने जान लिया कि जनकनन्दिनी जा रही हैं। वह शोभा सुख की खानि हैं। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। सनेह और गुण की खानि है। यथा देखन मिस मृग विहँग तरु फिरै वहोरि वहोरि। निरखि निरखि रघुवीर छवि वाढी प्रीति न थोरि।

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्हो। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही ॥
गई भवानी भवन वहोरी। वदि चरन बोली कर जोरी ॥२॥

अर्थ परम प्रम की मृदु स्याही वनाया और चित्तरूपी भीत पर सुन्दर

चित्र लिख लिया। फिर गिरिजा के मन्दिर में गईं और चरणवन्दना करके हाथ जोडकर बोली।

व्याख्या जनकनन्दिनी जब जाने लगी तो वियोग काल में चित्त के आश्वासन के लिए रामजी की मूर्ति को हृदय में रख लिया और प्रभु ने जब देखा कि ये जा रही है तो चित्तरूपी भीत पर परम प्रेम का रंग बनाकर जनकनन्दिनी का चित्र लिख लिया। यथा चित्त भीति सुप्रीति रंग सरूपता अवरेखु। दोनों ओर स्थायी भाव का उदय दिखलाया। उन्हें सीताजी को पूजन करना था इसलिए उन्होंने मूर्ति हृदय में रक्खी। इन्हें रामजी को ध्यान करना था इसलिए चित्र लिख लिया।

पहिले भी गौरी के मन्दिर में गई थी। इसलिए बहोरि गई कहा। पूजा कर चुकी थी। निज अनुरूप सुन्दर वर के लिए प्रार्थना कर चुकी थी। अब निज अनुरूप सुभग वर देख आई हैं। उनकी मूर्ति हृदय में लेकर आई है कि यही वर चाहिए। अत चरण वन्दना करके हाथ जोडकर बोली

जय जय गिरिवरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजवदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुतिगाता॥३॥

अर्थ पर्वतराज की पुत्रि! तुम्हारी जय हो। जय हो। महेशमुखचन्द चकोरी की जय हो। गणेशजी और स्वामी कार्त्तिकेय की माँ! तुम्हारी जय हो। तुम जगत् की माँ हो। तुम्हारे शरीर में बिजली सी चमक है।

व्याख्या अभी गिरिराज के घर अवतीर्ण नहीं हुई हैं। अभी तो सतीरूप से दाक्षायणी होकर विराजमान हैं। फिर भी गिरिराजकुमारी कहकर स्तुति हो रही है। इससे स्पष्ट है कि सती के समय भी उनकी गिरिराजकिशोरी रूप से पूजा होती थी। जिस भाँति गणेशजी सुर अनादि हैं उसी भाँति गिरिजा भी अनादि शक्ति हैं। लीला से दाक्षायणी पार्वती आदि रूप से अवतीर्ण हुआ करती हैं। दिव्य जन्म और दिव्य कर्म होने से दो बार जय कहती हैं। गिरिवरराज किसोरी से जन्म कहा। और महेस मुखचन्द चकोरी से अभूतपूर्व तपस्या कही।

प्रथम पूज्य गणेश तथा देवसेनानी स्वामिकार्तिकेय ऐसे पुत्रों की आप माता हैं। तथा सम्पूर्ण जगत् की माता हैं। इसलिए फिर उत्कर्षसूचक जय शब्द का प्रयोग करती हैं। दामिनिद्युतिगाता से तेज की प्रखरता कही। जिस भाँति दामिनी के दमकने से आँख बन्द हो जाती है उसी भाँति तुम्हारी मूर्ति के सामने आँख नहीं ठहरती।

नहिं तव आदि अंत अवसाना। अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि॥४॥

अर्थ तुम्हारे आदि और अन्त की समाप्ति नहीं। असीम प्रभाव को वेद भी

नही जानता। तुम ससार की उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेवाली हो। विश्व को मोहन करनेवाली और स्वतन्त्र विहार करनेवाली हो।

व्याख्या · आदि और अन्त अर्थात् आविर्भाव और तिरोभाव का अन्त नही है। अर्थात् आप के अनन्त अवतार हैं। वह जगन्मूर्ति नित्य है। उसी से यह ससार व्याप्त है। फिर भी उसकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से सुनी जाती हैं। यथा : नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिद ततम्। तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयता मम। तुम्हारे असीम प्रभाव को वेद नही जानते। क्योकि आप उनकी भी आधारभूता है। यथा : शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषा निधानमुद्गीतरम्यपदपाठवता च साम्नाम्। ब्रह्मदेव जो जगत् की रचना करते हैं विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं वह आप के प्रताप से करते है। यथा रचत विरचि हरि पालत हरत हर तेरे ही प्रसाद मातु अग जग पालिके। तोहि विकास विश्व तोहि मे विलास सब तोहि मे समात मातु भूमिधर बालिके। आप अविद्यारूप होकर विश्व को मोहन करनेवाली है और स्वतन्त्र शक्तिरूपा होने से स्ववशविहारिणी है।

दो पतिदेवता सुतीय महुँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेष ॥२३५॥

अर्थ पतिव्रता उत्तम स्त्रियो मे माँ! आप की पहिली गिनती है। आप की अपार महिमा को सहस्रो शारदा और शेष वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या परम अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहहि। जस गावहिं श्रुतिचार, अजहुँ तुलसिका हरिहिं प्रिय। परम अपावन स्त्री भी यदि पति की सेवा करती हे तो उसका यश चारो वेद गाते है। आप तो माता उत्तम पतिव्रताओं मे भी प्रथम गणनीया हो। आप की महिमा का गान वेद क्यो न करेगे? परन्तु उसकी सीमा नही है। इसलिए अकथनीय है। वह शेष और शारदा द्वारा भी नही कही जा सकती। किसी को यह सन्देह न हो कि मर्त्यलोक के वक्ता वेद नही कह सकते तो कदाचित् स्वर्ग के वक्ता शारदा और पाताल के वक्ता शेष कह सकते हो। इसलिए कहती है कि वे भी नही कह सकते। वेद के लिए तो कह ही दिया है कि अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे ॥१॥

अर्थ हे वरदायिनि! हे पुरारि प्रिये तुम्हारी सेवा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। हे देवि! तुम्हारे चरणकमल की पूजा करके सुर नर मुनि सब सुखी होते हैं।

व्याख्या जय जय जग जननि देवि सुरनर मुनि असुर सेवि भुक्ति-मुक्ति दायिनि भय हरनि कालिका। देवी मुक्ति और भुक्ति दोनो देती हैं। धर्मार्थ काम मोक्ष का मुक्ति-भुक्ति म अन्तर्भाव होने से चारो फलो का दिया जाना कहा। जगदम्बा

के पूजन के बिना चारो फलो की प्राप्ति दुर्लभ है। यथा यो न पूजयते नित्य चण्डिका भक्तवत्सलाम्। भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी[1]। अत वीर वैष्णव भी चण्डिका की पूजा करते हैं। निज अनुरूप सुभग वर माँगा है। इसलिए वरदायिनी कह रही है। देवि त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा। हे देवि! शशिमौलि ने भी तुम्हारी प्रतिष्ठा की है। इसलिए पुरारि पियारी कहती हैं।

उपास्य के गुण उपासक मे जब आवें तभी समझना चाहिए कि ठीक उपासना हुई। यथा

उपास्य के गुण		उपासक के गुण
गिरिराज किसोरी	१	विदेह कुमारी
महेसमुखचद चकोरी	२	सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी
गज वदन षडानन माता	३	दुइ सुत सुन्दर सीता जाए
जगत जननि	४	जगदम्बा जानहु जिय सीता
दामिनि दुति गाता	५	दुलहिन तडितवरन तन गोरी गी
भव भव विभव पराभव कारिनि	६	उद्भव स्थिति सहार कारिणी
		आदि सक्ति जेहि जग उपजाया
अमित प्रभाव वेद नहिं जाना	७	तव प्रभाव जग विदित न केही
पतिदेवता सुतीय मह	८	सुनु सीता तव नाम सुमिरि
मातु प्रथम तवरेख		नारि पतिव्रत करहि
सेवत सुलभ फल चारी	९	सर्वश्रेयस्करी सीताम्
वर दायिनि	१०	आसिष तव अमोघ विख्याता
पुरारि पियारी	११	राम वल्लभा

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥२॥

अर्थ मेरा मनोरथ भली भाति जानती हो। क्योकि सभी के हृदय रूपी पुर म तुम्हारा निवास है। इसी कारण से प्रगट नही कहा। ऐसा कहकर जानकीजी ने पैर पकड लिया।

व्याख्या अनाहत चक्र हृदय म शिव दुर्गा का निवास है और वही मन का निवास है। इसलिए तुम मेरे मनोरथ को भलीभाँति जानती हो। ध्यान करने वाले और न करनेवाले सभी के हृदय म सदा बसती हो। नीके जानहु कहने का भाव यह कि मैंने मुखत भी कह दिया है। यथा निज अनुरूप सुभग वर माँगा अथवा साँवली मूर्ति को हृदय म धारण करके चली है। अत कहता हूँ जहाँ तुम हो वही साँवली मूर्ति भी है। अब परिचय देने की आवश्यकता नही। वही मनोरथ है।

---

१ जो भक्त वत्सला चण्डिका की पूजा नित्य नही करते उसके पुण्यकर्मो का परमेश्वरी जलाकर भस्म कर देती है।

प्रगट करके कहना निष्प्रयोजन है। नही तो अवश्य प्रगट करती। ऐसा कहकर चरण पकड लिया कि आज लूँगी। वैदेही है। देह छोडने मे कुछ आगा-पीछा नही है।

विनय[1] प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सिय प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरसु उर भरेऊ ॥३॥

अर्थ भवानी विनय प्रेम के वश हो गई। माला गिरी और मूर्ति मुसकराई। आदर के साथ सीताजी ने प्रसाद शिरपर चढाया। गौरी बोली उनके हृदय म हर्ष भर उठा।

व्याख्या मोर मनोरथ जानहु नीके से असकहि तक विनय है। और चरण का पकड लेना प्रेम है। सो भवानी विनय और प्रेम के वश हो गई। सबके लिए रास्ता बतलाया जा रहा है। यदि भवानी को वश करना है तो श्मशान मे जागने से नही विनय और प्रेम से वे वश होती है। मूर्ति मे आवेश हो गया। मूर्ति हिली। पूजन मे जो माला पहिनायी थी वह प्रसाद रूप मे मिली। माला यो भी वायु आदि द्वारा गिर जाती है। पर यह गिरना और भाँति का था। क्योकि साथ ही साथ मूर्ति मे मुसकराहट लक्षित हुई। आज भी मूर्ति मुसकराती है उदास होती है अप्रसन्न होती है उपासको को स्पष्ट प्रतीत होता है। बात का उडा देना दूसरी बात है। परन्तु प्रत्यक्ष का अपलाप नही किया जा सकता। यह शङ्का न उठानी चाहिए कि देवता की मूर्ति का हँसना उत्पात है। मूर्ति का हँस पडना एक बात है और मुसकराहट मालूम पडना दूसरी बात है। कितनी मूर्तियाँ बनी ही ऐसी है कि उनमे सदा मुसकराहट मालूम पडती है। तिस पर यहाँ तो आवेश का वर्णन है। पहिले मूर्ति हिली तब मुसकराई अब बोल भी उठी।

सीताजी ने उस प्रसादरूप माला को सिरपर धारण किया। स्तुति करते समय यदि इष्टदेव के ऊपर से फूल गिर पडे तो उपासक उसे उठाकर सिरपर चढाते है और कार्यसिद्धि का सूचक मानते है। भगवती जनकनन्दनी के विनय *और प्रेम से गौरी भगवती का हृदय हर्ष से भर उठा।* बिना बोले नही रहा जाता। मूर्ति मे और भी अधिक आवेश हुआ। अब मूर्ति द्वारा गौरी बोली। जनकनन्दिनी का विनय और प्रेम ही ऐसा है। आगे चलकर आप गङ्गाजी को भी बोलते पायेंगे। भई तब विमल वारि बर बानी।

सुनु सिअ सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी ॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहि जाहि मन राचा ॥४॥

अर्थ सीते। मेरा सत्य अशीर्वाद सुनो। तुम्हारी मन कामना पूरी होगी। नारद का वचन सदा पवित्र और सत्य है। वही वर मिलेगा जिससे मन लगा है।

---

१ यहाँ सूक्ष्मालङ्कार है।

व्याख्या वडी होने के नाते आशीर्वाद देती है, वर नही देती। वैदेही ने चरण पकड लिया था। अत आशीर्वाद देना ही चाहिए। सो कहती है पूजिहि मन कामना तुम्हारी। आशीर्वाद मिथ्या भी पड जाता है। इसलिए कहती हूँ मेरी असीस है यह सत्य है। मिथ्या नही हो सकती। मैं अपनी अनुभूत बात कहती हूँ कि वरु पावक प्रकटे ससि माही। नारद वचन अन्यथा नाही। सो नारदजी स्वय तुमसे कह चुके हैं और तुम्हे स्मरण है। यथा सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत। अब बात स्पष्ट हो गई कि नारदजी ने कहा था जिसे तुम्हारा चित्त चाहेगा वही वर मिलेगा। उसका तुम्हारा प्रथम साक्षात्कार गिरिजा बाग म होगा। जो नारदजी ने कहा है वही होगा। मैं वरदान क्या दूँ ? हाँ उसी की पुष्टि करती हुई मैं आशीर्वाद दे रही हूँ।

छ मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुदर साँवरो।
करुना निधानु सुजानु सीलु सनेहु जानत रावरो॥
यहि भाँति गौरि असीस सुनि सिअ सहित हिअ हरषी अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मदिर चली॥

अर्थ जिसका मन चाहता है वही सहज सुन्दर साँवला वर मिलेगा। वह करुणानिधान है, सुजान है और आपके शील और स्नेह को जानता है। इस प्रकार की गौरी की असीस सुनकर सीताजी के सहित सब सखिया हर्षित हुई। तुलसीदासजी कहते हैं कि बार बार भवानी की पूजा करके प्रसन्न मन घर को चली।

व्याख्या अपना उरपुर म बसना और मनोरथ को भलीभाँति जानना व्यक्त करती हैं। मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो। दोनो कुमारो मे से साँवरे म तुम्हारा मन लगा है। वही वर तुम्हे मिलेगा। वह स्वभाव से ही सुन्दर है। उसके मण्डन की आवश्यकता नही। वह करुणानिधान है। अवश्य करुणा करेगा। यथा सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड लघु व्यालहि जैसे। तुम्हारा शील स्नेह भी वह जानता है क्योकि सुजान है। यथा प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी। अर्थात् वर म जो गुण चाहिए वे अत्यन्त उत्कर्ष रूप म उसम वर्तमान हैं। गौरी के आशीर्वाद से सीताजी और सखियाँ सब हर्षित हो गईं। क्योकि गौरी की वाणी अमोघ है। कृतकृत्य होकर कृतज्ञता प्रकाशन के लिए बार बार पूजा की और मुदितमन गौरी के मन्दिर मे प्रार्थी होकर आई थी। यथा गई मुदितमन गौरि निकेता। सो कृतकार्य होकर मुदितमन मन्दिर चली।

दो जानि गौरि अनुकूल, सिअ हिअ हर्पु न जाइ कहि।
मजुल मगल मूल, वाम अग फरकन लगे॥२३६॥

---

१ यह हरिगीतिका छद है। इसके बाद जितने छद बालकाण्ड म पडेंगे सब हरिगीतिका ही हैं।

अर्थ गौरी को अनुकूल जानकर सीताजी के हर्ष का वर्णन नहीं हो सकता। सुन्दर कल्याण के मूल वाम अंग फड़कने लगे।

व्याख्या गौरी को अनुकूल जानकर सीताजी के हर्ष का पारावार नहीं है। सखी सीताजी के मनोरथपूर्ति की दृढ़ आशा से तथा भय के दूर हो जाने से हर्षित हैं। पर सीताजी को अपनी निधि की प्राप्ति के निश्चित आश्वासन से हर्ष है। अत वह अवर्णनीय है। उसी भाव को पुष्ट करने के लिए मानो मंगलमूल वाम अङ्ग फड़कने का सगुन हुआ। सगुन प्रतीत भेंट प्रिय केरी।

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं॥१॥

अर्थ मन मे सीताजी के लावण्य की प्रशसा करते हुए दोनो भाई गुरुजी के समीप गये। रामजी ने सब कुछ विश्वामित्रजी से कह सुनाया। क्योकि उनका स्वभाव सरल था। जिनमे छल का स्पर्श भी नही था।

व्याख्या परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिख लीन्ही। से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से आरम्भ करते है। मानसिक चित्र मे सीताजी का लावण्य देख देखकर प्रशसा करते हैं। अत यह वाक्यांश केवल रामजी के प्रति है। भगवती सखियों के साथ मन्दिर चली और प्रभु भाई के साथ गुरुजी के पास गये। यहा दोना भाई के साथ जिस भाति गवने क्रिया का अन्वय है उसी भाँति सराहत के साथ नहीं है। सराहना केवल रामजी कर रहे है। *यथा छत्रिणो गच्छन्ति।* छाता किसी एक के ही हाथ मे है पर कहा जाता है कि छातावाले जाते है। इसी भाति सराहना केवल रामजी करते हैं पर गवने क्रिया के कर्ता होने से सराहत पूर्वकाल की क्रिया का सम्बन्ध दोना भाई *के साथ कर दिया* गया है। गुरुजी से सीतामिलन अपने मनका क्षोभ चित्त मे चित्र का अङ्कन कहा। किसी बात को छिपाया नही क्योकि स्वभाव प्रभु का ऐसा सरल है कि छल का स्पर्श भी कहीं नहीं है। ऐसे सरल पुरुष ही सच्चे धर्मात्मा हो सकते हैं। यथा सुत सुतबधूँ देवसरि बारी। छिपाना ही पाप का मूल है।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहु तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे॥२॥

अर्थ फूल पाकर मुनिजी ने पूजन किया और फिर दोनो भाइयो को असीस दी कि तुम्हारे मनोरथ सफल हो। सुनकर राम लक्ष्मण सुखी हुए।

व्याख्या सीताजी ने गौरी की पूजा स्वय की। यथा पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। यहाँ गुरुजी ने फूल पाकर महादेवजी की पूजा की। वहाँ पूजा के बाद गौरी *भगवती की असीस मिली।* यहाँ पूजा के बाद गुरुजी ने आशीर्वाद दिया। गुरुजी ने जब वृत्तान्त सुना तब कुछ न बोल पूजा कर ली तब आशीर्वाद दिया। क्योकि शास्त्र कहता है कि सन्ध्या करने के बाद पूजन के पश्चात् अथवा भोजन के पश्चात् जो

ब्राह्मण के मुख से निकलता है वह सत्य होता है। इसलिए गुरुजी ने पूजन के बाद आशीर्वाद दिया है। दोनो भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम लोगो के मनोरथ सुफल हों। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मणजी का भी कुछ मनोरथ था। जिस भाँति पत्नी रूप में सीताजी के मिलने का मनोरथ रामजी को था उसी भाँति भावज रूप में सीता की प्राप्ति का मनोरथ लक्ष्मणजी को था। अत गुरुजी दोनो भाइयो के मनोरथ की पूर्ति का आशीर्वाद देते हैं। वृत्तान्त सुनने पर भी गुरुजी के कुछ न कहने से दोना भाई चिन्तित हो गये थे। सो अब आशीर्वाद पाकर सुखी हुए। यहाँ पर थोडी सी दोनो ओर की घटनाओं का मिलान विनोदार्थ किया जाता है।

रामजी की ओर की घटना		सीताजी की ओर की घटना
तात जनक तनया यह सोई	१	एक कहै नृप सुत सोइ आली
धनुषयज्ञ जेहि कारन होई		सुने जे मुनि सग आए काली
देखन बाग कुँअर दोउ आये	२	पूजन गौरि सखीं लै आई
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा	३	लता ओट तब सखिन्ह लखाए
सिय मुख ससि भये नयन चकोरा	४	सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी
भए बिलोचन चारु अचचल	५	थके नयन रघुपति छबि देखी
मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगचल	६	पलकन्ह हू परिहरे निमेखैं
देखि सीय सोभा सुख पावा	७	देखि रूप लोचन ललचाने
हृदय सराहत वचन न आवा	८	अधिक सनेह देह भई भोरी
सिय सोभा हिय बरनि प्रभु	९	लोचन मग रामहि उर आनी
आपन दसा विचारि	१०	दीन्हे पलक कपाट सयानी
सहज पुनीत मोर मन छोभा	११	सुमिरि पिता पन मन अति छोभा
फरकहि सुभद अग सुनु भ्राता	१२	बाम अग फरकन लगे
चारु चित्त भीती लिख लीन्ही	१३	चली राखि उर स्यामल मूरति
गुर समीप गवने दोउ भाई	१४	गई भवानी भवन बहोरी
राम कहा सब कौसिक पाही	१५	मोर मनोरथ जानहु नीके
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही	१६	विनय प्रेम बस भई भवानी
पुनि असीस दोउ भाइन्ह दीन्ही	१७	सुनु सिय सत्य असीस हमारी
सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे	१८	सो बर मिलिहि जाहि मन राचा
हृदय सराहत सीय लोनाई	१९	साँवर कुँवर सखी सुठि लोना
राम लखन सुनि भए सुखारे	२०	सिय हिय हरख न जाइ कहि

और भी मिलान किया जा सकता है पर प्रधान इतने ही हैं।

करि भोजनु मुनिवर विग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
बिगत दिवस गुर आयसु पाई। सध्या करन चले दोउ भाई॥३॥

अर्थ श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि भोजन करके कुछ पुरानी कथाएँ कहने लगे। दिन बीतने पर मुनिजी की आज्ञा पा करके सन्ध्या करने दोनो भाई चले।

व्याख्या : पूजन के बाद मुनियो में श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने भोजन किया। भोजन के बाद कुछ विश्राम चाहिए। परन्तु विज्ञानी मुनि है प्रमाद नही होने देते। विश्राम के समय मे पुरानी कथाएँ कहते हैं। पुरानी कथाओ के मिस से धर्मोपदेश का विधान है। जितने पुराण है उनमे किसी न किसी कल्प की कथा का आश्रयण करके धर्म कहा गया है। कथा सुनने में मन लगता है। आयास नही मालूम होता है और उपदेश हृदय मे अङ्कित होता जाता है। अत: विश्वामित्रजी की कथा दिनमे भी विश्राम के समय होती है और रात को भी होती है। यथा कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी।

विगत दिवस और निसि प्रवेस एकही बात है। सन्ध्या आते ही गुरुजी की आज्ञा सन्ध्या के लिए हो जाती है। अत दोनो भाई सन्ध्या करने चले। परमात्मा के अवतार होने पर भी नित्यकर्म का त्याग नही करते। क्योंकि कृतकृत्य महापुरुष भी लोकसग्रहार्थ नित्य नैमित्तिक कर्म का परित्याग नही करते। चले कहने का भाव यह कि डेरे पर ही सन्ध्या नही कर ली जलाशय पर गये।

प्राची दिसि ससि उगेउ[1] सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा ॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माही। सीय [2]बदन सम हिमकर नाही ॥४॥

अर्थ पूर्व दिशा मे सुन्दर चन्द्रोदय हुआ। सीताजी के मुख के सदृश देखकर सुख पाया। फिर मन मे विचार किया कि सीताजी के मुख के समान चन्द्र नही है।

व्याख्या आज चतुर्दशी या पूर्णमासी है। साय सन्ध्या समाप्त होते होते चन्द्रोदय हो गया। देखा तो सीताजी के मुख के समान प्रकाशकत्व और आह्लादकत्व है। इससे सुख मिला। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। एकाएक तो चन्द्र सीताजी के मुख के समान ही प्रतीत हुआ पर विचार करने पर राय पलट गई। यही निश्चय किया कि चन्द्रमा सीताजी के मुख के पटतर योग्य नही है।

दो. जन्म सिधु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलंकु।
सिअ मुख समता पाव किमि, चंद्र बापुरो रंकु ॥२३७॥

अर्थ यह समुद्र से जन्मा है। भाई इसका विष है। दिनमे निष्प्रभ है और कलङ्कयुक्त है। यह गरीब विचारा सीता के मुख की बराबरी कैसे कर सकता है?

व्याख्या : रहिमन जाके बाप को जल पीवै नहिं कोय। ताके सुत के हृदय मे क्यो न कालिमा होय। चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से है जिसका जल कोई नही

---

१ यहाँ प्रतीप तृतीय है।

२ चन्द्र की शोभा शरद् मे ही अधिक होती है। सायकाल मे प्राचीदिशि मे उदय तो चतुर्दशी या पूर्णिमा को होता है। उसी के दूसरे दिन धनुर्यज्ञ था। जिसका प्रतिपद मे होना सम्भव नही था। अत कहना पड़ेगा कि आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को फुलवारी की लीला हुई और पूर्णिमा को धनुर्भङ्ग हुआ।

पीता। इसका प्रिय भाई विष है। यथा प्रभु वह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा। विष सजुत कर निकर पसारी। जारत विरहवत नर नारी। इसमे प्रकाश भी रात को ही रहता है। दिन को तो एकदम फीका पड जाता है और इसमे कलङ्क है। बापुरो रक अर्थात् वेचारा गरीव है। प्रकाश ही इसकी सम्पत्ति है। वह इसकी अपनी नही है। इसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। अत स्वयं सम्पत्तिहीन होने से रङ्क गरीव कहा और क्षयरोगयुक्त है इसलिए विचारा कहा। इधर सीताजी विदेहराज जनक की बेटी हैं। यथा

रिषिराज आज राजा जनक समान को।
आपु येहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत रागी औ विरागी बडभागी ऐसो आनको।
गुरु हरपद नेहु गेह बसि भो विदेह अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को।
कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुध समत पथीन निरवान को।
गाठि विनु गुन की कठिन जड चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।

सीताजी के भाई सर्वकामफलप्रद साक्षात् मङ्गल हैं अथवा लक्ष्मीनिधि हैं। सीता दिन को भी प्रकाश करती है। यथा करत प्रकास फिरत फुलवाई। यह निष्कलङ्क है। यथा जिमि विरचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रकट दिखाई। सीता के प्रकाश से दूसरे प्रकाशित होते हैं। यथा सुन्दरता कहँ सुदर करई। छविगृह दीप सिखा जनु बरई। अत सीता के मुख की समता को चन्द्र कैसे पा सकता है ?

घटै बढै बिरहिन दुखदाई। ग्रसै राहु निज सधिहि पाई॥
कोक सोकप्रद पकज द्रोही। अवगुन बहुत चद्रमा तोही॥१॥

अर्थ घटता बढता है। विरहियो को दु ख देता है। अवसर मिल जाने पर इसे राहु ग्रसता है। कोक को शोक देता है। कमल से द्रोह करता है। चन्द्रमा ! तुझ म बहुत अवगुण हैं। .

व्याख्या घटता है। बढ़ता है। सदा विपमावस्था इसकी बनी ही रहती है। विरहियो को दु ख देता है। यथा

सतत दु खद सखी रजनीकर।
अब बिनु मन तन दहत दया तजि राखत रवि ह्वै नयन वारिधर।
जद्यपि है दारुन बडवानल राख्यौ है जलधिगभीर धीर तर।
ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यौ पिता तव भयउ व्योमचर।
सकल विकार कोष विरहिनि-रिपु काहे ते याहि सराहत सुरनर।

यह महामलीन मरे को मारता है। पूर्णिमा प्रतिपद की सन्धि म ही चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् राहु चन्द्र को ग्रस लेता है। यह राहु का उच्छिष्ट है। पक्षी ने किसका क्या बिगाडा है। सो यह कोक को शोक दता है। कमल ससार को प्रिय है। पर यह उससे भी द्रोह करता है। अत रामजी चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि तुझमे बहुत अवगुण हैं।

व्याख्या पूजन के वाद मुनियों मे श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने भोजन किया। भोजन के वाद कुछ विश्राम चाहिए। परन्तु विज्ञानी मुनि है प्रमाद नही होने देते। विश्राम के समय में पुरानी कथाएँ कहते हैं। पुरानी कथाओं के मिस से धर्मोपदेश का विधान है। जितने पुराण हैं उनम किसी न किसी कल्प की कथा का आश्रयण करके धर्म कहा गया है। कथा सुनने मे मन लगता है। आयास नही मालूम होता है और उपदेश हृदय मे अङ्कित होता जाता है। अत विश्वामित्रजी की कथा दिनमे भी विश्राम के समय होती है और रात को भी होती है। यथा कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी।

विगत दिवस और निसि प्रवेस एकही बात है। सन्ध्या आते ही गुरुजी की आज्ञा सन्ध्या के लिए हो जाती है। अत दोनो भाई सन्ध्या करने चले। परमात्मा के अवतार होने पर भी नित्यकर्म का त्याग नही करते। क्योकि कृतकृत्य महापुरुष भी लोकसंग्रहार्थ नित्य नैमित्तिक कर्म का परित्याग नही करते। चले कहने का भाव यह कि डेरे पर ही सन्ध्या नही कर ली जलाशय पर गये।

प्राची दिसि ससि उगेउ[1] सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि विचारु कीन्ह मन माही। सीय [2]वदन सम हिमकर नाही॥४॥

अर्थ पूर्व दिशा मे सुन्दर चन्द्रोदय हुआ। सीताजी के मुख के सदृश देखकर सुख पाया। फिर मन मे विचार किया कि सीताजी के मुख के समान चन्द्र नही है।

व्याख्या आज चतुर्दशी या पूर्णमासी है। साय सन्ध्या समाप्त होते होते चन्द्रोदय हो गया। देखा तो सीताजी के मुख के समान प्रकाशकत्व और आह्लादकत्व है। इससे सुख मिला। यथा देखि सीय सोभा सुख पावा। एकाएक तो चन्द्र सीताजी के मुख के समान ही प्रतीत हुआ पर विचार करने पर राय पलट गई। यही निश्चय किया कि चन्द्रमा सीताजी के मुख के पटतर योग्य नही है।

दो जन्म सिंधु पुनि बधु बिषु, दिन मलीन सकलकु।
सिअ मुख समता पाव किमि, चद्र बापुरो रकु॥२३७॥

अर्थ यह समुद्र से जन्मा है। भाई इसका विष है। दिनम निष्प्रभ है और कलङ्कयुक्त है। यह गरीब विचारा सीता के मुख की वरावरी कैसे कर सकता है?

व्याख्या रहिमन जाके बाप को जल पीवै नहिं कोय। ताके सुत के हृदय मे क्यो न कालिमा होय। चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से है जिसका जल कोई नही

---

१ यहाँ प्रतीप तृतीय है।

२ चन्द्र की शोभा शरद् म ही अधिक होती है। सायकाल म प्राचीदिशि म उदय तो चतुर्दशी या पूर्णिमा को होता है। उसी के दूसरे दिन धनुषयज्ञ था। जिसका प्रतिपद म होना सम्भव नही था। अत कहना पडेगा कि आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को फुलवारी की लीला हुई और पूर्णिमा को धनुषभङ्ग हुआ।

पीता। इसका प्रिय भाई विष है। यथा प्रभु कह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा। विष सजुत कर निकर पसारी। जारत विरहवत नर नारी। इसम प्रकाश भी रात को ही रहता है। दिन को तो एकदम फीका पड जाता है और इसम कलङ्क है। बापुरो रक अर्थात् बेचारा गरीब है। प्रकाश ही इसकी सम्पत्ति है। वह इसकी अपनी नहीं है। इसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। अत स्वय सम्पत्तिहीन होने से रङ्क गरीब कहा और क्षयरोगयुक्त है इसलिए विचारा कहा। इधर सीताजी विदेहराज जनक की बेटी हैं। यथा

रिपिराज आज राजा जनक समान को।

आपु येहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत रागी औ विरागी बडभागी ऐसी आनको।
गुरु हरपद नेहु गेह बसि भो विदेह अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को।
कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुध समत पथीन निरवान को।
गाठि बिनु गुन की कठिन जड चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।

सीताजी के भाई सर्वकामफलप्रद साक्षात् मङ्गल हैं अथवा लक्ष्मीनिधि हैं। सीता दिन को भी प्रकाश करती है। यथा करत प्रकास फिरत फुलवाई। यह निष्कलङ्क है। यथा जिमि विरचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रकट दिखाई। सीता के प्रकाश से दूसरे प्रकाशित होते है। यथा सुन्दरता कहँ सुदर करई। छविगृह दीप सिखा जनु बरई। अत सीता के मुख की समता को चन्द्र कैसे पा सकता है ?

घटै बढै विरहिन दुखदाई। ग्रसै राहु निज सधिहि पाई॥
कोक सोकप्रद पकज द्रोही। अवगुन बहुत चद्रमा तोही॥१॥

अर्थ घटता बढता है। विरहियो को दुख देता है। अवसर मिल जाने पर इसे राहु ग्रसता है। कोक को शोक देता है। कमल से द्रोह करता है। चन्द्रमा! तुझ म बहुत अवगुण है।

व्याख्या घटता है। बढ़ता है। सदा विषमावस्था इसकी बनी ही रहती है। विरहियो को दुख देता है। यथा

सतत दुखद सखी रजनीकर।
अत्र बिनु मन तन दहत दया तजि राखत रवि ह्वै नयन वारिघर।
जद्यपि है दारुन बडवानल राख्यौ है जलधिगभीर धीर तर।
ताहू ते परम कठिन जान्यो ममि तज्यौ पिता तत्र भयउ व्योमचर।
मर्म विकार कोप विरहिनि रिपु काहे ते याहि सराहत सुरनर।

यह महामलीन मरे को मारता है। पूर्णिमा प्रतिपद की सन्धि म ही चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् राहु चन्द्र को ग्रस लेता है। यह राहु का उच्छिष्ट है। पक्षी ने इसका क्या बिगाडा है। सो यह कोक को शोक देता है। कमल समार का प्रिय है। पर यह उससे भी द्रोह करता है। अत रामजी चन्द्रमा की सम्बोधन करके कहते हैं कि तुझम बहुत अवगुण हैं।

वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोप वड अनुचित कीन्हे ॥
सिअ मुख छवि बिधुब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा वडि जानी ॥२॥

अर्थ सीता के मुख को तुलना करने से बडा अनुचित करने का भारी दोप होगा। चन्द्रमा के व्याज से सीताजी की मुखछवि का वर्णन किया। अधिक रात गई जानकर गुरुजी के पास चले।

व्याख्या सीताजी के मुख की तुलना चन्द्रमा से हो नही सकती। उसकी कलाओ का कृष्णपक्ष म देवता पान किया करते हैं। इसलिए घटता है और यहाँ तो सीताजी के कृपाकटाक्ष को देवता चाहा करते है। यथा जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ। चन्द्रमा तो विरही को दुख देता है। मरे को मारता है। किंतु सीता को तो खिन्न परम प्रिय हैं। यथा जिनहि परम प्रिय खिन्न। चन्द्रमा राहु का जूठा है। पर सीता की उपमा जूठे से नही दी जा सकती। यथा सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेह कुमारी। चन्द्रमा कोकसोकप्रद पकजद्रोही है और सीता सर्वश्रेयस्करी हैं। अत चन्द्र से सीता के मुख की समता करना बडा अनुचित है। जितना बडा अनुचित किया जाता है उतना ही बडा दोप होता है। इसलिए सियमुख की चन्द्र से समता करने म बडा दोप है। सीय वदन सम हिमकर नाही से उपक्रम करके पटतर दीन्हे होइ दोप कहके उपसहार करते हैं। इसी उधेडबुन म रात अधिक निकल गई। इसलिए गुरुजी के पास चले। सन्ध्या करन चले से उपक्रम गुरु पहँ चले से उपसहार।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बधु बिलोकि कहन अस लागे ॥३॥

अर्थ मुनिजी के चरण कमल म प्रणाम करके आज्ञा पाकर विश्राम किया। रात बीतने पर रघुनायक जगे। छोटे भाई को देखकर ऐसा कहने लगे।

व्याख्या आज मुनि के चरणकमलो का पलोटना नही कहा और न लक्ष्मणजी रामजी के ही चरण दबाते हैं। क्योकि आज उसकी आवश्यकता नही है। आज किसी को कही दूर जाना नही पडा। कल तो रास्ता चलकर आये थे। अत पैर दबाने की आवश्यकता थी।

जाकर मुनिजी के चरणकमलो म प्रणाम किया। मुनिजी ने रात अधिक जानकर तुरन्त विश्राम करने की आज्ञा दी। रामजी सोये इसलिए उनका पिछले पहर जागना कहते है। लक्ष्मणजी नही सोये अत उनका जागना भी नही कहते। रामजी जागे तो लक्ष्मण को प्रस्तुत देखकर कहने लगे। लक्ष्मणजी ही इस समय सखा हैं। अत अपने मनोगत भावो से उन्हे परिचित कराते हैं। साथी को अन्धकार म रखने से अनिष्ट का भय रहता है।

उएउ अरुन अवलोकहु ताता। पकज कोक लोक सुखदाता ॥
बोले लखन जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी ॥४॥

अर्थ : हे भाई ! देखो अरुण उदय हुआ। यह कमल और कोक लोगो को सुख देनेवाला है। लक्ष्मणजी दोनो हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव की सूचना देने वाली वाणी बोले।

व्याख्या अरुण का उदय होना भाई को दिखला रहे हैं दु ख दाता को नही दिखलाया सुखदाता को दिखला रहे हैं। कोक सोकप्रद पकज द्रोही अस्त हुआ। अब पकज कोक लोक सुखदाता का उदय हुआ। भाव यह कि कल रात को सुखदाता के उदय को कितनी रात तक हम देखते रहे। यह सूर्य का अग्रगामी सारथी अरुण है। इसका उदय होना सूर्य के आगमन का सूचक है।

लक्ष्मणजी चन्द्र के व्याज से सियमुखछवि के वखान मे नही बोले थे। पर अरुणोदय की चरचा चलते ही बोले। प्रभु को शृङ्गाररस मे मग्न देखकर विना पूछे कहते हैं। अत हाथ जोडकर वीररस के उदय के लिए प्रभुप्रभावसूचक मृदुवाणी बोले। वात को समझ जाने के लिए चन्द्रोदय का वर्णन रामजी ने किया। अब समझ जाना सूचन के लिए अरुणोदय का वर्णन लक्ष्मणजी करेगे।

दो अरुनोदय सकुचे कुमुद, उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति वलहीन ॥२३८॥

अर्थ अरुण के उदय होने से कुमुद : कोई सङ्कुचित हुए और ताराओ की ज्योति मलीन हो गई। जैसे तुम्हारा आगमन सुनकर राजा लोग वलहीन हो गये।

व्याख्या : पकज कोकलोक को सुख तो हुआ पर कुमुद सङ्कुचित हो गये और ताराओ की ज्योति धीमी पड गई। यथा : मानी महिप कुमुद सकुचाने। नृपन्ह केर नासा निसि नासी। वचन किरन अवली न प्रकासी। इसी भाँति आपका आगमन सुनकर राजा लोग वलहीन हो गये। आपका आना सूर्योदय होना है और आपके आगमन का समाचार अरुणोदय है। मानी महीप लोग तो कुमुद की भाँति सङ्कुचित हो गये और तारो की भाँति सभी राजाओ का तेज दव गया। तेज का दवना ही वलहीन होना है।

नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी ॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना ॥१॥

अर्थ : सब राजा लोग ताराओ की भाँति चमक तो रहे हैं परन्तु चापरूपी अन्धकार का नाश नही कर सकते। कमल, कोक, भौंरे और नाना प्रकार की चिड़ियाँ रात के बीतने पर हर्षित हो उठी।

व्याख्या : राजा लोग ताराओ की भाँति अपने को प्रकाशित कर पाते हैं। पर भारी अन्धकार जो जगत् को आवृत किये हुए है उसे हिला भी नही सकते। यहाँ धनुष ही अन्धकार है। वह इनका हिलाया नहीं हिल सकता। अन्धकार अभाव रूप होने से हलका है और चाप द्रव्यमय होने से भारी है।

अरुणोदय से निशा का अवसान होता है। निशा ' रात से कमल कोक मधुकर और खग सभी दु खी थे। सब निशाभङ्ग चाहते थे। अत अरुणोदय से प्रसन्न हुए। इतने तारों ने अन्धकार नाश के लिए रात भर जोर लगाया पर ये तनिक भी आह्लादित नहीं हुए। जानते थे कि इनकी हटाई रात न हटेगी। इसी भाँति राजा लोग बात बनाते हैं। धनुष नहीं हटा सक्ते। यथा : *वचन नखत अवली न प्रकासी।*

ऐसहिं प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहिं टूटे धनुष सुखारे॥
उयेउ [1]भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥२॥

अर्थ हे प्रभो ! इसी भाँति तुम्हारे सब भक्त धनुष के टूटने से सुखी होंगे। सूर्य उदय हुए कि अनायास ही अन्धकार का नाश हुआ। तारे छिपे और ससार मे तेज का प्रकाश हो गया।

व्याख्या लक्ष्मणजी कमल कोक मधुकर और खग से भक्तो को उपमित करते हैं। क्योंकि कमल कोकादि चार हैं और भक्त भी चार प्रकार के होते है १ ज्ञानी २ जिज्ञासु ३ अर्थार्थी और ४ आर्त। इनमे ज्ञानी की उपमा कमल से है। क्योंकि वह साक्षात् सूर्य से प्रेम करता है। जिज्ञासु की उपमा कोक से है। क्योकि उसे अपनी कोकी की खोज है। सूर्य के बिना उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं। इसलिए सूर्य से प्रेम करता है। अर्थार्थी की उपमा मधुकर भौंरे से है। उसे मधु चाहिए। सूर्य उदय हो कमल खिले तब उसे मधु मिले। इसलिए सूर्य से प्रेम करते हैं। आर्त की उपमा खग नाना से है। क्योंकि अपने पेट का भोजन बच्चे को खिलाकर भूखे पेट अपने घोसले मे बैठे आर्त हो रहे हैं। रात को सूझता नहीं कहाँ जाँय। जब सूर्य निकले तब वे चारे की खोज मे चलें। इसलिए उन्हें सूर्य प्रिय है।

अवध में दो ही प्रकार के भक्त हैं। १ ज्ञानी और २ जिज्ञासु। यथा मनहु कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। पर लक्ष्मणजी शीतल सुभग भगत सुखदाता हैं। चारों की याद दिलाते हैं। ये चारो चापतमभारी के भग्न होने से सुखी होंगे।

सूर्य के उदय होते ही बिना श्रम के ही तम का नाश होगा। यथा छुअत टूट पिनाक पुराना। नक्षत्र छिप जाँयगे। यथा रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गँवहि सिधारे। जहँ तहँ कायर गँवहिं पराने। ससार मे तेज भर उठेगा। यथा कोदंड भजेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं। महि पाताल नाक जस व्यापा। राम बरी सिय भजेउ चापा।

रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रकटी धनु बिघटन परिपाटी॥३॥

अर्थ हे रघुराया ! सूर्य ने अपने उदय के बहाने से प्रभु का प्रताप सब

---

१ यहाँ हेतु अलङ्कार है।

राजाओ को दिखा दिया। आप के भुजवल की महिमा को उघाडने के लिए धनुप तोड़ने की प्रथा प्रकट हुई है।

व्याख्या : रामजी ने चन्द्रमा के व्याज से सियमुखछवि का वर्णन करके अपनी आसक्ति लक्ष्मणजी से प्रकट की। लक्ष्मणजी अरुणोदय के वर्णन के व्याज से कह रहे हैं कि आपके भुजवल की महिमा छिपी है। शिवजी का धनुप आप ही से टूटेगा। दूसरे से टूट सकता नही। यह धनुपभंग की प्रथा उसके उघाडने के लिए प्रचलित हुई है। भावार्थ यह कि आप ही धनुप तोड़ेंगे और विश्वव्यापिनी कीर्ति का लाभ करेंगे।

वंधु वचन सुनि प्रभु मुसुकाने। ह्वै सुचि सहज पुनीत नहाने ॥
नित्यक्रिया करि गुरुपहि आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए ॥४॥

अर्थ : भाई की वात सुनकर प्रभु मुसकराये। और स्वभाव से पवित्र होने पर भी शुचि होकर स्नान किया। नित्यकर्म करके गुरुजी के पास आये और चरण-कमलो मे सुन्दर सिर झुकाया।

व्याख्या : रामजी भाई की वात सुनकर मुसकराये कि मेरे अभिप्राय को लक्ष्मणजी समझ गये। अव स्पष्ट कहे देते हैं कि धनुप आप तोड़ेंगे और आप का सुयश होगा। वाह्याभ्यन्तर शुचि होकर तव स्नान किया अर्थात् दन्तधावनादि से शुचि होकर स्नान किया। जो सहज शुचि है वह भी लोकसग्रह के लिए यथाशास्त्र नित्य शुद्धि करते है। इसी भाँति लोगो को आचरण करना चाहिए।

सबसे पहिला काम शुचि होकर नित्यकर्म का लोप नही होने देना है। तत्पश्चात् गुरुदेव की वन्दना करने का विधान है। अत: गुरुजी के चरणकमलो मे सिर नवाया कि अब मैं सावकाश हूँ। जो आज्ञा हो सो करूँ।

सतानंद तव जनक वोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए ॥
जनक विनय तिन्ह आइ सुनाई। हरपे वोलि लिये दोउ भाई ॥५॥

अर्थ : तव जनक ने सतानन्द को बुलाया और तुरन्त विश्वामित्रजी के पास भेजा। उन्होने आकर राजा जनक की विनती कह सुनाई। मुनिजी प्रसन्न हुए और दोनो भाइयो को वुला लिया।

व्याख्या : यह समाचार पाने के वाद कि दोनो भाई और गुरुजी नित्यकृत्य से खाली हो गये। राजा ने सतानन्दजी को भेजा। इस प्रतीक्षा मे रहे कि ये लोग खाली हो जायें तव धनुपयज्ञ आरम्भ हो। राजा लोग पहिले से ही आकर डटे हुए हैं। जनकजी धनुपयज्ञ की प्रक्रिया रोके हुए हैं। अत सतानन्दजी को तुरन्त भेजा। विश्वामित्रजी के आदर के लिए स्वयं पुरोहितजी वुलाने गये।

जनकजी का विनय सुनाया कि दोनो राजकुमारो के साथ मुनिराज पधारें। महाराज जनकजी की चतुरता पर प्रसन्न हुए कि दोनो भाइयों को निमन्त्रण भेजा है। अत पास वुलाया। इस समय वहाँ नही थे। सुन्दर सदन के उस खण्ड मे थे जो इन दोनो भाइयों के रहने के लिए नियत हुआ था।

दो. सतानंद पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठए जनक बोलाइ ॥२३९॥

अर्थ सतानन्द के चरणो की वन्दना करके गुरुजी के पास बैठ गये। तब मुनिजी बोले . हे तात ! चलो राजा जनक ने बुला भेजा है।

व्याख्या · गुरुजी की वन्दना हो चुकी है। अत सतानन्दपदवन्दना कहते हैं। पर उनके पास न बैठे। गुरुजी के पास जाकर बैठ गये। क्योकि उन्होने बुलाया था। ऋषि का रूप देखकर वन्दना की। मुनिजी कहते है कि राजा जनक का बुलावा आया है। भाव यह कि वस्त्र भूषण शस्त्रास्त्र धारण कर लो। राज समाज मे चलना है और अब तुम्हारा चलना अनाहूत नहीं है।

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ॥
लषन कहा जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई ॥१॥

अर्थ चलकर सीता का स्वयंवर देखना चाहिए। देखे महादेव किसे बडाई देते है। लक्ष्मण ने कहा नाथ ! यश तो उसी को मिलेगा जिस पर आपकी कृपा होगी।

व्याख्या : बुलाने का कारण कहते हैं : सीता का स्वयंवर देखने के लिए। अब चलकर यह देखना है कि महादेव किसे बडाई देते है। धनुषभङ्ग बिना महादेव की कृपा के कोई कर नही सकता। किसका सामर्थ्य है जो बिना उनकी कृपा धनुष-भङ्ग कर सके।

लक्ष्मणजी तुरन्त बोल उठे कि यशभाजन तो निश्चय हो चुका है। जिस पर आपकी कृपा है उसे आप आशीर्वाद दे चुके है : सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे। अत यशभाजन कौन होगा यह तो पहिले से ही निश्चित है।

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहि सुखमानी ॥
पुनि मुनिबृन्द समेत कृपाला। देखन चले धनुषमखसाला ॥२॥

अर्थ लक्ष्मणजी की वरवाणी सुनकर मुनिलोग प्रसन्न हो गये। सब ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। तब मुनिलोगो के सहित कृपाल धनुषयज्ञशाला देखने चले।

व्याख्या लक्ष्मणजी की वाणी को वरवाणी कहा। क्योकि गुरभक्ति तथा रामभक्ति से ओत-प्रोत थी। सब मुनि विश्वामित्रजी के भक्त थे। रामजी पर सबकी कृपा थी। सब चाहते थे कि रामजी धनुष तोडें। लक्ष्मणजी के मुख से गुरुजी की प्रशंसा सुनकर सब प्रसन्न हो उठे। आशीर्वाद देने लगे।

कृपाल धनुषयज्ञशाला देखने चले। स्वयंवर देखने नही चले। स्वयवर तो इनका होगा देखनेवाले दूसरे होगे। मुनिवृद साथ मे है। जनकपुर आते ही प्रधानता इनकी हो गई।

रगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई ॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बालु जुबान जरठ नर नारी ॥३॥

अर्थ सब पुरवासियो को समाचार मिला कि दोनो भाई रङ्गभूमि म आये। सब बाल, युवा, वृद्ध नरनारी घर का काम भुलाकर चले।

व्याख्या नगर के नरनारी, बाल, युवा, वृद्ध सबको दोनो भाइयो के दर्शन का बडा चाव था। रामजी यहाँ से चले। इतने मे ही नगर मे समाचार फैल गया कि रगभूमि मे आये। इसी भाँति जब नगर देखने चले थे तब ऐसा ही समाचार फैला कि देखन नगर भूप सुत आये।

पहिले धाये धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी। सो लूट चुके है अब रङ्क नही हैं। इसलिए धाये नही चले। दूसरी यह बात है कि जानते है कि रगभूमि मे देर तक ठहरना होगा। अत त्वरा का कोई कारण नही था। समाचार सबने पाया था इसलिए सब चले। पहिले गृहकार्य त्यागकर चले थे। इस बार उसकी सुधि भी बिसरा दी। तीसरा भाव यह कि बाल और जरठ भी साथ मे हैं। अत दौडने का सुअवसर नही है। नारियाँ भी चली जा रही है।

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिये हकारी ॥
तुरत सकल लोगन्ह पहि जाहू। आसन उचित देहु सब काहू ॥४॥

अर्थ जनक ने देखा भीड ता भारी हुई तब शुचि सेवको को बुलाया। कहा कि तुरन्त सब लोगो के पास जाकर सबको उचित आसन दो।

व्याख्या · भीड पहिले ही पहुँच गई। प्रभु तो मत्त मजु कुजरबर गामी हैं। अत पीछे पहुँचेंगे भारी भीड देखकर जनकजो ने सोचा कि बिना व्यवस्था काम न चलेगा। अत शुचि सेवको को जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले बुलाया। कहा कि जल्दी करो सबको उचिन आसन दो। देर करने से अनुचित आसन पर बैठ जायँगे। फिर उठाने मे अपमान होगा। अत व्यवस्था करके पहिले ही से योग्य आसन सबको दो। सत्कार से बिठाओ। यह महाराज जनक की शासनपटुता तथा प्रजापालकता है।

दो कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ॥२४०॥

अर्थ . उन्होने मृदु और विनीत वचन कहकर उत्तम, मध्य, नीच और लघु नर-नारियो को उनके स्थल के अनुरूप बिठलाया।

व्याख्या शुचि सेवक हैं। राजपुरुष होने का अभिमान नही है। अपने सवक धर्म का जानते हैं। अत सत्कार के साथ सबको मृदु तथा विनीत वचन कहकर यथायोग्य स्थानो पर बिठलाया। नगर क सब ओर के लाग चले आये। अत सब सबको वो भेजा। जो उत्तम, मध्यम नीच लघु से परिचित हो।

राजकुँअर तेहि औसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर नागर वर वीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा ॥१॥

अर्थ · उसी अवसर पर राजकुमार आगये। मानो मनोहरता शरीर पर छाई हुई है। सुन्दर साँवले और गोरे शरीरवाले, गुण के समुद्र, नागर और श्रेष्ठ वीर हैं।

व्याख्या · जब भीड़ बैठ चुकी। उसी अवसर दोनो राजकुमार आये। मानो मनोहरता ने सम्पूर्ण शरीर मे डेरा डाल दिया है। यथा · चित्रकूट रघुनन्दन छाए। छाए शब्द का प्रयोग डेरा डालने के अर्थ मे अनेक स्थलों मे प्रयुक्त हैं। सखी कह चुकी है : कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। दोनो राजकुमारो का वर्णन एक साथ करते हैं। इसलिए सुन्दर स्यामल गौर सरीरा कहा। बाहर की शोभा कहकर भीतरी शोभा भी कहते हैं। उनके गुणो का वारापार नही। इसलिए गुणसागर कहा। बहुत बडे गुणी मे भी भद्दापन देखा गया है। अत उसके निवारण के लिए नागर कहा। सुन्दरता, गुणबाहुल्य और शौर्य ये तीनो एकत्र नही देखे जाते। यहाँ तीनो का योग है। इसलिए वरबीरा कहा।

राज समाज विराजत रूरे। उड़गन महु जिनु जुग विधु पूरे ॥
जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥२॥

अर्थ राजसमाज मे अच्छे विराजमान हो रहे हैं। जैसे तारागणों म दो पूर्ण चन्द्र हो। जिसकी जैसी भावना रही प्रभु की मूर्ति उसने वैसी ही देखी।

व्याख्या · राजसमाज मे ऐसे शोभित हुए जैसे तारागणो मे दो पूर्णचन्द्र उदय हों। भाव यह कि प्रकाश से रङ्गभूमि भर उठी। राजा लोग इनके सामने ताराओं की भाँति हतप्रभ हो गये। उनके आश्रित से जान पड़ने लगे। क्योकि चन्द्र ही तारापति हैं।

भक्त अभक्त के हृदयानुसार इनका विषम विहार होता है। अत सबको इन्होने उनके पृथक् भावनानुसार पृथक् रूप से दर्शन दिया। यथा . यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहि न पाप पूँनु गुन दोषू। तदपि करहि सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। तथा अपने अखिल रसामृत मूर्ति होने का वैभव दिखलाया।

देखहि[1] रूप महारनधीरा। मनहुँ वीर रस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥३॥

अर्थ महारणधीरो ने रूप देखा। मानो वीररस ने ही शरीर धारण कर रक्खा है। प्रभु को देखकर कुटिल राजा डर गये मानो भारी भयानक मूर्ति है।

---

१ यहाँ प्रथम उल्लेख है।

व्याख्या उस समाज मे बडे-बडे रणधीर नरशरीर धारण करके आये थे। था देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा वे नरशरीर धारण कये बैठे थे। उन्हे मालूम हुआ कि मानो स्वय वीररस ही नरशरीर मे आगया। ाकृत म द्विवचन नही होता। उसके लिए बहुवचन ही आता है। यथा द्विवचनस्य बहुवचनम् प्रा प्र। यहाँ दोनो राजकुमारो के लिए शरीरा बहु वचन का प्रयोग हुआ है। जश्शसोर्लोप इस सूत्र से विसर्ग का लोप हुआ शरीर ाब्द का पुल्लिङ्गवत् व्यवहार हुआ है। लिङ्गमतन्त्रम्। प्राकृत मे लिङ्ग का नर्णय नही है। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ऊपर कह आये है। इससे कोई यह ा समझ ले कि प्रभु शब्द से रामजी का ही वोध होता है। लक्ष्मणजी भी प्रभु है। था जय अनत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। इससे वीर स कहा।

कुटिल राजा तो प्रभु को देखकर काँप उठे। उन्हे मालूम हुआ कि मानो भारी भयानक मूर्ति है। भयानकरस के अधिष्ठाता यम है। भावार्थ यह कि कुटिल राजाओ को तो साक्षात् यमस्वरूप ही दिखाई पडे। इसलिए दुष्टहृदय पुरुष उनके सम्मुख नही होते। वे भयाना भय भीषण भीषणानाम् है। दुष्टहृदय को उनकी सत्ता स्वीकार करने मे महाभय होता है। यथा जौ पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरे समुख आव कि सोई। इससे भयानक रस कहा।

रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा॥
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूपन लोचन सुखदाई॥४॥

अर्थ वहाँ असुर छल से राजा के वेप म थे। उन्होने प्रभु को साक्षात् काल के समान देखा। पुरवासियो ने दोनो भाइयो को देखा कि मनुष्य जाति के भूपण नेत्रो को सुख देने वाल है।

व्याख्या छली असुर राजा के वेप म थे। जिसम उन्हे कोई पहिचान न सके। पर काल सबको पहिचानता है। वेप बदलने से कोई बच नही सकता। उन्होने देखा कि प्रत्यक्ष काल आ गया। अब हम नही बच सकते। क्योकि काल का दर्शन मुमूर्षु को ही होता है और कोई काल को नही देख सकता। यथा मोहि विलोकु तोर में काला। यहाँ कालरूप कहकर वीभत्स रस कहा।

पुरनरनारि सुभग सुठि सता। धर्मशील ज्ञानी गुनवता। ये पुरवासी सत हैं। इन्हे नरभूषण दिखाई पडे। नरभूपण कहने का कारण कहते है कि लोचनसुखदाई हैं। लोचनसुखद होने के लिए ही भूषण पहिना जाता है। धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी। बडा बहुमूल्य भूषण है। इसलिए दौडे।

दो नारि विलोकहिं हरपि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिगारु धरि, मूरति परम अनूप॥२४१॥

अर्थ स्त्रिया हर्पित होकर अपनी अपनी रुचि के अनुरूप देख रही है। मानो परम अनूपमूर्ति धारण करके शृङ्गार शोभायमान हो।

व्याख्या रङ्गभूमि की प्रथम पंक्ति मे राजा लोग है। दूसरी पंक्ति मे पुरवासी है। तीसरी पंक्ति मे स्त्रियाँ हैं। उसी क्रम से यहाँ वर्णन है। भिन्नरुचिर्हि लोक। ससार मे सबकी भिन्न रुचि होती है। इसी भाँति स्त्रियो की भी रुचि भिन्न है। परन्तु यह मूर्ति ऐसी अनूप है कि जिसकी जैसी रुचि है तदनुरूप रूप उसको दिखाई पड रहा है। अत निरीक्षण मे हर्ष कहते हैं। मानो शृङ्गाररस ही परम अनूप मूर्ति से विराजमान है।

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥१॥

अर्थ विद्वानो ने प्रभु को विराट् रूप म देखा कि बहुत से मुख, हाथ, पैर, आँखे और सिर हैं। जनकजी के भाई बिरादरी कैसे देखते हैं जैसे अपने सगे सम्बन्धी प्रिय लगते है।

व्याख्या विद्वान् देवता रूप हैं। उन्हे सदा विराट् रूप के दर्शन की इच्छा रहती है। यथा देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनकांक्षिण। उन्ह भगवान् का अनेक बाहु उदर मुख आँख सहित अनन्तरूप दिखाई पडा। उस विश्वेश्वर विश्वरूप का आदि मध्य और अन्त कुछ भी मालूम न हुआ। यथा अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्त न मध्य न पुनस्तवादि पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप। इससे अद्भुतरस कहा।

स्वजन वा सर्वत्र लवराम् इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से वकार का लोप होकर सजन रूप हो गया। सजन सगे का अर्थ हुआ सगे सम्बन्धी दामाद बहनोई आदि। अर्थात् जैसा नाता पडनेवाला था वैसे प्रिय जनक के जाति लोगो को जान पडे। इससे हास्यरस कहा।

सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सात सुद्ध सम सहज प्रकासा॥२॥

अर्थ विदेह के साथ रानियाँ देखती हैं। उन्हे वैसी प्रीति हुई जैसी छोटे बच्चो पर होती है। उसका वर्णन नही हो सकता। योगियो को शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशरूप परम तत्त्वमय दिखलाई पडे।

व्याख्या बिलोकहिं रानी पद से रानियो का अनेक होना सिद्ध हुआ। चार रानियो का पता चलता है। यथा चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत्। का पु। और जिस समय सीताजी पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी उन्ही के साथ दो पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। यथा द्वौ पुत्रौ तस्य सञ्जातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ। एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा। अत रानियाँ शिशुप्रीति से अपरिचित नही थी। सो रानियो के सहित राजा विदेह को राजकुमारो पर शिशु के समान प्रीति हुई। परन्तु उस प्रीति म ऐसा उत्कर्ष था कि जिसका वर्णन नही हो सकता। अर्थात् वात्सल्यरस की पराकाष्ठा की प्रतीति हुई।

योगियो का परम तत्त्व पचीसवाँ है। चौबीस तत्त्व साख्यशास्त्र ने माने है। परन्तु योगशास्त्र पचीसवाँ तत्त्व ईश्वर तत्त्व को स्वीकार करता है। इसलिये उसे परम तत्त्व कहा। यह परम तत्त्व क्लेश अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, कर्म · विहित, प्रतिविद्ध तथा मिश्रित, विपाक कर्मफल, जाति, आयु और भोग और आशय वासना से छुवाई नही रखता। यथा क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर। पा १-२४। अत शान्त, शुद्ध, सम और सहज प्रकाशरूप कहा। सो योगियो ने परम तत्त्वमय देखा। इससे शान्तरस कहा।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता ॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहि कथनीया ॥३॥

अर्थ हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को सब सुख देनेवाले इष्टदेव की भाँति देखा और रामजी को जिस भाव से सीताजी देखती थी वह स्नेह और सुख कथन योग्य नही था।

व्याख्या सब सुखदाता इष्टदेव है। वही पति है। पुरुष है और सब जीव परा प्रकृति हैं। प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत्। सो हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को इष्टदेव रूप देखा। महात्माओ का मत है कि यहाँ इव शब्द एव के अर्थ मे आया है।

अब सीताजी के देखने मे ग्रन्थकार प्रभु न कहकर रामहि कहते है। क्योकि प्रभु मे लक्ष्मणजी का भी ग्रहण होता है। ऊपर का वर्णन दोनो भाइयो के विषय मे है। केवल सीताजी के देखने मे रामजी का अकेले उल्लेख है। क्योकि सीताजी उन्ही को देखती है। उनके देखने मे जो स्नेह और सुख का भाव है वह कथन योग्य नही है। क्योकि उनकी प्रीति अलौकिक है। यथा मन विहँसे रघुवसमनि प्रीति अलौकिक जान।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ॥
येहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कौसलराऊ ॥४॥

अर्थ वह भी हृदय में अनुभव करती है कह नही सकती तो कोई कवि किस प्रकार से कहे। इस भाँति जिसका जैसा भाव था उसने कोसलराउ को वैसा देखा।

व्याख्या लौकिक भावो के लिए शब्द है। क्योकि वे व्यवहार मे आते हैं। अलौकिक के लिए शब्द नही मिलते क्योकि व्यवहार मे उनका चलन नही। ससार दाम्पत्य प्रेम से परिचित है। अत उसके लिए शब्द है। परन्तु राम-सीय म ऐकात्म्य भाव है। यथा गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। अत इस प्रकार की प्रीति लोक मे नही है। लोक मे कोई इस प्रीति का अनुभव नही करता। अत उसके लिए शब्द भी नही है। सीताजी उसका अनुभव करती हैं। वे भी नही कह सकती। क्योकि शब्द की वहाँ तक गति नही।

व्याख्या रङ्गभूमि की प्रथम पक्ति मे राजा लोग हैं। दूसरी पक्ति मे पुरवासी है। तीसरी पक्ति मे स्त्रियाँ हैं। उसी क्रम से यहाँ वर्णन है। भिन्नरुचिर्हि लोक। ससार मे सबकी भिन्न रुचि होती है। इसी भाँति स्त्रियो की भी रुचि भिन्न है। परन्तु यह मूर्ति ऐसी अनूप है कि जिसकी जैसी रुचि है तदनुरूप रूप उसको दिखाई पड रहा है। अत निरीक्षण मे हर्ष कहते हैं। मानो शृङ्गाररस ही परम अनूप मूर्ति से विराजमान है।

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥१॥

अर्थ विद्वानो ने प्रभु को विराट् रूप मे देखा कि बहुत से मुख, हाथ, पैर, आँखे और सिर है। जनकजी के भाई विरादरी कैसे देखते हैं जैसे अपने सगे सम्बन्धी प्रिय लगते है।

व्याख्या विद्वान् देवता रूप है। उन्हे सदा विराट् रूप के दर्शन की इच्छा रहती है। यथा देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनकाक्षिण। उन्हे भगवान् का अनेक बाहु उदर मुख आँख सहित अनन्तरूप दिखाई पडा। उस विश्वेश्वर विश्वरूप का आदि मध्य और अन्त कुछ भी मालूम न हुआ। यथा अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्त न मध्य न पुनस्तवादि पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप। इससे अद्भुतरस कहा।

स्वजन का सर्वत्र लवराम् इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से वकार का लोप होकर सजन रूप हो गया। सजन सगे का अर्थ हुआ सगे सम्बन्धी दामाद बहनोई आदि। अर्थात् जैसा नाता पडनेवाला या वैसे प्रिय जनक के जाति लोगो को जान पडे। इससे हास्यरस कहा।

सहित विदेह विलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सात सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥२॥

अर्थ विदेह के साथ रानियाँ देखती है। उन्हे वैसी प्रीति हुई जैसी छोटे बच्चो पर होती है। उसका वर्णन नही हो सकता। योगियो को शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशरूप परम तत्त्वमय दिखलाई पडे।

व्याख्या . विलोकहिं रानी पद से रानियो का अनेक होना सिद्ध हुआ। चार रानियों का पता चलता है। यथा चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत्। का पु। और जिस समय सीताजी पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी उन्ही के साथ दो पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। यथा द्वौ पुत्रौ तस्य सञ्जातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ। एवा च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा। अत रानियाँ शिशुप्रीति से अपरिचित नही थी। सो रानियो के सहित राजा विदेह को राजकुमारो पर शिशु के समान प्रीति हुई। परन्तु उस प्रीति मे ऐसा उत्कर्ष था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। अर्थात् वात्सल्यरस की पराकाष्ठा की प्रतीति हुई।

योगियो का परम तत्त्व पचीसवाँ है। चौबीस तत्त्व साम्यशास्त्र ने माने हैं। परन्तु योगशास्त्र पचीसवाँ तत्त्व ईश्वर तत्त्व को स्वीकार करता है। इसलिये उसे परम तत्त्व कहा। यह परम तत्त्व क्लेश अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, कर्म विहित, प्रतिविद्ध तथा मिश्रित, विपाक कर्मफल, जाति, आयु और भोग और आशय वासना से छुवाई नही रखता। यथा क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर। पा १-२४। अत शान्त, शुद्ध, सम और सहज प्रकाशरूप कहा। सो योगियो ने परम तत्त्वमय देखा। इससे शान्तरस कहा।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥३॥

अर्थ हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को सब सुख देनेवाले इष्टदेव की भाँति देखा और रामजी को जिस भाव से सीताजी देखती थी वह स्नेह और सुख कथन योग्य नही था।

व्याख्या सब सुखदाता इष्टदेव हैं। वही पति हैं। पुरुष हैं और सब जीव परा प्रकृति हैं। प्रकृति विद्धि मे पराम्। जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत्। सो हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को इष्टदेव रूप देखा। महात्माओ का मत है कि यहाँ इव शब्द एव के अर्थ मे आया है।

अब सीताजी के देखने मे ग्रन्थकार प्रभु न कहकर रामहि कहते हैं। क्योकि प्रभु मे लक्ष्मणजी का भी ग्रहण होता है। ऊपर का वर्णन दोनो भाइयो के विषय मे है। केवल सीताजी के देखने मे रामजी का अकेले उल्लेख है। क्योकि सीताजी उन्ही को देखती हैं। उनके देखने मे जो स्नेह और सुख का भाव है वह कथन योग्य नही है। क्योकि उनकी प्रीति अलौकिक है। यथा मन विहँसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जान।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
येहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कौसलराऊ॥४॥

अर्थ वह भी हृदय मे अनुभव करती है कह नही सकती तो कोई कवि किस प्रकार से कहे। इस भाँति जिसका जैसा भाव था उसने कोसलराउ को वैसा देखा।

व्याख्या लौकिक भावो के लिए शब्द हैं। क्योकि वे व्यवहार मे आते हैं। अलौकिक के लिए शब्द नही मिलते क्योकि व्यवहार मे उनका चलन नही। ससार दाम्पत्य प्रेम से परिचित है। अत उसके लिए शब्द हैं। परन्तु राम-सीय म ऐकात्म्य भाव है। यथा गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। अत इस प्रकार की प्रीति लोक मे नही है। लोक मे कोई इस प्रीति का अनुभव नही करता। अत उसके लिए शब्द भी नहीं है। सीताजी उसका अनुभव करती हैं। वे भी नही कह सकती। क्योकि शब्द की वहाँ तक गति नही।

सबने अपने अपने हृदयगत भावो का प्रतिविम्ब प्रभु मे देखा ।

दो राजत राज समाज महुँ, कोसलराज किसोर ।
सुन्दर स्यामल गौर तनु, विस्व विलोचन चोर ॥२४२॥

अर्थ विश्व विलोचन के चोर सुन्दर श्यामल और गौर शरीरवाले। कोसलराज के बेटे राजसभा मे विराजित हो रहे है।

व्याख्या राज समाज विराजत रूरे से प्रसङ्ग छोडा था। अब फिर वही से उठा रहे है। राजत राज समाज महुँ कोसलराजकिसोर। दोनो कुमारो की शोभा है। अत सुन्दर स्यामल गौर तन कहते हैं। कोसल राजकिसोर कहने का भाव यह कि राजसमाज को इनके कोसलराजकिसोर होने का ही परिचय मिला है। ये अद्भुत चोर हैं। विना चोरी किये चुराते हैं। नगर देखने में सबका मन चुराया। *यथा चितवत चितहि चोर जिमि लेही और यहाँ राजसमाज मे सबकी आँखे* चुरा ली। इसलिए श्रुति तस्कराणा पतये नम कहती है। अर्थात् सबकी आँखें इनके रूप मे बँध गईं। कोई दूसरी ओर देखता ही नहीं है।

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि [1]काम उपमा लघु सोऊ ॥
सरद चद निदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के ॥१॥

अर्थ दोनो मूर्तियाँ स्वभाव से ही सुन्दर थी। कोटि काम की उपमा भी छोटी पडती है। सुन्दर मुख शरद के चन्द्रमा को लजानेवाले हैं। कमल ऐसी आँखें मन को अच्छी लगती हैं।

व्याख्या आँखो के ही चोर नही मन के भी चोर है। कोटि काम की उपमा दी जा सकती है। फिर भी वह बहुत छोटी पडती है। भुमुण्डिजी कहते है जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै। जैसे करोडो खद्योतो की सूर्य से उपमा बहुत छोटी पडती है। रामजी सौन्दर्य के सूर्य है। उनके सामने काम खद्योत है। मुख शरत् काल के चन्द्र से भी सुन्दर है। अपेक्षाकृत सुन्दर न कहकर निन्दक कहा। यहाँ ललितालङ्कार हुआ। कमल सी आँखें है। अधिकता यह है कि वे मनभावनी है। क्योकि उनमे चितवन है कमल मे नही है।

चितवन चारु मार मन हरनी। भावत हृदय जात नहिं बरनी ॥
कल कपोल श्रुति कुडल लोला। चिबुक अधर सुदर मृदु बोला ॥२॥

अर्थ सुन्दर चितवन काम के मन को हरण करनेवाली है। वह मन को अच्छी लगती है। वर्णन नही की जा सकती। सुन्दर कपोल हैं और कान के कुण्डल चञ्चल हैं। सुन्दर ठुड्डी और होठ है। कोमल वाणी है।

व्याख्या अब चितवन का वर्णन करते हैं। यह स्वय काम के मन को हरण

---

१ यह पञ्चम प्रतीपालङ्कार है।

करती है दूसरों की गणना ही क्या है ? उसका वर्णन नहीं हो सकता। केवल इतना ही कह सकते हैं कि मन को अच्छी लगती है। महाकवि बिहारी अपने को प्राकृत जीव के चितवन वर्णन में असमर्थ पाते हैं। औरै कछू कहकर वर्णन करते हैं। यथा : अनियारे दीरघ नयन कितेन तरुणि समान। वै चितवन औरै कछू जेहि बस होत सुजान। यहाँ तो अखिलरसामृतसार की चितवन है। इसे कौन वर्णन कर सकता है ? दर्पण सा कपोल है। उसे लोल कुण्डल बार बार चूमता है। उस कुण्डल की झलक कपोलों में प्रतिविम्बित हो रही है। चिवुक और अधर सुन्दर हैं। उनकी उपमा नहीं है इससे नहीं दी। उन्हीं होठों द्वारा मृदुवाणी उच्चरित होती है तो शोभा और बढ़ जाती है।

कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी विकट मनोहर नासा ॥
भाल विसाल तिलक छलकाँहीं। कच विलोकि अलि अवलि लजाहीं ॥३॥

अर्थ : चाँदनी की निन्दा करनेवाली हँसी, टेढी भौंहें, मनोहर नासिका, विशाल भाल पर झलक रहे हैं और बालों को देखकर भौंरों की श्रेणी लज्जित होती है।

व्याख्या : शरच्चन्द्रनिंदक मुख है। मुख पर प्रकाश हँसी से ही आता है। इसलिए हँसी को चाँदनी का निन्दक कहना प्राप्त है। काम के धनुप के समान टेढ़ी भौंहें हैं। भौंहे की शोभा टेढ़ी होने में है। भाल विसाल उच्च विचार का स्थान है। उस पर तिलक झलक रहा है। प्रभु के शरीर की द्युति से तिलक में चमक आ गई है। पहिले कह आये हैं तिलक रेख सोभा जनु चाकी। मेचक कुंचित केश हैं। इसलिए अलिअवलि का लजाना कहते हैं।

पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई ॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन सोभा की सीवाँ ॥४॥

अर्थ : पीली चौगोसिया चार कोनेवाली : टोपियाँ सिर पर शोभित हैं। बीच बीच में फूलों की कलियाँ बनी हुई हैं। शङ्ख ऐसे सुन्दर गले में सुन्दर रेखाएँ हैं। मानो ये तीनों भुवनों की शोभा की सीमा हैं।

व्याख्या : बाजार में गये थे तब रुचिर चौतनी पहन रक्खी थी। आज राजसमाज में जाना था इसलिए कामदार टोपियाँ पहने हुए हैं। शङ्ख से सुन्दर कण्ठ में तीन रेखाएँ हैं। मानो उन्होंने त्रिभुवन की शोभा को मर्यादित कर रक्खा है। अर्थात् जितनी शोभा हैं वे इसके नीचे तक ही हैं। पद पाताल सीस अजधामा। पैर पाताल और सिर ब्रह्मलोक है। अतः त्रैलोक्य की शोभा गले के नीचे ही नीचे है। सातों पाताल, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक उनके उरःस्थल तक हैं। इसके ऊपर महः जनः तपः और सत्यलोक ये चारों ब्रह्मलोक के भेद हैं। ग्रीवा महर्लोक है। मुख जनलोक है। ललाट तपलोक है और शीर्ष सत्यलोक है। यथा : उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य। तपोररटी विदुरादिपुंसः सत्यं तु

शीर्षाणि सहस्रशीर्षा । भा २ १ २८। अत उन उन लोको की शोभा उन उन अङ्गो मे है। महर्लोक के नीचे त्रिलोक है। अत ग्रीवा की तीन रेखा को त्रिभुवन की शोभा की सीमा होना पूर्णत उपयुक्त है।

दो कुजर मनि कठा कलित, उरन्ह तुलसिका माल।
वृपभ कध केहरि ठवनि, वल निधि बाहु बिसाल ॥२४३॥

अर्थ गजमुक्ता का सुन्दर कण्ठा, छातियो पर तुलसी की माला, साँड सा कन्धा, सिंह सा ठाट, विशाल भुजाएँ बल के भण्डार हैं।

व्याख्या आज नाग मणिमाला नही है। तुलसीका माल गले है। गजमुक्ता का कण्ठा है। वृषभकन्ध होना वीर का लक्षण है। केहरि ठवनि में वीर की शोभा है और बाहु बिसाल वीर के पराक्रम का बोधक है। उरन तुलसिका माल से शृङ्गार की पूर्णता कही।

कटि तूनीर पीत पट बाँधे। कर सर धनुष वाम वर काँधे॥
पीत जग्य उपवीत सुहाए। नख सिख मजु महाछवि छाए॥१॥

अर्थ कमर मे पीताम्बर और तरकस बाँधे हुए थे। हाथ मे तीर और बायें कन्धे पर धनुष था। पीला यज्ञोपवीत शोभित था। नख से शिख तक महाछवि छाई हुई थी।

व्याख्या प्रभु की मूर्ति इस समय अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित है। तरकस पीताम्बर से बँधा हुआ है जिसमे सग्राम उपस्थित होने पर गिरे नही। तुरन्त चोट करने के लिए एक तीर तरकस से बाहर हाथ मे है। बायें कन्धे पर धनुष है जिसमे लते देर न लगे। अभी यज्ञ की रक्षा करके चले आ रहे हैं। भेंट म ब्राह्मणो से पीतयज्ञोपवीत मिला है। उसे पहने हैं। आज का पीतयज्ञोपवीत भी जीत का ही चिह्न है। शिखनख वर्णन करके अब नखशिख आलोचना करते है। मनहु मनोहरता छवि छाए से उपक्रम करके महा छवि छाए मे उपसहार करते हैं। सीताजी स्वय महाछवि हैं। यथा छविगन मध्य महा छवि जैसी और प्रभु महा छवि छाए हैं अर्थात् रमानिवास हैं।

देखि लोग सब भये सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई॥२॥

अर्थ देखकर सब लोग सुखी हुए। आँखे एकटक रह गईं। पुतली भी नही हिलती थी। दोनो भाइयो को देखकर जनक जी हर्षित हुए। तब मुनिजी के चरण कमल की वन्दना की।

व्याख्या सब लोग अपने घरो का काम छोड छोडकर दर्शन के लिए आये हैं। यथा चले सकल गृह काज बिसारी। सो देखकर सब सुखी हुए। सुख न रहे हैं। एकटक दग रहे हैं। स्तब्ध से हो रहे हैं। इसलिए विस्व बिलोचन चार कहा था।

बुलाने पर तुरत चले आये। जनकजी का भाव इनके प्रति जैसा है सो कह चुके हैं। यथा : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेप धरि सोइ कि आवा। अत इन्हे देखकर हर्षित हुए। मुनिजी का चरण जाकर पकडा कि आप के अनुग्रह से इनका आना हुआ।

करि बिनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई ॥
जहँ जहँ जाहिं कुँअर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितवत सब कोऊ ॥३॥

अर्थ : विनती करके सब कथा सुनाई। रगभूमि सब मुनिजी को दिखाई। जहाँ-जहाँ दोनों कुमार जाते हैं वहाँ वहाँ सब लोग चकित होकर देखते है।

व्याख्या : दक्षयज्ञविध्वस के बाद महादेवजी ने निमि के जेठे भाई देवरात को यह धनुप दिया था। तब से इसी कुल मे यह धनुप चला आता है। सीताजी के अत्यन्त सुन्दरी होने से राजाओ मे बडा क्षोभ हुआ। सीताजी के व्याह तथा रक्षा मे बडे जनसहार का भय हुआ। अत. राजा ने सर्वोच्च वीर बलवान् को कन्या देना निश्चय किया। परीक्षा के लिए धनुपभग का प्रण किया। ये सब बाते मुनिजी को कह सुनाई। तब जिस रगभूमि का वर्णन हो चुका है उसे घुमाकर मुनिजी को दिखलाया। मुनिजी के साथ ही साथ दोनो भाई जा रहे हैं। अति शोभा देखकर लोग चकित हो रहे हैं। निकट से स्थिर होकर देखने का सौभाग्य अब हुआ है।

निज निज रुख रामहिं सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेखा ॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ ॥४॥

अर्थ : अपने-अपने रुख के अनुसार सब ने रामजी को देखा। विशेप मर्म को किसी ने नही जाना। मुनिजी ने राजा से कहा कि रचना अच्छी है। राजा प्रसन्न हो उठे और उन्हे बडा सुख हुआ।

व्याख्या : रुख का अर्थ भावना है। यथा : जिन्हके रही भावना जैसी। हरि मूरति देखी तिन तैसी। इसी बात से उपक्रम करके देखने के प्रसङ्ग का निज निज रुख रामहिं सब देखा से उपसहार करते हैं। आने के साथ ही सबका देखना लिख दिया। पर भली भाँति सबको दर्शन मुनिजी के साथ घूमकर सारी रंगभूमि देखने के समय हुआ। इसीलिए चकित होकर देखना भी कहते है। रणधीर लोग वीररस का रूप देखते हैं। कुटिल यम रूप देखते है। साधु इष्टदेव रूप देखते हैं। सबका देखना पृथक् पृथक् प्रकार का है। पर यह कोई नही जानता कि दूसरे, दूसरे प्रकार से देख रहे है। सब जानते हैं कि जैसा मैं देखता हूँ वैसा ही सब देखते है।

विश्वामित्र मुनि दूसरी सृष्टि रचनेवाले हैं। इनका भली रचना कहना सामान्य बात नही है। भूमिका मे दोप होने से विघ्न होता है। भूमिका की रचना मे बडी पण्डिताई है। मण्डपकुण्डशुद्धि आदि ग्रन्थ इसके लिए बने हैं। मुनिजी ने

भली रचना कहा तो यज्ञ के निर्विघ्न समाप्ति मे सन्देह नही है। इसलिए राजा को इतनी प्रसन्नता और सुख हुआ।

दो सब मचन्ह ते मंच एक, सुन्दर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोऊ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥२४४॥

अर्थ मब मञ्चो मे एक मञ्च अधिक सुन्दर निर्मल और विशाल था। उसी पर राजा ने मुनि के साथ दोनो भाइयो को विठाया।

व्याख्या सुन्दर मञ्च की बनावट कही। विशद से चमक कही। विशाल से वडाई कही। राजा ने उस मञ्च को पहिले से ही खाली रक्खा था। सब राजाओ के लिए पहिले से ही मञ्च नियत है। विश्वामित्रजी के सर्वोत्तम मञ्च पर आसीन होने मे किसी राजा को आपत्ति नही हो सकती थी।

प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। जनु राकेस उदय भए तारे॥
असि प्रतीत सब के मन माही। राम चाप तोरब सक नाही ॥१॥

अर्थ प्रभु को देखकर सब राजाओ ने हृदय से हार मानी जैसे पूर्ण चन्द्र के उदय से तारे हार मान जाते है। सबके मन मे ऐसा ही विश्वास है कि रामजी धनुष को तोडेगे। इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या पूर्ण चन्द्र और तारो की उपमा पहिले दे आये है। अकेला चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है। तारों का समूह नही कर सकता। यथा एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि। अत राजाओ का हिम्मत हारना स्वाभाविक था। मनमे तो तेजोविशेष के देखते ही विश्वास हो गया कि नि सन्देह रामजी धनुष तोडेंगे। पर सब तो सरल नही है। कितने कपटी आसुरी प्रकृति के है। वे बाहर से इस बात को स्वीकार नही करते।

बिनु भजेहु भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गँवाई ॥२॥

अर्थ शिवजी का धनुष बिना तोडे रामजी के गल मे सीता माला डालेगी। हे भाई! ऐसा विचार करके, यश, प्रताप, बल और तेज को खोकर के घर जाते जाओ।

व्याख्या रणधीर प्रायेण सरल होते हैं। उन्होने जब मनहु बीररस धरे सरीर देखा तो बोल उठे राम चाप तोरब सक नाही। मान लिया कि यदि धनुष न टूटे भव धनुष कहकर दिव्य और विशाल कहकर कठिन और गुरु कहा तो सीता तो जयमाल राम के ही गले मे डालेगी। क्योकि कन्या रूप को वरती है। और ये महारूपवान् हैं।

इसलिए चलो घर चलें। यहाँ कार्यसिद्धि होने की नही। बच्चो से पराभव हुआ। इसलिए यश, प्रताप, बल और तेज सब गया। सद्गुण की निर्मल ख्याति

यश है। यथा सादगुण्यैर्निर्मलै स्यात कीर्तिमानिति कथ्यते। शत्रु का पौरुषोद्भूत तापक प्रताप है। यथा प्रतापी पौरुषोद्भूतशत्रुतापि प्रसिद्धिभाक्। महत् प्राण से पूर्ण होना ही बल है। यथा प्राणेन महता पूर्णो वलीयान् इति कथ्यते। अवज्ञा का सहन न करना ही तेज है। यथा तेजो बुधैरवज्ञादेरसहिष्णुत्वमुच्यते। यह सब गया। आगे चलकर पुर नर-नारि कहेंगी। यथा देखे नर नारि कहैं साग खाइ जाये माइ। बाहु पीनपावर न पीना खाइ पोखे हैं।

विहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अविवेक अंध अभिमानी ॥
तोरेहुँ धनुष ब्याह अवगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा ॥३॥

अर्थ यह वाणी सुनकर दूसरे राजा जो अविवेक से अन्ध और अभिमानी थे हँस पड़े कहने लगे धनुष तोड़ने पर भी व्याह तो अथाह मे ही है। फिर बिना तोड़े कुमारी को कौन व्याह सकता है ?

व्याख्या धनुष तोड़ने पर कहा जायगा कि इन्होने जल्दी कर दी नही तो हम तोड़ डालते। सब लोग बिगड़ खड़े हो जायँगे। युद्ध होने लगेगा। उस गोलमाल मे सीता किसके हाथ लगेगी कौन कह सकता है। इसलिए कहता हूँ कि धनुष टूटने पर भी व्याह अथाह मे ही है। बिना तोड़े इतने राजाओ के रहते कौन व्याह कर सकता है। जनक अपना प्रण भङ्ग करके किसी के साथ व्याह नही कर सकते।

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने ॥४॥

अर्थ काल भी क्यो न हो। एक बार सीता के लिए हम उसे भी लड़ाई मे जीतेंगे। यह सुनकर दूसरे राजा जो धर्मशील और सयाने हरिभक्त थे मुसकराये।

व्याख्या असुर छल छोनिपवेष बोले। यह तो काल सम है। काल नही है। एकबार हम काल को भी समर मे माया के द्वारा जीत लेंगे। एक ही बार जीतने से तो सीता की प्राप्ति हो जावेगी। माया हटने पर दोबारा जीतने की आवश्यकता न रह जायगी। छल माया एक वस्तु है। यथा सोइ छल हनूमान सन कीन्हा।

उनके गाल बजाने पर मुसकराये। अविवेकी अन्ध अभिमानियो की भाँति हँसे नही। विवेक ही सच्ची आँख है। यथा तेहि करि विमल विवेक विलोचन। जिसे एकदम विवेक नही है वही अन्ध अविवेकी है और उनमे भी जो अभिमानी हैं वे हसे थे। उनकी बातो पर मुसकरानेवाले ठीक उनसे विपरीत है। वे अन्ध अविवेकी थे। ये धर्मशील है। यथा धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई। वे अन्ध अभिमानी हैं। ये सयाने हरिभक्त है। अत उनके अविवेकमय अभिमानयुक्त डीग मारने पर मुसकराये।

दो सीय विवाहब राम, गरबु दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम, दसरथ के रन बाँकुरे ॥२४५॥

अर्थ सब राजाओ के अभिमान को दूर करके सीता को राम व्याहेगे। दशरथ के रण बाँकुरे को रण मे कौन जीत सकता है ?

व्याख्या अविवेक अन्ध अभिमानी के प्रति कहते हैं नृपो का गर्व दूर करके सीता को राम व्याहेगे। तुम नही व्याहोगे। क्योकि राम सत्यसकल्प प्रभु है। छल छोनिपो से कहते हैं कि जीति को सक सग्राम। उनसे माया नही चलेगी। वे दशरथ के रणबाँकुरे हैं। रणबाँकुरे माया का मर्दन करते है। यथा ' हनुमन्त अगद नील नल अतिबल लरत रनबाँकुरे। मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भूभट आँकुरे। दशरथ के कहने का भाव यह कि पिता का गुण पुत्र मे है। ससार दशरथ के विषय मे जानता है सुरपति बसहिं बाहुबल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके।

व्यर्थ मरहु जनि गालु बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई ॥
सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदबा जानहु जिय सीता ॥१॥

अर्थ गाल बजाकर व्यर्थ प्राण मत दो। मन के लड्डुओ से भूख नही जाती। हमारी परम पवित्र शिक्षा सुनकर सीता को जगदम्बाजी जानो।

व्याख्या बड हित हानि जानि बिनु जूझे। यदि कार्य म विपत्ति आती है तो बकवादी मारे जाते हैं। यदि कार्ये विपत्ति स्यात् मुखरस्तत्र हन्यते। इस भाँति गाल बजाने से सीटने से क्या लाभ है ? इससे सीता की प्राप्ति नही होगी और दोषी गिने जाकर मारे जाओगे। मन के लड्डू खाने से भूख नही जाती। कालहु सिय हित समर जितब। ऐसा कहना मन का लड्डू खाना है। तुम्हारा सामर्थ्य काल को रण मे जीतने का है ? समझो क्या कह रहे हो ? हमारी शिक्षा परम पवित्र है उसे सुनो। राम की योग्या होने से सीता को जगदम्बा जानो। रहिमन नारि गरीब की अपनी कहै न कोय। हरिपतनी अपनी कहै कौन फजीहत होय।

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥
सुदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बधु सभु उर बासी ॥२॥

अर्थ रामजी को जगत् पिता विचार करके आँख भर छवि देख लो। सुन्दर सुख देनेवाले सब गुणो के राशि ये दोनो भाई महादेव के हृदय मे बसनेवाले है।

व्याख्या ये उपदेश देनेवाले सयाने भक्त हैं। ये भगवान् को सब सुखदाता इष्टदेव के रूप मे देख रहे हैं। अत कहते है कि विचार करो। ऐसी मूर्ति जगत्-पिता को छोडकर और किसकी हो सकती है। बडा भारी सुयोग उपस्थित है। ये शम्भु के हृदय मे रहनेवाले दोनो भाई नयन के विषय हो रहे हैं। कैसी सुन्दर सुखद और सर्वगुणसम्पन्न मूर्तियाँ हैं। इन्हे आँख भर देखो। फिर इनके दर्शन का कब सुयोग होगा इसे कौन कह सकता है ? राम जानकी का दर्शन जगत्पिता और जगदम्बा रूप से करके आनन्द लो।

सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाय जा कहु जोइ भावा। हम तो आजु जनम फलु पावा ॥३॥

अर्थ : अमृत के समुद्र को पास मे छोडकर मृगजल देखकर दौडकर क्यो प्राण देते हो ? जिसे जो अच्छा लगे वह जाकर वैसा करे। हमे तो आज जन्म होने का फल मिल गया।

व्याख्या ब्रह्म पियूप मधुर सीतल जौ पै मन वह रस पावै। सो वही अमृत करतल हो रहा है। माया मृगजल है। उसकी प्राप्ति नही हो सकती। उसके पीछे दौडने मे व्यर्थ का श्रम और परिणाम मृत्यु ही है। भाव यह है कि जगदम्बा की ओर मत दौडो। उन्हे दूर से प्रणाम करो। वह महामाया है। यथा सो अवतरिहि मोरि यह माया। उनकी प्राप्ति के पीछे दौडते दौडते मर जाओगे। रामजी की प्राप्ति इस समय सोलह आना सुलभ है और सीताजी सर्वथा अप्राप्य है। उन लोगो के मन मे शिक्षा जमती न देखकर कहते है कि मुझे जो कहना था कह चुका। अब यथेच्छसि तथा कुरु जैसा जी मे आवे वैसा करो। अन्धे को कूएँ मे गिरते देखकर निषेध कर देना धर्म है। सो मै पुकारकर किये देता हूँ। मैं तो कृतकृत्य हो गया। भगवत्प्राप्ति ही जन्म का फल है सो मुझे मिल गया। यथा मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे ॥
देखहिं सुर नभ चढे विमाना। बरपहि सुमन करहि कल गाना ॥४॥

अर्थ. ऐसा कहकर भले राजा प्रेम मे पग गये। अनूप रूप की झाँकी लेने लगे। देवता लोग आसमान मे विमान पर चढे हुए देख रहे है। पुष्पवृष्टि करते हैं और सुन्दर गान करते हैं।

व्याख्या : कन्हु जाइ जा कहँ जोइ भावा। कहकर बातचीत बन्द कर दी। एकाग्र होकर सगुण निर्गुणरूप रूपअनूप देखने लगे। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहि। उनकी तृप्ति नही हो रही है। इधर स्वयवर देखने के लिए देवता लोग विमानो पर चढकर आकाश मे आगये। शोभा देखकर हर्षित होकर प्रभु पर पुष्पवृष्टि की। पुष्पो से पूजा और कलगान द्वारा स्तुति करने लगे।

दो जानि सुऔसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुदर सकल, सादर चली लवाइ ॥२४६॥

अर्थ सुअवसर जानकर जनकजी ने तब सीताजी को बुला भेजा और चतुर तथा सुन्दर सखियाँ उन्हे लिवा ले चली।

व्याख्या : राजा लोग तो सबेरे से ही डँटे हुए हैं राजकुँअर भी आगये। उत्सुकता बढी हुई है। अत राजा ने देखा कि यही सुअवसर है धनुप टूटते ही जयमाल पडनी चाहिए। अत सीताजी को बुला भेजा। चतुरसखी जिनका स्वरूप भी सुन्दर है जो चित्तवृत्ति को समझे यथा अवसर कार्य करें। उचित शिक्षा कुँअरि को दे सकें। आदर के साथ जानकीजी को लिवा ले चली : ये वही थी जो गिरिजापूजन के साथ थी। यथा ' सग सखी सब सुभग सयानी। अर्थात् पालकी पर

चढाकर ले चली। यथा राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ। सतानद ल्याये सिय सिविका चढाइके। गी।

सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग अनुरागी॥१॥

अर्थ सीताजी की शोभा की प्रशसा नही की जा सकती। क्योकि वे जगदम्बिका है और रूप गुण की खानि है। मुझे सभी उपमाएँ हलकी जची। क्योंकि वे लौकिक स्त्रियो से मेल खाती है।

व्याख्या न वर्णन किये जाने का दो कारण देते है। एक तो वे जगदम्बा है उनकी शोभा का बखान उन्ही के बच्चा द्वारा अनुचित है। दूसरी बात यह कि वर्णन करना अशक्य है। जिन रूप गुणो से तुलना करनी है उन्ही की ये खानि है। जिसका वर्णन सीधे सीधे नही हो सकता उसके लिए उपमाएँ दी जाती हैं। उपमाएँ प्रत्येक अग की अलग अलग हैं। जैसे मुख की कमल या चन्द्र, नासिका शुकतुण्ड, ओष्ठ की बिम्बाफल इत्यादि। परन्तु ये सब उपमाएँ तो लौकिक स्त्रियो के अङ्गो से मेल खाती है। अत उन्ही स अङ्गो की समता की जाती है। इसलिए वे उपमाएँ यहाँ पर मुझे जँची नही।

सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजस को लेई॥
जौ पटतरिअ तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥२॥

अर्थ सीताजी का वर्णन करके उपमा देकर कौन कुकवि कहलाकर अपयश ले। यदि सीता का स्त्री के साथ पटतर दिया जाय तो ऐसी सुन्दरी स्त्री ससार म है कहाँ?

व्याख्या जिसकी लौकिक शाभाएँ सब देखी हुई है वे स्वयं कहते है। जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। परम पुनीत मोर मन छोभा। उसकी शोभा का पटतर देने से लौकिक स्त्रियो के अङ्गो की उपमा देने से वर्णन करनेवाला कुकवि कहलायेगा और उसका दुर्यश होगा। यथा वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड अनुचित कीन्हे। शम्भु के प्रसाद से तुलसी कवि हुआ है। कुकवि बनने क्यो जाय? यदि प्रत्यङ्ग वर्णन न करके किसी सुन्दरी स्त्री से ही उपमा दी जाय तो ऐसी सुन्दरी स्त्री संसार मे कहाँ है?

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥३॥

अर्थ सरस्वती बहुत बोलती है। भवानी का शरीर ही आधा है। पति को शरीर रहित जानकर रति अति दु खित ही रहती है। जिसे विष और वारुणी से भाई प्रिय है। उस रमा को वैदेही के समान कैसे कहा जाय?

व्याख्या यदि ससार म ऐसी सुन्दरी कोई नही है तो दिव्य स्त्रिया म

सरस्वती, भवानी, रति और रमा की बड़ी ख्याति है। उन्हीं मे से किसी को उपमा दी जाय तो यह भी नही बनता। सरस्वती बोलती बहुत है। सम्पूर्ण शास्त्र उन्हो के कहे हुए हैं और कहती ही जाती है। यथा : पति वरन्यौ चार मुख पत वरन्यौ पाँच मुख नाती वरन्यौ पट मुख तदपि नई नई। और बकवादिनी स्त्री की शोभा नही। भवानी का शरीर ही आधा है। आधा शरीर उनके महादेव हैं। अर्धनारीश्वर मूर्ति प्रख्यात है। फिर आधी स्त्री की शोभा ही क्या? हाँ रति मे ये दोप नही हैं। वे अल्पभाषिणी भी हैं और उन्हे अंग भी पूरे हैं। पर उन्हे मानसिक खेद है। उनके पति अनङ्ग हैं। उन्हे अङ्ग ही नही। अत उसके मुख पर प्रसन्नता नही और जो प्रसन्न नही उसकी शोभा भी नही। अब रह गईं लक्ष्मी। वे सर्वगुणसम्पन्ना है। पर उनमें एक बड़ा दोप है। वे विप और मद्य की बहन हैं। भाई तो उन्हे और भी हैं। पर वे प्रिय नही। प्रिय है विप और मद्य। ये सदा उनके साथ रहते हैं। अत. मालूम होता है कि उनमे भाई का गुण मादकता है। कहा भी है कि कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकात। वे खाये बौरात हैं ये पाये बौरात। तब रमा के ऐसी वैदेही को कैसे कहें?

जौं छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥४॥

अर्थ : यदि छविरूपी अमृत का समुद्र हो और परम रूपमय कच्छप वही हो और शोभा को रज्जु तथा शृङ्गार को मन्दर बनाकर अपने करकमलो से कामदेव मन्थन करें।

व्याख्या : लक्ष्मी की उत्पत्ति के जो साधन थे वे सदोप थे इससे लक्ष्मी मे दोप आगया। अत: साधनो में उलटफेर करके दूसरी लक्ष्मी उत्पन्न करनी चाहिए। अब सामग्री कहते है। यह समुद्र न हो छविसुधा का समुद्र हो। कच्छपावतार विभवरूप न होकर परम रूप हो। परम रूप वासुदेव[१] व्यूह है। वासुकी नाग की रज्जु न होकर शोभा रज्जु हो। छोरी के स्थान पर मन्दर न होकर शृङ्गार हो, मन्थन करनेवाले देवासुर न होकर कामदेव हो।

दो. एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥२४७॥

अर्थ : इस विधि से यदि सुन्दरता और सुख की मूलभूता मूर्ति लक्ष्मी उत्पन्न हों तब भी सङ्कोच के साथ कवि लोग सीताजी के लगभग कहेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मी को उत्पन्न करना और अपनी चाही हुई विधि से उत्पन्न करना किसी का साध्य नही है। फिर भी यदि मान लिया जाय कि इस भाँति जो

---

१. ब्रह्म चतुर्व्यूह रूप है . १. वासुदेव २. सङ्कर्पण ३. प्रद्युम्न और ४. अनिरुद्ध। इनमे वासुदेव व्यूह स्वयं अवतारी हैं। अन्य अवतार हैं।

लक्ष्मी उत्पन्न हो तो उनकी उपमा दी जा सकती है। उसपर कवि कहते है कि फिर भी कविसमाज सङ्कोच के साथ सीताजी के लगभग स्वीकार कर लेगा। सङ्कोच का कारण यह कि शोभा और शृङ्गाररस का मन्थन न हुआ। उनकी उपस्थिति मात्र थी। जहाँ इनका भी मन्थन हुआ है वहाँ कहने मे सङ्कोच नही है। यथा ' सुषमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मदन अमियमय कियउ दहीरी। मथि माखन सिय राम सँवारेउ सकल भुवन छवि छाछ महीरी। गी। समतूल का भाव यह कि रूप और गुण दोनो में समता हो।

चली सग ले सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी॥
सोह नवल तनु सुदर सारी। जगत जननि अतुलित छबिभारी॥१॥

अर्थ सयानी सखी सीताजी को लेकर चली। मनोहर वाणी से गीत गा रही थी। नये शरीर पर सुन्दर सारी की शोभा हो रही थी। जगत्-जननी की ऐसी भारी छवि थी कि किसकी तुलना नही हो सकती।

व्याख्या चतुर सखी सुदर सकल सादर चली लवाइ से प्रसङ्ग छोडा था। बीच मे शोभा का वर्णन करने लगे। अब फिर वही से प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। फुलवारी मे भगवती स्वय जा रही थी। इसलिए लिखा सग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी। यहाँ सखियो के लिवा जाने से जाती हैं। अत कहते हैं चली सग लै सखी सयानी। मनोहर वाणी से उनका गीत गाना दोनो स्थलो मे समान है। भेद इतना ही है कि फुलवारी मे भवानी के गीत होते थे यहाँ स्वयवर के गीत हो रहे हैं।

भूपन सकल सुदेस सुहाए। अग अग रचि सखिन्ह बनाए॥
रगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥२॥

अर्थ सखियो ने प्रत्येक अङ्ग मे सब अच्छे गहने अपने अपने स्थान पर रचकर सँवारा था। रङ्गभूमि मे जब सीताजी ने पदार्पण किया तो रूप देखकर नर और नारियाँ मोहित हो गईं।

व्याख्या . आभरण बत्तीस कहे गये है। सो प्रत्येक क लिए नियत स्थान है। जिस अङ्ग के लिए जिस स्थान पर जो गहना पहनाया जाता है वही पर होना चाहिए। इनके पहिनाने मे बडी पण्डिताई है। सब लोग गहना नही पहना सकते। इसलिए रचकर सँवारना कहते है। सखियो का कर्त्तव्य १ मण्डन २ शिक्षा ३ उपालम्भ और ४ परिहास है। उपालम्भ और परिहास फुलवारी प्रसङ्ग मे कह आये है। मण्डन इस समय कह रहे है। शिक्षा समय पाकर आगे कहगे।

इस प्रकार शृङ्गारित होकर जब रगभूमि मे पदार्पण किया तो रूप देख कर नरनारी मोह गये। नारी नारी के रूप पर मोहित नही होती। ऐसा साधारण नियम है। पर अलौकिक शोभा ऐमी है कि सहज पुनीत श्रीरामजी का मन क्षुब्ध हो गया तो नारियो का मोहना कौन आश्चर्य है। सभी नियमो मे अपवाद होता

है। विश्वमोहिनी का रूप देखकर लक्ष्मी मोहती थी। यथा श्री विमोह जेहि रूप निहारी। प्राकृत नारियो की गिनती ही क्या है ? वही विश्वमोहिनी तो सीताजी हैं। यथा सो अवतरिहि मोर यह माया। रामजी के रगभूमि मे पधारने पर सब चकित हुए थे। सीताजी के पधारने पर मोहित हो गये।

हरषि सुरन्ह दुदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई ॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला ॥३॥

अर्थ - देवताओ ने हर्षित होकर डका दिया। अप्सराओ ने पुष्पवृष्टि करके गान किया। हाथो मे कमल की जयमाला है। सब राजाओ ने एकाएक उस ओर देखा।

व्याख्या प्रभु के आने पर देवताओ ने फूल वरसाये थे। यथा वरषहि सुमन करहि कल गाना। पर भगवती पर पुष्पवर्षा का साहस नही होता। अत दुदुभी वजाने लगे। पुष्पवर्षा अप्सराओ ने की। स्त्री पर पुष्पवर्षा का अधिकार स्त्रियो को ही है और उन्होने ही गान किया। उन्हे शोभा के गान का स्त्री होने से अधिकार था। विजय का कारण प्रस्तुत हो जाने से डका बजाया।

जयमाल पर राजा लोग दृष्टि लगाये हुए थे। जयमाल ही सीताजी के निश्चित रूप से पहिचानने का चिह्न था। यहाँ सरोज देहलीदीपकन्याय से दोनो ओर अर्थ देगा। अर्थात् करकमलो मे कमल की जयमाला थी। राजाओ ने एकाएक देखा। पर सीताजी ने उन्हे नही देखा।

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहवस सब नरनाहा ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई ॥४॥

अर्थ · सीता ने चकित चित्त से राम को देखा कि वे कहाँ है ? और सब राजा मोह के वश हो गये। मुनिजी के पास दोनो भाइयो को देखा। उनके नेत्र निधि पाकर उसी ओर ललककर लग गये।

व्याख्या सीताजी की आँखे उस समाज मे रामजी को ढूँढने लगी। सब राजा मोहित हो गये। प्रत्येक ने समझा कि मुझको ही देख रही है। जो ज्ञानिन्ह-कर चित अपहरई। बरिआई विमोह वस करई उसकी दृष्टि है। जिसपर पडती है वही मोहित हो जाता है। चारो ओर घूमकर निगाह मुनि के पास बैठे हुए दोनो भाइयो पर पडी। पर ठहरी अपनी निधि पर। यथा हरखे जनु निजनिधि पहिचानी। पहिचाना पहिल हो था। अब प्रेम के साथ जाकर वहाँ लग गये।

दो. गुरजन लाज समाजु बड़, देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहि उर आनि ॥२४८॥

अर्थ गुरुजनो की लज्जा से तथा बडा जमावडा देखने से सीताजी सङ्कुचित हुई और रामजी को हृदय मे लाकर सखियो की ओर देखने लगी।

व्याख्या आँखें जाकर रामजी मे तो लगी। पर उसमे दो प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हुई। वही पर महाराजा जनक सतानन्द आदि गुरुजन थे। राजाओ और प्रजाओ की भीड उमडी हुई थी। इनके बीच मे रामजी की ओर देखते रहने म सङ्कोच हुआ। अत प्रभु को ही हृदय मे रख लिया। यथा चली राखि उर स्यामल मूरति। ये चित्र नही खैंचती सीधे सीधे मूर्ति ही हृदय मे रख लेती है। मूर्ति को हृदय मे रखने के बाद नयनकपाट सङ्कोच से बन्द नही किया। सखिया की ओर देखने लगी।

राम रूपु अरु सिय छबि देखे। नर नारिन्ह परिहरी निमेखे॥
सोचहि सकल कहत सकुचाही। बिधि सन बिनय करहिं मन माही॥१॥

अर्थ रामजी का रूप और सीताजी की छवि देखकर स्त्री पुरुषो का पलक गिरना बन्द हो गया। सोचते सब है। पर कहते हुए सभी सकुचित होते है। मन ही मन ब्रह्मदेव से विनय करते है।

व्याख्या जिससे गहने की भी शोभा हो जाय रूप उसका नाम है और जिससे अन्धकार दूर हो उसे छवि कहते है। यथा छ्यति छिनत्ति तम इति छवि। एक बार तो सब मोह गये। अब सावधान होकर रामजी के रूप और सीताजी की छवि का मिलान करते है। परोक्ष मे भी मिलान किया था। यथा जोग जानकी यह बरु अहई। अब दोना मूर्तियाँ सामने पाकर मिलान करते है। इसलिए एक टक लोचन चलत न तारे की दशा उपस्थित है।

सब के मन मे एक ही भाव उठता है। पर कहता कोई किसी से नही। क्योकि बात बडी ढिठाई की है। सब विधि से मन ही मन विनय करते है। क्योकि उनका नाम ही विधि है। वे ही विधि बैठा सकते है। अथवा जौ भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता। तो यही विनय है कि यहाँ भी उचित फल दें। जनक की बुद्धि के पलटने मे विधि ही समर्थ है। ये शारदा को प्रेरणा करके बुद्धि पलटते हैं। यथा सारद प्रेरि तासु मति फेरी।

हरु बिधि बेगि जनक जडताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करहि बिबाहू॥२॥

अर्थ हे विधि! जल्दी से जनक की जडता को हरण करो और हमारी ऐसी सुहावनी बुद्धि दो। राजा बिना सोचे समझे प्रण छोडकर सीता और रामजी का ब्याह कर दें।

व्याख्या जनक की जडता को जल्दी हरो। देर न करो। देर करने म काम बिगडेगा। राजा जनक को सभी ज्ञानी मानते हैं। अत उन्हे जड कहने मे सङ्कोच है। पर रामजी को देखने पर भी अपने प्रण पर अडे रहना स्पष्ट जडता है। अत चाहे दुनिया न माने पर बात तो यह है कि इस विषय म जनक की बुद्धि म जडता है और हमारी बुद्धि सुहावनी है। अत किसी से न कहकर ब्रह्मदेव से मन ही मन

विनय करते हैं कि जनक को सुहाई बुद्धि दे। जडता हरण कर लें। यहाँ विचार की कोई बात ही नही है। सीता और रामजी का व्याह होना ही चाहिए।

यहाँ विचार करना ही जडता है। प्रण निवाहना ही बुरा है। राजा विचारशील है। सत्य प्रतिज्ञ है। यह स्वभाव विधि के पलटने से पलट सकता है। नर नाथ है। उसे प्रजा की रुचि रखनी चाहिए।

जग भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अतहुँ उर दाहू॥
एहि लालसा मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥३॥

अर्थ संसार अच्छा कहेगा। क्योकि सबको पसन्द है। हठ करने से अन्त मे कलजा जलेगा। इस लालसा मे सब लोग मगन थे कि साँवला वर जानकीजी के योग्य है।

व्याख्या . अपयश तो ऐसे कार्य के करने से होता है जो लोगो को अप्रिय हो। राम जानकी का व्याह तो सबको प्रिय है। अत अपयश की तो चरचा चलाना ही व्यर्थ है। बुद्धि का फल आग्रह रहित होना है। यथा · बुद्धे फलमनाग्रह । सो हठ करने से सीताजी का बेजोड व्याह हो जायगा। सीता को दु ख होगा। तब कोई उपाय न रहने से यावज्जीवन कलेजा जलेगा लोग इस विवाह के लिए ऐसे लालायित हो गये है कि प्रतिज्ञापालन को हठ बतला रहे है। राम जानकी के विवाह की अभिलाषा मे इतना आनन्द लोग अनुभव कर रहे है कि अभिलाषा ही मे मग्न हैं। अब सखी के सवाद म जो बात निश्चित हुई थी कि जोग जानकी यह बरु अहई। वही निर्णय यहाँ भी हुआ कि · वर साँवरो जानकी जोगू।

तब बदीजन जनक बोलाए। बिरदावली कहत चलि आए॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा॥४॥

अर्थ तब भाटो को राजा जनक ने बुलाया। वे विरुदावली कहते हुए आये। राजा ने कहा कि जाकर मेरा प्रण सुना दो। भाट चले उन्हे थोडा हर्ष नही हुआ।

व्याख्या वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञा प्रस्तावमदृशोक्तय । निर्मल बुद्धिवाले और प्रस्ताव के अनुकूल बोलनेवाले वन्दी कहलाते थे। राजा ने उन्हें बुलाया। वे प्रस्ताव सदृश बोलनेवाले थे। विरद बोलते चल वज्ररेख गजदसन जनकपन वेद विदित जग जान। राजा ने कहा कि सभा बहुत बडी है। चारो ओर जाकर तुम लोग हमारा प्रण सुना दो। बन्दी सुनाने चले। हृदय मे बडा हर्ष हुआ कि हम राजा के प्रतिनिधि होकर बोलने जा रहे हैं।

दो बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल॥२४९॥

अर्थ वन्दी श्रेष्ठ वचन वाले कि राजा तुम लोग सुनते जाओ। विदेहराज का प्रण हमलोग विशाल भुजा उठाकर कहत है।

व्याख्या महाराज विदेह के वचन का अनुवाद होने से वचन वर कहा। महिपाल सम्बोधन का भाव यह है कि आप लोग वचन के गौरव को समझते हैं। प्रण विदेह का है हमारा नही। हम केवल अनुवादक हैं। प्रण के अटल होने से अपनी भुजा को विशाल कह रहे हैं। अथवा हरी भुजाएँ इस समय राजा जनक की भुजाओ का प्रातिनिध्य करती है। इसलिए विशाल हैं। भुजा उठाकर प्रण किया जाता है ससार को साक्षी करने के लिए। यथा : भुज उठाइ प्रन कीन्ह। हानि लाभ अनख उछाह बाँहुबल कहि। वन्दी बोले विरद अकस उपजाइ के। यही उनकी प्रस्ताव सदृश उक्ति है।

नृप भुजवल विधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर विदित सब काहू॥
रावन बानु महाभट भारे। देखि सरासनु गवहि सिधारे॥१॥

अर्थ राजाओ की भुजाओ का वल चन्द्रमा है। शिव का धनुप राहु है, भारी है, कठोर है। यह बात सभी जानते हैं। रावण और बाणासुर भारी महाभट है। सो धनुप को देखकर चुपके से चल दिये।

व्याख्या वन्दी लोग पहिले ही अकसवाली बात बोले। पहिले भी राजा लोग आये थे पर उनका तोडा धनुप नही टूटा। क्रोध करके उन लोगो ने जनकपुर घेर लिया। *पर महाराज जनक से पराजित हुए। उसी बात को लक्ष्य* करते हुए वन्दीजन कह रहे है कि राजाओं के भुजवल रूपी चन्द्र को निस्तेज कर देने के *लिए शिवधनुप राहु है। राहु छायामात्र होने के कारण मृदु और हलका* है। पर यह भारी है, कठोर है। हम कोई नई बात नही कह रहे हैं। आप लोग सभी यह बात जानते है। अब अनखवाली बात बोलते हैं। महा भटो मे भी भारी दो हैं रावण और बाणासुर। वे लोग भी आये थे। पर धनुप को देखकर साहस छूट गया। धीरे से चल दिये। अत समझबूझकर उठियेगा।

सोइ पुरारि कोदडु कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहि बिचार बरै हठि तेही॥२॥

अर्थ · यह पुरारि का वही कठोर धनुप है। जिसने आज राजसमाज मे इसको तोडा। *त्रिभुवनजयलक्ष्मी के सहित वैदेही उसे बिना विचारे वरेगी।*

व्याख्या शङ्कर भगवान् ने त्रिपुरदाह के समय मेरु पर्वत को धनुप बनाया था। यहाँ पुरारि धनुप का भाव यह कि यह मेरु का जोडदार है *अब वल कहते* है। शिव का यह वही धनुप है। इसे राजसमाज मे आज तोडना है। यहाँ कल की बात नही। ऐसे राजसमाज मे वह अपना वल प्रकट करे। अब हानि लाभ कहते है। उसे वैदेही तो वरण करेगी राउ या रङ्क का विचार न करेगी। त्रिभुवन जयलक्ष्मी भी उसको साथ ही साथ वरण करेगी। दिग्विजय ही बडे परिश्रम से साध्य है। सो त्रिभुवनविजय बिना रक्तपात के मिलेगा और जानकी भी मिलगी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषें। भटमानी अतिसय मन माषे॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई॥३॥

अर्थ : प्रण सुनकर सब राजाओ को अभिलाषा हुई और वीरमानी राजाओ के मन मे तो बड़ा क्रोध हुआ। कमर कस कसकर आकुल हो उठ खडे हुए और अपने अपने इष्टदेवो को सिर नवाकर चले।

व्याख्या : वन्दीजन ने कहा था : सुनहु सकल महिपाल। सो सबने सुना। अब कहते हैं : सुनि पन सकल भूप अभिलाखे। ठीक है जानकी के लिए आये थे। सो त्रिभुवनजयलक्ष्मी भी प्राप्त होगी। भटमानी तो बडे क्रुद्ध हो गये। नृप भुजबल विधु सिवधनु राहू। कैसे कहा? अभी धनुष तोड़ता हूँ। व्याकुल होकर उठे कि कहीं कोई पहिले ही जाकर धनुष तोड न दे। नही तो जानकी और त्रिभुवनजय-लक्ष्मी उसी के हाथ लग जायगी। इष्टदेव को प्रणाम करके चलते हैं जिसमे कार्य-सिद्धि हो। क्योंकि सभी सुखो की आशा तो इष्टदेव से ही की जाती है। यथा : इष्टदेव इव सब सुखदाता।

तमकि ताकि तक सिव धनु धरही। उठै न कोटि भाँति बलु करही॥
जिन्ह के कछु बिचार मन मांही। चाप समीप महीप न जाँही॥३॥

अर्थ : तमककर देखते हैं। लक्ष्य बाँधकर शिवधनु को पकडते है। कोटि भाँति से बल लगाते हैं। पर उठता नही। जिन राजाओ के मन मे कुछ भी विचार है वे धनुप के सन्निकट नही जाते।

व्याख्या : अतिशय मन माखे है। अत. क्रोध से देखते हैं। पलक मारने मे उठा लेने के लिए लक्ष्य बाँधकर झपटते हैं जिसमे हाथ खाली न जाँय और राजसमाज मे चमत्कार दिखला दें। जब नही उठा तब करोडो उपाय से बल लगाते हैं। एक हाथ से, दोनो हाथ से, घुटना टेककर, छाती के बल से, सिर के बल से जैसे-जैसे बन पडता है उठा लेने मे कोई बात नही रखते।

बडे विचारवान् धर्मशील हरिभक्त सयाने तो अभिलाषा करनेवालो मे हैं नही। जो अभिलाषा करते है उनमे भी जिनको कुछ विचार है वे पहिले ही परिकर बाँधकर अकुलाकर नही उठे समझने लगे थे कि यह काम सुकर नही है। और जब देख लिया कि किसी का हिलाया नही हिलता तो विचार करते हैं कि मुझमे ही कौन अलौकिक बल है जो उठा लूँगा। अत दूर से देखते हैं। निकट जाते नही जिसमे धनुष उठानेवालो मे न गिने जाँय। निर्बलता तो सिद्ध हो गई। मूर्खता सिद्ध न हो।

दो. तमकि धरहि धनु मूढ नृप, उठै न चलहि लजाइ।
मनहुँ पाइभट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ॥२५०॥

अर्थ : तमतमाकर मूढ राजा धनुष को पकडते हैं। जब नही उठना तो

लज्जित होकर चले जाते है। मानो वीरों के भुजबल को प्राप्त करके अधिक से अधिक भारी होता चला जाता है।

व्याख्या : जो सरल बात न समझ सके उसे मूढ करते हैं। यथा : माया विवस भये मुनि मूढा। समझी नहिं हरिगिरा निगूढा। उन्हे सीधी सी बात नही समझ मे आई कि जिसे रावण बाणासुर छोड़कर चले गये उसे हम उठाने क्या जा रहे है ? इसलिए उन्हे मूढ कहा। यहाँ धनुष की क्या करामात है। मानो जो उसे उठाने जाता है उसके बल को वह हरण कर रहा है। इससे और भी भारी होता जाता है। अर्थात् किसी के हिलाये हिलता ही नही।

भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरै न टारा ॥
डगै न संभु सरासन कैसें। कामी बचन सती मन जैसें ॥१॥

अर्थ : दस हजार राजा एकही साथ उठाने लगे। पर वह ,टारे न टरा। शिवजी का धनुष उसी भाँति नही डिगता है जिस भाँति कामियों के वचन से सती का मन नहीं डिगता।

व्याख्या : अब उसी मूढता का उदाहरण देते है। पहिले अन्ध अभिमानी कह आये हैं। इनका ज्ञान तामस है। जो तत्त्वार्थवाला नही है तथा अल्प है। ऐसे एकही कार्य को सब कुछ मानकर निष्कारण उसमें लग जाता है। उसे तामस ज्ञान कहते है। यथा : यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्। अतत्त्वार्थवदल्पञ्च तत्ताम-समुदाहृतम्। धनुष के उठने को ही सब कुछ समझ लिया। यह नही समझ रहे है कि इस भाँति उठ भी जायगा तो क्या फल होगा ? ऐसे उठाने में तत्त्वार्थ कुछ नही व्यर्थ है। फिर भी दसहजार एक साथ हो उठाने में लग गये। जो आते जाते है वे धनुष मे ही चिपटते चले जाते हैं। इससे धनुष की विशालता भी कही।

परन्तु शम्भुशरासन हिला भी नही। कामी ऐसा वचन बोलना जानते है जिससे सामान्य स्त्री का मन विचलित हो उठे। पर ऐसे वचन से सती के मनमे कोई अन्तर नही पड़ता। दश सहस्र कामियों के वचन से नाममात्र के लिए भी चलायमान नही होता। कामी अन्धे होते हैं : दिवा पश्यति नोलूकः कामान्धो नैव पश्यति। कामान्धों को ज्ञान नही कि इतने आदमियो के साथ बोलने से तो अभीष्ट सिद्धि और भी दूर चली जा रही है। इसी प्रकार इतने राजाओ के लग जाने से इसी बात की सिद्धि होती चली जा रही है कि धनुष का उठाना इन राजाओं की शक्ति के बाहर को बात है।

सब नृप भए जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी ॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी ॥२॥

अर्थ : सब राजा हँसी के योग्य हो गये। जैसे बिना वैराग्य का सन्यासी हो जाता है। भारी कीर्ति विजय और वीरता को व्यर्थ ही धनुष के हाथ हारकर चले।

व्याख्या वैराग्य सन्यासी का लक्षण है। जिस सन्यासी मे वैराग्य नही है उसम और सन्यासी बने हुए भांड मे कोई भेद नही है। यथा मूड मुडायो वादि ही भांड भयो तजि गेह। जिस भाँति भांड उपहासी का पात्र है उसी भाँति वैराग्य रहित सन्यासी भी है। क्षत्रिय की श्रेष्ठता बल से है। तिसपर राजा के लिए कहा गया है कि आठो लोकपालो का उनमे अश रहता है। यथा अष्टाना लोक पालाना वपुर्धारयते नृप । सो दस सहस्र राजा लगे और शिव धनु न उठा। तो इससे यही सिद्ध हुआ कि इनमे ईशान का अश है ही नही। ये भी राजा बने हुए भांड की भाँति उपहास के ही पात्र हैं।

कीर्ति से यश कहा। विजय से बल और प्रताप कहा। वीरता से तेज कहा। अत जिन्होने यह कहा था अस विचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गँवाई। वही बात आ गई। पहिल चले गये होते तो यश, प्रताप, बल, तेज खोकर न जाते। अब हारकर जा रहे हैं और हारे भी किसी वीर से नही धनुष से हारकर जा रहे हैं। धनुष स्वय इनसे लडने नही गया था। ये ही हठात् उससे लडने गये। सा अव हारकर लौटे जा रहे है।

श्रीहत भए हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा ॥
नृपन्ह बिलोकि जनक अकुलाने। बोले बचन रोप जनु साने ॥३॥

अर्थ हृदय से हार मानकर राजा लोग श्रीहीन हो गये। जा जाकर अपने समाज म बैठ। राजाओ को देखकर जनक आकुल हो उठे और ऐसा वचन बोले जिसम क्रोध भरा हुआ सा मालूम पडता था।

व्याख्या मन से तो पहिले ही हार माने हुए थे। यथा प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। पर इस हार से श्रीहत हो गये। फिर भी घर नही गये। अपने समाज म जाकर बैठ। सोचते हैं कि धनुष तो टूटा नही और न किसी से टूटेगा। अब कन्या जिसे चाहेगी जयमाल पहनायेगी। चित्त की वृत्तिया विचित्र रूप की होती हैं। यथा विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तय । कौन जाने मैं ही पसन्द मे आजाऊँ। इस भाँति आशा लगाये बैठ हैं। राजा जनक ने देखा कि सभी राजा हृदय से हार गये। अपने आसन पर जाकर बैठे हुए हैं। घर भी नही गये। इनके हृदय म कल्मप है। कहेंगे कि ऐसा प्रण करके जनक ने राजसमाज का अपमान किया और बहुत सम्भव है कि उपद्रव भी करें। कन्या का व्याह भी नही हुआ चाहता और भारी उपद्रव हुआ चाहता है। अत जनकजी आकुल हुए। ज्ञानी को क्रोध नही होता क्रोधाभास होता है। अत रोप जनु साने वचन बोल।

द्वीप द्वीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पन ठाना ॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा ॥४॥

अर्थ द्वीप द्वीप के राजा लोग जा प्रण मैंने ठाना था उसे सुनकर आये। देवता और दानव मनुष्य शरीर धारण करके बहुत स रणधीर वीर आये।

व्याख्या : देव से स्वर्ग के वीर दनुज से पाताल के वीर और रणधीर से मर्त्यलोक के वीर अभिप्रेत हैं। सभी वीर मेरा प्रण सुनकर आये। भाव यह कि सबको मालूम था कि शङ्कर के धनुष तोड़ने का प्रण है और मैंने किसी को बुलाया भी नहीं। सुन सुनकर स्वय आने की कृपा की है। अर्थात् जो आया है वह शङ्कर के धनुष तोड़ने की हिम्मत करके ही घर से आया है। मेरे सङ्कोच से किसी का आना नहीं हुआ है।

दो. कुँवरि मनोहर विजय वड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥२५१॥

अर्थ : मनको हरण करनेवाली कुँअरि बडी जीत और सुन्दर कीर्त्ति के पाने वाले को मानो ब्रह्मा ने रचा ही नही। अत. टूटनेवाला धनुप मानो बनाया ही नही।

व्याख्या : विरंचि जनु रचेउ न। इस वाक्य का अन्वय पावनिहार के साथ होगा और देहलीदीपक न्याय से धनु दमनीय के साथ होगा। कोई यह न कहे कि कन्या मुझे पसन्द नही इसलिए धनुप नही तोडा। सो कुँअरि मनोहर है। इस धनुप को तोडना और रावण बाणासुर पर विजय पाना एक बात है। अत ऐसी विजय कौन नही चाहता। विना रक्तपात के विजय प्राप्त करने से कमनीय कीर्ति है। कौन यशोधन इसे न चाहेगा? मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने ऐसा भाग्यवान् किसी को बनाया नही इसीलिए धनु को दमनीय नही बनाया। नही तो कार्य द्रव्य सभी क्षणभङ्गुर होते है।

कहहु काहि यह लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढावा॥
रहौ चढाउव तोरव भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छडाई ॥१॥

अर्थ : कहो किसे यह लाभ अच्छा नही लगता? किसी ने तो शिवजी का धनुप नही चढ़ाया। चढाना और तोड़ना तो जाने दो। कोई तिल भी जमीन न छुडा सका।

व्याख्या : महाराज जनक समझ रहे है कि ये अभिमानी पीछे से कहेगे कि मुझे कन्या पसन्द नही थी। अतः जिसे यह लाभ अच्छा न लगता हो वह इस समाज मे बोल दे। सब लोग उसका भी रूप देख लें कि किस मुँह से कह रहा है कि कन्या पसन्द नही। यदि पसन्द है तो शिवजी का धनुप चढाना चाहिए। सो तो किसी का किया न हुआ। धनुप चढाना और उसे तोडना तो दूर की बात है। कोई तिल भर भी जमीन नहीं छुडा सका। दस सहस्र राजाओं का उसे उठाने के लिए लगना उन्मत्त चेष्टा थी। अतः उसकी चर्चा भी महाराज नही करते। धनुप तोडनेवाले को विना विचार वरण की प्रतिज्ञा थी। यदि कोई उठा भी लेता तो विचार किया जाता कि विवाह किया जाय या नहीं। इस अवस्था मे तो विचार को भी स्थान नही है। चढाना या तोडना तो उठाने के बाद बनता है। यहाँ तो

कोई हिला भी न सका। भाव यह कि इसका तोडना राजसभा के लिए असम्भव व्यापार है तब किस आशा से राजसमाज बैठा है।

अब जनि कोउ माखै भटमानी। बीर बिहीन मही मै जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ॥२॥

अर्थ अब कोई वीरमानी क्रोध न दिखावे। मैंने जान लिया पृथ्वी वीरो से रिक्त खाली हो गई। अब आशा छोडिये और अपने अपने घर पधारिये। ब्रह्मदेव ने सीता का विवाह लिखा ही नही।

व्याख्या पहिले वीरमानियो ने भाटो के कहने पर क्रोध किया था कि नृप भुज बल बिधु सिव धनु राहू। इन सबो ने कैसे कहा? अब कोई क्रोध करने का कष्ट न उठावें। मै कहता हूँ मैने जान लिया कि पृथ्वी बिना वीर की हो गई। ठीक यही बात हनुमन्नाटक मे कही गई है। आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतय सर्वे समभ्यागता। कन्याया कलधौतकोमलरुचे कीर्तेश्च लाभ पर। नाकृष्ट न च टङ्कित न नमित नोत्थापित स्थानत। केनापीदमहो महद्धनुरिद निर्वीरमुर्वीतलम्।

यह आशा छोडिये कि जब धनुप किसी से न टूटा तो क्या कन्या क्वारी ही रह जायगी। किसी न किसी को उसे वरना ही पड़ेगा। इस पर कहते है कि यह नही होना है। आप लोग पधारें व्यर्थ क्या बैठे है। विधि ने धनु दमनीय नहीं रचा। इसका अर्थ यही है कि ब्रह्मदेव ने कन्या का व्याह ही नही लिखा है होगा कैसे? मेरी प्रतिज्ञा विधि की रेख से कम नही है।

सुकृत जाइ जौ पनु परिहरऊँ। कुअरि कुआरि रहउ का करऊँ ॥
जौ जनत्यौ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होत्यौ न हँसाई ॥३॥

अर्थ यदि प्रण त्याग करूँ तो धर्म जाता है। रह जाय कन्या क्वारी मेरा कोई वश नही है। यदि मै जाने होता कि पृथ्वी बिना वीर की हो गई है तो प्रण करके मैं अपने को उपहास का पात्र न बनाता।

व्याख्या सत्य मूल सब सुकृत सोहाये। प्रण त्याग से सत्य का त्याग होगा। अत निर्मूल होकर सब पुण्य नष्ट हो जायँगे। मैं सुकृत नही छोड सकता। चाहे कन्या क्वारी रह जाय। सुकृत छोडना मेरे वश के बाहर की बात है राजा जनकजी ही चक्रवर्ती जी के समकक्ष सत्यसन्ध हैं। मुझे धारणा थी कि पृथ्वी शून्य नही है कोई वीर होगा ही। धनुपभङ्ग प्रण वीर के लिए ही किया जाता है। पृथ्वी वीर विहीन है। इसलिए मैं उपहास का पात्र हो गया। नही तो सभी ने धनुप-भङ्ग सम्भव समझा था। इसीलिए आये भी थे। इसी भाँति मैंने भी सम्भव समझ कर प्रतिज्ञा की थी।

जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी ॥
माखे लखनु कुटिल भै भौहे। रदपट फरकत नयन रिसौहे ॥४॥

अर्थ राजा जनक की बात सुनकर सब नर नारी जानकी को देखकर दु खित हुए। पर लक्ष्मणजी को क्रोध हुआ। उनकी भौहे टेढी हुईं। होठ फडकने लगे। आँखो से क्रोध झलकने लगा।

व्याख्या सब नर नारी धनुष न टूटने से दु खी नही हुए थे। जनकजी की बात सुनकर दु खी हो गये। वे सब समझते थे कि धनुष न टूटने से व्याह न रुकेगा केवल राजाओ का झझट दूर हो जायगा। फिर जनकजी जिसे चाहेगे उससे व्याह कर देगे। पर अब उनकी बातें सुनकर जनकजी की ओर देखा और दुखी हुए कि ऐसी कन्या बिना व्याहे रह जायगी। भारतवर्ष म अन्धी कानी लँगडी लूली सभी कन्याओ का व्याह हो ही जाता है। लडके भले ही क्वारे रह जाँय पर कन्या क्वारी नही रहने पाती। समाजसगठन ही यहाँ का इस प्रकार का है।

अपमान जनित क्रोध को ही माख कहते है। जनकजी के कहने पर किसी को माँख न हुआ। जनक वचन छुए बिरवा लजारू केसे। वीर रहे सकल सकुचि सिर नाइके। वे वीरमानी जो भाटो के कहने पर बिगड उठे थे सकुचकर चुप रह गये। पर लक्ष्मण ने जिन पर भाटो के कहने का कोई प्रभाव नही पडा था जनकजी के वीर विहीन मही मैं जानी कहने पर अपमान माना। उनकी भौहे टेढी हुई। होठ फडकने लगे। आँखें लाल हो उठी। रौद्ररस का आविर्भाव हुआ। अनुभाव प्रकट हुए। यथा भृकुटि कुटिल अरु अरुन दृग अधर फरक अनुभाव। गर्व विकलता चपलता ये सचारी भाव। रदपट फरकने का भाव यह है कि कुछ कहा चाहते हैं।

दो कहि न सकत रघुवीर डर, लगे वचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु, बोले गिरा प्रमान ॥२५२॥

अर्थ रामजी के डर से कह नहीं सकते। पर वचन बाण की भाँति लगे। रामजी के चरण कमलो मे सिर झुकाकर प्रमाण बात बोले।

व्याख्या जनकजी पर रामजी की बडी श्रद्धा है। अत उनके विरुद्ध बोलने म रामजी का डर है। जनकजी का डर कुछ भी नही कि उनके राज्य मे आकर उनके विरुद्ध कैसे बोले। पहिले विकलता सञ्चारी कहते है। जनक के वचन बाण की भाँति लगे। रामजी का अपमान लक्ष्मणजी सहन नही कर सकते। अब चपलता सञ्चारी कहते हैं। रामजी के चरणकमलो में सिर नवाकर बोले। लक्ष्मणजी क्रोध म भी अप्रमाण बात नही बोलते। इसलिए गिरा प्रमाण कहा।

रघुबसिन्ह महु जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई ॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मनि जानी ॥१॥

अर्थ रघुवशियो म से जहाँ कोई होता है उस समाज मे ऐसा अनुचित कोई नही कह सकता जैसा जनक ने कहा और वे जानते है कि यहाँ रघुकुल मणि विराजमान है फिर भी ऐसी बात बोल गये।

व्याख्या : रघुवंशी मात्र वीर है। उनकी पीठ शत्रु नही देख सकता। अत उनके सामने वीर विहीन मही कहने का किसी को अधिकार नहीं। कहने पर रघुवशी अपनी वीरता प्रकट करता है। इस अनुचित को नही सहता। जनकजी जानबूझकर कि इस समाज मे रघुकुलमणि विद्यमान है ऐसी बात बोल गये। मुनिजी ने मेरे सामने परिचय दिया। रघुकुल मनि दसरथ के जाये। मख राखेउ सब साखि जग जिते असुर सग्राम। बिना जाने कोई साधारण व्यक्ति कुछ कह बैठे यह और बात है। राजा जनक ऐसे प्रमाणिक पुरुष रघुकुलमणि की उपस्थिति जानते हुए ऐसी बात इतने बडे राजसमाज मे कही। यह कदापि सहन योग्य नही है।

सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहौ सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौ तुम्हारि अनुसासनि पावौ। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौ ॥२॥

अर्थ : सूर्यकुलरूपी कमल के सूर्य ! सुनो यह मेरी सत्योक्ति है गर्वोक्ति नही है। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ तो गेंद की भाँति ब्रह्माण्ड उठा लूँ।

व्याख्या : भानुकुल पंकज भानू ! सबोधन का यह भाव है कि भानु के पराक्रम को कौन कह सकता है। कमल के पराक्रम के सामने ही यह धनुष कुछ नही है। जिस कमलकुल के आप भानु हैं उसी का मैं कमल हूँ। सब लोग कमल का पराक्रम देखें। भानु को पराक्रम दिखाने की आवश्यक्ता नही। यदि आपकी आज्ञा हो तो यह धनुप क्या है। इस ब्रह्माण्ड को गेंद की भाँति उठा लूँ। आज्ञा पाऊँ कहने का भाव यह कि आज्ञाकारी का किया हुआ आज्ञादाता का किया हुआ माना जाता है। इसलिए इस अवसर पर जब धनुप उठाने पर जानकी के वरण की समस्या है आपकी आज्ञा परमावश्यक है। यथा : मेरो अनुचित न कहत लरिकाई बस पन परिमित और भाँति सुनि गई है। नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढाय चाप देतो पै देखाइ बल फल पाप मई है। चढाने का अर्थ उठाकर सिर पर रखना जैसे फूल चढाना।

काँचे घट जिमि डारौ फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाकु पुराना ॥३॥

अर्थ : और उसे : कच्चे घडे की भाँति फोड डालूँ। हे भगवन् ! आपके प्रताप की महिमा से मेरु को मूली की भाँति तोड सकता हूँ। यह विचारा पुराना पिनाक है क्या ?

व्याख्या . ब्रह्माण्ड के उठाने मे परिश्रम नही है। इसलिए गेंद की उपमा देते हैं। ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक सिर जिमि रज कनी। गेंद फोडने की वस्तु नही है। अत फोडने के लिए कच्ची मिट्टी के घट से उपमित करते हैं। कच्ची मिट्टी का घडा हाथ से दबाने से फूट जाता है। ब्रह्माण्ड भी कच्ची मिट्टी का बना है। दबाते ही फूटेगा। जनकजी ने दो बातें कही। रहेउ चढाउब तोरब भाई।

उठाने के विषय में कहकर अब तोड़ने के विषय में कहते हैं कि मेरु पर्वत को मूली की भाँति तोड़ दूँ। अपने बल से नहीं। वह बल भी आपका दिया हुआ है। यथा ' जेहि बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन। इसलिए कहते हैं आपके प्रताप की महिमा से यह बिचारा सड़ा गला पुराना युगान्तर का धनुष क्या वस्तु है। भगवन् सम्बोधन से तात्पर्य है कि समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री और ज्ञान वैराग्य तो आप में है। अन्य जीव तो उसके लेशमात्र से अपना उपजीवन करते है।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं विलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥४॥

अर्थ हे नाथ! ऐसा जानकर आज्ञा हो। मैं कौतुक करता हूँ उसे भी देख लीजिये। कमल की नाल की भाँति धनुष को चढ़ाऊँ और सौ योजन लेकर दौड़ जाऊँ।

व्याख्या यह मनमें समझ लीजिये कि लक्ष्मण मेरे प्रताप की महिमा द्वारा कार्य करता है। उठावेगा फोड़ेगा और तोड़ेगा आपका प्रताप। लक्ष्मण तो निमित्त-मात्र होगा। अब आज्ञा हो कि तीनो मे कौन काम करूं? ब्रह्माण्ड को उठाऊँ कि फोड़ दूँ कि मेरु को तोड़ूँ? मेरे लिए कौतुक है। उसे देख लीजिये। अब चढ़ाने के विषय मे कहते हैं इस सड़े गले पुराने धनुष मे क्या रक्खा है। इसे तो कमलनाल की भाँति चढा दूँ। भाव यह कि कमलनाल आप ही झुका पड़ता है। उसके चढ़ाने म कौन परिश्रम है। तिल भर धनुष हिलाने के लिए जनक लालायित है तो इसे लेकर सौ योजन दौड़ आऊँ। अब रह गया तोड़ना सो

दो. तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौ न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥२५३॥

अर्थ हे नाथ! आपके प्रताप के बल से गोबरछत्ते के डंठल की भाँति तोड़ डालूँ। यदि न करूँ तो प्रभु के चरण की शपथ करके कहता हूँ फिर हाथ से धनुष और तरकस न उठाऊँगा।

व्याख्या गोबरछत्ता छूते ही टूटता है। सो यह धनुष छूते ही टूटेगा। यदि न कर सकूँ तो धनुष और तरकस फिर न धारण करूँगा। अत वीरता का बाना छोड़ दूँगा। विश्वास दिलाने के लिए प्रभु चरण की शपथ लेते हैं। क्योंकि इसे तोड़ना नही है। ब्रह्माण्ड उठाने, फोड़ने, मेरु तोड़ने के विषय मे शपथ नहीं लेते उसे कर दिखाने के लिए प्रस्तुत हैं। केवल आज्ञा की देर है। पर धनुष को छूना नहीं है। अत अपने मे ऐसा सामर्थ्य होने की शपथ लेते है। आपके लिए इसको तोड़ना क्या है। आप भानुकुलभानु हैं। अनायासेन चापरूपी अन्धकार दूर कीजिये। यथा नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी। उदय भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा। जो पहिले कहा था वही समय उपस्थित है।

लपन सकोप वचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरखु जनक सकुचाने ॥१॥

अर्थ : ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोधयुक्त वचन बोले कि पृथ्वी डोल उठी। दिग्गज हिल गये। सभी लोक सब राजा डर गये। सीताजी के मनमे हर्प हुआ और जनकजी सकुचित हो गये।

व्याख्या : सकोप वचन तो राजा जनक भी बोले। यथा : बोले वचन रोप जनु साने। पर उसका प्रभाव इतना ही हुआ कि नरनारि दु खी हो गये। लक्ष्मणजी को क्रोध आगया। परन्तु लक्ष्मणजी का क्रोध आना दूसरी बात है। इनके सकोप वचन का प्रभाव सृष्टि के अधिकारियों पर पडता है। यथा : सभय लोक सब लोक-पति चाहत भभरि भगान। जो कहा कि कदुक इव ब्रह्माण्ड उठावो। काचे घट जिमि डारौं फोरी तो पृथ्वी डगमग करने लगी। क्योकि क्रोध मे भी ये अप्रमाण नही वोलते। यथा : अति सरोप बोले लपन लखि सुनि सपथ प्रमान। यहाँ भी नाइ रामपद कमल सिर बोले गिरा प्रमान। दिग्गज हिल उठे कि इनके क्रोध करने पर हम पृथ्वी को न सँभाल सकेगे। सब लोक लोकप डर उठे। क्योकि केवल पृथ्वी को फोड़ने को नही ब्रह्माण्ड फोडने को कह रहे हैं। तव तो किसी की रक्षा नही है। अथवा पृथ्वी ही ऐसी डगमगाई कि दिग्गज स्थिर न रह सके। पृथ्वी ही सवकी आधार है। अतः सकल लोक और सव भूप भी डर गये। श्रीरामजी के प्रताप की महिमा का प्रत्यक्ष अनुभव करके सीताजी को हर्प हुआ। अपने वचन के अनुचित प्रमाणित हो जाने से जनकजी सङ्कुचित हुए। लक्ष्मणजी के बोलते ही भूमि के डगमगाने से प्रमाण मिल गया।

गुर रघुपति सब मुनि मनमांही। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाही ॥
सयनहि रघुपति लपन निवारे। प्रेम समेत निकट वैठारे ॥२॥

अर्थ : गुरुजी, रामजी तथा सब मुनिलोग प्रसन्न हुए। बार बार पुलक हो रहा है। इङ्गित मात्र से रामजी ने लक्ष्मणजी को रोका और प्रेम के सहित निकट बैठाया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को अप्रतिम तेजस्विता, अमोघ वीर्य, अलौकिक विवेक तथा अवसरप्राप्त क्रोध देखकर गुरुजी : विश्वामित्र रामजी तथा मुनिगण मन ही मन आनन्दित हो उठे और लक्ष्मणजी की प्रगाढ भक्ति का विचार करके सबको बार बार पुलकावली उठ रही है। जनकजी के सङ्कोच को देखकर सबने अपना हर्प छिपाया। अतः मनमाहि मुदित भये लिखते हैं। लक्ष्मणजी के इस बढ़े हुए क्रोध को रोकने के लिए रामजी का इङ्गित ही यथेष्ट है। अतः इङ्गित किया कि बैठ जाओ। यहाँ धनुप तोड़ना विवाह करना एक बात है। बिना बड़े को आज्ञा विवाह के लिए स्वय अग्रसर होना ठीक नही। पिता के स्थान मे मुनिजी हैं। वे कुछ नही कह रहे हैं। अत. बैठ जाओ। यह रोकना अप्रसन्नता का परिणाम नही

है। इसलिए प्रेम के सहित निकट बैठाया। भाव यह कि तुम्हारी इच्छा को मैं पूरी करूँगा।

विश्वामित्रु समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी ॥
उठहु राम भजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा ॥३॥

अर्थ विश्वामित्र ने देखा कि शुभ समय आगया है। तब अति स्नेहमय वाणी बोले : रामजी उठो! और शिव के धनुष को तोड़ो और राजा जनक का परिताप मिटाओ।

व्याख्या : गुरुजी विवाह का मुहूर्त्त देख रहे थे तब तक शुभमुहूर्त भी आ गया। तब अत्यन्त वात्सल्यसूचक वचन बोले। राम उठो! इस समय रघुबीर सुजान नही कहा। उसमे इतना रस नही जितना केवल राम सम्बोधन मे है। भवभय भजन नाम प्रतापू। तुम्हारे नाम के प्रताप से भवभय भङ्ग होता है। अत. भवचाप को तुम भङ्ग करो। महात्मा है। सब लाभो से बडा लाभ जनक राजा ऐसे सन्त का परिताप मेटना देख रहे है एव जनकजी की भी निर्दोपता द्योतित करते हैं कि अति परिताप से विकल होकर उन्होने वीरविहीन मही कहा। किसी को अपमानित करने का उनका लक्ष्य नही था। मेरी आज्ञा के प्रतीक्षा मे लक्ष्मणजी के इतना कहने पर भी नही उठते हो सो मैं आज्ञा देता हूँ। जनकजी के परिताप के मिटाने को लक्ष्य मे रखकर धनुप तोडो। शिवजी का धनुप तोड़ने की आज्ञा देकर सारा प्रातिभाव्य . जिम्मेदारी मे अपने ऊपर लेता हूँ।

सुनि गुर बचन चरन सिरु नावा। हरपु बिपादु न कछु उर आवा ॥
ठाढे भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृगराजु लजाएँ ॥४॥

अर्थ गुरुजी का वचन सुनकर उनके चरणो मे सिर नवाया। हर्प विपाद कुछ मनमे न आया। सहज स्वभाव से उठकर खडे हुए पर उस उठने के ढङ्ग को देखकर युवा सिंह लज्जित हो जाय।

व्याख्या गुरुजी के वचन सुनकर चरणो मे प्रणाम का भाव यह कि मुझे आज्ञा शिरोधार्य है। और लोगो के अन्य इष्टदेवता थे वे उन्हे प्रणाम करके चले। परन्तु रामजी के इष्ट गुरु थे अत चलने के समय उन्होने उनको प्रणाम किया। धीर है इसलिए हर्प विपाद कुछ भी मनमे न आया। यथा सुख हरखहि जड दु ख बिलखाही। दोउ सम धीर धरहिं मनमाही। कृतकार्यता की आशा से हर्प और कृतकार्य न होने के भय से विपाद के भाव उठते है सो कोई न उठे। स्वभाव से खडे हो जाने मे सिंह का सा ठाट दिखाई पड़ता है।

दो. उदित उदयगिरि मच पर, रघुबर बालपतंग।
बिकसे सत सरोज सब, हरपे लोचन भृंग ॥२५४॥

अर्थ · मञ्चरूपी उदयाचल पर रामचन्द्र रूपी बालसूर्य उदय हुए। सन्त-रूपी कमल खिल उठे और सब आँखें भौरे सो हर्पित हो उठो।

व्याख्या : रामजी मञ्च पर थे ही गुरुजी की आज्ञा पाकर खडे हो गये। ऐसी शोभा जैसे उदयाचल पर बालसूर्य की होती है। सूर्य उदय होते ही जिस पर्वत पर दिखाई पड़ते हैं उसे उदयाचल कहते हैं। उस समय सूर्यनारायण अपने तेज को समेटे रहते हैं। क्रमश उसका प्रचार तीव्र होता जाता है। श्रीरामजी के तेज का साक्षात्कार लोक मे यही से हुआ और तब से तीव्र तीव्रतर हो गया। राज्य-सिंहासनारूढ होने पर पूर्ण प्रकाश हुआ। यथा जवते रामप्रताप खगेसा। उदित भएउ अति प्रबल दिनेसा। भाव यह कि बालसूर्य होकर मञ्च पर आये और क्रमश अपने तेज का प्रसार करते करते तरुणसूर्य होकर राजसिंहासन पर बैठे। सूर्य के उदय होने से कमल खिल उठते हैं। इसी भाँति सन्त अर्थात् प्रथम श्रेणीके ज्ञानीभक्त खिल उठे। भौंरे हर्षित होते हैं इसी भाँति पुरवासी तृतीय श्रेणी के अर्थार्थी भक्तो के लोचनभृङ्ग हर्षित हो उठे। सब शब्द का अन्वय देहलीदीपक न्याय से सन्त और लोचन भृग दोनो के साथ होगा। पुरवासी जनकजी का वचन सुनके जानकीजी को देखकर दु खी हुए थे। वे जानकीजी का व्याह चाहते हैं। अत. अर्थार्थी हैं।

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। वचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥१॥

अर्थ . राजाओ की आशारूपी रात जाती रही। उनके वचन रूपी तारो की पक्ति मे भी चमक न रही। अभिमानी राजारूपी कुमुद सिकुड़ गये और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गये।

व्याख्या · राजाओ की आशारूपी रात ने ही अधेरा फैला रक्खा था। वह रात बालसूर्य के उदय होते ही नष्ट हो गई। प्रतीति तो सबके मनमे थी कि रामजी धनुप तोड़ेंगे। यथा · असि प्रतीति सबके मन माही। राम चाप तोरब सक नाही। फिर भी आशा लगाये बैठे थे। आशा बडी वलवती होती है। भीष्म के मारे जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर और महाबली कर्ण के मारे जाने पर महाभारत की लडाई मे कौरव लोगो की आशा गई नही। शल्य को सेनापति बनाकर हर्ष मनाया कि ये पाण्डवो को जीतेंगे। यथा . हते भीष्मे हते द्रोणे हते कर्णे महाबले। आशा बलवती राजन् शल्यो जेत्स्यति पाण्डवान्। अरुणोदय हो गया। रामजी के आगमन का समाचार पाया। इससे आशारात्रि क्षीण हो गई थी। पर मञ्च पर सूर्योदय होते ही आशा रात्रि जाती रही। सब राजा निराश हो गये। अरुणोदय होने पर भी कुछ तारे टिमटिमाते रहते हैं। इसी भाँति कुछ राजा शेखी बघारते थे। पर प्रभु ने उठ खडे होने पर उनकी जिह्वा भी स्तम्भित हो गई जिस भाँति सूर्योदय होते ही तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं।

सबुइ सुमन विकसत रवि निकसत कुमुद विपिन बिलखाइ। इसी भाँति कुमुदरूपी अभिमानी राजा जो बंदियो की वाणी सुनकर बिगड उठे थे। यथा : भटमानी अतिसय मन माखे। सङ्कुचित हो गये कि हमारा उठाया जो न उठा उसे

एक लडका उठाने को तैयार है। सूर्योदय होने पर उल्लुओ को सूझता नही इसलिए वे छिप जाते है। इसी भाँति कपटी राजाओ को भी कुछ सूझता ही नही कि अब हम क्या कहे। सबके निरस्त होने पर ये खडे हुए हैं। कहने की जगह भी नही रह गई कि इन्होने जल्दी कर दी नही तो मैं तोड़ता अत. वे छिप गये।

भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरपहि सुमन जनावहि सेवा ॥
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा ॥२॥

अर्थ : मुनि और देवता रूपी चकवा शोकरहित हो गये। फूल बरसाते हैं और सेवा जनाते है। गुरुजी की चरण वन्दना करके अनुराग के सहित रामजी ने मुनियो से आज्ञा माँगी।

व्याख्या · सूर्य के उदय होने पर चकवा का शोक जाता रहता है। उसकी प्रिया का पता उसे लग जाता है। उसे इष्ट की जिज्ञासा रहती है। अतः जिज्ञासु भक्त को चकवा मानकर द्वितीय श्रेणी में माना है। इसी भाँति इष्टदेव के साक्षात्कार से मुनि और देवता शोकरहित हुए अथवा रावणहन्ता की पहिचान से शोकरहित हुए। इन्हे प्रभु के हाथ से अपनी विपत्ति दूर करानी है। इसलिए अपनी सेवा फूल की वर्षा करके जनाते है। यह दूसरी पुष्पवर्षा प्रभु पर देवता तथा मुनियो द्वारा हुई। सुनि गुरु बचन चरन सिरनावा से प्रसङ्ग छूटा था। उसी को मुनिपद बंदि कहकर उठाते हैं। अनुरागा से भाव यह कि किसी प्रकार की त्वरा या क्षोभ नही है। प्रेम के साथ गुरुजी के चरण की वन्दना की। अन्य राजाओ की भाँति अनुराग रहित वन्दना नही हुई। यथा · चले इष्टदेवन्ह सिर नाई। तत्पश्चात् रामजी ने मुनियो से आज्ञा माँगी। क्योकि ब्रह्मकुल शङ्कररूप है और शङ्कर का ही धनुष हैं। अत मालमालिक से भी एकबार पूछ लेना चाहिए। यथा : मूल धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं। वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहं। मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं। वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम्। गुरुजी तो इस समय पितास्थानीय है। यथा . तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। विवाह की आज्ञा दे दी। धनुष तोडना और जानकी व्याहना एक बात थी पर वह विवाह विना धनुष तोडे सम्भव नही था। इसलिए तोडने की आज्ञा दी। *पर तोडने के पहिले जिसका धनुष है उसकी भी अनुमति लेनी परमावश्यक है।* इसलिए ब्रह्मकुलरूपी शङ्कर से अनुमति चाही। गुरुजी ने फूल लाने की आज्ञा दे दी। फिर भी इस बात की आवश्यकता पडी कि माली से पहिले पूछ लिया जाय तब फूल तोड़ें। *यथा : चहुँदिसि चितय पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन।*

सहजहि चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु वर कुंजर गामी ॥
चलत राम सब पुर नरनारी। पुलक पूरि तन भये सुखारी ॥३॥

अर्थ सम्पूर्ण जगत् के स्वामी स्वभाव से ही चले। सुन्दर मत्तहाथी की सी

उनकी चाल थी। राम के चलते ही सब पुर के नर नारी सुखी हो गये। उन्हे सम्पूर्ण शरीर मे पुलक हो गया।

व्याख्या . छोटे छोटे खण्डो के राजा थे इसलिए आकुल होकर चले थे। रामजी सकल जग के स्वामी हैं। अत इन्हे आकुलता नही है। स्वभाव से चल रहे हैं। जैसे सुन्दर मतवाला हाथी चले वैसी चाल इनकी स्वाभाविक है। जनकजी के वचन से विचारे पुर नरनारी दु खी हो गये थे। यथा जनक वचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहि भये दुखारी। सो अब रामजी के चलते ही सुखी हो गये। इच्छा प्रबल है कि रामजी धनुप तोडें। ऐसे सुखी हुए कि उनका शरीर पुलक से भर उठा।

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जो कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाई। तोरहुँ रामु गनेस गुसाई॥४॥

अर्थ · उन्होने देवता पितरो की वन्दना की और अपने पुण्य को सँभाला कि हमारे पुण्य का जो कुछ भी प्रभाव हो तो हे गणेश गोसाईं। शिवजी के धनुप को कमल की नाल की भाँति रामजी तोड डालें।

व्याख्या . दिव्य सहायता देवता और पितर की ही होती है। पितर शीघ्र प्रसन्न होते हैं इसलिए पहिले पितरो की वन्दना की और अपने सब पुण्यो को सँभाला। सँभालना स्मरण करने के अर्थ मे अनेकश प्रयुक्त है। यथा : बार बार रघुवीर सँभारी। सँभारि श्री रघुवीर धीर। अपने सब पुण्यो का फल 'गणेशजी से चाहते हैं। क्योकि ये वरदायक देव हैं स्मरण मात्र से सिद्धि देते है। अभिलाषा यही कि शिवधनुप को रामजी पकज नाल की भाँति तोडे। ये आर्त भक्त हैं : इनकी चौथी श्रेणी है। इनकी उपमा खग नाना से दी हुई है। यथा : कमल कोक मधुकर खग नाना। हरखे सकल निसा अवसाना।

दो. रामहि प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेह बस, बचन कहै बिलखाइ॥२५५॥

अर्थ : रामजी को प्रेम के साथ देखकर सखियो को समीप बुलाकर सीताजी की माता ने प्रेमवश बिलखकर वचन कहा।

व्याख्या : रामजी पर रानियो के सहित जनकजी का प्रेम अवर्णनीय वात्सल्य से भरा हुआ है। यथा ' सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रेम न जाइ बखानी। महाराज को चार रानियाँ थी। उनमे सीताजी की माता का और भी अधिक प्रेम था। रामजी को धनुपभङ्ग के लिए चलते देखकर वह प्रेम उमड पडा। हृदय की बात कहनी थी इसलिए सखियो को निकट बुलाया। इस समय महारानी प्रेमवश हैं। इसलिए बिलखकर वचन कहती हैं।

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहै गुर पाहीं। ए बालक अस हठि भल नाहीं॥१॥

अर्थ · हे सखी ! जो हमारे हितकारी कहलाते है वे भी तमाशा देखनेवाले है। कोई गुरुजी को समझाकर नही कहता कि ये बालक है। ऐसा हठ ठीक नही।

व्याख्या सखियो से कोई बात छिपाई नही जाती। इसलिए उनसे मनकी बात कहती है कि जो हमारे हितचिन्तक कहलाते है आज देखती हूँ कि वे भी तमाशा देख रहे हैं। हितकी भावना उनमे है ही नही। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। उठउ राम भजउ भव चापा। और राम उठ खडे हुए। वे बालक है। उन्हे इतना विचार कहाँ कि यह धनुष मुझसे टूटेगा कि नही। गुरुजी को विचार करना चाहिए था। यदि गुरुजी ने न विचार किया और आज्ञा दे दी तो हमारे हितचिन्तको को तो समझाना चाहिए था कि ऐसा हठ ठीक नही। बच्चे का उठाया धनुष क्या उठेगा ? लाभ कुछ होना नही है केवल मुनिजी का हठ है। यह हँसता हुआ आनन्दमय मुख कृतकार्य न होने से व्यर्थ म्लान हो जायगा और जिनसे धनुष न उठा उन लोगो मे इनकी गिनती हो जायगी। इनको धनुष तोडने के लिए भेजना और यह घोषणा एकही बात है कि ये भी जानकी से विवाह करने के अयोग्य है।

सबसे प्राचीन श्रावणकुञ्ज अयोध्यावाली प्रति मे गुरु पाठ है अन्य सभी प्रतियो मे नृप पाठ है। विचार करने से गुरु पाठ सुसङ्गत प्रतीत होता है। नृप ने जब प्रण कर दिया तब उन्हे धनुपभङ्ग रोकने का क्या अधिकार है। विशेषत लक्ष्मणजी द्वारा इस प्रकार फटकारे जाने पर वे किस मुँह से रोकते ? जनक राजा के लिए हठ का उपालम्भ करना ही हठ है। वे तो इतना होने पर भी विश्वामित्रजी से कहते हैं

जोरिकर कमल निहोरि कहै कौसिक सौ
आयसु भयो रामको सो मेरे दुचितई है।
बान जातुधानपति भूप दीप सातहू के
लोकप विलोकत पिनाकभूमि लई है ॥१॥
जोतिलिंग कथा सुनि, जाके अंत पाए विनु
आए विधि हरि हारि सोई हाल भई है।
आपहु विचारिए निहारिए सभा की गति
वेद मरजाद मानौ हेतुवाद हई है ॥२॥
इन्हके जितौंह मन, सोभा अधिकानी तन
मुखन की सुखमा सुखद सरसई है।
रावरो भरोसो बल, कै है केऊ कियोछल
कैं धो कुल को प्रभाव कैं धो लरिकई है ॥३॥

राजा स्वय गुरुजी की आज्ञा को उचित नही समझ रहे है। अत न राजा का हठ है और न उन्हे उपालम्भ देना बन सकता है। फलत नृप पाठ असगत है।

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुअर कर देही। बाल मराल कि मदर लेही ॥२॥

अर्थ रावण और बाणासुर ने धनुष को छूआ तक नही। सब राजा दर्प करके हार गये। उस धनुष को राजकुँवर के हाथ मे देते हैं। हस का बच्चा क्या पहाड उठावेगा।

व्याख्या · इस समय सुभट शिरोमणि दो है · रावण और बाणासुर। ये कैलास और मेरु उठानेवाले धनुष के जौहरी है। इन्होने धनुष को छूआ तक नही। जान गये कि इसके छूने मे अप्रतिष्ठा है और सभी राजा घमण्ड करके हार गये। अत सिद्ध हो गया कि यह धनुष टूटने योग्य नही। ये तो प्रौढ भी नही अभी बच्चे हैं। बाल मरालन के कल जोटा। दर्शनीय है। भारी पराक्रम की आशा भी इनसे नही की जा सकती। जिस भाँति हस के बच्चे से मन्दर जो देवासुर से वहन न किया जा सका के उठाने की आशा नही की जाती।

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कहि जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवत लघु गनिअ न रानी॥३॥

अर्थ राजा का सयानापन सब समाप्त हो गया। सखि! ब्रह्मा की गतिविधि न कही जाती है न जानी जाती है। चतुर सखी मृदु बानी बोली। हे रानी! तेजस्वी को छोटा नही गिनना चाहिए। जहाँ कछु पाठ है वहाँ अर्थ करना होगा कि कुछ जानी नही जाती।

व्याख्या : महाराज परम चतुर है। जहाँ मन्त्रिया की बुद्धि काम नही करती वहाँ महाराज अपनी बुद्धि से काम लेते हैं। परन्तु यहाँ तो उनका सयानापन सब धूल मे मिल गया। ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठे कि लडकी कुँआरी ही रहा चाहती है। ऐसी बात बोल बैठे कि बच्चे से सही नही गई और उसके बडे भाई को धनुप तोडने जाना पड रहा है। ब्रह्मदेव की गतिविधि न कही जा सकती है और न जानी जाती है कि इतने बडे विवेकी होकर इस समय इनका विवेक क्या हो गया है? इनको स्वय गुरुजी से समझाकर कहना चाहिए था। पर यदि वे नही कहते हैं तो हितचिन्तकों को तो कहना चाहिए। जिस समय रानी के मन मे यह भाव आया उसी समय महाराज के मनमे भी वही भाव उठा। उन्होने गुरुजी से निवेदन किया। पूरा प्रसङ्ग गीतावली मे देखने योग्य है कि महाराज के निवेदन पर गुरुजी ने क्या कहा। स्वय रामजी ने क्या कहा सक्षेप मे यहाँ दिये देता हूँ :

इस पर कहि साधु साधु गाधिसुवन सराहे राउ
महाराज जानि जिय ठीक भली दई है।
कहैं गाधिनदन मुदित रघुनदन सो
नृपगति अगह गिरा न जाति गही है॥
देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम
साँचे तिरहुतनाथ साखी देत मही है।
रागऊ विराग भोग जोग जोगवत मन
जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है॥

ताते न तरनि ते, न सीरे सुधाकरहू ते
सहज समाधि निरुपाधि निरबही है।
ऐसेऊ अगाध बोध रावरे सनेह बस
विकल विलोकत दुचितई सही है॥

इसपर रामजी ने कहा .

रिपिराज राजा आजु जनक समान को।
आपु एहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत
रागी औ विरागी बड भागी ऐसो आन को॥
भूमि भोग करत अनुभवत जोग सुख
मुनिमन अगम अलख गति जान को।
गुरु हर पद नेह गेह वसि भो विदेह
अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को॥
कहनि रहनि एक विरत विवेक नीति
वेद वुध समत पथीन निर्वान को।
गाँठि विनु गुनकी कठिन जड चेतन की
छोरी अनायास साधु सोधक अपान को॥
सुनि रघुवीर की वचन रचना की रीति
भयो मिथिलेश मानो दीपक विहान को।
मिट्यो महा मोह जी को छूट्यौ पोच सोच सी को
जान्यो अवतार भयो पुरुप पुरान को॥

इतना सवाद होने पर तव रामजी गये।

कहँ कुभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजसु सकल संसारा॥
रवि मडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥४॥

अर्थ कहाँ कुम्भ से उत्पन्न अगस्त्यजी और कहाँ अपार समुद्र। पर उन्होंने सोख लिया। सम्पूर्ण ससार मे सुयश व्याप्त हुआ। सूर्य का मण्डल देखने मे छोटा है पर उसके उदय से तीनो लोक का अन्धकार जाता रहता है।

व्याख्या सखी का कार्य शिक्षा देना है। सो वह शोकापनोदन करती हुई बोलती है। बडी चतुर है। युक्ति युक्त बात उदाहरण देकर समझाती है कि आकार देखकर पराक्रम का निर्णय नही हो सकता। छोटे आकारवाला तेजस्वी हो तो वही बडा है। ये बालक तो हैं पर हैं तेजस्वी। उदाहरण देती है। अगस्त्य नाम न देकर कुम्भज कहती हैं। कुम्भ दिनरात कूप से जल निकाला करता है। पर पार नही पाता। उस कुम्भ से उत्पन्न छोटे आकार के मुनि समुद्र सोख गये। ससार मे उनका यश व्याप्त है। कहँ कुभज कहँ सिन्धु : भाव यह कि दोनो मे कोई समता नही। एक अति अल्प और दूसरे का पारावार नही। कार्य सदा कारण से अल्प ही होता है। बात यह थी कि कुम्भज तेजस्वी थे। इसलिए अपार समुद्र को

सोख लिया। इतना बडा पराक्रम किया। ये भी नृपकुलोत्पन्न होकर तेजस्वी होने के कारण अदमनीय धनुष का दमन करेंगे।

दूसरा उदाहरण देती है। सूर्य हैं बहुत बडे परन्तु देखने मे छोटे लगते है। प्रताप इतना बडा है कि वे उदय हो जाते हैं। स्वय कुछ भी नही करते। केवल उनके तेज से तीनो लोक का तम दूर होता है। इसी भाँति ये राजकुमार वस्तुत बहुत बडे हैं पर देखने मे छोटे मालूम होते हैं। इनके तेज से चापतम का भङ्ग होगा। इन्हे कोई आयास न करना होगा।

दो. मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्व॥२५६॥

अर्थ तीसरा उदाहरण देती हैं। मन्त्र बहुत छोटा है पर उसके वश मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता हैं। महामत्त गजराज को छोटा सा अङ्कुश वश कर लेता है।

व्याख्या बहुत छोटा सा मन्त्र एकाक्षर प्रणव है। कहा गया है यही अक्षर ब्रह्म है। यही अक्षर परब्रह्म है। इसी अक्षर को जानकर जो जो जैसी इच्छा करता है उसे उसी की प्राप्ति होती है। यथा एतदेवाक्षर ब्रह्म एतदेवाक्षर परम्। एतदेवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्। श्रुति कहती है कि यह सब प्रणवरूप है। भूत भविष्यत् वर्तमान सब उसी के उपव्याख्यान हैं जो तीनो कालो से अतीत है। वह भी प्रणवरूपी है। उस प्रणव की पहिली मात्रा के वाच्य विष्णु दूसरी के ब्रह्मा और तीसरी के शिव हैं। अर्धमात्रा मे वाच्य साक्षात् ब्रह्म है। अत सभी प्रणव के वश मे हैं और ये साक्षात् प्रणवरूप है ॐ यो ह वै श्री रामचन्द्र स भगवान् अद्वैतपरमानन्द आत्मा यश्चोङ्कार भूर्भुव स्व तस्मै वै नमो नम। इनके वश म विधिहरिहर हैं। ये शिवचाप का भङ्ग करेंगे।

चौथा उदाहरण देती है महामत्त गजराज कितना दीर्घाकार और कितना शक्तिशाली है। उसके सामने छोटा सा जड अकुश क्या है पर वह तेजस्वी है। महामत्त गजराज को जिस भाँति चाहता है उठाता बिठाता है इसी भाँति ये बहुत छोटे होने पर भी इस दमनीय चाप को वश करेंगे। जैसे चाहेंगे, उठावेंगे, चढावेंगे, और तोडेंगे।

काम कुसुम धनु सायक[1] लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देवि तजिअ संसउ अस जानी। भंजब धनुषु राम सुनु रानी॥१॥

अर्थ काम ने फूल का धनुष हाथ मे लिये हुए सारे ससार को अपने वश म कर रखा है। हे रानी! ऐसा समझकर आप सशय का परित्याग कीजिये। रानी! सुनो रामजी धनुष तोडेंगे।

---

१ यहाँ विभावना द्वितीय है।

व्याख्या : पट्टाभिषिक्ता महिषी को देवी कहते है। सीताजी को जनकजी ने इन्ही को दिया था। अत: सीताजी की माँ यही कहलाती है। सखी इन्ही की बातों का जवाब देती हैं। इसलिए देवि ! सम्बोधन देती हैं। पाँचवा उदाहरण देती हैं : फूल के धनुप मे क्या रक्खा है पर उसी को लेकर काम ने ससार को मोहित कर रक्खा है। यथा : हे वरोरु ! है यद्यपि मेरा वाण सरासन फूलो का। सकल सुरासुर को कहता हूँ क्या बूता मझहूलो का। कोई नही जगत् मे ऐसा है समर्थ जो रह जावे मेरे आदेशो के बाहर फिर भी कुछ धीरज पावे। धन्वी तेजस्वी हैं। सबको वश किये हुए हैं। ये भी कुसुम की भाँति मृदु हैं पर तेजस्वी हैं। सबको वश किये हुए हैं। यथा : निज निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस सकल नर नारी। पाँच उदाहरणो का भाव यह कि पञ्च महाभूतो मे तेजस्वी की ही प्रधानता है। धनुप पञ्चमहाभूत के बाहर की वस्तु नही है। अत. इसे निश्चय ही तेजस्वी के वशीभूत होना पडेगा। कहँ कुभज कहँ सिंधु अपारा से रस कहा। रवि मण्डल से रूप कहा। मन्त्र से शब्द कहा। अकुस से स्पर्श कहा। कुसुम धनु से गन्ध कहा।

पाँच उदाहरणो के साथ युक्तियुक्त तर्क उपस्थित करके शिक्षा देती है कि ऐसा जानकर कि तेजस्वी को लघु न समझना चाहिए। सशय को छोड दो। क्योंकि सशय महा दुखद है। सशय सर्प है। इसके दशन से भयानक लहर दुख देनेवाली आती है। निश्चय से सशय दूर होता है। अत निश्चय यह है कि भजव धनुप राम।

सखी वचन सुनि भै परतीती। मिटा विषादु बढी अति प्रीती ॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥२॥

अर्थ सखी का वचन सुनकर विश्वास हुआ। विषाद मिटा। प्रीति अत्यन्त बढी। तब रामजी को देखकर वैदेही सभय हृदय से जिसी किसी से विनय कर रही है।

व्याख्या : सुत की प्रीति प्रतीति मीतकी। बेटे पर प्रीति होती है पर विश्वास तो मित्र का होता है। सखी के वचन से सशय जाता रहा। विश्वास हो गया। विषाद मिटा। अति प्रीति हुई। बिना सम्बन्ध के ही प्रीति थी। अब सम्बन्ध की आशा दृढ होने से अति प्रीति बढी।

रामजी के चलते ही पुर नर नारि का हाल कहकर रानी का हाल कहा। अब वैदेही का हाल कहते हैं। घटना एक साथ ही हुई। पर युगपत् वर्णन नहीं हो सकता। अत क्रम से वर्णन करते है। रामहि बिलोकि अत्यन्त मधुरमूर्ति देखकर पहिले कह आये है रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया। अतिप्रिय के विषय मे चित्त सदा पापशङ्की होता है। विघ्न का भय करता ही रहता है। अत सभय हृदय कहते है। लक्ष्मणजी के वचन सुन चुकी है सुनने से हर्ष भी हुआ प्रभाव भी देख लिया कि पृथ्वी काँप उठी। उनके स्वामीरूप बडे भाई धनुपभङ्ग के लिए उठे हैं। भय का कोई कारण नही है पर रामजी अति प्रिय है। अत उनके

विषय म शङ्का हो रही है। आर्त हो गई हैं। अत सभय हृदय से जिसी किमी से विनय कर रही हैं। भाव यह कि आर्त विचारकर काम नहीं करता। योग्य से भी विनय करता है अयोग्य से भी विनय करता है। इसी भाँति जानकीजी समर्थ देवताओं से भी विनय करती हैं और जड धनुष जो स्वय टूटने को रक्खा है से भी विनय करती हैं।

मनही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई ॥३॥

अर्थ व्याकुल हुई मन मे ही मना रही है कि हे महेश भवानी! प्रसन्न होओ। अपनी सेवा को सुफल करो और कृपा करके धनुष का भारीपन हरण कर लो।

व्याख्या भगवती जानकीजी सदा गौरी गणपति और गिरीश की सेवा पूजा किया करती थी। सो महेश भवानी से विनय करती हैं कि अपनी सेवकाई को सफल करो। रामचरणप्राप्ति के लिए सेवा की सफलता चाहती है। रामचरण प्राप्ति म चाप का भारीपन बाधक हो रहा है। सो उसके हरण के लिए प्रार्थना कर रही हैं। क्योकि यह बात दैवीशक्ति से ही सम्भव है। भाव यह है कि मेरी सेवकाई उतनी नही है कि जिसके बदले मे मै यह वरदान माँग सकूँ। आप कृपा करके मनोरथ पूर्ण कीजिये।

गननायक वरदायक देवा। आजु लगे कीन्हिउ तुव सेवा ॥
वार वार विनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥४॥

अर्थ हे गणनायक! आप वरदायक देव है। मैंने आज तक तुम्हारी सेवा की है। वार वार विनती सुनकर धनुष के भारीपन को वहुत कम कर दीजिये।

व्याख्या गणेशजी ऐसे वरदायक देवता है कि इनके स्मरण से सिद्धि होती है। यथा जेहि सुमिरत सिधि होइ। इसी से इनकी प्रथम पूजा होती है। जानकीजी का कहना है कि आप तो स्मरण मात्र से सिद्धि देते है और मैने आज तक पूजा की है। भाव यह कि नित्य की भाँति आज भी गणपति गौरी गिरीश की पूजा करके तब रङ्गभूमि मे आई हूँ। सेवक का मनोरथ सुस्वामी विना कहे पूर्ण करते हैं और मैं तो वार वार विनती कर रही हूँ। नगरवासी तो मनाते हैं तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहु राम गनेस गोसाईं। पर भगवती जानकीजी चाप की गुरुता को ही थोडी कर देने की प्रार्थना करती है। कम से कम जितने मे अपना मनोरथ सिद्ध हो जाय उतना ही माँगती हैं। जानती हैं कि उठा लेने से भी रामजी की प्राप्ति सम्भव है। जनकजी ने कहा था रह्यौ चढाउव तोरव भाई। तिल भर भूमि न सकेउ छडाई। भाव यह कि यदि उठा भी लेते तो भी विचार के लिए अवसर था। अत गुरुता अति थोरी कर देने के लिए गणेशजी से प्रार्थना है अथवा भारीपन हरण के लिए शिव पार्वतीजी से प्रार्थना। फिर भी जो कुछ शेष रह जाय उसे हरण के लिए गणेशजी से प्रार्थना करती हैं।

दो देखि देखि रघुवीर तन, सुर मनाव धरि धीर ।
भरे विलोचन प्रेम जल, पुलकावली मरीर ॥२५७॥

अर्थ रामजी की ओर बार-बार देखकर धैर्य धारण करके देवता मनाती न का जल आँखो मे भरा है और शरीर मे पुलकावली छायी हुई है ।

व्याख्या बार-बार रामजी की ओर देखती है। शोभा देखने से नेत्र तृप्त होते। धैर्य छूटा जा रहा है। इस समय देवता मनाने के लिए भी धैर्य धारण पड रहा है। विश्वास है कि बिना देवबल के ऐसे कार्यो मे सिद्धि नही होती। बल से शिवजी का धनुप नही टूट सकता। अत देवताओ से प्रार्थना कर। प्रेम का ही अनुभाव है। अत नेत्रो मे प्रेमजल है और शरीर मे पुलक है।

निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥१॥

अर्थ अच्छी भाँति से आँख भरकर शोभा देखकर और पिता का प्रण करके फिर मन मे क्षोभ हुआ। अहो ! पिताजी ने दारुण हठ ठान लिया। हानि लाभ का विचार नही कर रहे हैं।

व्याख्या जब से श्रीरामजी रङ्गभूमि मे पधारे है तब से देख रही हैं समीप देखे दोउ भाई। रहे ललकि लोचन निधि पाई। जब वहाँ से चले हैं कट चले आ रहे है। शोभा अधिक सुस्पष्ट होती जा रही है। अत कहते हैं रामहिं बिलोकि वैदेही। सभय हृदय विनवत जेहि तेही। और भी निकट आ तब देखि देखि रघुवीर तन सुर मनाव धरि धीर। अब बहुत सन्निकट तो नीके निरखि नयन भरि सोभा। अब तक दूर दूर से ही साक्षात्कार। निकट आने पर भली भाँति शोभा देखने का अवसर मिला। अत नयन देखना कहा। यह मूर्ति आँख से ओझल न हो। यह भावना उठी। तब बाधा का स्मरण आया और वह पिता का दारुण प्रण था। इससे चित्त म क्षोभ हुआ। भाव यह कि पुष्प वाटिका मे रामजी की नख शिख शोभा से पहिले भी क्षोभ हुआ था। यथा नख सिख निरखि राम की सोभा। र पिता पन मन अति छोभा। अब नयनभर देखने से फिर क्षोभ हुआ। पिता रुण हठ पर खिन्न हो रही हैं। दारुण हठ यही है कि जो व्याहना चाहे उसे तोडना ही होगा। इन्हे समझना चाहिए था कि रामजी को धनुप तोडने के जाने देने मे लाभ कुछ नही। हानि यह होगी कि मधुर मूर्ति मलिन हो ी। इस अद्भुत शोभा मे हानि पहुँचाना कितनी बडी हानि है। कुछ लाभ न समझकर हठ पर ही अडे रह जाना ही हठ की दारुणता है।

त सचय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड अनुचित होई ॥
धनुकुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥२॥

अर्थ सभी मन्त्री हैं। पर समझाता कोई नही। पण्डितो के समाज मे बडा अनुचित हो रहा है। कहाँ वज्र से भी कठोर धनुप और कहाँ ये सुकुमार शरीरवाले श्यामल किशोर।

व्याख्या उचित यह है कि जो जिस कार्य के योग्य हो उसी को उस कार्य मे नियुक्त करे। नितान्त कोमल को शिवधनुप ऐसे कठोर वस्तु के भङ्ग करने के लिए नियुक्त करना घोर अनुचित है। केवल उसकी प्रतिष्ठा भङ्ग करना है। यहाँ पण्डितो के समाज मे ऐसा अनुचित न होना चाहिए। सो यहाँ सभी मन्त्री उपस्थित हैं। कोई शिक्षा नही देता। चाहि का अर्थ से है। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने प्रसिद्ध पद्मावत मे चाहि शब्द का से के अर्थ मे प्रयोग किया है। उसी अनुचित को स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि क्या यह वज्र से भी कठोर धनुप इस श्यामल मृदुगात किशोर से टूटने योग्य है जो इन्हे इस कार्य मे नियुक्त किया जाता है? इसका अर्थ उनकी अप्रतिष्ठा छोडकर और क्या हो सकता है?

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिय हीरा ॥
सकल सभा कै मति भई भोरी। अब मोहि संभु चापगति तोरी ॥३॥

अर्थ हे विधि! मैं किस भाँति हृदय मे धैर्य धारण करूँ? क्या सिरिस के फूल के कण से हीरा वेधा जाता है। सम्पूर्ण सभा की बुद्धि भोरी हो गई। हे शिवजी के धनुप! मुझे तो अब तुम्हारी शरण है।

व्याख्या अविधि से कार्य होते देखकर विधि का स्मरण करती हैं कि आप विधि बतलाइये कि मैं कैसे धैर्य धरूँ। मुझसे यह अनुचित सह्य नही है। लोग कहते हैं कि हीरा वही जो घन चोट ना टूटे। इसी से हीरे की वज्र सज्ञा है। सो यह धनुप हीरा है। जितने बडे घोर कठोर रावण वाणादि सुभट हैं वे ही घन है। इनकी चोट से यह नही टूटा। उसके वेधने के लिए सिरिस के फूल के कण का जो रूई के भी वेधने म असमर्थ है। प्रयोग करना कौन सी बुद्धिमानी है। इन रावण वाणादि के सामने तो ये श्यामल मृदुगात किशोर वस्तुत सिरिस के फूल के कण ही हैं। सो आज इस सभा मे सिरिससुमनकण से हीरा वेधने का प्रयत्न हो रहा है। अत यही कहना पडता है कि सबकी बुद्धि भोरी हो गई। अब तो जो कुछ आशा है सो शम्भुचाप से है। मैं अब उसी के शरण जाती हूँ।

निज जडता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी ॥
अति परिताप सीय मन माँही। लव निमेप जुग सय सम जाँही ॥४॥

अर्थ तुमने अपनी जडता लोगो पर डाल दी। अब रघुपति को देखकर हलके हो जाओ। सीताजी के मन मे बडा परिताप है। निमेप का भी लव अत्यन्त छोटा भाग सौ युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या सीताजी अब धनुप से प्रार्थना करती हैं। जडता म ही गुरुता

। जडपरमाणु जितने ही घनीभूत होते जाते हैं उतनी ही जडता की वृद्धि होती ाती है। सो अपनी जडता लोगो पर डाल दी है तभी तुम्हारे विषय मे सबकी ति भोरी हो गई है। अत तुम अब हलके हो जाओ। रघुपति को देख लो कि ह कितना बोझ उठा सकते हैं। उतने हलके हो जाओ। अथवा जब तुमने अपनी डता लोगों पर डाल दी है तब चेतन होकर रघुपति को देखो और इतने हलके । जाओ जिसमे ये तुम्हे उठा लें। मैं तुमसे टूटने के लिए प्रार्थना नही करती।

दो प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मडल डोल ॥२५८॥

अर्थ प्रभु को देखकर तब पृथ्वी को देखती हैं। चञ्चलनेत्र ऐसे शोभायमान । रहे हैं जैसे चन्द्रमण्डल के डोल मे दो कामदेव रूपी मछलियाँ तैर रही हो।

व्याख्या डोल एक प्रकार का जलपात्र होता है। इसका गोल आकार ता है। मेरे लडकपन तक डोल से पानी कूएँ से खैंचा जाता था। पर अब डोल ी दिखाई पडता। पर धनियो के यहाँ शीशे के डोल अब भी देखे जाते हैं। नमे सुनहली रूपहली छोटी छोटी मछलियाँ छोड दी जाती है। वे नीचे ऊपर ा करती हैं और उनकी वडी शोभा होती है।

भगवती जनकनन्दिनी प्रेम के कारण प्रभु को देखती है और फिर सङ्कोच पृथ्वी की ओर अर्थात् नीचे देखने लगती हैं। इस भाँति जो नेत्र चञ्चल हो रहे । उनकी शोभा कवि कहते है कि मानो चन्द्रमण्डल रूपी डोल मे दो कामदेव मछलियाँ तैर रही हो। कामदेव मीनकेतन हैं। आँखो की उपमा मीन से दी ती है। सुन्दरता के उत्कर्ष के लिए जनकनन्दिनी की आँखो की उपमा मीन-ान के मीन से दी गई और मुख की उपमा चन्द्ररूपी डोल से दी गई। कभी मजी की ओर देखती हैं। कभी नीचे देखती हैं। तो नेत्र की गति वैसी ही हो ो है जो उन मछलियो की होती है। डोल स्थिर रहता है। मछलियाँ ही चलती । इसी भाँति मुख स्थिर है केवल नेत्र चञ्चल है। हम लोगो का भाषाज्ञान बहुत ङ्कुचित है। अत अर्थ करने मे चूक हो जाती है। जहाँ के लोग डोल से अपर-त है। डोल का अर्थ हिंडोला करते हैं। पर पानी के डोल मे ही मछली का ल्ना बन सकता है हिंडोले पर तो उनका छटपटाना ही सम्भव है।

रा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रकट न लाज निसा अवलोकी॥
चन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपिन कर सोना॥१॥

अर्थ वाणीरूपी भौंरी को मुखकमल ने रोक रखा। लाज की रात्रि देखकर । प्रकट नही होती। नेत्रो का जल नेत्रो के कोने मे उसी भाँति रह गया जैसे म कृपण का सोना हो।

व्याख्या गुरुजन लाज समाज वड। सो लज्जा की रात्रि मे कमलपुट बन्द जाते हैं। उनके बन्द हो जाने से भौंरे भी उनमे बन्द हो जाते हैं। जब रात्रि

जाय, सवेरा हो, कमल खिलें तो वे उनमें से निकल सकें। लज्जा के कारण जनकनन्दिनी बोल नहीं सकती। वाणी भौरी के रूप मुखकमल मे बन्द है और मुखकमल लज्जारूपी रात्रि के कारण बन्द है। भाव यह कि वाणी मध्यमा अवस्था तक तो आती है पर लज्जावश वैखरी रूप मे परिणित नही हो सकती। प्रेमाश्रु आँख के कोने मे आगये हैं। पर उन्हे इतने प्रयत्न से रोक रक्खा है कि गिरने नही देती। जिस प्रबल प्रयत्न से परमकृपण अपने सोने को रोके रखता है कदाचित् त्याग नही करता। भाव यह कि परमकृपण को भी देने की इच्छा हो जाती है। सोना हाथ मे ले भी लेता है। पर कृपणता उसकी यही है कि दे नही सकता। बडे प्रयत्न से मनको रोक लेता है। इसी भाँति श्री जनकनन्दिनी की आँखो मे प्रेम के आँसू डबडबा आये। यथा भरे विलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर। यहाँ तक कि आँखो के कोने तक आगये पर उन्हे जहाँ का तहाँ बडे प्रयत्न से रोक रक्खा।

सकुची व्याकुलता बडि जानी। धरि धीरज प्रतीत उर आनी॥
तन मन वचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा॥२॥

अर्थ बडी व्याकुलता समझकर सङ्कुचित हुई। धैर्य धारण करके मनमे विश्वास को स्थान दिया कि तन मन वचन से यदि मेरा प्रण सच्चा है और मेरा मन यदि रघुपति के चरण कमल मे रच गया है।

व्याख्या क्षोभ व्याकुलता म परिणत हुआ और व्याकुलता भी खूब बढी। परन्तु जनकनन्दिनी ने अपने को उस व्याकुलता का द्रष्टा माना। इससे व्याकुलता रुकी सङ्कोच का उदय हुआ। धैर्यधारण की ओर चित्त की वृत्ति गई परन्तु किस विश्वास पर धैर्य धारण किया जाय। विश्वास के लिए मूलभित्ति चाहिए। सो श्रुति ही मूलभित्ति हुई। यद्यत्कामयते तत्तल्लभते जिसकी कामना करे उसकी प्राप्ति होती है। पर कामना सच्ची होनी चाहिए। सो यह विश्वास हुआ कि मनसा वाचा कर्मणा मेरा प्रण सच्चा है। यहाँ रघुपतिपदसरोज म चित्त का रच जाना, लग जाना प्रेम प्रण है। वह चित्त अब दूसरे का नही हो सकता। यथा स्याम सरोज दाम सम सुदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकधर। सो भुजकठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।

तौ भगवान सकल उर वासी। करिहिं मोहि रघुपति कै दासी॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सदेहू॥३॥

अर्थ तो भगवान् सबके हृदय म रहते हैं मुझे रघुपति की दासी बनायगे। जिसका जिसपर सच्चा प्रेम होता है वह उस मिलता है। इसमे कुछ भी सन्देह नही।

व्याख्या ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। ईश्वर सब प्राणियो के हृदय मे रहता है और भाव कुभाव सब जानता है। यथा सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाव कुभाव। अत भगवान् मुझ रघुपति की दासी बनावेंगे। क्योकि वे ही

जान सकते है ि मेरे हृदय का भाव सच्चा है कि नही। भाव यह कि अपनी पुत्री के देने का मुख्य अधिकार पिता को है। वे तो अपनी प्रतिज्ञा से बद्ध हो रहे हैं। कहते हैं कुँवरि कुँआरि रहौ का करहूँ। अत जगत् पिता का भरोसा है कि वे मेरे मनोरथ को पूर्ण करेंगे। जिस भाँति मेरे पिता अपनी प्रतिज्ञा से बँधे हैं उसी भाँति जगत्पिता अपने वचन वेद वाक्य से बँधे है। यहाँ अनुवाद रूप से श्रुति का ही उल्लेख है। जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सदेहू।

प्रभु तन चितै प्रेम पनु ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसे॥४॥

अर्थ प्रभु की ओर देखकर प्रेम पन ठान दिया। कृपानिधान रामजी ने जान लिया। सीताजी की ओर देखकर धनुष को इस भाँति देखा जैसे गरुड छोटे सर्प को देखते हैं।

व्याख्या जिसके विषय म प्रेमप्रण ठानना है वह सम्मुख है। अत उसकी ओर देखकर ठानना स्वाभाविक है। करुणानिधान सुजान ने सब जान लिया। गिरिजा भगवती कह चुकी हैं कि करुना निधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। सीताजी ने रामजी की ओर देखकर प्रेम प्रण ठाना और रामजी ने उनकी ओर देख उस प्रेमप्रण को पूर्ण करना मनम ठाना। अत सीताजी की ओर देखकर धनुष की ओर देखा। भाव यह कि सीता की प्राप्ति मे यह बाधक है। और नरेन्द्रो की भाँति तमकि ताकि तकि नही। यह तो इस भाँति देखते है जैसे गरुड छोटे सँपेल को देखे। गरुड के सामने बडे बडे भुजगेन्द्र कुछ नही हैं सँपेल की क्या गिनती है। वह सँपेल को अति तुच्छ गरुड के सामने दृष्टि से देखते हैं का बापुरो पिनाक पुराना।

दो लषन लखेउ रघुबसमनि, ताकेउ हर कोदड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चाँपि ब्रह्मड॥२५९॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने लखा कि रघुवशमणि ने शिवजी के धनुष की ओर देखा। उनके शरीर म पुलक हो गया। ब्रह्माण्ड को पैर से दबाकर बोल।

व्याख्या जबसे रामजी चले लक्ष्मणजी की दृष्टि उन्ही पर है। अत उन्होने ही लखा कि रामजी ने धनुष की ओर देखा। अब लिया ही चाहते हैं। लक्ष्मणजी का आनन्दातिशय से पुलक हो गया। शिवधनुष तोडने म जिस शक्ति का प्रयोग होगा उससे ब्रह्माण्ड म हल्चल न हो। अत पैर से ब्रह्माण्ड को दबा कर वचन बोल। भाव यह कि ऊपर से म दबाये हुए हूँ नीचे से तुमलोग सँभालना। दूसरी बात यह कि इस समय यदि सीधे अयोध्या से राजसमाज के साथ स्वयवर के लिए रामजी पधारे होते तो वन्दी वलवर्धन के लिए विरद बोलते। लक्ष्मणजी विरद बोल नही सकते। अत शेष कमठादि के सावधान करने के व्याज से वलवर्धक वाक्य बोल। यथा अहि महिधर न लखन कह बलहि बढावन। राम चहत सिव चापहि चपरि चढावन।

दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥१॥

अर्थ : हे दिग्गजगण ! कच्छप शेष और कूर्म धैर्य धारण करो जिसमे यह हिले नही। रामजी शङ्कर का धनुष तोडा चाहते हैं। मेरी आज्ञा को सुनकर सबलोग सावधान हो जाओ।

व्याख्या : पृथ्वी के चार सँभालनेवाले हैं चारो दिशाओं से तो चारो दिग्गज सँभालते है। नीचे से वराह शेप और कच्छप सँभालते हैं। इनको लक्ष्मणजी सावधान करते हैं और आज्ञा देते हैं। लक्ष्मणजी जाग्रत के विभु होने से सकल जगत् के आधार हैं। अर्थात् ब्रह्माण्डमात्र के आधार हैं। शेषो की समष्टि हैं। अत सभी व्यष्टियो पर इनकी आज्ञा चलती है। पृथ्वी को अपने स्थान से च्युति की सम्भावना है। भारी धक्का पहुँचेगा। दिग्गजादि के भी धैर्यच्युति की सम्भावना है। अत धैर्य धारण करके पृथ्वी को सभालने के लिए सावधान करते हैं।

कारण कहते हैं कि रामजी प्रलयकारी देव साक्षात् रुद्र का धनुष तोडना चाहते हैं। सभी वस्तुओ मे ऐसी शक्ति निहित रहती है जिससे उसका स्वरूप बना रहता है। उस वस्तु के विनाश मे उससे अधिक शक्ति का प्रयोग होता है। शिवजी के धनुष मे बडी बलवती शक्ति निहित है। धनुष के टूटने से जब वह छूटेगी तो ब्रह्माण्ड मे उलट पलट कर देगी। राम चहहिं का भाव यह है कि ये उसे तोडही डालगे। यथा : राम कीन्ह चाहैं सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई। अकस्मात् उसके आघात से जगत् का अकल्याण सम्भावित है। पहिले से ही सावधान रहने से उसे सँभाल सकेंगे। इसलिए लक्ष्मणजी सावधान करते हुए आदेश देते हैं। अतिशक्तिशाली पदार्थ का प्रभाव अति क्षुद्र जन्तुओ पर नही पड सकता। उसका प्रभाव उन्ही पर पडता है जो उसके स्पन्दन के अनुभूति के पात्र हो। जैसे हजारो बन्दूको के एक साथ छूटने से जो शब्द होता है उसके स्पन्दन को हमारी श्रवणेन्द्रियाँ सम्यक् रूप से ग्रहण नही कर सकती। अत. हम लोगो को हलकी आवाज सुनाई पडती है। इसी भाँति शिवधनुष भङ्ग का प्रभाव पृथ्वी या ब्रह्माण्ड पर विशेष रूप से पड सकता था मनुष्यो पर उतना नही।

चाप समीप राम जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥२॥

अर्थ : रामजी जब धनुष के पास गये तब स्त्री पुरुषो ने देवता और पुण्यो को मनाया। सबका संशय अज्ञान और मूढ राजाओ का अभिमान।

व्याख्या : ज्यों ही रामजी चले त्योंही नर नारियो ने अपने अपने सुकृत : पुण्य को प्रयोग करने के लिए सभाला। यथा . बदि पितर सुर सुकृत सभारे। अब जब रघुबरजी धनुष के निकट पहुँच गये तो उसका प्रयोग करते हैं। अपने देवता और पुण्य को मनाते हैं कि समय आगया सहाय होइये। क्योंकि उनके मन मे

सशय है कि रामजी से सम्भवत धनुष न टूटे और उत्कट इच्छा है कि रामजी तोडें। इसलिए अत्यन्त कष्ट से उपार्जित पुण्य और तीव्र उपासना से आराधित देवो से काम लेते है।

इस प्रकार १ सबको सशय है और २ रामजी के बलविषयक अज्ञान है। ३ मूढ राजाओ को अभिमान है कि जब हमसे धनुष न टूटा तो कोई इसे तोड नही सकता। देखें कौन तोडता है? इसलिए अपने अपने समाज मे आसन लगाये बैठे हैं।

भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुरमुनिबरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥३॥

अर्थ . ४ परशुरामजी के गर्व का गौरव। ५ सुर और मुनिश्रेष्ठो का कादरपन। ६ सीताजी का सोच ७ जनकजी का पछतावा और ८ रानियो का दारुण दु ख दावानल बनडाढा।

व्याख्या परशुरामजी को बडा भारी गर्व था कि जगत् मे मै ही एक अप्रतिम वीर हूँ। यह धनुष मेरे गुरुजी का है। इसमे यदि कुछ पराक्रम काम कर सकता है तो मेरा ही काम कर सकता है। दूसरो का किया कुछ नही हो सकता। सुर मुनि भयभीत हैं कि यदि रामजी से धनुष न टूटा तो सीताजी से व्याह ही न होगा। फिर रावणबध की कथा ही क्या है? सीताजी को सोच है कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा। विधि केहि भाँति धरौ उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिहि हीरा। जनकजी को पछतावा है कि जौ जनतेउ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि करत्यौं न हँसाई। रानियो को दारुन दु ख है कि सो धनु राजकुअँर कर देही। बाल मराल कि मदर लेही। भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जात न जानी।

सभुचाप बड बोहित पाई। चढे जाइ सब सगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधुअपारू। चहत पार नहिं कोऊ कडहारू॥४॥

अर्थ शिवजी के धनुष को बडे भारी जहाज रूप से पाकर सब सार्थ कम्पनी बनाकर चढे। राम बाहुबलरूपी अपार समुद्र का पार चाहते है। पर कोई कर्णधार नही है।

व्याख्या उपर्युक्त आठो भाव सशय, अज्ञान, अभिमान, गर्व, गरुआई, कदराई, शोक, पछितावा और दारुण दु खदावानल धनुष मे ही केन्द्रित है। इसी बात को रूपकालङ्कार मे कहा जाता है। मानो ये आठो भाव ही वणिक् समाज कम्पनी है। सात से कम की कम्पनी नही होती। इन आठो का लक्ष्य एक है। ये सब अपार रामबाहुबल सिन्धु के पार जाना चाहते है। सिन्धु का तो कही न कही वारपार है ही। पर रामबाहुबल सिन्धु का पार नही है। जिसका पार ही नही है उसका पार कोई कैसे पा सकता है। पर ये असाध्य साधन मे लगे हैं।

सिन्धुपार जाने के लिए जहाज चाहिए सो शिवधनुप को वडा जहाज समझकर चढ गये। समझा कि यह पार पहुँचा देगा। अर्थात् यह रामजी का तोडा न टूटेगा तो हमलोग पार पहुँच जायँगे अर्थात् सशय अज्ञानादिक की स्थिति दृढतर हो जायगी। परन्तु सामान्य पारवाले समुद्र के पार भी जहाज विना कर्णधार के जा नही सकता। कर्णधार ही रक्षक है। यथा कर्णधार तुम अवध जहाजू। सो यहाँ कर्णधार ही नही। इसके स्वामी तो शिवजी थे उनसे यह परित्यक्त ही है। महाराज जनक के यहाँ रक्खा था। वे भी इसका टूटना ही चाहते हैं। अत यह चापरूपी जहाज विना कर्णधार का है। यह राम वाहुवल रूपी सिन्धु मे डूबेगा। पर इस समय तो सशय अज्ञानादि वणिक् समाज का यही आधार है। भाव यह है। कि अलग-अलग लोगो मे इन्ही आठ भावो मे से कोई न कोई काम कर रहा है। पर सबके भावो का आधार एकमात्र धनुप हो रहा है और उसका सघर्प रामबाहुबल रूपी अपारसमुद्र से हुआ ही चाहता है। अत जनता स्तब्ध होकर बडी उत्कण्ठा के साथ इस सघप के परिणाम पर दृष्टि लगाये हैं।

दो राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेखि ॥२६०॥

अर्थ रामजी ने लोगो को देखा मानो चित्र मे लिखे हुए है। कृपा क भवन ने सीताजी को देखकर जाना कि विशेप विकल है।

व्याख्या सबकी भावना एक ही विपय मे केन्द्रित है। इसलिए सब चित्र मे लिखे हुए की भाँति हिलते डोलते नही हैं। चित्र मे लिखे हुए नर-नारि उसी अवस्था म सदा रहते हैं पलक नही मार सकते। यही दशा यहाँ सबकी हा रही है। कृपायतन हैं। अत फिर सीताजी को देखा। यह दूसरी बार का देखना है। निकट आ गये हैं। जान लिया कि इन्हे विशेप विकलता है।

देखी विपुल विकल बैदेही। निमिप विहात कलप सम तेही ॥
तृपित वारि विनु जो तनु त्यागा। मुएँ करै का सुधा तडागा ॥१॥

अर्थ वैदेही को वहुत ही विकल देखा। उन्ह एक निमिप कल्प के समान बीत रहा है। प्यासा विना पानी के जो शरीर छोड दे तब मरने पर जल का तालाव क्या करेगा यहाँ प्रकरणवल से अमृत का अर्थ जल ही करना होगा।

व्याख्या जब रामजी चले तभी सीताजी विकल थी। यथा अति परिताप सीय मन माही। लव निमेप युग सय सम जाही और धनुप के समीप पहुँचने-पहुँचते परिताप ऐसा बढा कि एक निमेप कल्प मालूम होने लगा। छ लव का एक निमेप होता है। अत एक निमेप ६०० युग के बराबर मालूम होता था। चार युगो का एक महायुग होता है। अत १५० महायुगो के तुल्य प्रतीत होता था। अब एक निमेप एक कल्प अर्थात् एक सहस्र महायुगो के समान मालूम होने लगा।

अर्थात् इतनी ही देर मे परिताप की मात्रा पाँच गुना से अधिक बढ गई। दुख की घडी वडी कठिनता से बीतती है।

लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधु वरवारी। रूप बिंदुजल होहिं सुखारी। रूप बिन्दु की प्यासी चातकी यदि प्यास से मर ही गई तो पीछे से अमृत का तालाव क्या करेगा? अमृत का अर्थ जल है। यथा पय कीलालममृत जीवन भुवन वनम्। आगे चलकर धनुप-भङ्ग होने पर कहेगे भी सीय सुखहिं वरनिय केहि भाँती। जिमि चातकी पाइ जल स्वाती।

का वरपा सव कृपी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने॥
अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी॥२॥

अर्थ जव खेती सूख गई तव वर्षा होने ही से क्या? समय चूक जाने पर फिर पछ्ताने से क्या लाभ। ऐसा मन में जानकर प्रभु ने जानकीजी को देखा और प्रीति विशेप देखकर रामजी को पुलक हो गया।

व्याख्या भाव यह कि दशम दशा उपस्थित है। अव खेती सूखा ही चाहती है। यदि कुछ प्राण रहते भी वर्षा हो जाय तो फिर खेती के लहलहा उठने मे देर नही। अत अव देर न होनी चाहिए। इस समय चूकने से अर्थात् कुछ भी देर करने से सीताजी से हाथ धोना ही पडेगा। ऐसा विचार करके तीसरी वार भगवती जनकनन्दिनी की ओर देखा और इस प्रकार की अलौकिक प्रीति देखकर प्रभु को पुलक हो गया। प्रभु करुनानिधान सुजान शील सनेह के जाननेवाले हैं। तीन वार जानकीजी ने देखा था। यथा १ नीके निरखि नयन भरि सोभा २ देखि देखि रघुवीर छवि सुर मनाव धरि धीर और ३ प्रभु तन चितय प्रेम पन ठाना। उधर भरे विलोचन प्रेमजल पुलकावली सरीर। इधर प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी।

गुरहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जव लयऊ। पुनि नभ धनु मडल सम भयऊ॥३॥

अर्थ गुरुजी को मन ही मन प्रणाम किया और अत्यन्त फुरती से धनुप को उठा लिया। जिस समय उठाया तो विजली सी चमक गई। फिर आकाश मे धनुप मण्डलाकार हो गया।

व्याख्या कौशल दिखाने के पूर्व उस गुरु को प्रणाम करना चाहिए जिससे कौशल की प्राप्ति हुई है और ऐसे समय मन से ही प्रणाम सम्भव है। प्रभु ने ऐसी फुरती धनुप के उठाने मे की कि जो लोग चित्र लिखे से हो रहे थे वे भी नही देख पाये। अत्यन्त फुरती की प्रक्रिया मे एक रेखा सी वन जाती है जैसे वनेठी के आग की रेखा वन जाती है उसी भाँति विजली की रेखा सी वन गई। उठाते

किसी ने न देखा। यह देखा कि बिजली सा कुछ चमका। फिर सब किसी ने आकाश मे धनुष को मण्डलाकार देखा।

लेत चढावत खैंचत[1] गाढे। काहु न लखा देख सबु ठाढे॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥४॥

अर्थ लेते चढाते और पटुता से खैंचते हुए किसी ने नही देखा। सब देखते हैं कि रामजी खडे हैं। उसी समय उन्होंने बीच से धनुष को तोड दिया। सम्पूर्ण भुवन मे घोर कठोर ध्वनि भर उठी।

व्याख्या धनुष के उठाने का लाघव कहकर अब चढाने और खैंचने का लाघव कहते हैं। किसी ने कुछ न देखा। सबको मालूम पडा कि रामजी खडे ही हैं। रामजी का झुकना धनुष को उठाना उसपर प्रत्यञ्चा चढाना और उसे पण्डिताई के साथ कसकर खैंचना जिसमे टूट जाय किसी को लखाई ही नही पडा। गाढ का अर्थ पण्डिताई से है। यथा कवहु न मिले सुभट रनगाढे। बाँधे विरद वीर रन गाढे। उसी समय रामजी ने बीच से धनुष को तोड दिया। बीच से तोडने का भाव यह कि कोई यह न कह सके कि धनुष के पतल भाग को तोडा बीच से न तोड सके। जितनी कठोर वस्तु होती है उसके टूटने म वैसी कठिन ध्वनि होती है। धनुष वज्र से भी कठिन था। इसलिए वज्रपात से भी घोर शब्द हुआ। सम्पूर्ण भुवन मे भर गया। घोर से गम्भीर कहा और कठोर से असह्य कहा।

छ भरे भुवन घोर कठोर रव रवि वाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल विकल विचारहीं।
कोदंड खडेउ राम तुलसी जयति वचन उचारही॥

अर्थ घोर कठोर ध्वनि भुवन मे भर गयी। सूर्य के घोडे मार्ग छोडकर चले। दिग्गज चिग्घाडने लगे। पृथ्वी डोल उठी। शेष वराह और कच्छप भी हिल गये। देवता असुर और मुनियो ने कान मूँदा। सब विकल होकर विचरते है कि रामजी ने धनुष तोडा। तुलसीदास जयजयकार कर रहे हैं।

व्याख्या घोर कठोर ध्वनि से सारा भुवन व्याप्त हो गया। सूर्य के घोडे भडककर दूसरी ओर चले। वल न चलने पर दिग्गज चिक्कार करने लगे। लक्ष्मणजी के सावधान करने पर भी पृथ्वी को स्थिर न रख सके। वह डोलने लगी। वही नही उसके आधारभूत वाराह शेष और कच्छप हिलने लगे। जो जो उस शब्द के स्पन्दन ग्रहण करने मे समर्थ थे अर्थात् देवता असुर और मुनि उन्होने अपने कानो को मूँद लिया। शब्द की कठोरता न सह सके विकल हो गये। विचारने

---

१. यहाँ कारक दीपक अलङ्कार है।

लगे कि निश्चय रामजी ने धनुष तोडा। गोस्वामीजी भी उस समय अपनी मानसिक उपस्थिति मानकर कहते है कि तुलसीदास जयजयकार करने लगा। इसी बात को श्री गोस्वामीजी ने बडी सुन्दरता से प्रकट किया है।

छप्पय डिगति उर्वि अति गुर्वि सब्व पब्वय समुद्र सर।
ब्याल बधिर तेहि काल विकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयद लरखरत परत दसकठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिम भानु यान सघटित परस्पर॥
चौंके विरचि सकर सहित कोल कमठ अहि कल्मल्यो।
ब्रह्माड खड कियो चड ध्वनि जबहि राम सिवधनु दल्यो॥

दो सकर चापु जहाजु, सागरु रघुबर बाहुबल।
बूड सो सकल समाजु, चढा जो प्रथमहि मोहबस ॥२६१॥

अर्थ शकर चाप रूपी जहाज रघुवरबाहुबल सागर मे सब समाज के सहित जो पहिले मोहवश उसपर चढा था डूब गया।

व्याख्या राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहि कोउ कडहारू से प्रसङ्ग छोडा था। अब उसी प्रसङ्ग का उपसहार करते है सकर चापु जहाजु सागरु रघुबर बाहुबल। रामचन्द्र का बाहुबल अपार समुद्र है इसका पारावार ही नहीं। कर्णधार से सनाथ जहाज भी यहाँ कृतकार्य नही हो सकता था। यह चाप तो कर्णधार रहित था। रामबाहुबलरूपी समुद्र के पहिले थपेडे म ही टूट गया। जो समाज इसपर कर्णधार रहित जहाज पर मोहवश चढा था डूब मरा। सारी कम्पनी समुद्र तल मे लीन हो गई। इस दोहा पर बडे तर्क वितर्क उठते है। अत जो पहिले मोहवश चढे थे और जहाज के टूटने पर डूब मरे उनकी तालिका जैसी ग्रन्थकार ने दी है उपस्थित करता हूँ यथा १ सबकर ससय अरु २ अज्ञानू ३ मद महीपन्ह कर अभिमानू ४ भृगुपति केरि गर्व गरुआई ५ सुर मुनिवरन्ह केरि कदराई ६ सियकर सोच ७ जनक पछितावा और ८ रानिन कर दारुन दुखदावा। सभु चाप बड बोहित पाई। चढे जाई सब सग बनाई। धनुष के टूटने से सब डूब गये। सबका सशय और अज्ञान भी जाता रहा। मद राजाओ का अभिमान जाता रहा। परशुरामजी का अभिमान मारा पडा। सुर मुनिवरो की कदराई गई। सीताजी का सोच गया। जनक का पछितावा जाता रहा और रानियो का दुख दावानल मिटा। इसी बात को जिसे मैंने रूखे सूखे शब्दो मे कहा है। कितनी सुन्दरता और सरलता से कवि ने जहाज टूटने के रूपक मे कह डाला।

प्रभु दोउ चापखड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम बारि अवगाहु सुहावन॥१॥

अर्थ प्रभु ने दोनो टुकडे धनुष के पृथ्वी पर डाल दिये। देखकर सब सुखी

हो गये। विश्वामित्रजी का स्वरूप पवित्र समुद्र था। जिसमे सुन्दर प्रेम रूपी जल अथाह भरा था।

व्याख्या तोडते तो किसी ने लखा नही। रामजी ने दोनो टुकडे भूमि पर डाल दिये कि सबलोग देख ले। दोनो टुकडो मे कोई लगाव नही है। जनकजी का वचन सुनकर सब दु खारी हुए थे। यथा जनक वचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहि भये दुखारी। अब वे ही लोग सुखारे हुए।

कौशिक का रूप क्या है मानो स्वय पावन समुद्र है। लौकिक समुद्र दिन-विशेष देशविशेष तथा कालविशेष छोडकर सब देशकाल मे अस्पृश्य है। यथा अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन। भारते। विना मन्त्र विना पर्व क्षुरकर्म विना नरै। कुशाग्रेणापि देवेशि न स्पृष्टव्यो महोदधि। स्कान्दे। अश्वत्थ और समुद्र का पूजन करे पर उन्हे छूए नही। मन्त्र पर्व क्षौरकर्म विना हे देवि कुश के अग्र से भी समुद्र का स्पर्श न करे, परन्तु कुशिकनन्दन का रूप पवित्र समुद्र है। प्रेमरूपी जल से भरा हुआ पावन है।

रामरूप[1] राकेसु निहारी। बढत बीचि पुलकावलि भारी॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देववधू नाचहि करि गाना॥२॥

अर्थ रामरूप पूर्ण चन्द्र को देखकर उसम तरङ्गरूपी भारी पुलकावली बढ रही है। आकाश से गहगह शब्द से डङ्के बजे। देववधू गान करके नाचने लगी।

व्याख्या विश्वामित्रजी प्रेम के समुद्र है। रामचन्द्र का दर्शन भी आजकल बराबर कर रहे है। परन्तु आज रामरूपी चन्द्र पूर्णकला से उदित है। मानो धनुषरूपी राहु को जिसने राजाओ के बलरूपी चन्द्र का ग्रास किया था समरभूमि म वध करके विजयलक्ष्मी से शोभा को प्राप्त किये है। यथा लहुरी लोचननि को लाहु। कुँवर सुदर सावरो सखि सुमुखि सादर चाहु। खडि हर कोदड ठाढे जानुलबित बाहु। मुदितमन वरबदन शोभा उदित अधिक उछाहु। मनहु दूरि कलक करि ससि समर सूद्यौ राहु। समुद्र का पूर्णचन्द्र को देखकर तरङ्गो द्वारा बढना विख्यात है। इसी भाँति रामचन्द्र रूपी अपूर्व पूर्ण चन्द्र को देखकर प्रेमामृतपूर्ण समुद्ररूप विश्वामित्रजी के शरीर मे बारबार पुलकरूपी तरङ्गें उठने लगी।

भगवती जनकनन्दिनीजी के रङ्गभूमि प्रवेश के अवसर पर कहा है कि हरखि सुरन्ह दुदुभी बजाई। बरखि प्रसून अपछरा गाई। पर इस समय तो आनन्द उछाह और अधिक बढ गया है। अत कहते है कि आकाश मे गहगहे निशान बजे। फूलो की वर्षा हुई। देववधुओ ने गाना नाचना प्रारम्भ किया।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रससहि देहि असीसा॥
बरषहिं सुमन रग बहु माला। गावहिं किनर गीत रसाला॥३॥

१ इसम यह भी द्योतित किया कि धनुष भङ्ग शरद् पूर्णिमा के दिन हुआ।

वाले की सी थी। डूब ही रहे थे। सब पुरुषार्थ थक गया। कहने लगे कुँवरि कुँवारि रहे का करहूँ। सो धनुषभङ्ग से वह शोक मिटा और परम सुखी हुए।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे॥
सीय सुखहि वरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥३॥

अर्थ धनुष टूटने से राजा श्रीहत हो गये। जैसे दिन मे दीप की शोभा जाती रहती है। सीताजी के सुख को किस भाँति वर्णन किया जाय। जैसे चातकी को स्वाति का जल मिल गया हो।

व्याख्या पहिले अरुणोदय कहा। यथा अरुणोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन। तब सूर्योदय कहा। यथा उदित उदयगिरि मच पर रघुवर वाल पतग। सूर्योदय होने पर दिन कह रहे हैं कि राजा ऐसे निस्तेज पड गये जैसे दिन म दीपक। भाव यह कि मन्द महीपन कर अभिमानू भी उस समाज म था। जो धनुष रूपी जहाज पर चढे थे। सो इस समय धनुष टूटते ही यह डूब गया। उसी के साफल्य रूप से राजाओ की श्रीहीनता वर्णन करके कहते हैं।

सीताजी की अवस्था रामजी ने देखी तो ऐसी हो रही थी जैसे प्यासा बिना पानी के मर रहा हो। यथा तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। अब जैसे चातकी को स्वाती की बूँद मिल जाय और प्यास मिटकर सुख हो। वैसा सुख श्रीजनक नन्दिनी को हुआ। वर्षा के सब नक्षत्र बीत गये चातकी को जल न मिला। उसकी प्यास बढती ही गई। वह मरणोन्मुख हो रही थी। तब से स्वाती की वर्षा हो गई। जिसकी वस्तुत उसे प्यास थी। अत सीताजी के सोच के डूबने का प्रसग कहते है कि वह भी पूर्वोक्त सायात्रिको पात वणिको म से था। यथा सियकर सोच जनक पछितावा।

रामहि लषनु विलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरकु जैसे॥
सतानद तब आयसु दीन्हा। सीता गमनु राम पहिं कीन्हा॥४॥

अर्थ रामजी को लक्ष्मणजी इस भाँति देख रहे हैं जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो। सतानन्दजी ने तब आज्ञा दी। सीताजी रामजी के पास चली।

व्याख्या इस समय प्रभु धनुषभङ्ग करके खडे हैं। अपार शोभा है। लक्ष्मण जी यद्यपि विश्वामित्रजी के पास बैठे हैं परन्तु दृष्टि रामजी पर ही है। सो इस समय प्रभु की ओर इस चाव से देख रहे है जैसे चन्द्र को चकोरकिशोर देखे।

वन्दी लोग महाराज जनक का प्रण कहते हुए बोल चुके है सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज समाज आज जेहि तोरा। त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहिं विचारि बरै हठ तेही। सो वह समय उपस्थित है। सरकार ने धनुष तोडा। अब वैदेही जाकर उनका वरण करे। विवाहकार्य म पुरोहित की आज्ञा ही प्रधान है। अत सतानन्दजी की आज्ञा हुई कि सीताजी को रामजी के समीप ले जाओ।

दो. संग सखी सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥२६३॥

अर्थ : सग मे सब सखियाँ चतुर और सुन्दर थी। वे मङ्गलाचार गान कर रही थी। सीताजी : बालहस की गति से चली। अङ्ग की अपार परमा शोभा थी।

व्याख्या : रङ्गभूमि मे प्रवेश के समय कहा : सग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी। इस समय वे ही सुन्दरी सखियाँ सीताजी को घेरे हुए मङ्गलाचार के गीत जो उस काल मे ऐसे अवसर पर गाये जाते थे गाती हुई चली। श्रीजनकनन्दिनी की शोभा ही परमा शोभा है और वह भी अपार है। वे बालमराल की गति से चली। श्रीजनकनन्दिनी की हसगति स्वाभाविकी है। यथा हसगवनि तुम नहिं बन जोगू। इस समय तो बहुत छोटी उम्र है। इसलिए गति की उपमा बालमराल से देते हैं। उधर सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मजु कुजर बरगामी। इधर गवनी बाल मराल। उधर राम बाहुबल सिंधु अपारू। इधर सुषमा अंग अपार। सखियो की मराल गति रही। भगवती की बालमराल सी गति है।

सखिन मध्य सिय सोहति कैसे। छविगन मध्य महाछवि जैसे ॥
कर सरोज जयमाल सोहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहि छाई ॥१॥

अर्थ : सखियो के बीच मे सीताजी कैसी शोभायमान हैं जैसे छविगण के बीच मे महाछवि की शोभा हो। करकमल मे कमल का जयमाल शोभा दे रहा है। जिसके ऊपर विश्वविजय की शोभा छाई हुई है।

व्याख्या : सखियो ने सब ओर से सीताजो को घेर रखा है। इसलिए सखिन मध्य कहते हैं। सग सखी सुन्दर सकल कह आये हैं। वे सखियाँ ऐसी सुन्दर हैं मानो स्वय छवि ने ही अनेकानेक रूप धारण कर रक्खे हैं। उनके बीच मे श्रीजनकनन्दिनी साक्षात् रूपधारी महाशोभा की भाँति सुशोभित हैं। जौ पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया। अत: महाछवि कहते हैं। महाछवि कहकर उनका आदिशक्ति छविनिधि जगमूला होना द्योतित किया। यहाँ सरोज शब्द देहलीदीपकन्याय से कर और जयमाल दोनो शब्दो से समन्वित होगा अर्थात् करसरोज और सरोज जयमाल। वसन्त ऋतु होता तो मधूक महुआ के फूलो की माला होती। शरद् ऋतु है। अत कमल का जयमाल बना था। जिनके गले मे माला पडनेवाली है उनके विषय मे कवि ने कहा है कि मनहु मनोहरता तन छाये। इसलिए माला के विषय मे भी कह रहे हैं कि ' बिस्व बिजय सोभा जेहि छाई। इससे जयमाल की शोभा कही और जयमालाओ मे उपस्थित नृपगणो के विजय की शोभा रहती है। पर इस जयमाल मे विश्वविजय की शोभा है। प्रतिज्ञा मे घोषणा भी ऐसी ही की गई थी। यथा : त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहि बिचार बरै हठि तेही।

तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ प्रेम लखि परै न काहू ॥
जाइ समीप राम छवि देखी। रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी ॥२॥

अर्थ शरीर मे सङ्कोच है। मन मे परम उत्साह है। छिपा हुआ प्रेम किसी को लखाई नही पडता। निकट जाकर जो रामजी की छवि देखी तो कुँवरि चित्र मे लिखी सी हो गई।

व्याख्या तन से तो सङ्कोच है। यथा गुरुजन लाज समाज बड और अति प्रेम के कारण मन मे परम उछाह है। इसीलिए उस प्रेम को गूढ कहते है। वह सङ्कोच मे छिपा हुआ है और ऐसा छिपा है कि कोई लख नही सकता। बाहर देखने से केवल सङ्कोच ही सङ्कोच दिखाई पडता है। गूढ प्रेम का पता नही चलता। राजा विदेह को भी गूढप्रेम था। यथा बदौं परिजन सहित विदेहू। जाहि रामपद गूढ सनेहू। जोग भोग महँ राखेउ गोई। उन्ही की बेटी है। अत इन्हे भी गूढ प्रेम है। सङ्कोच मे छिपाए हुए है। अभी तक रामजी की छवि को श्रीजनकनन्दिनी ने इतने निकट से नही देखा था। इस समय इतने निकट चली गई है कि माला पहिना सके। अत्र जो रामजी की छवि देखी तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुन्दरता पर दृष्टि पडी। जनकनन्दिनी स्तब्ध रह गई। इष्ट या अनिष्ट को देखकर क्रियाहीन हो जाने को ही स्तब्ध होना कहते हैं। उसी क्रियाहीनता को ही कवि कुँवरि को चित्र लिखित पुतली से उपमा देकर द्योतित करते है।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिवस पहिराइ न जाई ॥३॥

अर्थ चतुर सखी ने लखा। उसने समझाकर कहा कि सुन्दर जयमाल पहनाओ। सुनते ही सीताजी ने दोनो हाथा से माला उठायी। परन्तु ऐसी प्रेमवश हो गई है कि पहिराते नही बनता।

व्याख्या वह सयानी सखी भी तो साथ थी जिसने पुष्पवाटिका मे कहा था कि बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देख किन लेहू। किसी ने सीताजी के गूढ प्रेम को नही लखा। केवल उसी ने लखा कि इन्हे प्रथम सात्त्विक भाव स्तम्भ हो गया। इसलिए सीताजी को समझाया एहि अवसर के देर ते फेर समुझ म होय। बरन चहत नाहिन कुँअरि अस समुझिहि सब कोय। और कहती है जयमाला सुन्दर है। इसे पहना दो।

सुनते ही दोनो हाथो से माला को उठाया। मानो माला बडी भारी मालूम हो रही है। बडी कठिनता से उठाया तो परन्तु प्रेमाधिक्य से अङ्ग शिथिल हैं। पहनाना चाहती है। पहनाते नही बनता। उधर लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। इस लाघव मे ही शोभा थी। इधर जयमाल पहनाने की मन्थरता म ही शोभा है। सब लोग देख लें पहनाने की शोभा।

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहिं सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥४॥

अर्थ : मानो मृणाल के सहित दो कमल चन्द्रमा को जयमाल देते हुए शोभित हैं। छवि देखकर सखी सहेलियाँ गान करने लगी। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाल डाल दी।

व्याख्या : ग्रन्थकार श्री रामजी के गले में सीताजी द्वारा जयमाल पहनाने की शोभा वर्णन करते हैं। श्रीसीताजी के दोनों हाथों की उपमा मृणालयुक्त कमलों से दी और रामचन्द्र की उपमा चन्द्र से दी। मानो मृणालयुक्त दो कमल चन्द्र को जयमाल पहिनाते हैं। चन्द्र के सामने कमल सङ्कुचित हो जाते हैं। शीतांशु के निकट जाने में कम्पित होते हैं। सो कमल संकुचित हो गये है। चाहने पर भी जयमाला छूटती नही और कम्प भी हो रहा है। इसीलिए सभीत देत जयमाला कहा।

यहाँ सीताजी को सात्त्विक भाव हो जाने से अङ्गों में जड़ता है। सखी की शिक्षा से जयमाल पहनाना चाहती हैं तो हाथ काँपता है और जयमाल पहनाते नही बनता। इसलिए पहनाने में देर हो रही है।

इस अकृत्रिम भावविकार से जयमाल पहनाने की शोभा अत्यन्त बढ गई। उस छवि को सखियों ने देखकर जयमाल पहनाने का गीत आरम्भ कर दिया। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाला डाल दी। इस पुरइन से कली निकली जयमाल राम उर अब यह कमलरूप से आगे के दोहा में विकसित होगी।

दो. रघुवर उर जयमाल, देखि देव वरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु विलोकि रवि कुमुद गन॥२६४॥

अर्थ : रामजी के उर में जयमाल देखकर देवता फूल वरसाने लगे। और सव राजा ऐसे संकुचित हुए जैसे सूर्य के देखने से कुमुद : कोइ संकुचित हो जाते है।

व्याख्या : कमल खिला : रघुवर उर जयमाल इत्यादि। देवता ऊपर से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। परन्तु करकमल नही खिले। पहनाने पर भी जयमाल हाथ से छूटा नही। चन्द्र के सामने खिले भी कैसे? अतः अब कवि रामजी को रवि रूप से वर्णन करते हैं। जिसमे कमल का खिलना अर्थात् 'माला का हाथ से छूटना द्योतित हो। अरुणोदय से ही संकुचित कुमुदरूपी मानी राजा अब सूर्य को प्रभायुक्त देखकर अत्यन्त संकुचित हुए।

पुर अरु व्योम वाजने वाजे। खल भये मलिन साधु सव राजे॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥१॥

अर्थ : पुर और आकाश मे वाजे बजने लगे। खलगन मलिन हुए। साधु प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, नर, नाग और मुनीश्वर लोग जय जय जय कहकर आशीर्वाद देने लगे।

तन सकोच मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू ॥
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी ॥२॥

अर्थ : शरीर मे सङ्कोच है। मन मे परम उत्साह है। छिपा हुआ प्रेम किसी को लखाई नही पडता। निकट जाकर जो रामजी की छवि देखी तो कुँवरि चित्र मे लिखी सी हो गई।

व्याख्या : तन से तो सङ्कोच है। यथा : गुरुजन लाज समाज बड और अति प्रेम के कारण मन मे परम उछाह है। इसीलिए उस प्रेम को गूढ कहते हैं। वह सङ्कोच मे छिपा हुआ है और ऐसा छिपा है कि कोई लख नही सकता। बाहर देखने से केवल सङ्कोच ही सङ्कोच दिखाई पडता है। गूढ प्रेम का पता नही चलता। राजा विदेह को भी गूढप्रेम था। यथा वंदौं परिजन सहित विदेहू। जाहि रामपद गूढ सनेहू। जोग भोग महँ राखेउ गोई। उन्ही की बेटी है। अत इन्हे भी गूढ प्रेम है। सङ्कोच मे छिपाए हुए हैं। अभी तक रामजी की छवि को श्रीजनकनन्दिनी ने इतने निकट से नही देखा था। इस समय इतने निकट चली गई है कि माला पहिना सकें। अब जो रामजी की छवि देखी तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुन्दरता पर दृष्टि पड़ी। जनकनन्दिनी स्तब्ध रह गई। इष्ट या अनिष्ट को देखकर क्रियाहीन हो जाने को ही स्तब्ध होना कहते हैं। उसी क्रियाहीनता को ही कवि कुँवरि को चित्र लिखित पुतली से उपमा देकर द्योतित करते है।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई । प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥३॥

अर्थ : चतुर सखी ने लखा। उसने समझाकर कहा कि सुन्दर जयमाल पहनाओ। सुनते ही सीताजी ने दोनों हाथों से माला उठायी। परन्तु ऐसी प्रेमवश हो गई हैं कि पहिराते नही बनता।

व्याख्या वह सयानी सखी भी तो साथ थी जिसने पुष्पवाटिका मे कहा था कि बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देख किन लेहू। किसी ने सीताजी के गूढ प्रेम को नही लखा। केवल उसी ने लखा कि इन्हे प्रथम सात्त्विक भाव स्तम्भ हो गया। इसलिए सीताजी को समझाया एहि अवसर के देर ते फेर समुझ मे होय। बरन चहत नाहिन कुँअरि अस समुझिहि सब कोय। और कहती है जयमाला सुन्दर है। इसे पहना दो।

सुनते ही दोनो हाथो से माला को उठाया। मानो माला बडी भारी मालूम हो रही है। बडी कठिनता से उठाया तो : परन्तु प्रेमाधिक्य से अङ्ग शिथिल है। पहनाना चाहती है। पहनाते नही बनता। उधर लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। इस लाघव मे ही शोभा थी। इधर जयमाल पहनाने की मन्थरता मे ही शोभा है। सब लोग देख लें पहनाने की शोभा।

सोहत जनु जुग जलज सनाला । ससिहिं सभीत देत जयमाला ॥
गावहिं छवि अवलोकि सहेली । सिय जयमाल राम उर मेली ॥४॥

अर्थ : मानो मृणाल के सहित दो कमल चन्द्रमा को जयमाल देते हुए शोभित है। छवि देखकर सखी सहेलियाँ गान करने लगी। सीताजी ने रामजी के गले मे जयमाल डाल दी।

व्याख्या : ग्रन्थकार श्री रामजी के गले में सीताजी द्वारा जयमाल पहनाने की शोभा वर्णन करते हैं। श्रीसीताजी के दोनो हाथों की उपमा मृणालयुक्त कमलों से दी और रामचन्द्र की उपमा चन्द्र से दी। मानो मृणालयुक्त दो कमल चन्द्र को जयमाल पहिनाते है। चन्द्र के सामने कमल सङ्कुचित हो जाते है। शीतांशु के निकट जाने में कम्पित होते हैं। सो कमल संकुचित हो गये हैं। चाहने पर भी जयमाला छूटती नही और कम्प भी हो रहा है। इसीलिए सभीत देत जयमाला कहा।

यहाँ सीताजी को सात्त्विक भाव हो जाने से अङ्गो में जड़ता है। सखी की शिक्षा से जयमाल पहनाना चाहती है तो हाथ काँपता है और जयमाल पहनाते नही बनता। इसलिए पहनाने में देर हो रही है।

इस अकृत्रिम भावविकार से जयमाल पहनाने की शोभा अत्यन्त बढ़ गई। उस छवि को सखियों ने देखकर जयमाल पहनाने का गीत आरम्भ कर दिया। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाला डाल दी। इस पुरइन से कली निकली जयमाल राम उर अब यह कमलरूप से आगे के दोहा में विकसित होगी।

दो. रघुवर उर जयमाल, देखि देव वरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु विलोकि रवि कुमुद गन ॥२६४॥

अर्थ : रामजी के उर में जयमाल देखकर देवता फूल बरसाने लगे। और सब राजा ऐसे संकुचित हुए जैसे सूर्य के देखने से कुमुद : कोइ संकुचित हो जाते हैं।

व्याख्या : कमल खिला : रघुवर उर जयमाल इत्यादि। देवता ऊपर से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। परन्तु करकमल नही खिले। पहनाने पर भी जयमाल हाथ से छूटा नही। चन्द्र के सामने खिले भी कैसे ? अत. अब कवि रामजी को रवि रूप से वर्णन करते है। जिसमे कमल का खिलना अर्थात् 'माला का हाथ से छूटना द्योतित हो। अरुणोदय से ही सकुचित कुमुदरूपी मानी राजा अब सूर्य को प्रभायुक्त देखकर अत्यन्त संकुचित हुए।

पुर अरु व्योम वाजने वाजे। खल भये मलिन साधु सब राजे ॥
सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा ॥१॥

अर्थ : पुर और आकाश मे वाजे वजने लगे। खलगन मलिन हुए। साधु प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, नर, नाग और मुनीश्वर लोग जय जय जय कहकर आशीर्वाद देने लगे।

व्याख्या पहिले धनुपभङ्ग पर वाजे वजे। अव जयमाल पडने पर वज रहे है। पृथ्वी पर मनुष्यो द्वारा और आकाश मे देवताओ द्वारा वाजे वजाये जाते हैं। धनुपभङ्ग के समय व्योम आकाश म पहले वाजा वजा। यथा बाजे नभ गहगहे निसाना। जयमाल के समय पहिले पुर मे वाजा वजा। पुर के लोग इस वार सावधान हैं। उस वार देवताओ ने वाजी मार ली थी। उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहिं खल रीति। अत वे मलिन हुए और सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई होते हैं अत वे शोभित हुए।

सुर किन्नर से स्वर्गवासी। नर से मृत्युलोकवासी। नाग से पातालवासी। तीनो लोकनिवासी जयजयकार कर रहे हैं। अत जय जय जय तीन वार लिखा और मुनीश परमार्थी हैं वे आशीर्वाद देते हैं। अथवा सभी जय जय कहकर आशीर्वाद देते हैं।

नाचहिं गावहिं विवुध वधूटी। बार बार कुसुमाजलि छूटी ॥
जहँ तहँ विप्र वेद धुनि करही। वदी विरदावलि उच्चरही ॥२॥

अर्थ देववधू नाच-गा रही हैं। बारवार पुष्पाञ्जलि छूट रही है। जहाँ तहाँ ब्राह्मण लोग वेदध्वनि कर रहे है। वन्दी लोग विरुदावली वोल रहे हैं।

व्याख्या देववधूटी कहकर फिर भी देववधुओ का ही गाना नाचना कहा। अप्सराओ का गान नृत्य नही कहा। मङ्गल-गान कुलवधू ही द्वारा होता है। वेश्या द्वारा आज भी नही होता और अप्सरा स्वर्वेश्या है। अत मङ्गलगान उनके द्वारा नही लिखते। गान के ताल पर पुष्पाञ्जलि दी जा रही है। इसलिए कुसुमाञ्जलि छूटी लिखते है।

अभीतक वेदध्वनि नही हुई थी। यथार्थ गान्धर्व व्याह जयमाल पडना ही है। अत ब्राह्मण लोग जो जहाँ थे वही से स्वस्तिवाचन के मन्त्र वोल। मन्त्रो के साथ स्वर लगता है। अत वेदध्वनि कहा। राजाओ का व्याह है। इसलिए वन्दियो ने विरद कहा। उच्चस्वर से बोल रहे हैं। इसलिए उच्चरही कहा।

महि पातालु नाक जसु व्यापा। राम वरी सिय भजेउ चापा ॥
करहिं आरती पुर नर नारी। देहिं निछावरि बित्त विसारी ॥३॥

अर्थ पृथ्वी पाताल और आकाश मे यश व्याप्त हो गया कि रामजी ने धनुप तोडा और सीता का वरण किया। पुर के नर नारी आरती करते हैं और अपने वित्त को भूलकर निछावर करते हैं।

व्याख्या इस धनुपयज्ञ मे देवदनुज धरि मनुज सरीरा तथा द्वीप द्वीप के भूपति आये थे। अत महि पाताल और आकाश मे यश व्याप गया कि ये लोग गये तो थे पर सीता को व्याह न सके। क्योकि इनका तोडा धनुष नही टूटा। फिर तोडा किसने ? तो राम वरी सिय भजेउ चापा। यह यश तीनो लोक म फैल गया। तव भुजवल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी। जो लक्ष्मणजी

ने कहा था उसी का साफल्य दिखलाते हैं। धनुष के विघटने से रामजी के भुजवल की महिमा तीनो लोक मे प्रकट हो गई।

पहिले निछावर हुआ तब जयमाल पडा। अब आरती हो रही है। इस बार जयमाल पडने का निछावर है। अत वित्त विसारी कह रहे हैं। पहिली निछावर मे भी वित्तशाठ्य नही किया था। हय, गय, मनि, धन और चीर का निछावर हुआ था। पर इस निछावर मे तो लोग यह भी भूल गये कि इतना निछावर करना हमारे वित्त के वाहर है या भीतर।

सोहत सीय राम कै जोरी। छवि शृङ्गार मनहु इक ठोरी ॥
सखी कर्हाहं प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता ॥४॥

अर्थ सीताराम की जोडी ऐसी शोभायमान है मानो छवि और शृङ्गार दोनो एकत्र हो गये हैं। सखी कहती है कि सीते ! प्रभु के चरण पकडो। वह अत्यन्त डरी हुई है। चरणस्पर्श नही करती।

व्याख्या इसके पहिले तक जोडी नही कह सकते थे। रामरूप अरु सिय छवि देखी कहा था। यहाँ जनकपुर है। इसलिए सीय राम की जोडी कहा। सीताजी की प्रधानता है। छवि से शृङ्गार की शोभा और शृङ्गार से छवि की शोभा होती है। दोनो के एकत्र होने से महाशोभा हुई। रामजी जनु सोहत सृगार धरि मूरति परम अनूप। सीताजी छविगन मध्य महाछवि जैसी।

जयमाल डालने के बाद चरणग्रहण की प्रथा है। शिक्षा देना सखी का कार्य है। अत सखी चरणग्रहण के लिए शिक्षा देती हैं। परन्तु सीताजी चरणस्पर्श मे अति भयभीत हो रही है। विरह का वडा भारी भय है। यथा चालत न भुजवल्ली विलोकन विरह भय वस जानकी। भय का कारण कहते हैं

दो गौतम तिय गति सुरति करि, नहिं परसत पग पानि।
मन विहँसे रघुवसमनि, प्रीति अलौकिक जानि ॥२६५॥

अर्थ अहल्या का स्मरण करके चरण को हाथ से नही छूती। रघुवशमणि अलौकिक प्रीति देखकर मनही मन हँसे।

व्याख्या परसि जासु पद पकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। सुन चुकी हैं। अत भारी डर है कि चरणस्पर्श मे कही धूलि छू गई तो मुझे भी तुरन्त दिव्यलोक की प्राप्ति हो जायगी। फिर इन चरणो से विछोह हो जायगा। क्रिया अटपट हो रही है। अप्रसन्न होने का अवसर था। परन्तु राम सुजान जान जन जीकी। अत अलौकिक प्रीति देखकर हँसे। मन ही मे हँसे क्योकि यहाँ व्यक्त रूप हँसने के लिए उपयुक्त समय नही था। लोग समझते कि सीताप्राप्ति से कृतकृत्य होकर हँस रहे हैं। ऐसी ही प्रीति की तीव्रता मे अटपट क्रिया केवट की देखकर आगे भी हँसेंगे। यथा सुनि केवट के वैन प्रेम लपेटे अटपटे। विहँसे करुना अयन चितै जानकी लखन तन।

तब सिय देखि भूप अभिलाषे। क्रूर कपूत मूढ मन माषे ॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥१॥

अर्थ तब सीताजी को देखकर राजाओ को अभिलाषा हुई। क्रूर, कुपुत्र और मूढ के मन मे अमर्ष हुआ। अभागो ने उठ उठकर कवच पहिने और जो जहाँ रहे वही से गाल बजाने सीटने लगे।

व्याख्या जब सीताजी रामजी के वाम भाग मे विराजमान हो गईं आरती होने लगी। सीताजी ने चरणस्पर्श किया। अर्थात् स्वयवर की प्रक्रिया जब समाप्त हो गई तब सीताजी को देखकर राजाओ को अभिलाषा हुई कि ऐसी मनोहर मूर्ति की प्राप्ति मुझे नही हुई। जनकजी के यह कहने से कुँवरि कुँआरि रहौ का करऊँ। अभिलाषा दब गई थी सो जाग उठी। सीताजी की प्राप्ति किसी को न होगी इस बात पर जिन्हे सन्तोष था उन्हे दूसरे की प्राप्ति सह्य न हुई। उनमे से जो कूर क्रूर कपूत कुपुत्र तथा मूढ थे जिन्हे मन ही मन आमर्ष हुआ वे जयमाल पहने सीताजी को वाम भाग मे लिये जयजयकार के बीच म रामजी को देख न सके। इसीसे आमर्ष हुआ। औरे की अभिमानु लखि उर उपजै अभिमान। अभिमान को आमर्ष कहते हैं। बलवान् के सामने आमर्ष चल नही सकता। अत क्रुद्ध होकर सामना करने का तो साहस नही है। अत मन ही मन मसोस रहे हैं।

युद्ध तो करना नही। गडबड पैदा करने के लिए युद्ध का दिखावा करते हैं। उठ उठकर जिरह बख्तर वर्म धारण करने लगे। मानो लडाई करेंगे। अथवा उन्हे गाल बजाना सीटना है। पर उसमे भी खतरा है। इसलिए जिरह बख्तर पहनकर तब गाल बजाने लगे। भवभञ्जन पद विमुख हैं। इसलिए ग्रन्थकार उन्हे अभागे कहते हैं। आगे कोई नही बढता। जो जहाँ है वही से शान बघार रहा है। पहिल क्रूर बोले

लेहु छँडाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
तोरे धनुप चाँड नहिं सरई। जीवत हमहि कुँवरि को वरई ॥२॥

अर्थ कोई बोले छीन लो सीता को। दोनो राजपुत्रो को पकडकर बाँध लो। केवल धनुप तोडने से चाट नही मिटेगी। हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन वर सकता है ?

व्याख्या आप पैर आगे नही रखते औरो को ललकारते हैं कि छीन लो राजकुमारी को। यदि कहो कि अब तो सम्बन्ध हो गया। दोनो भाई छीनने कैसे देंगे। इसपर कहते हैं कि राजा के दोनो बालको को बाँध लो। भाव यह कि ये अभी बालक हैं। इनसे लडने की भी आवश्यकता नही है। पकडकर बाँध लो। इस भाँति प्रोत्साहित कर रहे हैं। इन्हे बालक बालिका किसी पर दया नही है। इसी स इन्हे क्रूर कहा है। अब कपूत कुपुत्र बोलते हैं।

धनुप टूट गया तो क्या हुआ। अभी बडके धनुप हम तो जीते ही है। पहिले हमे मार ले तव कोई जनकनन्दिनी का वरण कर सकता है। सीता की चाट है इसलिए जाकर धनुप तोड दिया। इससे चाट नही पूरी होने पावेगी। ये कपूत हैं। इनका किया तो कुछ हो सकता नहीं। केवल बड़े भारी वीरो की सी बाते बोलकर वैर ले रहे है। अव मूढ वोले :

जौ विदेह कछु करैं सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥
साधु भूप वोले सुनि वानी। राजसमाजहिं लाज लजानी ॥३॥

अर्थ . यदि विदेह कुछ सहायता करें तो उन्हे भी दोनो भाइयो के सहित रण मे जीत लो। इन वातो को सुनकर साधु राजा वोले कि राजसमाज को देखकर लज्जा को भी लज्जा आगई।

व्याख्या : कुमारी का पिता विदेह है। वह झगड़े मे पडनेवाला नही। पहिले ही कहता था : कुँवरि कुँआरि रहौ का करऊँ। वह किसी की सहायता न करेगा। पर यदि राजकुमारी को छीनी जाते और अपने जामाता दोनो भाइयो को वँधते देखकर कुछ ची चपड करे तो उसे भी समरागण मे इन्ही दोनो भाइयो के साथ जीत लो। ये मूढ है। इन्हे परिज्ञान नही कि विदेह किसे कहते है। जिसे देहाध्यास नही उससे बढकर योद्धा कौन हो सकता है ? ऐसा स्वयम्बर रचने के लिए देहाध्यास था। सहायता के लिए नही है। शिवधनु भङ्ग करनेवालो को भाई और विदेहराज : जिसके राज्य मे इस समय एकत्रित है के साथ जीतने का स्वप्न देखते है। ऐसो के मूढ होने मे सन्देह क्या ?

तव साधु राजा वोले। पहिले भी इन लोगो ने रोका था। यथा . सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदवा जानहु जिय सीता। जगत पिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी। जब लोगो ने नही माना तव कहा था : करहु जाइ जाकहँ जो भावा। हम तौ आज जन्म फल पावा। साधु है अतः फिर रोकते है। अनीति उन्हे सह्य नही है। इससे वोले कि यह रूप दिखाना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। आज ऐसा वर्ताव देखकर लज्जा भी राजसमाज को छोड लज्जित हो चली गई। भाव यह कि तुम लोगो ने हया छोड़ दी। तुम लोगो के ऐसे आचरण से राजसमाज कलङ्कित हो रहा है।

वलु प्रतापु वीरता [1]बड़ाई। नाक पिनाकहि सग सिधाई ॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ विधि मुँह मसि लाई ॥४॥

अर्थ : वल प्रताप वीरता वडाई तो पिनाक . शिवधनुप के साथ ही आकाश मे चली गई। वही वीरता है कि अव कही से मिली है। ऐसी ही वुद्धि है तभी ब्रह्मा ने मुख मे कालिख पोत दी।

---

१. यहाँ सहोक्ति अलङ्कार है।

व्याख्या : यदि तुम्हें विचार होता तो धनुष के निकट न जाते। यथा जिनके कछु विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाही। अब तो *कीर्ति विजय और भारी वीरता* सब कुछ धनुष के हाथ जबरदस्ती हार चुके। धनुष टूटते ही उन लोगों का प्रताप वीरता बडाई समाप्त हो गई। जो धनुष तोडने उठे थे। वही शूरता न है जिससे तिल भर धनुष को हटा न सके कि कोई नई शूरता इस बीच और मिल गई है? जिसके भरोसे बडी बडी बातें करते हो। तुम लोगों की *बुद्धि मारी गई है*। इसी से तुम्हारे मुँह मे *कालिख ब्रह्मा ने पोत दिया। यदि बुद्धि से* काम लेते तो सबकी इज्जत बनी रह जाती। हमने पहिले ही कहा था जगदंबा जानकी जगत पितु रामभद्र जानि जिय जिय जोहो। ज्यो न लागे मुह कारिखो कवित्त। पर विधिवश वह बात तुमलोगो के मन मे न भाई।

दो देखहु रामहि नयन भरि, तजि इरिषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रबल, जानि सलभ जनि होहु ॥२६६॥

अर्थ ईर्ष्या, मद और क्रोध को छोडकर रामजी को आँख भर देखो। लक्ष्मणजी के क्रोधरूपी प्रबल अग्नि मे जानबूझकर पतङ्ग न बनो।

व्याख्या हितं शतशोऽपि वक्तव्यम्। कल्याण की बात को सौ बार भी कहे। अत कहते हैं कि सीता महामाया है। उनकी ओर न देखो रामजी की ओर देखो। इस शोभा को आँख भर देखकर जन्म सफल करो। क्रूर से कहते हैं कि तुम ईर्ष्या छोडकर देखो। कपूत से कहते हैं कि तुम मद छोडकर देखो। मूढ से कहते हैं कि क्रोध छोडकर देखो तब प्रेम से देख सकोगे। तुम्हारे आँख भर देखने मे ईर्ष्या मद और क्रोध बाधक हो रहे हैं। तुम्हारी बातो से लक्ष्मणजी को क्रोध आ रहा है। यदि यह क्रोधाग्नि तुमलोगो के प्रलाप से बढती गई तो तुमलोगो के शलभ होने म देर न लगेगी। शलभ तो दीप का मर्म बिना जाने जलता है। तुम तो मनुष्य हो देख चुके हो कि लक्ष्मण के क्रोधयुक्त बोलने पर पृथ्वी डगमगाती है। दिग्गज डोलते हैं। तुम जानबूझकर शलभ होने क्यो जाते हो?

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहहि नाग अरि भागू ॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब संपदा चहै सिवद्रोही ॥१॥

अर्थ जैसे कौआ गरुड की बलि चाहता हो। खरहा सिंह का अंश चाहता हो। अकारण क्रोधी कुशल चाहता हो। शिवद्रोही सम्पदा चाहता हो।

व्याख्या यद्यपि गरुड और काग दोनो पक्षी हैं। पर गरुड की बलि काग को नही मिल सकती। बलि देनेवाला ही न चाहेगा कि काग को मिले। चाहे गरुड को भले ही उस बलि की परवाह न हो। इसी भाँति खरहा खरगोश और सिंह दोनो चतुष्पाद हैं। पर खरहा का साहस नही कि मत्त नाग तम पुंज बिदारी सिंह का भाग छू भी सके। सिंह के मारे शिकार को कोई पशु पक्षी स्पर्श नही कर

सकता। अतः न तो जनक छीनने देंगे और न राम के सामने तुम्हारा दिन है कि सीता को स्पर्श कर सको। यह लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ का उत्तर है।

क्रोधी भी लड़ पड़ता है और वीर भी लड़ता है। वीर के दोनो लोक बनते हैं। क्रोधी के बिगड़ जाते हैं। इसलिए कहते हैं कि क्रोधी का कुशल नहीं होता। कि पुन: निष्कारण क्रोध करनेवाले का कुशल तो हो नही सकता। जो बात तुम्हारी की हुई न हो सकी उसे उन्होंने कर दिखाया। इसमें उनका अपराध क्या है? निष्कारण क्रोध करते हो। इसमें तुम्हारी कुशल नही है। उन्होने ब्रह्मकुल रूपी शङ्कर की आज्ञा लेकर तब धनुष तोड़ा है। जिसपर शिवजी की कृपा होगी वही धनुष तोड़ सकता है। उनपर शिवजी की कृपा है। इससे उन्हे सीता तथा त्रैलोक्य जयलक्ष्मी : सब सम्पदा प्राप्त हुई। तुमलोग शिवद्रोही हो। बिना शिव की आज्ञा धनुष तोडने चले। तुम्हें त्रैलोक्य जयलक्ष्मी जनकनन्दिनी नही प्राप्त हो सकती। यह धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ का उत्तर है।

लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई ॥
हरि पद विमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा ॥२॥

अर्थ : लोभी लालची कीर्ति चाहता हो। निष्कलङ्कता क्या कामी को प्राप्त होती है। हरिपद विमुख परमगति चाहे। हे राजाओ ! वैसा ही तुम्हारा लोभ है।

व्याख्या : गुनसागर नर जोऊ। अल्पलोभ भल कहै न कोऊ। थोड़े से लोभ होने से भी कीर्ति नष्ट हो जाती है। सो तुम्हे इतना बड़ा लोभ है कि जिस धनुष को तुम दसहजार मिलकर न हिला सके। उसके तोड़नेवाले के पुरस्कार की इच्छा रखते हो। तुम लोभ से लोलुप हो गये। तुम्हे सीतारूपी निर्मल कीर्ति कैसे मिलेगी? तुम कामवश हो। प्राण देकर कलङ्क धोना चाहते हो सो भी होना नहीं है। कामी को अवश्य कलङ्क लगेगा। तोड़े धनुष चाँड नहि सरई। जीवत हमहिं कुँवरि को वरई का उत्तर है।

भगवती ही परम गतिरूपा है। ये दोनो भाई भक्ति से जीते जाते हैं। यथा : ते दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरपद कमल पलोटत प्रीते। भक्ति से इन्हे जीतना ही परम गति की प्राप्ति है। सो इन्हे तुम विमुख होकर जीतना चाहते हो। यह होना नहीं है। यथा : राम विरोध कुसल जस होई। सो सब तुमहि सुनाइहि सोई। यह जौं विदेह कछु करइ सहाई। जीतौं समर सहित दोउ भाई का उत्तर है।

कोलाहल सुनि सीय सकानी। सखीं लवाइ गईं जहँ रानी ॥
राम [1]सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं ॥३॥

अर्थ : कोलाहल सुनकर सीताजी डर गईं। सखियाँ उन्हे जहाँ रानी थी वहाँ ले गईं। रामजी सीताजी के स्नेह का मन ही मन वर्णन करते हुए स्वाभाविक गति से चले।

---

१. यहाँ स्वभावोक्ति है।

व्याख्या राजाओ के वादविवाद से वहाँ बडा कोलाहल मचा। लेहु छडाई सीय कह कोऊ। इत्यादि सुनकर सीताजी डरी। सखियाँ बडी चतुर हैं। देखा कि सब चोट सीताजी पर है तुरन्त उन्हे लकर जहाँ रानियाँ थी वहाँ चली गईं। स्वयवर का सब कृत्य समाप्त हो गया। गुरुजी ने कहा था उठहु राम भजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा। उनकी आज्ञानुसार धनुष भी तोडा। जयमाल स्वीकार करके जनकजी के परिताप को भी मिटाया। दोनो आज्ञापालन के बाद फिर गुरुजी के यहाँ जैसे आये थे वैसे ही मत्तमञ्जुकुजर की गति से चल। इस कोलाहल की ओर उनका ध्यान भी नही है। यथा कै निदरौ कै आदरौ सिंहहि स्वान सियार। हर्ष विषाद न केहरिहि कुजर गजनिहार। वे मन ही मन सीताजी के स्नेह का वर्णन करते चल। गौरीजी कह चुकी है करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो उसी का साफल्य है।

रानिन्ह सहित सोचवस सीया। अब धौ विधिहि काह करनीया ॥
भूप वचन सुनि इत उत तकही। लखनु राम डर बोलि न सकही ॥४॥

अर्थ रानियो के साथ सीताजी सोच के वश हो गईं। अब ब्रह्मा न जाने क्या करना चाहते हैं। लक्ष्मणजी राजाओ के वचनो को सुनकर इधर उधर देखते हैं पर रामजी के डर से बोल नही सकते।

व्याख्या यह जानकर कि राजा लोग बिगड गये है। भारी युद्ध हुआ ही चाहता है परिणाम क्या होगा। रानियाँ चिन्ता मे पड गईं और सीताजी भी चिन्तित हो गईं। क्योकि सब रामजी पर ही क्रुद्ध है और युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला। युद्ध का परिणाम कुछ नही कहा जा सकता। किसी भाँति भगवान् भगवान् करके धनुष भी टूटा तो यह उपद्रव खडा हो गया। भविष्य विधि के हाथ है कर्म शुभाशुभ दइ विधाता। इधर लक्ष्मणजी का क्या हाल है कि एक ओर से आवाज आई लहु छुडाइ सीय तो उधर देखा। तबतक दूसरी ओर से शब्द हुआ धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ तो उधर घूमे। तबतक तीसरी ओर से आवाज आई जौ विदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई। इस भाँति विरोधियो के शब्द इधर उधर से आ रहे है। लक्ष्मणजी के देखने ही चुप हो जाते है। पर दूसरी ओर से आवाज उठती है। ऐसे बोलनेवालो का वध दण्ड है। पर बोल नही सकते क्योकि प्रभु का डर है। उनका रुख देखते है तो उन्हे परवाह ही नही।

दो अरुन नयन भृकुटि कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंहकिसोरहि चोप ॥२६७॥

अर्थ लाल नेत्र और टेढी भृकुटी से राजाओ को क्रोध से देखते हैं। जैसे मत्त हाथियो के झुण्ड को देखकर सिंह के बच्चे को चोप हो।

व्याख्या रौद्ररस का अनुभाव कहते हैं। अरुण नयन और भृकुटी कुटिल है। राजाओ को क्रोध से देखते हैं। विभाव पहिले कह चुके है भूप वचन सुनि इतउत

तकही। मत्तगजयूथ सिंह के चोप की वस्तु है। परन्तु सिंह गम्भीर है। उसे अपने बल पर इतना विश्वास है कि मत्तगजयूथ को कुछ गिनता नही ठवनि युवा मृग-राज लजाये। सिंहकिशोर को भी चोप होता है। पर वह उतना गम्भीर नही है। तुरन्त पैतरा बदल कर खडा हो जाता है और अरुण नयन भृकुटि कुटिल करके मत्तगजयूथ की ओर देखता है। वैसी ही शोभा आज लक्ष्मणजी की राजाओ के सकोप दृष्टि से देखने मे हो रही है। राजाओ को मत्तगज कहा। आकार मे विशाल है। सिंहकिशोर आकार मे स्वल्प है। पर मत्तगजयूथ को कुछ गिनता नही। उनपर चोट करने की बडी अभिलाषा है।

परशुराम आगमन प्रसङ्ग

खरभरु देखि बिकल पुर नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥
तेहि[1] अवसर सुनि सिवधनु भगा। आए भृगुपति कमल पतगा॥१॥

अर्थ गडबड देखकर पुर की नारियाँ विकल हो गईं। सब मिलकर राजाओ को गालियाँ देती है। उसी अवसर पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुल कमल के सूर्य परशुरामजी आये।

व्याख्या उठि-उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे एक ओर। अस बुधि तो बिधि मुह मसिलाई कहनेवाले दूसरी ओर। लक्ष्मणजी अरुन नयन भृकुटी कुटिल। चितवत नृपन्ह सकोप तीसरी ओर। रगभूमि मे तमाम गडबड मच गयी। सखियाँ जल्दी से सीताजी को रानियो के पास ले गईं। पुरवासी विकल हो उठे कि भारी अनिष्ट हुआ चाहता है। इस अनिष्ट के करनेवाले राजा लोग ठहरे। अत सब नारियाँ मिलकर उन्ही को गाली देने लगी। राजाओ के पीछे पुरवासियो के बैठने के ऊँचे ऊँचे मञ्च है और उनके पीछे धवलधाम मे नारियो के बैठने की व्यवस्था है। अत वे एक एक बात देख रही है। राजाओ का अन्याय देखकर विकल है। अत उन्हे बुरा भला कह रही है कि इन अभागो का किया कुछ न हुआ। अब वे निर्लज्ज धनुष टूटने पर किस मुँह से लडने को कह रहे है। गडबडी मे जो कुछ त्रुटि रही सो इस गालीप्रदान से पूरी हो गई।

इसी गोलमाल के बीच मे धनुषभङ्ग के शब्द से क्रुद्ध हुए भृगुकुलकमल के सूर्य परशुरामजी आये। यथा यद्भभज जनकात्मजाकृते राघव पशुपतेर्महद्धनु। तद्धनुर्गुणरवेण रोपितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनि। ह ना। जो समाज वि

---

१ यहाँ से २८५ दोहे तक अर्थात् १८ दोहा म परशुरामप्रसङ्ग है। यह भगवद्गीता का सार है। अठारह अध्याय गीता मे भगवान् ने अर्जुन को स्वधर्म युद्ध से विचलित होकर परधर्म भिक्षावृत्ति ग्रहण करने से रोककर स्वधर्म पर आरूढ किया। उसी भाति इन अठारह दोहो म परशुरामजी को परधर्म युद्ध से विरत करके स्वधर्म तपस्या पर आरूढ किया। यथा, कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गये बनहि तप हेतू।

शकर चाप जहाज पर चढा था वह उसके टूटने से डूब गया। केवल भृगुपति केर गर्व गरुआई के डूबने का वर्णन शेष था। यहाँ उसीका वर्णन कर रहे है। परशुरामजी को गर्व था कि शिवजी के अस्त्रशस्त्र के धारण करने का सामर्थ्य एक मात्र मुझ मे ही है। गणेशपुराण मे परशुरामजी द्वारा शिवजी के सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्र के धारण की कथा भी है। सो शङ्करजी के धनुष को तोडनेवाला कौन पैदा हुआ ? मानभग का वडा दु ख होता है। अत युद्ध करने आये। यथा काल कराल नृपालन के धनु भग सुने फरसा लिये धाये। भृगु ने स्वय विष्णु भगवान् की छाती मे लात मारा था। ये उस कुल के सूर्य है। अपमान करने मे तनिक भी आगापीछा न करेंगे। पतग कहकर उनका आकाशमार्ग से आना तथा तेजोऽतिशयता द्योतित की। दो पतग एकत्रित हुए एक उदित उदय गिरि मच पर रघुवर बाल पतग और दूसरे भृगुकुल कमल पतगा। भाव यह कि इस रगभूमि मे दो दो अवतारो का समागम हुआ। यथा क्षत्रक्षय कुर्वते। पौलस्त्य जयते परशुरामका और श्रीराम का।

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुड बिराजा ॥२॥

अर्थ देखकर सब राजा सङ्कुचित हो गये। जैसे बाज पक्षी के झपटने पर लवा छिप जाते है। गोरी देह म विभूति की भली शोभा थी। चौडे ललाट पर त्रिपुण्ड शोभायमान था।

व्याख्या जो जिरह बखतार पहन-पहन कर गाल बजा रहे थे। वे परशुरामजी के देखते ही पानी हो गये। जबान बन्द हो गई। ऐसे सिकुड गये जैसे बाज के झपटने पर लवा छिप जाता है। जा जहाँ थे वही छिपने लगे। लवा ढेले के आड म ऐसा छिप जाता है कि मालूम नही पडता। इसी भाँति शान्त राजाओ मे जा छिपे। कही पूछें न कि यहा कौन कौन उपद्रव मचाता था ? बाज झपट से आकाश मार्ग द्वारा सवेग उतरना कहा। लवा मन से भी बाज से युद्ध की बात नही सोच सकता। बाज की ओर देख भी नही सकता। राजा डरे कि हम सब लोगो को एकत्रित पाकर बाईसवी बार नि क्षत्र करने आये है।

अब परशुरामजी का ध्यान कहते हैं गौर वर्ण का शरीर है। गोरे शरीर पर विभूति खूब खिलती है। परम शैव हैं। सर्वाङ्ग मे विभूति धारण कर रक्खी है। दूसरे रुद्र ही मालूम पड रहे हैं। इसी भाँति उच्च ललाट की शोभा त्रिपुण्ड से है। शिवजी परम वैष्णव हैं। अत वे कालरूप विष्णु के प्रतीक को मस्तक पर धारण करते हैं। भूत भविष्य वर्तमान का द्योतक त्रिपुण्ड है। इसी भाँति विष्णु भी परम शैव हैं। वे शिवजी के प्रतीक त्रिशूल को ऊर्ध्वपुण्ड के रूप से धारण करते हैं। परशुरामजी साक्षात् शङ्कर भगवान् के शिष्य हैं। अत त्रिपुण्ड धारण किये हैं।

सीस जटा ससिबदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते। सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते ॥३॥

अर्थ सिर पर जटा थी। चन्द्रमा का सा मुख शोभित था। क्रोध के वश कुछ लालिमा आगई थी। भौंहे टेढी और आँख क्रोध से लाल हो रही थी। स्वभाव से देखते थे फिर भी यही मालूम होता था कि क्रोध कर रहे हैं।

व्याख्या : शीश जटा से तपस्वी ब्रह्मचारी मालूम होते थे। मुख की शोभा चन्द्रमा की सी थी। विशेषता यह थी कि क्रोध के कारण कुछ लालिमा आगई थी। भौंहे टेढी हो रही थी। क्रोध से आँखें चढी हुई थी। साधारण रीति से देखते थे तो भी जान पडता था कि क्रोध कर रहे हैं। भाव यह कि शोभा वडी ब्राह्म तेज बड़ा। फिर भी क्रोध के लक्षण प्रकट थे।

वृषभ कंध उर बाहु बिसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥४॥

अर्थ : बैल का सा कन्धा, छाती और भुजाएँ विशाल थी। सुन्दर यज्ञोपवीत रुद्राक्ष की माला मृगछाला धारण किये कटि मे वल्कलवसन पहने दो तरकस बाधे हाथ मे धनुष लिये और कन्धे पर परशु धारण किये थे।

व्याख्या : अङ्ग प्रत्यङ्ग का सघठन वीरो का सा था। बैल का सा पुष्ट कन्धा था। वक्ष स्थल और भुजाएँ विशाल थी। गले मे सुन्दर यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष की माला शोभायमान थी। मृगछाला लिये हुए थे। वल्कलवसन पहने हुए थे। यह सभी चिह्न तपस्वी ब्रह्मचारी के थे फिर भी युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आये थे। दूर से प्रहार करने के लिए धनुष बाण और तरकस था। शत्रु के निकट आने पर प्रहार करने के लिए परशु भी धारण किये हुए थे।

दो. सांत बेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितन जनु बीर रसु, आयउ जहँ सब भूप॥२६८॥

अर्थ वेष शान्त परन्तु करणी कठिन थी। स्वरूप का वर्णन नही किया जा सकता। मानो वीर रस मुनि का शरीर धारण करके जहाँ राजा लोग थे वहाँ चला आया।

व्याख्या : वेष . पहिरावा तो शान्त था जैसा मुनियो का होना चाहिए वैसा था। परन्तु करणी कठिन थी। अचिन्त्य कार्य करनेवाली थी। यथा

जिसने बार इकीस लहू की नदी बहाकर।
नृपति मासमस्तिष्कपङ्कमय कूल बनाकर॥
किया तहाँ असनान दिया पितरो को पानी।
जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी॥
बाल वृद्ध वनिता निधन मे भी जो निर्दय महा।
कन्ध कूट नृप यूथ के कारन मे अति पटु रहा॥ प्र च।

इसलिए कहते हैं कि स्वरूप का वर्णन नही हो सकता। क्योकि उनमे मुनि के चिह्न भी है। वीर के चिह्न भी है। अत अभूत उपमा देते है। धरि मुनि

तन जनु वीर रस आएउ जहँ सब भूप : कि इन्हीं मे से किसी ने धनुप तोडा होगा। रामजी शृंगार मे वीर रस की भाँति आये थे। यथा : देखहि रूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा। परशुरामजी मुनि वेप में वीर रस की भाँति आये।

रामजी :	परशुरामजी :
सरदचन्द निंदक मुख नीके।	सीस जटा ससि बदन सुहावा।
चितवन चारु मारमद हरनी।	सहजहु चितवत मनहु रिसाते।
वृषभ कंध केहरि ठवनि।	वृषभ कंध उर बाहु विसाला।
भाल विसाल तिलक झलकाही।	भाल विसाल त्रिपुड विराजा।
कटि तूनीर पीत पट बाँधे।	कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे।
करसर धनुप बाम वर काँधे।	धनु सरकर कुठार कल काँधे।
प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे।	देखि महीप सकल सकुचाने।

प्रादेश मात्र दिखलाया गया। दोनो स्वरूपों का यहाँ पूरा मिलान करना चाहिए।

देखत भृगुपति वेपु कराला। उठे सकल भय विकल भुआला ॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा ॥१॥

अर्थ : भृगुपति का कराल वेप देखकर डर से विकल होकर राजा लोग उठे। पिता के समेत अपना नाम कह कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

व्याख्या : पहिले खरभर देखकर पुर नर नारी विकल हुए थे। गोलमाल मचानेवाले ये राजा ही थे। सो बाज झपट जिमि लवा लुकाने। लवा की भाँति छिप गये। इसलिए परशुरामजी को दूर से देखते ही सब गोलमाल शान्त हो गया। दूर से तो शान्त वेप मे देखा था पर निकट आने पर कराल वेप प्रकट हुआ। भृकुटी कुटिल नयन रिसिराते। सहजहुँ चितवत मनहु रिसाते। कटि मुनि बसन तून दुइ बाँधे। कर सर धनु कुठार कल काँधे। तब राजा लोग डर से विकल हुए। जहाँ छिपे थे वहाँ से उठे। क्योंकि परशुरामजी से सभी राजा परिचित थे।

शास्त्रोक्त विधि से दण्डवत् प्रणाम प्रारम्भ हुआ। विधि यह है कि पिता के सहित अपना नाम लेकर बड़ो को प्रणाम करे। सो : अमुकस्य पुत्रोऽमुकवर्माहम् भो महर्षे त्वामभिवादये। ऐसा कहकर साष्टाग प्रणाम करने लगे। स्वय विश्वामित्रजी के आने पर न ये सब उठे थे और न प्रणाम किया था। अतः यह प्रणाम श्रद्धातिरेक से नही हो रहा है मारे भय के हो रहा है। कही बे कायदे प्रणाम करने पर अप्रसन्न न हो जाँय इसलिए शास्त्र की विधि का पालन किया जा रहा है।

जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जानै जनु आइ खोटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा ॥२॥

अर्थ : जिसे अच्छे भाव से हित जानकर देखते हैं वह समझता है कि मेरी

आयु क्षीण हुई। फिर जनक ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

व्याख्या : इतनी श्रद्धा से दण्डवत् प्रणाम हो रहा है पर परशुरामजी किसी की ओर आँख उठाकर देखते भी नही। आशीर्वाद न देने का एक कारण भी है कि अभी यह पता नही है कि धनुष किसने तोड़ा है। यदि धोखे से आशीर्वाद दे देंगे तो धनुषभंग के अपराध पर उसका वध कैसे करेंगे ? यथा : सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा। राजा इतने भयभीत हैं कि प्रणाम करते चले जाते हैं। यदि किसी के पिता के नाम सुनने से या स्वय उसके नाम सुनने से स्मरण आगया कि यह कुल तो ब्रह्मण्य है तो उसपर इतनी कृपा हुई कि उसकी ओर स्वाभाविक दृष्टि से देखा पर उसने समझा कि मैं मरा।

जनकजी उस जगह नहीं रहे। जहाँ थे वहाँ से आकर सब राजाओ के दण्डवत् के बाद सिर नवाया। न दण्डवत् किया न पिता का नाम लेकर अपने नाम का उच्चारण किया। जनकजी से परिचय विशेष है। इनका आदर भी मुनिसमाज मे बहुत अधिक है। इनपर सामान्य नियम लागू नही है। पर इन्हे भी आशीर्वाद नही दिया। जनकजी बुद्धिमान् हैं। सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया। जगदम्बा के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें आशीर्वाद दिया सौभाग्यवती भव।

आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गई सयानी ॥
विस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई ॥३॥

अर्थ : आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं। बड़ी चतुर थीं अपने समाज मे लिवा ले गईं। तब विश्वामित्रजी आकर मिले और चरणकमलो में दोनो भाइयो को डाल दिया।

व्याख्या : सखी चतुर हैं। जानती हैं कि यहाँ आशीर्वाद बहुत सस्ता नही है। जो आशीर्वाद दिया उसे कार्य मे परिणत करना चाहेंगे। कम से कम स्वय तो ऐसा आचरण नही करेंगे। जिसमें उनका आशीर्वाद मिथ्या पड़ जाय। जब समराङ्गण मे आने पर रथ से उतरकर कार्तवीर्यार्जुन ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तो इन महात्मा ने यही आशीर्वाद दिया कि तुम्हे उत्तम लोक की प्राप्ति हो। अतः इनके आशीर्वाद का मूल्य है। अब इनसे रामजी को भय नही है क्योंकि सीताजी को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दे चुके हैं। अतः सखियाँ हर्षित हुईं। अपने समाज में अर्थात् रानियो के पास ले गईं। राजसमाज अपना समाज नही है।

तत्पश्चात् विश्वामित्र जी आकर मिले। सम्बन्धी हैं इसलिए मिले। सबसे ऊँचे मञ्च पर बैठे थे उसपर से उतर कर आये। दोनो भाइयो को साथ लिवाते आये और उनको उसी भाँति मुनिचरणो में डाल दिया जिस भाँति महाराज दशरथ ने उनके चरणो मे डाल दिया था। यथा : मुनि चरनन मेले सुत चारी। जनकजी ने अपनी पुत्री के लिए आशीर्वाद ले लिया तो विश्वामित्रजी ने अपने शिष्यों को आशीर्वादार्थ उन्हे उनके चरणो मे डाला।

तन जनु वीर रस आएउ जहँ सब भूप कि इन्ही मे से किसी ने धनुष तोड़ा होगा। रामजी शृगार मे वीर रस की भाँति आये थे। यथा देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा। परशुरामजी मुनि वेष मे वीर रस की भाँति आये।

रामजी	परशुरामजी
सरदचन्द निंदक मुख नीके।	सीस जटा ससि बदन सुहावा।
चितवन चारु मारमद हरनी।	सहजहु चितवत मनहु रिसाते।
वृषभ कध केहरि ठवनि।	वृषभ कध उर बाहु बिसाला।
भाल बिसाल तिलक झलकाही।	*भाल बिसाल त्रिपुड बिराजा।*
कटि तूनीर पीत पट बाँधे।	कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे।
करसर धनुष बाम वर काँधे।	धनु सरकर कुठार कल काँधे।
प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे।	देखि महीप सकल सकुचाने।

प्रादेश मात्र दिखलाया गया। दोनो स्वरूपो का यहाँ पूरा मिलान करना चाहिए।

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दड प्रनामा॥१॥

अर्थ भृगुपति का कराल वेष देखकर डर से विकल होकर राजा लोग उठे। पिता के समेत अपना नाम कह कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

व्याख्या पहिले खरभर देखकर पुर नर नारी विकल हुए थे। गालमाल मचानेवाले ये राजा ही थे। सो बाज झपट जिमि लवा लुकाने। लवा की भाँति छिप गये। इसलिए परशुरामजी को दूर से देखते ही सब गोलमाल शान्त हो गया। दूर से तो शान्त वेष म देखा था पर निकट आने पर कराल वेष प्रकट हुआ। भृकुटी कुटिल नयन रिसिराते। सहजहुँ चितवत मनहु रिसाते। कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। कर सर धनु कुठार कल काँधे। तब राजा लोग डर से विकल हुए। जहाँ छिपे थे वहाँ से उठे। क्योकि परशुरामजी से सभी राजा परिचित थे।

शास्त्रोक्त विधि से दण्डवत् प्रणाम प्रारम्भ हुआ। विधि यह है कि पिता के सहित अपना नाम लेकर बडो को प्रणाम करे। सो अमुकस्य पुत्रोऽमुकवर्माहम् भो महर्षे त्वामभिवादये। ऐसा कहकर साष्टाग प्रणाम करने लगे। स्वय विश्वामित्रजी के आने पर न ये सब उठे थे और न प्रणाम किया था। अत यह प्रणाम श्रद्धातिरेक से नही हो रहा है मारे भय के हो रहा है। कही वे कायदे प्रणाम करने पर अप्रसन्न न हो जाँय इसलिए शास्त्र की विधि का पालन किया जा रहा है।

जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खोटानी॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥२॥

अर्थ जिसे अच्छे भाव से हित जानकर देखते है वह समझता है कि मेरी

आयु क्षीण हुई। फिर जनक ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

व्याख्या इतनी श्रद्धा से दण्डवत् प्रणाम हो रहा है पर परशुरामजी किसी की ओर आँख उठाकर देखते भी नही। आशीर्वाद न देने का एक कारण भी है कि अभी यह पता नही है कि धनुष किसने तोडा है। यदि धोखे से आशीर्वाद दे देंगे तो धनुषभग के अपराध पर उसका वध कैसे करेंगे ? यथा सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा। राजा इतने भयभीत हैं कि प्रणाम करते चले जाते हैं। यदि किसी के पिता के नाम सुनने से या स्वय उसके नाम सुनने से स्मरण आगया कि यह कुल तो ब्रह्मण्य है तो उसपर इतनी कृपा हुई कि उसकी ओर स्वाभाविक दृष्टि से देखा पर उसने समझा कि मैं मरा।

जनकजी उस जगह नही रहे। जहाँ थे वहाँ से आकर सब राजाओ के दण्डवत् के बाद सिर नवाया। न दण्डवत् किया न पिता का नाम लेकर अपने नाम का उच्चारण किया। जनकजी से परिचय विशेष है। इनका आदर भी मुनिसमाज मे बहुत अधिक है। इनपर सामान्य नियम लागू नही है। पर इन्हे भी आशीर्वाद नही दिया। जनकजी बुद्धिमान् हैं। सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया। जगदम्बा के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव पडा कि उन्हे आशीर्वाद दिया सौभाग्यवती भव।

आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गई सयानी॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥३॥

अर्थ • आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं। बडी चतुर थी अपने समाज मे लिवा ले गईं। तब विश्वामित्रजी आकर मिले और चरणकमलो मे दोनो भाइयो को डाल दिया।

व्याख्या • सखी चतुर हैं। जानती हैं कि यहाँ आशीर्वाद बहुत सस्ता नही है। जो आशीर्वाद दिया उसे कार्य मे परिणत करना चाहेंगे। कम से कम स्वय तो ऐसा आचरण नही करेंगे। जिसम उनका आशीर्वाद मिथ्या पड जाय। जब समराङ्गण मे आने पर रथ से उतरकर कार्त्तवीर्यार्जुन ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तो इन महात्मा ने यही आशीर्वाद दिया कि तुम्हे उत्तम लोक की प्राप्ति हो। अत इनके आशीर्वाद का मूल्य है। अब इनसे रामजी को भय नही है क्योकि सीताजी को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दे चुके हैं। अत सखियाँ हर्षित हुईं। अपने समाज मे अर्थात् रानियो के पास ले गईं। राजसमाज अपना समाज नही है।

तत्पश्चात् विश्वामित्र जी आकर मिले। सम्बन्धी हैं इसलिए मिले। सबसे ऊँचे मञ्च पर बैठे थे उसपर से उतर कर आये। दोनो भाइयो को साथ लिवाते आये और उनको उसी भाँति मुनिचरणो मे डाल दिया जिस भाँति महाराज दशरथ ने उनके चरणो मे डाल दिया था। यथा मुनि चरनन मेले सुत चारी। जनकजी ने अपनी पुत्री के लिए आशीर्वाद ले लिया तो विश्वामित्रजी ने अपने शिष्यो को आशीर्वादार्थ उन्हे उनके चरणो मे डाला।

राम लपन दशरथ के ढोटा । दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन । रूप अपार मार मद मोचन ॥४॥

अर्थ · राम लक्ष्मण दशरथ के बेटे हैं। अच्छी जोडी देखकर आशीर्वाद दिया। रामजी को देखते ही रह गये। आँखें थक गईं। रूप का पारावार नही था। कामदेव के अभिमान को दूर करनेवाला रूप था।

व्याख्या जब मुनि ने कहा कि ये राम लक्ष्मण दशरथ के बेटे हैं तब आँख उठाकर देखा कि बडी अच्छी जोडी है। आशीर्वाद दिया चिरञ्जीव। इतने समाज मे तीनो को आशीर्वाद मिला। सीताजी को, रामजी को और लक्ष्मणजी को। इनपर धनुषभग की आशङ्का भी नही हो सकती थी। इन सुकुमार मधुर मूर्तियो की शक्ति के बाहर की बात समझी। दोनो भाइयो मे भी दृष्टि पीछे से रामजी पर स्थिर हो गई। ऐसा उदाहरण सभी जगह मिलेगा। रूप के भार के सहन मे असमर्थ होकर आँखें थक गईं। रूप का पारावार ही नही मिलता था। ऐसा रूप था कि देखकर काम को अपनी सुन्दरता का अभिमान छूट जाय। थोडी देर के लिए परशुरामजी क्रोध भूल गये।

दो बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु काह अति भीर ।
पूँछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोपु सरीर ॥२६९॥

अर्थ फिर देखकर विदेह से कहा कि कहो इतनी भीड क्यो है? जानकर भी अनजान की भाँति पूछते हैं। उनके शरीर मे क्रोध व्याप्त हो गया।

व्याख्या फिर राजा जनक को देखा। उन्ही के मुख से धनुषभङ्ग कहलाना चाहते है और उन्ही से धनुषभङ्ग करनेवाले का नाम जानना चाहते हैं। अत पूछते हैं इतनी भीड क्यो है? भीड के लिए प्रश्न राजा के यहाँ नही बनता। क्योकि वहाँ सदा ही भीड बनी रहती है। परन्तु अति अधिक भीड जिसमे द्वीप द्वीप के राजा इकट्ठे हो के लिए कारण विशेष होना चाहिए। जान बूझकर अनजान की भाँति पूछने का यही कारण है। रामजी के दर्शन से क्रोध दब गया या वह प्रश्न करने मे उमडकर तमाम शरीर मे व्याप्त हो गया।

समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत वचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखण्ड महि डारे ॥१॥

अर्थ जिस कारण सब राजा लोग आये थे वह सब समाचार जनकजी ने कह सुनाया। वचन सुनते ही घूमकर दूसरी ओर देखा तो धनुष के दोनो खण्डो को पृथ्वी पर पडा हुआ पाया।

व्याख्या - नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुरुपरिजन। करि मत रचेउ स्वयवर सिवधनु धरि पन जा म। यही समाचार था। सो जनकजी ने सुना दिया कि पुत्री की विवाह की चिन्ता से धनुषयज्ञ रचा गया है। यहाँ विदेहन

कहकर जनक कहने का यह आशय है कि जनक का अर्थ पिता है। पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए उद्योग करता ही है। इस भाँति कहहु कहा अति भीर का उत्तर दिया कि राजाओ के एकत्र होने का यह कारण है। कुछ आपके विरोध मे परामर्श के लिए नही एकत्रित हुए है।

परशुरामजी कञ्चनमञ्च के सामने आ खडे हुए थे। यथा आये जहँ सब भूप। इसलिए वेदी पीछे पड गई थी। जनकजी का वचन सुनकर जब घूमकर वेदी की ओर देखा। यथा अति विस्तार चारु गच ढारी। विमल वेदिका रुचिर सँवारी। तो धनुष के दोनो खण्डो को पृथ्वी पर पडा हुआ देखा। पहिले धनुष लोहे की पेटिका मे रक्खा था। यथा तामादाय समञ्जूपामायसी यत्र तद्धनु। वा०। गुरुका धनुष सब प्रकार पूजनीय था। उसे टूटा हुआ और उसके टुकडो को पृथ्वी पर पडा हुआ देखना, रौद्ररस के उद्दीपन के लिए यथेष्ट कारण हुआ।

अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड जनक धनुष कै तोरा॥
वेगि देखाउ मूढ न त[1] आजू। उलटौं महि जहँ लहि तव राजू॥२॥

अर्थ अत्यन्त क्रोध से कठोर वचन बोले रे जड जनक! बतला धनुष किसने तोडा? जिसने तोडा हो उसे जल्दी दिखला नही तो जहाँ तक तेरा राज्य पाऊँगा उतनी पृथ्वी उलट दूँगा।

व्याख्या धनुष के तोडने पर 'रिस' और टुकडो को पृथ्वी पर फेंकने पर अतिरिस है। अतिरिस मे कठोर वचन बोलना स्वाभाविक है। मुनियो के ज्ञानदाता जनक को मूढ कहना कठोर वचन है। पुरवासी स्नेहवश दोष लगाते थे। यथा हरु विधि वेगि जनक जडताई। ये क्रोधवश दोष लगाते है। जनक जी को जड कह रहे हैं। शिवधनु को प्रण मे रखना जडता है। अब अपराधी को जानना चाहते हैं। अत पूछते हैं धनुष कै तोरा?

उत्तर देने मे देर होते देखकर मूढ कहते हैं। माया मे फँसकर जामाता को नही बतलाना चाहता। अत कहते हैं जल्दी बतला। प्रजापालक राजा है प्रजापालन से ही इसका नाम जनक पडा है। प्रजाओ के नाश के भय से बतला देगा। नही बतलाने से वह भी नही बच सकता जिसको नही बतलाना चाहता है। वह धनुष तोडनेवाला तेरे राज्य के भीतर ही होगा। अत जहाँ तक तेरा राज्य मिलेगा वहाँ तक की पृथ्वी उलट दूँगा। यह घोरधार भृगुनाथ रिसानी है। राज्य उलटने को तैयार हैं।

अति डर उतरु देत नृपु नाही। कुटिल भूप हरषे मन माही॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहि सकल त्रास उर भारी॥३॥

अर्थ अत्यन्त डर से राजा उत्तर नही देते। कुटिल राजा मनही मन प्रसन्न

---

१ व्याज निन्दा अलङ्कार है।

हुए। देवता, मुनि, नाग, नगर के स्त्री पुरुष, सबके सब अत्यन्त त्रस्त होकर सोच कर रहे है।

व्याख्या परशुरामजी अत्यन्त क्रोध से बोले। अत अत्यन्त डर से राजा उत्तर नही देते। उत्तर देने मे अनर्थ है। न देने से क्रोध उनके सिर बीते सो स्वीकार है। जामाता की किसी भाँति रक्षा हो। उधर कुटिल भूप मनही मन प्रसन्न हुए कि बडा काम हुआ जो हमसे धनुष नही टूटा। अब हुआ जनक का सत्यानाश। ये छोकडे वडे वीर बने फिरते थे। ये भारी भयानक है। ससार से उठ जायँ तभी ठीक हो। हर्ष व्यक्त करने से कही हमारे ही सिर न बीत जाय। अत मनही मन प्रसन्न होते हैं। बाहर नही जनाते। भयभीत बने खडे है।

सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा। ये लोग कल्याण चाहनेवाले थे। सबके सब रावण से दु खी थे। यथा किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा। रामजी के ही हाथ से रावणवध होनेवाला था। सो रामजी पर ही भारी विपत्ति आते देखकर सब त्रस्त होकर चिन्ता करते हैं। परशुरामजी पर किसी का बल नही चल सकता था। इनके क्रोध से उन लोगो को रामजी के प्रति भी शङ्का हो गई। राजा जनक को भी काल के गाल मे देख रहे हैं।

मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात बिगारी ॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कलप सम बीता ॥४॥

अर्थ सीता की माता मनमे पछता रही हैं कि ब्रह्मा ने तो अब सँवारी हुई बात ही बिगाड दी। भृगुपति का स्वभाव सुनकर सीताजी को तो आधा पलक कल्प के समान बीतने लगा।

व्याख्या जनकजी पर सकट देखकर सीताजी की माता पछताती हैं कि धनुष टूटने से मेरी बात बन गई थी। सो सब बनी बनाई बात बिगडना चाहती है। महाराज परशुरामजी के प्रश्न का उत्तर न देकर उनके क्रोध के वेग को अपने ऊपर ले रहे हैं। इनके क्रोध से न महाराज की रक्षा है और न रामजी की। पहिले तो कन्या पर सकट था। धनुष नही टूटता था। धनुष टूटने से वह सकट टला। तब पुत्री और पति दोनो पर सकट आगया। सब बात ही बिगड गई। यदि महाराज धनुष तोडनेवाले का नाम नही बतलाना चाहते तो इतने आदमियो म कोई न कोई बतला ही देगा और उसीको खोजते हुए ये क्रुद्ध होकर आये हैं। इनका स्वभाव बडा निर्दय है। जिसपर क्रोध करते हैं उनके वश मे किसी को नही छोडते। सब बात ब्रह्मा ने बिगाडी। नही तो इस समय इनके आने की कौन सी बात थी। कोई अनर्थ हुआ चाहता है।

सीताजी ने जब परशुरामजी का स्वभाव सुना तो इतने कष्ट मे पडी कि उनको आधा निमेष कल्प के समान बीतने लगा। पहिले लवनिमेष युग सय सम जाही।

फिर रामजी के धनुष के पास आने पर ऐसी विकलता हुई कि निमिष विहात कल्प सम तेही। इस समय उससे भी दूनी विकलता है। इसलिए कहते हैं कि अर्ध निमेष कल्प सम बीता।

दो. सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरषु बिषादु कछु, बोले श्रीरघुबीर ॥२७०॥

अर्थ : सब लोगों को भयभीत देखकर और जानकी पर कष्ट जानकर श्रीरघुवीर बोले। न उनके मनमे कोई हर्ष था न विषाद था।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि सब जनकपुरवासी तथा सुर मुनि नाग सब भयभीत है। जानकोजी को जब एक निमिष कल्प सम हुआ तब धनुष को तोड डाला। अब देखते हैं तो आधा निमिष कल्प के समान बीत रहा है तो बोले। भाव यह कि महाराज यदि नही बतलाते तो मैं स्वय अपने को उपस्थित करता हूँ। मनमे हर्ष विषाद नही कहने का यह भाव है कि रामजी का मन सदा निर्विकार है। धनुष भङ्ग का हर्ष नही है और न परशुराम के क्रोध पर विषाद है। प्रसन्नता या न गताभिषेकतः तथा न मम्ले वनवासदु खत । मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा। इसीलिए श्री ग्रन्थकार ने रघुवीर पद दिया। उत्तर देने मे न हिचकने का स्वभाव रघुवश मात्र का है। यथा : बस स्वभाव उत्तर तेहिं दीन्हा। घाट सुबद्ध राम बर बानी।

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दासु तुम्हारा॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥१॥

अर्थ : हे नाथ! शिवजी का धनुष तोडनेवाला तुम्हारा कोई एक दास होगा। क्या आज्ञा है? मुझसे क्यो नही कहा जाता? सुनकर क्रोधी मुनि चिढकर बोले।

व्याख्या : वर्णाना ब्राह्मणो गुरु । अत नाथ सम्बोधन करते हैं। प्रश्न है धनुष के तोरा? उत्तर देते हैं : कोउ एक दास तुम्हारा। गर्व गरुआई सँभालते हैं। आपके दासो को छोड़कर और किसका सामर्थ्य है जो धनुष तोड सके। आप किसी प्रतिस्पर्धी की शङ्का न करें। विनीत भाव से स्पष्ट कह रहे हैं कि मैंने तोडा है। पर मैं आपका दास हूँ प्रतिस्पर्धी नही हूँ। धनुष तोडनेवाले को पूछने से अभिप्राय यही है कि उसके लिए कोई आज्ञा होनेवाली है। सो वह आज्ञा मुझे दीजिये। अब बात और भी स्पष्ट कर दी कि मैंने तोड़ा और तोड़नेवाले के लिए जो कुछ कहना हो सो मुझसे कहिये। क्रोधी मनुष्य शीघ्र बात नही समझता। इन्होने भी नही समझी। इतना ही समझा कि यह तोडनेवाले की सिपारिश करता है। उसे दास बतला रहा है। यहाँ ध्वनि यह थी कि अब आपको कुछ करना नही है। आप आनन्द से तपस्या करिये। जिन कामो के लिए आपका अवतार है वह मर मैं अपने ऊपर

लिए लेता हूँ। आप अब केवल आज्ञा देते जाइये। मैं सब करूँगा। परम बुद्धिमान् होने पर भी क्रोध के कारण ध्वनि नहीं समझ सके। उलटे चिढ उठे और बोले।

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई ॥
सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥२॥

अर्थ सेवक वही है जो सेवक का काम करे। शत्रु का काम करके तो लडाई करनी चाहिए। सुनो राम जिसने शिवधनु तोडा है वह सहस्रबाहु की भाँति मेरा शत्रु है।

व्याख्या : आयसु काह कहहु किन मोही का उत्तर परशुरामजी देते हैं कि जो सेवा करता है उसे आज्ञा दी जाती है। और जो इष्ट का नाश करे वही तो शत्रु है। उसने लडाई ठानकर इष्ट नाश किया है। उससे लडाई ही करनी चाहिए। शिवधनुभङ्ग हमारे लिए बडा भारी अनिष्ट है। जिसने उसे तोडा वह पितृहन्ता के समान शत्रु है। उससे बडा हमारा शत्रु कोई हो नही सकता। उसे हम आज्ञा नही दे सकते। उसका हम वध करेंगे।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहैं सब राजा ॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने ॥३॥

अर्थ उसे समाज से अलग करके खडा करो। नही तो सब राजे मारे जायँगे। मुनि का वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुसकराये और परशुराम का अपमान करते हुए बोले।

व्याख्या यदि आज्ञा ही चाहते हो तो यही आज्ञा है कि मेरे उस शत्रु को राजसमाज से अलग कर दो। मैं उससे युद्ध करूँ और यदि वह अलग न होना चाहता हो तो कुशल चाहनेवाले राजा उसे छोडकर हट जायँ। यदि ऐसा नही होता तो मैं सब राजाओं को उसका साथी समझूँगा। सबको मार डालूँगा। उसी में वह भी मारा जायगा।

जनकजी के वीर बिहीन मही कहने से जिस लक्ष्मण ने रामजी का अपमान माना था उसी लक्ष्मण ने न त मारे जैहैं सब राजा इस वचन से भी रामजी का अपमान माना। उनके इस वचन पर मुसुकराये कि मुनि के ऐसे वचन! ये तो केवल मुनि का स्वाँग बनाये हैं। अत परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले।

बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू ॥४॥

अर्थ लडकपन में तो बहुत सी धनुहियाँ तोडी हैं। परन्तु गोसाईं! आपने ऐसा क्रोध तो कभी नही किया। इस धनुष पर इतनी ममता होने का कारण क्या है? सुनकर भृगुकुल केतु पताका चिढकर बोले।

व्याख्या लडकपन से ही हमलोगों को धनुष का व्यसन है। खेलवाड में

भी धनुहिया से काम लेते थ। कितनी धनुहियाँ उस खेलवाड म टूटी। इसका क्या ठिकाना। उनके टूटने पर आप मनही मन अप्रसन्न हुए हो तो वात दूसरी है। पर ऐसा क्रोध तो कभी नही किया कि उनके टूटने पर लडने को तैयार हुए हो। श्रीरामजी ने नाथ कहा है। इसलिए ये भी गोसाईं सम्बोधन करते हैं और वडा मानकर ही प्रश्न कर हैं कि वडा का कत्तव्य है कि अनिष्टाचरण से छोटा को आरम्भ से ही निवृत्त करें। सो आपने कभी नही किया। अत मालूम होता है कि इस धनुप म कुछ विशेपता थी। जिसके कारण आपकी इसपर ममता थी उस विशेपता को जानने के लिए प्रश्न करते हैं। भाव यह कि जैसे लडकपन की धनुहियाँ आपकी नही थी उसी भाति यह धनुप भी आपका नही था। यथा रावरी पिनाक मे सरीकता कहाँ रही। और इस धनुप म कुछ तत्त्व भी नही था। ऐसा उत्तर पाकर भृगुकुल केतु हैं भृगु ने विष्णु भगवान् को लात मारी थी। उस कुल की पताका हैं। बिगड गये कि शिवधनु का धनुही से समता दे रहा है।

दो रे नृप वालक कालवस, वोलत तोहि न सभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु विदित सकल ससार ॥२७१॥

अर्थ रे राजा के लडके! तू कालवश हो रहा है। सँभालकर नही वोलता। विश्वविख्यात त्रिपुरारि का धनुप धनुहो के समान है?

व्याख्या नृप वालक कहने का भाव यह कि लडकपन की वातें करता है। मुझसे लडकपन की वात करना काल के गाल मे जाना है। जिनके सिरपर काल सवार होता है वे ही ऐसी वेसँभाल वात मुझसे करते हैं। त्रिपुरारि का धनुप मेरुमन्दर का जोडीदार है। उसे तू धनुही के समान बतला रहा है। इस धनुप को तो सारा ससार जानता था। तेरी धनुहियो को कौन पूछता है। ऐसा ही उत्तर पाने के लिए ही लक्ष्मण जी ने वहु धनुही तोरी लरिकाई आदि कहा था। अव ऐसा उत्तर पा जाने पर उन्हे अवाक् करने म सुभीता होगा। यथा वचन चय चातुरी परसुधर गर्वहर वि प।

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव मव धनुप समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नएन के भोरे॥१॥

अथ लक्ष्मणजी ने हँस के कहा कि हमारी समझ म तो सब धनुप समान ही थे। पुराने धनुप क तोडने म न कोई लाभ था न हानि थी। रामजी ने तो उसे नये के धाखे से परखा था।

व्याख्या पहिले न त मारे जैहु सव राजा सुत्रर मुमङ्गय थे। अव रे नृप वालक कालवस वोलत तोहि न सँभार। धनुही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल ससार। इतना कहने पर तो हँस पडे। बोले कि यह तो आप अपनी समझ की वात कहते हैं। हमारी समझ म तो जैसी य धनुहियाँ थी वैसा ही यह धनुप था। देव सम्बोधन का भाव यह कि आप महिदेव हैं। ब्राह्मण देवता हैं। आपका

यह काम नही है। अत आपको कठिन जान पडा। हम क्षत्रिय हैं। हमारा काम है। हमें सहज सरल जान पडता है। अत हमारे लिए दोनो समान ही हैं।

अनादि देव महादेव का धनुष न जाने किस युग का था। बहुत पुराना हो गया था। उसके तोडने मे कोई हानि नही थी। टूटे ही के बराबर था। उसे तोडने मे लाभ भी कुछ नही था। क्योकि उस पुराने धनुष के तोडने मे कोई वाहवाही नही थी। जिसके टूटने से हानि लाभ कुछ नही उसके लिए अप्रसन्न होने का कोई कारण नही है। रामजी ने नये के धोखे से उसे परखा था कि देखे इसमे कुछ दम है कि नही। लक्ष्मण जी ने इस भाँति स्पष्ट नाम भी बतला दिया।

छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥२॥

अर्थ · छूते ही तो टूट गया। रघुपति का कोई दोष नही है। मुनिजी! व्यर्थ क्रोध क्यो करते हो। परशु की ओर देखकर बोले क्यो रे सठ! तूने मेरा स्वभाव नही सुना है?

व्याख्या यदि कहो कि लाभ हानि हो चाहे न हो तुमने क्यो तोडा? इस पर कहते है कि इतना पुराना था कि छूते ही टूट गया। रामजी का कुछ दोष नही। आप ही व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं। रामजी का नाम बतलाने पर भी ऐसी बात बोले कि क्रोध की धारा रामजी की ओर न जाकर लक्ष्मण की ओर घूम गई। सब पुर नर नारी साक्षी हैं किसने रामजी को लेते चढाते देखा है? रामजी ने उठाया और वह पुराना धनुष आपसे आप टूट गया।

लक्ष्मणजी बोले और परशुधर का अपमान किया। अत वे भी परशु की ओर देखकर बोलते हैं। परशु की ओर देखने का भाव लक्ष्मण को दिखाने से है कि इसे देखता है या नही? केवल मेरी बात काटने के लिए ऐसे महद् धनुष को ऐसा तुच्छ बतलाता है और अपना अलौकिक बल स्थापन कर रहा है। इसका उत्तर सग्राम ही है। तू शठ है। सहस्रो कपट की सूइयो को चतुराई से छिपाता है। यथा कपट सार सूची सहस बाँधि वचन पर वास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास। मेरा स्वभाव प्रसिद्ध है। कपटी को तो मार ही डालता हूँ। कदाचित् तूने मेरा स्वभाव नही सुना है वस्तुतस्तु बडे दयालु है। डराने के लिए अपने को निष्ठुर बतला रहे हैं।

बालक बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रीकुल द्रोही॥३॥

अर्थ बालक समझकर तुझे नही मारता हूँ। अरे जड! तूने मुझे निरा मुनि ही समझ रक्खा है। मै बाल ब्रह्मचारी हूँ। अत्यन्त क्रोधी हूँ और ससार जानता है मै क्षत्रियवश का वैरी हूँ।

व्याख्या · तू आरम्भ से ही कपट की बात बोलता है। मैं पहिले ही उत्तर मे मार देता। पर बालक समझकर छोड दिया। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू कहा। तो तूने मुझे केवल मुनि ही जान लिया। तू जड है। वेसमझ है। मेरा परशु नही देखता। मुनि तो ऐसा हूँ कि दारपरिग्रह ही नही किया। अत अक्षत वीर्य हूँ। मैं निर्वल मुनियो की भाँति क्षमाशील नही हूँ। क्षत्रिय लोग शान्त दान्त मुनियो को तुच्छ समझते है। उनका अपमान करते हैं। वे बिचारे सह जाते हैं। परन्तु मैं अतिक्रोधी हूँ। असहनशील हूँ। इसलिए क्षत्रिय कुल से मेरा वैर जगद्विख्यात है। सव योग वध का ही है। केवल तेरे वचपन पर दया आती है। इस भाँति अपना प्रताप कहा। परशुरामजी सदा शिव शिव शिव शिव इस मन्त्र का जप शत्रु के नाश के लिए किया करते थे। यथा शिव शिव शिव शिव मन्त्रममु जपमानमरिक्षयहेतुम्। रा गी गो।

भुजवल भूमि भूप विनु कीन्ही। विपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु विलोकु महीपकुमारा ॥४॥

अर्थ भुजा के वल से मैंने पृथ्वी को राजाओ से रहित कर दिया और अनेक वार ब्राह्मणो को दिया। सहस्रवाहु की भुजाओ को काटनेवाले इस परशु को हे राजकुमार! तू देख।

व्याख्या : क्रोध भी मेरा अमोघ है। विना सेना के केवल भुजवल से इक्कीस बार पृथ्वी बिना क्षत्रिय की कर दी और ब्राह्मणो को दे दी परशुरामजी केवल युद्धवीर ही नही बडे भारी दानवीर भी थे। दानी भी इनसा कोई हुआ नही। नि क्षत्र करके सप्तसमुद्र मुद्रित मही के दान करनेवाले ये ही थे। दान पाकर अपने पट्कर्म मे बाधा पडते देखकर ब्राह्मणो ने क्षत्रियो को पृथ्वी लौटा दी। दोबारा फिर नि क्षत्र करके पृथ्वी ब्राह्मणो को दी। इस भाँति बीस वार हुआ। इक्कीसवी वार महर्षि कश्यप ने इनसे दान मे पृथ्वी लेकर आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी छोड दो। परशुरामजी ने छोड दिया। समुद्र से अपने रहने के लिए स्थान माँगा। समुद्र ने हटकर महेन्द्राचल पर्वत को इनके रहने के लिए दिया। तव से इनका वही निवास है। चिरञ्जीवी हैं। उसी पर रहते हैं। अर्थात् दिन को कही रहे, रात को विश्राम उसी पर्वत पर करते हैं।

परशु की ओर देखकर बोलना प्रारम्भ किया था। अब स्पष्ट कहते हैं · इस परशु को देख! है ऐसा परशु किसी के पास। इसी ने सहस्रार्जुन के हजारो बाहुओ का छेदन किया है। एक भुजा शेष न छोडी। तेरी इन भुजाओ में क्या है? इस भाँति अपना रोष कहा।

दो मातु पितहि जनि सोच वस, करसि महीसकिसोर।
गरभन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२७२॥

अर्थ · अरे राजा के लडके! तू अपने माता पिता को शोक के वश न कर। गर्भ के बच्चो को भी मारनेवाला मेरा परशु वडा घोर है।

यह काम नही है। अत आपको कठिन जान पडा। हम क्षत्रिय हैं। हमारा काम है। हमे सहज सरल जान पडता है। अतः हमारे लिए दोनो ममान ही हैं।

अनादि देव महादेव का धनुप न जाने किस युग का था। बहुत पुराना हो गया था। उसके तोडने मे कोई हानि नही थी। टूटे ही के बरावर था। उसे तोडने मे लाभ भी कुछ नही था। क्योकि उस पुराने धनुप के तोडने मे कोई वाहवाही नही थी। जिसके टूटने से हानि लाभ कुछ नही उसके लिए अप्रसन्न होने का कोई कारण नही है। रामजी ने नये के धोखे से उसे परखा था कि देखें इसमे कुछ दम है कि नही। लक्ष्मण जी ने इस भाँति स्पष्ट नाम भी वतला दिया।

छुवत टूट रघुपतिहिं न दोपू। मुनि विनु काज करिअ कत रोपू॥
वोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥२॥

अर्थ : छूते ही तो टूट गया। रघुपति का कोई दोप नही है। मुनिजी! व्यर्थ क्रोध क्यो करते हो। परशु की ओर देखकर बोले क्यो रे सठ। तूने मेरा स्वभाव नही सुना है ?

व्याख्या : यदि कहो कि लाभ हानि हो चाहे न हो तुमने क्यो तोडा ? इस पर कहते हैं कि इतना पुराना था कि छूते ही टूट गया। रामजी का कुछ दोप नही। आप ही व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं। रामजी का नाम वतलाने पर भी ऐसी बात वोले कि क्रोध की धारा रामजी की ओर न जाकर लक्ष्मण की ओर घूम गई। सब पुर नर नारी साक्षी हैं किसने रामजी को लेते चढाते देखा है ? रामजी ने उठाया और वह पुराना धनुप आपसे आप टूट गया।

लक्ष्मणजी वोले और परशुधर का अपमान किया। अत. वे भी परशु की ओर देखकर वोलते हैं। परशु की ओर देखने का भाव लक्ष्मण को दिखाने से है कि इसे देखता है या नही ? केवल मेरी बात काटने के लिए ऐसे महद् धनुप को ऐसा तुच्छ बतलाता है और अपना अलौकिक वल ख्यापन कर रहा है। इसका उत्तर सग्राम ही है। तू शठ है। सहस्रो कपट की सूइयो को चतुराई से छिपाता है। यथा : कपट सार सूची सहस बाँधि वचन पर वास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास। मेरा स्वभाव प्रसिद्ध है। कपटी को तो मार ही डालता हूँ। कदाचित् तूने मेरा स्वभाव नही सुना है : वस्तुतस्तु वडे दयालु हैं। डराने के लिए अपने को निष्ठुर वतला रहे है।

वालक वोलि वधौ नहिं तोही। केवल मुनि जड जानहि मोही॥
वाल ब्रह्मचारी अति कोही। विस्व विदित छत्रीकुल द्रोही॥३॥

अर्थ वालक समझकर तुझे नही मारता हूँ। अरे जड! तूने मुझे निरा मुनि ही समझ रक्खा है। मैं वाल ब्रह्मचारी हूँ। अत्यन्त क्रोधी हूँ और ससार जानता है में क्षत्रियवश का वैरी हूँ।

व्याख्या : तू आरम्भ से ही कपट की बात बोलता है। मैं पहिले ही उत्तर मे मार देता। पर बालक समझकर छोड दिया। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू कहा। तो तूने मुझे केवल मुनि ही जान लिया। तू जड है। बेसमझ है। मेरा परशु नहीं देखता। मुनि तो ऐसा हूँ कि दारपरिग्रह ही नही किया। अत अक्षत वीर्य हूँ। मैं निर्बल मुनियो की भाँति क्षमाशील नही हूँ। क्षत्रिय लोग शान्त दान्त मुनियो को तुच्छ समझते हैं। उनका अपमान करते हैं। वे बिचारे सह जाते हैं। परन्तु मैं अतिक्रोधी हूँ। असहनशील हूँ। इसलिए क्षत्रिय कुल से मेरा वैर जगद्विख्यात है। सब योग वध का ही है। केवल तेरे वचपन पर दया आती है। इस भाँति अपना प्रताप कहा। परशुरामजी सदा शिव शिव शिव शिव इस मन्त्र का जप शत्रु के नाश के लिए किया करते थे। यथा शिव शिव शिव शिव मन्त्रमम् जपमानमरिक्षयहेतुम्। रा गी गो।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥४॥

अर्थ भुजा के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओ से रहित कर दिया और अनेक बार ब्राह्मणो को दिया। सहस्रबाहु की भुजाओ को काटनेवाले इस परशु को हे राजकुमार! तू देख।

व्याख्या . क्रोध भी मेरा अमोघ है। बिना सेना के केवल भुजबल से इक्कीस बार पृथ्वी बिना क्षत्रिय की कर दी और ब्राह्मणो को दे दी परशुरामजी केवल युद्धवीर ही नही बडे भारी दानवीर भी थे। दानी भी इनसा कोई हुआ नही। नि क्षत्र करके सप्तमुद्र मुद्रित मही के दान करनेवाले ये ही थे। दान पाकर अपने पट्कर्म मे बाधा पडते देखकर ब्राह्मणो ने क्षत्रियो को पृथ्वी लौटा दी। दोबारा फिर नि क्षत्र करके पृथ्वी ब्राह्मणो को दी। इस भाँति बीस बार हुआ। इक्कीसवी बार महर्षि कश्यप ने इनसे दान मे पृथ्वी लेकर आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी छोड दो। परशुरामजी ने छोड दिया। समुद्र से अपने रहने के लिए स्थान माँगा। समुद्र ने हटकर महेन्द्राचल पर्वत को इनके रहने के लिए दिया। तब से इनका वही निवास है। चिरञ्जीवी हैं। उसी पर रहते हैं। अर्थात् दिन को कही रहे, रात को विश्राम उसी पर्वत पर करते हैं।

परशु की ओर देखकर बोलना प्रारम्भ किया था। अब स्पष्ट कहते हैं : इस परशु को देख! है ऐसा परशु किसी के पास। इसी ने सहस्रार्जुन के हजारो बाहुओ का छेदन किया है। एक भुजा शेष न छोडी। तेरी इन भुजाओं मे क्या है? इस भाँति अपना रोष कहा।

दो. मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीसकिसोर।
गरभन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२७२॥

अर्थ : अरे राजा के लडके! तू अपने माता पिता को शोक के वश न कर। गर्भ के बच्चो को भी मारनेवाला मेरा परशु बडा घोर है।

व्याख्या तू अपने माता पिता पर दया कर। राजा दशरथ बडा ब्रह्मण्य है। उसे वृद्धावस्था मे पुत्रशोक न हो। अपनी घोरता का आरोप परशु पर करते हैं। मैं क्रोध करने पर गर्भ के बच्चो तक को नही छोडता। उसके कुल का ही पूर्णत सहार कर देता हूँ। यदि तू न मानेगा तो मै बालक होने का ख्याल न करूँगा।

बिहँसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी[1] ॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उडावन फूंकि पहारू ॥१॥

अर्थ लक्ष्मण जी विहँसकर मृदुवाणी बोले। अहो मुनीश्वर! अपने को बडा योद्धा मानते हो। बार बार परशु दिखलाते हो। फूँककर पहाड उडा देना चाहते हो।

व्याख्या भगवान् रामचन्द्र या विश्वामित्र कोई लक्ष्मणजी को रोकता नही है। लक्ष्मणजी का उत्तर सबको प्रिय है। क्रम पर ध्यान दीजिये। परशुरामजी के न त मारे जैहे सब राजा कहने पर लक्ष्मणजी मुसुकराये। रे नृप बालक काल बस कहने पर हँसे। अब मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर कहने पर तो बिहँस पडे। वाणी मृदु है। पर भाव तीक्ष्ण है। कहते है कि आप मुनियो के ईश क्षात्र धर्म से एकबारगी अनभिज्ञ हैं। गर्भ के बालक को मारकर अपने को भट मानते हैं। गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर का उत्तर।

एक बार बोले चितै परसु की ओरा। दूसरी बार परसु बिलोकु महीप कुमारा कहा। सो बार बार मुझे परशु दिखाते हो मानो मैंने परशु देखा ही नही। मुझे भी गर्भ का अर्भक समझ रखा है। मै पहाड हूँ। आँधी चलने पर भी मेरा कुछ नही होता। परशु दिखाना तो फूँक है। आँधी से सेना का तात्पर्य। यथा जनु कज्जल की आँधी चली। सहस बाहु भुज छेदन हारा। परसु बिलोकु महीप कुमारा का यह उत्तर दिया कि मुझे परसु देखने से क्रोध होता है। इसे उन्हे दिखाओ जो दण्डवत् करते हैं।

इहाँ कुम्हड बतिया कोउ नाही। जे तरजनी देखि मर जाही ॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मै कछु कहा सहित अभिमाना ॥२॥

अर्थ यहाँ कोई कोहडे की बतिया नही है जो तर्जनी उँगली देखकर मर जाती है। यह परशु धनुष और बाण देखकर मैंने कुछ अभिमान के साथ कहा है।

व्याख्या भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही का उत्तर देते है। आपको भुजबल है तो यहाँ भी कोई कोहडे की बतिया नही है। कोहडे मे बतिया लगते ही जो कोई उसे उँगली दिखा दे तो वह निश्चय सूख जाती है। यह देखी हुई बात है। भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। यह कहना तर्जनी दिखलाना है। इतना सुनकर हम लोग सूखनेवाले नही है। यहाँ भी त्रिभुवन जय करके बैठे है। पराक्रम विशेष

---

१ व्याजस्तुति अलङ्कार है।

सुनने से उत्साह बढता है। यथा : त्रिभुवन जय समेत वैदेही। विनहि विचार वरै हठि तेही।

तुम्हारा क्षत्रियकुलद्रोही होना विश्वविदित है तो मैने भी अनजान से कुछ नही कहा। मैंने आते ही आपका कुल्हाडा धनुप वाण देख लिया। तव अभिमान की वात वोले कपट की नही। यदि यह सब उत्तेजक चिह्न न देखते तो अभिमान की बात न बोलते।

भृगुसुत समुझि [1]जनेउ विलोकी। जो कछु कहहु सहँउ रिसि रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥३॥

अर्थ : भृगुवशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर जो कुछ आप कहते है क्रोध रोककर सह जाता हूँ। देवता, ब्राह्मण भगवद्भक्त और गाय पर मेरे कुल मे बहादुरी नही है।

व्याख्या : बालक बोलि वधौं नहि तोही। केवल मुनि जड जानेहि मोही का उत्तर : भृगु के वाल बच्चे समझकर आपकी वातें सहता जाता हूँ। भृगुजी की लात विष्णु भगवान् ने सही। ये भी उसी कुल के हैं। इनकी बात सह लेनी चाहिए। कपास का यज्ञोपवीत देखकर : कुल्हाड़ा देखकर नही : क्रोध को रोक लेता हूँ। यथा : सापत ताडत परप कहता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता। अर्थात् केवल मुनि के नाते सहता हूँ। तुम गर्भ के बच्चे मारनेवाले मुझे बालक समझकर क्या छोडोगे। हाँ मै तुम्हे ब्राह्मण समझकर छोडे देता हूँ।

रे सठ सुनहि सुभाव न मोरा का उत्तर देते हैं कि तुम्हारा स्वभाव जो हो पर मेरे कुल का स्वभाव है कि सुर महिसुर हरिजन अरु गाई पर वीरता नही दिखाते। क्योंकि ये रक्ष्य हैं। यथा : सुरपति वसहि वाहुवल जाके।

वधे पापु अपकीरति हारे। मारतहू पा परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम वचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥४॥

अर्थ : मारने से पाप और हारने से दुर्यश है। अतः मारते हुए भी आप के पैर ही पड़ना चाहिए। कठोर वज्र के समान आप के वचन हैं। धनुप वाण और कुठार तो व्यर्थ ही लिये फिरते हो।

व्याख्या : आप मारिये भी तो हम तो पाँवही पड़ेंगे। आप को मारें तो ब्रह्महत्या लगे। हारें तो दुर्यश हो कि तपस्वी से हार गये। भाव यह कि तुम्हे मारकर ब्रह्महत्या कौन ले। हमें तुम्हारे ब्राह्मणत्व का बड़ा आदर है तुम्हारे परधर्माश्रयत्व का नही। इन्द्र कुलिस मम सूल विसाला। कालदंड हरिचक्र कराला। जो इनकर मारा नहि मरई। विप्र रोप पावक सो जरई। प्रभु महिदेव साप अति

---

१. कपास का यज्ञोपवीत ब्राह्मण के लिए है। यथा : कार्पासमुपवीतं स्यात् विप्रस्यो-र्ध्ववृतं त्रिवृत्। मनु।

घोरा। अत तुम्हारा वचन हो सहार करने में समर्थ है। अस्त्रो की तो प्रतिक्रिया है। तुम्हारा वचन अप्रतिक्रिय है। अर्थात् तुम्हारी धर्मनिष्ठा म ही सहारशक्ति भरी पडी है। तुम्हारे लिए परधर्माश्रय करना लोहा लादे फिरना व्यर्थ है।

दो जो विलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोप भृगुवसमनि, बोले गिरा गभीर ॥२७३॥

अर्थ जिसे देखकर मैने अनुचित कहा हे महामुनि! आप धीर हैं क्षमा करिये। सुनकर भृगुवशमणि क्रुद्ध होकर गम्भीर वाणी बोले।

व्याख्या इसी लोहे को देखकर मैने अनुचित कहा। मैं मानता हूँ कि शिव-धनु को धनुही सम कहना धनुभङ्ग को नये के धोखे से देखना बताना अनुचित है। पर आपके अनुचित वेष के उत्तर मे अनुचित कहा। मुझ महामुनि धीर से क्षमा माँगने म लज्जा नही। पर योद्धा मानी से तो अनुचित कहकर भी लोहा लेता हूँ। आप स्वधर्माभिमान करिये। परधर्माभिमान क्यो करते हैं?

परशुरामजी भृगुवश म मणि है। सुजाति, शुचि, अमोल और सुन्दर हैं। भृगुवश होने से सुजाति है। निष्कपट होने से शुचि है। पितृभक्ति से अमोल हैं। निर्लोभ होने से सब भाँति सुन्दर हैं। लक्ष्मणजी को धमकाकर काबू मे न ला सके। सब बातो का उत्तर मिल गया। युद्ध ही शेष है। अत क्रोध के साथ गम्भीर वाणी बोल। शब्द भी गम्भीर अर्थ भी गम्भीर।

कौसिक सुनहु मद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु॥
भानु बस राकेस कलकू। निपट निरकुश अबुध असकू॥१॥

अर्थ कौशिक विश्वामित्र! सुनो यह बालक १ मन्द २ कुटिल ३ कालवश और ४ निजकुलघालक है। ५ सूर्यवशरूपी पूर्णचन्द्र मे यह कलङ्क है। ६ अत्यन्त निरङ्कुश ७ मूर्ख और ८ नि शङ्क है।

व्याख्या परशुरामजी श्रीरामचन्द्र के अभिभावक विश्वामित्रजी से कहते हैं कि यह बालक लक्ष्मण दोपयुक्त वाणी बोलता है। आठ बातें इसने कही हैं। जिनसे आठ दोप इसके स्पष्ट दिखाई पडते है। १ मैने गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर। अपने स्वभाव की घोरता स्थापन के लिए कहा था। यह ऐसा मन्द है कि तात्पर्य नही समझा। कहता है कि अहा मुनीस महा भटमानी। २ मैं तो दया करके इसे छोडता हूँ। इसलिए यह अपने को पहाड और मेरे पराक्रम को फूँक समझता है। ऐसा तो यह कुटिल है। ३ कालवश हो गया है मेरे कुठाराघात की उपमा कोहडे को तर्जनी दिखाने से देता है। ४ निजकुलघालक है। कहता है देखि कुठारु सरासन बाना। मै कछु कहा सहित अभिमाना। नही जानता कि ऐसे अभिमानी के वश का मैं नाश कर देता हूँ। ५ यह कुलकलङ्क है। इसकी कटु वाणी से इसके प्रियजनो का सहार होगा। अत यह अपयशभाजन भी होगा। यथा कुल कलक जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही। ६ ऐसा

निरङ्कुश है कि सुर, महिसुर, हरिजन और गाय। जो प्रात स्मरणीय है उन्हें दोन समझता है। ७ ऐसा अवुध है कि मुझसे हारने मे अपनी अपकीर्ति समझता है। कहता है वधे पाप अपकीरति हारे। और ८ ऐसा अशङ्क है कि मेरे धनुप वाण और कुठार को व्यर्थ वतलाता है।

काल कवलु होइहि छन माही। कहौ पुकारि खोरि मोहि नाही ॥
तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु वलु रोप हमारा ॥२॥

अर्थ · क्षणभर मे यह काल का ग्रास हो जायगा। मै पुकारकर कहता हूँ अव मुझे दोप नही है। यदि इसका उवार . वचाना चाहते हो तो तुम मेरा प्रताप, रोप और वल कहकर इसे रोको।

व्याख्या प्रताप यथा विश्वविदित छत्रीकुलद्रोही। वल यथा : भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। रोप यथा · वालब्रह्मचारी अति कोही। परशुरामजी कहते हैं कि इतना वडा वीर वना है कि मेरे अस्त्रशस्त्र धारण करने पर क्रोध दिखलाता है। मेरे परशु के चलने की देर है। इसे कालकवल होते देर न लगेगी। पुकारकर कह देता हूँ कि कोई मुझे दोप न दे। क्षत्रियो के वध करने पर लोग मुझे दोप देते हैं। ऐसी ही करनी पर मै उनका वध करता हूँ। तुम अभिभावक हो। यदि तुम भी चाहते हो कि कटुवादी का वध ही ठीक है तव वात दूसरी है। नही तो इसे रोको। जाने दो बेटा ! कहकर नही। हमारा प्रताप वल और रोप कहकर रोको। जिसमे यह मुझसे भयभीत होकर उत्तर देने से विरत हो।

लपन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को वरनै पारा ॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। वार अनेक भाँति वहु वरनी ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने कहा हे मुने ! तुम्हारा सुयश तुम्हारे रहते दूसरा कौन कह सकता है। अपने मुख से तुमने अपनी करणी अनेक वार और अनेक प्रकार से वर्णन की।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने विश्वामित्रजी को रोकने का अवसर ही नही दिया। बीच ही मे बोले कि जव से यहाँ आये हो तब से अपने सुयश का ही तो वर्णन कर रहे हो। दूसरे से ऐसा कैसे बनेगा ? और उसे लज्जा भी लगेगी क्योकि ये सब बातें ब्राह्मण के लिए दुर्यश हैं। तुम्हे भले ही सुयश मालूम पडें। सुयश दूसरे के वर्णन से होता है अपने वर्णन से नही। अपने मुख से अपना सुयश कहना आत्म-वध है। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा। सहसबाहु भुज छेदन हारा। इस भाँति अपनी करणी अनेक बार कथन की। विश्वविदित छत्री कुल द्रोही। भुजवल भूमि भूप बिनु कीन्ही। इसी रीति से अनेक भांति से कहा। आप अपनी अब्राह्मणोचित करणी का साभिमान वर्णन कर रहे हैं।

नहि संतोपु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू ॥
वीर वृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा ॥४॥

अर्थ यदि इतने पर भी तृप्ति न हुई हो तो और कुछ कह डालिये। क्रोध रोककर असह्य वेदना मत सहिये। आप वीरवृत्ति वाले हैं। अविचल धीर हैं। गाली देने में आपकी शोभा नही है।

व्याख्या इतने पर भी असन्तुष्ट हो तो और कुछ कह डालो। दूसरे से क्यो कहलाते हो। दूसरे से कहते न बनेगा। उसे आपकी भाँति प्रशसाहष्टि न होगी। उसे दोष दिखाई पडेगा। यहाँ तक कहि प्रताप बल रोप हमारा का उत्तर हुआ। अब यहाँ पुकारि खोरि मोहि नाही का उत्तर देते हैं। जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू। अर्थात् चलाओ हाथ। तुम हटकउ जौ चहहु उवारा का उत्तर. मुझे तुम्हारी अप्रसन्नता का भय है। अस्त्रप्रहार का नही। खुशी से प्रहार करो।

कौसिक सुनहु मद यह बालक। कुटिल कालवस निजकुलघालक। भानुवस राकेस कलकू का उत्तर वीरव्रत अक्षुब्ध वीर की शोभा पराक्रम दिखलाने मे है गाली देने मे नही। जो आठ दोष आपने मुझमे कहे हैं वे मुझम नही है। वे मेरे लिए गाली है।

दो सूर समर करनी करहि, कहि न जनावहि आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहि प्रतापु ॥२७४॥

अर्थ शूर रण मे करणी करते है। वे कहकर जनाया नही करते। युद्ध मे शत्रु को सामने पाकर कायर लगते है अपना प्रताप कथन करके।

व्याख्या जब हम लोगो को सहस्रबाहु सम शत्रु मानते हो अर्थात् ऐसा शत्रु जिसने पिता का वध किया हो। तो हम तुम्हारे सामने खडे है। वीर की करणी करो। कहकर अपने को न जनाओ। ऐसे समय प्रताप का कथन तो कादर का लक्षण है। यह काल कवल होइहि छनमाही का उत्तर है।

तुम तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लपन के वचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥१॥

अर्थ तुम तो मानो काल को हाँककर लाये हो। बार बार मेरे लिए बुला रहे हो। लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनकर परशुरामजी ने घोर परशु को सुधार कर हाथ मे लिया।

व्याख्या वही उत्तर चल रहा है। ससार जानता है कि युद्ध की सिद्धि चञ्चल होती है। सदा एक पुरुष के हाथ मे नही रहती। युद्ध मे कौन मरेगा कौन मारेगा। यह कहा नही जा सकता। पर तुम्हारी तो धारणा ही विचित्र है। मानो काल तुम्हारा जिलाया हुआ पशु है। जिसे हाँककर लाये हो और मुझे निगल जाने के लिए बार बार बुला रहे हो। निश्चय किये बैठे हो कि युद्ध मे तुम्ही विजयी होओगे।

लक्ष्मणजी ने सीधे सीधे कादर कह दिया। किसकी सामर्थ्य जो परशुरामजी

को उनके मुखपर कादर कहे। अब कहने सुनने का अवसर नही रह गया। अत: कन्धे पर के उस घोर कुठार को सुधारकर हाथ मे लिया वार करने के लिए। फिर भी चलाने की इच्छा नही हो रही है। चिरञ्जीव ऐसा आशीर्वाद दे चुके हैं। आशा है कि अब भी मान जाय।

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुवादी बालकु वध जोगू ॥
बाल विलोकि वहुत मै बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा ॥२॥

अर्थ : अब मुझे लोग दोप न दें। यह कटुवादी बालक वध के ही योग्य है। बालक देखकर मैंने वहुत बचाया। पर यह अब सचमुच मरने पर आगया है।

व्याख्या : मैं लोकापवाद से बचना चाहता हूँ। लोग दोप देंगे कि बच्चे को मार दिया। वीरव्रती को १६ वर्ष के नीचे और ७५ वर्ष से ऊपर मनुष्य पर शस्त्र चलाना निपिद्ध है। अत: इसके मारने मे दोनो प्रकार के दोप मुझे लगेंगे। अपकीर्ति होगी। परन्तु कटुवादी हो तो बालक भी वध के योग्य है। कहा भी है खीरा सिर से काटिये दीजे नमक भराय। रहिमन कडुए मुखन्ह को चहिअत इहै सजाय। पहिले नि क्षत्र करने पर लोगो ने दोप दिया था। क्षत्रियो के इसी स्वभाव पर मैंने नि क्षत्र किया था। सो अब कोई दोप न दे।

मैं तो उत्तर देते ही इसे मारता। सो इसने उत्तर दिया। वेसँभार वात वोला। अभिमान की बातें कही। अपमान किया। यहाँ तक मैं हत्या से बचाता रहा। अब कादर कहता है। यह बात सही नही जा सकती। अब यह सचमुच मरना ही चाहता है। पहिले जो इसे 'कालकवल होइहि' 'कालवश' इत्यादि कहा था सो इसे डराने के लिए। पर अब मुझे मारना ही पड़ा।

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोप गुन गनहिं न साधू ॥
खर कुठार मै अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही ॥३॥

अर्थ : विश्वामित्रजी ने कहा अपराध क्षमा कीजिये। बालक के दोप गुण को साधु नही गिनते। परशुरामजी बोले : मेरा कुठार तीखा है और मैं निष्करुण क्रोध करनेवाला हूँ और गुरुद्रोही अपराधी सामने है।

व्याख्या : फिर लक्ष्मणजी कुछ कह न बैठे, अत. विश्वामित्रजी ने कहा अपराध क्षमा कीजिये। बालक अव्यवस्थित चित्त के होते हैं। उनका गुण भी कुछ नही दोप भी कुछ नही। आप साधु हैं। खल के वचन सहने मे समर्थ हैं। यथा : खल के वचन सत सह जैसे। यह तो बालक का वचन है। परशुरामजी ने इनसे कहा था कि : तुम हटकौ जो चहहु उबारा सो लक्ष्मण को नही रोकते। इन्हे ही समझाते हैं। लक्ष्मण धर्म पर हैं उन्हे कैसे रोकें ?

जब साधन और साधक दोनो ठीक हैं तव सिद्धि मे देर क्या ? सो इसके वध का साधन कुठार खर धारवाला प्रस्तुत है और साधक मैं, जिसे क्रोध मे करुणा होती ही नही : गर्भक के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। और सबसे बड़ा अपराधी

मेरे गुरु शिव का द्रोह करनेवाला सामने खडा है। फिर दण्डपात न होने का कोई कारण नही है। विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रताप का उत्तर देकर जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू का उत्तर देते हैं कि--

उतर देत छाडौ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरनि होतेउँ श्रम थोरे॥४॥

अर्थ यह उत्तर देता है और इसको बिना मारे छोडता हूँ सो हे विश्वामित्रजी! केवल तुम्हारे शील के कारण। नही तो इसे इस कठोर परशु से काटकर थोडे ही परिश्रम से गुरुजी से उऋण हो जाता।

व्याख्या मुझे उत्तर सुनना सह्य नही है। मैं इसे उत्तर देते ही मार डालता परन्तु मैंने नही मारा सो केवल तुम्हारे सङ्कोच से। आपका सङ्कोच इतना बडा है कि वध्य को छोड दिया।

मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहि अछत को वरनै पारा। अपने मुख तुम आपन करनी। बार अनेक भाँति बहु वरनी। नहि सतोष तो पुनि कछु कहहू का उत्तर ' जिस कठोर कुठार ने सहसबाहु की भुजाओं को छेदन किया उसको इसे काट देने मे कौन सा श्रम था? मैने शिवजी से अस्त्रविद्या पायी है। वे ही मेरे गुरु है। उस विद्या का उनके शत्रु पर उपयोग करके उनसे उऋण भी हो जाते। श्रम भी अधिक न पडता और कुल विद्या का उपयोग भी नही करना पडता। भाव यह कि इसके मारने से केवल शान्ति ही नही बडा भारी लाभ भी था। तुम्हारे सङ्कोच से गुरु का ऋण रह गया। गुरु आप्तकाम और दुराधर्ष हैं। ऋण चुकाने का उपायान्तर नही है।

दो गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरियरै सूझ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ॥२७५॥

अर्थ विश्वामित्र ने हृदय मे हँसकर कहा मुनि को हरा ही हरा कोमल सूझ रहा है। यह लोहे का खाँड है ईख का नही है। पर ये नासमझ अब भी नही समझ रहे हैं।

व्याख्या बाहर हँसने से परशुरामजी को बुरा लगता। इसलिए मनमे ही हँसे कि ये तो बडे नासमझ है सावन के अन्धे को सब हरा ही सूझता है।

सीधे सीधे जो इन्हे कादर कहकर ललकार रहा है वह कुछ है। इतना तो इन्हे समझना चाहिए था। राजकुमार हैं। इतने से ही इन्हे तुच्छ समझना अज्ञान है। लोहे का भी खाँड खाँडा होता है इक्षुरस का भी खाँड होता है। सो ये लोहे के खाँड हैं। आँत फाडकर निकल आवेंगे। इक्षुरसोद्भूत खाँड की भाँति मधुर भोज्य नही हैं। ये समझ रहे हैं कि मैं इनको विश्वामित्र के सङ्कोच से छोडे देता हूँ। यह नही समझते कि य उनको ब्राह्मण समझकर छोड रहे हैं। राजा जनक ने इनका रूप देखकर समझ लिया और वे इतनी बातचीत करने पर भी नही समझ रहे हैं।

कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहि जान विदित ससारा ॥
माता पितहि उरिन भए नीके । गुर रिनु रहा सोच बड जीके ॥१॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने कहा कि हे मुने ! तुम्हारा शील ससार मे विदित है उसे कौन नही जानता । माता पिता से भली भाँति उऋण हो गये । गुरुजी का ऋण रहा । उसकी मनमे बडी चिन्ता है ।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने सोचा कि अबूझ इस भाँति नही समझते । इन्हे मैं समझाऊँगा । अत बोल उठे उतर देत छाडउँ बिनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा शील तो ससार मे विदित है । शील से नही छोड रहे हो । तुम्हारे सामर्थ्य की बात नही है । इसलिए छोड रहे हो । नही तो गर्भ के बच्चे को मारनेवाले को शील कहाँ ? नतु एहि काटि कुठार कठोरे । गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे । का उत्तर देते हैं कि माता पिता से भलीभाँति उऋण हुए भाव यह कि परशुराम पितु आज्ञा राखी । मारी मातु लोक सब साखी । इस भाँति से तो माता से उऋण हुए और नररक्त से तर्पण करके पिता से उऋण हुए । इसलिए कहते हैं कि उऋण भये नीके । अब गुरु से उऋण होने के लिए भी किसी को काटना मारना चाहिए । अत बडा सोच है कि कैसे मारें ।

सो जनु हमरेहि माथे काढा । दिन चलि गये ब्याज बड बाढा ॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली । तुरत देउँ मै थैली खोली ॥२॥

अर्थ उसे मानो मेरे ही मत्थे काढा था । बहुत दिन हो गये । इससे ब्याज भी बहुत बढा होगा । अब महाजन को बुलाओ तुरन्त मैं थैली खोले देता हूँ ।

व्याख्या मानो आपने यही सोचकर ऋण काढा था कि इसे लक्ष्मण भरेगा । सो माता पिता से तो आप शीघ्र ही उऋण हो गये । पर गुरुजी का ऋण लिये तो बहुत दिन हो गये और आजतक आपका पटाया न पटा । किसी शुभ कर्म से तो पटाओगे नही । मुझे मारकर थोडे श्रम से ही उऋण होना चाहते हो । तो मैं बडा सुगम मार्ग बतलाये देता हूँ ।

श्रम थोरे का उत्तर देते हैं । अब ब्योहरिया अर्थात् महाजन गुरुजी को बुला लाओ । मैं थैली खोले देता हूँ । सूद मूल सब भर लें । भाव यह तुम क्या लडोगे । गुरुजी को बुलाओ । मैं उनका पेट भर दूँगा । गुरुजी को ओलाहना देने पर लक्ष्मणजी को क्रोध है । तुमने मुझे काट डालना बडा सरल व्यापार समझ रक्खा है ?

सुनि कटु बचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही । बिप्र बिचारि बचौं नृप द्रोही ॥३॥

अर्थ कटु वचन सुनकर परशु को सुधारा । सभा की सभा हाय हाय

मेरे गुरु शिव का द्रोह करनेवाला सामने खड़ा है। फिर दण्डपात न होने का कोई कारण नही है। विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहि प्रताप का उत्तर देकर जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू का उत्तर देते हैं कि—

उतर देत छाडौ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारे ॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरनि होतेउँ श्रम थोरे ॥४॥

अर्थ यह उत्तर देता है और इसको बिना मारे छोडता हूँ सो हे विश्वामित्रजी। केवल तुम्हारे शील के कारण। नही तो इसे इस कठोर परशु से काटकर थोडे ही परिश्रम से गुरुजी से उऋण हो जाता।

व्याख्या मुझे उत्तर सुनना सह्य नही है। मैं इसे उत्तर देते ही मार डालता परन्तु मैंने नही मारा सो केवल तुम्हारे सङ्कोच से। आपका सङ्कोच इतना वडा है कि वध्य को छोड दिया।

मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहि अछत को वरनै पारा। अपने मुख तुम आपन करनी। वार अनेक भाँति बहु वरनी। नहि सतोष तो पुनि कछु कहहू का उत्तर : जिस कठोर कुठार ने सहस्रबाहु की भुजाओ को छेदन किया उसको इसे काट देने मे कौन सा श्रम था ? मैने शिवजी से अस्त्रविद्या पायी है। वे ही मेरे गुरु हैं। उस विद्या का उनके शत्रु पर उपयोग करके उनसे उऋण भी हो जाते। श्रम भी अधिक न पडता और कुल विद्या का उपयोग भी नही करना पडता। भाव यह कि इसके मारने से केवल शान्ति ही नही वडा भारी लाभ भी था। तुम्हारे सङ्कोच से गुरु का ऋण रह गया। गुरु आप्तकाम और दुराधर्ष हैं। ऋण चुकाने का उपायान्तर नही है।

दो गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरियरै सूझ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥२७५॥

अर्थ विश्वामित्र ने हृदय मे हँसकर कहा मुनि को हरा ही हरा कोमल सूझ रहा है। यह लोहे का खाँड है ईख का नही है। पर ये नासमझ अब भी नही समझ रहे है।

व्याख्या बाहर हँसने से परशुरामजी को बुरा लगता। इसलिए मनमे ही हँसे कि ये तो वडे नासमझ है सावन के अन्धे को सब हरा ही सूझता है।

सीधे सीधे जो इन्हे कादर कहकर ललकार रहा है वह कुछ है। इतना तो इन्हे समझना चाहिए था। राजकुमार हैं। इतने से ही इन्हे तुच्छ समझना अज्ञान है। लोहे का भी खाँड खाँडा होता है इक्षुरस का भी खाँड होता है। सो ये लोहे के खाँड है। आँत फाडकर निकल आवेंगे। इक्षुरसोद्भूत खाँड की भाँति मधुर भोज्य नही हैं। ये समझ रहे हैं कि मैं इनको विश्वामित्र के सङ्कोच से छोडे देता हूँ। यह नही समझते कि ये उनको ब्राह्मण समझकर छोड रहे हैं। राजा जनक ने इनका रूप देखकर समझ लिया और वे इतनी बातचीत करने पर भी नही समझ रहे हैं।

कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहि जान विदित ससारा ॥
माता पितहि उरिन भए नीके। गुर रिनु रहा सोच बड जीके ॥१॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने कहा कि हे मुने! तुम्हारा शील ससार मे विदित है उसे कौन नही जानता। माता पिता से भली भाँति उऋण हो गये। गुरुजी का ऋण रहा। उसकी मनमे बडी चिन्ता है।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने सोचा कि अवूझ इस भाँति नही समझते। इन्हे मै समझाऊँगा। अत बोल उठे उतर देत छाडउँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा शील तो ससार मे विदित है। शील से नही छोड रहे हो। तुम्हारे सामर्थ्य की बात नही है। इसलिए छोड रहे हो। नही तो गर्भ के बच्चे को मारनेवाले को शील कहाँ? नतु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे। का उत्तर देते हैं कि माता पिता से भलीभाँति उऋण हुए भाव यह कि परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी। इस भाँति से तो माता से उऋण हुए और नररक्त से तर्पण करके पिता से उऋण हुए। इसलिए कहते है कि उऋण भये नीके। अव गुरु से उऋण होने के लिए भी किसी को काटना मारना चाहिए। अत बडा सोच है कि कैसे मारें।

सो जनु हमरेहि माथे काढा। दिन चलि गये व्याज वड वाढा ॥
अव आनिअ व्यवहरिआ वोली। तुरत देउँ मै थैली खोली ॥२॥

अर्थ उसे मानो मेरे ही मत्थे काढा था। बहुत दिन हो गये। इससे व्याज भी बहुत वढा होगा। अव महाजन को बुलाओ तुरन्त मै थैली खोले देता हूँ।

व्याख्या मानो आपने यही सोचकर ऋण काढा था कि इसे लक्ष्मण भरेगा। सो माता पिता से तो आप शीघ्र ही उऋण हो गये। पर गुरुजी का ऋण लिये तो बहुत दिन हो गये और आजतक आपका पटाया न पटा। किसी शुभ कर्म से तो पटाओगे नही। मुझे मारकर थोडे श्रम से ही उऋण होना चाहते हो। तो मैं वडा सुगम मार्ग बतलाये देता हूँ।

श्रम थोरे का उत्तर देते हैं। अव व्योहरिया अर्थात् महाजन गुरुजी को बुला लाओ। मैं थैली खोले देता हूँ। सूद मूल सब भर लें। भाव यह तुम क्या लडोगे। गुरुजी को बुलाओ। मैं उनका पेट भर दूँगा। गुरुजी को ओलाहना देने पर लक्ष्मणजी को क्रोध है। तुमने मुझे काट डालना वडा सरल व्यापार समझ रक्खा है?

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही। विप्र विचारि वचौं नृप द्रोही ॥३॥

अर्थ कटु वचन सुनकर परशु को सुधारा। सभा की सभा हाय हाय

चिल्ला उठी। भृगुपति मुझे परशु दिखलाते हो। हे नृपद्रोही ! ब्राह्मण विचारकर हत्या से बच रहा हूँ।

व्याख्या : शस्त्र चलाने के पहिले उसे सुधारने का नियम है। यथा : दोउ कर कमल सुधारत बाना। उत्तर न देकर परशु सुधारते देखकर सारी सभा समझ गई कि अब चोट किया चाहते हैं। सबको निश्चय है कि इनकी चोट से तो लक्ष्मण नहीं बच सकते और सब लक्ष्मणजी का कल्याण चाहते थे। अत. हाय हाय चिल्लाये। इसपर लक्ष्मणजी का क्रोध बढा। बोले : भृगुपति ! मुझे परशु दिखलाते हो। परशु का दिखलाना मुझे सह्य नहो है। मैं तो ब्रह्महत्या के डर से बच रहा हूँ। नही तो नृपद्रोही का तो मैं शत्रु ही हूँ। निश्चय विना मारे न छोडता।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे। द्विज देवता घरहि के बाढे ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लखन निवारे ॥४॥

अर्थ . कभी अच्छे योद्धा से रण मे काम नही पडा। ब्राह्मण देवता ! घर ही के बडे हुए हो। सब लोग बोल उठे अनुचित है अनुचित है। रामजी ने इङ्गित से ही लक्ष्मण को रोक दिया।

व्याख्या खर कुठार मैं अकरुन कोही का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी ने कहा। किसी गाढ़े सुभट से तुम्हे काम न पडा पडा होता तो ऐसा न बोलते। माँ का वध करके ही मिजाज चढा हुआ है।

इतने बडे वीर को घरहि के बाढे कहना अनुचित है। सभा मे यथार्थ कहना चाहिए। चुप रहने या अनुचित बोलनेवाले को दोप लगता है। यथा सभाया न प्रवेष्टव्य वक्तव्य वा समञ्जसम्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्बिषी। अत जिस भाँति परशुरामजी के परशु सुधारने पर सभा ने हाहाकार किया था उसी भाँति इस वचन को भी सभा ने पुकारकर अनुचित कहा। सब लोगो की पुकार सुननेवाल भगवान् ने इशारा किया। जिसमे परशुरामजी का ध्यान आकर्पित न हो। लक्ष्मणजी का इतना बढा हुआ क्रोध रामजी के इङ्गितमात्र से रुक गया।

दो लषन उतरि आहुति सरिस, भृगुवर कोप कृसानु।
बढत देखि जल सम वचन, बोले रघुकुलभानु ॥२७६॥

अर्थ लक्ष्मणजी का उत्तर आहुति के समान था। भृगुवर परशुरामजी का क्रोध अग्नि के समान था। बढता देखकर रघुकुलसूर्य जल के समान वचन बोले :

व्याख्या भृगुवर की क्रोधाग्नि के लिए लक्ष्मणजी की एक एक वात आहुति का काम करती थी। आहुति पाकर अग्नि को बढते हुए देखकर रघुकुलभानु हैं : जलवर्षा से दावानल शान्त करेंगे। दोनो भाइयो के उत्तर का आशय एक ही है पर एक क्रोध को बढाता है दूसरा शान्त करता है। रामजी ने देखा आग बढ रही है। इन्हे शान्त करना है इनसे युद्ध नही करना है। अत क्रोध शान्त करनेवाली बात बोले।

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ॥
जौं पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। तो कि बराबरि करै अयाना ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! बालक पर छोह कीजिये। यह दुधमुहा बच्चा सा सीधा है। इस पर क्रोध न कीजिये। यदि यह आपका प्रभाव कुछ भी जानता तो क्या यह अनजान आपकी बराबरी करता ?

व्याख्या : रामजी बोले : पहिले भी नाथ कहा है फिर भी वही कहते हैं कि आपने उसे बालक तो माना पर उसपर छोह नहीं किया। अतः कहते हैं कि छोह करहु . कटुवादी बालक बध जोगू। इस भावना को मन मे स्थान न दीजिये। लक्ष्मण दुधमुहा बच्चा सा सीधा है। जो आप कहते हैं उसी को दोहरा देता है : यह अनुचित का उत्तर है। आप करने न करने अन्यथा करने मे समर्थ हैं। प्रभु हैं। आपके प्रभाव को उसने नही जाना मैं जानता हूँ। परशुरामजी ने विश्वामित्रजी से कहा था तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोप हमारा। इसलिए रामजी इनका प्रभाव कह रहे हैं जिसमें उन्हे सन्तोष हो। कहते हैं कि यदि वह आपका प्रभाव जानता होता तो जो आप कहते हैं वही पलटकर आपको न कहता। आपने उसे गुरुद्रोही कहा। उसने आपको नृपद्रोही कहा।

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥२॥

अर्थ : यदि लडके कुछ ढिठाई करते हैं तो गुरु पिता और माता का मन आनन्द से भर उठता है। इसे शिशु बच्चा सेवक जानकर कृपा कीजिये। आप क्षमाशील, धीर, मुनि और ज्ञानी हैं।

व्याख्या : आप गुरु माता और पिता की भाँति पूज्य हैं। वर्णाना ब्राह्मणो गुरुः। सभी वर्णों के ब्राह्मण गुरु होते हैं। दस वर्ष का भी ब्राह्मणबालक क्षत्रियो द्वारा पिता की भाँति पूज्य माना जाता है। आपके गुरु पिता होने मे क्या सन्देह है। गुरु और माता पिता को लडको की ढिठाई सहनी पडती है। वे अबोध बालक की ढिठाई देखकर आनन्द का अनुभव करते हैं कि भला इस लायक तो हुआ। अतः आपको भी प्रसन्न होना चाहिए कि बालक तेजस्वी है। क्षत्रियबालक है। इसलिए असहनशील है। ये सब बातें क्षत्रिय के लिए गुण हैं।

आप नाथ हैं। यह बालक सेवक है। बडा होने पर सेवा करेगा। अभी ढिठाई किया तो क्या हर्ज है ? जिन गुणो की ब्राह्मण में होने की आशा की जाती है उन्ही का आरोप करके कहते हैं कि आप समशील हैं, धीर हैं और ज्ञानी मुनि हैं। आप एक बच्चे की ढिठाई पर रोप न करें। भिरे न कबहुँ सुभट रन गाढे। द्विज देवता घरहिं के बाढे। लक्ष्मणजी की इस उक्ति का सम्मार्जन करते हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुडाने। कहि कछु लपन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड पापी ॥३॥

अर्थ रामजी का वचन मुनकर कुछ ठढे हुए। तब लक्ष्मणजी ने कुछ कहकर मुसकरा दिया। हँसते देखकर नख से लकर शिख तक क्रोध भर उठा। बोले कि राम ! तेरा भाई बडा पापी है।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने ऐसी पण्डिताई से प्रश्नोत्तर प्रारम्भ किया कि परशुरामजी के लिए धनुष भङ्ग तो गौण हो गया और लक्ष्मण के उत्तर प्रत्युत्तर से अपने मान की रक्षा करना मुख्य विषय हो गया। रामजी के वचनो का प्रभाव परशुरामजी पर पडा। कुछ ठण्डे हुए। वीर नही कहा इसलिए पूरा सन्तोप नही हुआ। तब से लक्ष्मणजी ने फिर कुछ कहकर मुसकरा दिया। क्या कहा ? इस बात को कवि नही लिखते क्योकि उसे परशुरामजी ने सुना नही। केवल इतना देखा कि कुछ कहकर मुसकरा रहा है। समझ लिया कि इसका कटाक्ष समसील धीर मुनि ज्ञानी पर है। इसलिए क्रोध नखशिख व्याप्त हो गया। बोले कि राम तुम्हारा भाई बडा पापी है। जिसका अन्तरात्मा दुष्ट हो वही वडा पापी होता है। जिसका अन्तरात्मा दुष्ट नही होता उससे यदि पाप भी होजाय तो उसे पश्चात्ताप होता है। बडा पापी अपराध करके प्रसन्न होता है।

गौर सरीर स्याम मन माही। कालकूटमुख पयमुख नाही॥
सहज टेढ अनुहरै न तोही। नीचु मीच सम देख न मोही॥४॥

अर्थ इसका शरीर गोरा है पर इसके मन मे श्यामता है। यह कालकूट मुख सर्प है पयमुख नही है। स्वभाव से ही टेढ़ा है तुम्हारे ऐसा नही है। यह नीच मुझे मृत्यु के समान नही देखता।

व्याख्या बडे पापी का लक्षण भीतर से काला होना है। सरस्वती कहती हैं कालकूट मुख है शेप है पयमुख नही है। सो इसके मन का कालापन मुख से निकलता है। अत कालकूट मुख है। इसी पर कहते हैं कि दूधमुख नही है। सूधा होता तो तुम्हारी बात कम से कम मान जाता। तुम अच्छी बात कहते हो। वह उस पर हँसता है। अयाना नही है कुटिल है। तुझे नही पडा। तू वडा अच्छा है। रामजी ने कहा था जौ लरिका कछु अचगरि करही। गुर पितु मातु मोद मन भरही। इस पर कहते हैं कि यह ढीठ नही है नीच है। क्योकि मुझ मृत्यु के समान नही देखता। जो परशुरामजी को मृत्यु के समान देखे उसी पर प्रसन्न रहते थे। जो ऐसा न देखे उसे नीच मानते थे। ऐसी ऊँच नीच की विलक्षण परिभाषा पर लक्ष्मणजी फिर हँस पडे।

दो लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥२७७॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा कि हे मुने ! सुनो क्रोध पाप का मूल है। जिसके वश होकर लोग अनुचित करते हैं और विश्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं।

व्याख्या . राम तोर भ्राता वड पापी का उत्तर देते हैं पाप का मूल क्रोध है। सो हम तो हँसते हैं। क्रोध तो तुम करते हो। अत. तुम पाप के मूल हो। क्रुद्ध' पाप न कुर्यात् क' क्रुद्धो हन्यात् गुरुनपि। क्रोधी कौन सा पाप नही करता। क्रोधी अपने गुरु को भी मारता है। इसी क्रोधवश तुम क्षत्रियकुल द्रोही हुए। गौर सरीर स्याम मनमाही। उन्हीं पर घटाते हैं कि इनका गौर शरीर है और मन मे इतने काले हैं। विश्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं। क्षत्रिय जाति से विश्व की रक्षा है। क्षतात् त्रायतीति क्षत्र। जो आपत्ति से रक्षा करता है उसे क्षत्र कहते हैं। उस जाति का द्रोह करना विश्व के प्रतिकूल आचरण है।

मैं तुम्हार अनुचर मुनि राया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहि जुरिहि रिसाने। वैठिअ होइहिं पाय पिराने ॥१॥

अर्थ : हे मुनिराज! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। क्रोध छोडकर अब दया कीजिये। टूटा हुआ धनुप क्रोध करने से नही जुटेगा। वैठ जाइये पाँव दुखता होगा।

व्याख्या : मै आपका सेवक हूँ। प्रभु ने करिअ कृपा सिसु सेवक जानी कह दिया और मैंने मान लिया। अब आप और मैं दोनो उन्ही की वात पर रहे। मैं सेवक वना रहूँ और आप क्रोध छोडकर कृपा करें। मैं निश्चय प्रभुका अनुसरण करता हूँ। सहज टेढ अनुहरे न तोही का उत्तर। उन्होने आप से दया के लिए प्रार्थना की। मै भी कर रहा हूँ। अब मेल की वात हो रही है। सेवक सेव्य भाव मुझमे और आप मे स्थापित हो गया। अब आपको सेवा की चिन्ता करूँगा। नीच मीच सम देख न मोही वाली वात गई।

अब मैं आपके मानसिक और शारीरिक दोनो प्रकार के सुख की व्यवस्था करूँगा। पहिली वात यह है कि आपको मानसिक सुख हो। अत आप से प्रार्थना करता हूँ कि मन को शान्त कीजिये। जो होना था सो हो गया। अव टूटा हुआ धनुप क्रोध करने से नही जुटेगा। दूसरी वात यह है कि आपको शारीरिक सुख हो। अतः प्रार्थना है कि आप वैठ जाइये। वडी दूर से मार्ग चलकर आये हैं और जब से आये हैं तब से खडे ही हैं। इतने भक्त आपके हैं पर किसी ने वैठने को नही कहा। *मैं इन सबो से अधिक सेवा कर सकूँगा।*

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ वड़ गुनी वोलाई ॥
वोलत लखनहिं जनकु डेराही। मष्ट करहु अनुचित भल नाही ॥२॥

अर्थ : यदि अति प्रिय है तो उपाय कीजिये। किसी वडे गुणी को वुलवाकर जोडवाइये। लक्ष्मण के वोलने पर जनक डरने थे। कहा कि चुप रहो अनुचित कर रहे हो : अच्छी वात नही है।

व्याख्या : धनुप के प्रिय होने का कोई कारण तो नही है। क्योंकि यह यदि किसी काम का होता तो महादेवजी ही उसे क्यो छोड जाते? फिर भी यदि यह आपको अत्यन्त प्रिय हो उसके विना रहा न जाता हो तो भी क्रोध से काम न

चलेगा। उसके लिए उपाय करना चाहिए। किसी बडे भारी गुणी को खोजकर उससे जोड़वाना चाहिए। धनुष का जोडना कठिन कार्य है। सामान्य गुणी से काम नही चलेगा।

अति डर उतर देत नृप नाहीं। से जनकजी का प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अब फिर उनका प्रसङ्ग आया। वे जानते हैं कि परशुरामजी उत्तर देने से चिढ़ते है। यथा उत्तर देत छाडौ बिनु मारे। अत लक्ष्मणजी को रोक रहे हैं। सम्बन्धी हो गये। बडे हैं। कहते है कि चुप रहो। इनका उत्तर देना उचित नही है। न इनके सामने निर्भय वाणी बोलना अच्छी बात है। जनकजी को यही अब भी निश्चय है कि परशुराम के प्रहार को लक्ष्मणजी न सह सकेंगे और परशुरामजी क्रोधी हैं वे निर्भय उत्तर नही सह सकेंगे। अत कुछ अनर्थ न हो पडे इस भय से लक्ष्मण के उत्तर देने पर जनकजी को भय हुआ। लक्ष्मणजी के जोरहु कोउ बड गुनी बोलाई। कहते ही मष्ट करहु कहा।

थरथर कापहि पुर नर नारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तन जरै होय बल हानी॥३॥

अर्थ पुर के नर नारी तो थर थर काँप रहे थे कि छोटा कुमार बडा भारी खोटा है और भृगुपति का शरीर निर्भय वाणी सुन सुनकर जला जाता था। बल की हानि होती थी।

व्याख्या राजा को अति डर है। प्रजा थरथर काँपती है। सब लक्ष्मणजी के कल्याणेच्छु हैं। उनकी कल्याण कामना से ही उन्हे अत्यन्त खोटा कह रहे हैं कि यह छोटा कुमार इनका क्रोध शान्त ही नही होने देता। नही तो बडे कुमार तो इन्हें बडी युक्ति से रास्ते पर लाये थे।

परशुरामजी को यह पसन्द है कि क्षत्रिय लोग सदा उनसे भयभीत रहे। अत निर्भय वाणी सुनकर क्रोध से उनका शरीर जलता था। क्रोध अग्निकी भाँति पहिले अपने आश्रय को ही जलाता है। दूसरे पर तो पीछे काम करता है। यहाँ लक्ष्मण पर उस क्रोध का कोई प्रभाव नही पड रहा है। अत वह उन्ही परशुरामजी के शरीर को दग्ध कर रहा है। फलत बल की हानि हो रही है।

बोले रामहि देइ निहोरा। बचौ बिचारि बंधु लघु तोरा॥
मन मलीन तन सुन्दर कैसे। बिष रस भरा कनक घटु जैसें॥४॥

अर्थ रामजी को निहोरा देकर बोले कि मै तेरा छोटा भाई जानकर बरकाये जाता हूँ। इसका मन मलिन और तन कैसा सुन्दर है। जैसे विषरस से सोने का घड़ा भरा हुआ हो।

व्याख्या रामजी का वचन सुनकर कुछ ठण्डे हुए थे। अत उन्ही का निहोरा देकर कहते है। उनकी समझ म नही आ रहा है कि क्यो लक्ष्मण पर उनका हाथ नही छूटता है। अपने मन को स्वय समझ नही रहे है। कभी मन म यह आता

है कि इसके बालकपन का प्रभाव मेरे मन पर पड रहा है। कभी समझते हैं कि कौशिक का शील मेरे मन पर प्रभाव डाल रहा है। अब यह बात चित्त पर चढी है कि रामजी के बर्ताव ने हमारे हृदय को द्रवीभूत कर रक्खा है। अत कहते हैं निहोरा देते हैं कि तेरे कारण इसे छोड देता हूँ।

दो. सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥२७८॥

अर्थ : सुनकर लक्ष्मण फिर बिहँसे। रामजी ने कडी निगाह से देखा तो टेढा बोलना छोड़कर सङ्कुचित होकर गुरु के पास चले गये।

व्याख्या · पहिले मुसकराये थे फिर हँसे तब बिहँसे। अब परशुरामजी की विष रस.भरा कनक घट जैसे इस युक्ति पर फिर जोरो से हँस पडे कि यह युक्ति तो इन्ही पर घटती है। यथा · गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा · सीस जटा ससि बदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा · सहजहु चितवत मनहु रिसाते इत्यादि। पहिले सैनहिं रघुपति लखन निवारे पर इस समय कुछ अप्रसन्नता है इसलिए नयन तरेरे। लक्ष्मणजी निवृत्त ही नही हुए। सकुचित हो गये कि मुझसे इस बार कुछ चूक हुई। अत यहाँ से हटकर गुरुजी के पास चले गये। भाव यह कि यहाँ रहने से सम्भव है कि फिर मुझे हँसी आजाय।

अति बिनीत मृदु सीतलि बानी। बोले राम जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहि काना ॥१॥

अर्थ · रामजी दोनो हाथ जोडकर १ अत्यन्त विनीत २ शीतल और ३. मृदु वाणी बोले : हे नाथ! सुनो तुम सहज सुजान हो। बालक के वचन पर ध्यान मत दो।

व्याख्या : रामजी पहिले जल सम वचन बोले थे। अब हाथ जोडकर अत्यन्त विनय युक्त कोमल और शीतल वाणी बोलते हैं। यथा · ऐसी वाणी बोलिये मनका आपा खोय। औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय।

नाथ सम्बोधन करते हैं और कहते है कि आप सहज सुजान है और यह अयान है। सहज सुजान गुणग्राहक होते हैं। दोष पर दृष्टि नही देते। यथा · मैं गुन ग्राहक परम सुजाना। तव वटु रटनि करौं नहिं काना। यह लक्ष्मण अजान : अज्ञान है। इसके दोषो पर दृष्टि न दीजिये।

बररै बालकु एक सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहि काऊ ॥
तेंहि नाही कछु काज बिगारा। अपराधी मै नाथ तुम्हारा ॥२॥

अर्थ : भिड और बालको का स्वभाव एकसा होता है। सन्त इन्हे कभी नही छेड़ते। इसने कुछ काम भी नही बिगाडा है। हे नाथ! आपका अपराधी तो मैं हूँ।

व्याख्या : दोष दृष्टि न देने का उदाहरण देते है। बर्रे · भिड़ भनभनाया करते हैं। परन्तु परहितैकव्रत सन्त उस ओर दृष्टि ही नही देते। जहाँ तनिक भी उसके भनभनाने पर दृष्टि दी तहाँ उसने काटा। यह बर्रे का स्वभाव है। स्वभावो दुरतिक्रम·। उसे मार डालिये मर जायगा। पर स्वभाव नही छोड सकता। क्षमाशील सन्त इस बात को समझते हैं और बर्रे को भनभनाने देते हैं। इसी भाँति इसे बकने दीजिये। आपकी महामहिमा पर इससे क्या प्रभाव पड सकता है। यह विनय है।

छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू इत्यादि बातें जो लक्ष्मण ने कही हैं वे सब गलत हैं। मैं अपराधी हूँ। वह तो केवल बोलता है। काम नही बिगाडता। बोल गया : कमल नाल जिमि चाप चढाऊँ। जोजन सत प्रमान लै धाऊँ। तोरउ छत्रक दड जिमि पर किया कुछ नही। काम बिगाडनेवाला तो मैं हूँ। यह कोमलता है।

कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि नायक सोइ करौ उपाई॥३॥

अर्थ : कृपा, कोप, वध और बन्धन जो कुछ करना हो मुझ पर दास की भाँति कीजिये। जिस विधि से आपका क्रोध जाय उसे शीघ्र ही बताइये। मैं तुरन्त वही उपाय करूँ।

व्याख्या : घोरधार भृगुनाथ रिसानी है। सो उस धारा को लक्ष्मणजी ने अपने ऊपर लिया। रामजी उसे अपने ऊपर ले रहे हैं। अपराधी की चार गति हैं· १ या तो वह क्षमा किया जाय। या २ उसको धिग् दण्ड। या ३ प्राण दण्ड या ४. स्वातन्त्र्यहरण दण्ड दिया जाय। इन दण्डो मे से जो आप उचित समझें मुझे दास समझकर दें। शत्रु समझकर नही अथवा यदि कोई दूसरी विधि हो जिससे आपका क्रोध शान्त हो सके तो बतला दीजिये मैं वही उपाय करूँ। जितना विलम्ब होता है उतना ही अधिक आपको कष्ट हो रहा है। अत शीघ्र ही आज्ञा होनी चाहिए। ३ यह शीतलता है।

कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा॥४॥

अर्थ · मुनि ने कहा : हे रामजी! क्रोध जाय तो कैसे जाय? अब भी तेरा भाई मेरी ओर टेढी नजर करके देखता है। इसके कण्ठ मे मैंने कुठार न दिया तो क्रोध करके ही क्या किया?

व्याख्या जेहि बिधि रिसि जाई का उत्तर दे रहे हैं। अपराध स्वीकार कर लेने से रामजी पर क्रोध नही है। गुरुजी के पास से भी लक्ष्मणजी टेढी दृष्टि से देख रहे हैं। उसी को लक्ष्य कराके कहते हैं कि तुम तो क्रोध को हटाना चाहते हो। पर तुम्हारा भाई उसे बढाना चाहता है। तुम्हारी आज्ञा से चुप है। गुरुजी के पास चला गया है फिर भी वहाँ से टेढी निगाह से देख रहा है।

मेरा क्रोध अमोघ है सो व्यर्थ जाना चाहता है। क्रोध का फल है क्रोध दिलानेवाले के कण्ठ पर कुठाराघात। वररे वालक एक सुभाऊ। इन्हहि न सत विदूर्पहि काऊ का उत्तर देते हैं। तुम इसे विदूपित न करने को कहते हो पर इसे विना मारे न छोडूँगा। तुम अपने ऊपर क्रोध की धार लेना चाहते हो सो नही होगा।

दो गर्भ स्रवहि अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखौ जिअत, वैरी भूप किसोर ॥२७९॥

अर्थ . मेरे फरसे का भयानक कृत्य सुनकर राजाओ की स्त्रियो का गर्भ गिर जाता है। उस फरसे के रहते हुए भी मैं इस वैरी राजपुत्र को जीता देख रहा हूँ।

व्याख्या : तेहि नाही कछु काज विगारा का उत्तर देते हैं। विगाडा हो चाहे न विगाडा हो पर वैरी वही है। वही मुझे कुछ नही गिनता। कुठार के व्याज से अपनी प्रभुता कहते हैं। मेरे कुठार की करतूत सुनने से रानियो का गर्भ गिरता है। इतना वडा मेरा आतङ्क है और यह मुझे तुच्छ समझता है। अत यही मेरा वैरी है। इसे जीता मैं नही देख सकता यह वालक वचन करिअ नहि काना का उत्तर है।

वहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुठित नृपघाती ॥
भयउ वाम विधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ॥१॥

अर्थ हाथ चलता नही है। क्रोध से छाती जल रही है। राजाओ का वध करनेवाला परशु कुण्ठित हो गया। ब्रह्मा वाये हो गये। इससे मेरे स्वभाव मे परिवर्तन हो गया नही तो मेरे हृदय मे कभी भी कृपा कैसी ?

व्याख्या ' ऋजवो हि ब्राह्मणा.। ब्राह्मण स्वभाव से सरल होते हैं। रामजी ने कहा था : सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। इस पर कहते हैं कि मैं सहज सुजानता से नही छोड रहा हूँ। क्योकि छाती तो जल रही है। वात यह है कि मेरा हाथ ही नही चल रहा है। हाथ चलने का आरोप कुठार पर करके कहते हैं कि यह कुठार नृपघात मे सदा तीखा रहा सो आज कुण्ठित हो रहा है।

वररे वालक एक स्वभाऊ। इन्हहि न सत विदूर्पहि काऊ का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मैं सन्त होने के कारण विदूपण नही करता। यह वात नही है। इसका तो वर्रे का सा स्वभाव वना ही है। मेरा स्वभाव पलट गया। वाम विधाता की करणी कठिन है। स्वभाव के पलटने मे वे ही समर्थ हैं। मैं तो शत्रु पर दया करने को कादरता मानता हूँ। मुझे दया कहाँ से आगई ? यथा : रिपु पर दया परम कदराई। लक्ष्मणजी ने देखा कि प्रभु की प्रार्थना का निरादर फिर किया।

आजु दया दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि विहँस सिर नावा ॥
वाउ कृपा मूरति अनुकूला। वोलत वचन झरत जनु फूला ॥२॥

अर्थ · आज दया ने दु सह दु ख सहाया। सुनते ही लक्ष्मणजी ने विहँस प्रणाम किया और कहा कृपामूर्ति अनुकूल वायु है। वचन बोल रहे हैं तो मा फूल झर रहा है।

व्याख्या · परशुरामजी कहते हैं कि इस समय जो पीडा मुझे हो रही इसका कारण दया है। दया के कारण दु ख तो सहना ही होता है। जिसने द के लिए दु ख न उठाया वह दयालु ही कैसा ? परन्तु दया के कारण जैसा दु दु ख आज मुझे हुआ वैसा कभी नही हुआ था। लक्ष्मणजी तेज के खानि सुमि के बेटे है। वे इस विचित्र दया पर हँस पडे और जाकर प्रणाम किया। बोले आप अनुकूल मूर्ति पुष्पित वृक्ष की भाँति है। कृपा की हवा वह रही है। जो वचन मु से निकलते है तो मालूम होता है कि फूल झर रहा है। भाव यह कि जिस हृदय मे दया का उद्रेक है वह क्या ऐसी बात बोलेगा कि · परसु अछत दे जिअत बैरी भूप किसोर।

जौ पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोधु भए तनु राख विधाता॥
देखु जनकु हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥३॥

अर्थ हे मुने ! यदि कृपा होने पर आपका शरीर जला जाता है तो क्रोध होने पर आपकी रक्षा विधाता ही करेंगे। परशुरामजी बोले देख जनक ! यह ज बालक हठ करके यमपुर मे डेरा किया चाहता है। अर्थात् मरा चाहता है।

व्याख्या परशुरामजी ने कहा है · आजु दया दु ख दुसह सहावा। वहइ न हाथ दहै रिसि छाती। उसी के उत्तर मे लक्ष्मणजी कहते है कि ससार मे यह नियम है कि क्रोध से शरीर जलता है और दया से द्रवीभूत होकर शीतल होता है। दया के समय जिस शरीर मे दाह हो उसमे क्रोधावेश होने पर सचमुच आग लग जावेगी और शरीर ही भस्म हो जायगा। भाव यह है कि यह दया नही है कादरता है। अपनी बात बनाये रखने के लिए दया की ओट पकड रहे हो।

समाज भर मे केवल जनकजी ही ऐसे थे जिन्होने मष्ट करहु अनुचित भल नाही कहके लक्ष्मणजी को रोका था। अत अब जनकजी से कहते है कि हम इसे यमपुर नही भेजना चाहते। पर यह जाने पर तुला हुआ है। मानता ही नही। तुम्हारा सम्बन्धी हो गया है। तुम इसे बचाओ। अब मैं इसे नही बचा सकता।

बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहँसे लखनु कहा मन माही। मूँदे आँख कतहुँ कोउ नाही॥४॥

अर्थ . इसे तुरन्त आँख से ओझल क्यो नही करते। देखने मे छोटा परन्तु यह राजा का बेटा बड़ा खोटा है। लक्ष्मण विहँसे और मन मे कहा आँख मूँदने पर तो कही कोई नहीं है।

व्याख्या : परशुरामजी अब कहते है कि क्या तुम भी इसकी मृत्यु चाहते हो।

नही तो इसे खीच खाँचकर हमारे सामने से हटाओ। हमे दया आगई है। हम इसे खोजकर नही मारेंगे।

लक्ष्मणजी जोर से हँस पड़े कि क्या अब बात इतने पर आगई कि हम आँख से; ओझल हो जायँ। तब तो इनके अमोघ कहे जानेवाले क्रोध का इतना ही परिणाम रह गया कि ये अब आँख मीच लें और समझ लें कि कही कोई नही है।

दो. परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु ॥२८०॥

अर्थ : परशुरामजी तब रामजी से बोले। उनके हृदय मे बड़ा क्रोध था। शिवजी का धनुप तोड़कर, शठ! तू मुझे समझा बुझा रहा है।

व्याख्या : रामचन्द्र को चुप देखकर कि लक्ष्मण को तनिक भी नही रोक रहे हैं। बड़ा क्रोध हुआ। अब रामजी से कहते हैं कि तू शठ है। महा विगाड करके मीठा मीठी बातें बनाता है। यथा : मीठी बाते सठ करै करिके महा बिगार। हमारी इतनी हानि करके समझाने चला है। यथा ' तुम समसील धीर मुनि ज्ञानी। इन्हहि न सत विदूषहि काऊ। करहु कृपा सिसु सेवक जानी। और उसे नही समझाता।

यहाँ 'परशुराम' और 'राम' शब्द दोनो साथ देकर यह दिखलाया कि दोनो ही राम हैं। सदा परशु धारण किये रहने से एक का नाम परशुराम पडा और दूसरे ऐश्वर्यातिरेक से श्रीराम कहलाये। यथा : श्रीरामाय नम. उदरं पूजयामि। श्रीरामाय नमः हृदयं पूजयामि। श्रीरामावतार मे ही उनके द्वारा दूसरे अवतार का पराभव हुआ है। ऐसी बात दूसरे अवतारों में नही देखी जाती। यह श्रीरामावतार की विशेपता है।

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तूं छल विनय करसि कर जोरे ॥
करु परितोपु मोर संग्रामा। नाहि त छाडु कहाउब रामा ॥१॥

अर्थ : तेरी सम्मति से तेरा भाई कडुआ बोलता है और तू हाथ जोड़कर छल से विनय करता है। युद्ध मे मेरा परितोप कर या राम कहलाना छोड़।

व्याख्या : अब जाना यह सब तेरी राय से होता है। तू मुझे समझाता है भाई को नही रोकता। उसे कटु कहने के लिए छोड़ दिया है और स्वयं हाथ जोड़कर विनय करता है। ऐसा कहकर : अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी। पर परशुरामजी आक्षेप करते हैं।

कहहु बेगि जेहि बिधि रिसि जाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि दास मानकर कृपा, कोप, बध, बन्धन करनेवाली बात ठीक नही। शत्रु की भाँति संग्राम में मेरा पेट भर दे। तू मेरा प्रतिस्पर्धी बना है। तूने शङ्कर का धनुप तोड़ा है और

नाम भी अपना मेरे सा रक्खे है। अब दो राम नही रह सकते। युद्ध कर या अपना नाम बदल।

छल तजि करहि समरु सिवद्रोही। बधु सहित न त मारौ तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाये॥२॥

अर्थ रे शिवद्रोही या तो छल छोडकर युद्ध कर नही तो भाई के सहित तुझे मारूँगा। परशुरामजी कुठार उठाये बकते चले जाते हैं और रामजी सिर नवाये हुए मन ही मन मुसक्रा रहे हैं।

व्याख्या · तेरा दास बनना छल है। वस्तुत तू मेरा प्रतिस्पर्धी है। शिवद्रोही मेरा दास नही हो सकता। तू दास बनकर थोडे ही दण्ड मे बचना चाहता है। तूने धनुष तोडा है। यदि प्रतिस्पर्धी नही है तो अपना नाम बदल नही तो तुझे भी मारूँगा और तेरे भाई को भी। तुम दोनो भाइयो मे वडी प्रीति है। छोटा तो कटु बोलकर मेरे क्रोध के परिणाम को अपने ऊपर लना चाहता है और तू तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा। कहकर उसे बचाना चाहता है। सो न होगा। मै दोनो भाइयो को मारूँगा।

गुनह लषन कर हम पर रोषू। कतहु सुधाइहुँ ते बड दोषू॥
टेढ जानि सब बंदै काहू। बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू॥३॥

अर्थ अपराध तो लक्ष्मण का और क्रोध मेरे ऊपर कर रहे है। कही सीधेपन मे भी वडा दोष होता है। टेढा जानकर सब लोग वन्दना करते हैं और टेढे चन्द्रमा को राहु भी नही ग्रसता।

व्याख्या . रामजी स्वगत कहते हैं। यह कौतूहल देखो। अपराध लक्ष्मण का है। वह बिना उत्तर दिये नही मानता। तो आज विश्वविदित क्षत्रियकुल द्रोही भी उससे वगल झाँक रहे हैं और मैं सुधाई से काम लेता हूँ तो इन्हे छल का भ्रम हो रहा है। सचमुच यहाँ सुधाई दोषप्रद ही है। 'गुनह' शब्द का अर्थ अपराध है। यह पारसी शब्द है 'साहिब' 'गरीब' आदि शब्दो की भाँति हिन्दी मे परिगृहीत है।

कोई हो चाहे वन्दनीय चाहे अवन्दनीय यदि वह टेढा है तो सभी उसको वन्दना करते है। दूइज के चन्द्रमा टेढे होते है तो उनकी सभी वन्दना करते है। यथा . दुइज न चन्दा देखिये उदित कहा भरि पाख। राहु भी उसे नही ग्रसता। पूर्णमासी के चन्द्रमा सीधे होते हैं। उनकी इतनी पूजा भी नही होती और उन्हे राहु भी ग्रसता है।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥४॥

अर्थ रामजी ने कहा : हे मुनीश! क्रोध छोडिये। आपके हाथ मे परशु है और यह सिर आगे है। जिस प्रकार से आपका क्रोध जाय सो करिये। मुझे अपना अनुचर समझिये।

व्याख्या . बधु कहै कटु समत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे का उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं कि यदि इसी बात पर क्रोध है तो भी क्रोध छोडिये। मेरी ओर से छल नही है सिर हाजिर है और आप कुठार उठाये ही हुए है चला दीजिये।

आप स्वामी हैं, सेवक का सिर स्वामी के लिए है। यदि काटने से क्रोध जाता हो तो काट दीजिये। पर मुझे अपना सेवक जानिये वैरी नही। मुझे सिर देना स्वीकार है। ब्राह्मण का वैरी होना स्वीकार नही है।

दो. प्रभु सेवकहि समरु कस, तजहु विप्रवर रोसु।
बेषु बिलोके कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु ॥२८१॥

अर्थ : स्वामी और सेवक मे युद्ध कैसा ? हे ब्राह्मणो म श्रेष्ठ ! क्रोध छोडिये। बालक का भी दोष नही है। उसने भी वेष देखकर ही कुछ कहा।

व्याख्या ब्राह्मण से जो मैं सेवक सेव्य भाव रखता हूँ उसे उस सम्बन्ध को न तोडवाइये। करु परितोष मोर सग्रामा। छल करि समर करहि का उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं। ब्राह्मणो ने क्षत्रियो को द्वारपाल नियुक्त कर रक्खा है। मैं सेवक होकर प्रभु से न लड़ूँगा। बधु सहित न त मारो तोही का उत्तर देते हुए कहते हैं। आपका वेष अननुरूप है। ब्राह्मण का वेष ऐसा न होना चाहिए। न्यायाधीश को सैनिक का वेष नही धारण करना चाहिए। इसी भाँति सैनिक को न्यायाधीश का वेष अनुचित है। प्रभुवाला वेष आपने नही रक्खा। सेवक का वेष आपको पसन्द है। लक्ष्मण बालक है। सेवक के वेष मे स्वामी को नही पहचानकर अनादर किया। अत वह भी निर्दोष है। मैने तो पहिचान लिया। मैं जानबूझकर दोषी नही हो सकता।

देखि कुठार बान धनुधारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बस सुभाय उतरु तेहिं दीन्हा ॥१॥

अर्थ कुठार, बाण और धनुष धारण किये हुए देखकर लडके ने विचार किया कि ये वीर हैं। इसलिए उसने क्रोध किया। नाम जाना पर आपको नही पहिचाना। वश के स्वभाव से उसने उत्तर दिया।

व्याख्या क्षत्रिय जाति भेंडिये की भाँति एक दूसरे को खानेवाली होती है। कुठार, बाण, धनुष धारण क्षात्रधर्म का चिह्न है। अत वीर विचार करके लडके को क्रोध हुआ। आप मुनि है। इस बात को वह वीर वेष मे नही पहिचान सका। उसने उत्तर दिया। उसपर उत्तर देने का ही दोष है। नाम जानना ही चीन्हना है। यथा रूप बिसेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परत पहिचाने। यहाँ तुम्हहि न चीन्हा। कहने का भाव यह है कि वह यह न पहिचान सका कि क्षात्रवेष मे आप साक्षात् ब्रह्ममूर्ति है। जिनके लहहिं न रिपु रन पीठी। यह वशस्वभाव है। तदनुसार उसने प्रतिस्पर्धी जानकर उत्तर दिया।

जौ तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी ॥२॥

अर्थ यदि तुम मुनि की भाँति आते तो यह लडका चरणरज को सिरपर धारण करता। अनजान की चूक क्षमा कीजिये। ब्राह्मण के हृदय मे बडी कृपा होनी चाहिए।

व्याख्या आप मुनि की भाँति नही आये। यदि आते तो 'उत्तर देना तो दूर गया। वह आपके चरणरज को सिरपर धारण करता क्योकि वह जानता है कि इसी मे मेरा कल्याण और उसका कल्याण है। यथा : सब पायेउँ रज पावन पूजे।

वालक से बिना जाने चूक हुई। कुर्यादन्य न वाकुर्यात् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। ब्राह्मण के हृदय मे बडी कृपा चाहिए। जानवूझकर किये गये अपराध को भी क्षमा करना चाहिए। इसने तो बिना जाने चूक की है। यह बधु सहित न त मारौ तोही का उत्तर है।

हमहि तुमहिं सरबर कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कह माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड नाम तुम्हारा ॥३॥

अर्थ हे नाथ! हमारी तुम्हारी कौन सी बराबरी है। कहो तो कहाँ चरण और कहाँ माथा। मेरा छोटा सा नाम केवल राम है और आपका नाम परशु के सहित होने से बडा है।

व्याख्या युद्ध बराबरो से होता है। चरण कितना भी ऊँचे चढे सिरतक नही चढ सकता। जब वहाँ तक पहुँच ही नही तो युद्ध क्या करेगा? पूज्य होने से परशु-रामजी को मस्तक और सेवक होने से अपने को चरण कहा। करु परिताप मोर सग्रामा का यह उत्तर है।

नाही त छाड कहावउ रामा का उत्तर देते हुए कहते है कि मै ही आपसे छोटा नही हूँ। मेरा नाम भी आपके नाम से बहुत छोटा है। राम कहने से आपका वाध नही होता। परशुराम कहने से होता है और मेरा वाध 'राम' मात्र से होता है। यदि आपका मेरा एक नाम होता तब नाम रखने या छोडने का प्रश्न उठ सकता था।

देव एक गुन धनुष हमारे। नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे। छमहु विप्र अपराध हमारे ॥४॥

अर्थ हे देवता! मेरे पास तो एक गुण धनुष है पर तुम्हारे पास तो परम

---

१ यहाँ सम्भावना अलङ्कार है।

पुनीत [1]नव गुण हैं। सब प्रकार हम तुमसे हारे हुए हैं। हे विप्र! हमारे अपराध को क्षमा करो।

व्याख्या नाम में ही वडे नही, आप गुण मे भी वडे हैं। मुझमे केवल एक गुण है। धनुर्वेद जानता हूँ। यथा 'सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठित। पर आपमे नव गुण हैं और वे परम पुनीत हैं। यथा 'शमो दमस्तप शौच क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्म स्वभावजम् गी। शम, दम, तप, शौच, क्षमा, ऋजुता . सिधाई, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं। स्वाभाविक कर्म कहकर गुण कहा। परन्तु धनुषवाला गुण, वीरता का युद्धे चाप्यपलायनम् तो हमारा ही है।

दो. वार वार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
वोले भृगुपति सरुप हँसि, तहूँ बधु सम वाम ॥२८२॥

अर्थ : जब वार वार मुनि और विप्रवर श्री राम ने परशुराम से कहा तो भृगुपति ने क्रोध की हँसी के साथ कहा कि तू भी भाई सा ही खोटा है।

व्याख्या . मुनि दो वार कहा। यथा १ राम कहा रिसि तजिअ मुनीसा २ जौ तुम औतेउ मुनि की नाईं। तीनवार विप्रवर कहा। यथा १ तजहु विप्रवर रोप। २ चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी। ३ छमहु विप्र अपराध हमारे। तब तो परशुरामजी क्रोध से हँसे। क्रोध की हँसी वडी भयानक होती है। यथा अट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह। परशुरामजी की इच्छा थी कि उन्हे सव कोई वीर मानकर डरें। 'मुनि' 'विप्र' सम्बोधन से वे अपना अपमान मानते थे। क्योकि राजाओ ने वीर न होने से ब्राह्मणो का अपमान किया था। अत रामजी से कहा कि तू भी छोटे भाई सा ही खोटा है। मुझे वीर नही मानता। एक गुण धनुप अपना मानता है। मेरे शस्त्र वाँधने को अनुचित वतलाता है। तेरे और तेरे भाई के कहने मे वास्तविक भेद कुछ भी नही हैं। अत तू भी वैसा ही खोटा है।

निपटहि द्विज करि जानेहि मोही। मै जस विप्र सुनावौ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू॥१॥

अर्थ . तूने मुझे निरा ब्राह्मण ही समझ रखा है? मै जैसा ब्राह्मण हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुप को स्रुवा वाण को आहुति और मेरे क्रोध को धधकती हुई अग्नि जान।

व्याख्या : परशुरामजी छमहु विप्र अपराध हमारे का उत्तर देते हैं कि तुम्हारे समझने मे वड़ी भूल हो रही है। तुमने समझ रखा है कि यह अध्ययना-

---

१. नवगुणो का सूचक निम्नश्लोक वहुत जगह कहते सुना गया है। पर यह पता मुझे नहीं लग सका कि यह श्लोक कहाँ का है। यथा . ऋजुस्तपस्वी सन्तुष्ट क्षमाशीलो जितेन्द्रिय। क्षान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणै।

ध्यापन, यजन याजन, दान प्रतिग्रह छोडकर और क्या जाने ? ब्राह्मण के ये ही छ कर्म हैं। ब्राह्मण का युद्ध से क्या सम्बन्ध ? सो मै वैसा ब्राह्मण नही हूँ। मैं तो युद्ध यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण हूँ। श्रौत याग मे पाँच सात प्रकार की सामग्री की आवश्यकता पडती है। १ स्रुवा जिससे आहुति दी जाती है। २ आहुति द्रव्य जिससे होम किया जाय। प्रधान आहुति घी या दुग्ध की है। इसके बिना काम नही चलता। ३ घोर अग्नि म होम किया जाता है। प्रज्वलित अग्नि मे ही होम का विधान है। ४ समिधा लकडी जिससे अग्नि जलाई जाती है। ५ पशु जिसकी श्रौत याग म बलि देनी पडती है और ६ मन्त्र जिसके उच्चारण के साथ आहुति दी जाती है और ७ शस्त्र बलि देने के लिए। सो युद्धयज्ञ मे धनुष ही मेरा स्रुवा होता है। बाण की आहुतियाँ पडती हैं और मेरा क्रोध ही धधकती हुई आग है।

समिध सेन चतुरग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मै यहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥२॥

अर्थ चतुरङ्गिणी सेना ही समिधा है। बडे बडे राजा ही आकर पशु होते हैं। इसी परशु से काटकर मैं बलि देता हूँ। ऐसे युद्धयज्ञ तथा जप मैंने करोडो किये है।

व्याख्या चतुरङ्गिणी सेना रूपी रथ, हाथी, घोडा और पैदल समिधा मेरी क्रोधाग्नि का आधार है। इसे जलाकर ही मेरा क्रोध शान्त होता है। बडे बडे राजा इस युद्धयज्ञ म आकर पशु हो जाते हैं। श्रौतयाग बिना पशु के होता नही। इसी भाँति मेरा युद्धयज्ञ बिना महाराजाओं की बलि दिये पूरा होता नही। मैं इसी परशु से काटकर उनकी बलि यज्ञपुरुष की प्रीति के लिए देता हूँ। म ऐसा यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण हूँ। जितना ही अधिक सख्या म यज्ञ करे उतना ही ब्राह्मणत्व का उत्कर्ष होता है। सौ यज्ञ करने से यजमान शतक्रतु इन्द्र का पद प्राप्त करता है। मैने तो करोडो ऐसे यज्ञ मन्त्र जप क साथ किये हैं। दिव्यास्त्रो के प्रयोग म मन्त्र जप किया जाता है।

मोर प्रभाव विदित नहि तोरे। बोलसि निदरि विप्र के भोरे॥
भजेउ चापु दापु बड बाढा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा॥३॥

अर्थ मेरा प्रभाव तुझ मालूम नही इसलिए ब्राह्मण के धोखे से तू मेरा अपमान करके बोलता है। धनुष तोड दिया है। इससे दर्प बहुत बढ गया है ऐसा अभिमान हो गया है मानो तुम जगत् जीतकर खडे हो।

व्याख्या ये जितने राजा यहाँ इकट्ठे हैं वे मेरे प्रभाव को जानते है। इसलिए ये आदर के साथ परम भयभीत होकर मुझसे बोलते हैं। तू मेरे इस प्रभाव को जानता ही नही। समझता है कि ये ब्राह्मण है। यज्ञ जप करनेवाले ये क्या कर सकते है। इसलिए मेरा निरादर करके निर्भय होकर मुझसे बोलता है। यह नही समझता कि जिसने करोडो युद्ध यज्ञ करके इक्कीस बार पृथ्वी को नि क्षत्र किया उसे एक यज्ञ करके मुझे बलि दे देने मे कौन सा बडा परिश्रम है ?

देव एक गुन धनुप हमारे का उत्तर परशुरामजी देते हैं कि धनुप जो तोड दिया तो बड़ा भारी अभिमान हो गया कि धनुप का गुण तो हमारा ही है। उसमे कोई साझीदार नही है। मै ही जगत् मे एकमात्र धनुर्द्धर हूँ ऐसी भावना तुम्हे हो गई है। तुम्हे ऐसा अभिमान बढ़ा हुआ है मानो संसार जीतकर खडे हो।

राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिसि अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
[1]छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मै केहि हेतु करौ अभिमाना ॥४॥

अर्थ : रामजी ने कहा हे मुने ! विचारकर वोलो। आपका क्रोध बहुत वडा है और मेरी चूक वहुत छोटी है। पुराना धनुप छूते ही टूट गया मैं किसलिए अभिमान करूँ।

व्याख्या : मुनि हो मनन करनेवाले हो। आपको विचारकर वोलना चाहिए। आप विचार से काम नही ले रहे है। धनुप आपका गुण नही हो सकता क्योकि वह आपका स्वधर्म नही है। वह मेरा स्वधर्म है इसलिए मेरा है। युद्ध मे न भागना क्षात्रधर्म है। ब्राह्मण के लिए अनिवार्य नही है। यथा : युद्धे चाप्यपलायनम्। क्षात्रकर्म स्वभावजम्। हम स्वधर्म पर स्थित है उसे आप अभिमान बतला रहे हैं। धनुपभङ्ग लघु चूक है। क्योकि बल के दिखलाने मे ही क्षत्रिय की बडाई है। यह भंजेउ चाप दाप बड़ वाढा का उत्तर है।

दो. जौ हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयवस नावहि माथ ॥२८३॥

अर्थ : हे भृगुवंशियों के स्वामी ! सत्य मानिये यदि हम ब्राह्मण जानकर निरादर करें तो ससार मे ऐसा सुभट कौन है जिसे भयवश सिर झुकावे।

व्याख्या : ब्राह्मण जानकर ही मैं सिर झुकाता हूँ। यदि ब्राह्मण जानकर हम निरादर करें तो क्या सुभट जानकर डरेंगे ? हम सुभट से नही डरते ब्राह्मण से डरते हैं। यथा : इन्द्र कुलिस मम सूल विसाला। कालदड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहि मरई। विप्र रोष पावक सो जरई। तथा : मुनि तापस जिनते दुख लहही। ते नरेस बिनु पावक दहही। भाव यह है कि मुझे ब्रह्मबल से भय है। क्षत्रबल तो अपनी वस्तु है उससे क्यो डरें ?

देव दनुज भूपति भट नाना। समवल अधिक होहु बलवाना ॥
जौ रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहि सुखेन काल किन होऊ ॥१॥

अर्थ : देवता, दनुज और नाना प्रकार के योद्धा चाहे बराबरीवाले हो चाहे अधिक वलवान् हो। यदि कोई हमे युद्ध मे ललकारे तो हम सुख से लड़ेंगे। चाहे वह काल ही क्यो न हो।

---

१. यह सम तृतीय है।

व्याख्या : चाप स्रुवा सर आहुति जानू इत्यादि तीन अर्धालियों से युद्धयज्ञ का रूपक दिखलाया है। उसीका उत्तर श्रीरामजी तीन अर्धालियो मे देते हैं। देव स्वर्गलोक के योद्धा, दनुज पाताललोक के योद्धा भट नाना मर्त्यलोक के योद्धा। इनमें से चाहे मेरे समान बलवाले हो चाहे अधिक बलवाले हो। यदि युद्ध मे इनमे मे कोई मुझे ललकारे तो वह काल ही क्यो न हो निश्चय उससे युद्ध करेंगे। निर्बल को बात नही कहता हूँ क्योकि उसका तो मै बल ही हूँ। यथा : निर्बल के बल राम। भाव यह कि मुझे ललकारिये मत। धर्माद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। अथचेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि। अर्थ : युद्ध से बढकर दूसरा धर्म क्षत्रिय के लिए नही है। बिना प्रार्थना किये यह खुला दरवाजा स्वर्ग का हे अर्जुन। भाग्यवान् क्षत्रिय को मिलता है। यदि तू इस धर्मयुद्ध को न करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति से पतित होकर पापी हो जायगा। ललकारने से यदृच्छया चोपपन्नम् बिना प्रयत्न के ही युद्ध का अवसर प्राप्त हो जाता है। मैं सीघ बाँधकर लडने नही जाता परन्तु ललकारने पर न लड़ने से लोक परलोक दोनो बिगडता है और लडने से दोनो बनता है। यथा : हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। अतः दोनो हाथ मे लड्डू है। युद्ध मे मरने मारने को हिंसा समझनेवाले क्षत्रिय मूर्ख हैं।

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पाँवर जाना॥
कहौं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥२॥

अर्थ क्षत्रियशरीर धारण करके जो युद्ध मे डरा उसे कुल का कलंक और पामर समझना चाहिए। मैं स्वभाव कहता हूँ। प्रशसा नही करता। रघुवशी युद्ध मे काल से भी नही डरते।

व्याख्या : क्षत्रियशरीर के लिए युद्ध से बढकर कोई धर्म नही है। ऐसे धर्म को त्याग करनेवाला नीच है। कुल का कलङ्क है। सग्राम न करनेवाले को स्वधर्म का त्याग करना पडता है। कीर्ति नष्ट होती है। पाप होता है। इसलिए वह अपयश-भाजन है। उसके प्रियजनों को उसके कारण लज्जित होना पडता है। इसलिए वह प्रियजनद्रोही है और अपयशभाजन प्रियजनद्रोही को ही कुलकलङ्क कहते है। यथा कुलकलङ्क जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही। मैं जस विप्र सुनावौं तोही का उत्तर देते हैं : सुनाइयेगा क्या? आप अपने वश मे केवल अपना हाल सुनावेंगे। यहाँ पूरे रघुवश का स्वभाव सुन लीजिये। रघुवश रण मे काल से भी नही डरता। यह प्रशसा नही है स्वभाव है। अर्थात् रक्त का गुण है। मकरता न आने से रक्त का गुण रहता ही है। आप उसे नीच समझते है जो आपको कालरूप नही देखता। पर जो काल से नही डरता वह आप से रण मे क्यो डरेगा?

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥३॥

अर्थ : ब्राह्मणवंश की ऐसी प्रभुता है कि जो तुम्हे ब्राह्मणवश को डरेगा वह निर्भय हो जायगा। रघुपति के कोमल पर गूढ वचन सुनकर भृगुपति की बुद्धि का पर्दा खुल गया।

व्याख्या : तहूँ बंधु सम बाम का उत्तर रामजी देते हैं कि निर्भय होने से आप बाम कह रहे हैं। सो यह : निर्भयता विप्रवश की प्रभुता है मेरी नही। मै ब्राह्मणवंश को डरता हूँ इसलिए अभय हूँ। अभय वही हो सकता है जो विप्रवश को डरे। अर्थात् मैं तुम्हारे अस्त्रबल से नही डरता। तुम्हारे ब्राह्मणत्व को डरता हूँ।

वचन तो मृदु है स्वीकार करते हैं कि मैं आप से डरता हूँ। पर गूढ है अर्थ छिपा है। परशुरामजी जान गये कि ये ब्रह्मण्यदेव हैं। इनकी भक्ति ब्राह्मणत्व पर सच्ची है। क्षात्रधर्म पर इतनी निष्ठा होने पर भी ब्राह्मणत्व पर इतनी आस्था देखकर पता चल गया कि अवतार हो गया। स्वय सरकार आगये। आँख खुल गई। पूरे सवाद का अर्थ लग गया।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन बिसमय भयेऊ॥४॥

अर्थ : हे राम! विष्णु का धनुष लो इसे चढाओ जिसमे मेरा सन्देह मिट जाय। धनुष देते समय स्वयं ही चले गये। अर्थात् जो थे सो नही रह गये। परशुरामजी के मन में बडा आश्चर्य हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने कहा : वैष्णव धनुष को विष्णु ही चढा सकते हैं। वैष्णवतेजयुक्त होने से ही इस धनुष को मै धारण करता था। आप इसे खीचिये। यदि प्रत्यञ्चा चढ गयी तो मेरा सन्देह मिट जायगा। अब मुझे आपके पहिचानने मे इतना ही सन्देह है।

धनुष देते समय जो वैष्णवतेज[1] उनमे था वह चला गया। परशुरामजी निस्तेज से हो गये तब उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। देवता के अस्त्रशस्त्र उनके स्वरूप से पृथक् नही होते। धनुष की चेतन सी क्रिया देखकर आश्चर्य हुआ।

दो० जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेमु अमात॥२८४॥

---

१. त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्ययः।
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मा तत।
मत्तेज. पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा। अध्यात्मे

भगवान् विष्णु ने परशुराम से कहा कि त्रेता मे मैं दाशरथि होकर पराशक्ति के सहित अवतीर्ण हूँगा। तब जब मुझसे तुम्हारी भेंट होगी तो मैंने जो अपना तेज तुम्हे दिया है उसे लौटा लूँगा। वही उस समय हुआ। रामजी ने अपना तेज परशुरामजी से ले लिया।

अर्थ तब उन्होने रामप्रताप जाना । उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया । हाथ जोडकर वचन बोले । प्रेम हृदय मे अँटता नही था ।

व्याख्या पहिले कहते थे मोर प्रभाउ विदित नहिं तोरे । उस समय रामजी के प्रभाव से अनभिज्ञ थे । अब जाना महात्मा हैं । इन्हे असूया नही । स्वरूपज्ञान होते ही प्रेम उमडा सो शरीर मे भर गया और समाता नही है अङ्ग अङ्ग से पुलक और प्रफुल्लता के मिस से बाहर निकला पडता है । मनसा प्रेम न हृदय अमात । कर्मणा · जोरि पानि । वाचा बोले वचन ।

जय रघुवंस वनज वन भानू । गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥
जय सुर विप्र धेनु हितकारी । जय मद मोह कोह भ्रमहारी ॥१॥

अर्थ · हे रघुवंशकमलवन के सूर्य ! राक्षसकुलरूपी वन के जलानेवाले अग्नि ! आप की जय हो । हे सुर विप्र धेनु के हितकारी ! आपकी जय हो । हे मद, मोह, क्रोध और भय को हरण करनेवाले ! आपकी जय हो ।

व्याख्या जिस भाँति कमलवन सूर्योदय से विकसित हो उठता है । इसी भाँति आपके अवतीर्ण होने से रघुवंश प्रफुल्लित हो रहा है । अर्थात् आप अपने वंश के समुन्नतिकारी है । यथा स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम् । दनुजकुल इस समय वन की भाँति सघन और विस्तृत हो रहा है । उसके लिए आप अग्नि हैं । वन का नाश जिस भाँति अग्नि से होता है उस भाँति और किसी उपाय से नही होता । अग्नि मे ही यह सामर्थ्य है कि वन के विस्तारानुसार अपनी शक्ति का आकार प्रकट कर सकता है । सुर विप्र धेनु का अहित इन राक्षसो से हो रहा है । यथा करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी । सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी । इनके हित के लिए ही आप दनुजवनकृसानु बन रहे हैं । मद मोह क्रोध और भ्रम आदि दोषो के बढने से अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा है । उनका आप हरण करने वाले हैं । रघुवंशवनज वन भानु से रघुकुल मे अवतार कहा । दनुज वन गहनकृसानु से अवतार का प्रयोजन विनाशाय च दुष्कृताम् कहा । रघुवंश की ही प्रशसा दोनो प्रभुओ के मुख से सुनी । यथा कालहु डरैं न रन रघुवंसी । बस प्रभाउ उतर तेहि दीन्हा । सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इन पर न सुराई । अत भानू द्विवचन का प्रयोग किया । इसी भाँति दनुजवनदहन मे लक्ष्मणजी के सहायक होने से । यथा जयति संग्राम सागर भयङ्कर तरन वरबाहु सेतू । कृसानू द्विवचन का प्रयोग किया ।

सुर महिसुर हरिजन अरुगाई । हमरे कुल इन पर न सुराई । सब प्रकार हम तुमसन हारे इत्यादि वाक्यो से अर्थ लग गया कि सुर विप्र धेनु हितकारी का आविर्भाव हो गया । तुम समसील धीर मुनि ग्यानी कहकर प्रशसा करते हुए परशुरामजी को पुरुषार्थ का अभिमान न करने की शिक्षा दी । इसलिए मदहारी कहते हैं । कृपा कोप बध बँधब गोसाईं । मोपर करिय दास की नाईं कहकर विनय करते हुए परशुरामजी को परधर्म के बहुमानरूपी अज्ञान त्यागने की शिक्षा दी ।

इसलिए मोहहारी कहते हैं। तजिअ विप्र वर रोप · रिस तजिअ मुनीसा। इत्यादि प्रार्थनाओ से क्रोध न करने की शिक्षा दी। इसलिए कोहहारी कहते है। सुनि मृदु गूढ वचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के। इसलिए भ्रमहारी कहते हैं। चारो उत्तरो से क्रमशः चारों दोषों का हरण किया। १ इससे चरित कहा।

विनय सील करुना गुन सागर। जयति वचन रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छवि कोटि अनगा ॥२॥

अर्थ : विनयशील करुणा और गुणो के सागर वचनरचना में अति नागर आपकी जय हो। सेवक के सुख देनेवाले सब अङ्गो से सुन्दर और शरीर मे करोडो कामदेव की शोभावाले आपकी जय हो।

व्याख्या : रामजी ने परशुरामजी के जनकजी से पूछने पर यथा · बेगि बताव मूढ न त आजू : कहा। नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा। ऐसे विनयपूर्वक उत्तर से जाना कि ये विनय के सागर हैं। इसी भाँति नाथ करिअ बालक पर छोहू कहने से जाना कि शीलसागर हैं। इतनी करुणा है कि ब्राह्मण के कोप करने पर अपराध स्वीकार किये लेते है। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा। क्रोध से जल रहे हैं परशुरामजी। उनकी शान्ति के लिए अपराधी बनने को जो प्रस्तुत हो उसके करुणासागर होने मे कौन सन्देह है ? प्रभु सेवकहि समर कस। बेप बिलोके कहेसि कछु। छमहु चूक। परसु अछत बड नाम तुम्हारा। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे। ये वाक्यखण्ड कहनेवाले मे अपरिमित गुण के होने की सूचना देते है। इसलिए जाना कि गुणसागर हैं। सुनि मृदु गूढ वचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के। इस भाँति धनुपविषयक वादविवाद में मोहपटल को हटा देने से वचनरचना का पाण्डित्य स्पष्ट है। अत वचनरचना मे अति नागर हैं। परशुरामजी को सवाद के बीच मे ही जिन जिन गुणो का परिचय मिला उन्ही के आधार पर स्तुति कर रहे हैं। २ इससे गुण कहा।

सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु। तब बिना पूछे ही बोले। अत ज्ञात हुआ कि सेवक सुखद है और : सुभग सब अगा। जय सरीर छवि कोटि अनगा : का तो सब गुणो से पहिले ही परशुरामजी साक्षात्कार कर चुके है। यथा : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। ३ इससे रूप कहा।

करौं काह मुख एक प्रसंसा। जै महेस मन मानस हंसा ॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥३॥

अर्थ · एक मुख से मैं आपकी प्रशसा क्या करूँ। हे महेश के मनमानस के हस ! आपकी जय हो। बिना जाने मैंने बहुत अनुचित : शब्द कहे। आप दोनो भाई क्षमा के मन्दिर हैं। क्षमा करें।

व्याख्या : परशुरामजी परम शैव है। यथा : भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा। सो दोनो भाई राम लक्ष्मण को अपने इष्टदेव शिवजी के मनमानस के हस बतला

रहे हैं। इतने से ही उनका हार्दिक भाव समझ लेना चाहिए। उनका कहना है कि मैं एक मुख से क्या प्रशसा करूँ। यह द्योतित करता है कि अनेक मुखवाले शेष महेश भी प्रशसा नही कर सकते। ४ इससे पराकाष्ठा का उत्कर्ष कहा।

मैने अपने समझ मे सब उचित कहा था। परन्तु अब मोह का परदा हट जाने से मालूम हुआ कि वे वचन अनुचित थे। आप लोगो के स्वरूप का ज्ञान मुझे नही था। अत बहुत सी अपमानसूचक बातें मैने मनुष्य जानकर आपको कही। आप दोनो भाई क्षमा के मन्दिर हो। बराबर मेरे अपराध को क्षमा करते ही गये। पर अब मैं क्षमाप्रार्थना करता हूँ। आपने मुझसे छमहु चूक अनजानत केरी कहा था। अब मैं वही प्रार्थना आप से करता हूँ। मेरे अनुचित कथन को क्षमा करो। दूसरा कोई वरदान नही चाहता। ५ इससे प्रार्थना की।

ये ही पाँच बातें इस चौथे गुणग्राम मे हैं। चौथा गुणग्राम रोहिणी नक्षत्र मे ये ही पाँच तारे चमकते है। आकार शकट सा है। इसमे धर्मरथ की सम्पूर्ण बातें सक्षेप मे दिखलायी गई है। इसलिए शकटाकार कहा। इस चौथे गुणग्राम के विषय मे कहा गया है विबुध वेद भव भीम रोग के। सो भव भीम रोग भगवत् और भागवत अपराध है। सो दोनो का क्षमापन इस स्तुति से हुआ। इस गुणग्राम मे दोनो भाइयो की एक साथ स्तुति हुई। इसलिए विबुध वैद्य : अश्विनी कुमार कहा। विबुध वैद्य भी दो भाई है और दोनो एक साथ रहते है।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए वनहि तप हेतू ॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जह तहँ कायर गवँहि पराने ॥४॥

अर्थ रघुकुल की पताका की जय हो। जय हो। ऐसा कहकर भृगुपति तप ही के लिए वन गये। निर्मूल डर से राजा लोग डर गये और कादर चुपके से इधर उधर भाग गये।

व्याख्या नव बार जय जय कहा। क्योकि सात बार लक्ष्मण भागवत का और दो बार रामजी भगवत् का अपमान किया था। लक्ष्मण का अपमान। यथा : १ रे नृप बालक कालवस बोलत तोहि न सँभार। २ रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। ३ परसु सुधारि धरेउ कर घोरा कटुवादी बालक वध जोगू। ४ न त एहि काटि कुठार कठोरे। ५ राम तोर भ्राता बड पापी। ६ विषरस भरा कनक घट जैसे। ७ एहि के कठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा। रामजी का अपमान यथा १ सभु सरासन तोरि सठ करेसि हमार प्रबोध। २ बोले भृगुपति सरुख हँसि तहूँ बधु सम वाम। इस भाँति नव बार के अपमान के परिमार्जन के लिए नव बार उत्कर्ष सूचक जयकार किया। रघुकुल केतु कहने का भाव यह है कि श्रुति सेतु रक्षक हैं। यथा रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक। ऐसा कहकर परशुरामजी तप के लिए वन गये। अर्थात् समाज की चिन्ता छोड दी। जिसका समाज है वह स्वय आगया। अब वह ब्राह्मणत्व की रक्षा कर लेगा। रघुबस से उपक्रम करके इस प्रसङ्ग का रघुकुल केतु से उपसहार करते हैं।

निर्मूल डर से राजा लोग डर गये कि परशुरामजी अपने काम का भार इन्हे देकर गये। यह पहिले से ही कह रहे थे : आयसु काह कहिअ किन मोही। सो कहीं ये भी नि:क्षत्र करना ठान न लें। इनसे परशुराम जी दब गये तो हम लोगो की गिनती ही क्या है इसलिए कादर तो इस भाँति धीरे से निकल भागे कि उनका पता भी न लगा कि किधर गये।

८ : विवाह प्रसङ्ग

दो. देवन्ह दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहिं फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटी मोहमय सूल ॥२८५॥

अर्थ : देवताओ ने नगाडे बजाये और प्रभु के ऊपर फूल बरसाये। पुर के नर नारि हर्षित हुए। मोहमय शूल मिट गया।

व्याख्या : देवताओ ने डका दिया। भारी विजय हुई। सहस्रबाहु ने रावण को जीता और वह परशुरामजी द्वारा मारा गया। परशुरामजी पर रामजी ने विजय पाई। अतः सिद्ध हो गया कि रावणवध इनके लिए दुष्कर नही है। पराक्रम की पूजा हो रही है। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। थर थर काँपहिं पुर नर नारी। क्योंकि उन्हे मोह से शूल उठा हुआ था। यथा : मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजै बहु सूला। सो परशुरामजी के पराजय से रामजी के स्वरूप का बोध हुआ। मोहमय शूल मिटा और वे हर्षित हुए।

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे ॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिल बयनी ॥१॥

अर्थ : बडे आनन्द से बाजे बजे। सबने सुमगल साज सजे। झुण्ड के झुण्ड इकट्ठी होकर सुमुखी सुनयनी और कोकिलवयनी सुन्दर सुन्दर गान करने लगी।

व्याख्या : पहिले ही पुर अरु व्योम मे बाजने बजे थे। राजाओ के गोलमाल से बन्द हो गये थे। तबतक परशुरामजी आगये। दूसरा काण्ड ही उपस्थित हो गया। इनके हटते ही और भी अधिक उत्साह से बाजे बजने लगे। सबलोग अपने घर गये और मनोहर मगल साज जिसका वर्णन आगे होगा साजने लगे। जायसी ने भी गहगहे शब्द का प्रयोग आनन्द के अर्थ मे किया है।

पहिले जहँ तहँ जुवतिन मगल गाये। अब घर लौटकर आई तो झुण्ड की झुण्ड इकट्ठा होकर गान करने लगी। रूप और स्वर दोनो की बहार है। यहाँ सुनयनी शब्द से स्वय महतारी का भी गान मे सम्मिलित होना द्योतित किया। कहाँ : मन पछितात सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात बिगारी। कहाँ गाने लग गईं।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई ॥
बिगत त्रास भय सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोर कुमारी ॥२॥

अर्थ विदेह के सुख का वर्णन नही किया जा सकता। मानो जन्मदरिद्र को निधि मिल गई। भय से रहित होकर सीताजी सुखी हो गईं। जैसे चन्द्रोदय से चकोरकुमारी सुखी होती हैं।

व्याख्या विदेह राजा ब्रह्मज्ञान मे रत हैं। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति उन्हे सदा है। परन्तु वह अकिञ्चनावस्था है। उस अवस्था मे अपनी स्थिति छोडकर और कुछ रहता ही नही। यह सिद्धि इन्हे जन्म से है। यथा सहज विराग रूप मन मोरा। इसलिए जन्म दरिद्र से उपमा दी। इन्हे सगुण ब्रह्म की प्राप्ति जामाता रूप से हुई। सो सुखकर लवलेस जिन वारक सपनेहु लहेहु। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति। इसलिए कहते हैं कि मानो जन्मदरिद्र को अपक्षयशून्य निधि मिल गई। सीताजी को परशुराम के आने से चन्द्रास्त का भान होने लगा था। यथा ' भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कल्प सम बीता। सो ऐसी सुखी हो गईं जैसे चन्द्रोदय से चकोर कुमारी सुखी होती हैं। चकोरी का प्रेम चन्द्र म स्वाभाविक है। यहाँ रामजी के अभ्युदय की उपमा चन्द्रोदय से दी गई। चकोरकुमारी को चन्द्र के प्रति बडा चाव रहता है। क्योकि वह उसके लिए अपूर्ववस्तु है। चकोरी को भी प्रीति है। पर उतना चाव नही। बहुत दिनो से चन्द्र को देखती आती है।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥३॥

अर्थ जनक ने विश्वामित्रजी को प्रणाम किया और कहा कि आपके प्रसाद से रामजी ने धनुष को तोड दिया। दोनो भाइयो ने हमे कृतार्थ किया। अब जो करना उचित हो सो मुझे बतलाइये।

व्याख्या धनुर्भङ्ग के बाद प्रणाम करने का समय ही नही मिला। भारी उपद्रव खडा हो गया। सो अब प्रणाम करने का अवकाश मिला। गुरुहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। अत कहते है प्रभु प्रसाद धनु भजेउ रामा। जनकजी कहते है कि आपही रामजी को लाये। आपने ही आशीर्वाद दिया सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। आपही ने आज्ञा दी उठउ राम भजउ भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा। अत आपके ही प्रसाद से सब हुआ। रघुपति कीरति विमल पताका। दड समान भयउ जस जाका। सो धनुर्भङ्ग मे परशुराम पराजय म सभी म लक्ष्मण का हाथ रहा। इससे कहते है मोहि कृतकृत्य कीन्ह दोउ भाई। मैं तो हार गया था। हताश हो गया था कुँवरि कुँआरि रहौं का करऊँ। पर इन्होने हम कृतकृत्य किया। अब जो उचित हो सो बतलाइये। भाव यह कि विवाह विधि होगी या कन्या को साथ कर देना पडेगा। ऐसे अवसर पर दाना विधान देखे जाते है। यथा दुलहिनि लैगे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना । रहा विवाहु चाप आधीना ॥
टूटतही धनु भयेउ विवाहू । सुर नर नाग विदित सब काहू ॥४॥

अर्थ : मुनिजी ने कहा : हे प्रवीण राजा ! सुनो। विवाह तो धनुष के अधीन था। धनुष टूटते ही विवाह हो गया। देवता नर नाग सभी जानते हैं।

व्याख्या : राजा को प्रवीण विशेषण इसलिए दिया कि राजा लोक और वेद दोनो के व्यवहार मे कुशल हैं और कहा कि विवाह तुम्हारे अधीन तो था नही। तुमने प्रण करके उसे धनुष के अधीन कर दिया था। तुम्हारे अधीन होता तो कुछ कहने सुनने का अवसर था। धनुष टूटना विवाह का होना एक बात है। विवाह मे देवता साक्षी रक्खे जाते हैं। यहाँ तीनो लोक साक्षी हैं। देवता नर नाग सभी जानते हैं। अत: व्याह हो गया।

दो० तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर, बेद बिदित आचारु ॥२८६॥

अर्थ : फिर भी जाकर अपनी कुल रीति के अनुसार ब्राह्मण लोग कुल वृद्ध और गुरु से पूछकर वंशव्यवहार और वेदाचार करो।

व्याख्या : फिर भी लोकाचार और वेदाचार दोनो होने चाहिए। अत: वंशव्यवहार जातिधर्म तो कुलवृद्धो से पूछकर करिये और वेदव्यवहार के लिए ब्राह्मणो और कुलगुरु की अनुमति लीजिये। यथा : लोकवेद विधि मंजुल कूला। भाव यह कि आप प्रवीण हैं। लोक वेद दोनो मे कुशल हैं। वरपक्ष की सम्मति जानने के लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मेरी सम्मति यह है कि परिस्थितिविशेष के कारण यद्यपि अब कोई व्यवहार अनिवार्य नही है तथापि लोकवेदमर्यादा के पालन की दृष्टि से सब कुछ जानते हुए भी बडो से पूछ पूछकर करिये।

दूत अवधपुर पठवहु जाई । आनहिं नृप दसरथहि बोलाई ॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला । पठए दूत बोलि तेहि काला ॥१॥

अर्थ : जाकर अयोध्या दूत भेजो। राजा दशरथ को बुला लावे। राजा ने आनन्दित होकर कहा : हे कृपाल ! बहुत अच्छा। उसी समय दूत को बुला करके भेज दिया।

व्याख्या : यहाँ से जाकर अयोध्यापुरी दूतो को भेजो। भाव यह कि एक राजा को दूसरे राजा के यहाँ दूत भेजना है सो प्रचलित नियमानुसार पत्रादि मुद्राङ्कित करके भेजना होगा। रङ्गभूमि का कार्य समाप्त हो गया। अब यहाँ से सभी को अपने अपने निवासस्थान पर चलना है। तुम जाकरके पहिला काम यही करो। वे दूत जाकर महाराज दशरथ को बुला लावें। विश्वामित्रजी अपनी विशेष सम्मति दे रहे हैं। क्योकि अबतक पिता स्थानीय होकर वे ही आज्ञादि देते थे। यथा : उठहु राम भंजउ भव चापा इत्यादि। पर अब तो समधी बनना है।

यह काम महाराज दशरथ ही कर सकते है। विश्वामित्रजी के स्वरूप के प्रतिकूल है। वे नही कर सकते।

राजा जनक प्रसन्न हो गये। क्योकि वे भी यही चाहते थे। सो जाकर नही उसी स्थान पर दूतो को बुलाकर भेजा। जिसमे दूत जाकर कहे कि विश्वामित्रजी की सम्मति के अनुसार महाराज ने मुझे भेजा है। वे वहाँ उस समय थे जब हम चले। भाव यह कि महाराज दशरथ के बुला भेजने म विदेहराज सङ्कुचित हो रहे है कि यह बडी ढिठाई है। आगे चलकर कहेगे भी अपराध छमिओ बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यौ कई। महर्षि विश्वामित्र की सम्मति जान लेने पर बुलाया जाना ढिठाई न समझी जायगी। इसलिए उनके सामने ही दूत भेजे गये।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आए सबन्हि सादर सिर नाए ॥
हाट बाट मदिर सुरबासा। नगर सवारहु चारिहु पासा ॥२॥

अर्थ फिर जनकजी ने सब महाजनो को बुलाया। सबने आकर राजा को आदर सहित सिर नवाया। राजा ने आज्ञा दी कि बाजार, मार्ग, मन्दिरा को तथा नगर को चारो ओर से सजाओ।

व्याख्या तत्पश्चात् महाराज जनक ने नगर के सब रईसो को बुलवाया। महाराज दशरथ के स्वागत के लिए तैयारी होनी चाहिए। सब रईस उपस्थित हुए। श्रद्धा से सबने महाराज को प्रणाम किया। यह कथा रङ्गभूमि से चलकर घर पहुँचने के बाद की है। राजाओ के स्वागत म अथवा महोत्सव उपस्थित होने पर हाट बाट मन्दिर चारो ओर सजाये जाते हैं और यह काम नगर के रईसो का है। महाराज दशरथ चक्रवर्ती है। उनके स्वरूप के अनुकूल स्वागत होना चाहिए। अत चारो ओर से नगर सजाने की आज्ञा दी गई। यहाँ मन्दिर स देवस्थान अभिप्रेत है। क्योकि घरो का सजाना ही नगर का सजाना है।

हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाए ॥
रचहु विचित्र वितान बनाई। सिर धरि वचन चले सचुपाई ॥३॥

अर्थ रईस महाजन लोग हर्षित होकर चल और अपने अपने घर आये। फिर राजा ने परिचारको कारपरदाजो को बुलावा भेजा और आज्ञा दी। विचित्र मण्डप बनाकर सजाओ, राजाज्ञा शिराधार्य करके वे भी सुखी होकर चले।

व्याख्या राजाज्ञा मिलने पर उन रईसो को हर्ष हुआ कि हम लोगो को आज महाराज की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। समधी के स्वागत की तैयारी करनी है। सो तदनुसार कार्य करने क लिए अपने अपने घर गये। नगर के सजने की व्यवस्था पहिले करके तब राजा ने अपने परिचारको कारपरदाजा को बुलवा भेजा। उनके आने पर आज्ञा हुई कि ऐसा मण्डप बनाकर साजो कि जो विचित्र हो। वे लोग राजाज्ञा पाकर सुखी हुए। वे लोग ऐसे सिद्धहस्त हैं कि इतनी ही आज्ञा उनके लिए यथेष्ट है। आज्ञा शिरोधार्य करके तुरन्त चल पडे।

पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना । जे वितान विधि कुसल सुजाना ॥
विधिहि वंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा । विरचे कनक कदलि के खभा ॥४॥

अर्थ : उन्होंने अनेक प्रकार के गुणियो को बुला भेजा । जो मण्डप बनाने की विधि के जानकार थे और दक्ष थे । ब्रह्मदेव को वन्दना करके उन्होने कार्यारम्भ किया । स्वर्ण के केले के खम्भे बनाये ।

व्याख्या उन परिचारको ने अनेक प्रकार के शिल्पियो को बुलाया । वे जानते थे कि मण्डप की रचना मे कितने प्रकार के शिल्पियो की आवश्यकता पड़ती है । उतने प्रकार के शिल्पी बुलाये गये । उन लोगो ने तुरन्त कार्यारम्भ कर दिया । पहिला काम यह किया कि विधि की वन्दना की क्योकि रचना के मूलस्रोत वही है । दूसरे यह कि उन्ही की रचना का उन्हे अनुकरण करना है । मण्डप के सोलहो स्तम्भो मे केले के स्तम्भो के बाँधने का विधान है । कब तक ब्याह होगा अभी इसका निश्चय नही है । केले के खम्भे तब तक सूख जायँगे । इसलिए सोने के खम्भे ही कदली स्तम्भो के आकार के बनाये गये । कारीगरी दो प्रकार की होती है । एक मे अल्पमूल्य वस्तुओ को ऐसा सजाते है कि वह अत्यन्त भड़कीला दूर से ही मालूम पड़े । दूसरा प्रकार यह है कि बाहर से बिल्कुल सादा मालूम पड़े । निकट से विचार पूर्वक देखने पर अत्यन्त सूक्ष्म शिल्पकला का तथा उसके बहुमूल्यतर का परिचय मिल सके । इन शिल्पियो ने दूसरे प्रकार का अवलम्बन किया । ऐसे खम्भे बनाये जो देखने मे केले के हो पर वस्तुत सोने के हो ।

दो हरित मनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल ।
रचना देखि बिचित्र अति, मनु विरंचि कर भूल ॥२८७॥

अर्थ हरे मणियो के पत्ते और फल बनाये और पद्मराग मणियो के फूल बनाये । अति विचित्र रचना देखकर ब्रह्मदेव का मन भूल जाय ।

व्याख्या · केले के खम्भे का रग पीला फल और पत्ते का रग हरा और फूल का रग लाल होता है । अत स्वर्ण के स्तम्भ पन्ने के पत्र फल और मणिक्य के फूल बनाये । विचित्र रचना के लिए राजा ने आज्ञा दी थी । इन लोगो ने अति-विचित्र बनाया । जिसे देखकर लोग भूल जायँ वह विचित्र है और जिसे देखकर स्वय ब्रह्मदेव भूल जायँ वह अतिविचित्र है । मिथिला मे आज भी मण्डप बडा सुन्दर बनता है । सोलह केले के स्तम्भो के स्थान मे कृत्रिम खम्भे बनाये । गये केले मे ही विरञ्चि का भूलना लिखा । क्योकि उसके भीतर की भी रचना केले सी ही थी । सर्वात्मना केला ही मालूम होता था ।

वेनु हरित मनिमय सब कीन्हे । सरल सपरब परहि नहिं चीन्हे ॥
कनक[1] कलित अहिबेलि बनाई । लखि नहिं परइ सपरन सोहाई ॥१॥

---

१ यहाँ 'निरुक्ति' अलङ्कार है ।

अर्थ हरे मणियो के बाँस बनाये जो सीधे और गाँठ से युक्त थे। पहिचाने नही जाते थे। पान की लता सोने की बनाई। जो खम्भो पत्तो से युक्त थी। पर पहिचानी नही जा सकती थी कि स्वाभाविक है या कृत्रिम।

व्याख्या हरे मणि के बाँस बनाये गये और उन बाँसो से मण्डप बनाया गया। वे सीधे बनाये गये थे जिसमे मण्डप कही से टेढा न बन जाय। अब उन्हे बाँधने की आवश्यकता पडी तो वे पान की वेलि से बाँधे गये। वे वल्लियाँ भी सोने की बनाया गई जिनमे पत्ते भी लगे थे। सच्ची पान की लताओ से उनका भेद नही जाना जाता था।

तेहि के रचि पचि बध बनाए। बिच बिच मुकुतादाम सुहाए ॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा ॥२॥

अर्थ रचकर और पच्चीकारी करके उसी के बन्धन बनाये। बीच बीच मे मोती की मालाएँ शोभायमान थी। माणिक्य, नीलम, हीरा और फिरोजा को चीर करके छील करके और पच्चीकारी करके कमल बनाये।

व्याख्या उसी पान की लता से रच करके और पच्चीकारी करके बन्धन बनाया। इस भाँति मण्डप तैयार हुआ। बीच बीच मे फूल की मालाओ के स्थान मे मोतियो की मालाएँ लटकायी गईं। अर्थात् मण्डप ठीक उसी भाँति मालूम होता था जैसा कि बाँस, लता आदि से सामान्यत बनाया जाता है। पर वस्तुत वह मणिमण्डप था।

लाल, नीले, श्वेत और पीत कमल उस उस वर्ण के मणियो से बनाये गये। परन्तु कमलो मे हलका रग फोका रग तथा पीली ढोढी भी होती है। अत रत्नो को चीरना छोलना और पच्ची करना पडा।

किए भृग बहुरंग बिहगा। गुजहि कूजहिं पवन प्रसगा ॥
सुर प्रतिमा खभन गढि काढी। मगल द्रव्य लिये सब ठाढी ॥३॥

अर्थ भौरे और बहुत रगो के पक्षी बनाये। जो हवा लगने पर गूँजते और कूजते थे। देवताओ की मूर्तियाँ खम्भो मे गढकर निकाली गईं जा मगलद्रव्य लिये खडी थी।

व्याख्या अब दूसरी प्रकार की कारीगरी की गई। कमलो पर गूँजने के लिए भौरे बनाये गये। केलो के वृक्ष पर बैठकर कूजने के लिए कृत्रिम चिडिया बनायी गईं और वे ऐसी बनी कि जब हवा चले तो भौंरे गूँजने लगे और चिडियाँ कूजने लगी।

खम्भे जिनके आधार पर मण्डप खडा था उनमे देवताओ की मूर्तियो की निकासी की गई थी। मानो वे मङ्गलद्रव्य लिये खडी है। मृगराजो वृषो नाग कलशो व्यजनन्तथा। वैजयन्ती तथा भेरी दीप इत्यष्टमङ्गलम्। सिंह, बैल, हाथी, घट, पखा, झण्डी, भेरी और दीप ये आठ मङ्गल है।

चौके भाँति अनेक पुराई। सिंधुर मनिमय सहज सोहाई ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के चौक पूरे गये। वे गजमुक्ताओ से बने थे और स्वभाव से ही सुन्दर थे।

व्याख्या : इस समय अनेक प्रकार के चौक पूरने की चाल दक्षिण मे रह गई है। वे एक यन्त्र से जिसे रँगोली कहते है अनेक रग भरकर अनेक प्रकार के बेलबूटेवाले चौक पूरते है। चौक पूरने मे आटा या सगमरमर के चूर्ण से काम लिया जाता है पर यहाँ तो गजमुक्ता से काम लिया गया। चौक अनेक प्रकार से पूरे गये जो स्वभाव से ही सुन्दर थे। पर वह सुन्दरता और भी बढ गई जब उसमे गजमुक्ताओ से काम लिया गया।

दो. सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ॥२८८॥

अर्थ : नीलममणि को कोर : छीलकर उन्होने आम के सुन्दर पल्लव वनाये। सोने का बौर बनाया। मरकत के घौद बनाये। जो रेशम की डोरी मे शोभायमान हुए।

व्याख्या : बौर और घौद : टिकोरे के गुच्छो के सहित आम के सुन्दर पत्तो को रेशम की डोरी मे गूँथा। वे पत्ते और घौद नीलम और मरकत मणि को छीलकर बनाये गये थे और बौर सोने का बनाया गया क्योकि वह पीला होता है। पत्ते और घौद अति हरित होने से नील प्रतीत होते हैं। अत नीलमणि के बनाये गये। साधारण डोरी मे वे भारी होने से लटकाये नही जा सकते। अत: रेशम की डोरी मे गूँथे गये।

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहु मनोभव फंद सँवारे॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज[1]पताक पट चँवर सोहाए ॥१॥

अर्थ : इस भाँति सुन्दर वन्दनवार बनाये। मानो कामदेव ने फन्दे सजा रक्खे है। अनेक मङ्गल कलश बनाये गये। ध्वजा पताका कपडे और चँवर से शोभायमान हुए।

व्याख्या : पूर्वोक्त रीति से वन्दनवार बनाकर उस मण्डप मे बाँधे गये। इन वन्दनवारो की उपमा कामदेव के फन्दे से दी गई। भावार्थ यह कि वन्दनवार ऐसे सुन्दर थे कि मन मोहित हो जाता था। मण्डप मे यथास्थान स्थापन के लिए मङ्गलघट सँवारे गये। ध्वजा लम्बी और पताका तिरकोनी होती है। इसीलिए ध्वजा को कदली और पताका को ताल के पत्ते से उपमित किया है। यथा : कदलि

---

१. किसी का मत यह है कि ध्वजा सात हाथ की और पताका पाँच हाथ की होती है।

तालवर ध्वजा पताका और चँवर यथास्थल लगाये गये। चँवर शोभा के लिए मण्डप मे लगाने का विधान है। मण्डप के ऊपर कपडा मढा गया।

दीप मनोहर मनि मय नाना। जाइ न बरनि विचित्र बिताना॥
जेहि मंडप दुलहिनि बैदेही। सो बरनै अस मति कवि केही॥२॥

अर्थ मनोहर मणिमय दीप थे। उस विचित्र मण्डप का वर्णन नही हो सकता। जिस मण्डप मे वैदेही दुलहिन हो उसके वर्णन करने को बुद्धि किस कवि को हो सकती है।

व्याख्या मनोहर मणियो के अनेक दीप रक्खे गये। ठण्डी रोशनी के लिए: किसी समय भारतवर्ष मे मणियो से दीपक का काम लिया जाता था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के समय तक ठण्डी रोशनी के जवाहिरात का पता चलता है। मणिदीपक की आवश्यकता इसलिए रहती है कि विवाह प्रायेण रात्रि के समय होता है। सक्षेपत ऐसा मण्डप बना कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। यही मण्डप की विचित्रता है कि मणिमय मण्डप तैयार किया गया। पर देखने मे लताद्रुममय मालूम पडता था।

यह वर्णन अधिक नही है न अतिशयोक्ति है। इतना कहने पर भी कोई यह न समझे कि कवि पूरा वर्णन कर पाया। अत कवि जवाब देते है कि बुद्धि के अनुसार मैं वर्णन करता हूँ। जिस मण्डप मे साक्षात् महालक्ष्मी वैदेही दुलहिन हो उसे वर्णन करनेवाला कौन कवि है अर्थात् कोई नही। जो मैंने वर्णन किया है वह अत्यन्त अल्प है।

दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥३॥

अर्थ और जिसमे रूपगुणसागर रामजी दुल्हा हो वह मण्डप तीनो लोक मे प्रकाशित है। जनक के घर की जैसी शोभा थी वैसी शोभा नगर मे घर घर दिखाई पडती थी।

व्याख्या जिस मण्डप मे रूपगुणसागर रामजी दूल्हा बनें वह मण्डप क्या साधारण हो सकता है? इसलिए आगे चलकर इस मण्डप की उपमा जीवउर से देगे। भाव यह कि जिस भाँति जीव का उर त्रैलोक्य का प्रकाशक है। जीव को उर हृदय न हो तो त्रैलोक्य अन्धकारमय हो जाय। इसी भाँति यह मण्डप त्रैलोक्य का प्रकाशक है। राजा के घर की शोभा कहकर अब पुरजन के घरो की शोभा कहते हैं।

अब महाजनो की करतूत कहते है कि उन्होंने सभी घरो को ऐसा सजाया कि राजा का घर जान पडे। जब बारात आवे तो उसे सभी मकान राजगृह मालूम हो। अथवा मिथिला नगरवासी ही ऐसे समृद्ध थे और उनकी राजा पर इतनी

भक्ति थी कि उन्होने ऐसे उत्सव के समय स्वय उत्साह से पूर्ण होकर अपने घरो की राजगृह सी सजावट की।

जेहि तेरहुति तेहि[1] समय निहारी। तेहि लघु लगति भुवन दस चारी ॥
जो संपदा नीच गृह सोहा[2]। सो विलोकि सुरनायक मोहा ॥४॥

अर्थ : जिसने तिरहुत को उस समय देखा उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पडे। जो सम्पदा नीच के गृह मे शोभायमान थी उसे देखकर देवराज मोहित हो गये।

व्याख्या : तीरभुक्ति का तद्भवरूप तेरहुति है। इस समय के तिरहुत से उस समय के तिरहुत की कोई कल्पना नही हो सकती। उस समय तिरहुत के सामने चौदह भुवन की शोभा तुच्छ मालूम होती थी। भाव यह कि जहाँ वैदेही है वही वैकुण्ठ की शोभा उतर आवेगी। वैकुण्ठ का विभव ही ऐसा है कि वहाँ के निकृष्टतम निवासी के ऐश्वर्य पर भी देवराज इन्द्र मोहित होते हैं। इसी बात को निम्नलिखित दोहे मे स्पष्ट करते है।

दो. बसै नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि बर बेषु।
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहि सारद सेषु ॥२८९॥

अर्थ : जिस नगर मे साक्षात् लक्ष्मी माया से स्त्री का सुन्दर रूप धारण करके बसती हैं उस पुर की शोभा कहने मे सरस्वती और शेष को सङ्कोच ही होगा। क्योकि वैसी शोभा न तो ब्रह्मलोक मे है और न भोगावती मे है।

व्याख्या : जिस नगर मे साक्षात् लक्ष्मी माया से स्त्री रूप होकर रहती हैं वहाँ वैकुण्ठ भी माया से नगररूप मे अवतीर्ण होगा ही। वैकुण्ठ के निवासी भी माया से मनुष्यरूप मे उस नगर के निवासी होगे। यथा पुर नर नारि सुभग सुचि सता। धर्मसील ग्यानी गुनवता। अत उसकी शोभा वर्णन मे ब्रह्मलोक और पाताललोक के वक्ताओ मे सङ्कोच होना प्राप्त ही है। यथा सुनु मतिमद लोक वैकुठ। रत्नादिको ने भी कदली वशादि का कपट रूप धारण किया। साधारण वस्तुओ मे किसी दुर्लभ वस्तु के आजाने से शोभा आजाती है। यहाँ दुर्लभ वस्तुओ को ही साधारण रूप दिया जा रहा है।

पहुँचे दूत राम पुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सोहावन ॥
भूप द्वार तिन खबरि जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई ॥१॥

अर्थ : दूत रामजी की पवित्रपुरी मे पहुँच गये[3]। शोभायमान नगर को

---

१. यहाँ उदात्तालङ्कार है।

२. यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति है।

३. आश्विन शुक्ल १५ का दूत मिथिला से अयोध्या को चले। चार रात्रि रास्ते मे बीती। कार्तिक कृष्ण पञ्चमी को अयोध्या पहुँचे।

देखकर हर्षित हुए। राजद्वार पर उन्होने समाचार दिया। महाराज दशरथ ने सुनकर उनको बुला लिया।

व्याख्या पठए दूत अवध तेहि काला से प्रसङ्ग छोडा था। दूत लोग अवध जा रहे थे। इसी बीच मे ग्रन्थकार ने बारात के स्वागत के लिए जनकपुर की तैयारी का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। उधर तैयारी हो रही थी और इधर दूत लोग पवित्र रामपुर मे पहुँच गये। यही से फिर उसी कथा को उठा लिया। पहुँचे दूत रामपुर पावन। ससुराल मे जामाता की ही प्रधानता होती है। अत दूत लोग अपने मन मे यह बात लेकर चले थे कि हमे रामपुर जाना है। अत पहुँचने पर कवि भी दशरथपुर न कहकर रामपुर पावन कहते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है इसलिए पावन कहा। तीन रात रास्ते मे बसकर चौथे दिन अयोध्या पहुँचे। जनकपुर तिरहुत का वर्णन ऊपर हो चुका है। ऐसे रमणीय नगर के रहनेवाले दूतो को भी अयोध्या पुरी ऐसी सोहावनी मालूम पडी कि वे आनन्दित हो उठे। इतने से ही अयोध्या की शोभा के उत्कर्ष को ग्रन्थकार ने दिखला दिया। वाराहक्षेत्र के निकट धामपुर ग्राम है। महात्माओ का मत है कि वही पहुँचकर दूतो ने अवध देखा।

दूत की गति राजद्वार तक है। इसके आगे बिना राजाज्ञा के प्रवेश नही हो सकता। अत दूतो ने वहाँ से राजा के पास समाचार भेजा। महाराज उस समय राजसभा मे थे। अत तुरन्त बुला लिया।

करि प्रनाम तिन पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि लीन्ही॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥२॥

अर्थ उन्होने प्रणाम करके चिट्ठी दी। राजा ने प्रसन्न होकर स्वय उठकर ली। चिट्ठी बाँचते समय आँखो मे आँसू आगये। रोमाञ्च हो गया। छाती भर आई।

व्याख्या दूत का प्रणाम करना कर्तव्य है। शत्रु राजा को भी दूत प्रणाम करता है। यथा . बैठ सभा सिर नाय। अङ्गदजी ने भी रावण की सभा मे जाकर प्रणाम किया। यहाँ तो मित्र राजा के यहाँ दूत गये है। जनकजी का इतना आदर महाराज दशरथ की दृष्टि मे है कि उनकी पत्री का आदर अभ्युत्थान देकर करते हैं। पत्र का मिलना आधी भेंट माना गया है। इसलिए राजा का मुदित होना कहा। स्वय चिट्ठी को लिया और मन्त्री से न बँचवाकर स्वय बाँचने लगे।

अश्रु, स्वरभङ्ग और पुलक ये तीनो अनुभाव हर्ष और शोक दोनो के होते हैं। यथा . सकल सखो गिरिजा गिरि मयना। पुलक सरीर भरे जल नयना। नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना। सो चिट्ठी पढते समय महाराज मे अश्रुपुलक और छाती का भर आना तीनो बातें दिखाई पडी।

रामु लषनु उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण हृदय मे और वह चिट्ठी हाथ मे खट्टी या मीठी कुछ कह न सके। फिर धैर्य धारण करके पत्रिका बाँची। सच्ची बात सुनकर सभा हर्षित हो उठी।

व्याख्या : अब तीसरा अनुभव कहते हैं। चिट्ठी बाँचने मे महाराज स्तब्ध हो गये। राम लक्ष्मण के ध्यान से किसी दूसरी बात के लिए हृदय मे स्थान नही रह गया। अत चिट्ठी हाथ मे लिये रह गये। सभा उत्सुक है कि चिट्ठी मे भला समाचार है कि नही। महाराज कहना चाहते हैं। पर प्रेम से गला रुँधा जाता है। कुछ कह न सके। यहाँ मीठा खट्टा से अच्छे बुरे समाचार का अभिप्राय है। यथा ' मीठ कहा कवि कहै जाहि जो भावै।

सभा असमञ्जस मे पड गई। राजकुमार बाहर गये हैं। कोई समाचार उनका न मिला। इस चिट्ठी मे कोई बात उनके सम्बन्ध की है क्या ? महाराज की दशा चिट्ठी पढते पढते कैसी हुई जाती है। इत्यादि चिन्ताओ से ग्रस्त हो गई। महाराज का पत्र पढते समय धैर्य छूट गया था। अत बाँच नही सकते थे। सभा की उत्सुकता तथा चिन्ता दूर करने के लिए धैर्य धारण करके स्वय बाँचा। अत विश्वस्त बात सुनकर सभा हर्षित हुई। यथा ' तव ते आज साँच सुधि पाई। यह दैवी सम्पत्ति की कथा है। आसुरी सम्पत्ति यथा बिहँसि बामकर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग वचावन।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते[1] पाती आई॥४॥

अर्थ : जहाँ खेलते रहे वहाँ समाचार पाकर सखा और भाई के सहित भरतजी आये। अत्यन्त स्नेह से सकुचाते हुए पूछने लगे कि तात! चिट्ठी कहाँ से आई है ?

व्याख्या भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति दृढाई। अतः यहाँ हित भाई से खेल के साथी तथा शत्रुहनजी अभिप्रेत है। ये लोग सरयू के तीर घोडो पर सवार होकर गद खेलते थे। यथा ' सरयुतीर सम सुखद भूमिथल गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये। कदुक्केलि कुसल हय चढि चढि मन कसि कसि ठोकि ठोकि खये। इत्यादि। पत्री आने की खबर बडे जोरो से फैली। खेलते समय भरत शत्रुघ्न को समाचार मिला। खेल छोडकर राजसभा मे पहुँचे।

अत्यन्त स्नेह के कारण बिना पूछे रहा नही जाता और पूछने मे सङ्कोच है। क्योकि इससे कौतूहल प्रकट होता है। चारो भाई सङ्कोची हैं। अत सकुचाते हुए प्रश्न किया। पहिला प्रश्न चिट्ठी कहाँ से आई है ?

दो कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने वचन, बाँची बहुरि नरेस॥२९०॥

---

१. यहाँ चित्रालङ्कार है।

अर्थ दोनो प्राणप्रिय भाई कुशल तो है ? और किस देश मे हैं ? स्नेह से सने हुए वचन को सुनकर फिर राजा ने पत्र पढ सुनाया ।

व्याख्या दूसरा प्रश्न कुशलविषयक हुआ । तीसरा प्रश्न देशविषयक हुआ । समाचार की सचाई को दृढ करना चाहते हैं । कहाँ ते पाती आई इस प्रश्न से पत्र प्रेषक को जानना चाहते हैं । कुशल पूछने से स्वयवरविषयक समाचार जानना चाहते है । अहैं केहि देस इस प्रश्न से जानना चाहते हैं कि जनकपुर मे ही हैं या वहाँ से चल पडे है ? क्योकि स्वयंवर के साथ ही विदाई होने की चाल है । स्नेह से सने भरतजी के वचन सुनकर महाराज ने पूरे वृत्तान्त से परिचित करने के लिए फिर से पत्र को पढ सुनाया । पत्र मे तीनो प्रश्नो के पूरे उत्तर आगये थे ।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी । सकल सभा सुख लहेउ विसेखी ॥१॥

अर्थ चिट्ठी सुनकर दोनो भाई पुलकित हो गये । अधिक स्नेह शरीर मे समाता नही था । भरतजी का पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा को विशेष सुख हुआ ।

व्याख्या प्रेम इतना अधिक है कि समाता नही है । इसलिए पुलक के मिस से बाहर प्रकट हुआ । चिट्ठी के बाँचने मे महाराज को पुलक हुआ और उसके सुनने से भरतजी तथा शत्रुघ्नजी को पुलक आनन्दातिशय के कारण हुआ । मानो उस बढे हुए आनन्द के लिए शरीर मे यथेष्ट स्थान नही है । अत रोम रोम से बाहर निकला पडता है ।

राम लक्ष्मण का प्रेम तथा भरत शत्रुघ्न का प्रेम तो सभी को मालूम था । रामजी के साथ लक्ष्मणजी तथा भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी छाया की भाँति रहते थे । अत अभिन्नहृदय समझे जाते थे । परन्तु भरतजी की भी रामजी मे इतनी प्रीति है इससे सभा अनभिज्ञ थी । आज भरतजी की रामजी मे पवित्र नि स्वार्थ प्रीति देखकर सारी सभा को विशेष सुख हुआ । रामजी का समाचार सुनकर सुख हुआ और भरतजी की प्रीति देखकर विशेष सुख हुआ । प्रीति के अनुभाव पुलक के देखने को प्रीति का देखना कहते हैं । भाई भाई की प्रीति ऐसी पवित्र वस्तु है कि उसके देखनेवाले को सुख मिलता है ।

तब नृप दूत निकट बैठारे । मधुर मनोहर वचन उचारे ॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे । तुम्ह नीके निज नयन निहारे ॥२॥

अर्थ तब राजा ने दूतो को पास बिठाया और मीठे मनके हरण करनेवाले वचन बोले भैया दोनो बच्चो की कुशल कहो । तुमने भलीभाँति अपनी आँखो से देखा है ।

व्याख्या निकट बैठाना आदर प्रदान है । दूत चिट्ठी देकर दूर खडे थे । बातचीत करने के लिए पास बुलाकर बैठा लिया और ऐसे वचन बोले जो सुनने मे मधुर और समझने मे मनोहर थे । महाराज ने चिट्ठी बाँचना समाप्त किया और

सभा सुनकर सुखी हुई। आनन्द का पहिला तरङ्ग समाप्त होते न होते दोनो भाई भरतजी आये। महाराज ने फिर से चिट्ठी बाँची। भरतजी की प्रीति देखकर दूसरा तरङ्ग आनन्द का उठा। इसके बाद राजा को दूतो से बात करने का अवसर मिला। प्रेम को प्रबोध नही होता। यथा : बैर अध प्रेमहिं न प्रबोधू। अतः चिट्ठी द्वारा कुशल समाचार जानने पर भी दूतों से पूछते हैं।

'भैया' सम्बोधन कितना मधुर है। चिट्ठी में तो कुशल पढ लिया। पर जिसने भलीभाँति आँखों देखा है उसके मुख से महाराज कुशल सुनना चाहते हैं। अथवा प्रेमपात्र का समाचार सौ वार पूछने पर भी सन्तोष नही होता। महाराज के वचन मधुर और मनोहर थे। परन्तु मृदु नही थे। सभा बड़ी थी। मृदुस्वर मे वार्तालाप होने से सब सभासद् न सुन सकते। अतः मृदु विशेषण नही दिया।

स्यामल गौर धरे धनु भाथा। वय किसोर कौसिक मुनि साथा ॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ ॥३॥

अर्थ : साँवले और गोरे धनुष और तरकस धारण किये हैं। किशोरावस्था है। विश्वामित्र के साथ हैं। तुम पहिचानते हो तो उनका स्वभाव वतलाओ। इस बात को महाराज ने प्रेम विवश होने के कारण बार बार पूछा।

व्याख्या : श्यामल गौर से रूप कहा। धरे धनु भाथा से वेप कहा। वय किसोर से अवस्था कही और कौसिक मुनि साथा से अचूक पता बतलाया। विश्वामित्र मुनि को कौन नही जानता? उनका दर्शन तुम लोगों ने अवश्य किया होगा। मेरे बच्चे उन्ही के साथ है। भाव यह कि संग सुसेवक नांही : राजोचित ठाट बाट के साथ नही है।

तुम स्वभाव कहो तो हम ठीक जान ले कि तुमने देखा है। प्रेम के विवश हैं। उत्तर देने का समय ही नही देते। इसी प्रश्न को बार बार दोहराते हैं। राऊ कहने का भाव यह कि राजा का एकबार कहना बहुत है।

जा दिन ते मुनि गए लवाई। तव ते आजु साच सुधि पाई ॥
कहहु विदेह कवन विधि जाने। सुनि प्रिय वचन दूत मुसुकाने ॥४॥

अर्थ : जिस दिन से मुनिजी लिवा गये तव से आज ही सच्ची सुधि मिली है। यह वतलाओ कि महाराज ने उन्हे कैसे जाना? प्रिय वचन सुनकर दूत मुसकराये।

व्याख्या : मुनि गये लवाई का भाव यह कि दूसरा लिवा गया होता तो सेना साथ जाती। सेवक साथ जाते। डाक वैठा दी जाती। क्षण क्षण का समाचार मिला करता। पर मुनिजी के रुष्ट होने के भय से कुछ नही किया गया। अतः जब से साथ गये विश्वस्त सूत्र से कोई समाचार नही मिला। इससे महाराज अपनी अत्यन्त उत्सुकता का कारण भी कह देते हैं। आज जो समाचार मिल रहा है वही विश्वस्त सूत्र से मिल रहा है। अतः कहते हैं साँच सुधि पाई।

अब फिर एक प्रश्न महाराज ने उठाया कि राजा विदेह ने मेरे बच्चो को कैसे जाना ? इतने राजा इकट्ठे थे उनमें इन बच्चों को जान पड़ने की तो कोई सम्भावना ही नहीं थी। ये वचन महाराज के मनोहर थे। अतः दूतों को प्रिय लगे। महाराज को प्रेम में विभोर देखकर दूत मुसकराये।

दो० सुनहु महीपति मुकुट मनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लषन जिनके तनय, बिस्व बिभूषन दोउ ॥२९१॥

अर्थ : हे राजाओं के मुकुटमणि ! सुनो। तुम्हारे समान धन्य कोई नहीं है। जिसके राम लक्ष्मण ऐसे विश्वविभूषण पुत्र हैं।

व्याख्या : महीपति मुकुटमणि से ऐश्वर्याधिक्य कहा। तुम सम धन्य न कोउ से पुण्याधिक्य कहा। उत्तम सन्तान होने से पिता के पुण्य का अनुमान करते हैं। कहते हैं कि ऐसे विश्वविभूषण पुत्रों की प्राप्ति से आप धन्य हैं। विश्वविभूषण को कौन नहीं जानेगा ? जो उन्हें देख लेगा वही परिचय प्राप्त करना चाहेगा। यथा : सुनहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक। प्रश्न है भैया कहहु कुसल दोउ बारे। उत्तर है : सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम सम धन्य न कोउ। पिता के धन्य कहने से ही पुत्र के कुशल का कथन हो गया। यह दूत का पाण्डित्य है कि स्तुति करने में कुशल कह गया। अब धन्य का कारण कहने में दूसरे प्रश्न का उत्तर देता है। राम लषन नाम कहकर पहिचान कहा। महाराज ने स्वभाव पूछा था। वह रूप और गुण दोनों कहता है विस्वविभूषण दोउ। विश्वविभूषण तो वही है जिसमें सम्पूर्ण सद्गुण हो।

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उजिआरे ॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे ॥१॥

अर्थ : आपके पुत्र पूछने के योग्य नहीं हैं। वे पुरुषों में सिंह हैं। तीनों लोक के प्रकाश हैं। जिनके यश के सामने चन्द्रमा मलिन मालूम होते हैं और प्रताप के सामने सूर्य ठण्ढे मालूम पड़ते हैं।

व्याख्या : अब दूत पहिचानहु तौ कहहु सुभाऊ का उत्तर देता है। यद्यपि स्वभाव के विषय में विश्वविभूषण कहकर बहुत कुछ लक्षित करा दिया है। पर उसी बात को राजा ने पूछा है। अतः विस्तार रूप से कह रहे हैं उनकी ख्याति उनके आने के पहले ही पहुँच जाती है। फिर उनके देखने पर पहिचान पूछने की आवश्यकता नहीं रह जाती। लोग आप ही पहिचान जाते हैं। यथा : एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनिसँग आये काली। जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर नर नारी। पुरुषसिंह के परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। उनका प्रताप उन्हें पहिचनवा देता है। आपके पुत्र पुरुषसिंह हैं। यथा : पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन। उनके प्रकाश से सूर्य के प्रकाश की भाँति तीनों लोक प्रकाशित हैं। गुण पहिले कहा था। अब पुरुषसिंह तथा तिहुँपुर उजियारे कहकर प्रताप शौर्य बल और तेज का वर्णन करते हैं।

कहहु विदेह कवन विधि जाने का उत्तर देते हैं। काल के ध्वजभूत परम प्रकाशमान रवि शशि का परिचय नहीं देना पड़ता। प्रताप में उष्णता और यश में उज्ज्वलता मानी जाती है। सो इनके यश के सामने शशि की उज्ज्वलता कुछ भी नहीं है और न इनके प्रताप के आगे सूर्य की उष्णता ही कोई वस्तु है।

तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे ॥
सीय स्वयंवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! उनके लिए आप कहते हैं कि राजा ने कैसे चीन्हा ? क्या हाथ में दीपक लेकर सूर्य भी देखे जाते हैं ? सीता के स्वयवर में अनेक राजा और एक से एक योद्धा जुटे थे।

व्याख्या : अन्धकार में पड़ी हुई वस्तु के चीन्हने : पहिचानने में दीप की आवश्यकता होती है। स्वयंप्रकाश सूर्य के चीन्हने में नहीं। निस्तेज लोगों के लिए पूछना पड़ता है। तेजस्वी तो स्वय अपने तेज से पहिचाने जाते हैं।

सीय स्वयंवर कहकर दुलहिन का नाम बतलाते हैं। तेज कहने के व्याज से दूत सारी कथा कह रहे हैं। भाव यह कि स्वयंवर रूप का नहीं था। बलपरीक्षा का था। देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रन धीरा। मनुज शरीर धारण करने से दूतों ने स्वयंवर में आये हुए लोगों का दो ही विभाग किया : १. अनेक भूप और २. एक से एक सुभट।

संभु सरासन काहु न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा ॥
तीनि लोक महँ जे भट मानी। सब कै सकति संभु धनु भानी ॥३॥

अर्थ : शिवजी का धनुष किसी का हटाया न हटा। सब बलवान् हार गये। तीनों लोक में जितने भटमानी थे सबकी शक्ति को शिवजी के धनुष ने कुण्ठित कर दिया।

व्याख्या : अनेक भूपों के लिए कहते हैं कि : संभु सरासन काहु न टारा। और एक से एक सुभट के लिए कहते हैं कि : हारे सकल बीर बरिआरा। राजा तो दस हजार चिपट गये थे। इसलिए उन्हें अनेक कहते हैं। पर सुभट एक दूसरे को गिनने वाले नहीं। अतः उनके लिए एक ते एका कहते हैं। भावार्थ यह कि न राजाओं का किया कुछ हुआ और न सुभटों का किया कुछ हुआ। शिवजी के धनुष के आगे त्रैलोक्य के वीरों की शक्ति कुण्ठित हो गई।

सकै उठाइ [1]सरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू ॥
जेइ कौतुक सिवसैल उठावा। सो तेहि सभा पराभव पावा ॥४॥

अर्थ : बाणासुर सुमेरु पर्वत को भी उठा सकता है। वह भी हिम्मत हारकर

१ यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

परिक्रमा करके चला गया और जिसने खेल मे कैलास उठाया था उसकी भी उस सभा मे हार हुई।

व्याख्या बाणासुर सुमेरु पर्वत के उठाने का सामर्थ्य रखता है। पर शिवधनु को देखकर उसका साहस छूट गया। उसने पूज्य बुद्धि से धनुष की परिक्रमा की और चला गया। रावण ने तो खेल मे कैलास पर्वत उठा लिया था। ग्रन्थकार ने कैलास न कहकर सिवसैल कहा। भाव यह कि कैलास पर स्वय शिवजी भी सशक्ति, साङ्ग, सायुध विराजमान थे। फिर भी रावण ने खेल मे उठा लिया। यथा पुनि नभ सर मम कर निकर। कर कमलन्हि पर वास। सोभित भयउ मराल इव सभु सहित कैलास। तथा कौतुकही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ। उसकी भी हार हुई।

दो तहाँ राम रघुवस मनि, सुनिअ महा महिपाल।
भजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पकज नाल ॥२९२॥

अर्थ हे महाराज! सुनिये, वहाँ रघुवशमणि राम ने बिना प्रयास के धनुष को तोड डाला। जैसे हाथी कमल के नाल को तोड डाले।

व्याख्या उस सभा मे सबके सामने रघुवश की प्रतिष्ठा को स्थापित करते हुए रामजी ने अप्रयासेन धनुष को तोडा। अप्रयास को स्पष्ट करते हुए कहते है कि जिस भाँति गज को कमलनाल के तोडने मे कोई परिश्रम नही उसी भाँति रामजी को भी कोई आयास नही हुआ। यथा लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। महा महिपाल की भी शोभा मणि से होती है। इसलिए रामजी का विशेषण रघुवसमनि दिया।

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा ॥१॥

अर्थ सुनकर रुष्ट होते हुए परशुरामजी आये और बहुत प्रकार से आँख दिखाया। रामजी के बल को देखकर अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकार से विनय करके वन चल गये।

व्याख्या परशुरामजी को धनुपभङ्ग का समाचार पाकर बडा क्रोध हुआ। क्रोध से भरे हुए वहाँ आये और बहुत प्रकार से आँख दिखाया अर्थात् डराया धमकाया। १ शब्द से यथा कहु जड जनक धनुष केइ तोरा। २ चितवन से यथा सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते। ३ वेष से यथा कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। करसर धनु कुठार कल काधे। ४ इङ्गित से यथा बोले चितइ परसु की ओरा। ५ शस्त्र सुधारकर यथा सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। तथा ६ शस्त्र उठाकर यथा भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। जब रामजी का दिव्य बल देखा। यथा देत चाप आपुहि चलि गयऊ। तो अपना धनुष दे दिया। अर्थात् अपना कार्य रामजी को सौंप दिया। समझ लिया कि अब मेरी आवश्यकता ससार को नही है।

वहुत सी विनती करके अपराध क्षमा कराया परशुरामजी का विनय करना असाधारण वात थी। और तपस्या के लिए वन चले गये। सदा के लिए क्षात्र स्वभाव का परित्याग कर दिया।

राजन रामु अतुल वल जैसे। तेज निधान लषनु पुनि तैसे ॥
कर्पहि भूप विलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताकें ॥२॥

अर्थ राजन्! जिस भाँति रामजी अतुलवल हैं वैसे ही लक्ष्मणजी तेज निधान हैं। जिनके ताकने से राजा लोग ऐसे काँप उठते हैं जैसे हाथी सिंह के बच्चे के ताकने से काँप उठें।

व्याख्या परशुरामजी के पराजय से यह वात सिद्ध हो गई कि रामजी के जोड का कोई वली नही है जिससे उनके वल की तुलना की जाय। वैसे ही लक्ष्मण के तेज की तुलना नही है। यहाँ राजा जनक के वीर विहीन मही मैं जानी। कहने पर विगड खडे हुए। प्रलय करने को तैयार हो गये। यथा कदुक इव ब्रह्माड उठावौ। काँचे घट जिमि डारौ फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी। परशुरामजी का तेज इन्ही के तेज के सामने दवा। यथा वहइ न हाथ दहै रिसि छाती। भा कुठार कुठित नृप घाती। इनकी भौंह चढने पर राजमण्डल मे कँपकँपी पड जाती है। जैसे सिंह के वच्चे के ताकने से हाथियो का यूथ कम्पायमान हो उठता है। यथा कुँअर चढाई भौंहे अव को विलोकै सोहे। गीतावली। तथा. अरुन नयन भृकुटि कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप।

देव देखि तव वालक दोऊ। अव न आँखि तर आवत कोऊ ॥
दूत वचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप वीर रस पागी ॥३॥

अर्थ हे देव! आपके दोनो वालको को देखकर अव कोई आँख मे जँचता नही। दूत के वचन की रचना प्रिय लगी। क्योकि वह प्रेम, प्रताप और वीर रस से पगी थी।

व्याख्या देव सम्बोधन से नरदेव अभिप्रेत हैं। दूत कहते हैं कि आपके दोनो वालको के देखने के पहिले अपेक्षाकृत गुणरूप का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता था। पर जव से उनको देखा है तव से ससार म कोई दृष्टि मे जँचता ही नही। सवके रूप और गुण तुच्छ मालूम पडते हैं। इनके देखने पर यह वात मन मे ही नही आती कि इनमे वढकर के भी कोई हो सकता है।

महाराज दशरथ के प्रश्नों के उत्तर देने मे जो वचन दूतों ने कहे उसकी रचना ऐसी सुन्दर थी कि सवको प्रिय लगी। प्रिय लगने का कारण कहते हैं कि वह रचना, प्रेम प्रताप और वीर रस से ओतप्रोत थी। प्रेम यथा देव देखि तव वालक दोऊ। अव न आँखि तर आवै कोऊ। प्रताप जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे। वीर रस. राजन राम अतुल वल जैसे। तेज निधान लषन पुनि तैसे। कर्पहि भूप विलोकत जाके। जिमि गज हरि किसोर के ताके।

सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूदहिं काना। धरमु विचारि सवहिं सुखु माना॥८॥

अर्थ सभा के समेत महाराज प्रेम मे पग गये। दूतो को निछावर देने लगे। अनीति है ऐसा कहकर उन्होंने कान ढक लिये। धर्म विचारकर सबने सुख माना।

व्याख्या रचना ऐसी प्रिय लगी कि सभा समेत स्वय महाराज अनुराग मे आगये। शुभ सन्देश सुनानेवाले को निछावर मिलने का नियम है। यथा प्रथम जाइ जिन वचन सुनाये। भूषन वसन भूरि तिन पाये। सो सब निछावर देने लगे। जिस दूत को निछावर देने लगते हैं वही कान पर हाथ रखता है। अर्थात् निछावर लना स्वीकार नही करता और कहता है कि यह अनीति है। भाव यह कि हम कन्यापक्ष के हैं। हम लने क अनुकूल कोई युक्ति सुन नही सकते। बात अप्रसन्न होने की थी। क्योकि ऐसे अवसर के निछावर अस्वीकार करने का अर्थ यह होता है कि यह उत्सव उसे प्रिय नही है। इसलिए जिन्हे अर्थ की आवश्यकता नही है वे भी लने को आगे आजाते हैं। यथा राम निछावर लेन को हठि होत भिखारी। निछावर के अस्वीकार करने का सामर्थ्य किसे है? परन्तु इस अस्वीकार से सबको सुख हुआ। सब लोग दूतो की धार्मिकता तथा स्वामिभक्ति पर प्रसन्न हो गये।

दो तव उठि भूप वसिष्ठ कहुँ, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब, सादर दूत बोलाइ॥२९३॥

अर्थ तब राजा ने उठकर वसिष्ठजी को जाकर पत्रिका दी और आदर के साथ दूतो को बुलाकर सब कथा सुनाई।

व्याख्या बारात ल चलनी है। गुरुजी से मुहूर्त पूछना है। अत वसिष्ठजी को पत्रिका देने के लिए महाराज स्वय उठकर उनके पास गये। गुरुजी क प्रसाद से ही यह मङ्गल सुलभ हुआ है। रामजी के जन्म के लिए भी इसी भाँति गये थे। यथा गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। दूतो को भी सादर बुलवा लिया। क्योकि दूतो के आदर स महाराज जनक का आदर है। गुरुजी से सब निवेदन करना है। कोई बात छूटने न पावे। यदि कोई बात गुरुजी ऐसी पूछें जो महाराज को न मालूम हो। इसलिए दूतो का वहाँ रहना आवश्यक था। सब कथा यथा दलि ताडका मारि निसिचर मखराखि विप्रतिय तारी। दै विद्या लै गये जनकपुर है गुरु सग सुखारी। करि पिनाकपन सुता स्वयवर सजि नृप कटक बटोर्‍यो। राज सभा रघुवर मृनाल ज्यौं सभु सरासन तोर्‍यौ।

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महु जाही। जद्यपि ताहि कामना नाही॥१॥

अर्थ सुनकर मुनिजी बहुत सुख पाकर बोले कि पुण्यात्मा के लिए

पृथ्वी सुख से छाई हुई है। जैसे नदियाँ समुद्र मे जाती है। यद्यपि समुद्र को चाह नही है।

व्याख्या : सब कथा सुनकर वसिष्ठजी को अत्यन्त सुख हुआ। जब वर्णनातीत सुख होता है तो उसे अति सुख कहते हैं। यथा अति सुख लह्यौ न जाय बखानी। शिष्य के परम कल्याण से गुरु को अति सुख होता है। मुनिजी ने कहा कि पुण्य ही सुख का कारण है। जिसका जितना पुण्य होता है वह उतना सुख पाता है। तुम पुण्यात्मा हो। तुम्हारे लिए पृथ्वी सुख से छाई हुई है। पृथ्वी यही है। पर यही पुण्यात्मा को सुखमय और पापात्मा को दुखमय मालूम होती है। यथा सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता। समुद्र जल का निधान है। उसे अधिक जल की आवश्यकता नही है। पर नदियो के लिए दूसरा स्थान नही है। वे जा जाकर अपना जल दिनरात समुद्र मे ही गिराया करती हैं। सैकडो कोस के मरुस्थल पडे है। जहाँ जल की बडी ही कमी है। पर नदियाँ उधर उन्मुख ही नही होती।

तिमि सुख संपति बिनहि बोलाये। धरमसील पहिं जाहि सुभाये ॥
तुम्ह गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी ॥२॥

अर्थ उसी भाँति सुखसम्पत्ति बिना बुलाये ही धर्मशील के पास स्वभाव से ही जाती है। तुम गुरु, विप्र, गाय और देवताओ के सेवक हो और कौसल्या देवी भी वैसी ही पवित्र है।

व्याख्या वैसे ही पुण्यात्मा सुख से पूर्ण रहते है। उन्हे सुख का घाटा नही रहता। फिर भी सुख सम्पत्ति को तो दूसरा स्थान ही नही है। उन्हे तो पुण्यात्मा के यहा जाना ठहरा। यही इनका स्वभाव है चाहे उसे कामना हो चाहे न हो। तुम तो लडके कुशल से घर लौट आवे इतने मे ही सन्तुष्ट थे। इससे अधिक चाहते भी नही थे। परन्तु बालको ने इतना बडा यश प्राप्त किया। महाराज जनक से सम्बन्ध हुआ। यह सब सुख तो बिना बुलाये ही तुम्हारे पास आये। गुरु, विप्र, गाय और देवता का सेवक होना ही पुण्यात्मा का लक्षण है। सो सभी तुममे है। तुम्हारी पट्टाभिषिक्ता महिषी कौसल्या देवी भी वैसी ही पुण्यात्मा हैं। फिर तुमलोगो को ऐसा सुख क्यो न हो।

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं ॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काके। राजन राम सरिस सुत जाके ॥३॥

अर्थ : राजन्! तुम्हारे ऐसा पुण्यात्मा जगत् मे न तो कोई हुआ न है और न होनेवाला है। तुमसे अधिक पुण्य किसका है जिसको रामजी के सदृश पुत्र हैं।

व्याख्या : पुण्य पाप दोनो होने से ही मनुष्यजन्म मिलता है परन्तु तुममे तो पाप का लेश भी नही है। यथा : प्रभु आयसु बहु बिधि प्रतिपाला। दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका। पथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा। तुम्हारा जन्म तो वरदान से हुआ है नही तो तुम्हारे

ऐसा पुण्यात्मा इस जगत् मे जन्म कैसे ग्रहण कर सकता है ? जिसको राम सा बेटा है उसके पुण्य का क्या ठिकाना ? यथा जासु सनेह सकोच वस राम प्रकट भये आइ। जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय। सुकर्म से ही सुकृती अपने को पावन परमपद पर चढा ले जाता है।

वीर विनीत धरम व्रत धारी। गुन सागर वर बालक चारी ॥
तुम्ह कहँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना ॥४॥

अर्थ तुम्हारे चारो बालक वीर विनीत और धर्मव्रत के धारण करनेवाले है। तुम्हारा सब काल म कल्याण है। डका देकर बरात साजो।

व्याख्या तुम चार के सेवक हो १ गुरु के २ विप्र के ३ गाय के और ४ देवता के। इसलिए चार गुणा से युक्त तुम्हे चार पुत्र है। वे १ वीर है २ विनीत है ३ धर्मव्रतधारी है और ४ गुणसागर है। यथा चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। जो वीर होते है वे उद्दण्ड होते है। विनयी नही होते। धर्मव्रतधारी नही होते। नर सहस्र मँह सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी। धर्मव्रतधारी होने पर भी गुणसागर होना महा दुर्लभ है। तुम्हारे बालको म चारो गुण है।

तुम्हारी बात असाधारण है। तुम्हारे लिए शुभाशुभ मुहूर्त का विचार नही है। गुरुजी समझ गये कि राजा स्वय यह सम्वाद देने आया है बारात ले चलने का मुहूर्त पूछने के लिए। अत कहते है कि तुम्हे सर्वकाल म कल्याण है और आज्ञा देते हैं कि निर्भय होकर बारात साजो।

दो चलहु बेगि सुनि गुर बचन, भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बासु देवाइ ॥२९४॥

अर्थ जल्दी करो। ऐसा गुरु का वचन सुनकर राजा ने कहा नाथ! बहुत अच्छा और नमस्कार करके राजा घर गये। दूतो के ठहरने की व्यवस्था कर दी।

व्याख्या गुरजी ने शीघ्रता करने की आज्ञा दी। इधर से दूत भेजने म देर न हुई। यथा पठए दूत बोलि तेहि काला। अत तुम्ह भी बारात ले चलने म देर न करनी चाहिए। अथवा शुभ मुहूर्त भी सन्निकट है। इसलिए शीघ्रता करो। महाराज गुरजी की आज्ञा को ही सब कुछ मानते हैं। अत तुरन्त प्रणाम किया और घर चल बारात की तैयारी के लिए। दूतो के लिए ठहरने की व्यवस्था कराकर तब घर गये। यह महाराज की सावधानी है।

राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ॥
सुनि सदसु सकल हरषानी। अपर कथा सब भूप बखानी ॥१॥

अर्थ राजा ने सब रानिया को बुलाया। जनकराज की चिट्ठी पढ सुनाई। सन्देश सुनकर सब हर्षित हुईं और सब कथा महाराज ने वर्णन की।

व्याख्या स्त्रीद्विजावमान्य गच्छतो मरणम्। स्त्री और ब्राह्मण का अपमान करके जानेवाले का मरण होता है। अत यात्रा के पहिले स्त्री और ब्राह्मण का सत्कार होना चाहिए। अत स्त्रियो के सत्कार के लिए रनिवास म गये। वहाँ जाने पर सब रानियो को बुलवाया। पृथक् पृथक् सबके यहाँ जाने का समय नही है। सबके आजाने पर राजा जनक की चिट्ठी पढ सुनाई। बारात लकर आने की प्रार्थना राजा जनक ने की है। रामजी ही शिवधनुभङ्ग म समर्थ हुए। अत राजा जनक की ज्येष्ठ कन्या सीताजी ने उनका वरण किया है। चिट्ठी की वचनरचना बडी सुन्दर है, बडी प्रिय है। दूत वचन रचना प्रिय लागी। चिट्ठी के लिए क्या कहना है। रानी कौसल्या के महल मे चिट्ठी की चौथी आवृत्ति हुई। रामजी कौसल्या रानी की भाँति ही सब माताओ से प्रेम करते हैं। यथा कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाव पियारी। अत सबका वात्सल्य समान रूप से रामजी पर है। उनके विवाहोत्सव का समाचार सुनकर सब प्रसन्न हुईं। अपर कथा जो दूत के मुख से सुनी थी सब राजाओ का पराभव, बाणासुर और रावण की हार और परशुरामजी के पराजय आदि की कथा महाराज ने स्वय वर्णन की।

प्रेम प्रफुल्लित राजहि रानी। मनहु सिखिनि सुनि बारिद बानी॥
मुदित असीस देहि गुर नारी। अति आनद मगन महतारी॥२॥

अर्थ प्रेम से फूली हुई रानियाँ ऐसी शोभित हैं जैसे बादल के शब्द सुनकर मोरनियाँ फूल उठती हैं। बडो की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं और माताएँ अत्यन्त आनन्द मे मग्न हैं।

व्याख्या प्रेम से पुलकित हो उठी है। इसलिए प्रफुल्लित कहा। रानियाँ स्वभाव से ही शोभायमान है। प्रफुल्लित होने से शोभा और भी बढ गई है। यह सात सौ रानियो का हाल ग्रन्थकार कहते है। गुरुनारी अर्थात् कुलमान्य जठेरी प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं। राम लक्ष्मण की कीर्ति और करणी का प्रकरण है। इसलिए महतारी से कौसल्या और सुमित्रा का ग्रहण है। कैकेयी भरतजी से अधिक रामजी को मानती हैं। यथा भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। इसलिए कैकेयी का भी ग्रहण है। ये तीनो तो आनन्द मे डूबाडूब हैं। बोलने मे असमर्थ हैं। अत

लेहिं परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुडावहि छाती॥
राम लषन कै कीरति करनी। बारहि बार भूपवर बरनी॥३॥

अर्थ वे दूसरे से अत्यन्त प्यारी चिट्ठी को ले लेती हैं और उसे हृदय मे लगाकर छाती शीतल करती है। राम लक्ष्मण की कीर्ति और करणी को बार बार राजाओ म श्रेष्ठ दशरथजी ने वर्णन किया।

व्याख्या उस पत्री म अतिप्रिय का शुभ सवाद है। अत वह पत्री अतिप्रिय है। चिट्ठी को आधा मिलन कहा गया है। अत चिट्ठी को रामविरह सन्तप्त हृदय

मे लगाकर उसे शीतल करती हैं। महाराज वह कथा जो चिट्ठी मे नही है सो कह चुके हैं। फिर भी वह कीर्ति और उसका कारण करणी ऐसी अलौकिक है कि न वह एकबार मे ठीक तरह से कही जा सके और न सुननेवाले के मन मे बैठ सके। अथवा उसी कीर्ति और करणी के कहने मे महाराज को आनन्द और सुनने मे रानियो को आनन्द है। इसलिए वारम्वार कही।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥
दिए दान आनद समेता। चले विप्रवर आसिप देता॥४॥

अर्थ यह सब मुनिजी की कृपा है ऐसा कहकर राजा महल से बाहर चले गये। तब रानियो ने ब्राह्मणो को बुलाया। आनन्दसहित अनेक दान दिये। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या महल मे अधिक देर तक नही ठहरे। गुरुजी की आज्ञा हो चुकी है। यथा चलहु वेगि सुनि गुर बचन भलेहि नाथ सिर नाय। मुनि के प्रसाद से ही यह सब हो रहा है। उन्होने पहिले ही कहा था धरहु धीर होइहैं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। अत यह कीर्ति और करणी उनकी है। सुत की नही है। मुनिजी का प्रसाद है। यही बात महाराज ने रानियो से अपने सवाद के उपसहार मे कही और बारात की व्यवस्था करने बाहर के खण्ड मे चल आये।

आनन्द के समाचार की प्राप्ति पर दान देना चाहिए। इसलिए रानियो ने दान पात्र ब्राह्मणो को बुलाया और सात्त्विक दान दिया। अयोध्या ऐसा पुनीत देश है। पुत्रोद्वाह की उपस्थिति का काल है। विप्रवर से श्रोत्रिय ब्राह्मण अभिप्रेत हैं। यथा वेदपाठी भवेद्विप्र। आनन्द के सहित दान दे रही है। अत यह दान सब प्रकार से सात्त्विक है। यथा दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्त्विक स्मृतम्। भगवद्गीता। दान से सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले। परोक्ष मे भी आशीर्वाद देते हैं। इसलिए आशिप देते चलना कहा।

दो जाचक लिए हँकारि, दीन्ह निछावर कोटि विधि।
चिर जीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ के॥२९५॥

अर्थ मँगतो को बुलवा लिया और करोडो प्रकार की निछावरें की। वे भी आशीर्वाद देते चले। चक्रवर्ती दशरथ के चारो पुत्र चिरञ्जीव हो।

व्याख्या दान के अधिकारियो को दान दिया गया। दूसरी श्रेणी के पात्र दीन और अनाथ याचक लोग है। इन्हे निछावर दिया जाता है। महाराज दशरथ के यहाँ दीन का आदर है। उन्हे बुलावा जाता है। अत वे बुलाये गये। सात सौ रानियाँ है। अत कोटि विधि से निछावर का होना कहते हैं। अथवा निछावर की कोटि प्रकार विधि से हुई। यथा पहिले ताटकावध की निछावर

हुई। तब मखसरक्षण की निछावर। तब धनुपभङ्ग की निछावर। तब जयमाल ग्रहण की निछावर। तब परशुरामविजय की निछावर हुई।

कहत चले पहिरे पटु नाना। हरपि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥१॥

अर्थ ऐसा कहते हुए अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए चल और हर्पित होकर गहगहे डङ्के बजाये। सब लोगो को समाचार मिला तो घर घर बधाइयाँ बजने लगी।

व्याख्या याचक लोग अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए हैं जो उन्हे निछावर मे मिले हैं। चिरजीवहु सुतचारि चक्रवर्ति दशरत्थ के ऐसा कहते हुए चल। दाता की प्रीति के लिए उन्होने निछावर म मिले हुए वस्त्रालङ्कारो को तुरन्त धारण कर लिया। केवल कपडे ही नही पाये। नाना भाँति से निछावर हुई है। राजोपचार सब की निछावर हुई। घोडे, हाथी, डका, निशान सभी कुछ निछावर म मिला है। अत डङ्का देकर चले। हने गहगहे निसाना। यहाँ हने शब्द का सिवा जाचक शब्द के दूसरा कोई शब्द कर्त्तारूप म उपलब्ध नही होता और अर्थ भी बैठ जाता है। अत याचको ने डङ्के बजाये यही अर्थ करना होगा। जन्मकाल मे याचक स्वय आये। यथा तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। इस बार उन्हे बुलाया गया।

याचको के इस भाँति डङ्का बजाकर चलने पर सब लोगो को समाचार लग गया। अथवा रानिया का समाचार लिखकर तब पुर लोगो का समाचार लिखते है। राजा और प्रजा की सम्पत्ति एक है। अति घनिष्ठ प्रीति है। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र म ही ऐसी प्रीति सम्भव है। प्रजा इतनी आनन्दित हुई मानो उन्ही के घर विवाहोत्सव है। घर घर बधाय बजने लग।

भुवन चारि दस भरा[1] उछाहू। जनकसुता रघुवीर विआहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सवारन लागे॥२॥

अर्थ चौदहा भुवनो म उछाह भर गया कि जनक की बेटी और रघुवीर का ब्याह है। यह शुभ कथा सुनकर लोगो म अनुराग बढा। रास्ता, घर और गली सँवारने लगे

व्याख्या चौदह भुवन का अयोध्या से सम्बन्ध है। यथा भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुखवारी। रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अवुधि कहँ धाई। अत सभी जगह समाचार फैल गया और सभी महाराज दशरथ से प्रेम करते है। यथा नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे। अत सबके हृदय म आनन्द उमगा। इस भाँति चौदह भुवन म उछाह भर गया। जनकजी की भी कीर्ति की ख्याति सारे ससार म है। अत इस

---

१ यहाँ अधिक द्वितीय अलङ्कार है।

मे लगाकर उसे शीतल करती हैं। महाराज वह कथा जो चिट्ठी मे नही है सो कह चुके हैं। फिर भी वह कीर्ति और उसका कारण करणी ऐसी अलौकिक है नि न वह एकबार मे ठीक तरह से कही जा सके और न सुननेवाले के मन मे बैठ सके। अथवा उसी कीर्ति और करणी के कहने मे महाराज को आनन्द और सुनने मे रानियो को आनन्द है। इसलिए वारम्बार कही।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तव महिदेव बोलाए॥
दिए दान आनद समेता। चले विप्रवर आसिप देता॥४॥

अर्थ यह सब मुनिजी की कृपा है ऐसा कहकर राजा महल से बाहर चले गये। तव रानियो ने ब्राह्मणो को बुलाया। आनन्दसहित अनेक दान दिये। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या महल मे अधिक देर तक नही ठहरे। गुरुजी की आज्ञा हो चुकी है। यथा चलहु वेगि सुनि गुरु वचन भलेहि नाथ सिर नाय। मुनि के प्रसाद से ही यह सव हो रहा है। उन्होने पहिले ही कहा था धरहु धीर होइहँ सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। अत यह कीर्ति और करणी उनकी है। सुत की नही है। मुनिजी का प्रसाद है। यही वात महाराज ने रानियो से अपने सवाद के उपसहार मे कही और वारात की व्यवस्था करने वाहर के खण्ड मे चले आये।

आनन्द के समाचार की प्राप्ति पर दान देना चाहिए। इसलिए रानियो ने दान पात्र ब्राह्मणो को बुलाया और सात्त्विक दान दिया। अयोध्या ऐसा पुनीत देश है। पुत्राद्वाह की उपस्थिति का काल है। विप्रवर से श्रोत्रिय ब्राह्मण अभिप्रेत है। यथा वेदपाठी भवेद्विप्र। आनन्द के सहित दान दे रही है। अत यह दान सब प्रकार से सात्त्विक है। यथा दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्त्विक स्मृतम्। भगवद्गीता। दान से सन्तुष्ट हाकर ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले। परोक्ष मे भी आशीर्वाद देते है। इसलिए आशिप देते चलना कहा।

दो जाचक लिए हकारि, दीन्ह निछावर कोटि विधि।
चिर जीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ के॥२९५॥

अर्थ मँगतो को बुलवा लिया और करोडो प्रकार की निछावरे की। वे भी आशीर्वाद देते चले। चक्रवर्ती दशरथ के चारो पुत्र चिरञ्जीव हो।

व्याख्या दान के अधिकारियो को दान दिया गया। दूसरी श्रेणी के पात्र दीन और अनाथ याचक लोग है। इन्हे निछावर दिया जाता है। महाराज दशरथ के यहाँ दीन का आदर है। उन्हे बुलावा जाता है। अत वे बुलाये गये। सात सौ रानियाँ है। अत कोटि विधि से निछावर का होना कहते है। अथवा निछावर की कोटि प्रकार विधि से हुई। यथा पहिले ताटकावध की निछावर

हुई। तब मखसरक्षण की निछावर। तब धनुपभङ्ग की निछावर। तब जयमाल ग्रहण की निछावर। तब परशुरामविजय की निछावर हुई।

कहत चले पहिरे पटु नाना। हरषि हने गहगहे निसाना ॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहते हुए अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए चले और हर्षित होकर गहगहे डङ्के बजाये। सब लोगो को समाचार मिला तो घर घर बधाइयाँ बजने लगी।

व्याख्या : याचक लोग अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए है जो उन्हे निछावर मे मिले है। चिरजीवहु सुतचारि चक्रवर्ति दशरत्थ के ऐसा कहते हुए चले। दाता की प्रीति के लिए उन्होने निछावर मे मिले हुए वस्त्रालङ्कारो को तुरन्त धारण कर लिया। केवल कपडे ही नही पाये। नाना भाँति से निछावर हुई है। राजोपचार तक की निछावर हुई। घोडे, हाथी, डका, निशान सभी कुछ निछावर मे मिला है। अत डङ्का देकर चले। हने गहगहे निसाना। यहाँ हने शब्द का सिवा जाचक शब्द के दूसरा कोई शब्द कर्त्तारूप मे उपलब्ध नही होता और अर्थ भी बैठ जाता है। अत: याचको ने डङ्के बजाये यही अर्थ करना होगा। जन्मकाल मे याचक स्वय आये। यथा : तेहि अवसर जो जेहि बिधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। इस बार उन्हे बुलाया गया।

याचको के इस भाँति डङ्का बजाकर चलने पर सब लोगो को समाचार लग गया। अथवा रानियो का समाचार लिखकर तब पुर लोगो का समाचार लिखते है। राजा और प्रजा की सम्पत्ति एक है। अति घनिष्ठ प्रीति है। धर्मनियन्त्रित राज्तन्त्र मे ही ऐसी प्रीति सम्भव है। प्रजा इतनी आनन्दित हुई मानो उन्ही के घर विवाहोत्सव है। घर घर बधाये बजने लगे।

भुवन चारि दस भरा[1] उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू ॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे ॥२॥

अर्थ : चौदहो भुवनो म उछाह भर गया कि जनक की बेटी और रघुवीर का व्याह है। यह शुभ कथा सुनकर लोगो मे अनुराग बढा। रास्ता, घर और गली सँवारने लगे :

व्याख्या : चौदह भुवन का अयोध्या से सम्बन्ध है। यथा : भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुखबारी। रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहँ धाई। अत सभी जगह समाचार फैल गया और सभी महाराज दशरथ से प्रेम करते है। यथा नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे। अत सबके हृदय मे आनन्द उमगा। इस भाँति चौदह भुवन मे उछाह भर गया। जनकजी की भी कीर्ति की ख्याति सारे ससार मे है। अत इस

---

१ यहाँ अधिक : द्वितीय अलङ्कार है।

विवाह से सबको हर्ष हुआ। श्रीरामजी की ख्याति वीररूप से त्रैलोक्य मे हो चुकी है। अत रघुवीर कहते हैं। पिता का नाम नही लेते। जगदम्बा जानकीजी के रूप की ख्याति भी त्रैलोक्य मे है। पर जनक की पुत्री करके ही ख्याति है। अत कहते है जनक सुता रघुवीर विवाहू।

विवाह की कथा है। इसलिए शुभ कथा कहते है। लोग तो अनुरक्त हुए हैं। पर इस सम्बन्ध के समाचार से अनुराग और बढा। सबका घर सडक और गली के बीच मे है। अत मग गृह गली का सँवारना उसी क्रम से लिखते है।

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मगलमय पावनि ॥
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मगल रचना रची बनाई ॥३॥

अर्थ यद्यपि अयोध्यापुरी नित्य ही सोहावनी है। रामजी की पुरी मङ्गलमयी और पवित्र करनेवाली है। फिर भी प्रीति की रीति सुन्दर होती है। मङ्गल रचना सँवारकर रची गई है।

व्याख्या यह सशय न हो कि अवध और समयो म असस्कृत ही रहता था। अत ग्रन्थकार कहते हैं कि अवध ता सदा देखने म सोहावन और सेवन करने म पावन है। यथा पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरखे नगर विलोकि सोहावन। अवध का सम्बन्ध रामजी से वैसा ही है जैसा दिन का सम्बन्ध सूर्य से होता है। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अत अवध को रामपुरी कहा। अथवा राजा जनक के दूत रामपुरी की भावना से अवध मे आये हैं। उसके वर्णन म भी अवध का रामपुरी कहकर वर्णन करते हैं। स्वय रामजी मङ्गलभवन अमङ्गलहारी हैं। अत उनकी पुरी मगलमय पावनि है। रामजी के नाम रूप लीला धाम सब मङ्गलमय पावन और सोहावन हैं। नाम मङ्गलमय यथा मगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। रूप मगलममय यथा मगलभवन अमगलहारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी। लीला मगलमय यथा जासु सकल मगलमय कीरति। धाम मगलमय यथा रामपुरी मगलमय पावनि। नाम पावन यथा सुमिरि पवनसुत पावन नामू। रूप पावन यथा मगलमय अति पावन पावन। लीला पावन यथा रघुवीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावइ। धाम पावन यथा रामपुरी मगलमय पावनि। नाम और लीला सोहावन यथा राम नाम गुन चरित सोहाए। रूप सोहावन यथा स्याम सरीर सुभाय सुहावन। धाम सोहावन यथा हरखे नगर विलोकि सोहावन। अत रामपुरी म मङ्गलरचना की आवश्यकता नहीं है। गङ्गाजी के मार्जन की कौन आवश्यकता है। फिर भी प्रीति का यह आनन्द है कि प्रेमपात्र के मङ्गल उपस्थित होने पर मङ्गल रचना बनाई जाती है। जहाँ प्रीति की प्रीति पाठ है वहाँ पहिले प्रीति शब्द का अर्थ प्रेम और दूसरे प्रीति शब्द का अर्थ आनन्द है। वैर म भी पलटा लने का आनन्द है। पर वह आनन्द सोहावना

नहीं है। प्रीति का आनन्द सोहावना है। उसमें मङ्गलरचना सँवारकर रची जाती है। उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं

ध्वज पताक पट चामर चारु। छावा परम विचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥४॥

अर्थ ध्वजा पताका, सुन्दर वस्त्र और चँवर से छाया हुआ बाजार परम विचित्र हो रहा था। सोने के कलश, मणिजाल का तोरण, हलदी, दूब, अक्षत और माला द्वारा।

व्याख्या जन्मोत्सव के समय में कहा है ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा। वैसा ही इस उत्सव के समय भी मनाया जा रहा है। पर जन्मोत्सव से विवाहोत्सव की रचना में विशेषता होती है। अत कनक कलस तोरन मनि जाला। लिखकर विशेषता भी दिखलाते हैं। बाजार का साज कहकर घर का साज कहते हैं। बाजार की मङ्गलरचना दूसरे प्रकार की और घरकी दूसरे प्रकार की होती है। हलदी, दही, अक्षत, माला आदि प्रयोग घर की मङ्गलरचना में होता है।

दो मंगलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम, चौके चारु पुराइ॥२९६॥

अर्थ लोगों ने अपने घरों को सँवारकर मङ्गलमय बनाया। सुन्दर चौके पुराकर चतुरसम से गलियों को सींचा।

व्याख्या यहाँ महाजनों को आज्ञा देनी नहीं पड़ी। आपसे आप लोगों ने अपना अपना घर मङ्गलमय बनाया। खूब सँवारकर रचना की। घर सँवारकर लोगों ने बाहर चौके पुराये। गलियाँ चतुरसम चार प्रकार के सुगन्धित द्रव्य को एकत्रित करके चतुरसम बनाते हैं से सींची गईं।

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधुबदनीं मृगसावक लोचनि। निज सरूप रति मान बिमोचनि॥१॥

अर्थ जहाँ तहाँ झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ मिलकर सोलह शृङ्गार करके गान करने लगीं। सबके अङ्ग की प्रभा बिजली सी, मुख चन्द्रमा सा, आँखें मृग के बच्चों सी थीं। अपने रूप से रति के अभिमान को मिटानेवाली थीं।

व्याख्या घरों का वर्णन करके अब घरवालियों का वर्णन करते हैं। कुरूपता भी पाप का फल है। अवध के नर नारी कृतार्थरूप हैं। यथा उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथरूप। अथवा मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। अत स्त्रियों की सुन्दरता देखकर रति का अभिमान टूटता था। क्योंकि सभी चन्द्रवदनी और मृगनयनी थीं। मुख की शोभा कहकर सर्वाङ्ग की शोभा कहते हैं कि उसमें बिजली सा चमक है। तिस पर सोलहो शृङ्गार कर रक्खे

हैं। यथा प्रथम अग सुचि एक विधि मज्जन दुतिय वखानि। अमल वसन पहिरन तृतिय जावक चारि सुजानि। १। पचम केस सँवारियो पष्ठहि माँग सिंदूर। भाल खौरि सप्तम कहत अष्टचिबुक तिलपूर। २। मेहदी कर पद रचन नव दसम अरगजा अग। ग्यारह भूपन नग जटित बारह पुष्प प्रसग। ३। वासराग मुख तेरहो चौदह रँगिवो दाँत। अधर राग गनि पचदस कज्जल पोडस भाँत। ४।

गावहि मंगल मंजुल वानी। सुनि कलरव कलकठि लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। विस्व विमोहन रचेउ बिताना॥२॥

अर्थ : मनोहर वाणी से मङ्गलगान करने लगी। सुन्दर स्वर को सुनकर कोयल लज्जित हो उठी। राजा के घर का कैसे वर्णन किया जाय जहाँ ससार को मोहन करनेवाला मण्डप छाया गया था।

व्याख्या : मङ्गलगान करने लगी। उनका स्वर इतना मनोहर है कि कोयल लज्जित हो जाँय। जनकपुर के वर्णन मे कहते हैं जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल वयनी और यहाँ कहते है सुनि कलरव कलकठ लजाही। यहाँ मामला बढा हुआ है। सोलहो शृगार कर रक्खे हैं। शरीर की द्युति भी दामिनी सी है। वहाँ एक अर्धाली मे वर्णन है। यहाँ तीन अर्धाली मे वर्णन करके तिगुना उत्सव कहा।

जब प्रजाओं के घर मे इतनी सजावट और आमोद प्रमोद है तब राजा के घर का क्या वर्णन किया जा सकता है ? वहाँ विश्वविमोहन मण्डप साजा गया है। जनकपुर के मण्डप का तो वर्णन किया। पर यहाँ के मण्डप का वर्णन हो नही सकता। वहाँ का मण्डप देखकर ब्रह्मदेव भूल गये कि कदली के खम्भे आदि असली हैं कि बनावटी है। पर यहाँ तो विश्व विमोहन वितान रचा गया है। जिसे देखकर अपने शरीर का एकदम सँभाल नही रह जाता। मोह की परिभाषा ही यही है कि जहँ आपने शरीर को नेकु न रहै सँभार। यहाँ तो वितान के देखने से विमोह होता है।

मङ्गल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत विपुल निसाना॥
कतहुँ विरद वंदी उच्चरही। कतहुँ वेदधुनि भूसुर करही॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य शोभित थे। मङ्गल द्रव्याणि यथा पूर्णकुम्भ द्विजं वेश्या शुल्कधान्यञ्च दर्पणम्। दध्याज्य मधुलाजञ्च पुष्पं दूर्वाक्षत सितम्। वृपं गजेन्द्र तुरग ज्वलदग्नि सुवर्णकम्। पर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च। मुक्ता प्रसून मालाञ्च सद्योमासं च चन्दनम्। ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि तुरी मुने! ब्रह्मवैवर्त। अर्थ : पूर्णकुम्भ, ब्राह्मण, वेश्या, श्वेत धान्य, दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, हाथी, घोड़ा, जलती हुई आग, सोना, पत्ते, पके फल, मोती, फूल की माला, ताजा मास, चन्दन ये मङ्गल

द्रव्य हैं। बहुत से डङ्के बज रहे है। कही वन्दी विरदावली उच्चारण करते और कही ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे है।

व्याख्या : जब मण्डप का वर्णन हुआ तो मङ्गल द्रव्यो का भी वर्णन होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य वहाँ थे। भाव यह कि ताजा मास इत्यादि मगल द्रव्य होने पर भी मनोहर नही हैं। अत उनकी अनुपस्थिति वहाँ पर कह रहे है। राजद्वार है। अत उत्सव के समय मे अनेक डकाओ का बजना वन्दियो का विरद कहना और ब्राह्मणो का वेदध्वनि करना सर्वथा प्राप्त है। ये सब विशेषताएँ भूपभवन मे थी। लौकिक वैदिक दोनो रीतियाँ हो रही हैं। वन्दी का विरद कहना लौकिक रीति है और ब्राह्मणो की वेदध्वनि वैदिक रीति है।

गावहि सुन्दरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाह भवनु अति[1] थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा॥४॥

अर्थ : सुन्दरियाँ राम और सीता का नाम लेकर मङ्गलगीत गाने लगी। उत्साह बहुत था। घर छोटा पड गया। मानो उमगकर चारो ओर वह चला।

व्याख्या : राजभवन मे जो गीत हो रहा है उसमे राम और सीता का नाम जोडकर गा रही हैं। वरपक्षवाले के घर वर की ही प्रधानता रहती है। अत उनके यहाँ पहिले वर का नाम लेकर तब वधू का नाम गीत मे जोडते हैं। भाव यह कि व्याह का गीत आरम्भ हो गया। दूत के मुख से सुन पाया है कि वधू का नाम सीता है। यथा * सीय स्वयवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका। यद्यपि दूत ने पुकारने का नाम सीता शब्द का तद्भव रूप सीय कहा। परन्तु उस समय प्राकृत का सस्कृत रूप जानने मे कठिनता न थी। यद्यपि ससार सीताराम कहता है। पर अयोध्या के मङ्गलगान मे तो 'राम सीता' ही गाया गया।

उछाह तो चारो ओर है। पर विशेष राजगृह मे है। वही से आनन्द का सोता फूटा है। उसी की उपमा देते हैं कि जब किसी पात्र मे बहुत सा जल भर दिया जाता है तो चारो ओर से वह चलता है। उसी भाँति राजमहल मे उछाह इतना बढा कि उसमे समा न सका तो चारो ओर से उमगकर वह चला। यथा भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू।

दो. सोभा दसरथ भवन कै, को कवि करनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि, राम लीन्ह अवतार॥२९७॥

अर्थ * महाराज दशरथ के महल की शोभा कौन कवि वर्णन कर सकता है। जहाँ सब देवताओ के शिरोमणि रामजी ने अवतार धारण किया था।

व्याख्या : जनकपुर की शोभा वर्णन करते हुए कहा है * वसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेप। तेहि पुर कै शोभा कहत सकुचहिं सारद सेप।

---

१. यहाँ अधिक अलङ्कार है।

हैं। यथा प्रथम अग सुचि एक विधि मज्जन दुतिय वखानि। अमल वसन पहिरन तृतिय जावक चारि सुजानि। १। पचम केस सँवारियो पष्ठहि माँग सिंदूर। भाल खौरि सप्तम कहत अष्टचिबुक तिलपूर। २। मेहदी कर पद रचन नव दसम अरगजा अग। ग्यारह भूपन नग जटित बारह पुष्प प्रसग। ३। वासराग मुख तेरहो चौदह रँगिवो दाँत। अधर राग गनि पचदस कज्जल पोडस भाँत। ४।

गावहिं मगल मजुल वानी। सुनि कलरव कलकंठि लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। विस्व विमोहन रचेउ विताना॥२॥

अर्थ मनोहर वाणी से मङ्गलगान करने लगी। सुन्दर स्वर को सुनकर कोयल लज्जित हो उठी। राजा के घर का कैसे वर्णन किया जाय जहाँ ससार को मोहन करनेवाला मण्डप छाया गया था।

व्याख्या मङ्गलगान करने लगी। उनका स्वर इतना मनोहर है कि कोयल लज्जित हो जाँय। जनकपुर के वर्णन मे कहते हैं जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल बयनी और यहा कहते हैं सुनि कलरव कलकठ लजाही। यहाँ मामला बढा हुआ है। सोलहो शृगार कर रक्खे हैं। शरीर की द्युति भी दामिनी सी है। वहाँ एक अर्धाली मे वर्णन है। यहाँ तीन अर्धाली मे वर्णन करके तिगुना उत्सव कहा।

जब प्रजाओ के घर म इतनी सजावट और आमोद प्रमोद है तब राजा के घर का क्या वर्णन किया जा सकता है? वहा विश्वविमोहन मण्डप साजा गया है। जनकपुर के मण्डप का तो वर्णन किया। पर यहाँ के मण्डप का वर्णन हो नही सकता। वहाँ का मण्डप देखकर ब्रह्मदेव भूल गये कि कदली के खम्भे आदि असली है कि बनावटी है। पर यहाँ तो विश्व विमोहन वितान रचा गया है। जिसे देखकर अपने शरीर का एकदम सँभाल नही रह जाता। मोह की परिभापा ही यही है कि जहँ आपने शरीर का नेकु न रहै सँभार। यहाँ तो वितान के देखने से विमोह होता है।

मङ्गल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत विपुल निसाना॥
कतहुँ विरद वदी उच्चरही। कतहु वेदधुनि भूसुर करही॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य शोभित थे। मङ्गल द्रव्याणि यथा पूर्णकुम्भ द्विज वेश्या शुल्कधान्यञ्च दर्पणम्। दध्याज्य मधुलाजञ्च पुष्प दूर्वाक्षत सितम्। वृष गजेन्द्र तुरग ज्वलदग्नि सुवर्णकम्। पर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च। मुक्ता प्रसून मालाञ्च सद्योमास च चन्दनम्। ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि तुरा मुने। ब्रह्मवैवर्ते। अर्थ पूर्णकुम्भ, ब्राह्मण वेश्या, श्वेत धान्य, दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, हाथी, घोडा, जलती हुई आग, सोना, पत्ते, पके फल, मोती, फूल की माला, ताजा मास, चन्दन ये मङ्गल

द्रव्य हैं। बहुत से डङ्के बज रहे हैं। कहीं वन्दी विरदावली उच्चारण करते और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं।

व्याख्या : जब मण्डप का वर्णन हुआ तो मङ्गल द्रव्यों का भी वर्णन होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य वहाँ थे। भाव यह कि ताजा मास इत्यादि मंगल द्रव्य होने पर भी मनोहर नहीं हैं। अत उनकी अनुपस्थिति वहाँ पर कह रहे हैं। राजद्वार है। अत उत्सव के समय मे अनेक डकाओ का बजना वन्दियो का विरद कहना और ब्राह्मणो का वेदध्वनि करना सर्वथा प्राप्त है। ये सब विशेषताएँ भूपभवन मे थी। लौकिक वैदिक दोनो रीतियाँ हो रही है। वन्दी का विरद कहना लौकिक रीति है और ब्राह्मणो की वेदध्वनि वैदिक रीति है।

गावहि सुन्दरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाह भवनु अति[1] थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा॥४॥

अर्थ सुन्दरियाँ राम और सीता का नाम लेकर मङ्गलगीत गाने लगी। उत्साह बहुत था। घर छोटा पड गया। मानो उमगकर चारो ओर बह चला।

व्याख्या . राजभवन मे जो गीत हो रहा है उसमें राम और सीता का नाम जोडकर गा रही है। वरपक्षवाले के घर वर की ही प्रधानता रहती है। अत उनके यहाँ पहिले वर का नाम लेकर तब वधू का नाम गीत मे जोडते है। भाव यह कि व्याह का गीत आरम्भ हो गया। दूत के मुख से सुन पाया है कि वधू का नाम सीता है। यथा सीय स्वयवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका। यद्यपि दूत ने पुकारने का नाम सीता शब्द का तद्भव रूप सीय कहा। परन्तु उस समय प्राकृत का सस्कृत रूप जानने मे कठिनता न थी। यद्यपि ससार सीताराम कहता है। पर अयोध्या के मङ्गलगान मे तो 'राम सीता' ही गाया गया।

उछाह तो चारो ओर है। पर विशेष राजगृह मे है। वही से आनन्द का सोता फूटा है। उसी की उपमा देते है कि जब किसी पात्र मे बहुत सा जल भर दिया जाता है तो चारो ओर से बह चलता है। उसी भाँति राजमहल मे उछाह इतना बढा कि उसमे समा न सका तो चारो ओर से उमगकर बह चला। यथा भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू।

दो सोभा दसरथ भवन कै, को कवि करनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि, राम लीन्ह अवतार॥२९७॥

अर्थ महाराज दशरथ के महल की शोभा कौन कवि वर्णन कर सकता है। जहाँ सब देवताओ के शिरोमणि रामजी ने अवतार धारण किया था।

व्याख्या जनकपुर की शोभा वर्णन करते हुए कहा है बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेष। तेहि पुर की सोभा कहत सकुचहिं सारद सेष।

---

१. यहाँ अधिक अलङ्कार है।

वहाँ जनकभवन की शोभा की विशेषता नही कही। कहते हैं जनक भवन की सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी। क्योकि जनकभवन मे जगदम्बा का अवतार नही हुआ था। वह तो यज्ञ के लिए जोते जानेवाली भूमि मे हुआ था। जनकपुर की विशेषता यह थी कि वहाँ जगदम्बा कपट नारि वर वेप मे वसती थी। अत वहाँ पूरे जनकपुर की शोभा कही। यहाँ अयोध्या मे तो महाराज के महल मे श्रीरामावतार हुआ था। अत महाराज के महल की विशेषता थी। दशरथभवन की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कोई कवि वर्णन नही कर सकता। क्योकि यहाँ सकलदेवशिरोमणि रामजी ने अवतार ग्रहण किया था। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे वही स्थल इस योग्य था जहाँ पूर्ण ब्रह्म का आविर्भाव हो सके। जनकपुर की शोभा मे शारदा और शेप को सङ्कोच है। पर यहाँ की शोभा के वर्णन मे वे असमर्थ है। निर्गलितार्थ यह कि जनकपुर का उत्कर्ष जानकीजी के निवास से है और दशरथभवन की वडाई श्रीरामजी के वहाँ अवतार धारण करने से है।

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यदन माजहु जाई ॥
चलहु वेगि रघुवीर वराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥१॥

अर्थ फिर राजा ने भरतजी को बुला भेजा और कहा कि जाकर घोडे हाथी और रथ सजाओ। शीघ्र ही रघुवर की बारात मे चलो। सुनते ही दोनो भाई पुलक से पूर्ण हो गये।

व्याख्या मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए से प्रसङ्ग छोडा था। भूप भरत पुनि लिये वोलाई से उसी प्रसङ्ग को उठाते है। दोनो भाइयो मे इस समय भरतजी ही वडे हैं। अत बुलाहट उन्ही की हुई। पर उनके साथ शत्रुघ्नजी भी आये। क्योकि ये सदा भरतजी के साथ रहते हैं। यथा भरत शत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति वडाई। राजसभा म भरतजी की पुनीत प्रीति देखी जा चुकी है। यथा प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहहु विसेखी। अत उन्ही को वारात व्रात सजाने की आज्ञा हुई। चतुरङ्गिणी सेना मे से हय गज स्यदन के ही साजने की आज्ञा हुई पदचर के लिए नही हुई। आज चक्रवर्तीजी राम न कहकर रघुवीर कहते हैं। क्योकि धनुपभङ्ग से वीरता प्रमाणित हो चुकी। वीरा की वारात ऐसी ही होती है। जय पहिल ही जाकर किया। अव बारात पीछे से चल रही है। बिना दूलहे की बारात साजी जा रही है। भरत शत्रुघ्न को नगररक्षा के लिए आज्ञा न होकर वारात मे चलने के लिए आज्ञा हुई। अत अति हर्ष से पुलकायमान हो गये। भरतजी के लिए जो आज्ञा हुई वही शत्रुघ्नजी के लिए समझ लेनी चाहिए।

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह सकल उठि धाए ॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन साजे। वरन वरन वर वाजि विराजे ॥२॥

अर्थ . भरतजी ने मव दारोगो को बुलाया और आज्ञा दी। वे प्रसन्न होकर दौड पडे। उन्होने रुचि से रचकर घोडो पर जीन सजाये। रङ्ग रङ्ग के सुन्दर घोडे शोभित थे।

व्याख्या भरतजी ने विभागो के अध्यक्षो को बुलवाया। चक्रवर्तीजी ने भरतजी को आज्ञा दी। उन्होने बलाध्यक्षो को वही आज्ञा दोहराई। अत पुनरुक्ति के भय से उसे नही लिखते। भरतजी के दरबार मे बलाध्यक्ष लोग उपस्थित हुए। भरतजी ने चक्रवर्तीजी की आज्ञा केवल दोहरायी ही नही उसे विस्तार के साथ समझाया। आगे की प्रक्रिया से सब बातें स्पष्ट हो जावेंगी। यहाँ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नही है। आज्ञा पाते ही वे आनन्द के साथ उठकर दौड पडे। मुनिजी ने आज्ञा दी : चलहु वेगि सुनि मुनि बचन भलेहि नाथ सिर नाय। तदनुसार चक्रवर्तीजी आज्ञा देते हैं चलहु वेगि रघुवीर बराता। आयसु पाइ मुदित उठि धाये। इससे अनुमित है कि भरतजी ने भी चलहु वेगि यही आज्ञा दी।

जिस रङ्ग के घोडे पर जैसी जीन खिलेगी जैसा साज फवेगा। यही विचार कर अपनी अपनी रुचि के अनुसार रचकर साजा। सवारी के घोडे रङ्ग बिरङ्गे थे।

सुभग सकल सुठि चचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी ॥
नाना जाति न जाहि बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उडाने ॥३॥

अर्थ सब घोडे सुन्दर और अति चञ्चल करणीवाले थे। वे जलते हुए लोहे पर पैर रखने की भाँति पृथ्वी पर पैर रखते थे। वे अनेक जातियो के थे जिनका वर्णन नही हो सकता। मानो हवा का निरादर करके उडा चाहते हैं। जहाँ हुअ जिमि जरत पाठ है वहाँ अर्थ करना होगा कि मानो जलती हुई धरती पर पाँव रख रहे हैं। ऐसे चञ्चलकरणी हुए।

व्याख्या सुभग कहकर रूप कहा चञ्चल कहने से गुण कहा। कहावत है कि लडके और घोडे चञ्चल ही अच्छे होते हैं। सो ऐसे चञ्चल हैं कि उनसे स्थिर रहा ही नही जाता। उनके लिए मानो पृथ्वी गरम लोहे की हो रही है। पृथ्वी पर पैर रखा कि तुरन्त उठाया। बराबर थिरकते ही रहते हैं। घोडो की जाति होती है। मानी हुई बात है कि जातिवाले घोडे अच्छे होते हैं। बडे यत्न से घोडो की जाति की रक्षा की जाती है। हीन जाति मे जोडा नही खाने देते। नही तो नसल बिगड जाती है। आजकल लोग अपने नसल से अधिक घोडो और कुत्तो की नसल पर ध्यान देते हैं। घोडो मे अनेक जातियाँ हैं। तदनुसार उनके रूप आकार और गुणो मे भेद होता है। यथा ताजी, तुरकी, अरबी, कच्छी, पयगू, बुटवल, रगपुर दीनाजपुर के टाँघन आदि।

अब पराक्रम कहते हैं कि वे दूसरे घोडे को अपने से आगे बढने देना तो सहन कर सकते ही नही। हवा का भी आगे बढना उन्हे सह्य नही है। उसका भी निरादर करके उडना चाहते हैं।

तिन सब छयल भये असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा ॥
सब सुदर सब भूपनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी ॥४॥

अर्थ उन सब पर भरतजी के समान आयुवाले छैल छबीले राजकुमार

सवार हुए। सब सुन्दर थे। आभूषण धारण किये हुए थे। उनके हाथो मे धनुष बाण था और कमर मे भारी तरकस बँधा था।

व्याख्या भरतजी को जो आज्ञा हुई चलहु बेगि रघुवीर बराता। सो भरत के समवयस्क राजकुमार भरत शत्रुघ्न के साथ घोडो पर सवार हुए। घोडे की सवारी नवयुवको के ही योग्य है। क्षत्रिय महाराज की बारात है। दूल्हा भी घोडे पर ही रहेगा। यह उम्र शौकीनी की है। इसलिए राजकुमारो को छैल छबीले कहते हैं। जिस भाँति कुछ दिन पहले बारातो मे बाँके निकलते थे उसी भाँति यह छैल छबीला समाज था। जिस भाँति राजाओ की उपस्थिति श्रीचक्रवर्तीजी की सभा मे थी उसी भाँति राजकुमार लोगो की उपस्थिति इस समय भरतजी की सभा मे थी।

सभी राजकुमार सुन्दर थे। सुन्दर घोडो पर चढने के लिए सुन्दर सवार चाहिए। घोडे अलकृत है। अत सवार भी भूषणधारी होने चाहिए। घोडे गुणवान् और पराक्रमी है। अत सवार भी धनुर्धर और वीर होने चाहिए। घोडे अल्पवयस्क है। अत सवार भी छैल छबीले चाहिए। सो सब समाज यहाँ ठीक जुट गया है।

दो. छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान नवीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असिकला प्रवीन ॥२९८॥

अर्थ . छरहरे बदनवाले सब छैल छबीले अपूर्व शूर सुजान और प्रत्येक सवार के साथ दो दो तलवार बहादुर पार्श्वरक्षक पैदल थे।

व्याख्या भारी शरीरवाले रथ या गज की सवारी के योग्य होते है। यहाँ नवीन शब्द का अर्थ अपूर्व है। क्योकि छैल शब्द से ही अल्पवयस्कता का भाव आगया। अपूर्व शूर बिना हुए भूषणवसन और शस्त्रास्त्र की शोभा नही और सुजान बिना हुए राजकुमारो की सभी शोभा व्यर्थ है। अत सूर सुजान नवीन कहते है। सभी सवारो के साथ दो दो पार्श्वरक्षक है। जो सग्राम मे सवार के पैरो की और घोडो की रक्षा कर सकें और वे तलवार चलाने मे निपुण थे। निकट मे आये हुए शत्रु पर तलवार की ही चोट हो सकती है। आज कल जो बारात की प्रथा है वह सेना का ही अनुकरण है।

बाँधे बिरद बीर रन गाढे। निकसि भये पुर बाहेर ठाढे॥
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनव निसाना ॥१॥

अर्थ विरुदवाले वीर रण मे दक्ष निकलकर पुर के बाहर खडे हुए। वे चतुर घोडो को अनेक प्रकार की गतियो से फेर रहे है और मृदग तथा बाजे नगाडे का शब्द सुन सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। गद्य और पद्यमयी वाणी मे राजा की स्तुति को विरद कहते हैं। जो गुण जिसमे विशेष होता है या जो प्रण

जिसका होता है वही उसके विरुद म कहा जाता है। जो जिस विरुद को अपना लेता है प्राण जाने पर भी उसका परित्याग नही करता। यथा विरद बाँधि बरबीर कहाई। चले समर जनु सुभट पराई। प्रख्यात पौरुष वीरो का भी विरुद होता है। रनगाढे का अर्थ है रणदक्ष। यथा मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे। लेत चढावत खैंचत गाढे। ऐसे गुणवाले वीर राजकुमार बारात के लिए पुर के बाहर आकर खडे हुए और बारात का इन्तजार करने लगे। यह पहिला कार्य हुआ।

खडे होने की अवस्था मे भी घोडे अनेक चाल से फेरे जा रहे हैं। फेरनेवाले भी चतुर हैं। बाजे का शब्द सुनकर दोनो को हर्ष होता है। बाजे का शब्द सुनकर घुडदौड के घोडे काबू के बाहर हो जाते हैं। उनसे स्थिर रहा नही जाता।

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥
चँवरु चारु किंकिन धुनि करही। भानु जानु सोभा अपहरही॥२॥

अर्थ ध्वजा, पताका, मणि और भूषण लगाकर सारथियो ने रथा की विचित्र सजावट की है। रथ पर चँवर चल रहे हैं और घण्टियाँ बज रही हैं। सूर्य के रथ की शोभा का अपहरण कर रहे हैं।

व्याख्या सारथियो ने पहिले रथ का शृगार किया। ध्वजा पताका तथा मणि और भूषणो से ऐसा अलकृत किया कि रथो की अद्भुत शोभा हुई। रथो को युद्ध सामग्री से सुसज्जित करने की विधि है। परन्तु बारात मे रथ जा रहे हैं। अत मणिभूषणो से सजाये गये। यही रथ की विचित्रता है कि जब रथ चालू होता है तो चँवर चलने लगता है। क्षुद्र घण्टियाँ बजने लगती है। रथ ऐसा जगमगा रहा है कि सूर्य के रथ की शोभा को मात कर रहा है।

साँवकरन[1] अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥
सुन्दर सकल अलकृत सोहै। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहै॥३॥

अर्थ · श्यामकर्ण घोडो की गिनती न थी। उन्हे सारथियो ने रथ मे जोता। वे सुन्दर और अलङ्कार से युक्त होकर ऐसे शोभित हैं कि उन्हे देखकर मुनियो का मन मोहित हो जाय।

व्याख्या श्यामकर्ण घोडे श्वेत वर्ण के होते है। केवल उनका कान काला होता है। इसी से श्यामकर्ण कहलाते है। प्राचीन काल म भी ये कम थे। अब तो सम्भवत पृथ्वी मण्डल मे कदाचित् ही कही हो। महाराज दशरथ के यहाँ ऐसे असख्य घोडे थे। उनमे रथ का काम लिया जाता था। पीठ सवारी के लिए जैसा पहिले

---

१ मो नुनासिको वो वा इस सूत्र से म का सानुनासिक व आदेश हुआ। अधोमनयाम् इस सूत्र से श्या के यकार का लोप होकर श्याम शब्द का रूप साव हुआ। और विप्रकर्ष करके कर्ण का करन रूप हो जाता है। इस भाँति श्यामकर्ण का तद्भव रूप साँवकरन सिद्ध हुआ।

कहा जा चुका है अनेक जाति के घोडे थे। उन श्यामवर्ण घोडो को उन रथो मे सारथिया ने जोता। वे सब स्वभाव से ही सुन्दर थे। तिस पर उन्हे अलङ्कार से शृङ्गारित किया गया। अत वे ऐसे मनोहर दिखाई पडने लगे कि उनके देखने से विषयविमुख स्थितप्रज्ञ का भी मन मोहित हो जाय।

जे जल चलहि थलहि की नाई। टापन बूड वेग अधिकाई॥
अस्त्र सस्त्र सब साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥४॥

अर्थ जो थल की ही भाँति जल पर चलते थे। वेग की अधिकता से टाप नही डूबता था। सारथिया ने अस्त्र शस्त्र सब साज को सजाने के बाद रथियो को बुला लिया।

व्याख्या अब श्यामवर्ण घोडा की विशेषता कहते है। उनकी गति जल पर भी है। उनमे इतना वेग होता है कि अपने टाप को जल मे डूबने का अवसर नही देते। जिस हथियार को फेंककर प्रहार करते हैं उसे अस्त्र और जिसे हाथ मे लिये हुए प्रहार करते है उसे शस्त्र कहते है। ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, तरकस, धनुष आदि यथास्थान रथ मे सजाये जाते है और भी युद्ध की सामग्री अग्नि आदि रथ पर रक्खी रहती हैं। इस भाँति पहिले रथ को साजा। फिर चार घोडो को अलङ्कृत करके उनमे जोडे। तत्पश्चात् अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया। रथ के ठीक हो जाने पर सारथियो ने अपने अपने रथियो को बुला लिया। बारात मे युद्धरथ ही साजे गये। विहार रथ की आवश्यकता नही समझी गई।

दो चढि चढि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुदर सबहि, जो जेहि कारज जात॥२९९॥

अर्थ रथ पर चढ चढकर नगर के बाहर बारात जुटने लगी और जो जिस कार्य के लिए जाता था उन सबको सुन्दर सगुन होते थे।

व्याख्या दूसरा कार्य। रथी घुडसवारो की भाँति इकट्ठे नही आये। आगे पीछे करके एक एक रथी आ रहे है। इस भाँति बारात जुटने लगी। राजकुमारो के आने पर बारात नही कहा। उनकी लडको मे गिनती है। रथिया के आने पर बारात कहते है। क्योकि ये महाराज के समवयस्क है। महाराज रथ पर चलेंगे। इसलिए सरदार लोग सब रथ पर सवार हो रहे है। पहिले घुडसवार निकसि भये पुर बाहेर ठाढे। तब रथा की पक्ति साजी गई। यथा चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। बाहर नगर जुटने का भाव यह है कि नगर के भीतर इतना विस्तृत स्थान नही है। जब से घुडसवार चले तब से शकुन प्रारम्भ है। रथ के पीछे हाथियो की पक्ति रहेगी।

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥
चले मत्त गज घट बिराजी। मनहु सुभग सावन घन राजी॥१॥

अर्थ अलकृत हाथियो पर अम्बारियाँ पडो थी। जिस भाँति सँवारी गई थी उसका वर्णन नही हो सकता। घण्टाओ से सुशोभित मतवाले हाथी चले। जान पडता था कि सावन के सुन्दर बादलो की पंक्ति चल रही है।

व्याख्या अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर हैं। ऐसे क्रम से बारात जुट रही है जिसमे सबको दिखाई पड सके। सबसे आगे अश्वारोही है। उनके पीछे रथ हैं जो घोडो से ऊँचे है। अश्वारोहियो के पीछे होने पर भी अपने अपने रथो पर दिखाई पड रहे हैं। उनके भी पीछे हाथियो की पंक्ति है। जो रथ से भो ऊँचे हैं। उनकी पीठ पर अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर होने से बराबर दृष्टिगोचर हो रही हैं। वे ऐसी साजी गई हैं कि उनका वर्णन नही हो सकता। गजारोहियो का कोई उल्लेख नही है। क्योकि महाराज की सवारी रथ पर होनेवाली है। इसलिए सब सरदार रथो पर आगये हैं। हाथियो पर कोई नही है। उनपर केवल अम्बारियो की शोभा है। जब महाराज हाथी पर सवार होगे तब सरदार लोग भी हाथी पर सवार हो सकेंगे।

कलित करिबरन्ह का ही वर्णन हो रहा है। मत्त गज स्वभाव से ही सुन्दर मालूम पडते है। तिस पर अलकृत होने से और भो शोभा बढ गई। चलने के समय यदि घण्टा का शब्द न हुआ तो हाथी के चलते की शोभा नही होती। इसीलिए घटविराजी कहते हैं। घण्टा शब्द स्त्रीलिंग है। उसका तद्भवरूप 'घट' भी स्त्रीलिङ्ग है। इसलिए बिराजी कहा। जिसको सैकडो हाथियो के एक साथ चलने के देखने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि वस्तुत दूर से ऐसा ही मालूम होता है कि सावन की काली घटा उमडी चली आ रही है। सावन की घटा सुन्दर होती है। अकाल की घटा सी भयानक नही होती। घण्टा के झलने से जो चमक पैदा हो रही है वह मानो बिजली चमक रही है। रास्ते भर महाराज की सवारी रथ पर रहेगी। द्वाराचार के समय हाथियो से काम लिया जायगा। इसलिए साथ है। यह तीसरा कार्य हुआ अँबारी मण्डपदार हौद को कहते हैं।

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना ॥
तिन्ह चढि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा ॥२॥

अर्थ और भी अनेक प्रकार की सवारियाँ थी। पालकी सुखासन झम्पान गाडी आदि। इन पर चढकर श्रेष्ठ ब्राह्मणो का समूह चला। मानो शरीर धारण किए हुए वेदो के छन्द हैं।

व्याख्या भरतजी को महाराज की इतनी ही आज्ञा हुई थी कि हयगय स्यदन साजहु जाई। परन्तु चलहु बेगि रघुबीर बराता। इस कथन की ध्वनि को समझकर भरतजी ने सब व्यवस्था की। पालकी सुखासन[1] झम्पान और यान आदि के वहन करने मे मनुष्य लगते हैं। ये ही ब्राह्मणो के स्वरूपानुकूल सवारियाँ

---

१ झम्पान मे दो बाँस और यान मे चार बास लगते हैं।

कहा जा चुका है अनेक जाति के घोडे थे। उन श्यामकर्ण घोड़ों को उन रथों में सारथियो ने जोता। वे सब स्वभाव से ही सुन्दर थे। तिस पर उन्हे अलङ्कार से शृङ्गारित किया गया। अत वे ऐसे मनोहर दिखाई पड़ने लगे कि उनके देखने से विषयविमुख स्थितप्रज्ञ का भी मन मोहित हो जाय।

जे जल चलहिं थलहिं की नाई। टापन बूड़ वेग अधिकाई॥
अस्त्र सस्त्र सब साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥४॥

अर्थ · जो थल की ही भाँति जल पर चलते थे। वेग की अधिकता से टाप नही डूबता था। सारथियों ने अस्त्र शस्त्र सब साज को सजाने के बाद रथियों को बुला लिया।

व्याख्या . अब श्यामकर्ण घोडो की विशेषता कहते हैं। उनकी गति जल पर भी है। उनमे इतना वेग होता है कि अपने टाप को जल मे डूबने का अवसर नही देते। जिस हथियार को फेंककर प्रहार करते है उसे अस्त्र और जिसे हाथ मे लिये हुए प्रहार करते है उसे शस्त्र कहते हैं। ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, तरकस, धनुप आदि यथास्थान रथ मे सजाये जाते है और भी युद्ध की सामग्री अग्नि आदि रथ पर रक्खी रहती है। इस भाँति पहिले रथ को साजा। फिर चार घोड़ो को अलकृत करके उनमे जोडे। ततपश्चात् अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया। रथ के ठीक हो जाने पर सारथियो ने अपने अपने रथियो को बुला लिया। बारात मे युद्धरथ ही साजे गये। विहार रथ की आवश्यकता नही समझी गई।

दो. चढि चढ़ि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुदर सबहिं, जो जेहि कारज जात॥२९९॥

अर्थ रथ पर चढ चढकर नगर के बाहर बारात जुटने लगी और जो जिस कार्य के लिए जाता था उन सबको सुन्दर सगुन होते थे।

व्याख्या . दूसरा कार्य। रथी घुडसवारो की भाँति इकट्ठे नही आये। आगे पीछे करके एक एक रथी आ रहे है। इस भाँति बारात जुटने लगी। राजकुमारो के आने पर बारात नही कहा। उनकी लड़को मे गिनती है। रथियो के आने पर बारात कहते हैं। क्योकि ये महाराज के समवयस्क हैं। महाराज रथ पर चलेंगे। इसलिए सरदार लोग सब रथ पर सवार हो रहे हैं। पहिले घुड़सवार : निकसि भये पुर बाहेर ठाढे। तब रथो की पक्ति साजी गई। यथा : चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। बाहेर नगर जुटने का भाव यह है कि नगर के भीतर इतना विस्तृत स्थान नही है। जब से घुड़सवार चले तब से शकुन प्रारम्भ है। रथ के पीछे हाथियों की पक्ति रहेगी।

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी॥१॥

अर्थ अलंकृत हाथियों पर अम्बारियाँ पड़ी थीं। जिस भाँति सँवारी गई थी उसका वर्णन नहीं हो सकता। घण्टाओं से सुशोभित मतवाले हाथी चले। जान पड़ता था कि सावन के सुन्दर बादलों की पंक्ति चल रही है।

व्याख्या अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर हैं। ऐसे क्रम से बारात जुट रही है जिसमें सबको दिखाई पड़ सके। सबसे आगे अश्वारोही हैं। उनके पीछे रथ हैं जो घोड़ों से ऊँचे हैं। अश्वारोहियों के पीछे होने पर भी अपने अपने रथों पर दिखाई पड़ रहे हैं। उनके भी पीछे हाथियों की पंक्ति है। जो रथ से भी ऊँचे हैं। उनकी पीठ पर अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर होने से बराबर दृष्टिगोचर हो रही हैं। वे ऐसी साजी गई हैं कि उनका वर्णन नहीं हो सकता। गजारोहियों का कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि महाराज की सवारी रथ पर होनेवाली है। इसलिए सब सरदार रथों पर आगये हैं। हाथियों पर कोई नहीं है। उनपर केवल अम्बारियों की शोभा है। जब महाराज हाथी पर सवार होंगे तब सरदार लोग भी हाथी पर सवार हो सकेंगे।

कलित करिबरन्हि का ही वर्णन हो रहा है। मत्त गज स्वभाव से ही सुन्दर मालूम पड़ते हैं। तिस पर अलंकृत होने से और भी शोभा बढ़ गई। चलने के समय यदि घण्टा का शब्द न हुआ तो हाथी के चलने की शोभा नहीं होती। इसीलिए घंटविराजी कहते हैं। घण्टा शब्द स्त्रीलिंग है। उसका तद्भवरूप 'घंट' भी स्त्रीलिङ्ग है। इसलिए विराजी कहा। जिसको सैकड़ों हाथियों के एक साथ चलने के देखने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि वस्तुतः दूर से ऐसा ही मालूम होता है कि सावन की काली घटा उमड़ी चली आ रही है। सावन की घटा सुन्दर होती है। अकाल की घटा सी भयानक नहीं होती। घण्टा के झलने से जो चमक पैदा हो रही है वह मानो बिजली चमक रही है। रास्ते भर महाराज की सवारी रथ पर रहेगी। द्वाराचार के समय हाथियों से काम लिया जायगा। इसलिए साथ है। यह तीसरा कार्य हुआ अँबारी मण्डपदार हौदे को कहते हैं।

बाहन अपर अनेक विधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छंदा॥२॥

अर्थ और भी अनेक प्रकार की सवारियाँ थीं। पालकी सुखासन झम्पान गाड़ी आदि। इन पर चढ़कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों का समूह चला। मानो शरीर धारण किये हुए वेदों के छन्द हैं।

व्याख्या भरतजी को महाराज की इतनी ही आज्ञा हुई थी कि हयगय स्यदन साजहु जाई। परन्तु चलहु बेगि रघुबीर बराता। इस कथन की ध्वनि को समझकर भरतजी ने सब व्यवस्था की। पालकी सुखासन[1] झम्पान और यान आदि के वहन करने में मनुष्य लगते हैं। ये ही ब्राह्मणों के स्वरूपानुकूल सवारियाँ

---

१ झम्पान में दो बाँस और यान में चार बाँस लगते हैं।

हैं। घोडा रथ हाथी की सवारी ब्राह्मणो के अनुकूल नही पडती। वेद के छन्द यथा गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति आदि। इनकी भाँति ब्राह्मण लोग श्रुतिछन्द हैं। स्वच्छन्द नही हैं। इनके चलने की शोभा कहते हैं। मानो ये मूर्तिमान् वेद के छन्द है। विवाह वैदिक संस्कार है। अत वैदिकों की आवश्यकता है। यह चौथा कार्य हुआ।

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले यान चढि जो जेहि लायक॥
वेसर ऊंट वृपभ बहु जाती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती॥३॥

अर्थ मागध, सूत और वन्दी ये तीनो गुणगायक हैं। ये जो जिसके योग्य थे वैसे यानो पर चढ चढकर चले। ऊँट और अनेक जाति के बैल असख्य प्रकार की वस्तुओं को लाद लादकर चले।

व्याख्या वंशप्रसंसक, पौराणिक और भाट अपनी अपनी योग्यतानुसार सवारिया पर चले। स्तुति पाठ के लिए इनकी आवश्यकता है। राजाओ की तेजोवृद्धि के लिए तथा शिक्षा के लिए ये लोग वडे उपकारक होते हैं यह पाँचवाँ कार्य हुआ। बेसर, ऊँट, वृपभ आदि भारवाही पशु हैं। इन पर चढना निषिद्ध है। इन पर नाना भाँति की वस्तुएँ लादकर रवाना की गयी। रसद, विस्तरा, विवाह की सामग्री आदि ले जाने के लिए इनकी आवश्यक्ता पडी। यह छठा कार्य हुआ।

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। विविध वस्तु को वरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥४॥

अर्थ करोडो काँवर लेकर कहार चले। उनमे नाना प्रकार की वस्तुएँ थी। उनका कौन वर्णन कर सकता है। सब सेवको का समूह अपना अपना साज समाज बनाकर चला।

व्याख्या करोडो कहार वहँगी काँवर लेकर चले। इनमे विशेष विशेष व्यक्तियों के नित्यकर्मोपयोगी समान लदे थे। बरात के सामान भी वहँगियो काँवर : मे चले। अनेक प्रकार की छोटी मोटी वस्तुएँ लदी हैं। उनका क्या वर्णन किया जाय। यह सातवाँ कार्य हुआ।

मालिक लोग सवारी पर चले। असबाब काँवर पर चला। अब सेवक लोग पैदल चले। पानदान आदि साज तथा अपनी अपनी मण्डली नियत करके चले। यह आठवाँ कार्य हुआ।

दो. सबके उर निर्भर हरपु, पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि, रामु लखनु दोउ वीर॥३००॥

अर्थ · सबके हृदय मे हर्ष उमड रहा है और शरीर मे पुलक हो रहा है। कब आँख भरकर राम लक्ष्मण दोनो वीरो को देखेंगे। यह लालसा हो रही है।

व्याख्या रामजी और लक्ष्मणजी ऐसे लोकप्रिय है कि मालिक से लेकर नौकर तक सबके हृदय मे बडा भारी हर्ष हो रहा हे और शरीर मे पुलक है। इस आशा पर कि अब राम लक्ष्मण का दर्शन शीघ्र ही होगा और इतनी उत्कण्ठा है कि थोडा सा भी समय भारी हो रहा है और लालसा लगी है कि दोनो वीरो का कब आँख भरकर देखे। क्योकि आँखे दर्शनो की प्यासी हो रही है।

गरजहिं गजघटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा ॥
निदरि घनहि घुम्मर्रहि निसाना। निज पराइ कछु सुनियँ न काना ॥१॥

अर्थ हाथी चिग्घाड रहे हैं। घण्टाओ की घोर ध्वनि हो रही है। चारो ओर रथो का शब्द हो रहा है। घोडे हिनहिना रहे है। बादलो का निरादर करते हुए डङ्के गम्भीर ध्वनि से बज रहे हैं। अपना पराया कुछ सुनाई नही पड रहा है।

व्याख्या हाथी के चिग्घाड को गर्जन कहते है। ये निपाद स्वर मे बोलते हैं। घण्टाओ के शब्द से नाद बढता है। यथा घण्टास्वनेन तन्नादानम्विका चोपबृहयत्। रथ के चलने से जो शब्द होता है उसे रव और घोडो के शब्द को हीसना कहते हैं। डङ्के घन के शब्द का अनुकरण करते हैं। अत घुम्मर्रहि कहा। ये शब्द एक साथ चारो ओर से हो रहे हैं। क्योकि हाथी घोडे रथ निशान आदि चारो ओर से चले आरहे है। नगर के बाहर क्रमबद्ध करके साजे जा रहे हैं। सब प्रकार के शब्द के मिलने से ऐसा तुमुलनाद हो रहा है कि अपने बोले शब्द अपने को ही सुनाई नही पड रहे हैं। दूसरे की कौन सुनता है कवि अब यही से राजद्वार का दृश्य देखने लगे। अत कहते हैं।

महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पपान पवारे ॥
चढी अटारिन्हि देखहि नारी। लिए आरती मगल थारी ॥२॥

अर्थ राजा के द्वार पर बडी भारी भीड है। पत्थर फेंका जाय तो पिसकर धूल हो जाय। स्त्रियाँ अटारियो पर चढी हुई देख रही हैं। वे मङ्गल थालियो मे आरती लिये है।

व्याख्या भीड तो इस समय बाजार और गलियो मे सभी स्थाना मे है। पर राजद्वार मे बडी भारी भीड है। पहिले के पडे हुए रोडे तो पिसकर धूल हो ही गये। यदि कोई अब पत्थर फेक दे तो पैरो के तले रौंदे जाने से धूल हो जाय। नर लोग नीचे है। बारात जा रह है। काम से जा रहे हैं। दृश्य देखने के लिए चले जा रहे हैं। पर नारियाँ अटारियो पर चढकर देख रही है। जब महाराज की सवारी निकलगी उस समय आरती करने के लिए मङ्गलद्रव्य से सजायी हुई थालियाँ हाथो मे ल रक्खी है इससे महाराज की लोकप्रियता कही।

गावहि गीत मनोहर नाना। अति आनदु न जाइ बखाना ॥
तब सुमत्र दुइ स्यदन साजी। जोते रवि हय निंदक बाजी ॥३॥

अर्थ नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही हैं। अत्यन्त आनन्द हो रहा है। जिसका बखान नही किया जा सकता। तब सुमन्त्र ने दो रथ सजाये। जिनमे सूर्य के रथ के घोडो के तिरस्कार करनेवाले घोडा को जोता।

व्याख्या प्रत्येक अटारियो पर से पृथक् पृथक् गीत हो रहे हैं। नीचे शोर हो रहा है और ऊपर गीत हो रहे हैं। अत्यन्त आनन्द मचा हुआ है। अथवा बाहरी आनन्द का तो वर्णन किया परन्तु लोगो के हृदय मे जो आनन्द है उसका वर्णन नही हो सकता। जब सब तैयारी हो चुकी तब सुमन्त्र ने दो रथ सजाये। महाराज और गुरुजी के लिए रथ सजाया जा रहा है। मन्त्री स्वय उसे साज रहे हैं। दूसरे यह कि सुमन्त्रजी केवल मन्त्री ही नही थे। महाराज के सारथि भी थे। उन्होने उन रथो म ऐसे घोडे जाते जो सूर्य के रथ के घोडा को मात करनेवाले थे। और लोगा के सवारी के घोडो के वर्णन म कह आये है कि निदरि पवन जिमि चहत उडाने। टाप न बूड बेग अधिकाई। अत महाराज के रथ के घोडो को रवि हय निंदक बाजी कहा। देवताओ के घोडो को हय कहते है। यथा हयो भूत्वा देवान्‌वहत। इति श्रुति। यह नवाँ कार्य हुआ।

दोउ रथ रुचिर भूप पहि आने। नहि सारद पहि जाहि बखाने॥
राज समाज एक रथ साजा। दूसर तेज पुज अति भ्राजा॥४॥

अर्थ दोनो सुन्दर रथो को राजा के पास ले गये। जिनकी प्रशसा सरस्वती से भी नही हो सकती। एक रथ राजसी ठाट से सजाया गया था और दूसरा तेज के पुञ्ज सा देदीप्यमान हो रहा था।

व्याख्या अन्यत्र तो सारथियो ने रथियो को बुला लिया। यथा रथी सारथिन्ह लीन्ह बोलाई पर इन रथो को लेकर सुमन्त्रजी महाराज के पास गये। उन रथो मे रवि हय निन्दक बाजी जुते है। अत उन रथो के वर्णन के विषय मे कहते है कि स्वर्ग की वक्ता सरस्वती भी नही कर सकती। पहिला रथ छत्र चामर, अस्त्र शस्त्र, ध्वजा पताका से सुशोभित था। उससे राज्यश्री झलक रही थी। दूसरा अग्निहोत्र के सामान, पुस्तके, यज्ञपात्रादि से सयुक्त था। उससे ब्राह्मीश्री चमक रही थी।

दो तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुँ, हरषि चढाइ नरेसु।
आपु चढेउ स्यदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु॥३०१॥

अर्थ उस सुन्दर रथ पर हर्षित होकर महाराज ने वसिष्ठजी को चढाया। तब आप शिव, गुरु, गौरी और गणेशजी का स्मरण करके रथ पर चढे।

व्याख्या महाराज की गुरुभक्ति कहते है कि उस ब्राह्मीश्रीवाले रथ पर महाराज ने पहले वसिष्ठ जी को स्वय सवार कराया। तब हरगुरु गौरी गणेश का स्मरण करके अपने रथ पर सवार हुए। श्रीग्रन्थकार का मत है कि मङ्गल के दिन कार्यारम्भ करने म गिरा गौरी गुरु गणेश और शिव का स्मरण मगल के लिए

करे। यथा गिरा गौरि गुरु गनप हर मगल मगल मूल। सुमिरत करतल सिद्ध सब होइ ईस अनुकूल। शकुनावली। अत यह भी पता चलता है कि उस दिन मगलवार था। स्मरण करने म गिरा छूट गई। श्रीरामजी के अभिषेक म गिरा ही विघ्नकारक हुई। यह बात भी ध्यान देने योग्य है। यह दसवाँ काय हुआ।

सहित वसिष्ठ मोह नृप कैसे। सुर गुर सग पुरदरु जैसे ॥
करि कुलरीति वेद विधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ ॥१॥

अर्थ वसिष्ठ के साथ राजा कैसे शोभायमान हुए जैसे बृहस्पति के साथ इन्द्र शोभायमान हो। राजा वेदविधि और कुलरीति करके सबको और सब भाँति की सजावट को देखकर

व्याख्या ब्राह्मीश्री के साथ राज्यश्री की शोभा कहते हैं। वसिष्ठजी की उपमा सुरगुरु से और महाराज दशरथ की उपमा इन्द्र से दी गई है। उपमेय उपमा से कम नही है। न तो महाराज दशरथ इन्द्र से कम है। यथा सुरपति बसहि बाहुबल जाके। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन दई। और न सुरगुरु स वसिष्ठजी कम है। यथा सो गोसाइँ जेहि विधि गति छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी। दलि दुख सजै सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना। विवाह और श्मशान म ग्रामवचन का प्रमाण माना गया है। अत महाराज ने कुलरीति के अनुसार तथा वेदविधि के अनुसार सब कार्य रसम किया। यहाँ कुलप्रथा का रीति और वेद की आज्ञा को विधि कहा गया है। पुर के बाहर जाने पर रीति और विधि है। उन्ह करके रथ को चारो ओर घुमाकर एक बार सब साज सामान को अपनी आँख से देख लिया यह चक्रवर्तीजी की सावधानता है।

सुमिरि राम गुर आयसु पाई। चले महीपति सख बजाई ॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहि सुमन सुमगल दाता ॥२॥

अथ रामजी का स्मरण करके और गुरुजी की आज्ञा पाकर पृथ्वीपति शख बजाकर चल। देवता बारात देखकर हर्षित हुए। वे मङ्गलदायक फूलो की वर्षा करने लगे।

व्याख्या रामजी का साथ चलना ऐसे अवसर पर अनिवार्य था। परन्तु वे पहिले ही जनकपुर पहुँच चुके थे। फिर भी उनका स्मरण तो ऐसे अवसर पर स्वाभाविक है। महाराज सब कार्य गुरुजी की आज्ञा लकर ही करते हैं। अत इस यात्रा म भी गुरुजी की आज्ञा पाकर विजय यात्रा के लिए शखध्वनि की। शखध्वनि मङ्गलसूचक है। शङ्खध्वनि वीर लोग स्वय करते है। यथा पाञ्चजन्य हृषीकेशो देवदत्त धनञ्जय। पौण्ड्र दध्मा महाशख भीमकर्मा वृकोदर। अनन्तविजय राजा कुन्तीपुत्रा युधिष्ठिर। इत्यादि। बारात ऐसी बनी कि देवता लाग प्रसन्न हो गये। विबुध है। विशेष रूप स पण्डित ह। पुष्पवृष्टि के अवसर को समझते है। परशुराम विजय के समय प्रभु पर पुष्पो की वर्षा जनकपुर म की थी। अब बारात चलने क

समय सम्पूर्ण बारात पर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। पुष्पो मे भी सुमङ्गलदायक पुष्प पारिजात आदि की वर्षा हो रही है। सभी पुष्प मङ्गलदायक समझे जाते हैं। परन्तु पारिजात आदि सुमङ्गलदायक हैं। महाराज का चलना बारहवाँ कार्य हुआ।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे। ब्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर नर नारि सुमगल गाई। सरस राग बाजहि सहनाई॥३॥

अर्थ हाथी घोडे गरजने लगे। कोलाहल मच गया। आकाश मे और बारात मे बाजे बजे। देवियो और नारियो ने मङ्गलगान किया और सरस राग से शहनाई बजी।

व्याख्या महाराज के शङ्ख बजाकर चलते ही बारात चल पडी। अत कोलाहल शोर हुआ। हाथी घोडे गरजने लगे। नीचे बारात मे और ऊपर आकाश म बाजे बजे। भाव यह कि आकाश मे देवताओ ने भी डङ्का दिया। दो बारात चली। नीचे मनुष्यो की और आकाश म देवताओ की बारात चली। अत देवताओ की स्त्रिया ने तथा मनुष्यो की स्त्रियो ने सुमङ्गलगान प्रारम्भ किया। बारात मे बाजे तो अनेक प्रकार के बजते हैं। परन्तु सरस राग तो शहनाई म ही बजते हैं।

घट घटि धुनि बरनि न जाही। सरो करहिं [1]पाइक फहराही॥
करहि बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥४॥

अर्थ घण्टे और घण्टियो की ध्वनि कुछ कही नही जाती। कसरत करते है। पाइक लोग दौड धूप करते हैं। विदूषक भाँड या मसखरे नाना प्रकार के कौतुक तमाशा कर रहे हैं। वे हँसी करने मे निपुण और सुन्दर गान के अच्छे जानकार हैं।

व्याख्या हाथियो के बडे घण्टे और घण्टी झेला आदि की ऐसी ध्वनि हो रही है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। बारात म पाइक होते हैं। उनके कमर मे घण्टियाँ बँधी रहती है और हाथ मे मुरछल रहता है। वे सन्देशहर का काम करते है। विवाह मे कसरत करने और कूदने फाँदने का काम नट करते हैं गोरखपुर की ओर आज भी सरौ करना कसरत करने को कहते है। नट लोग कूद फाँदकर कसरत दिखलाते है। इस प्रकार से बारात म मनोरञ्जन भी होता चलता है।

विदूषक हैं। वे रास्ते चलते नकल कर रहे है। लोगो को हँसाना उनका काम है। इस विद्या म वे बडे निपुण होते है। परन्तु वे गान म भी बडे कुशल है।

---

१ पाइक पाठ मानने से ऐसा ही अर्थ करना पडता ह जो सतोपजनक नही है। मरी समझ म यहाँ पाउक पाठ होना चाहिए। जो पावक का अपभ्रश है और स्रव का अपभ्रश सरो है। अर्थात् फहराकर पावक स्रव करता है। यथा पावकमय ससि स्रवत न आगी। भाव यह कि आतिशबाजी छूट रही ह।

समय सम्पूर्ण बारात पर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। पुष्पो मे भी सुमङ्गलदायक पुष्प पारिजात आदि की वर्षा हो रही है। सभी पुष्प मङ्गलदायक समझे जाते है। परन्तु पारिजात आदि सुमङ्गलदायक है। महाराज का चलना बारहवाँ कार्य हुआ।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे ॥
सुर नर नारि सुमगल गाई। सरस राग बाजहि सहनाई ॥३॥

अर्थ हाथी घोडे गरजने लगे। कोलाहल मच गया। आकाश मे और बारात मे बाजे बजे। देवियो और नारियो ने मङ्गलगान किया और सरस राग से शहनाई बजी।

व्याख्या महाराज के शङ्ख बजाकर चलते ही बारात चल पडी। अत कोलाहल शोर हुआ। हाथी घोडे गरजने लगे। नीचे बारात मे और ऊपर आकाश मे बाजे बजे। भाव यह कि आकाश मे देवताओ ने भी डङ्का दिया। दो बारात चली। नीचे मनुष्यो की और आकाश मे देवताओ की बारात चली। अत देवताओ की स्त्रियो ने तथा मनुष्यो की स्त्रियो ने सुमङ्गलगान प्रारम्भ किया। बारात मे बाजे तो अनेक प्रकार के बजते हैं। परन्तु सरस राग तो शहनाई म ही बजते है।

घट घटि धुनि बरनि न जाही। सरो करहिं [1]पाइक फहराही ॥
करहि बिदूपक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना ॥४॥

अर्थ घण्टे और घण्टियो की ध्वनि कुछ कही नही जाती। कसरत करते है। पाइक लोग दौड धूप करते हैं। विदूपक भाँड या मसखरे नाना प्रकार के कौतुक तमाशा कर रहे है। वे हँसी करने मे निपुण और सुन्दर गान के अच्छे जानकार हैं।

व्याख्या हाथियो के बडे घण्टे और घण्टी झेला आदि की ऐसी ध्वनि हो रही है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। बारात मे पाइक होते है। उनके कमर मे घण्टियाँ बँधी रहती हैं और हाथ मे मुरछल रहता है। वे सन्देशहर का काम करते हैं। विवाह मे कसरत करने और कूदने फादने का काम नट करते हैं गोरखपुर की ओर आज भी सरी करना कसरत करने को कहते है। नट लोग कूद फाँदकर कसरत दिखलाते है। इस प्रकार से बारात म मनोरञ्जन भी होता चलता है।

विदूपक हैं। वे रास्ते चलते नकल कर रहे है। लोगो को हँसाना उनका काम है। इस विद्या मे वे बडे निपुण होते है। परन्तु वे गान म भी बडे कुशल हैं।

---

१ पाइक पाठ मानने से ऐसा ही अर्थ करना पडता है जो सन्तोपजनक नही है। मेरी समझ म यहाँ पाउक पाठ होना चाहिए। जो पावक का अपभ्रश है और स्रव का अपभ्रश सरो है। अर्थात् फहराकर पावक स्रव करता है। यथा पावकमय ससि स्रवत न आगी। भाव यह कि आतिशबाजी छूट रही है।

ध्यान देने योग्य बात है कि ग्रन्थकार बारात के प्रसङ्ग मे भाँड तक का वर्णन करते हैं। परन्तु वेश्या का उल्लेख कही नही है। कामशास्त्र वेश्या मे रस की उत्पत्ति ही नही मानता। अत नीरस होने से तथा सुधार की दृष्टि से ग्रन्थकार ने उनका उल्लेख नही किया।

दो. तुरग नचावहि कुँअर वर, अकनि मृदग निसान।
नागर नट चितवहि चकित, डगहि न ताल बँधान ॥३०२॥

अर्थ : श्रेष्ठ राजकुमार डङ्के और मृदङ्ग के शब्द सुनकर घोडो को ऐसा नचा रहे हैं कि नगर के नर्तक चकित होकर देखते हैं। कही से ताल के बन्धान मे चूक नही होती है।

व्याख्या : आकर्ण्य शब्द का तद्भवरूप अकनि है। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से रेफ का लोप होकर इ स्वप्नादौ इस सूत्र से यकार को इ आदेश हुआ। आकर्ण्य का अकनि रूप सिद्ध हुआ। इधर कुँवर लोग मृदङ्गादि के ताल के अनुसार घोडो को नचा रहे है। काल की क्रिया के नाप को ताल कहते हैं। यथा ताल कालक्रियामानम्। घोडे नाचने मे पैरो से ठीक ताल देते हैं। अच्छे अच्छे नाचनेवाले इस दृश्य को आश्चर्य से देख रहे हैं कि इन घोडो से ताल बन्धान मे चूक कही से नही हो रही है। वैसी बात तो अब नही है। फिर भी देहात की बारात म घोडे नचाये जाते हैं। नाचनेवाले घोडे बाजे का शब्द सुनते ही अस्थिर हो उठते हैं और अवश्य ही ताल का कुछ अनुसरण करते हैं।

बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुदर सुभदाता॥
चारा चापु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मगल कहि देई ॥१॥

अर्थ : उस : सजी हुई बारात का वर्णन नही हो सकता। सुन्दर शुभ देनेवाल शकुन होते हैं। १ नीलकण्ठ बाइँ ओर चारा ले रहा है। मानो सब मङ्गल कह देता है।

व्याख्या : सजी हुई बारात वर्णनातीत थी। सुन्दर शकुन होते थे। भाव यह कि ऐसे शकुन भी हैं जो सुन्दर नही है। यथा : यात्रा के समय मुर्दा का मिलना अच्छा शकुन है। पर सुन्दर नही है। चोर और ठगो के भी शकुन हैं। जैसे गधे का रेंकना आदि पर वे और मङ्गलदाता नही हैं। यहाँ बारह शकुन हुए और बारह कार्य बारात म हुए। कह आये हैं होत सगुन सुन्दर सबहि जो जेहि कारज जात। इससे सिद्ध है कि क्रम से एक एक कार्य होने के समय एक एक शकुन हुए। कथा के वर्णनक्रम मे विक्षेप न हो इस कारण से यहाँ सब शकुनो को इकट्ठा कह दिया।

बाँधे बिरद बीर रन गाढे। निकस भये पुर बाहर ठाढे। तो देखते हैं कि बाईं ओर नीलकण्ठ चारा चुग रहा है इस तरह चारा चुगना मानो यह कहता है कि सब मङ्गल ही मङ्गल ही है। इन्ही राजकुमारो के बीच म स्वय रामजी घोडे पर सवार होगे। इसलिए सब मङ्गल कहा। यह पहला शकुन हुआ।

दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी । सघट सबाल आव बर नारी ॥२॥

अर्थ : २ दाहिनी ओर सुन्दर खेत मे काग शोभायमान था। ३. नेवले का दर्शन सब किसी ने पाया। ४ शीतल मन्द सुगन्ध पवन सामने से आ रहा था। ५ घडा और बालक लिये हुए सौभाग्यवती स्त्री आई।

व्याख्या : चढि चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। तो देखा कि दाहिनी ओर काग सुन्दर क्षेत्र मे शोभित है। यह दूसरा शकुन हुआ। सुन्दर क्षेत्र मे काग का दाहिने होना शुभ है और चले मत्त गज घंट बिराजी। तब कहते हैं : नकुल : नेवले का दर्शन सबने पाया। यह तीसरा सगुन हुआ। भाव यह है कि मत्त गज पर इस समय कोई सवार नही है जो नकुल का दर्शन करे। रथी आदि ही समय पाकर उनपर सवार होगे। इसलिए कहते है कि सब लोगो ने दर्शन पाया। कोई दर्शन न पावे तो शकुन ही व्यर्थ चला जाय।

सिविका सुभग सुखासन जाना। तेहि चढि चले विप्रबर बृन्दा। तो सानुकूल बह त्रिविध बयारी। यह चौथा सगुन हुआ और मागध सूत बंदि गुनगायक चले जान चढि जो जेहि लायक। तो सघट सबाल आव बर नारी। यह पाँचवाँ सगुन हुआ।

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा । सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा ॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई । मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥३॥

अर्थ : ६ लोमडी ने घूम घूमकर दर्शन दिया। ७ गाय ने सामने ही बछडे को पिलाया। ८ हिरनो की टोली दाहिने आई। मानो मगलगण को दिखला दिया।

व्याख्या : बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती। तो लोमडी ने घूम घूमकर दर्शन दिया। यह छठा सगुन हुआ। और कोटिन काँवर चले कँहारा तो देखते है कि गाय सामने बछडे को पिला रही है। यह सातवाँ सगुन हुआ। चले सकल सेवक समुदाई। तो क्या देखते हैं कि मृगमाला घूमकर दाहिने ओर आगई। इसी जगह लिखा है : सबके उर निर्भर हरख पूरित पुलक सरीर। कबहि देखि वे नैन भरि राम लखन दोउ बीर। सो कहते है : मंगल गन जनु दीन्ह देखाई। यह आठवाँ सगुन हुआ।

छेमकरी कह छेम बिसेषी । स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना । कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥४॥

अर्थ ९ क्षेमकरी विशेष रूप से क्षेम कह रही है। १० श्यामा को बाँई ओर अच्छे पेड पर देखा। ११ सामने दही और मछली आई। १२ हाथ मे पुस्तक लिये दो प्रवीण ब्राह्मण आये।

व्याख्या : क्षेमकरी श्वेतमुख की चील्ह को कहते है। यात्रा के समय इसका दिखाई पड़ना शुभ है। यथा : कुंकुम रंग सुअंग जित्यो मुखचंद सो चंद सो होड़ परी

है। बोलत बोल समृद्ध चुवैं अवलोकत सोक विषाद हरी है। गौरी कि गग विहगिनी वेष कि मजुलमूरति मोदभरी है। पेखि सप्रेम पयानसमय सब माच विमोचन छेमकरी है। तब सुमत दुइ स्यदन साजी। जोते रवि हय निंदक वाजी। उस समय क्षेमकरी ने क्षेम कहा। यह नवाँ सगुन हुआ। दोउ रथ रुचिर भूपपहँ आने तो स्यामावाम सुरुतपर देखी। श्यामा भुजगा को कहते हैं। यह दसवाँ सगुन हुआ। गुरु वसिष्ठजी को रथपर चढाकर स्वय चक्रवर्तीजी चढे तो सनमुख आयेउ दधि अरु मीना। यह ग्यारहवाँ सगुन हुआ। और चले महीपति सख बजाई तो हाथ म पुस्तक लिये दो प्रवीण ब्राह्मण आ पडे। इस भाँति बारह कार्य बारात मे हुए और हरएक म अलग-अलग सगुन हुए।

दो. मगलमय कल्यानमय, [1]अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भए सगुन एक बार ॥३०३॥

अर्थ मगलमय कल्याणमय और ईप्सित फल के देनेवाले सब सगुन मानो सच्चे होने के लिए एक साथ ही हुए।

व्याख्या चारा चाखु बाम दिसि लेई। मनहु सकल मगल कह देई से मगलगन जनु दीन्हि देखाई तक ये आठ सगुन मगलमय हैं। मङ्गल शब्द गत्यात्मक मग धातु से बना है। मगल का अर्थ ही गतिशील है और कल्ये प्रात अण्यत शब्दयते इति कल्याणम् इस व्युत्पत्ति से क्षेमकरी का कल्याण कहना प्राप्त है। शेष तीन १ स्यामावामसुतरु पर देखी। २ सनमुख आयउ दधिअरुमीना। ३ कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना। ये तीन अभिमत फलदातार शकुन स्वय महाराज का हुए। सब शकुन इकट्ठे नही होते कभी कभी किसी को एकाध हो जाते है। यहाँ सब इकट्ठे हुए। मनुष्यो का कल्याण ही कितना होगा? अत अन्त म ये चूके पड जात हैं। यहाँ जो शकुन होगा वह सच्चा निकलेगा। अत. सत्य होने के लिए उनम होड सी मच गई। यहाँ शकुन से शुभ नही है। शुभ तो निश्चित है। शकुन शुभ के ज्ञापक है। इसी से शकुन की सत्यता है।

मगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुदर सुत जाकें॥
राम सरिस वर दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनक पुनीता॥१॥

अर्थ सगुन ब्रह्म जिसके सुन्दर पुत्र है। सब मङ्गल सगुन उसे सुगम हैं। राम ऐसा वर सीता सी दुलहिन दशरथ और जनक से पवित्र समधी।

व्याख्या प्रश्न यह होता है कि मङ्गल सगुन इस भाँति सुगम कैसे हो गये? कभी किसी को कार्यारम्भ म कोई एक सगुन हो जाता है। तो वह अपने को कृतकृत्य मानता है। यहाँ जो हो जिस कार्य का चलना है सगुन का सामने पाता है। इसलिए यह शङ्का उठती है। उत्तर म ग्रन्थकार कहते हैं कि जिसके सगुन ब्रह्म

---

१ यहाँ अमिद्धालदा . उ ऐसा है।

सुन्दर सुत है। उसी को मंगल सगुन होना प्राप्त भी है। असगुन तो वहाँ होता है जहाँ सगुन से विरोध हो। यथा 'श्रुति तौ सगुनै कहै, दिवाने तू असगुन क्यों गहै। देव स्वामी। सुन्दर कहने का भाव यह कि वहु मुख कर पद लोचन सीसा वाले सगुन ब्रह्म तो हैं पर सुन्दर नहीं है।

यहाँ सब बातें बेजोड हैं। राम सा वर। सीता सी दुलहिन। दशरथ जनक से पुनीत सम समधी। जब से ब्रह्मदेव ने सृष्टि रची तब से आज तक हुए ही नहीं। यथा भले भूप कहत भले भदेस भूपन सो। लोक लखि बोलिये पुनीत नीति मारखी। जगदवा जानकी जगत पितु राम भद्र जानि जिय जोवी जो न लागै मुख कारिखो। देखे है अनेक व्याह सुने है पुराणवेद बूझे है सुजान साधु नर नारि पारखी। ऐसे सम समधी समाज न विराजमान राम सो न वर दुलहि न सिय सारखो।

सुनि असि व्याहु सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
येहि विधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहि हने निसाना॥२॥

अर्थ ऐसा व्याह सुनकर सगुन सब नाच उठे कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा बनाया। इस भाँति बारात ने प्रयाण किया। हय और गज गरजने लगे और निशान बजने लगा।

व्याख्या व्याह ऐसा और नाच नहीं। अत सगुन सब नाचे। यह नाच आनन्द का है कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा किया। नहीं तो हम झूठे ही सगुन बने रहे। बारात जुटने मे बारह सगुन केवल दिखला दिये गये। इस भाँति ये सगुन सभी कामों मे होते थे। नाचे कहने का अर्थ ही यह है कि बार बार हुए।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे से प्रसङ्ग छोडा था। अब वहीं से फिर उठाते है। यथा हय गय गाजहि हने निसाना। तीन चौपाई और एक दोहे मे 'सुमिरि राम गुर आयसु पाई से लेकर डगहि न ताल विधान तक बारात के प्रयाण की विधि कही।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच वर वास बनाए। सुरपुर सरिस सपदा छाए॥३॥

अर्थ. सूर्यकुल के पताका को आते हुए जानकर जनक ने नदियों पर पुल बँधाये। बीच बीच मे बारात के ठहरने के लिए श्रेष्ठ निवास स्थान बनवाये। जिनमे देवलोक की भाँति सम्पदा छाई हुई थी।

व्याख्या सूर्यकुल के केतु चक्रवर्ती दशरथजी के चलने का अर्थ ही यही है कि बडा जनसमूह साथ है। राजा गच्छति : राजा जाते है का अर्थ यह नहीं है अकेले राजा छडी टेकते चले जा रहे है। उसका अर्थ ही यह है कि घोडे सेना सामन्त सब साथ है। समाचार पाकर महाराज जनक ने नदियों मे जो रास्ते मे पडती है पुल बँधवा दिये जिनमे सेना के उतरने का झझट न रहे। बारात चल पडने पर आगे

जाकर दूतो ने समाचार दिया। यद्यपि महाराज ने दूतो को वास दिलवा दिया था। पर वे बारात के साथ बाराती बनकर तो जायँगे नही। अत बारात रवाना होते ही दूतो ने समाचार देने में बडी शीघ्रता की।

महाराज जनक ने अपनी सीमा से जनकपुर पहुँचने मे बारात के पडाव के लिए डेरे खेमो की व्यवस्था की। उन पडाव के मुकामो पर देवलोक की सी सम्पदाएँ भरी हुई थी। दूतो को पूरा पता लग गया कि कितनी बारात है और कौन कौन लोग कितने हैं। अत. तदनुसार डेरे खेमे और सामान आदि की ऐसी व्यवस्था की गई कि देवलोक जान पडे।

असनु सयन वर वसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए ॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले ॥४॥

अर्थ : सुन्दर भोजन, शयन, श्रेष्ठ कपडे अपनी अपनी रुचि के अनुसार सभी को मिल रहा है। सभी बराती नित्य नये सुख देखकर प्रसन्न हुए। उन्हे अपना घर भूल गया।

व्याख्या : डेरो मे सम्पदा के अतिरिक्त अशन, शयन, और वसन की भी व्यवस्था है। जिसमे बारातियो के विस्तर और सामान के गट्ठर खुलने न पावें। वहाँ प्रतिष्ठा के अनुसार सत्कार नही है। रुचि के अनुसार सत्कार है। जिसे जो वस्तु चाहिए सो सब प्रस्तुत था।

जितना जनकपुर सन्निकट आता जाता है डेरो मे सुख की सामग्री उतनी ही बढती चली जा रही है। उतना ही सुख बढता जा रहा है। अत. बाराती सन्तुष्ट हो गये। दूसरी जगह कितना भी सुख हो फिर भी यथार्थ आराम तो अपनी टूटी झोपडी मे ही मिलता है। परन्तु यहाँ बात ही दूसरी है। बाराती इतने सुखी हुए कि अपना अपना घर भूल गये। इस भाँति चार दिन मे बारात जनकपुर आई।

दो. आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान ॥३०४॥

अर्थ · उस श्रेष्ठ बारात को आते जानकर और डंके के घनघोर शब्द को सुनकर लोग हाथी घोडे और रथ सजाकर अगवानी के लिए चले।

व्याख्या · डके के घोर शब्द से दूर से ही बारात के आने की आहट लग गयी। चतुरङ्गिनी सेना साथ लेकर अगवानी की। राजाओ मे अगवानी के लिए भी वैसी ही तैयारी होती है जैसी बारात की होती है। बल्कि यह देखा जाता है कि तैयारी किस ओर की अच्छी है। अगवानी की तैयारी स्वागत के उत्साह का द्योतक है।

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजनु ललित अनेक प्रकारा ॥
भरे सुधासम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने ॥१॥

सुन्दर सुत है। उसी को मगल सगुन होना प्राप्त भी है। असगुन तो वहाँ होता है जहाँ सगुन से विरोध हो। यथा : श्रुति तौ सगुनै कहै, दिवाने तू असगुन क्यो गहै। देव स्वामी। सुन्दर कहने का भाव यह कि वहु मुख कर पद्र लोचन सीसा वाले सगुन ब्रह्म तो है पर सुन्दर नही है।

यहाँ सब बाते बेजोड हैं। राम सा वर। सीता सी दुलहिन। दशरथ जनक से पुनीत सम समधी। जब से ब्रह्मदेव ने सृष्टि रची तब से आज तक हुए ही नही। यथा : भले भूप कहत भले भदेस भूपन सो। लोक लखि बोलिये पुनीत नीति मारखी। जगदवा जानकी जगत पितु राम भद्र जानि जिय जोवी जो न लागै मुग कारिखी। देखे है अनेक व्याह सुने है पुराणवेद बूझे है मुजान साधु नर नारि पारखी। ऐसे सम समधी समाज न विराजमान राम सो न वर दुलहि न सिय सारखी।

सुनि असि व्याहु सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे विरंचि हम साँचे॥
येहि विधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गार्जहि हने निसाना॥२॥

अर्थ ऐसा व्याह सुनकर सगुन सब नाच उठे कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा बनाया। इस भाँति बारात ने प्रयाण किया। हय और गज गरजने लगे और निशान बजने लगा।

व्याख्या : व्याह ऐसा और नाच नही। अत सगुन सब नाचे। यह नाच आनन्द का है कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा किया। नही तो हम झूठे ही सगुन बने रहे। बारात जुटने मे बारह सगुन केवल दिखला दिये गये। इस भाँति ये सगुन सभी कामो मे होते थे। नाचे कहने का अर्थ ही यह है कि बार बार हुए।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे से प्रसङ्ग छोडा था। अब वही से फिर उठाते हैं। यथा हय गय गाजहे हने निसाना। तीन चौपाई और एक दोहे मे : सुमिरि राम गुर आयसु पाई से लेकर डगहि न ताल विधान तक बारात के प्रयाण की विधि कही।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच वर वास बनाए। सुरपुर सरिस सपदा छाए॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के पताका को आते हुए जानकर जनक ने नदियो पर पुल बँधाये। बीच बीच मे बारात के ठहरने के लिए श्रेष्ठ निवास स्थान बनवाये। जिनमे देवलोक की भाँति सम्पदा छाई हुई थी।

व्याख्या . सूर्यकुल के केतु चक्रवर्ती दशरथजी के चलने का अर्थ ही यही है कि बडा जनसमूह साथ है। राजा गच्छति : राजा जाते हैं का अर्थ यह नही है अकेले राजा छडी टेकते चले जा रहे है। उसका अर्थ ही यह है कि घोडे सेना सामन्त सब साथ है। समाचार पाकर महाराज जनक ने नदियो मे जो रास्ते मे पडती हैं पुल बँधवा दिये जिनमे सेना के उतरने का झझट न रहे। बारात चल पडने पर आगे

जाकर दूतो ने समाचार दिया। यद्यपि महाराज ने दूतो को वास दिलवा दिया था। पर वे बारात के साथ बाराती बनकर तो जायँगे नही। अत बारात रवाना होते ही दूतो ने समाचार देने मे बडी शीघ्रता की।

महाराज जनक ने अपनी सीमा से जनकपुर पहुँचने में बारात के पडाव के लिए डेरे खेमो की व्यवस्था की। उन पड़ाव के मुकामो पर देवलोक की सी सम्पदाएँ भरी हुई थी। दूतो को पूरा पता लग गया कि कितनी बारात है और कौन कौन लोग कितने हैं। अत: तदनुसार डेरे खेमे और सामान आदि की ऐसी व्यवस्था की गई कि देवलोक जान पड़े।

असनु सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥४॥

अर्थ : सुन्दर भोजन, शयन, श्रेष्ठ कपडे अपनी अपनी रुचि के अनुसार सभी को मिल रहा है। सभी बराती नित्य नये सुख देखकर प्रसन्न हुए। उन्हे अपना घर भूल गया।

व्याख्या : डेरो मे सम्पदा के अतिरिक्त अशन, शयन, और बसन की भी व्यवस्था है। जिसमे बारातियो के बिस्तर और सामान के गट्ठर खुलने न पावें। वहाँ प्रतिष्ठा के अनसार सत्कार नही है। रुचि के अनुसार सत्कार है। जिसे जो रुचे

अर्थ सोने के पूर्णघट, कोपर और थार तथा अनेक प्रकार के सुन्दर बरतनो मे भरे हुए नाना भाँति के अमृत से पक्वान्न थे जिनका वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या सोने के पूर्ण कलश मङ्गल के लिए कोपर पूजन के लिए तथा थार और अनेक सुन्दर बरतन पक्वान्न से भरे हुए भोजन के लिए अर्थात् सबसे पहिल भोजन सामग्री, अर्घ पाद्य, गन्धमाल्यनैवेद्यादि सामने आया।

उपर्युक्त बर्तनो मे अमृत से स्वादु पक्वान्न भरे हुए थे। छप्पन प्रकार प्रसिद्ध हैं। इसलिए नाना भाँति न जाइ बखाना कहा।

फल अनेक बर वस्तु सुहाई। हरपि भेट हित भूप पठाई ॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना ॥२॥

अर्थ अनेक फल तथा श्रेष्ठ सुन्दर वस्तुओ को राजा ने हर्षित होकर भेंट के लिए भेजा। गहना, कपडा, नाना प्रकार के महामणि, चिडिया, पशु, हाथी, घोडे तथा अनेक भाँति के यान।

व्याख्या भोजनोपरा त फल की व्यवस्था है। इसलिए फल भेजे। चामरादि राजोपचार की सामग्री भेजी। भानुकुलकेतु के लिए भेंट भेजने मे महाराज जनक को बडा हर्ष है। अगवानी मे स्वय समधी के जाने की चाल नही है। इसलिए महाराज जनक ने पदाधिकारियो द्वारा भेजवा दिया। बारात मे पहिले ही खाने की चीजें चाहिए। अत पहिल वे ही भेजी गईं। तत्पश्चात् सुन्दर श्रेष्ठ वस्तुएँ भेजी गईं। राजोपचार मे चामरादि वस्तुएँ, अलङ्कार, कपडे, नाना प्रकार के महामणि भेजे गये। खग, मृग, हाथी, घोडे तथा अनेक यान भेट के लिए सहर्ष महाराज जनक ने भेजे। मिथिला की चाल है कि आज भी बारात के द्वार लगने के पहिले कपडा जाता है।

मगल सगुन सुगध सुहाए। बहुत भाति महिपाल पठाए ॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा ॥३॥

अर्थ मगल सगुन की वस्तुएँ सुहावने और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ राजा ने भेजे। दधि चिउरा का अपार उपहार काँवर मे भर भरकर कहार ले लेकर चले।

व्याख्या दधि, दूर्वा, रोचन, फूल, फल, नव तुलसीदल आदि मगल द्रव्य जो सगुन माने गये हैं और गन्ध माल्यादि सुगन्धित द्रव्य अनेक प्रकार के महाराज जनक ने भेजे। अयोध्या से चक्रवर्तीजी के साथ अगणित वस्तुएँ आई हैं। यथा बेसर ऊँट वृषभ बहु भाँती। चले वस्तु भरि अगनित भाँती। उन वस्तुओ का उपयोग बारात की ओर से न होने पावे। सब वस्तुएँ ज्यौ की त्यौ अयोध्या लौट जाँय। इसलिए महाराज जनक ने बहुत भाँति की वस्तुएँ भेट भेजी।

उधर से कोटिन काँवरि चल कँहारा। तो इधर से भी दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कँहारा। दधि चिउरा मगल है और तिरहुत म

जैसा होता है वैसा कही होता भी नही। अवध के लोगो का प्रधान खाद्य दधि चिउरा है। इसके बिना उनकी तृप्ति नही होती। परन्तु अवध मे वैसा दधि चिउरा होता नही जैसा मिथिला मे होता है। अन्य उपहार तो राजा के लिए है। पर दधि चिउरा तो सबके लिए है। अत अन्य उपहारो का तो पार था। परन्तु दधि चिउरा के परिमाण का पार न था • बोरे मे भर भरकर दही का टाल तो मिथिला मे ही देखने मे आता है और वह दही यहाँ के मक्खन से किसी अश मे कम नही होता।

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनदु पुलक भरे गाता ॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना ॥४॥

अर्थ : अगवानी करनेवालो ने जब बारात देखी तो उनके हृदय आनन्द से और शरीर पुलक से भर उठे और अगवानियो को साज के साथ देखकर बरातियो ने प्रसन्न होकर डके पर चोटें दी।

व्याख्या : अगवानियो ने सुन तो पहिले से ही रक्खा था कि अयोध्या से बडी अपूर्व बारात आ रही है। पर बारात के दर्शन से उनके हृदय मे ऐसा आनन्द हुआ कि सम्पूर्ण शरीर मे पुलकावली हो उठी। ऐसी देवसेना सी बारात कभी दृष्टिगोचर नही हुई थी और अगवानियो का दर्शन बारातियो के लिए इष्टलाभ था। सबके उर निर्भर हरख। पूरति पुलक सरीर। कबहि देखिबे नयन भर राम लखन दोउ बीर। सो अवसर अत्यन्त सन्निकट समझकर और अगवानियो का साज समाज देखकर बाराती खिल उठे और उत्साह मे भरकर डके बजाये।

दो. हरषि परसपर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनद समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल ॥३०५॥

अर्थ . कुछ बगमेल आपस म मिलने के लिए दोनो ओर से हर्षित होकर चले। जैसे दो आनन्द के समुद्र अपनी अपनी मर्यादा को छोडकर मिल रहे हो।

व्याख्या : बारात और अगवान दोनो समुद्र की भाँति उमडे हुए है। समुद्र मर्यादा का उल्लघन नही करते। पर जब लहरें सीमापर आकर टक्कर खाती हैं तो कुछ दूर तक थोडा पानी दौडता चला जाता है। अब दोनो समुद्र अत्यन्त सन्निकट आगये और दोनो का जल सीमा के बाहर दौडता हुआ एक दूसरे की ओर मिलने के लिए चला। इसी भाँति बारात और अगवान मे से कुछ लोग मिलने के लिए आगे बढे और मिलने लगे। दोनो ओर आगे आगे अश्वारोही राजकुमार लोग थे। वे बाग मिलाये हुए मिलने के लिए आगे बढे। इसी को बगमेल कहा है वस्तुस्थिति यह है कि बडी सेना के आगे आगे जा छोटी टोली वीरो की चलती है वही पहले चोट करती है और आक्रमण को रोकती है। उतने काल मे ही प्रधान सेना को सँभलने का अवसर मिल जाता है। इसी वीरो की टोली को बगमेल कहते हैं। यही टोली श्रेणीबद्ध होकर घोडे की बाग मिलाये सेना के आगे रहती है। यहाँ तो युद्ध नही है मेल है। इसलिए मिलने के लिए बगमेल होकर कुछ लोग आगे बढे और मिले।

यह रसम अब भी किसी न किसी रूप मे प्रचलित है। आज भी बारात और अगवान का सामना होते ही दोनो ओर से घोडे छूटते है और थोडी सी घुडदौड बारात और अगवान के बीच मे हो जाती है और तब हाथिया के साथ पूरी बारात तेजी से द्वार लगने के लिए बढती है।

वरपि सुमन सुर सुदरि गावहि। मुदित देव दुदुभी बजावहि ॥
वस्तु सकल राखी नृप आगे। विनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे ॥१॥

अर्थ देवताओं की सुन्दरियाँ फूल वर्षा कर गान करने लगी और देवता लोगो ने प्रसन्न होकर नगाडे बजाये। उन लोगो ने सब वस्तुएँ चक्रवर्तीजी के सामने रक्खी और अत्यन्त प्रेम से विनती की।

व्याख्या बारात चलने के समय तो नरसुन्दरियो और सुरसुन्दरियो दोनो ने गान किया था। यथा सुर नरनारि सुमगल गाई। पर इस समय वहाँ नर-सुन्दरियो की गति नही है। इस फूल की वर्षा करके सुरसुन्दरियो के ही गान का उल्लेख है। देवताओ ने बारात के चलने के समय फूल बरसाये थे। इस समय डका बजा रहे है। इससे सिद्ध है कि देवगण भी बारात के साथ ही साथ चले आरहे हैं। दोनो मनुष्य और देवता की बारातें मिथिला पहुँच गईं। अगवान को देखकर जब मुदित वरातिन्ह हने निसाना। तो देवताओ की बारात मे भी इसी का अनुकरण हुआ। यथा मुदित देव दुदुभी बजावहि।

दहेज को समधी के आगे रखने का विधान है। अत अगवानियो ने राजा जनक की भेजी हुई सब वस्तुएँ महाराज दशरथ के आगे रखी और स्वीकृति के लिए अति अनुराग से विनती की। बडे लोग विनय प्रेम से ही वश होते हैं। यथा विनय प्रेम बस भई भवानी।

प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा ॥
करि पूजा मान्यता बडाई। जनवासे कहुँ चले लेवाई ॥२॥

अर्थ राजा ने प्रेम के सहित सब स्वीकार कर लिया। मगतो को देने के लिए आज्ञा हुई और दे दी गई। पूजा सम्मान और बडाई करके सबको जनवासे की ओर लिवा ले चले।

व्याख्या अगवानियो ने अति अनुराग से विनती की। अत महाराज दशरथ ने भी प्रेम से स्वीकार कर लिया। पर महाराज चक्रवर्तीजी के यहाँ याचको का आदर है। आज्ञा हुई कि याचको मे वितरण कर दो। सो वितरण कर दिया गया। यथा जाचक लिए हँकारि दीन्ह निछावरि कोटि विधि पूजा की। यथा वस्तु सकल राखी नृप आगे मान्यता की। यथा विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे। बडाई की अर्थात् स्तुति की है। अथवा बारात भर की यथा योग्य पूजा, सम्मान और स्तुति करके जनवासे की ओर टिकाने के लिए ले चले।

वसन विचित्र पाँवड़े परही । देखी धनदु धन मद परिहरही ॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा ॥३॥

अर्थ : अद्भुत वस्तुओ के पाँवडे पडते थे। जिन्हे देखकर कुवेरजी का धनमद छूट जाय। अत्यन्त सुन्दर जनवासा दिया गया। जहाँ सबको सब प्रकार सुभीता था।

व्याख्या : जिन वस्त्रो का दिखाई पड़ना दुर्लभ था वे पाँवडे मे डाले जा रहे हैं। इससे जनकराज का ऐश्वर्यातिशय कहा। महाराज दशरथ के विषय मे कहा जाता है : दसरथ धनसुनि धनद लजाही और यहाँ महाराज जनक के विषय मे कह रहे है : देखि धनद धनमद परिहरही। बीच बीच वर वास बनाए। सुरपुर सरसि सम्पदा छाए। वह वर्णन तो रास्ते के पडाव का है। यह जनवासा है। इसलिए कहते हैं : अतीव सुन्दर है और साथ ही साथ ऐसा बनाया गया है जिसमे सब किसी को : राजा से लेकर सेवक तक को सब प्रकार का सुभीता हो। क्योकि यहाँ तो बारात को महीनो ठहरना है।

जानी सिय बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई । भूप पहुनई करन पठाई ॥४॥

अर्थ : सीताजी ने जब जाना कि बारात नगर मे आगई तो अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी। हृदय मे स्मरण करके सब सिद्धियो को बुलाया और सीताजी ने राजा का आतिथ्य सत्कार करने के लिए भेज दिया।

व्याख्या : जब तक बारात पुर मे नही आई तब तक चुप रही। जब बारात आगई तब अपनी महिमा को सीताजी ने प्रकट किया। भगवती गगाजी कहती है : लोकप होत विलोकत तोरे। तोहि सेवहि सब सिधि कर जोरे। सो लोकप होहि विलोकत तोरे। इस अश को नही दिखलाया। तोहि सेवहि सब सिधि कर जोरे। इस अश को दिखलाया। उन्होने अपनी महिमा को गुप्त कर रक्खा था। यथा : वसहि नगर जेहि लच्छि करि कपट नारिवर वेष। प्रकट जनाने का कारण यह हुआ कि महाराज दशरथ इन्द्र के अतिथि रह चुके है। यथा : आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन देई। इन्हे मानुपी भोग जँचेगा नही। यहाँ भूपन वसन मणि आदि भेजे गये। सो सब याचको को बाँट दिये। इसलिए सिद्धियो को बुलाया। किसी को बुलाने के लिए न भेजना पडा। केवल स्मरण करने से ही उपस्थित हो गई। अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा। प्राप्ति प्राकाम्य ईशत्व वशित्व चाष्टसिद्धय। ये ही आठो सिद्धियो के नाम है। इन्हे सीताजी की आज्ञा हुई कि जाकर आतिथ्य सत्कार करो।

दो. सिधि सब सिय आयसु अकनि, गईं जहाँ जनवास।
लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग बिलास ॥३०६॥

अर्थ सब सिद्धियाँ सीताजी की आज्ञा सुनकर जहाँ जनवास था वहाँ गईं। सुरपुर का भोग विलास सुख और सम्पत् लिये हुए थी।

व्याख्या आठो सिद्धियाँ आज्ञा पाकर जनवास में पहुँची। पहिले सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। ऐसे वासस्थान म बारात को टिकाया था। परन्तु मानुषी सम्पदा का उत्कर्ष इतना ही है कि सुरपुर सम्पदा के सदृश हो जाय। फिर भी वह सुरपुर की सम्पदा नही हो सकती। बन्दर मनुष्य सा होता है फिर भी बन्दर और मनुष्य म महान् अन्तर है। एव मानव भोग और स्वर्गीय भोग मे महान् अन्तर है। सिद्धिया की करणी ऐसी है कि उनके उत्पन्न किये सुख सम्पदा के आगे स्वर्गीय सुख सम्पदा भी नही ठहरती। यथा अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहि बिमाना। भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाखे। दासी दास साजु सब लीन्ह। जोगवत रहहि मनहि मनु दीन्हे।

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥१॥

अर्थ बरातियो ने अपना अपना डेरा देखा कि सब प्रकार से देवताओ का सब सुख सुलभ है। विभव भेद किसी ने कुछ समझ न पाया। सब जनक राजा की प्रशसा कर रहे हैं।

व्याख्या जनवासे म प्रत्येक बाराती के लिए पृथक् पृथक् स्थान निर्दिष्ट थे। सिद्धियो के आते ही बात दूसरी हो गई। अब बाराती अपना डेरा देखते है कि विमाना की भाँति सुन्दर सजे हुए हैं और देवताओ का भोग और विभूति सबको सब प्रकार से सुलभ है। भाव यह कि बारातियो को वैसा ही दिखाई पड रहा है जैसा कि उन्होने बना रक्खा है।

विभव म भेद पडते किसी ने न लखा। मानुषी भोग दैवी भोग मे परिवर्तित हो गया। सबने उस भोग और विभूति को राजा जनक की ही करतूत समझा और उनकी प्रशसा करने लगे। वस्तुत जिसकी करतूत थी उसे कौन समझता है। जब विभव भेद ही समझ म नही आया तो उसके कर्त्ता की ओर दृष्टि ही क्यों जाने लगी। इस भाति सीताजी के द्वारा पिता को यश मिल रहा है।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनदु अमाई॥२॥

अर्थ सीताजी की महिमा को रामजी ने जाना। प्रेम की पहिचान करके हृदय म हर्षित हुए। दोनो भाइयो ने पिता का आगमन सुना। अब अत्यन्त आनन्द हृदय म समा नही रहा है।

व्याख्या महामाया के पति को छोडकर महामाया की महिमा को कौन जाने। सब लोग भोग मे पडे हुए भी विभव भेद नही जान सके। रघुनायक अभी वहाँ गये भी नही हैं। विश्वामित्रजी के डेरे पर रहते हुए भी समझ गये कि सीताजी

ने करामात कर दी। सब मानिये राम के नाते। मेरे पिता होने से सत्कार हो रहा है। ऐसा जानकीजी का प्रेम जानकर मन ही मन प्रसन्न हुए। सीताजी की महिमा ही विभवभेद मे कारण हुई।

बारात आने पर शोर मच गया कि महाराज अवधनरेश आगये। सुनकर दोनो भाइयो को अत्यन्त आनन्द हुआ। हृदय म यथेष्ट स्थान नही रह गया। अत मुख से नेत्र से तथा रोम रोम से पुलकद्वारा प्रकट होने लगा। पहिले पुर मे बारात आने की जानकारी सीताजी को कही। यथा जानी सिय बरात पुर आई। अब श्रीरामजी की जानकारी कहते हैं पितु आगमन सुनत दोउ भाई।

सकुचन्ह कहि न सकत गुर पाही। पितु दरसन लालच मन माही ॥
बिस्वामित्र बिनय बडि देखी। उपजा उर सतोप बिसेखी ॥३॥

अर्थ सङ्कोच के कारण गुरु से नही कह सकते। पिता के दर्शन का लालच मन म है। विश्वामित्र को इतना बडा विनय अदब देखकर हृदय म विशेष सन्तोप उत्पन्न हुआ।

व्याख्या दोनो भाई स्वभाव से सङ्कोची हैं। इनके सङ्कोची स्वभाव के कारण माताओ को सोच है कि ये कष्ट सहन कर लेंगे परन्तु मुनिजी से न कहेगे। यथा बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहिं आली। इन्ही के लिए बारात लेकर पिता अयोध्या से आये हैं। इतने दिनो से पिता का विछोह है। पितृप्रेम हृदय मे उमड रहा है। पिता के दर्शन का लालच है। नही तो राम लक्ष्मण को लालच कहा ? फिर भी मुनिजी से पितृ दर्शन के लिए कहने मे सङ्कोच है। सङ्कोच तो नगर दर्शन के लिए कहने म भी था फिर भी मुनिजी से निवेदन किया। पर इस बार मारे सङ्कोच के निवेदन भी नही कर रहे हैं। क्योकि पिताजी ने कह रक्खा है कि तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ। सो जब तक गुरुजी स्वय पिताजी तक ले जाकर पहुँचा नही देते तब तक पिता और गुरु दोनो का नाता मुनिजी से ही है। पिता के दर्शन की उत्सुकता प्रकट करने मे इसलिए सङ्कोच विशेष है।

विश्वामित्रजी सर्वज्ञ हैं। उन्होने लालच और सङ्कोच दोनो जान लिया। इतना बडा मेरा सङ्कोच है कि पिता के दर्शन की लालच ये बच्चे दबाये बैठे हैं। प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। इस त्याग से सन्तुष्ट तो पहिल ही से थे। अब प्रश्रय अदब के कारण दर्शन को भी नही कह रहे हैं। इससे विशेष सन्तोप हुआ। यहाँ विश्वामित्रजी दोना भाइया की तथा स्वयं महाराज की भी परीक्षा ले रहे हैं। सो परीक्षा मे तीनो व्यक्ति खरे उतरे। न तो राम लक्ष्मण ने उनसे पिता के पास जाने के लिए कुछ कहा और न महाराज दशरथ के यहाँ स राम लक्ष्मण के बुलाने के लिए कोई सन्देश आया।

हरषि बधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अग अबक जल छाए ॥
चले जहाँ दशरथु जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पिआसे ॥४॥

अर्थ सब सिद्धियाँ सीताजी की आज्ञा सुनकर जहाँ जनवास था वहाँ गईं। सुरपुर का भोग विलास सुख और सम्पत् लिये हुए थी।

व्याख्या आठो सिद्धियाँ आज्ञा पाकर जनवास मे पहुँची। पहिले सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। ऐसे वासस्थान मे बारात को टिकाया था। परन्तु मानुषी सम्पदा का उत्कर्ष इतना हो है कि सुरपुर सम्पदा के सदृश हो जाय। फिर भी वह सुरपुर की सम्पदा नही हो सकती। बन्दर मनुष्य सा होता है फिर भी बन्दर और मनुष्य मे महान् अन्तर है। एव मानव भोग और स्वर्गीय भोग मे महान् अन्तर है। सिद्धियो की करणी ऐसी है कि उनके उत्पन्न किये सुख सम्पदा के आगे स्वर्गीय सुख सम्पदा भी नही ठहरती। यथा अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना। भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाखे। दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे।

निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती ॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना ॥१॥

अर्थ बरातियो ने अपना अपना डेरा देखा कि सब प्रकार से देवताओ का सब सुख सुलभ है। विभव भेद किसी ने कुछ समझ न पाया। सब जनक राजा की प्रशसा कर रहे हैं।

व्याख्या जनवासे मे प्रत्येक बाराती के लिए पृथक् पृथक् स्थान निर्दिष्ट थे। सिद्धियो के आते ही बात दूसरी हो गई। अब बाराती अपना डेरा देखते है कि विमानो की भाँति सुन्दर सजे हुए हैं और देवताओ का भोग और विभूति सबको सब प्रकार से सुलभ है। भाव यह कि बारातियो को वैसा ही दिखाई पड रहा है जैसा कि उन्होने बना रखा है।

विभव मे भेद पडते किसी ने न लखा। मानुषी भोग दैवी भोग मे परिवर्तित हो गया। सबने उस भोग और विभूति को राजा जनक की ही करतूत समझा और उनकी प्रशसा करने लगे। वस्तुत जिसकी करतूत थी उसे कौन समझता है। जब विभव भेद ही समझ मे नही आया तो उसके कर्ता की ओर दृष्टि ही क्यो जाने लगी। इस भाँति सीताजी के द्वारा पिता को यश मिल रहा है।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी ॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनदु अमाई ॥२॥

अर्थ सीताजी की महिमा का रामजी ने जाना। प्रेम की पहिचान करके हृदय मे हर्षित हुए। दोनो भाइयो ने पिता का आगमन सुना। अब अत्यन्त आनन्द हृदय मे समा नही रहा है।

व्याख्या महामाया के पति को छोडकर महामाया की महिमा को कौन जाने। सब लोग भोग म पडे हुए भी विभव भेद नही जान सके। रघुनायक अभी वहाँ गये भी नही हैं। विश्वामित्रजी के डेरे पर रहते हुए भी समझ गये कि सीताजी

ने करामात कर दी। सब मानिये राम के नाते। मेरे पिता होने से सत्कार हो रहा है। ऐसा जानकीजी का प्रेम जानकर मन ही मन प्रसन्न हुए। सीताजी की महिमा ही विभवभेद मे कारण हुई।

बारात आने पर शोर मच गया कि महाराज अवधनरेश आगये। सुनकर दोनो भाइयो को अत्यन्त आनन्द हुआ। हृदय मे यथेष्ट स्थान नही रह गया। अत. मुख से नेत्र से तथा रोम रोम से : पुलकद्वारा प्रकट होने लगा। पहिले पुर मे बारात आने की जानकारी सीताजी को कही। यथा · जानी सिय बरात पुर आई। अब श्रीरामजी की जानकारी कहते हैं : पितु आगमन सुनत दोउ भाई।

सकुचन्ह कहि न सकत गुर पाही। पितु दरसन लालच मन माही ॥
विस्वामित्र विनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोष विसेखी ॥३॥

अर्थ · सङ्कोच के कारण गुरु से नही कह सकते। पिता के दर्शन का लालच मन मे है। विश्वामित्र को इतना बडा विनय : अदब देखकर हृदय मे विशेष सन्तोष उत्पन्न हुआ।

व्याख्या · दोनो भाई स्वभाव से सङ्कोची हैं। इनके सङ्कोची स्वभाव के कारण माताओ को सोच है कि ये कष्ट सहन कर लेंगे परन्तु मुनिजी से न कहेगे। यथा : बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। इन्ही के लिए बारात लेकर पिता अयोध्या से आये है। इतने दिनो से पिता का विछोह है। पितृप्रेम हृदय मे उमड रहा है। पिता के दर्शन का लालच है। नही तो राम लक्ष्मण को लालच कहाँ ? फिर भी मुनिजी से पितृ दर्शन के लिए कहने मे सङ्कोच है। सङ्कोच तो नगर दर्शन के लिए कहने मे भी था फिर भी मुनिजी से निवेदन किया। पर इस बार मारे सङ्कोच के निवेदन भी नही कर रहे है। क्योकि पिताजी ने कह रक्खा है कि तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। सो जब तक गुरजी स्वय पिताजी तक ले जाकर पहुँचा नही देते तब तक पिता और गुरु दोनो का नाता मुनिजी से ही है। पिता के दर्शन की उत्सुकता प्रकट करने मे इसलिए सङ्कोच विशेष है।

विश्वामित्रजी सर्वज्ञ हैं। उन्होने लालच और सङ्कोच दोनो जान लिया। इतना बडा मेरा सङ्कोच है कि पिता के दर्शन की लालच ये बच्चे दबाये बैठे है। प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। इस त्याग से सन्तुष्ट तो पहिले हो से थे। अब प्रश्रय अदब के कारण दर्शन को भी नही कह रहे हैं। इससे विशेष सन्तोष हुआ। यहाँ विश्वामित्रजी दोनो भाइयो की तथा स्वय महाराज की भी परीक्षा ले रहे हैं। सो परीक्षा मे तीनो व्यक्ति खरे उतरे। न तो राम लक्ष्मण ने उनसे पिता के पास जाने के लिए कुछ कहा और न महाराज दशरथ के यहाँ से राम लक्ष्मण के बुलाने के लिए कोई सन्देश आया।

हरखि बधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए ॥
चले जहाँ दशरथु जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पिआसे ॥४॥

अर्थ प्रसन्न होकर दोनो भाइयो को कलेजे से लगा लिया। शरीर मे पुलकावली हो गई। आँखो मे आँसू छलछला उठे। जहाँ जनवासे मे महाराज दशरथ थे वहाँ के लिए चल पड़े। मानो प्यासा तालाव को लक्ष्य करके जा रहा हो।

व्याख्या दोनो भाइयो के विनय से विश्वामित्रजी का हृदय उमग उठा। उन्हे कलेजे से लगा लिया। सात्त्विक भाव होने से पुलक भी हुआ। आँखो मे आँसू भी आगये। न दोनो भाइयो ने कुछ कहा न गुरुजी ने ही कुछ कहा। सब सबके भावको समझ गये।

विश्वामित्रजी को भी महाराज के दर्शन की बडी लालसा है। जिसने अपने प्राण निकालकर दे दिये। यथा : मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। और आने पर यह भी न पूछा कि मेरे प्यारे बच्चे कहाँ हैं? ऐसे आज्ञापालक के दर्शन की प्यासी प्रेमपयोनिधि विश्वामित्रजी को होना प्राप्त ही है। अत तीनो व्यक्तियो को चक्रवर्ती जी के दर्शन की प्यास है। यहाँ चक्रवर्तीजी सरोवर हैं और उनका रूप ही जल है। अत प्यासे के सरोवर लक्ष्य करके जाने की भाँति गुरुजी तथा दोनो भाई चले। इतनी चहल पहल नगर मे मची हुई है। पर इन तीनो व्यक्तियो ने कुछ न देखा। प्यासा कुछ नही देखता। उसका ध्यान केवल पानी पर रहता है।

दो भूप बिलोके जबहि मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठेउ हरषि सुखसिंधु महुँ, चले थाह सी लेत ॥३०७॥

अर्थ जब महाराज दशरथ ने मुनिजी को देखा कि बेटो के साथ चले आरहे हैं तो आनन्दित होकर उठे और सुख के समुद्र मे थाह लेते हुए से चले।

व्याख्या महाराज की दृष्टि पडी कि विश्वामित्रजी रामजी तथा लक्ष्मण के साथ चले आरहे हैं। महाराज अगवानी के लिए उठ खडे हुए। दरबार लगा हुआ था। महाराज के उठते ही सारी सभा उठ खडी हुई। महाराज के साथ चल पडी। सुख का समुद्र उमड चला। उस बीच मे महाराज दशरथ चल रहे हैं। उसी चलने की दशा का वर्णन करते हैं। अगाध जल के तल मे चलना महा कठिन है। पैर धरती पर पडते ही नही। समुद्र के तल मे चलनेवाले अपने पैरो मे भारी बोझ बाँधते हैं। जिसमे धरती पर पैर पडे। यहाँ भी उसी भाँति मारे आनन्द के महाराज के पैर धरती पर नही पड रहे हैं। आनन्द सिन्धु मे मग्न एक एक पैर सँभाल सँभालकर रख रहे हैं।

मुनिहि दडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा ॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई ॥१॥

अर्थ महाराज ने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया। चरणरज को बार बार सिरपर धारण किया। विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछा।

व्याख्या : महीश है। ससार उन्हे प्रणाम करता है। पर उन्होने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया। क्योकि मुनिपद राजपद से कही बडा है। जब मुनि जी अयोध्या गये थे तब भी दण्डवत् किया था। परन्तु इसबार पुन पुन पदरज को सिरपर धारण कर रहे हैं। क्योकि महात्माओ के चरणरज का सिरपर रखने से ही सब अभीष्टो की सिद्धि होती है। यथा सब पायेउँ रस पायन पूजे। मुनिजी ने कहा था धर्म सुयस प्रभु तुम कहँ इन कहँ अति कल्यान। सो अक्षरश पूरा हुआ। महाराज को धर्म और सुयश की प्राप्ति हुई। धर्म यथा निसिचर वध मैं होव सनाथा। सुयश यथा : ममहित लागि नरेस पठाये। और रामजी तथा लक्ष्मणजो का अत्यन्त कल्याण हुआ। यथा . गुरुप्रसाद सब विद्या पाई। विस्वविजय जस जानकि पाई।

जब विश्वामित्रजी अयोध्या गये थे उस समय के व्यवहार और इस समय के व्यवहार का अन्तर विचारणीय है। उस समय महाराज दशरथ के दण्डवत् प्रणाम पर न आशीर्वाद देते है, न कुशल पूछते है। हृदय लगाने की कथा ही क्या है ? आज प्रेम मे विभोर होकर महाराज के दर्शन के प्यासे होकर आये है। दण्डवत् करते देखकर हृदय से लगा लेते है। आशीर्वाद देकर कुशल पूछते हैं। महाराज दशरथ के गुण ही ऐसे है जिनके कारण विश्वामित्र ऐसे मुनि भी उनके वश मे हो गये।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई ॥
सुत हिय लाइ दुसह दुखु मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे ॥२॥

अर्थ फिर दोनो भाइयो को दण्डवत् करते देखकर महाराज के हृदय मे सुख नही समाता है। बेटो को हृदय मे लगाकर दु सह दु ख को मिटाया। जैसे मरे हुए शरीर मे फिर से प्राण का सञ्चार हुआ हो।

व्याख्या वहाँ पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनन्द अमाई। यहाँ देखि नृपति उर सुख न समाई। जिस राम और लक्ष्मण की कीर्ति और करणी को बार बार रनिवास मे महाराज ने वर्णन किया था वे ही राम और लक्ष्मण ऐसी कीर्ति और करणी करके दण्डवत् कर रहे है। पर पूर्व जन्म मे माँगा था मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुमहि अधीना। सो पहिली दशा उपस्थित थी। बिना मणि के फणि सर्प की भांति महाराज रामजी की अनुपस्थिति मे व्याकुल रहते थे। अवलम्ब इतना ही था कि उनके प्रतिनिधि रूप मे मुनिजी साथ थे। महाराज ने लक्ष्मण को सुपुर्द करते समय कह दिया ही था तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ। सा पुन को हृदय मे लगाने के सुख से दु ख को मिटा रहे हैं। जैसे मृतक शरीर मे पुन प्राण का सञ्चार हो रहा हो।

पुनि वसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये ॥
विप्र वृद वदे दोउ भाई। मन भावती असीसें पाई ॥३॥

अर्थ फिर उन्होने वसिष्ठजी के चरणों में सिर झुकाया। प्रेम से प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ ने उन्हे हृदय से लगा लिया। दोनो भाइयो ने ब्राह्मणवृन्द की वन्दना की और वाञ्छित आशीर्वाद पाया।

व्याख्या वसिष्ठजी को सिर नवाना दूसरी बार का प्रणाम है। पहिले दण्डवत् मे पिता के हृदय लगाने से वह केवल उन्ही के लिए प्रणाम समझा गया। इसलिए गुरुजी को पुन प्रणाम किया। इष्टलाभ से वसिष्ठजी मुदित हैं। हृदय लगाना ही इष्टलाभ है। प्रेमातिशय से न चक्रवर्तीजी आशीर्वाद दे सके न वसिष्ठजी दे सके।

गुरुजी के प्रणाम के बाद श्रुतिछन्दरूप विप्रवृन्द को प्रणाम किया। एक आशीर्वाद नही पृथक् पृथक् आशीर्वाद विप्रवृन्द ने दिया। इसलिए कवि ने बहुवचन का प्रयोग किया है। किसी ने कहा पूर्णा सन्तु मनोरथा। किसी ने धर्मसमृद्धिरस्तु। किसी ने शास्त्रसमृद्धिरस्तु। इत्यादि असीसें दी। दोनो भाइयो का साथ ही प्रणाम है।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा ॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता ॥४॥

अर्थ भरतजी ने छोटे भाई के साथ प्रणाम किया। रामजी ने उठाकर छाती से लगा लिया। दोनो भाइयो को देखकर लक्ष्मणजी हर्षित हुए और प्रेम से भरे हुए शरीर द्वारा उनसे मिले।

व्याख्या · उठा लिया कहने से भरतजी का दण्डवत् प्रणाम करना सूचित होता है। भरतजी ने शत्रुघ्न के साथ प्रणाम किया था। यहाँ चारो भाइयो का मिलना है। यह रामचरित सरयू की जल माधुरी है। यथा · अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहु बधु की जलमाधुरी सुवास। अति उत्कण्ठा मे नियमभङ्ग स्वाभाविक है। भरतजी ने शत्रुघ्न के साथ प्रणाम किया और रामजी ने हृदय से लगा लिया। यहाँ तक नियम ठीक रहा।

भरत शत्रुघ्न जब रामजी को दण्वडत् करते थे तभी उनको देखकर लक्ष्मणजी हर्षित हुए। रामजी से मिलकर भरतजी के अलग होते ही उनसे लिपट गये। प्रणाम न कर सके। इसी भाँति शत्रुघ्नजी को तुरन्त गले से लगा लिया। प्रणाम करने का अवसर भी लक्ष्मणजी ने न दिया।

दो पुरजन परिजन जाति जन, जाचक मत्री मीत।
मिले जथाविधि सबहि प्रभु, परम कृपाल बिनीत ॥३०८॥

अर्थ पुर के लोग, मुसाहिब लोग, जाति के लोग, मन्त्री लोग और मित्र, इन सबसे परम कृपालु और विनीत रामजी मिले।

व्याख्या : श्रीरामजी की यही विशेषता है। सबसे तो मिले ही। याचको से भी मिले। यह भानुकुल केतु की बानत है। इनके यहाँ मगन को 'नही' नही

मिलता। पहिला दायज भी इन्ही के हाथ लगा। अब इससे बढकर क्या होगा कि परम कृपालु विनीत रामजी इनसे मिल रहे है। एहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई। अब सबसे मिलने की विधि कहते है। जो जिस योग्य था उससे वैसे मिले। किसी का चरण ग्रहण किया। किसी को प्रणाम किया। किसी का आलिङ्गन किया। किसी को करकमल से स्पर्श किया। किसी को स्मितावलोकन से अनुगृहीत किया। किसीसे कुशल प्रश्न किया।

रामहि देखि बरात जुडानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी ॥
नृप समीप सोहहि सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनुधारी ॥१॥

अर्थ : रामजी को देखकर बारात शीतल हुई। प्रीति की रीति बखानते नही बनती। महाराज के पास चारो बेटे ऐसे शोभित हैं। मानो धन अर्थ धर्मादि चारो पुरुषार्थ शरीर धारण किये हुए है।

व्याख्या : बारात मे सबको बडी उत्सुकता है कि राम और लक्ष्मण दोनो वीरो को कब देखेंगे? यथा कबहि देखिबे नयन भरि राम लखन दोउ बीर। सो आँख भर के देखा। इससे हृदय शीतल हुआ। जो हृदय सुरपुर भोग विलास से शीतल होनेवाला नही था वह रामजी के दर्शन से शीतल हुआ। शीतल वस्तु के स्पर्श से जुडाने : शीतल होने की विधि है। देखने से नही। पर प्रीति ही दूसरी है। उसमे देखने से शीतलता आती है। लोकरीति से विलक्षण होने से अवर्णनीय है। यथा ' सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी।

बारात की महफिल लगी हुई है। महाराज की गद्दी के दक्षिण पार्श्व मे चारो राजकुमार शोभायमान है। रामजी के दाहिने भरतजी। उनके दाहिने लक्ष्मणजी और लक्ष्मण के दाहिने शत्रुघ्नजी शोभित हैं। छोटे भाई दक्षिण भुजा स्थानीय है। अत उनका स्थान दक्षिण भुजा के सन्निकट है। यथा ' राम वाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ऐसी शोभा हो रही है मानो अर्थ धर्म काम और मोक्ष शरीर धारण करके बैठे हुए है। धन और धर्म साधन कोटि मे और काम तथा मोक्ष सिद्धिकोटि मे है। इसी से ऐसा क्रम रखा गया। कवि उस सभा मे दूर सामने खडे है। अत. अर्थ पर ही पहिले दृष्टि जाती है। उसी क्रम से उल्लेख है। यथा : शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और रामजी। राजाओ की पूरी शोभा चारो फलों से युक्त होने मे है। यहाँ मोक्ष से अभिप्राय जीवन्मुक्ति से है।

सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेखी ॥
सुमन बरहि सुर हनहि निसाना। नाकनटी नाचहि करि गाना ॥२॥

अर्थ : बेटो के सहित चक्रवर्तीजी को देखकर बाराती मुदित हैं। पर जनकपुर के नर नारी विशेष मुदित है। फूलो की वर्षा करके देवता दुन्दुभी बजा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही है।

व्याख्या ' जनकपुर के नर नारी बेटो के साथ महाराज दशरथ को देखकर

विशेष आनन्दित है। क्योकि बारातियो ने तो पहिले भी ऐसी झाँकी देखी है। परन्तु जनकपुर के लोगो के लिए यह पहिला अवसर है। अथवा महापुण्यवान महाराज दशरथ को देखकर मुदित थे। अब वे बेटो के सहित उन्हे देखकर विशेष मुदित हुए। ऐसे गुणवान चार कुमारो के होने से महाराज के महापुण्य का अनुमान करते हैं यह जनकपुर निवासियो की मुदितता है।

मिलने के समय से ही देवताओ का डका बज रहा है। पर कवि को लिखने का अवसर अब मिला है। महाराज दशरथ की सभा मे वेश्या का नृत्य और गान नही है। विवाह चाहे सात सौ हो पर एक वेश्या का नृत्य न होने पावे· यह गोस्वामीजी का सुधार है। देवताओ के डङ्का बजाने के उल्लेख से यह पता चलता है कि अप्सराओ का गान और नृत्य आकाश मण्डल मे हो रहा है। भूमण्डल मे नही।

सतानदु अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बदीजन ॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना ॥३॥

अर्थ शतानन्द, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सहित महाराज का सम्मान किया और आज्ञा माँगकर अगवानी करनेवाले लोग लौटे।

व्याख्या बारात की अगवानी मे तथा सत्कार मे स्वय समधी के न जाने की चाल है। अत महाराज जनक स्वय उपस्थित न थे। अगवानी मे जो लोग गये थे और जो लोग बारात को जनवासे मे लाये थे उनमे से पुरोहित शतानन्दजी, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सत्कार की व्यवस्था की। जब सब व्यवस्था हो चुकी तब अगवानियो ने वापस जाने की आज्ञा चाही और पाने पर लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई ॥
ब्रह्मानद लोगु सब लहही। बढउ दिवस निसि बिधि सन कहही ॥४॥

अर्थ पहिले बारात लग्न से आई। इससे नगर मे आनन्द बढ गया। लोग ब्रह्मसुख प्राप्त कर रहे हैं। ब्रह्मदेव से कह रहे हैं कि दिन और रात बढे।

व्याख्या गुरुजी की आज्ञा का यह प्रभाव है कि बिना लग्न देखे बारात चली परन्तु लग्न से पहुँची। अर्थात् अच्छे लग्न म जनकपुर मे[1] प्रवेश किया। प्रथम बारात कहने का भाव यह कि विवाह के लिए राजद्वार पर लगने के लिए दूसरी बारात निकलेगी। पहिली बारात जो बिना दूल्हा के अयोध्या से आई है। उसने जनकपुर मे शुभलग्न से प्रवेश किया। जनकपुर मे ज्योतिष का बडा आदर है। लग्न पर बडा विश्वास है। लग्न से बारात के आने से भावी मंगल की सूचना मिली। प्रजा

---

१ धन तेरस को बारात जनकपुर पहुँची।

राजा में अनुरक्त है। उनके मंगल से अपना मंगल मानती है। अत बारात के लग्न से आने में सबको अधिक आनन्द हुआ।

जन्मोत्सव के समय अयोध्यावासियो ने ब्रह्मानन्द का सुख लिया। यथा · ब्रह्मानन्द मगन सब लोगू। इस समय जनकपुरवासी भी वही सुख ले रहे है। जन्मोत्सव मे · मास दिवस कर दिवस भा। एक दिन महीने भर का हो गया था। इसलिए अवधवासियो ने दिवस निसि के बढने की प्रार्थना विधि से नही की थी। इस समय ऐसा नही हुआ। लोग इस आनन्द से अभी तृप्त नही हुए है। अत विधि से दिन रात के बढने के लिए प्रार्थना कर रहे है।

दो. राम सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर नारि समाज ॥३०९॥

अर्थ · राम और सीता शोभा की सीमा हैं और पुण्य की सीमा दोनो राजा हैं। यही बात जहाँ तहाँ नगर निवासी नरनारि समाज मे मिलकर कह रहे हैं।

व्याख्या · न तो राम और सीता सी सुन्दरता ही ससार मे कही है और न महाराज दशरथ और जनक सा पुण्यात्मा कोई है। यही भाव जो नगरवासी बारात तथा जनवास देखकर लौटते हैं उनके हृदय मे उठ रहा है। और यही चरचा वे परस्पर कर रहे हैं। पुरवासी घर लौटकर जो कुछ नरसमाज मे कहते हैं और नारियाँ घर लौटकर नारीसमाज मे जो कहती हैं उसका साराश इतना ही है. राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरे देही ॥
इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे ॥१॥

अर्थ · राजा जनक के पुण्य की मूर्ति सीताजी है और राजा दशरथ के पुण्य ने रामजी का देह धारण कर रक्खा है। इनके समान तो किसी ने न शिवजी की आराधना की और न किसी ने इनके समान फल प्राप्त किया।

व्याख्या : पहिले केवल रामजी की छवि की चरचा नगर म थी। यथा · बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अब रामजी की छवि और दोनो राजाओ के पुण्य का वर्णन हो रहा है। मिथिला कर्मठ देश है। स्वय जनकजी ज्ञानी होते हुए भी बडे याज्ञिक थे। अत सबका ध्यान उन कर्मो पर गया जिनका यह फल है। कोई कहता है कि राजा के किये हुए पुण्य की मूर्ति वैदेही है और राजा दशरथ के पुण्य की मूर्ति रामजी है। क्योकि अति उग्र पुण्य पाप का यही फल मिल जाता है। यथा अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।

कोई पुण्य का विवरण कर रहा है इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे। सो इन दोनो राजाओ ने शङ्कर की अतीव आराधना की है। तभी सब प्रकार से सम्पन्न है। यथा स्यदन गयद बाजि राजि भले भले भट धन धाम निकर करनिहू न पूजे बर्व। बनिता विनीत पूत पावन

विशेष आनन्दित है। क्योकि बारातियो ने तो पहिले भी ऐसी झाँकी देखी है। परन्तु जनकपुर के लोगो के लिए यह पहिला अवसर है। अथवा महापुण्यवान महाराज दशरथ को देखकर मुदित थे। अब वे बेटो के सहित उन्हे देखकर विशेष मुदित हुए। ऐसे गुणवान चार कुमारो के होने से महाराज के महापुण्य का अनुमान करते है यह जनकपुर निवासियो की मुदितता है।

मिलने के समय से ही देवताओ का डका बज रहा है। पर कवि को लिखने का अवसर अब मिला है। महाराज दशरथ की सभा मे वेश्या का नृत्य और गान नही है। विवाह चाहे सात सौ हो पर एक वेश्या का नृत्य न होने पावे यह गोस्वामीजी का सुधार है। देवताओ के डङ्का बजाने के उल्लेख से यह पता चलता है कि अप्सराओ का गान और नृत्य आकाश मण्डल मे हो रहा है। भूमण्डल मे नही।

सतानदु अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बदीजन ॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना ॥३॥

अर्थ शतानन्द, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सहित महाराज का सम्मान किया और आज्ञा माँगकर अगवानी करनेवाले लोग लौटे।

व्याख्या बारात की अगवानी मे तथा सत्कार मे स्वय समधी के न जाने की चाल है। अत महाराज जनक स्वय उपस्थित न थे। अगवानी म जो लोग गये थे और जो लोग बारात को जनवासे मे लाये थे उनमे से पुरोहित शतानन्दजी, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सत्कार की व्यवस्था की। जब सब व्यवस्था हो चुकी तब अगवानियो ने वापस जाने की आज्ञा चाही और पाने पर लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई ॥
ब्रह्मानद लोगु सब लहही। बढउ दिवस निसि बिधि सन कहही ॥४॥

अर्थ पहिले बारात लग्न से आई। इससे नगर मे आनन्द बढ गया। लोग ब्रह्मसुख प्राप्त कर रहे हैं। ब्रह्मदेव से कह रहे है कि दिन और रात बढे।

व्याख्या गुरुजी की आज्ञा का यह प्रभाव है कि बिना लग्न देखे बारात चली परन्तु लग्न से पहुँची। अर्थात् अच्छे लग्न म जनकपुर म[1] प्रवेश किया। प्रथम बारात कहने का भाव यह कि विवाह के लिए राजद्वार पर लगने के लिए दूसरी बारात निकलेगी। पहिली बारात जो बिना दूल्हा के अयोध्या से आई है। उसने जनकपुर मे शुभलग्न से प्रवेश किया। जनकपुर मे ज्योतिष का बडा आदर है। लग्न पर बडा विश्वास है। लग्न मे बारात के आने से भावी मगल की सूचना मिली। प्रजा

———

१ घन तरग की बारात जनकपुर पहुँची।

राजा मे अनुरक्त है। उनके मगल से अपना मगल मानती है। अत बारात के लग्न से आने मे सबको अधिक आनन्द हुआ।

जन्मोत्सव के समय अयोध्यावासियो ने ब्रह्मानन्द का सुख लिया। यथा ब्रह्मानन्द मगन सब लोगू। इस समय जनकपुरवासी भी वही सुख ले रहे है। जन्मोत्सव मे मास दिवस कर दिवस भा। एक दिन महीने भर का हो गया था। इसलिए अवधवासियो ने दिवस निसि के बढने की प्रार्थना विधि से नही की थी। इस समय ऐसा नही हुआ। लोग इस आनन्द से अभी तृप्त नही हुए है। अत विधि से दिन रात के बढने के लिए प्रार्थना कर रहे है।

दो. राम सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर नारि समाज ॥३०९॥

अर्थ राम और सीता शोभा की सीमा है और पुण्य की सीमा दोनो राजा हैं। यही बात जहाँ तहाँ नगर निवासी नरनारि समाज मे मिलकर कह रहे है।

व्याख्या न तो राम और सीता सी सुन्दरता ही ससार मे कही है और न महाराज दशरथ और जनक सा पुण्यात्मा कोई है। यही भाव जो नगरवासी बारात तथा जनवास देखकर लौटते है उनके हृदय मे उठ रहा है। और यही चरचा वे परस्पर कर रहे हैं। पुरवासी घर लौटकर जो कुछ नरसमाज मे कहते हैं और नारियाँ घर लौटकर नारीसमाज मे जो कहती हैं उसका साराश इतना ही है राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरे देही ॥
इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे ॥१॥

अर्थ राजा जनक के पुण्य की मूर्ति सीताजी है और राजा दशरथ के पुण्य ने रामजी का देह धारण कर रक्खा है। इनके समान तो किसी ने न शिवजी की आराधना की और न किसी ने इनके समान फल प्राप्त किया।

व्याख्या पहिले केवल रामजी की छवि की चरचा नगर म थी। यथा· बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अब रामजी की छवि और दोनो राजाओ के पुण्य का वर्णन हो रहा है। मिथिला कर्मठ देश है। स्वय जनकजी ज्ञानी होते हुए भी बडे याज्ञिक थे। अत सबका ध्यान उन कर्मो पर गया जिनका यह फल है। कोई कहता है कि राजा के किये हुए पुण्य की मूर्ति वैदेही है और राजा दशरथ के पुण्य की मूर्ति रामजी है। क्योकि अति उग्र पुण्य पाप का यही फल मिल जाता है। यथा अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।

कोई पुण्य का विवरण कर रहा है इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे। सो इन दोनो राजाओ ने शङ्कर की अनीव आराधना की है। तभी सब प्रकार से सम्पन्न है। यथा स्यदन गयद बाजि गजि भल भले भट धन धाम निकर करनिहू न पूजे बनै। बनिता विनीत पूत पान्न

सोहावन औ विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै। इहाँ ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक ताको फल तुलसी सो सुनो सावधान ह्वै। जाने विनु जाने कै रिसाने केलि कवहुँक सिवहि चढाये ह्वै हैं वेल के पतौवा द्वै।

इन्ह सम कोउ न भयउ जगमाही। है नहि कतहूँ होनेउ नाही ॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर वासी ॥२॥

अर्थ इनके समान ससार मे न कोई हुआ, न है, न होगा। हम सब भी सकल पुण्य के राशि ससार मे जन्म लेकर जनकपुरवासी होने से हुए।

व्याख्या कोई कहता है कि तीन काल म इनके समान कोई नही हुआ। वसिष्ठजी का भी यही मत है। यथा सुकृती तुम समान जगमाही। भयउ न है कोउ होनेउ नाही। महाराज जनक इन्ही क समकक्ष है। यथा सम समधी देखा हम आजू। अत इनके समान भी न कोई था, न है, न होगा। कोई कहते है कि जनकजी की प्रजा होने से हम भी पुण्य की राशि हो गये। यथा राजा तथा प्रजा। राजा पुण्य की सीमा है हमलोग राशि है। पुण्य की सीमा होने का फल राजा को मिल रहा है और राशि होने का फल प्रजा को मिल रहा है। अथवा जनकपुर महा पुण्यतीर्थ है। इसके सेवन से हमलाग पुण्य की राशि हो गये। पुण्यराशि होने का फल कहते है

जिन्ह जानकी राम छवि देखी। को सुकृती हम सरिस विसेखी ॥
पुनि देखव रघुवीर विवाहू। लेव भली विधि लोचन लाहू ॥३॥

अर्थ जिन्हाने जानकी और राम की छवि देखी है। हमारे सदृश विशेप पुण्यात्मा कौन है। फिर रघुवीर का विवाह देखेंगे और भली प्रकार स लोचन का लाभ लगे।

व्याख्या राम जानकी की छवि देखना सकल पुण्य की राशि हुए विना सम्भव नही। यह विशेप सुकृत का फल है। क्योंकि पुण्य का फल ता स्वर्ग है। परन्तु यह दर्शन तो इतना दुर्लभ है कि सरभङ्ग मुनि ब्रह्मलाक जा रहे थे सो इस दर्शन के लिए रुक गये। यथा जात रह्यो विरचि के धामा। सुनेउ श्रवन वन अइहै रामा। चितवत पथ रहेउँ दिन राती। अव प्रभु देखि जुडानी छाती।

इतना ही नही और देखना है। रघुवीर विवाह दखना है। जो ब्रह्मलोक का रानी शारदा को भी सुलभ नही। यथा राजत राम जानकी जोरी। स्याम सरोज जलद सुदर वर दुलहिन तडित वरन तन गोरी। व्याह समय सोहति वितानतर उपमा कहुँ न लहत मति मोरी। मनहु मदन मजुल मडप मँह छवि सिगार शोभा इक ठौरी। मगलमय दोउ अग मनाहर ग्रथित चूदरी पीत पिछोरी। कनक कलस कहँ देत भावरी दखि प्रीति सारद भइ भोरी। इस प्रकार जहाँ चार आदमी इकट्ठे है वही ऐसी वाते हो रही है। अत चार पुरुपा का सवाद कहा।

कहहिं परसपर कोकिलबयनी। येहि बिवाह बड लाभु सुनयनी ॥
बडे भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई ॥४॥

अर्थ कोकिलवयनी आपस मे कहती हैं कि हे सुनयनी। इस विवाह म बडा लाभ है। बडे भाग से ब्रह्मदेव ने बात बनाई है। दोनो भाई आकर आँखो के मेहमान अतिथि हागे।

व्याख्या कहने और सुननेवाली दोनो कोकिलवयनी और सुनयनी है। नरसमाज का हाल कहकर अब नारीसमाज का हाल कहते है। यद्यपि रामजी क नगरदर्शन के समय सभी घरो की स्त्रिया ने रामजी के रूप की प्रशसा की। यथा हिय हरखहि बरखहि सुमन सुमुखि सुलोचनि बृद। जाहिं जहाँ जहँ बधु दाउ तहँ तहँ परमानद। तथापि सवाद अष्ट सखियो का ही लिखा गया। इसी भाँति यहाँ भी अष्ट सखियो का सवाद कहते हैं। इसी सवाद म सब नारिया के कथन का अन्तर्भाव है। १ जिस सखी ने कहा था कि जेहि बिरचि रचि सीय सँवारी। सोइ स्यामल बर रचेउ बिचारी। वही कहती है एहि बिवाहु बड लाभ सुनयनी। दूसरे विवाह म अनुरूप जोडी हो जाती। सबसे बडा लाभ है कि अनुरूप जोडी मिली। इससे दम्पति का लाभ, दोना पक्ष का लाभ, सब लाभ ही लाभ है।

२ जिसने कहा था सकर चाप कठारा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा। सब असमजस अहै सयानी। वह कह रही है बडे भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहै दोउ भाई। अब ये दोनो भाई कभी कभी दर्शन देते रहेगे। राजा के अतिथि होगे और हमलोगो के नयना के अतिथि हागे।

दो बारहिं बार सनेह बस, जनक बोलाउब सीय।
लेन आइहहिं बधु दोउ कोटि काम कमनीय ॥३१०॥

अर्थ जनकजी बार बार स्नेहवश होकर सीताजी को बुलायेंगे। करोडो कामो से भी सुन्दर दोना भाई लने आवेगे।

व्याख्या ३ जिसने कहा था नाहि त हम कहँ सुनहु सखि इनकर दरसन दूरि। यह सघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि। वही कह रही है कि पुण्य पुराकृत उदय हुआ। इनका दर्शन अब दुलभ न होगा। जनकजी बडे दुहितृ वत्सल है। बेटी के लिए इतना बडा स्वयवर रचा। बारात के सत्कार के लिए इतना कर रहे हैं। ये स्नेह के वश बारबार सीताजी को बुलावेंगे। तब विदा कराने के लिए बारम्बार दोनो भाइया को आना पडेगा। विना पति के विदा कराने आये स्त्रियो का सम्मान नही होता। अत विदा कराने पति का जाना पडता है। अत ये लोग बारबार आवेंगे और हमलोग दर्शन पावेंगे।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
तब तब राम लखनहिं निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी ॥१॥

अर्थ · अनेक प्रकार से आतिथ्य सत्कार होगा। हे माई! ऐसी ससुराल किसे प्रिय न होगी। तब तब राम लखन को देखकर सब पुर के लोग सुखी होंगे।

व्याख्या . ४ जिसने कहा था कोउ कह ये भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने। वही कहती है कि बिना सम्बन्ध ही इतना सत्कार हुआ था। अब तो घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। विविध प्रकार से सत्कार तो दामाद का सामान्य लोग करते है। महाराज जनक के सत्कार का कहना ही क्या है? ऐसी ससुराल स्वभाव से रामजी को प्रिय होगी। अत अवश्य आना जाना लगा रहेगा।

सखि जस राम लषन कर जोटा। तैसेइ भूप सग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥२॥

अर्थ हे सखि! जैसा राम लक्ष्मण का जोडा है वैसे ही राजा के सग दो लडके हैं। श्याम गौर सब अङ्ग सुन्दर हैं। वे सब कहते है जो देख आये हैं।

व्याख्या ५ जिसने कहा था ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्ह के कल जोटा। वही कह रही है सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप सग दुइ ढोटा। पहिले भी इसने अपने पति से सुनकर कहा था। यथा जो मैं सुना सो सुनहु सयानी। इस बार भी उन्ही से सुनकर कहती है कि वे लोग बतलाते हैं जो देखकर आये हैं। पति की कही हुई बातो को सङ्कोच से स्त्रियाँ इसी प्रकार से कहती है। पति से उसने सुन रक्खा है। महाराज दशरथ के दो लडके है जो ठीक राम लक्ष्मण से है। राम लक्ष्मण की भाँति वे दोनों भी श्याम गौर और सुन्दर हैं।

कहा एक मै आजु निहारे। जनु बिरचि निज हाथ सँवारे॥
भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहि नर नारी॥३॥

अर्थ एक ने कहा मैंने तो आज ही देखा है। मानो ब्रह्मदेव ने अपने हाथ से सँवारा है। भरत तो रामजी जैसे है। एकाएक कोई पहचान नही सकता।

व्याख्या ६ जिसने कहा था · कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह येह रूप निहारी। वह कहती है कि मै तो आज अपनी आँखो से देखती चली आरही हूँ। पहली सखी की बात की पुष्टि करती है। भाव यह कि बनानेवाले सबके ब्रह्मा है। पर अपने हाथ से किसी को नही बनाते। स्वय ऐसा यन्त्र बना दिया है कि आप से आप सृष्टि होती रहती है। उन्हे अपने हाथों कुछ नही करना पडता। पर इनके बनाने में तो मानो उन्होंने स्वय परिश्रम किया है। यथा : जनु बिरचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रकटि देखाई। ७ नाम का भी पता लगा लाई है। कहती है कि भरत और राम मे ऐसा सादृश्य है कि एकाएक यह पहिचानना कठिन हो जाता है कि कौन राम हैं और कौन भरत है। नर के लखने मे धोखा हो। पर नारियो के लखने मे धोखा नही होता। पर राम और भरत का सादृश्य ऐसा है कि नारी को भी धोखा हो सकता है।

लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण और शत्रुघ्न एक रूप के हैं। नख से शिख तक सब अङ्ग अनूप हैं। मनमें अच्छे लगते हैं। मुख से कहे नहीं जा सकते। उपमा के लिए त्रिभुवन में कोई नहीं है।

व्याख्या : दो भाई एक रंग के और दो भाई दूसरे रंग के हैं। रामजी और भरतजी को कह चुकी। अब लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी को कहती है। ये दोनों भी एक रूप के हैं। इनका भी भेद लखना कठिन है। सुन्दरता का वर्णन करती है कि मन को तो प्यारे लगते हैं। परन्तु मुख से कोई वर्णन करना चाहे तो कर नहीं सकता। क्योंकि नख से शिख तक सब अङ्ग अनूप हैं। एक वस्तु को दूसरे से मिलान करके ही वर्णन हो सकता है। वैसी दूसरी वस्तु संसार में नहीं जिसका पटतर दिया जा सके। ८ यह कहती है कि मनमें अच्छे लगते हैं मुख से वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ पर इसी सखी के पूर्वकथन का अनुवर्तन करना पड़ेगा। यथा विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। इत्यादि। इस भाँति उन्हीं आठों सखियों का संवाद है। जिन्हें अपरा प्रकृति रूप से वर्णन किया जा चुका है। भेद क्रम का है। यहाँ सबसे पिछली सखी पहिले बोली। उनकी पहिले के कही हुई बातें ऐसी सम्बद्ध हैं कि लाचार होकर मानना पड़ता है कि वे ही सखियाँ हैं।

छं उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहु चारिउ भाइ इहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं कि कविकोविदो का यह कथन ८ कि इनकी उपमा कहीं भी नहीं है। बल, विद्या, विनय, शील और शोभा के समुद्र में अपने ऐसे आप ही हैं। सब पुरनारियाँ आँचल पसारकर ब्रह्मदेव से माँगती हैं कि चारों भाइयों का ब्याह इसी नगर में हो और हम मंगल गायें।

व्याख्या : सन्देह उठता है कि कुलवधू होकर इसने ऐसा कैसे कह दिया कि तीनों लोक में कोई नहीं है? क्या इसने सूर्पणखा की भाँति तीनों लोक में विचरण किया है। यथा मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं। देख्यौं खोजि लोक तिहुँ माहीं। अतः इसके कहने का क्या प्रमाण? इसलिए श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि पण्डित कवि लोग कहते हैं कि इनकी उपमा कहीं नहीं है। अतः पण्डित कवियों के कहने से उसका दुर्बल कथन भी पुष्ट हो गया। जिसे बल होता है। उसे विद्या नहीं। जिसे दोनों होता है उसे अभिमान हो जाता है। अतः उसमें विनय का अभाव होता है। जिसमें तीनों हों उसमें सदाचार का भी होना दुर्लभ है। चारों हुए तो अच्छा

रूप नही होता। यहाँ एक एक पाँचा गुणो के समुद्र है। समुद्र चार है और वे भी चार है। अत इनके समान ये ही है। यथा सागर सागरोपम। इस भाँति स्त्रिया विधि से प्रार्थना करती है। पुरुष करसम्पुट करके प्रार्थना करते हैं। पर स्त्रियाँ आँचल पसारकर माँगती है। आँचल पसारकर ब्रह्मदेव से चारा भाइयो का जनकपुर म ही व्याह होना माँगती हैं। इनके लिए कह आये हैं कहहि परसपर कोकिल बयनी। एहि विवाह बड लाभ सुनयनी। इन्ही कोकिलवयनी और सुनयनियो ने धनुषभङ्ग होने पर जयमाल पडने के समय गान किया था। यथा जूथजूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल वयनी। सो इन्हे चारो भाइयो के व्याह म मङ्गलगान करने की अभिलाषा है। इस पुर म व्याह हो तो हम मङ्गल गाव।

सो कहहि परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सब करब पुरारि, पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

अर्थ स्त्रियाँ आँखो म आँसू भरकर और पुलकित शरीर होकर आपस म कहती हैं कि सखि! सब पुरारि पूरा करगे। क्योकि दोना राजा पुण्य के समुद्र हैं।

व्याख्या अति उत्कण्ठा के कारण इन स्त्रियो को सात्त्विक भाव हुआ। आखा म आँसू आगया। शरीर पुलकित हो उठा। कहने लगी कि सखी यह सब वही महादेव करेंगे जिनके ये दोना राजा आराधना करनेवाल हैं। यथा इन सम कोउ नहि सिव अवराधे। कोउ नहि इन समान फल लाधे। और दूसरी बात यह भी है कि ये दानो राजा केवल भक्त ही नही बडे पुण्यात्मा हैं। इन्हे पुण्यपयोनिधि कहिये। सो इनके पुण्य का फल भी महादेव देंगे। यथा कर्म प्रशस्त फलति पुरुषाराधनमृते। सुकृति अवध दोउ राज यह कहना नरनारिसमाज का सिद्ध हुआ।

येहि विधि सकल मनोरथ करही। आनद उमगि उमगि उर भरही॥
जे नृप सीय स्वयवर आए। देखि बधु सब तिन्ह सुख पाए॥१॥

अर्थ इस विधि से सब मनोरथ कर रहे हैं। आनन्द को उमग उमगकर हृदय म भर रहे हैं। जो राजा सीताजी के स्वयवर म आये थे। सब भाइयो को देखकर उन लोगा ने सुख पाया।

व्याख्या ब्रह्मानद लोग सब लहही। बढउ दिवस निसि विधि सन कहही से उपक्रम करके व्याहिअहुँ चारिउ भाई इहि पुर हम सुमगल गावहि से उपसहार किया। यह तो एक समाज का मनोरथ था। मनोरथ सभी पुरवासा कर रहे थे। सबके मनोरथ कहा तक लिखे जाय। एक समाज का वृत्तान्त लिखकर दिखलाया कि मनारथ की विधि सवत्र यही थी। मनोरथ से ही आनन्द उमग रहा है। उसे हृदय म भर रहे हैं। दूसरे विचार के लिए स्थान नही है।

जनकपुर वासियो की गतिविधि कहकर अव बाहरी लोग जो जनकपुर मे आये हैं उनका हाल कहते हैं। पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा। जो राजा वाहर से सीताजी के स्वयवर मे आये थे उनमें से कुटिल राजा तो पहिले ही चलते बने थे। यथा ' अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गर्वहि पराने। साधु राजा वारात देखने के लिए ठहर गये थे। उन्हे रामजी के दर्शन से सुख मिलता था। यथा : जगत पिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी। अव चारो भाइयो के दर्शन से तृप्त हो गये।

कहत राम जसु विसद विसाला। निज निज भवन गये महिपाला ॥
गये बीति कछु दिन येहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥२॥

अर्थ . निर्मल और विशाल रामयश कहते हुए राजा लोग अपने अपने घर गये। कुछ दिन इस भाँति वीत गये। पुरजन और वाराती आनन्दित थे।

व्याख्या : वारात आजाने पर ठहरना ठीक नही। क्योकि किसी ओर से निमन्त्रित नही हैं। इसलिए अपने अपने घर गये। साधु हैं : इसलिए रामजी के जगद्-व्यापी यश का वर्णन करते घर गये। रामयश के वर्णन का सामर्थ्य साधु को ही होता है। कुटिल के मुख से रामयश नही निकलता। यथा : वर्षहि राम सुयस वरवारी। मधुर मनोहर मगलकारी। ये साधु राजा धनुष के पास भी नही गये थे। यथा . जिनके कछु विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाही। अत इनकी हार भी नही हुई थी। इन्हे रामयश वर्णन में उत्साह था और जो ' कीरति विजय वीरता भारी। चले चापकर वरवस हारी। उनके मुख से रामयश नही निकल सका। वे चुपके से पहिले ही चले गये थे।

राजाओ का जाना कहकर अव फिर जनकपुर का हाल कहने लगे कि पुरवासी तो व्याह देखने के मनोरथ से आनन्दित है। सभी वाराती लोग आतिथ्य सत्कार तथा रामजी के दर्शन से आनन्दित है। इस भाँति कुछ दिन वीत गये। भाव यह कि वारात पहुँचने के कुछ दिनो बाद हो लग्न दिन की सम्भावना थी। शरद् ऋतु मे व्याह का लग्न नही होता। कार्तिक शुक्ल एकादशी हरिप्रवोधिनी है। हरि के शयनकाल मे मगलकार्य स्थगित रहते है। इस बीच मे साकाश्यापुरी से महाराज जनक के भाई राजा कुशकेतु भी आगये।

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहन मासु सुहावा ॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु वर वारू। लगन सोधि विधि कीन्ह विचारू ॥३॥

अर्थ : मगल का मूल लग्न का दिन आगया। हिमऋतु और सुन्दर अगहन का महीना। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, श्रेष्ठ दिन और लग्न को शोध करके ब्रह्मदेव ने विचार किया।

व्याख्या मगल का मूल हिमऋतु . हेमन्त है। उसी मे विवाह के लग्न देखे जाते हैं। उसमे भी अगहन का महीना शोभन है। पूस में तो खरवाँस ' खरमास

लग जाता है। उसमें कोई मगलकार्य नही होता। इसलिए सोहावा मास अगहन ही है। भगवान् भी कहते है मासाना मार्गशीर्षोऽहम्। अत इसी महीने मे विवाह के लग्न देखे जाते हैं।

अत अगहन के महीने के आजाने पर स्वय ब्रह्मदेव ने विवाह का लग्न निश्चय किया। क्योकि आचार्यो ने लग्न की ही प्रशसा की है। यथा लग्नमेव प्रशसन्ति भृगुनारदकश्यपा। ब्रह्मदेव ने लग्न के साथ ही साथ ग्रह, तिथि, नक्षत्र योग और वार का भी विचार किया।

पठै दीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई ॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहि विधाता ॥४॥

अर्थ उसे नारद के हाथ भेज दिया। वही राजा जनक के ज्योतिषियो ने भी निश्चय किया था। लोगो ने भी यह बात सुनी। कहने लगे कि ज्योतिषी क्या हैं ब्रह्मा है।

व्याख्या अगहन सुदी पञ्चमी को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र मे व्याह का लग्न ठीक करके लग्नपत्री नारदजी के हाथ भेज दी। यहाँ जनकजी के ज्योतिषियो ने भी विचार करके वही लग्न स्थिर कर रक्खा था। जब लग्नपत्री बाँची गई तो उसम भी वही लग्न निकला। बात फैल गई। लोग कहने लगे कि हमारे यहाँ के ज्योतिषी विधाता है। क्योकि उनका विचार ब्रह्मदेव के विचार से कम नही प्रमाणित हुआ इस भाँति मिथिला के ज्योतिषियो की प्रशसा हुई। नारदजी के लग्नपत्री लाने और ब्रह्मदेव के लग्न विचारने की बात ऐसे महत्त्व की थी कि इसकी चर्चा नगर भर मे फैल गई। ब्रह्मदेव जानते थे कि वसिष्ठजी लग्न न देखगे। उनका मत है तुम कहँ सर्वकाल कल्याना। अत स्वय उन्होने देखा क्योकि जगत् का मगल इस विवाह पर निर्भर था। यथा तेहि अवसर रावन नगर असगुन असुभ अपार। होहिं हानि भय मरन दुख सूचक बारहि बार।

दो धेनुधूरि बेला बिमल, सकल सुमगल मूल।
बिप्रन कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल ॥३१२॥

अर्थ निर्मल गोधूलि वेला को निर्मल कहते है। यह सब सुमङ्गल का मूल है। अनुकूल शकुन देखकर ब्राह्मणो ने राजा से कहा।

व्याख्या गोधूलि वेला को निर्मल कहते हैं। यह सब सुमङ्गल का मूल है। इस समय भगवान् भूतनाथ अपने गणो के साथ जगत् मे विचरण करते है। इसके सामने लग्न की भी कोई गिनती नही है। यथा नास्यामृक्ष न तिथिकरण नैव लग्नस्य चिन्ता। नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा। नो वायोगो न मृतिभवन नैव जामित्रदोष। गोधूलि सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता। मु चि। तिस-पर ब्राह्मणो ने स्वरशास्त्र से शकुन भी देख लिया। स्वरशास्त्र से मल खाने से ही ज्योतिष का फल मिलता है। यथा स्वरहीनस्तु दैवज्ञो नाथहीनो यथा गृह।

शकुन कार्यारम्भकाल का ही लिया जाता है। अत. यहाँ शकुन से स्वरशास्त्र का शकुन अभिप्रेत है। तब ब्राह्मणो ने राजा विदेह से कहा। भाव यह कि विलम्ब करने से गोधूलि न सधेगी।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा ॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब लाए ॥१॥

अर्थ : उपरोहित सतानन्दजी से तब राजा ने कहा कि अब देर का कारण क्या है। तब सतानन्दजी ने मन्त्रियो को बुलाया। वे सब मङ्गल साजकर ले आये।

व्याख्या : ब्रह्मा जी का दिया हुआ लग्न है। ब्राह्मण लोग भी अनुकूल समय कहते हैं। विलम्ब करने से गोधूलि भी नही सधेगी। अत विलम्ब करने का कोई कारण नही दिखाई पड़ता। पुरोहित पर पूरा राज्य का भार रहता है और विशेषत धर्म का भार तो सभी उसी पर रहता है। इसलिए राजा ने उपरोहित से कहा। राजाज्ञा सर्वोपरि है। समय आने पर वह सब पर चली है। स्वय वसिष्ठजी पर राजाज्ञा चलती देखी जायगी। यथा : तब नरनाइ वसिष्ठ बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए। अब देर का क्या कारण है ? यह कहकर राजा कारण नही पूछते जल्दी करने को कहते है। पुरोहित की आज्ञा मन्त्री पर भी चलती है। अत पुरोहितजी ने मन्त्रियो को बुलवाया। जो आज्ञा पुरोहितजी देनेवाले थे उसे मन्त्रियो ने पहिले से ही ठीक कर रक्खा था। उनके बुलाने पर सब मङ्गल साज जिसे लेकर बारात बुलाने के लिए जाना है साजकर ले आये। मङ्गल साज का विवरण करते हैं :

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे ॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहि बेद धुनि बिप्र पुनीता ॥२॥

अर्थ : शख, नगाडे और मृदङ्ग बहुत से बजने लगे। मङ्गलघट शुभ शकुन सब साजे गये। सुन्दर सुहागिनियाँ गीत गाने लगी और ब्राह्मण लोग वेदो की पवित्र ध्वनि करने लगे।

व्याख्या : सबके आगे शख, नगाडा आदि वाजे बजते चले। उनके पीछे पल्लवादि से सयुक्त मङ्गल घट आदि लेकर गीत गाती हुई सुन्दर सुहागिनियाँ चली। उनके पीछे वेदध्वनि करते हुए ब्राह्मण लाग चले। उनके पीछे स्वागत करके बारात को बुलानेवाले सरदार लोग चले।

लेन चले सादर येहि भाँति। गये जहाँ जनवास बराती ॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू ॥३॥

अर्थ : आदर के साथ इस भाँति लेने चले और जनवासे मे बारातियो के पास गये। कोसलाधीश का साज समाज देखकर उन्हे इन्द्र भी अत्यन्त छोटे जान पड़े।

व्याख्या इस भाँति पुरोहित मन्त्री आदि जनवासे मे वारातियो के पास गये। भाव यह कि वारातियो का सत्कार पहिले और महाराज का पीछे। वहाँ कोसलाधीश का समाज देखा। स्वय महाराज दशरथ को देखा। जबतक रामजी उनके पास नही थे तबतक तो महाराज समाजसहित इन्द्र से जान पडते थे। पर आज रामजी के आजाने से महाराज दशरथ के सामने इन्द्र और उनका समाज भी बहुत फीका जँचता है।

भयेउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ॥
गुरहिं पूछि करि कुल विधि राजा। चले सग मुनि साधु समाजा॥४॥

अर्थ उन्होने निवेदन किया कि समय हो गया अब पधारा जाय। यह सुनते ही डङ्को पर चोट पडी। गुरुजी से पूछा। कुलधर्मानुसार कुलविधि करके मुनि साधुसमाज के साथ महाराज चल पडे।

व्याख्या यहाँ भी शङ्ख निशान और पणव के शब्द सुनकर बारात की सब तैयारी ठीक है। उधर महाराज से प्रार्थना हुई कि समय हो गया। पधारना चाहिए। इधर डके पर चोट पडी इससे व्यवस्था की सुन्दरता कही। महाराज गुरुआज्ञा पुर सरही सब कार्य करते हैं। अत गुरुजी से पूछा। वरयात्रा के समय रामजी मिथिला म थे। अत पूरी कुलविधि न हो सकी। कुछ छूट गई। अत उसे इस समय गुरुजी से पूछकर पूरा कर रहे हैं। गुरुजी कुलविधि सब जानते हैं रघुवश मात्र के पुरोहित हैं। कितने राजा रघुवश मे हो गये पर गुरुजी वही है। उन्होने विधि बतलायी। महाराज उस कृत्य को पूरा करके मुनि साधु समाज के साथ चले। गुरु विप्र धेनु सुर सेवी हैं। अत समधी बनकर चलने के समय मे भी मुनि और साधु समाज साथ है।

दो भाग्य विभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख, जानि जनम निज वादि॥३१३॥

अर्थ अवधेश का भाग्य और ऐश्वर्य देखकर ब्रह्मा आदि देवगण अपना जन्म व्यर्थ समझते हुए हजारो मुख से प्रशसा करने लगे।

व्याख्या न ऐसा विभव ब्रह्मलोक मे है और न ऐसा भाग्य ब्रह्मदेव का है। श्रीरामजी की वारात है। अत इसके ऐश्वर्य के सामने दूसरा ऐश्वर्य जँच नही सकता। अवधेश का यह भाग्य है कि जासु सनेह सकोच वस राम प्रगट भये आय। यह भाग्य किसी देवता का नही है। यथा जिनहि विरचि वड भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता। अत सहस्रमुख से प्रशसा करने लगे। अर्थात् प्रशसा करने म थक नही रहे हैं। अपने जन्म को व्यर्थ मानते हैं। चक्रवर्तीजी के जन्म को सफल मानते हैं।

सुरन्ह सुमगल अवसरु जाना। वरपहिं सुमन वजाइ निसाना॥
सिव ब्रह्मादिक विवुध वरूथा। चढे विमानन्हि नाना जूथा॥१॥

अर्थ देवताओ ने सुमङ्गल का अवसर जाना। डङ्का बजाकर फूल बरस रहे हैं। शिव ब्रह्मादि देवगण झुण्ड के झुण्ड विमान पर चढे हुए है।

व्याख्या देवताओ ने सुमङ्गल का अवसर अर्थात् बारात के चलने का समय जाना। इधर बारात मे पहिल से ही डङ्का बज रहा था। सो महाराज के चलते ही उधर आकाश से देवताओ ने पुष्पवृष्टि की और डङ्का बजाया। जिनके भाग्य मे आवश्यकता पडने पर जलवर्षा भी सुलभ नही है। उन्हे पुष्पवर्षा का असम्भव मालूम पडना ठीक ही है।

इधर महाराज गजारूढ हुए। उधर आकाश मे शिव ब्रह्मादि त्रिदेव तथा लोकपालो का समाज तथा गण देवता वसुगण रुद्रगण आदित्यगण विमानो पर चढे।

प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले विलोकन राम बिआहू ॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे ॥२॥

अर्थ प्रेम से शरीर मे पुलक है और हृदय मे उछाह है। रामजी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवताओ को अनुराग हुआ। अपने अपने लोक सबको छोटे जँचने लगे।

व्याख्या हृदय मे उछाह होने से सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो आया। रामजी का विवाह देखने आकाशमार्ग मे चले। इस भाँति दो बारात चली। नीचे धरती पर मनुष्यो की। ऊपर आकाश म देवताओ की। बाराती रामजी का विवाह करने चले और देवता देखने चले।

राजा विदेह की महाजनो को आज्ञा हुई थी नगर सँवारहु चारिहु पासा। सो उन लोगो ने नगर को ऐसा सजाया कि देवताओ को अपना अपना लोक हलका जँचने लगा। यथा जेहि तेरहुत तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहि भुवन दसचारी।

चितवहि चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना ॥
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना ॥३॥

अर्थ चकित होकर विचित्र मण्डप देखने लगे। नाना प्रकार की सब रचनाएँ अलौकिक थी। नगर के स्त्री पुरुष रूप के निधान, सुघर, सुधर्म, सुशील और सुजान थे।

व्याख्या देवता लोग आकाश मे हैं। अत इन्हे वितान भी दिखाई पड रहा है। ऐसा विचित्र वितान है कि उसे देखकर वे लोग भी चकित हैं। महाराज जनक की आज्ञा थी रचहु बिचित्र बितान बनाई। सो ऐसा विचित्र बनाया कि उसे देखकर ब्रह्मदेव का मन भूल जाय। अत देवता लोग चकित होकर उस विचित्र वितान को देख रहे हैं। नाना प्रकार की अलौकिक रचनाएँ हैं। कहना कठिन है कि ये सब नकली हैं या असली। नगरवासी सभी स्वरूपवान्, मनोहर, धर्मशील, सुशील और सुजान हैं। यह भी अपूर्वता है।

तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारी। भये नखत जनु विधि उँजियारी ॥
विधिहि भयउ आचरजु विसेखी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥४॥

अर्थ उन्हे देखकर सब देव और देवियाँ चन्द्रमा के उँजेले मे नक्षत्र की भाँति हो गई। ब्रह्मदेव को विशेष आश्चर्य हुआ। उन्हे अपनी करणी कही कुछ नही दिखाई पडी।

व्याख्या देवता लोग ऊपर से देखते हैं तो जनकपुर उन तेजस्वियो के कारण चन्द्रविम्ब सा दिखाई पडा और ये लोग तारा की भाँति हतप्रभ मालूम होने लगे। चन्द्र के उँजेले के सामने तारागण दब जाते हैं। रूप मे, सुघरता मे, धर्म मे, सुजनता मे, किसी मे उनके जोड के नही हैं।

विधि प्रपञ्च गुन अवगुन साना है। शुद्ध गुण या शुद्ध दोष विधि प्रपञ्च मे है नही और यहाँ कोई दोष कही से लखाई नही पडता है। इसलिए ब्रह्मदेव को बडा आश्चर्य हो रहा है कि मेरी करणी तो यहाँ कुछ दिखाई ही नही पडती है।

दो सिव समुझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय रघुवीर विआहु ॥३१४॥

अर्थ शिवजी ने सब देवताओ को समझाया कि आश्चर्य मे न भूल जाओ। हृदय मे धीर धरके विचारो तो कि यह सीताजी और रघुवीर का विवाह है।

व्याख्या ब्रह्मदेव ही गडबड मे पड गये। तब कौन समझावे। तब शिवजी ने समझाया कि आश्चर्य मे ऐसे मग्न न हो कि मुख्य बात ही भूल जाय। धैर्य धारण करके विचार करो कि यह विवाह किसका है? परम पुरुष और आदिशक्ति का सम्मिलन है। वह सर्वाश्चर्यमय हैं तो यह अघटित घटना पटीयसी हैं। इनके विवाह मे आश्चर्यमय बातो का न होना ही आश्चर्य है।

जिन्हकर नाम लेत जगमाही। सकल अमंगल मूल नसाही ॥
करतल होहि पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ॥१॥

अर्थ शिवजी ने कहा कि जिनका नाम लेते ही ससार मे सब अमङ्गल का मूल नष्ट हो जाता है। चार पदार्थ हाथ मे आजाते है। वही सीताराम है।

व्याख्या नामी की महत्ता से ही नाम की महिमा है। अत नाम की महत्ता कहकर नामी की महिमा सूचित करते है। अन्य स्थानो पर राम नाम की महिमा कहा है। यहाँ सीताराम नाम की महिमा कहते हैं कि सीताराम ऐसा उच्चारण करने से अमङ्गल मूल ही नष्ट हो जाता है। फिर अमङ्गल हो तो कैसे हो? सीताराम नाम केवल दोषापनयन ही नही करता गुणाधान भी करता है। इसके उच्चारण से धर्मार्थ काम मोक्ष हाथ तले आजाता है। इन्ही नामो के नामी सीताराम हैं। उनके विवाह मे दोष की उपस्थिति कैसे सम्भव है? तुम लोगो को यही सन्देह है कि दोषरहित पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि मे कहाँ से आये? सो आये कही से नही। पदार्थ वे ही हैं। पर उनमे दोषापनयन और गुणाधान हो गया है।

एहि विधि संभु सुरन्ह समुझावा । पुनि आगे बरवसहु चलावा ॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता । महामोद मन पुलकित गाता ॥२॥

अर्थ : इस भाँति शिवजी ने देवताओ को समझाया और फिर श्रेष्ठ बैल · नन्दी को आगे बढाया । देवताओं ने दशरथ को जाते देखा । उनके मन मे बडा आनन्द था और रोमाञ्च हो रहा था ।

व्याख्या : शिवजी के समझाने की विधि कही । उनके समझाने से सबका सन्देह दूर हुआ । यथा . सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रविकर वचन सम । देव समाज मे प्रथम महादेव सबके आगे हैं । समझाने के समय बैल को रोक दिया था । सबकी शका का समाधान करके उसे आगे बढाया ।

समाधान हो जाने पर फिर बारात की ओर ध्यान गया । सब मुदित हैं पर चक्रवर्तीजी को महामोद और शरीर मे पुलक है । सात्त्विक भाव मे डूबाडूब हैं । रोमाञ्च हो रहा है ।

साधु समाज संग महिदेवा । जनु तनु धरे करहि सुख सेवा ॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी । जनु अपवरग सकल तनुधारी ॥३॥

अर्थ . साधु मण्डली और ब्राह्मण साथ मे हैं । मानो शरीर धारण करके सुख सेवा कर रहे है । चारो सुन्दर लडके साथ मे हैं । मानो मोक्ष के चारो प्रकार शरीर धारण किये हुए हैं ।

व्याख्या · मुनि साधु समाज के साथ महाराज चले है । अतः मुनि साधु समाज से घिरे हुए चले जा रहे हैं । ग्रन्थकार कहते है कि मुनि साधु के व्याज से मानो सब सुख शरीरधारी होकर महाराज की सेवा कर रहे हैं । मुनि साधु का सग ही सत्सग है । कहेगे : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अग । तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग । अतः विप्र साधु समाज से घिरे हुए पुरुष के लिए यह कहना अत्युक्ति नही है कि सम्पूर्ण सुख उसकी सेवा कर रहे हैं ।

इतना ही नही चारो सुन्दर बेटे भी साथ मे शोभायमान हैं । ग्रन्थकार कहते हैं कि मानो सालोक्य, सामीप्य, सारूप तथा सार्ष्टि ये चारो मोक्ष शरीरधारी होकर साथ हैं । जब चाहे जिससे काम लें ।

मरकत कनक बरन बर जोरी । देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी ॥
पुनि रामहि बिलोकि हिय हरखे । नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरखे ॥४॥

अर्थ : नीलमणि और सोने की श्रेष्ठ जोडी देखकर देवताओ की थोडी प्रीति नही हुई । फिर रामजी को देखकर हृदय से हर्षित हुए । राजा की प्रशसा करके फूलो की वर्षा की ।

व्याख्या : रामजी और भरतजी नीलमणि के समान श्याम लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी स्वर्ण के समान गौर हैं । इन्ही चारो भाइयो को 'मरकत कनक बरन

वर जोरी' कहते हैं। राम और भरतजी आगे है और लक्ष्मण शत्रुघ्न पीछे हैं। इन जोडियो को देखकर देवताओ को बडी प्रीति हुई।

फिर चित्त आकर रामजी पर ठहर गया। क्योकि चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यही बात सर्वत्र पाई जाती है। परशुराम जी ने भी दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से रामहिं चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। इसी भाँति यहाँ भी देवता लोग रामजी को देखकर हर्षित हुए। राजा के पुण्य की प्रशसा करके पुष्पवृष्टि करने लगे। बारात चलते समय वर्षा की थी। अब रामजी को देखकर पुन पुष्पवृष्टि की।

दो राम रूप नख सिख सुभग, बारहि बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि ॥३१५॥

अर्थ नख से शिख तक रामजी के सुन्दर रूप को बार बार देखकर उमा और पुरारि को पुलक हो उठा और आँखो म आँसू आगये।

व्याख्या उमा के सहित शङ्करजी बार बार रामजी के सुन्दर रूप को देख रहे है। नख से शिख तक सुन्दरता की छटा है। ये रामजी के दर्शन से अघाते नही। इस समय तो व्याह विभूषण वसन बनाये दूल्हा के वेप मे है। अत इस समय की अनोखी शोभा है। जिसे देखकर उमा सहित शिवजी को पुलक हो उठा। और नेत्रो मे आनन्दाश्रु आगये।

केकि कठ दुति स्यामल अगा। तडित विनिंदक बसन सुरगा ॥
ब्याह विभूषन विविध बनाए। मगल सब सब भाँति सुहाए ॥१॥

अर्थ मोर के कण्ठ की भाँति श्याम अङ्ग है। बिजली की निन्दा करनेवाले रगीन कपडे है। नाना भाँति के ब्याह के गहने सजे हुए है जो मङ्गलमय सब भाँति से सुन्दर है।

व्याख्या निकट से देखने पर रामजी की श्यामता की उपमा ग्रन्थकार नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर आदि की श्यामता से देते है। परन्तु जब दूर से दर्शन मिलता है तो मोर के कण्ठ की श्यामता से देते हैं। बारात के मध्य मे रामजी हैं। बडी भारी बारात है। कवि दूर से देखते है। इसलिए मोरकण्ठ की श्यामता से उपमा दे रहे है। रामजी लङ्का जीतकर विमान से अयोध्या जब जायेंगे तब भी यही उपमा देवेंगे। यथा केकीकठाभनील उरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्न। रामजी विमान पर आकाश मे हैं। ग्रन्थकार नीचे से देख रहे है। अत रामजी की श्यामता उन्हे मोर के कण्ठ की श्यामता सी ही दिखाई पड रही है। रग विरगे कपडे बिजली की भाँति चमक रहे हैं। पहिले कुण्डल और कण्ठा का वर्णन मिलता है। क्योकि वीरो का अधिक श्रृङ्गार नही होता। व्याह की बात दूसरी है। उसमे गरीब मँगनी लेकर गहने पहनते हैं। ये तो चक्रवर्ती के राजकुमार हैं। अत इन्हे ब्याह मे पहने जानेवाले सभी गहने पहनाये गये। सब मङ्गलमय हैं। सुन्दर होने से इन्हे सोहाये कहा।

सरद विमल विधु वदन सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुन्दरताई । कहि न जाइ मन ही मन भाई ॥२॥

अर्थ शरत्काल के निर्मल चन्द्र के ऐसा सुन्दर मुख है । नेत्र नये कमल को लजानेवाले हैं । सब सुन्दरता लोकोत्तर है । वर्णन करते नही वनता । मन ही मन अच्छी लगती है ।

व्याख्या शरत् पूर्णिमा के निष्कलङ्क चन्द्र के समान सुन्दर मुख है । नेत्रो के देखने से नये खिले हुए कमल लज्जित हो जाँय । दूर से जितना देखा जाना सम्भव है उतना ही वर्णन करते नही बनता । क्योकि लोकोत्तर सुन्दरता है । उसकी उपमा इस लोक म है ही नही । क्या कहकर वर्णन किया जाय ? अत यही कहते हैं कि छवि मन को अच्छी लगती है और वह मन मे ही रह गई । प्रकाश नही कर सके । अन्य स्थानो पर कुछ वर्णन भी किया । पर दूल्हे के वेप म जो सुन्दरता है वह तो सर्वथा वर्णनातीत है । केकि कठ द्युति । तडित विनिन्दक वसन । सरद विमल विधु वदन । राजीव लजावन नयन । ये सब अलौकिक हैं ।

बधु मनोहर सोहहिं सगा । जात नचावत चपल तुरगा ॥
राज कुँअर वर बाजि देखावहिं । वस प्रससक विरद सुनावहि ॥३॥

अर्थ मन के हरण करनेवाले भाई साथ मे शोभायमान हैं । चञ्चल घोडो को नचाते चले जाते हैं । राजकुमार श्रेष्ठ घोडा को दिखला रहे हैं । मागध लोग विरद बोल रहे हैं ।

व्याख्या आप तो मनोहर मूर्ति हैं ही और साथ मे भाई हैं । वे भी मनोहर हैं । इस समय महाराज की सवारी हाथी पर है । हाथी के आगे चारो भाई घोडो पर हैं । घोडो को नचाते हुए चले जाते हैं । नही तो वे घोडे बडे चञ्चल हैं । हाथी का और उनका साथ निभ नही सकता । उनके लिए कह चुके हैं अय इव जरत धरत पग धरनी । घोडो को नचाना ही उनका दिखलाना है । अद्भुत शोभा है । महाराज हाथीपर हैं । चवँर चल रहा है । सामने राजकुमार घोडे नचाते चल रहे हैं । वश प्रशसक विरुद बोलते जा रहे हैं । यथा मागधा वशशसिन ।

जेहि तुरग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा । बाजि बेपु जनु काम बनावा ॥४॥

अर्थ जिस घोडे पर रामजी विराजमान थे उसकी गति देखकर गरुड को लज्जा होती थी । वह सब भाँति से सुन्दर था । उसकी सुन्दरता कहते नही बनती । मानो कामदेव ने ही घोडे का वेप बना रक्खा है ।

व्याख्या यहाँ सभी घोडो को यह गतिविधि है कि हवा से बाजी लगाने वाले हैं । यथा निदरि पवन जिमि चहत उडाने । परन्तु जिस घोडे पर रामजी सवार हैं । उसकी गति देखकर पक्षिराज गरुडजी सकुचित होते हैं । और वह ऐसा सुन्दर

है कि कहते नही बनता। मालूम होता है कि स्वय कामदेव ने ही घोडे का वेप बना रक्खा है। खगनायक की गति स्तोभ सामध्वनि के अनुमार होती है। यथा . सामध्वनिशरीरस्त्व वाहन परमेष्ठिन । उसी भाँति इस घोडे की गति भी स्तोभानुसार ही है। अन्य घोडो की गति के विपय मे कह चुके है नागर नट चितवहि चकित डगइ न ताल बँधान। परन्तु रामजी का घोडा लौकिक गीत के ताल का अनुसरण नही करता। वह वैदिक गान के स्तोभ का अनुसरण करनेवाला है। नही तो महाराज के हाथी के साथ जब चल रहा है तब खगनायक की उपमा देने का कोई कारण नही है। खगनायक कहकर बल और गति दानो कहा। सब भाँति सुहावा कहकर वय और गुण कहा। काम के सदृश कहकर रूप कहा।

छ जनु वाजि वेपु बनाइ मनसिजु रामहित अति मोहई।
आपने वयबल रूप गुन गति सकल भुवन विमोहई॥
जगमगत जीन जराव जोति मुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित विलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

अर्थ मानो साक्षात् कामदेव रामजी के लिए घोडे का वेप बनाकर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। अपने १ वय २ बल ३ रूप ४ गुण और ५ गति से सम्पूर्ण भुवन को मोहित कर रहा है। जडाऊ जीन जगमगा रही थी। जिसमे सुन्दर मोतियाँ मणि और माणिक्य टँके हुए थे। सुन्दर घुँघुरू और सुन्दर लगाम देखकर देवता मनुष्य और मुनि मोहित होते थे।

व्याख्या घोडे की सुन्दरता वणन करते हुए कहते है कि रामजी के लिए मानो कामदेव ने ही घोडे का वेप धारण कर रक्खा है। कामदव तो अपने पाँच वाणो सम्मोहनान्मादनौ च शोपणस्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चवाणा प्रकीर्तिता से सम्पूर्ण भुवन को मोहित करता है और यह घोडा भी अपने पाँच गुणो वय, बल, रूप, गुण और गति से सारे जगत् को मोहित कर रहा है। उसके ऊपर ऐसी सुन्दर जडाऊ जीन कसी हुई है जिसमे मणि माणिक्य मुक्ता लगे हुए है। घुँघुरु टँके है। लगाम ऐसी सुन्दर थी कि सुर नर मुनि आये थे तो बारात देखने इधर मन ही चोरी चला गया।

दो प्रभु मनसहि लयलीन मनु, चलत वाजि छवि पाव।
भूपित उडगन तडित धनु, जनु वर बरहि नचाव॥३१६॥

अर्थ प्रभु के मन से मन मिलाये हुए वह घोडा चलते हुए शोभा पाता था। यथा तारागण तथा बिजली से भूपित मेघ सुन्दर मोर को नचा रहा हा।

व्याख्या . यह घोडे का अनूठापन है कि वह प्रभु के मनम अपना मन मिला-कर चल रहा है। इसीलिए उसके चलने की छवि अनोखी है। प्रभु के मनमे मन मिलाने का ऐसा महत्त्व है कि एक पशु की इतनी बडी शोभा हो रही है। मेघ तो सदा मोर को नचाया करते हैं। पर जब मेघ आते हैं तो तारागण लापता हो

जाते हैं। बिजली भी निमेष मात्र से अधिक नहीं ठहरती। परन्तु रामघनश्याम तो आभूषणरूपी ताराओ से और वस्त्ररूपी बिजली से भूषित होकर आज मोररूपी घोडे को नचा रहे हैं। अत. अभूत शोभा हो रही है।

जेहि बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥१॥

अर्थ : जिस श्रेष्ठ घोडे पर रामजी सवार हुए उसका वर्णन तो सरस्वतीजी भी नहीं कर सकती। शङ्कर भगवान् रामरूप के प्रेम मे आगये उन्हे पन्द्रहो आँखे बडी प्यारी लगी।

व्याख्या · देवता के वाहन भी उनके रूप से पृथक् नहीं होते। इसलिए कहते हैं कि उसे शारदा भी नहीं वर्णन कर सकती। जितने वर्णन करनेवाले हैं उनके हृदय मे अवस्थान करके वस्तुतः शारदा ही वर्णन करती है। यथा कवि उर अजिर नचावहिं बानी। जब वही नहीं वर्णन कर सकती तब दूसरा कौन वर्णन कर सकता है। रामजी के सवार होने से घोडे मे इतना उत्कर्ष हो गया।

पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि · से प्रसङ्ग छोडा था। सो फिर वहीं से उठाते हैं। शङ्कर भगवान् रामरूप के बडे अनुरागी हैं। कभी दर्शन से अघाते नहीं। आज वरवेष मे रामजी को देखकर उन्हे अपनी पन्द्रह आँखें बडी प्रिय लगी। पाँचो सिरो की तीसरी आँखे खुली हुई हैं। जिनमे से एक के खुलने से प्रलय उपस्थित हो जाता है। यथा · तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। परन्तु आज उन आँखो के खुलने से ससार मे कोई विकार नहीं हो रहा है क्योकि वे रामजी मे लगी हुई हैं। दूसरी बात यह है कि राममुखचन्द्र की अमृतस्रावी चन्द्रिका से ससार प्लावित हो रहा है। अत पाँच पाँच सहारकारिणी दृष्टियो के पडने पर भी उसका कोई अनिष्ट नहीं हो रहा है। आँखे तो सबको प्रिय होती हैं परन्तु आज उनके कारण पन्द्रह द्वार से रामजी का दर्शन हो रहा है। अतः अति प्रिय लग रही है।

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छबि बिधि हरखाने। आठै नयन जानि पछिताने॥२॥

अर्थ : विष्णु ने जब प्रेमसहित रामजी को देखा तो रमापति रमा के सहित मोहित हो गये। रामजी की छवि देखकर ब्रह्मदेव प्रसन्न हो उठे। पर सिर मे आठ ही आँख होने से पछताने लगे।

व्याख्या : हित के सहित देखना विष्णु का ही कहा और उन्ही का मोहित होना भी कहते हैं। अपनी आत्मा सबको प्रिय है और सबको उसमे मोह होता है। नवा अरे पत्यु कामाय पति. प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पति. प्रियो भवति। पति के लिए पति प्रिय नहीं होता। आत्मा के लिए पति प्रिय होता है। रामजी को बार बार हरि कहकर विष्णु से अभेद सम्पूर्ण ग्रन्थ मे निरूपण किया है। अतः अपना रूप देखकर आप ही मोहित हो रहे हैं। अत दो ही आँख के लिए पछताना नहीं कहेंगे।

छवि देखकर हर्षित होने की विधि है। इसलिए विरञ्चि न कहकर विधि कहा। सो विधि रामजी की छवि देखकर हर्षित तो हुए पर आँखों की सख्या कम होने स पछताये। यदि मुझे भी शिवजी की भाँति तीन तीन आँखें होतीं तो भी बारह आँखों से देखता। अथवा यदि आज मेरा पाँचवाँ सिर होता तो भी दस आँखों से देखता। अत उन्हे पछताने का यथेष्ट कारण था।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। विधि ते डेवढ लोचन लाहू ॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना ॥३॥

अर्थ देवताओं के सेनापति क हृदय म बडा उछाह था। क्योंकि उन्हे ब्रह्मदेव के नेत्रों से डेवढे नेत्रों का लाभ था। सुजान देवराज रामजी को देखते थे। उन्होंने गौतम ऋषि के शाप को परम हित माना।

व्याख्या भगवान् स्वामी कार्त्तिकेयजी को अधिक उछाह था। क्योंकि इस समय उन्होंने ब्रह्मदेव से भी बाजी मार ली। उनका नम्बर ब्रह्मदेव के बाद है। आगे शिवजी की सवारी है। उसके बाद विष्णु की। उसके बाद ब्रह्मदेव की और उनके भी बाद षडानन भगवान् कार्तिकेय की। परन्तु दर्शन लाभ मे वे ब्रह्मा से डेवढे निकले। ब्रह्मदेव को चार मुख हैं अत आठ आँखें हुईं। षडाननजी को छ मुख होने से बारह आँखें हुईं। आठ का डेवढा बारह होता है। अत प्रधानतम लाभ मे अर्थात् रामजी के दर्शन म सुरसेनप ब्रह्मदेव से डेवढे बढ गये।

स्वामी कार्तिकेय के बाद देवराज थे। इन्द्र सहस्र नेत्र थे। अत सहस्र नेत्र से रामजी की शोभा देख रहे थे। जिसे सहस्र नेत्र हो वह रामजी के दर्शन के साथ ही साथ बहुत सी बातें देख सकता है परन्तु भगवान् इन्द्र केवल रामजी को अशेष नेत्रों से देख रहे थे। अत ग्रन्थकार इन्हे सुजान कहते हैं। क्योंकि नेत्रों का साफल्य भगवद्दर्शन से है। यथा होइहै सुफल आजु मम लोचन। निरखि वदन पकज भवमोचन। दूसरा भाव यह कि उन्होंने गौतम महर्षि के शाप को अपने लिए परम हित माना। इस गुणग्राहकता के लिए सुजान कहा।

देव सकल सुरपतिहि सिहाही। आजु पुरदर सम कोउ नाही ॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहु हरषु बिसेखी ॥४॥

अर्थ सब देवता देवराज से ईर्ष्या कर रहे है कि आज इन्द्र के समान कोई नही है। देवगण रामजी को देखकर आनन्दित हैं। दोनो राजसमाज मे विशेष हर्ष है।

व्याख्या इन्द्र देवराज हैं। सभी देवताओं से ऐश्वर्य मे अधिक है। फिर भी देवता उनसे ईर्ष्या नही करत। उन्हे राजा मानते है। आज रामजी के दर्शन म ईर्ष्या करने लगे कि इस सुख मे तो ये सबसे पाँच सौ गुना अधिक बढ गये। अत कहते है कि आज इन्द्र के समान हमलोगो मे कोई नहीं है। आज तो ये त्रिदेव से भी बढ गये।

पुनि रामहिं बिलोकि हिय हरखे : से उपक्रम करके मुदित देवगन रामहिं देखी से इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। रामजी को व्याहने चल रहे हैं। इस कारण से अवध समाज में विशेष हर्ष है। इसी भाँति जामाता रूप से रामजी की प्राप्ति से मिथिला समाज में भी बड़ा हर्ष है।

छं. अति हरषु राजसमाजु दुहुँ दिसि, दुंदुभी बाजहिं घनी।
वरषहिं सुमन सुर हरपि कहि, जय जयति जय रघुकुलमनी॥
एहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजही।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन, हेतु मंगल साजही॥

अर्थ : रामसमाज में अत्यन्त हर्ष है। दोनो ओर से दुन्दुभियाँ बडे जोरो से बज रही हैं और देवता लोग हर्षित होकर रघुकुलमणि की जय हो, जय हो, जय हो कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस भाँति बारात को आते हुए जानकर कन्या पक्ष से बहुत से बाजे बजने लगे और रानियाँ सुहागिनी स्त्रियो को बुलाकर परिछन के लिए मङ्गल साज रही हैं।

व्याख्या : उत्साह के तारतम्यानुसार बाजाओ की तुमुलध्वनि मे भी तारतम्य होता है। बड़ा उत्साह है। इसलिए दुन्दुभी बडी जोर से बजाई जा रही हैं। कन्या पक्ष के लोग जो बारात लेने गये थे वे भी बाजे गाजे के साथ बारात के सङ्ग चल रहे हैं। यथा : संख निसान पनव बहु बाजे। उन लोगो ने भी जोरो से दुन्दुभी बजाई। इस उत्साह को देखकर देवता लोग भी खिल उठे। लगे जय जयकार करके फूल बरसाने। रघुकुलमणि कहने से महाराज दशरथ तथा रामजी दोनो व्यक्तियो का बोध होता है। यथा : रघुकुलमणि दसरथ के जाये। तथा ' विद्यमान रघुकुल-मनि जानी। अतः नाम निर्देश न करके देवता लोग रघुकुलमणि की जय कह रहे हैं। जब बाजे के शब्द को सन्निकट आते सुना तो महाराज जनक के यहाँ भी अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। मङ्गल कार्य मे सम्मिलित होने के लिए सोहागिनी स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं। बाजे के शब्द से रानियो ने जाना कि बारात आया चाहती है। अतः सोहागिनियो को बुलाकर रानियाँ मङ्गल साज परिछन के लिए सजाने लगी।

दो. सजि आरती अनेक विधि, मगल सकल सँवारि।
चली मुदित परिछनि करन, गज गामिनि वर नारि॥३१७॥

अर्थ : अनेक प्रकार की आरती साजकर और सब मङ्गल सँवारकर प्रसन्न होती हुई गजगामिनि श्रेष्ठ स्त्रियाँ चली।

व्याख्या : वर के आते ही परिछन की चाल मिथिला मे है। सब स्त्रियाँ आरती सजा रक्खी हैं। किसी ने चौमुख दीप सजा रक्खा है। किसी ने हजार बत्ती की आरती साज रक्खी है। कोई आरती साजे हुए है। इसलिए विविध विधि कहा।

मङ्गल सकल से धान पान दधि आदि अभिप्रेत हैं। परिछन करने की बडी लालसा है। अत प्रसन्न होकर चली। चाल की सुन्दरता द्योतित करने के लिए 'गजगामिनी' विशेषण दे रहे हैं।

विधुवदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छवि रति मद मोचनि॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा॥१॥

अर्थ सभी चन्द्रवदनी थी। सभी मृगनयनी थी। सभी अपने शरीर की छवि से रति का मानमर्दन करनेवाली थी। सबो ने रङ्ग विरङ्गी साडियाँ पहन रक्खी थी। और शरीर पर सब प्रकार के भूषणो को साज रक्खा था।

व्याख्या अब परिछन के कार्य मे सम्मिलित होनेवाली स्त्रियो की शोभा कहते है। जूथजूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल बयनी। यह वर्णन तो सामान्य स्त्रियो का था। यहाँ तो परिछन के लिए प्रधान प्रधान चली। अत विधुवदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छवि रति मदमोचनि। कहकर नखशिख वर्णन करते हैं। रति अति दुखित अतन पति जानी। ये तो अति हर्षित हैं। अत रति मदमोचनी है। स्त्रियो की शोभा रङ्ग विरङ्गी साडियो मे ही है। पलटन की वर्दी की भाँति एक रङ्ग की पोशाक मे शोभा नही है। बत्तीसो आभरणो से सुशोभित है। घर से ही यह अभिलाषा मन मे रखकर चली हैं कि रामजी का परिछन करना है।

सकल सुमगल अग बनाए। करहिं गान कलकठ लजाए॥
ककन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि काम गज लाजहिं॥२॥

अर्थ सभी सुमङ्गल अङ्गो म बनाये हुए है। ऐसा गान कर रही है कि कोकिल लज्जित हो जायँ, कङ्कण, किंकिणि और नूपुर बज रहे हैं। उनकी गति देखकर हस्ती रूपधारी काम लज्जित हो जाय।

व्याख्या पहिले आभरण कहा था। अब शृङ्गार कह रहे है। सिर मे सिन्दूर, पैर म जावक (महावर) हाथो मे मेहदी आदि सोलहो शृङ्गार किये हुए हैं। इस भाँति शरीर की शोभा, गहने की शोभा तथा शृङ्गार की शोभा कहकर अब सुस्वरता का वर्णन करते है। सामान्य स्त्रियो के लिए कल कोकिल वयनो कहा था। पर ये तो ऐसी प्रवीण थी कि इनके गान के सामने कोयल को लजाना पडा। ये सब गज गामिनी हैं। अत भूषणो की झनकार कहते है। फुलवारी मे ऐसी झनकार हुई थी। यथा ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। यहाँ कङ्कण, करधनी और नूपुर का बजना कहते है। भाव यह कि दूर से ध्वनि सुनी जाती है। निकट से बजना कहते है। सामान्य स्त्रियों को गजगामिनी बर नारि कहा था। इन्हे कामगज लाजहिं कह रहे हैं।

बाजहिं बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमगल चारा॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। आकाश और नगर मे मङ्गलाचार हो रहा था। इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और भवानी जो देवाङ्गनाएँ शुचि और स्वभावतः सयानी थी।

व्याख्या : विवाह की शोभा विविध प्रकार के बाजे से बढती है। नही तो शखध्वनि और शहनाई का कौन साथ है? इस उत्सव पर सब वाद्यो को मिलकर एक तुमुल ध्वनि होनी चाहिए। ऐसा मङ्गलाचार मे ही नही ऊपर आकाश मे देवो द्वारा भी हो रहा था।

सुरेश्वरी इन्द्राणी आदि देवियो, त्रिदेवो की शक्तियाँ, शुचि कहकर अप्सराओ का व्यावर्तन कहा। ये सहज सयानी हैं। परिछन करने का अवसर इन्होने हाथ से नही जाने दिया। बारात के समय पतियो के साथ थी। बारात पहुँचते ही उनका साथ छोडा। अधिक आनन्द के लिए राजमहल मे प्रवेश कर गईं।

कपट नारिबर वेष बनाई। मिली सकल रनवासहिं जाई ॥
करहिं गान कल मंगल बानी। हरष बिबस सब काहु न जानी ॥४॥

अर्थ : कपट से स्त्री का वेष बनाकर सब रनिवास मे जाकर मिल गईं। सुन्दर मङ्गल वाणी से गान कर रही हैं। सब हर्ष के वश थी। अत किसी ने उन्हे जाना नही।

व्याख्या : माया से देवियाँ नारी रूप हो गईं। सहज सयानी है अत रनिवास मे जाकर मिल गईं। मालूम होता था कि ये भी रानियाँ है। रामजी के परिछन का सौभाग्य लूटने के लिए चली आईं। उधर रानियाँ हर्ष मे विभोर थी। कोई यह पूछनेवाला नही कि ये रानियाँ कहाँ से नेवते मे आई हैं। उनकी वाणी मङ्गलमय है, उससे गान कर रही हैं। रामजी का ब्याह है इसमे इन्द्राणी, ब्रह्माणी, रुद्राणी आदि का गान होना ही चाहिए। अत: रानियो से मिलकर गान मे सम्मिलित हो गईं।

छ को जान केहि आनद बस सब ब्रह्म बरु परिछन चली।
कलगान मधुर निसान बरषहिं सुमन सुर सोभा भली ॥
आनंद कंद बिलोकि दूलहु सकल हिय हरषित भईं।
अंभोज अबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छई ॥

अर्थ : कौन किसे जानता है। सब आनन्द मे विभोर होकर ब्रह्मवर को परिछन करने चली। सुन्दर गान हो रहा है। मधुर निशान बज रहा है। देवता फूल बरसा रहे है। बडी अच्छी शोभा थी। आनन्दकन्द दूलह को देखकर सब हृदय से आनन्दित हो उठी। कमल से नेत्रो मे आँसू उमड आये और सुन्दर अगो मे रोमाञ्च हो गया।

व्याख्या : ब्रह्मवर के परिछन मे ब्रह्मानन्द है। अत अन्य विषयो का ज्ञान किसी को नही। सबका चित्त आनन्द से निमग्न है। अतः किसी ने नहीं जाना। बारात द्वार पर लग गई। मधुर गान सुनकर डका का शब्द धीमा हो गया। अब वह भी मधुर बजने लगा। गान मे विक्षेप न होकर सहायक हो इसलिए डका बजानेवालो

ने पण्डिताई दिखाई। उधर देवताओं ने फूल बरसाये। कवि कहते हैं कि भली शोभा हुई। आनन्दित वारिवाह दूलह् को देखकर सब हर्षित हो गईं। उमगा आनन्दाश्रु और छागई पुलकावली।

दो जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम वर भेपु।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा सेपु ॥३१८॥

अर्थ रामजी को दूल्हा के वेप मे देखकर सीताजी की माता के मन मे जो सुख हुआ उसे सहस्र सरस्वती और शेप नही कह सकते।

व्याख्या पहिले कहा था सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी। वहाँ तो शिशु सम प्रीति की उपमा मिली। यहाँ नही मिलती। इसलिए कहते हैं कि रामजी को दूलह वेप मे देखने का सुख जो सास को हुआ उसे शारदा शेप नही कह सकते। क्योंकि उन्हे इस सुख का अनुभव नही। मृत्युलोक का उदाहरण नही दिया। यहाँ तो सुनयना जी अनुभव कर ही रही है। भाव यह कि मर्त्यलोक मे भी सुकृती को ब्रह्मलोक दुर्लभ सुख का अनुभव होता है।

नयन नीर हठि मगल जानी। परिछन करहिं मुदित मन रानी ॥
वेद विहित अरु कुल व्यवहारू। कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू ॥१॥

अर्थ मङ्गल का अवसर जानकर रानियाँ आँसू रोककर प्रसन्न मन से परिछन कर रही हैं। वेदोक्त व्यवहार तथा कुल व्यवहार एव सभी व्यवहार को भली प्रकार से किया।

व्याख्या पहिल कह आये हैं कि कमल ऐसी आँखा मे आँसू उमग आये। यथा अभोज अबक अबु उमगि सुअग पुलकावलि छई। आँसू गिरा चाहते हैं। मङ्गल का अवसर जानकर उन्हे रोका। मङ्गल के समय आँसू गिराना अशुभ है। यद्यपि परिछन के लिए बहुत सी स्त्रियाँ चली। पर वे परिछन के गान मे ही सम्मिलित रही। नियमानुसार परिछन सीताजी की माता कर रही हैं। इसलिए कहते हैं परछन करहिं मुदित मनरानी। वेद विहित व्यवहार देवपूजन, वरपूजन आदि कुल व्यवहार आदि तथा सब व्यवहार अर्थात् देश व्यवहार जो और कही नही केवल मिथिला मे ही प्रचलित हैं। ऐसे अवसर पर कन्या को माता का अञ्चल से पान द्वारा वर की नासिका को पकडे हुए लिवा ले जाना आदि सभी व्यवहारो को भली भाँति किया।

पच सवद धुनि मगल गाना। पट पाँवडे परहिं विधि नाना ॥
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गवनु मडप तब कीन्हा ॥२॥

अर्थ पाँच प्रकार के बाजो के शब्दो की ध्वनि और मङ्गल गान हो रहे है। नाना प्रकार के कपडा के पाँवडे पड रहे हैं। उन्हाने आरती करके अर्घ्य दिया। तब रामजी मण्डप म गये।

व्याख्या तन्त्री तार सुझाझ पुनि जानु नगारा चार। पचम फूँके ते बजै सब्द सुपाँच प्रकार। सा पाँचा प्रकार के बाजे बजे। इसलिए ध्वनि कहा। बाजे के

शब्द ध्वन्यात्मक होते हैं। ये मङ्गलगान के साथ साथ बज रहे हैं। क्योंकि सीताजी की माता रामजी को लिवाये हुए मण्डप की ओर जा रही हैं। मण्डप के पास पहुँचने पर आरती हुई। अर्घ्य दिया गया। तब रामजी ने मण्डप मे प्रवेश किया। महाराज चक्रवर्तीजी बाहर ही रुके है।

दसरथ सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे ॥
समय समय सुर बरषहिं फूला। साति पढहि महिसुर अनुकूला ॥३॥

अर्थ : महाराज दशरथ समाज के सहित विराजमान हुए। विभव देखकर लोकपाल लज्जित हो गये। समय समय पर देवता फूल बरसाते है और ब्राह्मण अनुकूल होकर शान्तिपाठ कर रहे हैं।

व्याख्या श्रीरामजी मण्डप मे चले गये। पर महाराज दशरथ बाहर ठहर गये। वही दरबार लग गया। पहिले कह आये है : कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लोग तिनहि सुर राजू। उसी समाज के साथ आज महाराज जनक के द्वारपर दरबार लगा है। उस विभव को देखकर लोकपाल सङ्कुचित हो गये। क्योकि यह वैभव उन्हे प्राप्त नही है। महाराज का ठहरना कहकर फिर कवि जल्दी से मण्डप मे पहुँच गये और वहाँ की गतिविधि का वर्णन करने लगे। रामजी के मण्डप तक पहुँचने मे ऐसे अनेक अवसर आये जब कि देवताओ ने पुष्पवृष्टि की और ब्राह्मणो ने प्रसन्न होकर शान्तिपाठ किया।

नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई ॥
एहि बिधि राम मंडपहि आये। अरघु देइ आसन बैठाये ॥४॥

अर्थ : आकाश मे और नगर मे कोलाहल हो रहा है। अपना पराया कोई सुन नही पाता है। इस विधि से रामजी मण्डप मे आये। अर्घ्य देकर आसन पर बिठाया।

व्याख्या : जहाँ जनसमुदाय उत्साह से भरा एकत्रित होता है वहाँ कोलाहल होता ही है। आकाश मे तैंतीस कोटि देवता जय जयकार कर रहे हैं। नीचे घराती और बाराती दोनो समाज आनन्द से उमगे हुए एकत्रित हैं। अत: पृथ्वी से आकाश तक तुमुलध्वनि भर गई। अपना कहा हुआ अपने को ही नही सुनाई देता दूसरे की कौन सुनता है। इस विधि से अर्थात् बाहर तो महाकोलाहल हो रहा है और भीतर शब्द धुनि मगल गान और शान्ति पाठ हो रहा है। रामजी के मण्डल मे आने पर फिर अर्घ्य दिया गया और तब आसन पर बिठलाया।

छं. बैठारि आसन आरती करि, निरखि बरु सुख पावहीं।
मनि बसन भूषन भूरि वारहिं, नारि मंगल गावहीं ॥
ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेष, बनाइ कौतुक देखहीं।
अवलोकि रघुकुल कमल रबि छबि, सुफल जीवन लेखहीं ॥

अर्थ आसन पर विठाकर आरती करके दूल्हे को देखकर सुख पा रही है। मणि, वसन, भूपण का खूब निछावर हो रहा है। स्त्रियाँ मङ्गल गा रही है। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देव ब्राह्मणो का वेप धारण किये हुए कौतुक देख रहे हैं। रघुकुलकमल के सूर्य की छवि को देखकर जीवन को सुफल कर रहे।

व्याख्या पहिले अर्घ्य पीछे आसन तत्पश्चात् आरती हो रही है। अवकाश पाकर वर का आनन्द से दर्शन कर रही हैं। अब न्योछावर होने लगी। मणि, वसन, भूपण, निछावर करके दिया जाने लगा। मङ्गल गान होता चला जाता है। स्त्रियाँ रामजी को दूल्हे के वेप मे देखकर सुख पा रही है। अभी तक वहाँ ब्राह्मणेतर का प्रवेश नही है। बाराती भी महाराज के साथ ही आवेंगे। देवता ब्राह्मण का वेप धारण करके ही पृथ्वी पर विचरते हैं। सो ब्रह्मादिक देवताओ ने कौतुक देखने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण किया। शची, उमा, रमा और ब्रह्माणी तो चतुराई करके रानियो सा वेप बनाये हुए रानियो मे मिलकर आनन्द ले रही है। अत कौतुक देखने के लिए पीछे पीछे से देवो ने ब्राह्मणो का वेप धारण किया। अपने वेद म आते तो यह आनन्द न मिलता। स्वाभाविकता न रह जाती। देवताओ के जन्म का साफल्य भी श्रीरामजी के दर्शन मे है। किंपुन दूल्हे के वेप मे दर्शन तो अतीव दुर्लभ है।

दो नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरपु न हृदय समाइ ॥३१९॥

अर्थ नाऊ बारी भाट और नट रामजी का निछावर पाकर मुदित होकर सिर नवाकर आशीर्वाद देते है। उनके हृदय मे हर्ष नही समाता।

व्याख्या इस निछावर के अधिकारी नाऊ बारी भाट और नट है। अत निछावर पाकर प्रणाम भी करते हैं और आशीर्वाद भी देते हैं। केवल आशीर्वाद के ये अधिकारी नही हैं। अब भी यही प्रथा है। यहाँ तक कृत्य स्त्रियो द्वारा सम्पन्न हुआ। मिथिला मे विधिकरी ही बहुत कुछ विवाहविधि करा लेती है।

मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि वैदिक लौकिक सब रीती ॥
मिलत महा दोउ राज विराजे। उपमा खोजि खोजि कवि लाजे ॥१॥

अर्थ वैदिक और लौकिक सब रीतियो का सम्पादन करके महाराज जनक और दशरथ अत्यन्त प्रीति से मिले। उपमा खोज खोजकर कवियो को लज्जित होना पडा।

व्याख्या मधुमाधव दशरथ जनक मिलव राज रितुराज। अति प्रीति मे भेद नही रह जाता। चैत्र और वैशाख मिलकर एक हुए तो वसन्तऋतु हुआ। यथा बरनव राम विवाह समाजू। सो मुद मगलमय रितु राजू। मेल की दृढता के लिए लौकिक और वैदिक रीति का सम्पादन किया। इसके पहिले मिलने की रीति नही है। इसी से महाराज जनक अगवानी आदि मे सम्मिलित नही हुए थे।

वर्णन करने मे कवि उपमा देते है। यहाँ मिलने के समय दोनो महाराजाओ की उपमा देने के लिए कवि प्रयत्न करने लगे तो उन्हे कही उपमा ही न मिली। अत सङ्कुचित हो गये। मधुमाधव की उपमा तो मिलने मात्र के लिए दी गई। दोनो महाराजाओ की उपमा नही है। कवि लोग उपमा देने के लिए पूर्व के हुए विवाहो पर निगाह दौडाये तो सबसे अच्छा विवाह महादेवजी का हुआ था। यथा · सकल सुरन्ह के हृदय अस सकर परम उछाहु। जिन नयनन्हि देखा चहे नाथ तुम्हार विवाहु। सो उसमे : पहिलेहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। इत विधि उत हिमवान सरिस सब लायक। पर हिमवान तो विधि के सृष्ट पदार्थ है। अत ब्रह्मदेव के जोड के नही थे। दूसरा कोई विवाह ऐसा नही हुआ था। इसलिए उपमा नही मिली।

लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन सम एइ उपमा उर आनी ॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन वरषि जसु गावन लागे ॥२॥

अर्थ · जब कही उपमा न मिली तो हृदय से हार गये। तब इनके समान ये ही हैं। यह उपमा निश्चय की। समधियो का मिलना देखकर देवता प्रेम के वश हुए। वे फूलो की वर्षा करके यशगान करने लगे।

व्याख्या : कही ऐसे समान समधी ही नही मिले तो कवि लोग हृदय से तो तो हार गये। पर कवि ही ठहरे। बात बना ली। उनकी उनसे ही उपमा दे डाली और उसका नाम अनन्वयालङ्कार रख दिया। समधियो के मिलने की जो रसम है उसे सामध कहते है। कवि तो उपमा के फेर मे पड गये। पर देववृन्द प्रेम मे आगये। पुष्पो की वर्षा की : जो समधियो तक पहुँची और यशोगान करने लगे जो सब ने सुना।

जगु विरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने व्याह वहु तब तें ॥
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू ॥३॥

अर्थ : जब से ब्रह्मदेव ने ससार रचा तब से बहुत से व्याह देखे और सुने। पर सब भाँति सब समाज और समान समधी तो आज ही देख पडे।

व्याख्या : ब्रह्मदेव कल्प के आरम्भ मे सृष्टि रचते हैं और कल्पान्त मे उसका संहार हो जाता है। एक कल्प मे चौदह मन्वन्तर होते हैं। सो इन्द्रादि देवताओ की आयु कल्पस्थायिनी नही होती। इस भाँति एक कल्प मे चौदह इन्द्र क्रम से होते हैं। रामावतार वैवस्वत मन्वन्तर मे होता है। यह विवाह भी इसी मन्वन्तर मे सम्पन्न हुआ। सो इस मन्वन्तर के देवता कहते है कि इस मन्वन्तर के सब विवाह हमने देखे हैं। क्योकि सभी विवाहो मे इनका आवाहन होता है और पहले के छः मन्वन्तरो के प्रधान विवाहो की कथा सुन रक्खी है। पर सब समाज और समधी समान तो आज ही देखे। महादेवजी का विवाह सर्वोत्तम हुआ पर सब समाज समान नही था। यथा : सुरसमाज सब भाँति अनूपा। नहि बरात दूलह अनुरूपा। देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाही। वर लायक दुलहिन जग नाही। तथा : जो जियत

रहिहि बरात देखत पुण्य बड तेहिकर मही। देखिहि जो उमा विवाह घर घर बात अस लरिकन कही। पर इस विवाह की बात ही और है। सब समाज समान है। यथा इधर देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे। उधर दसरथ सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे। वर दुलहिन भी समान मथि माखन सिय राम सवारेउ सकल भुवन छवि छाछ महीरी। समधी भी समान सगि मत्र करव पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।

देव गिरा सुनि सुदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची ॥
देत पाँवडे अरघु सुहाय। सादर जनकु मडपहि ल्याये ॥४॥

अर्थ देवताओ की सुन्दर और सच्ची बात सुनकर दोनो ओर अलौकिक आनन्द मच गया। सुन्दर पाँवडे और अर्घ्य देते हुए आदर के सहित जनकजी मण्डप मे ले आये।

व्याख्या सदा साँची गिरा सुन्दर नही होती और सुन्दर गिरा साँची नही होती। पर यह वाणी सुन्दर और साँची दोनो थी। यहाँ साँची से अभिप्राय प्रामाणिक गिरा से है। जब देवताओ ने कह दिया तो साँची होने मे सन्देह क्या? एक पक्ष दूसरे पक्ष की प्रशसा सुनकर प्रसन्न है। अब जनकजी चक्रवर्तीजी को मण्डप मे लिवा ले चले। सो पाँवडे पडने लगे। एक एक पाँवडे के बाद अर्घ्य दिया जाता है। इस आदर के साथ मण्डप म ले गये।

छ मडपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सब कहुँ आनि सिघासन धरे॥
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही॥

अर्थ मण्डप की विचित्र रचना देखा कि इसकी सुन्दरता मुनियो के मनको हरण करनेवाली है। अपने हाथो सुजान जनकजी ने सब के लिए ला लाकर सिंहासन रक्खा। कुल इष्टदेव की भाँति वसिष्ठजी की पूजा की और विनय करके आशीर्वाद लिया। विश्वामित्रजी के पूजने मे प्रीति की रीति कुछ कही नही जाती।

व्याख्या मण्डप की विचित्र रचना देखी कि इसकी सुन्दरता तो मुनियो के मन को हरण करनेवाली है। यथा रचना देखि विचित्र अति मन बिरचिकर भूल। इससे महाराज जनक का ऐश्वर्य कहा और सिंहासनयोग्य अति पूज्यो के लिए अपने हाथ से लाकर सिंहासन रख रहे हैं। इससे जनकजी का सत्कार कहा। जैसे कुल के इष्टदेव की। पूजा बडी श्रद्धा और सावधानी से की जाती है। वैसे ही वसिष्ठजी की पूजा की। क्योकि महाराज दशरथ के कुलगुरु हैं। यथा तुम सुरतरु रघुबस के देत अभिमत माँगे। पूजन के बाद ऐसी स्तुति की कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। इससे राजा जनक का विनय कहा। तत्पश्चात् विश्वामित्र

जी की पूजा की जिनकी कृपा से यह दिन देखने म आया। बडा भारी उपकार विश्वामित्रजी का था। अत परम प्रीति से पूजा की। प्रीति की रीति अलौकिक होती है। अत कही नही जा सकती। भाव यह कि न तो इधर स्तुति के लिए शब्द मिलते हैं और न उधर आशीर्वाद के लिए कण्ठ खुलता है। इससे जनकजी की प्रीति कही। राजगुरु होने से वसिष्ठ तथा विश्वामित्रजी को भी सिंहासन दिया गया।

दो वामदेव आदिक रिपय, पूजे मुदित महीस।
दिए दिव्य आसन सबहि, सब सन लही असीस ॥३२०॥

अर्थ वामदेवादि ऋषियो को आनन्दित होकर राजा ने पूजा। सबको दिव्य आसन दिया और सबसे आशीर्वाद पाया।

व्याख्या आसन का विधान कहते हैं। राजा तथा राजगुरुओ को सिंहासन, ऋषियो को दिव्यासन, बारातियो को उचित आसन, देवताओ को सुआसन दिया। ऋषियो की पूजा राजा ने प्रसन्न होकर की। ऋषियो के आगमन से राजा को हर्ष है। अत वामदेवादि ऋषियो को दिव्यासन पर बिठाकर पूजा की। सबने आशीर्वाद दिया।

बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा ॥
कीन्ह जोरि कर विनय बडाई। कहि निज भाग्य विभव बहुताई ॥१॥

अर्थ फिर कोसलपति की पूजा उन्हे शिवजी के समान जानकर की। कोई दूसरा भाव उनके मनम नही था। हाथ जोडकर विनती और स्तुति की। अपने भाग्य के विभव की बहुतायत कही।

व्याख्या कुल के इष्टदेव की भाँति वसिष्ठजी की पूजा की और अभीष्टदाता शङ्कर की भाँति दशरथजी की पूजा की। दूसरा भाव अर्थात् समधी का भाव मनम आने नही दिया। राजा जनक ने महाराज दशरथ को साक्षात् शङ्कर रूप माना। क्योकि शङ्करजो के लिए कहा गया है कि इप्सित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोगजप साधे। और दशरथजी के लिए स्वय वसिष्ठजी कहते हैं राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार। अत गुणग्राहक राजा जनक ने उन्हे शङ्कर के समान ही माना और आराधना भी उनकी शङ्कर के समान ही की। दूसरा भाव आने से फिर वैसी पूजा नही हो सकती थी। पूजन के बाद विनय और स्तुति का विधान है। सो वह भी उसी भाँति किया जैसा शिवजी का किया जाता है। उनके पधारने से अपने भाग्य के विभव की महिमा का वर्णन किया। ऐसे अवसरो पर अपने भाग्य की सराहना की जाती है।

पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती ॥
आसन उचित दिये सब काहू। कहहुँ कहा मुख एक उछाहू ॥२॥

अर्थ समधी के समान सब भाँति से आदर के साथ राजा ने सब बारातियो

की पूजा की और सबको उचित आसन दिया। एक मुख से उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ।

व्याख्या समधी की पूजा शिवजी के समान की और सब बारातियो की पूजा समधी के समान की। यथा दान मान विनती बर बानी। जिस आदर से जिस प्रकार से समधी की पूजा होती है उसी आदर भाव से सभी बारातियो की पूजा स्वय की। क्योकि समधी की पूजा प्रतिनिधि द्वारा नही होती। उत्तम मध्यम नीच और लघु को उचित आसन दिया। ऋषियो को दिव्यासन दिया था। अब बारातियो का उचित आसन दे रहे है। यह महाराज की श्रद्धा और सावधानी है। ग्रन्थकर्त्ता कहते है कि इस उत्साह का वर्णन करने के लिए चतुर्मुख पञ्चमुख अथवा सहस्रमुख की आवश्यकता है। मै एक मुखवाला उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ। मेरे लिए सर्वथा वर्णनातीत है।

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान बिनती बर बानी ॥
बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहि रघुबीर प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ सब बारात का जनकजी ने सम्मान, दान, मान, विनती औ श्रेष्ठ वाणी द्वारा किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो रघुवीर के प्रभाव को जाननेवाल थे।

व्याख्या उपर्युक्त सादर सब भाँती की व्याख्या करते है। समधी की भाँति उनको द्रव्य दिया। सम्मान किया। उनकी विनती की और श्रेष्ठ वाणी सत्कार सूचक बोल। अथवा ब्राह्मण को दान दिया। क्षत्रिय का सम्मान किया। वैश्य की विनती की और शूद्र से आदरसूचक वचन बोले।

अन्य देवता तो अपने अपने विमानो पर आकाश मे ही रहे। परन्तु त्रिदेव दिक्पाल तथा सूर्य ने जो रामजी के प्रभाव के जाननेवाले गिने गिनाये देवता थे उन्होने ऐसे अवसर पर अपनी उपस्थिति सर्वथा उचित समझी।

कपट बिप्र बर बेष बनाए। कौतुक देखहिं अति सचु पाए ॥
पूजे जनक देव सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने ॥४॥

अर्थ माया से श्रेष्ठ ब्राह्मण का वेप बनाये हुए अत्यन्त सुख पाते हुए कौतुक देख रहे थे। उनको देवता के समान जानकर जनकजी ने पूजन किया और बिना पहिचाने ही उन्हे सुन्दर आसन दिया।

व्याख्या ये ब्रह्मादिक देवता जब रामजी मण्डप मे आये तभी से विप्र वेप बनाए कौतुक देख रहे है। यथा ब्रह्मादि सुरबर बिप्र बेप बनाइ कौतुक देखही। ये पहिले से ही आये हुए है। अत बाराती नही है। फिर कौन है ? इस पहिचान की आवश्यकता थी। परन्तु राजा जनक ने बिना पहिचाने ही उन्हे देवता के समान जाना दर्जा समझ लिया। यह राजा की सुजानता है। रामजी को भी इन्होने बिना पहिचाने अन्दाज कर लिया। कहने लगे ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।

उभय वेष धरि सोइ कि आवा। इसी भाँति यहाँ भी कपट वेष मे रहने पर भी देवताओ को देवता समान जानकर पूजन किया और सुआसन दिया।

छं. पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई ॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए ॥

अर्थ : कौन किसे जाने पहिचाने। सबको अपनी ही सुधि भूली हुई थी। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनो पक्ष आनन्दमय हो रहे थे। रामसुजान ने देवताओ को लखा। तो पूजा की और मानसिक आसन दिया। प्रभु के शील और स्वभाव को देखकर देवता हृदय से आनन्दित हो उठे।

व्याख्या : जनकजी ने विना पहिचाने दर्जा का अन्दाज कर लिया और विप्रवेषधारी देवगणो को सुआसन दिया। इस पर ग्रन्थकार कहते है कि इतनी बड़ी बारात मे पहिचान पहिचान कर कौन जान सकता है ? अन्दाज से ही काम चलाया जाता है। तिस पर यहाँ तो किसी को अपनी ही सुधि नही है। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनो पक्षो मे आनन्द मचा हुआ है। आनन्द का मेघ दोनो ओर आनन्द की वर्षा कर रहा है। सुजान रामजी ने देवताओ को लख लिया कि उधर से तो इनकी पूजा हुई। पर मेरी ओर से पूजा नही हुई और मै ऐसी स्थिति मे हूँ कि स्वय कुछ कर नही सकता। अत सबकी मानसिक पूजा की और मानसिक आसन दिया। देवताओ ने प्रभु की दी हुई पूजा और आसन को ग्रहण किया और प्रभु के ऐसे शील स्वभाव को देखकर कि स्वय दूल्हा बने है सङ्कोचवश सत्कार नही कर सकते तो मानसिक सत्कार कर रहे है। देवता लोग मुदित हो गये।

दो. रामचंद्र मुख चंद्र छबि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोदु न थोर ॥३२१॥

अर्थ रामचन्द्र के मुखचन्द्र की छवि को सुन्दर चकोररूपी लोचनो से आदर के साथ सब पान कर रहे है। किसो मे प्रेम और प्रमोद थोडा नही है।

व्याख्या : सबको इष्ट भोग हो रहा है। अत कहते है कि प्रेम प्रमोद थोडा नही है। मुख की उपमा चन्द्र से छवि की उपमा किरण से और सबके लोचनो की चकोर से दी गई। सब लोग स्वस्थ होकर बैठ गये। सब रामजी के मुख की शोभा देखकर मुग्ध है। चन्द्र का पृष्ठ भाग कोई देख नही सकता। इस भाँति रामजी सबको सम्मुख दिखाई पड रहे है। यथा मुनि समाज मह बैठे सनमुख सबकी ओर। सरद चद तन चितवत मानहु निकर चकोर।

समउ बिलोकि बसिष्ठ बुलाए। सादर सतानंद मुनि आए ॥
बेगि कुँअरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई ॥१॥

अर्थ समय देखकर वसिष्ठजी ने आदरपूर्वक बुलाया। सुनकर सतानन्दजी आये। कहा कि अब राजकुमारी को जल्द ले आइये। मुनिजी की आज्ञा पाकर प्रसन्न होकर चले।

व्याख्या व्याह की लग्न गोधूलि निश्चित हुई है। गोधूलि सधना कठिन कार्य है। बारात लाने मे बडी जल्दी करने से गोधूलि सधती है। इसी से ब्राह्मणो ने शीघ्रता की। यथा धेनु धूरि बेला बिमल सकल सुमगल मूल। बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनूकूल। राजा ने भी शीघ्रता की। सतानन्दजी से कहा अब बिल्ब कर कारण काहा। यहाँ भी गोधूलि सन्निकट देखकर वसिष्ठजी शीघ्रता कर रहे है। सतानन्दजी को आदर के साथ बुलाकर कहते है कि राजकुमारी को जल्दी लाइये। सतानन्दजी चिरकारी मालूम होते हैं। गौतमजी के चिरकारी पुत्र की कथा महाभारत मे है। वे भी कामो मे देर लगाते थे। विचार करने लग जाते थे। उनके स्वभाव की जानकारी होने से ही बार बार उन्ह शीघ्रता के लिए कहा जाता है। यहाँ शीघ्रता करने के लिए वसिष्ठजी के कहने से यही ध्वनित होता है कि विचार करने मे देर न लगाइये जल्दी कीजिए। इसीलिए कहा जाता है कि आज्ञा पाकर सतानन्दजी प्रसन्न होकर चले। भाव यह कि वसिष्ठजी ने आज्ञा द दी। विचार करने की अब आवश्यकता न रह गई। अत मुदित मन चल। नही तो स्वभावानुकूल इसपर भी कुछ विचार करके तब बुलाते। अथवा इस व्याह उछाह मे जिस किसी कार्य को जिससे कहा जाता है वह उसे आनन्दित होकर करता है।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी ॥
बिप्र बधू कुलबृद्ध बोलाई। करि कुल रीति सुमगल गाई ॥२॥

अर्थ सयानी रानी पुरोहितजी की वाणी सुनकर सखियो सहित प्रसन्न हुई। ब्राह्मणो की स्त्रियो तथा कुल की वृद्धाओ को बडी बूढियो का बुलाकर मङ्गलगान किया।

व्याख्या शतानन्दजी ने अन्त पुर म जाकर आवाज दी। मङ्गल समय *अत्यन्त निकट जानकर रानी सखियो के सहित हर्षित हुई। रानी सयानी है।* सब कार्यो म ब्राह्मणियो तथा कुल की बडी बूढियो को सम्मिलित कर लती है। उन्हे बुलवाया। उनके आदेशनुसार कुल की रीति लौकिक व्यवहार सम्पादन करके मङ्गलगान किया। स्त्रियो म लौकिक व्यवहार का वैदिक व्यवहार से कम आदर नही है और न मङ्गलगान का वेदमन्त्र से कम आदर है। जा गीत जिस अवसर पर गान करना चाहिए उसम से कोई छूट नही सकता। अत अधिक शीघ्रता होने पर भी कुलरीति या मङ्गलगान म सक्षेप नही हुआ।

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभाय सुदरी स्यामा ॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहिं नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारी ॥३॥

अर्थ : नारी के वेप मे जो श्रेष्ठ देवो की शक्तियाँ थी वे सव स्वभाव से ही सुन्दरी और श्यामा थी। उन्हे देखकर नारियो को सुख होता था। विना पहिचाने ही प्राणो से प्यारी लगती थी।

व्याख्या पहिले कह आये हैं ' सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानो। कपट नारिवर वेप वनाई। मिली सकल रनिवासहिं जाई। वे स्वभाव से ही सुन्दरी थी। उन्हे बहुत श्रृङ्गार की आवश्यकता न थी और सदा पोडशवार्पिकी वनी रहती थी और मधुरभापिणी थी। यथा श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा पोडशवार्पिकी। अप्रसूता भवेच्छ्यामा श्यामा मधुरभापिणी। उनके दर्शन से स्त्रियो को सुख मिलता था और सवको प्राणो से प्यारी मालूम पडती थी। क्योकि वे सवकी आत्मस्वरूपा थी। यथा : स्त्रिय समस्ता सकला जगत्सु। और अपनी आत्मा सवको प्रिय है।

वार वार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाज वनाई। मुदित मडपहिं चली लेवाई॥४॥

अर्थ उमा रमा और शारदा के समान जानकर उनका सम्मान वारम्वार रानी करती हैं। सीताजी को सँवारकर और समाज वनाकर आनन्दित हो मण्डप मे लिवा चली।

व्याख्या : रानी सुनयना महाराज जनकजी की प्रिया हैं। वैसी ही पहिचान इन्हे भी है। उधर पूजे जनक देव सव जाने। इधर ' वार वार सनमानहिं रानी। उमा रमा सारदा सव जानी। जो जैसी थी उन्हे उन्ही के समान समझा। पहिचानने मे इतना ही भेद रह गया। अलङ्कृत कन्या का दान लिखा है। अत भूपण वसन से सजाकर तथा सीताजी की सखियो को साथ लेकर अपना समाज वनाकर : घेरकर मण्डल मे लिवा ले चली।

छ. चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसप्त साजे सुदरी, सव मत्त कुजर गामिनी॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजही।
मजीर नूपुर कलित कंकन, ताल गति वर वाजही॥

अर्थ सुमङ्गल साजकर सुन्दर सखियाँ आदर के साथ सीताजी को ले चली। वे सुन्दरियाँ सोलहो श्रृङ्गार किये हुए थी और मतवाले हाथी की सी चाल वाली थीं। उनका सुन्दर गान सुनकर मुनि लोगो का ध्यान छूटता था और कामरूपी कोकिल भी लज्जित होता था। करधनी नूपुर और सुन्दर कङ्कण गति के तालपर वज रहे थे।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली मे : मुदित मडपहिं चली लेवाई : कहा कर्त्ता न कहा। अत. सखी ने सादर कहकर कर्त्ता वतला दिया। आगे करके ले चलने को

सादर ले चलना कहते है। सखियो का सोलह श्रृङ्गार हुआ है। सोलह श्रृङ्गार का वर्णन पहिल हो चुका है। केवल सखियाँ ही नही भामिनी कहकर देवियो का भी साथ होना लक्षित किया। वहाँ चली मुदित परिछन करन गजगामिनी वर नारि कहा था। यहाँ मत्त कुजर गामिनी कहते हैं। यहाँ देवियाँ गान कर रही हैं। अत कलकठ लजाही न कहकर काम कोकिल लाजही कहा। वहाँ केवल ककन किंकिनि नूपुर बाजहि कहा था। यहाँ तालगति वर बाजही कहते है। गान हो रहा है। अत ताल की आवश्यकता है।

दो सोहति बनिता बृद महु, सहज सुहावनि सीय।
छवि ललना गन मध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय ॥३२२॥

अर्थ स्वभाव से ही शोभायमान सीताजी स्त्रीसमूह म ऐसी सुशोभित हैं जैसी छविरूपी स्त्रियो के बीच परमा शोभारूप स्त्री सुशोभित हो।

व्याख्या वनितावृन्द ने सोलहो श्रृङ्गार कर रक्खा है। पर सीताजी तो स्वभाव से ही सुन्दरी हैं सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छविगन मध्य महा छवि जैसी। कन्यादान के समय सोलहो श्रृङ्गार का विधान नही है। केवल अलकृता कन्या होनी चाहिए। अत वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित किया। सोलहो श्रृङ्गार नही किया। इसलिए सहज सुहावनि कहते है।

सिय सुदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता ॥१॥

अर्थ सीताजी की सुन्दरता वर्णन करते नही बनती। मेरी बुद्धि छोटी है और सौन्दर्य बहुत है। बारातियो ने रूप की राशि और सब भाँति से पवित्र सीताजी को आते हुए देखा।

व्याख्या श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि सीताजी का सौन्दर्य वर्णनातीत है। वह सौन्दर्य लघुमति मे सामनेवाली वस्तु ही नही है। यथा सीय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाई अजस को लेई। अवर्णनीय को अवर्णनीय कह देने मे ही कुशल है। वर्णन करते तो बनेगा ही नही। केवल अपयश होगा कि वर्णन करने तो चले सो तो बना नही उलटा बिगाड दिया। सीताजी अन्त पुर से मण्डप मे आरही हैं। अत पहिले बारातियो की निगाह पडी। देखा कि सब भाति पवित्र रूप की राशि चली आ रही है। रूप रासि सब भाँति पुनीता। कहकर रामजी के योग्या कहा। यथा रूप रासि नृप अजिर बिहारी। राम पुनीत विषय रस रूखे। क्योंकि इधर रामजी भी रूपराशि सब भाँति पुनीत हैं।

सबहि मनहि मन किए प्रनामा। देखि राम भये पूरनकामा ॥
हरषे दसरथ सुतन समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता ॥२॥

अर्थ सबने मन ही मन प्रणाम किया। रामजी देखकर सफल मनोरथ हुए।

पुत्रो के सहित दशरथ जी प्रसन्न हो गये। उनके हृदय मे जैसा आनन्द हुआ सो कहा नही जा सकता।

व्याख्या : सब बारातियो को पवित्र रूपराशि के देखने से जगदम्बिका की भावना हुई। अतः सबने मन ही मन प्रणाम किया। ऐसे अवसर पर प्रत्यक्ष प्रणाम करना रीति के विरुद्ध है। पार्वतीजी के व्याह मे ऐसा ही हुआ। यथा 'जगदम्बिका जानि भव बामा। सुरन्ह मनहिं मन कीन्ह प्रनामा। विश्वामित्रजी ने जो आशीर्वाद दिया था : सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। उसी का साफल्य दिखलाते हैं कि सीताजी को देखकर रामजी पूर्णकाम हुए। नही तो राम तो सदा पूर्णकाम हैं और सीताजी उन्हे सदा ही प्राप्त हैं। दिखलाया जा चुका है कि जब लौकिक दृष्टि मे सीताहरण हुआ था उस समय भी रामजी से वास्तविक वियोग नही था। यथा : सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता। पुनि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुदर वेषा। अतः लौकिक व्यवहार दिखलाते हुए पूर्णकाम कहते हैं। पुत्र के योग्य पुत्रवधू देखकर चक्रवर्तीजी को हर्ष है और भाई के योग्य भ्रातृवधू देखकर भरतादि भाइयो को हर्ष है और इतना हर्ष है कि वे स्वय उसके प्रकाश करने मे असमर्थ हैं।

सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥३॥

अर्थ : देवता लोग प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मुनियो के आशीर्वाद की मङ्गलमूल ध्वनि हो रही है। गान हो रहा है। डङ्के बज रहे हैं। भारी कोलाहल हो रहा है। नर नारी सब प्रेम और प्रमोद : इष्ट भोग मे मग्न हो रहे हैं।

व्याख्या : समय समय सुर बर्षहिं फूला। अतः इस समय तो पुष्पवर्षा की बडी ही आवश्यकता है और माँ के चरणो मे पुष्पाञ्जलि दी जा सकती है। सो मातृभाव से प्रणाम करके देवता फूल बरसा रहे हैं। मुनि की असीसधुनि को मङ्गलमूल कहते हैं। यथा : मंगलमूल विप्र परितोषू। इस समय आनन्द प्राप्ति से आशीर्वाद हैं। प्रणाम के उत्तर मे नही। इधर गान हो रहा है। उधर निशान बज रहा है। सब मिलकर भारी कोलाहल हो रहा है। नरनारी सब प्रेम और प्रमोद मे मग्न हैं। क्योकि उनकी लालसा पूर्ण हो रही है। यथा 'येहि लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू।

येहि बिधि सीय मंडपहि आई। प्रमुदित सांति पढहि मुनिराई॥
तेहि अवसर कर बिधि ब्यवहारू। दुहु कुलगुरु सब कीन्ह अचारू॥४॥

अर्थ : इस विधि से सीताजी मण्डप मे आईं। मुनिराज प्रमुदित होकर शान्ति पाठ करने लगे। उस समय की वैदिक विधि और लौकिक व्यवहार और आचार दोनो ओर के कुल गुरुओ ने सम्पादन किये।

व्याख्या . दो अर्धालियो मे ग्रन्थकार ने रामजी के मण्डप मे आने का वर्णन

किया है। यथा समय समय सुर बरषहिं फूला। साति पढहिं महि सुर अनुकूला। नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई। येहि विधि राम मण्डपहिं आये। अब दो ही अर्धालिया म सीताजी के मण्डप मे आने का वर्णन करते है। कन्या के मण्डप मे आते ही शान्ति पाठ का विधान है। अत मुनीश्वर लोगो ने शान्तिपाठ प्रारम्भ किया और बडे आनन्द से पाठ कर रहे हैं। उस अवसर पर जो वैदिक विधि और लोक व्यवहार आचार प्राप्त था सो दोनो ओर के कुलगुरुओ ने अर्थात् वसिष्ठजी तथा सतानन्दजी ने सम्पादन किया। शान्ति पाठ मे मुनीश्वर लाग सम्मिलित थे। पर कर्मकाण्ड म पुरोहित ही अग्रगण्य हैं।

छ आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावही।
सुर प्रगटि पूजा लेहि देहि असीस अति सुख पावही॥
मधुपर्क मगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहै।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिये परिचारक रहै॥१॥
कुल रीति प्रीति समेत रवि कहि देत सबु सादर किये।
येहि भाँति देव पुजाई सीतहि सुभग सिंहासनु दिये॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै॥

अथ आचार करके ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर गुरु गौरी और गणपति की पूजा करा रहे है। देवता लोग प्रकट हाकर पूजा ल रहे ह। आशीर्वाद दे रहे है। उन्हे अत्यन्त सुख की प्राप्ति हो रही है। मधुपर्क आदि मङ्गल द्रव्य जो कुछ मुनिजी जिस समय मन से चाहते हैं उन्ह उन वस्तुओ को साने के कोपर पूजन पात्र या कलश म भरे हुए कार्यकर्ता लोग प्रस्तुत कर देते हैं। स्वय सूर्यनारायण कुल की रीति बतला रहे है और उसे आदर के साथ किया जा रहा है। इस भाँति देवताओ की पूजा कराके सीताजी को सुन्दर सिंहासन दिया। सीताजी और रामजी का दखना और परस्पर का प्रेम किसी को लखाई नही पडता। जो बात मन बुद्धि और श्रेष्ठवाणी के अगोचर है उसे कवि कैसे प्रकट करे।

व्याख्या सबसे पहिल पूजा गुरु की तब गौरी गणपति की यह रघुकुल का नियम है। शिवजी के ब्याह मे कोई कुलगुरु नही रहा। अत मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजे सभु भवानि। यहाँ वसिष्ठ का पूजन होने के बाद विवाह काय आरम्भ हुआ। तब राम जानकी ने गौरी गणपति का पूजन किया। जिस बात को सक्षेप मे दुहु कुल गुरु सब कीन्ह अचारू कहा था। उसी का विस्तार कर रहे हैं। वरुणादि देवताओ का पूजन हुआ। पूजन करनेवाल राम जानकी और पूजा करानेवाल वसिष्ठादि महर्षि हैं। फिर उनके आवाहन पर देवता क्यो न प्रत्यक्ष हा? महाराज दशरथजी के पुत्रेष्टीयाग म अग्निदेव सबजन प्रत्यक्ष हुए थे।

यथा प्रगटे अगिन चरु कर लीन्हे। तब अदृस्य पावक भए सकल सबहिं समुझाइ। यहाँ भी पूजा लने के लिए प्रकट हुए। देवता लोगो को राम जानकी के हाथो की पूजा ग्रहण करने म बडा आनन्द है। अत आशीर्वाद देते हैं। परिचारको की ऐसी पण्डिताई है कि वे जानते हैं कि इस कर्म के बाद यह कर्म होगा और उसम अमुक द्रव्यो की आवश्यकता पडेगी। अत उन द्रव्या को यदि वे कठिन द्रव्य हैं तो कनक के कोपर मे यदि द्रव है तो कनक कलश म भरे हुए प्रस्तुत हैं। अत मुनिजी को कहने की आवश्यकता नही पडती। कहने के पहिले ही मन म चाहते ही उक्त द्रव्य को उपस्थित कर देते थे।

वहाँ माया से विप्ररूप बनाये सूर्यदेव भी थे। यथा विधि हरि हर दिसि पति दिन राऊ। जे जानहिं रघुवीर प्रभाऊ। कपट विप्र वर वेष बनाये। कौतुक देखहिं अति सचु पाये। कपट विप्र के वेष मे न होते तो रात का दिन हो जाता। वे अपने कुल की रीति बतलाते चलते थे। वे ही रघुकुल के मूलपुरुष थे और उनके कहे अनुसार सब बातें की गईं। यह सब हो चुकने के बाद सीताजी को सुन्दर सिंहासन पर बिठलाया। सीताजी का और रामजी का परस्पर देखना ऐसी पण्डिताई के साथ होता है कि उसे कोई देख नही सकता और न प्रेम लखाई पडता है। वह प्रेम मन, बुद्धि और वाणी से अगोचर है। यथा तत्त्व प्रेम कर मम अरु तारा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाही। दूसरा कोई जानता नही। कहे तो क्या कहे?

दो होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं।
विप्र वेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं ॥३२३॥

अर्थ होम क समय शरीर धारण करके अग्नि अत्यन्त प्रेम से आहुति ग्रहण करते हैं। ब्राह्मण के वेष म वेद लोग विवाह की विधि कह देते ह।

व्याख्या नाम ही अनल है। न+अलम्=अनलम्। अर्थात् जहाँ बस नही होता। जो डालिये भस्म होता चला जाय। यही अग्नि यावद् गृहस्थाश्रम बराबर बनी रहेगी। इसी म अग्निहोत्र होगा। अत शरीरधारी अग्नि भगवान् प्रकट हुए। उन्ह रामजानकी की दी हुई आहुति के ग्रहण म बडा सुख है। वेद लोग भी ब्राह्मण के वेष मे उपस्थित हैं। वे विवाह की विधि बोलते जाते है। सवज्ञ वसिष्ठ मुनि यद्यपि सब कुछ जानते हैं फिर भी वेद लोग अपनी सेवा निवेदन कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि वसिष्ठजी भी तो विधि के जानकार वेद द्वारा ही हुए। अत कम को अभ्रान्त करने के लिए स्वय वेद विधि बतला रहे है।

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुदरताई। सब समेटि विधि रची बनाई ॥१॥

अर्थ सीताजी की माता महाराज जनक की पटरानी को ससार जानता है। उनकी प्रशसा कैसे की जा सकती है। सुयश, पुण्य और सब सुन्दरता को समेटकर ब्रह्मदव ने उन्ह सँवारकर रचा है।

व्याख्या जनकजी की चार रानियो मे जो पट्टाभिषिक्ता महिषी थी अर्थात् जिनके साथ महाराज जनक का राज्याभिषेक हुआ था वही सीताजी की माता थी। उनका बखान कोई कैसे करे ? उन्हे ससार जानता है। जगजानी से सुयश कहा। जनक पाटमहिषी कहकर सुख कहा। सीय मातु कहकर उनका पुण्य कहा। किमि जाइ बखानी कहकर वर्णनातीत कहा। सब समेटि कहकर उनके शरीर का अलौकिक होना कहा। और विधि रची बनाई कहकर सौन्दर्यातिशय कहा।

समय जानि मुनिबरन्ह बुलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि सग बनी जनु मयना ॥२॥

अर्थ समय जानकर मुनियो ने बुलाया। सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हे आदर के साथ लिवा लाईं। जनकजी के वाम भाग में रानी सुनयना ऐसी शोभित हुईं जैसे हिमालय के साथ मयना की शोभा हुई थी।

व्याख्या दोनो ओर के मुनियो ने सुहागिनियों से कहा कि अब महारानी के आने की आवश्यकता है। वे सब तुरन्त मण्डप मे ले आईं। महोत्सव के समय परदा का विधान नही है। नही तो राजा की स्त्रियो को सूर्य नही देखते। असूर्यपश्या हि राजदारा। सुहागिनी लोग पहिले से ही खडी थी कि जब मुनि लोग कहे तब महारानी को ले आवें।

यहाँ पर ग्रन्थकार ने महारानी का नाम दे देना उचित समझा। इसलिए कहते है कि रानी सुनयना आकर महाराज जनक के वाम भाग मे सुशोभित हुईं। दानचन्द्रिका का वचन है कन्या पुत्र के विवाह मे, गोदान मे, व्रतबन्ध मे, आशीर्वाद के समय तथा अभिषेक मे पत्नी वाम भाग मे रहे। पर कन्यादान मे वृषोत्सर्ग मे, यज्ञ म और सोम दर्शन मे पत्नी को दक्षिण भाग म रक्खे और स्थानो मे वाम भाग ही शुभ है। यथा कन्यापुत्रविवाहे च गोदाने व्रतबन्धने। आशीर्वादेऽभिषेके च पत्नी उत्तरतो भवेत्। कन्यादाने वृषोत्सर्गे अध्वरे सोमदर्शने। पत्नी दक्षिणत कुर्यादन्यथा वामत शुभा। कन्या का विवाह उपस्थित है। इसलिए महारानी वामभाग मे सुशोभित है। क्योकि केवल कन्यादान के समय दक्षिण भाग मे रहने का विधान है। उस समय की उपमा कवि कहते हैं कि जैसे पार्वतीजी के विवाह के समय हिमालय के साथ मयना को शोभा हुई थी।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगध मगल जल पूरे ॥
निजकर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी ॥३॥

अर्थ सोने के कलश मणि के सुन्दर कोपर, पवित्र और सुगन्धित मङ्गल जल से भरे हुए प्रसन्न होकर राजा और रानी ने लाकर रामजी के आगे रक्खा।

व्याख्या सोने का कलश पहिले से ही पवित्र और तीर्थ के जल से भरा हुआ रक्खा था। उसे राजा ने और मणि के कोपर जिनम पैर धोये जायँगे उन्हे महारानी ने लाकर रामजी के आगे पादप्रक्षालन के लिए रक्खा। यहाँ कोपर

बहुवचन है। क्योकि जिसमे एक पैर धोया गया उसी में दूसरा पैर नही धोया जायगा :

पढहि वेद मुनि मंगल बानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥
बर बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥४॥

अर्थ : मुनि लोग मङ्गल वाणी से वेद पढ़ने लगे। आकाश से अवसर जानकर फूलो की झड़ी लग गई। वर को देखकर राजा और रानी को प्रेम उमग आया। पवित्र चरणो का प्रक्षालन करने लगे।

व्याख्या : राजा और रानी में बड़ी श्रद्धा है। अपने हाथ से कनक कलश और मणि कोपर ले आये। उसी समय मुनियों ने स्वस्त्ययन किया। मङ्गलवाणी से वेदमन्त्रो का उच्चारण किया। यही पुष्पवर्षा का ठीक अवसर है। यह समझकर देवो ने पुष्पवर्षा की झड़ी लगा दी। इस समय दोनो प्राणी दूल्हे के वेप मे रामजी का दर्शन करके प्रेम से उमड पड़े। चरण कमल स्वयं पवित्र हैं प्रक्षालन की आवश्यकता नही। फिर भी विधि के पालन के लिए अपने को कृतार्थ करने के लिए पादप्रक्षालन करने लगे।

छं. लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ॥
जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव बिराजही।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलि मल भाजही ॥
जे परसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिनको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बरनई ॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहै।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहै ॥
बर कुँअरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुरु करै।
भयो पानि गहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनँद भरै ॥
सुख मूल दूलहु देखि दंपति पुलक तनु हुलसेउ हियो।
करि लोक वेद बिधान कन्या दान नृप भूषन कियो ॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई ॥
क्यों करै बिनय बिदेह कियो बिदेह मूरति साँवरी।
करि होमु बिधिवत गाँठि जोरी होन लागी भाँवरी ॥

अर्थ : चरण कमल धोने लगे। प्रेम से शरीर मे पुलकावली हुई। आकाश मे

और नगर मे गान और नगाडा तथा जयकारे की ध्वनि उमगकर मानो चारो दिशाओ मे चली। जो पद कमल काम के शत्रु शिवजी के मानससर में सदा विराजते हैं। जिनके एक वार के स्मरण से मन विमल हो जाता है और सब कलियुग के मल दूर होते है। जिन्हे स्पर्श करके मुनि की स्त्री अहल्या ने गति प्राप्त की जो पापमयी थी। शिवजी के सिरपर धारण करने के कारण जिसके रस के लिए देवता वर्णन करते हैं कि पवित्रता की सीमा है और मुनिलोग मन को भौरा बनाकर और योगी लोग जिन ' चरणो की सेवा करके चाही हुई गति को प्राप्त होते हैं। उन चरणो को भाग्यवान् जनकजी धोते हैं और सब लोग जय जय करते हैं।

वर और दुलहिन की हथेलियो को मिलाकर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करते हैं। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मा देवता मनुष्य और मुनि आनन्द से भर उठते हैं। सुखमूल दूल्हे को देखकर राजा और रानी के शरीर मे रोमाञ्च हुआ और हृदय मे उल्लास हुआ। लोक वेद विधि करके राजाओ के भूषण जनकजी ने कन्यादान कर दिया।

हिमवान् ने जैसे पार्वती शङ्करजी को दी और समुद्र ने लक्ष्मी हरि को दी उसी भाँति जनकजी ने रामजी को सीता समर्पण कर दी। ससार मे उनकी अपूर्व सुन्दर कीर्ति हुई। राजा विदेह कैसे विनय करें। साँवली मूर्ति ने तो उन्हे विदेह कर दिया। होम करके विधि के साथ ग्रन्थि बन्धन हुआ और भाँवरी होने लगी।

व्याख्या : महाराज जनक बडे भाव से चरण धो रहे हैं। जैसे कोई हलके हाथ से फूले हुए कमल का प्रक्षालन करे और इस भाँति प्रक्षालन मे ब्रह्मसस्पर्शसुख का अनुभव कर रहे है। ब्रह्मसस्पर्शमत्यन्त सुखमश्नुते। राजा और रानी को सात्त्विक भाव हो गया। सम्पूर्ण शरीर मे पुलकावली हो गई। उसी समय स्त्रियाँ गान करने लगी। आकाश मे देवियो ने गान किया। ऊपर देवताओ ने और नीचे मनुष्यो ने नगाडे बजाये। सब लोगो ने जय जयकार किया। सब मिलकर ऐसी ध्वनि हुई कि अन्तराल मे मानो यथेष्ट स्थान न रह गया। इसलिए उमगकर चारो ओर इस भाँति फैल रही है जिस भाँति किसी छोटे पात्र मे बहुत सा जल डाल दिया जाय और वह चारो ओर से बह चले। जो चरणकमल कामारि शङ्करजी के मन रूपी सरोवर में सदा विराजमान रहता है। किसकी सामर्थ्य जो वहाँ तक पहुँच सके। वहाँ तक पहुँचने का सामर्थ्य मन से उत्पन्न मनोज काम को भी नही है। क्योकि शिवजी कामारि है और जिस चरणकमल को एक बार स्मरण करने से मन निर्मल हो जाता है। सम्पूर्ण कलि का कल्मष नष्ट हो जाता है। जो चरण ब्रह्मशाप से विनिर्मुक्ति देनेवाले हैं। जिनके स्पर्श से पातकमयी अहल्या का उद्धार हुआ। जिन चरणकमलो का मकरन्द गगा शिवजी के सिर पर विराजमान है। जिसे देवता लोग पवित्रता को परमावधि रूप से वर्णन करते हैं। भाव यह कि ब्रह्मशाप से दग्ध सगर के पुत्रो का उद्धार गौतमशाप से जडीभूत अहल्या का उद्धार जिन चरणकमलो से ही सम्भव हुआ और किसी उपाय से उनका उद्धार असम्भव था।

जिन चरणकमलो के लिए मुनि लोग अपने मन को भ्रमर बना देते है। सदा उसी का रस लिया करते है। योगी लोग जिनके सेवन से जैसी गति चाहते हैं उसीको प्राप्त होते हैं। उन्ही चरणो को आज भाग्यवान् राजा जनक धो रहे हैं। इसीलिए सबने जयजयकार किया।

चरणप्रक्षालन के बाद कन्यादान का विधान हुआ। कन्यादान के समय कन्या की हथेली को वर की हथेली पर रखकर दाता दोनो को सँभाले रहता है। इसी भाँति श्रीरामजी की हथेली पर सीताजी की हथेली रखकर राजा जनक अपनी हथेली से दोनो को जोडे हुए हैं। यही समय शाखोच्चार का है सो वसिष्ठ वर पक्ष की ओर से और सतानन्दजी कन्या पक्ष की ओर से वंशवर्णन कर रहे हैं। यथा इत वसिष्ठ मुनि उतै सतानद बस बखान करत दुहु ओरी। इत अवधेस उतहि मिथिलापति भरत अक सुख सिंधु हिलोरी। इस रीति से पाणिग्रहण हुआ। देखकर ब्रह्मदेव, देवता, मनुष्य और मुनि अपने मन को आनन्द से भर रहे हैं। अथवा विधि शब्द को विलोकि क्रिया का कर्म माना जाय तो यह अर्थ होगा कि कन्यादान की विधि देखकर देवता मनुष्य और मुनि मनमे आनन्द भर रहे हैं और महाराज जनक की गोद मे जानकीजी हैं। अत दम्पति केवल रामजी का ही दर्शन कर रहे हैं। उनके विषय मे कवि कहते है कि सुखमूल दूल्हे को देखकर उन्हे पुलक हो रहा है। हृदय मे उल्लास हो रहा। यह दूल्हा ही ऐसा है। जिसके जन्म से चराचर हर्षित हो उठे थे। क्योकि वह सुखमूल है। यथा चर अरु अचर हरख युत रामजनम सुखमूल। लोकविधान भी वेदविधान के साथ ही साथ चलता है। यथा कन्या का भाई सकल्प के समय जल देता है। सो साक्षात् मङ्गल देव भाई का कृत्य करने के लिए आगये। यथा सिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ। इस भाँति लोकविधान और वेदविधान दोनो करके नृपभूपण ने कन्यादान किया। अथवा सीताजी के साथ ही पृथ्वी से पुत्र की भी प्राप्ति जनकजी को हुई थी। भूमि से उत्पन्न होने के कारण उनकी भी भौम सज्ञा थी। यहाँ पर कवि उपमा देते है कि जैसे हिमालय ने पार्वती शिवजी को, क्षीरसागर ने लक्ष्मी विष्णु को दी थी उसी भाँति जनकजी ने भी जानकी रामजी को दी। भाव यह कि जानकीजी सदा से ही रामजी की शक्ति हैं। जनकजी ने अपने को इनके सयोग का निमित्त मात्र जाना।

राजा विदेह देहाध्यासन रहित होने पर भी उत्तम ज्ञानी होने के कारण सभी व्यवहार म बडे पटु हैं। पर साँवली मूर्ति ने इस पटुता को भी समाप्त कर दिया। महाराज को व्यवहार ज्ञान भी नही रह गया। पूरे विदेह हो गये। क्योकि कन्यादान के बाद वर से विनय करना चाहिए। पर जनकजी विनय करने मे असमर्थ रहे। गला भर आया। विनय न कर सके। अथवा प्रेम मे ऐसे मग्न थे कि विनय का ध्यान भी न रहा। लाजाहवन होने लगा। विधि के साथ गाँठ जोडी गई और अग्नि की परिक्रमा वर वधू करने लगे। यथा : राजत राम जानकी जोरी। स्याम सराज जलद सुदर वर दुलहिन तडित वरन तन गोरी। व्याह समय सोहत वितान नर

उपमा कहुँ न लहत मति भोरी। मनहुँ मदन मजुल मण्डप मह छवि सिगार सोभा इक ठौरी। मगलमय दोउ अग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी। कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी। मुदित जनक रनिवास रहस वस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।

दो जय धुनि बदी वेद धुनि, मगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं विबुध, सुरतरु सुमन सुजान ॥३२४॥

अर्थ जय की ध्वनि वन्दीजन और वेद की ध्वनि मङ्गलगान और नगाडे की ध्वनि हो रही है। देवगण हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाते हैं।

व्याख्या भाँवरी प्रारम्भ होते ही जयजयकार हुआ। वन्दियो ने विरद कहा। स्त्रियो ने मङ्गलगान किया। नगाडे वज उठे। इस तुमुल ध्वनि को सुनकर देवतालोग हर्षित हुए। सुजान हैं समय जानकर कल्पवृक्ष के फूलो की वर्षा की। यथा गान निसान वेद धुनि सुनि सुर वरपत सुमन हरप कहै कोरी। नयनन को फल पाइ प्रेमवस सकल असीसत ईसनिहोरी। तुलसी जेहि आनद मगन मन क्यो रसना वरनै मुख सोरी।

कुँअरु कुँअरि कल भाँवरि देही। नयन लाभु सब सादर लेही॥
'जाइ न वरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी॥१॥

अर्थ कुँवर और कुँवरि सुन्दर भाँवर फिर रहे हैं और सब लोग आदर के साथ नेत्रो का लाभ ले रहे हैं। मन हरण करनेवाली जोडी का वर्णन नही किया जा सकता। जो ही उपमा दी जाय वही थोडी पडती है।

व्याख्या सुन्दर कुँअर और सुन्दरी कुँवरि की भाँवरी की भी वडी शोभा है। नेत्र होने का लाभ इस भाँवरी के दर्शन म ही है। सो सब लोग आदर के साथ ल रहे है। सब कहने का भाव यह है कि विवाह बैठकर हो रहा था। मण्डप प्रधान प्रधान व्यक्तियो से घिरा था। अत सब लोग नयन लाभ नही ले सकते थे। अब खडे होकर परिक्रमा करने मे पुरवासी नर नारी तथा रनिवास भी लने लगी। अत सब शब्द से स्त्री और पुरुप दोनो परिगृहीत हैं। कोष्ठान्तर्गत अर्धालियाँ काशिराज की प्रति मे नहीं हैं और न श्रावणकुञ्ज की प्रति मे हैं। श्रावणकुञ्ज की प्रति के हाशिये पर लिखी हुई है। रचना सुन्दर होने पर भी सुसगत नही हैं। मेरी समझ मे ये क्षेपक है। पर साधारणत परिगृहीत है। इसलिए इनका अर्थ कर दिया गया। इन अर्धालियो को मूल मानने से ऐसा अर्थ करना पडेगा। मानो कवि राम सीता की जोडी का वर्णन करने लगे और कहते है कि मुझसे वर्णन करते नही बनता। क्योंकि जो उपमाएँ है वे इन जोडियो से न्यून है।

राम सीय सुदर परिछाही। जगमगाति मनि खभन्ह माही॥'
मनहु मदन रति धरि वहु रूपा। देखत राम विआहु अनूपा॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी का सुन्दर प्रतिबिम्ब मणि के खम्भो मे जगमगा रहा है। मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण करके रामजी के अनूप विवाह को देख रहे हैं।

व्याख्या : राम सीता के प्रतिबिम्ब के जगमगाने के लिए मणि के खम्भे मानने पडे। पर गोस्वामीजी कनक के खम्भों की रचना का वर्णन पहिले कर आये हैं। यथा : बिरचे कनक कदलि के खम्भा। ऐसी त्रुटि गोस्वामीजी से होती कही देखी नही गई है। पर इस अर्धाली को मूल मे मानने से ऐसा अर्थ करना पडेगा कि कवि मनोहर जोड़ी के वर्णन में अपने को असमर्थ पाकर उसके प्रतिबिम्ब का वर्णन करने लगे और उस प्रतिबिम्ब की उपमा देते हैं कि मानो अनेक रूप धारण करके काम और रति रामजी का अनूप विवाह देखते हैं। परन्तु वस्तुतः इसका सम्बन्ध : नयन लाभ सब सादर लेही से है। नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना। तिन्हहि देखि सब सुर नर नारी। भये नखत जनु बिधु उजियारी। ऐसे नगर नरनारियो की उपमा काम और रति से है। राम कामसतकोटि सुभग तन। रामजी तो शतकोटि काम से भी अधिक सुन्दर हैं और सीताजी पर शतकोटि रति बलिहारी जाती है। यथा : रति सतकोटि तासु बलिहारी। प्रतिबिम्ब भी बिम्ब के समान होते हैं। अतः विवाह के समय काम रति से उपमा देना उनकी शोभा को घटाना है। मैं इस अर्धाली को कवि कृत मानने को तैयार नही हूँ। यहाँ यही अर्थ करने मे शोभा है कि सब नर नारी इस समय सरकार की शोभा देख रहे हैं। मानो इस अनूप शोभा को देखने के लिए काम और रति ने अनेक रूप धारण किये हैं।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ॥
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे ॥३॥

अर्थ : उन्हे दर्शन की लालसा भी है और सङ्कोच भी थोडा नही है। इससे प्रकट होना और छिपना बार बार हो रहा है। सब देखनेवाले मग्न और जनक की भाँति अपनी सुधबुध भूल गये।

व्याख्या : यह अर्धाली प्रधानरूपेण नारी समाज के लिए ही कही गई है। क्योकि दर्शन की लालसा और सङ्कोच से उन्ही का प्रकट होना और छिपना बनता है। यथा . प्रकटहिं दुरहिं अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि। और पिछली अर्धाली पुरुषो के लिए कही गई है। देखनहारियो का हाल कहकर देखनहारो का हाल कहते हैं। इन्हे कोई सङ्कोच नही था। इसलिए देखने मे ऐसे मग्न हुए कि अपनी ही सुधि नही रह गई। प्रतिबिम्ब के पक्ष मे यह अर्थ करना होगा कि जिस खम्भे के सामने होकर यह जोडी निकल जाती है उसमे प्रतिबिम्ब पडकर लुप्त हो जाता है और फिर प्रतिबिम्ब दूसरे खम्भे पर पड जाता है। इस भाँति प्रकट होना और छिपना प्रतिबिम्ब पक्ष मे भी बन जाता है।

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी। नेगसहित सब रीति निवेरी॥
राम सीय सिर सेंदुर देही। सोभा कहि न जात बिधि केही॥४॥

अर्थ अतिप्रसन्न होकर मुनियो ने भाँवरी घुमाई और नेग सहित सब रीतियाँ पूरी की। रामजी सीताकी के सिर मे सिन्दूर दे रहे हैं। वह शोभा किसी प्रकार से कही नही जा सकती।

व्याख्या चार अर्धालियाँ कहकर चार बार भाँवर फिरना कहा। पाँचवी अर्धाली म भाँवरी की समाप्ति कहते हैं। यहाँ पर नेग होता है। मङ्गलकार्य मे पदे पदे नेग होता है। उस दिन पारिश्रमिक मेहनताना देने से काम नही चलता। नेगी को प्रसन्न करना पडता है। दर्जी कपडा लाया है। बढई पादुका लाया है। भगिनी हवन के लिए अग्नि लाई है। पुरोहितजी ने कर्मकाण्ड कराया है। तो उनके परिश्रम के अनुसार द्रव्य देने से काम न चलेगा। उस दिन तो कपडा हाथ मे है। पर बिना दर्जी की आज्ञा से पहना नही जा सकता। पादुका पास रक्खी है। पर बिना बढई को राजी किये आप आरोहण नही कर सकते। भगिनी ने अग्नि दे दी पर उसे द्रव्यदान से प्रसन्न कर लीजिये तब हवन मे हाथ लगाइये। पुरोहितजी कर्मकाण्ड करा चुके पर दक्षिणा से प्रसन्न कर लीजिये तब भाँवर फिरेगी। मङ्गलोत्सव मे नीच ऊँच सभी का सत्कार करना पडता है। यह भारत की सभ्यता है। अत कहते है कि रसम रीति नेग के सहित पूरी की गई। मुनिलोगो का भी यथेष्ट सत्कार किया गया। अत कहते है कि प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी।

और शोभा तो किसी भाँति कही भी जा सकती है। पर श्रीरामजी सीताजी के सिर म सिन्दूर दे रहे है। इस सिन्दूरदान की शोभा तो सर्वथा वर्णनातीत है।

अरुन[1] पराग जलजु भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्ह अनुसासन। बर दुलहिनि बैठे एक आसन॥५॥

अर्थ मानो कमल मे लाल पराग अच्छी तरह से भरकर अमृत के लोभ से सर्प चन्द्रमा को भूषित करता है। फिर वसिष्ठजी ने आज्ञा दी वर और दुलहिन एक आसन पर बैठें।

व्याख्या यहाँ उपमेय के न कहने से अतिशयोक्ति अलङ्कार हुआ और तद्रूप वर्णन करने से रूपक अलङ्कार हुआ। अरुण पराग सिन्दूर हुआ। सीताजी का मुख चन्द्रमा हुआ। अहि रामजी की भुजा हुई। भावार्थ यह कि हाथ मे भली भाँति से सिन्दूर लेकर रामजी सीताजी के सिर मे दे रहे है। जैसे सर्प कमल मे अरुण पराग भरकर चन्द्रमा को भूषित करता हो। चन्द्रमा से सर्प को अमृतप्राप्ति का लोभ है। आशा करता है कि भूषित चन्द्र प्रसन्न होकर अमृत देगा। आगे चलकर चन्द्र द्वारा सर्प को अमृतदान भी दिखलावेंगे। यथा लहकौरि गौरि

---

१ यहाँ अतिशयोक्ति रूपक है।

सिखाव रामहिं सीय सन सारद वहै। लहकौरि के रसम मे भुज रूपी सर्प को अधरामृत के स्पर्श का अवसर मिलेगा।

छ. वैठे वरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भये।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम विआहु भा सवही कहा।
केहि भाँति वरनि सिरात रसना एकु यहु मंगल महा॥
तव जनक पाइ वसिष्ठ आयसु व्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँअरि लई हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सव रीति प्रीति समेत करि सो व्याहि नृप भरतहिं दई॥
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही व्याहि लपनहि सकल विधि सनमानि कै॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सव गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥
अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि सकुचि हिय हरपही।
सव मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुर गन वरपही॥
सुंदरी सुंदर वरन्ह सह सव एक मंडप राजही।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजही॥

अर्थ : राम जानकी श्रेष्ठ आसन पर वैठे। राजा दशरथ के मन मे मोद हुआ। अपने पुण्यरूप कल्पवृक्ष में नया फल देखकर वार वार रोमाञ्च होने लगा। भुवन मे उछाह भर गया। सव कोई कहने लगे कि रामजी का व्याह हो गया। कैसे वर्णन करते वने। जिह्वा तो एक ही है और यह मङ्गल वड़ा भारी है। तव जनकजी ने वसिष्ठ मुनि की आज्ञा पाकर व्याह का साज सँवारकर माण्डवी श्रुतिकीर्ति और उर्मिला कुँअरि को वुला लिया। कुशकेतु राजा की वड़ी लड़की जो गुणशीलशोभामयी थी उसका व्याह सव रीतियो को प्रीति के समेत करके राजा ने भरतजी से कर दिया। जानकीजी की छोटी वहन को सव सुन्दरियो की शिरोमणि जानकर उस कन्या का व्याह लक्ष्मणजी के साथ सव प्रकार से सम्मान करके कर दिया। जिसका नाम श्रुतिकीर्ति था जो सुलोचनी, सुमुखी और सव गुणो मे निपुण थी उस रूप शील उजागरी को राजा ने शत्रुघ्नजी को दिया। सव दूल्हे और दुलहिन एक दूसरे के अनुरूप थे। वे एक दूसरे का देखकर सङ्कुचित होते थे और हृदय मे हर्षित होते थे। सवलोग मुदित होकर सुन्दरता की प्रशंसा

करते थे और देवता पुष्पो की वर्षा करते थे। सुन्दरियाँ सुन्दर वरो के साथ एक मण्डप म शोभा देती है। मानो जीव के उर म चारो अवस्थाएँ अपने अपने विभुओ के साथ विराजमान है।

व्याख्या वरासन पर बैठने से विवाह की समाप्ति द्योतित होती है। सो वरासन पर राम जानकी को बैठे देखकर महाराज दशरथ को बडा मोद हुआ। इष्टदर्शन से जो आनन्द होता है उसे मोद कहते है। इस मोद से महाराज को बारबार रोमाञ्च हो रहा है। जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत राम धरे देही। इन सम कोउ नहि सिव अवराधे। कोउ नहि इन समान फल लाधे। सो बैदेही दशरथजी को पुत्रवधू के रूप से प्राप्त हुई। इसलिए अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष म यह नया फल देखकर मुदित हो रहे हैं। दुष्ट राजाओ ने कहा था तोरेउ धनुप ब्याह अवगाहा। सो रामजी का व्याह हो गया। उन सबो का किया कुछ न हो सका। अथवा लोगो को वडी उत्सुकता थी। यथा जौ विधिवस अस बनै सजोगू। तौ कृतकृत्य होहि सब लोगू। कि रामजी का ब्याह हो जाय सो हो गया। अत सबलोग कहने लगे कि रामजी का व्याह हो गया। अथवा इस विवाह मे साधारण विघ्न नही उपस्थित हुए। पहिल धनुपभङ्ग ही असाधारण व्यापार था। किसी भाति वह टूटा तो सब राजा विगड गये। यथा लेहु छुडाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ। सबसे महा विघ्न यह उपस्थित हुआ कि परशुरामजी आपडे और धनुपभङ्ग करनेवाल को वध करने के लिए खोजने लगे। यथा कहु जड जनक धनुप कै नारा। वेगि देखाउ मूढ नत आजू। उलटौं महि जहँ लहि तव राजू। सो रामजी का व्याह निर्विघ्न समाप्त हो जाय इस बात की बडी लालसा थी। व्याह हो जाने पर उछाह बढ गया। सब कहने लगे कि रामजी का व्याह हो गया। यह महामङ्गल है जिसमे असख्य नरनारी आनन्द मना रहे हैं। एक मङ्गलक्रिया के बाद ही दूसरा मङ्गल आरम्भ हो जाता है। एक मङ्गलाचार का वर्णन समाप्त होने ही नही पाता तब से दूसरा मङ्गल प्रारम्भ हो जाता है। अत एक रसना नही कह सकती। एक रसना से एक रसास्वादन करते ही करते कितने रस छूट जात हैं। इसलिए कवि कहते हैं कि यह महामङ्गल एक रसना से कहा नही जा सकता।

अव शेप तीनो भाइया का व्याह वसिष्ठजी की आज्ञा से हो रहा है और वसिष्ठजी को महाराज जनक कुलदव की दृष्टि से देखते हैं। यथा कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे। अत वसिष्ठजी की सम्मति को महाराज जनक कुलदेव की आज्ञा म महाराज दशरथ की स्वीकृति की आवश्यकता नही है। सो वसिष्ठजी की आज्ञा हुई और राजा जनक ने तुरन्त व्याह साज को सँवारकर क्योकि पहिल से बात तय नही हुई थी तीनो कुमारियो को बुलवा लिया।

राजा जनक दो भाई थे। सीरध्वज और कुशध्वज। सीरध्वज ही बडे थे। ये ही मिथिला क राजा थे और जनक कहलाते थे। छोटे भाई कुशध्वज को जनकजी ने सकाश्यापुरी को जीतकर वहाँ का राजा बना दिया था। सीरध्वज को

दो कन्यायें थी। सीता और उर्मिला एवं कुशध्वज को भी दो कन्यायें थी माण्डवी और श्रुतिकीर्ति। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि सहोदर भाइयो का सहोदर वहिनो से व्याह नही हो सकता। यहाँ लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी सहोदर भाई थे और माण्डवी और श्रुतिकीर्ति सहोदर वहनें थी। इसी कारण से माण्डवी का व्याह भरतजी के साथ और श्रुतिकीर्ति का शत्रुघ्नजी के साथ हुआ।

भरतजी के चार गुण : वल, शील, गुण और भक्ति। यथा भरत वाहु वल सीलगुन प्रभु पद प्रीति अपार। मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार। और भगवती माण्डवी मे भी चार गुण दिखलाये गये है : गुण, शील, सुख और शोभा। अत· वर दुलहिन अनुरूप भी हैं। सब वैदिक और लौकिक रीति करके इसी प्रीति के साथ जिस भाँति जानकीजी का व्याह किया था उसी भाँति माण्डवी का व्याह भरतलाल के साथ हुआ।

लक्ष्मणजी तेज निधान है। यथा : राजन राम अतुल वल जैसे। तेज निधान लखन पुनि तैसे। भगवती उर्मिला सकल सुन्दरी शिरोमणि हैं। अत यह वर दुलहिन भी अनुरूप है। कुशकेतु कन्या प्रथम कहने से श्रुतिकीर्ति का द्वितीय कन्या होना कहा। शेष रही उर्मिला वही जानकीजी की दूसरी वहन है।

भगवती श्रुतिकीर्ति के तीन गुण कहे गये · रूप, शील और निपुणता। यथा ' सब गुन आगरी रूप शील उजागरी। इसी भाँति शत्रुघ्नजी के भी तीन गुण कहे गये हैं : शूर, सुशील, भरत अनुगामी। अतः यह वर दुलहिन भी अनुरूप हैं। व्याह हो जाने पर माण्डवी और भरतजी एक आसन पर विराजमान हुए। उर्मिला और लक्ष्मणजी एक ही आमन पर विराजमान हैं तथा भगवती श्रुतिकीर्ति और शत्रुघ्नजी एक आसन पर विराजमान है। इस भाँति बैठने मे इनको गुरजनो का सङ्कोच है और मनोवाञ्छित जोडी की प्राप्ति से मन मे हर्ष है। इन जोडियो की ऐसी शोभा हुई कि सब लोग सुन्दरता की सराहना करने लगे। देवताओ की सराहना भी पुष्पवर्षा से अनुमित हुई।

इस समय चारो सुन्दरियाँ अपने अपने सुन्दर वरो के साथ एक ही मण्डप मे शोभायमान है। इस शोभा की उपमा देते हुए कवि कहते है कि जैसे जीव के हृदय मे चारो अवस्थाएँ अपने अपने विभु के साथ विराजमान हो। यहाँ जनकपुर है। अत प्रधानता सुन्दरियो की है। उन्ही को अपने अपने वरो के साथ सुशोभित होने की उपमा दी जा रही है।

अवस्थाएँ चार हैं · जाग्रत्, स्वप्न, सुपुप्ति और तुरीय। इनके विभु क्रम से विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म हैं। यहाँ तुरीयावस्था सीताजी हैं और उनके विभु ब्रह्म राम है। यथा . तमेकमद्भुत प्रभु तुरीयमेव केवलम्। रामजी के सदृश भरतजी है। यथा · भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी। और तुरीय के सदृश ही सुपुप्ति हैं। अत सुपुप्ति के विभु माण्डवीपति भरतजी है। तुरीय और सुपुप्ति अवस्था भी ऐसी मिलती जुलती हैं कि सहसा साधक को लखाई नही पडती कि उसे सुपुप्ति हो गई या समाधि लग गई तथा सहमा ब्रह्म और ईश्वर मे

भेद लखाई नही पडता। सुषुप्ति और स्वप्न का साथ है। इसी भाँति उनके विभुओ का भी साथ है। वहाँ स्वप्न के विभु की उपमा शत्रुघ्नजी के साथ ठीक बैठती है। क्योकि उनका साथ भरतजी से है। यथा भरत शत्रुहन दनो भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति बढाई। और स्वप्न तथा जाग्रत् मे अत्यन्त सादृश्य है। स्वप्न देखता हुआ पुरुष अपने को जागता हुआ ही उस समय मानता है। एव उनके विभुओ मे भी सादृश्य है। हिरण्यगर्भ और विराट् एक रूप हैं। इस भाँति शत्रुघ्न और लक्ष्मण मे सादृश्य है। यथा लखन सत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख ते सब अग अनूपा। अत परिशेष न्याय से लक्ष्मणजी की उपमा जाग्रत के विभु से ठीक बैठती है। दूसरी बात यह है कि जाग्रत् और तुरीय का साथ है। तुरीय की प्राप्ति जाग्रत् स ही सम्भव है। सुषुप्ति या स्वप्न से कोई तुरीयावस्था को नही प्राप्त कर सकता। इसी भाँति इनके विभुओ का भी साथ हुआ। यथा भरत शत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति बडाई। अत जाग्रत् के विभु की उपमा लक्ष्मणजी के साथ है। तुरीय और सुषुप्ति अव्यक्तावस्था है। अत इनके विभुओ राम और भरत का रङ्ग श्याम है और जाग्रत् तथा स्वप्न व्यक्तावस्था है। अत इनके विभुओ लक्ष्मण और शत्रुघ्न का रग गौर है। जाग्रत् का सस्कार ही स्वप्न है। अत जाग्रत् अवस्था हो ज्येष्ठ है सो उसके विभु लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से ज्येष्ठ है।

जीव का हृदय ही एक एसा स्थल है जहाँ सब कुछ सम्भव है। वही चारो अवस्थाएँ एकत्र रह सकती हैं। अत जनकजी के मण्डप की उपमा जीव के हृदय से दी।

दो मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फलचारि॥३२५॥

अर्थ सब बेटा को बहुआ के साथ देखकर अयाध्याधिपति मुदित हैं। मानो भूपालमणि ने क्रियाओ के सहित चारो फल प्राप्त कर लिये।

व्याख्या एक बेटे को बहू के साथ देखना दुलभ था। क्योकि रामजी विषयरस से रूखे थे। यथा राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूप भोग के भूखे। सो आज चारो बेटा को बहुओ के साथ देख रहे है। अत मुदित हैं। पहिल ही कह आये है नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनु धारी अब वे ही वधुओ के सहित हैं। इसीलिए क्रियाओ क सहित चारो फलो की प्राप्ति कहते है। धर्म की क्रिया सुकृति है। अर्थ की क्रिया व्यापृति उद्योग है। काम की क्रिया रति और मोक्ष की क्रिया भक्ति है। फलरूप होने से मोक्ष और काम क्रम से रामजी और भरतजी की उपमाएँ है तथा साधनरूप होने से धम और अर्थ लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उपमाएँ हैं।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मडप पूरी॥१॥

अर्थ जैसी रामजी के व्याह की विधि वर्णन की गई है उसी विधि से सब राजकुमारो को व्याहा। दायज इतना दिया गया कि कहा नही जा सकता। सोने और मणियो से मण्डप भर उठा।

व्याख्या महाराज ने भरतजी को आज्ञा दी चलहु वेगि रघुवीर बराता। सो बारात रामजी के व्याह के लिए चली। स्त्रिया ने गीत भी सीताजो और रामजी का नाम लेकर गाया था। भरत शत्रुघ्न तो बारात म आये थे। किसी को पता भी नही कि इन लोगो का भी व्याह होगा। सो रामजी का व्याह हो गया। वसिष्ठजी की आज्ञा शेष तीनो कुँअरियो के व्याह देने के लिए हुई। जनकजी ने उसी करणी से तीना का व्याह किया। श्रद्धा या दायज म कोई त्रुटि नही हुई। सुवर्ण और मणि से मण्डप भर उठा। यह महाराज जनक की अलौकिक श्रद्धा और ऐश्वर्य का परिचायक है।

कवल वसन विचित्र पटोरे। भाँति भाँति वहु मोल न थोरे॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलकृत कामदुहा सी॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार के वडे मूल्यवान् और ढेर के ढेर ऊनी मूती और रेशमी कपडे हाथी, रथ दास, दासी अलकृत गायें कामधेनु-सी।

व्याख्या यह सब दायज वर पूजन और कन्यादान म मिला है। महाराज जनक ने जिस भाँति यज्ञ म चादी निन्दित है क्याकि वह रुद्र के रोने से उत्पन्न हुई कही जाती है। सोरोदीत् उसी भाँति उसे समझकर चाँदी से काम न लिया। सब प्रकार के वस्त्र दिये। हाथी घोडे, रथ, दास, दासी और गाय दी।

वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहि जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥३॥

अर्थ अनेक वस्तुएँ जिनका क्या लखा किया जाय? वे ही जान सकते हैं जिन्होने देखा है। परन्तु कही नही जा सकती। जिन्हे देखकर लोकपाल सिहाते हैं। अयोध्यानाथ ने सबको सुखपूर्वक स्वीकार किया।

व्याख्या राजोपचार से वरपूजन हुआ। ऊनी, सूती, और रेशमी वस्त्र वस्त्रोपवस्त्र के लिए दिये। चतुरगिणी सेना के लिए गजरथ तुरग दिये गय। पैदल नही दिय जा सकत। अत दास दासी दिये गये। हवि के लिए गायें दी गईं शास्त्रदृष्टि स गौ का काई मूल्य नही है। छत्रचामरादि समस्त राजोपचार दिये गये। जिन्हे देखकर लोकपाल सिहाते है। अत कवि कहते हैं कि मैंने वैसी वस्तुएँ देखी ही नही हैं। वर्णन क्या करूँ। मैं तो जानता ही नही। जिन्हाने देखा है वे ही जानते हैं। जो दायज वर को दिया जाता है वह सब उसके पिता की सम्पत्ति मानी जाती है। सो महाराज दशरथ ने जनकजी के प्रीत्यर्थ उन्हे आदर क साथ ग्रहण किया। परन्तु क्षत्रिय की प्रीति प्रतिग्रह म नही होती। अत

दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा ॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी ॥४॥

अर्थ जो जिसे अच्छा लगा उसे वही दिया। इस भाँति याचको को दे दिया। जो देने से बचा वह जनवास मे आया। तब जनकजी हाथ जोडकर सब बारात का सम्मान करते हुए बोले।

व्याख्या फिर दायज मिलते ही महाराज दशरथ की आज्ञा से याचकगण विवाहमण्डप मे बुलाये गये। आज्ञा हुई कि जिसे जो पसन्द हो चुन ले। दसरथ सहित समाजु बिराजे। विभव बिलोकि लोकपति लाजे। ऐसे महाराज को लौकिक दायज क्या जँचेगा। इसलिए राजा जनक ने ऐसा दायज दिया जिसे देखकर लोकपाल सिहरने लगे स्वर्ग के दु खो मे डाह भी एक प्रधान दु ख है कि ऐसी वस्तुएँ मेरे पास नही है। सो ऐसी वस्तुएँ याचको मे बाँटी जा रही है। पहिले ही याचक बहुत पा चुके हैं। यथा भइ बक्सीस याचकन्हि दीन्हा। इसलिए सन्तुष्ट है। उनके लेने पर भी बहुत कुछ सामान बच गया। वही जनवास मे आया। इससे महाराज दशरथकी नि स्पृहता दानशीलता और दीनबन्धुता कही।

चारो कुँअरो के व्याह के बाद याचको के सन्तोष के बाद महाराज जनक ने पहिले बारात का सम्मान करना उचित समझा। अत हाथ जोडकर मृदुवाणी सब बारात का सम्मान करते हुए बोले। करजोरि कर्मणा सनमानी मनसा तथा मृदुवाणी बोले वाचा सत्कार किया।

छ सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बडाइकै।
प्रमुदित महामुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लडाइ कै ॥
सिरनाइ देव मनाइ सब सन कहत कर सपुट किए।
सुर साधु चाहत भाव सिधुकि तोष जल अजलि दिए ॥
करजोरि जनकु बहोरि बधु समेत कोसल राय सो।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सो ॥
सनबध राजन रावरे हम बडे अब सब बिधि भये।
एहि राज साज समेत सेवकु जानबोबिनु गथ लये ॥
ए दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई।
अपराधु छमिओ बोलि पठए बहुत हौ ढीठ्यौ कई ॥
पुनि भानुकुल भूषन सकल सनमान निधि समधी किये।
कहि जात नहि बिनती परसपर प्रेम परिपूरन हिये ॥
बृदारकागन सुमन बरषहि राउ जनवासहि चले।
दुन्दुभी जयधुनि वेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले ॥

तब सखी मगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुदरि चली कोहवर ल्याइ कै ॥

अर्थ · आदरदान विनय और बडाई करके पूरी बारात का सम्मान किया। प्रमुदित होकर महामुनियो के समूह की पूजा प्रेम को उडेल करके की और वन्दना की। सिर नवाकर देवो को मनाया। हाथ जोडे हुए सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव चाहते है। नही तो क्या समुद्र का तोप जलाञ्जलि देने से होता है।

फिर जनकजी भाई सहित हाथ जोडकर कोसलपति से स्नेह शील और सुन्दर भाव से सनी हुई मनोहर वाणी बोले। हे राजन्! आपके सम्बन्ध से हम अब सब प्रकार से बडे हुए। इस राजपाट के समेत हमे बिना दाम का सेवक जानना। इन कन्याओ को टहलनी जानकर अपनी अपूर्व करुणा से पालन कीजियेगा। मेरे अपराध को क्षमा कीजियेगा। मैने बडी ढिठाई की है जो आपको बुलवा भेजा है। फिर सूर्यकुल के भूषण महाराज दशरथ ने समधी को सभी सम्मान का भाजन बनाया। परस्पर की विनती कही नही जा सकती। प्रेम से हृदय परिपूर्ण था।

देवताओ ने पुष्पवृष्टि की। महाराज जनवासे चले। नगाडे बजे। जय जयकार हुआ। वेदध्वनि हुई। आकाश मे और नगर मे बडा कौतूहल मचा। तब मुनिजी की आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मङ्गलगान करती हुई दुलहिनो के सहित दुल्हो को कोहवर कौतुकागार मे लिवा ले चली।

व्याख्या इस समय सभी बारात दान की पात्र है। महाराज जनक का दिया हुआ सत्र लेवेंगे। दानो मे सबसे बडा दान सम्मान है। यथा तुलसी कहत पुकारि के सुनो सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बडो दान सनमान। अत महाराज जनक ने दान और सनमान दानो से काम लिया। आदर के सहित दान भी किया। विनय और स्तुति भी की। आदर पहिले दान पीछे। दान के स्वीकार के लिए विनय किया। यहाँ रघुवशियो का समाज जुटा हुआ है। जो सभी स्वय दानी है यथा दातु मतुँ मद्विधा राजपुत्री। मगन लहै न जिनके नही। अत प्रतिग्रह की रुचि नही है। उसे स्वीकार करने के लिए विनय किया। स्वीकार कर लेने पर स्तुति की। सब बारात के सम्मान के बाद महामुनिवृन्द की वन्दना की और पूजा म तो प्रेम बह चला। महाराज बडे प्रेमी है। प्रेम को योग भोग मे छिपाये रहते है। इस समय छिपा न सके। सो प्रेम मानो प्रकट होकर बह चला। उत्तरोत्तर अन्तरङ्ग की पूजा कर रहे है। देवताओ की पूजा पहिले बिना जाने ही की थी। यथा पूजे जनक देव सम जाने। दिये सुआसन बिनु पहिचाने। अत देवताओ को मनाया। अथवा पूजन मे आवाहित देवताओ का विमर्जन किया और फिर आने के लिए प्रार्थना की पुनरागमनाय च। सो मनुष्य मुनि और देवता सबसे विनय हो रही है। उत्तम लोग मान चाहते हैं। मध्यम लोग धन और मान दोनो की इच्छा रखते है। केवल धन की इच्छा रखनेवाल तो निकृष्ट कोटि मे हैं। यथा उत्तमा मानमिच्छन्ति

धन मानश्च मध्यमा । अधमा धनमिच्छन्ति । लोगो को यह भावना न हो कि जनक राजा ने हम लोगो को मध्यम कोटि मे गिन लिया। इसलिए कहते हैं कि मेरा दान समुद्र को जलाञ्जलि दान के तुल्य है। समुद्र स ही जल लेकर उन्ही को जलाञ्जलि दी जाती है। इससे दान कुछ भी न हुआ केवल भक्ति का प्रदर्शन सत्कार मात्र है। स्वल्प दान भी मान अग है। उसकी दान मे गिनती नही है।

सबसे पीछे खास समधी से विनय करते हैं। महाराज दशरथ दोनो भाइयो के समधी हैं। राजा कुशध्वज सर्वात्मना अपने बडे भाई महाराज सीरध्वज जनक की आज्ञा म है। जो करते हैं जनकजी करते हैं। माण्डवी श्रुतिकीर्ति का विवाह कर दिया। राजा कुशध्वज की सम्मति की भी आवश्यकता न समझी। कुशध्वज राजा कुछ नही बोलते। केवल समधी से विनय करने के समय हाथ जोडने मे सम्मिलित हो गये। मनसा वाचा कर्मणा विनती की। सानि सनेह सील सुभाय सो। मनसा बोल मनोहर बयन। वाचा करजोरि। कर्मणा कहने लगे प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पायेउँ। आपके प्रसाद से अब हम सब भाँति बडे हुए। थे नही। बडे के सम्बन्ध से साधारण पुरुष की सब भाँति प्रतिष्ठा बढ जाती है। फिर सब प्रजावर्ग की ओर से बोल कि सम्बन्ध से हम आपके बराबर नही हुए। क्योंकि समधी शब्द की व्युत्पत्ति है समाना धीर्यस्य स समधी। केवल सेवकसेव्यभाव स्थापित हुआ। हमलोग प्रजावर्ग के साथ अक्रीतदास हो गये। यहाँ दशरथजी को कोसलराज कहा। जनकजी को मिथिलाधिपति नही कहा। क्योकि राजा जनक इस समय ऐसा बोल रहे है जैसे कोई साधारण पुरुष महाराज से बोल। अत ये कुमारियाँ परिचारिका हुई। अभी अत्यन्त छोटी हैं। बडे लाड प्यार से पाली गई है। इन्हे अपनी अपूर्व करुणा से पालियेगा। जो पुत्री न हो उसपर पुत्रीवत् करणा अपूर्व करुणा है।

ब्राह्मविवाह म बुलाकर कन्यादान की विधि है। फिर भी महाराज जनक बुला भेजने को ढिठाई मान रहे हैं। समझते हैं टूटत ही धनु भयउ बिवाहू। बिना बुलाय भी काम चल सकता था। सो हमने बुलवा भेजा। यह बडी ढिठाई हुई। इसलिए क्षमा प्रार्थना करते हैं।

महाराज दशरथ भानुकुलभूषण हैं। चिट्ठी का सम्मान करनेवाल हैं। जब कोई सम्बन्ध नही था उस समय राजा जनक की चिट्ठी को अभ्युत्थान पूर्वक लिया था। अब तो समधी का सम्बन्ध हो गया है। अत उन्हे सम्मान की निधि बनाया। अर्थात् यह माना कि जिसे आप सम्मान दें वह सम्मान पावे। परस्पर विनय मे यदि प्रेमपूर्णहृदय हो तो वचनअगोचर सुख होता है। यथा मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं।

आज तक यह रसम चली आती है कि पण्डित लोग व्याह के बाद अपने यजमान की ओर से परस्पर विनती और बडाई क श्लोक पढते है। अब विवाह हो गया। समधी की विनती हो गई। महाराज जनवासे को चले। राजा चल कहने का भाव यही है कि अपने साज समाज के साथ चले। राजाय गच्छति का ऐसा ही अर्थ किया जाता है। सो महाराज क चलते समय नगाडे बजे। चारो ओर से जय

जयकार हुआ। मङ्गल के लिए ब्राह्मणो ने वेदध्वनि की। आकाश और नगर मे महाराज की सवारी देखने की बडी उत्सुकता है।

महाराज के चले जाने के बाद वसिष्ठजी से सखियो ने कुँवरो को कौतुकागार मे ले जाने की आज्ञा माँगी। महाराज के बाद वसिष्ठजी ठहर गये थे। क्योकि चारो कुमार वही थे। वसिष्ठजी ने आज्ञा दे दी। चारो कुमारियो की सखियाँ अलग अलग हैं। वे कुमार कुमारियो को लेकर चली।

मण्डप मे सुदरी सुदर वरन्ह सग कहकर सुन्दरियो की प्रधानता कही थी। शोभित कुमारियाँ हैं। वर उनके साथ है। क्योकि बारातिया के लिए वधुओ का दर्शन नई बात थी। यहाँ वरो की प्रधानता है क्योकि वे मेहमान पहुना हैं।

दो पुनि पुनि रामहि चितव सिय, सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन ॥३२६॥

अर्थ बार बार रामजी को सीताजी देखती हैं और सकुचित होती हैं। पर मन नही सकुचता। प्रेम के प्यासे नेत्र मनोहर मीन की छवि को हरण करते हैं।

व्याख्या धनुषयज्ञ के समय प्रभुहि चितय पुनि चितव महि राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधुमडल डोल। प्रभु को स्पष्ट देख रही थी। अत मनसिज मीन जुग का खेलना कहा। यहाँ तो स्पष्ट देख भी नही सकती और मन सकुचित नही होता। इसलिए मन छटपटा रहा है। आँखो को प्रेम की प्यास है। क्योकि खेलने के लिए यथेष्ट स्थान चाहिए। यहाँ स्थान अत्यन्त सकुचित है।

स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥१॥

अर्थ श्याम शरीर स्वभाव से ही सोहावना है। उसकी शोभा कोटिन कामदेव को लज्जित करनेवाली है। चरण कमल मे महावर की शोभा है। जिन पर मुनियो के कमलरूपी भौंरे मँडराया करते हैं।

व्याख्या प्रभु की श्याम शरीर की शोभा बिना शृङ्गार ही अपूर्व है। श्यामता भयावनी होती है। यथा सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे। परन्तु यह श्यामता ही विचित्र है। नील सरोरुह नीलमणि नील नीरधर की शोभा है। कामदेव का भी श्यामवर्ण कहा गया है। पर इस श्यामता की शोभा के सामने वह कुछ भी नही है। राम स्याम सतकोटि सुभग तन। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुताल है।

च-ण कमल तो आप हो सुन्दर है ' करि मधुप मुनि मन जोगि जन जेहि सेइ अभिमत गति लहैं। सो जावकयुत पदकमल को छोडकर तो गति भी नही चाहते। उसी का आनन्द लिया करते हैं। नख शिख वर्णन हो रहा है। इससे पहिले चरणो का ही वर्णन किया। माधुर्य की पराकाष्टा है। व्याह है। इसलिए ऐसे चरणों मे भी महावर लगा है।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल रवि दामिनि जोती ॥
कल किंकिनि कटि सूत्रु मनोहर। बाहु विसाल विभूपन सुदर ॥२॥

अर्थ पीली पवित्र सुन्दर धोती थी जो कि प्रभातकाल के सूर्य और विजली की प्रभा को हरण करती थी। कमर मे सुन्दर करधनी और मनोहर करधन था। विशाल भुजाओ पर सुन्दर गहने थे।

व्याख्या पीत रङ्ग हलदी का है। इससे उसे पुनीत कहा। अथवा पीत पुनीत धोती से पीताम्बर लक्षित किया जो पहनने मे पवित्र और देखने मे मनोहर है। बालरवि लाल होते हैं। पर उनकी ज्योति पीली होती है।

धोती के ऊपर किंकिणी है। कटिसूत्र धोती के भीतर है। पर यह कटिसूत्र व्याह मे पहिनाया गया है इसलिए ऊपर है। विभूषण की शोभा विशाल बाहु पर ही है। अथवा विशाल बाहु वीरतासूचक और विभूपण मङ्गल सूचक है।

पीत जनेउ महाछबि देई। करमुद्रिका चोर चितु लेई ॥
सोहत व्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूपन राजे ॥३॥

अर्थ पीला जनेव वडी शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठो तो चित्त को चुराए लेती है। व्याह का सब साज सजे हुए शोभा पा रहे है। चौडी छाती पर उर के सुन्दर आभूपण शाभायमान है।

व्याख्या . जनेव भी विवाह मे मिला है। इसलिए कपडो के ऊपर पहने हुए हैं। हाथ मे अगूठी ऐसी है कि जिसने उसे देख लिया वह उसे भूल ही नही सकता। यथा चकित चितव मुँदरी पहिचानी। माया से अस रची न जाई। व्याह के वस्त्रादि सब पहने है। मौर भी अभी नही उतरा है। आयत उर न हो तो मालाएँ एक मे मिल जाती हैं। शोभा नही होती। आयत उर होने से सब मालाएँ पृथक् पृथक् शोभा देती हैं।

पिअर उपरना काँखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन कमल कल कुडल काना। वदनु सकल सौदर्ज निधाना ॥४॥

अर्थ : पीले रग के दुपट्टे की काँखासोती पहिने है। जिसके दोनो अञ्चलो मे मणि और मोतियाँ टँकी है। कमल ऐसे नेत्र है। कानो म सुन्दर कुण्डल है और सुन्दर मुख तो सुन्दरता का निधान ही है।

व्याख्या युगपत् सव्यापसव्य ढग से दुपट्टा धारण करने को काँखासोती

कहते हैं। दुपट्टे मे जरी का काम है। अत अञ्चलो मे मणि टँके हैं और मोतियो की झालर है। अथवा यथास्थान मणि और मोतियाँ दोनो टँकी हुई है। नेत्र कमलो की भाँति विकसित हैं। कानो मे सुन्दर कुण्डल झलक रहे है। केवल हाथ पैर और मुख ये तीन खुले हैं। शेप सब अग भूपण वसन से ढके है। मुख की शोभा से ही सब शोभा है। अत सकल सौन्दर्य निधान कहा।

सुदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा ॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मगलमय मुकुता मनि गाँथे ॥५॥

अर्थ : भौंहें सुन्दर और नाक मनोहर थी। माथे पर तिलक तो रुचिरता का निवास था। मस्तक पर मोती और रत्नो से गुथा हुआ मनोहर मौर शोभायमान था।

व्याख्या · विवाह का मङ्गलमय समय है। इसलिए कवि ने विकट भृकुटि या भृकुटि मनोज चाप छवि हारी नही कहा और न नासिका की उपमा शुकतुण्ड ही से दी। केवल सुन्दर कह दिया। ऊर्ध्वपुण्ड्र का आकार घर का सा होता है। अत उसे रुचिरता का निवासस्थान बतलाया।

विवाह का प्रधान चिन्ह मौर है। अत उसे मङ्गलमय बतलाया। काम परे कछु और है काम सरे कछु और। तुलसी भाँवर के फिरे नदी सिरावत मौर। इसी समय तक मौर की शोभा है। क्योकि कोहवर मे जाकर मौर उतर जायगा।

छ गाथे महामनि मौर मजुल अग सब चित चोरही।
पुर नारि सुर सुदरी वरहि विलोकि सब तिन तोरहीं ॥
मनि वसन भूपन वारि आरति करहिं मगल गावही।
सुर सुमन वरिसहि सूत मागध वदि सुजस सुनावही ॥
कोहवरहि आने कुँअर कुअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मगल गाइ कै ॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहै।
रनिवासु हास विलास रस वस जनम को फल सब लहै ॥
निज पानि मनि महुँ देखि पति मूरति सुरूप निधान की।
चालति न भुजवल्ली विलोकनि विरह भय वस जानकी ॥
कौतुक विनोद प्रमोदु प्रेम न जाइ कहि जानहिं अली।
वर कुँवरि सुदरि सकल सखी लेवाइ जनवासेहि चली ॥
तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनदु महा।
चिर जिअहु जोरी चारु चारयौ मुदित मन सवही कहा ॥

जोगीद्र सिद्ध मुनीस देव विलोकि प्रभु दुंदुभि हनी ।
चले हरपि वरपि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी ॥

अर्थ · सुन्दर मौर मे महामणि लगे हुए थे। सब अङ्ग चित्त को चुराते थे। पुर की स्त्रियाँ और सुरसुन्दरियाँ वर को देखकर तृण तोड़ रही थी। मणि वस्त्र अलङ्कार निछावर करके मङ्गलगान करती थी। आरती करती थी। देवता लोग फूल वरसाते थे। सूत, मागध और वन्दी सुयश सुनाते थे।

सुहागिनें सुख पाकर कुँअर और कुँअरियो को कौतुकागार मे ले गईं और अति प्रीति के साथ मङ्गल गान करके लौकिक रीति करने लगी। लहकौरि मे गौरी रामजी को सिखाती हैं और सीताजी से शारदा कहती हैं। रनिवास हास विलास के आनन्द वश मे होकर सव जन्म के फल को ले रही हैं।

अपने हाथ की मणि मे स्वरूपनिधान · रामजी की मूर्ति देखकर विरह के भय से जानकी वाहुलता से दृष्टि नही हटाती। कौतूहल हँसी दिलग्गी आनन्द और प्रेम कहा नही जा सकता। उसे सखियाँ जानती है। वर और दुलहिन को सखियाँ लिवाकर जनवासे चली। उस समय नगर मे और आकाश मे जहाँ देखिये तहाँ आशीर्वाद सुना जा रहा है। महा आनन्द है। सबने प्रसन्न होकर कहा कि यह सुन्दर चारो जोडियाँ चिरञ्जीवी हो। योगीन्द्र सिद्ध मुनीन्द्र और देवताओ ने प्रभु को देखकर दुन्दुभी वजाई और अपने अपने लोक को जय जय जय कहकर और फूल की वर्षा करके हर्षित हो चले।

व्याख्या अन्य भूषणो मे मणि लगे हैं। पर मौर मे तो महामणि गूँथे गये है। अवयव संस्थान ऐसा रमणीय है मानो चित्त को चुराये लेता है। पुर नरनारि और सुरसुन्दरियाँ प्रभु का दर्शन कर रही हैं। इसीलिए नखशिख वर्णन किया। दर्शन करते समय तृण तोडती है। जिसमे अपनी कुदृष्टि न लग जाय। शची शारदा रमा भवानी आदि सुरसुन्दरी वहाँ उपस्थित है। पहिले निछावर हुई। तब आरती हुई। आरती मे मङ्गलगान हुआ। बाहर देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे है और वन्दी मागध सूत सुयश सुना रहे है।

कोहवर मे लानेवाली सुहागिनी स्त्रियाँ प्रभु का दर्शन पाकर सुखी हो रही हैं। विवाह का सब कार्य सुहागिनो द्वारा सम्पन्न होता है। कोहवर मे लौकिक रीति होती है। वैदिक रीति तो मण्डप मे हो चुकी। लौकिक रीतियाँ मङ्गलगान के साथ सम्पन्न की जाती है। लहकौरि का रसम कोहवर मे होता है। उसमे वर दुलहिन दोनो को सिखानेवाली स्त्रियाँ होती है। वे वर के हाथ से दुलहिन के मुख मे और दुलहिन के हाथ से वर के मुख मे दही और मिष्टान्न का प्राशन कराती हैं। इसमे खासी हँसी होती है। गौरी की उपासना सीताजी की है। यथा बोली गौरि हरख उर भरेऊ। वे रामजी को सिखला रही है कि वधू के मुख मे दही और मिष्टान्न दे। इधर सरस्वती की उपासना रामजी की है। यथा गुरु प्रसाद सब

विद्या पाई। सो सरस्वतीजी ऐसी ही बात सीताजी को सिखला रही है। इस रसम[1] को दहीगुड का रसम भी कहते हैं।

यहाँ भगवती को प्रभु के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रेमपियासे नयन हाथ की मणि मे प्रभु का प्रतिविम्ब देखने लगे। अत. वे थिर हो गये। विरह के भय से जानकी ने उस मणि से दृष्टि नही हटाई। दहीगुड का कौतुक, देवपूजन सील का बट्टा रखकर उसे इष्टदेव वता वताकर स्त्रियाँ वर से पूजन कराना चाहती हैं। विनोद वत्ती मिलाने : वर से दीप की दो वत्तियो को स्त्रियाँ मिलवाती हैं का प्रमोद। और मौर उतरवाने : यह रसम' सास को करनी पडती है का प्रेम कहने मे नीरस हो जाता है। उन्हें सखियाँ ही जानती हैं। इस भाँति कोहवर का कार्य समाप्त हुआ। अत वरो और दुलहिनो को लिवाकर जनवासे की ओर चली।

मार्ग मे चारो ओर से आशीर्वाद सुनाई पड रहा है। नगर और नभ के निवासी दर्शन प्राप्ति से महा आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। योगीन्द्र सिद्ध मुनीश और देवता आकाश मे हैं। इसके लिए दुन्दुभी वजाने का प्रयोग आया है। यद्यपि दुन्दुभी देवताओ ने ही वजायी। परन्तु छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति वजाना क्रिया के कर्त्ता सव कहे गये। यथा : हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई। इस अर्धाली मे सीय लोनाई। का हृदय मे वर्णन रामचन्द्र के प्रति ही वनता है। फिर भी साथ होने से दोउ भाई को कर्त्ता कहा गया। देवता लोग जय जयकार करके और फूल वरसा के अपने अपने लोक गये। क्योंकि वारात अभी अधिक दिनो तक ठहरेगी। व्याह कृत्य समाप्त हुआ।

दो. सहित वधूटिन कुँअर सव, तव आए पितु पास।
सोभा मगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास ॥३२७॥

अर्थ . श्रेष्ठ कुँअर लोग बहुओ के साथ पिता के पास आये। जनवास मे शोभा, मङ्गल, मोद भरकर उमड चला।

व्याख्या · पिता के पास राजकुमार आये इसलिए दुलहिनो को वधूटी कहा। इस समय जनवास छोटा पड गया। शोभा मङ्गल मोद के समाने के लिए यथेष्ट स्थान नही है। अत मानो वाहर उमड चला। तव से भाव यह कि देवताओ के जाने के वाद। अर्थात् जनवासे तक देवताओ ने पहुँचाया।

---

१. करन लगे राम सिया गुर बानी।
हँसि हँसि गौरि सिखावत रामहि सियहि सिखावति हैं ब्रह्मानी।
गुर सो रस दधि से नहि उचटै प्रेम अटूट निसानी।
मुदित होहि गुन शक्ति देवता यह रहस्य पहिचानी। देवस्वामी

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती ॥
परत पाँवडे बसन अनूपा। सुतन समेत गवन कियो भूपा ॥१॥

अर्थ फिर बहुत प्रकार से जेवनार हुई। राजा जनक ने बारातियो को बुला भेजा। बेटो के सहित महाराज दशरथ भी गये। अनूप वस्त्रो के पाँवडे पडते थे।

व्याख्या दूसरे दिन का कृत्य कहते हैं। पहिले दिन भी जेवनार बनी थी। गोधूलि की लग्न थी। इससे विवाह के पीछे जेवनार का विचार था। परन्तु वसिष्ठजी की आज्ञा से क्रमश तीन व्याह और हुए। तत्पश्चात् कोहवर की रसम। फिर जनवासे भेजना। अर्धरात्रि के बाद भोजन निषिद्ध है। अत उस दिन जेवनार न हो सकी। उमा के ब्याह मे लग्न पिछले पहर थी। इसलिए जेवनार पहिले हुई थी। यहाँ दूसरे दिन फिर से बहुत भाँति जेवनार बनी। कह चुके है अपराध छमिबो बोलि पठयो बहुत हो ढोठ्यो कई। अत बारातियो को बुला भेजा।

चक्रवर्तीजी जनकजी की विनय समझ गये। स्वय पुत्रो के साथ चल पडे। पहिले साहाये बसन पाँवडे पडे थे चलने के समय वस्त्र बिछाने को पाँवडा पडना कहते है। जिससे धरती पर पैर न पडे। वस्त्र पर ही पैर पडते जायँ। आज अनुपम वस्त्र पाँवडे पड रहे है। आतिथ्य सत्कार बढता जा रहा है। जनवासे से ही पावडे पडने लगे।

सादर सबके पाय पखारे। जथाजोगु पीठन बैठारे ॥
धोये जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना ॥२॥

अर्थ आदर के सहित सबके पाँव धोये गये और यथा योग्य पीढो पर बिठलाया। जनकजी ने अयोध्याधिपति के पैर धोये। शील और स्नेह का वर्णन नही किया जा सकता।

व्याख्या बारातियो मे से किसी को अपने पाँव अपने हाथ से न धाने पडे। घरातियो ने यथायोग्य सब बारातियो के पैर धोये। भोजन मे पीढो के व्यतिरिक्त अन्य आसन विहित नही है। अत सबको पीढा दिया गया और जो जिस योग्य था उसे वहाँ बिठाया। चक्रवर्तीजी के पैर स्वय राजा जनक ने धोये। जनक का शील स्नेह और सुन्दर भाव केवल वचन मे ही नही है। यथा बोले मनोहर बैन सानि सनेह सील सुभाव सो। क्रिया मे तो इतना शील स्नेह है जिसका वर्णन नही हो सकता।

बहुरि राम पद पकज धोए। जे हर हृदय कमल महु गोए ॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोये चरन जनक निज पानी ॥३॥

---

१ पाँवडा सस्कृत म पादपतनम् शब्द है। उसी का तद्भवरूप पाअवडण जिसे पाँवडा कहा गया है। व कपड जो पैर रखने के लिए बिछाये जाते हैं।

अर्थ : फिर श्रीरामजी के चरणकमल धोये। जिन्हें शिवजी अपने हृदय कमल मे छिपाये रहते हैं। तीनो भाइयो के पैर जनकजी ने रामजी के समान जानकर अपने हाथ से धोये।

व्याख्या श्री रामजी के चरणकमल सदा शिवजी के हृदय मे विराजमान रहते हैं। यथा · जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजहीं। उनमे महावर लगने से तो मुनियो के मन भौंरो के झुण्ड की भाँति उन पर गिरे पडते थे। जावक जुत पद कमल सुहाये मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। इसलिए शङ्करजी ने अपने हृत्कमल मे छिपा रक्खा था उन्हे जनकजी ने अपने हाथ से धोया।

जनकजी के ज्ञान मे बाध नही है। तीनो भाई रामजी के समान थे। यथा राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुभन सुचि जासु। अतः जनकजी का वर्ताव भी समान है। समान करणी से चारो भाइयो का ब्याह किया। आज समान श्रद्धा से चारो भाइयो के पैर धो रहे हैं।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे ॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे ॥४॥

अर्थ : राजा जनक ने सबको उचित आसन दिया। सब रसोईदारो को बुलवाया। आदर के साथ पत्तल पडने लगे। मणि के पत्तो की पत्तलें बनी थी और वे पत्तें सोने की कील से जोडे गये थे।

व्याख्या आसन भी राजा जनक ने स्वय दिया। पहिले भी · निज पानि जनक सुजान सब कहि आनि सिंहासन धरे कहा था। बारात बडी है और एक साथ खिलाना है। अत सब रसोईदार बुलाये गये और परोसने के काम मे लगा दिये गये। ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है। बडी बहुमूल्य कारीगरी है। अचिन्त्य ऐश्वर्य को साधारण रूप दिया जा रहा है। देखने में पत्तल हैं। परन्तु वस्तुतस्तु वे मणि के पात्र हैं। जिनमें बारातियो को परोसा जायगा।

दो. सूपोदन सुरभी सरपि, सुदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सबके परुसिगे, चतुर सुआर विनीत ॥३२८॥

अर्थ सुन्दर स्वादिष्ट और पवित्र दाल भात और गाय का घी क्षण भर मे चतुर और विनीत रसोईदार सबको परोस गये।

व्याख्या . रसोईदार बडे सिद्धहस्त हैं। रसोई परोसने मे बडी चतुराई से काम लेना पडता है। जिसमें स्पर्शास्पर्श के नियम मे कोई बाधा न पडे। सो रसोईदार क्षणभर में सबको परोस गये। परोसने मे बडी त्वरा से काम लिया और किसी का अनादर न हो पाया। दाल भात और गाय का घी ही ऐसा भोजन है। जिससे कभी मन नही ऊबता। इसलिए सुन्दर स्वाद कहा और सात्त्विक भोजन है। इसलिए पुनीत कहा। पञ्चाग्निहोत्र में पहिले आये हुए पदार्थ से ही पाँच ग्रास पहिले लिया जाता है और उसमे भी गोघृत और ओदन ही प्रशस्त है। सो तुरन्त

परोसा गया। जिसमे जब से पञ्च ग्रास ग्रहण करें तब से शेष सामान परोस दिया जाय।

पंच कवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे ॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहि जाहि बखाने ॥१॥

अर्थ पञ्च प्राण के लिए पाँच आहुति देकर भोजन करने लगे। गाली का गाना सुनकर अत्यन्त अनुराग युक्त हुए। अनेक प्रकार के पक्वान्न परोसे जाने लगे। वे अमृत के सदृश थे। उनका बखान नही हो सकता।

व्याख्या पद पाताल सीस अजधामा का ध्यान करके पाँच आहुति प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पाँचो प्राणो को देना और तत्पश्चात् मौन होकर भोजन करने का विधान है। भोजन के प्रारम्भ मे और अन्त मे मन्त्रपूर्वक आचमन करना होता है। यह वैश्वानर विद्या है। तदनुसार भोजन प्रारम्भ हुआ। फीकी पै नीकी लगै कहिये समय विचारि। सबको मन हर्षित करै ज्यौं विवाह मे गारि। वस्तु कोई भी बुरी नही है। उसका उचित रीति से उचित समय से उचित मात्रा मे प्रयोग होना चाहिए। महात्माओं ने आनन्द मे विभोर होकर उस समय के गालीगान की कल्पना की है। यथा दसरथ गोर कौसिला गोरी तुम साँवर केहि घर से। इत्यादि। जिस गाली से प्रेम उत्पन्न हो वह गाली नही है। वह सर्वथा स्तुत्य है और जो बुरी लगे वह सर्वथा तिरस्करणीय है। भोजन आरम्भ होने के बाद पक्वान्न परोसे गये। वे प्रकार मे अनेक थे। गुण मे सुधा सदृश थे। स्वाद मे अवर्णनीय थे।

परुसन लगे सुआर सुजाना। विजन विविध नाम को जाना ॥
चारि भाँति भोजन विधि गाई। एक एक विधि बरनि न जाई ॥२॥

अर्थ सुजान रसोईदार परोसने लगे। अनेक प्रकार के व्यञ्जन बने थे। उनका नाम कौन जानता है। चार भाँति की भोजन विधि कही गई है। एक एक विधि का वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या रसोईदार बड़े सुजान हैं। अनेक प्रकार के व्यञ्जन जिनका नाम जानना कठिन है परोस रहे हैं और ऐसी व्यवस्था से कि किसी का किसी से मिश्रण नही होता और न कोई व्यञ्जन परोसने मे छूटता है।

लेह्य, पेय, चव्य, चोष्य ये चार प्रकार पाक शास्त्र मे कहे गये हैं। इसलिए विधि गाई कहा है। उनमें से एक एक की अनेक विधि हैं। जो वर्णनातीत है।

छ रस रुचिर विंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती ॥
जेवत देहि मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥३॥

अर्थ · छवो रसो के सुन्दर व्यञ्जन बहुत भाँति के बने थे और एक एक रस के असंख्य प्रकार थे। खाते समय मधुर ध्वनि से पुरुष और नारियो का नाम ले लेकर गाली देती थी।

व्याख्या · रस छ सग्या मे रुचिर देखने मे बहुत भाँति गुणो के तारतम्य से। फिर रसो के समिश्रण से असख्य प्रकार के पक्वान्न बने थे। प्रेम की गाली की ध्वनि भी मधुर होती है। क्रोध मे प्रशसा के शब्दो की भी ध्वनि कठोर होती है। अवध की स्त्रियो का नाम नही मालूम है। इसलिए पुरुषो का नाम साथ मे जोडकर गाली देती हैं। अथवा पुरुष और स्त्रियो का नाम ले लेकर गाली देती हैं। क्योकि जिसका नाम गाली मे छूट जायगा वही समझेगा कि मेरा सम्मान नही हुआ।

समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥
येहि बिधि सबही भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥४॥

अर्थ : सुहावन समय पर गाली शोभित हुई। महाराज समाज सहित सुनसुनकर हँस रहे हैं। इस विधि से सबने भोजन किया और आदर के सहित आचमन लिया।

व्याख्या · अति आनन्द के समय सभ्यता का बन्धन कुछ ढीला पड जाता है। उस समय सभी समाज मे सभ्यता की मर्यादा का उल्लघन स्वभाव से ही हो जाता है। उस समय का व्यङ्ग्य अतिप्रिय होता है। यथा : गारी मधुर सुर देहि सुन्दरि व्यग वचन सुनावही। भोजन करहि सुर अति बिलंब बिनोद सुनिसुख पावही। इसीलिए कहते हैं कि इस मङ्गल समय मे गाली की भी शोभा हुई। क्योंकि इससे आनन्द की मात्रा बढ गई। प्रेम की गाली सुनकर अवध नरेश समाज के सहित हँस रहे है। इस विधि से सबने भोजन किया। परन्तु भोजन समाप्त होने पर सावधान हो गये। आदर के सहित आचमन लिया। आचमन का मन्त्र है। उसे मनमे उच्चारण करके आचमन लिया जाता है। गाली इत्यादि हँसी होती रही। परन्तु यथाशास्त्र भोजन विधि मे अन्तर नही हुआ। यह पञ्चाग्निहोत्र है। इस भोजन का अग्निहोत्र के समान फल है।

दो. देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित, सकल भूप सिरताज ॥३२९॥

अर्थ · पान देकर राजा जनक ने महाराज दशरथ का समाज के सहित पूजन किया। सब राजाओ के शिरोमणि प्रसन्न होकर जनवासे गये।

व्याख्या पान स्वय जनकजी ने दिया। तत्पश्चात् गन्धाक्षतादि से पूजन किया। अभी भोजन के समय के विनोद का रस बना है। अत. भूपशिरोमणि मुदित जनवासे गये। आये थे बेटो के सहित। यथा : सुनत समेत गवन कियो भूपा। परन्तु जाने के समय बेटे साथ नही है। कुँवर लोग ससुराल मे ही रोक लिये गये।

नित नूतन मगल पुर माही। निमिप सरिस दिन जामिनि जाही ॥
बडे भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे ॥१॥

अर्थ नित्य नया मङ्गल पुर मे होने लगा। रात और दिन पल के समान बीतने लगे। बडे सवेरे महाराज जागे। याचक लोग गुणगण का गान करने लगे।

व्याख्या किसी दिन गोदान है। किसी दिन चतुर्थीकर्म है। किसी दिन पुजाई है। किसी दिन मनौती है। किसी दिन कथा है। मिथिला मे नित्य मङ्गल है। जबतक चक्रवर्त्तीजी मिथिला मे ठहरे तबतक नित्य मङ्गल होता रहा। जहाँ स्वयं रघुनाथजी दूल्हा होकर आये हैं। वहाँ नित्य नया मङ्गल होना आश्चर्य नही। यथा सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन राम भगति के पाये। निति नूतन मगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जस जासू। किसी महात्मा का यह मत भी है भरत सरिस वय राजकुमारा। जो बारात मे आये थे उनके भी विवाह मिथिला मे हुए। अत नित नूतन मङ्गल लिखना सार्थक है। सुख के दिन रात बीतते मालूम नही पडते। इसलिए कहते हैं कि रात और दिन पलक के समान बीतते हैं।

विवाह कृत्य समाप्त होते ही कवि ने यह कह देना उचित समझा कि जब तक बारात टिकी रही नित्य नये मङ्गल जनकपुर मे होते रहे। इसके बाद फिर वही से कथा उठायी जहाँ से छोडी थी। अर्थात् महाराज के जनवासे आने के बाद से कथा प्रारम्भ की।

यद्यपि बहुत रात जाने पर सोये थे। फिर भी बडे भोर जग गये। यथा पहिले पहर भूप निज जागा। नीतिशास्त्र भी यह कहता है चिर केशेपु दन्तेपु चिर मूत्रपुरीषयो। अचिर कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे। दाँत और बालो की शुद्धि में तथा शौचादि मे देर लगानी चाहिए। परन्तु हे राजेन्द्र! भोजन शयन और रण मे त्वरा से काम लेना चाहिए। उदार के घर पर याचका की भीड रहती है। महाराज दशरथ के आगमन तथा उनकी उदारता की कीर्ति सुनकर याचक लोग जुट गये थे। उन्हाने गुणगान करना आरम्भ कर दिया।

देखि कुँअर वर वधुन समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाही। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥२॥

अर्थ श्रेष्ठ कुँअरो को बहुओ के समेत देखकर कितना आनन्द हुआ। वह कैसे कहा जा सकता है। प्रात काल का नित्य कृत्य करके महाराज गुरुजी के पास गये। उनके मनमे महा प्रमोद और प्रेम था।

व्याख्या अहोरा बहोरा के लिए फिर बहुएँ वरो के साथ थोडी देर के लिए जनवासे भेज दी गईं। पहिली बार सहित वधूटिन्ह कुँवर वर पुनि आये पितु पास। इसी भाँति आज भी बडे प्रात काल आये। वहाँ रातभर रतजगा होता रहा। सवेरा होते ही अहोरा बहोरा का रसम किया गया। माता लोग वहाँ न थी। अत महाराज के ही पास आईं। इष्ट दर्शन से महाराज को प्रात काल ही महामोद हुआ।

प्रात क्रिया के विषय म पहिल कह आये हैं. सकल सौच करि जाइ

नहाए। नित्य निवाहि मुनिहिं सिरनाए। महाराज के नित्यकृत्य मे काल व्यतिक्रम नही होने पाता था। जहाँ कोई नया काम करना हुआ महाराज गुरुजी की आज्ञा ले लेते थे। अत: गुरुजी के पास गये। पुत्रो और पुत्रवधुओ के देखने से महाप्रमोद और गुरुजी के चरणों मे प्रेम था। इसलिए महा प्रमोद प्रेम मनमाहो कहा।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा आमिअ जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयउँ आज मै पूरनकाजा ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके पूजा की और हाथ जोडकर ऐसी वाणी बोले मानो अमृत मे डुबाई हुई है। हे मुनिराज ! सुनिये। आपकी कृपा से आज मेरा मनोरथ सफल हुआ।

व्याख्या : प्रणाम करके पुत्र विवाह के उपलक्ष्य मे गुरुजी की पूजा की। मण्डप मे जनकजी की ओर से गुरुजी की पूजा हुई थी। यहाँ महाराज की ओर से पूजा हो रही है। पूजनोपरान्त मधुर और तोषकारिणी वाणी गुरुजी से हाथ जोड कर बोले। आज मैं पूर्णकाम हुआ : कहने का यह भाव है कि जब मैं पूर्ण काम नही था तभी आज्ञा हुई थी। जिमि सरिता सागर महु जाही। यद्यपि ताहि कामना नाही। तिमि सुख सपति विनहि बोलाए। धर्म सील पहिं जाहि सुभाए आपके वचन अमोघ हैं। उन्होने आज मुझे पूर्णकाम बना दिया : इस वाक्य मे कितना माधुर्य और विनय है। इसलिए अमिअ जनु बोरी : कहा।

अब सब विप्र बुलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥
सुनि गुर करि महिपाल बडाई। पुनि पठए मुनि बृंद बोलाई ॥४॥

अर्थ : हे गोस्वामिन् ! अब सब ब्राह्मणो को बुलाकर सब प्रकार से अलङ्कृत करके गायें दीजिये। सुनकर मुनिजी ने राजा की बडाई की और तब मुनिवृन्द को बुला भेजा।

व्याख्या : महाराज मै दान दूँगा : ऐसा नही कहते। आप दीजिये : ऐसा कहते हैं। आप गोसाईं हैं : मालिक हैं। आपकी आज्ञा से ही दान हो सकता है। सब भाँति बनाई : से ताम्रपृष्ठ, रौप्यखुर, स्वर्णशृङ्ग, मुक्तापुच्छ, कास्यदोहिनी आदि से युक्त करके दीजिये।

सुनकर मुनिजी ने महाराज की प्रशसा की। धेनु ऋषियो को बडी प्रिय हैं। ऋषि लोग ब्याह मे आये हैं। उन्हें धेनु के सिवा और क्या दिया जा सकता है ? अत. महाराज की बुद्धिमत्ता और धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हैं। सौभरि[१] ऋषि ने महाराज रघु से कहा कि मेरा मूल्य इन धीवरो को चुका दो। महाराज रघु आधा राज्य देने को तैयार हुए। ऋषिजी बिगड गये कि क्या मेरा मूल्य तेरा आधा राज्य ही है। तब पूरा राज्य देने को तैयार हुए। पर ऋषिजी ने उसे

१. कही कही ऋषि का नाम दूसरा प्राप्त होता है।

भो कम समझा। तब गुरु वसिष्ठजी के पास जाकर सब समाचार कहा। गुरुजी ने कहा कि दूसरे वियान की सुन्दर गाय सुसज्जित करके दो। इसपर ऋषिजी प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे कि वसिष्ठजी ने मेरा मूल्य इतना अधिक आँका इससे मैं धन्य हुआ। सक्षेपत ऋषियो को गोधन बडा प्रिय है। अत वसिष्ठजी ने राजा की वुद्धिमत्ता की और धर्मवुद्धि की प्रशसा की।

दो वामदेउ अरु देवरिषि, वालमीकि जावालि।
आए मुनिवर निकर तब, कौसिकादि तपसालि ॥३३०॥

अर्थ वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जावालि आदि मुनि समूह तथा विश्वामित्र आदि महातपस्वी आये।

व्याख्या वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जावाल आदि को मुनि कहा। क्योकि ये लोग स्थितप्रज्ञ हैं। जिन्हे दु ख मे उद्विग्नता और सुख की स्पृहा नही। जो राग भय और क्रोध से रहित है। ऐसे स्थितप्रज्ञ को मुनि कहते है। इन्हे किसी वस्तु की स्पृहा नही फिर भी गोदान लेने आये। विश्वामित्र आदि को तपसालि कहा। इनको कुछ भी दुर्लभ नही है। यथा तप ते अगम न कछु ससारा। ये लोग भी आये। इनका आना वसिष्ठजी के वुलावे पर दाता को अनुगृहीत करने के लिए हुआ गोदान के देने और लेने दोनो मे पुण्य है।

दड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाई। कामसुरभि सम सील सोहाई॥१॥

अर्थ राजा ने सबको दण्डवत् प्रणाम किया। प्रेम के साथ पूजन करके श्रेष्ठ आसन दिया। चार लाख श्रेष्ठ गौ जो कामधेनु सी सीधी और सुन्दर थी मँगाई।

व्याख्या राजा की श्रद्धा कहते है। जो जो ऋषि आते जाते है उनमे से प्रत्येक को दण्डवत् प्रणाम करते है। सबकी प्रेम सहित पूजा करते है। तब श्रेष्ठ आसन पर गोदान के लिए बिठाते है। हिन्दुओ मे परिगृहीता की पूजा होती है। क्योकि उसने कृपा करके दान लेना स्वीकार किया है। प्रतिग्रह का बडा दोष हिन्दू शास्त्र मे कहा गया है और साथ ही साथ दान का बडा माहात्म्य भी वर्णित है। इसी मे शोभा भी है कि दाता देना चाहे और प्रतिगृहीता लेना न चाहे। क्योकि दाता को तो पुण्य होता है और प्रतिगृहीता का पुण्यक्षय प्रतिग्रह से होता है। एक पुत्र के विवाह के उपलक्ष्य मे एक लक्ष गोदान के विचार से चार लक्ष गौ मँगायी। अधिक सख्या मे दान करने मे गायो के लक्षणादि पर विचार नही किया जा सकता। पर महाराज के यहाँ सब बातो का विचार किया गया। कामसुरभि से उपमा देकर उन गायो को दुधार कहा गया। शील से सीधी होना और सुहाई से सुन्दर कहा।

सब विधि सकल अलकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन दीन्ही॥
करत विनय बहु विधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥२॥

अर्थ : सब प्रकार से सबको अलकृत करके प्रसन्न होकर महाराज ने पृथ्वी के देवताओ को दिया। राजा ने बहुत प्रकार से विनय की कि आज मुझे संसार मे शरीर धारण का लाभ हुआ।

व्याख्या : गाय को दान के पहिले अलंकृत करने की शास्त्रो मे आज्ञा है। सो जैसा अलकृत करने का विधान है उस विधान से चारों लाख गाये अलकृत की गईं। दान देनेवालो को दान देने के समय अत्यन्त आनन्द होना चाहिए कि मेरा बडा भाग्य है जो दान कर रहा हूँ। यथा : रामहिं सुमिरत रनभिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहि न पुलक तन ते जग जीवत जाय। दोहावली ४२। अत लिखते हैं कि महाराज को दान देने मे बडी प्रसन्नता है। ब्राह्मणो की मनुष्यो मे गणना नही हैं। ये पृथ्वी के देवता है। तप, श्रुति और योनि ब्राह्मणत्व मे कारण है। ब्राह्मण वही है जो ब्राह्मणी से उत्पन्न हो। वेद का ज्ञाता और तपस्वी हो। जिनमे तपश्रुत नही है वे जाति ब्राह्मण हैं। ये मुनिगण ब्राह्मण के सब लक्षणो से सम्पन्न हैं। ये दान के सर्वोत्तम पात्र है। क्योकि दान मे पात्रनिर्णय बडा कठिन है। कही दान से नरक प्राप्ति भी सुनी गई है। अपात्र को दान देने से पुण्य के स्थान मे पाप होता है। अत बडे भाग्य से सुपात्र दान के लिए मिलते है। क्योकि सुपात्र अपने पुण्य के क्षय के भय से प्रतिग्रह से बचते है। महाराज दशरथ को ऐसे सुपात्र दान के लिए मिले जिनमे थोडा सा भी दान अक्षय हो जाता है। गोदान को पृथ्वीदान के समान कहा गया है। अतः दान और प्रतिगृहीता दोनो उत्तम कोटि के होने से महाराज कह रहे हैं कि आज मुझे शरीर धारण का फल मिला है। प्रतिग्रह स्वीकार किया। इसलिए विनय करते है।

पाइ असीस महीसु अनंदा। लिये बोलि पुनि जातक बृंदा॥
कनक वसन मनि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रविकुलनंदन॥३॥

अर्थ : आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। तब जाचक वृन्द को बुलवाया। सोना, वस्त्र, मणि, घोडा, हाथी, रथ उनकी पसन्द पूछकर उनको : सूर्यकुल को आनन्द देनेवाले : राजा दशरथ ने दिये।

व्याख्या : प्रतिग्रह करने पर स्वस्ति कहने का विधान है। सो इतने बडे बडे महर्षियो ने जिनका वचन अमोघ है स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दिया। इससे राजा को बडा आनन्द हुआ। राजा दान करने से अघाते नही है। तब निम्न कोटि के पात्र दीन और अनाथो को बुलाया। इन्हे भी दान दिया जाने लगा। योग्यतानुसार नही, रुचि के अनुसार। उनसे पूछ लिया जाता था कि तुम्हे क्या चाहिए? देय का विवरण करते हैं : सोना, कपडा, मणि, घोडा, हाथी और रथ। इनमे जो जिसे पसन्द हो दिया जाय। रविकुलनदन कहने का भाव यह कि : मगन लहैं न जिन के नाहीं। अथवा क्षत्रिय का जन्म दान के लिए है। यथा : दातु मर्तुं मद्विधा राजपुत्रि। सो महाराज तो क्षत्रियों मे श्रेष्ठ कुलनन्दन हैं।

चले पढत गावत गुन गाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा ॥
एहि विधि राम विआह उछाहू। सकै न वरनि सहस मुख जाहू ॥४॥

अर्थ महाराज का विरुद पढते और गुणगाथा को गाते रघुकुलनाथ का जय जयकार मनाते चले। इस विधि से रामजी के व्याह म उछाह हुआ। इसका वर्णन तो वह भी नही कर सकते जिन्हे सहस्रमुख हैं।

व्याख्या यह राम विवाह के उछाह का वर्णन नही है। केवल विधि का दिग्दर्शन है। इसका वर्णन सहस्रमुख से नही हो सकता। नित्य नया मङ्गल है। लाखो बातें एक साथ होती है और होती चली जा रही है। वैखरी वाणी से एक का भी वर्णन कठिन है। इसलिए कहत हैं कि सहस्र मुखवाल भी नही कह सकते।

दो बार बार कौसिक चरन, सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुख मुनिराज तव, कृपा कटाच्छ पसाउ ॥३३१॥

अर्थ बार बार विश्वामित्रजी के चरणो म महाराज सिर नवाकर कहते है कि हे मुनिराज! यह सब सुख आपके कृपाकटाक्ष के प्रसाद का फल है।

व्याख्या महाराज तो पुत्र के देने स मुकुर गये थे। विश्वामित्रजी ने कहा था धर्म सुजस प्रभु तुम कहँ इन्ह कहँ अति कल्याण। सो बलपूर्वक कल्याण कराया। आज उस कठोरता को राजा परम हित मान रहे हैं। उस समय तो कह बठे थे विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी। सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं। पर विश्वामित्रजी अड गये। अन्त म राजा को देना पडा। इस प्रकार हठ करके राजा का परम कल्याण किया। अत कौशिक के चरण म बार बार सिर नवाते है कि ऐसा बलपूर्वक कल्याण करनेवाला कौन है ?

जनक सनेहु सीलु करतूती। नृप सब भाँति सराह विभूती ॥
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा। राखहि जनकु सहित अनुरागा ॥१॥

अर्थ जनकजी के स्नेह शील करणी तथा विभूति की राजा सब भाँति से सराहना करते थे। अयोध्यानाथ नित्य उठकर विदा माँगते थे। परन्तु जनकजी उन्हे प्रेम से रख लते थे।

व्याख्या सब लोग तो जनकजी की प्रशसा करते ही थे। स्वय महाराज दशरथ जनकजी के १ स्नेह २ शील ३ करतूत और ४ विभव की सराहना सब भाँति से करने लगे।

१ जनकजी का स्नेह। यथा राखहिं जनक सहित अनुरागा। इत्यादि।
२ जनकजी का शील। यथा धोए जनक अवधपति चरना।
निज पानि जनक सुजान सब कह आनि सिंहासन धरे।
३ जनकजी की करतूत। यथा कहि न जाय कछु दायज भूरी।
रहा कनक मनि मडप पूरी।

४ जनकजी का विभव । यथा : जो सपदा नीच गृह सोहा ।
सो विलोकि सुर नायक मोहा ।
विधिहि भयेउ आचरज विसेखी ।
निज करनी कछु कतहुँ न देखी ।
सब समाज सजि सिधि पल माही ।
जो सुख सुरपुर सपनेहु नाही ।
लिए सपदा सकल सुख सुरपुर भोग विलास । इत्यादि ।
अत. कहते है । नृप सब भाँति सराह विभूती ।

बुलाने से आये हैं। विदा माँगकर जायँगे। सबेरे उठते ही विदा माँगना यह चक्रवर्तीजी का शील है। व्यर्थ का बोझा नही देना चाहते। अवधपति हैं। अत अवध की चिन्ता है। परन्तु प्रेम का बन्धन बडा प्रबल होता है। यथा : बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्। दारुभेदनिपुणोपि षडध्रि निष्क्रियो भवति पङ्कजकोषे। जनकजी के प्रेम से बँधे हुए हैं और वे जाने देने को राजी नही होते।

नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई ॥
नित नव नगर अनद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू ॥२॥

अर्थ : नित्य नया आदर बढता जाता है। नित्य सहस्रो प्रकार से आतिथ्य सत्कार होता है। नगर मे नित्य नया आनन्द और उछाह है। दशरथजी का जाना किसी को सोहाता नही।

व्याख्या अतिपरिचयादवज्ञा। सो यहाँ नही है। नित्य नया आदर है और मात्रा भी अधिक होती जाती है। जनकजी की तो बडाई हुई है। पर महाराज दशरथ भी ऐसे गुणी हैं कि जितना परिचय होता जाता है उतनी ही उनके प्रति श्रद्धा भी बढती जाती है। अत सत्कार सहस्रो भाँति अधिक होता जाता है : आजकल भी बारात के सत्कार मे इतना तो कर ही देते है कि भोजन के पदार्थो की भाँति के कुछ न कुछ नित्य बढा देते है और अन्तिम दिन की जेवनार जिसे बडहार कहते है उसमे पूरी शक्ति लगा देते हैं।

नित नूतन मगल पुर माही से उपक्रम करके : नित नव नगर आनद उछाहू से उपसहार करते है। महाराज दशरथ का जाना राजा जनक को क्या किसी को भी नही सोहाता। चक्रवर्तीजो का स्वभाव ऐसा प्रजारञ्जक है कि सब प्रजा चक्रवर्तीजी से प्रेम करने लगी। अथवा रामजी के विरह के भय से दशरथजी का जाना नही अच्छा लगता।

बहुत दिवस बीते एहि भाँति। जनु सनेह रजु बधे बराती ॥
कौसिक सतानद तब जाई। कहा विदेह नृपहि समुझाई ॥३॥

अर्थ : इस प्रकार से बहुत दिन बीत गये। मानो बाराती स्नेह की रस्सी

मे बँध गये है। विश्वामित्रजी तथा सतानन्दजी ने जाकर विदेहराज को समझाकर कहा।

व्याख्या तीन महीने से ऊपर इस भाँति बीत गये। चक्रवर्तीजी के विदा माँगते और जनकजी को रोक रखते इतने दिन बीते। बाराती भी नही ऊबते। वे भी प्रेम बन्धन मे बँध गये है। तब विश्वामित्रजी तथा सतानन्दजी दोनो मुनि राजा जनक को समझाने गये। जिससे राजा को यह मालूम हो कि दोनो ओर के हितचिन्तको की सम्मति विदाई के पक्ष मे है। मालूम होता है कि पहिले सतानन्दजी को बुलाकर विदाई की आवश्यकता दिखलाकर राजी कर लिया गया। तब उन्हे साथ लेकर स्वय विश्वामित्रजी गये और विदेहराज को समझाया। यथा

दो रहति बरात जितेक दिन, बीते मास तितेक।
दिन बीतेहु घटिहि नहिं, प्रीति विचारहु नेक॥
सहिवो ही है एक दिन, सुता विरह की पीर।
क्यो न सहै सो आजही, तुम सो पडित धीर॥
प्रजा पालिवे ते अधिक, नृपहिं धर्म नहिं आन।
बिदा करहु दशरथ नृपहिं, अस मन समुझि सुजान॥

अब दसरथ कहँ आयसु देहु। जद्यपि छाडि न सकहु सनेहू॥
भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥४॥

अर्थ यद्यपि प्रेम छोडे नही छूटता। फिर भी अब दशरथजी को आज्ञा दीजिये। राजा ने कहा अच्छी बात है। नाथ और मन्त्रियो को बुलवाया। उन्होने जयजीव कहकर सिर झुकाया।

व्याख्या विश्वामित्रजी ने कहा कि अब दशरथ को आज्ञा दो। सिवा उनके महाराज का नाम लेकर इस भाँति कौन कहे। भाव यह कि आप को अप्रसन्न करके चक्रवर्तीजी नही जायँगे। अब बहुत हो गया। उन्हे आज्ञा दीजिये और प्रेम बनाये रखिये। आग्रह किसी बात का न करना यही बुद्धि का फल है। विदेहराज ने बात मान ली। भारी व्यवस्था करनी है। इसलिए मन्त्रियो को बुलवाया। प्राचीन परिपाटी थी कि मन्त्री राजा का अभिनन्दन जयजीव कहकर करते थे। अर्थ यह है कि आप चिरञ्जीव हो और आप की जय हो। ऐसा कहकर उनलोगा ने प्रणाम किया।

दो अवधनाथु चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि, विप्र सभासद राउ॥३३२॥

अर्थ अयोध्यानाथ जाना चाहते हैं। सो भीतर समाचार पहुँचा दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण सभासद और राजा प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या महाराज जनक ने मन्त्रियो को आज्ञा दी कि भीतर रनिवास मे

समाचार जाकर दो कि अयोध्यानाथ जाना चाहते है। मैं तो अब भी नही चाहता। पर वे अब अधिक नही रु सकते। भाव यह कि विदाई की तैयारी के लिए अन्त पुर मे जाकर कहो। दसरथ गवन सोहाइ न काहू का साफल्य दिखलाते है कि इतना सुनते ही मन्त्री, ब्राह्मण और सभासद प्रेमवश हो गये और कहते कहते राजा जनक प्रेम के वश हो गये। अथवा यहाँ राउ से राजा कुशध्वज का अभिप्राय है। वे भी राजा जनक की आज्ञा सुनकर प्रेमवश हो गये।

पुरवासी सुनि चलिहि बराता। बूझत विकल परसपर बाता ॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहु साँझ सरसिज सकुचाने ॥१॥

अर्थ बारात जायगी यह बात पुरवासियो ने सुनी। एक दूसरे से विकल हो पूछने लगे। जाने की बात ठीक है सुनकर सब बिलखने लगे। जैसे सायकाल के समय कमल सकुचित हो जाते है।

व्याख्या बारात आने पर सबको बडा हर्ष हुआ था। यथा प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई। ब्रह्मानद लोग सब लहही। बढहु दिवस निसि विधिसन कहही। इसलिए बारात की विदाई मे विषाद हुआ। बात फैल गई। अप्रिय समाचार को शीघ्र हृदय ग्रहण नही करता और उनकी समझ म अभी बारात का और ठहरना उचित था। अत समाचार की सत्यता निश्चय करने के लिए एक दूसरे से पूछते हैं। विकल हैं। अत परस्पर पूछते है। नही तो पूछनेवाले से पूछना नही बनता।

जिसे समाचार ज्ञात था उसने कहा बात सच्ची है। सुनते ही सबको शोक हुआ। पहिले कमल की भाँति विकसित थे। अब सङ्कुचित हो गये। दिनकर कुलभूषण का वियोग है। इसलिए सायकाल के समय कमलवन के सकुचने से उपमा दिया।

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तह सिद्ध चला बहु भाँती ॥
विविध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना ॥२॥

अर्थ जहाँ जहाँ आते समय बाराती टिके थे तहाँ तहाँ बहुत प्रकार की रसद सामग्री चली। अनेक प्रकार के मेवा पक्वान्न और भोजन की सामग्री जिनका बखान नही हो सकता।

व्याख्या बीच बीच बरबास बनाये। सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। वही आते हुए बाराती टिके थे। उन्ही निवास स्थानो पर कच्चा सामान भेजा जाने लगा। जिस क्रम से आये थे उसी क्रम से जावेंगे। मेवा जल्पान के लिए पक्वान्न भोजन के लिए और भी भोजन का साज पीढा, पत्तल, चटनी, अँचार आदि भेजे गये।

भरि भरि बसह अपार कँहारा। पठई जनक अनेक सुसारा ॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सवारे नख अरु सीसा ॥३॥

अर्थ बैलो पर लाद करके और असख्य वहारो को महाराज जनक ने सुन्दर मलाई, दही, छेना आदि लेकर भेजा। एक लाख घोडे और पचीस सहस्र रथ सबको सिर से पैर तक सँवार कर भेजा।

व्याख्या बेसर ऊँट पर नही भेजे गये। निन्दित वाहनो पर पक्वान्न नही भेजा। वँहारो पर वहँगी काँवर द्वारा दधि चिउरा उपहार चला। सार का अर्थ है मलाई, दही, छेना आदि। कही मुसारा के स्थान पर सुआरा पाठ है। वहाँ यह अर्थ करना होगा कि सूपकारो को भी महाराज जनक ने भेजा कच्ची रसोई बनाने के लिए। रचिरुचि जीन तुरग तिन साजे। वरन वरन वर वाजि बिराजे। ऐसे एक लाख घोडे। रथ सारथिन्ह विचित्र वनाये। ऐसे पचीस सहस्र रथ। सिर से पैर तक सबका श्रृङ्गार हुआ। एक लाख घोडे, रथ के घोडो को छोडकर।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसि कुजर लाजे ॥
कनक वसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु वस्तु विधि नाना ॥४॥

अर्थ सजे हुए दसहजार मतवाले हाथी। जिन्हे देखकर दिग्गज लज्जित हो जायें तथा सोना वस्त्र और मणि गाडियो मे भर भरकर तथा भैंसे, गाय तथा अन्य नाना प्रकार की वस्तु।

व्याख्या कलित करिवरन्ह परी अँवारी। कहि न जात जेहि भाँति सवारी। ऐसे दस सहस्र हाथी। जिन्हे देखकर दिग्गज लोग लज्जित हो। जनकपुर के निकट ही जङ्गल है। जिममे हाथी होते है। अत बडे डाल डौल के मतवाले हाथी चुन चुनकर भेजे गये। निसि कुजर लाजे कहने का भाव ही यही है कि यहाँ के हाथी अयाध्या के हाथियो से भारी है।

सोना वसन और मणि तो गाडियो पर लादे गये। दायज म भैंस गाय भी दी जाती है। इसकी गिनती नही लिखी। क्योकि ये गिनकर भेजी ही नही गई और भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ जिनका नाम कवि नही गिना सके।

दो दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्हि विदेह वहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोक सपदा थोरि ॥३३३॥

अर्थ फिर महाराज जनक ने अपरिमित दायज दिया। जो कहा नही जा सकता। जिसे देखकर लोकपति के लोको की सम्पदा थोडी मालूम पडी।

व्याख्या पहिले दायज दिया था। उसका परिमाण रहा यथा रहा कनक मनि मडप पूरी। पर इस समय जो दे रहे हैं उसका परिमाण नही है। पहिले जो दिया था उसे लोकपाल अवलोकि सिहाने कहा था। इस समय इतना दिया कि उनके लोको की सम्पदा थोडी जच रही है। पहिल दायज म उत्कर्ष का आधिक्य कहा। इस दायज म उत्कर्षाधिक्य तथा परिमाणाधिक्य कह रहे हैं।

सबु समाजु यहि भाति वनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई ॥
चलिहि वरात सुनत सव रानी। विकल मीन गन जनु लघु पानी ॥१॥

अर्थ : सब समाज इस भाँति से सजाकर जनकजी ने अवधपुर भेजवा दिया। बारात चलेगी। यह सुनकर सब रानियाँ ऐसी विकल हुई जैसे मछली थोड़े पानी में विकल हो।

व्याख्या : पहिले घोड़े तब हाथी और तब रथ। बीच में कनक वसन और मणि के यान। पीछे महिषी धेनु तथा बरतन सामान। इस भाँति से रक्षित करके महाराज जनक ने अवधपुर बारात चलने के पहिले ही भिजवा दिये। महाराज दशरथ के साथ भेजने से अवधपुर पहुँचना कठिन हो जायगा। रास्ते में ही महाराज दशरथ दे डालेंगे और दायज का अवधपुर पहुँचना परम आवश्यक है। यदि वहाँ तक न पहुँचा तो लोग क्या कहेंगे। इसलिए सीधे अवध भेज दिया। दूसरी बात यह है कि इन वस्तुओं के लिवा जाने की व्यवस्था का भार महाराज दशरथ पर न पड़े। अत. अपनी व्यवस्था से सब वस्तुएँ समधियाने भेजवा दीं।

महाराज जनक ने कहा था : अवधनाथ चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। सो मन्त्रियों ने अन्त.पुर में खबर दी। समाचार सुनते ही रानियाँ विकल हो उठीं। केवल सीताजी की ही माता नहीं। चारों रानियाँ ऐसी विकल हुई जैसे मछलियाँ थोड़े पानी में विकल हों। नीच कीच बिच विकल जिमि मीनहि सलिल सकोच। जब समाचार सुनकर पुरवासी विकल हो गये तब माताओं का ऐसा विकल होना आश्चर्य की बात नहीं है।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं ॥
होयेहु संतत पिअहि पिआरी। चिर अहिवातु असीस हमारी ॥२॥

अर्थ : बारबार सीताजी को गोद में ले लेती हैं और आशीर्वाद देकर शिक्षा दे रही हैं कि सदा पति की प्यारी हो। तुम्हारा सौभाग्य सदा बना रहे यह हमलोगों का आशीर्वाद है।

व्याख्या . पहिले आशीर्वाद देती हैं। दोनों आशीर्वाद सोहाग सम्बन्धी हैं। पति का बना रहना सोहाग है और पति का प्यार बना रहना भी सोहाग है। यथा : मानहु मुग्ध देवदावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललनहू सौतिन्ह दियो सोहाग। राजा लोग कई ब्याह करते हैं। अतः यह असीस परमावश्यक है। तत्पश्चात् पति के बने रहने का आशीर्वाद देती हैं। भारतवर्ष में स्त्रियों के लिए इससे बढ़कर आशीर्वाद नहीं है। यथा : जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥
अति सनेह बस सखीं सयानी। नारि धरमु सिखवहिं मृदुबानी ॥३॥

अर्थ : सास ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर आज्ञानुसार कार्य करना। अत्यन्त स्नेहवश सयानी सखियाँ मृदुवाणी से नारीधर्म की शिक्षा दे रही हैं।

व्याख्या पहिला काम सास से पडेगा। सो उनकी सेवा करना। उनके बाद ससुर गुरुजन से काम तो कभी कदाचित् पडेगा। सो सबकी सेवा करना। आज्ञा मानना ही सच्ची सेवा है। यथा ' आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो पति के लिए आज्ञा का बाट न जोहना। बडा परिवार है। वे सङ्कोच से आज्ञा न दे सकेंगे। उनका रुख देखकर काम करना। इसका साफल्य भी उत्तरकाण्ड मे दिखलाया है। यथा कौसल्यादि सास गृह माही। सेवइ सबनहि मान मद नाही। निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई। इत्यादि ' जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ।

माताओ ने जो शिक्षा सूत्ररूप मे दी सखियाँ उसीकी व्याख्या करके समझाती हैं। सयानी है। ब्याही हुई है। गार्हस्थ्य धर्म मे चतुर है। ब्याह होते ही स्त्रियो के कर्तव्य मे बडा परिवर्तन हो जाता है। पिता माता की प्रधानता हटकर सास ससुर मे आजाती है धर्म भी दूसरा हो जाता है। यथा ' एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। अत ससुराल जाकर कैसा वर्ताव करना चाहिए सो सयानी सखियाँ सिखाती हैं।

सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहि महतारी। कहहि विरचि रची कत नारी ॥४॥

अर्थ जिस भाति सीताजी को समझाया। उसी भाँति आदर के साथ राजकुमारी माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति को भी समझाया और रानियो ने उन्हे बार बार हृदय से लगाया। माँ बार बार उनसे मिल रही है। कहती है कि ब्रह्मदेव ने स्त्रियो को क्यो बनाया ?

व्याख्या सब कुँअरियो को पृथक् पृथक् समझाने का कारण था। क्योकि सबके लिए पृथक् पृथक् उपदेश थे। बहिन होने के व्यतिरिक्त जेठानी देवरानी होने का भी नाता आपडा। जेठ देवर के बर्ताव का भी उपदेश दिया। अपनी सास और सौतेली सासों के साथ वर्ताव की भी शिक्षा दी। अति प्रेम से हृदय लगाकर शिक्षा देने का प्रभाव बडा भारी होता है। यथा

अवध रानि की लालसा पूर करहु तुम जाय।
उनकी आज्ञा ते पृथक् भूलि धरेउ जनि पाय ॥१॥
बहिन बहिन की प्रीति जस तैसइ रहै उदार।
पै जेठानि देवरानि को सधै सकल व्यवहार ॥२॥
जेठमान पितु के सरिस सुत सम देवर मानि।
मातु सुता के सरिस ही त्यौ जेठानि देवरानि ॥३॥
अपने सासुन ते अधिक आन सास को मान।
जे प्रिय भूपति को अधिक अधिक तासु मनमान ॥४॥
विनय गहनि सबकी सहनि रहनि विगत अभिमान।
दासी हू को आदरेहु यह कुलवधू विधान ॥५॥

माता मे अधिक प्रेम है। अत वार वार भेटती हैं। वत विधि सृजी नारि जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही। ऐसा कहकर कन्या के विरह मे ब्रह्मदेव को उपालम्भ देती हैं पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। स्त्रियो मे स्वातन्त्र्य की योग्यता ही नही है कि ब्रह्मदेव ने उनको ऐसी क्यो बनाया ?

दो तेहि अवसर भाइन्ह सहित, रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित, विदा करावन हेतु ॥३३४॥

अर्थ उसी अवसर पर सूर्यकुल के पताका श्रीरामजी भाइयो सहित जनकजी के महल अन्त पुर मे प्रसन्न होकर विदा कराने चल।

व्याख्या जिस समय माताएँ कन्याओ को समझा बुझा रही थी उसी समय रामजी विदा कराने के लिए भाइयो के सहित चले। लौकिक लीला का अनुसरण दिखलाते हैं कि सब भाई मुदित हैं क्योकि विदा कराने जा रहे हैं। मुनि कौशिक तथा सतानन्दजी ने जाकर कहा कि महाराज दशरथ ने मान लिया। तब चारो भाइयो के लिए आज्ञा हुई कि विदा कराने जाओ। अत प्रसन्न होकर चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए ॥
कोउ कह चलन चहतहहिं आजू। कीन्ह विदेह विदा कर साजू ॥१॥

अर्थ चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। नगर के नर और नारी उन्हे देखने के लिए दौडे। कोई कहता है कि आज ही जाना चाहते है। विदेह ने विदा की तैयारी कर दो है।

व्याख्या चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। कहने का भाव यह है कि उनकी सुन्दरता को अधिक करने के लिए किसी बनावट की अपेक्षा नही हैं। उनके दर्शन के लिए नगर का नारियाँ और नर विदाई का समाचार पाकर दौड पडे। प्रभु के चलते ही खबर तुरन्त फैल जाता है। यथा देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरवासिन्ह पाये। तथा रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरवासिन्ह पाई। विदा होने का समाचार फैल गया। लोग दौडे कि उनके पहुँचने के पहिले कही अन्त पुर मे न चले जाँय।

एकाएक जाने की बात ठहर गई। आज ही जानेवाले हैं। प्रमाण यह है कि राजा विदेह ने विदाई की व्यवस्था कर दो है। हाथी घोडे आदि रवना हो गये। राजा विदेह ही तो ठहरा। उसने विदा का साज सज दिया। जिसने कहा था यह विवाह बड लाभ सुनयनी। वह कहती है चलन चहत हैं आजू। बडी हानि हुआ चाहती है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥२॥

व्याख्या : पहिला काम सास से पडेगा। सो उनकी सेवा करना। उसके बाद ससुर गुरुजन से काम तो कभी कदाचित् पडेगा। सो सबकी सेवा करना। आज्ञा मानना ही सच्ची सेवा है। यथा आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो पति के लिए आज्ञा का बाट न जोहना। बडा परिवार है। वे सङ्कोच से आज्ञा न दे सकेंगे। उनका रुख देखकर काम करना। इसका साफल्य भी उत्तरकाण्ड मे दिखलाया है। यथा कौसल्यादि सास गृह माही। सेवइ सबन्हि मान मद नाही। निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई। इत्यादि : जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ।

माताओ ने जो शिक्षा सूत्ररूप मे दी सखियाँ उसीकी व्याख्या करके समझाती हैं। सयानी हैं। ब्याही हुई है। गार्हस्थ्य धर्म मे चतुर है। ब्याह होते ही स्त्रियो के कर्तव्य में बडा परिवर्तन हो जाता है। पिता माता की प्रधानता हटकर सास ससुर मे आजाती है धर्म भी दूसरा हो जाता है। यथा एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। अत ससुराल जाकर कैसा बर्ताव करना चाहिए सो सयानी सखियाँ सिखाती हैं।

सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहि महतारी। कहहि बिरंचि रची कत नारी ॥४॥

अर्थ जिस भाँति सीताजी को समझाया। उसी भाँति आदर के साथ राज कुमारी माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति को भी समझाया और रानियो ने उन्हे बार बार हृदय से लगाया। माँ बार बार उनसे मिल रही है। कहती है कि ब्रह्मदेव ने स्त्रियो को क्यो बनाया ?

व्याख्या सब कुँअरियो को पृथक् पृथक् समझाने का कारण था। क्योकि सबके लिए पृथक् पृथक् उपदेश थे। बहिन होने के व्यतिरिक्त जेठानी देवरानी होने का भी नाता आपडा। जेठ देवर के बर्ताव का भी उपदेश दिया। अपनी सास और सौतेली सासो के साथ बर्ताव की भी शिक्षा दी। अति प्रेम से हृदय लगाकर शिक्षा देने का प्रभाव बडा भारी होता है। यथा

अवध रानि की लालसा पूर करहु तुम जाय।
उनकी आज्ञा ते पृथक् भूलि धरेउ जनि पाय ॥१॥
बहिन बहिन की प्रीति जस तैसइ रहै उदार।
पै जेठानि देवरानि को सधै सकल व्यवहार ॥२॥
जेठमान पितु के सरिस सुत सम देवर मानि।
मातु सुता के सरिस ही त्यौ जेठानि देवरानि ॥३॥
अपने सासुन ते अधिक आन सास को मान।
जे प्रिय भूपति को अधिक अधिक तासु सनमान ॥४॥
विनय गहनि सबकी सहनि रहनि विगत अभिमान।
दासी हू को आदरेहु यह कुलवधू विधान ॥५॥

माता म अधिक प्रेम है। अत वार वार भेटती हैं। कत विधि सृजी नारि जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही। ऐसा कहकर कन्या के विरह म ब्रह्मदेव को उपालम्भ देती हैं पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। स्त्रिया मे स्वातन्त्र्य की योग्यता ही नही है कि ब्रह्मदेव ने उनको ऐसी क्यो बनाया ?

दो तेहि अवसर भाइन्ह सहित, रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मदिर मुदित, विदा करावन हेतु ॥३३४॥

अर्थ उसी अवसर पर सूर्यकुल के पताका श्रीरामजी भाइयो सहित जनक जी के महल अन्त पुर म प्रसन्न होकर विदा कराने चले।

व्याख्या जिस समय माताएँ कन्याओ को समझा बुझा रही थी उसी समय रामजी विदा कराने के लिए भाइयो के सहित चले। लौकिक लीला का अनुसरण दिखलाते हैं कि सब भाई मुदित हैं क्योकि विदा कराने जा रहे हैं। मुनि कौशिक तथा सतानन्दजी ने जाकर कहा कि महाराज दशरथ ने मान लिया। तब चारो भाइयो के लिए आज्ञा हुई कि विदा कराने जाओ। अत प्रसन्न होकर चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए॥
कोउ कह चलन चहतहहिं आजू। कीन्ह विदेह विदा कर साजू ॥१॥

अर्थ चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर है। नगर के नर और नारी उन्हे देखने के लिए दौडे। कोई कहता है कि आज ही जाना चाहते है। विदेह ने विदा की तैयारी कर दो है।

व्याख्या चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। कहने का भाव यह है कि उनकी सुन्दरता को अधिक करने के लिए किसी बनावट की अपेक्षा नही है। उनके दर्शन के लिए नगर का नारियाँ और नर विदाई का समाचार पाकर दौड पडे। प्रभु के चलते ही खबर तुरन्त फैल जाता है। यथा देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरवासिन्ह पाये। तथा रगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरवासिन्ह पाई। विदा होने का समाचार फैल गया। लोग दौडे कि उनके पहुँचने के पहिले कही अन्त पुर म न चले जाँय।

एकाएक जाने की बात ठहर गई। आज ही जानेवाले हैं। प्रमाण यह है कि राजा विदेह ने विदाई की व्यवस्था कर दी है। हाथी घोडे आदि रवना हो गये। राजा विदेह ही तो ठहरा। उसने विदा का साज सज दिया। जिसने कहा था यह विवाह बड लाभ सुनयनी। वह कहती है चलन चहत हैं आजू। बडी हानि हुआ चाहती है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥२॥

अर्थ आँख भर के रूप देख लो। राजा के चारो कुमार प्रिय पाहुने हैं। हे सयानी! किस पुण्य से ब्रह्मदेव ने लाकर इन्हे आँखो का मेहमान बनाया है।

व्याख्या उन्ही आठो सखियो का सम्वाद जो दो बार हो चुका है अब तीसरी बार हो रहा है। बोलने का क्रम वही नही है। परन्तु वाक्य सन्दर्भ से जान पडता है कि कौन सखी क्या कह रही है। यथा एक सखी जिसने कहा था यहि विवाह बड लाभ सुनयनी। वही कहती है कोउ कह चलन चहत हैं आजू इसमे हानि कही।

दूसरी	बडे भाग विधि बात बनाई कीन्ह विदेह विदा कर साजू	अभाग्य।
तीसरी	नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई लहु नयन भरि रूप निहारी	सौभाग्य।
चौथी	लगन आइहैं बधु दोउ कोटि काम कमनीय प्रिय पाहुने भूप सुत चारी	मनोरथ पूर्ति।

पाँचवी जिसने कहा था विविध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई। वही कहती है कि याद तो नही पडता कि मैने कोई ऐसा पुण्य किया हो कि इनके दर्शन मिलें। विधि है सञ्चित मे से कोई पुण्य खोज निकाला हो। को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी। इससे पुण्योदय कहा।

छठीसखी जिसने कहा था तब तब राम लखनहि निहारी। होइहि सब पुरलोग सुखारी। वही कहती है यथा

मरनसीलु जिमि पाव पिऊखा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा ॥
पाव नारकी हरिपदु जैसे। इन्हकर दरसनु हम कहुँ तैसे ॥३॥

अर्थ मरनेवाला प्राणी जिस भाँति अमृत पावे और जन्म के भुखड को जैसे कल्पवृक्ष मिले। नारकी को जैसे विष्णुपद की प्राप्ति हो जाय। हमको तो इनका दर्शन उसी भाँति दुर्लभ है।

व्याख्या वह कहती है कि दर्शन मे महासुख है। इनका दर्शन प्राणद है। तुष्टि देनेवाला है और परम गति विधायक है। हमे तो ऐसा सुखद जान पडता है जैसे मरणशील को अमृत मिल जाय। जन्म के भूखे को कल्पवृक्ष मिल जाय। जो जो वह चाहे वह सब पदार्थ उसे सुलभ हो जाय। नरक वेदना भोगनेवाले को जैसे विष्णुपद परमानन्द की प्राप्ति हो। भाव यह कि हमे तो इनके दर्शन मे ही लोक और परलोक के सब सुख केन्द्रीभूत मालूम पडते हैं।

निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू ॥
येहि विधि सबहि नयन फलु देता। गये कुँअर सब राज निकेता ॥४॥

अर्थ रामजी की शोभा को देखकर हृदय म धारण करो। अपने मनरूपी सर्प क लिए मूर्ति को मणिरूप बनाओ। इस भाँति सबको नेत्रो का फल देते हुए सब कुँअर राजभवन म पहुँचे।

व्याख्या : सातवी सखी जिसने कहा था : स्याम गौर सब अग सुहाए। वह कहती है : निरख राम सोभा उर धरहू। इससे शोभा कही।

आठवी : उपमा कहँ त्रिभुवन कोउ नाही। निजमन फनि मूरति मनि करहू। इससे प्रीति कही।

वहाँ कहा था : एहि विधि सकल मनोरथ करही। सो मनोरथ की पूर्ति हो गई। अतः कहते हैं : एहि विधि सबहिं नयन फल देता। चले जनक मन्दिर मुदित विदा करावन हेतु से उपक्रम करके मार्ग की कथा का : गये कुँवर वर राजनिकेता से उपसंहार करते हैं।

दो. रूप सिंधु सव वंधु लखि, हरखि उठी रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु ॥३३५॥

अर्थ : शोभा के सिन्धु चारो भाइयो को देखकर रनिवास हर्षित हो उठा और सास लोग परम प्रसन्न होकर निछावर और आरती करने लगी।

व्याख्या : चारो भाई रूप के समुद्र हैं। चार कहने का भाव यह कि पृथ्वी मे चार ही समुद्र हैं और सब जलाशय उन्ही के उपजीवी हैं। इसी भाँति पृथ्वी तल मे ये ही चार भाई सुन्दरता की सीमा हैं। और सबकी सुन्दरता सर, सरि, कूप, तड़ाग के समान है। सास हैं। परम सुन्दर जामाताओ को देखकर सब दुःख भूल गईं। हर्षित हो उठी। ये लोग मुदित थे। पर सास तो महामुदित हो गईं। हर्षित तो सम्पूर्ण अन्त पुर हो उठा। पर साम महा मुदित मन होकर निछावर और आरती करने लगी। करि आरती निछावरि करही : क्रम तो यह है। परन्तु परम आनन्द मे क्रम का निर्वाह न हुआ। पहिले निछावर ही करने लगी। आरती पीछे से की।

देखि राम छवि अति अनुरागी। प्रेम विवस पुनि पुनि पद लागी ॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु वरनि किमि जाई ॥१॥

अर्थ : रामजी की छवि देखकर अत्यन्त अनुरक्त हुईं। प्रेम के विवश होकर बार बार चरणो मे गिरी। प्रीति हृदय मे छा गई। इसलिए सङ्कोच छूट गया। स्वाभाविक स्नेह का कैसे वर्णन किया जाय।

व्याख्या : चारो भाइयो को देखकर अनुराग हुआ। पर रामजी को देखकर अत्यन्त अनुराग हुआ। क्योकि प्रभु अधिक सुख सागर हैं। यथा : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। अतः प्रेम के विवश हो गईं। बार बार चरणो मे गिर रही हैं। दामाद से भी सास आरम्भ मे कुछ सङ्कोच करती हैं। कोहबर मे भी नही बोलीं। परन्तु आज प्रीति के बाहुल्य से सङ्कोच जाता रहा। एक भाव के उदारावस्था मे आजाने से अन्य भाव प्रसुप्त अथवा विच्छिन्नावस्था को प्राप्त होते हैं। इस समय प्रीति का परम उत्कर्ष है। अतः सङ्कोचादि भाव तिरोहित हो गये। रामजी पर स्वाभाविक प्रेम है। जैसा माता

का अपने शिशु बालक पर होता है। यथा : सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेवाए॥
बोले राम सुअवसर जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥२॥

अर्थ : भाइयों के सहित उबटन लगाकर नहलाया और अत्यन्त प्रेम से षट्रस भोजन कराया। रामजी अवसर पाकर शील स्नेह तथा सङ्कोचमय वाणी बोले।

व्याख्या : शिशु के समान प्रीति होने से अपने हाथों उबटन लगाया और उसके बाद स्नान कराया। नित्य क्रिया करके आये हैं। उबटन के बाद स्नान काम्य स्नान है। अतः इसके बाद अत्यन्त प्रेम से षट्रस भोजन का जिमाना कहते हैं। जब तक उबटन स्नान और भोजन होता रहा तब तक कुछ कहने का अवसर नहीं समझा। जब सब हो चुकने के बाद सास स्वस्थ होकर बैठीं खातिरी हो चुकी तब बड़े होने के कारण रामजी बोले। चक्रवर्तीजी ने विदा कराने के लिए भेजा था। सो विदा करने के लिए कहने में शील, स्नेह और सङ्कोच तीनों बाधक थे। अतः ऐसी वाणी बोले जिसमें तीनों बना रहे।

राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥३॥

अर्थ : महाराज अयोध्यापुरी जाना चाहते हैं। विदा होने के लिए हमें यहाँ भेजा है। माता! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये और बालक जानकर सदा प्रेम बनाये रहियेगा।

व्याख्या : शिशु सम प्रेम अपने ऊपर देखकर माँ ऐसा सम्बोधन करते हैं। जब आये थे तब विषाद में देखा था और जानते थे कि कन्या की विदाई में दुःख होता है। अतः कहते हैं प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए। विदा करने को नहीं कहते अपने विदा होने को कहते हैं। महाराज अयोध्या जाना चाहते हैं। हमारा भी साथ जाना आवश्यक है। आप माता हैं। ऐसा ही प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : को रघुबीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाहनि हारा। स्वयं अयोध्या जाने की इच्छा है। उसे नहीं कहते हैं। यह प्रभु का शील है। माता सम्बोधन करते हैं। यह प्रभु का स्नेह है। विदा करने को न कहकर अपने विदाई की आज्ञा माँगते हैं। यह प्रभु का सङ्कोच है।

मुदित मन आयसु देहू : इसमें मुदित मन कहने से कन्या की विदाई ध्वनित है। अतः

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही॥४॥

अर्थ : वचन सुनते ही रनिवास विलखने लगा। सास प्रेम के वश कुछ बोल न सकी। सब कुँअरियो को हृदय से लगा लिया और उनके पतियो को सौंपकर अति विनती की।

व्याख्या : अत्यन्त प्यारी होने से हृदय से लगाया। अथवा अपनी प्रीति को व्यक्त किया कि यह मुझे प्राण सी प्यारी है। जिस कुँवरि के जो पति रहे उन्हे उसे सौंपा। महाराज ने कन्यादान मात्र किया। परन्तु देय वस्तु सौंपी नही गयी। अब महारानी उन्हे सौंप रही है। एक दूसरे को पहिचाने रहे इसलिए भी सौंपना आवश्यक था। सदा रक्षा के लिए अति विनय किया। कन्यादान ही ऐसा दान है जिसमे दाता का देय से सम्बन्धविच्छेद नही होता। पुत्रित्व बना रहता है। इसीलिए कन्यादान मे न मम : मेरी नही है ऐसा नही कहते।

[1]छं. करि विनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ विदित गति सबकी अहै॥
परिवारु पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानवी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी॥

अर्थ : विनती करके रामजी को सीता समर्पण की और हाथ जोडकर बार बार कहा कि हे तात! मै बलि जाती हूँ। आप सुजान है। आपको सबकी गति विदित है। परिवार पुरजन मुझे और राजा को सीता प्राण के समान प्यारी है। यह जानकर और इसके शील और स्नेह को लखकर : तुलसीदासजी कहते है : इसे अपनी दासी की भाँति मानना।

व्याख्या . राम से ही कृत्य का प्रारम्भ और राम से ही समाप्ति चाहती हैं। कन्यादान का आरम्भ रामजी से ही हुआ। अत सौंपने की समाप्ति भी उन्ही मे जाकर की। सौंपने मे उलटा क्रम होने का यही कारण है। सीताजी मे सबसे अधिक प्रीति है। इसलिए सौंपने के पहिले भी विनय किया और सौंपने के बाद भी विनती करती हैं। रामजी ने माता कहा था इसलिए तात कहती है। तुम ते कछु न छिपी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी। अत: अन्तर्यामी कहती हैं। सुजान कहती हैं। सबकी गति को स्पष्ट करते हुए बतलाती हैं कि परिवार को पुरजन को मुझको राजा को सब बेटियाँ प्रिय हैं पर सीता प्राणप्रिय है। सब इसके सुख से सुखी और दुख से दुखी है। सम्पूर्ण राज्य का सुख इसी के सुखी रहने पर अवलम्बित है। माता है : पुत्री के स्नेह को पहिचानती है। अत कहती है कि आप भी इस बात का ध्यान रखना कि इसका कितना प्रेम आप पर है और यह कैसी सुशील है। इसे निज दासी अर्थात् अनन्य गति समझकर मानना। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

दो. तुम्ह परिपूरन काम, जान सिरोमनि भावप्रिय ।
जन गुन गाहक राम, दोष दलन करुनायतन ॥३३६॥

अर्थ : आप परिपूर्णकाम हैं। सुजानों के शिरोमणि हैं और भाव आपको प्यारा है। हे रामजी ! आप भक्तों के गुणग्राहक हैं। दोष के नाश करनेवाले तथा करुणा के घर हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि ऐसी सुन्दरी का कौन आदर नहीं करेगा। इस पर कहती हैं कि आप परिपूर्णकाम हैं। यथा : सब प्रकार प्रभु पूरन कामा। सुजान शिरोमणि हैं। यथा : जानि सिरोमनि कोसल राऊ। आप भावप्रिय हैं। यथा : रीझत राम सनेह निमोते। आप जनगुनग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। दोषदलन हैं। यथा : कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर। दूषन भे भूषन सरिस सुजस चारु चहुँओर। और करुणायतन हैं। यथा : करुनामय रघुनाथ सुभाऊ। यह गुणग्राम पाँचवाँ मृगशिरा नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। आकार मृगमुख सा है। यह सुनयना-कृत स्तुति है। इसमें १. जानकीजी का समर्पण २. हाथ जोड़कर विनय और ३. चरण ग्रहण : ये ही तीन तारे चमकते हैं। प्रेम पंक जनु गिरा समानी : कहकर मृगमुखाकार कहा। क्योंकि बोल नही सकती। सनेहसानी होने से सियराम प्रेम की जननी कहा।

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी ॥
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुविधि राम सासु सनमानी ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर रानी चरण पकड़े रह गई। मानो प्रेम के दलदल में वाणी समा गई। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर बहुत विधि से रामजी ने सास का सम्मान किया।

व्याख्या : चरण पकड़े रह जाने का भाव यह कि यही वर लूँगी। यथा : अस बर माँगि चरन गहि रहेऊ। आगे कुछ न कह सकी। दलदल में जो डूब जाता है वह फिर नही निकल पाता। पानी मे डूबे हुए को तो जल कई बार ऊपर फेंकता है। अतः रानी की वाणी को दलदल मे डूबने की उपमा दी। फिर रानी के मुख से वाणी नही निकली।

रामहि केवल प्रेम पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा। सो स्नेह से सानी हुई वाणी सुनकर रामजी द्रवीभूत हो गये। सास से एवमस्तु नही कह सकते। अतः उनका सम्मान करना ही एवमस्तु कहना है। आप माता हैं। हम लोग आज्ञाकारी हैं। आपकी आज्ञा हम लोग नही हटा सकते। आप व्यर्थ की चिन्ता क्यों करती हैं इत्यादि वाक्यों से समझाना ही बहुत विधि से सम्मान करना है। चरण पकड़े रह गईं। अतः बहुत विधि से सम्मान करके उन्हें तुष्ट किया।

राम बिदा मांगत कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥२॥

अर्थ : रामजी ने हाथ जोड़कर विदा माँगा और बारबार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाने पर फिर प्रणाम करके भाइयों के सहित रामजी चले।

व्याख्या : सब भाइयों की ओर से रामजी ही विदा माँगते हैं। बड़े विनय से हाथ जोड़कर विदा माँगा। सास ने हाथ जोड़कर बातें कही थी। यथा : जोरि कर पुनि पुनि कहै। सो रामजी भी हाथ जोड़कर ही विदा माँगते हैं। सास प्रेम के वश होकर बार बार चरणों में गिरी थी। यथा : प्रेम विवस पुनि पुनि पद लागी। अतः सरकार भी बारबार प्रणाम करते हैं। अच्छा जाओ : इस भाँति कहकर तो सास विदा करेंगी ही नही। अतः आशीर्वाद देना ही विदा करना है। जबतक आशीर्वाद नही मिलता तबतक विदाई की स्वीकृति नही हुई। जब आशीर्वाद मिला तो उसे विदाई की स्वीकृति मानकर पुनः प्रणाम किया और भाइयों के साथ चले। तेहि अवसर भाइन्ह सहित राम भानुकूल केतु। चले जनक मन्दिर मुदित विदा करावन हेतु। भाइयो के साथ आना कहा था। अब भाइयों के साथ जाना कह रहे हैं।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी ॥
पुनि धीरजु धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी ॥३॥

अर्थ : सुन्दर मधुर मूर्ति हृदय में लाकर सब रानी स्नेह से शिथिल हो गईं। फिर धैर्य धारण करके कुँअरियो को बुलाया और माँ बार बार मिलने लगी।

व्याख्या : रघुनन्दन की मूर्ति ही ऐसी सुन्दर और मधुर है कि दर्शन करने वाले को कभी तृप्ति ही नही होती और उस मूर्ति के बिना कल नही पड़ता। अतः रघुनन्दन की मनोमयी मूर्ति को अपने हृत्कमल में स्थापन करके स्नेह से सब रानियाँ शिथिल हो गईं।

चारों भाइयों को जाते देखकर और विदाई का यही अवसर जानकर धैर्य धारण किया। कुँअरियों को बुलाया और बार बार माताएँ भेंटने मिलने लगी। विदाई की भेंट और माता का स्नेह ही ऐसा होता है कि एक बार के मिलने से सन्तोष नही होता।

पहुँचावहि फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी ॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई ॥४॥

अर्थ : पहुँचाती हैं और फिर लौटकर मिलती हैं। दोनों ओर परस्पर बड़ी प्रीति बढी। बार बार मिलते हुए सखियो ने अलग किया। जिस भाँति नयी ब्यायी हुई गाय के छोटे बच्चे को कोई अलग कर दे।

व्याख्या : माँ मिलकर बेटियो को पहुँचाने चली। कर्त्तव्य से प्रेरित होकर

पहुँचाने चलती हैं और स्नेह से लौटकर फिर मिलती हैं। इस भाँति माँ बेटी का प्रेम वियोग के समय और बढने लगा। सखिया ने देखा कि इससे कोई लाभ नही है। केवल वियोग की व्यथा ही बढ रही है। अत उन लोगो ने माँ बेटियो को अलग कर दिया। यहाँ पर कवि ब्यायी गाय की छोटे बच्चे से अलग होने की उपमा देते हैं। अर्थात् दोनो बाँ बाँ करती परवश एक दूसरे से दूर चली जाती हैं। इससे दोनो ओर का रुदन कहा।

दो प्रेमबिबस नर नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर, करुना बिरहँ निवासु ॥३३७॥

अर्थ सब स्त्री पुरुष और सखिया के सहित सब रनिवास प्रेम के विवश हो गये। मानो विदेह राजा के नगर मे करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है।

व्याख्या भावाथ यह कि बडा रोना गाना मचा। मङ्गल के समय कवि रोने का शब्द नही कहना चाहते। इतना ही कहते हैं कि स्त्री पुरुष सखियाँ रानियाँ कोई अपने वश म नही हैं। सब प्रेम के वश हैं। यहाँ स्त्री पुरुष से प्रजा वर्ग से भी अभिप्राय है। इसलिए सम्पूर्ण नगर मे करुणा विरह का डेरा डालना कह रहे हैं।

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढाए॥
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही ॥१॥

अर्थ जानकीजी ने तोता मैना पाले थे। सोने के पिंजडो मे रखकर उन्हे पढाया था। वे व्याकुल होकर कह रहे है कि वैदेही कहाँ है। यह सुनकर किसका धैर्य नही छूटता ?

व्याख्या सुनकर मनुष्य की बोली का अनुकरण करनेवाल पक्षी भारतवर्ष मे दो हैं एक तोता दूसरे मैना। यथा साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी। ये पालकर पढाये जाते हैं। कहने का भाव यह कि किसी समय भारत मे तोता मैना के पढाने मे कुछ उठा नही रखा जाता था। जानकीजो ने भी तोता मैना पाल रक्खे थे। उनका आदर इतना था कि वे सोने के पिंजडो मे रखे गये थे। स्वय भगवती जनकनन्दिनी उन्हे खिलाती पिलाती और पढाती थी। इसका प्रभाव इतना पडा कि वे मानुपी भाषा मे हृद्‌गत भावो के व्यक्त करने मे समर्थ हो गये थे। वे जब जानकीजी की विदाई के समय व्याकुल होकर बोलने लगे कि वैदेही कहाँ है ? तो सुननेवालो का धैर्य और भी छूट गया।

भये बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसे कहि जाती॥
बधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ जब पशु पक्षी इस प्रकार विकल हुए तो मनुष्य की दशा कैसे कही जाय। भाई के सहित तब जनकजी आये। प्रेम के उमडने से उनकी आँखें अश्रु से परिप्लुत थी।

व्याख्या : जिस भाँति तोता मैना विकल थे उसी भाँति वहाँ के सब पशु पक्षी विकल थे। वे बोल नही सकते थे। परन्तु उनकी दशा देखने से विकलता स्पष्ट व्यक्त थी। कवि कहते हैं कि इस भाँति जानकी सबको प्यारी थीं। मनुष्य मे तो चेतना का विकास अधिक है। अतः उनकी दशा अकथनीय हो गयी। इससे सम्पूर्ण जनकपुर के शोकाकुल हो उठने का वर्णन किया।

भाई कुशध्वज के साथ जनकजी : सीरध्वज आये। यहाँ पर कवि ने विदेह न कहकर जनक कहा। जनक शब्द का अर्थ ही पिता है। भाव यह कि पितृभाव से परिपूर्ण होकर आये। भीतर से प्रेम उमगा हुआ है। बाहर आँखो मे आँसू भरा हुआ है। भीतर बाहर प्रेममय हो रहे हैं। परन्तु धैर्य धारण किये हुए थे। अपने धैर्य से सबको धैर्य प्रदान करते थे। बड़े भाई का कितना प्रश्रय : अदब था। कुशध्वज भी स्वय सकाश्यापुरी के राजा हैं। परन्तु जनकजी के सामने मानो उनका अस्तित्व ही नही है। जो जनकजी कहे करें वही ठीक। ये किसी बात मे कुछ बोलते ही नही। एक बार समधी से विनती करने मे साथ थे। इस समय विदाई मे बडे भाई के साथ आये हैं। फिर भी कहना सुनना कुछ नही। ज्येष्ठाभ्राता पितु समः जेठा भाई बाप के तुल्य है। उसके रहते छोटा अपने को सब प्रातिभाव्यों से विनिर्मुक्त मानता था।

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी ॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की ॥३॥

अर्थ : सीताजी को देखकर धैर्य भाग गया। जनकजी को सब लोग परम विरागी कहते थे। राजा ने जानकी को हृदय से लगा लिया। आज ज्ञान की महा-मर्यादा मिट गयी।

व्याख्या : महाराज विदेह धैर्य को छोडना नही चाहते थे। परन्तु सीताजी के देखते ही धैर्य उन्हे छोडकर भाग गया। अर्थात् स्वय महाराज विदेह रो पडे। वे अपने को भी विरागी मानते थे। यथा : सहज विराग रूप मन मोरा। और लोग भी उनको परम विरागी कहते थे। यथा : मुनि गन गुरु धुर धरी जनक से। ज्ञान अनल मन कसे कनक से। जे विरचि निरलेप उपाये। पद्म पत्र जिमि जग जल जाये। इसलिए कवि कहते हैं कि लोग कहते थे और ये स्वय परम विरागी कहलाते थे। सो प्रेम ने ज्ञान पर विजय पायी। ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही। यह ज्ञान की महामर्यादा है और जनक सा कोई ज्ञानी भी नहीं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। वचन किरिन मुनि कमल विकासा। उन्हे न कोई द्वेष्य है न प्रिय है। उन्होने बेटी को कलेजे से लगा लिया। अब ज्ञान की महामर्यादा कहाँ रही? भाव यह कि यह प्रेम की ज्ञान पर विजय है मोह की नही। यथा : तेहि कि मोहममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई।

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु अनवसरु जाने ॥
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुदर पालकी मँगाई ॥४॥

अर्थ : सयाने मन्त्री समझा रहे हैं। तब विचार किया कि यह प्रेमप्रकाश का वसर नही है। सो बार बार बेटी को हृदय से लगाकर सजी हुई सुन्दर पालकी मँगायी।

व्याख्या : अब महाराज जनक को कौन समझावे ? तो सयाने मन्त्री समझाने लगे। यथा : कवित्त

महाराज ! मनहि सँभारिये समय को देखि पेखि परिवार सबै धीरज धराइये।
वारी सुकुमारी ये कुमारी करुना की भीर धीर धरि भूपति सुतान समुझाइये।
ज्ञान को विधान मुनि करत बखान जस जाहिर जहान मान मन में न लाइये।
जोग करि थपति विचार के पहारन ते पाटि महिपाल प्रेम वारिधि बँधाइये।

दो. प्रेम बिबस परिवार सबु, जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्धि गनेस ॥३३८॥

अर्थ : सब परिवार प्रेम के विवश था। अच्छी लग्न जानकर राजा ने कुँअरियो को पालकियो पर चढाया और सिद्धिदायक गणेश का स्मरण किया।

व्याख्या : पुरजन रानी और राजा का हाल कहकर अब परिवार का हाल कहते हैं कि सब परिवार प्रेम के वश मे है। कोई अपने काबू में नही। यह काम परिवार का था कि राजकुमारियो को पालकी पर चढ़ावें। पर किसी का इस ओर ध्यान नही है। इस बात को राजा ने जानकर और यह समझकर कि अच्छी लग्न आगयी है। नरेश हैं : इस बात का ख्याल किया कि जितनी देर होगी उतनी ही पीडा सबकी बढेगी राजकुमारियो को पालकियो पर चढाया। सिद्धिदायक गणेश का स्मरण किया। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिबर वदन। करहु अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।

बहुबिधि भूप सुता समुझाई। नारिधरमु कुलरीति सिखाई ॥
दासी दास दिये बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥१॥

अर्थ : बहुत प्रकार से राजा ने बेटियो को समझाया। स्त्रीधर्म और कुलरीति सिखायी और दास दासी बहुत से शुचि सेवक जो सीताजी को प्रिय थे उन्हे दिये।

व्याख्या : राजा विदेह ने स्वय पालकी पर चढने के बाद बेटियो को समझाया। यथा :

दो. सखी जायँगी सग सब, तव प्रिय दासी दास।
सब सुपास सब भाँति जनि मनको करो उदास ॥१॥
मिथिला से पश्चिम अवध मिले जुले दोउ देश।
समाचार सब दिन सुलभ, प्रेम अवधि अवधेश ॥२॥
गुरु गृहवास पुनीत जस, तियहि ससुर गृहवास।
गृह कारज निज कर करन, अगिन उपासन खास ॥३॥

इष्टदेव पतिदेव इक, सोई मन धन प्रान।
ताके नाते सकल प्रिय, सबही को सनमान ॥४॥

अवध जाइ तस आचरेउ, जस लखाइ तहँ रीति।
पालन पति कुल रीति को, यही सनातन नीति ॥५॥

इस भाँति नारिधर्म कुलरीति सिखाकर समझा बुझाकर विदा किया। जानकी जी प्रधान हैं। अतः उन्ही का नाम लेते हैं। यहाँ जानकी शब्द उपलक्षण है उससे सब बेटियो का ग्रहण है। तुरग रथ गज बाजि आदि पहिले भेज चुके हैं। अब बेटियो के साथ दासी दास और शुचि सेवक : जिन सपनेहु निज धर्म न डोले। जो उन लोगो को प्रिय थे उनके साथ भेज दिये। जे प्रिय सिय केरे मे शुकसारिका भी आगई।

सीय चलत ब्याकुल पुरवासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी॥
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा ॥२॥

अर्थ : सीताजी के चलते पुरवासी व्याकुल हो उठे। शुभमङ्गल की राशि शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण मन्त्री और समाज समेत महाराज पहुँचाने चले।

व्याख्या : जब पालकियाँ चली साथ मे शुचिसेवक दास दासियाँ चले तो देखकर पुरवासी विकल हो उठे। इतना प्रेम पुरवासियो का सीताजी पर है। वे जानते हैं कि जब से जानकी का जन्म हुआ तब से राजा का अभ्युदय होता ही चला जाता है। यथा : सब ते दिन दिन उदय जनक को जब ते जानकि जाई। इस विचार से भी अधिक प्रेम है।

बेटियो के आदर के लिए स्वयं महाराज जनक ब्राह्मण मन्त्रिमण्डल तथा समाज समेत पहुँचाने चले। जिस बनाव के साथ विश्वामित्रजी की अगवानी की थी। यथा : सग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर बरगुरु ग्याति। उसी बनाव के साथ पहुँचाने भी जा रहे हैं। वधुओ का अयोध्या को प्रस्थान है। अतः मङ्गलमय कल्याणमय अभिमतफलदातार सगुन हो रहे हैं।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे॥
दसरथ विप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे ॥३॥

अर्थ : समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियो ने रथ हाथी घोडे सजाये। महाराज दशरथ ने सब ब्राह्मणो को बुलाया और दान मान से उन्हे परिपूर्ण कर दिया।

व्याख्या : पालकी के साथ राजा जनक को पहुँचाने जाते देखकर बारात की ओर से बाजा बजा। बारातियो ने साथ जाने के लिए हाथी घोडे और रथ सजाये। यही समय है डोला के साथ बारात के हो जाने का। इधर महाराज दशरथ ने सारे मैथिल ब्राह्मणो को बुलाया और दान तथा सम्मान से उन्हे परिपूर्ण किया।

दान के साथ सम्मान परम आवश्यक है। क्योंकि असत्कृत और अवज्ञात दान तामस हो जाता है। यथा : असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। गी.।

चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भये नाना॥४॥

अर्थ : ब्राह्मणों के चरणकमलों की धूलि सिर पर रक्खी और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हो गये। तब गजानन का स्मरण करके प्रयाण किया : रवाना हुए। नाना प्रकार के मङ्गलमूल सगुन हुए।

व्याख्या : ब्राह्मणों के चरणों की धूलि विपत्तिरूपी घने अन्धकार के लिए सहस्र सूर्यों के समान है। चाहे हुए पदार्थों के देने के लिए तो साक्षात् कामधेनु हैं। अपार संसार समुद्र का तो मानो सेतु ही है। ऐसी ब्राह्मण चरणों की धूलि मुझे पवित्र करे : विपद्घनध्वान्तसहस्रभानव समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसार-समुद्रसेतवः पुनन्तु मा ब्राह्मणपादरेणव.। इस मन्त्र से ब्राह्मण पाद धूरि धारण की जाती है। महाराज ने विधान के साथ ब्राह्मणों की चरण धूलि सिर पर चढ़ायी और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए। तब भगवान् गजानन का स्मरण करके प्रयाण किया। क्योंकि गजानन विघ्नहर्त्ता मङ्गलकर्त्ता तथा प्रथम पूज्य हैं। प्रयाण करते ही नाना मङ्गल मूल शकुन हुए। यथा . जासु सफल मगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।

दो. सुर प्रसून बरषहिं हरषि, करहिं अपछरा गान।
चले अवध पति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान॥३३९॥

अर्थ देवता हर्षित होकर पुष्पवृष्टि करने लगे। अप्सराएँ गान करने लगी। अयोध्याधिपति अयोध्या को डङ्का देकर चले।

व्याख्या : बारात आने पर : सुमन बरषि सुर हनहिं निसाना। नाक नटी नाचहिं करि गाना : कहा था। अब बारात चलते समय हर्षित होकर देवताओं का फूल बरसाना और अप्सराओं का गान कहते हैं। महाराज अयोध्याधिपति जनकपुर चलते समय शख बजाकर चले थे। यथा : चले महीपति सख बजाई। अपने पुर चलते समय डङ्का देकर जाते हैं।

नृप करि बिनय महाजन फेरे। सादर सकल माँगने टेरे॥
भूषन बसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोषि ठाढे सब कीन्हे॥१॥

अर्थ : महाराज ने विनय करके महाजनों को लौटाया और आदर के साथ सब मगनों को बुलवाया। उन्हें अलङ्कार, वस्त्र, घोड़े और हाथी दिये और प्रेम से परिपुष्ट करके : अपने पैरों पर खड़ा कर दिया।

व्याख्या : महाजन का अर्थ जनसमुदाय भी है और प्रतिष्ठित पुरुष भी है। यहाँ पर जनसमुदाय के अर्थ में ही महाजन शब्द प्रयुक्त हुआ मालूम पड़ता है।

क्योंकि पहले कह आये हैं कि : दसरथ गवन सोहाय न काहू। महाराज दशरथ से सब प्रीति करने लग गये थे। उनका प्रस्थान सुनकर जनसमुदाय इकट्ठा हो गया। प्रतिष्ठित जन का महाराज जनक के समाज के साथ रहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। सो महाराज दशरथ ने सबसे विनय करके उनको लौटाया। परम उदार के यहाँ ही याचक का सत्कार सम्भव है। नहीं तो याचक का सत्कार कौन करता है? यथा : दीनदयाल दिवोइअ भावै जाचक सदा सोहाही। सो महाराज दशरथ ने सत्कार के साथ याचकों को बुलवाया। महाराज पहिले ब्राह्मणों को दान देते हैं तत्पश्चात् याचको का सत्कार करते हैं। अतः उन्हे कपडे, गहने, घोड़े, हाथी दिये और प्रेम से उन्हे पुष्ट किया। जिस वस्तु का उन्हे अभाव था उसकी पूर्ति की। उन्हे इस योग्य बना दिया कि वे अपने पैरो पर खड़े हो सकें। स्वयं अपना काम चला लें। याचकवृत्ति छोड़ दें।

बार बार विरदावलि भाखी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहही। जनक प्रेमवस फिरै न चहहीं॥२॥

अर्थ : बार बार स्तुतियाँ करते हुए रामजी को हृदय में रखकर सब फिरे। बार बार कोसलपति कह रहे हैं। पर प्रेमवश महाराज जनक लौटना नहीं चाहते।

व्याख्या : गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। गद्यपद्यमयी वाणी में राजा की स्तुति को विरुद कहते हैं। सो याचकों ने कृतज्ञता प्रकाश के लिए की। बार बार गद्यपद्यमयी वाणी मे राजा की स्तुति करके और रामजी को हृदय में रखकर सब लौटे। याचक लोग दीन हैं। रामजी दीनबन्धु हैं। यथा : जोह दीन निधारि कै पुकारे द्रवौ सो श्री भगवाना। वे उन्हें प्यारे हैं। अथवा उनके वे प्यारे हैं। अतः उनके हृदय मे रह गये। मंगनो के दोनो लोकों का अभाव पूरा हुआ। भूषन वसन वाजि गज से इस लोक का अभाव और रामजी के हृदय में रखने से परलोक का अभाव पूरा हुआ।

महाराज दशरथ का एक बार कहना यथेष्ट है। पर यहाँ एक बार कहने ही मान लेने से श्रद्धा मे न्यूनता सूचित होती है। एक बार कहने से वही लौट सकता है जो अनिच्छापूर्वक सेवा करता हो। यथा : बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुवर जाइ सयन तब कीन्हो। जनकजी प्रेम के वश में हैं। आज्ञा नहीं मानते चले ही जा रहे हैं। नियम का निर्वाह नही है। उनका जी फिरने का नहीं चाहता।

पुनि कह भूपति वचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आये॥
राउ बहोरि उतरि भये ठाढे। प्रेम प्रवाह विलोचन बाढ़े॥३॥

अर्थ : फिर राजा दशरथ ने सुहावने वचन कहे : राजन्! आप बहुत दूर आगये अब लौट जाइये। फिर महाराज दशरथ घोड़े से उतरकर खड़े हो गये। प्रेम का स्रोत नेत्रों मे बढ़ आया।

व्याख्या : राजा जनक को लौटने न देखकर चक्रवर्तीजी ने फिर कहा कि

व्यापक है। सन्देह उठता है कि व्यापक की इयत्ता भी कम से कम व्याप्त के परिमाण इतनी होगी। इसलिए ब्रह्म कहा। अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्। वह जगत् से भी बडा है। ब्रह्म का अर्थ ही बडा है। वह विज्ञाता है। ज्ञेय नही है। इसलिए अलख है। क्योकि विज्ञाता को कोई कैसे जाने विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली मे कहा है अलख अलख सब कोउ कहै अलखहिं लखा न कोइ। अलख लखा तिन सब लखा लखा अलख नहिं होइ। अब उनका स्वरूप कहते है। अविनाशी कहकर सत् कहा। तत्पश्चात् चिदानन्द कहते हैं। यथा . राम सच्चिदानदु दिनेसा। निर्गुण कहकर निर्विशेष कहा और गुणराशि कहकर जगन्मय कहा। यथा निर्गुण सगुण विषम समरूप। तथा विस्वरूप रघुवसमनि करहु वचन विस्वासु। लोक कल्पना वेद कर अग अग प्रति जासु।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहही। जो तिहुँ काल एकरस रहही॥४॥

अर्थ मन के साथ जिसे वाणी नही जानती और सभी अनुमान करनेवाले जिसपर तर्क नही कर सकते। जिसकी महिमा को निगम नेति कहकर निरूपण करता है और जो तीनो काल मे एकरस रहता है।

व्याख्या गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। जहाँ तक मन की दौड है वहाँ तक तो माया है। अत मन उसे नही जान सकता। जिस बात को मन चिन्तन करता है उसी को वाणी भी कहती है। अत जहाँ मन की पहुँच नही है वहाँ वाणी की पहुँच भी नही हो सकती। इसीलिए मन समेत जेहि जान न बानी कहा। अनुमान करनेवाले तर्क नही कर सकते कहने का भाव यह कि वह बुद्धि का विषय भी नही है। क्योकि परिच्छिन्न पदार्थ ही बुद्धिगम्य हो सकता है। अनादि अनन्त मे बुद्धि काम नही करती। यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीम। जिसे वेद भी नेति कहकर कहता है इदमित्थम् रूप से कुछ नही कहता। यथा अदृष्टमव्यवहार्यम-ग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसार प्रपञ्चोपशम शान्त शिवमद्वैत मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय। अथवा नेति नेति न स्थूल न सूक्ष्म कहकर बतलाता है। एक रस से वस्तुत परिच्छेदशून्य कहा। तिहुकाल एक रस से कालत परिच्छेदशून्य कहा और अद्वई से देशत परिच्छेदशून्य कहा।

दो नयन विषय मोकहुँ भयेउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भये ईसु अनुकूल॥३४१॥

अर्थ वही सब सुखो का मूल मेरे नयन का विषय हुआ है। शिवजी की अनुकूलता से जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है।

व्याख्या वह विषयी नयन का विषय हुआ। यह अघटित घटना उस अघटित घटना पटीयसी माया की करामात है। यथा सो अवतरिहि मोरि यह

माया। तथा : मायामानुषरूपिणो रघुवरो। वह सुखमूल है। विषयानन्द का भी मूलभूत वही ब्रह्मानन्द है। माया प्रेरक शिव की कृपा से जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है। यथा : इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे। भावार्थ यह कि शिवजी की कृपा से मुझे तुम्हारा दर्शन मिला। नहीं तो ब्रह्मदर्शन और किसी प्रकार से सम्भव नही। यथा : कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे।

सबहिं भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥
होइ सहस दस सारद सेखा। करहिं कल्प कोटिक भरि लेखा॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से मुझे बड़ाई दी। अपना भक्त जानकर अपना कर लिया। यदि दस सहस्र सारद शेष हों और करोड़ कल्प तक लेखा करें।

व्याख्या : जनकजी ने चक्रवर्तीजी से कहा : महाराज मोहि दीन्ह बड़ाई। क्योंकि चक्रवर्तीजी से बराबर का सम्बन्ध हुआ। परन्तु रामजी के साथ तो बड़े का सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसलिए उनसे कहते हैं : सबहि भाँति मोहि दीन्ह बड़ाई। मुझे अपना बड़ा बना लिया। तुम सदा दासों को बड़ाई देते हो। यथा : संतत दासन्ह देहु बड़ाई। सो मुझे भी भक्त जानकर इस सम्बन्ध से अपना कर लिया। श्वसुर दामाद का सम्बन्ध दृढ़ स्थापित हो गया।

सारदा ऊर्ध्वस्थित लोक की वक्ता और शेष अधःस्थित लोक के वक्ता हैं। स्वर्ग में महासुख है। पाताल विलस्वर्ग है। इसमें वहाँ से भी अधिक भोग है। मर्त्यलोक में ऐसा सुख कहाँ? अतः सुख की दृष्टि से स्वर्ग और पाताल में भाग्यवानो का निवास है। अतः वही के वक्ताओं को कहा। सो सारद और शेष एक ही एक हैं। यदि उनकी संख्या दस सहस्र हो अथवा ऊर्जित सुख के जानकार अत्युत्तम कोटि के वक्ताओं की संख्या भी अत्यधिक हो और वे कोटि कल्प लेखा करें। सारदा और शेष की आयु तीन लाख साठ हजार कल्प है। सो इनकी इतनी आयु बढ़े कि कोटि कल्प की हो जाय और वे यावज्जीवन लेखा करते ही रहे अर्थात् अत्यधिक समय तक लेखा करते रहें।

मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
मैं कछु कहउँ एक बल मोरे। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे॥२॥

अर्थ : मेरे भाग्य की और आप के गुणों की गाथा कहने से समाप्त नही हो सकती। मैं कुछ कहता हूँ मुझे एक बल है कि तुम अत्यन्त थोड़े से प्रेम पर रीझ जाते हो।

व्याख्या : फिर भी मेरे भाग्य की लेखा नहीं कर सकते और न आपकी गुणगाथा की लेखा हो सके। क्योंकि आपकी कृपा से ही मेरा भाग्य ऐसा हुआ। भाव यह कि सरकार की स्वरूपज्ञान होने से अपने भाग्य की बड़ाई की कल्पना कर रहे हैं। जलसीकर महिरज गनि जाँही। रघुपति गुन नहिं वरनि सिराही।

जिसने सगुण मूर्तिरूपी दूरवीक्षण यन्त्र से सरकार के स्वरूप का दर्शन किया है वही उनके गुणगण के आनन्त्य को समझ सकता है। राजा जनक कहते हैं कि योगादि यत्न का भरोसा नहीं। यथा : मुनि त्यागत योग भरोस सदा। बहुत थोड़े से स्नेह पर तुम्हारे रीझनेवाले स्वभाव का भरोसा है। इसीलिए मैं कुछ कहता हूँ। नहीं तो तुम्हारी महिमा को कहना ही उसे परिच्छिन्न करना है।

बार बार माँगउँ कर जोरे। मनु परिहरइ चरन जनि भोरे॥
सुनि वर वचन प्रेम जनु पोषे। पूरनकाम राम परितोषे॥३॥

अर्थ : बार बार हाथ जोड़कर वर माँगता हूँ कि मेरा मन चरणों को भूलकर भी न छोडे। प्रेम से पोषे हुए वर वचनों को सुनकर पूर्णकाम राम सन्तुष्ट हुए।

व्याख्या : मन परिहरै चरन जनि भोरे। यह बात क्रियासाध्य नहीं है। यह तो कृपासाध्य है। क्योंकि प्रेरयिता मन के तो तुम्हीं हो। यथा : केनेषितं पतति प्रेषित मनः। श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो मनो यत् वाचो ह वाच स(ं)उ प्राणस्य प्राणः। तुम्हीं प्राण के प्राण हो। यथा : प्राण प्राण के जीवन जीके। तुम्हारी ही प्रेरणा से मन मनन करता है। अत. यही वर हाथ जोड़कर बार बार माँगता हूँ कि मन को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि वह आपके चरणों को न छोड़े। पहिले प्रेम जनु जाये वचन कहा था। अब प्रेम जनु पोषे कहते हैं। पूर्णकाम का परितोष केवल प्रेम से होता है। सो सरकार परितुष्ट हुए। इससे वरदान देना कहा।

यह छठा गुणग्राम आर्द्रा नक्षत्र है। इसमे एक तारा चमकता है। आकार मणि सा है। यह जनककृत स्तुति है। फल है : जनक सिय राम प्रेम के। इसमें एक तारा ईश की अनुकूलता चमक रही है। यही चिन्तामणि है। इसी से सब सुलभ हुआ। बोले वचन प्रेम जनु जाये कहकर इस स्तुति का सियराम प्रेम का जनक होना सूचित कर दिया।

करि वरबिनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक वसिष्ठ सम जाने॥
विनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम मुनि आसिष दीन्ही॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ विनय करके श्वसुर का सम्मान किया। उन्हे पिता दशरथ तथा गुरु कौशिक और वसिष्ठ के समान जाना। फिर भरतजी से राजा ने बहुत विनती की और प्रेम से मिलकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : एवमस्तु नहीं कहा। बड़े के वरदान माँगने पर सरकार एवमस्तु नहीं कहते। विनय और सम्मान से अपना परितोष व्यक्त कर देते हैं। यहाँ ससुर सनमाने कहने का भाव यह कि जैसे दामाद श्वसुर का सम्मान करता है उसी भाँति सम्मान और विनय किया। सीताजी के पिता होने से पितासम महाविद्या सीताजी के दान देने से कौसिकसम। जिसका सहज विराग रूप मन हो उसके राज्य ग्रहण अथवा दारा ग्रहण का कोई कारण नहीं है। जामाता रूप मे रामजी की प्राप्ति की आशा से राज्य ग्रहण किया। जिस भाँति वसिष्ठजी ने यजमान रूप

से रामजी की प्राप्ति की आशा से पौरोहित्य स्वीकार किया था इसलिए वसिष्ठ सम जाना। अथवा उनकी कन्या को ग्रहण किया है इस सम्बन्ध से वे गुरु है। इसलिए : कौसिक वसिष्ठ सम जाना।

फिर कुशध्वज के बडे जामाता होने से भरतजी की बडी विनती की। भगवती माण्डवी सीताजी से छोटी तथा उर्मिला से वडी थी। इधर भरतजी रामजी से छोटे तथा लक्ष्मणजी से बडे थे। इसलिए रामजी के बाद भरतजी से मिले और आशीर्वाद दिया। सुपुप्ति से जगत् का आरम्भ है और भरतजी सुपुप्ति के विभु हैं। अतः व्यवहार से काम लिया। रामजी में ब्रह्मभाव होने से उन्हे आशीर्वाद नही दिया था : इन्हे दिया।

दो. मिले लखन रिपुसूदनहि, दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेम वस, फिरि फिरि नावहिं सीस ॥३४२॥

अर्थ : लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी से मिले और राजा ने आशीर्वाद दिया। परस्पर प्रेमवश हो गये। घूम घूमकर सिर नवा रहे है।

व्याख्या . लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से प्रेम से मिलकर राजा ने आशीर्वाद दिये। जाग्रत् और स्वप्न मे स्पष्ट जगत् का भान होने से उनके विभुओ के साथ केवल व्यवहार से काम लिया। जनकजी प्रेमवश उन्हे देखते हैं और वे प्रेमवश घूम घूमकर उन्हे प्रणाम करते है। अथवा फिरि फिरि का अर्थ वार वार है। प्रेमवश उन्हे वार वार प्रणाम करते हैं।

वार वार करि विनय बडाई। रघुपति चले सग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्हि लाई ॥१॥

अर्थ · वार वार विनय और बडाई करके रामजी सव भाइयो के साथ चले। जनकजी ने जाकर विश्वामित्र का चरण पकडा और चरण की धूलि को सिर और आँखो मे लगाया।

व्याख्या : वार वार जनकजी ने हाथ जोडे थे। यथा : बार बार माँगउ करजोरे। अत वारबार विनय और स्तुति करके रामजी सव भाइयो के साथ चले। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के सवारी से उतरने पर रामजी भाइयो के सहित सवारी पर से उतरकर वहाँ आगये थे। अब भाइयों सहित सवारी पर सवार होने के लिए चले। सास से विदा होने पर भाइन्ह सहित चले रघुराई लिखा था। अब श्वसुर से विदा होने पर भी वही लिखते हैं . रघुपति चले सग सब भाई।

महाराज के ठहर जाने पर मुनिमण्डली वहाँ आगई। चारो भाई रामजी आदि आगये। पर विश्वामित्रजी नही आये। जानते थे कि जनक कृतज्ञता प्रकाश करेंगे। पर यह वे नही चाहते थे। कोप प्रकाश करते हुए कृपा करने का उनका स्वभाव है। जिसमे कोई यह न कहे कि विश्वामित्रजी की कृपा से कल्याण हुआ। देखने मे विश्व के अमित्र पर वास्तव मे विश्व के मित्र थे। पर कृतज्ञ हृदय अपने

कल्याण करनेवाले को खोज लेता है। जनकजी ने जाकर उनके चरण पकड लिये। जामाताओ की प्राप्ति इन्ही चरणा के कारण हुई। अत चरणरेणु को माथे पर रक्खा और समस्त सुख मूल रामजी उनके नयन विपय भी उसी चरणरेणु के प्रसाद से हुए थे। इसलिए उसे आँखो मे लगाया।

सुनु मुनीस बर दरसन तोरे। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे ॥
जो सुख सुजस लोकपति चहही। करत मनोरथ सकुचत अहही ॥२॥

अर्थ हे मुनीश्वर ! सुनिये। आपके दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नही है। यह मेरा विश्वास है। जिस सुख और सुयश को लोकपाल चाहते हैं और मनोरथ करते समय उन्हे सङ्कोच होता है।

व्याख्या जब से विश्वामित्रजी का आगमन हुआ है। तभी से सब कार्य सिद्धि हो रही है। जनकराज को इसका अनुभव है। पहले भी कहा था यह सब सुख मुनिराज तव कृपा कटाक्ष प्रभाउ। आज भी कह रहे हैं नयन विपय मोकहँ भयउ सो समस्त सुखमूल। इसलिए कहते हैं कि आपके दर्शन देने पर कुछ भी दुर्लभ नही रह जाता। ब्रह्मदर्शन भी सुलभ हुआ और दुर्लभ सुख सुयश भी सुलभ हुआ। सुख यथा इनहि विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। सुयश यथा सा पद पखारत भाग्य भाजन जनक जय जय सब कहै। यह सुख और यश लोकपत्ति को प्राप्त नही। उन्हे इस सुख और सुयश का मनोरथ करने मे सङ्कोच होता है कि मेरा इतना भाग्य कहा कि यह सुख और सुयश मुझे प्राप्त हो। प्रकाश भी नही करते कि लोग हँसेगे कि किस करणी पर यह ऐसा मनोरथ करते हैं।

सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी ॥
कीन्ह विनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिपा पाई ॥३॥

अर्थ हे स्वामी ! जो सुख और सुयश मुझे सुलभ हुआ। ये सब सिद्धि आपके दर्शन की अनुगामिनी हैं। बार बार सिर नवाकर विनय किया और आशीर्वाद पाकर राजा लौटे।

व्याख्या इस सुख सुयश और ब्रह्मदर्शन रूपी सिद्धियो के लिए जिनके प्राप्त्यर्थ लोकपाल तरसते है मुझ कुछ करना न पडा। आपके दर्शन के पीछे पीछे चली आईं। इस प्रकार से बार बार चरणो मे सिर नवाकर विनय किया। तब मुनिजी ने अनेक आशीर्वाद दिये। यहाँ आशिपा बहुवचन है। उन्हे पाकर राजा जनक लौट गये।

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥४॥

अर्थ डङ्का दकर बारात चली। छोटे बडे सब समाज का समाज मुदित था। रामजी को देखकर नर नारी नेत्रो का फल पाकर सुखी होते थे।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी के रुक जाने से सारी बारात रुक गई। डङ्का बजना बन्द हो गया। महाराज जनक के लौटने पर ही चक्रवर्तीजी सवार हुए। बारात चल पडी। डङ्का बजने लगा। जनकजी के विनय पर सारी बारात प्रसन्न है। अथवा सबको घर चलने की खुशी है। बारात आगे बढी। नगर छूट गया। ग्राम मिले। विश्वामित्रजी ने कहा था : करहु सफल सबके नयन सुदर वदन देखाय। सो नगरवासियो के तो नयन सुफल हो चुके। अब ग्रामवासियो के हो रहे हैं।

दो. बीच बीच वर वास करि, मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥३४३॥

अर्थ : बीच बीच मे सुन्दर पडाव करती हुई और रास्ते के लोगो को सुख देती हुई बारात अयोध्या के समीप पुनीत दिन मे जा पहुँची।

व्याख्या · बीच बीच बरवास बनाए। सुरपुर सरिस सपदा छाए। उन सुन्दर पडावो पर टिकती हुई मार्ग के निवासियो को नयनफल रूपी सुख देती हुई अवध के समीप पहुँची। अयोध्या से चलकर बारात शुभ लग्न में जनकपुर पहुँची थी। यथा : प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई। और अब जनकपुर लौटकर अयोध्या के समीप भी शुभ दिन को पहुँची।

हने निसान पनव वर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे ॥
झाँझि बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई ॥१॥

अर्थ · डङ्के पर चोट पडी। श्रेष्ठ ढोल बजने लगे। भेरी और शख की ध्वनि हुई। घोडे हाथी गरजने लगे। झाँझ, बीरव, सुन्दर डिंडिमी और शहनाई सरस राग से बजने लगे।

व्याख्या : नगर के सन्निकट आते ही बारात का उत्साह बढा। अतः सब बाजे बज उठे। इस समय बाजा बजना नगरवासियो को सचेत करना है कि बारात आगई। हने निसान : निसान के लिए चोट पडना लिखते हैं। यथा : परा निसानन्हि घाऊ। डङ्के पर बलपूर्वक प्रहार किया जाता है। तभी वह बजता है और ध्वनि भी उसकी बडी गम्भीर और दूर तक पहुँचानेवाली होती है। सो निशान पणव भेरी और शख बजे। ये चार बाजे बारात के आगे बज रहे थे। बारात के नगर निकट आने से सब बाजो का बजना कहते है। नही तो रास्ते भर केवल डङ्का बज रहा था। यथा चले बजाइ निसान। शङ्ख के शब्द से बजानेवाले की पहिचान होती है। यथा · शखान् दध्मु पृथक् पृथक्। शख तो स्वयं राजा तथा प्रधान वीरलोग समय विशेष पर बजाते है। किन्तु और बाजे बजनिये बजाते हैं। महाराज तथा सरदार लोग हाथी पर है। अत शङ्ख का बजना हाथी घोडो के आगे ही लिखते हैं। बाजे के शब्द सुनकर हाथी गरजे, घोडे हिनहिनाने लगे। घोडे, हाथी और रथ के बाद झाँझ, बिरव और डिंडिमी का शब्द कहते हैं। डिंडिमी और बिरव कौन सा बाजा है इसे अब लोग नही जानते। सम्भवत डिंडिमी

डमरू और विरव नरसिहा को यहते हैं। क्योकि नरसिहा मे विशेष रव होता है। ये तीन वाजे ब्राह्मणो और वन्दीजन के आगे वज रहे हैं। शहनाई नववधुओ के डोला के आगे बज रही है। चलते समय वाजो के नाम और क्रम नही कहे। क्योकि पुर और व्योम दोनो जगह बज रहे थे। व्योम के वाजाओ का नाम नही मालूम। अत पुर के वाजाओ के भी नाम नही दिये।

पुर जन आवत अकनि वराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥२॥

अर्थ पुरजन वारात का आना सुनकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन लोगो को पुलक होने लगा। उन्होने अपने अपने सुन्दर घरो को सजा डाला। तत्पश्चात् बाजार, मार्ग, चौराहो और पुरद्वार को सजाया।

व्याख्या बाजा सुनकर तथा शखध्वनियो को पहिचान कर बारात का आना जान लिया। सव प्रसन्न हो उठे। इससे प्रजा का राजा पर अनुराग कहा। सात्त्विक भाव से पुलकावली हो उठी। अथवा भीतर मोद है। वाहर पुलकावली है। यथा 'देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होइ न केही। पहिले सबो ने अपना अपना घर साजा। तब बाजार साजा गया। तब सडक। तब चौमुहानियाँ सजायी गई और तब पुरद्वार सजाया जाने लगा। यह स्वाभाविक क्रम है। दिखौवा उत्साह के पहिले फाटक ही सजाया जाता है और सजावट बाजार तक ही रह जाती है। घर तक पहुँचती ही नही।

गली सकल अरगजा सिंचाई। जहँ तहँ चौके चारु पुराई ॥
वना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक विताना ॥३॥

अर्थ सब गलियो मे अरगजा का छिडकाव हुआ। सब घरो मे चौके पूरे गये। बाजार ऐसा सजाया गया कि उसका वखान नही हो सकता। तोरण बाँधे गये। ध्वजा, पताका लगाये गये। मण्डप सजाया गया।

व्याख्या अयोध्या मे गलियाँ सदा सुगन्ध से सीची जाती थी। यथा. *सतत रहहि सुगध सिचाई। सो आज अरगजा से सीची गईं। इस भाँति* रास्ते सँवारे गये। मकान के दरवाजो पर चौक पूरे गये। अत जहँ तहँ लिखते हैं। इस भाँति घर सजाये गये। वाजार मे ध्वजा पताकाएँ लगायी गईं। वह सब सजावट कही नही जाती। क्योकि ऐसे वितान बनाये कि वारात उसके नीचे से जाय। जाडा बिताकर बारात आ रही है। धूप से बचाव के लिए तथा बहुओ की अगवानी के लिए बाजार और चौराहो मे वितान तने हुए हैं।

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदब तमाला ॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलवाल कल करनी ॥४॥

अर्थ फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसरी, कदम्ब और तमाल के

पेड लगाये गये। वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष धरती को छू रहे थे। उनके थाले मणिमय सुन्दर कारीगरी से बनाये गये थे।

व्याख्या : पूगफल, रसाल, बकुल, तमाल ये रोपे नही जा सकते। अतः सिद्ध है कि ये सब भी जनकपुर मे कदली खम्भ की भाँति बनावटी थे। फल भारन नमि विटप सब रहे भूमि नियराइ। कारीगरी की महीनकारी कहते है कि वृक्षो मे फल लगाये गये और पेड़ो को ऐसा बनाया मानो वे फल के बोझ से झुके पडते है। जब आलबाल की बनावट मणिमय थी तब वृक्षो के मणिमय होने मे सन्देह ही क्या है ? देहलीदीपकन्याय से मणिमय शब्द का प्रयोग है। उसका अन्वय सुभगतरु के साथ तथा आलबाल के साथ भी होगा।

दो. विविध भाँति मंगल कलस, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब, रघुबर पुरी निहारि ॥३४४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मङ्गल कलश घर घर सँवारकर रचे थे रामजी की पुरी देखकर ब्रह्मादि देवता सिहाने लगे।

व्याख्या : घर घर मङ्गल कलश भी रचे गये। जनकपुर मे तो मन बिरचि कर भूल। पर यहाँ तो सिहाने लगे। सुरराज तो सदा से सिहाते थे। यथा 'अवधराज सुरराज सिहाही। दसरथ धन सुनि धनद लजाही। आज ब्रह्मदेव भी सिहाने लगे कि ऐसी रचना मेरे लोक मे भी नही है। जनकपुर मे देवताओ को शिवजी ने समझाया था 'जनि आचरज भुलाहु। हृदय बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु। यह अयोध्या तो रामजी की पुरी है। यथा : पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरखे नगर बिलोकि सुहावन। यहाँ का क्या कहना है ?

इसी से भरद्वाज मुनि ने भरतजी के सत्कार मे : बिधि बिस्मयदायक बिभव मुनिवर तपबल कीन्ह। वे समझते थे कि इतना सुख तो भरत के घर ही था। उतना बिना हुए भरत की मेहमानदारी कैसे होगी। अस कहि रचे रुचिर गृह नाना। जो बिलोकि बिलखाहिं बिमाना। भोग बिभूति भूति भरि राखे। देखत जिन्हहिं अमर अभिलाषे। परन्तु इससे भरत को अभिलाषा नही हो सकती।

भूप भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा ॥
मगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ॥१॥

अर्थ : राजगृह भी उस समय ऐसा शोभित हुआ कि उसकी रचना देखकर कामदेव का मन मोहित होता था। मङ्गल, सगुन, सुन्दरता, ऋद्धि सिद्धि, सुख और सुहाई सम्पदा :

व्याख्या : नृप भवन मे सबसे बडी तैयारी है। कामदेव मोह गये कि यही रह जाऊँ। जनकपुर मे . बसत ऋतु रही लोभाई। यहाँ स्वय काम मोहित होकर ठहरे हुए हैं। काम को देखकर सब मोहित होते हैं। काम किसी को देखकर मोहित नही होता। परन्तु : भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना।

सो यहाँ विश्व तो मोहित होना ही था। काम भी मोहित हुए। १ मङ्गल। यथा: हने निसान पनव वर बाज। मग्ग राग बाजहिं सहनाई। २ सगुन। यथा: मुदित सकल पुलकावलि गाता। मन का प्रसन्न होना सगुन है। यथा होहिं सगुन सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। ३ मनोहरताई। यथा निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुरद्वारे। ४ ऋद्धि। यथा गली सकल अरगजा सिंचाई। ५ सिद्धि। यथा सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुवरपुरी निहारि। ६ सुग। ७ सपदा आगे कहेंगे।

जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह आए ॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही ॥२॥

अर्थ मानो सहज सुन्दर उत्साह शरीर धारण करके दशरथजी के घर आये हैं। रामजी और वैदेहीजी को देखने के लिए कहो किसे लालसा नहीं होती।

व्याख्या उछाहो को शरीर नही है। यदि वे शरीर धारण करें तो ये हा सात शरीर धारण कर सकते है। बरनब राम बिवाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू। लोगों को तो उमग उठा ही था। उछाहों को भी उठा। मानो सब शरीर धारण करके दशरथ के घर आगये। आने का कारण कहते हैं कि उछाहो को भी राम वैदेही के दर्शन की लालसा हुई। रामजी की शोभा देखी थी। सीताजी की सुनी थी। सो युगलमूर्ति की शोभा देखने आये। जब सभी को दर्शन की लालसा है तो उछाहो को भी क्यो न हो।

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छवि निदरहिं मदन बिलासिनि ॥
सकल सुमगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु वेष भारती ॥३॥

अर्थ झुण्ड की झुण्ड सुहागिनी स्त्रियाँ मिलकर चली। अपनी छवि से काम की स्त्री रति का निरादर करती थी। सब सुमङ्गल आरती सजे हुए थी और मङ्गलगान करती थी। जैसे अनेक रूप मे सरस्वती हों।

व्याख्या जनकपुर की स्त्रियाँ निज सरूप रति मान विमोचनि थी। उनसे रति का मान टूटता था। इनकी शाभा से रति का निरादर हो रहा है। वे करहिं गान कलकठ लजाही और ये तो ऐसा गान करती हैं मानो भगवती सरस्वती साक्षात् अनेक वेषो को धारण करके गान करती हों। इसस रूप और सङ्गीत नैपुण्य का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। श्रीरामजानकी के लिए आरती सजे हुए है।

भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुख सोई ॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी ॥४॥

अर्थ राजगृह मे कोलाहल हो रहा है। उस समय का सुख वर्णन नही हो सकता। कौसल्या आदि रामजी की माताएँ प्रेम के वश मे होकर शरीर की सुध बुध भूली हुई हैं।

व्याख्या : नदी के उमग के समय बडा शब्द होता है। यहाँ उछाह की नदी बढाव पर है। इसलिए कोलाहल हो रहा है। इस समय का सुख वर्णन नही किया जा सकता। इसलिए : सोइ सुभ उमग सुखद सब काहू कहा।

कौसल्यादि राम महतारी : कहने का भाव है कि सब माताएँ-रामजी के लिए कौसल्याजी के समान ही हैं। किसी को विमाता होने की भावना भी नही है। यथा . कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाव पिआरी। उन लोगो को ऐसा प्रेम उमगा है कि हर्ष के वश शरीर की दशा भूली हुई हैं।

दो. दिए दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ॥३४५॥

अर्थ . गणेशजी और महादेवजी की पूजा करके उन्होने ब्राह्मणो को बहुत दान दिया और ऐसी प्रसन्न हैं जैसे परम दरिद्र चारा पदार्थो को पाकर प्रसन्न हो।

व्याख्या : इस कुल मे दान देने से कोई अघाता नही। वहाँ विवाह के समय गौरी गणपति की पूजा हुई। यथा · आचार करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावही। यहाँ बारात के आने का समाचार पाकर गणेश पुरारि की पूजा हो रही है। ब्याह निश्चय का समाचार पाकर : रानिन्ह सब महिदेव बोलाये। दिये दान आनद समेता। ब्याह हो जाने और बारात लौटने के समाचार पर · दिये दान बिप्रन बिपुल। लोग मुदित है। माताएँ प्रमुदित हैं। चारो भाइयो के ब्याह का समाचार लग चुका है। परम दरिद्र कहने का भाव यह कि इस बात की आशा ही नही थी कि रामजी के अनुरूप बहू मिल सकेगी। सो सुना है कि चारो बेटो के अनुरूप बहुएँ मिली हैं। यथा : अनुरूप बर दुलहिन परसपर लखि मुदित हिय हरखही। अत· मोद प्रमोद की सीमा नही है। इसीलिए कवि ने परम दरिद्र के चार पदार्थ की प्राप्ति के प्रमोद से उपमा दी है।

मोद प्रमोद बिबस सब माता। चलहि न चरन सिथिल भये गाता ॥
राम दरस हित अति अनुरागी। परिछन साजु सजन सब लागी ॥१॥

अर्थ : सब माताएँ मोद प्रमोद के विवश हैं। शरीर शिथिल हो गया है। पैर चलते नही। रामजी के दर्शन के लिए अति अनुराग है। सब परिछन का सामान साजने लगी।

व्याख्या : इष्टदर्शन को मोद और इष्टभोग को प्रमोद कहते हैं। पहिले कहा था : प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी। स्मरण आने पर बहुत दान दिया। फिर भी मोद प्रमोद विवश हैं। अतः शरीर शिथिल हो गया। चलना चाहती है। पैर काम नही देते। पहिले ज्ञानेन्द्रियो का अपाटव कहा था। अब कर्मेन्द्रियो का अपाटव कह रहे हैं। फिर भी रामजी के दर्शन के लिए अत्यन्त अनुराग है। शरीर और मन की ऐसी अवस्था मे भी स्वय परिछन का साज सजने लगी। सास का परिछन हो चुका है।

माता का परिछन बाकी है। बारात विदा करते समय भी परिछन नही कर सकी थी। रामजी थे ही नही। शेष तीना बेटा के ब्याह का कोई पता हो नही था।

विविध विधान बाजने बाजे। मगल मुदित सुमित्रा साजे ॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मगल मूला ॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार के बाजे बजे। सुमित्राजी ने प्रसन्न होकर मङ्गल साजा। हल्दी, दूर्वा, दधि, पल्लव, फूल, पान, सुपारी मङ्गलमूल द्रव्य।

व्याख्या इधर घरपर भी बाजे बजने लगे। किसी की आज्ञा की आवश्यकता नही। बजनिया आपही समय देखकर बाजे बजाने लगे। प्रसन्न होकर महारानी सुमित्रा मङ्गल साज सजने लगी। यहा चौदह मङ्गल द्रव्य गिनाये गये है। इसमे से पहिले सप्तक का मङ्गलमूल कहा। महारानी सुमित्रा मङ्गल साज मे बडी सावधान है। पहिले भी चौके चारु सुमित्रा पूरी।

अक्षत अकुर रोचन लाजा। मजुल मजरि तुलसि बिराजा ॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड बनाए ॥३॥

अर्थ अक्षत, अँखुए, गोरोचन, लावा, सुन्दर मञ्जरी और तुलसी शोभित हुई। सोने के घडे रँगे हुए ऐसी शोभा दे रहे थे मानो कामरूपी पक्षी ने सकुचित होकर घोसले बनाये हो।

व्याख्या दूसरे द्रव्य सप्तक को शोभायमान कहते है। सोने के घडे स्वभाव से ही सुन्दर है। तिसपर वे रग दिये गय है उनकी शोभा ऐसी हो रही है मानो कामदेव रूपी पक्षी का घोसला है। रचना देखकर कामदेव के मन का मोहना कहा है। परन्तु उसके रहने के लिए स्थान नही है। वह अपमान सहकर भी रहना चाहता है। बारात मे मानो वह रामजी के घोडे के वेष मे था। यथा जनु बाजि वेष बनाइ मनसिज राम हित अति सोहई। फिर परिछन म गति रूप से था। यथा चाल बिलोकि कामगज लाजहि। विवाह के समय मानो नर रूप हो गया। यथा मनहु मदन रति धरि बहुरूपा। देखहिं राम बिवाहु अनूपा। अब यहाँ स्थिर उत्सव होगा। अत बसना चाहता है। सो मानो छुहे पुरट घट ही उसके घोसले हैं। वह सङ्कोच से अपने रूप से नही रहना चाहता और अन्त पुर मे रहना ठहरा। इसलिए मानो उसने पक्षी का रूप धारण कर लिया। इसलिए घोसले की आवश्यकता पड गई। घोसला नीड कहने से ही काम का पक्षी रूप धारण करना लक्षित होता है।

सगुन सुगध न जाहि बखानी। मगल सकल सजहिं सब रानी ॥
रची आरती बहुत विधाना। मुदित करहि कल मगल गाना ॥४॥

अर्थ और सगुन सुगन्धित द्रव्य जिनका वर्णन नही हो सकता। सब रानियाँ मङ्गल सजने लगी। बहुत विधान से आरती की रचना करती थी और प्रसन्न होकर मङ्गल गान करती थी।

व्याख्या अब चौदहवाँ मङ्गल द्रव्य कहते हैं। सगुन सुगन्ध अर्थात् कस्तूरी चन्दन आदि। सुगन्धित तैल भी होते हैं। पर वे शुभ नही है। इस प्रकार महारानी सुमित्रा ने मङ्गल साज सजा। इन्हे मङ्गल साज करते देखकर महारानी कौसल्या तथा महारानी कैकेयी भी मङ्गल साज साजने लगी। आरती के साजने के वहुत विधान हैं। सो सव विधान कर रही हैं और प्रसनता से सुन्दर गान भी करती जाती हैं।

दो कनक थार भरि मगलन्हि, कमल करन्हि लिएँ मात।
चली मुदित परिछनि करन, पुलक पल्लवित गात ॥३४६॥

अर्थ मङ्गल द्रव्यो से सोने के थाला को भरकर माताओ ने करकमलो म लिया और प्रसन्न होकर परिछन करने चली। उनके शरीर मे पुलकावली छा गई थी।

व्याख्या कमल ऐसे सुन्दर कोमल हाथो म सोने के भारी थार स्वर्णकलश सहित मङ्गल द्रव्य से भरे लिये हुए माताएँ चली। उन्हे आनन्द के वेग म वे थार भारी नही मालूम पडते। थकती नही हैं। मुदित हैं। इस भाँति परिछन करने चली। पुत्रो का पुत्रवधुओ के सहित परिछन करना है। इस आनन्द के कारण पुलकावली से शरीर पल्लवित हो रहा है।

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमडु जनु ठयऊ ॥
सुरतरु सुमन माल सुर वरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं ॥१॥

अर्थ धूप के धूएँ से आकाश काला पड गया। मानो सावन के मेघो की घटा घिर आई। कल्पवृक्ष के फूलो की माला की वर्षा देवताओ ने की। मानो वकपक्ति मन को खैंचे लती है।

व्याख्या मानस उमगा तो कविता नदी चली। राम विवाह म वही नदी उमगी। परन्तु जवतक ऊपर से आमद न हो तवतक उस उमग की शोभा पूरी नही। रामचरित्र मान म जहाँ जहाँ उमग है वह इसी उमग का अश है। अब ऊपर की आमद कहते हैं। जन्मकाल म धूप धूम स अधियारी छा गई थी। इस समय धूपधूम के वादल छा गये। सो भी सावन के। सावन के बादल बडे सोहावने होते हैं प्रवेश क समय वादल घिर आये थे। उसम जाकर जो धूप धूम मिला तो घनघमण्ड सा प्रतीत होने लगा।

इस समय देवता सुरतरु सुमन नही वरसाते। सुरतरु सुमन की मालाओ की वर्षा कर रहे हैं। व मालाएँ जव आकाश से छूटी तो ववपक्ति सी मालूम होने लगी। वादल की श्यामता में श्वेत वकपक्तियो की बडी शोभा होती है। वैसी ही शोभा सुरतरु सुमन के मालाओ की हुई।

मजुल मनिमय वदनिवारे। मनहु पाकरिपु चाप सँवारे ॥
प्रगटहिं दुरहिं अटन्ह पग भामिनि। चारु चपल जनु दमकहिं दामिनि ॥२॥

अर्थ सुन्दर मणिया के वन्दनवार मानो इन्द्रधनुष सँवारे गये हैं। अटारियो पर सुन्दर और चपल स्त्रियाँ प्रकट होती है और छिप जाती हैं। मानो बिजली चमक रही है।

व्याख्या इस समय की उपमा कवि पावस स दे रहे हैं। बादल कहा। बकपत्ति कहा। अब इन्द्रधनुष कह रहे है कि मणिमय वन्दनवार जो नगर मे बाँधे गये हैं वे इन्द्रधनुष की शोभा दे रहे हैं। द्वार के ऊपर छोटे छोटे वन्दनवार नही हैं। सतमहल के ऊपर बडे भारी भारी मणि के वन्दनवार बाँधे गये हैं।

अटारियो के ऊपर भामिनीगण बारात की शोभा देखने के लिए चढ गई हैं। सो प्रकट हो जाती है। परिचित को देखकर शीघ्रता से छिप जाती है। भामिनी हैं। उनका वर्ण ही चमकीला है। उनकी चपलता की दामिनी के दमकने से उपमा दी। सावन का मध है। बिजली चारो आर चमक रही है।

दुदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा ॥
सुर सुगध सुचि बरषहि बारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी ॥३॥

अथ दुन्दुभी की ध्वनि मेघ का घोर गर्जन है। याचक पपीहा मेढक और मोर हैं। देवता शुद्ध सुगन्धित जल बरसा रहे है। पुर के नर नारी धान की भाँति सुखी हैं।

व्याख्या डङ्का का घोर शब्द हो रहा है। वही मानो मेघ का घोर गर्जन है। याचक लोग चातक दादुर और मोर हैं। उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन प्रकार क याचक है। उत्तम तो चातक से हैं। जो रामजी की निछावर लते हैं। सो भी जो महाराज या महारानियो के हाथ से मिल। धरती पर जो गिरा उसे नही लते। यथा राम निछावर लन को हठि होत भिखारी। बहुरि देत तेहि देखिये मानहु धनधारी। दूसर मध्य कोटि क दादुर हैं। इनकी जीविका ही याचना है। ये धरती पर गिरा भी लते हैं। यथा बगरे नगर निछावर मनिगन ज्यौ जुवार जवधान। तीसरे निकृष्ट मनमलिन याचक है। यथा मुख मीठ मानसमलिन कोकिल मोर चकोर। सुजस धवल चातक नवल रह्यौ भुवनभरि तोर। इस समय तीनो प्रसन्न होकर बोल रह है। पावस म इन तीनो का बोलना वर्णन किया जाता है। सचमुच जल भी बरस रहा है। इसे पुरजन रूपो धान सुख मान रहे हैं।

समय जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रवेसु रघुकुलमनि कीन्हा ॥
सुमिरि सभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा ॥४॥

अर्थ समय जानकर मुनिजी ने आज्ञा दी। तब रघुकुलमणि ने शिव पावती और गणश का स्मरण करके समाज सहित प्रसन्न होकर पुर म प्रवेश किया।

व्याख्या भाव यह कि बारात ठहर गई थी। तैयारी के साथ पुर मे प्रवेश करना ह। अत उसके लिए समय चाहिए। तब स शुभ लग्न भी आगइ। वसिष्ठजी

ने शुभ समय जानकर प्रवेश की आज्ञा दी। व्याह के बाद दस दिन के भीतर वधूप्रवेश के लिए मुहूर्त नही देखा जाता। यहाँ तो कितने दिन बारात जनकपुर मे ही ठहरी रही। अत वधूप्रवेश के लिए मुहूर्त की आवश्यकता पडी। समयानुकूल महाराज दशरथ ने पुत्र कलत्र सहित शिवजी का स्मरण किया और गुरुजी की आज्ञा पाकर हर्षित हो पुर मे प्रवेश किया।

दो. होहि सगुन बरषहि सुमन, सुर दुदुभी बजाइ।
विबुध वधू नाचहि मुदित, मंजुल मंगल गाइ ॥३४७॥

अर्थ : सगुन हो रहा है। देवता दुन्दुभी वजाकर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। देवताओ की वहुएँ प्रसन्न होकर सुमङ्गल गान करके नृत्य कर रही है।

व्याख्या : फिर सगुन सब नाचे। यथा : सुनि असि व्याह सगुन सव नाचे। अव कीन्हे विरचि हम साँचे। महाराज के चाहते ही आकाश से सुमनवृष्टि और देववधुओ का नाचना गाना कहते है। देवता लोग दुन्दुभी वजाकर सुमनवृष्टि करते है। पुर मे वधू प्रवेश है। वहाँ सुरतरुसुमनमाल की वर्षा हो रही है। जयमाल के समय : नाचहि गावहि विबुध वधूटी। अव वधूप्रवेश का समय है तो विबुध वधू कहते हैं। वे वधूटियो से वड़ी हैं।

मागध सूत वंदि नट नागर। गावहिं जसु तिहुँ लोक उजागर ॥
जय धुनि विमल वेद वर वानी। दस दिसि सुनिय सुमंगल सानी ॥१॥

अर्थ : तीनो लोक मे प्रकाशित यश का गान मागध सूत वन्दी और नागर नट कर रहे हैं। जयध्वनि और वेद की निर्मल वाणी मङ्गल से सनी हुई दशो दिशाओ मे सुनाई देती है।

व्याख्या : क्षत्रिय यशोधन होते हैं। महाराज दशरथ का यश तीनो लोक मे प्रकाशित है। अतः वे क्षत्रियो मे वड़े धनी हैं। उनका यशोगान मागध सूत वन्दी और नागरनट कर रहे हैं। पर इन लोगो के गान मे वडा भेद है। मागध वशप्रशसक हैं। वश की प्रशसा करना ही इनका गान है। सूत पौराणिक हैं। वे पुराण की गाथा से राजाओ के पूर्व पुरुषो के चरित कहते हैं। उनका पुराण के वचनो का पठन ही गान है। वन्दीजन प्रस्ताव के सदृश उक्ति करनेवाले प्रशस्ति का पाठ करते हैं। उनका प्रशस्ति पाठन ही गान है। पर नागरनट का गान ही सङ्गीत शास्त्र के अनुसार होता है। सङ्गीत मे गान, वाद्य और नृत्य तीनो का अन्तर्भाव है। इसलिए उनका नृत्यसमाज रहता है। वे जो कुछ गान करते हैं वह सुर, लय, ताल, मूर्छना से युक्त होता है। अत. इन सवका गान एक साथ नही हो सकता। ये सब लोग अलग अलग गान कर रहे हैं। कौन कहाँ गान कर रहा है यह आगे कहा जायगा। यहाँ बारात का कोलाहल वर्णन के लिए जितने प्रकार के शब्द होते थे सबको एक साथ गिना दिया।

प्रजावर्ग की ओर से महाराज के प्रवेश के समय जय जयकार हुआ। जिस

क्रम से बारात चली थी उस क्रम से नगर मे प्रवेश नही हो रहा है। प्रवेश मे ब्राह्मणसमाज के आगे आगे वेदध्वनि करता जा रहा है। जो ब्राह्मण बारात मे नही गये थे। उन्होने घर पर जहाँ थे वही से स्वस्त्ययन आरम्भ कर दिया। ऊपर से देवताओ ने जय जयकार तथा देवर्षियो ने आशीर्वादात्मक मन्त्र पढे। इसलिए कहते है कि सुमङ्गल सानी वेद वाणी और जय ध्वनि दशो दिशाओ से सुनाई पड रही है।

विपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥
बने बराती बरनि न जाही। महा मुदित मन सुख न समाही ॥२॥

अर्थ बहुत से बाजे बजने लगे। आकाश मे देवता और नगर मे लोग प्रेम मे मग्न हो गये। बाराती ऐसे बने ठने हैं कि वर्णन नही हो सकता। वे ऐसे प्रसन्न है कि सुख समा नही रहा है।

व्याख्या अन्त पुर के द्वार पर अलग बाजे बज रहे हैं। बारात मे अलग बाजे बज रहे हैं। प्रजाओ की ओर से भी बाजो की व्यवस्था है। ऊपर से देवताओ ने बाजे बजाये। क्योकि आकाश मे देवताओ को अनुराग है और नगर मे लोगो को अनुराग है।

नियम यह है कि बाराती बारात मे तो बन ठनकर जाते हैं। पर घर लौटते समय सामान्य वेष मे ही रहते है। परन्तु यहाँ तो महाराज के साथ नगर प्रवेश करना है। अत सब लोग बने ठने है। छरे छबीले छैल लोग हैं। उनका वर्णन नही हो सकता। श्रीरामजी की बारात करके लौट रहे है। अत बडे प्रसन्न हैं। सुख समा नही रहा है। रघुवशियो की बारात है। अत इनके आगे मागध वशप्रशसक वश की प्रशसा करते चल रहे है।

पुरबासिन तब राय जोहारे। देखत रामहि भये सुखारे ॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥३॥

अर्थ पुरवासियो ने तब महाराज का जोहार किया। रामजी को देखकर सुखी हुए। मणिगण और कपडे निछावर कर रहे है। उनके आँखो मे आँसू और शरीर मे पुलक है।

व्याख्या राजाओ को जो दोनो हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है उसे जोहार कहते हैं। बारात के पीछे महाराज की सवारी है। दोनो ओर से पुरवासी जोहार कर रहे है। इनके आगे सूत लोग सूर्यवश की कीर्ति जो पुराणो मे है उसका गान करते चलते हैं। सब लोग सुखी तो रामजी को देखकर हुए। यथा 'सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। अर्थात् महाराज की सवारी के पीछे चारो भाइयो की सवारी है। इनके आगे वन्दी प्रस्ताव सदृश उक्ति करनेवाले समयानुकूल विरद बोलते चल रहे है। रामजी ब्याह करके घर लौट रहे हैं। इसलिए लोग मणि और वस्त्र निछावर कर रहे है और निछावर करते समय प्रेम के कारण उनकी आखो म जल और शरीर मे पुलक हो रहा है।

आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरखहिं निरखि कुँअर वर चारी॥
सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥४॥

अर्थ. पुरनारियाँ हर्षित होकर आरती करती हैं और चारो श्रेष्ठ कुँअरो को देखकर हर्षित होती हैं। सुन्दर पालकियो के ओहार अवधार को हटाकर दुलहिनो को देख देख सुखी होती हैं।

व्याख्या : पहिले से ही पुरनारियाँ आरती सजे खडी हैं। सो चारो दूल्हो को देखते ही आरती करती हैं और दर्शन करके प्रसन्न होती हैं। दूल्हे के रूप मे चारो सरकारो की विचित्र झाँकी है। नर निछावर करते हैं। स्त्रियाँ आरती करती हैं। चारो भाइयो को इस वेष मे देखकर हर्षित होती है। बहुत दिनो पर आज दर्शन हुआ है।

चारो भाइयो की सवारी के पीछे बहुओ के डोले हैं। इनके आगे सरस राग से शहनाई बज रही है। साथ ही साथ नागर नटो का गान हो रहा है। स्त्रियाँ अपने विशेष अधिकार से काम ले रही हैं। ओहार हटाकर नववधुओ को देखती हैं। डोला के क्रम से निर्णय करके वधुओ का मिलान उनके वरो से करती है और उनके अनुरूप पाकर सुखी होती हैं।

दो. येहि विधि सबही देत सुख, आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं, वधुन्ह समेत कुमार॥३४८॥

अर्थ : इस भाँति सबको सुख देते राजद्वार आये। माताएँ मुदित होकर बहुओ के साथ कुमारो का परिछन करती हैं।

व्याख्या : धीरे धीरे बारात अवध मे घूमती हुई राजद्वार आई। परिछन के पहिले ही वर दुलहिन एक पालकी मे कर दिये गये। सखियो का डोला तथा दासियाँ साथ हैं। उन सबो ने तुरन्त व्यवस्था कर दी। अब माताएँ वधुओ के साथ कुमारो का परिछन कर रही हैं।

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा॥
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥१॥

अर्थ : बार बार आरती करती हैं। प्रेम और प्रमोद को कौन कह सकता है? नाना जाति के और अगणित भाँति के गहने कपडे और मणियो की निछावरि करती हैं।

व्याख्या : बहुत विधान की आरती माताओ ने पहिले से ही रच रक्खी है। उन सब विधानो की आरती क्रम से हो रही है। यथा रची आरती बहुत विधाना। इष्टदर्शन से प्रेम इष्टप्राप्ति से मोद और इष्टभोग से प्रमोद होता है। यहाँ प्रेम और प्रमोद के कहने से मोद का आपही आप अन्तर्भाव हो गया। इस प्रेम मोद और प्रमोद को कौन कह सकता है? कवि की ललकार है : जो कहने मे समर्थ हो वह सामने आवे।

नगरवासियों ने मणिगण और चीर निछावर किया था। यहाँ तो माता लोग निछावर के लिए खड़ी हुई हैं। अतः नाना जाति के भूषण, वसन और मणिगन निछावर करती है। जाति के अन्तर्गत अगणित भाँति होती है। सो निछावर के समय यह भी ध्यान दिया जा रहा है कि कोई भाँति छूटती तो नही है।

वधुन समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥
पुनि पुनि सीय राम छवि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी॥२॥

अर्थ बहुओं के सहित चारो बेटो को देखकर माता लोग परम आनन्द मे मग्न है। बार बार सीताजी और रामजी की छवि देखकर ससार में अपने जीवन को सफल माना।

व्याख्या : नगर नरनारी तो देखि दुलहिनिन्हि होहिं सुखारी। वर के अनुरूप अनुमान करके : यहाँ तो माता लोग प्रत्यक्ष चारो जोड़ियो का दर्शन कर रही हैं और चारो को अपना पुत्र पुत्रवधू मान रही है। अतः माताएँ परमानन्द मे मग्न हैं। छवि अधिक होने से श्रीसीतारामजी का बार बार निरीक्षण करती है। जग जीवन का साफल्य रामजी और सीताजी का दर्शन है। अथवा जौ विधि जनम देइ करि छोहू। होहु राम सिय पूत पतोहू। अत रामसिय को पूत पतोहू देखकर जन्म को सफल माना।

सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥
बरषहिं सुमन छनहिं छन देवा। नाचहि गावहि लावहिं सेवा॥३॥

अर्थ : सखियाँ सीताजी का मुख बार बार देखकर गान करती हैं और अपने पुण्य की प्रशसा करती है। देवता लोग क्षण क्षण पर पुष्पवृष्टि करते हैं। नाचते हैं गाते हैं और अपनी अपनी सेवा का प्रयोग करते हैं।

व्याख्या : सासो का प्रेम देखकर सखी बार बार सीताजी का मुख देखती है। अथवा प्रत्येक आरती और निछावर के समय सीताजी का मुख देखती हैं : वे सीताजी की सखी हैं। उनके मनमे सीताजी की प्रधानता है। उन्ही के नाते से सब है : कि इनके हृदय मे कैसा प्रभाव पड रहा है। तो मुखमण्डल की शोभा अपूर्व देखी। अतः फिर फिर देखती है और अपने पुण्य की प्रशसा करती है कि किसी जनकपुरवासी ने सीयराम के साथ परिछन की शोभा नही देखी। मिथिला भाषा मे उन्होने गाना प्रारम्भ कर दिया। देखा कि इधर गीत बन्द हो गये। सब प्रेम प्रमोद मे विभोर है। आरती साजने के समय मङ्गलगान किया। आरती के समय कुछ नही। अतः इस समय आरती और निछावर के अवसर पर अवध मे मिथिला भाषा के गीत हो रहे हैं।

आनन्द की पराकाष्ठा हो गई। देवताओ मे लास्य तो पहिले से ही हो रहा था। अब ताण्डव भी हो रहा है। बिना सेवा के पूर्णकाम का हित कोई कैसे कर सकता है। अथवा यों कहिए कि बिना सेवा के अपने जन्म के साफल्य का उपाय क्या है? सो आकाश मे देववाणी मे गान हो रहा है।

देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढँढोरी ॥
देत न बनहिं निपट लघु लागी। एकटक रहीं रूप अनुरागी ॥४॥

अर्थ चारो मनोहर जोडियो को देखकर शारदा ने सब उपमाएँ ढँढ डाली। परन्तु देते नही बनता। क्योकि अत्यन्त तुच्छ जची। सो वह भी रूप म अनुरक्त होकर एकटक सी देखती हो रह गईं।

व्याख्या महाराज दशरथ के पास सब चारो भाई बैठे थे तो कवियो ने उपमा खोज निकाली थी। यथा नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनु धारी। पर यहाँ अन्त पुर म तो कवियो की पहुँच नही है। उन्होने चारो जोडियो का दर्शन ही नही पाया उपमा कहाँ से दें। पर कोई चिन्ता की बात नही थी। कविकुल की आराध्य देवता शारदा वहाँ थी। उन्होने बडा प्रयत्न किया। सब उपमाओ को ढूँढ डाला। उनसे कोई उपमा छिपी नही है। हीनोपमा भी दी ही जाती है। पर उन्हे सभी उपमाएँ ऐसी तुच्छ जँची कि देने योग्य काई न ठहरी। वे भी रूप देखते मुग्ध हो गईं। एकटक दर्शन करती ही रह गईं।

दो निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवडे देत।
वधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लिवाइ निकेत ॥३४९॥

अर्थ वेद की नीति और कुल की रीति करके अर्घ और पाँवडे देते हुए बहुओ को बेटे के सहित घर ले चलीं।

व्याख्या यह प्रभु के चरित की कविता नदी लौकिक और वैदिक कूलो के बीच से बहती है। यथा लोक वेद विधि मजुल कूला। अत सब कार्यो म वैदिक और लौकिक रीति करके ही कोई कार्य होता है। सो लोक वेद का निर्वाह करके तब वधुओ को बेटो के साथ घर मे लिवा ले चलीं। वधूप्रवेश के समय वधू को आगे करके और वर को पीछे करके लिवा जाने की रीति है। इसलिये कवि वधुओं का लिवा जाना कहते है। वर तो उनके साथ हैं।

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे ॥१॥

अर्थ चार सिंहासन जो बडे सुन्दर बने हुए थे। मानो कामदेव ने उन्हे अपने हाथ से रचा है। उनपर कुँअर और कुँअरियो को बिठाया और आदर से पाँव धोये।

व्याख्या सिंहासनो को सहज सोहाए कहा। क्योकि उनकी बनावट ही इतनी सुन्दर थी कि उन्हे यदि साजा भी न जाय तो भी सुन्दर मालूम हो। उनका शिल्प मानुषी और दैवी शिल्प से भी उत्कृष्ट है। अत उन्हे कहते है कि मानो कामदेव ने अपने हाथो बनाया है।

अब वरवधू का षोडशोपचार पूजन कहते हैं। पहिले आसन के लिए चार

सिंहासन रक्खे गये थे। एक पर रामजानकी को बिठाया। दूसरे पर भरत माण्डवी को। तीसरे पर लक्ष्मण उर्मिला को और चौथे पर शत्रुघ्न श्रुतिकीर्ति को। आसन के बाद पाद्य का विधान है। इसलिए आदर के साथ पुनीत चरणो को धोया।

धूप दीप नैवेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगलनिधि ॥
बारहि बार आरती करही। ब्यजन चारु चामर सिर ढरही ॥२॥

अर्थ धूप दीप नैवेद्य द्वारा मङ्गलनिधि वर दुलहिन का पूजन किया गया। बारबार आरती करती हैं। पखा चल रहा है और सुन्दर चँवर ढुर रहे हैं।

व्याख्या तीसरा धूप, चौथा दीप, पाँचवाँ नैवेद्य इस भाँति पञ्चोपचार हुआ। मङ्गल के निधि भण्डार ये वरदुलहिन हैं। इनकी पूजा पञ्चोपचार से वैदिक मन्त्रो द्वारा की गयी। ये मङ्गलनिधि हैं। अत इनके विवाह मे मङ्गलमय, कल्याणमय, अभिमतफलदातार सगुन हुए। यथा मङ्गलमय कल्याणमय अभिमतफलदातार। जनु सब साँचे होन हित भये सगुन एक बार। अति उत्साह के कारण बार बार आरती करती है। पखा झला जा रहा है। यह कहकर ग्रन्थकार ने दिखला दिया कि बारात तीन चार महीने जनकपुर मे रह गई। शरद्पूर्णिमा के लगभग धनुपभग हुआ। कार्तिक मे बारात गई और लौटने के दिन पखा का काम पडा। राजोपचार से पूजा हो रही है। इसलिए चमर ढुर रहा है।

बस्तु अनेक निछावरि होही। भरी प्रमोद मातु सब सोही ॥
पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु सतत रोगी ॥३॥

अर्थ अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही हैं। आनन्द से भरी माताएँ शोभित हो रही हैं। जैसे १ योगी को परम तत्त्व की प्राप्ति हो गई हो। २ और जन्म के रोगी को जैसे अमृत मिल गया हो।

व्याख्या यह पूजाङ्ग निछावर है। प्रमोद से भरी माताएँ शोभित है। सात सौ रानियाँ घेरे खडी है। प्रत्येक की निछावर अलग हो रही है। अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही है। रानियो के प्रमोद की उपमाएँ ग्रन्थकार ने दी हैं। क्योकि उन्हे छ बात की खुशी हुई है। १ पहिली बडी भारी खुशी तो यह है कि रामजी की प्राप्ति हुई। महाराज दशरथ ने ऋषिजी को यज्ञ की रखवारी के लिए दे दिया था। जिस पर माता कहती हैं रिषि नृप सीस ठगौरी सी डारी। सिरस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोप सुरारी। पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी। ऐसे दुष्कर कार्य के लिए महाराज ने ऋषिजी के साथ भेज दिया था। इनकी प्राप्ति महा कठिन थी। इनकी प्राप्ति परम तत्त्व की प्राप्ति के समान दुर्लभ थी और थे भी ये साक्षात् परम तत्त्व ही। यथा योगिन परम तत्त्वमय भासा। सा दोनो भाइयो ने मख रखवारी की। छवो बातो को आगे चलकर गिनाया है। यहाँ केवल खुशियो का वर्णन है। पर बिना उन छवो बातो के जाने यह न मालूम होगा कि किस बात पर कैसी खुशी हुई। अत उनका उल्लेख किये देता हूँ। १ मख

रखवारी करि दोउ भाई। २ गुरु प्रसाद सब विद्या पाई। ३ मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरिपूरी। ४ कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिवधनु तोरा। ५ विस्व विजय जसु जानकि पाई। ६ आए भवन व्याहि सब भाई। सो पहिली बात की खुशी का वर्णन तो ऊपर किया जा चुका है। २ दूसरी बात है · गुरु प्रसाद सब विद्या पाई। यथा जाते लाग न छुधा पियासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा। बेटो के सिरिस सुमन की भाँति सुकुमार होने से माता सदा डरा करती थी। सो उनके इस विद्या की प्राप्ति से वह भय जाता रहा। इसलिए ऐसी प्रसन्नता हुई अमृत लहेउ जनु सतत रोगी।

जनम रकु जनु पारस पावा। अधेहि लोचन लाभु सुहावा ॥
मूक वदन जनु सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई ॥४॥

अथ · ३ जन्म के दरिद्र को जैसे पारस मिला हो। ४ अन्धे को सुन्दर नेत्रो का लाभ हुआ हो। ५ गूँगे के मुख मे जैसे सरस्वती बस गई हो। ६ जैसे समर मे शूर को जयलाभ हुआ हो।

व्याख्या . ३ मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी। पुत्र के चरणरेणु की ऐसी कीर्ति फैली कि भुवन भर उठा। इस बात से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे जन्मरङ्क को पारस मिलने से होती है। यशोधन हैं। कीर्ति की बडी कामना है। सो पुत्र के चरणरज से मिलती रहेगी। इसीलिए ऐसी प्रसन्नता हुई। ४ कमठपीठ पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिवधनु तोरा। इस बात से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे अन्धे को आँख मिले। रानी सोचती हैं कि मैं तो जन्म की अन्धी थी मुझे नही मालूम कि इतना सामर्थ्य है। मैं तो सिरिस सुमन सा सुकुमार ही समझती थी। अत धनु तोडना सुनने से ऐसी प्रसन्नता हुई। ५ विस्व विजय जस जानकी पाई। माताएँ मूक सी थीं। घर सकुशल लौटना कठिन समझती थी। यथा जे कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यों सुभाय सुत चारी। बादि बीर जननी जोवन जग छत्रि जाति गति भारी। सो विश्व विजय पाया। जानकी पाई। अत ऐसी खुशी हुई कि जैसे मूक के मुख में सरस्वती के डेरा लेने से होती है जानकीजी महाविद्या हैं। ६ मानहु समर सूर जय पाई। शूर जय के लिए सुखेन प्राण समर्पण करता है। सब भाई व्याह के घर आये। यह बात प्राण से भी अधिक प्यारी है। इसलिए शूर के समर मे जय पाने के समान प्रसन्नता हुई।

दो इहि सुख ते सत कोटि गुन, पावहि मातु अनदु।
भाइन सहित बिआहि घर, आये रघुकुलचदु ॥३५०॥ क

अर्थ इस प्रकार के सुखो से सौगुना आनन्द माताएँ पा रही हैं। भाइयो के सहित व्याह करके रघुकुलचन्द घर आये हैं।

व्याख्या इ सुख गिनाए केवल सुख का प्रकार कहा। उत्कर्ष न कहा।

अत कहते है कि रामजी के व्याह के घर आने से इन सुखो से कोटि गुन अधिक सुख हुआ। व्याहकर भाइयो सहित घर आने के सुख मे शेष पाँचो प्रकार के सुखो का अन्तर्भाव है।

दो लोक रीति जननी करहिं, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि वड़, राम मनहि मुसुकाहिं ॥३५०॥ ख

अर्थ माताएँ लोकरीति कर रही है। वर दुलहिन सकुचते हैं। इस पर मोद विनोद वहुत वढ रहा है। रामजी मन मे मुसकराते हैं।

व्याख्या दधि मिष्टान्न प्राशनादि लोकरीति माताएँ कर रही है। यह पहिले भी कोहवर मे हो चुका है। पर यहाँ माँ द्वारा हो रहा है। अत वर दुलहिन को सङ्कोच हो रहा है। इनके सङ्कोच पर मोद है तथा ऐसे अवसर पर स्त्रियाँ विनोद भी करती है। इस मोद विनोद पर रामजी मन ही मन मुसकरा रहे है। यथा : मन मुसुकाहिं भानुकुल भानू। राम सहज आनद निधानू। रामजी पर इस मोद प्रमोद विनोदादि का कोई प्रभाव नही है। वे अपने सहज आनन्द मे ही निमग्न हैं। उसी आनन्द मे मनही मन मुसकरा रहे है। यह सब कौतुक भी देख रहे हैं।

देव पितर पूजे विधि नीकी। पूजी सकल वासना जी की ॥
सवहि वदि माँगहि वरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना ॥१॥

अर्थ देवता और पितरो की पूजा भलीभाँति से की। जी की सब वासनाएँ पूरी हुईं। सबकी वन्दना करके वरदान माँगते है कि भाइयो के सहित रामजी का कल्याण हो।

व्याख्या देवलोक और पितृलोक का इस लोक से वडा घना सम्वन्ध है। देवता और पितर पूजित होकर इष्टभोग दिया करते है। यथा · इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता। तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव स। उनके दिये हुए भोगो को तो भोगे और उन्हें न दे। ऐसे पुरुष को शास्त्रो मे चोर वतलाया है। अत मङ्गल का समय उपस्थित होने पर देवता और पितरो की विशेष रूप से पूजा की जाती है। इस समय सवके जी की सव वासनाएँ पूर्ण हुई हैं। इसलिए भलीभाँति से देवताओ और पितरो की पूजा की। पूजनोपरान्त यही वरदान माँगती हैं कि भाइयो के सहित रामजी का कल्याण हो। यही एक मात्र सबका ध्येय है। भक्तो का समाज है। सव ओर से ममता खिचकर श्रीरामजी के चरणो म वँधी हुई है। अशो के सहित उन्ही का कल्याण मनाते है।

अतरहित सुर आसिष देही। मुदित मातु अंचल भरि लेही ॥
भूपति वोलि वराती लीन्हे। जान वसन मनि भूपन दीन्हे ॥२॥

अर्थ अन्तर्धान रहकर देवता लोग आशीर्वाद देते हैं। प्रसन्न होकर माताएँ अञ्चल भरकर लेती हैं। महाराज ने वारातियो को वुलाया। उन्हे सवारी, कपडे, मणि और आभूषण दिये।

व्याख्या आवाहन करने से देवता लोग आते हैं। पर स्थूलदृष्टि से उनका दर्शन नही होता। वे पूजा पाकर आशीर्वाद देते है। पर स्थूल श्रोत्र उन्हे सुन नही सकते। यही साधारण नियम है। उनका प्रत्यक्ष हो जाना और उनके आशीर्वाद का सुनाई पडना उनके बडे भारी अनुग्रह का द्योतक है। विवाह के समय दोनों बातें हुई थी। यथा सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावही। अब तो व्याह हो गया है। समाप्ति का पूजन हो रहा है। अत दृष्टिगोचर तो नही हो रहे हैं। पर आशीर्वाद श्रवणगोचर हो रहा है। अथवा स्वय राम जानकी के हाथ का पूजन ग्रहण करने के लिए प्रत्यक्ष होकर आशीर्वाद दिया। माताओ के पूजन मे अन्तर्हित रहते हुए आशीर्वाद देते हैं। स्त्रियाँ अञ्चल पसारकर माँगती है और पुरुष अञ्जलि बाँधकर माँगते है। सो माताएँ भाइयो सहित रामजी का कल्याण माँगती हैं। देवता लोग तथास्तु कहते हैं जो सुनाई पडता है। माता लोग उसे मिला हुआ मानकर अञ्चल मे इस भाँति प्रेम से ले रही हैं जिस भाँति उन्हे कोई भौतिक वस्तु मिली हो।

पहिला कार्य महाराज ने यह उचित समझा कि बारातियो की विदाई की जाय। अत उन्हे बुलवाया। जिस भाँति बारात मे सबसे पहिल सजधजकर छरे छबील छैल लोग आये थे उसी भाँति यहाँ भी वे ही पहिले आये। उन्हे महाराज की ओर से रथ बखसा गया। अर्थात् उन्हे रथी का पद मिला। बारात के क्रम के अनुसार ही उनके बाद रथी लोग आये। उन्हे वस्त्र अर्थात् सिरोपाव देकर आदर किया गया। उसके बाद वैदिक ब्राह्मण तथा वन्दीजन आये। उन्हे मणि भूषण दिये गये। अथवा सबको सब दिया गया।

आयसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए॥३॥

अर्थ आज्ञा पाकर और रामजी को हृदय में रखकर प्रसन्न हो सब अपने अपने घर गये। पुर नर नारि सभी को पहिरावन मिला। घर घर बधाये बजने लगे।

व्याख्या आज्ञा पाकर आये थे। आज्ञा पाकर जा रहे हैं। महीनो बाद घर जा रहे हैं। इसलिए मुदित हैं। अथवा विदाई पाकर मुदित हैं। फिर भी रामजी सबको इतने प्रिय हैं कि इन्हे छोडते नही बनता। अत उन्हे हृदय मे रखकर जा रहे हैं। बाहरी बारातियो के विदा करने के बाद महाराज की आज्ञा हुई कि सभी प्रजा को पहिरावा मिलना चाहिए। अत पुर नरनारियो के यहाँ पहिरावा भेजा गया। महाराज के यहाँ से पहिरावा आया है। इस उत्सव मे घर घर बधाये बजने लगे।

जाचक जन जाचहि जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किये दान सनमाना॥४॥

अर्थ याचक लोग जो जो माँगते हैं। प्रसन्न होकर राजा वही वही वस्तु

दे रहे है। सब सेवको और नाना प्रकार के बाजे बजानेवालो को दान और सम्मान से सन्तुष्ट कर दिया।

व्याख्या इस घर से याचको की भी विदाई होती है। और लोगो की विदाई तो महाराज ने अपनी रुचि से की। पर याचको से उनकी चाही हुई वस्तु उनसे पूछ पूछ कर दी जा रही है। राजा शङ्कररूप है। इसे याचक सदा अच्छे लगते हैं। उन्हे ईप्सित पदार्थ देते है। अब सेवक और बाजा बजानेवालो की पारी आयी। उन्हे इनाम दिया गया। उनका सत्कार किया गया। नाना शब्द मे विदूषक का नागर नट आदि का भी ग्रहण है। सबको सन्तुष्ट किया गया। व्याह ही एक ऐसा अवसर है जिसमे सभी गृहस्थ यथाशक्ति सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है और सभी लोग उससे सत्कार पाने की आशा करते हैं।

दो देहि असीस जोहारि सब, गावहि गुन गन गाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवनु कीन्ह नरनाथ ॥३५१॥

अर्थ सब जोहार करके आशीर्वाद देने और गुणगाथा गाने लगे। तब गुरु और ब्राह्मणो के साथ नरनाथ दशरथजी घर गये।

व्याख्या सेवक और बजनियाँ आदि जोहार करके आशीर्वाद देते हैं। महाराज की गाथा का सभी गान कर रहे हैं। क्योकि सबको सन्तुष्ट किया है। जितने लोग बारात मे आये थे उन सबको सत्कार करके घर भेजकर तब आप घर चले। घर जाने मे भी गुरुजी तथा ब्राह्मणो को साथ लेकर अन्त पुर मे प्रवेश करते है। इनसे परदा नही है। नरनाथ है मनुष्य मात्र के कल्याण पर दृष्टि है।

जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक वेद विधि सादर कीन्ही ॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठी भाग्य बड जानी ॥१॥

अर्थ जो वसिष्ठजी ने लोकविधि और वेदविधि के लिए आज्ञा दी उसे आदर के साथ किया। ब्राह्मणो की भीड देखकर रानियाँ बडा भाग्य जानकर आदर के साथ उठी।

व्याख्या मुनि का अनुशासन सर्वथा ग्राह्य है। मुनि के अनुशासन से ही शिवजी ने गणपति का पुत्रका पूजन किया। वह अनुशासन अविचारणीय है। तदनुसार लोकविधि मण्डपग्रन्थिनिर्मोकादि तथा वेदविधि देवपितृविसर्जनादि श्रद्धा के साथ किया। क्योकि बिना श्रद्धा से जो कुछ किया जाता है वह सब असत् हो जाता है। यथा अश्रद्धया हुत दत्त तपस्तप्त कृतञ्च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।

विप्रसङ्कीर्ण मन्दिर बडे भाग्य से होता है। सो रानियो ने आँगन मे ब्राह्मणो की भीड देखी। सो आदर के साथ उठी। अपना बडा भाग्य माना। महाराज वैदिक लौकिक कृत्य कर रहे हैं तबसे ब्राह्मणो का सत्कार होना चाहिए।

पाय पखारि सकल अन्हवाये । पूजि भली विधि भूप जेवाये ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे ॥२॥

अर्थ : सबको पाँव धोकर नहलाया । राजा ने भलीभाँति पूजन करके भोजन करवाया । आदर दान और प्रेम से परिपुष्ट होनेपर मन से सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देते चले ।

व्याख्या : महारानियो ने पाद प्रक्षालन पूर्वक सबको स्नान कराया । तब तक महाराज कृत्य से खाली हो गये । पूजन उन्होंने विधान स किया । तत्पश्चात् सबको भोजन कराया । आदर पूर्वक दक्षिणा दी । ताम्बूल दिया । प्रेम से परिक्रमा की । चरणस्पर्श किये । ब्राह्मण सब प्रकार से पूजित होकर सन्तुष्ट हुए और आशीर्वाद देते चले । परोक्ष मे रास्ते चलते आशीर्वाद देते जा रहे है ।

बहु विधि कीन्ह गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
कीन्ह प्रसंसा भूपति भूरी । रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी ॥३॥

अर्थ : बहुत प्रकार से विश्वामित्रजी की पूजा की । कहा कि नाथ ! मेरे समान कोई धन्य नही है । राजा ने बडी प्रशसा की और रानियो के सहित चरणो की धूलि ली ।

व्याख्या : जब सब ब्राह्मणो की पूजा की उस समय गाधि के पुत्र विश्वामित्र की पूजा नही की । क्योंकि इनकी पूजा बहुत विधान से करनी थी । उस समय पूजा करने से पंक्तिभेद हो जाता । गाधिसुत करने से विश्वामित्रजी का अलौकिक पुरुषार्थ द्योतन किया जो अपनी तपस्या के बल द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये । पूजनोपरान्त स्तुति की और कहा कि मेरे समान धन्य कोई नही । किसके बेटे के ब्याह मे आप बारात गये थे ? मुझपर आपकी इतनी कृपा है । अत. मेरा बडा पुण्य है । पुण्यात्मा को ही धन्य कहते है । यथा . सुकृती पुण्यवान् धन्य । इसी रीति से महाराज ने उनकी बडी प्रशसा की । सुनकर महारानियो को भी बडी श्रद्धा हुई और उन लोगो ने भी महाराज के साथ ही उनकी चरणधूलि को सिर पर रक्खा ।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू । मनु जोगवत रह नृपु रनिवासू ॥
पूजे गुरु पद कमल बहोरी । कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥४॥

अर्थ उनको अन्त पुर के भीतर ही श्रेष्ठ निवास स्थान दिया । राजा स्वय रनिवास के साथ उनका मन देखा करते थे । फिर राजा ने गुरु : वसिष्ठजी के चरणकमलो की पूजा की । उनके हृदय मे बडी प्रीति थी । तदनुसार विनती की ।

व्याख्या . विश्वामित्रजी को अन्त पुर मे ही निवास देने का यह भाव कि जिसमे महाराज को महारानियो के साथ स्वय सेवा करने का सुयोग मिल सके । जो सेवा कराना है वही सेवा करना जानता है । ससार राजा की सेवा के लिए

उत्सुक रहता है। अत राजा जानता है कि सेवा कैसे की जाती है। अत्यन्त आदर के लिए स्वय भी सेवा करना चाहते है। रानियो की भी सेवा करने की अतिश्रद्धा है। विश्वामित्रजी को आज्ञा देने की आवश्यकता नही पडती। उनका रुख देखकर ही महाराज तथा महारानियाँ सब काम कर देती है। अयोध्या की सभ्यता इतनी बढी चढी है कि वहाँ अधिकाश कार्य रुख देखकर ही हुआ करता है। अङ्गो की पूजा पहिले और प्रधान की पूजा अन्त मे होती है। इसी क्रम से गुरु वसिष्ठजी की पूजा सबके पीछे हुई। महाराज की गुरुचरणो मे बडी प्रीति है। अत पूजनोपरान्त विनय किया।

दो वधुन समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस।
पुनि पुनि बदत गुरु चरन, देत असीस मुनीस ॥३५२॥

अर्थ बहुओ के साथ सब कुमार और रानियों के सहित राजा बार बार गुरुचरणो की वन्दना करते हैं और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं।

व्याख्या वधुओ को मैके से शिक्षा मिली है सास ससुर गुर सेवा करेहू पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू। सो वे सास ससुर पति सबको गुरुजी के पादाक्रान्त देखती हैं। अत वधुओ की भी बडी श्रद्धा है। सब लोग बार बार श्रद्धातिरेक से गुरुचरणो की वन्दना कर रहे हैं और गुरुजी सबको आशीर्वाद देते हैं। गुरु और पुरोहित घर के प्राणी हो जाते हैं। उनसे न कोई सङ्कोच रहता है न परदा रहता है और न कोई बात छिपी रहती है। यहाँ गुरुजी बीच मे आसीन है। महाराज दशरथ, रानियो, बेटो और पतोहुओ को लिये हुए सपरिवार पूजन कर रहे है। सब प्रेम से बारबार प्रणाम कर रहे हैं और वृद्ध वसिष्ठ सबके बीच मे बैठे आशीर्वाद दे रहे हैं।

विनय कीन्हि उर अति अनुरागे। सुत सपदा राखि नृप आगे॥
नेग माँगि मुनि नायक लीन्हा। आसिरवादु बहुत विधि दीन्हा॥१॥

अर्थ अत्यन्त प्रेम से पुत्र और सम्पदा सामने रखकर विनय किया। मुनि-नायक ने नेग माँगकर लिया और बहुत विधि से आशीर्वाद दिया।

व्याख्या महादानी राजा है गुरु की विदाई क्या करें। सो सारी सम्पदा सामने रखखी और बेटो को भी रख दिया। जिनके लिए कहा था कि सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं। उन्हे भी सामने रखकर विनय करते है कि आप स्वीकार कर लीजिये। मुनिजी लेना भी नही चाहते और प्रेम का अनादर करना भी नही चाहते। अत अपना नेग माँगा कि हमारा नेग इतना होता है। सो मुहमाँगा नेग पाने पर जिस भाँति तुष्ट होकर पुरोहित आशीर्वाद दिया करते है उसी भाँति बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥
विप्रवधू सब भूप बोलाई। चैल चारु भूषन पहिराई॥२॥

अर्थ हृदय मे सीताजी के सहित रामजी को रखकर हर्षित हो गुरुजी घर गये। राजा ने विप्रवधुओ को वुलाया। सुन्दर कपडे और गहने पहिनाये।

व्याख्या : सर्वोत्तम वस्तु गुरुजी ने चुन ली। रामजी को सीता सहित देखकर युगलमानसी मूर्ति को हृदय मे रख लिया और हर्षित होकर घर गये। अव विवाहपद्धति के अनुसार विप्रवधू और सुआसिनो का सत्कार शेष है। सो राजा ने उन्हे भी वुलवाया। पुर नर नारियो को पहिले ही पहिरावा मिल चुका है। विप्रवधुओ को नही मिला है। इनका विशेष सत्कार होगा। इसलिए सवके साथ इनका सत्कार नही हुआ था। अत उन्हे कपडे और गहने पहिनाये।

वहुरि वुलाइ सुआसनि लीन्ही। रुचि विचारि पहिरावनि दीन्ही ॥
नेगी नेग जोग सव लेही। रुचि अनुरूप भूपमनि देही ॥३॥

अर्थ फिर सुहागिनो को वुला लिया। रुचि का विचारकर पहिरावा दिया। नेगी लोग नेग जोग ले रहे हैं। जिसको जो रुचि है उसे वही भूपमणि दे रहे हैं।

व्याख्या : विप्रवधुओ के सम्मान के वाद सुहागिनी स्त्रियो का सम्मान आरम्भ हुआ। वे सौभाग्यवती है। लज्जा से अपनी अभिरुचि व्यक्त न करेंगी। अत स्वय उनकी रुचि का विचार उनके वेपभूषा से करके उनको पहिरावा दिया। नेगियो को नेग जोग देना शेष है। वे तो झगड कर लेते हैं। उन्हे माँगने में सङ्कोच नही है। अत स्पष्ट रुचि जानकर देते है। भूपमणि हैं देने से अघाते नही।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने ॥
देव देखि रघुवीर विवाहू। वरषि प्रसून प्रससि उछाहू ॥४॥

अर्थ जिन प्रिय पाहुनो को पूज्य समझा राजा ने उनका भलीभाँति से सम्मान किया। देवताओ ने रघुवीर का विवाह देखकर पुष्पो की वृष्टि करके और उछाह का वर्णन करके

व्याख्या प्रिय पाहुने दो प्रकार के होते है। एक पूज्य यथा वहनोई, दामाद इत्यादि और दूसरे पूजक : जैसे साले इत्यादि। इनमे से पूजको का तो केवल सम्मान किया जाता है। क्योकि वे दिया हुआ कुछ ग्रहण न करेगे। परन्तु पूज्यो का वस्त्रालङ्कारादि से भलीभाँति सम्मान किया जाता है। तदनुसार उनका वैसा ही सम्मान किया गया।

देवविसर्जन हो गया था। यथा . जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक वेद विधि सादर कीन्ही। अत अब ठहरने की आवश्यकता न रह गई। व्याहकार्य भी समाप्त हो गया। अत चलने के समय फिर पुष्पवृष्टि की और उछाह को प्रशसा की। जिसे देखकर वे क्षण क्षण पर पुष्पवर्षा करते थे और स्वय उस रस मे लीन होकर नाचने गाने लगे थे। यथा वरषहिं सुमन छनहि छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहि सेवा।

दो चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु, प्रेमु न हृदय समाइ ॥३५३॥

अर्थ देवता लोग डङ्का वजाकर और सुख पाकर अपने अपने लोकों को चले। आपस म रामजी का यश कहते जाते थे। प्रेम हृदय मे नही समाता था।

व्याख्या विवाह हो जाने से निर्भय है। जानते हैं कि जानकीहरण से रावणवध होगा। विवाह होने से विधि वैठ जायगी। अत सुख पाकर अथवा इस विवाह के देखने से लोचन का फल पाकर सुखी हुए और डङ्का वजाकर चले। सबके लोक दूर दूर और पृथक् दिशाओ मे हैं। अत उन उन दिशाओ मे चले। ईशानकोण की ओर शिव चले। इन्द्र पूर्व की ओर चले। अग्नि अग्निकोण की ओर, धर्म दक्षिण की ओर, निऋति नैर्ऋत्य कोण की ओर, वरुण पश्चिम की ओर, वायु वायव्यकोण की ओर और कुबेरजी उत्तर की ओर चल। इस भाँति देवता लोग अपने अपने निवासस्थान को चले। अपने अपने समाज मे रामजी के सुवाहुवध, धनुपभङ्ग, परशुरामपराजय आदि यश का वर्णन करते जाते थे। क्योकि हर्ष उनके हृदय म समाता न था। जिसम इतना पराक्रम है उसी के हाथ से रावणवध सम्भव है।

सव विधि सबहि समदि नर नाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू ॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित वधूटिन कुअर निहारे ॥१॥

अर्थ सब भाँति सबका सत्कार करके महाराज के हृदय मे उछाह उमडा हुआ था। जहाँ रनिवास था वहाँ पधारे तो वहुओ के साथ कुँअरो को देखा।

व्याख्या नरनाथ हैं। उन्हे सत्कार करने मे भी बडा हर्ष का अनुभव होता था। सवका यथोचित सत्कार किया। अत सबके सत्कार को पृथक् विधि कवि ने लिखी। देवता लोग प्रिय पाहुने पूज्य के सत्कार के समय गये। क्योकि उन्ही की अन्तिम विदाई थी।

सव वारातियो को घर भेजकर तब अन्त पुर मे गये अभी तक धर्मकृत्य मे साथ देने के लिए रानियाँ मण्डप मे आई थी। वहाँ पर जाकर चार सिंहासनो पर वहुओं के साथ वैठे हुए कुँअरो को देखा। चमर चल रहा है। पखे झले जा रहे है। रानियाँ घेरे हुए है। आमोद प्रमोद हो रहा है इत्यादि।

लियं गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयेउ सुखु जेता ॥
वधू सप्रेम गोद वैठारी। वार वार हिय हरखि दुलारी ॥२॥

अर्थ आनन्द से गाद मे ल लिया। जैसा सुख हुआ सो कहा नही जा सकता। वहुआ को प्रेम से गोद मे बिठलाया। वार वार हृदय मे हर्षित होकर उनका दुलार किया।

व्याख्या कई वार वधुओ के साथ कुँअरो को देख चुके हैं। पर अवसर न होने से गोद मे नही लिया था। सो पहिले कुँअरो को गोद मे बिठाकर अवर्णनीय

सुख का अनुभव किया। फिर बहुओ को गोद मे लिया। अभी सबकी सब अल्पवयस्का हैं। पिता के गोद मे बैठने का समय बीता नही है। अत गोद मे बैठाकर दुलार करते हैं। मानो पितृवियोगजनित पीडा का मार्जन कर रहे है। जनकजी की विनती का पूरा ध्यान है। यथा . ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।

देखि समाज मुदित रनिवासू। सबके उर अनदु कियो वासू ॥
कहेउ भूप जिमि भयेउ विवाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू ॥३॥

अर्थ : वह दृश्य देखकर रनिवास प्रसन्न था। सबके हृदय मे आनन्द ने निवास किया। महाराज ने कह सुनाया कि किस भाँति विवाह हुआ। सुन सुनकर सबके हृदय मे हर्ष होता था।

व्याख्या : कौटुम्बिक सुख की पराकाष्ठा है। आनन्द से पूर्ण पति बैठे हुए है। चारो बेटो और बहुओ का लाड प्यार हो रहा है। वे व्याहकर अभी आये है। पतिसुख पुत्रसुख, पुत्रवधूसुख, राज्यसुख, कीर्तिसुख, सभी सुख प्राप्त है। हृदय मे सब रानियो को स्थायी सुख हुआ। इसलिए कवि कहते हैं सबके उर अनद कियो वासू।

रानियो ने विवाह नही देखा। प्रिय समाचार महाराज के मुख से सुनने के लिए उत्सुक हैं। जिस विवाहसम्बन्धी पत्र को छाती से लगाकर छाती ठण्ढी करती थी उस विवाह के वर्णन के सुनने मे भी उन्हे बडा सुख था। महाराज ने सब वर्णन किया। समधियाने का समाचार सुनकर सब हर्षित हो रही हैं।

जनक राज गुन सीलु बडाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥
बहुविधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ॥४॥

अर्थ · राजा जनक का गुण, शील, बडाई, प्रीति की रीति और सुन्दर सम्पदा का वर्णन राजा ने अनेक प्रकार से बदीजनो की भाँति किया। करणी सुनकर सब रानियाँ प्रमुदित हुईं।

व्याख्या · राजा लोग मितभापी होते है। उनके एक एक शब्दो का मूल्य होता है। जिसकी प्रशसा का एक शब्द उनके मुख से निकल गया उसका महाभाग्य माना जाता था। सो महाराज दशरथ जनकराज के १ गुण २ शील ३ बडाई ४ प्रीति की रीति और ५ सुन्दर सम्पदा से ऐसे प्रभावित हैं कि उनके वर्णन मे अघाते नही है।

१ गुण। यथा : सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बडाइ कै।
प्रमुदित महामुनिवृन्द वदे पूजि प्रेम लडाइ कै।
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे *विनय करि* आसिस लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति पै न परै कही।
बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाव न दूजा ॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती ॥

इत्यादि।

दो चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु, प्रेमु न हृदय समाइ ॥३५३॥

अर्थ देवता लोग डङ्का बजाकर और सुख पाकर अपने अपने लोकों को चले। आपस मे रामजी का यश कहते जाते थे। प्रेम हृदय में नही समाता था।

व्याख्या विवाह हो जाने से निर्भय हैं। जानते है कि जानकीहरण से रावणवध होगा। विवाह होने से विधि बैठ जायगी। अत सुख पाकर अथवा इस विवाह के देखने से लोचन का फल पाकर सुखी हुए और डङ्का बजाकर चले। सबके लोक दूर दूर और पृथक् दिशाओ मे है। अत उन उन दिशाओ मे चले। ईशानकोण की ओर शिव चले। इन्द्र पूर्व की ओर चले। अग्नि अग्निकोण की ओर, धर्म दक्षिण की ओर, निऋति नैर्ऋत्य कोण की ओर, वरुण पश्चिम की ओर, वायु वायव्यकोण की ओर और कुबेरजी उत्तर की ओर चले। इस भाँति देवता लोग अपने अपने निवासस्थान को चले। अपने अपने समाज मे रामजी के सुबाहुवध, धनुपभङ्ग, परशुरामपराजय आदि यश का वर्णन करते जाते थे। क्योकि हर्ष उनके हृदय में समाता न था। जिसमें इतना पराक्रम है उसी के हाथ से रावणवध सम्भव है।

सब विधि सबहि समदि नर नाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन्ह कुअँर निहारे॥१॥

अर्थ सब भाँति सबका सत्कार करके महाराज के हृदय मे उछाह उमडा हुआ था। जहाँ रनिवास था वहा पधारे तो बहुओ के साथ कुँअरो को देखा।

व्याख्या नरनाथ हैं। उन्हे सत्कार करने मे भी बडा हर्ष का अनुभव होता था। सबका यथोचित सत्कार किया। अत सबके सत्कार को पृथक् विधि कवि ने लिखी। देवता लोग प्रिय पाहुने पूज्य के सत्कार के समय गये। क्योकि उन्ही की अन्तिम विदाई थी।

सब बारातियो को घर भेजकर तब अन्त पुर मे गये अभी तक धर्मकृत्य मे साथ देने के लिए रानियाँ मण्डप मे आई थी। वहाँ पर जाकर चार सिंहासनो पर बहुओ के साथ बैठे हुए कुँअरो को देखा। चमर चल रहा है। पखे झले जा रहे है। रानियाँ घेरे हुए है। आमोद प्रमोद हो रहा है इत्यादि।

लिय गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयेउ सुखु जेता॥
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरखि दुलारी॥२॥

अर्थ . आनन्द से गोद मे ले लिया। जैसा सुख हुआ सो कहा नही जा सकता। बहुओं को प्रेम से गोद मे बिठलाया। बार बार हृदय मे हर्षित होकर उनका दुलार किया।

व्याख्या कई बार वधुओ के साथ कुँअरो को देख चुके है। पर अवसर न होने से गोद मे नही लिया था। सो पहिले कुँअरो को गोद मे बिठाकर अवर्णनीय

सुख का अनुभव किया। फिर बहुओं को गोद में लिया। अभी सबकी सब अल्पवयस्का हैं। पिता के गोद मे बैठने का समय बीता नही है। अत: गोद में बैठाकर दुलार करते हैं। मानो पितृवियोगजनित पीडा का मार्जन कर रहे हैं। जनकजी की विनती का पूरा ध्यान है। यथा : ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई।

देखि समाज मुदित रनिवासू। सबके उर अनंदु कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयेउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥३॥

अर्थ : वह दृश्य देखकर रनिवास प्रसन्न था। सबके हृदय मे आनन्द ने निवास किया। महाराज ने कह सुनाया कि किस भाँति विवाह हुआ। सुन सुनकर सबके हृदय मे हर्ष होता था।

व्याख्या : कौटुम्बिक सुख की पराकाष्ठा है। आनन्द से पूर्ण पति बैठे हुए हैं। चारों बेटो और बहुओं का लाड प्यार हो रहा है। वे व्याहकर अभी आये है। पतिसुख पुत्रसुख, पुत्रवधूसुख, राज्यसुख, कीर्तिसुख, सभी सुख प्राप्त हैं। हृदय मे सब रानियो को स्थायी सुख हुआ। इसलिए कवि कहते हैं सबके उर अनद कियो बासू।

रानियों ने विवाह नही देखा। प्रिय समाचार महाराज के मुख से सुनने के लिए उत्सुक हैं। जिस विवाहसम्बन्धी पत्र को छाती से लगाकर छाती ठण्डी करती थी उस विवाह के वर्णन के सुनने मे भी उन्हे बडा सुख था। महाराज ने सब वर्णन किया। समधियाने का समाचार सुनकर सब हर्षित हो रही है।

जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥४॥

अर्थ : राजा जनक का गुण, शील, बडाई, प्रीति की रीति और सुन्दर सम्पदा का वर्णन राजा ने अनेक प्रकार से वदीजनो की भाँति किया। करणी सुनकर सब रानियाँ प्रमुदित हुईं।

व्याख्या : राजा लोग मितभाषी होते हैं। उनके एक एक शब्दो का मूल्य होता है। जिसकी प्रशसा का एक शब्द उनके मुख से निकल गया उसका महाभाग्य माना जाता था। सो महाराज दशरथ जनकराज के १ गुण २ शील ३ बडाई ४ प्रीति की रीति और ५ सुन्दर सम्पदा से ऐसे प्रभावित है कि उनके वर्णन मे अघाते नही हैं।

१ गुण। यथा : सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बडाइ कै।
प्रमुदित महामुनिवृन्द बदे पूजि प्रेम लडाइ कै।
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे विनय करि आसिस लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति मै न परै कही।
बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाव न दूजा॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥

इत्यादि।

२ शील। यथा सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर सपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोप जल अजलि दिये।
३ बडाई। यथा ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।
अपराध छमिवो बोलि पठयो बहुत हौं ढीटचो कई। इत्यादि।

जनक जी की बडाई है। नही तो लडकेवाल बारात ल्कर आते ही हैं। इसमे विशेषता क्या है। पर यह जनकराज की बडाई है कि बुला भेजने को भी वे अपनी ढिठाई समझ रहे हैं।

४ प्रीति की रीति। यथा बार बार कोसलपति कहही।
जनक प्रेमवस फिरन न चहही॥
दिन प्रति बिदा अवधपति माँगा।
राखहि जनक सहित अनुरागा॥
दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई। इत्यादि।

५ सुहाई सम्पदा। यथा जेहि अवलोक लाकपति लोक सपदा थोरि।
जो सपदा नीचगृह सोहा।
सो बिलोकि सुरनायक मोहा। इत्यादि।

अथवा बहुओ की प्रसन्नता के लिए सविस्तार वर्णन करना महाराज ने उचित समझा। स्त्रियाँ करणी से प्रसन्न होती हैं। ब्याह मे करणी प्रभूत दायज देने को कहा जाता है। अत राजा के दायज दने का हाल सुनकर रानियाँ बडी प्रसन्न हैं। मिले हुए दायज मे कुछ अश बाँटा जाता है। उसके बहुतायत से उन्हे बाँटने म बडा आनन्द होता है।

दो सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पच गइ राति॥३५४॥

अर्थ पुत्रो के सहित स्नान करके राजा ने ब्राह्मण बडे बूढे जातिवालो को बुलाकर अनेक विधि से भोजन किया। रात की पाँच घडियाँ बीत गईं।

व्याख्या यह महाराज का काम्यस्नान श्रमापनोदन के लिए है। इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। भोजन तो वही है जो इष्ट मित्र के साथ किया जाय। ब्राह्मण भोजन तो पहिले ही हो चुका है। इस समय तो अन्तरङ्ग मण्डली जुटी हुई है। ब्राह्मण भी जो अन्तरङ्ग है तथा भाई बिरादरियो म प्रतिष्ठित बडे बूढे हैं उन्हे बुला करके महाराज ने भोजन किया। छ रस, चार विधि, छप्पन प्रकार का भोजन बना था। भोजन करते कराते दो घण्टा रात बीत गई।

मगलगान करहि वर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥
अचै पान सब काहू पाए। स्रक् सुगध भूषित छवि छाए॥१॥

अर्थ सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। सुन्दर रात्रि सुख की मूल हुई।

हाथ मुँह धोकर सबने पान पाये। माला और सुगन्ध से भूषित होकर सुशोभित हुए।

व्याख्या भोजन म स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का अनुभव होता है। केवल शब्द का नही होता। अत सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान करने लगी। पञ्चेन्द्रिय तर्पण के सुख का अनुभव सबने किया। समधियाना नही है। इसलिए गालीगान नही हो रहा है। चैत्र की चाँदनी बडी मनोहर होती है। अत वह रात्रि स्वभाव से सुन्दर होते हुए भी सुख की मूल हुई। यथा जब ते राम व्याहि घर आये। नित नव मगल मोद बधाये।

स्रक् सुगन्ध का विधान केवल गृहस्थ को है। इससे मालूम हुआ कि इस जेवनार म केवल गृहस्थ ही सम्मिलित हुए। विरक्त को रात्रिभोजन का विधान नही है।

रामहि देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोद विनोद बडाई। समउ समाज मनोहरताई॥२॥

अर्थ रामजी को देखकर और राजा की आज्ञा पाकर सब अपने अपने घर प्रणाम करके चल। प्रेम, प्रमोद, विनोद, बडाई, समय, समाज की मनोहरता

व्याख्या चलते समय सबने रामजी का दर्शन किया ध्यान बने रहने के लिए। फिर महाराज से आज्ञा माँग माँगकर घर गये। १ प्रेम २ प्रमोद ३ विनोद ४ बडाई ५ समय ६ समाज मनोहरताई। यथा

प्रेम सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
प्रमोद भोजन कीन्ह अनेक विधि।
विनोद मगलगान करहिं सब भामिनि।
वडाई अँचइ पान सब काहू पाये। राजा के यहाँ से पान मिलना वडाई है।
समय भइ सुखमूल मनोहर जामिनि।
समाज मनोहरता स्रग सुगध भूषित छवि छाये।
इन छ बातो का वर्णन

कहि न सकहिं सब सारद सेसू। वेद विरचि महेस गनेसू॥
सो मै कहौ कवन विधि वरनी। भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी॥३॥

अर्थ सो शारदा, शेष, वेद, ब्रह्मदेव, महेश और गणश नही वह सकते। उसे मै किस विधि से वर्णन करूँ, कचुआ क्या सिर पर पृथ्वी उठा सकता है।

व्याख्या ये ही छ वडे वर्णन करनेवाल हैं। वे भी इन छ विषया का वर्णन नही कर सक्ते

१ शारदा यह वडी प्रेमी है। यथा भगत हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो भी इस प्रेम का वर्णन नही कर सकती।

२ शेप ये पाताललोक के वक्ता हैं। वहाँ भोग अत्यधिक है। सो इस इष्टभोग प्रमोद का वर्णन नही कर सकते।

३ वेद ये रघुपतियशवर्णन मे नही थक्ते। यथा जिनहि न सपनेहु खेद वरनत रघुवर विसद जस। सो विनोद का वर्णन नही कर सकते।

४ विरंचि सवसे बडे हैं। नाम ही पितामह है। सो वडाई का वर्णन नही कर सकते।

५ महेश ये काल के भी काल है। सो इस काल का वर्णन नही कर सकते।

६ गणेश ये मङ्गलमूर्ति है। सो इस समाज की मनोहरता का वर्णन नही कर सक्ते।

मैं असमर्थ और अकेला इनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ। पृथ्वी को शेप ही धारण कर सकते है। दिव्य नाग तक्षक वासुकी आदि की भी धारण करने की सामर्थ्य नही। लौकिक नाग तो धरणी मे ही विलो मे पडे रहते है। वे क्या धारण कर सकेंगे। केचुए का तो नाम मात्र ही भूमिनाग है। उसकी सामर्थ्य लौकिक नागो के सामने भी कुछ नही है। उसके धरणी के उठाने की कथा ही क्या है। सो यह पड्गुणवती पृथ्वी ऐसी है कि उसे शेप भी नही धारण कर सकते। भावार्थ यह कि जिसे शारदादि वर्णन नही कर सक्ते उसे मैं जिसकी गणना प्राकृत कवियो के सामने कुछ नही है क्या वर्णन कर सकता हूँ।

नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु वचन वोलाई रानी॥
वधू लरकिनि पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥४॥

अर्थ राजा ने इस भाँति का सम्मान करके कोमल वचनो से रानियो को वुलाया। बहू अभी बच्ची हैं। पराये घर आई हैं। इन्हे इस भाँति रखना जिस भाँति पलक नयन की रक्षा करता है।

व्याख्या राजा से विधि का पालन होता है। भाव का पालन तो प्रेमपूर्वक कहने से ही होता है। इसलिए मृदु वचन से रानियो को वुलाया और समझाया कि वहुएँ अभी बच्ची हैं। अपना घर नही पहचान सकती। अभी इसे पराया घर समझ रही है। सो इनकी रखवारी इस भाँति करना जैसे पलकें आँखो की करती हैं। कोई कष्ट किसी प्रकार का न होने पावे। पलक को नेत्र के कहने की प्रतीक्षा नही करनी पडती। उसे स्वय सावधान होकर सर्वदा आँखो का पालन करना पडता है। थोडे दिन की वात है। वडी होने पर घर पहिचान लेंगी। तब इतनी सावधानता की आवश्यकता न होगी। इनके साथ ऐसा व्यवहार हो जैसा माता का वेटी के साथ होता है। जनकजी की विनती स्मरण है। अत महाराज सहेजते हैं। मैं इनकी देखरेख नही कर सकता। रानिया ने भी वैसा ही व्यवहार किया।

वनगमन के समय कौसल्याजी कहेंगी नयन पुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाई।

दो लरिका श्रमित उनीद वस, सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे विश्रामगृह, रामचरन चितु लाइ ॥३५५॥

अर्थ लडके थके है। उनीदे हो रहे है। इन्हे ले जाकर सुलाओ। ऐसा कहकर और रामजी के चरणो मे चित्त लगाकर शयनगृह मे गये।

व्याख्या लडके हैं इसलिए थक गये हैं। उनीदवश हो रहे हैं। यथा उठी सखी हँसि मिसकरि कहि मृदु वैन। सिय रघुवर के भये उनीदे नैन। लरिका शब्द मे वधू लरिकनी का भी अन्तर्भाव है। यद्यपि आज रतजगा है पर तुम लोग जाकर सुला दो। महाराज के यहाँ सब कार्यों के लिए पृथक् पृथक् गृह है। महारानियो को सहेजकर चक्रवर्तीजी रामजी के चरण म चित्त लगाकर शयनगृह गये। जितने लोग गये सबने रामजी को हृदय मे रखा। यथा

जनकपुर के याचक वार वार विरदावलि भाखी।
फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बाराती आयसु पाइ राखि उर रामहि।
मुदित गये सब निज निज धामहि॥
गुरुजी उर धरि रामहि सीय समेता।
हरपि कीन्हि गुरु गवन निकेता॥
देवता कहत परसपर राम जस हरख न हृदय समाइ।
विप्र गुरु ज्ञाति रामहि देखि रजायसु पाई।
निज निज भवन गये सुख पाइ॥
स्वय महाराज गे विश्राम गृह राम चरन चित लाइ।

भूप वचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना॥१॥

अर्थ राजा के स्वभाव से ही सुन्दर वचन सुनकर स्वर्ण और मणि जडे हुए पलङ्ग बिछाये। सुन्दर दूध के फेन के समान कोमल अनेक प्रकार के तोशक बिछाये गये।

व्याख्या उनीदे बालको को शयन कराने की आज्ञा स्वभाव से ही सुन्दर है। महाराजा की पलङ्ग भी ठोस सोने की नही होती पलङ्ग के लिए हलका सोना अत्यन्त आवश्यक है। अत वे ठोस सोने की नही थी। स्वर्ण और मणि उनम जडे हुए थे। ऐसी पलङ्गे बिछायी गईं। उन पर तोशक विछाई गईं जो कि गोदुग्ध के फेन सी श्वेत और कोमल थी भैंस के दुग्ध का फेन उतना कोमल नही होता। इसलिए निमिदा भैंस के दूध के फेन का ही बनता है। अति कोमल होने से गाय के दूध के

न का नही बन सकता। अत्यन्त कोमल होने से एक एक पलङ्ग पर कई तोशकें बछायी गईं महारानियाँ स्वय काम मे लग गइ।

उपवरहन वर बरनि न जाही। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥२॥

अर्थ अच्छे अच्छे तकिये जिनका वर्णन नही हो सकता। मणि के मन्दिर म फूल की मालाओ की सुगन्ध थी। रत्न के दीप और सुन्दर चँदोए कहते नही बनते। वे ही जानते हैं जिन्होने देखा है।

व्याख्या बरनि न जाही कहकर तकियो का बहुत्व सूचित किया। प्राचीन रीति थी कि पतले पतले पचासो तकिये रक्खे जाते थे। जिसमे सोनेवाला अपने सुभीते के अनुसार उनकी ऊँचाई निचाई घटा बढा सके। मणि जटित मन्दिर स्वभाव से शीतल थे। उनमे रत्न के दीप रखे गये। जिनमे ऐसी ठण्डी रोशनी निकलती थी जिसमे सोने मे आँख न चमके। फूल की मालाओं से काम लिया गया। जिसम भीनी भीनी सुगन्धि कमरे मे भरी रहे।

जीवजन्तु का प्रवेश न हो सके इसलिए पलङ्गो के ऊपर चँदोए थे। जिनमे परदे लटक रहे थे। आजकल उसे मसहरी कहते हैं। वे सबके सब ऐसे सुन्दर थे जिनका वर्णन नही हो सकता था देखते ही बनता था।

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढाए॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥३॥

अर्थ सुन्दर सेज रचकर रामजी को उठाया और प्रेम समेत पलङ्गपर पौढाया। रामजी ने बार बार आज्ञा भाइयो को दी। तब वे लोग भी अपने पलगा पर जाकर सोये।

व्याख्या रामजी के सामने महाराज ने आज्ञा नही दी थी। माँ के बिठाये जानकीजी के साथ सिंहासन पर बैठे थे। माँकी आज्ञा हो तो उठें। इसलिए माँ ने वहाँ से उठाया और प्रेम के साथ लिवा लाईं और पलग पर लिटा दिया। रामजी के साथ सब भाई चले आये परन्तु विनय के कारण सो नही रहे हैं। जब रामजी ने बार बार आज्ञा दी तब वे लोग भी अपने पलङ्गो पर गये और सोये।

देखि स्याम मृदु मजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताडिका मारी॥४॥

अर्थ सुन्दर श्याम कोमलगात देखकर सब माताएँ प्रेम से कहती हैं कि रास्ते मे जाते हुए भारी भयावनी ताडका को बेटा तुमने कैसे मारा ?

व्याख्या रामजी के रूप मे अलौकिक सुन्दरता है। अद्भुत श्यामता है और अतीव कोमलता है। इसे देखकर माताओ को ताडका का भयानक रूप अत्यन्त उग्रता और अलौकिक पराक्रम जो सुन रक्खा था उसी की याद आई।

मनमे कोई विधि ही नही वैठती जिससे इस कोमल शरीर द्वारा उसका वध हो सके। अत स्वय रामजी से ही विधि पूछती है। माता का वात्सल्य इनके अद्भुत पुरुषार्थ की महिमा को हृदय म स्थान नही देने देता।

दो घोर निसाचर विकट भट, समर गनहि नहि काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

अर्थ भयानक राक्षस, बडे विकट योद्धा, युद्ध मे किसी को गिननेवाले नहीं ऐसे मारीच और सुवाहु खल को सेना सहित कैसे मारा ?

व्याख्या घोर निशाचर कहकर सुबाहु मारीच को अत्युत्कट मायावी कहा। विकट भट कहकर उनका महावल और युद्धकौशल कहा। समर गनै नहि काहु कहकर उनका महापराक्रम कहा। खल कहकर उनका युद्ध मे समरधर्मोल्लघन कहा। सहित सहाय कहकर उनका सेना सहित होना व्यापन किया। स्वय असहाय रहते हुए ऐसो को सेना सहित कैसे मारा ? क्रम से घटनाओ के विषय मे माताएँ प्रश्न करती है। इस व्याज से स्तुति भी कर रही है।

मुनि प्रसाद वलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरैं टारी॥
मख रखवारी करि दुहु भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥१॥

अर्थ मै वलिहारी जाती हूँ। मुनि के प्रसाद से हे तात ! महादेव ने तुम्हारे अनेक अनिष्टयोग दूर किये। दोनो भाइयो ने यज्ञ की रक्षा की। गुरु के प्रसाद से सब विद्या पाई।

व्याख्या रामजी के मुख से कोई उत्तर न पाकर स्वय ही शङ्काओ का समाधान करती हैं। मुनि जी की कृपा से महादेवजी ने ये अरिष्ट योग हटाये। कोई भारी अरिष्ट योग था जो इन राक्षसा का सामना पड गया। महादेवजी सहारकर्त्ता हैं। उन्ही के प्रभाव से ये मारे गये। समाचार सविस्तार पा चुकी हैं। उन्ही का सामञ्जस्य विठाती है। इस भाँति दोनो भाइयो ने मिलकर मुनि के यज्ञ की रखवारी कर ली। भावार्थ यह कि तुमने मारीच सुवाहु को मारा और लक्ष्मण ने सारी निसाचरी सेना मारी। गुरु प्रसाद से वला अतिवला तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या की भी प्राप्ति हुई।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी॥
कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महु सिव धनु तोरा ॥२॥

अर्थ चरण की धूलि लगने से मुनि की स्त्री तर गई। इसकी कीर्ति सारे भुवन म व्याप्त हो गई। कछुए की पीठ, वज्र और निहाई से भी कठिन शिवजी के धनुप को राजसमाज म तोड डाला।

व्याख्या तप ते अगम न कछु ससारा। सो तप से अहल्या न तर सकी। चरणधूलि से घोर ब्रह्मशाप मिट गया। अहल्या तर गई। जितनी ही अद्भुत बात

छन का नहीं बन सकता। अत्यन्त कोमल होने से एक एक पलङ्ग पर कई तोशकें बछायी गईं महारानिया स्वय काम मे लग गइ।

उपवरहन वर बरनि न जाही। स्रग सुगंध मनिमंदिर माही॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥२॥

अर्थ अच्छे अच्छे तकिये जिनका वर्णन नही हो सकता। मणि के मन्दिर मे फूल की मालाओ की सुगन्ध थी। रत्न के दीप और सुन्दर चँदोए कहते नही बनते। वे ही जानते हैं जिन्होंने देखा है।

व्याख्या बरनि न जाही कहकर तकियो का बहुत्व सूचित किया। प्राचीन रीति थी कि पतले पतले पचासो तकिये रक्खे जाते थे। जिसमे सोनेवाला अपने सुभीते के अनुसार उनकी ऊँचाई निचाई घटा बढा सके। मणि जटित मन्दिर स्वभाव से शीतल थे। उनमे रत्न के दीप रक्खे गये। जिनमे ऐसी ठण्ढी रोशनी निकलती थी जिसमे सोने मे आँख न चमके। फूल की मालाओ से काम लिया गया। जिसमे भीनी भीनी सुगन्धि कमरे मे भरी रहे।

जीवजन्तु का प्रवेश न हो सके इसलिए पलङ्गो के ऊपर चँदोए थे। जिनमे परदे लटक रहे थे। आजकल उसे मसहरी कहते हैं। वे सबके सब ऐसे सुन्दर थे जिनका वर्णन नही हो सकता था देखते ही बनता था।

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढाए॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥३॥

अर्थ सुन्दर सेज रचकर रामजी को उठाया और प्रेम समेत पलङ्गपर पौढाया। रामजी ने बार बार आज्ञा भाइयो को दी। तब वे लोग भी अपने पलगो पर जाकर सोये।

व्याख्या रामजी के सामने महाराज ने आज्ञा नही दी थी। माँ के बिठाये जानकीजी के साथ सिंहासन पर बैठे थे। माँकी आज्ञा हो तो उठे। इसलिए माँ ने वहाँ से उठाया और प्रेम के साथ लिवा लाईं और पलग पर लिटा दिया। रामजी के साथ सब भाई चले आये परन्तु विनय के कारण सो नही रहे हैं। जब रामजी ने बार बार आज्ञा दी तब वे लोग भी अपने पलङ्गो पर गये और सोये।

देखि स्याम मृदु मजुल गाता। कहहि सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़िका मारी॥४॥

अर्थ सुन्दर श्याम कोमलगात देखकर सब माताएँ प्रेम से कहती हैं कि रास्ते मे जाते हुए भारी भयावनी ताडका को बेटा तुमने कैसे मारा?

व्याख्या रामजी के रूप मे अलौकिक सुन्दरता है। अद्भुत श्यामता है और अतीव कोमलता है। इसे देखकर माताओ को ताडका का भयानक रूप अत्यन्त उग्रता और अलौकिक पराक्रम जो सुन रक्खा था उसी की याद आई।

मनमे कोई विधि ही नही बैठती जिससे इस कोमल शरीर द्वारा उसका वध हो सके। अत स्वय रामजी से ही विधि पूछती हैं। माता का वात्सल्य इनके अद्भुत पुरुषार्थ की महिमा को हृदय मे स्थान नही देने देता।

दो घोर निसाचर विकट भट, समर गनहि नहि काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

अर्थ भयानक राक्षस, बडे विकट योद्धा, युद्ध मे किसी को गिननेवाले नही ऐसे मारीच और सुबाहु खल को सेना सहित कैसे मारा ?

व्याख्या घोर निशाचर कहकर सुबाहु मारीच को अत्युत्कट मायावी कहा। विकट भट कहकर उनका महाबल और युद्धकौशल कहा। समर गनै नहि काहु कहकर उनका महापराक्रम कहा। खल कहकर उनका युद्ध मे समरधर्मोल्लघन कहा। सहित सहाय कहकर उनका सेना सहित होना ख्यापन किया। स्वय असहाय रहते हुए ऐसो को सेना सहित कैसे मारा ? क्रम से घटनाओ के विषय मे माताएँ प्रश्न करती हैं। इस व्याज से स्तुति भी कर रही हैं।

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरे टारी ॥
मख रखवारी करि दुहु भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥१॥

अर्थ मैं बलिहारी जाती हूँ। मुनि के प्रसाद से हे तात ! महादेव ने तुम्हारे अनेक अनिष्टयोग दूर किये। दोनो भाइयो ने यज्ञ की रक्षा की। गुरु के प्रसाद से सब विद्या पाई।

व्याख्या रामजी के मुख से कोई उत्तर न पाकर स्वय ही शङ्काओ का समाधान करती हैं। मुनि जी की कृपा से महादेवजी ने ये अरिष्ट योग हटाये। कोई भारी अरिष्ट योग था जो इन राक्षसो का सामना पड गया। महादेवजी सहारकर्त्ता हैं। उन्ही के प्रभाव से ये मारे गये। समाचार सविस्तार पा चुकी हैं। उन्ही का सामञ्जस्य बिठाती है। इस भाँति दोनो भाइयो ने मिलकर मुनि के यज्ञ की रखवारी कर ली। भावार्थ यह कि तुमने मारीच सुबाहु को मारा और लक्ष्मण ने सारी निशाचरी सेना मारी। गुरु प्रसाद से बला अतिबला तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या की भी प्राप्ति हुई।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महु सिव धनु तोरा ॥२॥

अर्थ चरण की धूलि लगने से मुनि की स्त्री तर गई। इसकी कीर्ति सारे भुवन मे व्याप्त हो गई। कछुए की पीठ, वज्र और निहाई से भी कठिन शिवजी के धनुष को राजसमाज मे तोड डाला।

व्याख्या तप ते अगम न कछु ससारा। सो तप से अहल्या न तर सकी। चरणधूलि से घोर ब्रह्मशाप मिट गया। अहल्या तर गई। जितनी ही अद्भुत बात

होती है उतनी ही शीघ्र और दूर तक वह फैल जाती हैं। अत यश भुवन मे छा गया। दूसरी कीर्ति भी बडी भारी हुई। शिवजी की भुजा का तान सहनेवाले धनुष के सामने कमठपीठ, वज्र और निहाई की कठोरता क्या है? जिसे देखकर रावण बाणासुर धीरे से खिसक गये। उसे राजसमाज के बीच तोड डाला। नृप समाज कहने का भाव यह कि द्वीप द्वीप के राजा आये थे। अत यह कीर्ति द्वीप द्वीप मे अनायास फैल गई।

बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई॥
सकल अमानुस करमु तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे॥३॥

अर्थ विश्वविजय का यश और जानकी प्राप्त की और सब भाई व्याह कर घर आये। ये सब तुम्हारे अमानुष कर्म केवल विश्वामित्रजी की कृपा से बन गये।

व्याख्या जनकजी ने कहा था कुँअरि मनोहरि विजय बडि। सो दोनो की प्राप्ति हुई। चिट्ठी एक व्याह के लिए आई सो चारो भाई व्याह करके आये। ये छवो कर्म तुम्हारे अमानुष है। ये छवो भग ऐश्वर्य है भगवान् मे रहते हैं। १ शरीर की परवाह न करके यज्ञरक्षा की यह वैराग्य है २ विद्या प्राप्ति की यह ज्ञान है ३ अहल्यासन्तरण यह धर्म है। ४ ईश्वर के धनुष का तोडना यह ऐश्वर्य है ५ जानकी की प्राप्ति यह यश है ६ व्याह कर श्री को घर म लाये यह श्री है। सो यह सब बात जो तुमसे हुई वह केवल विश्वामित्रजी की कृपा से ही सम्भव हुई। उन्होने पहिल ही कहा था इन कर अति कल्यान सोई हुआ।

आजु सुफल जग जनम हमारे। देखि तात बिधुबदन तुम्हारे॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहि लेखे॥४॥

अर्थ हे तात! आज तुम्हारा मुखचन्द्र देखने से हमारा जन्म सुफल हुआ। जितने दिन तुम्हारे बिना देखे बीते है ब्रह्मदव उन्हे लखे म न डालें।

व्याख्या इन विपत्तियो को पार करके सब भाँति से तुम्हे कृतकार्य हुए देखकर हमारा जन्म सफल हुआ। लेखे म डालने से फिर उससे काम पडता हैं। अत जो दिन तुम्हे बिना देखे बीते है उन दिनो के कष्ट को ब्रह्मदेव फिर न दिखाव। यथा

रिषि नप सीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुर सचिव निपुन नेवनि अवरेव न समुझि सुधारी॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहि सहाय पयादहि केलि बान धनुधारी॥
अतिसनेह कातरि माता कहैं सुनि सखि बचन दुखारी।
बादि बीर जननी जीवन जग छत्रि जाति गति भारी॥
जो कहिहैं फिरे राम लषन घर करि मुनि मख रखवारी।
सो तुलसी प्रिय मोहि लागि हैं ज्यो सुभाय सुत चारी॥

जबते लै मुनि सग सिधाये।
रामलपन के समाचार सखि तवते कछुअ न पाये॥
विनु पानही गमन फल भोजन भूमि सयन तरु छाहीं।
सरसरिता जलपान, सिसुन के सग सुसेवक नाही॥

दो. राम प्रतोपी मातु सब, कहि विनीत वर वैन।
सुमिरि संभु गुर विप्रपद, किए नीदवस नैन ॥३५७॥

अर्थ रामजी ने विनीत मृदु वचन कहकर सब माताओ को परितुष्ट किया और शम्भु गुरु और ब्राह्मण के चरणो का स्मरण करके आँखो को नीद के वश कर दिया।

व्याख्या : ऐसे समय मे लोग अपने पराक्रम का वर्णन करते हैं। रामजी ने विनीत मृदु वचन कहकर माता का परितोप किया। विनीत और मृदु वचन से ही परितोप होता है। यथा : माता, पिता, गुरु तीन ही देवता हैं। इन्ही की कृपा से सब कल्याण है। आपके चरणो के तथा गुरुचरणो के प्रभाव से सब हुआ इत्यादि। शिवजी ही गुरु और ब्राह्मण रूप हैं। शिवजी ही सुपुप्ति के प्रभु हैं। अत सुपुप्ति के प्रारम्भ मे इन्ही का स्मरण किया।

नीदउ वदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहिं जागरन नारी। देहिं परसपर मंगल गारी॥१॥

अर्थ अत्यन्त लावण्यमय मुख नीद मे भी शोभा देता था जैसे लाल कमल सन्ध्या को भी शोभा देता है। घर घर स्त्रियाँ जागरण करती थी और एक दूसरे को मङ्गल गालियाँ देती थी।

व्याख्या . अद्भुत लावण्य है जो सोने मे भी वैसा ही वना रहता है जैसा जागने मे। यथा . साँवर कुँवर सखी सुठिलोना। जिस भाँति लाल कमल की शोभा सन्ध्या के समय भी बनी रहती है। सन्ध्या के समय कमल सकुच जाते हैं। अस्त होते हुए सूर्य की लाल किरणो से उनका रग फीका पड जाता है। पर लाल कमल का रग फीका नही पड़ता।

महाराज के अन्त पुर मे रतजगा है। अत नगर भर मे स्त्रियाँ जागरण करती हैं। रतजगा के दिन स्त्रियाँ ही रात को गाना बजाना करके जागती हैं। मर्द लोग नही जागते। इसीलिए स्त्रियो का ही जागरण लिखते हैं। वे उस समय एक दूसरे को मङ्गल गाली भी देती हैं। वैर की गाली अमङ्गल रूप है। उत्साह मे प्रेम की गाली मङ्गलरूप मानी जाती है। यथा : सुधा सनेही गारि। अर्थात् घर घर उत्सव इस भाँति मनाया जाता है मानो स्वय उन घरो मे व्याह पडा हो। इससे प्रजावर्ग की अद्भुत सहानुभूति कही।

पुरी [1]विराजति राजति रजनी । रानी कहहिं बिलोकहु सजनी ॥
सुदरि बधुन्ह सासु लइ सोई । फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई ॥२॥

अर्थ रानी कहती है कि सखी! देखो पुरी विराजमान है। रात शोभा पा रही है। सुन्दर बहुओं को सास गोद में लेकर सोईं। जैसे सर्प सिर की मणि हृदय में छिपाये हो।

व्याख्या रानियाँ रात को अटारी पर से पुर की शोभा देखती है और सखी को दिखलाती है। महाराज कुमारों का व्याह करके लौटे हैं। इस आनन्द म रोशनी हुई है। अत कहती हैं कि पुरी विराजमान है गान और दीपमाला से तथा चाँदनी रात से शोभित है। राम बिना सब सूना था।

इधर सुन्दर बहुओं को लेकर सास लोग सोईं। वे रतजगा मे सम्मिलित नहीं हुईं। महाराज की आज्ञा से वधुओं को छोड़ना नहीं चाहती। कवि उपमा देते हैं कि जैसे सर्प अपने सिर की मणि अपने कलेजे के तल दावकर सोया हो। किसकी सामर्थ्य कि निकट जा सके। इसी भाँति रानियाँ वेटी की भाँति वधुओं को कलेजे से लगाकर सोई हैं। जिनम उन्हें माँ का स्मरण न हो। सर्प की मणि उनके सिर म रहती हैं। वह उसीसे उत्पन्न होती है और उस बहुत प्यारी है। इसीलिए सिरमनि उर गोई से उपमा देते हैं।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे । अरुनचूड वर बोलन लागे ॥
बदि मागधिन्ह गुन गन गाए । पुरजन द्वार जोहारन आए ॥३॥

अर्थ प्रभात के पुण्यकाल के समय मे प्रभु जग गये। मुर्गे बोलने लगे। वन्दी मागधो ने गुणगण का गान किया। पुर के लोग जोहार करने आये।

व्याख्या प्रभात म भी उषाकाल अति पवित्र है उसी समय प्रभु जाग गये। चारो भाइयो का जागने म सोने म भोजन म, खेलने म कभी साथ नहीं छूटता। यथा सिसुपन ते परिहरेउ न सगू। प्रभु के जागने के बाद मुर्गे बोलने लगे। राजाओ के जागने के लिए वन्दी मागध गुणगान करते हैं। वे मुर्गा बोलने के बाद गुणगान करने लगे और भली भाँति सवेरा होने पर पुरजन राजद्वार पर जोहार करने के लिए आये।

बदि बिप्र सुर गुरु पितु माता । पाइ असीस मुदित सब भ्राता ॥
जननिन्ह सादर बदन निहारे । भूपति सग द्वार पगु धारे ॥४॥

अर्थ ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माता की वन्दना कर और आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माँ ने आदर के साथ मुख देखा और राजा के साथ दरवाजे पर पधारे।

---

१ दीपकावृत्ति तृतीय है।

व्याख्या प्रात काल उठकर ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माता पाँचो की वन्दना करनी चाहिए। इनमें से कौन पहिले मिलेगा कौन पीछे मिलेगा इसका ठीक नही हैं। इसीलिए यहाँ क्रम नही दिया। परन्तु चारो भाई इन पाँचो को वन्दना प्रात काल करते थे। इतने दिन माता की वन्दना नही हो सकी थी। आशीर्वाद माता से नही मिला था। आज पाँचो से आशीर्वाद मिला है। इससे सब भाई बडे प्रसन्न है। माताओ ने भी आदर के साथ पुत्रमुखावलोकन प्रात काल ही किया। ऐसा सयोग महीनो से इधर नही हुआ था। महाराज जब द्वारा पर जाने लगे तो चारो भाई साथ गये। रात्रि तीन प्रहर की मानी जाती है। इसलिए सोने के समय तीन का स्मरण किया। यथा : वंदि सभु गुरु विप्र पद किये नीद बस नैन। दिन पाँच प्रहर का माना जाता है। इसलिए जागकर पाँचकी वन्दना की।

दो. कीन्ह सौच सब सहज सुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहि, आये चारिउ भाइ ॥३५८॥

अर्थ : स्वभाव से ही पवित्र चारो भाइयो ने शौच से निवृत्त होकर पवित्र नदी मे स्नान किया और प्रात.काल का नित्य कृत्य करके पिता के पास चारो भाई गये।

व्याख्या : चारो भाई स्वभाव से ही शुचि अर्थात् पवित्र हैं। क्योकि उनका सकल्पमय शरीर है भौतिक नही है। यथा . इच्छामय नर देह सँवारे। होइहो प्रगट निकेत तुम्हारे। फिर भी मर्यादा पालन के लिए जल मृत्तिकादि से शौच करते है। तत्पश्चात् पुण्य नदी सरयू मे अवगाह : स्नान किया। सन्ध्या वन्दनादि नित्य कृत्य किया। तब चारो भाई पिता के पास गये। यह ससार को उपदेश है कि देवतादि का स्मरण करके सोना और जागकर माता, पिता, गुरु, देवता ब्राह्मणादि की वन्दना करना फिर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर घर के बाहर जाकर अवगाह स्नान तथा सन्ध्यावन्दनादि करके तब व्यवहार मे प्रवृत्त होना चाहिए। श्रीरामजी के आचरण का अनुकरण ही सब कल्याणो का मूल है।

भूप बिलोकि लिये उर लाई। बैठे हरषि रजायसु पाई ॥
देखि राम सब सभा जुडानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी ॥१॥

अर्थ : राजा ने देखकर हृदय से लगा लिया। राजाज्ञा पाकर प्रसन्न होकर बैठे। श्रीरामजी को देखकर सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो उठा। सबने यही अनुमान किया कि यही आँखो के लाभ की परा सोमा है।

व्याख्या महाराज ने आंखो से प्रियदर्शन पुत्रो की शोभा देखी। देखकर हर्षित हुए। प्रेम उमगा तो हृदय से लगाया। पर ये लोग प्रश्रय : अदब से खडे रहे। जब महाराज की आज्ञा हुई तब अपने अपने आसनो पर विराजमान हुए। राज सभा मे सबके आसन नियत रहते हैं। वहीं उसे बैठाना पड़ता है। प्रात काल

जब उठे थे तब प्रणाम करने पर आशीर्वाद पाकर हर्ष हुआ। इस समय महाराज के हृदय लगाकर सत्कार करने से हर्षित हैं। जब चारो भाई गये उस समय महाराज सभा मे आगये थे। सभा लगी हुई थी। राज्यभार महाराज पर है। अत वे शीघ्रता से सब कृत्यो से निवृत्त होकर सभा मे आगये थे। कई महीनो पर आज राजसभा लगी है।

महाराज को तो रामजी को देखकर हर्ष हुआ ही सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो गया। भाव यह कि रामजी की अनुपस्थिति मे सभासद भी विरहव्यथा का अनुभव करते थे। आज वह व्यथा दूर हुई। पहिले भी रामजी का समाचार सुनकर सभा हर्षित हुई थी। यथा हरषी सभा बात सुनि साँची। आज दर्शन से तो अत्यन्त तृप्ति हुई। अनुमान किया कि इतना ही नेत्रो के मिलने का परम फल है। य लब्ध्वा नापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।

पुनि वसिष्ठ मुनि कौसिक आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुर अनुरागे॥२॥

अर्थ तब वसिष्ठ और विश्वामित्रजी आये। सुन्दर आसनो पर मुनियो को बिठाया। बेटो के सहित पूजन किया। पैर पर गिरे। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग मे आगये।

व्याख्या तब वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। दोनो महात्मा साथ ही आये। बडा प्रेम है। आने के समय वसिष्ठजी उन्हें साथ लेते आये। महाराज ने दोनो महात्माओ को सिंहासन दिया। उस समय सभाभवन म तीन सिंहासन लगे थे। तीनो पर चँवर हो रहा था। महाराज ने पुत्रो के सहित पूजा की। रानियाँ ऊपर बैठी है। भरी सभा होने से नही आईं। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग म आगये। जनकपुर मे सखी ने ठीक कहा था कि कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। कवि तो कहते हैं कि ठगि सी रही जो न ठगे धिक से।

कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहि महीस सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदितवसिष्ठ विपुल विधि बरनी॥३॥

अर्थ वसिष्ठजी धर्म के इतिहास कहते है और राजा रनिवास के साथ सुनत हैं। गाधि के पुत्र की करणी मुनियो को भी मन से अगम थी। उसे आनन्दित होकर अनेक विधि से वर्णन किया।

व्याख्या इतने दिनो पर राजसभा लगी है फिर भी कोई व्यवहार मुकदमा नही है। यहाँ व्यवस्था ऐसी थी कि सभा नित्य लगती थी पर व्यवहार मुकदमा एक भी नही। कारागार बने है पर कैदी एक भी नही। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो तब तक राज्य की व्यवस्था ठीक नही। कारण यह था कि राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। राजा के धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मिष्ठ हो जाती है। राजा के सम होने से सम

रहती है। राजा के पापी होने से पापी होती है। प्रजा राजा को ही आदर्श मानकर चलती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। प्रजा का आदर्श राजा है। सो यहाँ कोई व्यवहार देखना न रहा। वसिष्ठजी धर्मेतिहास सुनाते थे। रनिवास के सहित महाराज सुनते थे। सारी प्रजा ने वही रास्ता पकड रक्खा था। सब धर्मेतिहास सुनते हैं। उसी का सस्कार दृढ रहता है। पापाचरण होता ही नही। मुकदमा क्यो होगा। राज्य व्यवस्था चलाने का प्रधान कार्य धर्मेतिहास श्रवण है। वही हो रहा है। स्वय ब्रह्मर्षि वसिष्ठजो वक्ता हैं। पुन दारा सभासद के सहित राजर्षि दशरथ श्रोता हैं। सभा मे धर्मेतिहास हो रहा है। आज विश्वामित्रजी का इतिहास वसिष्ठ जो वर्णन करने लगे। 'गाधिसुत' कहने का भाव यह कि विश्वामित्रजी राजा गाधि के पुत्र थे। सो ऐसी तपस्या की कि उसके बल से क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। जैसी तपस्या उन्होने की उसे मुनि लोग मन से भी नही सोच सकते। महात्मा दूसरे के पुण्य मे बडे आनन्दित होते हैं। अत इनकी करणी वर्णन करने मे मुनिजी को मोद है। जिसके सौ पुत्रो को विश्वामित्रजी ने शाप देकर मारा था और तप बल के सामने सौ ब्रह्महत्या उनकी कुछ न कर सकी उस विश्वामित्र की अद्भुत तपस्या के वर्णन मे · अपने शिष्यसमाज के सामने वसिष्ठजी को बडा हर्ष हो रहा है। यह मुदित का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वसिष्ठजी की कितनी महत्ता विश्वामित्रजी के महत्ता-वर्णन से बढ गई। इसका सहृदय व्यक्ति ही अनुमान कर सकता है।

बोले बामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची ॥
सुनि आनदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू ॥४॥

अर्थ · वामदेवजी ने कहा कि यह सब सच्ची बात है। इनकी सुन्दर कीर्ति तीनो लोक मे व्याप्त है। सुनकर सबको आनन्द हुआ। पर राम लक्ष्मण के हृदय मे बडा उछाह हुआ।

व्याख्या वसिष्ठजी के वर्णन के उपरान्त महर्षि वामदेव ने उसका अनुमोदन किया। कहा कि यह सब सत्य घटना है। इसमे अर्थवाद नही है। बात को मन मे बिठाने के लिए उसे बडे आरोप से कहा जाता है। ऐसे आरोप को असत्य नही माना जाता। क्योकि उससे सत्य सस्कार ही मन म बैठता है। सो इनकी अद्भुत तपस्या के वर्णन मे अर्थवाद का किसी को भ्रम न हो इसलिए वामदेवजी ने अनुमोदन करते हुए कहा कि इसमे कुछ भी अत्युक्ति नही है। यथार्थ घटना का वर्णन वसिष्ठजी ने किया है। सभा मे सब सज्जन लोग हैं। सभी सुनकर मुदित हुए। राम लक्ष्मण के तो ये गुरु ही ठहरे। अत· गुरुजी की पुण्य कीर्ति सुनकर उनके हृदय मे अत्यन्त उछाह हुआ।

दो. मगल मोद उछाहु नित, जाहि दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥३५९॥

अर्थ नित्य मङ्गलमोद और उछाह है। इस भाँति दिन बीत रहा है। आनन्द भरकर अयोध्या उमग पडी। सो दिन दिन अधिक होती जा रही है।

जब उठे थे तब प्रणाम करने पर आशीर्वाद पाकर हर्ष हुआ। इस समय महाराज के हृदय लगाकर सत्कार करने से हर्षित है। जब चारो भाई गये उस समय महाराज सभा मे आगये थे। सभा लगी हुई थी। राज्यभार महाराज पर है। अत वे शीघ्रता से सब कृत्यो से निवृत्त होकर सभा मे आगये थे। कई महीनो पर आज राजसभा लगी है।

महाराज को तो रामजी को देखकर हर्ष हुआ ही सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो गया। भाव यह कि रामजी की अनुपस्थिति मे सभासद भी विरहव्यथा का अनुभव करते थे। आज वह व्यथा दूर हुई। पहिले भी रामजी का समाचार सुनकर सभा हर्षित हुई थी। यथा हरषी सभा बात मुनि साँचो। आज दर्शन से तो अत्यन्त तृप्ति हुई। अनुमान किया कि इतना ही नेत्रो के मिलने का परम फल है। य लब्ध्वा नापर लाभ मन्यते नाधिक तत।

पुनि वसिष्ठ मुनि कौसिक आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुर अनुरागे॥२॥

अर्थ तब वसिष्ठ और विश्वामित्रजी आये। सुन्दर आसनो पर मुनियो को बिठाया। बेटो के सहित पूजन किया। पैर पर गिरे। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग मे आगये।

व्याख्या तब वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। दोनो महात्मा साथ ही आये। बडा प्रेम है। आने के समय वसिष्ठजी उन्हे साथ लेते आये। महाराज ने दोनो महात्माओ को सिंहासन दिया। उस समय सभाभवन मे तीन सिंहासन लगे थे। तीनो पर चँवर हो रहा था। महाराज ने पुत्रो के सहित पूजा की। रानियाँ ऊपर बैठी है। भरी सभा होने से नही आईं। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग मे आगये। जनकपुर मे सखी ने ठीक कहा था कि कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। कवि तो कहते हैं कि ठगि सी रही जो न ठगे धिक से।

कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहि महीस सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदितवसिष्ठ विपुल विधि वरनी॥३॥

अर्थ वसिष्ठजी धर्म के इतिहास कहते है और राजा रनिवास के साथ सुनते है। गाधि के पुत्र की करणी मुनियो को भी मन से अगम थी। उसे आनन्दित होकर अनेक विधि से वर्णन किया।

व्याख्या इतने दिनो पर राजसभा लगी है फिर भी कोई व्यवहार मुकदमा नही है। यहाँ व्यवस्था ऐसी थी कि सभा नित्य लगती थी पर व्यवहार मुकदमा एक भी नही। कारागार बने है पर कैदी एक भी नही। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो तब तक राज्य की व्यवस्था ठीक नही। कारण यह था कि राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। राजा के धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मिष्ठ हो जाती है। राजा के सम होने से सम

रहती है। राजा के पापी होने से पापी होती है। प्रजा राजा को ही आदर्श मानकर चलती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। प्रजा का आदर्श राजा है। सो यहाँ कोई व्यवहार देखना न रहा। वसिष्ठजी धर्मेतिहास सुनाते थे। रनिवास के सहित महाराज सुनते थे। सारी प्रजा ने वही रास्ता पकड रक्खा था। सब धर्मेतिहास सुनते हैं। उसी का सस्कार दृढ रहता है। पापाचरण होता ही नही। मुकदमा क्यो होगा। राज्य व्यवस्था चलाने का प्रधान कार्य धर्मेतिहास श्रवण है। वही हो रहा है। स्वय ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी वक्ता हैं। पुत्र दारा सभासद के सहित राजर्षि दशरथ श्रोता हैं। सभा मे धर्मेतिहास हो रहा है। आज विश्वामित्रजी का इतिहास वसिष्ठ जो वर्णन करने लगे। 'गाधिसुत' कहने का भाव यह कि विश्वामित्रजी राजा गाधि के पुत्र थे। सो ऐसी तपस्या की कि उसके बल से क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। जैसी तपस्या उन्होने की उसे मुनि लोग मन से भी नही सोच सकते। महात्मा दूसरे के पुण्य मे बडे आनन्दित होते हैं। अत इनकी करणी वर्णन करने मे मुनिजी को मोद है। जिसके सौ पुत्रो को विश्वामित्रजी ने शाप देकर मारा था और तप बल के सामने सौ ब्रह्महत्या उनकी कुछ न कर सकी उस विश्वामित्र की अद्भुत तपस्या के वर्णन मे : अपने शिष्यसमाज के सामने वसिष्ठजी को बडा हर्ष हो रहा है। यह मुदित का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वसिष्ठजी की कितनी महत्ता विश्वामित्रजी के महत्ता-वर्णन से बढ गई। इसका सहृदय व्यक्ति ही अनुमान कर सकता है।

बोले बामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची ॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू ॥४॥

अर्थ · वामदेवजी ने कहा कि यह सब सच्ची बात है। इनकी सुन्दर कीर्ति तीनो लोक मे व्याप्त है। सुनकर सबको आनन्द हुआ। पर राम लक्ष्मण के हृदय मे बडा उछाह हुआ।

व्याख्या : वसिष्ठजी के वर्णन के उपरान्त महर्षि वामदेव ने उसका अनुमोदन किया। कहा कि यह सब सत्य घटना है। इसमे अर्थवाद नही है। बात को मन मे बिठाने के लिए उसे बडे आरोप से कहा जाता है। ऐसे आरोप को असत्य नही माना जाता। क्योकि उससे सत्य सस्कार ही मन में बैठता है। सो इनकी अद्भुत तपस्या के वर्णन मे अर्थवाद का किसी को भ्रम न हो इसलिए वामदेवजी ने अनुमोदन करते हुए कहा कि इसमे कुछ भी अत्युक्ति नही है। यथार्थ घटना का वर्णन वसिष्ठजी ने किया है। सभा मे सब सज्जन लोग हैं। सभी सुनकर मुदित हुए। राम लक्ष्मण के तो ये गुरु ही ठहरे। अतः गुरुजी की पुण्य कीर्ति सुनकर उनके हृदय मे अत्यन्त उछाह हुआ।

दो. मगल मोद उछाहु नित, जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति ॥३५९॥

अर्थ · नित्य मङ्गलमोद और उछाह है। इस भाँति दिन बीत रहा है। आनन्द भरा अयोध्या उमग पडी। सो दिन दिन अधिक होती जा रही है।

व्याख्या नित नव मगल कोसलपुरी। हरषित रहहि लोग सब कूरो। मङ्गल होने से मोद है और मोद से नित्य नया उत्साह है। इस भाँति दिन बीत रहे है। यथा यथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख सजुत जाहि। अवध मे आनन्द भरा हुआ है। सभी अवधवास चाहते है। अवध मे चले आरहे है एव अवध का विस्तार दिन दिन बढ रहा है।

सुदिन सोधि कल ककन छोरे। मगल मोद विनोद न थोरे ॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाही। अवध जनम जाचहि विधि पाही ॥१॥

अर्थ अच्छा दिन देखकर सुन्दर कगन छोरे गये। मङ्गल मोद और विनोद थोडा नही हुआ। नित्य नया सुख देखकर देवगण सिहाते है और अवध मे जन्म पाने के लिए ब्रह्मा से प्रार्थना करते है।

व्याख्या अभी तक कगन नही छूटा है। उसके लिए सुदिन देखा गया। मङ्गलगान से मोद और कगन के जूआ म हार जीत होती है। उसमे बडा विनोद होता है। यथा जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। जीत हार मिस देहि गारि दोउ रानिन्ह। मनुष्य लोग तो अवध मे जाकर वस भी जाते है। देवता तो इस तरह वस नही सकते। उनके सुरलोक मे वही प्राचीन सुख है। वहाँ सुख मे नवीनता नही। सुरस्त्रीगण पार्वतीजी के शाप से वन्ध्या हैं। अत गृहस्थी के सुख मे नवीनता नही है। इसलिए अवध का सुख देखकर सिहाते हैं। ब्रह्मदेव से माँगते हैं कि आपने जन्म वन्दर भालू मे दे दिया। अभी दश सहस्र वर्ष राज्य करेंगे। इस बीच मे यदि अवध मे जन्म मिल जाता तो यह नित्य नवीन सुख हम भी भोग लेते।

विस्वामित्र चलन नित चहही। राम सप्रेम विनय वस रहही ॥
दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ ॥२॥

अर्थ विश्वामित्रजी नित्य ही जाना चाहते हैं। पर रामजी के स्नेह और विनय के वश होकर रह जाते हैं। दिन पर दिन राजा का सौगुना भाव देखकर महा-मुनियो के राजा विश्वामित्रजी प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या जिस तप के प्रभाव से ये दिन देखने को आये उसे छोडना नही चाहते। रामजी का दर्शन उसी तप का फल है। अत तप साधन के लिए जाना चाहते हैं। नित्य छुट्टी माँगते है। पर रामजी का स्नेह और विनय ऐसा है कि रह जाते हैं। राजा का भाव वृद्धिक्रम पर है जिस भाँति जनकजी का था। यथा नित नव सहस भाँति पहुनाई। विश्वामित्रजी समझते हैं कि यह क्रम कितना कठिन है। ससार मे तो ठीक इसके विपरीत दिखाई पडता है। यथा चार दिना को पाहुनो काढ खियावै सोन। तुलसी नित को कठिन है दैवो लोटी नोन। अत महाराज दशरथ के भावभक्ति की विश्वामित्रजी प्रशसा करते है।

माँगत विदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ भे आगे ॥
नाथ सकल सपदा तुम्हारी। मै सेवक समेत सुत नारी ॥३॥

अर्थ विदा माँगते समय चक्रवर्तीजी अनुराग मे आगये। बेटो के सहित आगे खडे हो गये और कहा कि नाथ यह सब सम्पदा तुम्हारी है। मै तो स्त्री पुत्र समेत आपका सेवक हूँ।

व्याख्या देख लिया कि रामजी नही छुट्टी देंगे। अत महाराज से विदा माँगते है। महाराज विदाई देते समय बेटो को लेकर आगे खडे हो गये। भाव यह कि अभी कुछ कृत्य शेष है।

बारात मे विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगाकर अपना छोह दिखलाया था। यथा कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई। अत राजा को उनके प्रति अनुराग हो गया था। सो विदाई के समय उमड पडा। परम कृतज्ञ राजा हैं। पहिले ही कहा था माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देहुँ आज सहरोसा। देह प्रानते प्रिय कछु नाही। सो मुनि दउँ निमिष एक माही। रास्ता रोक्कर खडे हो गये कि सब सम्पदा तुम्हारी है। मै पुत्रदारादि के सहित सेवक हूँ। सो इसका जैसा जब आवश्यक हो उपयोग कीजियेगा।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी ॥४॥

अर्थ सदा बच्चो पर छोह रखियेगा। मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। ऐसा कहकर कुमारो और रानियो के सहित चरणो मे गिरे। उनके मुख से वाणी नही निकलती थी।

व्याख्या लडको पर सदा छोह बनाये रखने की प्रार्थना करते है। आपके छोह से ही इनका कल्याण हुआ और होता रहेगा। मेरा सब कल्याण इन्ही मे केन्द्रीभूत है। मुझे कभी कभी दर्शन दे दीजियेगा। मै आप तक न पहुँच सकूँगा। राजकार्य से अवकाश कम रहता है। सपरिवार चरणो मे पडे। सभी प्रेम से मुग्ध हैं। सबका कण्ठ गद्गद हो रहा है।

दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
राम सप्रेम सग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ॥५॥

अर्थ ब्राह्मण देवता ने बहुत भाँति से आशीर्वाद दिया और चले। प्रीति की रीति कही नही जाती। रामजी प्रेम के साथ सब भाइयो को सग लिये हुए पहुँचाने चल और आज्ञा पाकर लौट आये।

व्याख्या . जब पहिले पहल आये थे राजा के दण्डवत् पर आशीर्वाद नही दिया था। अब उस घाटे को पूरा कर रहे हैं। अनेक भाँति से आशीर्वाद दे रहे हैं। अनेक भाँति आशीर्वाद तो ब्राह्मण ही देते हैं।

स्वामीजो को ॐनमो नारायणाय कहिये तो नारायण कह देते हैं। बाबाजी को दण्डवत् कीजिये तो जय रामजी की कहेगे प्रीति की रीति अनुभव की वस्तु है कहने की नही। सो बिछुरने म बडा ही कष्ट होता है। यथा : बिछुरत एक प्रान हरि

लेही। यहाँ मङ्गल के समय कवि ने इतना ही कहा। मुनिजी को पहुँचाने भाइयो के साथ स्वय सरकार चले। मुनिजी से सब उपकार चारो भाइयो का हुआ है। अत प्रेम के साथ पहुँचाने जाते हैं। फिरने के लिए मुनिजी की आज्ञा हुई तब लौटे।

दो रामरूप भूपति भगति, व्याहु उछाहु अनंद।
जात सराहत मनहि मन, मुदित गाधिकुल चंद ॥३६०॥

अर्थ रामजी के रूप महाराज की भक्ति और व्याह के उछाह और आनन्द की प्रशसा गाधिकुलचन्द विश्वामित्रजी प्रसन्न होकर मन ही मन करते जाते थे।

व्याख्या अकेले ही मुनिजी चले। गाधिकुलचन्द हैं। राजा रह चुके हैं। अनेक व्याह उछाह और आनन्द देखा है। पर ऐसा योग तो नही देखा राम सरिस वर दुलहिन सीता। समधी दसरथ जनक पुनीता। न ऐसी भक्ति किसी राजा मे देखी। यथा दिन दिन सौगुन भूपति भाऊ और न ऐसा उछाह और आनन्द देखा। यथा उमगी अवध अनद भरि अधिक अधिक अधिकाति। अत मन ही मन सराहते जाते है। दूसरा भाव मन मे उदय नही हो रहा है। ब्राह्मण हैं। इसलिए चन्द्र से उपमा दी। चन्द्र ब्राह्मणो के राजा है। यथा सोमोऽस्माक ब्राह्मणाना राजा।

वामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधि सुत कथा बखानी ॥
सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राऊ। वरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ॥१॥

अर्थ ज्ञानी वामदेव रघुकुल के गुरु ने वार वार गाधिसुत की कथा बखान कर कही। मुनिजी का सुयश सुनकर मन ही मन राजा अपने पुण्य का वर्णन करने लगे।

व्याख्या विश्वामित्रजी के चरित्र का वर्णन जो उनके सामने कहा गया था उसी का वर्णन फिर वामदेव और वसिष्ठजी ने किया। इस बार वामदेवजी ने वर्णन किया और वसिष्ठजी ने अनुमोदन किया। मुहदेखी न समझा जाय। इसलिए उनके सामने प्रशसा पूरी तरह से नही कर पाये थे। अत अब उनके परोक्ष मे सब कथा बखान कर कही। इस समय सभा की सभा चारो भाइयो के साथ विश्वामित्रजी को पहुँचाने गई है। इसलिए मुनि का सुयश सुनकर राजा मन ही मन अपने पुण्य के प्रभाव का वर्णन करने लगे। किसी के आगमन मे अपने पुण्य के प्रभाव वर्णन से आनेवाले की ही महत्ता द्योतित होती है।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ ॥
जहँ तहँ राम व्याह सबु गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा ॥२॥

अर्थ राजाज्ञा हुई लोग लौट गये। बेटो के साथ महाराज घर गये। जहाँ तहाँ रामजी के व्याह का सब गान कर रहे थे। पवित्र सुयश तीनो लोको मे छा गया।

व्याख्या : सब लोग विश्वामित्र को पहुँचाकर सभा में आ रहे थे। पर ज्ञा लौट जाने के लिए हुई और स्वय महाराज बेटो के साथ अन्त पुर में चले । भाव यह कि सभा समाप्त हो गई।

रामजी का विवाह ऐसे धूम धाम से और ऐसे आनन्द से हुआ कि तीनो-को में इसकी चरचा फैल गई। इस सुयश के गान से तीनो लोक पवित्र हुए और समय भी उसके गान से लोग पवित्र होते हैं। अत उस सुयश को पुनीत हा गया।

ाये व्याहि राम घर जवतें। वसे अनंद अवध सब तवतें ॥
भु विवाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न वरनि गिरा अहिनाहू ॥३॥

अर्थ : जब से राम व्याह करके घर आये तब से सब आनन्द अवध मे बस गये। प्रभु के विवाह में जैसा उछाह हुआ उसे सरस्वती और शेष नही कह सकते।

व्याख्या : पहिले आनन्द सबके हृदय मे बसे थे। यथा · सबके उर अनद किपो वासू। अब तो अवध मे बस गये। अथवा सब आनन्द एक जगह नही ठहर सकते थे। कभी जनकपुर मे जगदम्बा के पास चले जाते थे। कभी अवध मे लौट आते थे। अब तो जगदम्बा यही आकर रहने लगी। अतः सब आनन्द यही . अवध में बस गये।

प्रभु के विवाह मे जैसा उछाह हुआ वैसा न कभी स्वर्ग मे हुआ न पाताल में हुआ। उस समय मर्त्यलोक ही सबसे ऊपर हो गया था। इसीलिए कहते हैं कि सरस्वती शेष नही कह सकते। अथवा वाणी की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती हैं और दो सहस्र जिह्वावाले शेष हैं। उनके सामर्थ्य के बाहर की बात है कि उसका वर्णन कर सकें।

कविकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी ॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥४॥

अर्थ : राम सीता के यश को कविकुल का जीवन और पवित्र तथा मङ्गल-खानि जानकर अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए मैंने थोडा सा बखान कर कहा।

व्याख्या : रामयश का वर्णन करने के लिए ही ब्रह्मदेव की प्रेरणा से पद्य का प्रादुर्भाव वाल्मीकिजी के हृदय से हुआ। वे आदिकवि हुए। शेष सभी कवि उन्ही का अनुसरण करते हैं। अत राम सीय यश ही सब कवियो का जीवन है। जेहि सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। अत पावन है। यथा : एकैकमक्षर पुसा महापातकनाशनम्। एक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायन। भक्त माला और मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की। अत मगलखानी कहा। इसे पूरा तो कोई भी नही कह सकता। अत सभी कुछ ही कह पाते हैं। इसलिए मैंने भी कुछ बखानकर कहा है। हमारी वाणी परअपवादादि दोषो से दूषित है। अत उसके पवित्र करने के लिए थोडा सा कहा।

छं. निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो ।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पार कवि कवन लह्यो ॥
उपवीत ब्याह उछाह मगल सुनि जे सादर गावही ।
बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्वदा सुखु पावही ॥

अर्थ अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए तुलसीदास ने रामयश कहा है। रामचरित्र अपार समुद्र है। इसका पार किस कवि ने पाया। जनेउ और व्याह का उछाह मङ्गल है। इसे सुनकर जो आदर के साथ गावेंगे वे वैदेही और रामजी की कृपा से सदा सुख पावेंगे।

व्याख्या : वाणी ही व्यवहार का मूल है। इसकी पवित्रता पर सबकी पवित्रता निर्भर है। सो परापवाद और विवाद आदि से दूषित हो गई है। यथा : पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि। उसे पवित्र करने के लिए तुलसीदास श्रीग्रन्थकार ने रामयश कहा है। उसे कह डालने के विचार से नही कहा है नही तो रामचरित तो अपार समुद्र है। इसका पार किसी कवि ने नही पाया। समुद्रावगाहन अपनी पवित्रता के लिए किया जाता है पार पाने के लिए नही। इसलिए सभी वक्ताओ ने इसे अपनी मति के अनुसार ही वर्णन किया है। सबने यथार्थ वर्णन मे अपनी असमर्थता प्रकट की है।

शिवजी ने कहा गिरिजा सुनहु विसद यह कथा। मै सब कही मोरमति जथा। रामचरित सतकोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा। राम अनत अनत गुनानी। जन्म कर्म अनत नामानी। इत्यादि। भुसुण्डिजी कहते हैं : नाथ जथामति भापेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावै कोइ। याज्ञवल्क्यजी कहते है रघुपतिकृपा यथामति गावा। मै यह पावन चरित सोहावा।

अत यह ठीक है कि किसी कवि ने पार न पाया। तब ग्रन्थकर्ता कहते हैं कि मै किस गिनती मे हूँ मुझे भी पार नही मिला।

जन्म मङ्गलगान का फल कह चुके है। यथा यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा। अब अवशिष्ट यज्ञोपवीत और विवाह के उछाहवाला मङ्गल गुरुमुख से सुनकर जो लोग आदर के साथ गावेंगे उन पर वैदेही और रामजी की कृपा होगी। वे सदा सुख पावेंगे। जन्म मङ्गल मे केवल रामयश रहा। अत उसका पार लौकिक फल है। विवाह मङ्गल मे दोनो सरकार : रामजानकी का यश है। अत इसके गान करनेवाले सदा सुख पावेंगे।

सो सिय रघुबीर बिबाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिनकहु सदा उछाह, मगलायतन राम जसु ॥३६१॥

अर्थ सीता रामजी का व्याह जो लोग प्रेम से गाते और सुनते है उनको सदा ही उछाह बना रहता है। क्योकि रामयश मङ्गल का घर है।

व्याख्या अब केवल विवाह प्रकरण की फलश्रुति कहते है। आदर से प्रेम वडा है। अत जो प्रेम से सुनेगा उसके फल मे भी उत्कर्ष है। उसको सदा उछाह रहेगा। सुख से आधिक्य मे उछाह होता है। कारण कहते हैं कि रामजी का यश मङ्गल का घर है। यही मङ्गल निवास करता है। रामजी के नाम मे कल्याण का निवास है। नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास औरु। उनके चरित मे मङ्गल का निवास है यथा मगलायतन रामजसु।

यह काण्ड सोरठा से प्रारम्भ करके सोरठा से समाप्त होता है। सोरठा मे वृद्धिक्रम है। इस काण्ड की फलश्रुति भी वृद्धिपरक है।

हरि ॐ तत्सत्

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने प्रथम. सोपानः समाप्त.

अर्थ यह सकल कलि कलुप के नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानस की पहिली सीढी समाप्त हुई।

व्याख्या श्रीरामचरितमानस कलियुग के दोपो को दूर करनेवाला है। कलियुग सब मलों का मूल है। यथा जुग कलिजुग मल मूल। इसे नाश करने मे मुनि भावन पावन रामचरित्र ही समर्थ है। यथा कलि कुचालि कुलि कलुप नसावन। इस सर मे यह चमत्कार है कि सब सीढियो से जल मिलता है।

साम्वसदाशिव साम्वसदाशिव साम्वसदाशिव साम्वशिव

रामचरित तुलसी कथित प्रथित प्रथम सोपान।
औरन को आधार यह जानत सकल सुजान ॥१॥
गुण रत्नाङ्क शशाङ्क शिवरानि सदाशिव ध्याइ।
विजयाख्या टीका रची विजयानद सुख पाइ ॥२॥
जननि जनक गुरु की कृपा टीका लिखी सुछद।
पढत सुनत कल्याण मुद पावै विजयानन्द ॥३॥
शर नभ नभचख रामसिय व्याह दिवस अनुकूल।
करि सुधार फिर से लिखी टीका मगलमूल ॥४॥
जय हनुमान ज्ञान गुनसागर। जय कपीस त्रयलोक उजागर ॥